श्रीश्रीसरस्वती देवी (पृष्ठ-संख्या २)

शिव-परिवार (पृष्ठ-संख्या ३)

भगवान् बालकृष्ण (पृष्ठ-संख्या ३५१)

॥ श्रीहरिः ॥

संक्षिप्त स्कन्दमहापुराणके भावानुवादकी विषय-सूची

(२) वैष्णवखण्ड

(भूमिवाराहखण्ड या वेङ्कटाचल-माहात्म्य)

(उत्कलखण्ड या पुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्य)

(बदरिकाश्रम-माहात्म्य)

(कार्तिकमास-माहात्म्य)

(श्रीअयोध्या-माहात्म्य)

(३) ब्राह्म-खण्ड

(सेतु-माहात्म्य)

(धर्मारण्य-माहात्म्य)

(चातुर्मास्य-माहात्म्य)

(ब्रह्मोत्तर-खण्ड)

काशीखण्ड

(उत्तरार्ध)

(५) आवन्त्य-खण्ड

(अवन्तीक्षेत्र-माहात्म्य)

सौर फाल्गुन २००७, फरवरी १९५१ को

विषय-सूची

सङ्कलित

सौर चैत्र २००७, मार्च १९५१

नागर-खण्ड (उत्तरार्ध)

(७) प्रभास-खण्ड

सङ्कलित

सौर वैशाख २००८, अप्रैल १९५१

सङ्कलित

सौर ज्येष्ठ २००८, मई १९५१

द्वारकामाहात्म्य

सङ्कलित

कल्याण, सौर आषाढ़ २००८, जून सन् १९५१

चित्र-सूची

इकरंगे

गीताप्रेस, गोरखपुरका सस्ता, सदा सेवनीय आत्मकल्याणकारी साहित्य

पुराण-साहित्य—

संक्षिप्त पद्मपुराण

पद्मपुराणका यह संक्षिप्त भाषानुवाद है। भगवान् विष्णुका माहात्म्य विशेषरूपसे वर्णित होनेके कारण वैष्णवोंको यह अधिक प्रिय है। भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों एवं उनके परात्पर रूपोंका इसमें विस्तृत वर्णन ज्ञानप्रद है। इसकी कथाएँ अत्यन्त रोचक, शिक्षाप्रद और कल्याणकारी होनेसे इसका पठन-पाठन, अनुशीलन, पारायण आदि श्रेयस्कर हैं। पृष्ठ-संख्या ९०४, रंगीन चित्र १ एवं अनेक रेखा-चित्र।

संक्षिप्त शिवपुराण

सुप्रसिद्ध 'शिवपुराण'का यह संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद, परात्पर परमेश्वर शिवके कल्याणमय स्वरूप, तत्त्व-रहस्य, महिमा, लीला-विहार, अवतार आदिके रोचक वर्णनसे युक्त है। इसकी कथाएँ अत्यन्त सुरुचिपूर्ण, ज्ञानप्रद और कल्याणकारी हैं। इसमें भगवान् शिवके पूजन-विधिसहित महत्त्वपूर्ण स्तोत्रोंका उपयोगी संग्रह संकलित है। पृष्ठ-संख्या ७००, बहुरंगे चित्र ४, सादे चित्र १२, रेखा-चित्र १३८, सजिल्द।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत

सुप्रसिद्ध देवीभागवत-पुराणके इस संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तरमें सच्चिदानन्द परब्रह्मकी मातृ-शक्तिके रूपमें उपासना और आद्याशक्ति भगवतीके तात्त्विक स्वरूपका विवेचनसहित महादेवीकी अद्भुत लीला-कथाओं एवं चरित्रोंका ज्ञानप्रद रोचक वर्णन है। इसके पौराणिक आख्यान एवं सुरुचिपूर्ण चरित्र-कथाएँ कल्याणकारी हैं। सजिल्द, पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र ८, सादे चित्र १८, रेखा-चित्र १७६ तथा रेखाङ्कित यन्त्र ३, इसकी उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

श्रीमद्भागवतमहापुराण (दो खण्ड)

सुप्रसिद्ध श्रीमद्भागवतमहापुराण भगवत्प्रेम-रसका छलकता हुआ ऐसा सागर है जिसकी कहीं कोई तुलना नहीं है—'स्वादु स्वादु पदे-पदे।' इसमें सकाम-कर्म, निष्काम-कर्म, साधन-ज्ञान, सिद्ध-ज्ञान, साधन-भक्ति, प्रेमा-भक्ति आदि उत्तमोत्तम मोक्षदायक साधन-मार्गोंका रहस्य-विवेचन बड़ी ही मधुरताके साथ किया गया है। मानव-जीवनके चरम और परम लक्ष्य—भगवत्प्राप्ति या आत्म-कल्याणहेतु इस महान् ग्रन्थका पाठ, पारायण, श्रवण, अनुशीलन आदिका आश्रय ही इस घोर कलिकालमें एकमात्र परमोपयोगी साधन है। सम्पूर्ण ग्रन्थ मूल पाठ एवं अनुवादसहित दो खण्डोंमें उपलब्ध है। कुल पृष्ठ-संख्या २०२१, भावमय बहुरंगे चित्र २, सजिल्द, श्रीमद्भागवतकी महिमा, माहात्म्य, पूजन-विधि, आरती एवं पाठके विभिन्न प्रयोग आदि उपयोगी सामग्रीसहित।

श्रीशुक-सुधा-सागर (सचित्र) बृहदाकार

श्रीमद्भागवत (सम्पूर्ण) का केवल हिन्दी-भाषामें विशेष संस्करण, संस्कृत न जाननेवाले सज्जनों, माता, बहनों और प्रौढ़ों तथा वृद्धोंके लिये यह विशेष उपयोगी है। आकार बहुत बड़ा, टाइप बहुत बड़े, स्वच्छ सुन्दर छपाईसे युक्त, सचित्र, पृष्ठ-संख्या १३६१, सजिल्द, आकर्षक बहुरंगे आवरणसे युक्त।

श्रीहरिवंशपुराण सटीक (महाभारत-खिल भाग)

श्रीहरिवंशपुराण—महाभारतका खिल या प्रकीर्ण भाग है। इसमें भगवान् श्रीहरि (श्रीकृष्ण) के वंशका वृहत् वर्णन है। भगवद्भक्ति तथा भगवान् श्रीकृष्णसे सम्बद्ध इसकी भक्ति, ज्ञान, वैराग्यप्रद अनेक रोचक कथाएँ बड़ी आनन्दप्रद और कल्याणकारी हैं। वंश-वृद्धि या पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे विधिपूर्वक 'हरिवंश'-श्रवणका माहात्म्य शास्त्रोंमें बताया गया है। मूल हिन्दी-अनुवाद-सहित, पृष्ठ-संख्या ११४२, भावपूर्ण सुन्दर रंगीन चित्र ८, सजिल्द।

महाभारत—

महाभारत सम्पूर्ण सटीक (छः खण्ड)

भारतीय धर्म, दर्शन तथा आर्य-संस्कृतिकी गरिमाका दिग्दर्शन करानेवाला यह प्राचीन ऐतिहासिक महाकाव्य विश्व-साहित्यमें अप्रतिम तथा अद्वितीय है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके महान् उपदेशों एवं प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओंके उल्लेखसहित इसमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार, अध्यात्म आदि मानव-जीवनके लिये सर्वोत्तम उपयोगी विषयोंका भी विशद वर्णन और विवेचन है। सम्पूर्ण ग्रन्थ छः खण्डोंमें मूल हिन्दी-अनुवादके साथ, विषय-सूचीसहित, ग्रन्थकी कुल पृष्ठ-संख्या ६६०५, बहुरंगे चित्र ७६, सादे चित्र २२५, सजिल्द।

संक्षिप्त महाभारत (दो खण्ड)

मात्र हिन्दी जाननेवालोंके सुविधार्थ सम्पूर्ण महाभारतका यह सरल हिन्दीमें संक्षिप्त अनुवाद—दो भागोंमें उपलब्ध है। कुल पृष्ठ-संख्या १६९१, रंगीन चित्र २, रेखा-चित्र ९७८, सजिल्द।

रामायण—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सटीक (दो खण्ड)

वेद जिस परमतत्त्वका निरूपण करते हैं, वही श्रीमन्नारायणतत्त्व श्रीमद्रामायणमें श्रीरामरूपमें वर्णित है। इसीलिये श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी लोकमें वेद-तुल्य प्रतिष्ठा है। इसका पठन-पाठन, श्रवण-मनन, अनुशीलन, पारायण एवं अनुष्ठान साक्षात् प्रभु रामके संनिधान प्राप्त करनेके समान है। सर्वश्रेयकी प्राप्ति करानेवाला यह दिव्य ग्रन्थ मूल तथा हिन्दी-अनुवादसहित, सम्पूर्ण दो खण्डोंमें उपलब्ध है। विषय-सूची, पाठ-विधि आदि उपयोगी सामग्रीसहित दोनों खण्डोंकी कुल पृष्ठ-संख्या १७३०, रंगीन चित्र २, सजिल्द।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, केवल भाषा

मात्र हिन्दी जाननेवालोंके लिये श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका यह केवल हिन्दी-भाषानुवाद श्लोकाङ्कसहित उपलब्ध है। विषय-सूची, पाठ-विधि, माहात्म्य आदि उपयोगी सामग्रीसहित, कुल पृष्ठ-संख्या १०१५, बहुरंगा चित्र १, सजिल्द।

गीताएँ—

श्रीमद्भगवद्गीता-तत्त्व-विवेचनी

[टीकाकार—श्रीजयदयाल गोयन्दका]

गीताके गूढ़ भावोंका सरल सुबोध भाषामें स्पष्टीकरण, प्रश्नोत्तर-शैलीमें (२५१५ प्रश्न और उनके उत्तरके रूपमें) विस्तृत व्याख्या। प्रत्येक घर-परिवारमें गीता-ज्ञानके लिये अवश्य पढ़ने और सदा रखनेयोग्य इस परमोपयोगी आत्म-कल्याणकारी टीकाका अनुशीलन कर अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिये। कई आकारोंमें उपलब्ध है—

बृहदाकार—बहुत बड़े आकार और मोटे टाइपोंमें, पृष्ठ-संख्या १०००, बहुरंगे चित्र १८, आकर्षक रंगीन चित्रावरण।

राज-संस्करण—सामान्य आकार, पृष्ठ-संख्या १०००, सचित्र, सजिल्द, सुन्दर आकर्षक चित्रावरण-युक्त।

सामान्य संस्करण—सामान्य आकार, पृष्ठ-संख्या १०००, सचित्र, सजिल्द।

श्रीमद्भगवद्गीता-साधक-संजीवनी

[टीकाकार—स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज]

गीताकी यह बृहत्-टीका गीताका मर्म समझनेमें परम सहायक और उपादेय है। इसमें सरल, सुबोध शैलीमें गीताके गूढ़ार्थको सुस्पष्ट करनेका प्रयास किया गया है। यह विभिन्न आकार-प्रकारमें उपलब्ध है।

बृहदाकार—बहुत बड़े आकार और मोटे अक्षरोंमें, पृष्ठ-संख्या ११८६, भावपूर्ण रंगीन चित्र १८, अनेक सादे चित्र, बहुरंगा आकर्षक चित्रावरण, सजिल्द।

राजसंस्करण—सामान्य ग्रन्थाकारमें, पृष्ठ-संख्या ११९२, स्वच्छ, सुन्दर छपाईसे युक्त, बहुरंगे चित्र १८, आकर्षक रंगीन चित्रावरण।

सामान्य संस्करण—पृष्ठ-संख्या ११९२, सचित्र, मजबूत कपड़ेकी जिल्द।

मराठी-अनुवाद—पृष्ठ-संख्या १०२४, सचित्र, आकर्षक चित्रावरण-सज्जित।

गीता-दर्पण

[रचयिता—स्वामी श्रीरामसुखदासजी]

परमश्रद्धेय स्वामीजी महाराजका यह ग्रन्थ गीताके तत्त्वको प्रत्यक्ष देखने-(समझने-) के लिये मानो दर्पण सादृश्य ही है। इसके पूर्वार्धमें अठारहों अध्यायोंके तत्त्वपर प्रश्नोत्तररूपमें प्रकाश डाला गया है तथा उत्तरार्धमें गीताके प्रधान विषयोंका लेखरूपमें सारगर्भित विवेचन विस्तारसे किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें गीताके शब्दार्थ और भावोंको समझनेके लिये व्याकरण तथा छन्दसम्बन्धी उपयोगी समीक्षा तथा श्लोकोंके परिमाणके विषयमें प्रामाणिक समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। पाठकोंके सुविधार्थ पाठ-विधियाँ भी निर्दिष्ट हैं। पृष्ठ-सं० ३९२, सजिल्द, बहुरंगे चित्र ४, बहुरंगा आकर्षक सचित्र आवरण।

मराठी-अनुवाद—'गीता-दर्पण' का मराठी अनुवाद भी उपलब्ध है। पृष्ठ-संख्या ३२८, सचित्र, सजिल्द, आकर्षक आवरण, मूल्य रु० २०.००।

बँगला-अनुवाद—पृष्ठ-संख्या ३७०, सचित्र, आकर्षक आवरण, सजिल्द।

गीता-माधुर्य

[हिन्दीके अतिरिक्त अन्य आठ भाषाओंमें भी अनुवादित]

सर्वसाधारणजनोंमें गीता पढ़ने और उसके अनुशीलनमें अधिकाधिक रुचि बढ़े—इस उद्देश्यसे परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजने गीताके मर्मको समझनेयोग्य बनानेके लिये इसे सरल प्रश्नोत्तर-शैलीमें प्रस्तुत किया है। इसमें गीताके सौन्दर्य-माधुर्य-(तत्त्व-रहस्य एवं गूढ़भावोंके सरलीकरण-) की छटा दर्शनीय है। पृष्ठ-संख्या १८०, आकर्षक सचित्र चित्रावरण, गीता-जैसे आत्म-कल्याणकारी और लोक-पावन ग्रन्थकी अधिकाधिक लोगोंको जानकारी हो इस दृष्टिसे यह पुस्तक हिन्दीके अतिरिक्त आठ अन्य भाषाओंमें भी उपलब्ध करायी गयी है—

(१) तमिल (२) कन्नड (३) मराठी (४) गुजराती (५) उर्दू (६) नेपाली (७) बँगला (८) अँग्रेजी।

श्रीमद्भगवद्गीता (पदच्छेद-अन्वय)

गीताके मूल श्लोक, पदच्छेद, अन्वयसहित, साधारण भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान एवं सूक्ष्म विषयोंपर प्रकाश, 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति'—महत्त्वपूर्ण लेखसहित। पृष्ठ-संख्या ४००, सचित्र, सजिल्द। मराठी, बँगला तथा गुजरातीमें भी पदच्छेद, अन्वयसहित उपलब्ध।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूपिणे कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे ।
विश्वोद्भवस्थाननिरोधहेतवे नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेऽनिशम् ॥

वर्ष २५ | गोरखपुर, सौर माघ २००७, जनवरी १९५१ | संख्या १ पूर्ण संख्या २९०

शुक्लाम्बर शशिवर्ण भगवान् विष्णु

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥
(आवन्त्य० ६३ । ६२-६३)

'भगवान् श्वेत वस्त्र धारण किये हुए हैं, चार भुजाओंसे विभूषित हैं, उनके दिव्य श्रीअङ्गकी कान्ति चन्द्रमाके समान गौर है तथा मुखपर सदा प्रसन्नता छायी रहती है। सारे विघ्नोंकी शान्तिके लिये ऐसे श्रीहरिका ध्यान करे। ऐसे नीलकमलके समान श्यामसुन्दर हरि जिनके हृदयमें विराजमान रहते हैं, उन्हींको लाभ होता है, उन्हींकी विजय होती है। उनकी पराजय कैसे हो सकती है ?'

वैष्णव कौन हैं ?

उपकृतिकुशला जगत्स्वजस्रं परकुशलानि निजानि मन्यमानाः।
अपि परपरिभावने दयार्द्राः शिवमनसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥
दृपदि परधने च लोष्टखण्डे परवनितासु च कूटशाल्मलीषु।
सखि रिपु सहजेषु बन्धुवर्गे सममतयः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥
गुणगणसुमुखाः परस्य मर्मच्छदनपराः परिणामसौख्यदा हि।
भगवति सततं प्रदत्तचित्ताः प्रियवचनाः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥
स्फुटमधुरपदं हि कंसहन्तुः कलुषमुषं शुभनाम चामनन्तः।
जय जय परिघोषणां रटन्तः किमु विभवाः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥
हरिचरणसरोजयुग्मचित्ता जडिमधियः सुखदुःखसाम्यरूपाः।
अपचितिचतुरा हरौ निजात्मनतवचसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥

× × × ×

विगलितमदमानशुद्धचित्ताः
प्रसभविनश्यदहङ्कृतिप्रशान्ताः।
नरहरिममराप्तबन्धुमिष्ट्वा
क्षपितशुचः खलु वैष्णवा जयन्ति॥

(वैष्णव० पु० मा० १० । ११०–११४, ११७)

'समस्त विश्वका उपकार करनेमें ही जो निरन्तर कुशलताका परिचय देते हैं, दूसरोंकी भलाईको अपनी ही भलाई मानते हैं, शत्रुका भी पराभव देखकर उनके प्रति दयासे द्रवीभूत हो जाते हैं तथा जिनके चित्तमें सबका कल्याण बसा रहता है, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं। जिनकी पत्थर, परधन और मिट्टीके ढेलेमें, परायी स्त्री और कूटशाल्मली नामक नरकमें, मित्र, शत्रु, भाई तथा बन्धुवर्गमें समान बुद्धि है, वे ही निश्चितरूपसे वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो दूसरोंकी गुणराशिसे प्रसन्न होते और पराये दोषको ढकनेका प्रयत्न करते हैं, परिणाममें सबको सुख देते हैं, भगवान्में सदा मन लगाये रहते तथा प्रिय वचन बोलते हैं, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो भगवान् श्रीकृष्णके पापहारी शुभ नामसम्बन्धी मधुर पदोंका जाप करते और जय-जयकी घोषणाके साथ भगवन्नामोंका कीर्तन करते हैं, वे अकिञ्चन महात्मा वैष्णवके रूपमें प्रसिद्ध हैं। जिनका चित्त श्रीहरिके चरणारविन्दोंमें निरन्तर लगा रहता है, जो प्रेमाधिक्यके कारण जडबुद्धि-सदृश बने रहते हैं, सुख और दुःख दोनों ही जिनके लिये समान हैं, जो भगवान्की पूजामें दक्ष हैं तथा अपने मन और विनययुक्त वाणीको भगवान्की सेवामें समर्पित कर चुके हैं, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं। मद और अभिमानके गल जानेके कारण जिनका अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध हो गया है, अहङ्कारके समूल नाशसे जो परम शान्त—क्षोभरहित हो गये हैं तथा देवताओंके विश्वसनीय बन्धु भगवान् श्रीनृसिंहजीकी आराधना करके जो शोकरहित हो गये हैं, ऐसे वैष्णव निश्चय ही उच्च पदको प्राप्त होते हैं।'

निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

हमारा पुराण-साहित्य बड़े महत्त्वका है। यह सम्भव है कि उसमें समय-समयपर यत्किञ्चित् परिवर्तन-परिवर्द्धन किया गया हो, परंतु मूलतः तो वह वेदकी भाँति भगवान्‌का निःश्वासरूप ही है। शतपथ ब्राह्मणमें आया है—

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि।* (शतपथ १४।२।४।१०)

'गीले काठमें उत्पन्न अग्निसे जिस प्रकार पृथक् धूआँ निकलता है, उसी प्रकार ये जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस (अथर्ववेद), इतिहास, पुराण, विद्याएँ, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण और अर्थवाद हैं, वे सब महान् परमात्माके ही निःश्वास हैं।' अर्थात् बिना ही प्रयत्नके परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं—

'''अप्रयत्नेनैव पुरुषनिःश्वासो भवत्येवम्'' '(शाङ्करभाष्य)

वेदोंके संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदोंमें भगवान् विष्णु, शिव आदिके, भगवान्‌के विभिन्न अवतारोंके तथा पुराणवर्णित अनेकों कथाओंके प्रसङ्ग आये हैं।

अथर्ववेदमें आया है—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः॥

(११।७।२४)

'यज्ञसे यजुर्वेदके साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए।' छान्दोग्योपनिषद्‌में नारदजीने सनत्कुमारसे कहा है—

'स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्—' (७।११)

'मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चौथे अथर्ववेद और पाँचवें वेद इतिहास-पुराणको जानता हूँ।'

मनु महाराजने तो पुराणकी मङ्गलमयताको जानकर आज्ञा ही दी है—

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानि च॥

(३।२३२)

'श्राद्धादि पितृकार्योंमें वेद, धर्मशास्त्र, आख्यान, इतिहास, पुराण और उनके परिशिष्ट भाग सुनाने चाहिये।'

ब्रह्माण्डपुराणके प्रक्रियापादमें 'पुराण' शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार की गयी है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चेत् पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः॥
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥
यस्मात् पुरा ह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(अध्याय १)

'अङ्ग और उपनिषद्‌के सहित चारों वेदोंका अध्ययन करके भी, यदि पुराणको नहीं जाना गया तो ब्राह्मण विचक्षण नहीं हो सकता; क्योंकि इतिहास-पुराणके द्वारा ही वेदकी पुष्टि करनी चाहिये। यही नहीं, पुराणज्ञानसे रहित अल्पज्ञसे वेद डरते रहते हैं; क्योंकि ऐसे व्यक्तिके द्वारा ही वेदका अपमान हुआ करता है। अत्यन्त प्राचीन तथा वेदको स्पष्ट करनेवाला होनेसे ही इसका नाम 'पुराण' हुआ है। पुराणकी इस व्युत्पत्तिको जो जानता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

इस प्रकार पुराणोंकी अनादिता, प्रामाणिकता तथा मङ्गलमयताका स्थल-स्थलपर उल्लेख है और वह सर्वथा सिद्ध एवं यथार्थ है। भगवान् व्यासदेवने प्राचीनतम पुराणका प्रकाश और प्रचार किया है। वस्तुतः पुराण अनादि और नित्य है।

पुराणोंकी कथाओंमें असम्भव-सी दीखनेवाली बातें, परस्परविरोधी-सी बातें और भगवान् तथा देवताओंके साक्षात् मिलने आदिके प्रसङ्गोंको देखकर स्वल्प श्रद्धावाले पुरुष उन्हें काल्पनिक मानने लगते हैं; परंतु यथार्थमें ऐसी बात नहीं है। इनमें प्रत्येकपर संक्षेपसे विचार कीजिये।

जबतक वायुयानका निर्माण नहीं हुआ था, तबतक पुराणेतिहासोंमें वर्णित विमानोंके वर्णनको बहुत-से लोग असम्भव मानते थे। पर अब जब हमारी आँखोंके सामने आकाशमें विमान उड़ रहे हैं, तब वैसी बात नहीं रही। मान लीजिये आजके ये रेडियो, टेलिविजन, टेलीफोन आदि यन्त्र नष्ट हो जायँ और कुछ शताब्दियोंके बाद ग्रन्थोंमें इनका वर्णन पढ़नेको मिले तो उस समयके लोग यही कहेंगे कि 'यह सारी कपोलकल्पना है; भला, हजारों कोसोंकी बात उसी क्षण वैसी-की-वैसी सुनायी देना, आवाजका पहचाना जाना

---

* बृहदारण्यक-उपनिषद् २।४।१० में यह ज्यों-का-त्यों है।

और उसमें आकृति भी दीख जाना कैसे सम्भव है।' हमारे ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र आदिको लोग असम्भव मानते थे, पर अब अणुबमकी शक्ति देखकर कुछ-कुछ विश्वास करने लगे हैं। पुराणवर्णित सभी असम्भव बातें ऐसी ही हैं, जो हमारे सामने न होनेके कारण असम्भव-सी दीखती हैं।

परस्परविरोधी प्रसङ्ग तो कल्पभेदको लेकर हैं। पुराणोंके सृष्टितत्त्वको जाननेवाले लोग इस बातको सहज ही समझ सकते हैं।

रही देवताओंके मिलनेकी बात, सो यह भी असम्भव नहीं है। प्राचीन कालके उन भक्तिपूत योगी, तपस्वी, ऋषि-मुनियोंमें ऐसी सात्त्विकी महान् शक्ति थी कि उनमेंसे कई तो समस्त लोकोंमें निर्बाध यातायात करते थे। दिव्यलोक, देवलोक, असुरलोक और पितृलोककी व्यवस्था और घटनाओंको वहाँ जाकर प्रत्यक्ष देखते थे। देवताओंसे मिलते थे और अपने तपोमय प्रेमाकर्षणसे देवताओंको—यहाँतक कि भगवान्‌को भी अपने यहाँ बुलाकर प्रकट कर लेते थे। पुराणोंकी ऐसी बातें उन ऋषि-मुनियोंकी स्वयं प्रत्यक्ष की हुई ही हैं। अद्वैत-वेदान्तके महान् आचार्य भगवान् शङ्करने शारीरकभाष्यमें लिखा है—

इतिहासपुराणमपि व्याख्यातेन मार्गेण संभवद् मन्त्रार्थवादमूलत्वात् प्रभवति देवताविग्रहादि साधयितुम्। प्रत्यक्षादिमूलमपि संभवति। भवति ह्यस्माकमप्रत्यक्षमपि चिरन्तनानां प्रत्यक्षम्। तथा च व्यासादयो देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवहरन्तीति स्मर्यते। यस्तु ब्रूयादिदानीन्तनानामिव पूर्वेषामपि नास्ति देवादिभिर्व्यवहर्तुं सामर्थ्यमिति, स जगद्वैचित्र्यं प्रतिषेधेत्। इदानीमिव च नान्यदापि सार्वभौमः क्षत्रियोऽस्तीति ब्रूयात्। ततश्च राजसूयादिचोदनोपरुन्ध्यात्। इदानीमिव च कालान्तरेऽप्यव्यवस्थितप्रायान् वर्णाश्रमधर्मान् प्रतिजानीत, ततश्च व्यवस्थाविधायि शास्त्रमनर्थकं स्यात्। तस्माद् धर्मोत्कर्षवशाच्चिरन्तना देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवजह्रुरिति श्लिष्यते…………।

(देखिये १ । ३ । ३३ का भाष्य)

"इतिहास और पुराण भी मन्त्रमूलक तथा अर्थवादमूलक होनेके कारण प्रमाण हैं, अतः उपर्युक्त रीतिसे वे देवताविग्रह आदिके सिद्ध करनेमें समर्थ होते हैं। देवताओंका प्रत्यक्ष आदि भी सम्भव हैं। इस समय हमें जो प्रत्यक्ष नहीं होते, प्राचीन लोगोंको वे प्रत्यक्ष होते थे। जैसे कि व्यासादिके देवताओंके साथ प्रत्यक्ष व्यवहारकी बात स्मृतिमें है। 'आजकलकी भाँति प्राचीन पुरुष भी देवताओंके साथ प्रत्यक्ष व्यवहार करनेमें असमर्थ थे' यह कहनेवाला तो जगत्‌की विचित्रताका ही निषेध करेगा। 'आजकलके समान अन्य समयमें भी सार्वभौम क्षत्रियोंकी सत्ता नहीं थी' यों कहनेपर तो राजसूय आदि विधिका बाध हो जायगा और ऐसी प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि आजकलके समान अन्य समयमें भी वर्णाश्रमधर्म अव्यवस्थित ही था। तब तो इसकी व्यवस्था करनेवाला शास्त्र ही व्यर्थ हो जायगा। अतएव यह सिद्ध है कि धर्मके उत्कर्षके कारण प्राचीनलोग देवताओं आदिके साथ प्रत्यक्ष व्यवहार करते थे।"

इससे सिद्ध है कि पुराणवर्णित प्रसङ्ग काल्पनिक नहीं हैं, वे सर्वथा सत्य हैं। अवश्य ही यह बात है कि हमारे ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंमें वर्णित प्रसङ्ग ऐसे चमत्कारपूर्ण हैं, कि जिनके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों ही अर्थ होते हैं। इसलिये जो लोग इनका आध्यात्मिक अर्थ करते हैं, वे भी अपनी दृष्टिसे ठीक ही करते हैं। पुराणोंमें कहीं-कहीं ऐसी बातें भी हैं, जो घृणित मालूम देती हैं। इसका कारण यह है कि उनमें कुछ प्रसङ्ग तो ऐसे हैं, जिनमें किसी निगूढ़ तत्त्वका विवेचन करनेके लिये आलङ्कारिक भाषाका प्रयोग किया गया है। उन्हें समझनेके लिये भगवत्कृपा, सात्त्विकी श्रद्धा और गुरु-परम्पराके अध्ययनकी आवश्यकता है। कुछ ऐसी बातें हैं, जो सच्चा इतिहास है। बुरी बात होनेपर भी सत्यके प्रकाश करनेकी दृष्टिसे उन्हें ज्यों-का-त्यों लिख दिया गया है। इसका कारण यह है कि हमारे वे पुराणवक्ता ऋषि-मुनि आजकलके इतिहासलेखकोंकी भाँति राजनैतिक दलगत, देशगत और जातिगत आग्रहके मोहसे मिथ्याको सत्य बनाकर लिखना पाप समझते थे। वे सत्यवादी, सत्याग्रही और सत्यके प्रकाशक थे।

अब एक बात और है, जो बुद्धिवादी लोगोंकी दृष्टिमें प्रायः खटकती है—वह यह कि पुराणोंमें जहाँ जिस देवता, तीर्थ या व्रत आदिका महत्त्व बतलाया गया है, वहाँ उसीको सर्वोपरि माना है और अन्य सबके द्वारा उसकी स्तुति करायी गयी है। गहराईसे न देखनेपर यह बात अवश्य बेतुकी-सी प्रतीत होती है; परंतु इसका तात्पर्य यह है कि भगवान्‌का यह लीलाभिनय ऐसा आश्चर्यमय है कि इसमें एक ही परिपूर्ण भगवान् विभिन्न-विचित्र लीलाव्यापारके लिये और विभिन्न रुचि, स्वभाव तथा अधिकारसम्पन्न साधकोंके कल्याणके लिये अनन्त विचित्र रूपोंमें नित्य प्रकट हैं। भगवान्‌के ये सभी रूप नित्य, पूर्णतम और सच्चिदानन्द-

स्वरूप हैं। अपनी-अपनी रुचि और निष्ठाके अनुसार जो जिस रूप और नामको इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपमेंसे समस्त रूपमय एकमात्र भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि भगवान्‌के सभी रूप परिपूर्णतम हैं और उन समस्त रूपोंमें एक ही भगवान् लीला कर रहे हैं। व्रतोंके सम्बन्धमें भी यही बात है। अतएव श्रद्धा और निष्ठाकी दृष्टिसे साधकके कल्याणार्थ जहाँ जिसका वर्णन है, वहाँ उसको सर्वोपरि बताना युक्तियुक्त ही है और परिपूर्णतम भगवत्सत्ताकी दृष्टिसे सत्य तो है ही। तीर्थोंकी बात यह है कि भगवान्‌के विभिन्न नाम-रूपोंकी उपासना करनेवाले संतों, महात्माओं और भक्तोंने अपनी कल्याणमयी सत्साधनाके प्रतापसे विभिन्नरूपमय भगवान्‌को अपनी-अपनी रुचिके अनुसार नाम-रूपमें अपने ही साधन-स्थानमें प्राप्त कर लिया और वहीं उनकी प्रतिष्ठा की। एक ही भगवान् अपनी पूर्णतम स्वरूप-शक्तिके साथ अनन्त स्थानोंमें अनन्त नाम-रूपोंमें प्रतिष्ठित हुए। भगवान्‌के प्रतिष्ठास्थान ही तीर्थ हैं, जो श्रद्धा, निष्ठा और रुचिके अनुसार सेवन करनेवालेको यथायोग्य फल देते हैं। यही तीर्थ-रहस्य है। इस दृष्टिसे प्रत्येक तीर्थको सर्वोपरि बतलाना सर्वथा उचित ही है।

सब एक हैं, इसकी पुष्टि तो इसीसे भलीभाँति हो जाती है कि शैव कहे जानेवाले पुराणोंमें विष्णुकी और वैष्णव पुराणोंमें शिवकी महिमा गायी गयी है और दोनोंको एक बताया गया है तथा उक्त पुराणविशेषके विशिष्ट प्रधान देवने अपने ही श्रीमुखसे अन्य पुराणोंके प्रधान देवताको अपना ही स्वरूप बतलाया है। यह स्कन्दपुराण ही शैवपुराण माना जाता है; परंतु इसमें स्थान-स्थानपर विष्णुकी अनन्त महिमा गायी गयी है, उनकी स्तुति की गयी है और भगवान् शिवने उनको अपना अभिन्न स्वरूप बतलाया है तथा दोनोंकी एकताके सम्बन्धमें निरूपण किया गया है—

यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः।
अन्तरं शिवविष्ण्वोश्च मनागपि न विद्यते॥
(काशीखण्ड २३। ४१)

'जैसे शिव हैं, वैसे ही विष्णु हैं तथा जैसे विष्णु हैं, वैसे ही शिव हैं। शिव और विष्णुमें तनिक भी अन्तर नहीं है।'

पवित्राणां पवित्रं यो ह्यगतीनां परा गतिः।
दैवतं देवतानां च श्रेयसां श्रेय उत्तमम्॥
(वैष्णवखण्ड वें० मा० ३५। ३८)

'भगवान् विष्णु पवित्रोंको पवित्र करनेवाले हैं, अगतियोंकी परम गति हैं, देवताओंके भी आराध्य हैं और कल्याणोंके उत्तम कल्याण हैं।'

यो विष्णुः स शिवो ज्ञेयो यः शिवो विष्णुरेव सः।
(माहेश्वरखण्ड के० ख० ८। २०)

'जो विष्णु हैं, उन्हींको शिव जानना चाहिये और जो शिव हैं, वही विष्णु हैं।' भगवान् शिव स्वयं कहते हैं—'विष्णु! जैसे मैं हूँ, वैसे ही तुम हो।'

'यथाहं त्वं तथा विष्णो' (काशी० २७। १८३)

श्रीशङ्करजी गरुड़से कहते हैं—'हम ही वे विष्णु हैं और वे विष्णु ही हम हैं, हम दोनोंमें तुम्हारी भेदबुद्धि नहीं होनी चाहिये'—

'असावहं स वै विष्णुर्मास्तु ते भेददृक् च नौ।'
(काशी० ५०। १४४)

ऐसे असंख्य वचन विभिन्न पुराणोंमें पाये जाते हैं।

लोग कहते हैं कि तीर्थोंकी इतनी महत्ता बता दी गयी है कि सदाचार तथा ज्ञानके साधनोंका तिरस्कार हो गया है। तीर्थसेवनके कुछ अनुचित पक्षपाती लोग भी ऐसा कह देते हैं कि 'बस, अमुकतीर्थका सेवन करो; फिर चाहे जो पापाचार-अनाचार करो, कोई डरकी बात नहीं है।' पर वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। इस भूलमें कोई न रहे, इसीसे पुराणोंमें जहाँ तीर्थादिका माहात्म्य प्रचुर मात्रामें लिखा गया है, वहीं ऐसी बात लिख दी गयी है, जो सारे भ्रमोंको दूर कर देती है। स्कन्दपुराणमें काशीका बड़ा माहात्म्य है। पर साथ ही कहा गया है कि पाप करनेवाले लोग काशीमें न रहें—

पापमेव हि कर्तव्यं मतिरस्ति यथेदृशी।
सुखेनान्यत्र कर्तव्यं मही ह्यस्ति महीयसी॥
अपि कामातुरो जन्तुरेकां रक्षति मातरम्।
अपि पापकृता काशी रक्ष्या मोक्षार्थिनैकिका॥
परापवादशीलेन परदाराभिलाषिणा।
तेन काशी न संसेव्या क्व काशी निरयः क्व सः॥
अभिलष्यन्ति ये नित्यं धनं चात्र प्रतिग्रहैः।
परस्वं कपटैर्वापि काशी सेव्या न तैर्नरैः॥
परपीडाकरं कर्म काश्यां नित्यं विवर्जयेत्।
तदेव चेत् किमत्र स्यात् काशीवासो दुरात्मनाम्॥
(काशी० २२। ९५-९९)

अर्थार्थिनस्तु ये विप्र ये च कामार्थिनो नराः।
अविमुक्तं न तैः सेव्यं मोक्षक्षेममिदं यतः॥

शिवनिन्दापरा ये च वेदनिन्दापराश्च ये ।
वेदाचारप्रतीपा ये सेव्या वाराणसी न तैः ॥
परद्रोहधियो ये च परेर्ष्याकारिणश्च ये ।
परोपतापिनो ये वै तेषां काशी न सिद्धये ॥
(काशी० २२ । १०१–१०३)

'मैं तो पाप करूँगा ही—ऐसी जिसकी बुद्धि है, उसके लिये पृथ्वी बहुत बड़ी पड़ी है। वह काशीसे बाहर कहीं भी जाकर सुखसे पाप कर सकता है। कामातुर होनेपर भी मनुष्य एक अपनी माताको तो बचाता ही है। ऐसे ही पापी मनुष्यको भी मोक्षार्थी होनेपर एक काशीको तो बचाना ही चाहिये। दूसरोंकी निन्दा करना जिनका स्वभाव है और जो परस्त्रीकी इच्छा करते हैं, उनके लिये काशीमें रहना उचित नहीं। कहाँ मोक्ष देनेवाली काशी और कहाँ ऐसे नारकी मनुष्य! जो प्रतिग्रहके द्वारा धनकी इच्छा करते हैं और जो कपट-जाल फैलाकर दूसरोंका धन हरण करना चाहते हैं, उन मनुष्योंको काशीमें नहीं रहना चाहिये। काशीमें रहकर ऐसा कोई काम कभी नहीं करना चाहिये; जिससे दूसरेको पीड़ा हो। जिनको यही करना हो, उन दुरात्माओंको काशीवाससे क्या प्रयोजन है!

'विप्रवर! जो अर्थार्थी या कामार्थी हैं, उनको इस मुक्तिदायी काशीक्षेत्रमें नहीं रहना चाहिये। जो शिवनिन्दामें और वेदकी निन्दामें लगे रहते हैं तथा वेदाचारके विपरीत आचरण करते हैं, उनको वाराणसीमें नहीं रहना चाहिये। जो दूसरोंसे द्रोह करते हैं, दूसरोंसे डाह करते हैं और दूसरोंको कष्ट पहुँचाते हैं, काशीमें उनको सिद्धि नहीं मिलती।'

पापात्मा तीर्थफलसे वञ्चित रहता है—यह स्पष्ट कहा गया है—

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः ॥
(काशी० ६ । ५४)

'श्रद्धाहीन, पापात्मा (तीर्थमें पापीकी—पाप करनेवालेकी शुद्धि होती है पर जिसका स्वभाव ही पापमय है, उस 'पापात्मा' की नहीं होती), नास्तिक, सन्देहशील और हेतुवादी—इन पाँचोंको तीर्थफलकी प्राप्ति नहीं होती।'

वस्तुतः तीर्थका फल किसको मिलता है?—

प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अहङ्कारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥
अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
विमुक्तः सर्वसङ्गैर्यः स तीर्थफलमश्नुते ॥
अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढव्रतः ।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥
(काशी० ६ । ४९–५१)

'जो प्रतिग्रहसे निवृत्त है, जिस किसी स्थितिमें ही सन्तुष्ट है और अहङ्कारसे भलीभाँति छूटा हुआ है, वह तीर्थफलका भोग करता है। जो दम्भ नहीं करता, सकाम कर्मका आरम्भ नहीं करता, स्वल्पाहार करता है, इन्द्रियोंको जीत चुका है और समस्त आसक्तियोंसे भलीभाँति मुक्त है, वह तीर्थफलका भोग करता है। जो क्रोधरहित है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्यभाषण करता है, दृढनिश्चयी है और समस्त प्राणियोंको अपने आत्माके समान ही जानता है, वह तीर्थफलका भोग करता है।'

क्योंकि—

ये तत्र चपलास्तथ्यं न वदन्ति च लोलुपाः ।
परिहासपरद्रव्यपरस्त्रीकपटाग्रहाः ॥
मलचैलावृताशान्ताशुचयस्त्यक्तसत्क्रियाः ।
तेषां मलिनचित्तानां फलमत्र न जायते ॥
(वैष्णव० बदरि० ६ । ६९-७०)

भगवान् शङ्कर स्कन्दजीसे कहते हैं—

'जो चञ्चलबुद्धि हैं, लोभी हैं और तथ्यकी बात नहीं कहते, जिनके मनमें परिहास, पर-धन और पर-स्त्रीकी इच्छा है तथा जिनका कपटपूर्ण आग्रह है, जो दूषित वस्त्र पहनते हैं, जो अशान्त, अपवित्र और सत्कर्मोंके त्यागी हैं, उन मलिनचित्त मनुष्योंको इस तीर्थमें कोई फल नहीं मिलता।'

तीर्थोंमें किस प्रकार रहना चाहिये, इसपर कहा गया है—

निर्ममा निरहङ्कारा निःसङ्गा निष्परिग्रहाः ।
बन्धुवर्गेण निःस्नेहाः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥
भूतानां कर्मभिर्नित्यं त्रिविधैरभयप्रदाः ।
सांख्ययोगविधिज्ञाश्च धर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः ॥
(अवन्तिकाखण्ड ७ । ३२-३३)

'(इस क्षेत्रमें वास करनेवाले) ममतारहित, अहङ्काररहित, आसक्तिरहित, परिग्रहसे शून्य, बन्धु-बान्धवोंमें स्नेह न रखनेवाले, मिट्टी, पत्थर और सोनेमें समान बुद्धि रखनेवाले, मन-वाणी और शरीरके द्वारा किये जानेवाले त्रिविध कर्मोंसे सदा सब प्राणियोंको अभय देनेवाले, सांख्य और योगकी विधिको जाननेवाले, धर्मके स्वरूपको समझनेवाले और संशय-सन्देहोंसे रहित हों।

मानस तीर्थोंका वर्णन करते हुए यहाँतक कह दिया गया है—

शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे ।
येषु सम्यङ्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम् ॥
सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च ॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते ।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥

न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते ।
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः ॥
यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः ।
सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः ॥
न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्मलः ।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तःसुनिर्मलः ॥
जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः ।
न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्धमनोमलाः ॥
विषयेष्वतिसंरागो मानसो मल उच्यते ।
तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम् ॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान्न शुध्यति ।
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥
दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतं यथा ।
सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः ॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः ।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥
ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥
(काशीखण्ड ६ । २९—४१)

अगस्त्यजीने लोपामुद्रासे कहा—'निष्पापे ! मैं मानसतीर्थोंका वर्णन करता हूँ, सुनो । इन तीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है । सत्य, क्षमा, इन्द्रियसंयम, सब प्राणियोंके प्रति दया, सरलता, दान, मनका दमन, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, प्रियभाषण, ज्ञान, धृति और तपस्या—ये प्रत्येक एक-एक तीर्थ हैं । इनमें ब्रह्मचर्य परम तीर्थ है । मनकी परम विशुद्धि तीर्थोंका भी तीर्थ है । जलमें डुबकी मारनेका नाम ही स्नान नहीं है; जिसने इन्द्रिय-संयमरूप स्नान किया है, वही स्नात है और जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वही पवित्र है ।

'जो लोभी है, चुगलखोर है, निर्दय है, दम्भी है और विषयोंमें फँसा है, वह सारे तीर्थोंमें भलीभाँति स्नान कर लेनेपर भी पापी और मलिन ही है । शरीरका मैल उतारनेसे ही मनुष्य निर्मल नहीं होता; मनके मलको निकाल देनेपर ही भीतरसे सुनिर्मल होता है । जलजन्तु जलमें ही पैदा होते हैं और जलमें ही मरते हैं, परंतु वे स्वर्गमें नहीं जाते; क्योंकि उनका मनका मैल नहीं धुलता । विषयोंमें अत्यन्त राग ही मनका मैल है और विषयोंसे वैराग्यको ही निर्मलता कहते हैं । चित्त अन्तरकी वस्तु है, उसके दूषित रहनेपर केवल तीर्थ-स्नानसे शुद्धि नहीं होती । शराबके भाण्डको चाहे सौ बार जलसे धोया जाय, वह अपवित्र ही रहता है; वैसे ही जबतक मनका भाव शुद्ध नहीं है, तबतक उसके लिये दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन और स्वाध्याय—सभी अतीर्थ हैं । जिसकी इन्द्रियाँ संयममें हैं, वह मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्करादि तीर्थ विद्यमान हैं । ध्यानसे विशुद्ध हुए, रागद्वेषरूपी मलका नाश करनेवाले ज्ञान-जलमें जो स्नान करता है, वही परम गतिको प्राप्त करता है ।' ऐसे प्रसङ्ग और भी आये हैं ।

इससे यह सिद्ध है कि तीर्थ-व्रत करनेवालोंके लिये भी पापोंके त्याग, इन्द्रियसंयम और तप आदिकी बड़ी आवश्यकता है । इसका यह अर्थ भी नहीं समझना चाहिये कि भौमतीर्थ कोई महत्त्व ही नहीं रखते । उनका बड़ा महत्त्व है और वह भी सच्चा है । वस्तुतः पुराण सर्वसाधारणकी सर्वाङ्गीण उन्नति और परमकल्याणकी साधन-सम्पत्तिके अटूट भंडार हैं । अपनी-अपनी श्रद्धा, रुचि, निष्ठा तथा अधिकारके अनुसार साधारण अपढ़ मनुष्यसे लेकर बड़े-से-बड़े विचारशील बुद्धिवादी पुरुषोंके लिये भी इनमें उपयोगी साधन-सामग्री भरी है । ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, यज्ञ, दान, तप, संयम, नियम, सेवा, भूतदया, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, व्यक्तिधर्म, नारीधर्म, मानवधर्म, राजधर्म, सदाचार और व्यक्ति-व्यक्तिके विभिन्न कर्तव्योंके सम्बन्धमें बड़ा ही विचारपूर्ण और अत्यन्त कल्याणकारी अनुभूत उपदेश बड़ी रोचक भाषामें इन पुराणोंमें भरा गया है । साथ ही पुरुष, प्रकृति, प्रकृति-विकृति, प्राकृतिक दृश्य, ऋषि-मुनियों तथा राजाओंकी वंशावली तथा सृष्टिक्रम आदिका भी निगूढ़ वर्णन है । इनमें इतने अमूल्य रत्न छिपे हैं, जिनका पता लगाकर प्राप्त करनेवाला पुरुष लोक तथा परमार्थकी परम सम्पत्ति पा करके कृतकृत्य हो जाता है ।

ऐसे अठारह महापुराण हैं तथा अठारह ही उपपुराण माने जाते हैं । इधर चार प्रकारके पुराणोंका पता लगा है—महापुराण, उपपुराण, अतिपुराण और पुराण । चारोंकी अठारह-अठारह संख्या बतायी जाती है । उनकी नामावलि इस प्रकार मिलती है—

महापुराण—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, श्रीमद्भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड और ब्रह्माण्ड ।

उपपुराण—भागवत, माहेश्वर, ब्रह्माण्ड, आदित्य, पराशर, सौर, नन्दिकेश्वर, साम्ब, कालिका, वारुण, औशनस, मानव, कापिल, दुर्वासस, शिवधर्म, बृहन्नारदीय, नरसिंह और सनत्कुमार ।

अतिपुराण—कार्तव, ऋजु, आदि, मुद्गल, पशुपति, गणेश, सौर, परानन्द, बृहद्धर्म, महाभागवत, देवी, कल्कि, भार्गव, वासिष्ठ, कौर्म, गर्ग, चण्डी और लक्ष्मी ।

पुराण—बृहद्विष्णु, शिव उत्तरखण्ड, लघु बृहन्नारदीय,

मार्कण्डेय, वह्नि, भविष्योत्तर, वराह, स्कन्द, वामन, बृहद्वामन, बृहन्मत्स्य, स्वल्पमत्स्य, लघुवैवर्त और ५ प्रकारके भविष्य।

इन नामोंमें, नामावलिके विभागमें और क्रममें अन्तर भी हो सकता है। यहाँ तो जैसी सूची मिली है, वैसी ही दे दी गयी है। यह भी सम्भव है कि इनमेंसे कई ग्रन्थ आधुनिक भी हों। यह अन्वेषण और गवेषणाका विषय है।

स्कन्दपुराण समस्त पुराणोंमें सबसे बड़ा है। यह सात खण्डोंमें विभक्त है। इसमें ८११०० श्लोक बतलाये जाते हैं। सात खण्डोंके नामोंमें कुछ भेद है। कथाएँ भी न्यूनाधिक पायी जाती हैं। एक मतसे सात खण्डोंके नाम हैं—माहेश्वर-खण्ड, वैष्णवखण्ड, ब्राह्मखण्ड, काशीखण्ड, रेवाखण्ड, तापीखण्ड और प्रभासखण्ड। नारदपुराणके मतानुसार सात खण्ड इस प्रकार हैं—माहेश्वर, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, अवन्ती, नागर और प्रभासखण्ड। इनमें अनेक अवान्तर खण्ड हैं। इसके अतिरिक्त एक संहितात्मक स्कन्दपुराण पृथक् है। उसके सम्बन्धमें शङ्करसंहिताके 'हालास्य-माहात्म्य' में लिखा है कि 'श्रुतिसार स्कन्दपुराण ६ संहिताओं और ५० खण्डोंमें विभक्त है। इसकी संहिताओंके नाम हैं—१ सनत्कुमारसंहिता, २ सूतसंहिता, ३ शङ्करसंहिता, ४ वैष्णवसंहिता, ५ ब्रह्म-संहिता और ६ सौरसंहिता। इन संहिताओंकी श्लोकसंख्या क्रमशः ३६०००, ६०००, ३००००, ५०००, ३००० और १००० हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर इस स्कन्दपुराणकी श्लोकसंख्या भी ८१००० होती है। इन संहिताओंमेंसे पहली तीन उपलब्ध हैं। कहते हैं कि नैपालमें छहों संहिताएँ हैं। सूतसंहितापर तो आचार्योंके भाष्य भी हैं। इस संहितात्मक स्कन्दपुराणको कोई उपपुराण कहते हैं, कोई पुराण और कोई इसे महापुराणका ही अङ्ग मानते हैं। जो कुछ भी हो, इसकी संहिताएँ हैं बड़े महत्त्वकी।

महापुराणके नामसे प्रचलित स्कन्दपुराण सात खण्डोंवाला ही है। पिछले दिनोंमें देवनागरीमें इसके दो संस्करण निकले थे। एक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे और दूसरा श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, बंबईसे। इस महापुराणमें माहात्म्यकथाओंके प्रसङ्गमें जो विभिन्न इतिहास तथा जीवन-चरित्र आये हैं, वे बड़े महत्त्वके हैं। उनमें लौकिक, पारलौकिक, पारमार्थिक कल्याणकारी अनन्त उपदेश भरे हैं। विविध प्रसङ्गोंमें धर्म, सदाचार, योग, ज्ञान, भक्ति आदिका बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया गया है। तीर्थोंके वर्णनमें जो भूवृत्तान्त आया है, वह तो अत्यन्त आश्चर्यकारक और भूगोलके विद्वानोंके लिये अत्यन्त आदरणीय और विचारणीय विषय है।

हमारा यह स्कन्दमहापुराण, पता नहीं, कितने अतीत *युगोंकी अनन्त अमूल्य गाथाओंको अपने वक्षःस्थलपर* धारण किये, कितने निर्मल नद-नदी-सरित्-सागर-शैलादिका विशद वर्णन प्रस्तुत किये, कितने पुण्यतीर्थ, पुण्याश्रम, पुण्यायतन और कितने शत-शत कृतार्थजीवन ऋषि-महर्षि, साधु-महात्मा संत-भक्तोंकी पुण्यमयी चारु चरित्रमालाओंसे समलङ्कृत होकर आज भी भारतीय हिंदूका भक्ति-भाजन हो रहा है। आज भी हिंदूके जीवनमें, हिंदूके घर-घरमें इसमें वर्णित आचारों पद्धतियों, व्रतों तथा सिद्धान्तोंका कितना प्रचार है—यह देखकर आश्चर्यचकित हृदयसे इसके प्रति जीवन श्रद्धासे झुक जाता है।

इस महापुराणका सार प्रकाशित करनेके लिये बहुत दिनोंसे हमारे अनेकों ग्राहकोंका आग्रह था। पर इतने बड़े ग्रन्थका समुचित संक्षेप करके उसका अनुवाद प्रकाशित करना कठिन होनेके कारण देर होती गयी। इस बार भगवत्कृपासे यह प्रकाशित हो रहा है। कथाओंके चुननेका कार्य हमारे परम आदरणीय श्रीजयदयालजी गोयन्दका और उनके अनुज श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दकाने किया है। अनुवाद गीताप्रेसके पण्डित श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री महोदयने किया है। तदनन्तर उसके संशोधनका कार्य समादरणीय श्रीजयदयालजी गोयन्दका, स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी तथा भाई श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दकाके द्वारा सम्पन्न हुआ है। यह उनका अपना ही काम था। इसलिये उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। हमलोगोंको तो सारा बना-बनाया काम सम्पादनके नामपर मिल गया। इसके अनुवाद, सम्पादन और मुद्रणमें जो त्रुटियाँ रही हैं, उसके लिये हम अपने कृपालु पाठकोंसे विनयपूर्वक क्षमा चाहते हैं। सम्पादन तथा मुद्रणके समय हमें जो भगवान्‌के विविध-विचित्र रूपों, नामों, स्तुतियों और धामोंके माहात्म्य आदिके चित्र-विचित्र प्रसङ्ग पढ़ने और मनन करनेको मिले हैं, इससे हमें बहुत लाभ पहुँचा है। इसको हम भगवान्‌की बड़ी कृपा मानते हैं। इस विशेषाङ्कमें जितनी सामग्री आ सकी, उतनी दी गयी है। शेष सामग्री क्रमशः अगले साधारण अङ्कोंमें दी जायगी। पाठकोंसे हमारी सादर प्रार्थना है कि वे तर्कबुद्धिको त्यागकर श्रद्धाके साथ इस महापुराणके संक्षिप्त सारका अध्ययन करें। जो जितनी श्रद्धासे जितनी गहरी डुबकी लगायेंगे, वे उतने ही मूल्यवान् रत्नोंको प्राप्त कर सकेंगे।

हनुमानप्रसाद पोद्दार } सम्पादक
चिम्मनलाल गोस्वामी }

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीगणेशाय नमः

श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः

संक्षिप्त श्रीस्कन्द-महापुराण

माहेश्वर-खण्ड

केदार-खण्ड

भगवान् शिवकी महिमा, दक्षका शिवजीसे द्वेष तथा दक्ष-यज्ञमें सतीका गमन

यस्याज्ञया जगत्स्रष्टा विरञ्चिः पालको हरिः ।
संहर्ता कालरुद्राख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने ॥

जिनकी आज्ञासे ब्रह्माजी इस जगत्की सृष्टि तथा विष्णु-भगवान् पालन करते हैं और जो स्वयं ही कालरुद्र नाम धारण करके इस विश्वका संहार करते हैं, उन पिनाकधारी भगवान् शङ्करको नमस्कार है ।

नैमिषारण्य तीर्थ सब तीर्थोंसे उत्तम और समस्त क्षेत्रोंमें श्रेष्ठ है । प्राचीन कालमें वहाँ शौनक आदि तपस्वी मुनि एक ऐसे यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे, जो दीर्घकालतक चालू रहनेवाला था । उस यज्ञमें दीक्षित सभी महर्षियोंका सबके प्रति समान भाव था । एक दिन उन सभी महात्माओंके दर्शनकी उत्कण्ठासे प्रेरित होकर महातपस्वी व्यासशिष्य लोमश मुनि वहाँ पधारे । उस दीर्घकालिक यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले मुनियोंने लोमशजीको आया देख एक साथ ही उठकर उनका स्वागत किया । सबके मनमें उल्लास छा गया । सभी उनके दर्शनके लिये उत्सुक थे । वे पापरहित महाभाग महर्षिगण लोमशजीको अर्घ्य और पाद्य निवेदन करके उनके सत्कारमें लग गये । आतिथ्यके पश्चात् उन्होंने विस्तारपूर्वक शिवधर्म सुनानेके लिये लोमशजीसे प्रार्थना की । इसपर उन्होंने शिवजीके उत्तम माहात्म्यका इस प्रकार वर्णन आरम्भ किया ।

लोमशजी बोले—अठारह पुराणोंमें परम पुरुष भगवान् शिवकी महिमाका गान किया गया है; अतः शिवजीके माहात्म्यका पूर्णतया वर्णन कोई भी नहीं कर सकता । जो लोग 'शिव' इस दो अक्षरके नामका उच्चारण करेंगे, उन्हें

स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त होंगे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।* महादेवजी देवताओंके पालक और सबका शासन करनेवाले हैं, वे बड़े उदार (औढर दानी) हैं, उन्होंने अपना सब कुछ दूसरोंको दे डाला है, इसीलिये वे 'सर्व' (या शर्व) कहे गये हैं। जो सदा कल्याण करनेवाले भगवान् शिवका भजन करते हैं, वे धन्य हैं! जिन्होंने (दूसरोंकी रक्षाके लिये) विष-भक्षण किया, दक्ष-यज्ञका विनाश किया, कालको दग्ध कर डाला और राजा श्वेतको संकटसे छुड़ाया, उन महादेवजीकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है।

मुनियोंने पूछा—मुने! भगवान् शिवने कैसे विष-भक्षण किया तथा कैसे दक्ष-यज्ञका विनाश किया, वे सब बातें हमें बताइये। हमारे मनमें वह सब सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है।

लोमशजी बोले—विप्रगण! पूर्वकालकी बात है, प्रजापति दक्षने परमेष्ठी ब्रह्माजीके कहनेसे अपनी पुत्री सतीका विवाह महात्मा शङ्करजीके साथ कर दिया था। एक दिन वे ही दक्ष स्वेच्छानुसार घूमते हुए नैमिषारण्यमें आये। वहाँके ऋषि-मुनियोंने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंने भी स्तुति और नमस्कारके द्वारा दक्षका सम्मान किया; किंतु भगवान् शङ्करने उनको प्रणाम नहीं किया। दक्षने जब इस बातकी ओर लक्ष्य किया, तब उनके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। वे प्रजापति ठहरे, यह अपमान कैसे सहते; उन्होंने तुरंत भगवान् शिवके प्रति कटु वचनोंकी बौछार आरम्भ कर दी—'अहो! ये सम्पूर्ण देवता और असुर भी मेरे चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं, श्रेष्ठ ब्राह्मण भी नामसे ही पवित्र हुए हैं, उन्हीं भगवान् शिवको शाप क्यों दिया गया! खोटी बुद्धिवाले दक्ष! वह यज्ञ, जिसमें शङ्करजीका भाग न हो, व्यर्थ ही होगा; दुर्बुद्धे! तू उस यज्ञकी रक्षा कर। अरे! जिन महात्मा शिवने इस सम्पूर्ण विश्वका पालन किया है, उन्हींको तूने शाप दे डाला!'

तब महादेवजीने नन्दीसे कहा—महामते! तुम्हें ब्राह्मणोंके प्रति कभी क्रोध नहीं करना चाहिये। मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही यज्ञ करनेवाला यजमान और आचार्य हूँ, सम्पूर्ण यज्ञाङ्ग भी मैं ही हूँ; इसलिये मैं सदा यज्ञमें रत हूँ। (मुझे कोई शाप देकर यज्ञ-बहिष्कृत नहीं कर सकता।) इसी प्रकार सर्वव्यापी होनेके कारण मैं किसीके भीतर नहीं हूँ—किसी भी सीमासे आबद्ध नहीं हूँ; इस दृष्टिसे देखनेपर मैं सदा ही सब यज्ञोंसे बाह्य हूँ।

भगवान् शङ्करके इस प्रकार समझानेपर महातपस्वी नन्दीने विवेकका आश्रय लिया। शिवजीका सत्सङ्ग पाकर वे परमानन्दमें निमग्न हो गये। उधर मुनियोंसे घिरे हुए दक्ष भी अत्यन्त रोषमें भरकर अपने स्थानको चले गये। वे प्रणाम न करनेवाले रुद्रको भूल न सके। बारंबार उनका स्मरण करके क्रोधसे जलने लगे। भगवान् शिवकी ओरसे उन्होंने श्रद्धा हटा ली और वे शिवके उपासकोंकी निन्दामें संलग्न रहने लगे।

एक समय दक्षने स्वयं ही एक महान् यज्ञका आयोजन किया। उसमें उन्होंने बड़े-बड़े तपस्वी ऋषि-मुनियोंको बुलाया। वशिष्ठ आदि अनेक महर्षि उस महायज्ञमें पधारे। अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, भगवान् व्यास,

दक्षका वह महायज्ञ कनखल तीर्थमें आरम्भ हुआ। उसमें उन्होंने भृगु आदि तपोधनोंको ऋत्विज बनाया। अनेक प्रकारके कौतुक और मङ्गलाचार सम्पन्न करके दक्षने उस यज्ञकी दीक्षा ली। साथमें उनकी धर्मपत्नी भी बैठीं। ब्राह्मणोंने स्वस्तिवाचन किया। उस समय अपने सुहृदोंसे घिरे हुए दक्ष अपना महत्त्व बढ़ जानेके कारण अधिक सुशोभित हो रहे थे। इसी समय महर्षि दधीचिने वहाँ दक्षसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'प्रजापते! ये देवेश्वरगण, ये बड़े-बड़े महर्षि तथा लोकपाल भी तुम्हारे यज्ञ-मण्डपमें पधारे हैं, तो भी पिनाकपाणि महात्मा शङ्करके बिना यह यज्ञ अधिक शोभा नहीं पा रहा है। जिनके बिना मङ्गल भी अमङ्गल रूपमें ही परिणत हो जाते हैं तथा जिन त्रिनेत्रधारी भगवान्‌के अधिकारमें आनेपर अमङ्गल भी तत्काल मङ्गलके रूपमें बदल जाते हैं, वे अबतक यहाँ क्यों नहीं दर्शन दे रहे हैं? दक्ष! अब तुम्हें ही भगवान् विष्णु और इन्द्रके साथ जाकर परमेष्ठी भगवान् महेश्वरको बुला ले आना चाहिये। उन योगी शङ्करकी उपस्थितिसे यहाँ सब कुछ पवित्र हो जायगा, जिनके स्मरण तथा नामोच्चारणसे सब पुण्यमय हो जाता है।'

दधीचिका यह वचन सुनकर दक्ष क्रोधमें भर गये और बड़ी उतावलीके साथ उत्तर देने लगे। उनका भीतरी भाव तो दूषित था, किंतु ऊपरसे वे हँसते हुए-से बोल रहे थे। उन्होंने कहा—'सम्पूर्ण देवताओंके मूल हैं—भगवान् विष्णु। जिनमें सनातन-धर्मकी स्थिति है, जिनमें सम्पूर्ण वेद, यज्ञ और नाना प्रकारके सत्कर्म भी प्रतिष्ठित हैं, वे भगवान् विष्णु तो यहाँ पधारे हुए हैं ही। सत्यलोकसे लोकपितामह ब्रह्माजी भी आ गये हैं। उनके साथ समस्त वेद, उपनिषद् और नाना प्रकारके आगम भी हैं। इसी प्रकार आप-जैसे निष्पाप महर्षिगण भी आ ही गये हैं। जो-जो यज्ञ-कर्मके योग्य हैं, शान्तचित्त और सुपात्र हैं, वे सब महात्मा यहाँ पदार्पण कर चुके हैं। आप सब महर्षिगण वेदके वाक्य तथा उसके अर्थके भी तत्त्वज्ञ हैं। दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले हैं। आपके होते हुए अब हमें रुद्रसे क्या प्रयोजन है? ब्रह्मन्! आप सब लोग मिलकर मेरे इस महान् यज्ञको सफल बनावें।'

दक्षकी बात सुनकर दधीचिने कहा—पवित्र अन्तःकरणवाले समस्त श्रेष्ठ महर्षियों और देवताओंके समुदायमें यह बड़ा भारी अन्याय हुआ है कि भगवान् शिवको आमन्त्रित नहीं किया गया। महात्मा शङ्करके बिना इस यज्ञमें शी[घ्र] महान् विघ्न होनेवाला है।

यों कहकर महर्षि दधीचि अकेले ही दक्षकी यज्ञशा[ला] निकल पड़े और तुरंत अपने आश्रमको चले गये। उनके जानेपर दक्षने हँसते हुए कहा—'ब्राह्मणो! दधीचि श[िव] प्रेमी हैं। वे चले गये। आप सब लोग वैदिक सिद्धान्तों[में] रहनेवाले हैं; भगवान् विष्णु आप सबके अग्रणी हैं। शीघ्र ही आपलोग मेरे यज्ञको सफल बनावें।' तब उन महर्षियोंने वहाँ देवयज्ञ प्रारम्भ किया।

इसी समय महादेवी दक्षकुमारी सतीने, जो [गन्ध]मादनपर्वतपर अपनी सखियोंके साथ विराजमान थीं, रोहि[णीके] साथ चन्द्रमाको कहीं जाते हुए देखा। वे यज्ञमें ही [जा रहे] थे। सतीने अपनी सखी विजयासे कहा—'विजये! तू जाकर पूछ तो सही, ये चन्द्रमा कहाँ जायँगे?' उनके आ[देशसे] विजया चन्द्रमाके समीप गयी और यथोचित विनयके [साथ] उनकी यात्राका उद्देश्य पूछा। चन्द्रमाने दक्षके यज्ञमें ज[ानेका] सब वृत्तान्त बता दिया। यह सुनकर विजयाको बड़ा हर्ष [और] विस्मय हुआ। उसने तुरंत लौटकर सतीसे चन्द्रमाकी [कही] हुई सब बातें कह सुनायीं। सुनकर सती देवीने [विचार] किया, 'क्या कारण है, जो पिताजी मुझे नहीं बुला रहे? क्या मेरी यशस्विनी माता भी मुझे भूल गयीं? आ[ज मैं] भगवान् शङ्करसे इसका कारण पूछती हूँ।' यह निश्चय करके देवीने सखियोंको वहीं ठहरा दिया और स्वयं भगवान् श[िवके] पास गयीं। उन्होंने देखा, त्रिनेत्रधारी महेश्वर सभा-म[ण्डपमें] विराजमान हैं। चण्ड-मुण्ड आदि सभी पार्षद उन्[हें सब] ओरसे घेरकर बैठे हैं। बाण, भृङ्गी, नन्दी, महा[काल], महारौद्र, महामुण्ड, महाशिरा, धूम्राक्ष, धूम्रकेतु, धू[...] तथा अन्य बहुत-से गण भगवान् रुद्रका अनुवर्तन कर[ते] हैं। वे सभी जितेन्द्रिय तथा वीतराग हैं। लोक-कल्या[णकारी] भगवान् शङ्कर इन सबसे घिरे हुए हैं और परम [...] आसनपर विराजमान हैं। सतीका मन भगवान् शिवका [दर्शन] करते ही उनकी ओर आकृष्ट हो गया। वे सहसा [उनके] समीप चली गयीं। भगवान् शिवने बड़े आदरके [साथ] प्रीतियुक्त वचनोंसे सतीको आनन्दित किया और क[हा—] 'प्रिये! इस समय यहाँ तुम्हारे आगमनका क्या कारण [है?']

सती बोलीं—देवदेवेश्वर! मेरे पिताके घर महा[यज्ञ] हो रहा है। उसमें चलनेके लिये आपकी रुचि क्यों

होती ? सदाशिव ! यद्यपि आप उस यज्ञमें बुलाये नहीं गये हैं, तथापि आज मेरे कहनेसे मेरे पिताकी यज्ञशालामें आप स्वयं सब प्रकारसे प्रयत्न करके पधारें ।

सतीका यह वचन सुनकर महादेवजीने मधुर वाणीमें कहा—कल्याणी ! तुम्हारे पिताकी दृष्टिमें जो देवता, असुर तथा किन्नर आदि सम्माननीय हैं, वे सब निःसन्देह उनके यज्ञमें पहुँच गये हैं । सुन्दरी ! जो लोग दूसरोंके घर बिना बुलाये जाते हैं, वे वहाँ मृत्युसे भी अधिक कष्टदायक अपमानको प्राप्त होते हैं ।* शुभे ! दूसरोंके घर जानेपर इन्द्र भी लघुताको प्राप्त होते हैं; इसलिये तुम्हें भी दक्षके यज्ञमें नहीं जाना चाहिये ।

महात्मा भगवान् शङ्करके इस प्रकार कहनेपर सतीने अपने पिताके प्रति रोष प्रकट करनेवाले वचनोंमें कहा—'नाथ ! जिनसे सम्पूर्ण यज्ञ सफल होते हैं, वे देवदेवेश्वर तो आप ही हैं; फिर आपको भी मेरे दुराचारी पिताने आमन्त्रित नहीं किया ! उस दुरात्माके मनमें आपके प्रति सद्भाव है या दुर्भाव, यह सब मैं जानना चाहती हूँ । इसलिये अभी पिताके यज्ञमण्डपमें जाती हूँ । देवदेव ! जगत्पते ! मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा दीजिये ।'

सती देवीके यों कहनेपर भगवान् महेश्वर बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवी ! यदि ऐसी बात है तो इस नन्दीपर सवार हो नाना प्रकारके प्रमथगणोंको साथ लेकर तुम शीघ्र वहाँकी यात्रा करो; मैं आज्ञा देता हूँ ।

भगवान् शिवके आदेशसे साठ हजार रुद्रगण सती देवीके साथ चले । उन गणोंसे घिरी हुई देवीने अपने पिताके घरकी ओर प्रस्थान किया । सती देवी जब पिताके घर चली गयीं, उस समय सब बातोंपर विचार करके भगवान् महेश्वरने अपने मुखसे यह वचन निकाला—'अपने पिताद्वारा अपमानित होकर दक्षकुमारी सती अब फिर यहाँ लौटकर नहीं आयँगी ।'

तबतक उस नरकमें ही पड़े रहते हैं।* अतः अब मैं इस देहको त्याग दूँगी, अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगी।' इस प्रकार विचार करती हुई सती शिव, रुद्र आदि नामोंका उच्चारण करने लगीं और अग्निमें प्रवेश कर गयीं। यह देख उनके साथ आये हुए समस्त शिवगण हाहाकार करने लगे। ऋषि, इन्द्र आदि देवता, मरुद्गण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार तथा सम्पूर्ण लोकपाल अवाक् हो गये। दक्ष-यज्ञमें सम्मिलित हुए सभी ऋषि-मुनि इस घटनासे भयभीत हो उठे।

इसी बीचमें महात्मा नारदजीने महादेवजीके पास जाकर दक्षकी सारी करतूतें कह सुनायीं। सुनकर भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले परम क्रोधवान् जगदीश्वर भगवान् रुद्र बहुत ही कुपित हुए। लोकसंहारकारी रुद्रने अपनी जटा उखाड़कर उसे पर्वतके शिखरपर क्रोधपूर्वक दे मारा। जटा उखाड़नेसे महायशस्वी वीरभद्र प्रकट हुए। साथ ही करोड़ों भूतोंसे घिरी हुई कालीका भी प्राकट्य हुआ। महात्मा रुद्रके क्रोध और निःश्वाससे सैकड़ों प्रकारके ज्वर तथा तेरह प्रकारके सन्निपात रोग उत्पन्न हुए। वीरभद्रने भयंकर पराक्रमी रुद्रसे निवेदन किया—'प्रभो! शीघ्र आज्ञा कीजिये, इस सेवकसे क्या काम लेना है?' भगवान् रुद्रने आज्ञा दी—'महाबाहु वीर! शीघ्र जाओ और दक्ष-यज्ञका विनाश करो।'

देवाधिदेव शूलपाणि महादेवजीकी यह आज्ञा शिरोधार्य करके महातेजस्वी वीरभद्र समस्त भूतोंसे घिरे हुए दक्ष-यज्ञकी ओर चल दिये। उनके साथ कालिका देवी भी थीं। उसी समय दक्षके यहाँ सहसा अपशकुन प्रकट होने लगे। धूल और कंकड़ोंसे भरी हुई रूक्ष वायु चलने लगी। मेघ रक्तकी वर्षा करने लगे। सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धकार छा गया। पृथ्वीपर सहस्रशः उल्कापात होने लगे। इस प्रकारके अनिष्टसूचक उत्पात वहाँ देवता आदिको दिखायी दिये। दक्षको भी बड़ा भय हुआ। वे भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और विनयपूर्वक कहने लगे—'महाविष्णो! आप हमारे परम गुरु हैं; रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। सुरश्रेष्ठ! आप ही यज्ञ हैं, इस महान् भयसे मुझे मुक्त कीजिये।'

दक्षके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् मधुसूदनने कहा—ब्रह्मन्! इसमें सन्देह नहीं कि मुझे तुम्हारी रक्षा करनी चाहिये; किंतु तुमने धर्मको जानते हुए भी महेश्वरकी अवहेलना की है। महेश्वरकी अवज्ञासे तुम्हारा सब कुछ निष्फल हो जायगा। जहाँ अपूज्य व्यक्तियोंका पूजन होता तथा पूजनीय महात्माका पूजन नहीं किया जाता, वहाँ तीन संकट अवश्य प्राप्त होंगे—दुर्भिक्ष, मृत्यु तथा भय।* इसलिये सब प्रकारसे यत्न करके भगवान् शङ्करको मनाना चाहिये। तुम्हारे यज्ञमें महेश्वरका सम्मान नहीं किया गया है, इसी कारण यह महान् भय उपस्थित हुआ है। इस समय तो हम सब लोग मिलकर भी इस भयका निवारण करनेमें समर्थ नहीं हैं। यह सब कुछ तुम्हारी दुर्नीतिके कारण हो रहा है।

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर दक्ष चिन्तित हो उठे। उनका मुँह सूख गया। इतनेमें ही अपनी सेनासे घिरे हुए महातेजस्वी वीरभद्र भी आ पहुँचे। उनके साथ काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी—ये नव दुर्गाएँ तथा भूतोंका महान् समुदाय भी था। शाकिनी, डाकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक, कूष्माण्ड, कर्पट, वटुक, ब्रह्मराक्षस, भैरव, क्षेत्रपाल, राक्षस, यक्ष, विनायक तथा चौसठ योगिनियोंका मण्डल—ये सब उस महान् प्रकाशमय यज्ञ-मण्डपमें सहसा प्रकट हो गये। भगवान् शङ्करके उन पार्षदोंने देवताओंके साथ युद्ध आरम्भ किया। लोकपालोंसहित देवताओंने भी शिवगणोंपर अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार किया। यद्यपि वे लाखोंकी संख्यामें थे, तथापि इन्द्र आदि लोकपालोंने उन्हें रणसे विमुख कर दिया। उस समय देवताओंकी विजय और यजमानके सन्तोषके लिये महर्षि भृगुने शिवगणोंके प्रति उच्चाटनका प्रयोग किया था। इसीसे उस समय देवता विजयी हुए।

अपने सैनिकोंकी पराजय देखकर वीरभद्रको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने भूतों, प्रेतों और पिशाचोंको पीछे करके वृषभास्यको आगे किया और स्वयं भी आगे आ गये। महाबली वीरभद्रने एक तीक्ष्ण त्रिशूल हाथमें लेकर देवताओं, यक्षों, (दक्षपक्षीय) पिशाचों, गुह्यकों तथा राक्षसोंको भी उस युद्धमें मार गिराया। समस्त शिवगणोंने शूलके आघातसे देवताओंको गहरी चोट पहुँचायी। फिर तो सम्पूर्ण देवता पराजित होकर भागने लगे। सबने एक दूसरेको छोड़कर स्वर्गकी राह ली। केवल इन्द्र आदि लोकपाल ही विजयके लिये उत्सुक होकर

---

* यो निन्दति महादेवं निन्द्यमानं शृणोति च।
तावुभौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
(स्क० मा० के० १। २२)

* अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥
(स्क० मा० के० ३। ४८-४९)

वहाँ खड़े रहे। वे बारंबार बृहस्पतिजीसे पूछते थे—'गुरुदेव! हमारी विजय कैसे होगी।' तब बृहस्पतिजीने कहा—'भगवान् विष्णुने जो बात बहुत पहले कह दी थी, वह आज सत्य हुई। यदि फलरूपमें परिणत हुए कर्मका नियामक कोई ईश्वर है तो वह भी कर्ताका ही आश्रय लेता है। जो कर्ता नहीं है, उसपर वह अपना प्रभुत्व नहीं प्रकट करता—कर्म करनेवालेको ही ईश्वर उसका फल देता है, न करनेवालेको नहीं। वह ईश्वर केवल अनन्य भक्तिसे जानने योग्य है। परम शान्ति और सन्तोषसे ही भगवान् सदाशिवके स्वरूपको जाना जा सकता है। उन्हींसे यह सम्पूर्ण सुख-दुःखात्मक जगत् जन्म और जीवन धारण करता है। (इस समय तुम्हारी विजयका कोई उपाय नहीं दिखायी देता।) इन्द्र! तुम मूर्खता और लोलुपताके वश इन लोकपालोंके साथ यहाँ आ गये हो। बताओ तो इस समय क्या करोगे? ये परम शोभायमान गण भगवान् शिवके किङ्कर हैं; वे ही इनके सहायक हैं। ये महाभाग कुपित होनेपर जब संहार आरम्भ करते हैं तब किसीको शेष नहीं छोड़ते।'

बृहस्पतिजीका यह कथन सुनकर वे सम्पूर्ण देवता, लोकपाल तथा इन्द्र भी चिन्तामें डूब गये। तदनन्तर शिवगणोंसे घिरे हुए वीरभद्रने कहा—'तुम सब देवता मूर्खताके कारण यहाँ भेंट लेनेके लिये आ गये हो। मेरे निकट तो आओ। मैं तुम्हें भेंट देता हूँ। सखे इन्द्र! मित्रवर सूर्य! चन्द्रमा! धनाध्यक्ष कुबेर! पाशधारी वरुण! मृत्यो! यमुनाके बड़े भैया यमराज! मैं आपलोगोंकी तृप्तिके लिये शीघ्र ही भेंट अर्पित करूँगा।' यों कहकर क्रोधमें भरे वीरभद्रने सब देवताओंपर बाणोंकी बौछार आरम्भ की। उन बाणोंके आघातसे पीड़ित होकर वे सब-के-सब दसों दिशाओंमें भाग गये। लोकपालोंके और देवताओंके पलायन कर जानेपर भगवान् विष्णु भी चले गये। फिर वीरभद्र अपने गणोंके साथ यज्ञशालामें आये। उस समय देवता, ऋषि तथा अन्य जो यज्ञोपजीवी लोग थे, उन सबको भगवान् शिवके गणोंने परास्त कर दिया। महर्षि भृगुको धरतीपर पटककर उनकी दाढ़ी और मूँछ नोंच ली। पूषाने दाँत दिखाकर हँसी उड़ायी थी, अतः शिवगणोंने उनके सारे दाँत उखाड़ लिये। अग्निपत्नी स्वधा और स्वाहाको भी अपमानित किया तथा क्रोधमें उन्हें पकड़ लाये और उनका जबड़ा पकड़कर सिरके ऊपर तलवारसे चोट की। फिर दक्षके कटे हुए सिरको उन्होंने तुरंत ही यज्ञकुण्डमें डालकर जला दिया। उस यज्ञशालामें दूसरे-दूसरे जो देवता, पितर, ऋषि, यक्ष और राक्षस रह गये थे, वे सब शिवगणोंके उपद्रवसे भयभीत होकर भाग चले। चन्द्रमा, आदित्यगण, ग्रहमण्डल, नक्षत्र और तारे—इन सबको शिवगणोंने भगा दिया। ब्रह्माजी अपने पुत्र दक्षके शोकसे पीड़ित होकर सत्यलोकको चले गये और वहाँ स्वस्थचित्तसे विचार करने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये? इस अपमानके कारण ब्रह्माजीको शान्ति नहीं मिलती थी। 'यह सब कुछ उस दक्षके ही पापका फल है' यह जानकर पितामहने कैलाश पर्वतपर जानेका निश्चय किया। महातेजस्वी ब्रह्माजी हंसपर आरूढ़ हो सब देवताओंके साथ पर्वतश्रेष्ठ कैलाशपर गये। वहाँ उन्होंने नन्दीके साथ एकान्तमें बैठे हुए भगवान् सदाशिवका दर्शन किया। उनके मस्तकपर जटा-जूट शोभा पा रहा था। भगवान् शिवको देखकर ब्रह्माजी दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ गये और अपना अपराध क्षमा करानेके लिये उद्यत हो अपने चारों मुकुटोंसे भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका स्पर्श करते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—*शान्तस्वरूप, सर्वत्र व्यापक, परब्रह्मरूप परमात्मा भगवान् रुद्रको नमस्कार है; मस्तकपर जटा-जूट धारण करनेवाले महान् ज्योतिर्मय महेश्वरको नमस्कार है। भगवन्! आप जगत्‌की सृष्टि करनेवाले प्रजापतियोंके भी स्रष्टा हैं। आप ही सबका धारण-पोषण करते हैं। आप सबके प्रपितामह हैं। आप ही रुद्र, महान्, नीलकण्ठ और वेधा हैं; आपको नमस्कार है। यह सम्पूर्ण विश्व आपका स्वरूप है। आप ही इसके बीज (आदिकारण) हैं। इस जगत्‌को आनन्दकी प्राप्ति करानेवाले भी आप ही हैं, आपको नमस्कार है। आप ही ओंकार, वषट्कार तथा सम्पूर्ण आयोजनोंके प्रवर्तक हैं। यज्ञ, यजमान और यज्ञ-प्रवर्तक भी आप ही हैं। प्रभो! देवेश्वर! यज्ञ-प्रवर्तक होकर भी आपने इस यज्ञका विनाश कैसे किया? महादेव! आप ब्राह्मणोंके हितैषी हैं, तो भी आपके द्वारा दक्षका वध कैसे हुआ? रुद्र! आप तो गौओं और ब्राह्मणोंके प्रतिपालक हैं। समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले हैं। रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।*

दक्षके द्वारा सतीका तिरस्कार

[पृष्ठ १२
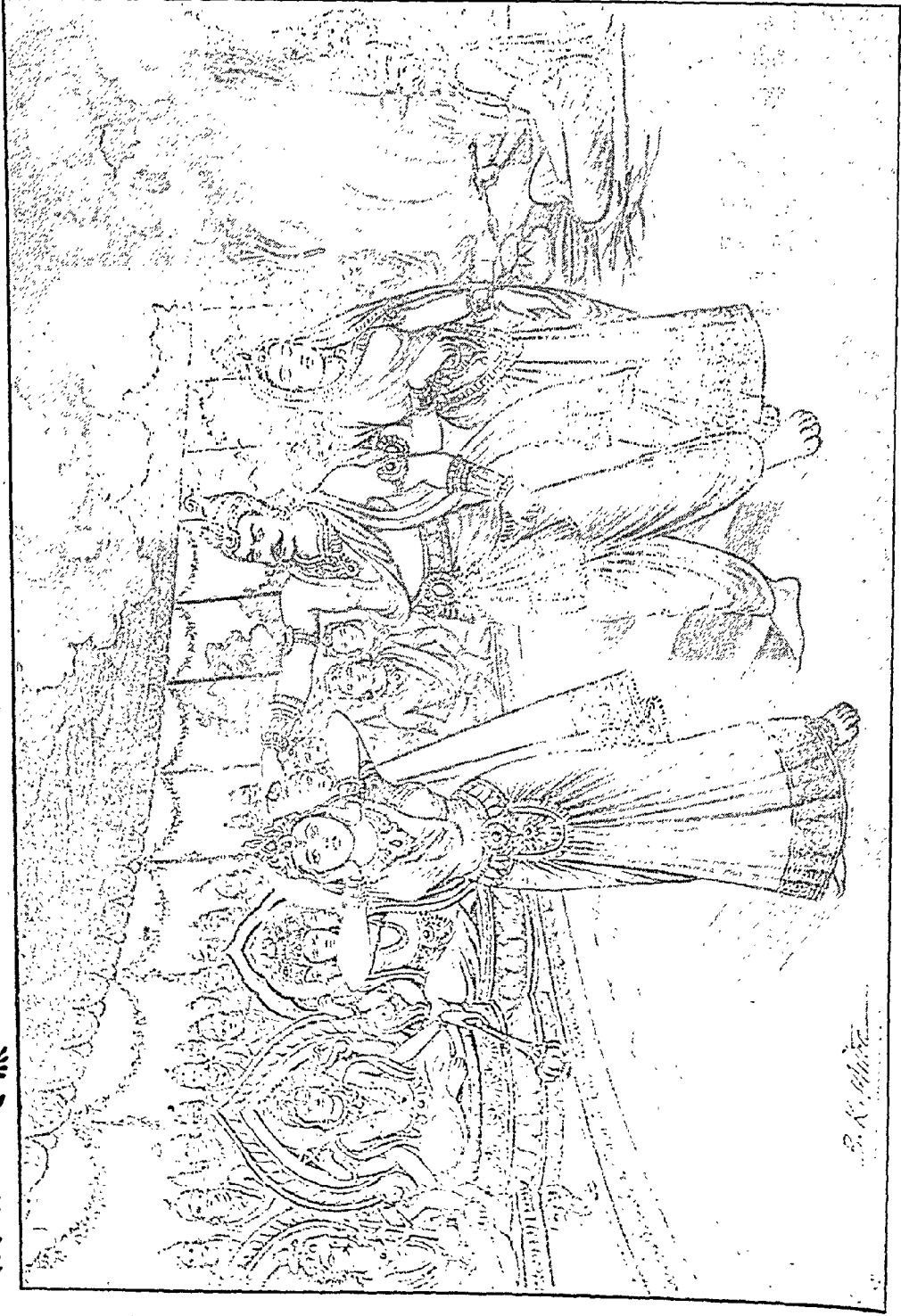
कर्म नहीं करना चाहिये, जो दूसरोंको क्लेश पहुँचानेवाला हो। ब्रह्मन्! जो दूसरोंको कष्ट देनेवाला कर्म किया जाता है, वह एक दिन अपने ही ऊपर आ पड़ता है।

यों कहकर भगवान् शङ्कर उस समय ब्रह्मा आदि देवताओंके साथ कनखल तीर्थमें, जहाँ प्रजापति दक्षका यज्ञमण्डप था, गये। वहाँ जाकर उन्होंने वीरभद्रके द्वारा जो कुछ किया गया था, सब देखा। स्वाहा, स्वधा, पूषा, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ भृगु, अन्यान्य ऋषि, समस्त पितर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नर—जो भी वहाँ जिस अवस्थामें पड़े थे, सबको भगवान् शिवने देखा। किसीके अंग-भंग हो गये थे, किसीकी दाढ़ी और मूँछें नोंच ली गयी थीं तथा कुछ लोग रणभूमिमें मरे पड़े थे। भगवान् शङ्करको आया देख वीरभद्रने समस्त गणोंके साथ उनके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम किया और वे सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। महाबली वीरभद्रको अपने आगे खड़ा देख महादेवजीने हँसते हुए कहा—'वीरवर! यह तुमने क्या किया? दक्षको शीघ्र यहाँ ले आओ, जिसने ऐसा यज्ञ किया और उसका वैसा ही विलक्षण फल भी प्राप्त किया।'

शङ्करजीके यों कहनेपर वीरभद्रने बड़ी उतावलीके साथ दक्षका धड़ लाकर उनके सामने डाल दिया। तब शङ्करजीने कहा—'वीर! इस दुरात्मा दक्षका मस्तक कौन ले गया? यदि मिल जाय तो कुटिल होनेपर भी इसे मैं जीवित कर दूँगा।' यह सुनकर वीरभद्र फिर बोले—'भगवन्! मैंने उसी समय इसके मस्तकको अग्निमें होम दिया था, अब तो केवल पशुका सिर बचा है। किंतु उसका मुख बहुत विकृत हो गया है।' ये सब बातें जानकर भगवान् शिवने पशुके भयंकर मुखको, जिसमें दाढ़ी भी लगी थी, दक्षके धड़से जोड़ दिया। इस प्रकार भगवान् शङ्करकी कृपासे दक्षको नया जीवन प्राप्त हुआ। दक्ष अपने सामने भगवान् रुद्रको उपस्थित देख लज्जासे गड़ गये, उन्होंने लोक-कल्याणकारी भगवान् शङ्करके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उनका स्तवन किया।

दक्ष बोले—सबको वर देनेवाले सर्वश्रेष्ठ देव भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ। सनातन देवता शिवको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। देवताओंके पालक और ईश्वर, पापहारी हरको मैं प्रणाम करता हूँ। जगत्‌के एकमात्र बन्धु शम्भुको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सम्पूर्ण विश्वके स्वामी, विश्वरूप, सनातन ब्रह्म और स्वात्मरूप हैं, उन भगवान् शिवको मैं शीश झुकाता हूँ। अपनी भक्तिसे प्राप्त होने योग्य सर्वरूप भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। जो वरदायक हैं, वरस्वरूप हैं और वरण करनेयोग्य हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक नवाता हूँ।*

दक्षके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् शङ्कर-ने कहा—सुरश्रेष्ठ! चार प्रकारके पुण्यात्मा जन मेरा सदा भजन करते हैं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। (इन सबमें ज्ञानी श्रेष्ठ है।) इसलिये समस्त ज्ञानी पुरुष मुझे विशेष प्रिय हैं। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जो ज्ञानके बिना ही मुझे पानेका यत्न करते हैं, वे अज्ञानी हैं। तुम केवल यज्ञादि कर्मके द्वारा संसार-सागरके पार जाना चाहते हो; परंतु कर्ममें

---

* नमामि देवं वरदं वरेण्यं
नमामि देवं च सदा सनातनम्।
नमामि देवाधिपमीश्वरं हरं
नमामि शम्भुं जगदेकबन्धुम्॥
नमामि विश्वेश्वरविश्वरूपं
सनातनं ब्रह्म निजात्मरूपम्।
नमामि सर्वं निजभावगम्यं
वरं वरेण्यं वरदं नतोऽस्मि॥
(स्क० मा० के० ५। ३९-४०)

आसक्त हुए मूढ़ पुरुष वेद, यज्ञ, दान और तपस्यासे भी मुझे कभी नहीं प्राप्त कर सकते। अतएव तुम अन्तःकरणको एकाग्र करके ज्ञाननिष्ठ होकर कर्म करो। सुख और दुःखमें समान भाव रखकर सदा प्रसन्न रहो।*

तदनन्तर दक्षको वहीं कनखल तीर्थमें रहनेका आदेश देकर भगवान् शिव अपने निवास-स्थान कैलाश पर्वतपर चले गये। फिर ब्रह्माजीने भृगु आदि सम्पूर्ण महर्षियोंको आश्वासन तथा बोध प्रदान किया। वे सब ऋषि-मुनि तत्क्षण ज्ञानी हो गये। इसके बाद पितामह ब्रह्माजी अपने धामको गये। इधर प्रजापति दक्षको भगवान् शङ्करके उपदेशसे उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति हो गयी। वे शिवजीके ध्यानमें तत्पर होकर तपस्या करने लगे। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके सबको भगवान् शङ्करकी आराधना करनी चाहिये।

शिवपूजनकी महिमा

लोमशजी कहते हैं—जो मनुष्य शिवमन्दिरके आँगनमें झाड़ू लगाते हैं, वे निश्चय ही भगवान् शिवके लोकमें पहुँचकर सम्पूर्ण विश्वके लिये वन्दनीय हो जाते हैं। जो भगवान् शिवके लिये यहाँ अत्यन्त प्रकाशमान दर्पण अर्पण करते हैं, वे आगे चलकर शिवजीके सम्मुख उपस्थित रहनेवाले पार्षद होंगे। जो लोग देवाधिदेव, शूलपाणि, शङ्करको चँवर भेंट करते हैं, वे त्रिलोकीमें जहाँ कहीं जन्म लेंगे, उनपर चँवर डुलता रहेगा। जो परमात्मा शिवकी प्रसन्नताके लिये धूप निवेदन करते हैं, वे पिता और नाना दोनोंके कुलोंका उद्धार करते हैं तथा भविष्यमें यशस्वी (मन्दिर) बनवाते हैं, वे उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। जो अपने और दूसरोंके बनवाये हुए शिव-मन्दिरकी सफाई करते या उसमें सफेदी कराते हैं, वे भी उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। जो पुरुष अथवा स्त्रियाँ शिवजीके आँगनमें विविध रंगोंके चौक पूरती हैं, वे सर्वश्रेष्ठ शिवधाममें पहुँचकर दिव्य रूप प्राप्त करेंगी। जो पुण्यात्मा मनुष्य भगवान् शिवको चँदोवा भेंट करते हैं, वे स्वयं तो शिवलोकमें जाते ही हैं, अपने समस्त कुलको भी तार देते हैं। जो अधिक आवाज करनेवाली घण्टा लेकर उसे शिव-मन्दिरमें बाँधते हैं, वे भी त्रिलोकीमें तेजस्वी और कीर्तिमान् होंगे। धनवान् हो या

भी दसगुना श्रेष्ठ है धतूरे आदिका फल। नील-कमल एक हजार कह्लार (कचनार) से भी श्रेष्ठ माना गया है। यह चराचर जगत् विभूतिसे प्रकट हुआ है। वह विभूति भगवान् शिवके श्रीअङ्गोंमें भलीभाँति लगती है, इसलिये सदा उसे धारण करना चाहिये।

जिनके मुखसे 'नमः शिवाय' यह पञ्चाक्षर मन्त्र सदा उच्चारित होता रहता है, वे मनुष्य भगवान् शङ्करके स्वरूप हैं। प्रातःकाल, मध्याह्नकाल तथा सन्ध्याके समय शङ्करजीका दर्शन करना चाहिये। प्रातःकाल भगवान् शिवके दर्शनसे सम्पूर्ण पातकोंका नाश हो जाता है। दोपहरके समय शिवजीके दर्शनसे मनुष्योंके सात जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा रात्रि-कालमें शङ्करजीके दर्शनसे जो पुण्य होता है, उसकी तो कोई गणना ही नहीं है। 'शिव' यह दो अक्षरोंका नाम महापातकोंका भी नाश करनेवाला है। जिन मनुष्योंके मुखसे 'शिव' नामका जप होता रहता है, उन्होंने ही इस सम्पूर्ण जगत्को धारण किया है। पुण्यात्मा पुरुषोंने शिवजीके आँगनमें आरतीके समय बजानेके लिये जो बड़ा-सा नगारा रख छोड़ा हो, उसकी आवाजसे पापी मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं। इसलिये चिरकालसे सञ्चित प्रचुर धन, बहुमूल्य चँवर, वस्त्र, शय्या, दर्पण, चँदोवा, आभूषण तथा विचित्र वस्त्र भगवान् शिवकी सेवामें अर्पित करने चाहिये। पुराण-पाठ, कथा, इतिहास और संगीत आदि नाना प्रकारके आयोजन भगवान् शिवको प्रिय हैं; इनकी व्यवस्था करनी चाहिये। ऐसी व्यवस्था करके पापी मनुष्य भी अपने पापसे मुक्त होकर शिवलोकमें चले जाते हैं। जो स्वधर्मका पालन करनेवाले, महात्मा और शिव-पूजाके विशेषज्ञ हैं, जिन्होंने गुरुके मुखसे शिवकी दीक्षा ली है, जो निरन्तर शिवजीकी पूजामें संलग्न रहते हैं, मनमें दृढ़ विश्वास रखकर सम्पूर्ण विश्वको शिवके रूपमें देखते हैं, उत्तम बुद्धिका आश्रय ले सदाचारका पालन करते तथा अपने वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्ममें स्थित रहते हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा कोई भी क्यों न हों, भगवान् शिवके परम प्रिय होते हैं। चाण्डाल हो या सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण, भजन करनेपर सभी भगवान् शङ्करको अत्यन्त प्रिय लगते हैं। भगवान् शङ्कर ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्के आधार हैं, अतः सब कुछ शिवस्वरूप है—यह बात विशेष रूपसे जाननी चाहिये। वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद्, आगम और देवता—सबके द्वारा भगवान् सदाशिव ही जानने योग्य हैं। मनुष्य निष्काम हो या सकाम, सबको भगवान् सदाशिवकी आराधना करनी चाहिये।

शिवलिङ्ग-पूजनकी महिमा तथा रावणके उत्कर्ष और पतनका वृत्तान्त

लोमशजी कहते हैं—जो विष्णु हैं, उन्हें शिव जानना चाहिये और जो शिव हैं, वे विष्णु ही हैं। पीठिका (आधार अथवा अर्घा) भगवान् विष्णुका रूप है और उसपर स्थापित लिङ्ग महेश्वरका स्वरूप है। अतः शिवलिङ्गका पूजन सबके लिये श्रेष्ठ है। ब्रह्माजी निरन्तर मणिमय शिवलिङ्गका पूजन करते हैं। इन्द्र रत्नमय, चन्द्रमा मुक्तामय तथा सूर्य ताम्रमय लिङ्गकी सर्वदा पूजा करते हैं। कुबेर चाँदीके शिवलिङ्गकी, वरुण कुछ लाल रंगके शिवलिङ्गकी, यमराज नीले रंग, नैर्ऋत्य कोणके अधिपति रजतवर्ण तथा वायुदेव केसरिया रंगके शिवलिङ्गकी निरन्तर आराधना करते हैं। इस प्रकार इन्द्र आदि समस्त लोकपाल शिवलिङ्गोपासक हैं। पातालमें भी सब लोग शिवपूजक हैं। गन्धर्व और किन्नर भी शिवोपासना करते हैं। दैत्योंमें प्रह्लाद आदि कोई-कोई ही वैष्णव हैं। यही बात राक्षसोंके लिये भी है; उनमें भी विभीषण आदि ही वैष्णव हैं। बलि, नमुचि, हिरण्यकशिपु, वृषपर्वा, संह्राद—ये तथा बुद्धिमान् शुक्राचार्यके और भी बहुत-से शिष्य शिवजीकी उपासना करनेवाले हैं। इस तरह प्रायः सभी दैत्य-दानव और राक्षस शिवाराधनमें ही रत रहते हैं। हेति, प्रहेति, संयाति, प्रयाची, प्रघस, विद्युज्जिह्व, तीक्ष्णदंष्ट्र, धूम्राक्ष, भीमविक्रम, माली, सुमाली, माल्यवान्, अतिभीषण, विद्युत्केश, खड्गजिह्व, महाबली रावण, दुर्धर्ष वीर कुम्भकर्ण तथा प्रतापी वेगदंशी आदि समस्त श्रेष्ठ राक्षस सदा शिव-पूजनमें संलग्न रहे हैं। ये सर्वदा शिवलिङ्गका अर्चन करके उच्चकोटिकी सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। रावणने ऐसी तपस्या की थी, जो सभीके लिये दुःसह थी। महादेवजीको तपस्या बहुत प्रिय है। वे उसकी तपस्यासे जब बहुत अधिक प्रसन्न हो गये, तब उन्होंने रावणको ऐसे-ऐसे वरदान दिये, जो अन्य सबके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं। रावणने भगवान् सदाशिवसे ज्ञान, विज्ञान, संग्राममें अजेयता तथा शिवजीकी अपेक्षा दुगुने सिर प्राप्त किये। महादेवजीके

पाँच मुख हैं। इसलिये उनसे द्विगुण मुख पाकर रावण दशमुख हुआ। उसने देवताओं, ऋषियों और पितरोंको भी सर्वथा परास्त करके उन सबपर अपनी प्रभुता स्थापित की। भगवान् महेश्वरके प्रसादसे वह सबसे अधिक प्रतापी हुआ। महादेवजीने उसे त्रिकूट पर्वतका महाराजा बना दिया।

इस प्रकार शिवलिङ्गकी पूजाके प्रसादसे रावणने तीनों लोकोंको वशमें कर लिया। देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई। वे सब मिलकर शिवलोकमें गये और दरवाजेपर किङ्करोंकी भाँति खड़े हो गये। उस समय नन्दी, जिनका मुख वानरके समान है, देवताओंसे वार्तालाप करने लगे। देवताओंने नन्दीको प्रणाम करके पूछा—'आपका मुख वानरके समान क्यों है?' नन्दीने कहा—"एक समय रावण यहाँ आया और अपने पराक्रमकी बातें बहुत बढ़-चढ़कर कहने लगा; उस समय मैंने उससे कहा—'भैया! तुम भी शिवलिङ्गके ाक हो और मैं भी, अतः हम दोनों समान हैं; फिर मेरे मने यह व्यर्थ डींग क्यों मारते हो?' मेरी बात सुनकर ाणने तुम्हीं लोगोंकी भाँति मेरे वानर-मुख होनेका कारण छा। उत्तरमें मैंने निवेदन किया कि 'यह मेरी शिवोपासनाका ्माँगा फल है। भगवान् शिव मुझे अपना सारूप्य दे रहे किंतु उस समय मैंने वह नहीं स्वीकार किया। अपने लिये नरके समान ही मुख माँगा। भगवान् बड़े दयालु हैं। साक्षात् विष्णुरूप हैं, अतः आपलोग भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करें।'

नन्दीकी यह बात सुनकर सब देवता मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने वैकुण्ठमें आकर अपनी वाणीद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति आरम्भ की।

देवता बोले—देवदेव जगदीश्वर! आप छहों ऐश्वर्योंसे युक्त होनेके कारण भगवान् कहलाते हैं। आपको नमस्कार है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके आधारपर टिका हुआ है। यह जगत् एक लिङ्ग है, जिसे आपने आधारपीठरूप होकर धारण किया है। प्रभो! हमलोगोंके लिये पहले भी आपने अनेक बार अवतार धारण किया है। आपने ही मत्स्यरूप धारण करके ब्रह्माजीके मुखमें वेदोंकी स्थापना की है। आपने ही हयग्रीवरूपसे मधु और कैटभ नामक दैत्योंको मारा है। कच्छप अवतार धारण करके आपने ही अपनी पीठपर मन्दराचल पर्वत उठाया था। वाराहरूप धारण कर आपने हिरण्याक्ष दैत्यका वध किया तथा नरसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुको मौतके घाट उतारा है। वामन अवतार धारण-कर आपने ही दैत्यराज बलिको बाँधा और भृगुकुलमें परशुरामरूपसे प्रकट होकर आपने ही कार्तवीर्य अर्जुनका वध किया है। विष्णो! आपने बहुत-से दैत्योंका संहार किया है। आप ही सम्पूर्ण विश्वके पालक हैं। अतः रावणके भयसे अवश्य हमारा उद्धार करें।*

देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भूतभावन भगवान् वासुदेवने सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'देवगण ! तुम-लोग अपने प्रस्तावके अनुसार मेरी बात सुनो, नन्दीको आगे करके तुम सभी शीघ्रतापूर्वक वानर शरीरमें अवतार लो । मैं मायासे अपने स्वरूपको छिपाये हुए मनुष्यरूप होकर अयोध्यामें राजा दशरथके घर प्रकट होऊँगा । तुम्हारे कार्यकी सिद्धिके लिये मेरे साथ ब्रह्मविद्या भी अवतार लेंगी । राजा जनकके घर साक्षात् ब्रह्मविद्या ही सीतारूपमें प्रकट होंगी । रावण भगवान् शिवका भक्त है । वह सदा साक्षात् शिवके ध्यानमें तत्पर रहता है । उसमें बड़ी भारी तपस्याका भी बल है । जब ब्रह्मविद्यारूप सीताको बलपूर्वक प्राप्त करना चाहेगा, उस समय वह दोनों स्थितियोंसे तत्काल भ्रष्ट हो जायगा । सीताके अन्वेषणमें तत्पर होकर वह न तो तपस्वी रह जायगा और न भक्त ही । जो अपनेको न दी हुई ब्रह्मविद्याका बल-पूर्वक सेवन करना चाहता है, वह पुरुष धर्मसे परास्त होकर सदा सुगमतापूर्वक जीत लेनेयोग्य हो जाता है ।'

परम मङ्गलमय भगवान् विष्णु इस प्रकारके वचनोंद्वारा सम्पूर्ण देवताओंको आश्वासन देकर अन्तर्धान हो गये । तदनन्तर सब देवता अवतार धारण करने लगे । इन्द्रके अंशसे वाली उत्पन्न हुए, सुग्रीव सूर्यके पुत्र थे । जाम्बवान् ब्रह्माजीके अंशसे प्रकट हुए थे । शिलादके पुत्र नन्दी, जो भगवान् शिवके अनुचर तथा ग्यारहवें रुद्र थे, महाकपि हनुमान् हुए । वे अमित-तेजस्वी भगवान् विष्णुकी सहायता करनेके लिये ही अवतीर्ण हुए थे । अन्यान्य श्रेष्ठ देवता मैन्द आदि कपियोंके रूपमें उत्पन्न हुए थे । इसी तरह सभी देवता किसी-न-किसी कपिके रूपमें प्रकट हुए । साक्षात् भगवान् विष्णु ही माता कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले श्रीराम हुए । सम्पूर्ण विश्व उनके स्वरूपमें रमण करता है, इसलिये विद्वान् पुरुष उनको 'राम' कहते हैं । भगवान् विष्णुके प्रति भक्ति और तपस्यासे युक्त शेषनाग भी इस पृथ्वीपर लक्ष्मणके रूपमें अवतीर्ण हुए । श्रीविष्णुके भुजदण्डोंसे भी दो प्रतापी वीर प्रकट हुए, जो तीनों लोकोंमें भरत-शत्रुघ्नके नामसे विख्यात हुए । ब्रह्मवादी पुरुषोंद्वारा जो मिथिलापति जनककी कन्या बतायी गयी हैं, वे सीता साक्षात् ब्रह्मविद्या थीं; वे भी देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये ही अवतीर्ण हुई थीं । हलसे भूमि जोती जा रही थी; उसी समय सीता (हलकी नोक) के द्वारा पृथ्वीके खोदे जानेपर पृथ्वीसे ये प्रकट हुई थीं, इसीलिये 'सीता'के नामसे प्रसिद्ध हुई । मिथिलामें अवतार लेनेके कारण इन्हें 'मैथिली' भी कहते हैं । जनकके कुलमें जन्म लेनेके कारण ये 'जानकी' नामसे विख्यात हुई । पूर्वजन्ममें इनका नाम वेदवती था । राजा जनकने ब्रह्मविद्या-स्वरूप सीताको परमात्मा ब्रह्मरूप श्रीरामकी सेवामें अर्पित कर दिया । कमलनयन श्रीरामने रावणको जीतनेकी इच्छा तथा देवकार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे वनमें निवास किया । शेषावतार लक्ष्मणने भी उसीके लिये अत्यन्त दुष्कर एवं महान् तप किया । भरत और शत्रुघ्नने भी बड़ी भारी तपस्या की । तदनन्तर तपोबलसम्पन्न हो कपिरूपधारी देवताओंको साथ लेकर श्रीरामने छः महीनेतक युद्ध करके रावणका वध किया । भगवान् विष्णुके द्वारा शस्त्रोंसे मारा गया रावण अपने गणों, पुत्रों तथा बन्धुओंसहित तत्काल भगवान् शिवके सारूप्यको प्राप्त हो गया । शङ्करजीकी कृपासे उसने सम्पूर्ण द्वैताद्वैत ज्ञान प्राप्त कर लिया ।

जो नित्य (द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे किसी भी) लिङ्ग-स्वरूप भगवान् शिवकी पूजा करते हैं, वे स्त्री, शूद्र, अन्त्यज अथवा चाण्डाल ही क्यों न हों, सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करने-वाले शिवको अवश्य प्राप्त कर लेते हैं । जो मनको अपने वशमें करके भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर रहते हैं, उनका मायामय अज्ञान शीघ्र दूर हो जाता है, तथा मायाका निवारण हो जानेसे तीनों गुणोंका लय हो जाता है । इस प्रकार मनुष्य जब गुणातीत हो जाता है, तब वह मोक्षका भागी होता है । अतः सम्पूर्ण देहधारियोंके लिये शिव-लिङ्गका पूजन कल्याण-

कारी है। भगवान् शिव लिङ्गरूपमें प्रकट होकर चराचर जगत्का उद्धार करते हैं। विप्रगण! पहले तुम सब लोगोंने मुझसे जो पूछा था, वह सब मैंने बतला दिया। तुम्हारा दूसरा प्रश्न यह था कि भगवान् शिवने विष-भक्षण कैसे किया था; वह सब प्रसङ्ग मैं यथावत् रूपसे कह रहा हूँ। तुम सब लोग सावधान होकर सुनो।

गुरुकी अवहेलनासे इन्द्रकी दैत्योंद्वारा पराजय, समुद्र-मन्थन, शङ्करजीकी कृपासे कालकूट विषसे सबकी रक्षा, विविध रत्नोंका प्राकट्य तथा लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव

लोमशजी कहते हैं—एक समय देवराज इन्द्र सम्पूर्ण लोकपालों तथा ऋषियोंसे घिरे हुए अपनी सुधर्मा सभामें बैठे थे। वहाँ सिद्ध और विद्याधरगण उनकी विजयके गीत गा रहे थे। इसी समय परम बुद्धिमान् देवेन्द्रगुरु महाभाग बृहस्पतिजी अपने शिष्योंके साथ देवसभामें पधारे। उन्हें उपस्थित देख देवताओंने सहसा उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। इन्द्रने भी देखा, गुरुदेव वाचस्पति आगे खड़े हैं। किंतु इन्द्रकी बुद्धि राजमदसे दूषित हो रही थी; इसलिये उन्होंने गुरुके प्रति न तो आदरयुक्त वचन कहा, न उन्हें बुलाया, न बैठनेको आसन दिया और न चले जानेको ही कहा। खोटी बुद्धिवाले इन्द्रको राज्यके मदसे उन्मत्त जानकर देवताओंके आचार्य बृहस्पति कुपित हो वहाँसे अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर देवताओंके मनमें बड़ा खेद हुआ। यक्ष, नाग, गन्धर्व तथा ऋषिगण भी उदास हो गये। नृत्य और गीत समाप्त होनेपर जब इन्द्र सचेत हुए, तब उन्होंने तुरंत देवताओंसे पूछा—'महातपस्वी गुरुदेव कहाँ चले गये?'

इन्द्रकी यह करतूत पातालनिवासी राजा बलिने भी सुनी। फिर तो वे दैत्योंकी बहुत बड़ी सेना साथ ले पातालसे अमरावतीपुरीपर चढ़ आये। उस समय देवताओंका दानवोंके साथ बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। उसमें दैत्योंने देवताओंको परास्त कर दिया। एक ही क्षणमें दूषित हृदयवाले अविवेकी इन्द्रका सातों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण राज्य दैत्योंने अपने अधिकारमें कर लिया। विजयी दैत्य शीघ्र पातालको चले गये। शुक्राचार्यकी कृपासे ही दैत्यगण विजयी हुए थे। इन्द्रकी राज्य-लक्ष्मी नष्ट हो चुकी थी, इसलिये देवताओंने भी सर्वथा उनका त्याग कर दिया। श्रीहीन इन्द्र स्वर्गलोकसे अन्यत्र चले गये। कमलके समान कमनीय नेत्रोंवाली इन्द्रपत्नी शची भी दूसरोंकी दृष्टिसे छिपकर रहने लगीं। ऐरावतनामक महान् गजराज तथा उच्चैःश्रवा अश्व आदि जो बहुत-से रत्न थे, उन्हें दुष्ट दैत्योंने लोभवश स्वर्गलोकसे पातालमें पहुँचा दिया। परंतु वे रत्न पुण्यात्मा पुरुषोंके ही उपभोगमें आने-

इन्द्र बड़ी शोचनीय दशाको प्राप्त हो गये थे । वे ब्रह्माजीके पास गये और स्वर्गके राज्यपर जो भय आदि प्राप्त हुआ था, वह सब समाचार उन्हें कह सुनाया । इन्द्रकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उनसे कहा—'सब देवताओंको एकत्र करके हम सब लोग तुम्हारे साथ सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णुकी आराधना करनेके लिये चलते हैं ।' 'ऐसा ही हो ।' यह सलाह करके इन्द्र आदि सम्पूर्ण लोकपाल ब्रह्माजीको आगे रखकर क्षीर-समुद्रके तटपर गये । वहाँ उन सबने परस्पर विचार करके भगवान् विष्णुकी स्तुति आरम्भ की ।

ब्रह्माजी बोले—देवदेव ! जगन्नाथ ! देवता और दैत्य दोनों आपके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं । आपकी कीर्ति परम पवित्र है, आप अविनाशी और अनन्त हैं । परमात्मन् ! आप-को नमस्कार है । रमापते ! आप यज्ञ हैं, यज्ञरूप हैं तथा यज्ञाङ्ग हैं । अतः आज कृपा करके देवताओंको वरदान दीजिये । भगवन् ! गुरुकी अवहेलना करनेके कारण इन्द्र इस समय ऋषियोंसहित स्वर्गके राज्यसे भ्रष्ट हो चुके हैं; इसलिये इनका उद्धार कीजिये ।*

श्रीभगवान् बोले—देवगण ! गुरुकी अवहेलना करने-से सारा अभ्युदय नष्ट हो जाता है । जो पापी हैं, अधर्ममें तत्पर हैं तथा केवल विषयोंमें ही रचे-पचे रहते हैं और जिनके द्वारा अपने माता-पिताकी निन्दा होती रहती है, वे निस्सन्देह बड़े भाग्यहीन हैं ।† ब्रह्मन् ! इस इन्द्रने जो अन्याय किया है, उसका फल इसे तत्काल प्राप्त हो गया । केवल इन्द्र-के ही कर्मसे सम्पूर्ण देवताओंपर सङ्कट आया है । जब किसी भी पुरुषके लिये विपरीत काल उपस्थित हो जाय, तब उसे दूसरोंका सहयोग प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये । बुद्धिमान् पुरुष अपने सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये अन्य प्राणियोंके साथ मैत्री करते हैं । अतः इन्द्र ! तुम मेरी बात मानो । इस समय अपना काम बनानेके लिये तुम्हें दैत्योंके साथ मेल-जोल कर लेना चाहिये ।

भगवान् विष्णुके इस प्रकार आज्ञा देनेपर परम बुद्धिमान् इन्द्र अमरावती छोड़कर देवताओंके साथ सुतल-लोकमें गये । इन्द्र आये हैं—यह सुनकर राजा इन्द्रसेन (बलि) रोषमें भर गये । उन्होंने अपनी सेनाके साथ जाकर इन्द्रको मार डालनेका विचार किया । उस समय देवर्षि नारदने बलवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलि और दैत्योंको ऊँच-नीच समझाकर उन्हें इन्द्रके वधसे रोका । देवर्षिके ही कहनेसे राजा बलिने इन्द्रके प्रति अपना रोष त्याग दिया । इतनेमें ही इन्द्र भी अपनी सेना-के साथ आ पहुँचे । राजा बलिने देखा लोकपालोंसे घिरे हुए इन्द्र श्रीहीन हो गये हैं । अब उनमें प्रभुताका मद नहीं रह गया है । उनका तेज चला गया और अब वे ईर्ष्या तथा अहङ्कारसे रहित हो गये हैं । उन्हें इस अवस्थामें देखकर राजा बलिके मनमें बड़ी दया आयी । वे बड़ी उतावलीके साथ हँसते हुए से बोले—'देवराज इन्द्र ! आप इस सुतल-लोकमें कैसे पधारे ? यहाँ आनेका कारण बतलाइये ।' बलिकी यह बात सुनकर इन्द्र मुसकराते हुए बोले—'भैया ! हम सब देवता क्रोधके अधीन हो रहे हैं, आप सब लोगोंकी भी यही दशा है । जैसे हम हैं, वैसे ही आपलोग भी हैं । अतः हमारा यह कलह निरर्थक है । भाग्यवश आपने मेरा सम्पूर्ण राज्य एक क्षणमें ही ले लिया तथा बहुत-से रत्न भी स्वर्गसे यहाँ उठा लाये । परंतु वे सभी रत्न तत्काल ही जहाँसे थे, वहीं चले गये । अतः विद्वान् पुरुषको एक-दूसरेसे मिलकर कर्तव्य-के विषयमें विचार करना चाहिये । विचार करनेसे ज्ञान होता है और ज्ञान होनेपर संकटसे छुटकारा अवश्य मिल जायगा; इस समय तो मैं सम्पूर्ण देवताओंके साथ आपके समीप त्राण पानेके लिये आया हूँ ।'

इन्द्रकी बात समाप्त होनेपर देवर्षि नारदने राजा बलिको समझाते हुए कहा—'दैत्यराज ! शरणमें आये हुए प्राणीकी रक्षा करना महापुरुषोंका धर्म है । जो लोग ब्राह्मण, रोगी, वृद्ध तथा बालककी रक्षा नहीं करते, वे ब्रह्महत्यारे हैं । इन्द्र इस समय शरणागत शब्दसे अपना परिचय देते हुए तुम्हारे समीप आये हैं, अतः इनका भलीभाँति रक्षण और

* देवदेव जगन्नाथ सुरासुरनमस्कृत ।
पुण्यश्लोकाव्ययानन्त परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥
यज्ञोऽसि यज्ञरूपोऽसि यज्ञाङ्गोऽसि रमापते ।
ततोऽद्य कृपयाविष्टो देवानां वरदो भव ॥
गुरोरवज्ञया चाद्य भ्रष्टराज्यः शतक्रतुः ।
जातः स ऋषिभिः साकं तस्मादेनं समुद्धर ॥
(स्क० मा० के० ९ । ३०-३२)

† गुरोरवज्ञया सर्वं नश्यते च सत्युक्षन् ।
ये पापिनो घर्मनिष्ठाः केवलं विषयात्मकाः ॥
पितरौ निन्दितौ यैश्च निर्दैवास्ते न संशयः ।
(स्क० मा० के० ९ । ३३-३४)

पोषण करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। इसमें तनिक भी संदेहकी बात नहीं है।'*

देवर्षि नारदके यों कहनेपर कर्तव्य और अकर्तव्यके ज्ञानमें कुशल दैत्यराज बलिने स्वयं भी अपनी बुद्धिसे विचार किया। तदनन्तर लोकपालों और देवताओंसहित इन्द्रका बड़े सम्मानके साथ स्वागत-सत्कार किया तथा उनके मनमें विश्वास उत्पन्न करनेके लिये अनेक प्रकारकी सच्ची शपथें भी खायीं। इन्द्रने भी राजा बलिको विश्वास दिलानेवाली शपथें खायीं। देवराज इन्द्र स्वार्थ-साधनमें तत्पर रहते हैं और अर्थशास्त्रमें ही उनकी विशेष प्रवृत्ति है। उन्होंने शपथ खाकर राजा बलिके साथ सुतल-लोकमें ही निवास किया। वहाँ रहते हुए उन्हें अनेक वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन बलिकी सभामें बैठे हुए नीतिनिपुण देवराज इन्द्रने बलिको सम्बोधित करके हँसते हुए कहा—'वीरवर! हमारे हाथी-घोड़े आदि नाना प्रकारके बहुत-से रत्न जो इस समय तुम्हें प्राप्त होनेयोग्य हैं, तत्काल ही समुद्रमें गिर पड़े हैं। अतः हमलोगोंको समुद्रसे उन रत्नोंका उद्धार करनेके लिये बहुत शीघ्र प्रयत्न करना चाहिये। तुम्हारे कार्यकी सिद्धिके लिये समुद्रका मन्थन करना उचित है।' इन्द्रके इस प्रकार प्रेरणा देनेपर बलिने शीघ्रतापूर्वक पूछा—'यह समुद्र-मन्थन किस उपायसे सम्भव होगा?' इसी समय मेघके समान गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—'देवताओ और दैत्यो! तुम क्षीरसमुद्रका मन्थन करो। इस कार्यमें तुम्हारे बलकी वृद्धि होगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मन्दराचल-

जोड़कर कहा—'दूसरोंका उपकार करनेवाले महाशैल मन्दराचल! हम सब देवता तुमसे कुछ निवेदन करनेके लिये यहाँ आये हैं, उसे तुम सुनो।' उनके यों कहनेपर मन्दराचलने देहधारी पुरुषके रूपमें प्रकट होकर कहा—'देवगण! आप सब लोग मेरे पास किस कार्यसे आये हैं, उसे बताइये।' तब इन्द्रने मधुर वाणीमें कहा—'मन्दराचल! तुम हमारे साथ रहकर एक कार्यमें सहायक बनो; हम समुद्रको मथकर उससे अमृत निकालना चाहते हैं, इस कार्यके लिये तुम मथानी बन जाओ।' मन्दराचलने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और देवकार्यकी सिद्धिके लिये देवताओं, दैत्यों तथा विशेषतः इन्द्रसे कहा—'पुण्यात्मा देवराज! आपने अपने वज्रसे मेरे दोनों पंख काट डाले हैं, फिर आपलोगोंके कार्यकी सिद्धिके लिये वहाँतक मैं चल कैसे सकता हूँ?' तब सम्पूर्ण देवताओं और दैत्योंने उस अनुपम पर्वतको क्षीरसमुद्रतक ले जानेकी इच्छासे उखाड़ लिया; परंतु वे उसे धारण करनेमें समर्थ न हो सके। वह महान् पर्वत उसी समय देवताओं और दैत्योंके ऊपर गिर पड़ा। कोई कुचले गये, कोई मर गये, कोई मूर्च्छित हो गये, कोई एक-दूसरेको कोसने और चिल्लाने लगे तथा कुछ लोगोंने बड़े क्लेशका अनुभव किया। इस प्रकार उनका उद्यम और उत्साह भङ्ग हो गया। वे देवता और दानव सचेत होनेपर जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी स्तुति करने लगे—'शरणागतवत्सल महाविष्णो! हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपने ही इस

एक अद्भुत घटना हुई। फिर जब देवता और दैत्योंने मथानीको घुमाना आरम्भ किया, तब वह पर्वत बिना गुरुके ज्ञानकी भाँति कोई सुदृढ़ आधार न होनेके कारण इधर-उधर डोलने लगा। यह देख परमात्मा भगवान् विष्णु स्वयं ही मन्दराचलके आधार बन गये और उन्होंने अपनी चारों भुजाओंसे मथानी बने हुए उस पर्वतको भली-भाँति पकड़कर उसे सुखपूर्वक घुमाने योग्य बना दिया। तब अत्यन्त बलवान् देवता और दैत्य एकीभूत हो अधिक जोर लगाकर क्षीर-समुद्रका मन्थन करने लगे। कच्छपरूपधारी भगवान्की पीठ जन्मसे ही कठोर थी और उसपर घूमनेवाला पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल भी वज्रसारकी भाँति दृढ़ था। उन दोनोंकी रगड़से समुद्रमें बड़वानल प्रकट हो गया। साथ ही हालाहल विष उत्पन्न हुआ। उस विषको सबसे पहले नारदजीने देखा। तब अमित-तेजस्वी देवर्षिने देवताओंको पुकारकर कहा—'अदिति-कुमारो! अब तुम समुद्रका मन्थन न करो। इस समय सम्पूर्ण उपद्रवोंका नाश करनेवाले भगवान् शिवकी प्रार्थना करो। वे परात्पर हैं, परमानन्दस्वरूप हैं तथा योगी पुरुष भी उन्हींका ध्यान करते हैं।' देवता अपने स्वार्थसाधनमें संलग्न हो समुद्र मथ रहे थे। वे अपनी ही अभिलाषामें तन्मय होनेके कारण नारदजीकी बात नहीं सुन सके। केवल उद्यमका भरोसा करके वे क्षीर-सागरके मन्थनमें संलग्न थे। अधिक मन्थनसे जो हालाहल विष प्रकट हुआ, वह तीनों लोकोंको भस्म कर देनेवाला था। वह प्रौढ़ विष देवताओंका प्राण लेनेके लिये उनके समीप आ पहुँचा और ऊपर-नीचे तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल गया। समस्त प्राणियोंको अपना ग्रास बनानेके लिये प्रकट हुए उस कालकूट विषको देखकर वे सब देवता और दैत्य हाथमें पकड़े हुए नागराज वासुकिको मन्दराचल पर्वतसहित वहीं छोड़ भाग खड़े हुए। उस समय उस लोकसंहारकारी कालकूट विषको भगवान् शिवने स्वयं अपना ग्रास बना लिया। उन्होंने उस विषको निर्मल (निर्दोष) कर दिया। इस प्रकार भगवान् शङ्करकी बड़ी भारी कृपा होनेसे देवता, असुर, मनुष्य तथा सम्पूर्ण त्रिलोकीकी उस समय कालकूट विषसे रक्षा हुई।

तदनन्तर भगवान् विष्णुके समीप मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको रस्सी बनाकर देवताओंने पुनः समुद्र-मन्थन आरम्भ किया। तब समुद्रसे देवकार्यकी सिद्धिके लिये अमृतमयी कलाओंसे परिपूर्ण चन्द्रदेव प्रकट हुए। सम्पूर्ण देवता, असुर और दानवोंने भगवान् चन्द्रमाको प्रणाम किया और गर्गाचार्यजीसे अपने-अपने चन्द्रबलकी यथार्थरूपसे जिज्ञासा की। उस समय गर्गाचार्यजीने देवताओंसे कहा—'इस समय तुम सब लोगोंका बल ठीक है। तुम्हारे सभी उत्तम ग्रह केन्द्र स्थानमें (लग्नमें, चतुर्थ स्थानमें, सप्तम स्थानमें और दशम स्थानमें) हैं। चन्द्रमासे गुरुका योग हुआ है। बुध, सूर्य, शुक्र, शनि और मङ्गल भी चन्द्रमासे संयुक्त हुए हैं। इसलिये तुम्हारे कार्यकी सिद्धिके निमित्त इस समय चन्द्रबल बहुत उत्तम है। यह गोमन्त नामक मुहूर्त है, जो विजय प्रदान करनेवाला है।' महात्मा गर्गजीके इस प्रकार आश्वासन देनेपर महाबली देवता गर्जना करते हुए बड़े वेगसे समुद्र-मन्थन करने लगे। मथे जाते हुए समुद्रके चारों ओर बड़े जोरकी आवाज उठ रही थी। इस बारके मन्थनसे देवकार्योंकी सिद्धिके लिये साक्षात् सुरभि (कामधेनु) प्रकट हुईं। उन्हें काले, श्वेत, पीले, हरे तथा लाल रंगकी सैकड़ों गौएँ घेरे हुए थीं। उस समय ऋषियोंने बड़े हर्षमें भरकर देवताओं और दैत्योंसे कामधेनुके लिये याचना की और कहा—'आप सब लोग मिलकर भिन्न-भिन्न गोत्रवाले ब्राह्मणोंको कामधेनुसहित इन सम्पूर्ण गौओंका दान अवश्य करें।' ऋषियोंके याचना करनेपर देवताओं और दैत्योंने भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये वे सब गौएँ दान कर दीं तथा यज्ञकर्मोंमें भलीभाँति मनको लगानेवाले उन परम मङ्गलमय महात्मा ऋषियोंने उन गौओंका दान स्वीकार किया। तत्पश्चात् सब लोग बड़े जोशमें आकर क्षीरसागरको मथने लगे। तब समुद्रसे कल्पवृक्ष, पारिजात, चूत और सन्तान—ये चार दिव्य वृक्ष प्रकट हुए। उन सबको एकत्र रखकर देवताओंने पुनः बड़े वेगसे समुद्र-मन्थन आरम्भ किया। इस बारके मन्थनसे रत्नोंमें सबसे उत्तम रत्न कौस्तुभ प्रकट हुआ, जो सूर्यमण्डलके समान परम कान्तिमान् था। वह अपने प्रकाशसे तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रहा था। देवताओंने चिन्तामणिको आगे रखकर कौस्तुभका दर्शन किया और उसे भगवान् विष्णुकी सेवामें भेंट कर दिया। तदनन्तर, चिन्तामणिको मध्यमें रखकर देवताओं और दैत्योंने पुनः समुद्रको मथना आरम्भ किया। वे सभी बलमें बढ़े-चढ़े थे और बार-बार गर्जना कर रहे थे। अबकी बार उस मथे जाते हुए समुद्रसे उच्चैःश्रवा नामक अश्व प्रकट हुआ। वह समस्त अश्वजातिमें एक अद्भुत रत्न था। उसके बाद गज जातिमें रत्नभूत ऐरावत प्रकट हुआ। उसके साथ श्वेतवर्णके चौसठ हाथी और थे। ऐरावतके चार दाँत बाहर निकले हुए थे और मस्तकसे मदकी धारा बह रही थी।

इन सबको भी मध्यमें स्थापित करके वे सब पुनः समुद्र मथने लगे। उस समय उस समुद्रसे मदिरा, भाँग, काकड़ासिंगी, लहसुन, गाजर, अत्यधिक उन्मादकारक धतूर तथा पुष्कर आदि बहुत-सी वस्तुएँ प्रकट हुईं। इन सबको भी समुद्रके किनारे एक स्थानपर रख दिया गया। तत्पश्चात् वे श्रेष्ठ देवता और दानव पुनः पहलेकी ही भाँति समुद्र-मन्थन करने लगे। अबकी बार समुद्रसे सम्पूर्ण भुवनोंकी एकमात्र अधीश्वरी दिव्यरूपा देवी महालक्ष्मी प्रकट हुईं, जिन्हें ब्रह्मवेत्ता पुरुष आन्वीक्षिकी (वेदान्त-विद्या) कहते हैं। इन्हींको दूसरे लोग 'मूल-विद्या' कहकर पुकारते हैं। कुछ सामर्थ्यशाली महात्मा इन्हींको वाणी और ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। कोई-कोई इन्हींको ऋद्धि, सिद्धि, आज्ञा और आशा नाम देते हैं। कोई योगी पुरुष इन्हींको 'वैष्णवी' कहते हैं। सदा उद्यममें लगे रहनेवाले मायाके अनुयायी इन्हींको 'माया' के रूपमें जानते हैं। जो अनेक प्रकारके सिद्धान्तोंको जाननेवाले तथा ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न हैं, वे इन्हींको भगवान्‌की 'योगमाया' कहते हैं। देवताओंने देखा, देवी महालक्ष्मीका रूप परम सुन्दर है। उनके मनोहर मुखपर स्वाभाविक प्रसन्नता विराजमान है। हार और नूपुरोंसे उनके श्रीअङ्गोंकी बड़ी शोभा हो रही है। मस्तकपर छत्र तना हुआ है, दोनों ओरसे चँवर डुल रहे हैं; जैसे माता अपने पुत्रोंकी ओर स्नेह और दुलारभरी दृष्टिसे देखती है, उसी प्रकार सती महालक्ष्मीने देवता, दानव, सिद्ध, चारण और नाग आदि सम्पूर्ण प्राणियोंकी ओर दृष्टिपात किया। माता महालक्ष्मीकी कृपा-दृष्टि पाकर सम्पूर्ण देवता उसी समय श्रीसम्पन्न हो गये। वे तत्काल राज्याधिकारीके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देने लगे।

तदनन्तर देवी लक्ष्मीने भगवान् मुकुन्दकी ओर देखा। उनके श्रीअङ्ग तमालके समान श्यामवर्ण थे। कपोल और नासिका बड़ी सुन्दर थी। वे परम मनोहर दिव्य शरीरसे प्रकाशित हो रहे थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था। भगवान्‌के एक हाथमें कौमोदकी गदा शोभा पा रही थी। भगवान् नारायणकी उस दिव्य शोभाको देखते ही लक्ष्मीजी आश्चर्यचकित हो उठीं और हाथमें वनमाला ले सहसा हाथीसे उतर पड़ीं। वह माला श्रीजीने अपने ही हाथों बनायी थी, उसके ऊपर भ्रमर मडरा रहे थे। देवीने वह सुन्दर वनमाला परमपुरुष भगवान् विष्णुके कण्ठमें पहना दी और स्वयं उनके वाम भागमें जाकर खड़ी हो गयीं। उस शोभाशाली दम्पतिका वहाँ दर्शन करके सम्पूर्ण देवता, दैत्य, सिद्ध, अप्सराएँ, किन्नर तथा चारणगण परम आनन्दको प्राप्त हुए।

समुद्रमन्थनसे श्रीमहालक्ष्मीका प्रादुर्भाव

श्रीलक्ष्मीका भगवान्‌को माला अर्पण

[पृष्ठ २४

देवताओंके समुदायको ही शीघ्रतापूर्वक अमृत देना आरम्भ

किया। मोहिनी देवी अपने सुधा-सदृश हासरसामृतकी ही भाँति उस अमृत-रसको भी देवताओंके आगे बारंबार उँड़ेलने लगीं। उनके दिये हुए सुधारसको सम्पूर्ण देवताओं, देवेश्वरों, लोकपालों, गन्धर्वों, यक्षों और अप्सराओंने खूब

यह देख चन्द्रमाने भयसे व्याकुल होकर भगवान् शरणमें जानेका विचार किया। वे मन-ही-मन शि स्मरण करके स्तुति करने लगे—'देवेश! आप हमारे हों, वृषभध्वज! मुझे संकटसे उबारें। शरणागतव करनेवाले श्रीपार्वतीपते! अपनी शरणमें आये हु रक्षा करें।'

उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर सबका कल्याण वाले भगवान् सदाशिव वहीं प्रकट हो गये और च बोले—'डरो मत।' यों कहकर उन्होंने चन्द्रमाको जटा-जूटके ऊपर रख लिया। तबसे चन्द्रमा उनके म श्वेत कमलपुष्पकी भाँति शोभा पा रहे हैं। चन्द्रमाकी होनेके पश्चात् राहु भी वहाँ आ पहुँचा और भगवान् स्तुति करने लगा—'शान्तस्वरूप भगवान् शिवको न है। आप ही ब्रह्म और परमात्मा हैं। आपको नमस्का लिङ्गरूपधारी महादेव! जगत्पते! मैं आपको नमस्कार हूँ। आप सम्पूर्ण भूतोंके निवासस्थान, दिव्य प्रकाश तथा सब भूतोंके पालक हैं। आपको नमस्कार है। मह आप समस्त जगत्की आनन्दप्राप्तिके कारण हैं। अ प्रणाम है। मेरा भक्ष्य चन्द्रमा इस समय आपके समीप

धूपसे भगवान् सदाशिवकी पूजा करते हैं और प्रतिदिन कपूरकी आरती उतारते हैं, वे सायुज्य-मुक्तिको प्राप्त होते हैं। जो दानके समय, तपस्यामें, तीर्थमें और पर्वकालमें आलस्य छोड़कर रुद्राक्ष-धारणपूर्वक शिवकी पूजा करते हैं, उनका पुण्य अक्षय होता है।

द्विजवरो! भगवान् शिवने जिन रुद्राक्षोंका वर्णन किया है, उसे आपलोग सुनें। रुद्राक्ष एक मुखसे लेकर सोलह मुखतकके होते हैं। उनमेंसे पञ्चमुख तथा एकमुख—ये दो प्रकारके रुद्राक्ष मनुष्योंद्वारा धारण करने योग्य एवं श्रेष्ठ समझने चाहिये। जो प्रतिदिन एकमुख रुद्राक्ष धारण करते हैं, उन मनुष्योंको जीवन्मुक्त जानना चाहिये। जो प्रतिदिन पञ्चमुख रुद्राक्ष धारण करता है, वह रुद्रलोकमें जाता और उन्हींके साथ आनन्दका भागी होता है। जप, तप, क्रिया-योग, स्नान और देवपूजा आदि जो भी शुभ कर्म किया जाता है, वह रुद्राक्षधारणसे अनन्त फल देनेवाला हो जाता है। जो मन्त्र-पूत विभूतिसे अपने ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे रुद्रलोकमें रुद्र होंगे। कपिला गायके गोबरको भूमिपर गिरनेसे पहले ही हाथपर ले ले और उसे सुखाकर विभूतिके लिये संग्रह करे। विभूति सब पापोंका नाश करनेवाली बतायी गयी है। पहले ललाटमें प्रयत्नपूर्वक अँगूठेसे एक रेखा बनानी चाहिये। फिर मध्यमा अँगुलीको छोड़कर अनामिका और तर्जनी—इन दो अँगुलियोंसे दो रेखाएँ खींचे। इस प्रकार जिसके ललाटमें तीन सफल रेखाएँ देखी जाती हैं, उस शिवभक्तको साक्षात् शिवके ही समान जानना चाहिये। वह दर्शनमात्रसे समस्त पापोंका नाश करनेवाला है।

इन्द्रकी विजय, इन्द्रद्वारा विश्वरूपका वध, नहुषका स्वर्गसे पतन, ब्रह्महत्यासे इन्द्रकी मुक्ति तथा पुनः राज्यकी प्राप्ति

लोमशजी कहते हैं—तदनन्तर उस देवासुर-संग्राममें इन्द्रने भी दैत्योंका बड़ा भयंकर संहार किया। उनका वह कृत्य अद्भुत था। उस समय अर्थशास्त्रका आश्रय लेकर शचीपति इन्द्र दुर्जय दैत्योंके लिये कालरूप हो रहे थे। जब इस प्रकार असुर मारे जा रहे थे; उस समय इन्द्रको रोकनेके लिये भगवान् नारदजी वहाँ पधारे और यों बोले—'असुरोंके मण्डलमें जो वीर योद्धा मारे गये हैं, उनके बाद अब तुम भयभीत सैनिकोंकी हत्या क्यों कर रहे हो? जो भयभीत होकर शरणमें आ जाते हैं, ऐसे सैनिकोंकी जो लोग विजय-मदसे उन्मत्त होकर हत्या करते हैं, उन्हें महापातकी और ब्रह्महत्यारा समझना चाहिये।* इसलिये तुम्हें मनसे भी किसी भयभीत प्राणीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये।'

महात्मा नारदके यों कहनेपर इन्द्र देवसेनाके साथ तत्काल स्वर्गमें चले आये। उस समय सब देवता परस्पर अधिक हर्ष प्रकट करने लगे। यक्ष, गन्धर्व और किन्नरगण भी बड़े आनन्दित हुए। श्रेष्ठ देवर्षियों और ब्रह्मर्षियोंने अमरावतीके सिंहासनपर शचीसहित इन्द्रका अभिषेक किया। इन्द्र भगवान् शङ्करके प्रसादसे विजयी हुए। उस समय देवलोकमें बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। शङ्ख, पटह, मृदङ्ग, ढोल, आनक, भेरी और दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे। देवताओंद्वारा मारे गये दैत्य पृथ्वीपर पड़े थे। महात्मा राजा बलि आदि भी प्राण त्याग चुके थे। उस समय भृगुवंशी शुक्राचार्यजी तपस्या करनेके लिये अपने शिष्योंके साथ मानसोत्तर पर्वतपर गये थे। इसीलिये वे युद्धमें उपस्थित न हो सके थे। उस युद्धमें जो दैत्य जीवित बच गये थे, वे शुक्राचार्यजीके पास गये। उन्होंने वह सारा वृत्तान्त, जो असुरोंके संहारका कारण हुआ था, विस्तारपूर्वक कह सुनाया। सुनकर भृगुनन्दन शुक्रको खेद और क्रोध भी हुआ। वे शिष्योंके साथ युद्धस्थलमें आये और अपनी मृतसंजीवनी विद्याके प्रभावसे उन्होंने मरे हुए असुरोंको भी जीवित कर दिया। शुक्राचार्यकी प्रेरणासे बलि आदि सब दैत्य पातालमें लौट आये और सुखपूर्वक रहने लगे।

ऋषियोंने पूछा—देवराज इन्द्रने गुरुके बिना ही कैसे राज्य प्राप्त किया? क्योंकि गुरुकी अवहेलनासे ही उन्हें अपना राज्य छोड़कर जाना पड़ा था। किसकी प्रेरणासे इन्द्र चिरकालतक राजसिंहासनपर बैठे रहे। ये सब बातें आप शीघ्र बतावें। हमें यह सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है।

* ये भीतांश्च प्रपन्नांश्च घ्नन्ति तान् ये मदोद्धताः।
ब्रह्मघ्नास्तेऽपि विज्ञेया महापातकसंयुताः॥
(स्क० मा० के० १४। १९)

लोमशजी बोले—गुरु बृहस्पतिके बिना भी शचीपति इन्द्रने कुछ कालतक राज्य-शासन किया। उस समय विश्वरूपजी इन्द्रके पुरोहित हुए थे। विश्वरूपके तीन मस्तक थे; वे यज्ञ और पूजनमें उचित भाग देकर देवताओं, असुरों और मनुष्योंको भी तृप्त करते थे। यह बात शचीपति इन्द्रसे छिपी न रह सकी। पुरोहित विश्वरूपजी देवताओंका भाग उच्चस्वरसे बोलकर देते थे। दैत्योंको चुपचाप बिना बोले ही देते थे और मनुष्योंको मध्यम स्वरसे मन्त्र पढ़कर भाग समर्पित करते थे। यह उनका प्रतिदिनका कार्य था। एक दिन इन्द्रको गुरुजीकी फुर्ती देखकर इस बातका पता लग गया। तब उन्होंने छिपे-छिपे यह जान लिया कि विश्वरूपजी क्या करना चाहते हैं। 'ये दैत्योंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उन्हें भाग अर्पण करते हैं, हमारे पुरोहित होकर दूसरोंको फल देते हैं।' यों समझकर इन्द्रने सौ पर्ववाले वज्रसे विश्वरूपके मस्तक काट डाले। वज्रके आघातसे तत्काल उनकी तीनों लोक विपत्तिग्रस्त हो गये। जिस राज्यमें एक भी ब्रह्महत्यारा निर्भय होकर निवास करता है, वहाँ साधु पुरुषोंकी अकालमृत्यु होती है। विप्रगण! जिस राज्यमें पापात्मा राजा निवास करता है, वहाँ प्रजाके विनाशके लिये दुर्भिक्ष, मृत्यु, उपद्रव तथा और भी बहुत-से अनर्थ उत्पन्न होते हैं। अतः राजाको श्रद्धापूर्वक धर्मका पालन करना चाहिये। राजाके पवित्र होनेसे ही उसकी प्रजा पवित्र रहकर स्थिरता प्राप्त करती है। इन्द्रने जो पाप किया था, उसके कारण सम्पूर्ण जगत् नाना प्रकारके सन्तापोंसे पीड़ित और उपद्रवग्रस्त हो गया।

शौनकने पूछा—सूतजी! इन्द्रने तो सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंका विशाल राज्य प्राप्त किया है, फिर उसमें विघ्न क्यों उत्पन्न होता है?

है तथा वे उत्तम लोक प्राप्त करते हैं। इसलिये दुराचार-परायण इन्द्रको इस पाप-कर्मका ही फल मिला है।

विप्रगण! उस समयकी परिस्थितिपर भलीभाँति विचार करके सम्पूर्ण लोकपाल एकत्र हो बृहस्पतिके पास गये और अपना सब मनोगत विचार उनपर प्रकट किया। उन्होंने स्थिरचित्त होकर इन्द्रकी सब बातें गुरु बृहस्पतिसे कह सुनायीं। देवताओंकी बात सुनकर परम बुद्धिमान् बृहस्पतिजीने सर्वत्र फैली हुई अराजकताको लक्ष्य करके सोचा, 'अब क्या करना चाहिये? इस समय हमारा कर्तव्य क्या है? देवताओं, पवित्रात्मा ऋषियों तथा सम्पूर्ण लोकोंका कल्याण कैसे होगा?' मन-ही-मन इन सब बातोंको सोचकर और कर्तव्य-अकर्तव्यका विचार करके महायशस्वी बृहस्पतिजी देवताओंके साथ इन्द्रके पास चले; वे तुरंत ही उस जलाशयपर जा पहुँचे, जिसमें इन्द्र छिपे हुए थे और जिसके तटपर भयानक चाण्डालीके रूपमें ब्रह्महत्या खड़ी थी। वे सम्पूर्ण देवता और महर्षि जलाशयके किनारे बैठ गये। गुरु बृहस्पतिजीने स्वयं ही इन्द्रको पुकारा। उनकी आवाज सुनकर इन्द्र उठकर खड़े हो गये। उस समय उन्हें अपने गुरु बृहस्पतिजीका दर्शन हुआ। इन्द्रके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली। उन्होंने सामने खड़े हुए बृहस्पतिजी-को तथा वहाँ आये हुए सम्पूर्ण तपस्वी मुनियोंको शीघ्रता-पूर्वक प्रणाम किया। फिर दीनवदन हो अपने ही किये हुए अज्ञानसूचक महान् कुकर्मोंपर मन-ही-मन भलीभाँति विचार करके वे बोले—'प्रभो! इस समय मेरेद्वारा पालन करने-योग्य कौन-सा कर्तव्य है? बताइये!' उदार बुद्धिवाले भगवान् बृहस्पतिने हँसकर उत्तर दिया—'इन्द्र! पहले तुमने जो कुछ किया था, उसी कर्मका यह फल आज तुम्हें मिल रहा है। केवल भोगसे ही इसका क्षय होगा। धर्मशास्त्र-कारोंने ब्रह्महत्याके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं देखा है। उनकी दृष्टिमें ब्रह्महत्या दूर करनेके लिये कोई प्रायश्चित्त है ही नहीं। अनजानमें जो पाप हो जाता है, उसीके निवारणका उपाय धर्मशास्त्रज्ञ विद्वानोंने बताया है। जो पाप स्वेच्छा-पूर्वक जान-बूझकर किया जाता है, उसके प्रतिकारका कोई उपाय नहीं। इच्छापूर्वक जान-बूझकर किया हुआ पाप अनिच्छा या अज्ञानपूर्वक किये हुए पापकी श्रेणीमें नहीं आ सकता। नियम-भेदसे इन दोनों प्रकारके पापोंका प्रायश्चित्त नियत किया गया है। जान-बूझकर किये हुए पाप-के लिये मरणान्त प्रायश्चित्तका विधान है। अज्ञानजनित पापके लिये विशेष-विशेष प्रायश्चित्त बताया गया है। तुमने जो पाप किया है, वह अनजानमें नहीं हुआ है; तुम्हारे द्वारा स्वयं जान-बूझकर विद्वान् पुरोहित ब्राह्मणका वध किया गया है। अतः उसके निवारणका कोई उपाय नहीं है। जबतक मृत्यु नहीं हो जाती, तबतक तुम इस जलमें ही स्थिरभावसे पड़े रहो। दुर्मते! तुम्हारे सौ अश्वमेध यज्ञोंका फल तो उसी समय नष्ट हो गया, जब तुमने ब्राह्मणकी हत्या की थी। जैसे छेदवाले घड़ेमें थोड़ा भी जल नहीं ठहरता, उसी प्रकार पापी मनुष्यका पुण्य प्रतिक्षण नष्ट होता रहता है।'

बृहस्पतिजीका यह वचन सुनकर इन्द्रने कहा—'गुरु-देव! इसमें सन्देह नहीं कि मेरे कुकर्मसे ही मुझे ऐसी दुर्दशा प्राप्त हुई है। अब आप इन देवर्षियोंके साथ शीघ्र ही अमरावतीपुरीको पधारें और देवताओं तथा सम्पूर्ण लोकोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये आपके मनमें जो अच्छे प्रतीत हों, उन्हें इन्द्र बना लें। मैं तो इस ब्रह्महत्यासे आवृत होनेके कारण अब मरे हुएके ही समान हूँ।' इन्द्रके यों कहनेपर बृहस्पतिको आगे करके सम्पूर्ण देवता तुरंत अमरावतीपुरीमें लौट आये और इन्द्रका जो विचार था, वह सब शचीके सामने उन्होंने यथार्थरूपसे कह सुनाया। सब देवता बार-बार विचार करने लगे कि अब इस राज्यका संचालन करनेके लिये हमें क्या करना चाहिये। इसी समय अमित तेजस्वी देवर्षि नारद इच्छानुसार घूमते हुए वहाँ आ पहुँचे और देवताओंद्वारा पूजित होकर बोले—'देवगण! आपलोग अनमने कैसे हो रहे हैं?' उनके पूछनेपर देवताओंने इन्द्रकी सारी करतूतें कह सुनायीं। तब नारदजी बोले—'देवताओ! इन्द्रके ये सारे चरित्र मैंने पहलेसे ही सुन रक्खे हैं, अब तो इस महान् पापके कारण इन्द्रकी सारी श्रेष्ठता चली गयी। आप सब देवता सर्वज्ञ हैं, तपस्या और पराक्रमसे सम्पन्न हैं; अतः आपलोग चन्द्रवंशी राजा नहुषको इन्द्र बना लें। इस राज्यपर उन्हें शीघ्र ही बिठा लेना चाहिये। महात्मा नहुषने यज्ञकी दीक्षा लेकर निन्यानवे अश्वमेध यज्ञ पूर्ण कर लिये हैं।'

सब देवताओं और महर्षियोंने इन्द्रका राज्य नहुषको सौंप दिया। तबसे अगस्त्य आदि सभी महर्षि नहुषकी सेवामें उपस्थित रहने लगे। गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, विद्याधर, महानाग, सुपर्ण और पक्षी आदि जो भी स्वर्गवासी प्राणी थे, वे सब नहुषकी सेवा करने लगे।

इस प्रकार उत्तम कलाओंसे सुशोभित तथा सम्पूर्ण

देवताओंसे सुपूजित राजा नहुष जब स्वर्गलोकके अधिपति हो गये, तब उन्हें महान् कामानल सन्तप्त करने लगा। राजा नहुषने पूछा—'देवताओ ! क्या कारण है कि अभीतक इन्द्राणी मेरे समीप नहीं आ रही हैं ? उन्हें शीघ्र बुलाओ।'

नहुषकी यह बात सुनकर उदार बुद्धिवाले बृहस्पतिजी शचीके भवनमें गये और बोले—'कल्याणी! इन्द्रके दुष्कर्मसे विवश होकर यहाँका राज्य सँभालनेके लिये हमलोग नहुषको ले आये हैं। परंतु तुम इस कार्यके विरुद्ध जान पड़ती हो। तभी तो अबतक वहाँ उपस्थित नहीं हुई।' शचीने पापहीन गुरु बृहस्पतिजीसे हँसकर कहा—'नहुष मुझे प्राप्त करने योग्य नहीं है; आप स्वयं ही तत्त्वतः विचार करके देखें, क्या वह मुझे प्राप्त करनेका अधिकारी है ? मैं परायी स्त्री हूँ; यदि वह मुझे पानेकी अभिलाषा करता है तो उस अज्ञानीसे कहिये—जो वाहन बनाने योग्य न हो, ऐसे वाहनपर बैठकर वह यहाँ आवे; तब मुझे प्राप्त कर सकता है।' 'तथास्तु' कहकर बृहस्पतिजी शीघ्रतापूर्वक लौट गये और कामसन्तप्त नहुषसे शचीदेवीकी कही हुई सब बातें ज्यों-की-त्यों कह सुनायीं। नहुष कामसे मोहित हो रहे थे। उन्होंने 'ठीक है' यों कहकर शचीदेवीकी शर्त स्वीकार कर ली। फिर वे अपनी बुद्धिद्वारा विचार करने लगे कि 'वाहन न बनाने योग्य ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो प्रशंसनीय मानी जाती है। तदनन्तर उन्होंने यह निश्चय किया कि तपस्वी ब्राह्मण ही ऐसे हैं, जो वाहन बनानेके योग्य नहीं हैं। अतः उन्हींको आज अपना वाहन बनाता हूँ। आज इन्द्राणीको प्राप्त करनेके लिये दो तपस्वी ब्राह्मणोंसे वाहनका काम लूँ, ऐसी अभिलाषा मेरे मनमें उत्पन्न हुई है।' इस निश्चयके अनुसार काममोहित नहुषने दो ब्राह्मणोंको पालकी दे दी और स्वयं उस पालकीमें बैठकर बोले—'सर्प-सर्प'—शीघ्र चलो, शीघ्र चलो। नहुषके 'सर्प-सर्प' कहनेसे कुपित हुए एक तपस्वी ब्राह्मणने उन्हें शाप देकर नीचे गिरा दिया। नहुष अजगर होकर स्वर्गसे नीचे गिर पड़े। वे ऊँचे पदको पाकर भी ब्राह्मणके दुर्लंघ्य शापसे तिर्यग्योनिमें पड़ गये। जैसी दशा राजा नहुषकी हुई, *वैसी ही उनके-जैसे आचरण करनेवाले सबकी होती है।* जो राजमद पाकर उन्मत्त हो उठते हैं, उनपर भारी विपत्ति आती है। जो राजमदसे अन्धे, दुराचारी, कामी तथा विषयोंमें रचे-पचे रहनेवाले हैं, वे ब्राह्मणोंका अपमान करके अपवित्र नरकमें पड़ते हैं। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि इहलोक और परलोकमें सुख पानेकी इच्छा होनेपर वह सर्वथा प्रयत्न करके उत्तम पदको पाकर कभी प्रमादमें न पड़े*—सदा अपने कर्तव्यके प्रति सावधान रहे। वैसा अनुचित कर्म करनेके कारण ही राजा नहुष महाभयानक जंगलमें सर्प हुए।

ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होनेपर देवलोकमें फिर अराजकता छा गयी। सब देवता उस समय विस्मितचित्त होकर कहने लगे—अहो, इस राजाने बड़ा भारी कष्ट पाया। इस दुरात्माके लिये न तो मर्त्यलोकमें स्थान रहा, न स्वर्गलोकमें। महापुरुषोंकी अवहेलना करनेसे इसका सारा पुण्य एक ही क्षणमें भस्म हो गया। अब पृथ्वीपर दूसरा कोई यज्ञकर्ता राजा नहीं दिखायी देता था, जिसका इन्द्रके सिंहासनपर अभिषेक किया जा सके। इसलिये सब देवता, ऋषि, नाग, गन्धर्व, यक्ष, पक्षी, किन्नर, चारण, विद्याधर, असुरगण, अप्सराएँ तथा मनुष्य चिन्तित हो गये।

तदनन्तर शचीदेवीने धर्म और अर्थयुक्त वाणीमें कहा—'गुरुदेव बृहस्पति तथा अन्य देवताओ! चिन्ता न करो; *तुम सब लोगोंको अब वहीं जाना चाहिये, जहाँ हमारे स्वामी रहते हैं।*' इन्द्राणीकी बात सुनकर बृहस्पतिजी देवताओंके साथ ब्रह्महत्यापीड़ित इन्द्रके समीप गये। जलाशयके किनारे पहुँचकर देवताओंने इन्द्रको पुकारा। इन्द्रने जलमें खड़े होकर देवताओंपर दृष्टिपात किया और कहा—'अब तुमलोग यहाँ क्यों आये हो? मैं तो पापसे पीड़ित हूँ, ब्रह्महत्यामें डूबा हुआ हूँ और यहाँ अकेले ही तपस्या करते हुए इस जलमें निवास करता हूँ।' उनकी बात सुनकर देवता विह्वल हो गये और बोले—'देवराज ! विश्वकर्माके पुत्र विश्वरूपने ऐसा यज्ञ कराना आरम्भ किया था, जिससे देवता और तपस्वी ऋषि विनाशको प्राप्त हो जाते। इस कारण परोपकारकी दृष्टिसे ही आपने उसका वध किया था। इसलिये हम सब लोग आपको अमरावती ले चलनेके लिये आये हैं।'

देवताओंमें जब इस प्रकार बातचीत हो रही थी, ब्रह्महत्या भी तुरंत बोल उठी—'मैं देवराज इन्द्रको अमरावती

---

* ये मदान्धा दुराचाराः कामुका विषयात्मकाः ।
विप्राणामपमानेन पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पदं प्राप्य विचक्षणैः ।
अप्रमत्तैर्भवितव्यमिहामुत्र च सुखदे ॥
(स्क० मा० के० १५ । ८७-८८)

जानेसे रोकती हूँ।' यह सुनकर बृहस्पतिने सहसा उसको उत्तर दिया—'ब्रह्महत्ये! हम तुम्हारे निवासके लिये दूसरे स्थान नियत करेंगे।' कार्यकी गुरुताको दृष्टिमें रखकर देवताओंने उस समय ब्रह्महत्याको शान्त कर दिया। फिर सबने विचार करके ब्रह्महत्याको चार भागोंमें बाँटा। तत्पश्चात् देवताओंने सबसे पहले पृथ्वीसे कहा—'देवि! देवताओंकी कार्य-सिद्धिके लिये इन्द्रकी ब्रह्महत्याका एक अंश तुम्हें ग्रहण करना चाहिये।' देवताओंकी यह बात सुनकर पृथ्वी काँप उठी और बोली—'आप लोग ही विचार करें, मैं ब्रह्महत्याका अंश कैसे ग्रहण कर सकती हूँ? मैं सम्पूर्ण भूतोंको धारण करनेवाली तथा विश्वका भरण-पोषण करनेवाली हूँ। मैं इस पाप-पङ्कमें डूबकर अधिक अपवित्र हो जाऊँगी।' पृथ्वीका यह वचन सुनकर बृहस्पतिजीने कहा—'सुन्दरी! तुम भय मत करो। तुम तो सर्वथा निष्पाप हो। जिस समय यदुकुलमें भगवान् वासुदेव अवतार लेंगे, उस समय उनके चरणोंके स्पर्शसे यह ब्रह्महत्याका आंशिक पाप भी निवृत्त हो जायगा और तुम पूर्णतः निष्पाप होकर रहोगी।' उनके यों कहनेपर पृथ्वीने उनकी आज्ञाका पालन किया।

इसके बाद सब देवताओंने वृक्षोंको बुलाकर कहा—'आपलोग देवकार्यकी सिद्धिके लिये ब्रह्महत्याका एक अंश ग्रहण करें।' तब वृक्षोंने वहाँ पधारे हुए सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'यदि हम सब लोग ब्रह्महत्याके पापसे लिप्त हो जायँगे तो सम्पूर्ण महात्मा भी ब्रह्महत्यायुक्त होकर पापी हो जायँगे।' यह सुनकर बृहस्पतिजीने कहा—'तुमलोग चिन्ता न करो, इन्द्रके प्रसादसे तुमलोग काटे जानेपर भी अनेक अंशोंमें विभक्त हो शाखा और डालियोंसे सम्पन्न हो जाओगे और इस प्रकार सदा शुद्ध बने रहोगे।' बृहस्पतिके इस प्रकार आश्वासन देनेपर सब वृक्षोंने उस आंशिक ब्रह्महत्याको आपसमें बाँट लिया।

तदनन्तर देवताओंने जलोंको बुलाकर कहा—'तुमलोग भी देवकार्यकी सिद्धिके लिये इस समय ब्रह्महत्याका एक अंश स्वीकार करो।' तब सब जल एकत्र हो बृहस्पतिजीसे बोले—'जो कोई भी पाप या दुष्कर्म हैं, वे हमारे सम्पर्क और सम्बन्धसे दूर होते हैं। हमारे द्वारा स्नान, शौच एवं हमारा पान आदि करनेसे सम्पूर्ण पापाक्रान्त प्राणी पवित्र हो जाते हैं। (ब्रह्महत्यासे अभिभूत होनेपर हमारी यह शक्ति नष्ट हो जायगी!)' उनकी बात सुनकर बृहस्पतिने उत्तर दिया—'तुम दुस्तर पापसे भय न करो; मैं वरदान देता हूँ—'चराचर जगत्में निवास करनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंको जल पवित्र करे।' उनके यों कहनेपर जलने ब्रह्महत्याका तीसरा अंश ग्रहण किया। इसके बाद बृहस्पतिजीने स्त्रियोंको बुलाकर कहा—'तुमलोग भी इस समय सब कार्योंकी सिद्धिके लिये ब्रह्महत्याका शेष अंश ग्रहण करो।' देवगुरुका यह वचन सुनकर सब स्त्रियाँ बोलीं—'भगवन्! सम्पूर्ण स्त्रियाँ धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिके लिये उत्पन्न हुई हैं। यदि नारी पापाचार करे, तो उस पापसे अनेक पक्ष (पिता, नाना तथा पतिके कुल) लिप्त होते हैं—ऐसी वेदोंकी आज्ञा है; क्या आपने ऐसी कोई बात नहीं सुनी है? फिर स्वयं विचार कर लें, हमारा क्या कर्तव्य है।' स्त्रियोंके यों कहनेपर बृहस्पतिजीने वरदान दिया—'देवियो! तुम सब इस पापसे भय न करो, तुम्हारे द्वारा स्वीकृत ब्रह्महत्याका यह अंश भावी पीढ़ियोंके लिये तथा दूसरोंके लिये भी शुभ फल देनेवाला होगा। तुम सबको इच्छानुसार काम-सुख प्राप्त होगा।'

इस प्रकार देवताओंने ब्रह्महत्याके चार भाग किये और वे अंश तत्काल ही पूर्वोक्त समुदायोंमें स्थित हो गये। उस समय इन्द्रका पाप सर्वथा नष्ट हो गया। अतः देवताओं और ऋषियोंने देवपुरीमें शचीसहित इन्द्रका पुनः अभिषेक किया। महात्मा इन्द्र सम्पूर्ण देवताओं, महानुभावों, मुनीश्वरों तथा सिद्धगणोंके साथ पुनः लोकपाल-पदपर प्रतिष्ठित हो गये। उस समय इन्द्रलोकके सम्पूर्ण निवासियोंके मनमें महान् उत्साह और अपार आनन्द छा गया।

विश्वकर्माके तपसे वृत्रासुरकी उत्पत्ति तथा दधीचिद्वारा देवताओंको अस्थिदान

लोमशजी कहते हैं—इसी बीचमें इन्द्रका महान् उत्सव देखकर पुत्र-शोकसे पीड़ित विश्वकर्माके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। वे बहुत खिन्न होकर अत्यन्त उग्र तपस्या करनेके लिये गये। उस तपस्यासे सन्तुष्ट होकर लोकपितामह ब्रह्माजीने प्रजापति त्वष्टासे कहा—'सुव्रत! तुम कोई वर माँगो।' तब त्वष्टाने अत्यन्त हर्षमें भरकर वर माँगा—

'भगवन् ! हमें ऐसा पुत्र दीजिये, जो देवताओंके लिये भयङ्कर हो तथा सम्पूर्ण देवताओं और इन्द्रको भी शीघ्र मार डालनेकी इच्छा रखता हो ।' 'तथास्तु' कहकर परमेष्ठी ब्रह्माने वरदान दे दिया । उस वरदानसे तत्काल ही वहाँ एक बड़ा अद्भुत दैत्य प्रकट हुआ, जो वृत्र नामसे प्रसिद्ध था । वह असुर प्रतिदिन सौ धनुष (चार सौ हाथ) बढ़ता था । पूर्वकालमें अमृत-मन्थनके समय देवताओंने जिन दैत्योंको मार डाला था और शुक्राचार्यने पुनः जिन्हें जीवित कर दिया था, उनमेंसे राजा बलिको छोड़कर शेष सभी दैत्य पातालसे निकलकर वृत्रासुरके पास चले आये । पातालसे आये हुए असुरोंके साथ वृत्रासुरने अकेले ही अपने विशाल शरीरद्वारा सम्पूर्ण भूमण्डलको ढक लिया । उस समय उससे पीड़ित हुए तपस्वी ऋषि तुरंत ब्रह्माजीके पास गये और उन्होंने अपनी सारी कष्ट-कथा कह सुनायी । तब ब्रह्माजीने गन्धर्वों, मरुद्गणों तथा इन्द्रादि देवताओंसे, विश्वकर्मा क्या करना चाहते हैं, यह बताया और कहा—'विश्वकर्माने बड़ी भारी तपस्या करके हमलोगोंके द्वारा एक न करनेयोग्य कार्य हो गया है । अब उस भूलके दुष्परिणामसे पार पाना हमारे लिये कठिन है । भूल यह हुई कि हम अज्ञानियोंने अपने अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र महर्षि दधीचिके आश्रममें रख दिये थे । उन शस्त्रोंके बिना इस समय हम क्या कर सकते हैं ?'

तदनन्तर ब्रह्माजीकी आज्ञासे सब देवता दधीचिके आश्रम-पर गये और उनसे बोले—'देव ! हमने पूर्वकालमें जो अस्त्र-शस्त्र यहाँ रख दिये थे, वे सब हमें दे दिये जायँ ।' यह सुनकर दधीचिने हँसते हुए कहा—'बड़भागी देवताओ ! आपके उन अस्त्रोंको बहुत कालसे यहाँ व्यर्थ रक्खा हुआ जानकर मैंने सबको पी लिया ।' उनकी यह बात सुनकर देवता बहुत चिन्तित हुए और पुनः ब्रह्माजीके पास लौटकर मुनिकी सब बातें कह सुनायीं । तब ब्रह्माजीने सबके अभीष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये देवताओंसे कहा—'तुम लोग दधीचिसे उनकी हड्डियाँ ही माँगो । माँगनेपर वे देंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।' ब्रह्माजीकी बात सुनकर इन्द्र बोले—'वृत्रासुर नामक जो दैत्यराज है, उसे विश्वकर्माने उत्पन्न किया है (अतः वह ब्राह्मण ही है); यद्यपि वह निरन्तर अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाला है, तथापि ब्राह्मण होनेके कारण मैं उसका वध कैसे कर सकता हूँ ।' इन्द्रकी बात सुनकर ब्रह्माजीने अर्थशास्त्रको प्रधानता देनेवाली युक्तिसे उन्हें समझाया और इस प्रकार कहा—'देवराज ! यदि कोई आततायी मारनेकी इच्छासे आ रहा हो तो, वह तपस्वी ब्राह्मण ही क्यों न हो, उसे अवश्य मार डालनेकी इच्छा करे । ऐसा करनेसे वह ब्रह्महत्यारा नहीं हो सकता ।'* ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर इन्द्रने कहा—'भगवन् ! दधीचिके वधसे निश्चय ही मेरा पतन हो जायगा । उस ब्राह्मणकी हत्यासे सभी तरहके महान् पाप अपनेको लगेंगे । अतः हमें ब्राह्मणोंका अनादर नहीं करना चाहिये । परम धर्म अदृष्टरूप है । विज्ञ पुरुषको उचित है कि वह श्रेष्ठ विधिके अनुसार मनोयोगपूर्वक उस धर्मका पालन करे ।'

स्वीकार की और गुरु बृहस्पति तथा सम्पूर्ण देवताओंके साथ दधीचिके मङ्गलमय आश्रमपर गये। वह आश्रम नाना प्रकारके जीव-जन्तुओंसे संयुक्त होनेपर भी पारस्परिक वैर-भावसे रहित था। वहाँ बिल्ली और चूहे एक दूसरेको देखकर प्रसन्न होते थे। एक ही स्थानपर सिंह, हथिनियाँ, हाथीके बच्चे और हाथी परस्पर मिलकर नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करते थे। नेवलोंके साथ मिले हुए सर्प एक दूसरेसे आनन्दका अनुभव करते थे। ऐसी-ऐसी अनेक आश्चर्यभरी बातें उस आश्रमपर दिखायी देती थीं। दधीचि मुनि अपने उत्तम तेजसे सूर्य अथवा दूसरे अग्निदेवकी भाँति प्रकाशित हो रहे थे। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी सुवर्चा भी थीं। जैसे सावित्रीके साथ ब्रह्माजी शोभा पाते हैं, उसी प्रकार वे मुनिश्रेष्ठ दधीचि भी अपनी धर्मपत्नीके साथ सुशोभित थे। सम्पूर्ण देवताओंने मुनिका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'मुने! हमें पहलेसे ही विदित है कि आप तीनों लोकोंमें सबसे बड़े दाता हैं।' देवताओंकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ दधीचि बोले—'श्रेष्ठ देवगण! आपलोग जिस कामके लिये आये हैं, उसे बतावें। आपकी माँगी हुई वस्तु मैं अवश्य दूँगा, इसमें सन्देह नहीं है। मेरी बात कभी मिथ्या नहीं होती।' तब अपना स्वार्थ सिद्ध करनेकी इच्छावाले सब देवता एक साथ बोले—'ब्रह्मन्! हमलोग भयभीत होकर आपके दर्शनकी अभिलाषासे यहाँ आये हैं।' उनकी ये बातें सुनकर दधीचिने कहा—'बताइये, आपलोगोंके लिये क्या देना है।' यों कहकर महर्षिने अपनी पत्नीको आश्रमके भीतर भेज दिया। तदनन्तर देवता बोले—'विप्रवर! आप अपने शरीरकी हड्डियाँ हमें अर्पित करें, जिनसे दैत्योंका संहार हो।' महर्षिने कहा—'मैंने हड्डियाँ आपको दे दीं।' तब देवता बोले—'भगवन्! आपके जीते-जी इन हड्डियोंको हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं?' ब्रह्मर्षिने हँसकर उत्तर दिया—'बस, क्षणभर खड़े रहिये, मैं अभी अपना शरीर त्याग देता हूँ।' ऐसा कहकर दधीचिने समाधि लगा ली। उस परम समाधिके द्वारा अपना शरीर त्यागकर वे तत्काल उस ब्रह्मधाममें चले गये, जहाँसे फिर इस संसारमें लौटना नहीं पड़ता। इस प्रकार भगवान् शङ्करके प्रिय भक्त मुनिवर दधीचि परोपकारके लिये शरीर त्यागकर ब्रह्मपदको प्राप्त हुए।

पिप्पलादका जन्म, सुवर्चाका पतिलोकगमन, देवासुर-संग्राममें नमुचिका वध, प्रदोषव्रतकी विधि और उद्यापन, इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध तथा इन्द्रकी विजय

लोमशजी कहते हैं—तदनन्तर महर्षि दधीचिको ब्रह्मलीन हुआ देख इन्द्रने सुरभिको बुलाकर कहा—'तुम दधीचिके शरीरको चाटो।' 'बहुत अच्छा' कहकर सुरभिने तत्काल दधीचिके शरीरको चाटना आरम्भ किया। उसने सब ओरसे चाटकर उस शरीरको मांसरहित कर दिया। तब देवताओंने वे हड्डियाँ ले लीं और उनके शस्त्र बनाये। उनकी पीठकी हड्डीसे 'वज्र' बना और शिरसे 'ब्रह्मशिर' नामक अस्त्र तैयार किया गया। ऋषिके शरीरकी जो और भी बहुत-सी हड्डियाँ थीं, उन्हें भी उस समय देवताओंने ग्रहण कर लिया। इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रोंका निर्माण करके महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न हुए देवता वृत्रासुरको मारनेके लिये उद्यत हो बड़ी उतावलीके साथ स्वर्गलोकमें गये।

तत्पश्चात् महर्षि दधीचिकी पत्नी सुवर्चा देवी, जिन्हें देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये महर्षिने आश्रमके भीतर भेज दिया था, वहाँ पुनः लौटकर आयीं और वहाँ जो कुछ हुआ था वह सब उन्होंने अपनी आँखोंसे देखा—'यह सब देवताओंकी ही करतूत है' ऐसा जानकर उस सती-साध्वी सुवर्चाके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अत्यन्त रुष्ट होकर शाप देते हुए कहा—'देवता आजसे सन्तानहीन रहें।' तपस्विनी सुवर्चाने इस प्रकार देवताओंको शाप दे दिया और स्वयं एक पीपल-वृक्षके मूल भागमें बैठकर रोदन करने लगीं। इसी समय उनके उदरसे महात्मा दधीचिके पुत्र महातेजस्वी पिप्पलाद प्रकट हुए। माता सुवर्चा प्यासी आँखोंसे पुत्र पिप्पलादकी ओर देखती हुई हँसकर बोलीं—'महाभाग! तुम दीर्घकालतक इस वृक्षके ही समीप रहना। तुम मेरे आशीर्वादसे शीघ्र ही ऋषियोंमें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करोगे।' अपने पुत्रके प्रति ऐसा कहकर साध्वी सुवर्चा श्रेष्ठ समाधि लगाकर पतिके समीप चली गयीं। इस प्रकार उन्होंने पतिके साथ सत्यलोक प्राप्त किया।

इधर वे देवतालोग अस्त्र-शस्त्रोंका निर्माण करके युद्धके लिये उत्सुक हो दैत्योंके सामने गये। इन्द्र आदि देवता महान् बल और पराक्रमसे युक्त थे। वे गुरु बृहस्पतिको आगे

करके भूमिपर आकर मध्य देशमें ठहरे। उन सबके पास बड़े उत्तम शस्त्र थे। इन्द्र आदि देवताओंको आया हुआ सुनकर महातेजस्वी वृत्रासुर दैत्यवृन्दके साथ उनके समीप गया। महेन्द्रने उस समराङ्गणमें महादैत्य वृत्रासुरको देखा। देवताओं और दानवोंका एक दूसरेकी ओर दृष्टिपात बड़ा अद्भुत था। उनमें वैर-भाव बहुत बढ़ा हुआ था। वे एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे अत्यन्त क्रोधमें भरकर अद्भुत स्वरमें गर्जना करने लगे। देवताओं और दानवों-के उस युद्धमें बजाये जानेवाले भयानक बाजे बड़ी गम्भीर ध्वनिमें सुनायी देते थे। उस युद्धमें समस्त चराचर जगत् महान् भयके कारण अचेत हो गया। उस समय नमुचि नामक दैत्य इन्द्रके साथ युद्ध करने लगा। देवराज इन्द्रने बड़े वेगसे उस दैत्यपर वज्रका प्रहार किया, परंतु वज्रके आघातसे भी नमुचिका एक रोम भी न टूट सका। तब इन्द्रने नमुचिपर गदा मारी, किंतु वह गदा भी चूर-चूर हो गयी। यह देख इन्द्रने एक बहुत बड़े शूलसे उस दैत्यपर प्रहार किया। नमुचिके अङ्गका स्पर्श होते ही उस शूलके सैकड़ों टुकड़े हो गये। इसी प्रकार नमुचिने भी हँसते हुए अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे देवताओंको मारा, परंतु इन्द्रपर प्रहार नहीं किया। उस समय इन्द्र मौन होकर बड़ी भारी चिन्तामें डूब गये। इसी बीचमें उस महाभयानक संग्रामके भीतर इन्द्रको सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई—'महेन्द्र! यह दैत्य देवताओंके लिये बड़ा भयंकर और घोरतर है। इसके लिये जलसे निकला हुआ फेन ही दुर्लंघ्य शस्त्र है। अतः उसीके द्वारा इस महान् असुरका शीघ्र संहार करो। दूसरे किसी शस्त्रसे आघात करनेपर यह असुर कभी मारा नहीं जा सकता।' इस मंगलमयी दैवी वाणीको सुनकर अनन्त पराक्रम-वाले इन्द्र समुद्रके तटपर गये और फेन प्राप्त करनेके लिये प्रयास करने लगे। इन्द्रको समुद्रतटपर आया हुआ देख नमुचि क्रोधसे मूर्छित हो उठा और शूलसे आघात करके उन्हें कटुवचन सुनाने लगा। तब इन्द्रने भी क्रोधमें भरकर अद्भुत फेन ग्रहण किया और उस फेनका प्रहार करके महादैत्य नमुचिको मार गिराया। इस प्रकार नमुचिके मारे जानेपर सब देवता और ऋषि साधुवाद देते हुए इन्द्रके प्रति सम्मान प्रकट करने लगे।

इसी समय महातेजस्वी वृत्रासुर इन्द्रके समीप आया। वृत्रासुरको देखकर सब देवता और मनुष्य महान् भयसे युक्त हो पृथ्वीपर गिर पड़े। तब प्रतापी इन्द्र हाथमें वज्र लिये ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हुए। सब देवता प्रतापी लोकपालोंके साथ युद्धके लिये एकत्र हो गये; परंतु वृत्रासुरको देखते ही सब लोकपाल अपने स्वामी इन्द्रसहित भयभीत हो गये। अतः वे भगवान् शिवकी शरणमें गये। महेन्द्र विजयके इच्छुक थे। अतः उन्होंने गुरु बृहस्पतिके बताये अनुसार बड़े विश्वासके साथ तत्काल ही विधिपूर्वक शिवलिङ्गका पूजन किया। फिर उदार बुद्धिवाले बृहस्पतिजी इन्द्रसे इस प्रकार बोले—"देवराज! कार्तिक मासके शुक्ल पक्षमें शनिवारके दिन यदि पूरी त्रयोदशी मिले तो यह समझना चाहिये कि मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया। उस दिन प्रदोषकालमें सब काम-नाओंकी सिद्धिके लिये लिङ्गरूपधारी भगवान् सदाशिवका पूजन करना चाहिये। दोपहरके समय स्नान करके तिल और आँवलेके साथ गन्ध, पुष्प और फल आदिके द्वारा शिवजीकी पूजा करे। फिर प्रदोषकालमें स्थावर लिङ्गका पूजन करे। गाँवसे बाहर जो शिवलिङ्ग स्थित है, उसके पूजनका फल ग्रामकी अपेक्षा सौगुना अधिक है। उससे भी सौगुना अधिक माहात्म्य उस शिवलिङ्गके पूजनका है, जो वनमें स्थित हो। वनकी अपेक्षा भी सौगुना पुण्य पर्वतपर स्थित शिवलिङ्गके पूजनका है। पर्वतीय शिवलिङ्गकी अपेक्षा तपोवनमें स्थित शिवलिङ्गके पूजनका फल दस हजार गुना अधिक है। वह महान् फलदायक है। अतः विद्वानोंको इस विभागके अनुसार शिवलिङ्गका पूजन करना चाहिये और तडाग आदि तीर्थोंमें विधिवत् स्नान आदि करना चाहिये। मिट्टीके पाँच पिण्ड निकाले बिना किसी बावड़ीमें स्नान करना शुभ-कारक नहीं है। कुएँमेंसे अपने हाथसे जल निकालकर नहीं स्नान करना चाहिये (रस्सी आदिकी सहायतासे किसी पात्रमें जल निकालकर ही स्नान करना चाहिये)। पोखरेमेंसे मिट्टीके दस पिण्ड निकालकर ही स्नान करना चाहिये। नदीमें स्नान करना सबसे उत्तम है, यदि कोई बड़ी नदी मिल जाय तो उसमें नहाना और भी उत्तम है। सब तीर्थोंमें गङ्गाका स्नान सर्वोत्तम है।

"प्रदोषकालमें स्नान करके मौन रहना चाहिये। भगवान् सदाशिवके समीप एक हजार दीपक जलाकर प्रकाश करना चाहिये। इतना सम्भव न हो तो सौ अथवा बत्तीस दीपोंसे भी भगवान्के समीप प्रकाश किया जा सकता है। शिवकी प्रसन्नताके लिये घीके दीपक जलाना चाहिये। इसी प्रकार फल, धूप, नैवेद्य, गन्ध और पुष्प आदि षोडश उपचारोंसे लिङ्गरूपी भगवान् सदाशिवकी प्रदोषकालमें पूजा करनी

चाहिये। वे भगवान् सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले हैं। यदि जलहरीका जल न उलाँघना पड़े तो पूजनके पश्चात् भगवान् शिवकी एक सौ आठ परिक्रमा करनी चाहिये। फिर यत्नपूर्वक एक सौ आठ बार ही नमस्कार भी करने चाहिये। इस प्रकार परिक्रमा और नमस्कारसे भगवान् सदाशिवको प्रसन्न करना उचित है। तत्पश्चात् सौ नामोंसे विधिपूर्वक भगवान् रुद्रकी स्तुति करनी चाहिये। रुद्र, नील, भीम और परमात्माको नमस्कार है! कपर्दी (जटाजूटधारी), सुरेश्वर (देवताओंके स्वामी) तथा आकाशरूप केशवाले श्रीव्योमकेशको नमस्कार है! जो अपनी ध्वजामें वृषभका चिह्न धारण करनेके कारण वृषभध्वज हैं, उमाके साथ विराजमान होनेसे सोम हैं, चन्द्रमाके भी रक्षक होनेसे सोमनाथ हैं, उन भगवान् शम्भुको नमस्कार है! सम्पूर्ण दिशाओंको वस्त्ररूपमें धारण करनेके कारण जो दिगम्बर कहलाते हैं, भजनीय तेजस्वरूप होनेसे जिनका नाम भर्ग है, उन उमाकान्तको नमस्कार है! जो तपोमय, भव्य (कल्याणरूप), शिवश्रेष्ठ, विष्णुरूप, व्यालप्रिय (सर्पोंको प्रिय माननेवाले), व्याल (सर्पस्वरूप) तथा सर्पोंके पालक हैं उन भगवान्को नमस्कार है! जो महीधर (पृथ्वीको धारण करनेवाले), व्याघ्र (विशेष रूपसे सूँघनेवाले), पशुपति (जीवोंके पालक), त्रिपुरनाशक, सिंहस्वरूप, शार्दूलरूप और यज्ञमय हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। जो मत्स्यरूप, मत्स्योंके स्वामी, सिद्ध तथा परमेष्ठी हैं, जिन्होंने कामदेवका नाश किया है, जो ज्ञानस्वरूप तथा बुद्धि-वृत्तियोंके स्वामी हैं, उनको नमस्कार है! जो कपोत (ब्रह्माजी जिनके पुत्र हैं), विशिष्ट (सर्वश्रेष्ठ), शिष्ट (साधुपुरुष) तथा सर्वात्मा हैं, उन्हें नमस्कार है! जो वेदस्वरूप, वेदको जीवन देनेवाले तथा वेदोंमें छिपे हुए गूढ़ तत्त्व हैं, उनको नमस्कार है! जो दीर्घ, दीर्घरूप, दीर्घार्थस्वरूप तथा अविनाशी हैं, जिनमें ही सम्पूर्ण जगत्की स्थिति है तथा जो सर्वव्यापी व्योमरूप हैं, उन्हें नमस्कार है! जो गजासुरके महान् काल हैं, जिन्होंने अन्धकासुरका विनाश किया है, जो नील, लोहित और शुक्लरूप हैं तथा चण्ड-मुण्ड नामक पार्षद जिन्हें विशेष प्रिय हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है! जिनको भक्ति प्रिय है, जो द्युतिमान् देवता हैं, ज्ञाता और ज्ञान हैं, जिनके स्वरूपमें कभी कोई विकार नहीं होता, जो महेश, महादेव तथा हर नामसे प्रसिद्ध हैं, उनको नमस्कार है! जिनके तीन नेत्र हैं, तीनों वेद और वेदाङ्ग जिनके स्वरूप हैं, उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है! नमस्कार है! जो अर्थ (धन), अर्थरूप (काम) तथा परमार्थ (मोक्षरूप) हैं, उन भगवान्को नमस्कार है! जो सम्पूर्ण विश्वकी भूमिके पालक, विश्वरूप, विश्वनाथ, शङ्कर, काल तथा कालावयवरूप हैं, उन्हें नमस्कार है! जो रूपहीन, विकृत रूपवाले तथा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, उनको नमस्कार है! जो श्मशानभूमिमें निवास करनेवाले तथा व्याघ्रचर्ममय वस्त्र धारण करनेवाले हैं, उनको नमस्कार है! जो ईश्वर होकर भी भयानक भूमिमें शयन करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरको नमस्कार है! जो दुर्गम हैं, जिनका पार पाना अत्यन्त कठिन है तथा जो दुर्गम अवयवोंके साक्षी अथवा दुर्गारूपा पार्वतीके सब अङ्गोंका दर्शन करनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है! जो लिङ्गरूप, लिङ्ग (कारण) तथा कारणोंके भी अधिपति हैं, उन्हें नमस्कार है! महाप्रलयरूप रुद्रको नमस्कार है! प्रणवके अर्थभूत ब्रह्मरूप शिवको नमस्कार है! जो कारणोंके भी कारण, मृत्युञ्जय तथा स्वयम्भूरूप हैं, उन्हें नमस्कार है! हे श्रीत्र्यम्बक! हे नीलकण्ठ! हे शर्व! हे गौरीपते! आप सम्पूर्ण मङ्गलोंके हेतु हैं; आपको नमस्कार है!*

---

* नमो रुद्राय नीलाय भीमाय परमात्मने।
कपर्दिने सुरेशाय व्योमकेशाय वै नमः॥
वृषभध्वजाय सोमाय सोमनाथाय शम्भवे।
दिगम्बराय भर्गाय उमाकान्ताय वै नमः॥
तपोमयाय भव्याय शिवश्रेष्ठाय विष्णवे।
व्यालप्रियाय व्यालाय व्यालानां पतये नमः॥
महीधराय व्याघ्राय पशूनां पतये नमः।
पुरान्तकाय सिंहाय शार्दूलाय मखाय च॥
मीनाय मीननाथाय सिद्धाय परमेष्ठिने।
कामान्तकाय बुद्धाय बुद्धीनां पतये नमः॥
कपोताय विशिष्टाय शिष्टाय सकलात्मने।
वेदाय वेदजीवाय वेदगुह्याय वै नमः॥
दीर्घाय दीर्घरूपाय दीर्घार्थायाविनाशिने।
नमो जगत्प्रतिष्ठाय व्योमरूपाय वै नमः॥
गजासुरमहाकालायान्धकासुरभेदिने।
नीललोहितशुक्लाय चण्डमुण्डप्रियाय च॥
भक्तिप्रियाय देवाय ज्ञात्रे ज्ञानाव्ययाय च।
महेशाय नमस्तुभ्यं महादेव हराय च॥
त्रिनेत्राय त्रिवेदाय वेदाङ्गाय नमो नमः।
अर्थाय अर्थरूपाय परमार्थाय वै नमः॥

"प्रदोष-व्रत करनेवालेको महादेवजीके इन सौ नामोंका पाठ अवश्य करना चाहिये । महामते इन्द्र ! इस प्रकार तुमसे मैंने शिव-प्रदोष-व्रतकी विधि बतलायी है । महाभाग ! शीघ्रता-पूर्वक इस व्रतका पालन करो । तत्पश्चात् युद्ध करना । भगवान् शिवकी कृपासे तुम्हें विजय आदि सब कुछ प्राप्त होगा ।

"एक समयकी बात है, राजा चित्ररथ विमानपर बैठकर नाना प्रकारके द्वीपोंका दर्शन करते हुए भगवान् शङ्करके निवास-स्थान कैलाश पर्वतपर गया । वहाँ उसने परम अद्भुत एवं अनुपम छबिवाले भगवान् शङ्करके दर्शन किये । वे अपने आधे अङ्ग-में पार्वती देवीको बिठाकर शोभा पा रहे थे । कर्पूरके समान गौरवर्ण, कमलनयन भगवान् शिवको पार्वती देवीके साथ देखकर राजा चित्ररथने उपहासपूर्वक कहा—'शम्भो ! संसार-में जो विषयी मनुष्य आदि हैं तथा स्त्रियोंके वशीभूत रहनेवाले जो दूसरे-दूसरे लोग हैं, वे तथा हम-जैसे अज्ञानी जीव भी जनसमुदायमें संकोचवश स्त्री-सेवन नहीं करते ।' यह सुनकर गिरिराजनन्दिनी उमाने कहा—'अरे दुरात्मन् ! रे मूढ़ ! तूने मेरे साथ बैठे हुए भगवान् शिवका उपहास किया है । अतः इस कर्मका फल तू शीघ्र ही देखेगा । जो समतायुक्त चित्तवाले साधु पुरुषोंका उपहास करता है, वह देवता हो या मनुष्य, उसे अधमसे भी अधम जानना चाहिये ।* तू देवता और द्विज दोनोंकी श्रेणीसे बहिष्कृत है । अपनेको बड़ा ज्ञानी माननेवाले तुझ अधमको आज मैं दैत्य बनाये देती हूँ ।'

"पार्वती देवीके इस प्रकार शाप देनेपर राजाओंमें श्रेष्ठ चित्ररथ सहसा स्वर्गसे नीचे गिर पड़ा । वही इस समय आसुरी योनिमें आकर वृत्रासुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ है । विश्वकर्मा-की भारी तपस्यासे युक्त होनेके कारण इस समय वृत्रासुर अजेय बतलाया जाता है । इसलिये तुम प्रदोषकालमें विधि-पूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा करके देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये महादैत्य वृत्रासुरका वध करो ।"

गुरु बृहस्पतिकी यह बात सुनकर इन्द्रने कहा—'भगवन् ! इस समय मुझे इस प्रदोषव्रतके उद्यापनकी विधि बतलाइये ।' बृहस्पतिजीने कहा—'कार्तिक मास आनेपर शनिवारके दिन यदि पूरी त्रयोदशी हो तो वह व्रतकी सिद्धिके लिये ग्राह्य है । आज वह तिथि स्वतःप्राप्त है । इसमें चाँदीका वृषभ बनवाना चाहिये । उस वृषभकी पीठपर सुन्दर सिंहासन रखना चाहिये । उस सिंहासनपर उमाकान्त भगवान् शिवकी स्थापना करनी चाहिये । भगवान्‌के तीन नेत्र, पाँच मुख और दस भुजाएँ हों । उनके आधे अङ्गमें सती-साध्वी पार्वतीका निवास हो । इस प्रकार उमा और महेश्वरकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवानी चाहिये । उस प्रतिमाको वृषभकी पीठपर वस्त्रसे ढके हुए ताँबेके पात्रमें स्थापित करके रात्रिमें श्रद्धा और विधि-के साथ जागरण करना चाहिये । पहले यत्नपूर्वक प्रतिमाको पञ्चामृतसे स्नान कराना चाहिये । देवराज ! मैं पूजाके मन्त्र बतलाता हूँ, सुनो—

(दुग्धसे स्नान करानेका मन्त्र)

गोक्षीरधाम देवेश गोक्षीरेण मया कृतम् ।
स्नपनं देवदेवेश गृहाण परमेश्वर ॥

विश्वभूपाय विश्वाय विश्वनाथाय वै नमः ।
शङ्कराय च कालाय कालावयवरूपिणे ॥
अरूपाय विरूपाय सूक्ष्मसूक्ष्माय वै नमः ।
श्मशानवासिने भूयो नमस्ते कृत्तिवाससे ॥
शशाङ्कशेखरायेशायोग्रभूमिशयाय च ।
दुर्गाय दुर्गपाराय दुर्गावयवसाक्षिणे ॥
लिङ्गरूपाय लिङ्गाय लिङ्गानां पतये नमः ।
नमः प्रलयरूपाय प्रणवार्थाय वै नमः ॥
नमो नमः कारणकारणाय मृत्युञ्जयायात्मभवस्वरूपिणे ।
श्रीत्र्यम्बकायासितकण्ठशर्व गौरीपते सकलमङ्गलहेतवे नमः ॥

(स्क० मा० के० १७ । ७६—९०)

* साधूनां समचित्तानामुपहासं करोति यः ।
देवो वाप्यथवा मर्त्यः स विज्ञेयोऽधमाधमः ॥

(स्क० मा० के० १७ । १०८)

'गायके दूधमें निवास करनेवाले देवेश ! देवदेवेश्वर ! परमेश्वर ! मैंने गायके दूधसे आपको स्नान कराया है, कृपया इसे स्वीकार करें।'

(दधि-स्नान-मन्त्र)

दध्ना चैव महादेव स्नपनं कार्यते मया।
गृहाण च मया दत्तं सुप्रसन्नो भवाद्य वै॥

'महादेवजी ! मैं दहीसे आपको स्नान करवा रहा हूँ। मेरे द्वारा समर्पित यह दधि-स्नान आप स्वीकार करें तथा आज मुझपर निश्चय ही अत्यन्त प्रसन्न हों।'

(घृत-स्नान-मन्त्र)

सर्पिषा च मया देव स्नपनं क्रियतेऽधुना।
गृहाण श्रद्धया दत्तं तव प्रीत्यर्थमेव च॥

'देव ! अब मैं घीसे आपको स्नान करा रहा हूँ। मेरे द्वारा आपकी प्रसन्नताके लिये श्रद्धापूर्वक समर्पित यह घृत-स्नान आप अङ्गीकार करें।'

(मधु-स्नान-मन्त्र)

इदं मधु मया दत्तं तव तुष्ट्यर्थमेव च।
गृहाण त्वं हि देवेश मम शान्तिप्रदो भव॥

'देवेश्वर ! आपके सन्तोषके लिये मेरा दिया हुआ यह मधु आप ग्रहण करें तथा मेरे लिये शान्तिदायक बनें।'

(शर्करा-स्नान-मन्त्र)

सितया देवदेवेश स्नपनं क्रियते मया।
गृहाण श्रद्धया दत्तां सुप्रसन्नो भव प्रभो॥

'देवदेवेश्वर ! मैं मिश्री (या शक्कर) से आपको स्नान करा रहा हूँ। प्रभो ! श्रद्धापूर्वक दी हुई इस मिश्री (या शर्करा) को आप स्वीकार करें तथा मुझपर भलीभाँति प्रसन्न हों।'

इस प्रकार पञ्चामृतद्वारा भगवान् वृषध्वजको स्नान कराना चाहिये। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष ताँबेके अर्घ्यपात्रद्वारा अर्घ्य प्रदान करे—

(अर्घ्य-मन्त्र)

अर्च्योऽसि त्वमुमाकान्त त्वर्घ्येणानेन वै प्रभो।
गृहाण त्वं मया दत्तं प्रसन्नो भव शङ्कर॥

'उमावल्लभ ! प्रभो ! आप इस अर्घ्यद्वारा पूजन करनेयोग्य हैं। भगवान् शङ्कर ! मेरे दिये हुए अर्घ्यको आप ग्रहण करें और मुझपर प्रसन्न हों।'

(पाद्य-मन्त्र)

मया दत्तं तु ते पाद्यं पुष्पगन्धसमन्वितम्।
गृहाण देवदेवेश प्रसन्नो वरदो भव॥

'देवदेवेश ! मेरे द्वारा आपको समर्पित गन्ध-पुष्पयुक्त यह पाद्य (पाँव पखारनेके लिये जल) आप ग्रहण करें तथा प्रसन्न होकर मेरे लिये वरदायक बनें।'

(आसनसमर्पण-मन्त्र)

विष्टरं विष्टरेणैव मया दत्तं च वै प्रभो।
शान्त्यर्थं तव देवेश वरदो भव मे सदा॥

'प्रभो ! मैंने आपके सन्तोषके लिये कुशनिर्मित आसन समर्पित किया है। देवेश्वर ! आप मेरे लिये सदा वरदायक बने रहें।'

(आचमन-मन्त्र)

आचमनं मया दत्तं तव विश्वेश्वर प्रभो।
गृहाण परमेशान तुष्टो भव ममाद्य वै॥

'प्रभो ! विश्वेश्वर ! मैंने आपको यह आचमनार्थ जल समर्पित किया है। परमेश्वर ! आप इसे ग्रहण करें और आज मुझपर प्रसन्न हों।'

(यज्ञोपवीत-मन्त्र)

ब्रह्मग्रन्थिसमायुक्तं ब्रह्मकर्मप्रवर्तकम्।
यज्ञोपवीतं सौवर्णं मया दत्तं तव प्रभो॥*

'प्रभो ! यह सुवर्णरंगका (पीत) यज्ञोपवीत मैंने आपकी सेवामें प्रस्तुत किया है; यह ब्रह्मग्रन्थिसे युक्त है तथा ब्रह्मकर्म (वैदिक यज्ञ-यागादि तथा भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म) में लगानेवाला है।'

(वस्त्र-मन्त्र)

एतद् वासो मया दत्तं सोत्तरीयं सुशोभनम्।
गृहाण त्वं महादेव ममायुष्यप्रदो भव॥

'महादेवजी ! मैंने यह चादरसहित परम सुन्दर वस्त्र आपको भेंट किया है; आप इसे ग्रहण करें और मुझे आयु प्रदान करें।'

(चन्दन-मन्त्र)

सुगन्धं चन्दनं देव मया दत्तं तु ते प्रभो।
भक्त्या परमया शम्भो सुगन्धं कुरु मां भव॥

---

* पाठान्तर इस प्रकार है—
यज्ञोपवीतं सौवर्णं मया दत्तं च शङ्कर।
गृहाण परम प्रीत्या तुष्टो भव तु सर्वदा॥

'देव ! शम्भो ! मैंने आपको बड़ी भक्तिसे सुगन्धित चन्दन समर्पित किया है; सबके जन्मदाता भगवान् शिव ! आप मुझे उत्तम गन्धसे युक्त करें ।'

(धूप-मन्त्र)

धूपं विशिष्टं परमं सर्वौषधिविजृम्भितम् ।
गृहाण परमेशान मम शान्त्यर्थमेव च ॥

'परमेश्वर ! सब प्रकारकी ओषधियोंसे सम्पन्न तथा बहुत ही विशिष्ट बनी हुई यह धूप आपकी सेवामें समर्पित है । मेरी शान्तिके लिये आप इसे ग्रहण करें ।'

(दीप-मन्त्र)

दीपं हि परमं शम्भो घृतप्रज्वलितं मया ।
दत्तं गृहाण देवेश मम ज्ञानप्रदो भव ॥

'शम्भो ! मैंने घीसे जलाया हुआ यह उत्तम दीप आपकी सेवामें प्रस्तुत किया है । देवेश्वर ! आप इसे ग्रहण करें और मेरे लिये ज्ञानदाता बनें ।'

(आरती-मन्त्र)

दीपावलिं मया दत्तां गृहाण परमेश्वर ।
आरार्तिकप्रदानेन मम तेजःप्रदो भव ॥*

'परमेश्वर ! मेरी दी हुई यह दीप-माला आप ग्रहण करें, तथा इस आरती उतारनेसे सन्तुष्ट होकर आप मुझे तेज प्रदान करें ।'

'इसी प्रकार फल, दीप आदि तथा नैवेद्य और ताम्बूल आदि सामग्रियाँ क्रमशः चढ़ाकर विधिज्ञ पुरुष भगवान् शिवकी पूजा करे तथा रात्रिमें यत्नपूर्वक जागरण करे । अपने घरमें या देवालयमें चँदोवा तनाकर अद्भुत सामग्रियों-से सजा हुआ एक मण्डप बनावे । उसमें गीत, वाद्य और नृत्यके द्वारा भगवान् सदाशिवकी पूजा करे । इन्द्र ! प्रदोष-व्रतके उद्यापनकी यही विधि है । विधिज्ञ पुरुषको चाहिये कि वह अपने सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिये इसी प्रकारसे सब कुछ करे ।'

गुरु बृहस्पतिजीने जो कुछ बताया, उसके अनुसार इन्द्रने सब विधिका पालन किया ।

नमुचिके मारे जानेपर सब देवता हर्ष और उत्साहमें भरे हुए थे । उनका दैत्योंके साथ घोर युद्ध हुआ । देवताओं और दैत्योंका संहार करनेवाले उस घोर संग्राममें अत्यन्त भयङ्कर तथा मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाला द्वन्द्व-युद्ध होने लगा । इसी समय पूर्वोक्त प्रकारसे भगवान् शङ्करकी आराधना करके इन्द्र भी युद्धमें लग गये । उन्होंने देवताओंको साथ लेकर वृत्रासुरका पीछा किया । व्योमासुरने यमराजके साथ तथा तीक्ष्णकोपनने अग्निके साथ युद्ध आरम्भ किया । वायुके साथ धूम और नैर्ऋतके साथ अतिकोपन लड़ने लगा । कुबेरके साथ कूष्माण्ड तथा ईशके साथ दुःसह भिड़ गया । इनके सिवा और भी बहुतसे महाबली दैत्य देवताओंके साथ द्वन्द्वयुद्ध करने लगे । उन्होंने गदा, पट्टिश, खड्ग, शक्ति, तोमर, मुद्गर, भृष्टि, भिन्दिपाल, पाश, प्रास तथा मुष्टिक आदिसे प्रहार किया । उसी प्रकार देवता भी दधीचिकी हड्डियोंसे बने हुए उत्तम अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा असुरोंको विदीर्ण करने लगे । देवताओंकी मार खाकर दैत्य पुनः पराजयको प्राप्त हुए । उन्हें भयभीत देख वृत्रासुरने समझाया—'वीरो ! युद्ध स्वर्गका द्वार है, इसका त्याग कदापि नहीं करना चाहिये । जिनकी संग्राममें मृत्यु होती है, वे परम पदको प्राप्त होते हैं । विद्वान् पुरुष जहाँ कहीं भी सम्भव हो संग्राममें मृत्युकी अभिलाषा करते हैं । जो लोग युद्ध छोड़कर भागते हैं, वे निश्चय ही नरकमें पड़ते हैं । महापातकी मनुष्य भी यदि गौ, ब्राह्मण, भृत्य, कुटुम्ब तथा स्त्रीकी रक्षाके लिये हाथमें शस्त्र लेकर युद्ध करें तथा वे शस्त्रोंके आघातसे घायल हो जायँ अथवा युद्धस्थलमें ही प्राण त्याग दें; तो उन्हें निश्चय ही उत्तम लोककी प्राप्ति होती है । वे ज्ञानियोंके लिये भी दुर्लभ उत्कृष्ट पदको प्राप्त कर लेते हैं । अतः तुमलोगोंको अपने स्वामीके कार्य-साधनमें पूर्णतः तत्पर रहकर युद्ध करना चाहिये ।' वृत्रके इस प्रकार समझानेपर असुरोंने उसकी आज्ञा शिरोधार्य की और देवताओंके साथ ऐसा घमासान युद्ध आरम्भ किया, जो सम्पूर्ण लोकोंके लिये भयङ्कर था । इधर मारनेकी इच्छासे इन्द्रको आते देख वृत्रासुर ठठाकर हँस पड़ा; उसका वह अट्टहास इन्द्रको भी भयभीत कर देने-वाला था । वीर वृत्रासुर बड़ा तेजस्वी था । उस समय वह दैत्योंका अधिपति बना हुआ था । उसके मनमें सुरश्रेष्ठ इन्द्रको निगल जानेकी इच्छा हुई और वह बहुत बड़ा मुँह फैलाकर इन्द्रकी ओर बढ़ा । समीप आनेपर उसने ऐरावत हाथी, वज्र और किरीटसहित इन्द्रको सहसा निगल लिया और वह नाचने तथा गर्जना करने लगा । पलक मारते-मारते इन्द्र वृत्रासुरके ग्रास बन गये । वहाँ उपस्थित रहकर यह दुर्घटना देखनेवाले

* ये पूजासम्बन्धी मन्त्र स्क० मा० के० अध्याय १७ के श्लोक १२१ से ११६ तक आये हैं ।

देवताओंमें बड़ा हाहाकार मचा। धरती काँप उठी। हजारों उल्कापात होने लगे तथा सम्पूर्ण चराचर जगत्में अन्धकार छा गया। उस समय सब देवता चिन्तामग्न हो ब्रह्माजीके पास गये और वृत्रासुरकी सारी करतूत उन्होंने ब्रह्माजीसे कह सुनायी। सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने चित्तको भलीभाँति एकाग्र करके भगवान् शङ्करका स्तवन किया। उसी समय आकाशवाणी हुई—'इन्द्रने प्रदोषव्रतका अनुष्ठान करते समय कुछ विपरीत कार्य कर डाला है। जो मूर्ख शिव-निर्माल्य, अर्घा, शिवलिङ्गकी छाया तथा देव-मन्दिरका लंघन करते हैं, वे शिव-गणोंमें प्रधान चण्डेशके द्वारा दण्डनीय हैं; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इसलिये लिङ्गपूजनपूर्वक प्रदक्षिणा और नमस्कार करनेसे अवश्य कल्याण होता है। ऐसी उत्तम बुद्धि रखकर प्रयत्नपूर्वक लिङ्गपूजन करना चाहिये। कनेर, मदार, भटकटइया, धतूर, शतपत्र, अमलतास, पुन्नाग (सँदेसरा), मौलसिरी, नागकेसर, नीलकमल, कदम्ब, आक तथा नाना प्रकारके कमल आदि पुष्प तीनों कालमें सदा पवित्र जानने चाहिये। चमेली, बेला, सेवती, श्यामपुष्प, कुटज, कर्णिकार, कुसुम्भ, लाल कमल—ये पुष्प विशेषतः सायंकालमें शिवलिङ्गपूजनके लिये श्रेष्ठ बताये गये हैं। कमलके फूल तीनों कालमें पवित्र माने गये हैं। रात्रिमें केवल कुमुदके फूल विशेष पवित्र बताये गये हैं। इस प्रकार पूजा-भेदको जानकर शिवलिङ्गका पूजन करना चाहिये। विधिज्ञ पुरुषोंको शिवालयमें सदा शास्त्रीय विधिका पालन करना चाहिये। शिवलिङ्ग और नन्दिकेश्वरके बीचमें होकर अथवा अर्घान्तरकी परिक्रमा नहीं करनी चाहिये। यदि कोई करता है तो पापका भागी होता है। इस इन्द्रने राजस्वभावका आश्रय लेकर वैसी ही प्रदक्षिणा (जिसका कि निषेध किया गया है) की है। इसीलिये इसका किया हुआ सब कुछ निष्फल हो गया और यही कारण है कि आज वृत्रासुरने इन्द्रको अपना ग्रास बना लिया। देवताओ! अब तुम्हीं लोग महारुद्र-विधानके अनुसार शिवलिङ्गपूजन करो, जिससे इन्द्र शीघ्र ही छुटकारा पा सकें।'

आकाशवाणीके कथनानुसार देवताओंने प्रतिदिन भगवान् शङ्करका पूजन और दशांश हवन आरम्भ किया। तब देवराज इन्द्र भगवान् शिवके प्रसादसे सहसा वृत्रासुरका पेट फाड़कर बाहर निकल आये। हाथी, वज्र, किरीट और कुण्डलसहित परम शोभासम्पन्न महातेजस्वी इन्द्रको देखकर सब देवता, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष तथा ऋषि-मुनि बड़े प्रसन्न हुए। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। अनेक शङ्खोंकी ध्वनि होने लगी। इन्द्रके सङ्कटमुक्त होते ही समस्त देवलोक-निवासियोंमें एक ही साथ महान् हर्षोल्लास छा गया। इन्द्र जहाँ सङ्कटमुक्त हुए थे, वहाँ शची देवी भी आ पहुँचीं। महर्षियोंने शचीके साथ इन्द्रका अभिषेक किया तथा सबने यत्नपूर्वक उनके लिये पुण्याहवाचन किया। विप्रवरो! इस प्रकार जब महर्षियोंने इन्द्रका अभिषेक किया, तब इस पृथ्वी-पर अधिकाधिक मङ्गल-उत्सव होने लगे। इन्द्रके वज्रसे विदीर्ण किया हुआ वृत्रासुरका अत्यन्त अद्भुत शरीर वहीं गिरकर मेरुगिरिके शिखरकी भाँति सुशोभित होने लगा। उसी भूमिमें ब्रह्महत्या है, जहाँ वृत्रासुरका भयानक शरीर गिरा था। गङ्गा और यमुनाके बीचमें जो भूमि है, जिसे अन्तर्वेदी कहते हैं, वह पुण्य-भूमि बतायी गयी है। वह लोकपावन भूमि सर्वत्र प्रसिद्ध है। वृत्रासुरके वधसे उत्पन्न होनेवाली ब्रह्महत्या जिस देशमें प्रविष्ट हुई, वह पापी बताया गया है। उस मल-भूमिमें ही वृत्रासुरका महान् मस्तक पड़ा था, जिसे इन्द्र आदि देवताओंने छः महीनोंमें काटा है। इस प्रकार वृत्रासुरका वध करके इन्द्रने विजय प्राप्त की और वे शचीनाथ निर्भय होकर इन्द्रासनपर विराजमान हुए।

बलिके द्वारा देवताओंकी पराजय, अदितिके व्रत-तपस्यासे सन्तुष्ट हो भगवान्का वामनरूपमें अवतार, बलिके पूर्वजन्मका प्रसङ्ग तथा बलिपर वामनजीकी कृपा

लोमशजी कहते हैं—इसी बीचमें दैत्योंने पाताल-निवासी राजा बलिके पास आकर इन्द्रकी सारी चेष्टाएँ कह सुनायीं। उनकी यह बात सुनकर उदार बुद्धिवाले विरोचन-पुत्र बलिने शुक्राचार्यसे पूछा—'भगवन्! इन्द्र किस प्रकार हमारे अधीन हो सकते हैं?' शुक्राचार्यने उत्तर दिया—'दैत्यराज! तुम विश्वजित् नामक यज्ञ करो। यज्ञके बिना कार्य सिद्ध नहीं होगा।' 'ऐसा ही करूँगा' यों कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करनेके पश्चात् दैत्यराज बलिने यज्ञ करनेका

विचार किया। बलिका हृदय बड़ा उदार था। उन्होंने यज्ञके लिये जो-जो पदार्थ आवश्यक थे, उन सबका प्रयत्नपूर्वक संग्रह किया। महामना शुक्रने वह महायज्ञ आरम्भ कराया। यज्ञकी दीक्षा लेकर राजा बलिने अग्निदेवको हविष्यसे तृप्त किया। विधिपूर्वक यज्ञ-कर्मद्वारा जब अग्निदेवको आहुति दी जा रही थी, उसी समय अग्निमेंसे बड़ा ही अद्भुत रथ प्रकट हुआ। उसमें चार घोड़े जुते हुए थे। अनेक ध्वज फहरा रहे थे। वह महान् कान्तिमान् रथ भाँति-भाँतिके शस्त्रोंसे संयुक्त और अनेकानेक अस्त्रोंसे अलङ्कृत था। रथ प्रकट होनेके पश्चात् शुक्राचार्यकी आज्ञा लेकर बलिने 'अवभृथ-स्नान' किया। फिर उस रथकी पूजा करके राजा बलि उसपर आरूढ़ हुए और दैत्योंकी सेना साथ लेकर इन्द्रसे युद्ध करनेके लिये तत्काल ही स्वर्गलोकमें जा पहुँचे। देवपुरीको दैत्योंद्वारा घिरी हुई देख वे श्रेष्ठ देवता बहुत देरतक परस्पर विचार करके बृहस्पतिजीसे बोले—'महाभाग! अब हम क्या करें। दैत्योंके प्रधान-प्रधान वीर युद्धकी इच्छासे यहाँ आ पहुँचे हैं।'

उनकी बात सुनकर बृहस्पतिजीने कहा—'देवताओ! ये दैत्यलोग अभी-अभी यज्ञ समाप्त करके शुक्राचार्यकी आज्ञा लेकर यहाँ आये हैं। ये सभी इस समय तपस्या और पराक्रमके द्वारा अजेय हैं।' गुरुका यह वचन सुनकर सम्पूर्ण देवता लज्जित हो गये। इन्द्रकी भी बुद्धि काम नहीं दे रही थी। वे गुरुकी फटकार पाकर लज्जायुक्त और चिन्तामग्न हो गये। सब देवता भयसे व्याकुल हो कश्यपजीके पवित्र आश्रमपर गये। वहाँ उन सबने माता अदितिसे दैत्योंकी सारी चेष्टाएँ कह सुनायीं। वह अप्रिय समाचार सुनकर पुत्रवत्सला अदितिने कश्यपजीसे कहा—'महर्षे! देवताओंपर बड़ी भारी विपत्ति आयी है; मेरी बात सुनें और सुनकर उसके लिये कोई उपाय करें। प्रजापते! देवता अमरावती छोड़कर आपके आश्रममें आये हैं। आप उनकी रक्षा करें।' अदितिकी बात सुनकर कश्यपने कहा—'भामिनि! इस समय असुरोंका क्षय बड़ी भारी तपस्याके द्वारा ही हो सकता है। देवताओंकी कार्य-सिद्धि बहुत शीघ्र नहीं हो सकती। महाभागे! मैं तुम्हारे मनोरथकी सिद्धिके लिये यह व्रत बतला रहा हूँ। शुभे! इसे प्रयत्नपूर्वक शास्त्रोक्त विधिके अनुसार करो। देवि! भाद्रपद मासमें दशमी तिथिको मनुष्य संयम-नियमके साथ पवित्रतापूर्वक रहकर भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये एकभुक्तव्रत करे (एक ही बार भोजन करे)। सुन्दरि! भगवद्भक्तोंको चाहिये कि वे सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वरोंके ईश्वर साक्षात् श्रीहरिकी प्रार्थना करें। प्रार्थनाका मन्त्र इस प्रकार है—

तव भक्तोऽस्म्यहं नाथ दशम्यादि दिनत्रयम्।
व्रतं चराम्यहं विष्णो अनुज्ञां दातुमर्हसि॥

'हे नाथ! मैं आपका भक्त हूँ और दशमीसे लेकर तीन दिनतक व्रत करना चाहता हूँ। विष्णो! इसके लिये आप आज्ञा दें।'

'इसी मन्त्रसे जगदीश्वर श्रीहरिकी प्रार्थना करनी चाहिये। एक ही बार भोजन करे। वह एक बारका भोजन भी केलेके पत्तेमें ही ग्रहण करना चाहिये। उस भोजनमें नमक वर्जित है। व्रती पुरुष एकादशी तिथिको यत्नपूर्वक उपवास करे और रात्रिकालमें विशेष चेष्टा करके जागता रहे। फिर द्वादशी तिथिमें विधिपूर्वक भलीभाँति उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन कराकर कुटुम्बी-जनोंके साथ पारण करे। इस प्रकार बारह महीनोंतक प्रतिमास आलस्य छोड़कर इस व्रतका अनुष्ठान करे। वर्षके अन्तमें पुनः भाद्रपद मास आनेपर एकादशीको अपनी शक्तिके अनुसार सोने या चाँदीकी विष्णु-प्रतिमा बनाकर उसे कलशपर स्थापित करे। उसीमें यत्नपूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करके व्रती पुरुष सब दोषोंकी शान्तिके लिये श्रवण-नक्षत्र युक्त पापनाशिनी द्वादशी तिथिको उपवास करे। महाभागे! इस प्रकार तुम इस कल्याणमय व्रतका अनुष्ठान करो।'

पतिव्रता अदितिने देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये पूर्ण एकाग्रताके साथ कश्यपजीके बताये हुए उस व्रतका पालन किया। एक वर्षतक इस प्रकार व्रत करनेसे भगवान् श्रीहरि सन्तुष्ट हो गये। ब्राह्मणो! उस समय श्रवण-नक्षत्रयुक्त द्वादशी तिथिको भगवान्का 'वामन' रूपमें प्रादुर्भाव हुआ। वे ब्रह्मचारी बालकका रूप धारण करके परम शोभायमान दिखायी देते थे। उनके दो भुजाएँ थीं, कमलके समान खिले हुए सुन्दर नेत्र थे। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति अलसीके फूलकी भाँति श्याम थी। वे वनमालासे अलङ्कृत थे। अदिति देवी पूजाके मध्यमें ही भगवान्का इस रूपमें दर्शन पाकर आश्चर्यचकित हो उठीं। उस समय उन्होंने कश्यपजीके साथ भगवान्का इस प्रकार स्तवन किया—'जो कारणके भी परम कारण हैं, उन विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा तथा अजन्मा श्रीहरिको नमस्कार है, नमस्कार है। अनन्तरूप श्रीहरिको नमस्कार है, नमस्कार है। जिनका परम धाम

अनन्त है तथा जो साक्षात् परमात्मरूप हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। हे सच्चिदानन्दमय परमात्मदेव! आप पर, अपर तथा ज्ञानवान् सबके आत्मा हैं। आपको नमस्कार है। परावरात्मन्! (कार्य-कारणरूप) आपका स्वरूप सबसे श्रेष्ठ है, आपका बोध कभी कुण्ठित नहीं होता। आपको बारंबार नमस्कार है।'*

इस प्रकार अदितिद्वारा स्तुति की जानेपर देवताओंके पालक भगवान् विष्णु देवमाता अदितिसे बोले—'देवि! मैं तुम्हारी उत्कृष्ट तपस्यासे सन्तुष्ट होकर इसी शरीरसे देवताओं-का कार्य सिद्ध करनेके लिये प्रकट हुआ हूँ।' भगवान्का वचन सुनकर अदितिने कहा—'भगवन्! महाबली असुरोंने देवताओंको परास्त कर दिया है। जनार्दन! अब सभी देवता आपकी शरणमें आये हैं, आप उन शरणागतोंकी रक्षा करें।' संतोंके आश्रय तथा वैकुण्ठधामके स्वामी एकमात्र श्रीहरिने अदितिकी बात सुनकर तथा देवताओं और राजा बलिकी सारी चेष्टाएँ जानकर मन-ही-मन विचार किया कि आज मुझे कौन-सा कार्य करना चाहिये, जिससे देवताओंको विजय प्राप्त हो और प्रधान-प्रधान दैत्योंको भी हार खानी पड़े।

उधर बलि आदि असुरोंको यह मालूम नहीं था कि देवता नाना प्रकारके रूप धारण करके स्वर्गसे निकलकर कश्यपजीके आश्रमपर चले गये हैं। उस समय दैत्योंने अमरावतीपुरीकी चहारदीवारीपर चढ़कर देवराज इन्द्रको शीघ्र मार डालनेकी इच्छासे ज्यों ही उसके भीतर प्रवेश किया, त्यों ही उन्हें वह सारी नगरी सूनी दिखायी दी। तब शुक्राचार्यने महाभिषेककी विधिसे असुरोंद्वारा घिरे हुए राजा बलिको इन्द्रके सिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। इस प्रकार स्वर्गलोकके राज्यपर प्रतिष्ठित हुए विरोचनकुमार बलि वहाँकी उत्तम विभूतिके द्वारा महेन्द्रसे भी अधिक शोभायमान हुए। ऋषि, अप्सरा, गन्धर्व, किन्नर, नाग तथा असुरसमुदाय इन्द्रकी ही भाँति उनकी सेवा करने लगे। सम्पूर्ण प्राणियोंमें दानकी दृष्टिसे राजा बलि ही सबसे बढ़कर दाता हैं। याचक जिन-जिन कामनाओंको प्राप्त करनेकी इच्छा करते, दानवराज बलि सम्पूर्ण याचकोंको वही-वही वस्तु प्रदान करते थे।

शौनकजीने पूछा—महाभाग सूतजी! देवराज इन्द्र तो स्वर्गमें रहकर कभी दान नहीं देते हैं। राजा बलि कैसे दाता हुए? यह सब यथार्थरूपसे बतलाइये।

लोमशजी बोले—ब्राह्मणो! इन्द्र पहले जन्मसे याज्ञिक रहे हैं। उन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करके अमरावतीपुरीका राज्य प्राप्त किया है। अब वे केवल भोग-लोलुप रह गये हैं। अभीष्ट फल पानेके पश्चात् इन्द्रमें कृपणता आ गयी है। आज जो इन्द्र है वह कभी कीड़ा हो सकता है तथा पहलेका कीट, इन्द्रके रूपमें उत्पन्न हो जाता है। इस विषयमें दानसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा साधन नहीं है। (निष्काम) दानसे ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञानसे मोक्ष, इसमें संशय नहीं है।

अब विरोचनपुत्र बलिने पूर्वजन्ममें जो कुछ किया था, उसे सुनो—प्राचीन कालमें देवताओं और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला एक महापापी जुआरी था। वह सदा परायी स्त्रियों-में आसक्त रहता था। एक दिन उसने कपटपूर्ण जूएके द्वारा बहुत धन जीता। फिर अपने हाथोंसे स्वस्तिक (पानका तिकोना बीड़ा) बनाकर तथा गन्ध और माला आदि सामग्री जुटाकर एक वेश्याको भेंट देनेके लिये वह उसके घरकी ओर दौड़ा। रास्तेमें उसके पैर लड़खड़ा गये और उसी समय वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरनेपर क्षणभरके लिये उसे मूर्छा आ गयी; जब मूर्छा दूर हुई, तब पूर्वजन्मके किसी पुण्यके प्रभावसे उसके मनमें सद्बुद्धि उत्पन्न हुई। जुआरी दुःखी होकर खेद एवं वैराग्यको प्राप्त हुआ। मूर्ख और जुआरी होनेपर भी उसने पृथ्वीपर पड़ी हुई गन्ध, पुष्प आदि सब सामग्रीको भगवान् शिवकी सेवामें समर्पित कर दिया। जीवनमें केवल वही एक पुण्य उसके द्वारा सम्पन्न हुआ था।

---

* प्रादुर्बभूव द्वादश्यां श्रवणेन तदा द्विजः।
बहुरूपधरः श्रीमान् द्विभुजः कमलेक्षणः॥
अतसीपुष्पसङ्काशो वनमालाविभूषितः।
तं दृष्ट्वा विस्मयाविष्टा पूजामध्येऽदितिस्तदा॥
कश्यपेन समायुक्ता सास्तौषीत् कमलेक्षणा।

अदितिरुवाच

नमो नमः कारणकारणाय विश्वात्मने विश्वसृजेऽभवाय।
अनन्तरूपाय नमो नमस्ते त्वनन्तधाम्ने परमात्मरूपिणे॥

है।' उसने कहा—'यमराज! यदि मेरा कोई पुण्य भी हो तो उसका भलीभाँति विचार कर लीजिये।' तब चित्रगुप्तने कहा—'तुमने देहान्त होनेके समय पृथ्वीपर पड़े हुए कुछ गन्ध और पुष्प आदिको भगवान् शिवके उद्देश्यसे दान किया है, परमात्मा शिवको वह सामग्री समर्पित की है; उस सत्कर्मके फलसे तुम्हें तीन घड़ीके लिये इन्द्रका प्रसिद्ध पद प्राप्त होगा।' चित्रगुप्तकी बात सुनकर जुआरीने कहा—'मैं सबसे पहले अपना शुभ कर्म भोगूँगा।' उसके ऐसा कहनेपर उदारबुद्धिवाले बृहस्पतिजी सम्पूर्ण देवताओंके साथ तत्काल वहाँ आ पहुँचे और उस जुआरीको ऐरावत हाथीपर चढ़ाकर इन्द्रभवनमें ले गये। वहाँ पवित्रात्मा बृहस्पतिने इन्द्रको समझाया—'पुरन्दर! तुम मेरी आज्ञासे इस जुआरीको तीन घड़ीके लिये अपने सिंहासनपर बिठाओ।' गुरुकी बात मानकर इन्द्र उदासीनभावसे राज्य छोड़कर अन्यत्र चले गये। तदनन्तर जुआरीको देवराजके भवनमें पहुँचाया गया।

तब जुआरीने वहाँ दान करना आरम्भ किया। महादेवजीके उस प्रिय भक्तने 'ऐरावत' हाथी अगस्त्यको दे दिया। उसकी बुद्धि बड़ी उदार थी। उसने 'उच्चैःश्रवा' नामक घोड़ा विश्वामित्रको दे दिया। उसका महान् यश फैला हुआ था। उसने 'कामधेनु' गाय महर्षि वशिष्ठको दे दी और 'चिन्तामणि' नामक रत्न गालव मुनिको समर्पित कर दिया। उस महातेजस्वी दाताने 'कल्पवृक्ष' उठाकर कौण्डिन्य मुनिको दे दिया। जुआरी

होकर भी वह बड़ा भाग्यशाली था, उसने भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये वैसे-वैसे अनेक प्रकारके रत्न ऋषि-मुनियोंको सहर्ष दान कर दिये। जबतक तीन घड़ी पूरी नहीं हुई, तबतक वह दान देता ही रहा। तीन घड़ीके बाद फिर वह स्वर्गसे चला गया। इन्द्र अमरावतीके सिंहासनपर बैठकर बृहस्पतिजीसे इस प्रकार बोले—'गुरुदेव! ऐरावत हाथी नहीं दिखायी देता, यही दशा उच्चैःश्रवा नामक घोड़ेकी भी है। पारिजात आदि सभी पदार्थ किसीने चुरा लिये हैं।' तब बृहस्पतिजी बोले—'जुआरीने यहाँ आकर महान् कर्म किया है, जबतक उसकी सत्ता रही है, उसके भीतर ही उसने आज ऐरावत आदि सभी वस्तुएँ ऋषियोंको दान कर दी हैं। बड़ी भारी सत्ता हस्तगत होनेपर जो स्वाधीन होते हैं और प्रमादमें न पड़कर सदा भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर रहते हैं, वे ही भगवान् शङ्करके प्रिय भक्त हैं। वे कर्मफलोंका परित्याग कर केवल ज्ञानका आश्रय ले परमपदको प्राप्त होते हैं।'

बृहस्पतिजीका यह वचन सुनकर इन्द्रने पूछा—'आचार्य! अब हमारा क्या कर्तव्य है, यह शीघ्र बतलानेकी कृपा करें।' बृहस्पतिजीने कहा—'इन्द्र! अपनी समृद्धिके लिये ये सारी बातें प्रायः यमराजसे कहनी चाहिये।' 'ठीक है' ऐसा कहकर देवराज इन्द्र गुरु बृहस्पतिके साथ सहसा वहाँसे चल पड़े। अपना कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे जब इन्द्र संयमनीपुरीमें पहुँचे तब यमराजने उनका बड़ा सत्कार किया। उस समय इन्द्रने कहा—'धर्मराज! तुमने मेरा पद एक दुरात्मा जुआरीको दे दिया, किंतु उसने वहाँ पहुँचकर बहुत बुरा काम किया। तुम सच मानो उसने मेरे सभी रत्न इन ऋषियोंको दान कर दिये हैं। तुम सब कुछ जानते हो, फिर भी एक जुआरीको मेरा स्थान कैसे दे दिया?'

तब धर्मराजने इन्द्रसे इस प्रकार कहा—'तुम बड़े-बड़े देवेश्वरोंके राजा हो। बूढ़े हो गये, किंतु अभीतक तुम्हारी राज्यविषयक आसक्ति दूर नहीं हुई। केवल सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके एक ही जन्मके उपार्जित पुण्यका फल यहाँ तुमने प्राप्त किया। परंतु जुआरीने तुम्हारी अपेक्षा महान् पुण्यका उपार्जन किया है। अब धन देकर या चरणोंमें मस्तक झुकाकर विशेषतः अगस्त्य आदि सभी मुनियोंकी प्रार्थना करके तुम्हें अपने ऐरावत आदि रत्न प्राप्त करने चाहिये।' 'बहुत अच्छा' कहकर इन्द्र अपनी अमरावतीपुरीको चले गये। वहाँ जाकर सम्पत्तिशालियोंमें सबसे श्रेष्ठ इन्द्रने बहुत धन देकर ऋषियोंसे अपनी वस्तुएँ लौटायीं। इस प्रकार अपने रत्न पाकर

महातेजस्वी इन्द्र शचीदेवीके साथ अपनी पुरीमें गये। यमराजने जुआरीको पुनः जन्म दिया। वह अपने किसी कर्मविपाकसे विरोचनका पुत्र हुआ। उस समय उसकी माताका नाम सुरुचि था। सुरुचि विरोचनकी रानी थी। उसके पिताका नाम वृषपर्वा था। वह उदार मनवाला जुआरी जब सुरुचिके गर्भमें आकर स्थित हुआ, तबसे प्रह्लादकुमार विरोचन तथा सुरुचिका मन धर्म और दानमें अधिक लगने लगा। उसीने गर्भमें आकर माता-पिताकी मति बहुत ही उत्तम कर दी थी। वैसी बुद्धि बड़े-बड़े मनीषियोंके लिये भी दुर्लभ है। विरोचनका पुत्र जब गर्भमें था, उसी समय इन्द्र दैत्यराज विरोचनको मारनेकी इच्छासे भिक्षुक ब्राह्मणका रूप धारणकर उसके घर गये और इस प्रकार बोले—'राजन्! मुझे अपनी रुचिके अनुसार कुछ दान मिलना चाहिये।' याचककी बात सुनकर विरोचनने हँसते हुए कहा—'विप्रवर! यदि आपकी इच्छा हो तो मैं इस समय अपना मस्तक भी दे सकता हूँ। इसके सिवा यह अपना अकण्टक राज्य भी आपको समर्पित कर दूँगा।'

विरोचनके ऐसा कहनेपर इन्द्रने सोच-विचारकर कहा—'महाभाग! मुझे अपना मुकुटमण्डित मस्तक उतारकर दे दीजिये।' ब्राह्मणरूपधारी इन्द्रके ऐसा कहनेपर प्रह्लादपुत्र विरोचनने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने ही हाथसे अपना मस्तक काटकर शीघ्रतापूर्वक इन्द्रको दे दिया। आर्त प्राणियोंको अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ दिया जाता है, वह दान महान् पुण्यका हेतु होता है; उसका फल अक्षय बताया जाता है। तीनों लोकोंमें दानसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है।* विरोचनका वह दान दैत्य, नरेन्द्र तथा नाग—इन तीनोंके लोकोंमें प्रसिद्ध हो गया। पूर्वजन्मका वह जुआरी ही विरोचनका महातेजस्वी पुत्र हुआ। पिताके मरनेपर जब उसका जन्म हो गया, तब उसकी पतिव्रता माताने अपना शरीर त्याग दिया और वह तत्काल पतिलोकको चली गयी। शुक्राचार्यने उसी पुत्रको पिताके सिंहासनपर अभिषिक्त किया। वही महायशस्वी कुमार लोकमें बलिके नामसे विख्यात हुआ।

हम यह बात पहले ही बता आये हैं कि राजा बलिसे त्रस्त होकर सम्पूर्ण महाबली देवता कश्यपजीके शुभाश्रमपर चले गये थे। देवपुरीमें महायशस्वी बलि जब इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित हुए, तब वे अपनी तपस्यासे स्वयं ही सूर्य बनकर तपने लगे, स्वयं ही इन्द्र, अग्नि और वायुका काम करने लगे। महात्मा बलिने धर्मराजके न रहनेपर भी धर्मलोकका सञ्चालन किया। वे स्वयं ही ईशान होकर ईशानकोणमें विराजमान हुए। वे ही नैर्ऋत्यकोण और पश्चिममें क्रमशः निर्ऋति तथा वरुण हुए। राजा बलि ही उत्तर दिशामें धनाध्यक्ष कुबेर बनकर रहने लगे। इस प्रकार वे अकेले ही तीनों लोकोंका पालन करते थे। पूर्वजन्ममें जुआरीके रूपमें रहकर उन्होंने भगवान् शङ्करका पूजन किया था। उस पूर्वाभ्यासके ही कारण बलि इस जन्ममें भी शिव-पूजापरायण थे और बड़े-बड़े दान किया करते थे। एक दिन श्रीमान् राजा बलि अपने गुरु शुक्राचार्यके साथ दैत्येन्द्रोंसे घिरे हुए अपनी सभामें बैठे थे। उस समय उन्होंने दैत्योंको सम्बोधित करके कहा—'सम्पूर्ण असुर पाताल छोड़कर यहीं मेरे समीप निवास करें। इस कार्यमें विलम्ब नहीं होना चाहिये।' यह सुनकर शुक्राचार्य हँस पड़े और बलिको समझाते हुए इस प्रकार बोले—'सुव्रत! यदि तुम यहीं आकर निवास करना चाहते हो तो सौ अश्वमेध यज्ञोंद्वारा अग्निदेवकी आराधना करो। वह भी यहाँ नहीं, कर्मभूमि भारतवर्षमें उपस्थित होकर करो। इस कार्यमें तुम्हें विलम्ब नहीं करना चाहिये।'

* तद्दानं च महापुण्यमार्तेभ्यो यत्प्रदीयते।
स्वशक्त्या यच्च किञ्चिच्च तदानन्त्याय कथ्यते।
दानात् परतरं नान्यत् त्रिषु लोकेषु विद्यते॥
(स्क० मा० के० १८। ४१-४२)

'अच्छा, ऐसा ही करूँगा' यों कहकर मनस्वी महात्मा बलि तत्काल स्वर्गलोकको छोड़कर दैत्यों तथा शुक्राचार्यजीके साथ भूलोकमें चले आये। उन्होंने सेवकोंको भी साथ ही ले लिया था। नर्मदा नदीके तटपर भृगुकच्छ नामसे प्रसिद्ध जो महान् तीर्थ है, वहाँ पहुँचकर दैत्यराजने सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतकर अपने अधिकारमें किया। तत्पश्चात् गुरुकी आज्ञा ले अनेक अश्वमेध यज्ञोंद्वारा उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ भगवान्का आराधन किया। विरोचनपुत्र बलि सत्यवादियोंमें सबसे श्रेष्ठ थे। उन्होंने ब्रह्मा और आचार्यका वरण करके सोलह ऋत्विजोंका भी वरण किया। फिर महात्मा शुक्रने भलीभाँति परीक्षा लेकर बलिको यज्ञकी दीक्षा दी और उनके द्वारा निन्यानबे यज्ञोंका अनुष्ठान करवाया। तत्पश्चात् बलिने अन्तिम अश्वमेध यज्ञ पूर्ण करनेका विचार किया। जबतक उनके सौ यज्ञ पूरे हों; उसके पहले मैं पूर्वोक्त प्रसंग बतला देना चाहता हूँ। पहले कहा जा चुका है कि अदिति देवीने उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया और उस व्रतसे सन्तुष्ट होकर भगवान् श्रीहरि वामन ब्रह्मचारीके रूपमें उनके पुत्र होकर प्रकट हुए। परमेष्ठी ब्रह्माने आकर उन्हें यज्ञोपवीत दिया। महात्मा चन्द्रमाने दण्डकाष्ठ प्रदान किया। परम अद्भुत मृगचर्म और मेखला मँगायी गयी। पृथ्वी देवीने उन्हें चरणपादुका भेंट की। इसी तरह और लोगोंने भी वटुरूपधारी भगवान् विष्णुको अन्य आवश्यक वस्तुएँ अर्पित कीं।

तदनन्तर कश्यप और अदितिको प्रणाम करके महातेजस्वी वामनजी यजमान बलिकी यज्ञशालामें गये। उस समय सुरेश्वरगण उन वेदान्तवेद्य श्रीविष्णुकी महिमाका गान कर रहे थे। अनेक प्रकारके रूप और वेष धारण करनेवाले भगवान्ने उस यज्ञमें पहुँचकर सामवेदकी ऋचाओंका विधिपूर्वक गान किया। सामगानके अनन्तर वे इस प्रकार बोले—'राजन्! दैत्यराज हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लादजी हुए, जो बड़े तेजस्वी, जितेन्द्रिय तथा विष्णुभक्त हैं; जिन्होंने दैत्यराजकी सभामें अतिशय तेजस्वी भगवान् नृसिंहको प्रकट किया था। महाभाग! उन्हीं प्रह्लादजीके पुत्र तुम्हारे पिताजी थे, जो संसारमें विरोचनके नामसे विख्यात हुए थे। उन महात्माने स्वयं ही अपना मस्तक दान करके इन्द्रको सन्तुष्ट किया था। राजन्! तुम उन्हीं महात्मा विरोचनके पुत्र हो। तुमने बड़े उत्तम यज्ञका विस्तार किया है। तुम्हारे यज्ञरूपी महान् दीपककी ज्योतिमें सम्पूर्ण देवता पतंगोंके समान दग्ध हो गये हैं। तुमने इन्द्रको भी जीत लिया है, इसमें संशय नहीं है। सुव्रत! मैं तुम्हारे सब चरित सु चुका हूँ। तुम बड़े मनस्वी हो तथा तीनों लोकोंमें अधिक-अधिक दान करनेवाले दाताके रूपमें तुम्हारी ख्याति है। तथापि मेरे लिये तुम्हें तीन पग पृथ्वी देनी चाहिये।' तब विरोचनकुमार बलिने हँसकर कहा—'महाभाग! मैं पर्वत, बड़े-बड़े जंगल तथा सम्पूर्ण द्वीपोंसहित समूची पृथ्वी तुम्हें दूँगा, तुम मेरी दी हुई इस भूमिको ग्रहण करो।' वामनजीने कहा—'दैत्यराज! स्वयं चलते समय मेरे तीन पगोंसे जितनी पृथ्वी मापी जाय, उतनी ही मुझे दीजिये।' ब्रह्मचारीकी बात सुनकर बलिने हँसते हुए कहा—'बहुत अच्छा, लीजिये।' यों कहकर बलिने कश्यपकुमार वामनजीका भलीभाँति पूजन किया। उस समय बड़े-बड़े ऋषि तथा मुनीश्वर महातेजस्वी बलिके सौभाग्यकी सराहना कर रहे थे। वामनजीका पूजन करके राजा बलि ज्यों ही उन्हें दान देनेको उद्यत हुए त्यों ही शुक्राचार्यने उन्हें रोक दिया और कहा—'दैत्यराज! ब्रह्मचारीके रूपमें ये साक्षात् विष्णु हैं। इन्हें तुम दान न देना। ये तो इन्द्रका कार्य सिद्ध करनेके लिये आये हैं और तुरंत तुम्हारे यज्ञमें विघ्न डाल रहे हैं। अतः अध्यात्मतत्त्वका प्रकाश करनेवाले ये विष्णु तुम्हारे द्वारा इस समय पूजा पानेके योग्य नहीं हैं। इन्होंने ही पहले मोहिनीरूप धारण किया था। उस समय देवताओंको तो अमृत पिलाया और राहुको मार डाला। इन्होंने ही दैत्योंका संहार किया है और महाबली कालनेमि भी इन्हींके हाथों मारा गया है। ये ही ईश्वर हैं और ये ही सम्पूर्ण विश्वके पालक हैं। महामते! अब तुम अपने मनसे हित और अहित सबका विचार करके कोई काम करो।'

गुरु शुक्राचार्यके इस प्रकार समझानेपर राजा बलिने हँसकर मेघगर्जनाके समान गम्भीर वाणीमें कहा—'गुरुदेव! जिन वाक्योंद्वारा आपने मुझे विचलित किया है, वे सब मेरे हितकी दृष्टिसे ही कहे गये हैं। तथापि विचारदृष्टिसे देखनेपर आपके हितकारक वचन भी मेरे लिये अहितकारक ही होंगे। ब्रह्मचारीका रूप धारण करके आये हुए इन भगवान् विष्णुको मैं इनकी माँगी हुई वस्तु अवश्य दूँगा। ये विष्णु सम्पूर्ण कर्मों और उनके फलोंके भी स्वामी हैं। इसलिये दानके सबसे उत्तम पात्र हैं। जिनके हृदयमें ये सदा विराजमान रहते हैं वे मनुष्य भी सर्वोत्तम पात्र माने जाते हैं, यह बात ध्रुव सत्य है। जिनके नामसे यहाँ सब कुछ पवित्र कहा जाता है; जिनके चिन्तनसे ये वेद, यज्ञ, मन्त्र

तथा तन्त्र आदि सभी पूर्णताको प्राप्त होते हैं, वे ही ये समस्त विश्वके स्वामी सर्वात्मा श्रीहरि आज कृपा करके मेरा उद्धार करनेके लिये ही यहाँ पधारे हैं। इस बातको आप यथार्थ मानें। इसमें संशय नहीं है।'*

राजा बलिकी यह बात सुनकर शुक्राचार्य कुपित हो उठे। उन्होंने धर्मवत्सल दैत्यराजको रोषपूर्वक शाप देना आरम्भ किया। वे बोले—'ओ मूर्ख! तू मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करके दान करना चाहता है, इसलिये राज्यलक्ष्मीसे वञ्चित हो जा।' अथाह बोधवाले अपने महात्मा शिष्यको इस प्रकार शाप देकर शुक्राचार्यने अपने आश्रमको चले जानेका निश्चय किया। जब वे चले गये तब विरोचनकुमार बलि वामनजीकी पूजा करके उन्हें भूमिदान करनेको उद्यत हुए। दैत्यराजकी पतिव्रता पत्नी महारानी विन्ध्यावलि वहाँ आकर पतिदेवके अर्धाङ्गरूपमें सुशोभित हुई। राजा बलि विधि-विधानके ज्ञाता थे। उन्होंने विधिपूर्वक ब्रह्मचारीके चरण पखारकर संकल्पके साथ भगवान् विष्णुको पृथ्वी दान की। उस महान् संकल्पको स्वीकार करते ही अजन्मा भगवान् विष्णु बढ़ने लगे। वे ही सम्पूर्ण जगत्के प्रभु तथा उत्पत्तिस्थान हैं। उन्होंने एक ही पैरसे सारी पृथ्वी माप ली। दूसरे पगसे ऊपरके सभी लोक व्याप्त कर लिये। उनका वह द्वितीय पग सत्यलोकमें जाकर ठहरा था। परमेष्ठी ब्रह्माने अपने कमण्डलुके जलसे भगवान्के उस चरणको पखारा। भगवान्के चरण पखारनेसे जो चरणोदक तैयार हुआ, उसीसे सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली तथा सबके लिये परम मङ्गलमयी श्रीगङ्गाजी प्रकट हुईं, जिन्होंने अपने पावन जलसे तीनों लोकोंको पवित्र किया, सगरके सभी पुत्रोंका उद्धार किया तथा जिनके जलसे महाराज भगीरथने उस समय भगवान् शङ्करका जटाजूट भर दिया था।* भगवान् विष्णुकी चरणधूलिसे युक्त 'गङ्गा' नामक तीर्थ सब तीर्थोंमें प्रधान है। इसे ब्रह्माजीने प्रकट किया और राजा भगीरथने भूतलपर उतारा है। सम्पूर्ण चराचर जगत्को भगवान्ने दो ही पगोंसे माप लिया। फिर उस विराट् स्वरूपको छोड़कर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन पुनः वामन ब्रह्मचारीके रूपमें अपने आसनपर विराजमान हुए। उस समय देवता, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध और चारण यज्ञपति भगवान् विष्णुका दर्शन करनेके लिये बलिके यज्ञमें आये। ब्रह्माजीने वहाँ आकर परमात्मा श्रीहरि का स्तवन किया। गन्धर्वपतियोंने गीत गाये तथा अप्सराओं, विद्याधरियों और किन्नरोंने विशेष समारोहके साथ नृत्य किया। महात्मा बलिके यज्ञ-मण्डपमें प्रह्लादजी भी पधारे। अन्यान्य दैत्यपति भी बड़ी उतावलीके साथ वहाँ आ पहुँचे। उस समय भगवान् वामनने बलिकी पत्नी विन्ध्यावलिसे हँसकर पूछा—'देवि! तुम्हारे पतिके द्वारा आज मुझे तीन पग पृथ्वी मिलनी चाहिये। उसकी पूर्ति इस समय कहाँसे होगी, इसका उत्तर शीघ्र दो।' विन्ध्यावलि बड़ी साध्वी थी। उसे इस घटनासे तनिक भी विस्मय नहीं हुआ। वह भगवान् त्रिविक्रमसे इस प्रकार बोली—'देव! आप समस्त लोकोंके एकमात्र स्वामी हैं। आपने अपना भारी डग बढ़ाकर यह त्रिलोकी माप ली है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जगत् आपसे व्याप्त है। संसारके एकमात्र बन्धु आप ही हैं। आपके स्वरूपकी तुलना कहीं नहीं है। भला हम-जैसे लोग आपको क्या दे सकते हैं? इसलिये इस समय मैं जो निवेदन करती हूँ, उसीके अनुसार कार्य कीजिये। मेरे स्वामीने इस समय आपको तीन पग भूमि देनेकी प्रतिज्ञा की थी। उसके अनुसार मेरे पूज्य पतिदेव तीनों पगोंके लिये स्थान इस प्रकार दे रहे हैं—प्रभो! देवेश्वर! आप अपना पहला पग मेरे मस्तकपर रखिये। जगत्पते! दूसरा पग मेरे इस बालकके मस्तकपर स्थापित कीजिये तथा जगन्नाथ! अपना तीसरा पग मेरे पतिके मस्तकपर रख दीजिये। केशव! इस प्रकार ये तीन पग मैं आपको दूँगी।'

* दास्यामि भिक्षितं तस्मै विष्णवे बटुरूपिणे।
पात्रीभूतो ह्ययं विष्णुः सर्वकर्मफलेश्वरः॥
येषां हृदि स्थितो नित्यं ते वै पात्रतमा ध्रुवम्।
यस्य नाम्ना सर्वमिह पवित्रमिदमुच्यते॥
येन वेदाश्च यज्ञाश्च मन्त्रतन्त्रादयो ह्यमी।
सर्वे सम्पूर्णतां यान्ति सोऽयं विश्वेश्वरो हरिः॥
आगतः कृपया मेऽद्य सर्वात्मा हरिरीश्वरः।
उद्धर्तुं मां न सन्देह एतज्जानीहि तत्त्वतः॥
(स्क० मा० के० १८। २—६)

* सत्यलोकस्थितेनैव ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
कमण्डलुगतेनैवाम्भसा चावनिनेज ह॥
तत्पादसम्पर्कजलाच्च जाता भागीरथी सर्वसुमङ्गला च।
यया त्रिलोकी च कृता पवित्रा यया च सर्वे सगराः समुद्धृताः॥
यया कपर्दः परिपूरितो वै शम्भोस्तदानीं च भगीरथेन।
(स्क० मा० के० १९। १४—१६)

विन्ध्यावलिकी यह बात सुनकर भगवान् विष्णु बड़े प्रसन्न हुए और राजा बलिसे मधुर वाणीमें बोले—'तात ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । बोलो—मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ । महामते ! सम्पूर्ण दाताओंमें तुम सबसे श्रेष्ठ हो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम इच्छानुसार वर माँगो । मैं तुम्हारी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण किये देता हूँ ।' भगवान् वामनने ऐसा कहकर विरोचनकुमार बलिको बन्धनसे मुक्त कर दिया और उन्हें छातीसे लगा लिया । तब बातचीत करनेमें चतुर राजा बलि इस प्रकार बोले—'प्रभो ! आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को उत्पन्न किया है । अतः आपके चरणारविन्दोंके सिवा दूसरी कोई वस्तु मैं नहीं चाहता । देव ! जनार्दन ! आपके चरण-कमलोंमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे । देवेश्वर ! वह सनातन भक्ति बार-बार निरन्तर बढ़ती रहे ।'

बलिके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भूतभावन भगवान् वामनने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'राजन् ! तुम अपने भाई-बन्धु और सम्बन्धियोंके साथ सुतललोकमें चले जाओ ।' यह सुनकर दैत्यराज बलि बोले—'देवदेव ! आप ही बताइये, सुतललोकमें मेरा क्या काम है ? मैं तो आपके पास ही रहूँगा, इसके विपरीत कुछ भी कहना उचित नहीं है ।' तब भगवान् हृषीकेश राजा बलिके प्रति अत्यन्त कृपालु होकर बोले—'राजन् ! मैं सदा तुम्हारे समीप रहूँगा । असुर-श्रेष्ठ ! तुम खेद न करो, मेरी बात सुनो । मैं सुतललोकमें तुम्हारा द्वारपाल होकर रहूँगा, मेरे इस वचनको तुम वरदान समझो । आज मैं तुम्हारे लिये वरदायक होकर उपस्थित हूँ । अपने वैकुण्ठवासी पार्षदोंके साथ तुम्हारे घरमें निवास करूँगा ।' अतुल तेजस्वी भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर दैत्यराज बलि असुरोंके साथ सुतललोकमें चले गये । वहाँ बाणासुर आदि सौ पुत्रोंके साथ वे सुखपूर्वक निवास करने लगे । महाबाहु बलि दाताओंके भी परम आश्रय हैं । तीनों लोकोंके याचक राजा बलिके पास जाते हैं और उनके द्वारपर विराजमान भगवान् विष्णु स्वयं उन्हें मुँहमाँगी वस्तुएँ देते हैं । कोई भोगकी कामना लेकर जायँ या मोक्षकी, जिनकी जैसी रुचि होती है, उसीके अनुसार, उनको वह वस्तु वे समर्पित करते हैं ।

भगवान् शङ्करकी कृपासे ही राजा बलि ऐसे महत्त्वशाली हुए हैं । पूर्वकालमें जुआरीके रूपमें उन्होंने परमात्मा शिवके उद्देश्यसे जो दान किया था, उसीका यह फल है । अपवित्र भूमिमें पहुँचकर गिरी हुई गन्ध, पुष्प आदि सामग्रीको भी परमात्मा शिवकी सेवामें समर्पित करके जब बलिने इतनी उन्नति की, तब जो लोग श्रद्धा और भक्तिसे महादेवजीकी सेवामें गन्ध, पुष्प और जल अर्पण करते हैं उनके लिये तो कहना ही क्या है ? वे साक्षात् भगवान् शिवके समीप जाते हैं । ब्राह्मणो ! भगवान् शिवसे बढ़कर दूसरा कोई पूजनीय देवता नहीं है । जो गूँगे हैं, अन्धे हैं, पंगु और जड़ हैं तथा जाति-बहिष्कृत, चाण्डाल, श्वपच और अन्त्यज हैं; वे भी यदि सदा भगवान् शिवके भजनमें तत्पर रहें तो परम गतिको प्राप्त होते हैं । अतः सम्पूर्ण मनीषी पुरुषोंके लिये भी भगवान् शिव ही सदा पूजनीय हैं । पूजनीय ही नहीं, विद्वानोंके द्वारा वे सदा चिन्तनीय और वन्दनीय भी हैं । परमार्थ-तत्त्वके ज्ञाता पुरुष अपने हृदयमें विराजमान भगवान् महेश्वरका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं ।

तारकासुरको ब्रह्माजीका वरदान, हिमालयके घर सतीका पार्वतीरूपमें अवतार, शङ्करजीके रोषसे कामदेवका भस्म होना तथा पार्वतीकी उग्र तपस्या

ऋषियोंने पूछा—महाभाग सूतजी ! दक्षकुमारी सती जब अपने पिता दक्षके यज्ञमें अग्निप्रवेश करके अन्तर्धान हो गयीं, तब पुनः कब और कहाँ प्रकट हुईं ? वे पुनः किस प्रकार उन्हें मिलीं ?

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! दक्षकुमारी सतीदेवी जब अपने पिताके यज्ञमें अन्तर्धान हो गयीं, तब अपनी शक्तिसे बिछुड़े हुए भगवान् महेश्वर उत्तम तपस्यामें संलग्न हो गये । वे लीला-देह धारणकर भृंगी और नन्दीके साथ हिमालय-पर्वतपर रहने लगे । इसी समय नमुचिके पुत्र तारकासुरने बड़ी भारी तपस्या करके ब्रह्माजीको सन्तुष्ट किया । ब्रह्माजी उसपर प्रसन्न हुए और उस दुरात्माको इच्छानुसार वर देनेके लिये उद्यत हो बोले—'तुम कोई वर माँगो ।' ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर तारकासुर बोला—'प्रभो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अजर, अमर और अजेय बना दीजिये ।'

ब्रह्माजीने कहा—तू अमर कैसे हो सकता है ? जो इस संसारमें जन्म ले चुका है, उसकी मृत्यु अटल है ।

तारकासुर बोला—तब मुझे 'अजेय' बना दीजिये ।

ब्रह्माजीने कहा—दैत्यराज ! तू 'अजेय' होगा, इसमें संशय नहीं है । परंतु एक बालकको छोड़कर अन्य सबसे ही तेरी अजेयता रहेगी ।

इस प्रकार वरदान पाकर तारकासुर बड़ा बलवान् हो गया । उस समय देवतालोग राजा मुचुकुन्दका सहारा लेकर तारकासुरके साथ युद्ध करते और विजयी होते थे । मुचुकुन्दके ही बलसे देवताओंने विजय प्राप्त की । तब उन्होंने सोचा—'इन दिनों हमें निरन्तर युद्धमें रहना पड़ता है, ऐसे समयमें हमारा क्या कर्तव्य है ? अथवा भवितव्यता ही ऐसी है ।' ऐसा विचार कर वे ब्रह्माजीके लोकमें गये और उनके सामने खड़े होकर स्तुति करने लगे । स्तुतिके पश्चात् वे बोले—'महाभाग ! प्रभो ! आप दैत्यपतियोंसे हमारी रक्षा करें ।' उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ ! तुम जितनी जल्दी हो सके, मेरी आज्ञाका यथावत् पालन करो । भगवान् शिवके जब कोई महाबली पुत्र उत्पन्न होगा, तब वही पुनः युद्धमें तारकासुरका वध करेगा, इसमें संशय नहीं है । सबकी हृदयगुफामें निवास करनेवाले भगवान् शङ्कर जिस किसी उपायसे पत्नीका पाणिग्रहण करें, वह तुम्हें करना चाहिये । इसके लिये महान् प्रयत्न करो । मेरा यह वचन अन्यथा न होने पावे ।'

यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ । वे सब बृहस्पतिजीको आगे करके हिमालयपर्वतपर आये और इस प्रकार कहने लगे—'महाभाग हिमालय ! तुम समस्त पर्वतोंके स्वामी हो, यक्ष और गन्धर्व तुम्हारा सेवन करते हैं, हम तुमसे कुछ निवेदन करेंगे, हम सब देवताओंकी बात तुम्हें माननी चाहिये ।'

लोमशजी कहते हैं—देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् हँसकर बोले—'एक तो मैं अचल हूँ, चल-फिर नहीं सकता, दूसरे मेरी पाँखें कट गयी हैं, अतः उड़ नहीं सकता । ऐसी दशामें मैं आपलोगोंके किस काम आ सकता हूँ । देवताओ ! यदि तारकासुरके संहारमें मेरी सहायता आवश्यक है, तो मैं पूछता हूँ, किस उपायसे आपलोग तारकासुरका वध करना चाहते हैं, वह शीघ्र बतलावें; क्योंकि वह कार्य तो मेरा ही है ।' तब देवताओंने आकाशवाणीद्वारा कही हुई सब बातें कह सुनायीं । सुनकर हिमवान्ने कहा—'जब शिवजीके बुद्धिमान् पुत्रद्वारा ही तारकासुरका वध होनेवाला है, तब देवताओंके सब कार्य शुभ हों और आकाशवाणीकी कही हुई यह बात सच निकले । इसके लिये आपलोगोंको विशेष यत्न करना चाहिये ।'

देवता बोले—गिरिराज ! आप देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे भगवान् शङ्करके विवाहके लिये स्वयं ही एक कन्या उत्पन्न करें ।

तब हिमवान्ने अपनी पत्नीसे कहा—सुमुखि ! तुम्हें एक श्रेष्ठ कन्या उत्पन्न करनी चाहिये । यह सुनकर मेनाने हँसते हुए कहा—'महामते ! मैंने आपकी बात सुन ली; परंतु कन्या स्त्रियोंको शोकमें डालनेवाली होती है, अतः इस विषयमें दीर्घकालतक विचार करके आपको अपनी बुद्धिसे जो हितकर प्रतीत हो, वह बतावें ।' अपनी प्रियतमा मेनाकी यह बात सुनकर परम बुद्धिमान् हिमवान्ने परोपकारयुक्त वचन कहा—'देवि ! जिस प्रकारसे दूसरोंके जीवनकी रक्षा हो, परोपकारी पुरुषोंको वही करना चाहिये ।' इस प्रकार पतिकी प्रेरणा पाकर सौभाग्यवती रानी मेनाने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने गर्भमें कन्याको धारण किया । कुछ कालके अनन्तर मेनाके गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई, जो 'गिरिजा' नामसे प्रसिद्ध हुई । सबको सुख देनेवाली उस देवीके प्रकट होनेपर देवताओंके नगाड़े बज उठे । अप्सराएँ नृत्य करने लगीं । गन्धर्वराज गाने तथा सिद्ध-चारण स्तुति करने लगे । उस समय देवताओंने फूलोंकी बड़ी भारी वर्षा की । सम्पूर्ण त्रिलोकीमें प्रसन्नता छा गयी । महासती गिरिजाका जब जन्म हुआ, उस समय दैत्योंके मनमें

ाय समा गया और देवता, महर्षि, चारण तथा सिद्धगण बड़े ानन्दको प्राप्त हुए।

सती-साध्वी गिरिजा हिमालयके घरमें दिनोंदिन बढ़ने ागी। वह कल्याणी कन्या जब आठ वर्षकी हो गयी, उस ामय महादेवजी हिमालयकी कन्दरामें बड़ी भारी तपस्या कर हे थे। भगवान्के वीरभद्र आदि सभी पार्षद उन्हें ाब ओरसे घेरे रहते थे। एक दिन परम बुद्धिमान् हिमवान् अपनी कन्या पार्वतीको साथ लेकर तपस्यामें ागे हुए महादेवजीके पास उनके चरणोंका दर्शन करनेके लेये गये। हिमवान्ने देखा—सबके स्वामी भगवान् शेव तपस्यामें लगे हुए हैं। उनके नेत्र बंद हैं, मस्तकपर जटा-जूट शोभा पा रहा है, जिसे चन्द्रमाकी कला विभूषित किये हुए है। वे वेदान्तवेद्य परमात्मा शिव एक श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हैं। दर्शन करके हिमवान्ने भगवान्के चरणोंमें मस्तक झुकाया और मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नताका अनुभव किया। हिमाचल बड़े धैर्यवान् एवं उत्कृष्ट प्राणियों-के आश्रय हैं। वाणीका रहस्य समझनेवाले विद्वानोंमें उनका स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने सम्पूर्ण विश्वका एकमात्र मङ्गल करनेवाले भगवान् शिवसे इस प्रकार वार्तालाप किया—'महादेव! मैं आपके प्रसादसे बड़ा सौभाग्यशाली हूँ। देवेश्वर! आप मुझे इस कन्याके साथ प्रतिदिन अपने दर्शनके लिये आनेकी आज्ञा दें।' यह सुनकर देवाधिदेव महेश्वरने कहा—'पर्वतराज! इस कुमारी कन्याको घरमें छोड़कर ही आप प्रतिदिन मेरे दर्शनके लिये आ सकते हैं, अन्यथा मेरा दर्शन नहीं होगा।' तब हिमाचलने मस्तक झुकाकर पुनः महादेवजीसे कहा—'भगवन्! क्या कारण है कि मुझे इस कन्याके साथ यहाँ नहीं आना चाहिये।' भगवान् शङ्करने हँसते हुए उत्तर दिया—'यह कुमारी सुन्दर कटि-भागसे सुशोभित पतले अङ्गोंवाली तथा मृदु वचन बोलनेवाली है। अतः मैं तुम्हें बार-बार मना करता हूँ कि इस कन्याको मेरे समीप न ले आना।' भगवान् शङ्करका यह निष्ठुर वचन सुनकर गौराङ्गी पार्वती, तपस्वी शिवसे इस प्रकार बोलीं—'शम्भो! आप तपःशक्तिसे सम्पन्न हैं और बड़ी भारी तपस्यामें लगे हुए हैं। आप-जैसे महात्माके मनमें जो यह विचार उत्पन्न हुआ है, वह केवल इसलिये कि यह तपस्या निर्विघ्न चलती रहे। परंतु मैं आपसे पूछती हूँ—आप कौन हैं और यह सूक्ष्म प्रकृति क्या है? भगवन्! आप इस विषयपर भलीभाँति विचार करें।'

महादेवजी बोले—सुन्दरी! मैं उत्तम तपस्याके द्वारा ही प्रकृति (माया) का नाश करता हूँ। प्रकृतिसे विलग रहकर अपने यथार्थ स्वरूपमें स्थित होता हूँ। इसलिये सिद्धपुरुषोंको प्रकृतिका संग्रह कदापि नहीं करना चाहिये।

श्रीपार्वतीजीने कहा—शङ्कर! आपने जिस उत्तम वाणीके द्वारा जो कुछ भी कहा है, क्या वह प्रकृति नहीं है? फिर आप प्रकृतिसे अतीत कैसे हैं? मेरी यह बात सुनकर आपको तत्त्वका यथार्थ निर्णय करना चाहिये। यह सम्पूर्ण जगत् सदा प्रकृतिसे बँधा हुआ है। प्रभो! हमें वाणीद्वारा विवाद करनेसे क्या प्रयोजन? शङ्कर! आप जो सुनते हैं, खाते हैं और देखते हैं, वह सब प्रकृतिका ही कार्य है। प्रकृतिसे परे होकर आप इस हिमालय पर्वतपर इस समय तपस्या किसलिये करते हैं? प्रकृतिसे आप मिले हुए हैं, क्या इस बातको नहीं जानते? यदि आप प्रकृतिसे परे हैं और आपकी यह बात सत्य है, तो आपको अब मुझसे भय नहीं मानना चाहिये।

महादेवजी बोले—साधुभाषिणी पार्वती! तुम प्रति-दिन मेरी सेवा करो।

अब वे प्रतिदिन पार्वतीके साथ उनका दर्शन करने लगे। इस प्रकार भगवान् शिवकी उपासना करते हुए पुत्री और पिताका कुछ समय व्यतीत हो गया। तब पार्वतीजीके लिये देवताओंके मनमें बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'भगवान् महेश्वर गिरिजाका पाणिग्रहण कैसे करेंगे?' तब उन्होंने कामदेवका आवाहन किया। आवाहन करते ही इन्द्रका कार्य सिद्ध करनेवाला कामदेव अपनी पत्नी रति और सखा वसंतके साथ आया और देवसभामें देवराजके सम्मुख उपस्थित हो गर्वयुक्त वचन बोलने लगा—'शचीपते! शीघ्र आज्ञा दीजिये, आज मैं आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ। मेरा स्मरणमात्र करनेसे कितने ही तपस्वी अपनी मर्यादासे भ्रष्ट हो चुके हैं। इन्द्र! मेरे बल और पराक्रमको आप अच्छी तरह जानते हैं। शक्तिनन्दन पराशरको भी मेरे पराक्रमका ज्ञान है; इसी प्रकार ये भृगु आदि बहुत-से अन्य ऋषि-मुनि भी मेरी शक्ति जानते हैं। महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न क्रोध ही मेरा भाई है। हम दोनोंने सम्पूर्ण चराचर जगत्को परास्त किया है। सबको हमने मोहमहासागरमें डुबो दिया है।'

कामदेवके गर्वीले वचन सुनकर इन्द्रने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा—'वीरवर! पूर्वकालमें तुमने जो-जो कार्य किये हैं, उनका किसी प्रकार वर्णन नहीं हो सकता। हम सब देवता

देवताओ ! यह पापी काम दुःखकी जड़ है । अतः आज मैं इसे जीवन-दान नहीं दूँगा । तुम अवसरकी प्रतीक्षा करो ।' भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर सब महर्षियोंने उनसे कहा—'शम्भो ! आपने जो कुछ कहा है, सब हमारे लिये परम कल्याणकारी है। किंतु देवेश्वर ! हम भी कुछ निवेदन करना चाहते हैं, उसे ध्यानपूर्वक सुनें । जिस प्रकार इस संसारकी सृष्टि हुई है, उसके अनुसार (संकल्परूप) काम ही इसका अधिष्ठान है । कामके बिना यह सृष्टि कैसे होगी । यह विश्व काममय है; इससे ऊपर उठे हुए आप परमेश्वर ही, निष्काम हैं ।' इतना कहकर मुनि, सिद्ध और चारणोंने भगवान् सदाशिवकी स्तुति और वन्दना की । तदनन्तर वे वहाँसे शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये । कामदेवको जलाकर महादेवजी अदृश्य हो गये । उस समय पार्वतीजी वहाँ रतिको रोती हुई देखकर बोलीं—'सखी ! तुम शोक न करो, मैं कामदेवको जीवन दिलाऊँगी ।' पार्वतीके इस प्रकार आश्वासन देनेपर पतिव्रता रतिने पतिको पुनः प्राप्त करनेके लिये बड़ी भारी तपस्या आरम्भ की ।

तदनन्तर पार्वती भी वहीं रहकर तपस्यामें लग गयीं । उस समय माता-पिताने उन्हें रोकते हुए कहा—'बेटी ! अभी तू बालिका है, शीघ्र घर चल । तू तपस्याका श्रम उठाने योग्य नहीं है ।'

पार्वती बोलीं—माता और पिताजी ! मैं घर नहीं चलूँगी । आप मेरी प्रतिज्ञा सुनें । मैं उत्तम तपस्याके द्वारा भगवान् शङ्करको पुनः यहीं बुलाकर उनका वरण करूँगी ।

यों कहकर मनस्विनी पार्वती एकाग्रचित्त हो, बड़ी उग्र तपस्याके द्वारा भगवान् शिवका आराधन करने लगीं । उस समय जया, विजया, माधवी, सुलोचना, सुश्रुता, श्रुता, शुकी, प्रम्लोचा, सुभगा, श्यामा, चित्राङ्गी, वारुणी और सुधा—ये तथा और भी बहुत-सी सखियाँ गिरिराजनन्दिनीकी सेवामें रहने लगीं । परमात्मा रुद्रने कामदेवको जहाँ दग्ध किया था, वहीं एक वेदी बनाकर पार्वतीजी उसपर विराजमान हुईं । वे अन्न और फल त्यागकर केवल हरे पत्ते खाकर रहने लगीं । तत्पश्चात् हरे पत्ते भी छोड़ दिये और सूखे पत्तोंपर निर्वाह करने लगीं । आगे चलकर जब उन्होंने सूखे पत्ते भी त्याग दिये तब वे 'अपर्णा' नामसे विख्यात हुईं । सूखे पत्ते छोड़नेपर वे कुछ कालतक केवल जलपर रहीं । फिर उसे भी छोड़कर वायु पीकर रहने लगीं । इस प्रकार सती-साध्वी गिरिजा दीर्घकालतक तपस्यामें लगी रहीं । भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये मनमें उत्तम निष्ठा रखकर पार्वती उग्र तपस्याद्वारा आराधन करती रहीं । पार्वतीके उस महान् तपसे सम्पूर्ण चराचर जगत् सन्तप्त होने लगा, तब देवता और असुर सब मिलकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये ।

देवता बोले—भगवन् ! आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्की सृष्टि की है । हम देवताओंकी रक्षा करने योग्य आप ही हैं ।

देवताओंकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने मन-ही-मन चिन्तन किया । चिन्तनसे उन्हें ज्ञात हुआ कि पार्वतीकी तपस्यासे बड़ी अद्भुत दावाग्नि प्रकट हुई है । यह जानकर ब्रह्माजी बड़ी शीघ्रतासे परम अद्भुत क्षीरसागरके तटपर गये । वहाँ जाकर उन्होंने अतिशोभायमान शेषशय्यापर सोये हुए भगवान् विष्णुका दर्शन किया । लक्ष्मी देवी उनके दोनों चरणारविन्दोंकी निरन्तर सेवा कर रही थीं । गरुड़जी कुछ दूरपर मस्तक झुकाये हाथ जोड़े प्रभुकी सेवामें खड़े थे । श्री, कान्ति, तुष्टि, वृत्ति और दया आदि देवियाँ भी भगवान्‌की सेवामें संलग्न थीं । नौ शक्तियोंसे सम्पन्न भगवान् विष्णु अपने पार्षदोंसे घिरे हुए थे । कुमुद, कुमुद्वान्, सनक, सनन्दन, महाभाग सनातन, प्रसुप्त, विजय, अरिजित्, जयन्त, जयत्सेन, परम कान्तिमान् जय, सनत्कुमार, उत्तम तपस्वी नारद, तुम्बुरु, महाशङ्ख पाञ्चजन्य, कौमोदकी गदा, सुदर्शन चक्र तथा परम अद्भुत शार्ङ्गनामक धनुष—ये सब

वहाँ ब्रह्माजीको मूर्तिमान् दिखायी दिये।* सब देवताओंने परमात्मा भगवान् विष्णुके समीप जाकर उनसे प्रार्थनापूर्वक कहा—'महाविष्णो! हम पार्वतीजीकी अत्यन्त उग्र तपस्यासे जले जा रहे हैं और सन्तप्त होकर आपकी शरणमें आये हैं; आप हमारी रक्षा करें, रक्षा करें।'

तब शेषनागकी शय्यापर बैठे हुए परमेश्वर श्रीहरि इस प्रकार बोले—'देवताओ! आज तुम लोगोंको साथ लेकर परमेश्वर महादेवजीके पास चलता हूँ। हम सब लोग मिलकर उनसे प्रार्थना करें कि वे पार्वतीजीके साथ विवाह करनेको उद्यत हों। भगवान् शिव पुराणपुरुष हैं, सबके अधीश्वर हैं, वे सबके लिये वरेण्य (वरणीय अथवा सेव्य) हैं, उत्तम स्वरूपकी पराकाष्ठा हैं तथा वे ही परात्पर परमात्मा हैं। इस समय वे तपस्यामें लगे हैं, हम सब लोग उन्हींकी शरणमें चलें।'

देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान् शिवका पार्वतीजीके पास जाना और उनके प्रेमकी परीक्षा ले उनकी तपस्याको सफल बनाना

सूतजी कहते हैं—भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहनेपर सब देवता पिनाकधारी महादेवजीका दर्शन करनेके लिये गये। भगवान् शिव समुद्रके उस पार उत्तम समाधि लगाये योगासनपर विराजमान थे। उनके पार्षद उन्हें सब ओरसे घेरे हुए थे। वे सर्पराज वासुकिको छातीसे चिपकाये हुए यज्ञोपवीतकी भाँति धारण करते थे। कम्बल और अश्वतर—इन दोनों नागोंको उन्होंने दोनों कानोंका कुण्डल बना रक्खा था। कर्कोटक और कुलिकसे उत्तम कङ्कणका काम लेते हुए उन्हें अपने दोनों हाथोंमें धारण किया था। शङ्ख और पद्म नामक नागका भुजबंद धारण करके वे बड़ी शोभा पा रहे थे। पहनने योग्य वस्त्रके स्थानपर उन्होंने बाघका चमड़ा लपेट रक्खा था। वे मस्तकपर भागीरथी गङ्गा तथा अर्धचन्द्रयुक्त जटाजूट धारण किये बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओंके साथ विराजमान थे। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति कर्पूरके समान गौर थी और कण्ठमें नील चिह्न सुशोभित था। भगवान्के पास ही उनके वाहन नन्दिकेश्वर भी थे। ऐसी अद्भुत शोभासे युक्त सुरश्रेष्ठ शिवका समस्त देवताओंने दर्शन किया। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, ऋषि, देवता और दानवोंने वेदों और उपनिषदोंके अनेक सूक्तोंद्वारा भगवान् शिवका स्तवन किया।

श्रीब्रह्माजी बोले—कामदेवका अन्त करनेवाले श्रीरुद्रदेवको नमस्कार है। जो प्रकाशस्वरूप होनेके कारण 'भर्ग' नाम धारण करते हैं, तीनों लोकोंमें जिनका सौभाग्य सबसे बढ़कर है, उन त्रिनेत्रधारी भगवान् महेश्वरको नमस्कार है। जो सम्पूर्ण जगत्के भरण-पोषण करनेवाले बन्धु हैं तथा यह सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, उन भगवान् त्र्यम्बकको नमस्कार है। भगवन्! आप समस्त लोकोंके धारण-पोषण करनेवाले पिता, माता और ईश्वर हैं; आप ही जगत्के स्वामी तथा रक्षक हैं, प्रभो! आप हमारा उद्धार करें।

तब उत्तम योगसे युक्त दयालु परमात्मा महेश्वर शम्भुने धीरे-धीरे समाधिसे विश्राम लिया और देवताओंसे इस प्रकार कहा—'परम भाग्यवान् ब्रह्मा आदि देवताओ! तुम लोग मेरे समीप क्यों आये हो? इस समय यहाँ आनेका कारण बतलाओ।'

उनके इस प्रकार पूछनेपर ब्रह्माजीने देवताओंके महत्त्वपूर्ण कार्यका परिचय देते हुए कहा—'भगवन्! तारकासुरने

---

* ज्ञात्वा ब्रह्मा जगामाशु क्षीराब्धिं परमाद्भुतम्। तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के शेषाख्ये चातिशोभने॥
लक्ष्म्या पादोपयुगलं सेव्यमानं निरन्तरम्। दूरस्थेनापि तार्क्ष्येण नतकन्धरधारिणा॥
सेव्यमानं श्रिया कान्त्या तुष्ट्या धृत्या दयादिभिः। नवशक्तियुतं विष्णुं पार्षदैः परिवारितम्॥
कुमुदोऽथ कुमुदाक्षश्च सनकश्च सनन्दनः। सनातनो महाभागः प्रसुप्तो विजयोऽरिजित्॥
जयन्तश्च जयत्सेनो जयश्चैव महाप्रभः। सनत्कुमारः सुतपा नारदश्चैव तुम्बुरुः॥
पाञ्चजन्यो महाशङ्खो गदा कौमोदकी तथा। सुदर्शनं तथा चक्रं शार्ङ्गं च परमाद्भुतम्॥
एतानि वै रूपवन्ति दृष्टानि परमेष्ठिना।

(स्क० मा० के० २१। ७९–८५)

देवताओंको महान् कष्ट पहुँचाया है। वह देवताओंका घोर शत्रु है। अतः हमारी प्रार्थना है कि आप पार्वतीजीका पाणिग्रहण करें। गिरिराज हिमवान्‌द्वारा दी हुई गिरिजाको आप पाणिग्रहणकी विधिसे अङ्गीकार करें।' ब्रह्माजीकी बात सुनकर महादेवजीने हँसते हुए कहा—'जब मैं सर्वसुन्दरी गिरिजादेवीका वरण कर लूँगा, तब समस्त सुरेश्वर तथा षि-मुनि भी सकामभावसे युक्त हो जायँगे और निष्कामवसे पूर्ण परमार्थके पथपर चलनेमें असमर्थ होंगे। अतः ने सबके पारमार्थिक कार्यकी सिद्धिके लिये कामदेवको भस्म या था। मेरे विचारसे तो कामदेवके दग्ध होनेसे ही ताओंका महान् कार्य सिद्ध हुआ है। इस कामदहनरूपी र्यसे तुम सब लोग निष्काम हो गये हो। अब जैसा मैं हूँ, ही तुम लोग भी हो गये। अतः हमलोग अब प्रयत्नपूर्वक त्यन्त दुष्कर तथा परम उत्तम तपका अनुष्ठान करें और ावें। कामदेवके न रहनेसे तुम सब देवता समाधि लगाकर मानन्दमें निमग्न हो सदा सुखी रहोगे। काम तो नरकमें ले जानेवाला है। उसीसे क्रोधका जन्म होता है। क्रोधसे मोह होता है और सम्मोहसे मनुष्य जल्दी ही भ्रममें पड़ ता है। अतः सभी श्रेष्ठ देवता काम, क्रोधका परित्याग के शास्त्रों और संतोंके सदुपदेशोंको मानें—उनके अनुसार वन बनावें।'

वृषभके चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले भगवान् हादेवने इस प्रकार उत्तम बातें सुनाकर देवताओं तथा ऋषिनियोंको भलीभाँति समझाया। तत्पश्चात् वे पुनः ध्यान गाकर मौन हो गये। तब वे सब देवता अपने-अपने स्थानको ले गये। फिर शिवजीने बुद्धिके द्वारा मनको आत्मामें एकाग्र रके अपने स्वरूपका इस प्रकार चिन्तन किया—'जो परसे ो अत्यन्त परे, अपने आपमें स्थित, मल आदि दोषोंसे हेत, विघ्न-बाधाओंसे शून्य, निरञ्जन (निर्लिप्त) तथा राभास (मिथ्या ज्ञानसे रहित) है, जिसके विषयमें विवेकी द्वान् भी मोहित हो जाते हैं, जहाँ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि थवा नक्षत्र आदि दूसरी किसी ज्योतिका प्रकाश नहीं, जहाँ ायुकी भी गति कुण्ठित हो जाती है, जो विचारदृष्टिसे भी वल (अद्वितीय) सद्वस्तु है, सूक्ष्म तथा सूक्ष्मतर स्तुओंसे भी परे है, जिसका कोई नाम या सङ्केत नहीं है, ो चिन्तनका विषय नहीं है, जिसमें विकारका सर्वथा अभाव , जो रोग और शोकसे सर्वथा दूर है, विशुद्ध ज्ञान ही सका स्वरूप है, सर्वत्यागी संन्यासी जिसे प्राप्त होते हैं, जो शब्द या वाणीकी पहुँचसे परे है, निर्गुण और निर्विकार है, सत्तामात्र ही जिसका स्वरूप है, जो ज्ञानगम्य होकर भी वास्तवमें अगम्य है, वेदान्त और आगम भी मूक होकर ही ('नेति-नेति'की भाषामें) जिसका सर्वदा प्रतिपादन करते हैं, वही सबके ईश्वर पिनाकधारी भगवान् वृषध्वज परमार्थ वस्तु (परब्रह्म परमात्मा) हैं।* उन्होंने ही कामदेवका नाश किया है। वे साक्षात् परमेश्वर होकर भी 'तप' का सेवन करते हैं।'

लोमशजी कहते हैं—उधर पार्वती देवी बड़ी कठोर तपस्यामें लगी हुई थीं। उस तपस्यासे उन्होंने भगवान् शङ्करको जीत लिया। देवीकी तपस्यासे हार मानकर भगवान् शिव समाधिसे विरत हो, तुरंत उस स्थानपर गये जहाँ पार्वतीजी विराजमान थीं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा—देवी गिरिजा सखियोंसे घिरी हुई 'वेदी' पर बैठी हैं और चन्द्रमाकी कलाके समान प्रकाशित हो रही हैं। महादेवजीने उन्हें देखकर तत्काल ब्रह्मचारीका वेष धारण कर लिया और उसी स्वरूपसे सखियोंकी मण्डलीमें उपस्थित होकर पूछा—'सखियो! यह सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या अपनी सहेलियोंके बीचमें क्यों बैठी है? यह कौन है? किसकी पुत्री है? कहाँसे आयी है और किस लिये तपस्या कर रही है?'

तब जयाने उत्तर दिया—ब्रह्मचारीजी! ये गिरिराज हिमवान्‌की कन्या हैं और तपस्याद्वारा परमेश्वर रुद्रको पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती हैं।'

जयाकी यह बात सुनकर वटुरूपधारी शिव ठठाकर हँस पड़े और इस प्रकार बोले—'सखियो! यह पार्वती भोली-भाली है। इसे अपने हित और अहितका कुछ भी ज्ञान नहीं है। भला, रुद्रकी प्राप्तिके लिये तपस्या करनेकी क्या

---

* आत्मानमात्मना कृत्वा आत्मन्येवमचिन्तयत् ॥
परात्परतरं स्वस्थं निर्मलं निरवग्रहम्।
निरञ्जनं निराभासं यन्मुह्यन्ति च सूरयः ॥
भानुर्न भात्यग्निरथो शशी वा न ज्योतिरेवं न च मारुतो हि।
यत्केवलं वस्तु विचारतोऽपि सूक्ष्मात् परं सूक्ष्मतरात्परं च ॥
अनिर्देश्यमचिन्त्यं च निर्विकारं निरामयम्।
ज्ञप्तिमात्रस्वरूपं च न्यासिनो यान्ति यत्र वै ॥
शब्दातीतं निर्गुणं निर्विकारं सत्तामात्रं ज्ञानगम्यं त्वगम्यम्।
यत्तद् वस्तु सर्वदा कथ्यते वै वेदातीतैश्चागमैर्मूकभूतैः ॥
तद्वस्तुभूतो भगवान् स ईश्वरः पिनाकपाणिर्भगवान् वृषध्वजः ॥
(स्क० मा० के० २२। ३२-३७)

पृथ्वी आदि भूत तथा भौतिक वस्तुएँ जो भी दृष्टिमें आती हैं उन सबको नश्वर समझो। अविनाशी तो आत्मा ही है जो एक होकर भी अनेकताको प्राप्त हुआ है, निर्गुण होकर भी गुणोंसे आवृत हो रहा है, जो सदा अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाला है किंतु इस समय दूसरेसे प्रकाश ग्रहण करनेवाला बन गया है, स्वतन्त्र होकर भी परतन्त्र-सा हो गया है। देवि! प्रकृतिरूपसे तुमने ही महत्तत्त्वको प्रकट किया है। यह सम्पूर्ण मायामय जगत् तुम्हारे द्वारा ही रचा गया है। तीनों गुणोंका कार्य तुमने ही प्रकट किया है। तुम्हीं त्रिगुणमयी सूक्ष्म प्रकृति हो और मैं सदा तुम्हारे सब व्यापारोंका साक्षीमात्र हूँ। मैं हिमालयके पास नहीं जाऊँगा। उनसे किसी प्रकार याचना नहीं करूँगा। क्योंकि किसीके सामने 'दीजिये' ऐसा वचन मुँहसे निकालनेपर पुरुष उसी क्षण लघुताको प्राप्त हो जाता है।

ऐसा कहकर भगवान् शिव अपने स्थानको चले गये। तदनन्तर हिमवान् अपनी धर्मपत्नी मेना तथा दूसरे पर्वतोंके साथ वहाँ आये। पार्वतीजीने जब उन्हें देखा तो वे उठकर खड़ी हो गयीं और अपने माता-पिता तथा भाई-बन्धुओंको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। तब हिमालयने मधुर वाणीमें पूछा—'साध्वी! तुमने जैसे-तैसे यहाँ रहकर क्या किया है?'

पार्वती बोलीं—पिताजी! मैंने यहाँ उत्तम तपस्याके द्वारा कामनाशक महादेवजीकी आराधना की है। मेरा वह महान् कार्य, जो अन्य सब लोगोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है, आज सिद्ध हो गया। महादेवजी सन्तुष्ट होकर यहीं मेरा वरण करनेके लिये पधारे थे; किंतु जब मैंने यह कहा कि मेरे पिताकी अनुपस्थितिमें इस समय आप मेरा पाणिग्रहण कैसे कर सकते हैं; तब वे जिस मार्गसे आये थे उसीसे लौट गये।

पार्वतीकी यह बात सुनकर बन्धु-बान्धवोंसहित धर्मात्मा हिमवान्‌को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपनी पुत्रीसे बोले—'अब हम सब लोग घरको चलें।' उस समय सब लोग एकत्र हो पार्वतीको सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये और उनकी प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर हिमवान् पार्वतीको अपने घर ले आये। देवतालोग दुन्दुभि बजाने लगे। उनके शङ्ख और तूर्य भी बज उठे। इस प्रकार अपने पिताके घरमें आयी हुई पार्वती उत्कृष्ट तेजसे सुशोभित होने लगीं। वे मन-ही-मन सदा भगवान् शिवका चिन्तन करती रहती थीं। श्रेष्ठ देवता भी उनके प्रति पूज्यभाव रखते थे।

सप्तर्षियोंका आगमन, शिवके साथ पार्वतीके विवाहका निश्चय, समस्त देवताओंका शिवकी बारातमें आगमन, हिमवान्‌द्वारा स्वागत तथा मण्डपमें कन्यादानकी तैयारी

लोमशजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् महेश्वरके भेजे हुए सप्तर्षिगण सहसा हिमवान्‌के पास आये। उन्हें आया देख हिमवान्‌के मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने शीघ्र उठकर उन सबका स्वागत-सत्कार किया। फिर मस्तक झुकाकर विनयपूर्वक पूछा—'महर्षियो! आपलोग कैसे पधारे हैं? अपने आगमनका कारण बतलाइये।' तब सप्तर्षियोंने कहा—'पर्वतराज! हम लोग भगवान् शिवके भेजे हुए हैं, यहाँ आपहीके पास आये हैं। आपकी कन्याको देखना ही हमारे आनेका उद्देश्य है। अतः शीघ्र अपनी कन्या हमें दिखाइये।' 'बहुत अच्छा' कहकर हिमवान्‌ने पार्वतीको वहाँ बुलाया और सप्तर्षियोंसे हँसते हुए कहा—'यही मेरी कन्या है, किंतु इस समय मुझे आपसे एक विशेष

हुए बड़े आदरसे बोले—'महाविष्णो ! शीघ्र चलिये, महादेवजी विवाहके लिये उतावले हो रहे हैं । उनकी ओरसे सब कार्यकी व्यवस्था करनेवाले केवल आप ही हैं ।' नारदजीकी बात सुनकर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन नारदजी तथा पार्षदोंको साथ ले वहाँसे चल दिये । भगवान् विष्णु योगेश्वरोंके भी प्रभु हैं, महान् हैं तथा परमात्मा हैं । वे उस समय गरुड़पर आरूढ़ हो श्रेष्ठ देवताओंके साथ आकाशमार्गसे भगवान् शिवके समीप गये । योगीजन जिनके चरणारविन्दोंका सदा चिन्तन करते हैं, वे महादेवजी भगवान् विष्णुको आया देख उठकर खड़े हो गये और आनन्दमग्न हो उन्हें छातीसे लगा लिया । फिर भगवान् हरि और हर दोनों एक ही आसनपर विराजमान हुए । दोनोंने एक दूसरेकी कुशल पूछी । तत्पश्चात् श्रीमहादेवजी बोले—'विष्णो ! पार्वतीकी तपस्यासे मैं उसके वशमें हो गया हूँ और आज उसका पाणिग्रहण करनेके लिये हिमवान्के घर चलना चाहता हूँ ।' यह बातचीत हो ही रही थी कि ब्रह्माजी भी इन्द्र तथा सम्पूर्ण लोकपालोंके साथ वहाँ आ पहुँचे । इसी प्रकार सब असुर, यक्ष, दानव, नाग, पक्षी, अप्सरा और महर्षि भी आये । सबने एकत्र होकर भगवान् शिवसे एक स्वरमें कहा—'महादेवजी ! अब आप हमलोगोंके साथ हिमवान्के घर पधारिये, पधारिये ।' तब भगवान् विष्णुने भी इस प्रस्तावके अनुरूप बात कही—'शम्भो ! आपको गृह्यसूत्रोक्त विधिके अनुसार ही यहाँ वैवाहिक कर्म करना चाहिये । जैसे नान्दीमुख श्राद्ध और मण्डपकी स्थापना आदि आवश्यक कार्य हैं ।' भगवान् विष्णुके कथनानुसार महादेवजीने अपने हितके लिये सब कुछ वैसा ही किया । आभ्युदयिक श्राद्धकर्ममें जिनका पूजन उचित और आवश्यक है, ऐसे ब्रह्मादि देवताओंकी उन्होंने पूजा की । ब्रह्माजीके साथ कश्यप मुनिने नवग्रहोंका पूजन किया । अत्रि, वशिष्ठ, गौतम, भागुरि, भृगु, बृहस्पति, शक्ति, जमदग्नि, पराशर, मार्कण्डेय, शिलावाक्, शून्यपाल, अक्षतल्लम्, अगस्त्य, च्यवन तथा गोभिल—ये और दूसरे भी बहुतसे महर्षि शिवजीके समीप आये । ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन सबने वहाँ विधिपूर्वक शास्त्रोक्त रीतिसे शुभकर्म सम्पन्न किये । चण्डी देवी सब भूतोंसे घिरी हुई सबके आगे-आगे चलीं । उन्होंने अपने मस्तकपर सोनेका कलश ले रक्खा था । चण्डीके पीछे भगवान् शिवके गण थे और गणोंके पीछे इन्द्र आदि देवता, लोकपाल और ऋषि चल रहे थे । ऋषियोंके पीछे भगवान् विष्णुके महातेजस्वी कुमुद आदि पार्षद थे जो भगवान्के असंख्य भावोंको शीघ्र ही समझ लेनेवाले तथा बड़े मनोहर थे । परम पुरुषार्थ प्रदान करनेवाले तथा विश्वके एकमात्र बन्धु परमात्मा भगवान् श्रीहरि शिवजीके साथ-साथ चल रहे थे । तीनों लोकोंके एकमात्र पालक भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ अपने वाहन गरुड़जीकी पीठपर बैठे थे । बड़े-बड़े मुनीश्वर अपने हाथोंमें सुन्दर चँवर लिये हवा कर रहे थे । सर्वेश्वर श्रीहरि उन सबके साथ बड़ी शोभा पा रहे थे । इसी प्रकार ब्रह्माजी भी चारों वेदों, छहों वेदाङ्गों, आगमों, इतिहासों और पुराणोंके साथ अपने वाहन हंसपर विराजमान थे । ब्रह्मा, विष्णु, देवेश्वरगण तथा ऋषिवृन्दसे घिरे हुए भगवान् शिव अपने वाहन वृषभपर आरूढ़ होकर चल रहे थे । वे सम्पूर्ण योगेश्वरोंके लिये भी दुर्लभ तथा अगम्य हैं । वेद, देवता, सिद्ध और महर्षिगण जिसे धर्म कहते हैं, उसी धर्मस्वरूप, धर्मवत्सल वृषभपर महादेवजी आरूढ़ थे । मातृकाएँ उन्हें सब ओरसे घेरकर अपनी मधुर वाणीद्वारा भगवान् शिवके लिये मङ्गलाचार करती थीं । इस प्रकार भगवान् महेश्वर सम्पूर्ण देव-दानवोंके साथ सब प्रकारसे अलंकृत हो नारियोंमें श्रेष्ठ पार्वतीजीका पाणिग्रहण करनेके लिये गिरिराज हिमवान्के घर गये ।

उधर गिरिराज हिमालय भी बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी पुत्रीके लिये उसी प्रकार सब मङ्गलाचार करा रहे थे । उन्होंने गर्गजीको पुरोहित बनाकर महान् वैभवके द्वारा माङ्गलिक भूमि निर्माण करायी । विश्वकर्माको बुलाकर उनके द्वारा बड़े आदरके साथ अत्यन्त विस्तृत मण्डप तैयार कराया, जो बहुत-सी वेदियोंके कारण अतिशय मनोहर जान पड़ता था । वह मण्डप अनेक प्रकारके गुणोंसे तथा भाँति-भाँतिके आश्चर्यभरे दृश्योंसे सुशोभित था । उसका विस्तार हजारों योजनका था । वह अपनी दिव्य निर्माण-कलासे देवताओंका भी मन मोहे लेता था ।

तदनन्तर इन्द्र आदि सब देवता नारदजीको आगे करके हिमवान्के परम अद्भुत भवनमें एक साथ गये । उसे विश्वकर्माने विचित्र ढंगसे बनाया था । वहाँ अनेक प्रकारकी आश्चर्यभरी बातें देखनेमें आती थीं । वह यज्ञ-मण्डप अत्यन्त पवित्र और उत्तम था । बहुत लोगोंने सर्वश्रेष्ठ बताकर उसकी प्रशंसा की थी । उसकी कारीगरी अद्भुत थी । वह मन और बुद्धिके लिये अतर्क्य था । बुद्धिमान् विश्वकर्माने इस प्रकार

विचित्र यज्ञ-मण्डपकी रचना की थी। वे सम्पूर्ण देवेश्वर ऋषियोंके साथ उस मण्डपमें प्रवेश करना ही चाहते थे तबतक हिमवान्‌की दृष्टि उनके ऊपर पड़ी। हिमवान्‌ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और उन सबके ठहरनेके लिये बड़े मनोहर गृह प्रदान किये। गन्धर्व, सिद्ध, प्रमथ, यक्ष, देव, नाग तथा अप्सराएँ—इनमें जो जहाँ सुखपूर्वक रह सके, उन्हें वहीं विश्रामस्थान हिमालयने दिया।

हिमवान्‌से सम्मानित होकर सब देवताओंने अपने परिवार और वाहनोंसहित उस मण्डपमें आनन्दपूर्वक निवास किया। विश्वकर्माने उसमें बहुत विस्तृत अवकाश बना रक्खा था। ब्रह्माजीके निवासके लिये अत्यन्त प्रकाशमान स्थान बनाया गया था। उसी प्रकार भगवान् विष्णुके लिये दूसरा भवन बना था जो अत्यन्त विचित्र और बहुत ही प्रकाशमान था। विश्वकर्माने उसे अपने हाथों सँवारकर अत्यन्त मनोहर बना रक्खा था। इसी प्रकार चण्डीगृह भी उन्होंने बड़ा सुन्दर बनाया था। उसके अतिरिक्त विश्वकर्माने जो एक अत्यन्त विचित्र, परम मनोहर, महान् मङ्गलमय, श्रेष्ठ देवताओंद्वारा प्रशंसित, कैलाशके समान अतिशय प्रभापूर्ण तथा अत्यन्त शोभायमान भवन बना रक्खा था, उसीमें हिमवान्‌ने महान् वैभवके साथ भगवान् शिवको ठहराया। इसी समय मेनादेवी अपनी सखियों तथा ऋषि-मुनियोंके साथ भगवान् शिवकी आरती उतारनेके लिये आयीं। उस समय जो बाजे बज रहे थे, उनके शब्दसे तीनों लोक गूँज उठे। मेनाने तपस्वी शिवकी अपने हाथों आरती उतारी। वे बड़ी सती-साध्वी थीं। जामाताको देखकर उन्हें पार्वतीकी कही हुई सब बातें स्मरण हो आयीं और वे विस्मय-विमुग्ध हो उठीं। मेना मन-ही-मन कहने लगीं—'अहो! पार्वतीने पहले मेरे समीप जो कुछ कहा था, उससे कहीं अधिक सौन्दर्य इस समय मैं महादेवजीके अङ्गोंमें देख रही हूँ। यह सौन्दर्य तो अनिर्वचनीय है।' इस प्रकार विस्मयमें डूबी हुई मेनादेवी अपने घरमें लौट आयीं।

उस समय पार्वती स्नान करके मङ्गलपीठपर बैठी थीं। ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने सब ओरसे उन्हें घेरकर आरती उतारी। तदनन्तर गर्गाचार्यने कहा—'विद्वानो! आपलोग इसी समय पाणिग्रहणके लिये भगवान् शङ्करको इस मण्डपमें ले आवें। इस कार्यमें शीघ्रता होनी चाहिये।' गर्गाचार्यका वचन सुनकर गिरिराज हिमवान्‌के सब मन्त्री भगवान् शङ्करके पास गये और उन्होंने तीन कलशोंके जलसे माङ्गलिक विधिके अनुसार भगवान् सदाशिवको स्नान कराया तथा उनकी आरती भी उतारी। स्नान करके सुन्दर वस्त्र धारण कर लेनेके पश्चात् शङ्करजीका उन सबने पुनः पूजन किया। उसके बाद उन्हें सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित करके हाथीकी पीठपर चढ़ाया। उस समय भगवान् शिवके मस्तकपर बहुत बड़ा छत्र तना हुआ था, उस छत्रसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। ऊपरसे चँदोवा तना था और सब ओरसे उनके लिये चँवर डुलाये जा रहे थे। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा सब लोकपाल 'वर' के आगे-आगे चलते हुए उत्कृष्ट शोभासे सम्पन्न दिखायी देते थे। उस यात्राके समय शङ्ख, भेरी, पटह आनक और गोमुख आदि बाजे बज रहे थे। सम्पूर्ण गायक उत्तम माङ्गलिक गीत गा रहे थे। अरुन्धती, अनसूया, सावित्री तथा मातृकाओंसे घिरी हुई लक्ष्मीजी भी उस शोभा-यात्रामें सम्मिलित थीं। इन सबके साथ जगत्‌के एकमात्र बन्धु भगवान् शिव अपने उत्तम तेजसे सुशोभित हो रहे थे। चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, श्रेष्ठ लोकपाल तथा महर्षिगण भी उनके साथ थे। साक्षात् वायुदेव पंखा कर रहे थे। चन्द्रमाने उनके सिरपर छत्र लगा रक्खा था। सूर्य आगे रहकर अपने तेजसे तप रहे थे। देवराज इन्द्र हाथमें बेंतकी छड़ी लेकर छड़ीदारका काम करते थे। इस प्रकार देवता और पर्वत भगवान् शिवके आगे चलते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे। उस समय देवता और मुनि भगवान् शिवके ऊपर फूल बरसा रहे थे, जिससे उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। सामने हिमवान्‌का सुन्दर भवन था जो महान् वैभवके कारण सब ओरसे शोभासम्पन्न दिखायी देता था। उस घरका आँगन सोनेका बना हुआ था। वहाँ द्वारपर भगवान् शिवकी विशेषरूपसे पूजा हुई। फिर मनुष्य, देवता और दानवोंके द्वारा पूजित होकर उन्होंने उस भवनमें प्रवेश किया। इस प्रकार अन्तःपुरमें पहुँचकर भगवान् शिव यज्ञ-मण्डपमें पधारे। उस समय नाना प्रकारकी स्तुतियोंसे परमेश्वर शिवके गुण गाये जा रहे थे। वहाँ पहुँचनेपर गिरिराज हिमवान्‌ने महेश्वरको हाथीसे उतारा और मङ्गलपीठपर बिठाकर सखियों-सहित मेना तथा पुरोहितने उनकी विशेषरूपसे आरती की। वहाँ मधुपर्क आदिकी जो आवश्यक विधि है, वह सब ब्रह्माजीकी आज्ञासे पुरोहितने तत्काल सम्पन्न की। तत्पश्चात् अन्तर्वेदीमें प्रवेश करके, जहाँ 'तन्वङ्गी' पार्वती समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो वेदीके ऊपर विराजमान थीं, वहीं महादेवजी भी लाये गये। उनके साथ भगवान् विष्णु और

ब्रह्मा भी थे। बृहस्पति आदि विद्वान् लग्नकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गर्ग और वशिष्ठ मुनि जहाँ घड़ीका स्थान था, वहीं बैठे थे। ज्यों ही घड़ी पूरी हुई, गर्गाचार्यने ॐकारका उच्चारण करके हाथ जोड़कर निवेदन किया। अब मङ्गलमय पुण्य मुहूर्त आ गया। पार्वतीने अपने हाथकी अञ्जलिमें अक्षत लेकर उसे शिवके ऊपर छोड़ा। फिर दही, अक्षत और कुशके जलसे उनका भलीभाँति पूजन किया।

इसी समय गर्गाचार्यके आदेशसे हिमवान् अपनी पत्नी मेना-के साथ वहाँ कन्यादान करनेको उद्यत हुए। मेना सोनेका कलश लेकर उनकी अर्द्धाङ्गिनी बनी हुई थीं। परम सौभाग्यवती मेना समस्त आभरणोंसे विभूषित होकर हिमवान्-के साथ बैठी थीं। उस समय हिमवान्ने सबको वर देनेवाले भगवान् विश्वनाथसे कहा—'आज मैं ब्रह्माजी तथा भगवान् विष्णुका संग पाकर और अपने पुरोहित परम महात्मा गर्गजीके साथ बैठकर देवाधिदेव भगवान् शङ्करको कन्यादान करता हूँ। विप्रवर! इस समय कन्यादानके लिये उत्तम बेला आयी है। इसमें आप सङ्कल्प पढ़ें।' 'बहुत अच्छा' कहकर वहाँ आये हुए सब श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने हिमवान्की बात स्वीकार की। वे सभी शुभ समयके ज्ञाता थे। उन्होंने तिथि, मास, नक्षत्र आदिका यथावत् उच्चारण किया। फिर हिमवान् भगवान् शङ्करसे इस प्रकार बोले।

हिमवान्ने कहा—तात! महाभाग! आप अपने गोत्रका नाम बतावें और अपने कुलका विशेषरूपसे परिचय दें।

भगवान् शङ्करके मुखारविन्दसे इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं मिला। उस समय नारदजी बहुत हँसे और अपनी वीणा बजाने लगे। यह देख बुद्धिमान् हिमवान्ने उन्हें मना करते हुए कहा—'प्रभो! आप वीणा न बजाइये।' पर्वतके ऐसा कहनेपर नारदजी बोले—'गिरिराज! तुमने साक्षात् शिवजीसे उनका गोत्र बतानेके लिये कहा है; परंतु इनका गोत्र और कुल तो 'नाद' ही है। भगवान् शङ्कर न तो किसी कुलमें उत्पन्न हुए हैं और न इनका किसी विशेष कुलसे सम्बन्ध ही है। ये गोत्रोंके भी परम गति हैं। महादेवजी नादमें प्रतिष्ठित हैं और नाद उनमें प्रतिष्ठित है। अतः भगवान् शिव नादमय हैं और नादसे ही उपलब्ध होते हैं। परंतप! यही भाव व्यक्त करनेके लिये मैंने इस समय वीणा बजायी है। इनके गोत्र और कुलका नाम ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जानते; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है। भगवान् शिवका कोई रूप नहीं है, इसीलिये किसी कुलमें उत्पन्न न होनेके कारण ये अकुलीन कहलाते हैं। गिरिश्रेष्ठ! इसीलिये तुम्हारे ये 'जामाता' गोत्ररहित हैं। राजन्! मेरे बहुत कहनेसे क्या लाभ। इनके अंशमात्रसे मोहित होकर ये ऋषिलोग भी इनके स्वरूपको यथावत्‌रूपसे नहीं जानते। यह कन्या कौन है, इस बातको अभी तुम भी ठीक-ठीक नहीं जानते। शिव और पार्वती—इन दोनोंसे ही सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति होती है तथा इन्हीं दोनोंके आधारपर यह टिका हुआ है।'

महात्मा नारदका यह वचन सुनकर हिमवान् आदि समस्त पर्वत और इन्द्र आदि सब देवता विस्मित होकर उन्हें 'साधुवाद' देने लगे। भगवान् महेश्वरकी गम्भीरताको जान-कर वहाँ आये हुए सब विद्वान् आश्चर्यचकित हो परस्पर कहने लगे—जिनकी आज्ञासे ब्रह्माजीके द्वारा इस सम्पूर्ण विशाल विश्वकी सृष्टि हुई है, जिनसे अभिन्न होनेके कारण यह समस्त जगत् परात्पररूप तथा आत्मबोधस्वरूप है, स्वतन्त्र परमेश्वररूपसे जाननेयोग्य है, वे भगवान् शिव ही अपने त्रिभुवनमय स्वरूपसे युक्त होकर सर्वत्र विराज रहे हैं।

हिमवान्‌द्वारा कन्यादान, बारातका भोजन और बिदाई, शिवमहिमा तथा कुमारका जन्म

लोमशजी कहते हैं—तदनन्तर ब्रह्माजीकी आज्ञासे हिमवान्ने कन्यादान किया—'इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर! भार्यार्थे प्रतिगृह्णीष्व' (हे परमेश्वर! मैं अपनी यह कन्या आपको धर्मपत्नी बनानेके लिये अर्पित करता हूँ, कृपया स्वीकार करें) यह वाक्य बोलकर उन्होंने अपनी कन्या दे दी। फिर कमलके समान नेत्रोंवाले वे दोनों दम्पति (वर-वधू) वेदीके बाहर लाये गये तथा उन पार्वती और परमेश्वरको बाहरकी ही वेदीपर बिठाया गया। जब होमका कार्य आरम्भ हुआ तब ब्रह्माजी भगवान् शिवके समीप ही ब्रह्मासनपर विराजमान हो गये। हवन पूरा होनेपर ब्राह्मणलोग शान्ति-पाठ करने लगे। उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उच्चस्वरसे बोले जानेवाले वेदमन्त्रोंकी ध्वनिसे वहाँकी सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। तत्पश्चात् देवाङ्गनाओंने महादेवजीकी आरती उतारी तथा ऋषिपत्नियोंने उनका पूजन किया।

गिरिराज हिमालयके घरकी स्त्रियोंने भी वरकी आरती उतारी। संगीतज्ञोंमें कुशल गन्धर्व आदिने अपने गीतोंसे तथा महर्षियोंने स्तुतियोंद्वारा भगवान् शिवको प्रसन्न किया। उदार चित्तवाले गिरिराज हिमालयने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर ऋषि, गन्धर्व, यक्ष और वहाँ पधारे हुए अन्य लोगोंको भी बहुमूल्य रत्न भेंट किये। इसके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु आदि देवेश्वर भगवान् शिवको आगे करके भोजनमें तत्पर हुए। हिमालयने उन सबका सत्कार किया। उन सबने एक साथ मिलकर और एक ही स्थानपर पंक्ति लगाकर लिङ्गी और शृङ्गीके साथ भोजन किया। कोई कोई गण पंक्तिसे अलग होकर भोजन करते थे। उन्होंने अपने लिये पृथक् पात्र बना रक्खा था। नन्दी तथा वीरभद्र आदि महात्मा भगवान् शिवके पीछे बैठकर भोजन कर रहे थे। इन्द्र आदि देवता तथा ऋषि-मुनि भी भगवान् महेश्वरके पास ही भोजन करते थे। चण्डीके गणोंने भी वहाँ भोजन किया। वेताल, क्षेत्रपाल, कूष्माण्ड, भैरव, शाकिनी, डाकिनी, यक्षिणी, मातृका आदि चौंसठ योगिनी तथा अन्यान्य योगीजन भी वहाँ भोजनमें सम्मिलित थे। भगवान् शिवके उन महात्मा गणोंकी संख्या ग्यारह करोड़ थी। ऋषि और देवता आदिके विषयमें तो मैंने पहले ही कह दिया है।

इस प्रकार वे सब बराती खा-पीकर संतुष्ट हुए। उन सबके चित्तमें बड़ा हर्ष था। ब्रह्मा आदि सभी देवता विश्राम करनेके लिये अपने-अपने डेरोंपर गये। इस तरह हिमवान्ने बड़े विस्तारके साथ परम मङ्गलमय और अतिशय शोभायमान वह वैवाहिक उत्सव सम्पन्न किया। अन्तिम दिन हिमवान्ने उत्साहपूर्ण हृदयसे वस्त्र, आभूषण और भाँति-भाँतिके रत्न भेंट करके देवाधिदेव भगवान् शिवका पूजन किया। तत्पश्चात् वे विष्णु भगवानके पूजनमें संलग्न हुए। सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों और आभूषणोंद्वारा उन्होंने लक्ष्मीसहित विष्णुका पूजन किया। इसी प्रकार ब्रह्माजीकी, बृहस्पतिजी और इन्द्राणीसहित इन्द्रकी तथा अन्य लोकपालोंकी भी पृथक्-पृथक् पूजा की। तदनन्तर वस्त्राभूषणों तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे भूत, प्रमथ और गुह्यक-गणोंसहित चण्डीदेवीका भी पूजन किया। इनके अतिरिक्त भी जो लोग वहाँ पधारे थे, उन सबका हिमवान्ने यथावत् सत्कार किया। इस प्रकार उस समय हिमवान्के द्वारा सब देवता, ऋषि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, चारण, मनुष्य तथा अप्सरा—इन सबका भलीभाँति सत्कार किया गया।

इसके बाद भगवान् विष्णुने भी उसी तरह सब पर्वतोंका सत्कार किया। सह्याचल, विन्ध्याचल, मैनाक, गन्धमादन, माल्यवान्, मलय, महेन्द्र, मन्दराचल तथा मेरु—इन सबका श्रीहरिने प्रयत्नपूर्वक पूजन किया। श्वेतकूट, श्वेतगिरि, नीलगिरि, उदयगिरि, शृङ्गाचल, अस्ताचल, मानसाचल, कैलाश तथा लोकालोक पर्वतका पूजन ब्रह्माजीने किया। इस प्रकार सभी श्रेष्ठ पर्वतोंकी वहाँ पूजा की गयी। साथ ही सम्पूर्ण पर्वतवासियोंका भी पूजन किया गया। भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीके साथ सबके स्वागत-सत्कारका कार्य समुचित रूपसे सम्पन्न किया। दूसरे दिन बारात लौटी। हिमालयने अपने बन्धुओंके साथ गन्धमादन पर्वततक वरका अनुगमन किया। शिव और पार्वती दोनों महातेजस्वी दम्पति हाथीपर आरूढ़ हो शोभा पा रहे थे। ब्रह्माजी विमानपर और भगवान् विष्णु गरुड़पर बैठे थे। इन्द्र ऐरावतपर और कुबेर पुष्पक विमानपर विराज रहे थे। पाशधारी वरुण मगरपर तथा यमराज भैंसेपर सवार थे। नैर्ऋत प्रेतपर और अग्निदेव बकरेपर चढ़े थे। वायुदेव मृगपर तथा ईशान वृषभपर आरूढ़ थे। इस प्रकार ये सब लोकपाल और ग्रह अपनी-अपनी सेनाओंके साथ वरको घेरे हुए चल रहे थे। प्रमथ आदि गण भी वरयात्रामें सम्मिलित थे। जिनके कन्यादानरूपी महान् दानसे भगवान् शङ्कर सन्तुष्ट हुए, वे गिरिराज हिमवान् तीनों लोकोंमें विख्यात हो गये।

जिनकी जिह्वाके अग्रभागपर सदा भगवान् शङ्करका दो अक्षरोंवाला नाम (शिव) विराजमान रहता है वे धन्य हैं, वे महात्मा पुरुष हैं तथा वे ही कृतकृत्य हैं। आज भी जिन्होंने 'शिव' इस अविनाशी नामका उच्चारण किया है, वे निश्चय ही मनुष्यरूपमें रुद्र हैं; इसमें संशय नहीं है। महादेवजी थोड़ा-सा बिल्वपत्र पाकर भी सदा सन्तुष्ट रहते हैं। फूल और जल अर्पण करनेसे भी प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् शिव सदा सबके लिये कल्याणस्वरूप हैं। ये पत्र, पुष्प और जलसे ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। इसलिये सबको इनकी पूजा करनी चाहिये। शिवजी इस जगत्में मनुष्योंको महान् सौभाग्य प्रदान करनेवाले हैं। ये एक हैं, महान् हैं, ज्योतिःस्वरूप हैं तथा अजन्मा परमेश्वर हैं। महात्मा शिव कार्य और कारण सबसे परे हैं। ये व्यवधानशून्य, निर्गुण, निर्विकार, निर्बाध, निर्विकल्प, निरीह, निरञ्जन, नित्ययुक्त, निष्काम, निराधार तथा सदैव नित्यमुक्त हैं।*

---

* ते धन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्त एव हि।
द्व्यक्षरं नाम येषां वै जिह्वाग्रे संस्थितं सदा॥
शिव इत्यक्षरं नाम यैरुदीरितमद्य वै।
ते वै मनुष्यरूपेण रुद्राः स्युर्नात्र संशयः॥

ही उसे मारनेके लिये उद्यत हो यहाँसे प्रस्थान करेंगे।' यों कहकर तथा इस कार्यमें भगवान् शङ्करकी अनुमति जानकर वे सम्पूर्ण देवगण सहसा वहाँसे चल पड़े और शङ्करजीके पुत्र 'कार्तिकेय'को आगे करके महान् असुर तारकपर चढ़ आये। इस युद्धमें ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता सम्मिलित थे। देवतालोग युद्धके लिये प्रयत्नशील हैं, यह सुनकर महाबली तारकासुर भी बड़ी भारी सेनाके साथ देवताओंसे लोहा लेनेके लिये चल दिया। देवताओंने वहाँ आती हुई तारकासुरकी बड़ी भारी सेनाको देखा। उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवगण! तुम शङ्करजीके पुत्रको आगे करके युद्धके लिये उद्यत हो जाओ। संग्राममें दैत्योंको जीतकर निश्चय ही विजयी होओगे।' यह आकाशवाणी सुनकर सब देवता युद्धके लिये उत्सुक हो गये। उसी समय कुमार कार्तिकेयका वरण करनेके लिये मृत्युकन्या 'देवसेना' वहाँ आयी। कुमारने ब्रह्माजीके कहनेसे उसे अङ्गीकार किया। तबसे शङ्करजीके पुत्र कार्तिकेयजी देवसेनापति हो गये। उस समय शङ्ख, नगारे, डंका, ढोल, गोमुख तथा दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे।

देवराज इन्द्र कुमार कार्तिकेयको हाथीपर बिठाकर आगे-आगे चलने लगे। उनके साथ देवताओंकी बड़ी भारी सेना थी और लोकपालोंने भी उन्हें सब ओरसे घेर रक्खा था। उस समय दुन्दुभि, भेरी और तुर्य आदि अनेक बाजे बज उठे। कुमार इन्द्रको हाथी देकर स्वयं विमानपर जा बैठे। तब इन्द्रने कुमारके मस्तकपर वरुण देवताका छत्र धारण कराया जो बहुमूल्य मणियोंकी प्रभासे प्रकाशित हो रहा था। उसमें भाँति-भाँतिके रत्न लगे हुए थे, जिससे उसकी शोभा बहुत बढ़ गयी थी। वह छत्र चन्द्रमाकी किरणोंके पड़नेसे अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था। उस समय युद्धकी इच्छा रखनेवाले इन्द्र आदि सम्पूर्ण महाबली देवता अपनी-अपनी सेनाके साथ युद्धमें सम्मिलित हो गये। अपने गणोंके साथ धर्मराज भी वहाँ उपस्थित थे। मरुद्गणोंके साथ वायु, जल-जन्तुओंके साथ वरुण, गुह्यकोंसे घिरे हुए कुबेर, प्रमथगणोंके साथ ईशान और व्याधियोंके साथ नैर्ऋत युद्धके लिये आये थे। इस प्रकार आठों लोकपाल युद्धकी इच्छासे मिलकर तारकासुरको मारनेका विचार करते थे। विश्ववन्द्य शिवपुत्र सेनापति कार्तिकेय आत्मज्ञोंमें श्रेष्ठ थे। उन्हें आगे करके सब देवता पृथ्वीपर उतरे और गङ्गा-यमुनाके बीच अन्तर्वेदीमें आकर खड़े हुए। तारकासुरके अनुचर भी पातालसे वहीं आ गये और देवताओंका वध करनेके लिये अपनी सेनाके साथ युद्धस्थलमें विचरने लगे। तारकासुर भी विमानपर बैठकर वहाँ आया। उस विमानसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वह असुर बड़ा तेजस्वी था। उसके मस्तकपर छत्र तना हुआ था और सब ओरसे चँवर डुलाये जा रहे थे। इससे दैत्यराज तारक बड़ी शोभा पा रहा था। इस प्रकार देवता और दैत्य अन्तर्वेदीमें आकर बड़ी भारी सेनाके साथ खड़े थे। उन्होंने अपने सैनिकोंके पृथक्-पृथक व्यूह बना रक्खे थे। हाथी, ऊँट, भेंड़े, भाँति-भाँतिके घोड़े तथा बहुमूल्य मणियोंसे युक्त विचित्र-विचित्र रथ भी व्यूहके आकारमें खड़े थे। बहुतसे पैदल योद्धा शक्ति, शूल, फरसा, तलवार, तोमर, तीर, पाश, मुद्गर और पट्टिश आदि शस्त्रोंसे सुसज्जित थे। देवता और दैत्योंकी वे दोनों सेनाएँ एक दूसरेकी अपेक्षासे सजकर बड़ी शोभा पा रही थीं। उस समय देवताओंने दैत्योंको मार डालनेका विचार किया।

तदनन्तर दोनों सेनाएँ मेघके समान गम्भीर स्वरमें गर्जना करने लगीं। महाबली देवता और असुर एक दूसरेसे भिड़ गये। उनमें घमासान युद्ध होने लगा। बाणोंकी बौछारोंसे वहाँका सारा मैदान रुण्ड-मुण्डोंसे भर गया। कितने ही धड़ बिना मस्तकके नाच रहे थे। रक्तकी नदियाँ बह चलीं। वह युद्ध बड़ा भयङ्कर हो रहा था। थोड़ी ही देरमें देवताओं और दानवोंका संहार करनेवाला वह युद्ध द्वन्द्व-युद्धके रूपमें परिणत हो गया। वायुदेवके साथ दनुकुमार युद्ध करने लगा। यम्भके साथ स्वयं यमराज भिड़ गये। बलके साथ वरुण और पद्मके साथ कुबेर युद्ध करने लगे। अग्निसे संह्लादका सामना हुआ। महाहनु नैर्ऋतिके साथ लोहा लेने लगा। मेघाभ ईशानके साथ और तारकासुर इन्द्रके साथ भिड़ गया। यक्ष, पिशाच, नाग, पक्षी, पितर, व्याधि, ज्वर, सन्निपात तथा भूत, प्रमथ और गुह्यक-गण भी अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे युद्धमें संलग्न हो गये। वे सब-के-सब दृढ़ निश्चय करके द्वन्द्वयुद्धमें तत्पर थे। कभी एक दूसरेपर विजय पा जाते और कभी परस्पर विजय पाना उनके लिये अत्यन्त कठिन हो जाता था। विजयकी इच्छा रखनेवाले देवता और दानवोंमें जब इस प्रकार घमासान युद्ध चल रहा था उस समय देवतालोग दावानलसे दग्ध हुए बड़े-बड़े वृक्षोंकी भाँति उस युद्धस्थलमें गिरने लगे। गिरकर नष्ट हुए देवताओंकी लाशोंसे उस समय सारी पृथ्वी अत्यन्त भयानक प्रतीत होती थी। तारकासुरने अपनी बड़ी भारी

शक्ति चलाकर देवराज इन्द्रको घायल कर दिया। वे तुरंत ही ऐरावत हाथीसे पृथ्वीपर गिर पड़े और मूर्छित हो गये। इसी प्रकार अन्य लोकपाल भी महाबली असुरोंसे पराजित हुए। उस रणभूमिमें युद्धविद्याविशारद कितने ही देवताओंको हार खानी पड़ी। कितनोंको प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा और कितने ही युद्ध छोड़कर भाग खड़े हुए। इस प्रकार देवसेनाको तहस-नहस होती देख महातेजस्वी राजा मुचुकुन्द तारकासुरसे युद्ध करने लगे। इन्द्र बहुतेरे असुरोंसे घिरे हुए पृथ्वीपर पड़े थे। उन्हें छोड़कर तारकासुर मुचुकुन्दके साथ भिड़ गया। इस प्रकार मुचुकुन्द और तारकासुरमे बड़ा भारी युद्ध हुआ। मुचुकुन्द बड़े बलवान् थे। उन्होंने तलवारसे तारकासुरपर ज्यों ही प्रहार किया त्यों ही तारकासुरकी शक्तिसे आहत होकर वे रणभूमिमें गिर पड़े। गिरनेपर भी वे तत्काल उठकर खड़े हो गये और तारकासुरको मारनेके लिये ब्रह्मास्त्र उठाया। तब नारदजीने कहा—'राजन्! तारकासुर मनुष्यके हाथसे नहीं मारा जायगा। अतः उसके ऊपर इस महान् अस्त्रका प्रयोग न करो। भगवान् शिवके पुत्र कुमार कार्तिकेय ही तारकासुरको मारनेमें समर्थ हैं। अतः तुम सब लोगोंको शान्त रहना चाहिये।'

नारदजीकी बात सुनकर सब देवता मुचुकुन्दके साथ ही शान्त हो गये। तब वीरभद्रने त्रिशूलसे मारकर तारकासुरको भारी आघात पहुँचाया। तारकासुर सहसा पृथ्वीपर गिरा और क्षणभर मूर्छामें डूबा रहा। फिर चेत होनेपर एक ही मुहूर्तमें वह उठकर खड़ा हो गया और शक्तिसे उसने वीरभद्रपर प्रहार किया। भगवान् शिवके सेवक महाबली वीरभद्रने भी भयानक त्रिशूलसे तारकासुरको पुनः चोट पहुँचायी। इस तरह ये दोनों एक दूसरेको मारने लगे। भगवान् शिवके गणोंमें जो अत्यन्त युद्धकुशल और वीरभद्रके समान ही पराक्रमी थे, वे बैलपर सवार हो मस्तकपर जटा-जूट धारण किये हाथोंमें त्रिशूल लिये तथा सर्पोंका आभूषण पहने वहाँ आये और वीरभद्रको आगे करके दैत्योंके साथ लोहा लेने लगे। उन्होंने दैत्योंके साथ बड़ा भयानक संग्राम किया। उस युद्धमें प्रमथगण विजयी हुए। उनसे परास्त होकर असुरलोग युद्धसे विमुख हो गये। अत्यन्त पीड़ित होकर उन्हें पराभव स्वीकार करना पड़ा।

अपनी सेनाको तितर-बितर होती देख तारकासुरने दस हजार भुजाएँ प्रकट कीं और सिंहपर सवार हो रणभूमिमें देवताओंका संहार आरम्भ किया। उसने शिवके बहुत-से गणोंको भी मार गिराया। जान पड़ता था वह तीनों लोकोंका संहार कर डालेगा। उसके सैनिकोंने समस्त शिवगणोंको क्षत-विक्षत कर दिया तथा दैत्यसेनाके सिंहोंने शिवगणोंकी सवारीके काम आनेवाले सब बैलोंको मार डाला। इस प्रकार उस रणक्षेत्रमें जब भगवान् शिवके पार्षद मारे जाने लगे तब भगवान् विष्णुने शङ्करजीके प्रिय पुत्र कुमार कार्तिकेयसे हँसकर कहा—'कृत्तिकानन्दन! तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा वीर नहीं है जो इस पापी तारकासुरका वध कर सके; अतः तुम्हें ही इसका संहार करना चाहिये।' कार्तिकेय बोले—'भगवन्! यहाँ कौन अपने हैं और कौन पराये, इसका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है।' यह सुनकर देवर्षि नारदने कहा—'महाबाहो! तुम भगवान् शङ्करके अंशसे उत्पन्न कुमार हो, इस जगत्के रक्षक और स्वामी हो। देवताओंको सबसे बढ़कर सहारा देनेवाले भी इस समय तुम्हीं हो। वीरवर! तारकासुरने पहले बड़ी उग्र तपस्या की थी। उसीके प्रभावसे उसने देवताओंपर विजय पायी है, स्वर्गलोकको जीत लिया तथा अजेयता प्राप्त कर ली है। उस दुरात्माने इन्द्र और लोकपालोंको भी परास्त किया है तथा तीनों लोक अपने अधिकारमें कर लिये हैं। वह धर्मात्माओंको सतानेवाला है, अतः तुम्हें उसका वध अवश्य करना चाहिये। आज तुम्हीं रक्षक होकर सबका कल्याण करो।'

नारदजीकी बात सुनकर कुमार कार्तिकेय बड़े जोरसे हँसे और विमानसे उतरकर पैदल चलने लगे। अपने हाथमें बड़ी भारी उल्काके समान देदीप्यमान और अत्यन्त प्रभावशालिनी शक्ति लेकर जब वे रणभूमिमें पैदल ही दौड़ने लगे, उस समय बलवानोंमें श्रेष्ठ तथा अत्यन्त प्रचण्ड उस बालकको आते देख तारकासुर कहने लगा—'अहो! यह कुमार अपने शत्रुभूत बड़े-बड़े दैत्योंका संहार करनेवाला है। अतः इसके साथ मैं ही युद्ध करूँगा। अन्य सब वीरों, सम्पूर्ण गणों, गणाधीशों और लोकपालोंको भी मैं अभी मौतके घाट उतारता हूँ।'

यों कहकर महाबली तारकासुर कुमारसे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ा। उसने एक अद्भुत शक्ति हाथमें ले ली। वह इन्द्रका अपमान कर चुका था। उसे फिर वेगपूर्वक आते देख बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ इन्द्रने (सावधान होकर) वज्रसे आघात किया। वज्रकी मार खाकर तारकासुर व्याकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते ही वह पुनः उठकर खड़ा हो गया और बड़े रोषमें भरकर उसने इन्द्रपर शक्तिसे प्रहार

किया। इन्द्र ऐरावत हाथीपर बैठे थे किंतु तारकासुरने उन्हें पृथ्वीपर गिरा दिया। उनके गिरनेपर देवताओंकी सेनामें बड़ा हाहाकार मचा। इन्द्रको पृथ्वीपर गिरा देख प्रतापी वीरभद्र अत्यन्त कुपित हो उठे। वे बड़े बलवान् वीर थे। उन्होंने हाथमें त्रिशूल लेकर इन्द्रकी रक्षा करते हुए महादैत्य तारकपर प्रहार किया। शूलके आघातसे आहत होकर तारकासुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। परंतु वह बड़ा तेजस्वी था। गिरनेपर भी पुनः उठकर खड़ा हो गया। उसने बहुत बड़ी शक्ति लेकर वीरभद्रके वक्षःस्थलपर प्रहार किया। उसकी शक्तिके आघातसे वीरभद्र भी धराशायी हो गये। उस समय समस्त शिवगण, सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, नाग तथा राक्षस बारंबार हाहाकार करने लगे। इतनेहीमें शत्रुओंका नाश करनेवाले महाबली वीरभद्र उठकर खड़े हो गये। उन्होंने एक चमकते हुए त्रिशूलसे जब तारकासुरको मार डालनेका विचार किया उसी समय कुमार कार्तिकेयने उन्हें मना करते हुए कहा—'महामते! तुम इसका वध न करो।' उन्होंने उस रणभूमिमें जब सिंहनाद किया तब आकाशमें खड़े हुए देवता जय-जयकार करने लगे।

वीरवर कार्तिकेय एक बहुत बड़ी शक्ति लेकर उसके द्वारा तारकासुरको मार डालनेके लिये उद्यत हुए। तारकासुर और कुमार कार्तिकेयमें बड़ा विकट, सब प्राणियोंके लिये भयङ्कर तथा अत्यन्त दुस्सह संग्राम हुआ। दोनों वीर हाथोंमें शक्ति लिये एक दूसरेसे जूझ रहे थे। वे शक्तिसे विपक्षीकी शक्तिपर चोट करते थे। दोनोंको उत्साहपूर्वक युद्ध करते देख देवता, गन्धर्व आदि आपसमें कहने लगे—'पता नहीं इस युद्धमें किसकी विजय होगी।' इसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! आज कुमार कार्तिकेय तारकासुरको अवश्य मार डालेंगे। तुम सब लोग चिन्ता न करो। सुखपूर्वक स्वर्गलोकमें स्थित रहो।'

आकाशमें प्रकट हुई इस दैवी वाणीको प्रमथगणोंसे घिरे हुए कुमार कार्तिकेयने भी सुना। सुनकर उस भयानक दैत्यको मार डालनेका निश्चय किया। अतिशय बलवान् महाबाहु कुमारने तारकासुरकी छातीमें शक्तिसे प्रहार किया। परंतु दैत्यराज तारकने उस प्रहारकी कोई परवा न करके स्वयं ही क्रोधमें भरकर अपनी शक्तिसे कुमारपर आघात किया। उस प्रहारसे शङ्करनन्दन कार्तिकेय मूर्च्छित हो गये। जब पुनः वे सचेत हुए तो महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे। तब मतवाला सिंह जैसे हाथीपर झपटता है उसी प्रकार प्रतापी कुमारने तारकासुरपर गहरा प्रहार किया। उस समय वायुकी गति कुण्ठित हो गयी थी, सूर्यका प्रकाश मन्द पड़ गया था, पर्वतों और वनोंसहित समूची पृथ्वी डगमगाने लगी। हिमालय, मेरु, श्वेतकूट, दर्दुर, मलयगिरि, महाशैल, मैनाक, विन्ध्याचल, महागिरि लोकालोक, मानसोत्तर पर्वत, कैलाश, मन्दराचल, माल्यवान्, गन्धमादन, उदयाचल, महेन्द्रगिरि तथा अस्ताचल—ये तथा और भी बहुत-से महातेजस्वी पर्वत कुमारकी सर्वथा कुशल चाहते हुए स्नेहसे व्याकुल हो उठे। पार्वतीनन्दन कुमारने सब पर्वतोंको भयभीत देख उन्हें धीरज बँधाते हुए कहा—'महाभाग पर्वतगण! आपलोग खेद और चिन्ता न करें। आज मैं यहाँ सबके सामने ही इस महापापी दैत्यका वध करता हूँ।'

इस प्रकार पर्वतोंको और देवताओंको भी आश्वासन देकर शङ्करजीके प्रिय पुत्र कुमार कार्तिकेयने मन-ही-मन अपने पिता और माताको प्रणाम किया। फिर हाथमें शक्ति ले उन्होंने दैत्यराज तारकपर बड़े वेगसे प्रहार किया। शक्तिका आघात होते ही असुरोंका स्वामी तारक सहसा धराशायी हो

गया। वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति उसका अङ्ग-अङ्ग चूर हो गया। कुमार कार्तिकेयके द्वारा तारकासुर बलपूर्वक मार दिया गया—यह देवताओं, ऋषियों, गुह्यकों, पक्षियों, किन्नरों, चारणों, सिद्धों तथा अप्सराओंने अपनी आँखोंसे देखा। देखकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ और वे सब मिलकर

कुमार कार्तिकेयकी स्तुति करने लगे। यह घटना देख-सुनकर तीनों लोकोंके निवासी सहसा आश्चर्यचकित हो उठे। सब-के-सब आनन्दमग्न हो गये। भगवान् शङ्कर और सती पार्वती भी बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आये और अपने पुत्रको गोदमें बिठाकर पूर्ण सन्तोष प्राप्त किया। उस समय देवताओंने भगवान् शिव और पार्वतीकी आरती उतारी। तत्पश्चात् अपने पुत्रों तथा मेरु आदि पर्वतोंसे घिरे हुए गिरिराज हिमालय भी वहाँ आये और कुमारका स्तवन करने लगे। इसके बाद इन्द्र आदि सब देवताओंने ऋषियोंके साथ गीत और वाद्यकी ध्वनि करते हुए वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक भाँति-भाँतिके सूक्तोंद्वारा कुमारका स्तवन किया। यह कुमार-विजय नामक चरित्र अत्यन्त अद्भुत है। इसमें कुमारके पराक्रम और माहात्म्यका वर्णन है। उनका यह उदार चरित्र अत्यन्त प्राचीन, परमानन्ददायक तथा मनुष्योंको मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करनेवाला है। जो महात्मा कुमारके इस तारक-वध नामक चरित्रका पाठ या श्रवण करता है, उसके सब पातकोंका नाश हो जाता है।

यमराजके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा शिवके द्वारा यमराजको आत्मज्ञानका उपदेश

लोमशजी कहते हैं—ब्राह्मणो! एक समय पितरोंके स्वामी यमराज यह सुनकर कि सनातन देव भगवान् शङ्कर इस जगत्के रक्षक हैं उनके पास गये, और एकाग्रचित्तसे उन्होंने उनका स्तवन किया।

यमराज बोले—पापोंको जलानेवाले भगवान् भर्गको नमस्कार है। देवताओंके पालक प्रकाशस्वरूप महादेवको नमस्कार है। मृत्युपर विजय पानेवाले जटाजूटधारी रुद्रदेवको नमस्कार है। जिनके कण्ठमें नील चिह्न सुशोभित होता है, जो पाप-तापोंका नाश करनेवाले हैं, सर्वव्यापी आकाश जिनका एक अवयवमात्र है, जो सबको अपना ग्रास बनानेवाले काल हैं, कालके भी स्वामी हैं तथा काल ही जिनका स्वरूप है, उन भगवान् शिवको नमस्कार है।

देवदेवेश्वर! आप सबका कल्याण करनेवाले हैं। कोई बड़ी भारी तपस्या करे तभी आप उसपर प्रसन्न होते हैं। लोकपितामह ब्रह्माजी भी पुण्यात्मा मनुष्योंपर उनके उत्तम कर्मसे ही सन्तुष्ट होते हैं। इसी प्रकार वेदोंद्वारा जानने योग्य सनातन देव भगवान् विष्णु भी अनेक प्रकारके यज्ञों तथा उपवास-व्रतोंसे प्रसन्न होकर मनुष्योंको केवल भक्ति-भाव प्रदान करते हैं, जिससे वे मोक्षको प्राप्त हो सकें। दुर्गाजी भी आराधनासे संतुष्ट होनेपर लौकिक भोग और स्वर्गादि सम्पत्तियाँ देती हैं। भगवान् सूर्य अपने उपासकको आयु और आरोग्य प्रदान करते हैं। इसी प्रकार गणेशजी भी अर्घ्य, पाद्य और चन्दन आदिके द्वारा पूजन करने तथा उनके मन्त्रोंका जप करनेपर विघ्नोंका निवारण करते हैं। परंतु आपके पुत्र कार्तिकेयजीने तो इस जगत्के सभी प्राणियोंके लिये स्वर्गका द्वार खोल दिया है। इनके दर्शनमात्रसे सब लोग, वे पापी ही क्यों न हों, एकमात्र स्वर्गके अधिकारी हो जाते हैं। यह महान् आश्चर्यकी बात है। जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, लोभ जिन्हें छू भी नहीं सका है, जो काम और रागसे रहित हैं, यज्ञ करनेवाले और धर्मनिष्ठ हैं तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् हैं, वे सब पुण्यात्मा पुरुष जिस उत्तम गतिको प्राप्त करते हैं, उसीको अधम-से-अधम, पापपरायण चाण्डाल आदि भी कुमार कार्तिकेयके दर्शनमात्रसे पा लेते हैं। उनका यह कर्म महान् आश्चर्यजनक है। कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त कार्तिककी पूर्णिमामें स्नान करनेसे जो फल होता है वही आपके पुत्रका दर्शनमात्र करनेसे लोग अपनी कई पीढ़ियोंसहित प्राप्त कर लेते हैं।

यमराजका यह वचन सुनकर भगवान् शङ्करने कहा—धर्मराज! जिन पुण्यात्मा मनुष्योंका आन्तरिक पाप नष्ट हो गया है, उनके मनमें श्रद्धाका उदय होता है।* फिर पूर्वपुण्यके प्रभावसे उनके हृदयमें उत्तम तीर्थोंमें जाने और संत-महात्माओंका दर्शन करनेकी प्रबल इच्छा जाग्रत् होती है। धर्मराज! कुमारके दर्शनसे जो पुण्यफल प्रकट होता है उसके लिये तुम्हें रञ्चमात्र भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये। कर्मसंयुक्त वचन—कर्तव्यका आदेश देनेवाला वेदवाक्य सबके लिये फलद होता है। सब तीर्थोंका सेवन, यज्ञोंका अनुष्ठान और नाना प्रकारके दान आदि कार्य अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये करने योग्य हैं। फिर

* येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
निरस्तमस्ति भो धर्म श्रद्धा मनसि वर्तते॥
(स्क० मा० के० ३१। २९)

शुद्ध अन्तःकरणके द्वारा मनुष्य स्वयं ही अपने आत्माका चिन्तन करे । मैं ही आत्मारूपसे सब प्राणियोंके भीतर स्थित हूँ । मैं नित्य, सत्तायुक्त, अपने आपमें स्थित रहनेवाला और व्यवधानशून्य हूँ । शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे परे हूँ । मुझमें किसी प्रकारका विकल्प नहीं है । मैं आत्मनिष्ठ, नित्य, नित्ययुक्त और निरीह हूँ । कूटस्थ (निश्चल), कल्पित भेदों और विवादोंसे दूर रहनेवाला, ज्ञानगम्य, अनन्त, स्वतन्त्र तथा स्वयंप्रकाश प्रभु हूँ । वेदवेत्ता विद्वान् इसे ही ज्ञान कहते हैं । वे सर्वत्र आत्म-दृष्टि रखते हैं । सर्वातीत भावगम्य तत्त्वको जानकर ज्ञानी पुरुष समतायुक्त बुद्धिसे व्यवहार करते हैं और केवल बोधस्वरूप अपने आत्माको भूल जानेके कारण सब जीवसमूह संसार-बन्धनमें बँधे हुए देखे जाते हैं । तत्त्वज्ञानसे रहित बहिर्मुख जीव काम, क्रोध, भय, द्वेष, मोह और मात्सर्यसे युक्त हो एक दूसरेको दूषित करते रहते हैं । इसलिये गुणभेदसे निर्मित इस प्रपञ्चको इस प्रकार असत्य जानकर अपने आपमें स्थित गुणातीत परमात्माका साक्षात्कार ही यथार्थ दर्शन है । जहाँ भेद भी अभेदको, राग भी वैराग्यको और क्रोध भी क्रोधाभावको प्राप्त होता है वही मेरा परम धाम है । उसका वर्णन करता हूँ, सुनो । शब्द वाक्-इन्द्रियका कार्य होनेके कारण अनित्य है—जैसे घट । अतः वह उस परमार्थ वस्तुको प्रकाशित नहीं कर सकता । शब्द वह है, जिससे प्रवृत्तिप्रधान धर्मके लिये प्रेरणा मिलती है । प्रवृत्ति और निवृत्ति तथा सम्पूर्ण द्वन्द्व जिसमें विलीन हो जाते हैं, वही शाश्वत पद माना गया है । वह व्यवधान-शून्य, निर्गुण, बोधस्वरूप, निरञ्जन (निर्लेप), निर्विकल्प, निरीह, सत्तामात्र, ज्ञानगम्य, स्वतःसिद्ध, स्वयंप्रकाश, वेदवेद्य तथा अगम्य है । प्रेतराज ! जिसकी जड़ अनादि कालसे चली आ रही है, मायाके कारण जिसको विचारमें लाना भी कठिन है, उस मायामय संसारसे ऊपर उठकर तथा मायाका सर्वथा परित्याग करके जो ममता और आसक्तिसे रहित हो गये हैं, वे विकल्पशून्य नित्य पदको प्राप्त होते हैं । संसार कल्पनामूलक है । यह कल्पना ही नित्यकी भाँति प्रतीत होती है । जिन्होंने इस कल्पनाको त्याग दिया है वे परम पदको प्राप्त होते हैं । जैसे सीपीमें चाँदीकी प्रतीति, सर्पमें रस्सीकी प्रतीति तथा सूर्यकी किरणोंमें जलकी प्रतीति मिथ्या है, उसी प्रकार नित्य परमात्मामें अनित्य संसारकी प्रतीति भी मिथ्या ही है । आत्मा एक है । उसे जान लेनेपर मनुष्य ममता और अहंकार-से रहित हो जाता है । ऐसे आत्मज्ञानी पुरुषोंको बन्धन कहाँ-से प्राप्त हो सकता है ? क्या कभी आकाशमें फूल होना सम्भव है ? ज्ञानीका संसार-बन्धन वैसा ही असत्य है जैसे खरगोशके सींगका होना । इसलिये अब इस विषयमें बहुत-सी व्यर्थ बातें कहनेसे कोई लाभ नहीं है । विद्वान्, जितेन्द्रिय तथा वीतराग ज्ञानी पुरुष ममताका परित्याग करके परम पद-को प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखते हैं । जिन्होंने ममत्वको त्याग दिया है और लोभ तथा मोहको दूर कर दिया है, वे काम-क्रोधसे हीन मानव परम पदको प्राप्त होते हैं । जबतक मनमें काम, लोभ, राग और द्वेष डेरा डाले रहते हैं, तबतक केवल शब्दमात्रका बोध रखनेवाले विद्वान् परम सिद्धि (मुक्ति) को नहीं प्राप्त होते हैं ।* यमराज ! जिनके सब पाप दूर हो गये हैं वे समस्त ऋषि-मुनि ज्ञानका प्रवचन करनेवाले तथा ज्ञानाभ्यासके अनुकूल बर्ताव करनेवाले हैं, तथापि ज्ञानवेत्ता नहीं हैं । ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञानगम्य वस्तुको जानकर ही मनुष्य ज्ञानी कहलाता है । कैसे जानना चाहिये, किसके द्वारा जानने योग्य है और जिसको जानना अभीष्ट है, वह वस्तु क्या है—ये सब बातें मैं तुम्हारी जानकारीके लिये संक्षेपसे बतलाता हूँ । आत्मा एक ही है तथापि भेदबुद्धि होनेसे वह अनेक-सा दिखायी देता है । जैसे भँवरी देनेवाले-की दृष्टिमें यह पृथ्वी घूमती हुई-सी प्रतीत होती है, उसी प्रकार भेदबुद्धिसे एक आत्मा भी अनेक-सा प्रतीत होता है । अतः विचारके द्वारा ही आत्माका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । गुरुके मुखसे श्रवणके द्वारा तथा भलीभाँति प्रयोगमें लाये हुए विशेष मननके द्वारा भी आत्मतत्त्वका साक्षात्कार करना उचित है । इस प्रकार आत्माको जानकर मनुष्य अनायास ही बन्धनसे मुक्त हो जाता है । यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मायाका जाल है । ममतासे उपलक्षित होनेवाला यह महान् संसार मायामय है । ममताको दूर कर देनेपर बन्धनसे अनायास छुटकारा मिल जाता है । मैं कौन हूँ, तुम कौन हो, तथा महामायाके आश्रित रहनेवाले अन्य लोग भी कहाँसे आये हैं । यह सारा प्रपञ्च बकरीके गलेमें लटकते हुए स्तनकी भाँति निरर्थक है, निष्फल है, प्रकाशहीन है तथा धूमसमूहकी भाँति निस्सार है । इसलिये यमराज ! तुम सर्वथा प्रयत्न करके आत्मतत्त्वका चिन्तन करो ।

---

* यैस्त्यक्तो ममताभावो लोभमोहौ निराकृतौ ।
ते यान्ति परमं स्थानं कामक्रोधविवर्जिताः ॥
यावत् कामश्च लोभश्च रागद्वेषव्यवस्थितिः ।
नाप्नुवन्ति परां सिद्धिं शब्दमात्रैकबोधकाः ॥
(स्क० मा० के० ३१ । ६३-६४)

लोमशजी कहते हैं—भगवान् शङ्करके इस प्रकार उपदेश देनेपर यमराज ज्ञानवान् होकर उस समय साक्षात् आत्मस्वरूपसे स्थित हुए। वे कर्मसे सबके शासक हैं। सब प्राणियोंको उनके कर्मानुसार दण्ड या पुरस्कार देते हैं। वे अपने चित्तको एकाग्र रखकर सदा सब भूतों तथा मनुष्यों-का कल्याण करते हैं।

कार्तिकेयजीकी स्तुति और उनके द्वारा पर्वतोंको वरदान तथा महाराज श्वेतका चरित्र

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! महात्मा कुमारने युद्धमें तारकासुरको मारकर फिर कौन-सा महान् अद्भुत कर्म किया? यह बतलाइये।

सूतजी बोले—तारकासुरको मारा गया देख इन्द्रादि सब देवता बहुत प्रसन्न हुए और सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाले कुमार कार्तिकेयकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—कल्याणस्वरूप भगवान् कार्तिकेयको नमस्कार है। शिवनन्दन! आपको नमस्कार है। विश्वबन्धो! आपको नमस्कार है। विश्वभावन! आपको नमस्कार है। जिन्होंने आपका दर्शन कर लिया, वे चाण्डाल भी सर्वश्रेष्ठ हैं। जगत्-बन्धो! हम आपको नमस्कार करते हैं। देव! इस समय हम आपकी शरणमें आये हैं।*

देवताओंद्वारा की हुई यह स्तुति सुनकर प्रसन्नतासे भरे हुए पर्वतोंने भी सर्वतोभावेन उन गिरिजाकुमारका स्तवन किया।

पर्वत बोले—भगवन्! तुम अनाथोंके नाथ हो। शङ्कर-नन्दन! तुम्हें नमस्कार है। श्रेष्ठ देवताओंद्वारा पूजनीय! तुम्हें नमस्कार है। ज्ञानवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! तुम्हें नमस्कार है। महादानव तारकासुरका विनाश करनेवाले कुमार! तुम्हें नमस्कार है। देववर! तुम्हें नमस्कार है। तुम हमपर प्रसन्न होओ।†

पर्वतोंद्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर शङ्कर और पार्वतीके पुत्र एवं वरदाताओंमें श्रेष्ठ स्वामी कार्तिकेय बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्हें वर देते हुए बोले—'मेरु आदि समस्त पर्वतगण! आप सब लोग मेरे वन्दनीय और प्रयत्नपूर्वक पूजनीय हैं। तपस्वी, ज्ञानी और कर्मयोगी भी निरन्तर आप लोगोंका सेवन करेंगे। आपलोग मेरे वचनसे सम्पूर्ण जगत्को पवित्र कर सकते हैं। पर्वतसम्बन्धी सभी स्थान तीर्थस्वरूप होंगे। आपके ऊपर दिव्य शिवालय, दिव्य मन्दिर, बड़े-बड़े विचित्र गृह तथा दिव्य तपोवन सुशोभित होंगे। इतना ही नहीं, भगवान् शङ्करके विशिष्ट स्वरूप तथा विशिष्ट लिङ्ग भी आपके शिखरोंपर विराजमान होंगे। ये जो मेरे नाना पर्वत-श्रेष्ठ हिमवान् हैं, आजसे ये महाभाग तपस्वियोंके फलदाता होंगे। ये गिरिराज मेरु पुण्यात्माओंके आश्रय होंगे। गिरिश्रेष्ठ लोकालोक तथा महायशस्वी उदयगिरि—ये दोनों शिवलिङ्ग-स्वरूप समझे जायँगे। श्रीशैल, महेन्द्रगिरि, सह्याचल, माल्यवान्, मलयगिरि, विन्ध्याचल, गन्धमादन, श्वेतकूट, त्रिकूट तथा दर्दुर पर्वत—ये और दूसरे भी बहुत-से पर्वत लिङ्गस्वरूप माने जायँगे और मेरे वचनसे ये सभी पापोंका विनाश करनेवाले होंगे।'

शङ्करपुत्र भगवान् कार्तिकेयने इस प्रकार उन सब पर्वतों को वरदान दिया। जिसके मुखमें सदा ('नमः शिवाय' इस) पञ्चाक्षर मन्त्रका जप होता रहता है, जिसका चित्त सदा भगवान् शिवके चिन्तनमें संलग्न रहता है, जो सब प्राणियोंके प्रति समभाव रखता है, दूसरोंकी निन्दामें जिसकी वाणी मूक रहती है तथा जो परायी स्त्रियोंके प्रति अपनेमें नपुंसक भाव ही रखता है, ऐसे उपासकपर भगवान् शिवकी विशेष कृपा होती है।

शौनकजी बोले—महाभाग! हमने कुमार कार्तिकेयके विशिष्ट चरित्रका श्रवण किया, जो परम मङ्गलमय है। अब हम राजाधिराज श्वेतके परम अद्भुत चरित्रके विषयमें जानना चाहते हैं जिन्होंने अपनी भारी शिवभक्तिके प्रभावसे भगवान्

---

* नमः कल्याणरूपाय नमस्ते शिवनन्दन।
विश्वबन्धो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन॥
वरिष्ठाः श्वपचा यैस्तु कृतं वै दर्शनं तव।
त्वां नमामो जगद्बन्धो त्वां वयं शरणं गताः॥
(स्क० मा० के० ३१।८१-८२)

† त्वं नाथोऽसि ह्यनाथानां शङ्करात्मज ते नमः।
नमो देववरैः पूज्य नमो ज्ञानविदां वर॥
नमोऽस्तु ते दानववर्यहन्त-
र्नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद॥
(स्क० मा० के० ३१।८४-८५)

शिवको भलीभाँति सन्तुष्ट किया था। जो लोग भक्तिपूर्वक महादेवजीकी आराधना करते हैं, वे ही भक्त हैं, वे ही महात्मा हैं तथा वे ही कर्मयोगी और ज्ञानी हैं।

लोमशर्जीने कहा—महाभाग महर्षियो ! राजा श्वेतका परम अद्भुत चरित्र सुनो। महात्मा श्वेत अपने राज्यमें सब प्रकारके भोग भोगते रहे तो भी उनकी बुद्धि सदा धर्ममें ही संलग्न रहती थी। उन्होंने धर्मके अनुसार प्रजाको प्रसन्न रखते हुए समस्त पृथ्वीका पालन किया। वे ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, शूरवीर तथा निरन्तर शिवजीके भजनमें तत्पर रहनेवाले थे। राजा श्वेत अपनी बढ़ी-चढ़ी शक्तिसे राज्यका शासन और भक्तिभावसे भगवान् शिवकी आराधना करते थे। इस प्रकार परमेश्वरकी आराधना करते-करते महाराज श्वेतकी सारी आयु बीत चली। उनके मनमें न कभी व्यथा हुई और न शरीरमें ही कोई रोग हुआ। ये संसारी उपद्रव महाराज श्वेतको कभी कष्ट नहीं पहुँचाते थे। इनके राज्यमें सब लोग निर्भय रहते थे। किसीको कोई उपद्रव नहीं था। महाराजके राज्यमें बिना जोते-बोये ही अनाज पैदा होता था। ब्राह्मण तपस्यामें संलग्न रहते और दूसरे लोग भी अपने-अपने वर्ण तथा आश्रम-सम्बन्धी धर्मका पालन करते थे। सारी पृथ्वीमें प्रायः सर्वत्र मङ्गलमय उत्सव ही होता रहता था। भगवान् शिवकी कृपासे महात्मा राजा श्वेतके राज्यमें सब प्रजा सदा मानसिक कष्टसे रहित, आनन्दमग्न तथा सुखी रहती थी। कभी किसीको भी पुत्रकी मृत्यु नहीं देखनी पड़ी, दुःख नहीं उठाना पड़ा, अपमान, महामारी तथा दरिद्रताका कष्ट भी नहीं सहन करना पड़ा। इस प्रकार भगवान् शिवकी पूजामें लगे हुए महात्मा राजा श्वेतके जीवनका बहुत बड़ा समय सफलतापूर्वक बीत गया।

एक दिनकी बात है, राजा श्वेत परमार्थदाता शङ्करजीकी आराधनामें लगे थे। उसी समय यमराजने उनके पास अपने दूत भेजे। उन दूतोंको आज्ञा दी कि चित्रगुप्तके कथनानुसार राजा श्वेतकी आयु पूरी हो गयी है, अतः उन्हें शीघ्र ले आओ। 'जो आज्ञा' कहकर दूतोंने उनकी आज्ञा स्वीकार की और राजाको ले जानेकी इच्छासे वे भगवान् शिवके मन्दिरमें आये। उनके हाथोंमें काल-पाश था तथा वे आकृतिसे भी बड़े भयानक थे। यमदूतोंने शीघ्रतापूर्वक वहाँ आकर देखा, महाराज गहरी समाधि लगाये भगवान् शिवके समीप बैठे थे। उन्हें देखकर उनके मनमें ज्यों ही हलचल हुई त्यों ही वे सब दूत चित्रलिखितकी भाँति निश्चेष्ट हो गये। अतः यमदूत धर्मराजकी आज्ञाका पालन न कर सके। यह सब जानकर यमराज स्वयं ही वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने राजाको सहसा ले जानेके लिये अपना दण्ड ऊपरको उठा रक्खा था। धर्मराजने देखा, महाबाहु श्वेत शिव-भक्तिसे युक्त होकर भगवान् शिवके ही चिन्तनमें तत्पर हैं। केवल ज्ञानका आश्रय ले शान्त-भावसे विराजमान हैं। राजाको इस रूपमें देखकर यमराजके मनमें भी बड़ी हलचल हुई। वे अत्यन्त व्याकुल होकर सहसा चित्रलिखितकी भाँति हो गये। तदनन्तर प्रजाका विनाश करनेवाले काल भी तत्काल वहाँ आ गये। उन्होंने भी शिव-पूजा-परायण राजाको तथा मन्दिरके द्वारपर खड़े हुए दूतों-सहित यमराजको देखा। देखकर यमराजसे पूछा—'धर्मराज! क्या कारण है जो अभीतक तुम इस राजाको नहीं ले गये। तुम्हारे साथ यमदूत भी हैं, तो भी कुछ डरे हुए-से प्रतीत होते हो।'

तब धर्मराजने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—यह राजा भगवान् शिवका भक्त है, अतः इसका उल्लङ्घन करना हमारे लिये अत्यन्त कठिन है। त्रिशूलधारी महादेवजीके भयसे हम यहाँ चित्रलिखित पुतलोंकी भाँति खड़े हैं।

यमराजकी यह बात सुनकर कालदेवता कुपित हो उठे तथा राजाको मारनेके लिये उन्होंने बड़े वेगसे ढाल और तलवार उठायी। उनकी ढाल सूर्यके समान आकृतिवाले आठ फूलियोंसे सुशोभित थी। वे क्रोधमें भरकर शिवालयमें घुसे। वहाँ उन्होंने देखा, राजा श्वेत एकाग्रचित्तसे विशुद्ध ज्ञान-स्वरूप, चिन्मय, स्वयंप्रकाश परमात्माका चिन्तन कर रहे हैं। ऐसी अवस्थामें उन्हें देखकर काल अहङ्कारवश ज्यों ही उनके पास जानेको उत्सुक हुए, त्यों ही भक्तवत्सल भगवान् शङ्करने अपने भक्तकी रक्षा करते हुए तीसरा नेत्र खोलकर कालकी ओर देखा। उनके देखते ही कालदेव तत्काल जलकर भस्म हो गये। राजा श्वेत जब समाधिसे विरत हुए तब बाह्यज्ञान होनेपर उन्होंने धीरेसे आँखें खोलकर देखा। उस समय वहाँ उनके सामने ही कालदेव अद्भुत रूपसे जल रहे थे। राजाने बार-बार उनकी ओर देखा और भगवान शङ्करसे इस प्रकार प्रार्थना की—'सबके दुःखोंको दूर करने-वाले, शान्तस्वरूप, स्वयंप्रकाश एवं स्वयम्भूरूप आप भगवान शङ्करको नमस्कार है। व्यवधानशून्य, सूक्ष्मस्वरूप तथा ज्योतियोंके अधिपति महादेवजीको नमस्कार है। जगदीश्वर ! आप ही सबके रक्षक हैं, आप ही इस जगत्के पिता, माता, सुहृद, सखा, बन्धु, स्वजन, स्वामी तथा ईश्वर हैं। शम्भो ! आपने

यह क्या किया ? किसको मेरे आगे जला दिया ? मैं नहीं जानता यह क्या हुआ है और किसने यह बड़ा भारी अद्भुत कार्य कर डाला है ?'

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए राजा श्वेतका विलाप सुनकर लोक-कल्याणकारी भगवान् शङ्करने कहा—'राजन् ! यह काल है; तुम्हारी रक्षाके लिये मैंने इसे जला दिया है।' राजा श्वेतने पूछा—'भगवन् ! इसने ऐसा कौन-सा कुकृत्य किया था, जिससे आपने इसे इस दशाको पहुँचा दिया ?' भगवान् शिव बोले—'महाराज ! यह संसारके समस्त प्राणियोंका भक्षक है। इस समय यह क्रूर काल तुम्हें अपना ग्रास बनानेके लिये आया था। अतः बहुत-से जीवोंका कल्याण करनेकी इच्छासे मैंने इसे जला दिया है। क्योंकि जो पापी, अतिशय अधर्मपरायण, लोकविनाशकारी तथा पाखण्डी हैं, वे मेरे वध्य हैं।' भगवान् शिवकी यह बात सुनकर श्वेतने कहा—'भगवन् ! काल आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके ही लोकमें सबको नियन्त्रणमें रखता है। आपहीके आदेशसे यह तीनों लोकोंमें विचरता है। इसके डरसे ही यह संसार सदा पुण्य-कर्मका अनुष्ठान करता है। इसलिये आप कृपा करके फिर शीघ्र ही इसे जीवित कर दें।' तब शिवजीने कालको पुनः जीवित कर दिया। तदनन्तर श्रेष्ठ राजा श्वेतने कालको अपने हृदयसे लगा लिया। इस प्रकार चेतना लौटनेपर कालने भगवान् शङ्करकी स्तुति की—'कालका विनाश करनेवाले देवेश्वर ! आप त्रिपुरासुरका संहार करनेवाले हैं। प्रभो ! जगत्पते ! आपने कामदेवको जलाकर उसे अनङ्ग (अङ्गहीन) बना दिया है; तथा आपहीने अत्यन्त अद्भुत ढंगसे दक्ष-यज्ञका विनाश कर डाला था। महान् लिङ्गरूपसे आपने तीनों लोकोंको व्याप्त कर रक्खा है। सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंने सबको अपनेमें लीन करनेके कारण आपके स्वरूपको लिङ्ग कहा है। देवदेवेश्वर ! आपको नमस्कार है। विश्वमङ्गल ! आपको नमस्कार है। नीलकण्ठरूपमें आपको नमस्कार है। मस्तकपर जटा-जूट धारण करनेवाले ! आपको नमस्कार है। आप कारणोंके भी कारण हैं; आपको नमस्कार है। आप मङ्गलोंके भी मङ्गलरूप हैं; आपको नमस्कार है। बुद्धिहीनोंके पालक ! आप ज्ञानियोंके लिये ज्ञानात्मा हैं और मनीषी पुरुषोंके लिये परम मनीषी हैं। विश्वके एकमात्र बन्धु महेश्वर ! आप आदिदेव हैं, पुराण-पुरुष हैं तथा आप ही सब कुछ हैं। वेदान्तद्वारा आप ही जानने योग्य हैं। आपकी महिमा और प्रभाव महान् है। महानुभाव संत आपके ही नामों और गुणोंका सब ओर कीर्तन करते हैं। महेश ! आप ही तीनों लोकोंकी सृष्टि करनेवाले हैं। आप ही इनका पालन और संहार भी करते हैं। आप ही सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी हैं।'

इस प्रकार कालने उस समय जगदीश्वर शिवका स्तवन किया। तदनन्तर राजा श्वेतसे कहा—'राजन् ! सम्पूर्ण मनुष्य लोकमें तुमसे बढ़कर दूसरा कोई पुरुष नहीं है; क्योंकि तुमने तीनों लोकोंके लिये अजेय मुझ कालको भी जीत लिया। आजसे मैं तुम्हारा अनुगामी हुआ। महादेवजीकी ओरसे मुझे अभयदान करो।'

राजाने कहा—भगवन् ! तुम तो साक्षात् शिवके ही एक श्रेष्ठ स्वरूप हो। सम्पूर्ण प्राणियोंका पालन तथा संहार तुम्हारा ही स्वरूप है। तुम्हीं सबके नियन्ता हो। इसलिये तुम मेरे परम पूजनीय हो। आत्मसाक्षात्कारके साधनमें लगे हुए समस्त पुण्यात्मा पुरुष तुमसे ही भय माननेके कारण विविध भावोंसे परमेश्वरकी शरण लेते हैं।

इस प्रकार परम धर्मात्मा राजा श्वेतसे रक्षित होकर कालने भगवान् शिवकी कृपा प्राप्त की और उसे पुनः नवीन चेतना प्राप्त हुई। तब वे कालदेव यमराज, मृत्यु तथा यमदूतोंके साथ भगवान् शिव और महाराज श्वेतको प्रणाम करके अपने निवासस्थानको गये। वहाँ उन्होंने सब दूतोंको बुलाकर कहा—'दूतगण ! संसारमें जो लोग विभूतिके द्वारा त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, मस्तकपर जटा और गलेमें रुद्राक्ष माला रखते हैं, ऐसे लोगोंको तुम कभी मेरे लोकमें न लाना। जो उत्तम भक्तिभावसे भगवान् सदाशिवका पूजन करते हैं, वे साक्षात् रुद्रके ही स्वरूप हैं। जो मस्तकपर एक रुद्राक्ष धारण करते, ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाते तथा जो साधु पुरुष पञ्चाक्षर मन्त्रका सदा जप करते हैं, वे सब तुम्हारे द्वारा पूजनीय हैं। जिस राष्ट्र, देश अथवा ग्राममें शिव-भक्त नहीं देखा जाता, वह श्मशानसे भी बढ़कर अशुभ है।'

यमराजने भी अपने सेवकोंको ऐसा ही आदेश दिया। भगवान् महेश्वरकी पराभक्तिसे युक्त महाराज श्वेत जब कालसे निर्भय हो गये तब उन्होंने भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लिया। पवित्र बुद्धिवाले ज्ञानी पुरुषोंको भी अनेक जन्मोंके पश्चात् भगवान् शिवकी भक्ति प्राप्त होती है। मनुष्योंको चाहिये कि वे सदैव भगवान् सदाशिवका सेवन, वन्दन और पूजन करें।

शिवरात्रिव्रतकी महिमा

लोमशजी कहते हैं—ब्रह्माजीने जब सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की, तब राशियोंसे कालचक्र उत्पन्न हुआ। उस कालचक्रमें सब कार्योंकी सिद्धिके लिये बारह राशियाँ और सत्ताइस नक्षत्र मुख्य हैं। इन बारह राशियों और सत्ताईस नक्षत्रोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ कालचक्रसहित काल जगत्‌को उत्पन्न करता है। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सबको काल ही उत्पन्न करता, वही पालन करता और वही संहार करता है। एकमात्र कालसे ही यह सारा जगत् बँधा हुआ है। अकेला काल ही इस लोकमें बलवान् है, दूसरा नहीं। अतः यह सब प्रपञ्च कालात्मक है। सबसे पहले काल हुआ। कालसे ही स्वर्गलोकके अधिनायक उत्पन्न हुए। तदनन्तर लोकोंकी उत्पत्ति हुई। उसके बाद त्रुटि हुई। त्रुटिसे लव हुआ। लवसे क्षण हुआ। क्षणसे निमिष हुआ जो प्राणियोंमें निरन्तर देखा जाता है। साठ निमिषका एक पल कहा जाता है। साठ पलोंकी एक घड़ी होती है। साठ घड़ीका एक दिन-रात होता है। पंद्रह दिन-रातका एक पक्ष माना जाता है। दो पक्षका एक मास और बारह महीनोंका एक वर्ष होता है। कालको जाननेकी इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान् पुरुषोंको इन सब बातोंका ज्ञान रखना चाहिये। प्रतिपदासे लेकर पूर्णमासीतक पक्ष पूरा होता है। उस दिन पक्ष पूर्ण होनेके कारण ही उसे पूर्णिमा कहते हैं। जिस तिथिको पूर्ण चन्द्रमाका उदय होता है, वह पूर्णमासी देवताओंको प्रिय है तथा जिस तिथिको चन्द्रमा लुप्त हो जाते हैं, उसे विद्वानोंने अमावस्या कहा है। अग्निष्वात्त आदि पितरोंको वह अधिक प्रिय है। ये तीस दिन पुण्यकालसे संयुक्त होते हैं। इनमें जो विशेषता है उसे आपलोग सुनें। योगोंमें व्यतीपात, नक्षत्रोंमें श्रवण, तिथियोंमें अमावस्या और पूर्णिमा तथा संक्रान्ति-काल—ये सब दान-कर्ममें पवित्र माने गये हैं। भगवान् शङ्करको अष्टमी प्रिय है। गणेशजीको चतुर्थी, नागराजको पञ्चमी, कुमार कार्तिकेयको षष्ठी, सूर्यदेवको सप्तमी, दुर्गाजीको नवमी, ब्रह्माजीको दशमी, रुद्रदेवको एकादशी, भगवान् विष्णुको द्वादशी, कामदेवको त्रयोदशी तथा भगवान् शङ्करको चतुर्दशी विशेष प्रिय है। कृष्णपक्षमें जो चतुर्दशी अर्धरात्रिव्यापिनी हो, उसमें सबको उपवास करना चाहिये। वह भगवान् शिवका सायुज्य प्रदान करनेवाली है*। वही शिवरात्रिके नामसे विख्यात है। वह सब पापोंका नाश करनेवाली है। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। पूर्वकालमें कोई विधवा ब्राह्मणी थी, जिसकी प्रकृति बड़ी चञ्चल थी। वह कामभोगमें आसक्त रहती थी। अतः किसी कामी चाण्डालके साथ उसका संबन्ध हो गया। उसके गर्भसे दुरात्मा चाण्डालके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम दुस्सह था। दुस्सह बड़ा ही दुष्टात्मा था। वह सब धर्मोंके विपरीत ही आचरण करता था। महान् पापपूर्ण प्रयोगोंके द्वारा वह सदा नये नये पाप प्रारम्भ करता था। वह जुआरी, शराबी, चोर, गुरुस्त्रीगामी, वधिक, दुष्टात्मा तथा चाण्डालोचित कर्म करनेवाला था।

एक दिन वह अधर्मी मनमें कोई बुरी वृत्ति लेकर ही किसी शिवालयमें गया। उस दिन शिवरात्रि थी। वह रातमें भगवान् शिवके पास उपवासपूर्वक रहा और वहाँ पास ही दैवात् होती हुई शैवशास्त्रकी कथा सुनता रहा। वहाँ उसे लिङ्गस्वरूप भगवान् शिवका दर्शन हुआ। दुष्ट होते हुए भी उसने एक रात व्रत किया और शिवरात्रिमें जागता रहा। उसी शुभ कर्मके परिणामसे उसने पुण्ययोनि प्राप्त करके बहुत वर्षोंतक पुण्यात्माओंके लोकमें सुख-भोग किया। तदनन्तर वह राजा चित्राङ्गदका पुत्र हुआ। उसमें राजराजेश्वरोंके लक्षण थे। वहाँ वह विचित्रवीर्य† के नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसका रूप सुन्दर था। उसे सुन्दरी स्त्रियाँ प्यार करती थीं। उसने बहुत बड़ा राज्य प्राप्त करके भी अपने मनमें अहंकार

---

* निशीथसंयुता या तु कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
उपोष्या सा तिथिः सर्वैः शिवसायुज्यकारिका॥
(स्क० मा० के० ३३।९२)

† यह विचित्रवीर्य शान्तनुपुत्र नहीं है; क्योंकि यह तो शिव-सायुज्य होकर वीरभद्र नामसे भगवान् शिवका गण हुआ और इसने दक्ष-यज्ञका विध्वंस किया जो कि शान्तनुसे बहुत पहलेकी बात है।

नहीं आने दिया। भगवान् शिवकी भक्ति करते हुए वह सदा शिवधर्मके पालनमें ही तत्पर रहा। शिवसम्बन्धी शास्त्रोंको मान्यता देकर वह उन्हींके अनुसार शिवकी पूजा किया करता था। भगवान् शिवके समीप यत्नपूर्वक रात्रिमें जागरण करके भगवान् शिवकी गाथाका गान करता और रोमाञ्चित होकर नेत्रोंसे आनन्दके अश्रुकण बहाया करता था। भगवान् शिवकी कथा सुननेसे उसमें प्रेमके सभी लक्षण प्रकट हो जाते थे। उसे देवाधिदेव शिवकी प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त हुई। भगवान् शिवके ध्यानमें निरन्तर संलग्न रहनेके कारण उसकी सारी आयु व्रतमें ही बीती।

भगवान् शिव इस संसारमें पशुओं (अज्ञानियों) तथा ज्ञानीजनोंको समान रूपसे सुलभ हैं। अतः सुखकी प्राप्तिके लिये एकमात्र सदाशिवका ही सेवन करना चाहिये। शिवरात्रिके उपवाससे राजाको उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ। उस ज्ञानसे सब प्राणियोंमें निरन्तर समभावका अनुभव हुआ। फिर, एकमात्र भगवान् सदाशिव ही सब भूतोंके आत्मारूप हैं, इस ज्ञानका साक्षात्कार हुआ। तत्पश्चात् यह अनुभव हुआ कि इस संसारमें कहीं कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो भगवान् शिवसे रहित हो। इस प्रकार उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ एवं पूर्ण प्रपञ्चातीत ज्ञान प्राप्त कर लिया। वह ज्ञान विज्ञ पुरुषोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है, फिर औरोंकी तो बात ही क्या है। राजा विचित्रवीर्य वह ज्ञान प्राप्त करके भगवान् शिवके अत्यन्त प्रिय भक्त हो गये। शिवरात्रिके उपवाससे उन्होंने सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर ली। उसी पुण्यके प्रभावसे उन्होंने शिवजीकी लीलामें योग देनेके लिये शिवजीसे ही दिव्य जन्म प्राप्त किया। दक्ष-कन्या सतीसे जब शिवजीका वियोग हुआ तब उनके जटा फटकारनेके शब्दसे उन्हींके मस्तकसे जो वीरभद्र नामक वीर उत्पन्न हुआ, वह राजा विचित्रवीर्य ही है। वही दक्ष-यज्ञका विनाश करनेवाला हुआ।

इसी प्रकार अन्य बहुत-से मनुष्य भी शिवरात्रि-व्रतके प्रभावसे पूर्वकालमें सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। राजा भरत आदि तथा मान्धाता, धुन्धुमार और हरिश्चन्द्र आदि नरेश भी इस (विचित्रवीर्यद्वारा किये हुए) उत्तम शिवरात्रि व्रतका अनुष्ठान करके ही सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। इन सबके अतिरिक्त भी बहुत-से कुल इस श्रेष्ठ व्रतके द्वारा तारे गये हैं, जिनकी गणना या वर्णन करना असम्भव है।

देवाधिदेव जगदीश्वर शिवने अपने वीरभद्र आदि असंख्य गणोंके साथ कैलासमें राज्य किया है। वहाँ भगवान् रुद्रके साथ ऋषि और इन्द्रादि देवता भी सेवामें उपस्थित रहते हैं। ब्रह्माजी उनकी स्तुति करते रहते हैं। भगवान् विष्णु आज्ञापालक सेवककी भाँति खड़े होते हैं। इन्द्र सब देवताओंके साथ सेवा-धर्मका पालन करते हैं। चन्द्रमा भगवान्‌के मस्तकपर छत्र धारण करते हैं और वायुदेव चँवर डुलाते हैं। साक्षात् अग्निदेव ही सदा उनके रसोइया बने रहते हैं। स्वर्गवासी गन्धर्व उनके दरबारमें गीत गाते और स्तुति-पाठ करते हैं। इस प्रकार भगवान् महेश्वर कैलाश पर्वतपर अपने प्रतापी पुत्र गणेश और कार्तिकेय आदिके साथ तथा महारानी गिरिराजनन्दिनी उमाके साथ महान् पराक्रमका परिचय देते हुए राज्य करते हैं।

कुमारिका-खण्ड

पञ्चाप्सरस तीर्थमें अर्जुनद्वारा अप्सराओंका उद्धार

मुनियोंने पूछा—विशाल नेत्रोंवाले सूतजी ! दक्षिण समुद्रके तटोंपर जो पाँच तीर्थ हैं, उनका वर्णन कीजिये; क्योंकि मुनिलोग उन तीर्थोंकी अधिक चर्चा करते हैं।

उग्रश्रवा बोले—मुनिवरो ! इस विषयमें पहले नारदजीने जो अर्जुनकी आश्चर्यमयी कथा कही है, उसे मैं आपलोगोंसे विस्तारपूर्वक कहूँगा। पूर्वकालकी बात है, कुछ कारणवश अर्जुन (बारह वर्षोंतक तीर्थयात्राके लिये निकले थे, वे) मणिपुर होते हुए दक्षिण समुद्रके तटपर वहाँके पाँच तीर्थोंमें स्नान करनेके लिये आये। ये तीर्थ वे ही हैं जिन्हें उस समय भयके मारे तपस्वीलोग स्वयं भी छोड़ चुके थे और दूसरोंको भी वहाँ जानेसे मना करते थे। उनमें पहला 'कुमारेश' तीर्थ है, जो मुनियोंको प्रिय है। दूसरा 'स्तम्भेश' तीर्थ है, जो सौभद्र मुनिको प्रिय है। तीसरा 'बर्करेश्वर' तीर्थ है, जो इन्द्रपत्नी शचीको प्रिय लगता है और बहुत उत्तम है। चौथा 'महाकालेश्वर' तीर्थ है, जो राजा करन्धमको अधिक प्रिय है। इसी प्रकार पाँचवाँ 'सिद्धेश' नामक तीर्थ है, जो महर्षि भारद्वाजको विशेष प्रिय है। कुरुश्रेष्ठ अर्जुनने इन पाँचों तीर्थोंका दर्शन किया, जिन्हें तपस्वियोंने त्याग दिया था। वास्तवमें वे पाँचों तीर्थ महान् पुण्यके जनक थे। अर्जुनने नारद आदि महामुनियोंका दर्शन करके उनसे पूछा—'महात्माओ ! ये तीर्थ तो बड़े ही सुन्दर और अद्भुत प्रभावसे युक्त हैं, तो भी ब्रह्मवादी मुनियोंने सदाके लिये इनका परित्याग क्यों कर दिया है ?'

तपस्वी बोले—कुरुनन्दन ! इन तीर्थोंमें पाँच ग्राह निवास करते हैं, जो तपस्वी मुनियोंको जलमें खींच ले जाते हैं। इसीलिये ये तीर्थ त्याग दिये गये हैं।

यह सुनकर महाबाहु अर्जुनने समुद्रके तटपर उन तीर्थोंमें जानेका विचार किया। तब उनसे तपस्वी महात्माओंने कहा—'अर्जुन ! वहाँ तुम्हें नहीं जाना चाहिये। ग्राहोंने बहुतेरे राजाओं और मुनियोंको मार डाला है। तुम तो बारह वर्षतक अनेक तीर्थोंमें स्नान कर चुके होगे। फिर इन पाँच तीर्थोंसे तुम्हें क्या लेना है ? दीपशिखापर जल मरनेवाले पतंगोंकी भाँति इन तीर्थोंमें प्राण देनेके लिये न जाओ।'

अर्जुनने कहा—मुनिवरो ! आपलोगोंका दयालु स्वभाव है, आपने जो सार बात बतायी है, वह ठीक है; तथापि अपनी ओरसे मैं सेवामें कुछ निवेदन करता हूँ। जो मनुष्य धर्माचरणकी इच्छासे कहीं जाता हो, उसे मना करना महात्माओंके लिये भी उचित नहीं है। जीवन बिजलीकी चमकके समान क्षणभङ्गुर है। वह यदि धर्म-पालनके लिये चला जाता (नष्ट हो जाता) है, तो जाय, इसमें क्या दोष है ? जिनके जीवन, धन, स्त्री, पुत्र, खेत और घर धर्मके काममें चले जाते हैं, वे ही इस पृथ्वीपर मनुष्य कहलानेके अधिकारी हैं।*

तपस्वी बोले—पार्थ ! इस प्रकार धर्माचरण करते हुए तुम्हारी आयु बड़ी हो और धर्ममें तुम्हारा अनुराग निरन्तर बना रहे। जाओ, अपना मनोरथ सिद्ध करो।

मुनियोंके ऐसा कहनेपर अर्जुनने उन सबको प्रणाम किया और आशीर्वाद ले सौभद्र महर्षिके उत्तम तीर्थमें जाकर स्नान किया। इसी समय जलके भीतर रहनेवाले महान् ग्राहने नरश्रेष्ठ अर्जुनको पकड़ लिया। महाबाहु अर्जुन बलवानोंमें श्रेष्ठ थे। वे जोर-जोरसे फड़कते हुए उस जलचर जीवको बलपूर्वक लिये-दिये जलसे बाहर निकल आये। ज्यों ही उसे खींचकर वे बाहर लाये, वह ग्राह समस्त आभूषणोंसे विभूषित कल्याणमयी नारीके रूपमें परिणत हो गया। उसका रूप दिव्य था। वह मनको मोह लेनेवाली थी। उस समय अर्जुनने उससे पूछा—'कल्याणी ! तुम कौन हो ? जलमें विचरनेवाली मकरीका रूप तुम्हें कैसे मिला ? ऐसा महान् पाप तुमने क्यों किया ?'

नारी बोली—कुन्तीनन्दन ! मैं देवताओंके नन्दनवनमें निवास करनेवाली अप्सरा हूँ। मेरा नाम वर्चा है। यहाँ मेरी चार सखियाँ और हैं। वे सभी सुन्दरी तथा इच्छा-

---

* यज्जीवितं चाचिरांशुसमानं क्षणभङ्गुरम्।
तच्चेद्धर्मकृते याति यातु दोषोऽस्ति को ननु॥
जीवितं च धनं दारा पुत्राः क्षेत्रं गृहाणि च।
याति येषां धर्मकृते त एव भुवि मानवाः॥

(स्क० मा० कुमा० १। २१-२२)

नुसार गमन करनेवाली हैं। एक दिन उन सबको साथ लेकर मैं देवराज इन्द्रके भवनसे चली और एक वनमें पहुँच-कर मैंने देखा, कोई ब्राह्मण देवता अकेले एकान्तमें बैठकर स्वाध्याय कर रहे हैं। उनका रूप बड़ा सुन्दर है। वीरवर! उनकी तपस्याके तेजसे वह सारा वन प्रकाशित हो रहा था। वे सूर्यकी भाँति उस समस्त प्रदेशको आलोकित कर रहे थे। उन्हें देखकर उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेकी इच्छासे मैं वहाँ उतर गयी। मैं, सौरभेयी, सामेयी, बुद्बुदा और लता सब एक ही साथ उन ब्राह्मण देवताके समीप पहुँचीं तथा गाती और खेलती हुई उन्हें लुभानेकी चेष्टा करने लगीं। वीर! यह सब करनेपर भी उन्होंने अपना मन हमारी ओर नहीं आने दिया। वे महातेजस्वी ब्राह्मण निर्मल तपस्यामें स्थित थे। हमारी अनुचित चेष्टाओंसे कुपित होकर उन्होंने हम सबको शाप दे दिया—'अरी! तुम सब लोग सौ वर्षोंतक जलके भीतर ग्राह बनकर रहो।'

यह शाप सुनकर हमलोग अत्यन्त व्यथित हो उठीं और उन्हीं तपस्वी ब्राह्मणकी शरणमें गयीं। हमने प्रार्थना-पूर्वक कहा—'विप्रवर! हम सबने बड़ा अनुचित किया है; फिर भी आप हमारे अपराधको क्षमा कर देने योग्य हैं। मुने! आप धर्मज्ञ हैं, ब्राह्मण सब प्राणियोंके प्रति मित्र-भाव रखनेवाला बताया गया है। मनीषी महात्माओंका यह वचन सत्य हो। साधुपुरुष शरणागतोंकी रक्षा करते हैं। हम सब आपकी शरणमें आयी हैं; अतः कृपापूर्वक हमें क्षमा कर दें।'

सूर्य और चन्द्रमाके समान तेजस्वी वे धर्मात्मा ब्राह्मण सदा कल्याणमय कर्म करनेवाले थे। अप्सराओंके प्रार्थना करनेपर उन्होंने उनपर कृपा की और इस प्रकार कहा—'देवियो! यदि लोग अपने सिरपर खड़ी हुई मृत्युको देख लें तो उन्हें भोजन भी न रुचे, फिर पापमें प्रवृत्ति तो हो ही कैसे सकती है? अहो! सब रत्नोंसे बढ़कर अत्यन्त दुर्लभ इस मनुष्य-जन्मको पाकर स्त्रियोंके मोहमें फँसे हुए कुछ नीच मनुष्य इसे तिनकेके समान गँवा देते हैं। यह कितने आश्चर्य-की बात है।* हम पूछते हैं, तुमलोगोंका जन्म किसलिये हुआ है अथवा उससे क्या लाभ है। अपने मनमें विचार करके इसका उत्तर दो। हम स्त्रियोंकी निन्दा नहीं करते, जिनसे सबका जन्म होता है। केवल उन पुरुषोंकी निन्दा करते हैं, जो स्त्रियोंके प्रति उच्छृङ्खल हैं, मर्यादाका उल्लङ्घन करके उनके प्रति आसक्त हैं। ब्रह्माजीने संसारकी सृष्टि बढ़ानेके लिये स्त्री-पुरुषके जोड़ेका निर्माण किया है। अतः इसी भावसे स्त्री-पुरुषोंको मिथुन-धर्मका पालन करना चाहिये। इसमें कोई दोष नहीं है। परंतु इतना ध्यान रखना चाहिये कि जो नारी अपने बन्धु-बान्धवोंद्वारा ब्राह्मण और अग्निके समीप शास्त्रीय विधिसे अपनेको दी गयी हो, उसीके साथ सदा गृहस्थ-धर्मका पालन करना श्रेष्ठ माना गया है। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक शास्त्र-मर्यादाके अनुकूल चलाया जानेवाला अपना गार्हस्थ्य उत्तम तथा महान् गुणकारक हो सकता है। जो गृहस्थी शास्त्र-मर्यादाके अनुसार नहीं चलायी जाती, वह दोषका कारण भी हो सकती है। पाँच मुखोंवाले नगरमें, जिसके द्वारोंपर ग्यारह योद्धा पहरा देते हैं, जो पुरुष अपनी स्त्री और अनेक सन्तानोंके साथ मौजूद है, वह अचेतन कैसे हो जाता है। स्त्रीके साथ संयोग इसलिये किया जाता है कि उससे पुत्र उत्पन्न होकर पञ्चयज्ञ आदि कर्मोंद्वारा सम्पूर्ण विश्वका उपकार कर सके, किंतु हाय! मूढ़ मनुष्य उस पवित्र संयोगको किसी और ही भावसे ग्रहण करते हैं। छः धातुओंका सारभूत जो वीर्य है उसे अपने समान वर्णवाली स्त्रीको छोड़कर अन्य किसी निन्दित योनिमें यदि कोई छोड़ता है, तो उसके लिये यमराजने ऐसा कहा है—पहले तो वह अन्नका द्रोही है, फिर आत्माका द्रोही है, फिर पितरोंका द्रोही है तथा अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण विश्वका द्रोही है। ऐसा पुरुष अनन्तकालतक अन्धकारपूर्ण नरकमें पड़ा रहता है। देवता, पितर, ऋषि, मनुष्य (अतिथि) तथा सम्पूर्ण भूत (प्राणी) मनुष्यके सहारे जीविका चलाते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह इन पाँचोंका उपकार करनेके लिये सदा उद्यत रहे। जो मन, वाणी, जिह्वा, हाथ और कानको अपने वशमें करके जितेन्द्रिय हो गया है, उसे हंसतीर्थ कहते हैं। उससे भिन्न जो अजितेन्द्रिय पुरुष हैं, वे सब काकतीर्थ हैं। जो तमोगुणी मनुष्य काकवत् आचरण करनेवाले मनुष्यमें (काकतीर्थमें) हंसबुद्धिसे रमण करते हैं, उनसे देवताओंका क्या प्रयोजन है? यह ध्यान देकर सोचनेकी बात है। इस प्रकार संसारका जो निर्माण हुआ है, उसे हृदयके भीतर स्मरण रखनेवाले पुरुषका मन त्रिलोकी-का राज्य पानेके लिये भी कैसे पापमें प्रवृत्त हो सकता है। अप्सराओ! अन्यान्य मनुष्योंके कर्मोंका जो यह शास्त्रद्वारा

* मस्तकस्थायिनं मृत्युं यदि पश्येदयं जनः।
आहारोऽपि न रोचेत किमुताकार्यकारिता॥
अहो मानुष्यकं जन्म सर्वरत्नसुदुर्लभम्।
तृणवत् क्रियते कैश्चिद् योषिन्मूढैर्नराधमैः॥
(स्क० मा० कुमा० १। ४९-५०)

ज्ञात होनेवाला परिणाम है, उसे मैंने यमलोकमें प्रत्यक्ष देखा है। फिर मुझे कैसे मोह हो ? तुमलोग वनमें जलके भीतर ग्राह होकर रहोगी और उसमें स्नानके लिये आनेवाले पुरुषोंको पकड़ोगी। कुछ वर्षोंतक इस जीवनमें रह लेनेके पश्चात् जब कोई श्रेष्ठ पुरुष तुम्हें जलसे बाहर स्थलपर खींच ले जायगा, तब तुम पुनः अपना यह स्वरूप प्राप्त कर लोगी। मैंने पहले कभी हँसीमें भी झूठ बात नहीं कही है। जैसे निन्दित पेय पदार्थको पीने अथवा अशुद्ध वस्तुके छूनेकी शुद्धि प्रायश्चित्तसे होती है, उसी प्रकार इस शापको भोग लेनेसे ही तुम्हारी उत्तम शुद्धि हो सकती है।'

स्त्री बोली—तदनन्तर उन ब्राह्मण देवताको प्रणाम करके हमने उनकी परिक्रमा की और उस स्थानसे दूर हटकर अत्यन्त दुःखित हो हम बड़ी चिन्तामें पड़ गयीं। सोचने लगीं, 'किस उपायसे थोड़े ही समयमें हम सब उस मनुष्यके समीप जा सकती हैं, जो पुनः हमें अपने स्वरूपकी प्राप्ति करा देगा।' दो घड़ीतक इस प्रकार चिन्ता करनेके पश्चात् हम बड़भागिनी स्त्रियोंने वहाँ स्वतः आये हुए देवर्षि नारदजीको देखा। तब उन्हें प्रणाम करके उदास मुखसे हमलोग खड़ी हो गयीं। नारदजीने हमारे दुःखका कारण पूछा। उनके पूछनेपर हमने सब वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। सुनकर वे इस प्रकार बोले—'दक्षिणमें समुद्रके किनारे जो परम पवित्र और सुन्दर पाँच तीर्थ हैं, वहीं तुम सब लोग शीघ्र चली जाओ। वहाँ शुद्ध चित्तवाले नरश्रेष्ठ पाण्डुनन्दन अर्जुन तुम सबको इस दुःखसे छुटकारा दिलायेंगे।' वीरवर! देवर्षि नारदजीकी यह बात सुनकर हम सब सखियाँ यहीं आ गयी थीं। अब तुम उनकी बात सत्य करने योग्य हो। तुम्हारे-जैसे साधुपुरुषोंका जन्म दीन-दुखियोंकी भलाई करनेके लिये ही होता है।

वर्चाकी यह बात सुनकर पाण्डुकुमार अर्जुनने बारी-बारीसे सब तीर्थोंमें स्नान किया और ग्राह बनी हुई सब

अप्सराओंका कृपापूर्वक उद्धार कर दिया। तदनन्तर वे सब अप्सराएँ वीर अर्जुनको प्रणाम कर तथा उन्हें अनेकानेक आशीर्वाद देकर आकाशमें उड़ गयीं।

सारस्वत-कात्यायन-संवाद—दान और त्यागकी महिमा

उग्रश्रवा मुनि बोले—तदनन्तर अर्जुनने ब्राह्मणोंसे घिरे हुए देवपूजित नारदजीके समीप जाकर सबको पृथक्-पृथक् प्रणाम किया। तब नारदजीने उनसे कहा—'धनञ्जय! तुम्हें शत्रुओंपर विजय प्राप्त हो। तुम्हारी बुद्धि धर्म, देवता और ब्राह्मणोंकी सेवामें लगे। वीर! बारह वर्षकी यह लंबी यात्रा करते समय तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं हुआ? जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयममें हों तथा जिसकी सभी क्रियाएँ निर्विकार भावसे सम्पन्न होती हों, वही तीर्थका पूरा फल प्राप्त करता है।* यह बात तुम्हें अपने हृदयमें धारण करनी चाहिये। तात! हम तुमसे क्या कहें! धर्मराज युधिष्ठिर जिसके भाई और भगवान् श्रीकृष्ण जिसके मित्र हैं, उसे कोई क्या शिक्षा दे सकता है? तथापि यह उचित है कि ब्राह्मणोंद्वारा मनुष्योंको शिक्षा मिले। भगवान् विष्णुने हमें धर्मगुरुके पदपर स्थापित किया है। ब्राह्मणोंके प्रति श्रीहरिने जो उद्गार प्रकट किया है, उसे सुनो—'जिसके सुधाके समान निर्मल यशको सुनना—उसमें गोते लगाना, चाण्डालपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्को तत्काल पवित्र कर देता है, वह मैं विष्णु जो विकुण्ठ नामसे प्रसिद्ध हूँ; मुझे यह परम पवित्र कीर्ति आप-जैसे उत्तम ब्राह्मणोंसे ही प्राप्त हुई है। अतः यदि मेरी यह बाँह भी आपलोगोंके प्रतिकूल चले तो मैं

* यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
निर्विकाराः क्रियाः सर्वाः स तीर्थफलमश्नुते॥
(स्क० मा० कुमा० २। ६)
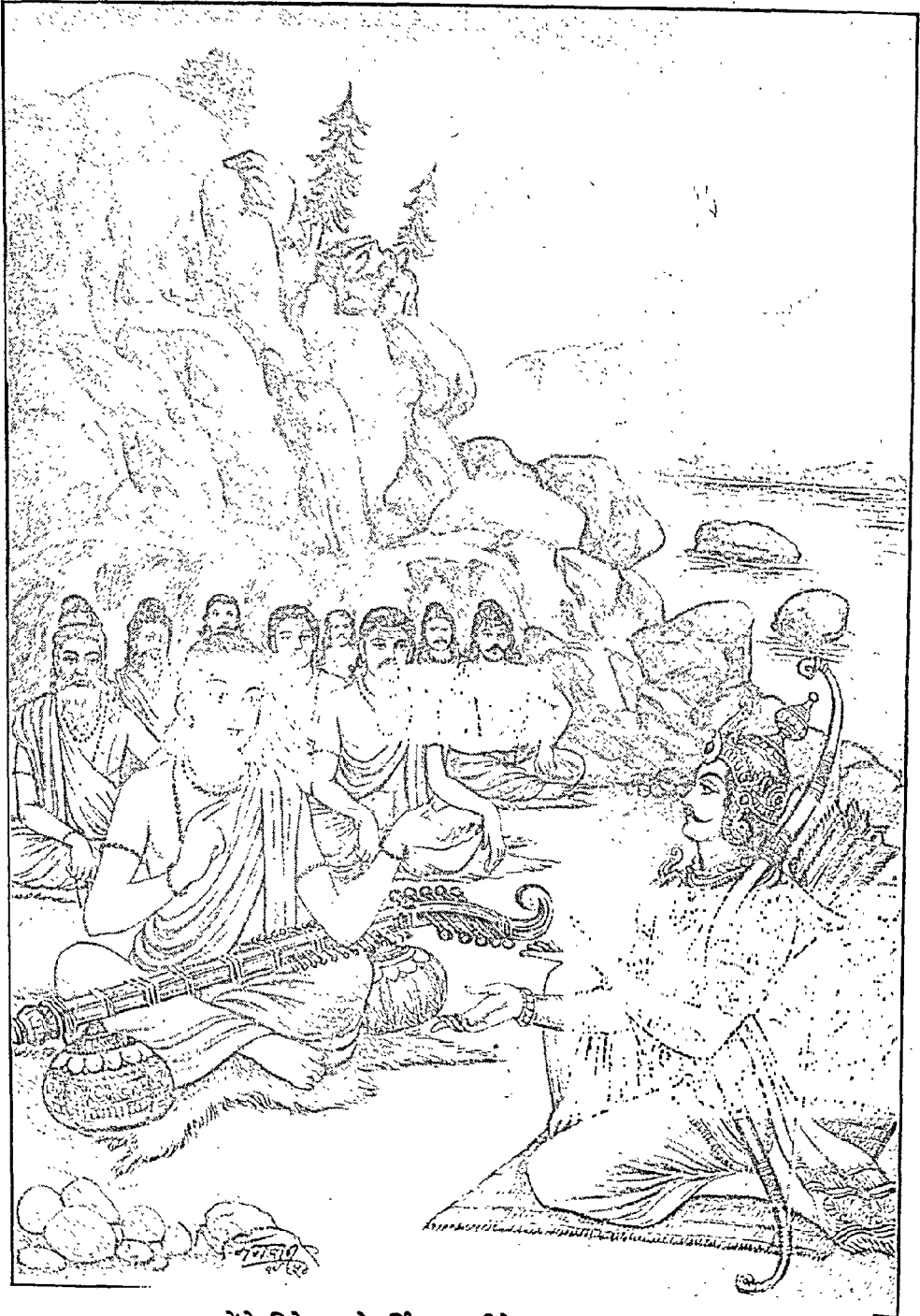
ब्राह्मणोंसे घिरे हुए देवर्षि नारदजीके साथ अर्जुनका संवाद

[पृष्ठ ७४

शिवविवाहकी लौटती हुई बरात

[पृष्ठ ५९
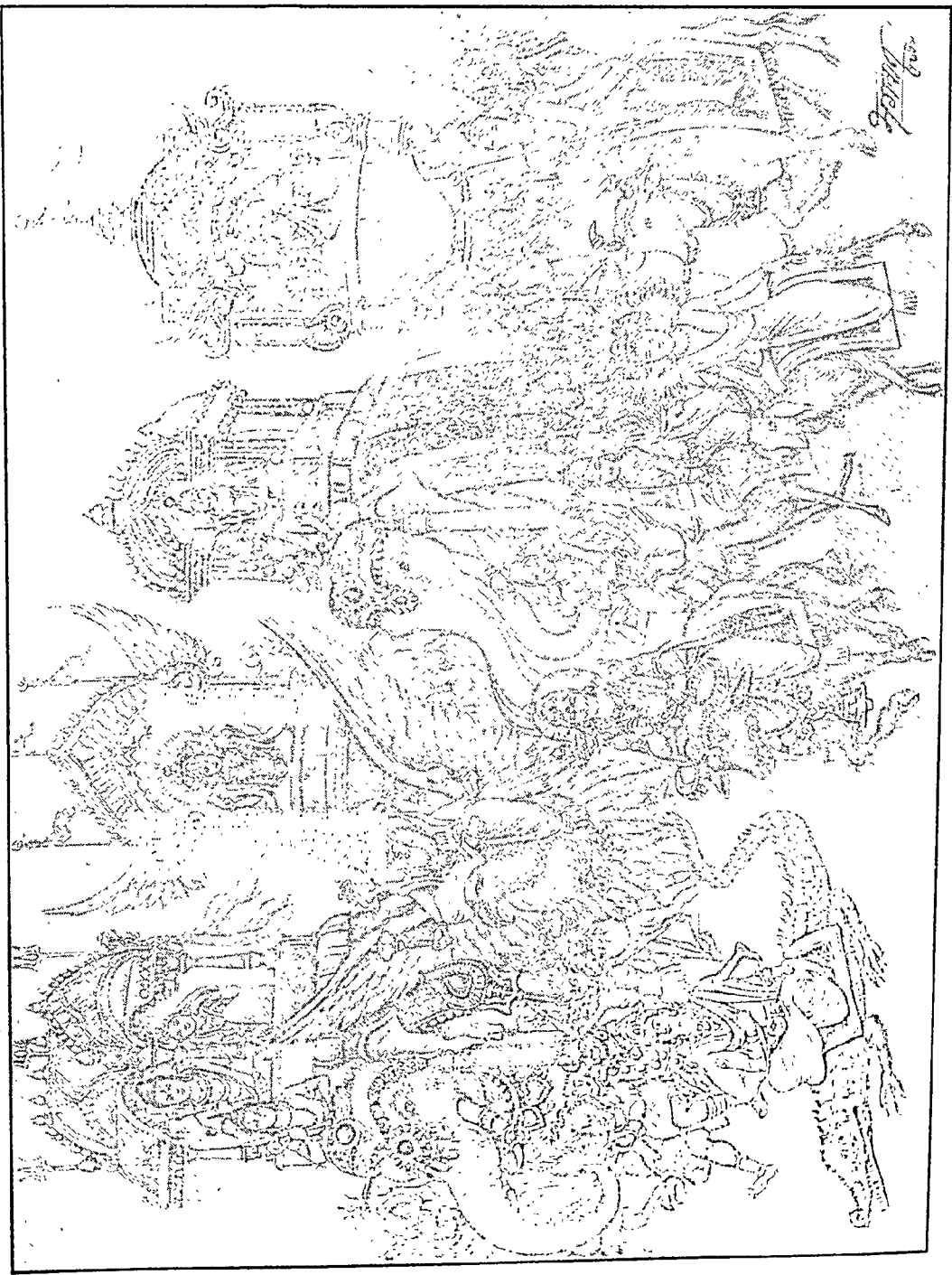
इसे काट डालूँगा; फिर औरोंकी तो बात ही क्या है ?' कुन्तीनन्दन ! मैं तुम्हें कुछ प्रिय समाचार सुनाता हूँ । तुम जिनकी कुशल चाहते हो, वे यदुवंशी और पाण्डव सब कुशलसे हैं । इस समय राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे भीमसेनने राजा वीरवर्माको मार डाला है, जो कौरवोंको सदा सन्ताप पहुँचाता था । जैसे पहले राजा बलि अत्यन्त बलवान् और अजेय थे, उसी प्रकार राजा वीरवर्मा भी समस्त राजाओंके लिये अजेय हो गया था ।'

नारदजीकी कही हुई ये सब बातें सुनकर अर्जुनको बड़ी प्रसन्नता हुई । वे बोले—'मुने ! जो ब्राह्मणोंकी इच्छाके अनुसार चलते और ब्राह्मणोंका सदा समादर करते हैं, वे अकुशली कैसे हो सकते हैं ? मैं सदा संयम-नियमसे रहकर तीर्थोंमें विचरता हुआ इस तीर्थमें आया हूँ । इससे मेरे हृदयमें बड़ा आनन्द है । तीर्थोंका दर्शन धन्य है ! उनमें स्नान करनेका महत्त्व दर्शनसे भी अधिक है, तथा उनके माहात्म्यको सुनना दर्शन और स्नानसे भी बढ़कर है । ऐसा और्व मुनिका कथन है ।* अतः मैं इस तीर्थके गुणोंका वर्णन सुनना चाहता हूँ ।'

नारदजीने कहा—कुन्तीनन्दन ! तुम स्वयं गुणी हो, इसलिये गुणोंको पूछते हो । यह तुम्हारे लिये सर्वथा उचित ही है । गुणी पुरुषोंमें ही धर्मसे उत्पन्न होनेवाले गुणोंको सुननेकी इच्छा होनी सम्भव है । साधुपुरुषोंकी आयु प्रतिदिन धर्मकी बातें सुनने तथा धर्म और ईश्वरके कीर्तन करनेमें ही बीतती है । परंतु पापात्मा पुरुषोंकी आयु सदा बुरी चर्चाएँ करनेमें ही व्यर्थ नष्ट होती है † । इसलिये मैं इस तीर्थके जो बहुत-से गुण हैं, उनका वर्णन करूँगा । अर्जुन ! पहलेकी बात है, मैं कपिलजीके पीछे-पीछे तीनों लोकोंमें विचरता हुआ एक दिन ब्रह्मलोकमें गया । वहाँ मैंने लोकपितामह ब्रह्माजीका दर्शन किया और उन्हें प्रणाम करके कपिलदेवजीके साथ प्रसन्नतापूर्वक बैठा । ब्रह्माजीने स्नेहपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखकर ही मानो मेरा स्वागत किया था । इसी समय वहाँ कुछ ब्राह्मण पधारे, जो सदा जगत्की स्थिति देखनेके लिये लोकहितके उद्देश्यसे भ्रमण करते रहते हैं । वे भी जब प्रणाम करके बैठ गये, तब पितामहने अपनी अमृतमयी दृष्टिसे देखकर उन्हें आनन्दमग्न करते हुए पूछा—'ब्राह्मणो ! तुमने कहाँ-कहाँ भ्रमण किया है ? क्या-क्या देखा अथवा सुना है ? यदि कहीं कोई अद्भुत बात हो तो बताओ ।' उनके इस प्रकार पूछनेपर वे सुश्रवा नामवाले ब्राह्मण ब्रह्माजीको मस्तक झुकाकर इस प्रकार बोले—"भगवन् ! सर्वज्ञ प्रभुके सामने किसी बातका विज्ञापन करना वैसा ही है, जैसा सूर्यके आगे दीपक दिखाना । फिर भी पुण्यके लिये आपने हमें कुछ कहनेकी आज्ञा दी है, इसलिये अवश्य कुछ निवेदन करना उचित है । कात्यायन नामके एक मुनि थे, जिन्होंने बहुत-से धर्मोंका श्रवण करके उनका सारतत्त्व जाननेकी इच्छासे एक अँगूठेके बलपर खड़े हो सौ वर्षोंतक तपस्या की । तदनन्तर दिव्य आकाशवाणी हुई—'कात्यायन ! तुम परम पवित्र सरस्वती नदीके तटपर जाकर सारस्वत मुनिसे पूछो । सारस्वत मुनि धर्मके तत्त्वको जाननेवाले हैं । वे तुम्हें सारभूत धर्मका उपदेश करेंगे ।'

"यह सुनकर मुनिवर कात्यायन मुनिश्रेष्ठ सारस्वतके पास गये और भूमिपर मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम करके अपने मनकी शङ्का इस प्रकार पूछने लगे—'महर्षे ! कोई सत्यकी प्रशंसा करते हैं, कुछ लोग तप और शौचाचारकी महिमा गाते हैं, कोई सांख्य (ज्ञान) की सराहना करते हैं, कुछ अन्य लोग योगको महत्त्व देते हैं, कोई क्षमाको श्रेष्ठ बतलाते हैं, कोई इन्द्रिय-संयम और सरलताको तो कोई मौनको सर्वश्रेष्ठ कहते हैं, कोई शास्त्रोंके स्वाध्यायकी तो कोई सम्यक् ज्ञानकी प्रशंसा करते हैं, कोई वैराग्यको उत्तम बताते हैं तो कुछ लोग अग्निष्टोम आदि यज्ञ-कर्मको श्रेष्ठ मानते हैं और दूसरे लोग मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णमें समभाव रखते हुए आत्मज्ञानको ही सबसे उत्तम समझते हैं । कर्तव्य और अकर्तव्यके विषयमें प्रायः लोककी यही स्थिति है । अतः सबसे श्रेष्ठ क्या है ? यह विचार करनेवाले मनुष्य बहुधा मोहको ही प्राप्त होते हैं । मुने ! आप सर्वज्ञ हैं, ऊपर बताये हुए कार्योंमें जो सर्वोत्तम, महात्मा पुरुषोंके द्वारा भी अनुष्ठान करने योग्य तथा सब पुरुषार्थोंका साधक हो, वह मुझे बतानेकी कृपा करें ।'

सारस्वत बोले—ब्रह्मन् ! माता सरस्वतीने मुझे जो कुछ बतलाया है, उसके अनुसार मैं सारतत्त्वका वर्णन करूँगा, सुनो । यह सम्पूर्ण जगत् छायाकी भाँति उत्पत्ति

---

* तीर्थानां दर्शनं धन्यमवगाहस्ततोऽधिकः ।
माहात्म्यश्रवणं तस्मादित्यौर्वो मुनिरब्रवीत् ॥
(स्क० मा० कुमा० २ । १७)

† साधूनां धर्मश्रवणैः कीर्तनैर्याति चान्वहम् ।
पापानामसदालापैरायुर्याति वृथात्ययम् ॥
(स्क० मा० कुमा० २ । २१)

और विनाशरूप धर्मसे युक्त है। धन, यौवन और भोग जलमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाकी भाँति चञ्चल हैं। यह जानकर और इसपर भलीभाँति विचार करके भगवान् शङ्करकी शरणमें जाना चाहिये और दान भी करना चाहिये। किसी भी मनुष्यको कदापि पाप नहीं करना चाहिये, यह वेदकी आज्ञा है। श्रुति यह भी कहती है कि महादेवजीका भक्त जन्म और मृत्युके बन्धनमें नहीं पड़ता। पूर्वकालमें सावर्णि मुनिने जो दो गाथाएँ गान की हैं, उन्हें सुनो—'भगवान् धर्मका नाम वृष है। वे ही जिनके वाहन हैं, उन महादेवजीकी यदि पूजा की जाती है, तो वही सबसे महान् धर्म कहा गया है। जिसमें दुःखरूपी भँवर उठता है, अज्ञानमय प्रवाह बहता रहता है, धर्म और अधर्म ही जिसके जल हैं, जो क्रोधरूपी कीचड़से युक्त है, जिसमें मदरूपी ग्राह निवास करता है, जहाँ लोभरूपी बुलबुले उठते रहते हैं, अभिमान ही जिसकी पातालतक पहुँचनेवाली गहराई है, सत्त्वगुणरूपी जहाज जिसकी शोभा बढ़ाता है, ऐसे संसारसमुद्रमें डूबनेवाले जीवोंको केवल भगवान् शङ्कर ही पार लगाते हैं। दान, सदाचार, व्रत, सत्य और प्रिय वचन, उत्तम कीर्ति, धर्मपालन तथा आयुपर्यन्त दूसरोंका उपकार—इन सार वस्तुओंका इस असार शरीरसे उपार्जन करना चाहिये। राग हो तो धर्ममें, चिन्ता हो तो शास्त्रकी, व्यसन हो तो दानका—ये सभी बातें उत्तम हैं। इन सबके साथ यदि विषयोंके प्रति वैराग्य हो जाय तो समझना चाहिये, मैंने जन्मका फल पा लिया।* इस भारतवर्षमें मनुष्यका शरीर, जो सदा टिकनेवाला नहीं है, पाकर जो अपना कल्याण नहीं कर लेता, उसने दीर्घकालतकके लिये अपने आत्माको धोखेमें डाल दिया। देवता और असुर सबके लिये मनुष्य-योनिमें जन्म लेनेका सौभाग्य अत्यन्त दुर्लभ है। उसे पाकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे नरकमें न जाना पड़े। यह मानव-शरीर सर्वस्वसाधनका मूल है तथा सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला है। यदि तुम सदा लाभ उठानेके ही प्रयासमें रहते हो, तो इस मूलकी यत्नपूर्वक रक्षा करो। महान् पुण्यरूपी मूल्य देकर तुम्हारे द्वारा यह मानव-शरीररूपी नौका इसलिये खरीदी जाती है कि इसके द्वारा दुःखरूपी समुद्रके पार पहुँचा जा सके। जबतक यह नौका छिन्न-भिन्न नहीं हो जाती, तबतक ही तुम इसके द्वारा संसार-समुद्रको पार कर लो। जो नीरोग मानव-शरीररूपी दुर्लभ वस्तुको पाकर भी उसके द्वारा संसारसागरके पार नहीं हो जाता, वह नीच मनुष्य आत्महत्यारा है। इसी शरीरमें रहकर यतिजन परलोकके लिये तप करते हैं, यज्ञकर्ता होम करते हैं और दाता पुरुष आदरपूर्वक दान देते हैं।'

कात्यायनने पूछा—सारस्वतजी! दान और तपस्यामें कौन दुष्कर है तथा कौन परलोकमें महान् फल देनेवाला है; यह बतलाइये।

सारस्वतने कहा—मुने! इस पृथ्वीपर दानसे बढ़कर अत्यन्त दुष्कर कोई कार्य नहीं है। यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। सभी लोग इसके साक्षी हैं। मनुष्य धनके लिये महान् लोभ होनेके कारण अपने प्यारे प्राणोंका भी मोह छोड़कर महाभयङ्कर समुद्र, जंगल और पहाड़ोंमें प्रवेश कर जाते हैं। दूसरे लोग धनके ही लोभसे सेवा-जैसी निन्दित वृत्तिका आश्रय लेते हैं, जिसे कुत्तेकी वृत्तिके समान त्याज्य माना गया है। कुछ लोग खेतीकी वृत्ति अपनाते हैं, जिसमें प्रायः जीवोंकी हिंसा होती है और स्वयं भी बहुत क्लेश उठाने पड़ते हैं। इस प्रकार जो बड़े दुःखसे उपार्जन किया गया, सैकड़ों आयास-प्रयाससे प्राप्त किया गया, प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है, उस धनका त्याग अत्यन्त दुष्कर है। मनुष्य अपने हाथसे उठाकर जो धन दूसरेको देता है, अथवा जिसे वह खा-पीकर भोग लेता है, वही धन वास्तवमें उस धनीका है। मरे हुए मनुष्यके धनसे तो दूसरे लोग मौज करते हैं। जो प्रतिदिन अपने पास आकर याचना करता है, मैं उसे गुरु मानता हूँ; क्योंकि वह नित्यप्रति दर्पणकी भाँति मेरे चित्तका मार्जन करके इसे स्वच्छ बनाता है। दिया जानेवाला धन घटता नहीं, अपितु सदा बढ़ता ही रहता है। ठीक उसी प्रकार, जैसे कुएँसे पानी उलीचनेपर वह शुद्ध और अधिक जलवाला होता है। एक जन्मके सुखके लिये सहस्रों जन्मोंके सुखोंपर पानी नहीं फेरना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष एक ही जन्ममें इतना पुण्य सञ्चय कर लेता है, जो सहस्रों जन्मोंके लिये पर्याप्त होता है। मूर्ख मनुष्य इस लोकमें दरिद्र हो जानेकी आशंकासे अपने धनका दान नहीं करता, परंतु विद्वान् पुरुष परलोकमें दरिद्र न होना पड़े, इस शङ्कासे यहाँ खुले हाथों धन बाँटता है। जिनका आश्रय ही नाशवान् है, वे मनुष्य धन रखकर क्या करेंगे? जिसके लिये वे धन चाहते हैं, वह शरीर

---

* दानं वृत्तं व्रतं वाचः कीर्तिर्धर्मस्तथायुषः।
परोपकरणं कायादसारात् सारमुद्धरेत्॥
धर्मे रागः श्रुतौ चिन्ता दाने व्यसनमुत्तमम्।
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं सम्प्राप्तं जन्मनः फलम्॥
(स्क० मा० कुमा० २१४७–४८)

सदा रहनेवाला नहीं है। लोगोंने पहलेसे जो 'नास्ति-नास्ति' (नहीं है, नहीं है) इन दो अक्षरोंका अभ्यास कर रक्खा है, उसकी जगह यह 'देहि-देहि' (दो-दो) इन दो अक्षरोंका प्रस्ताव विपरीत जान पड़ता है। याचक जन 'देहि' (दीजिये) कहकर याचना नहीं करते, अपितु कृपण मनुष्यको यह समझाते हैं कि 'दान न करनेवालेकी यही (मेरी-जैसी) अवस्था होती है। अतः आप भी ऐसे ही न बनें।' याचक दाताका उपकार करनेके लिये ही उसके सामने 'देहि' (दीजिये) कहकर याचना करता है; क्योंकि दाता तो ऊपरके लोकोंमें जाता है और दान लेनेवाला नीचे ही रह जाता है। जो दान नहीं करते, वे दरिद्र, रोगी, मूर्ख तथा सदा दूसरोंके सेवक होकर दुःखके ही भागी होते हैं। जो धनवान् होकर दान नहीं करता और दरिद्र होकर कष्ट-सहनरूप तपसे दूर भागता है, इन दोनोंको गलेमें बड़ा भारी पत्थर बाँधकर जलमें छोड़ देना चाहिये। सैकड़ों मनुष्योंमें कोई शूरवीर हो सकता है, सहस्रोंमें कोई पण्डित भी मिल सकता है तथा लाखोंमें कोई वक्ता भी निकल सकता है, परंतु इनमें एक भी दाता हो सकता है या नहीं, इसमें सन्देह है। गौ, ब्राह्मण, वेद, सती स्त्री, सत्यवादी पुरुष, लोभहीन तथा दानशील मनुष्य—इन सातोंके द्वारा ही यह पृथ्वी धारण की जाती है।* उशीनर देशके राजा शिवि ब्राह्मणके लिये अपने शरीरको देकर स्वर्गलोकमें चले गये। विदेहनरेश निमिने अपना सम्पूर्ण राज्य, परशुरामजीने सारी पृथ्वी तथा राजा गयने नगरोंसहित समूची पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी। एक समय जब बहुत दिनोंतक मेघोंने वर्षा नहीं की, तब वशिष्ठजीने सब प्राणियोंको उसी प्रकार जीवित रक्खा, जैसे प्रजापति समस्त प्रजाके जीवनकी रक्षा करते हैं। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ पाञ्चाल-नरेश ब्रह्मदत्तने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको शङ्ख निधि प्रदान करके स्वर्गलोक प्राप्त किया। ये तथा और भी बहुत-से राजर्षि, जो शान्तचित्त और जितेन्द्रिय थे, दान तथा शिव-भक्तिके प्रभावसे रुद्रलोकमें गये। जबतक यह पृथ्वी टिकी रहेगी तबतक इन सबकी कीर्ति स्थिर है। ऐसा विचार करके तुम सारभूत धर्मके अभिलाषी होकर भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये सदा दान करते रहो।

यह उपदेश सुनकर कात्यायन भी मोह त्यागकर वैसे ही हो गये।

नारदजीके द्वारा धर्मवर्माके दानसम्बन्धी जटिल प्रश्नोंका समाधान

नारदजी बोले—वीरश्रेष्ठ अर्जुन! इस प्रकार पृथ्वीपर जो-जो पवित्र तीर्थस्थान हैं, उन सबका दर्शन करते हुए मैं समूची पृथ्वीपर घूमता-घामता भृगुके आश्रमपर पहुँचा, जहाँ श्रेष्ठ एवं पवित्र नर्मदा नदी बहती है, जिसका स्मरण सात कल्पोंतक पुण्य फल देनेवाला होता है। नर्मदा महान् पुण्य प्रदान करनेवाली, पवित्र, सर्वतीर्थमयी तथा कल्याणकारिणी है। वह अपने नामोंका कीर्तनमात्र करनेसे पवित्र कर देती है। दर्शन करनेपर तो वह विशेष पुण्यदायिनी होती है। कुन्तीनन्दन! नर्मदामें स्नान करनेपर जीव सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जैसे पिंगला नामवाली नाड़ी शरीरके

---

* अहन्यहनि याचन्तमहं मन्ये गुरुं तथा। मार्जनं दर्पणस्येव यः करोति दिने दिने॥
दीयमानं हि नापैति भूय एवाभिवर्धते। कूप उत्सिच्यमानो हि भवेच्छुद्धो बहूदकः॥
एकजन्मसुखस्यार्थे सहस्राणि न लोपयेत्। प्राज्ञो जन्मसहस्रेषु संचिनोत्येकजन्मनि॥
मूर्खो हि न ददात्यर्थानिह दारिद्र्यशङ्कया। प्राज्ञस्तु विसृजत्यर्थानमुत्र तस्य शङ्कया॥
किं धनेन करिष्यन्ति देहिनो भङ्गुराश्रयाः। यदर्थं धनमिच्छन्ति तच्छरीरमशाश्वतम्॥
अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्ति नास्तीति यत्पुरा। तदिदं देहि देहीति विपरीतमुपस्थितम्॥
बोधयन्ति न याचन्ते देहीति कृपणं जनाः। अवस्थेयमदानस्य माभूदेवं भवानपि॥
दातुरेवोपकाराय वदत्यर्थीति देहि मे। यस्माद्दाता प्रयात्यूर्ध्वमधस्तिष्ठेत् प्रतिग्रही॥
दरिद्रा व्याधिता मूर्खाः परप्रेष्यकराः सदा। अदत्तदाना जायन्ते दुःखस्यैव हि भाजनाः॥
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्। उभावम्भसि मोक्तव्यौ गले बद्ध्वा महाशिलाम्॥
शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः। वक्ता शतसहस्रेषु दाता जायेत वा न वा॥
गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः। अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥
(स्क० मा० कुमा० २। ६०—७१)

मध्य भागमें स्थित है। इसी प्रकार यह नर्मदा ब्रह्माण्डरूपी शरीरके उसी स्थान (मध्यभाग) में स्थित बतायी गयी है। वहाँ नर्मदामें सब पापोंका नाश करनेवाला शुक्लतीर्थ है जहाँ स्नान करनेमात्रसे ब्रह्महत्या नष्ट हो जाती है। अर्जुन ! उस शुक्ल तीर्थके समीप नर्मदाके उत्तर तटपर भृगु मुनिका आश्रम-मण्डल है, जिसमें तीनों वेदोंके विद्वान् ब्राह्मण रहकर सब ओरसे उसकी शोभा बढ़ाते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंके उच्चघोषसे वहाँकी सम्पूर्ण दिशाएँ गूँजती रहती हैं। मुनिश्रेष्ठ भृगु जहाँ विराजमान थे, उस स्थान-पर मैं भी गया; मुझे आते देख भृगु आदि सब ब्राह्मणोंने उठकर मेरा स्वागत किया। भलीभाँति स्वागत करके मुझे अर्घ्य, पाद्य आदि निवेदन कर वे सब मुनीश्वर मेरे और भृगु-जीके साथ आसनोंपर बैठे। फिर यह जानकर कि मैंने पूर्ण विश्राम कर लिया, मुझसे भृगुजीने इस प्रकार पूछा— 'मुनिश्रेष्ठ ! आपको कहाँ जाना है और कहाँसे आप यहाँ पधारे हैं ?'

तब मैंने भृगुजीसे कहा—महर्षे ! मैंने समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर भ्रमण किया है। मेरी यात्राका उद्देश्य था ब्राह्मणोंको भूमि दान करनेके लिये उत्तम भूमिकी खोज करना। मैं पग-पगपर ऐसी भूमिका अनुसन्धान करता था, जो सर्वथा निर्दोष, पवित्र तीर्थोंसे युक्त, रमणीय और मनोरम हो। किंतु किसी प्रकार ऐसी भूमि मुझे नहीं दिखायी देती।

भृगुजी बोले—देवर्षे ! मैंने भी ब्राह्मणोंको बसानेके लिये पूर्वकालमें समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीपर भ्रमण किया था। उस समय मैंने शुभ पुण्यभूमिका दर्शन किया है। मही नाम-से प्रसिद्ध एक परम पवित्र नदी है, जो सर्वतीर्थमयी होनेके साथ ही परम कल्याणकारिणी है। वह देखनेमें मनोरम, सौम्य तथा महापापोंका विनाश करनेवाली है। नारद ! पृथ्वीपर जो देखे हुए और बिना देखे हुए तीर्थ हैं, वे सब मही नदीके जलमें निवास करते हैं। पुण्यसलिला मही नदी समुद्रमें मिली हुई है। जहाँ मही और समुद्रका संगम हुआ है, वहाँ स्तम्भ नामक तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ जो मनुष्य स्नान करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जानेके कारण यमराजके समीप नहीं जाते।

मैंने कहा—भृगुजी ! आप और हम दोनों मही नदीके शोभायमान तटपर चलेंगे और साथ ही उस परम उत्तम स्थानका पूर्णरूपसे दर्शन करेंगे।

मेरी बात सुनकर भृगुजी मेरे साथ परम पुण्यमय महीतट-का दर्शन करनेके लिये आये। उसे देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मेरे सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया और मैंने हर्ष-गद्गद वाणीमें मुनिश्रेष्ठ भृगुजीसे कहा—'ब्रह्मन् ! आपके प्रसादसे मैं इस स्थानको बहुत उत्तम बनाऊँगा। अब आप अपने आश्रमपर पधारें। मैं आगेके कार्यपर विचार करूँगा।' इस प्रकार भृगुजीको विदा करके मैं महीके तटपर विचार करने लगा कि यह स्थान मेरे अधीन कैसे होगा, क्योंकि यह भूमि सदा राजाओंके अधीन रही है। यदि मैं राजा धर्मवर्माके पास जाकर इस भूमिके लिये याचना करता हूँ तो वे मेरे माँगनेपर मुझे अवश्य दे देंगे; परंतु मुनियोंने तीन प्रकारके द्रव्य बतलाये हैं—शुक्ल, शबल और कृष्ण। इनमें शुक्ल सबसे उत्तम है। शबल मध्यम श्रेणीका है और कृष्ण अधम कह-लाता है। वेदोंको पढ़ाकर शिष्यसे दक्षिणारूपमें जो धन प्राप्त होता है वह शुक्ल कहा गया है। कन्यासे तथा सूद, व्यापार, खेती और याचनासे मिला हुआ धन शबल कहलाता है। जुआ, चोरी, दुःसाहसपूर्ण कार्य तथा छलसे कमाया हुआ धन कृष्ण कहा गया है। (ये शुक्ल, शबल और कृष्ण द्रव्य क्रमशः सात्त्विक, राजस और तामस माने गये हैं।) जो मनुष्य किसी उत्तम तीर्थ और पात्रको पाकर शुक्ल धनके द्वारा श्रद्धापूर्वक धर्मका अनुष्ठान करता है, वह देवयोनिमें उसके फलका उपभोग करता है। जो राजस भावसे शबल धनके द्वारा याचकोंको दान देता है, वह उसका उपभोग मनुष्य-योनिमें करता है। जो तमोगुणसे आवृत हो कृष्ण धनके द्वारा दान करता है, वह नराधम मृत्युके पश्चात् तिर्यग् योनिमें जाकर उसके फलका उपभोग करता है। इस दृष्टिसे मेरे याचना करनेपर मिला हुआ धन राजस होगा, यह बात स्वतः स्पष्ट है। यदि ब्राह्मणभावसे उपस्थित हो राजासे प्रतिग्रहकी याचना करता हूँ तो वह भी प्रतिग्रह होनेके ही कारण मुझे अत्यन्त कष्टदायक प्रतीत होता है। यह राजप्रतिग्रह बड़ा भयंकर है। स्वादमें तो मधुके समान है, किंतु परिणाममें विषके तुल्य है। प्रतिग्रहयुक्त ब्राह्मण नरकमें जाता है, इसीलिये मैं इस प्रतिग्रह-रूपी पापसे अलग हूँ। तब दान और याचना इन दोनोंसे भिन्न एक उपायके द्वारा यह स्थान अपने अधिकारमें करूँ। इसी बातपर मैं बार-बार विचार करने लगा। अर्जुन ! इसी समय मही और समुद्रके पवित्र संगममें स्नान करनेके लिये वहाँ बहुत-से ऋषि-मुनि आ पहुँचे।

मैंने उन सबसे पूछा—'महात्माओ ! आपलोग कहाँसे आये हैं ?' तब वे मुझे प्रणाम करके बोले—"मुने ! हमलोग

सौराष्ट्र देशमें रहते हैं, जहाँके राजा धर्मवर्मा हैं। राजा धर्मवर्माने दानका तत्त्व जाननेकी इच्छासे बहुत वर्षोंतक तपस्या की, तब आकाशवाणीने उनसे एक श्लोक कहा—वह इस प्रकार है, सुनो—

द्विहेतु षडधिष्ठानं षडङ्गं च द्विपाकयुक्।
चतुष्प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते ॥

'दानके दो हेतु, छः अधिष्ठान, छः अङ्ग, दो प्रकारके परिणाम (फल), चार प्रकार, तीन भेद और तीन विनाश-साधन हैं; ऐसा कहा जाता है।'

''यह एक श्लोकमात्र कहकर आकाशवाणी मौन हो गयी। नारदजी! राजाके पूछनेपर भी आकाशवाणीने इस श्लोकका अर्थ नहीं बतलाया। तब महाराज धर्मवर्माने ढिंढोरा पिटवाकर यह घोषणा करायी कि 'जो मेरी तपस्याद्वारा प्राप्त हुए इस श्लोककी ठीक-ठीक व्याख्या कर देगा उसे मैं सात लाख गौएँ, इतनी ही स्वर्णमुद्राएँ तथा सात गाँव दूँगा।' डंकेकी चोटपर राजाकी यह महती घोषणा सुनकर अनेक देशोंके बहुत ब्राह्मण वहाँ गये। नारदजी! हम भी धनके लोभसे वहाँ गये थे, किंतु श्लोक दुर्बोध होनेके कारण उसकी व्याख्या न करके यहाँ लौट आये हैं और अब तीर्थयात्राके लिये जाते हैं।''

अर्जुन! उन महात्माओंकी यह बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें बिदा करके सोचने लगा—'अहो! इस स्थानकी प्राप्तिके लिये मुझे अच्छा उपाय मिल गया, इसमें संशय नहीं है। श्लोककी व्याख्या करके विद्याके मूल्यपर मैं राजासे स्थान और धन दोनों प्राप्त करूँगा। ऐसा करनेपर मुझे प्रतिग्रह नहीं माँगना पड़ेगा। अब मेरा दुर्लभ मनोरथ सिद्ध हो गया। यद्यपि यह श्लोक अत्यन्त दुर्बोध है, तथापि मैं इसे अच्छी तरह जानता हूँ।' कुन्तीनन्दन! इस प्रकार विचार करके मुझे बड़ा हर्ष हुआ। फिर उस महीसागर-संगम तीर्थको बार-बार प्रणाम करके मैं वहाँसे चला और वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके राजा धर्मवर्माके पास जा पहुँचा। वहाँ जाकर मैंने राजासे इस प्रकार कहा—'नरेन्द्र! मुझसे श्लोककी व्याख्या सुनिये और इसके बदलेमें जो कुछ देनेके लिये आपने ढिंढोरा पिटवाया है, उसकी यथार्थता प्रकट कीजिये।'

मेरे ऐसा कहनेपर राजा बोले—'ब्रह्मन्! ऐसी बात तो बहुत अधिक श्रेष्ठ ब्राह्मण कह चुके हैं; परंतु कोई भी इसका वास्तविक अर्थ नहीं बता सका। दानके वे दोनों हेतु कौन हैं? छः अधिष्ठान कौन-से बताये गये हैं? छः अङ्ग कौन हैं? दो फल कौन माने गये हैं? वे चार प्रकार और तीन भेद कौन-कौन-से हैं? तथा दानके तीन विनाश-साधन कौन-कौनसे बताये गये हैं? यह सब स्पष्टरूपसे वर्णन कीजिये। विप्रवर! यदि इन सात प्रश्नोंको आप भलीभाँति स्पष्ट करके बतला सकेंगे तो मैं आपको सात लाख गौ, इतनी ही स्वर्णमुद्रा तथा सात गाँव दे दूँगा। यदि नहीं बता सकें तो खाली हाथ अपने घर लौट जाइयेगा।'

अर्जुन! उनके ऐसा कहनेपर सौराष्ट्रपति राजा धर्मवर्मासे मैंने कहा—'राजन्! दानके जो दो हेतु हैं, उन्हें सुनिये,—दानका थोड़ा होना या बहुत होना अभ्युदयका कारण नहीं होता, अपितु श्रद्धा और शक्ति ही दानोंकी वृद्धि और क्षयमें कारण होती है। इनमेंसे श्रद्धाके विषयमें ये श्लोक हैं—शरीरको बहुत क्लेश देनेसे तथा धनकी राशियोंसे सूक्ष्म धर्मकी प्राप्ति नहीं होती। श्रद्धा ही धर्म और अद्भुत तप है, श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है तथा श्रद्धा ही यह सम्पूर्ण जगत् है। यदि कोई बिना श्रद्धाके अपना सर्वस्व दे दे अथवा अपना जीवन ही निछावर कर दे तो भी वह उसका कोई फल नहीं पाता; इसलिये सबको श्रद्धालु होना चाहिये। श्रद्धासे ही धर्मका साधन किया जाता है; धनकी बहुत बड़ी राशिसे नहीं। क्योंकि अकिञ्चन ऋषि-मुनि श्रद्धालु होनेके कारण ही स्वर्गलोकमें गये हैं। देहधारियोंमें उनके स्वभावके अनुसार होनेवाली श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। उसे सुनिये। सात्त्विकी श्रद्धावाले पुरुष देवताओंकी पूजा करते हैं, राजसी श्रद्धावाले लोग यक्षों और राक्षसोंको पूजते हैं तथा तामसी श्रद्धावाले मनुष्य प्रेतों, भूतों और पिशाचोंकी पूजा किया करते हैं। इसलिये श्रद्धावान् पुरुष अपने न्यायोपार्जित धनका सत्पात्रके लिये जो दान करते हैं, वह थोड़ा भी हो तो उसीसे भगवान् शिव प्रसन्न हो जाते हैं।*

* कायक्लेशैश्च बहुभिर्न चैवार्थस्य राशिभिः।
धर्मः सम्प्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धा धर्मोऽद्भुतं तपः॥
श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत्।
सर्वस्वं जीवितं चापि दद्यादश्रद्धया यदि॥
नाप्नुयात्स फलं किञ्चिच्छ्रद्दधानस्ततो भवेत्।
श्रद्धया साध्यते धर्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः॥
निष्किञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवंगताः।
त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चैव तां शृणु।
यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः॥
प्रेतान् भूतान् पिशाचांश्च यजन्ते तामसा जनाः।

'शक्तिके विषयमें श्लोक इस प्रकार हैं—कुटुम्बके भरण-पोषणसे जो अधिक हो, वही धन दान करने योग्य है, वही मधुके समान मीठा है—उसीसे वास्तविक धर्मका लाभ होता है। इसके विपरीत करनेपर वह आगे चलकर विषके समान हानिकारक होता है, दाताका धर्म अधर्मरूपमें परिणत हो जाता है। यदि आत्मीयजन दुःखसे जीवननिर्वाह कर रहे हों, तो उस अवस्थामें किसी सुखी और समर्थ पुरुषको दान देनेवाला मनुष्य मधुपानके धोखेमें मानो विष-भक्षण करनेवाला है। वह धर्मके अनुकूल नहीं, प्रतिकूल चलता है। जो भरण-पोषण करनेयोग्य व्यक्तियोंको कष्ट देकर किसी मृत व्यक्तिके लिये (बहु-व्ययसाध्य) श्राद्ध करता है, उसका किया हुआ वह श्राद्ध उसके जीते-जी अथवा मरनेपर भी भविष्यमें दुःखका ही कारण होता है। जो अत्यन्त तुच्छ हो अथवा जिसपर सर्वसाधारणका अधिकार हो, वह वस्तु 'सामान्य' कहलाती है, ेमाँगकर लायी हुई वस्तुको 'याचित' कहते हैं, धरोहरका सरा नाम 'न्यास' है, बन्धक रक्खी हुई वस्तुको 'आधि' हैं, दी हुई वस्तु 'दान'के नामसे पुकारी जाती है, ं मिली हुई वस्तुको 'दान-धन' कहते हैं, जो धन एक-हाँ धरोहर रक्खा गया हो और रखनेवालेने उसे पुनः के यहाँ रख दिया हो उसे 'अन्वाहित' कहते हैं, जिसे के विश्वासपर उसके यहाँ छोड़ दिया जाय, वह धन ास' कहलाता है, वंशजोंके होते हुए भी सब कुछ को दे देना 'सान्वय सर्वस्व दान' कहा गया है। विद्वान् को चाहिये कि वे आपत्तिकालमें भी उपर्युक्त नव प्रकार-स्तुओंका दान न करें। जो पूर्वोक्त नव वस्तुओंका करता है, वह मूढ़चित्त मानव प्रायश्चित्तका भागी है।*

तस्माच्छ्रद्धावता पात्रे दत्तं न्यायार्जितं हि यत् ॥
तेनैव भगवान् रुद्रः स्वल्पकेनापि तुष्यति।
(स्क० मा० कुमा० ३ । २९–३५)

* कुटुम्बभुक्तभरणाद्देयं यदतिरिच्यते।
मध्वास्वादो विषं पश्चाद्दातुर्धर्मोऽन्यथा भवेत् ॥
शक्ते परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि।
मध्वापानविषादः स धर्माणां प्रतिरूपकः ॥
भृत्यानामुपरोधेन यः करोत्यौर्ध्वदैहिकम्।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवितोऽस्य मृतस्य च ॥
सामान्यं याचितं न्यासमाधिर्दानं च तद्धनम्।
अन्वाहितं च निक्षिप्तं सर्वस्वं चान्वये सति ॥

'राजन्! ये दानके दो हेतु बताये गये हैं। अब अधिष्ठानोंका वर्णन सुनो। दानके अधिष्ठान छः हैं। उन्हें बताता हूँ—धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, हर्ष और भय—ये दानके छः अधिष्ठान कहे जाते हैं। सदा ही किसी प्रयोजनकी इच्छा न रखकर केवल धर्मबुद्धिसे सुपात्र व्यक्तियोंको जो दान दिया जाता है, उसे 'धर्म-दान' कहते हैं। मनमें कोई प्रयोजन रखकर ही प्रसंगवश जो कुछ दिया जाता है, उसे 'अर्थ-दान' कहते हैं। वह इस लोकमें ही फल देनेवाला होता है। स्त्रीसमागम, सुरापान, शिकार और जुएके प्रसङ्गमें अनधिकारी मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक जो कुछ दिया जाता है, वह 'काम-दान' कहलाता है। भरी सभामें याचकोंके माँगनेपर लज्जावश देनेकी प्रतिज्ञा करके उन्हें जो कुछ दिया जाता है, वह 'लज्जा-दान' माना गया है। कोई प्रिय कार्य देखकर अथवा प्रिय समाचार सुनकर हर्षोल्लाससे जो कुछ दिया जाता है, उसे धर्मविचारक महात्मा पुरुष 'हर्ष-दान' कहते हैं। निन्दा, अनर्थ और हिंसाका निवारण करनेके लिये अनुपकारी व्यक्तियोंको विवश होकर जो कुछ दिया जाता है, उसे 'भय-दान' कहते हैं।*

'इस प्रकार दानके छः अधिष्ठान बताये गये। अब उसके

आपत्स्वपि न देयानि नववस्तूनि पण्डितैः।
यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ॥
(स्क० मा० कुमा० ३ । ३६–४०)

* अधिष्ठानानि वक्ष्यामि षडेव शृणु तानि च।
धर्ममर्थं च कामं च व्रीडाहर्षभयानि च ॥
अधिष्ठानानि दानानां षडेतानि प्रचक्षते।
पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम् ॥
केवलं धर्मबुद्ध्या यद्धर्मदानं तदुच्यते।
प्रयोजनमपेक्ष्यैव प्रसङ्गाद्यत्प्रदीयते ॥
तदर्थदानमित्याहुरैहिकं फलहेतुकम्।
स्त्रीपानमृगयाक्षाणां प्रसंगाद्यत्प्रदीयते ॥
अनर्हेषु सुयत्नेन कामदानं तदुच्यते।
संसदि व्रीडयाऽऽश्रुत्य अर्थोऽर्थिभ्यः प्रयाचितः ॥
प्रदीयते तु तद्दानं व्रीडादानमिति श्रुतम्।
दृष्ट्वा प्रियाणि श्रुत्वा वा हर्षेण यत्प्रदीयते ॥
हर्षदानमिति प्राहुर्दानं तद्धर्मचिन्तकाः।
आक्रोशानर्थहिंसानां प्रतीकाराय यद्भवेत् ॥
दीयतेऽनुपकर्तृभ्यो भयदानं तदुच्यते।
(स्क० मा० कुमा० ३ । ४२–४९)

छः अङ्गोंका वर्णन सुनिये—दाता, प्रतिग्रहीता, शुद्धि, धर्मयुक्त देय वस्तु, देश और काल—ये दानके छः अङ्ग माने गये हैं। दाता नीरोग, धर्मात्मा, देनेकी इच्छा रखनेवाला, व्यसनरहित, पवित्र तथा सदा अनिन्दनीय कर्मसे आजीविका चलानेवाला होना चाहिये। इन छः गुणोंसे दाताकी प्रशंसा होती है। सरलतासे रहित, श्रद्धाहीन, दुष्टात्मा, दुर्व्यसनी, झूठी प्रतिज्ञा करनेवाला तथा बहुत सोनेवाला दाता तमोगुणी और अधम माना गया है। जिसके कुल, विद्या और आचार तीनों उज्ज्वल हों, जीवननिर्वाहकी वृत्ति भी शुद्ध और सात्त्विक हो, जो दयालु, जितेन्द्रिय तथा योनि-दोषसे मुक्त हो, वह ब्राह्मण दानका उत्तम पात्र (प्रतिग्रहका सर्वोत्तम अधिकारी) कहा जाता है। याचकोंको देखनेपर सदा प्रसन्नमुख हो उनके प्रति हार्दिक प्रेम होना, उनका सत्कार करना तथा उनमें दोषदृष्टि न रखना—ये सब सद्गुण दानमें शुद्धिकारक माने गये हैं। जो धन किसी दूसरेको सताकर न लाया गया हो, अति क्लेश उठाये बिना अपने प्रयत्नसे उपार्जित किया गया हो, वह थोड़ा हो या अधिक, वही देने योग्य बताया गया है। किसीके साथ कोई धार्मिक उद्देश्य लेकर जो वस्तु दी जाती है, उसे धर्मयुक्त देय कहते हैं। यदि देय वस्तु उक्त विशेषताओंसे शून्य हो तो उसके दानसे कोई फल नहीं होता। जिस देश अथवा कालमें जो-जो पदार्थ दुर्लभ हो, उस-उस पदार्थका दान करने योग्य वही-वही देश और काल श्रेष्ठ है; दूसरा नहीं। इस प्रकार ये दानके छः अङ्ग बताये गये हैं।*

'अब दानके द्विविध फलोंका वर्णन सुनो। महात्माओंने दानके दो परिणाम (फल) बतलाये हैं। उनमेंसे एक तो परलोकके लिये होता है और एक इहलोकके लिये। श्रेष्ठ पुरुषोंको जो कुछ दिया जाता है, उसका परलोकमें उपभोग होता है और असत् पुरुषोंको जो कुछ दिया जाता है, वह दान यहीं भोगा जाता है। ये दो परिणाम बताये गये हैं। अब दानके चार प्रकारोंको श्रवण करो। ध्रुव, त्रिक, काम्य और नैमित्तिक—इस क्रमसे द्विजोंने वैदिक दान-मार्गको चार प्रकारका बतलाया है। कुँआ बनवाना, बगीचे लगवाना तथा पोखरे खुदवाना आदि कार्योंमें, जो सबके उपयोगमें आते हैं, धन लगाना 'ध्रुव' कहा गया है। प्रतिदिन जो कुछ दिया जाता है, उस नित्य दानको ही 'त्रिक' कहते हैं। सन्तान, विजय, ऐश्वर्य, स्त्री और बल आदिके निमित्त तथा इच्छाकी पूर्तिके लिये जो दान किया जाता है, वह 'काम्य' कहलाता है। 'नैमित्तिक' दान तीन प्रकारका बतलाया गया है। वह होमसे रहित होता है। जो ग्रहण और संक्रान्ति आदि कालकी अपेक्षासे दान किया जाता है, वह 'कालापेक्ष' नैमित्तिक दान है। श्राद्ध आदि क्रियाओंकी अपेक्षासे जो दान किया जाता है, वह 'क्रियापेक्ष' नैमित्तिक दान है तथा संस्कार और विद्या-अध्ययन आदि गुणोंकी अपेक्षा रखकर जो दान दिया जाता है, वह 'गुणापेक्ष' नैमित्तिक दान है।०

---

* दाता प्रतिग्रहीता च शुद्धिर्देयं च धर्मयुक्।
देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानि षड् विदुः॥
अपरोगी च धर्मात्मा दित्सुरव्यसनः शुचिः।
अनिन्द्याजीवकर्मा च षड्भिर्दाता प्रशस्यते॥
अनृजुश्चाश्रद्दधानो दुष्टात्मा व्यसनी च यः।
असत्यसन्धो निद्रालुर्दातायं तामसोऽधमः॥
त्रिशुक्लः शुद्धवृत्तिश्च घृणालुः संयतेन्द्रियः।
विमुक्तो योनिदोषेभ्यो ब्राह्मणः पात्रमुच्यते॥
सौमुख्यादभिसम्प्रीतिरर्थिनां दर्शने सदा।
सत्कृतिश्चानसूया च दाने शुद्धिरिति स्मृता॥
अपराबाधमक्लेशं स्वयत्नेनार्जितं धनम्।
स्वल्पं वा विपुलं वापि देयमित्यभिधीयते॥
केनापि सह धर्मेण उद्दिश्य किल किञ्चन।
देयं तद्धर्मयुगिति शून्ये शून्यं फलं मतम्॥
यद्यच्च दुर्लभं द्रव्यं देशे कालेऽपि वा पुनः।
दानार्हौ देशकालौ तौ स्यातां श्रेष्ठौ न चान्यथा॥
षडङ्गानीति चोक्तानि ··· ··· ··· ··· ··· ···॥
(स्क० मा० कुमा० ३। ५०-५७)

० ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···।
··· ··· ··· ··· ··· द्वौ च पाकावतः शृणु॥
द्वौ पाकौ दानजौ प्राहुः परत्रार्थमिहोच्यते।
सद्भ्यो यद्दीयते किञ्चित्तत्परत्रोपभुज्यते॥
असत्सु दीयते यत्तु तद्दानमिह भुज्यते।
द्वौ पाकाविति निर्दिष्टौ प्रकारांश्चतुरः शृणु॥
ध्रुवमाहुस्त्रिकं काम्यं नैमित्तिकमिति क्रमात्।
वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्ण्यते द्विजैः॥
कूपारामतडागादि सर्वकामफलं ध्रुवम्।
तदाहुस्त्रिकमित्येव दीयते यद्दिने दिने॥
अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीबलार्थं च दीयते।
इच्छासंस्थं च यद्दानं काम्यमित्यभिधीयते॥

इस तरह दानके चार प्रकार बतलाये गये हैं। अब उसके तीन भेदोंका प्रतिपादन किया जाता है। आठ वस्तुओंके दान उत्तम माने गये हैं। विधिके अनुसार किये हुए चार दान मध्यम हैं और शेष कनिष्ठ माने गये हैं। यही दानकी त्रिविधता है, जिसे विद्वान् पुरुष जानते हैं। गृह, मन्दिर या महल, विद्या, भूमि, गौ, कूप, प्राण और सुवर्ण—इन वस्तुओंका दान अन्य दानोंकी अपेक्षा उत्तम है। अन्न, बगीचा, वस्त्र तथा अश्व आदि वाहन—इन मध्यम श्रेणीके द्रव्योंको देनेसे यह मध्यम दान माना गया है। जूता, छाता, बर्तन, दही, मधु, आसन, दीपक, काष्ठ और पत्थर आदि—इन वस्तुओंके दानको श्रेष्ठ पुरुषोंने कनिष्ठ दान बताया है। ये दानके तीन भेद बतलाये गये। अब दाननाशके तीन हेतुओंको सुनो। जिसे देकर पीछे पश्चात्ताप किया जाय, जो अपात्रको दिया जाय तथा जो बिना श्रद्धाके अर्पण किया जाय, वह दान नष्ट हो जाता है। पश्चात्ताप, अपात्रता और अश्रद्धा—ये तीनों दानके नाशक हैं। यदि दान देकर पश्चात्ताप हो तो वह आसुर-दान है, जो निष्फल माना गया है। अश्रद्धासे जो कुछ दिया जाता है, वह राक्षस-दान है। यह भी व्यर्थ ही होता है। ब्राह्मणको डाँट-फटकारकर या उसे कटुवचन सुनाकर जो दान किया जाता है अथवा दान देकर जो ब्राह्मणको कोसा जाता है, वह पैशाच-दान माना गया है। उसे भी व्यर्थ ही समझना चाहिये। ये तीनों भाव दानके नाशक हैं।* राजन्! इस प्रकार सात पदोंमें बँधा हुआ जो दानका यह उत्तम माहात्म्य है, उसे मैंने तुमको बताया।'

धर्मवर्मा बोले—आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज मुझे अपनी तपस्याका फल मिल गया। यशस्वी पुरुषोंमें श्रेष्ठ महर्षि! आज आपने मुझे कृतार्थ कर दिया। विद्या पढ़कर यदि मनुष्य दुराचारी हो गया तो उसका सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ है। बहुत क्लेश उठाकर जो पत्नी प्राप्त की गयी, वह यदि कटुवादिनी निकली तो वह भी व्यर्थ है। कष्ट उठाकर जो कूआँ बनवाया गया, उसका पानी यदि खारा निकला तो वह भी निरर्थक है तथा अनेक प्रकारके क्लेश सहन करनेके पश्चात् जो मनुष्यजन्म मिला, वह यदि धर्माचरणके बिना बिताया गया तो उसे भी व्यर्थ ही समझना चाहिये। इसी प्रकार मेरी तपस्या भी व्यर्थ हो गयी थी। उसे आज आपने सफल कर दिया। आपको नमस्कार है। समस्त ब्राह्मणोंको बारंबार नमस्कार है।* पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वैकुण्ठधाममें आये हुए सनकादि कुमारोंसे यह ठीक ही कहा था कि 'मैं यजमानके यज्ञमण्डपमें अपने अग्निरूपी मुखके द्वारा घीमें डुबोयी हुई आहुति पाकर भी उसे उतनी तृप्तिपूर्वक नहीं खाता, जितनी कि मुझमें अपने कर्मफल समर्पित करके प्रसन्न होनेवाले ब्राह्मणके मुखसे भोजन करते समय मुझे एक-एक ग्रासमें तृप्ति होती है।' अतः मैंने अपने व्यवहारोंसे यदि कभी ब्राह्मणोंका अप्रिय किया हो तो सबके स्वामी ब्राह्मणलोग कृपापूर्वक मुझे क्षमा करें। मुने! आप कौन हैं! आप कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। मैं चरणोंमें

कालापेक्षं क्रियापेक्षं गुणापेक्षमिति स्मृतौ।
त्रिधा नैमित्तिकं प्रोक्तं सदा होमविवर्जितम्॥
(स्क० मा० कुमा० ३। ५८—६४)

* अष्टोत्तमानि चत्वारि मध्यमानि विधानतः।
कानीयसानि शेषाणि त्रिविधत्वमिदं विदुः॥
गृहप्रासादविद्याभूगोकूपप्राणहाटकम्।
एतान्युत्तमदानानि उत्तमान्यन्यदानतः॥
अन्नारामौ च वासांसि हयप्रभृतिवाहनम्।
दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः॥
उपानच्छत्रपात्रादिदधिमध्वासनानि च।
दीपकाष्ठोपलादीनि चरमान्याहुरुत्तमाः॥
इति ते त्रिविधं प्रोक्तं दाननाशत्रयं शृणु।
यद्दत्त्वा तप्यते पश्चादपात्रेभ्यस्तथा च यत्।
अश्रद्धया च यद्दानं दाननाशास्त्रयस्त्वमी॥
(स्क० मा० कुमा० ३। ६५—६९)

यद्दत्त्वा तप्यते पश्चादासुरं तद्वृथा मतम्।
अश्रद्धया यद्ददाति राक्षसं स्याद्वृथैव तत्॥
यच्चाक्रुश्य ददात्यत्र दत्त्वा वाक्रोशति द्विजम्।
पैशाचं तद्वृथा दानं दाननाशास्त्रयस्त्वमी॥
(स्क० वेंकटेश्वरकी प्रतिसे)

* अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तपसः फलम्।
अद्य वै कृतकृत्योऽस्मि कृतः कीर्तिमतां वर॥
पठित्वा सकलं जन्म दुराचारस्य दुर्वृथा।
बहुक्लेशाच्च लब्धा स्त्री सा वृथाप्रियवादिनी॥
क्लेशेन कृत्वा कूपं वा स च क्षारोदको वृथा।
बहुक्लेशैर्जन्म नीत्वा विना धर्मं वृथा यथा॥
एवं मे यद् वृथा जातं तपस्तत्सफलं त्वया।
कृतं तस्मान्नमस्तुभ्यं द्विजेभ्यश्च नमो नमः॥
(स्क० मा० कुमा० ३। १७१—१७४)

मस्तक रखकर आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। कृपया अपना परिचय दीजिये।

राजा धर्मवर्माके ऐसा कहनेपर उस समय मैंने अपना परिचय इस प्रकार दिया—नृपश्रेष्ठ ! मैं देवर्षि नारद हूँ। स्थानकी प्राप्तिके लिये आया हूँ। तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मुझे धन दो और स्थान बनानेके लिये भूमि अर्पण करो। महाराज! यद्यपि यह भूमि और धन देवताओंके ही हैं; तथापि जिस समय जो राजा हो, उसीसे उनको माँगना चाहिये। क्योंकि वह पृथ्वीका प्रतिपालक और दाता होता है। इसलिये द्रव्यशुद्धिकी इच्छासे मैं तुमसे कुछ भूमि माँगता हूँ।

राजाने कहा—विप्रवर ! यदि आप देवर्षि नारद हैं तो यह सारा राज्य आपका ही रहे। मैं तो आपकी और समस्त ब्राह्मणोंकी चाकरी करूँगा।

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! तब मैंने राजा धर्मवर्मासे कहा—'यह धन तुम्हारे ही पास रहे। आवश्यकताके समय मैं ले लूँगा।' ऐसा कहकर मैं रैवतक पर्वतपर चला गया। उस श्रेष्ठ पर्वतका दर्शन करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ तपस्या करके मनुष्य अपनी अभीष्ट वस्तुको प्राप्त कर लेता है। ठीक उसी तरह जैसे भक्तपुरुष भगवान् महादेवको पाकर अपना मनोरथ सिद्ध कर लेता है। कुन्तीनन्दन ! मैं रैवतक पर्वतकी एक बहुत बड़ी शिलापर बैठ गया और शीतल, मन्द, सुगन्ध पवनके स्पर्शसे अत्यन्त प्रसन्न हो मन-ही-मन विचार करने लगा—स्थान तो मैंने प्राप्त कर लिया, जो अत्यन्त दुर्लभ था। अब मैं उत्तम ब्राह्मणकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न आरम्भ करूँ। मुझे ऐसे ब्राह्मण देखने चाहिये, जो सर्वश्रेष्ठ पात्र माने गये हैं। इस विषयमें वेदवादी विद्वानोंके वचन इस प्रकार सुने जाते हैं—जैसे खेनेवालेके बिना कोई नाव किसी प्राणीको पार उतारनेमें समर्थ नहीं है, उसी प्रकार जातिसे श्रेष्ठ ब्राह्मण भी यदि दुराचारी हो तो वह किसीका उद्धार नहीं कर सकता। जिसने शास्त्रोंका अध्ययन नहीं किया है, वह ब्राह्मण तिनकेकी आगके समान शीघ्र बुझ जाता है—तेजोहीन हो जाता है। अतः उसे हव्य प्रदान नहीं करना चाहिये, क्योंकि राखमें आहुति नहीं दी जाती। दानके सुयोग्य पात्रको छोड़कर अपात्रको जो दान दिया जाता है, वह दान वैसा ही है, जैसा कि ऊसरमें बोये हुए बीज शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। दानमें ली हुई भूमि विद्याहीन ब्राह्मणके अन्तःकरणको नष्ट करती है। इसी प्रकार गाय उसके भोगोंका, सुवर्ण उसके शरीरका, घोड़ा उसके नेत्रका, वस्त्र उसकी स्त्रीका, घृत उसके तेजका और तिल उसकी सन्तानका नाश करते हैं। अतः अविद्वान् ब्राह्मणको सदा प्रतिग्रहसे डरना चाहिये। मूर्ख ब्राह्मण थोड़ा प्रतिग्रह लेकर भी कीचड़में फँसी हुई गायकी भाँति कष्ट पाता है। इसलिये जो मूढ़ तपस्यासे युक्त और गुप्तरूपसे स्वाध्यायका साधन करनेवाले हैं तथा जो शान्त चित्तवाले हैं, उन्हींको दिया हुआ दान सदा अक्षय होता है। उत्तम देशमें (काशी आदि तीर्थोंमें), उत्तम काल (ग्रहण आदि)में श्रेष्ठ उपायसे सत्पात्रको श्रद्धापूर्वक जो द्रव्य दिया जाता है, वही परिपूर्ण दान-धर्मका लक्षण है। केवल विद्या अथवा तपस्यासे सुपात्रता नहीं आती। जहाँ सदाचार है और उसके साथ ये दोनों (विद्या और तपस्या) भी हैं, उसीको उत्तम पात्र कहा जाता है।

कलाप-ग्रामनिवासी सुतनुद्वारा नारदजीके जटिल प्रश्नोंका समाधान

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! मैं देश-देश घूमकर विद्यारूपी नेत्रवाले ब्राह्मणोंकी परीक्षा करता हूँ। यदि वे मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे देंगे, तब मैं उन्हें दान करूँगा। ऐसा विचार करके मैं उस स्थानसे उठा और महर्षियोंके आश्रमोंपर इन प्रश्नरूपी श्लोकोंका गान करता हुआ विचरण करने लगा। वे श्लोक इस प्रकार हैं, सुनो—

मातृकां को विजानाति कतिधा कीदृशाक्षराम्।
पञ्चपञ्चाद्भुतं गेहं को विजानाति वा द्विजः॥
बहुरूपां स्त्रियं कर्तुमेकरूपां च वेत्ति कः।
को वा चित्रकथं बन्धं वेत्ति संसारगोचरः॥
को वार्णवमहाग्राहं वेत्ति विद्यापरायणः।
को वाष्टविधं ब्राह्मण्यं वेत्ति ब्राह्मणसत्तमः॥
युगानां च चतुर्णां वा को मूलदिवसान् वदेत्।
चतुर्दशमनूनां वा मूलवारं च वेत्ति कः॥
कस्मिंश्चैव दिने प्राप पूर्वं वा भास्करो रथम्।
उद्वेजयति भूतानि कृष्णाहिरिव वेत्ति कः॥
को वास्मिन् घोरसंसारे दक्षदक्षतमो भवेत्।
पन्थानावपि द्वौ कश्चिद्वेत्ति वक्ति च ब्राह्मणः॥
इति मे द्वादश प्रश्नान् ये विदुर्ब्राह्मणोत्तमाः।
ते मे पूज्यतमास्तेषामहमाराधकश्चिरम्॥

(स्क० मा० कुमा० ३। २०५—२१२)

(१) मातृकाको कौन विशेषरूपसे जानता है ? वह ृका कितने प्रकारकी और कैसे अक्षरोंवाली है ? (२) ा द्विज पचीस वस्तुओंके बने हुए गृहको अच्छी तरह ता है ? (३) अनेक रूपवाली स्त्रीको एक रूपवाली नेकी कला किसको ज्ञात है ? (४) संसारमें रहनेवाला ा पुरुष विचित्र कथावाली वाक्य-रचनाको जानता है ?) कौन स्वाध्यायशील ब्राह्मण समुद्रमें रहनेवाले महान् की जानकारी रखता है ? (६) किस श्रेष्ठ ब्राह्मणको ऽ प्रकारके ब्राह्मणत्वका ज्ञान है ? (७) चारों युगोंके दिनोंको कौन बता सकता है ? (८) चौदह मनुओंके दिवसका किसको ज्ञान है ? (९) भगवान् सूर्य किस पहले-पहल रथपर सवार हुए ? (१०) जो काले ी भाँति सब प्राणियोंको उद्वेगमें डाले रहता है, उसे जानता है ? (११) इस भयङ्कर संसारमें कौन दक्ष ोंसे भी अत्यधिक दक्ष माना गया है ? (१२) कौन ब्राह्मण दोनों मार्गोंको जानता और बतलाता है ? जो श्रेष्ठ ब्राह्मण मेरे इन बारह प्रश्नोंको जानते हैं, वे मेरे लिये परम पूज्य हैं और मैं उनका चिरकालतक सेवक बना रहूँगा।

अर्जुन ! इन प्रश्नोंका गान करता हुआ मैं सारी पृथ्वीपर घूमता रहा। मुझे जो-जो ब्राह्मण मिले, उन सबने यही कहा—'आपके इन प्रश्नोंकी व्याख्या बहुत कठिन है। हम तो केवल नमस्कार करते हैं।' इस प्रकार सारी पृथ्वीपर घूमकर मैं लौट आया और हिमालयके शिखरपर बैठकर पुनः इस प्रकार विचार करने लगा। 'अहो ! मैंने सब ब्राह्मणोंको देख लिया। अब क्या करूँ ?' इसी समय मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि 'मैं अभीतक कलाप-ग्राममें तो गया ही नहीं। वह एक उत्तम स्थान है। जहाँ ऐसे ब्राह्मण निवास करते हैं, जो तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। उनकी संख्या चौरासी हजार है। वे सब-के-सब वेदाध्ययनसे सुशोभित होते रहते हैं। अतः उसी स्थानपर चलूँ।'

मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके मैं वहाँसे चल दिया और आकाशमार्गसे वहाँ जा पहुँचा। पुण्यभूमिपर बसा हुआ वह श्रेष्ठ ग्राम सौ योजनतक फैला हुआ था। नाना प्रकारके वृक्ष वहाँ सब ओरसे छाया किये हुए थे। अग्निहोत्रसे उठा हुआ धूएँका प्रवाह वहाँ कभी शान्त नहीं होता था। कलाप-ग्राम वह स्थान है, जहाँ सत्ययुगके लिये सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा ब्राह्मणवंशका बीज शेष और सुरक्षित है। उस स्थानपर पहुँचकर मैंने द्विजोंके आश्रमोंमें प्रवेश किया। वहाँ श्रेष्ठ ब्राह्मण मधुर वाणीमें अनेक प्रकारके वादोंपर वार्तालाप कर रहे थे। उस समय उस विद्वत्-सभाके बीच मैंने अपनी भुजा उठाकर घोषणा की—'ब्राह्मणो ! अब आपलोग मेरे प्रश्नोंका समाधान कीजिये।'

ब्राह्मण बोले—विप्रवर ! आप अपना प्रश्न उपस्थित कीजिये। यह हमारे लिये बहुत बड़ा लाभ है कि आप कोई प्रश्न पूछ रहे हैं।

वहाँके विद्वान् ब्राह्मण 'पहले मैं उत्तर दूँगा—पहले मैं उत्तर दूँगा।' ऐसा कहकर एक दूसरेको मना करने लगे। तब मैंने उनके सामने अपने बारह प्रश्न उपस्थित किये। सुनकर वे मुनीश्वर उन प्रश्नोंको खिलवाड़ समझते हुए मुझसे कहने लगे—'विप्रवर ! आपके प्रश्न तो बालकोंके-से हैं। इन छोटे-छोटे प्रश्नोंसे यहाँ क्या होनेवाला है ? आप हमलोगों-

में जिसे सबसे छोटा और ज्ञानहीन समझते हों, वही इन प्रश्नोंका उत्तर दे।' यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने अपनेको कृतार्थ माना और उनमेंसे एक बालकको सबसे हीन समझकर कहा—'यह मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे।'

उस बालक ब्राह्मणका नाम सुतनु था। उसने मेरे प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कहा—(१) मातृकामें बावन अक्षर बताये गये हैं। उनमें सबसे प्रथम अक्षर ॐकार है। उसके सिवा चौदह स्वर, तैंतीस व्यञ्जन, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय—ये सब मिलकर बावन मातृका वर्ण माने गये हैं।* द्विजवर! यह तो मैंने आपसे अक्षरोंकी संख्या बतायी है। अब इनका अर्थ सुनिये। इस अर्थके विषयमें पहले आपसे एक इतिहास कहूँगा। पूर्वकालकी बात है, मिथिला नगरीमें कौथुम नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने इस पृथ्वीपर प्रचलित हुई सम्पूर्ण विद्याओंको पढ़ लिया था। वे इकतीस हजार वर्षोंतक आदरपूर्वक अध्ययनमें लगे रहे। उनका एक क्षण भी कभी व्यर्थ नष्ट नहीं हुआ। अध्ययन पूरा करके जब वे गृहस्थ हुए, तब कुछ कालके बाद उनके एक पुत्र हुआ। उनके सारे बर्ताव जडकी भाँति होते थे। उसने केवल मातृका पढ़ी। मातृका पढ़नेके बाद वह किसी प्रकार दूसरी कोई बात नहीं याद करता था। इससे उसके पिता बहुत खिन्न हुए और उस जड बालकसे कहने लगे—'बेटा! पढ़ो, पढ़ो, मैं तुम्हें मिठाई दूँगा। नहीं पढ़ोगे तो यह मिठाई दूसरेको दे दूँगा और तुम्हारे दोनों कान उखाड़ लूँगा।'

यह सुनकर पुत्रने कहा—पिताजी! क्या मिठाई लेनेके लिये ही पढ़ा जाता है? क्या लोभकी पूर्ति ही अध्ययनका उद्देश्य है? अध्ययन तो उसका नाम है, जो मनुष्योंको परलोकमें लाभ पहुँचानेवाला हो।

कौथुम बोले—वत्स! ऐसी बातें कहनेवाले तेरी आयु बढ़े। तेरी यह बुद्धि बहुत अच्छी है। पर तू पढ़ता क्यों नहीं है?

पुत्रने कहा—पिताजी! जाननेयोग्य जितनी भी बातें हैं, वे सब तो मैंने मातृकामें ही जान ली। बताइये, इसके बाद अब कण्ठ किसलिये सुखाया जाय?

पिता बोले—वत्स! तू तो आज बड़ी विचित्र बात कहता है। मातृकामें तूने किस ज्ञातव्य अर्थका ज्ञान प्राप्त किया है? बता, बता। मैं तेरी बात फिर सुनना चाहता हूँ।

पुत्रने कहा—पिताजी! आपने इकतीस हजार वर्षोंतक नाना प्रकारके तर्कोंका अध्ययन करते हुए भी अपने मनमें केवल भ्रमका ही साधन किया है। 'यह धर्म है, यह धर्म है' ऐसा कहकर शास्त्रोंमें जो धर्म बताया गया है, उसमें चित्त भ्रान्त-सा हो जाता है। आप उपदेशको केवल पढ़ते हैं। उसके वास्तविक अर्थकी जानकारी नहीं रखते। जो ब्राह्मण केवल पाठ मात्र करते हैं, अर्थ नहीं समझते, वे दो पैरवाले पशु हैं। अतः मैं आपसे मोहनाशक वचन सुनाता हूँ। अकार ब्रह्मा कहे गये हैं, भगवान् विष्णु उकार बतलाये गये हैं, मकारको भगवान् महेश्वरका प्रतीक माना गया है। ये तीन गुणमय स्वरूप बताये गये हैं। ॐकारके मस्तकपर जो अनुस्वाररूप अर्द्धमात्रा है, वह सर्वोत्कृष्ट भगवान् सदाशिवका प्रतीक है।* यह है ॐकारकी महिमा, जिसका वर्णन कोटि-कोटि ग्रन्थोंद्वारा दस हजार वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता।

पुनः जो मातृकाका सारसर्वस्व बताया गया है, उसे सुनिये। अकारसे लेकर औकारतक जो चौदह[1] स्वर हैं, वे चौदह मनुस्वरूप हैं। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तम, रैवत, तामस, छठे चाक्षुष, सातवें वैवस्वत—जो इस समय वर्तमान हैं, सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, दक्षसावर्णि, धर्मसावर्णि, रौच्य तथा भौत्य—ये चौदह मनु हैं। श्वेत, पाण्डु, लोहित, ताम्र, पीत, कपिल, कृष्ण, श्याम, धूम्र, अधिक पिङ्गल, थोड़ा पिङ्गल, तिरंगा, बहुरंगा तथा कबरा—ये क्रमशः चौदह मनुओंके रंग हैं। पिताजी! वैवस्वत मनु ऋकारस्वरूप हैं। उनका रंग काला बतलाया जाता है। 'क' से लेकर 'ह' तक तैंतीस देवता हैं। 'क' से लेकर 'ठ' तक तो

---

* ॐकारः प्रथमस्तस्य चतुर्दश स्वरास्तथा।
वर्णाश्चैव त्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव च॥
विसर्जनीयश्च परो जिह्वामूलीय एव च।
उपध्मानीय एवापि द्विपञ्चाशदमी स्मृताः॥
(स्क० मा० कुमा० ३। २३५-२३७)

* अकारः कथितो ब्रह्मा उकारो विष्णुरुच्यते।
मकारश्च स्मृतो रुद्रस्त्रयश्चैते गुणाः स्मृताः॥
अर्द्धमात्रा च या मूर्ध्नि परमः स सदाशिवः।
(स्क० मा० कुमा० ३। २५१-२५२)

१. अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ—ये चौदह स्वर हैं।

बारह आदित्य[1] माने गये हैं। 'ड' से लेकर 'ब' तक जो अक्षर हैं, वे ग्यारह रुद्र[2] हैं। 'भ' से लेकर 'ष' तक आठ वसु[3] माने गये हैं। 'स' और 'ह'—ये दोनों अश्विनीकुमार बताये गये हैं। इस प्रकार ये तैंतीस देवता कहे जाते हैं। पिताजी! अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय—ये चार अक्षर जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज नामक चार प्रकारके जीव बताये गये हैं।*

पिताजी! यह भावार्थ बताया गया है। अब तत्त्वार्थ सुनिये। जो पुरुष इन देवताओंका आश्रय लेकर कर्मानुष्ठानमें तत्पर होते हैं, वे ही अर्द्धमात्रास्वरूप नित्यपद (सदाशिव) में लीन होते हैं। चार प्रकारके जीवोंमेंसे कोई भी जब मन, वाणी और क्रियाद्वारा इन देवताओंका भजन करता है, तभी उसे मुक्ति प्राप्त होती है। जिस शास्त्रमें पापी मनुष्यों के द्वारा ये देवता नहीं माने गये हैं, उस शास्त्रको यदि साक्षात् ब्रह्माजी भी कहें तो नहीं मानना चाहिये। ये सब देवता वैदिक मार्गमें सर्वत्र प्रतिष्ठित हैं। अतः जो दुरात्मा इन देवताओंका उल्लङ्घन करके तप, दान अथवा जप करते हैं, वे वायुप्रधान मार्गमें जाकर सर्दीसे काँपते रहते हैं। अहो! अजितेन्द्रिय मनुष्योंके मोहकी महिमा तो देखो! वे पापी मातृका पढ़ते हैं, परंतु इन देवताओंको नहीं मानते।

सुतनु कहते हैं—पुत्रकी यह बात सुनकर पिताको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने और भी बहुत-से प्रश्न पूछे। पुत्रने भी उनके प्रश्नोंके अनुसार ठीक-ठीक उत्तर दिया। मुने! मैंने भी उसी प्रकार तुम्हारे मातृकासम्बन्धी उत्तम प्रश्नका समाधान किया है। (२) अब पचीस वस्तुओंसे बने हुए गृहसम्बन्धी द्वितीय प्रश्नका उत्तर सुनिये। पाँच महाभूत[1], पाँच कर्मेन्द्रियाँ[2], पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ[3], पाँच विषय[4]—मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति और पुरुष—ये पचीस तत्त्व हैं। पचीसवाँ तत्त्व पुरुष है जो सदाशिवस्वरूप है। इन पचीस तत्त्वोंसे सम्पन्न हुआ यह शरीर ही घर कहलाता है। जो इस शरीरको इस प्रकार तत्त्वतः जानता है, वह कल्याणमय परमात्माको प्राप्त होता है।*

---

१. वेंकटेश्वरकी प्रतिमें आदित्य, रुद्र और वसुओंके नाम भी आये हैं। आदित्यसम्बन्धी श्लोक इस प्रकार हैं—

धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणश्चांशुरेव च।
भगो विवस्वान् पूषा च सविता दशमस्तथा।
एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादश उच्यते॥
जघन्यजः स सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः॥

अर्थात् धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंशु, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु—ये बारह आदित्य हैं। इनमें विष्णु सबसे छोटे होनेपर भी गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं।

२. ग्यारह रुद्र ये हैं—

कपाली पिंगलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः।
अजकः शासनः शास्ता शम्भुश्चण्डो भवस्तथा॥

३. आठ वसु ये हैं—

ध्रुवो घोरश्च सोमश्च आपश्चैव नलोऽनिलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च अष्टौ ते वसवः स्मृताः॥

* औकारान्ता अकाराद्या मनवस्ते चतुर्दश।
स्वायम्भुवश्च स्वारोचिरौत्तमो रैवतस्तथा॥
तामसश्चाक्षुषः षष्ठस्तथा वैवस्वतोऽधुना।
सावर्णिर्ब्रह्मसावर्णी रुद्रसावर्णिरेव वा॥
दक्षसावर्णिरेवापि धर्मसावर्णिरेव च।
रौच्यो भौत्यस्तथैवापि मनवोऽमी चतुर्दश॥
श्वेतः पाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्रः पीतश्च कापिलः।
कृष्णः श्यामस्तथा धूम्रः सुपिशङ्गः पिशङ्गकः॥
त्रिवर्णः शवलो वर्णैः कर्बुरश्च इति क्रमात्।
वैवस्वत अकारश्च तात कृष्णः प्रपद्यते॥
ककाराद्या हकारान्तास्त्रयस्त्रिंशच्च देवताः।
ककाराद्याष्ठकारान्ता आदित्या द्वादश स्मृताः॥
डकाराद्या बकारान्ता रुद्राश्चैकादशैव ते।
भकाराद्याः षकारान्ता अष्टौ हि वसवो मताः।
सहौ चेत्यश्विनौ ख्यातौ त्रयस्त्रिंशदिति स्मृताः॥
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीय एव च।
उपध्मानीय इत्येते जरायुजास्तथाऽण्डजाः॥
स्वेदजाश्चोद्भिज्जाश्चापि पितर्जीवाः प्रकीर्तिताः।
(स्क० मा० कुमा० ३। २५४—२६२)

१. पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। २. वाक्, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग। ३. कान, नेत्र, रसना, नासिका और त्वचा। ४. शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श।

* पञ्चभूतानि पञ्चैव कर्मज्ञानेन्द्रियाणि च।
पञ्च पञ्चापि विषया मनोबुद्ध्यहमेव च॥
प्रकृतिः पुरुषश्चैव पञ्चविंशः सदाशिवः।
पञ्चपञ्चभिरेतैस्तु निष्पन्नं गृहमुच्यते॥
देहमेतद्विदं वेद तत्त्वतो यात्यसौ शिवम्।
(स्क० मा० कुमा० ३। २७२—२७४)

(३) वेदान्तवादी विद्वान् बुद्धिको ही अनेक रूपोंवाली स्त्री कहते हैं; क्योंकि वही नाना प्रकारके विषयों अथवा पदार्थोंका सेवन करनेसे अनेक रूप ग्रहण करती है। किंतु अनेकरूपा होनेपर भी वह एकमात्र धर्मके संयोगसे एकरूपा ही रहती है। जो इस तत्त्वार्थको जानता है, वह (धर्मका आश्रय लेनेके कारण) कभी नरकमें नहीं पड़ता। (४) मुनियोंने जिसे नहीं कहा है तथा जो वचन देवताओंकी मान्यता नहीं स्वीकार करता, उसे विद्वानोंने विचित्र कथासे मुक्त बन्ध (वाक्यविन्यास) कहा है, तथा जो कामयुक्त वचन है वह भी इसी श्रेणीमें है।* (ऐसा वचन सुनने और मानने योग्य नहीं है। वास्तवमें वह बन्धन ही है।)

(५) अब पाँचवें प्रश्नका समाधान सुनिये। एकमात्र लोभ ही इस संसार-समुद्रके भीतर महान् ग्राह है। लोभसे पापमें प्रवृत्ति होती है, लोभसे क्रोध प्रकट होता है, लोभसे कामना होती है, लोभसे ही मोह, माया (शठता), अभिमान, स्तम्भ (जडता), दूसरेके धनकी स्पृहा, अविद्या और मूर्खता होती है। यह सब कुछ लोभसे ही उत्पन्न होता है। दूसरेके धनका अपहरण, परायी स्त्रीके साथ बलात्कार, सब प्रकारके दुस्साहसमें प्रवृत्ति तथा न करने योग्य कार्योंका अनुष्ठान भी लोभकी ही प्रेरणासे होता है। अपने मनको जीतनेवाले संयमी पुरुषको उचित है कि वह उस लोभको मोहसहित जीते। जो लोभी और अजितात्मा हैं, उन्हींमें दम्भ, द्रोह, निन्दा, चुगली और दूसरोंसे डाह—ये सब दुर्गुण प्रकट होते हैं। जो बड़े-बड़े शास्त्रोंको याद रखते हैं और दूसरोंकी शङ्काओंका निवारण करते हैं, ऐसे बहुज्ञ विद्वान् भी लोभके वशीभूत होकर नीचे गिर जाते हैं। लोभ और क्रोधमें आसक्त मनुष्य सदाचारसे दूर हो जाते हैं। उनका अन्तःकरण छुरेके समान तीखा होता है। परंतु ऊपरसे वे मीठी बातें करते हैं। ऐसे लोग तिनकोंसे ढके हुए कुएँके समान भयंकर होते हैं। वे ही लोग केवल युक्तिवादका सहारा लेकर अनेकों पन्थ चलाते हैं। लोभवश मनुष्य समस्त धर्ममार्गोंका लोप कर देते हैं। लोभसे ही कुटुम्बीजनोंके प्रति निष्ठुरतापूर्ण बर्ताव करते हैं। कितने ही नीच मनुष्य लोभवश धर्मको अपना बाह्य आभूषण बना धर्मध्वजी होकर जगत्‌को लूटते हैं। वे सदा लोभमें डूबे रहनेवाले महान् पापी हैं। राजा जनक, युवनाश्व, वृषादर्भि, प्रसेनजित् तथा और भी बहुत-से राजा लोभका नाश करके स्वर्गलोकमें गये हैं। इसलिये जो लोग लोभका परित्याग करते हैं, वे ही इस संसार-समुद्रके पार जाते हैं। इनसे भिन्न लोभी मनुष्य ग्राहके चंगुलमें ही फँसे हुए हैं। इसमें संशय नहीं है।*

विप्रवर! अब आप ब्राह्मणके आठ भेदोंका वर्णन सुनें—मात्र, ब्राह्मण, श्रोत्रिय, अनूचान, भ्रूण, ऋषिकल्प, ऋषि और मुनि—ये आठ प्रकारके ब्राह्मण श्रुतिमें पहले

---

* बहुरूपां स्त्रियं प्राहुर्बुद्धिं वेदान्तवादिनः।
सा हि नानार्थभजनान्नानारूपं प्रपद्यते॥
धर्मस्यैकस्य संयोगाद्बहुधाप्येकिकैव सा।
इति यो वेद तत्त्वार्थं नासौ नरकमाप्नुयात्॥
मुनिभिर्यच्च न प्रोक्तं यन्न मन्येत देवताम्।
वचनं तद् बुधाः प्राहुर्बन्धं चित्रकथं त्विति॥
यच्च कामान्वितं वाक्यं.............................।
(स्क० मा० कुमा० ३। २७४—२७७)

* ....पञ्चमं चाप्यतः शृणु।
एको लोभो महान् ग्राहो लोभात्पापं प्रवर्तते॥
लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रवर्तते।
लोभान्मोहश्च माया च मानः स्तम्भः परेप्सुता॥
अविद्याऽप्रज्ञता चैव सर्वं लोभात् प्रवर्तते।
हरणं परवित्तानां परदाराभिमर्शनम्॥
साहसानां च सर्वेषामकार्याणां क्रियास्तथा।
स लोभः सह मोहेन विजेतव्यो जितात्मना॥
दम्भो द्रोहश्च निन्दा च पैशुन्यं मत्सरस्तथा।
भवन्त्येतानि सर्वाणि लुब्धानामकृतात्मनाम्॥
सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुश्रुताः।
छेत्तारः संशयानां च लोभग्रस्ता व्रजन्त्यधः॥
लोभक्रोधप्रसक्ताश्च शिष्टाचारबहिष्कृताः।
अन्तःक्षुरा वाङ्मधुराः कूपाश्छन्नास्तृणैरिव॥
कुर्वते ये बहून् मार्गांस्तांस्तान् हेतुबलान्विताः।
सर्वं मार्गं विलुम्पन्ति लोभाज्ज्ञातिषु निष्ठुराः॥
धर्मावतंसकाः क्षुद्रा मुष्णन्ति ध्वजिनो जगत्।
एतेऽतिपापिनः सन्ति नित्यं लोभसमन्विताः॥
जनको युवनाश्वश्च वृषादर्भिः प्रसेनजित्।
लोभक्षयाद्दिवं प्राप्तास्तथैवान्ये जनाधिपाः॥
तस्मात्त्यजन्ति ये लोभं तेऽतिक्रामन्ति सागरम्।
संसाराख्यमथोऽन्ये ये ग्राहग्रस्ता न संशयः॥
(स्क० मा० कुमा० ३। २७७—२८०)

बताये गये हैं। इनमें विद्या और सदाचारकी विशेषतासे पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। जिसका जन्ममात्र ब्राह्मण-कुलमें हुआ है, वह जब जातिमात्रसे ब्राह्मण होकर ब्राह्मणोचित उपनयन-संस्कार तथा वैदिक कर्मोंसे हीन रह जाता है, तब उसको 'मात्र' ऐसा कहते हैं। जो एक उद्देश्यको त्यागकर—व्यक्तिगत स्वार्थकी उपेक्षा करके वैदिक आचारका पालन करता है, सरल, एकान्तप्रिय, सत्यवादी तथा दयालु है, उसे 'ब्राह्मण' कहा गया है। जो वेदकी किसी एक शाखाको कल्प और छहों अङ्गोंसहित पढ़कर ब्राह्मणोचित छः कर्मोंमें संलग्न रहता है, वह धर्मज्ञ विप्र 'श्रोत्रिय' कहलाता है। जो वेदों और वेदाङ्गोंका तत्त्वज्ञ, पापरहित, शुद्धचित्त, श्रेष्ठ, श्रोत्रिय विद्यार्थियोंको पढ़ानेवाला और विद्वान् है, वह 'अनूचान' माना गया है। जो अनूचानके समस्त गुणोंसे युक्त होकर केवल यज्ञ और स्वाध्यायमें ही संलग्न रहता है, यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करता है और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता है, ऐसे ब्राह्मणको श्रेष्ठ पुरुष 'भ्रूण' कहते हैं। जो सम्पूर्ण वैदिक और लौकिक विषयोंका ज्ञान प्राप्त करके मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए सदा आश्रममें निवास करता है, वह 'ऋषिकल्प' माना गया है। जो पहले ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) होकर नियमित भोजन करता है, जिसको किसी भी विषयमें कोई सन्देह नहीं है तथा जो शाप और अनुग्रहमें समर्थ और सत्यप्रतिज्ञ है, ऐसा ब्राह्मण 'ऋषि' माना गया है। जो निवृत्तिमार्गमें स्थित, सम्पूर्ण तत्त्वोंका ज्ञाता, काम-क्रोधसे रहित, ध्याननिष्ठ, निष्क्रिय, जितेन्द्रिय तथा मिट्टी और सुवर्णको समान समझनेवाला है, ऐसे ब्राह्मणको 'मुनि' कहते हैं। इस प्रकार वंश, विद्या और वृत्त (सदाचार) से ऊँचे उठे हुए ब्राह्मण 'त्रिशुक्ल' कहलाते हैं। ये ही यज्ञ आदिमें पूजे जाते हैं।*

इस प्रकार आठ भेदोंवाले ब्राह्मणत्वका वर्णन किया गया। अब युगादि तिथियाँ बतलायी जाती हैं। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथि सत्ययुगकी आदि बतायी गयी है। वैशाख शुक्ल पक्षकी जो तृतीया है, वह त्रेतायुगकी आदि कही जाती है। माघ कृष्ण पक्षकी अमावस्याको विद्वानोंने द्वापरकी आदि-तिथि माना है और भाद्र कृष्ण त्रयोदशी कलियुगकी प्रारम्भ-तिथि कही गयी है। ये चार युगादि तिथियाँ हैं, इनमें किया हुआ दान और होम अक्षय जानना चाहिये। प्रत्येक युगमें सौ वर्षोंतक दान करनेसे जो फल होता है, वह युगादि-कालमें एक दिनके दानसे प्राप्त हो जाता है।*

---

* अथ ब्राह्मणभेदांस्त्वमष्टौ विप्रावधारय ॥
मात्रश्च ब्राह्मणश्चैव श्रोत्रियश्च ततः परम् ।
अनूचानस्तथा भ्रूणो ऋषिकल्प ऋषिर्मुनिः ॥
इत्येतेऽष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणाः प्रथमं श्रुतौ ।
तेषां परः परः श्रेष्ठो विद्यावृत्तविशेषतः ॥
ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमात्रो यदा भवेत् ।
अनुपेतक्रियाहीनो मात्र इत्यभिधीयते ॥
एकोद्देश्यमतिक्रम्य वेदस्याचारवानृजुः ।
स ब्राह्मण इति प्रोक्तो निभृतः सत्यवाग्घृणी ॥
एकां शाखां सकल्पां च षड्भिरङ्गैरधीत्य च ।
षट्कर्मनिरतो विप्रः श्रोत्रियो नाम धर्मवित् ॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः शुद्धात्मा पापवर्जितः ।
श्रेष्ठः श्रोत्रियवान् प्राज्ञः सोऽनूचान इति स्मृतः ॥
अनूचानगुणोपेतो यज्ञस्वाध्याययन्त्रितः ।
भ्रूण इत्युच्यते शिष्टैः शेषभोजी जितेन्द्रियः ॥
वैदिकं लौकिकं चैव सर्वज्ञानमवाप्य यः ।
आश्रमस्थो वशी नित्यमृषिकल्प इति स्मृतः ॥
ऊर्ध्वरेता भवत्यग्रे नियताशी न संशयी ।
शापानुग्रहयोः शक्तः सत्यसन्धो भवेदृषिः ॥
निवृत्तः सर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः ।
ध्यानस्थो निष्क्रियो दान्तस्तुल्यमृत्काञ्चनो मुनिः ॥
एवमन्वयविद्याभ्यां वृत्तेन च समुच्छ्रिताः ।
त्रिशुक्ला नाम विप्रेन्द्राः पूज्यन्ते सवनादिषु ॥
(स्क० मा० कुमा० ३ । २८७—२९८)

* नवमी कार्तिके शुक्ला कृतादिः परिकीर्तिता ।
वैशाखस्य तृतीया या शुक्ला त्रेतादिरुच्यते ॥
माघे पञ्चदशी कृष्णा द्वापरादिः स्मृता बुधैः ।
त्रयोदशी नभस्ये च कृष्णा सादिः कलेः स्मृता ॥
एताश्चतस्रस्तिथयो युगाद्या दत्तं हुतं चाक्षयमासु विद्यात् ।
युगे युगे वर्षशतेन दानं युगादिकाले दिवसेन तत्फलम् ॥
(स्क० मा० कुमा० ३ । २९९—३०२)

विशेष वक्तव्य—यहाँ जो युगादि तिथियाँ दी गयी हैं, इनमें मतभेद भी उपलब्ध होता है। कहीं-कहीं 'वैशाखस्य तृतीया या कृतस्यादिः प्रकीर्तिता। कार्तिकस्यापि नवमी शुक्ला त्रेतादिरुच्यते।' ऐसा पाठान्तर मिलता है। इसके अनुसार वैशाख शुक्ला तृतीया सत्ययुगकी और कार्तिक शुक्ला नवमी त्रेताकी प्रारम्भिक तिथि है। हिंदीशब्दसागर कोशके संपादकोंने भी कृतादि और त्रेतादि तिथिका इसी रूपमें उल्लेख किया है। परंतु मुहूर्तचिन्तामणिकार... [illegible]

ये युगादि तिथियाँ बतायी गयी हैं, अब मन्वन्तरकी प्रारम्भिक तिथियोंको श्रवण कीजिये। आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिककी द्वादशी, चैत्र और भाद्रकी तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौषकी एकादशी, आषाढ़की दशमी माघकी सप्तमी, श्रावणकी कृष्णा अष्टमी, आषाढ़की पूर्णिमा, कार्तिककी पूर्णिमा, फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठकी पूर्णिमा—ये मन्वन्तरकी आदि तिथियाँ हैं, जो दानके पुण्यको अक्षय करनेवाली हैं।*

भगवान् सूर्य जिस तिथिको पहले-पहल रथपर आरूढ़ हुए, वह ब्राह्मणोंद्वारा माघ मासकी सप्तमी बतायी गयी है, जिसे रथसप्तमी कहते हैं। उस तिथिको दिया हुआ दान और किया हुआ यज्ञ सब अक्षय माना गया है। वह सब प्रकारकी दरिद्रताको दूर करनेवाला और भगवान् सूर्यकी प्रसन्नताका साधक बताया गया है।*

विद्वान् पुरुष जिसे सदा उद्वेगमें डालनेवाला बताते हैं, उसका यथार्थ परिचय सुनिये—जो प्रतिदिन याचना करता है, वह स्वर्गमें जानेका अधिकारी नहीं है। जैसे चोर सब जीवोंको उद्वेगमें डाल देता है, उसी प्रकार वह भी है। वह पापात्मा सबके लिये सदा उद्वेगकारक होनेके कारण नरकमें पड़ता है।†

ब्रह्मन्! 'इस लोकमें किस कर्मसे मुझे सिद्धि प्राप्त हो सकती है और (मृत्युके पश्चात्) यहाँसे मुझे कहाँ किस लोकमें जाना है?' इस बातका भलीभाँति विचार करके जो पुरुष भावी क्लेशके निराकरणका समुचित उपाय करता है, विद्वानोंने उसीको दक्ष पुरुषोंसे भी अधिक दक्ष (चतुरशिरोमणि) कहा है। पुरुष अपनी आयुमेंसे आठ मास, एक दिन, अथवा सम्पूर्ण पूर्वावस्थामें अथवा पूरी आयुभर ऐसा कर्म अवश्य करे, जिससे अन्तमें वह परम सुखी हो और निरन्तर उन्नतिके पथपर बढ़ता रहे।‡

वेदान्तवादी विद्वान् अर्चि और धूम—ये दो मार्ग बतलाते हैं। अर्चिमार्गसे जानेवाला पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है और धूममार्गसे जानेवाला जीव स्वर्गमें पुण्यफल भोगकर पुनः इस संसारमें लौट आता है। सकामभावसे किये हुए यज्ञ आदिके द्वारा धूममार्गकी प्राप्ति होती है और

मूलसे मिलता है। 'सिते गोऽष्टौ बाहुलराधयोः' कहकर उन्होंने यही मत स्वीकार किया है। मूलमें जो द्वापरादि और कलियुगादि तिथि दी गयी है, इससे मुहूर्तचिन्तामणिकारका मत नहीं मिलता। वे 'मदनदर्शौ भाद्रमाघासिते' कहकर भाद्र कृष्ण त्रयोदशीको द्वापरकी और माघ-अमावास्याको कलिकी आदितिथि घोषित करते हैं। हिंदी-शब्दसागरने भी यही माना है। केवल माघ अमावास्याकी जगह पौष अमावास्याका उसमें उल्लेख हुआ है। मुहूर्तचिन्तामणिकारके मतका प्राचीन आधार क्या है, इसे विद्वान् लोग ढूँढ़ें। स्कन्दपुराण, कुमारिकाखण्डका उपर्युक्त मत अति प्राचीन होनेके कारण स्वतः-प्रमाण तो है ही, नारद-स्मृतिके निम्नाङ्कित वचनसे भी इसका समर्थन होता है—

कार्तिके शुक्ल नवमी चादिः कृतयुगस्य सा।
त्रेतादिर्माधवे शुक्ला तृतीया पुण्यसंमिता॥
कृष्णा पञ्चदशी माघे द्वापरादिरुदीरिता।
कल्पादिः स्यात् कृष्णपक्षे नभस्ये च त्रयोदशी॥

(इन श्लोकोंका उल्लेख मु० चि० की पीयूषधारा टीकामें हुआ है।)

* अश्वयुक् शुक्ल नवमी द्वादशी कार्तिके तथा।
तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च॥
फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी तथा।
आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी॥
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा।
कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठपञ्चदशी सिता॥
मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः॥
(स्क० मा० कुमा० ३। ३०३—३०६)

* यस्यां तिथौ रथं पूर्वं प्राप देवो दिवाकरः।
सा तिथिः कथिता विप्रैर्माघे या रथसप्तमी॥
तस्यां दत्तं तु चेष्टं यत् सर्वमेवाक्षयं मतम्।
सर्वदारिद्र्यशमनं भास्करप्रीतये मतम्॥
(स्क० मा० कुमा० ३। ३०७-३०८)

† नित्योद्वेजकमाहुर्यं बुधास्तं शृणु तत्त्वतः।
यश्च याचनको नित्यं न स स्वर्गस्य भाजनम्॥
उद्वेजयति भूतानि यथा चौरस्तथैव सः।
नरकं याति पापात्मा नित्योद्वेगकरस्त्वसौ॥
(स्क० मा० कुमा० ३। ३०९-३१०)

‡ इहोपपत्तिर्मम केन कर्मणा क्व च प्रयातव्यमितो भवेन्मया।
विचार्य चैवं प्रतिकारकारी बुधैः स चोक्तो द्विज दक्षदक्षः॥
मासैरष्टभिरह्ना च पूर्वेण वयसायुषा।
तत्कर्म पुरुषः कुर्याद् येनान्ते सुखमेधते॥
(स्क० मा० कुमा० ३। ३११-३१२)

नैष्कार्म्य (कर्मफलत्याग एवं ज्ञान) से अर्चिमार्ग प्राप्त होता है। इन दोनोंसे भिन्न जो अशास्त्रीय मार्ग है, वह पाखण्ड कहलाता है। जो देवताओं तथा मनुप्रोक्त धर्मोंको नहीं मानता, वह उक्त दोनों मार्गोंको नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार यह तत्त्वार्थका निरूपण किया गया।* विप्रवर! आपके इन प्रश्नोंका यथाशक्ति समाधान किया गया है। यह ठीक है या नहीं, इसको आप बताइये। साथ ही अपना परिचय भी दीजिये।

नारदजीके द्वारा कलाप-ग्रामके ब्राह्मणोंको महीसागरसङ्गममें ले आना और वहाँ उन्हें भूमि आदि देकर पुण्यस्थानकी स्थापना करना

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! इस प्रकार अपने प्रश्नोंका समाधान सुनकर मेरे सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया। तब मैंने अपने स्वरूपको प्रकट करके उन ब्राह्मणोंसे इस

प्रकार कहा—'अहो! मेरे पिता ब्रह्माजी धन्य हैं, जिनकी सृष्टिके बालक भी आप-जैसे ब्राह्मणशिरोमणिके रूपमें विद्यमान हैं। मुझे अपने जन्मका फल प्राप्त हो गया, क्योंकि आप-जैसे निष्पाप और उपद्रवशून्य महात्माओंका मैंने दर्शन किया।'

इतना सुनते ही वे शातातप आदि ब्राह्मण सहसा उठकर खड़े हो गये और अर्घ्य, पाद्य आदि पूजा-सामग्रियोंसे मेरे स्वागत-सत्कारमें लग गये। तत्पश्चात् साधुजनोचित वाणीमें वे इस प्रकार बोले—'हम धन्य हैं, क्योंकि आप साक्षात् देवर्षि नारद यहाँ हमलोगोंके समीप पधारे हैं। देवर्षे! कहाँसे आपका शुभागमन हुआ है और अब कहाँ जानेका विचार है। मुनिश्रेष्ठ! इस आश्रमपर पधारनेकी क्या आवश्यकता थी, वह कार्य आप हमें बतावें।'

नारदजी बोले—मैं ब्रह्माजीके आदेशसे महीसागर-सङ्गम नामक महातीर्थमें ब्राह्मणोंको उत्तम स्थान दान करना चाहता हूँ। इसके लिये आपलोग मुझे आज्ञा दें।

मेरे ऐसा कहनेपर शातातपने सब ब्राह्मणोंकी ओर दृष्टि डालकर यों कहना आरम्भ किया—'नारदजी! यह सत्य है कि भारतवर्ष देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। उसमें भी महीसागरसङ्गमके विषयमें तो क्या कहना है, जहाँ स्नान करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण महातीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त कर लेता है। आपके प्रस्तावमें एक ही महान् दोष है, जिससे हमलोग निरन्तर डरते रहते हैं। वहाँ बहुतसे निर्दयी और दुस्साहसपूर्ण कर्म करनेवाले चोर हैं, जो हमारे-जैसे तपस्वियोंका धन हर लेते हैं। स्पर्श वर्णोंमें जो सोलहवाँ और इक्कीसवाँ अक्षर है वही हमारा धन है। उस धनसे हीन हो जानेपर हमारा जन्म कैसा निरर्थक हो जायगा। हम चोरोंके हाथमें न पड़ें, यही हमारी अभिलाषा है।'

अर्जुनने पूछा—ब्रह्मन्! वे चोर कौन हैं और कौन-सा धन हर लेते हैं।

नारदजीने कहा—कुन्तीनन्दन! 'काम' और 'क्रोध'

---

* अर्चिषा याति मोक्षं च धूमेनावर्तते पुनः। यज्ञैरासाद्यते धूमो नैष्कर्म्येणार्चिराप्यते॥
एतयोरपरो मार्गः पाखण्ड इति कीर्त्यते। यो देवान् मन्यते नैव धर्मांश्च मनुनोदितान्॥
न तौ स याति पन्थानौ तत्त्वार्थोऽयं निरूपितः॥ (स्क० मा० कुमा० ३। ३१३-३१५)

आदि दोष ही चोर हैं और 'तप' ही उन ब्राह्मणोंका धन है, जिसके अपहरणके भयसे उन्होंने मुझसे वैसी बात कही थी।

तब हारीत मुनि बोले—कौन अपनी मूढ़ बुद्धिके कारण महीसागरसङ्गम नामक तीर्थका त्याग करेगा, जहाँ स्वर्ग और मोक्ष हाथमें ही रहते हैं। हमारे हृदयमें भगवान् उमानाथका निवास है। वे दृढ़तापूर्वक हमारा पालन करते हैं। उनके रहते हुए वहाँ चोरोंका भय हमारा क्या कर लेगा। नारदजी! आपके कहनेसे मैं वहाँ चलूँगा। मेरे परिवारमें छब्बीस हजार ब्राह्मण हैं, वे सब-के-सब अध्ययन, अध्यापन आदि छः कर्मोंमें तत्पर, बाहर-भीतरसे शुद्ध तथा लोभ और दम्भसे रहित हैं। उन सबके साथ मैं वहाँ चल सकता हूँ। यह मेरा उत्तम निश्चय है।

उनके ऐसा कहनेपर मैंने उन सब ब्राह्मणोंको अपने दण्डके ऊपर चढ़ा लिया और बड़ी प्रसन्नताके साथ सहसा आकाशमार्गसे लौट पड़ा। बीचमें सौ योजनतक हिमका मार्ग है। उसे लाँघकर उन ब्राह्मणोंके साथ मैं केदारक्षेत्रमें आ पहुँचा। वह हिम-प्रदेश आकाशमार्गसे या बिलके मार्गसे तथा भगवान् कार्तिकेयके प्रसादसे लाँघा जा सकता है। इसके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है।

अर्जुनने पूछा—नारदजी! कलाप-ग्राम कहाँ है? उसका मार्ग बिलके द्वारा किस प्रकार लाँघा जा सकता है तथा स्वामिकार्तिकेयका कृपा-प्रसाद कैसे प्राप्त होगा? ये सब बातें मुझे बताइये।

नारदजी बोले—केदारक्षेत्रसे आगे सौ योजनतक हिमसंयुक्त प्रदेश माना गया है। उसके अन्तमें सौ योजन विस्तारवाला कलाप-ग्राम है, उसके अन्तमें सौ योजनतक बालुका समुद्र बताया जाता है। उसके बाद सौ योजन विस्तारवाला वह प्रदेश है, जिसे भूमिस्वर्ग कहते हैं। बिलके मार्गसे वहाँ जिस प्रकार जाना हो सकता है, उसे सुनो। अन्न और जलका त्याग करके उपवासपूर्वक दक्षिण दिशावर्ती भगवान् कार्तिकेयकी आराधना करे। कार्तिकेयजी जब साधकको पापरहित हुआ मानते हैं तब स्वप्नमें प्रकट होकर आदेश देते हैं कि तुम अभीष्ट स्थानकी यात्रा करो। कार्तिकेयजीके स्थानसे पश्चिम एक बहुत बड़ी गुफा है, वह सात सौ योजन दूरतक गयी हुई है। कार्तिकेयजीकी आज्ञा मिलनेके पश्चात् उसीमें प्रवेश करके आगे बढ़ना चाहिये। उसके भीतर मरकतमणिका एक शिवलिङ्ग है, जो सूर्यके समान प्रकाश करनेवाला है। उस शिवलिङ्गके आगे अत्यन्त स्वच्छ सुवर्णके रंगकी मिट्टी मिलती है। वहाँ शिवलिङ्गको नमस्कार करके तथा उस पीली मिट्टीको हाथमें लेकर स्तम्भ तीर्थमें आना चाहिये। वहाँ भगवान् कुमार तथा बाराहदेवकी आराधना करके आधी रात होनेपर कुएँसे जल निकालना चाहिये। उस जल और मिट्टीसे दोनों आँखोंमें अञ्जन करना चाहिये। साथ ही सम्पूर्ण शरीरमें उस जल और मिट्टीका उबटन लगाना चाहिये। उस अञ्जनके प्रभावसे कदाचित् साठ कदम चलनेपर उसे एक सुन्दर बिल दिखायी देता है। तदनन्तर उस बिलके भीतरसे होकर वह यात्रा करे। वहाँ कारीष नामक बड़े भयंकर कीड़े होते हैं, परंतु वे उस उबटनके प्रभावसे साधकको डँसते नहीं हैं। उस बिलके भीतर भगवान् सूर्यके समान तेजस्वी सिद्ध पुरुषोंका दर्शन करते हुए साधक आगे बढ़ता है और परम उत्तम कलाप-ग्राममें पहुँच जाता है। वहाँके मनुष्योंकी आयु चार हजार वर्षकी बतलायी गयी है। वहाँ सब लोग फलोंका ही भोजन करते हैं।

इस प्रकार बिलके मार्गसे कलाप-ग्रामतक पहुँचनेकी विधि बतायी गयी है। अब आगे जो कुछ हुआ उसको श्रवण करो। अपनी तपस्याकी शक्तिसे अत्यन्त सूक्ष्म रूप धारण करनेवाले उन ब्राह्मणोंको दण्डके अग्र भागपर रखकर मैं महीसागरसङ्गम तीर्थमें आया और वहाँ पवित्र जलाशयके तटपर उतारकर उन्हें स्वतन्त्र कर दिया। फिर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ मैंने सम्पूर्ण दोषोंको दग्ध करनेके लिये दावानलसदृश महीसागरसङ्गम तीर्थमें स्नान किया और देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करके परम उत्तम गायत्री-मन्त्रका जप करते हुए हम सब लोग सङ्गमके समीप बैठ गये। हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए भगवान् सूर्यकी ओर देखते रहे। इसी समय इन्द्र आदि देवता, सूर्य आदि सम्पूर्ण ग्रह, लोकपाल, आठ देव-जातियाँ, गन्धर्व तथा अप्सराओंके समूह—ये सब वहाँ आ पहुँचे। तदनन्तर महामुनि कपिलजी भी वहाँ आये और नारदजीसे इस प्रकार बोले—'देवर्षे! मुझे आठ हजार ब्राह्मण दीजिये। कलाप-ग्रामके निवासी इन ब्राह्मणोंको मैं भूमिदान करूँगा। आप इसकी व्यवस्था करें।' तब मैंने उनसे प्रतिज्ञापूर्वक कहा—'महामुने! ऐसा ही हो। आप भी यहाँ उत्तम कपिलस्थानका निर्माण करें। श्राद्धमें अथवा श्राद्धोपयोगी समय प्राप्त होनेपर जिसके आश्रममें आया हुआ अतिथि विमुख लौट जाता है, उसका सब सत्कर्म निष्फल होता है। जो अतिथिका पूजन—स्वागत-सत्कार नहीं करता, वह रौरव नरकमें जाता है। जिसके द्वारा अतिथिका पूजन होता है, वह सम्पूर्ण देवताओंके

द्वारा स्वयं भी पूजित होता है।* इसलिये उस तीर्थमें दान और यज्ञके द्वारा मैंने कपिल मुनिको भोजन कराया।

तत्पश्चात् मैंने श्रीमान् हारीत मुनिको उनका चरण पखारनेके लिये बुलाया। तब मैंने ब्राह्मणोंसे कहा—

पूर्वकालकी बात है, महर्षि अङ्गिराके कुलमें एक प्रसिद्ध ब्राह्मण हुए थे। वे महान् विद्वान् थे, परंतु प्रत्येक कार्यमें अधिक विलम्ब किया करते थे। उनके पिताका नाम महर्षि गौतम था। वे सब कार्य भलीभाँति सोच-विचारकर बहुत देरके बाद प्रारम्भ करते थे। उनके द्वारा चिरकालमें कार्य-सिद्धि होनेके कारण वे जनसाधारणमें चिरकारी कहे जाने लगे। एक बार चिरकारीकी मातासे कोई अपराध हो गया। उससे कुपित होकर उनके अदीर्घदर्शी पिताने अन्य सब पुत्रोंको छोड़कर केवल चिरकारीको आदेश दिया कि 'तुम अपनी इस माताको मार डालो।' उन्होंने बड़ी देरके बाद उत्तर दिया—'अच्छा, ऐसा ही करूँगा।' परंतु वे तो स्वभावसे ही चिरकारी थे। अपनी चिरकारिताका विचार करके चिरकालतक इस विषयमें सोच-विचार करते रहे। 'मैं पिताकी इस आज्ञाका पालन कैसे करूँ? अपनी माताको कैसे मारूँ? पिताके आज्ञापालनरूप धर्मका बहाना लेकर इस मातृहत्या-रूप अधर्ममें कैसे डूब जाऊँ? माना कि पिताकी आज्ञाका पालन सबसे बड़ा धर्म है; परंतु उसी प्रकार माताकी रक्षा भी तो मेरा अपना धर्म है। पुत्रत्व सर्वथा परतन्त्र है—पुत्र माता और पिता दोनोंके अधीन है। स्त्रीकी, उसमें भी माताकी हत्या करके कभी भी कौन सुखी रह सकता है? ऐसे ही, पिताकी भी अवहेलना करके कौन प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है? पुत्रके लिये यही उचित है कि पिताकी अवहेलना न करे। साथ ही उसके लिये माताकी रक्षा करना भी उचित है। शरीर आदि जो देने योग्य वस्तुएँ हैं, उन सबको एक-मात्र पिता देते हैं, इसलिये पिताकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करना चाहिये। पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले पुत्रके पूर्वकृत पातक भी धुल जाते हैं। पिता स्वर्ग है, पिता धर्म है और पिता सर्वश्रेष्ठ तपस्या है। पिताके प्रसन्न होनेपर सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं।† यदि पिता प्रसन्न है, तो पुत्रके सब पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है। वह सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। पुत्रके स्नेहसे कष्ट पाते हुए भी पिता उसके प्रति स्नेह नहीं छोड़ते। यह पिताका गौरव है, जिसपर पुत्रकी दृष्टिसे मैंने विचार किया है। पिताका छोटा-*मोटा स्थान नहीं है। उनका पद बहुत ऊँचा है।* अब मैं माताके विषयमें विचार करूँगा। मेरे इस मानव-जन्ममें जो यह पञ्चभूतोंका समुदायरूप शरीर प्राप्त हुआ है इसका कारण तो मेरी माता ही है। जिसकी माता जीवित है, वह सनाथ है। जो मातृहीन है, वह अनाथ है। पुत्र और पौत्रसे युक्त मनुष्य यदि सौ वर्षकी आयुके बाद भी अपनी माताके आश्रयमें जाता है, तो वह दो वर्षके बालककी भाँति आचरण करता है। पुत्र समर्थ हो या असमर्थ, दुर्बल हो या पुष्ट—माता उसका विधिवत् पालन करती है। माताके समान कोई तीर्थ नहीं है, माताके समान कोई गति नहीं है, माताके समान कोई रक्षक नहीं है तथा माताके समान कोई प्याऊ नहीं है। माता अपने गर्भमें धारण करनेके कारण 'धात्री' है, जन्म देनेवाली होनेसे 'जननी' है, अङ्गोंकी वृद्धि करनेके कारण 'अम्बा' है, वीर पुत्रका प्रसव करनेके कारण 'वीरप्रसू' कहलाती है, शिशुकी शुश्रूषा करनेसे वह 'शक्ति' कही गयी है तथा सदा सम्मान देनेके कारण उसे 'माता' कहते हैं।* मुनिलोग पिताको देवताके समान समझते हैं परंतु मनुष्यों और देवताओंका समूह माताके समीप नहीं पहुँच पाता—माताकी बराबरी नहीं कर सकता। पतित होनेपर गुरुजन भी त्याग देने योग्य माने गये हैं; परंतु माता किसी प्रकार भी त्याज्य नहीं है। कौशिकी नदीके तटपर स्त्रियोंसे घिरे हुए राजा बलिकी ओर वह देरतक देखती रही; केवल इसी अपराध-वश पिताने मुझे अपनी माताको मार डालनेका आदेश दिया है।' चिरकारी होनेके कारण वे इन्हीं सब बातोंपर अधिक समयतक विचार करते रहे, परंतु उनकी चिन्ताका अन्त नहीं हुआ।

इसी समय उदारबुद्धिवाले मेधातिथि (गौतम) दुखी हो आँसू बहाते हुए इस प्रकार चिन्ता करने लगे—

* श्राद्धे वा प्राप्तकाले वा ह्यतिथिर्विमुखीभवेत्।
यस्याश्रममुपायातस्तस्य सर्वं हि निष्फलम्॥
स गच्छेद्रौरवाँल्लोकान् योऽतिथिं नाभिपूजयेत्।
अतिथिः पूजितो येन स देवैरपि पूज्यते॥
(स्क० मा० कुमा० ४। ५७-५८)

† पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने सर्वाः प्रीणन्ति देवताः॥
(स्क० मा० कुमा० ४। ८९-९०)

* नास्ति मात्रा समं तीर्थं नास्ति मात्रा समा गतिः।
नास्ति मात्रा समं त्राणं नास्ति मात्रा समा प्रपा॥
कुक्षौ सन्धारणाद्धात्री जननाज्जननी तथा।
अङ्गानां वर्द्धनादम्बा वीरसूत्वेन वीरसूः॥
शिशोः शुश्रूषणाच्छक्तिर्माता स्यान्माननाच्च सा।
... ...
(स्क० मा० कुमा० ४। ९९-१०१)

'अहो ! पतिव्रता नारीका वध करके मैं पापके समुद्रमें डूब गया हूँ । अब कौन मेरा उद्धार करेगा ? मैंने उदार विचार-वाले चिरकारीको बड़ी शीघ्रतासे वह कठोर आज्ञा दे दी थी । यदि यह सचमुच चिरकारी हो तो मुझे पापसे बचा सकता है । चिरकारिक ! तुम्हारा कल्याण हो । यदि आज भी अपने नामके अनुसार तुम चिरकार्य बने रहे, तभी वास्तवमें चिरकार्य हो । बेटा ! तुम आज मुझे अपनी माताको तथा मेरे द्वारा उपार्जित तपस्याको बचाओ । चिरकारक ! तुम पातक और भयसे अपनी भी रक्षा करो ।' इस प्रकार अत्यन्त दुःखित हो चिन्ता करते हुए गौतम मुनि चिरकारीके पास आये । वहाँ आकर उन्होंने अपने पुत्र चिरकारीको माताके पास बैठे देखा । चिरकारी पिताको अपने समीप आया देख बहुत दुखी हुए और हथियार फेंककर पिताके चरणोंमें मस्तक रखकर वे उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगे । मेधातिथि पुत्रको पृथ्वीपर मस्तक रखकर पड़े देख और पत्नीको जीवित पाकर बड़े प्रसन्न हुए । जब पुत्र हाथमें हथियार लेकर खड़ा था, तब भी माताने ऐसा नहीं समझा कि यह मुझे मार डालेगा । अब उसे पिताके चरणोंमें पड़ा देख माता यह विचार करने लगी कि 'इसने हथियार उठानेकी जो चपलता की है, उसीको पिताके भयसे छिपा रहा है ।' तदनन्तर पिताने बड़ी देरतक पुत्रकी ओर देखा । देरतक उसका मस्तक सूँघा । चिरकालतक उसे दोनों भुजाओंमें कसकर छातीसे लगाये रक्खा और अन्तमें कहा—'बेटा !

तुम चिरजीवी रहो ।' मेधातिथि बड़ी देरतक प्रसन्नतामें डूबे रहे । फिर पुत्रसे इस प्रकार बोले—'चिरकारिक ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हारी आयु चिरस्थायिनी हो । सौम्य ! तुमने चिरकालतक विलम्ब करके जो कार्य किया है, उसके कारण मुझे इस समय अधिक समयतक दुखी नहीं होना पड़ा है ।'

तदनन्तर प्रसिद्ध विद्वान् मुनिश्रेष्ठ गौतमने गाथा गान किया, जो इस प्रकार है—'चिरकालतक विचार करके कोई मन्त्रणा स्थिर करे । स्थिर किये हुए मन्त्र (परामर्श) को चिरकालके बाद छोड़े । चिरकालमें किसीको मित्र बनाकर उसे चिरकालतक धारण किये रहना उचित है । राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापकर्म तथा अप्रिय कर्तव्यमें चिरकारी (विलम्ब करनेवाला) प्रशंसाका पात्र है । बन्धु, सुहृद्, भृत्य और स्त्रीवर्गके अव्यक्त अपराधोंमें जल्दी कोई दण्ड न देकर देरतक विचार करनेवाला पुरुष प्रशंसनीय माना गया है । चिरकालतक धर्मोंका सेवन करे । किसी बातकी खोजका कार्य चिरकालतक करता रहे । विद्वान् पुरुषोंका संग अधिक कालतक करे । इष्टमित्रोंका सेवन अथवा इष्टदेवताकी उपासना दीर्घकालतक करे । अपनेको चिरकालतक विनयशील बनाये रखनेवाला पुरुष दीर्घकालतक आदरका पात्र बना रहता है । दूसरा कोई भी यदि धर्मयुक्त वचन कहे तो उसे देरतक सुने और देरतक उसके विषयमें प्रश्न करता रहे । ऐसा करनेसे मनुष्य चिरकालतक तिरस्कारका पात्र नहीं बनता ।

पर यदि कोई धर्मका कार्य आ गया हो तो उसके पालनमें विलम्ब नहीं करना चाहिये । शत्रु हाथमें हथियार लेकर आता हो तो उससे आत्मरक्षा करनेमें देर नहीं लगानी चाहिये । यदि कोई सुपात्र व्यक्ति अपने समीप आ गया हो तो उसका सम्मान करने या उसे कुछ देनेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये । भयसे बचने और साधु पुरुषोंका स्वागत-सत्कार करनेमें भी देर नहीं करनी चाहिये । उपर्युक्त कार्योंमें जो विलम्ब करता है, वह प्रशंसाका पात्र नहीं है ।'*

---

* चिरेण मन्त्रं संधीयाच्चिरेण च कृतं त्यजेत् ।
चिरेण विहितं मित्रं चिरं धारणमर्हति ॥
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ।
अप्रिये चैव कर्तव्ये चिरकारी प्रशस्यते ॥
बन्धूनां सुहृदां चैव भृत्यानां स्त्रीजनस्य च ।
अव्यक्तेष्वपराधेषु चिरकारी प्रशस्यते ॥
चिरं धर्मान्निषेवेत कुर्याच्चान्वेषणं चिरम् ।
चिरमन्वास्य विदुषश्चिरमिष्टानुपास्य *॥

ऐसा कहकर स्त्री और पुत्रके साथ गौतम मुनि शान्तिको प्राप्त हुए। तदनन्तर चिरकालतक तपस्या करके उन्होंने दिव्य लोक प्राप्त किया।

यह बात मैंने उन सर्वगुणसम्पन्न ब्राह्मणोंके समक्ष वहाँ कही। तत्पश्चात् धर्मवर्माके समीप हारीत आदि मुनियोंके चरण पखारकर सम्पूर्ण देवताओंको साक्षी बनाकर मैंने संकल्पपूर्वक सुवर्ण, गौ, गृह, धन, स्त्री, वस्त्र और आभूषण आदि दे उन ब्राह्मणोंको कृतार्थ किया। इसके बाद उस देवसमाजमें इन्द्रने हाथ उठाकर कहा—'देवताओ! भगवान् शङ्करके अर्द्धाङ्गमें अपना वामार्द्ध भाग स्थापित करनेवाली देवी गिरिराजनन्दिनी जबतक विद्यमान हैं, गणेशजी, हम सब देवता और ये तीनों लोक जबतक मौजूद हैं, तबतक नारदजीके द्वारा स्थापित किया हुआ यह स्थान सदा समृद्धिशाली बना रहे। इस स्थानको नष्ट करनेवाले मनुष्यपर ब्रह्मशाप, विष्णुशाप, रुद्रशाप तथा ब्राह्मणशाप भी पड़े; क्योंकि तीर्थभूमिमें देवताओं और ब्राह्मणोंके द्रव्यका अपहरण करनेवाले और उनका अनुमोदन करनेवाले पापात्मा मनुष्य नरकमें सैकड़ों वर्षोंतक रुद्रतालकी मार खाते रहते हैं।'

तब सबने प्रसन्न होकर 'ऐसा ही हो, ऐसा ही हो' इस प्रकार कहा। इस प्रकार मेरे द्वारा स्थापित किये हुए स्थानमें महर्षि कपिलने कापिल नामक स्थानकी संस्थापना की। तदनन्तर सब देवता देवलोकको चले गये।

लोमशजीका राजा इन्द्रद्युम्नको अपने पूर्वजन्मका चरित्र सुनाकर शिवकी आराधनाका महत्त्व बतलाना

अर्जुन बोले—नारदजी! आपने महीसागरसंगमके अद्भुत माहात्म्यका वर्णन किया। उसे सुनकर मुझे बड़ा विस्मय और हर्ष हो रहा है। बताइये, किसके यज्ञमें मही नदी प्रकट हुई है?

नारदजीने कहा—पाण्डुनन्दन! प्राचीन कालमें इस पृथ्वीपर इन्द्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। वे बड़े दानी, सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता, माननीय पुरुषोंका सम्मान करनेवाले तथा सामर्थ्यशाली थे। वे उचित कार्योंके ज्ञाता, विवेकके निवासस्थान तथा गुणोंके समुद्र थे। भूमण्डलमें कोई भी ऐसा नगर, ग्राम या शहर नहीं था, जो राजाके द्वारा किये गये धर्मानुष्ठानके चिह्नोंसे अङ्कित न हो। उन्होंने ब्राह्मविवाहकी विधिसे अनेक बार कन्यादान किया था। वे धनार्थियोंको एक हजार स्वर्णमुद्रासे कम दान नहीं देते थे। दशमी तिथिके दिन रात्रिकालमें हाथीकी पीठपर नगाड़ा रखकर उनके सम्पूर्ण नगरमें बजाया जाता और यह घोषणा की जाती कि 'कल प्रातःकाल एकादशीका व्रत है, वह सबको करना चाहिये।' गङ्गाकी बालू, वर्षाकी धारा तथा आकाशके तारे कदाचित् विद्वान् पुरुषोंद्वारा गिने जा सकते हैं; परंतु महाराज इन्द्रद्युम्नके पुण्योंकी गणना नहीं की जा सकती। ऐसे पुण्योंके प्रभावसे राजा इन्द्रद्युम्न अपने मानव-शरीरसे ही विमानपर बैठकर ब्रह्माजीके लोकमें जा पहुँचे और वहाँ देवदुर्लभ भोगोंका उपभोग किया। इस प्रकार अनेक कल्प बीत जानेके बाद ब्रह्माजीने अपने लोकमें निवास करनेवाले राजा इन्द्रद्युम्नसे कहा—'राजन्! अब तुम पृथ्वीपर जाओ।'

चिरं विनीय चात्मानं चिरं यात्यनवज्ञताम्। ब्रुवतश्च परस्यापि वाक्यं धर्मोपसंहितम्॥
चिरं पृच्छेच्च शृणुयाच्चिरं न परिभूयते। धर्मे शत्रौ शस्त्रहस्ते पात्रे च निकटस्थिते॥
भये च साधुपूजायां चिरकारी न शस्यते। (स्क० मा० कुमा० ४। १२०—१२२)

राजाने ब्रह्माजीकी यह बात सुनी और सुननेके साथ ही अपनेको पृथ्वीपर आया हुआ देखा।

(उसके बाद राजा इन्द्रद्युम्न मार्कण्डेय मुनि, नाडीजङ्घ बक, प्राकारकर्ण उलूक, चिरायु गीधराज एवं मन्थर कछुएसे मिले और) वे बोले—स्वयं चार मुखवाले ब्रह्माने ही मुझे स्वर्गसे निकाल दिया है। इसके कारण मैं लज्जित हूँ, अतः बार-बार पतन होनेके दोषसे दूषित स्वर्गलोकमें अब मैं नहीं जाऊँगा। अब तो मैं अविद्या और पापका नाश करनेवाले विवेक-वैराग्यका आश्रय ले ज्ञान-प्राप्तिपूर्वक मोक्षके लिये यत्न करूँगा। इसलिये यदि आप अपने घरपर आये हुए मुझ अतिथिका आज सत्कार करना चाहते हैं तो मुझे ऐसे किसी गुरुका पता बता दीजिये जो मुझे इस संसार-सागरसे पार कर देनेवाला हो।

कछुएने कहा—राजन्! लोमश नामवाले एक महामुनि हैं, जिनकी आयु मुझसे भी बड़ी है। पहले मैंने उन्हें कलापग्राममें कहीं देखा था।

इन्द्रद्युम्न बोले—तब तो चलिये, हम सब लोग साथ ही उनके पास चलें, विद्वान् पुरुष सत्सङ्गको तीर्थसे भी अधिक पवित्र बतलाते हैं।*

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तदनन्तर उन सबने कलाप-ग्राममें पहुँचकर महामुनि लोमशके दर्शन किये। वे मन और इन्द्रियोंके संयममें तत्पर तथा क्रियायोगमें संलग्न थे। तीनों काल स्नान करनेसे उनकी जटाएँ कुछ पीली पड़ गयी थीं, उन्हींको अपने मस्तकपर धारण किये हुए, घीकी आहुतिसे प्रज्वलित हुई अग्निकी भाँति अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उन्होंने छाया करनेके लिये अपने बायें हाथमें एक मुट्ठी तृण ले रक्खा था और दाहिने हाथमें रुद्राक्षकी माला धारण कर रक्खी थी। वे महामुनि मुनि, बक, उलूक, गृध्र और कछुएने कलापग्राममें उन पुरातन तपोनिधि महात्माका दर्शन करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनिने भी आसन आदि देकर स्वागत-सत्कारके द्वारा उन सबको प्रसन्न किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपना मनोगत कार्य निवेदन किया।

कछुआ बोला—भगवन्! ये यज्ञ करनेवाले पुरुषोंमें अग्रगण्य महाराज इन्द्रद्युम्न हैं। वसुधामें इनकी कीर्तिका लोप हो जानेसे ब्रह्माजीने इन्हें स्वर्गसे निकाल दिया है। अब ये स्वर्गकी इच्छा नहीं रखते। वहाँसे पुनः गिरनेका भय बना रहता है। इसलिये स्वर्ग इन्हें भयानक प्रतीत होता है। अब आपके अनुग्रहसे ये मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। अतएव मैं इन्हें आपके पास ले आया हूँ, इन्हें आप अपना शिष्य समझें और इनके मनोवाञ्छित प्रश्नोंका उत्तर दें, क्योंकि परोपकार साधुपुरुषोंका व्रत है।

लोमशजीने कहा—कूर्म! तुम्हारा कथन उचित ही है। राजन्! तुम्हारे मनमें क्या सन्देह है सो बताओ।

इन्द्रद्युम्न बोले—भगवन्! मेरा पहला प्रश्न यह है कि गरमीका समय है, सूर्यदेव आकाशके मध्यमें आकर तप रहे हैं, तो भी आपने अपने लिये कोई कुटी क्यों नहीं बनायी, जो हाथमें तिनके लेकर आप मस्तकपर छाया किये हुए हैं।

लोमशजीने कहा—राजन्! एक दिन मरना अवश्य है। यह शरीर गिर जायगा, फिर इस अनित्य संसारमें रहनेवाले मनुष्योंद्वारा किसके लिये घर बनाया जाता है। दाँत चले जाते हैं, लक्ष्मी चली जाती है तथा यौवन और जीवन भी चला जानेवाला है। यह जो कुछ दिखायी देता है, सब अत्यन्त चञ्चल (क्षणभङ्गुर) है। ऐसी दशामें दान करना ही मनुष्योंके लिये सर्वोत्तम रह है। इस प्रकार संसारको असार और चलायमान जान लेनेपर किसके लिये कुटी आदि-

डरता हूँ, जब मरना ही है तब घर बनाकर क्या होगा ?

इन्द्रद्युम्न बोले—ब्रह्मन् ! मैं पूछता हूँ कि आपको जो ऐसी बड़ी आयु प्राप्त हुई है वह दानका प्रभाव है अथवा तपस्याका ?

लोमशजीने कहा—राजन् ! सुनो, मैं अपने पूर्व-जन्मका प्रसंग सुना रहा हूँ । यह कथा शिवधर्मकी महिमासे युक्त, पुण्यदायिनी तथा सब पापोंका नाश करनेवाली है । पूर्वकालमें मैं इस पृथ्वीपर अत्यन्त दरिद्र शूद्र होकर उत्पन्न हुआ था । उस समय भूखसे बहुत पीड़ित होकर पृथ्वीपर भ्रमण किया करता था । एक दिन दोपहरके समय जलके भीतर मैंने एक बहुत बड़ा शिवलिङ्ग देखा । फिर उस जलाशयमें प्रवेश करके जल पीया और स्नान किया । तत्पश्चात् कमलके सुन्दर फूलोंसे उस नहलाये हुए शिवलिङ्गका पूजन किया । भूखसे मेरा गला सूखा जा रहा था । भगवान् नीलकण्ठको नमस्कार करके मैं पुनः आगे चल दिया । उस मार्गमें ही मेरी मृत्यु हो गयी । तदनन्तर दूसरे जन्ममें मैं ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न हुआ । एक ही बार शिवलिङ्गको नहलाने और पूजा करनेसे मुझे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहने लगा । 'यह सम्पूर्ण जगत् जो सत्य-सा प्रतीत हो रहा है, मिथ्याका विलास है, अविद्या ही इसका मूलकारण है ।' ऐसा जानकर मैंने मूकता धारण कर ली । उस ब्राह्मण-भगवान् शङ्करकी भलीभाँति आराधना करके वृद्धावस्थामें मुझे प्राप्त किया था । इसलिये मेरा नाम ईशान रक्खा । मेरे माता-पिताके मनको महामायाने ममतामें बाँध रक्खा था । वे मेरा गूँगापन दूर करनेके लिये नाना प्रकारके मन्त्र-यन्त्र तथा दूसरे उपाय भी किया करते थे । उनकी वह मूढ़ता देखकर मुझे मन-ही-मन हँसी आती थी । कुछ कालके पश्चात् जब मैं जवान हुआ, तो रातमें अपना घर छोड़कर निकल जाता और कमलके फूलोंसे भगवान् शिवकी पूजा करके पुनः शयनस्थानपर लौट आता था । तदनन्तर पिताकी मृत्यु हो जानेपर मेरे सम्बन्धियोंने मुझे निरा गूँगा समझकर त्याग दिया । इससे मुझे प्रसन्नता ही हुई । अब मैं फलाहार करके रहने लगा और भाँति-भाँतिके कमलोंसे भगवान् भूतनाथकी पूजा करने लगा । इस प्रकार सौ वर्ष बीतनेपर वरदायक भगवान् चन्द्रशेखरने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया । उस समय मैंने याचना की—'भगवन् ! मेरी जरा और मृत्युका नाश हो ।'

तब भगवान् शिव बोले—जो नाम और रूप धारण करता है वह सर्वथा अजर-अमर नहीं हो सकता । अतः तुम अपने जीवनकी कोई सीमा निश्चित करो ।

भगवान् शिवका यह वचन सुनकर मैंने इस प्रकार वरदान माँगा—'प्रत्येक कल्पके अन्तमें मेरे शरीरका एक रोम गिरे और इस प्रकार सब रोम गिर जानेपर मेरी मृत्यु हो, उसके बाद मैं आपका गण होऊँ, यही मेरा अभीष्ट वर है ।' 'अच्छा, ऐसा ही होगा' यों कहकर भगवान् शिव अदृश्य हो गये और मैं तभीसे तपस्यामें संलग्न हो गया । ब्रह्म-कमल अथवा अन्य कमलोंसे भगवान् शिवकी पूजा करनेपर मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है । महाराज ! तुम भी ऐसा ही करो । इससे तुम अपनी मनोवाञ्छित वस्तु प्राप्त कर लोगे । भगवान् शिवके भक्तके लिये त्रिलोकीमें कुछ भी दुर्लभ नहीं । ज्ञानेन्द्रियोंकी बाह्य विषयोंमें होनेवाली प्रवृत्तिको रोककर उन सबका भगवान् सदाशिवमें नित्य लय करना 'अन्तर्योग' कहलाता है । अन्तर्योगका साधन कठिन होनेके कारण भगवान् शिवने स्वयं ही बहिर्योगका इस प्रकार वर्णन किया है, पाँच भूतोंके द्वारा भगवान् शिवका पूजन 'बहिर्योग' है, अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये सब भगवान् शिवकी पूजाके उपकरण हैं, ऐसा समझकर भावना-द्वारा इन्हें भगवान् शिवके चरणोंमें समर्पित करना, यह बहिर्योग-पूजाकी पद्धति है । बहिर्योग विशिष्ट फल देनेवाला

और अक्षय माना गया है। जो अविद्या आदि पाँच[1] क्लेशों, कर्मोंके सुख-दुःखादि परिणामों तथा वासनाओंसे सर्वथा पृथक् हैं, उन भगवान् शङ्करकी आराधनापूर्वक प्रणव-जप करनेवाला पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है, सब पापोंका नाश हो जानेपर भगवान् शिवमें भावना होती है—उनके चिन्तनमें मन लगता है। जिनकी बुद्धि पापसे दूषित है उनके लिये शिवकी चर्चा भी दुर्लभ है, भारतवर्षमें जन्म होना दुर्लभ है, भगवान् शिवका पूजन दुर्लभ है, गङ्गा-स्नान दुर्लभ है, शिवकी भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है, ब्राह्मणको दान देना दुर्लभ है, अग्निकी आराधना भी दुर्लभ है, थोड़े-से पुण्यवाले पुरुषोंके लिये भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजाका अवसर तो और भी दुर्लभ है।* पूर्वकालमें महादेवजीकी आराधना करके जिस प्रकार मेरी आयु बड़ी हुई, वह प्रसंग मैंने तुम्हें सुनाया ही है। भगवान् शिवकी भक्ति करनेवाले महात्मा पुरुषोंको त्रिलोकीमें कुछ भी दुर्लभ, दुष्प्राप्य अथवा असाध्य नहीं है। जिनकी इच्छासे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता, स्थिर रहता और अन्तमें संहारको प्राप्त होता है, उन भगवान् शङ्करकी शरणमें कौन नहीं जायगा। राजन्! यह रहस्यकी बात है। भगवान् शङ्करकी आराधना ही संसारके मनुष्योंका प्रधान कर्तव्य है। जो भगवान् शिवको मस्तक झुकाता है, वह निश्चय उन्हें प्राप्त करता है।

संवर्तके मुखसे महीसागरसङ्गमकी महिमा तथा भर्तृयज्ञद्वारा शतरुद्रिय सुनकर शिवकी आराधनासे इन्द्रद्युम्न आदि सब भक्तोंको शिवसारूप्यकी प्राप्ति

नारदजी कहते हैं—मुनिवर लोमशके ये वचन सुनकर राजा इन्द्रद्युम्नने कहा, अब मैं आपको छोड़कर दूसरे किसीके पास नहीं जाऊँगा। यहीं आपसे अनुगृहीत होकर अब मैं शिवलिङ्गका आराधन करूँगा, जो कि मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। बक, गृध्र, कच्छप और उलूकने भी वैसा ही विचार प्रकट किया। मुनिवर लोमश बड़े शरणागतवत्सल थे। उन सब लोगोंपर दया करके उन्होंने शिवदीक्षाकी विधिसे उन्हें लिङ्गपूजनका उपदेश किया। सच है, साधुपुरुषोंका समागम तीर्थसे भी बढ़कर है। उसका परिपक्व फल तत्काल प्राप्त होता है तथा वह दुरन्त पापोंका भी नाश करनेवाला है। साधु-सभा (सत्सङ्ग) रूपी सूर्यका उदय कोई अद्भुत और अनिर्वचनीय प्रभाव रखता है; क्योंकि वह अन्तःकरणमें व्याप्त हुए अज्ञानान्धकारका अत्यन्त विनाश करनेवाला है। साधु-समागमसे प्रकट हुए आनन्दमय अमृतरसकी सभी लहरें श्रेष्ठ हैं तथा वे सुधा, माध्वी, शर्करा और मधुके समान मीठी एवं छः रसोंसे[2] युक्त हैं।†

तदनन्तर मार्कण्डेय मुनि और राजा इन्द्रद्युम्न आदि छहों मित्रोंने साधुसङ्ग पाकर शिवशास्त्रके अनुसार क्रिया-योग (तप, स्वाध्याय और ईश्वरका ध्यान) आरम्भ किया। एक समय उनके तपस्याकालमें ही लोमश मुनिका दर्शन करनेके लिये उत्सुक हो तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे मैं वहाँ गया, क्योंकि तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे महापुरुषोंके दर्शनके लिये जाना ही यात्राका प्रधान उद्देश्य है। जिस भूभागमें संत-महात्मा

---

१. अविद्या, अस्मिता (चिज्जडग्रन्थि), राग, द्वेष और अभिनिवेश (मरणभय)।

* पापोपहतबुद्धीनां शिववार्तापि दुर्लभा। दुर्लभं भारते जन्म दुर्लभं शिवपूजनम्॥
दुर्लभं जाह्नवीस्नानं शिवे भक्तिः सुदुर्लभा। दुर्लभं ब्राह्मणे दानं दुर्लभं वह्निपूजनम्॥
अल्पपुण्यैश्च दुष्प्राप्यं पुरुषोत्तमपूजनम्। (स्क० मा० कुमा० १०। ५३-५५)

२. दास्यरति, सख्यरति, वात्सल्यरति, शान्तरति, कान्तरति तथा अद्भुतरति—भक्तिरसके पोषक ये षड्विध भाव ही यहाँ छः रस बताये गये हैं।

† तीर्थादप्यधिकः स्थाने सतां साधुसमागमः। पचेलिमफलः सद्यो दुरन्तकलुषापहः॥
अपूर्वः कोऽपि सद्गोष्ठी सहस्रकिरणोदयः। य एकान्ततयात्यन्तमन्तर्गततमोपहः॥
साधुगोष्ठीसमुद्भूतसुखामृतरसोर्मयः। सर्वे वराः सुधाध्वीशर्करामधुषड्रसाः॥
(स्क० मा० कुमा० ११। ६-८)

निवास करते हैं, वही 'तीर्थ' कहलाता है।* अर्जुन! पूजन और आतिथ्य-सत्कार होनेके पश्चात् जब मैं भलीभाँति विश्राम कर चुका, तब उन नाड़ीजङ्घ आदि भक्तोंने प्रणाम करके मुझसे पूछा —'ब्रह्मन्! मोक्ष-साधनके लिये कौन-सा स्थान है, बतलानेकी कृपा करें?'

उनके ऐसा पूछनेपर मैंने कहा—तुमलोग महासंवर्तसे यह बात पूछो। वे तुम्हें सब तीर्थोंके फलकी प्राप्ति करानेवाले तीर्थस्थानका पता बतायेंगे।

वे बोले—योगी संवर्तजी कहाँ तपस्या करते हैं, यदि जानते हों तो बताइये?

तब मैंने कहा—संवर्त मुनि काशीमें रहते हैं। उन्होंने गुप्त वेष धारण कर रक्खा है। वे नंगे रहते और भिक्षान्न भोजन करते हैं। दिनके दूसरे पहरकी पिछली घड़ी और तीसरे पहरकी पहली घड़ीको 'कुतप' काल कहते हैं। उसके बाद ही वे निकलते हैं और हाथमें ही भिक्षा लेकर उसे भोजन करते हैं। उनके पास किसी प्रकारकी वस्तुका भी संग्रह नहीं है। वे प्रणववाच्य परब्रह्म परमेश्वरका ध्यान करते रहते हैं। सायंकाल वनमें रहते हैं, किन्तु कोई भी मनुष्य उन योगीश्वर संवर्तजीको पहचान नहीं पाता। न पहचाननेका एक कारण भी है, उन्हींके-जैसे वेष और देह धारण करनेवाले दूसरे लोग भी वहाँ रहते हैं। मैं एक ऐसा लक्षण बतलाता हूँ, जिससे तुमलोग संवर्तजीको पहचान लोगे। रातको उस चौड़ी सड़कपर, जो नगरके मध्यसे होकर निकलती है, तुमलोग एक मुर्दा लाकर जमीनपर इस ढंगसे रखना, जिससे दूसरोंको उसका पता न चले और स्वयं उससे थोड़ी ही दूरपर खड़े रहना। जो कोई भी उस भूमिके निकटतक आकर सहसा लौट पड़े, वही संवर्त हैं। ये मुर्देको तुल्य समझकर उसे लाँघकर नहीं जाते; यह एक संशयरहित पहचान है। इस प्रकार जब संवर्तजी मिल जायँ तब विनीत भावसे उनकी शरणमें जाकर उनसे अपनी इच्छाके अनुसार प्रश्न करना। यदि वे पूछें, 'मेरा पता किसने बताया है?' तो मेरा नाम प्रकट कर देना।

मेरी बात सुनकर उन सबने वैसा ही किया। काशीपुरीमें पहुँचकर मेरे बताये अनुसार संवर्तको देखा। उनके रक्खे हुए शवको देखकर संवर्तजी भूखसे व्याकुल होनेपर भी सहसा लौट पड़े। तब वे उन्हें पहचानकर शीघ्रतापू[र्वक] पीछे गये। सड़कपर चलते हुए संवर्तको पुकार[ते] जाते थे—'ब्रह्मन्! क्षणभरके लिये खड़े तो हो[इये]' परन्तु वे उन्हें फटकारते हुए चले जाते थे। सा[थ] भी कहते जाते थे—'अरे! तुम सबलोग लौट जाओ' भागते जब वे बहुत दूर चले गये, तब एक स्थान[पर] पूछा—'किसने तुम्हें मेरा पता बताया है, शीघ्र [बताओ]' तब उन्होंने काँपते हुए उत्तर दिया—'नारदजीने ब[ताया है]' तब संवर्तने पुनः मार्कण्डेय आदिसे कहा, 'मेरे रास्ते[से] हटा दो, मैं भूखा हूँ, पुनः पुरीमें भिक्षाके लिये [जाऊँगा।] तुम्हारा प्रश्न क्या है, उसे भी कहो।'

वे बोले—महामुने! हम आपकी शरणमें आ[ये हैं।] कृपया हमें ऐसा कोई उपाय बतावें, जिससे हमलोग अनुग्रहसे मोक्ष प्राप्त कर लें। जिस तीर्थमें जाकर [मनुष्य] सब तीर्थोंका फल प्राप्त कर लेता है, उसका नाम [बताइये] जिससे हम सब लोग जाकर वहीं रहें।

संवर्तने कहा—स्वामिकार्तिकेय तथा नव दु[र्गाओंको] नमस्कार करके मैं तुमलोगोंको सर्वोत्तम तीर्थका [पता] देता हूँ। उस तीर्थका नाम है—महीसागरसङ्गम। [पूर्वकालमें] बुद्धिमान् नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न जब यहाँ यज्ञ करते थे, त[ब उनके] द्वारा यह पृथ्वी दो अङ्गुल ऊँची कर दी गयी थी [उस] समय जैसे गीले काठके तपनेपर उससे पानी चूता है, [उसी] प्रकार यज्ञाग्निद्वारा तपती हुई पृथ्वीसे जलका स्रोत [बहने] लगा। उस जलराशिको समस्त देवताओंने नमस्कार कि[या।] वही महीनामक नदी है। पृथ्वीपर जो कोई भी ती[र्थ हैं] उन सबके जलसे उत्पन्न साररूप मही नदीका जल [बताया] गया है। माल्वा नामक देशसे मही नदी उत्पन्न हुई है [और] दक्षिण समुद्रमें जाकर मिली है। उसके दोनों तट पुण्यमय तीर्थ हैं। वह सबके लिये कल्याणमयी है। [एक] तो महानदी मही स्वयं ही सर्वतीर्थमयी है। फिर सरिताओंके स्वामी समुद्रसे उसका सङ्गम हुआ है, [अतः उस] तीर्थके विषयमें कहना ही क्या है। काशी, कुरुक्षेत्र, [गङ्गा,] नर्मदा, सरस्वती, तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, चन्द्रभ[ागा,] इरावती, कावेरी, सरयू, गण्डकी, नैमिषारण्य, गया, गोदा[वरी,] अरुणा, वरुणा तथा अन्य जो बीस हजार छः सौ नदियाँ पृथ्वीपर विद्यमान हैं, उन सबके सारतत्त्वसे मही नदीका प्रकट हुआ बताया गया है। पृथ्वीके सब तीर्थोंमें [स्नान] करनेसे जो फल मिलता है, वही महीसागरसङ्गममें भी [मिलता है।]

---

* मुख्या पुरुषयात्रा हि तीर्थयात्रानुपङ्गतः।
सद्भिः समाश्रितो भूमिभागस्तीर्थतयोच्यते॥
(स्क० मा० कुमा० ११। ११)

होता है, ऐसा कहा गया है। स्वामिकार्तिकेयका भी इस विषयमें ऐसा ही वचन है। यदि तुमलोग किसी एक स्थानमें सब तीर्थोंका संयोग चाहते हो तो परम पुण्यमय महीसागरसङ्गम तीर्थमें जाओ। मैंने भी पहले बहुत वर्षोंतक वहाँ निवास किया है। यहाँ नारदजीके भयसे आकर रहता हूँ। महीसागरसङ्गममें नारदजी मेरे पास ही रहते थे। इधरकी बातें उधर लगा देनेका गुण उनमें विशेषरूपसे है। इन दिनों राजा मरुत्त मुझे ढूँढ़नेका प्रयास करते हैं। नारदजी उन्हें मेरा पता अवश्य बता देंगे, यही भय था। यहाँ तो बहुत-से दिगम्बर साधुओंके बीच उन्हींके समान बनकर मैं भी रहता हूँ। मरुत्तसे अधिक भयभीत होनेके कारण मैं यहाँ गुप्तरूपसे निवास करता हूँ। मुझे सन्देह है, नारद पुनः मेरा यहाँ रहना मरुत्तको बता देंगे, क्योंकि उनकी प्रायः ऐसी चेष्टा देखी जाती है। तुमलोग कभी किसीसे यह सब न कहना। राजा मरुत्त यज्ञकी सिद्धिके लिये चेष्टा कर रहे हैं। कुछ कारणवश देवताओंके आचार्य मेरे पिताने उनको त्याग दिया है। अतः उस यज्ञका ऋत्विग् बनानेके लिये उन्होंने मुझ गुरुपुत्रको ही मनोनीत किया है; परंतु अविद्याके अन्तर्गत होनेवाले हिंसात्मक यज्ञोंसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। इसलिये राजा इन्द्रद्युम्नके साथ तुमलोग शीघ्रतापूर्वक महीसागरसङ्गम तीर्थमें जाओ। वहाँके पाँच तीर्थोंका सेवन करते हुए तुमलोग निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लोगे।

ऐसा कहकर संवर्तजी अपने अभीष्ट स्थानको चले गये और इन्द्रद्युम्न आदि वे सब लोग भर्तृयज्ञ मुनिके पास पहुँचकर वहाँ महीसागरसङ्गम तीर्थमें रहने लगे। मुनिने अपने विशेष ज्ञानसे जान लिया कि ये सब लोग भगवान् शङ्करके गण हैं। यह जानकर वे उन सब लोगोंसे बोले—'अहो! तुमलोगोंका पुण्य अत्यन्त निर्मल और महान् है। जिससे इस महीसागरसङ्गम नामक गुप्तक्षेत्रमें तुम्हारा आगमन हुआ है। महीसागरसङ्गममें किया हुआ स्नान, दान, जप, होम और विशेषतः पिण्डदान सब अक्षय होता है। पूर्णिमा और अमावास्याको यहाँ किया हुआ स्नान, दान और जप आदि सब कर्म अक्षय फल देनेवाला होता है। देवर्षि नारदने पूर्वकालमें जब यहाँ स्थान निर्माण किया था, उस समय शनैश्चरने आकर वरदान दिया था। शनिदेवने जो वरदान दिया, वह इस प्रकार है—'जिस समय शनिवारके साथ अमावास्या हो, उस दिन यहाँ स्नान, दानपूर्वक श्राद्ध करे। यदि श्रावण मासके शनिवारको अमावास्या तिथि हो और उसी दिन सूर्यकी संक्रान्ति तथा व्यतीपात योग भी हो तो यह 'पुष्कर' नामक पर्व होता है। इसका महत्त्व सौ सूर्यग्रहणोंसे भी अधिक है। उक्त सब योगोंका सम्बन्ध यदि किसी प्रकार उपलब्ध हो जाय, तो उस दिन लोहेकी शनिमूर्तिका और सोनेकी सूर्यप्रतिमाका महीसागरसङ्गममें विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। शनिके मन्त्रोंसे शनिका और सूर्यसम्बन्धी मन्त्रोंसे सूर्यका ध्यान करके सब पापोंकी शान्तिके लिये भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये। उस समय वहाँका स्नान प्रयागसे भी अधिक है, दान कुरुक्षेत्रसे भी बढ़कर है। महान् पुण्यराशि सहायक हो, तभी यह सब योग प्राप्त होता है। वहाँ किये हुए श्राद्धसे पितरोंको स्वर्गमें अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है। जैसे परम पवित्र गयाशिर पितरोंके लिये परम तृप्तिदायक है। इसी प्रकार उससे भी अधिक पुण्य देनेवाला महीसागरसङ्गम है।—'अग्निश्च ते योनिरिडा च देहो रेतोऽथ विष्णोरमृतस्य नाभिः।' अर्थात् 'हे महीनदी! अग्नि तुम्हारी योनि (उत्पत्तिस्थान) और पृथ्वी तुम्हारी देह है। तुम यज्ञस्वरूप विष्णुके वीर्यसे उत्पन्न हुई हो और अमृतका केन्द्रस्थान हो।' इस सत्य वाक्यका श्रद्धापूर्वक उच्चारण करते हुए महीसागरसङ्गम तीर्थमें स्नान करना चाहिये। जो सब नदियोंमें प्रधान और पवित्र सागर है, तथा प्रचुर जलवाली समस्त तीर्थस्वरूपा जो मही नदी है, इन दोनोंको मैं अर्घ्य देता हूँ, प्रणाम करता हूँ और इनकी स्तुति भी करता हूँ। ताम्रा, रस्या, पयोवाहा, पितृप्रीतिप्रदा, शुभा, शालमाला, महासिन्धु, दातृदात्री, पृथुसुता, इन्द्रद्युम्नकन्या, क्षितिजन्मा, इरावती, महीपर्णा, महीशृङ्गा, गङ्गा, पश्चिमवाहिनी, नदी तथा राजनदी—इन अठारह नामोंकी मालाका स्नानकाल और श्राद्धकालमें मनुष्य सर्वत्र पाठ करे। ये सब नाम महाराज पृथुके कहे हुए हैं, इनका पाठ करनेवाला मनुष्य यज्ञमूर्ति भगवान् विष्णुके पदको प्राप्त होता है।* तदनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर मही नदीको अर्घ्य देना चाहिये—

---

* मुख्यं च यः सर्वनदीषु पुण्यः
पाथोभिरम्बुप्रचुरा मही च।
समस्ततीर्थाकृतिरेतयोश्च
ददामि चार्घ्यं प्रणमामि नौमि॥
ताम्रा रस्या पयोवाहा पितृप्रीतिप्रदा शुभा।
शालमाला महासिन्धुर्दातृदात्री पृथुसुता॥
इन्द्रद्युम्नस्य कन्या च क्षितिजन्मा इरावती।
महीपर्णा महीशृङ्गा गङ्गा पश्चिमवाहिनी॥

महीदोहे महानन्दसन्दोहे विश्वमोहिनि ।
जाता हि सरितां राज्ञि पापं हर महिद्रवे ॥

'हे देवी ! तू इस पृथ्वीकी दुग्ध है, परमानन्दकी राशि है, सम्पूर्ण विश्वको मोहनेवाली है तथा समस्त सरिताओंकी महारानीके रूपमें प्रकट हुई है। महिद्रवे ! तू मेरे पाप हर ले ।'

इस महीसागरसङ्गम तीर्थमें स्नान, जप और तपस्या करके पुण्यकर्मके प्रभावसे बहुत लोग रुद्रलोकमें चले गये हैं। विशेषतः सोमवारको, उत्तम भक्तिपूर्वक यहाँ स्नान करके जो पाँच तीर्थोंकी यात्रा करता है, वह पाँच महापातकोंसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार इस तीर्थका बहुविध उत्तम माहात्म्य बताकर भर्तृयज्ञने उन सबको शिवागममें बताये अनुसार शिवाराधनकी विधि बतलायी तथा पूजायोगका उपदेश देकर शिवभक्तिके उद्रेकसे पूर्ण हो उन इन्द्रद्युम्न आदि भक्तोंसे पुनः इस प्रकार कहा—'शिवजीके व्रतका वर्णन करनेवाले उपासको ! शिवजीसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। यह सर्वथा सत्य है, जो भगवान् शङ्करको छोड़कर अन्य किसी भी वस्तुकी उपासना करता है वह हाथमें रक्खे हुए अमृतको त्यागकर मृगतृष्णाकी ओर दौड़ रहा है। यह सम्पूर्ण जगत् शिवशक्तिस्वरूप है; यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है; क्योंकि कुछ प्राणी पुँल्लिङ्गके चिह्नोंसे युक्त हैं और कुछ स्त्रीलिङ्गके चिह्नोंसे युक्त हैं। जो पुरुषचिह्नसे युक्त हैं वे शिवस्वरूप हैं तथा जिनमें स्त्रीलिङ्गसूचक चिह्न हैं वे सब शक्तिस्वरूप हैं। भगवान् रुद्रका उत्तम माहात्म्य 'शतरुद्रिय'के नामसे प्रसिद्ध है। तुमलोग यदि अपने पाप धोना चाहते हो तो उसका नियमपूर्वक श्रवण करो।

वह इस प्रकार है—ब्रह्माजी भगवान् शिवके सुवर्णमय लिङ्गकी आराधना करके उसके जगत्प्रधान (१) नामका जप करते हुए, अपने पदपर विराजमान हैं। श्रीकृष्णने स्थल-भागमें काले पत्थरका शिवलिङ्ग स्थापित करके ऊर्जित (२) नामसे उसकी आराधना की है। सनकादि महर्षियों-ने अपने हृदयरूपी लिङ्गका जगद्गति (३) नामसे पूजन करके अपना अभीष्ट साधन किया है। सप्तर्षियोंने दर्भाङ्कुरमय लिङ्गका विश्वयोनि (४) के नामसे पूजन किया है। देवर्षि नारद आकाशमें ही शिवलिङ्गकी भावना करके उसके जगद्बीज (५) नाम देकर उसकी आराधना करते हैं। देवराज इन्द्र वज्रमय लिङ्गकी विश्वात्मा (६) नामसे पूजा करते हैं। सूर्यदेव ताम्रमय लिङ्गकी पूजा और उसके विश्वसृग् (७) नामका जप करते हैं। चन्द्रमा मुक्तामय लिङ्गकी उपासना और उसके जगत्पति (८) नामका जप करते रहते हैं। अग्निदेव इन्द्रनीलमणिके शिवलिङ्गकी पूजा करते हुए उसके विश्वेश्वर (९) नामका जप करते हैं। बृहस्पतिजी पुखराज मणिके शिवलिङ्गकी आराधना और उसके विश्वयोनि (१०) नामका जप किया करते हैं। शुक्राचार्य विश्वकर्मा (११) नामसे प्रसिद्ध पद्मराग मणिमय शिवलिङ्गकी उपासना करते हैं। धनाध्यक्ष कुबेर सुवर्णमय लिङ्गकी पूजा और उसके ईश्वर (१२) नामका जप करते हैं। विश्वेदेवगण जगद्गति (१३) नामसे प्रसिद्ध रजतमय शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। यमराज पित्तलके शिवलिङ्गकी पूजा और उसकी शम्भु (१४) नामसे उपासना करते हैं। वसुगण काँसेके शिवलिङ्गकी आराधना और उसके स्वयम्भू (१५) नामका जप करते हैं। मरुद्गण त्रिविध लोहमय लिङ्गकी पूजा और उमेश या भूतेश (१६) नामका जप करते हैं। राक्षस लोहमय लिङ्गकी उपासना और भूतभव्य-भवोद्भव (१७) नामका जप करते हैं। गुह्यकगण शीशे-के शिवलिङ्गकी पूजा और योग (१८) नामका जप करते हैं। जैगीषव्य मुनि ब्रह्मरन्ध्रमय शिवलिङ्गकी उपासना और योगेश्वर (१९) नामका जप करते हैं। राजा निमि सबके युगल नेत्रोंमें ही शिवलिङ्गकी भावना करके उसकी आराधना करते और शर्व (२०) नाम जपते रहते हैं। धन्वन्तरि सर्वलोकेश्वरेश्वर (२१) नामसे प्रसिद्ध गोमयलिङ्गकी उपासना करते हैं। गन्धर्वगण लकड़ीके शिवलिङ्गकी पूजा और उसके सर्वश्रेष्ठ (२२) नामका जप करते हैं। श्रीरामचन्द्रजी ज्येष्ठ (२३) नामका जप करते हुए वैदूर्यमय शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। बाणासुर मरकतमणि-मय शिवलिङ्गकी पूजा और वसिष्ठ (२४) नामकी पूजा करता है। वरुणजी परमेश्वर (२५) नामसे प्रसिद्ध स्फटिकमणिमय शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। नागगण मूँगेके शिवलिङ्गकी उपासना और लोकत्रयङ्कर (२६) नामका जप करते हैं। सरस्वती देवी शुद्धमुक्तामय शिवलिङ्ग-को पूजती और लोकत्रयाश्रित (२७) नामका जप करती हैं। शनिदेव शनिवारकी अमावास्याको आधी रातके समय

नदी राजनदी चेति नामाष्टादशमालिकाम् ।
स्नानकाले च सर्वत्र श्राद्धकाले पठेन्नरः ।
पृथुनोक्तानि नामानि यज्ञमूर्तिपदं व्रजेत् ॥
(वेङ्कटेश्वर प्रेसकी प्रतिसे)
(स्क० मा० कुमा० १३ । १२४—१२७)

महीसागरसंगममें आवर्त (भँवर) मय शिवलिङ्गकी पूजा और जगन्नाथ (२८) नामका जप करते हैं। रावण चमेलीके फूलका शिवलिङ्ग बनाकर पूजा करता और सुदुर्जय (२९) नामका जप करता है। सिद्धगण मानसलिङ्गकी उपासना और काममृत्युजरातिग (३०) नामका जप करते हैं। राजा बलि यज्ञमय लिङ्गकी आराधना और उसके ज्ञानात्मा (३१) नामका जप करते हैं। मरीचि आदि महर्षि पुष्पमय शिवलिङ्गकी उपासना और ज्ञानगम्य (३२) नामका जप करते हैं। सत्कर्म करनेवाले देवता शुभ कर्ममय लिङ्गको पूजते और ज्ञानज्ञेय (३३) नामका जप करते हैं। फेन पीकर रहनेवाले महर्षि फेनिज लिङ्गकी उपासना और सुदुर्विद (३४) नामका जप करते हैं। कपिलजी वरद (३५) नामका जप करते हुए बालुकामय शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। सरस्वतीपुत्र सारस्वत मुनि वाणीमें शिवलिङ्गकी उपासना करते हुए वागीश्वर (३६) नामका जप करते हैं। शिवगण भगवान् शिवके मूर्तिमय लिङ्गकी उपासना करते हुए रुद्र (३७) नामका जप करते हैं। देवतालोग जाम्बूनद सुवर्णमय लिङ्गकी आराधना और शितिकण्ठ (३८) नामका जप करते हैं। बुध कनिष्ठ (३९) नामका जप करते हुए शङ्खमय शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। दोनों अश्विनीकुमार सुवेधा (४०) नामसे प्रसिद्ध मृत्तिकामय (पार्थिव) शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। गणेशजी आटेका शिवलिङ्ग बनाकर कपर्दी (४१) नामसे उसकी उपासना करते हैं। मङ्गल मक्खनके शिवलिङ्गकी कराल (४२) नामसे उपासना करते हैं। गरुड़जी ओदनमय शिवलिङ्गकी हर्यक्ष (४३) नामसे उपासना करते हैं। कामदेव गुड़के शिवलिङ्गकी रतिद (४४) नामसे उपासना करते हैं। शचीदेवी लवणमय (सैन्धव अथवा सुन्दर रूपमय) शिवलिङ्गकी आराधना तथा बभ्रकेश (४५) नामका जप करती पूजन और पुरुष (५२) नामका जप करते हैं। नक्षत्र तेजोमय लिङ्गका पूजन तथा भग और भास्वर (५३) नामका जप करते हैं। किन्नरगण धातुमय लिङ्गका पूजन तथा सुदीप्त (५४) नामका जप करते हैं। ब्रह्मराक्षसगण अस्थिमय लिङ्गका पूजन और देवदेव (५५) नामका जप करते हैं। चारणलोग दन्तमय लिङ्गका पूजन तथा रंहस (५६) नामका जप करते हैं। साध्यगण सप्तलोकमय लिङ्गका पूजन और बहुरूप (५७) नामका जप करते हैं। ऋतुएँ दूर्वाङ्कुरमय लिङ्गका पूजन और सर्व (५८) नामका जप करती हैं। अप्सराएँ कुङ्कुम लिङ्गका पूजन और आभूषण (५९) नामका जप करती हैं। उर्वशी सिन्दूरमय लिङ्गका पूजन और प्रियवासन (६०) नामका जप करती है। गुरु ब्रह्मचारी लिङ्गका पूजन और उष्णीषी (६१) नामका जप करते हैं। योगिनियाँ अलक्तक् लिङ्गका पूजन और सुवभ्रुक् (६२) नामका जप करती हैं। सिद्ध योगिनियाँ श्रीखण्ड लिङ्गका पूजन और सहस्राक्ष (६३) नामका जप करती हैं। डाकिनियाँ मांसमय लिङ्गका पूजन तथा उसके सुमीढुष् (६४) नामका जप करती हैं। मनुगण गिरिश (६५) नामसे प्रसिद्ध अन्नमय लिङ्गका पूजन करते हैं। अगस्त्य मुनि व्रीहिमय लिङ्गका पूजन और सुशान्त (६६) नामका जप करते हैं। देवल मुनि यवमय लिङ्गका पूजन और पति (६७) नामका जप करते हैं। वाल्मीकि मुनि वाल्मीक लिङ्गका पूजन और चीरवासा (६८) नामका जप करते हैं। प्रतर्दनजी बाणलिङ्गका पूजन और हिरण्यभुज (६९) नामका जप करते हैं। दैत्यगण राईके शिवलिङ्गका पूजन और उग्र (७०) नामका जप करते हैं। दानवलोग निष्पावज लिङ्गका पूजन और दिक्पति (७१) नामका जप करते हैं। बादल नीरमय लिङ्गका पूजन तथा पर्जन्य (७२) नामका जप करते हैं।

यम कालायसमय लिङ्गका पूजन और धन्वी (८०) नामका जप करते हैं। परशुरामजी यवाङ्कुरलिङ्गका पूजन तथा भार्गव (८१) नामका जप करते हैं। पुरूरवा घृतमय लिङ्गका पूजन और बहुरूप (८२) नामका जप करते हैं। श्रीमान्धाता शर्करामय लिङ्गकी बाहुयुग (८३) नामसे आराधना करते हैं। गायें पयोमय 'दुग्धमय' लिङ्गका पूजन और नेत्रसहस्रक (८४) नामका जप करती हैं। पतिव्रता स्त्रियाँ भर्तृमय लिङ्गका पूजन तथा विश्वपति (८५) नामका जप करती हैं। नर-नारायण मौञ्जीमय शिवलिङ्गका सहस्रशीर्ष (८६) नामसे आराधन करते हैं। पृथु सहस्रचरण (८७) नामवाले तार्क्ष्यलिङ्गका पूजन करते हैं। पक्षी सर्वात्मक (८८) नामसे व्योमलिङ्गका पूजन करते हैं। पृथ्वी गन्धमय लिङ्गका पूजन और उसके द्वितनु (८९) नामका जप करती हैं। पाशुपतगण भस्ममय लिङ्गका पूजन और उसके महेश्वर (९०) नामका जप करते हैं। ऋषि ज्ञानमय लिङ्गकी चिरस्थान (९१) नामसे उपासना करते हैं। ब्राह्मण ब्रह्मलिङ्गकी ज्येष्ठ (९२) नामसे उपासना करते हैं। शेषनाग गोरोचनमय लिङ्गका पूजन और पशुपति (९३) नामका जप करते हैं। वासुकिनाग विषलिङ्गका पूजन और शङ्कर (९४) नामका जप करते हैं। तक्षकनाग कालकूटमय लिङ्गका पूजन तथा बहुरूप (९५) नामका जप करते हैं। कर्कोटकनाग हालाहलमय लिङ्गका पूजन और पिङ्गाक्ष (९६) नामका जप करते हैं। शृङ्गी विषमय लिङ्गका पूजन तथा धूर्जटि (९७) नामका जप करते हैं। पुत्र पितृमय लिङ्गका पूजन और विश्वरूप (९८) नामका जप करता है। शिवादेवी पारदमय लिङ्गका पूजन और त्र्यम्बक (९९) नामका जप करती हैं। मत्स्य आदि जीव शस्त्रमय लिङ्गका पूजन तथा वृषाकपि (१००) नामका जप करते हैं।

इस प्रकार बहुत कहनेसे क्या लाभ, संसारमें जो-जो जीव किसी विलक्षण विभूतिसे युक्त हैं, उनकी वह विशेषता भगवान् शिवके आराधनाके प्रभावसे ही हुई है। यदि धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्तिका विचार बुद्धिमें आता हो तो भगवान् शिवकी भलीभाँति आराधना करनी चाहिये; क्योंकि त्रिलोकीमें वे ही मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले माने गये हैं। जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इस शतरुद्रियका पाठ करेगा, उसपर प्रसन्न हो भगवान् शिव उसे सभी मनोवाञ्छित वर प्रदान करेंगे। पृथ्वीपर इससे बढ़कर परम पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण वेदोंका रहस्य है। भगवान् सूर्यने मुझे इसका उपदेश दिया था। शतरुद्रियका पाठ करनेपर मन, वाणी और क्रियाद्वारा आचरित समस्त पापोंका नाश हो जाता है। जो शतरुद्रियका जप करता है, वह रोगातुर हो तो रोगसे छूट जाता है, कारागारमें बँधा हुआ हो तो बन्धनसे छुटकारा पा जाता है और भयभीत हो तो भयसे मुक्त हो जाता है। इन सौ नामोंका उच्चारण करके जो विद्वान् उतने ही फूलोंद्वारा भगवान् शिवकी पूजा करता है और सौ बार उन्हें प्रणाम करता है वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। ये सौ लिङ्ग, सौ इनके उपासक और सौ इन लिङ्गोंके नाम ये सभी सम्पूर्ण दोषोंका नाश करनेवाले माने गये हैं। विशेषतः इस महीतीर्थके इन पाँच लिङ्गोंके समक्ष जो इस शतरुद्रियका पाठ करेगा, वह पञ्चविषयजनित दोषोंसे मुक्त हो जायगा।

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! उस गुप्त क्षेत्रमें शङ्करजीके आराधनका यह माहात्म्य सुनकर वे इन्द्रद्युम्न आदि भक्त बहुत प्रसन्न हुए और पञ्चलिङ्गोंकी आराधना करते हुए भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर रहने लगे। तदनन्तर बहुत समय बीत जानेपर उनकी विशेष भक्तिसे प्रसन्न हो भगवान् शङ्करने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और

इस प्रकार कहा—'हे बक, उलूक, गृध्र, कच्छप और राजा इन्द्रद्युम्न! तुमलोग मेरी सारूप्य मुक्तिको प्राप्त होकर मेरे ही

लोकमें निवास करोगे। लोमश और मार्कण्डेय मुनि जीवन्मुक्त होंगे।'

भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर राजा इन्द्रद्युम्नने महाकालसे पूर्वकी ओर इन्द्रद्युम्नेश्वर नामक शिवलिङ्गकी स्थापना की। उस तीर्थके गुणोंको जानकर राजाने वहाँ चिरस्थायिनी कीर्ति करनेकी इच्छासे परम सुन्दर अविचल शिवलिङ्गकी स्थापना की। फिर शिवजीने कहा—'जो इस इन्द्रद्युम्नेश्वर लिङ्गकी पूजा करेगा, वह मेरा गण होगा और मेरे ही लोकमें निवास करेगा।' ऐसा कहकर भगवान् चन्द्रशेखर उन पाँचोंके साथ रुद्रलोकको चले गये और वे सब-के-सब पुनः शिवजीके गण हो गये। राजा इन्द्रद्युम्न ऐसे प्रभावशाली थे; जिन्होंने यज्ञ करते हुए इस महीनदीको प्रकट किया था। इस प्रकार यह महीसागरसंगम अत्यन्त पुण्यदायक तीर्थ हुआ। कुन्तीनन्दन! इस तीर्थका माहात्म्य तुम्हें संक्षेपसे बतलाया है। जो मनुष्य यहाँ संगममें स्नान करके इन्द्रद्युम्नेश्वरका पूजन करता है, उसका निवास उस धाममें होता है, जहाँ पार्वतीवल्लभ भगवान् महेश्वर विराजमान हैं। यह लिङ्ग सब प्रकारके बन्धनोंका नाशक तथा गणाधीशका पद प्रदान करनेवाला है; क्योंकि राजाने सब प्रकारके बन्धनोंका त्याग करके ही इस लिङ्गको स्थापित किया था। अर्जुन! इस प्रकार इस उत्तम संगमका पुण्यदायक माहात्म्य तुमसे कहा है, तथा इन्द्रद्युम्नेश्वरकी भी पुण्योत्पादक महिमाका वर्णन किया है। जो इसका पाठ करेगा, उसको महान् पुण्य प्राप्त होगा।

कुमारका अनुताप, भगवान् विष्णुका उन्हें समझाना तथा उनकी सम्मतिसे स्कन्दद्वारा तीन शिवलिङ्गोंकी स्थापना और भगवान् शिवका वरदान

अर्जुनने कहा—महामुने! आपने कथाके बीचमें जो कुमार नाथके माहात्म्यकी चर्चा की थी, उसे मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

नारदजी बोले—अर्जुन! भगवान् कार्तिकेयजीने तारकासुरका वध करके स्वयं ही इस कुमारेश्वर नामक शिवलिङ्गको स्थापित किया था। मैं देवताओंके सेनानायक और सबका शासन करनेमें समर्थ कुमार कार्तिकेयको प्रणाम करके उनके महान् चरित्रका वर्णन करता हूँ। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो।

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तारकासुरके मरनेके कारण परम बुद्धिमान् कार्तिकेयजी मन-ही-मन अत्यन्त उदास हो शोक करने लगे। उन्होंने स्तुति करनेवाले देवताओंको रोककर कहा—'देवगण! मुझ पातकीका, जो सर्वथा शोचनीय है, गुण-गान कैसे करते हो? यद्यपि पापाचारीका वध करनेमें कोई दोष नहीं है, तथापि यह तारकासुर तो भगवान् शङ्करका भक्त था; यह स्मरण करके मुझे बड़ा शोक हो रहा है। इसलिये मैं कोई प्रायश्चित्त सुनना चाहता हूँ; क्योंकि प्रायश्चित्त करनेसे बहुत बड़ा पाप भी नष्ट हो जाता है।'

स्मृति, इतिहास और पुराणको प्रमाण माना जाय तो दुष्टोंके वधमें कोई दोष नहीं है।* जो निर्दय मनुष्य दूसरोंके प्राणोंसे अपने प्राणोंका पोषण करता है, उसका वध कर डालना ही उसके लिये कल्याणकारी है; क्योंकि अपने दोषपूर्ण आचरणसे वह मनुष्य नरकको ही जाता है। रक्षाके कार्यमें लगे हुए समर्थ पुरुषोंद्वारा यदि पापाचारियोंका वध न किया जाय, तो ये असमर्थ मनुष्य किसकी शरणमें जायँगे, तथा सम्पूर्ण विश्वको धारण करनेवाले धर्मस्वरूप वेद और यज्ञ कैसे होंगे। इसलिये तुमने तारकासुरका वध करके पुण्य ही प्राप्त किया है। तुम्हें पाप तो किसी प्रकार भी नहीं लगेगा। इतनेपर भी भगवान् शङ्करके भक्तोंके प्रति यदि तुम्हारा बहुत अधिक आदर है, तो उसके लिये मैं बहुत उत्तम उपाय बतलाऊँगा, जिससे जन्मभरके पापोंसे छुटकारा मिल जाता है तथा एक कल्पतक रुद्रलोकमें दिव्य शरीर धारण करके वह मनुष्य परमानन्दका उपभोग करता है। स्कन्द! पाप करनेपर जिसे बहुत अधिक पश्चात्ताप होता है, उसके लिये भगवान् शङ्करके आराधनसे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। जिनकी महिमाका वर्णन करनेमें ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं

भयभीत होती है, उन भगवान् महेश्वरसे बढ़कर दूसरी कौन वस्तु हो सकती है।

'त्रिलोकीमें भगवान् शङ्करके सिवा दूसरा कौन ऐसा देवता है, जिसका पृथ्वी ही रथ है, ब्रह्माजी सारथी हैं, मैं बाण हूँ, मन्दराचल धनुष है तथा चन्द्रमा और सूर्य रथके पहिये हैं। कोई-कोई योगमार्गसे भगवान् शङ्करकी आराधना बताते हैं, परंतु सदा शून्यकी उपासना करनेवाले उन योगियोंका मार्ग सर्वसाधारणके लिये दुःसाध्य है। इसलिये जो भोग और मुक्ति दोनों चाहता है, उसे उनके लिङ्गमय स्वरूपकी ही आराधना करनी चाहिये। सृष्टिके आदिमें मेरे और ब्रह्माजीके विवादमें भगवान् शिव लिङ्गरूपमें प्रकट हुए थे। उस लिङ्गमय स्वरूपमें सम्पूर्ण चराचर जगत् लीन होता है, इसीलिये वेदमें उसे लिङ्ग कहा गया है। जो परम बुद्धिमान् भगवान् शङ्करके स्वरूपभूत लिङ्गको श्रद्धा और पवित्र भावसे जलके द्वारा स्नान कराता है, उसने मानो ब्रह्माजीसे लेकर तृणपर्यन्त इस सम्पूर्ण जगत्को तृप्त कर दिया। मिट्टीका, काठका, ईंटका अथवा पत्थरका मन्दिर बनाकर जो भगवान् शिवको अर्पित करता है, उसे क्रमशः सौगुना पुण्यफल प्राप्त होता है। इसलिये महासेन! तुम्हें यहाँ शिवलिङ्गकी स्थापना करनी चाहिये।'

भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर सब देवता 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहने लगे। तत्पश्चात् महादेवजीने कार्तिकेयको छातीसे लगाकर कहा—'वत्स! तुम मेरे भक्तों-पर जो इतनी कृपा रखते हो, इससे तुम्हारे ऊपर मेरा प्रेम बहुत बढ़ गया है। जगद्गुरु भगवान् वासुदेवने जो कुछ कहा है, वह सब यथार्थ है। जो मैं हूँ, वही भगवान् विष्णु-को जानना चाहिये तथा जो भगवान् विष्णु हैं, वही मैं हूँ। जैसे दो दीपकोंमें प्रकाशकी दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं होता, उसी प्रकार हम दोनोंमें भी किञ्चिन्मात्र अन्तर नहीं है। स्कन्द! जो भगवान् विष्णुसे द्वेष करता है वह मुझसे भी द्वेष करता है, जो उनका अनुगमन करता है, वह मेरा भी अनुगामी है*। जो ऐसा जानता है, वही मेरा वास्तविक भक्त है।'

कुमार बोले—पिताजी! आपका कहना सत्य है, मैं आपको और भगवान् विष्णुको एक ही समझता हूँ। भक्त-वत्सल भगवान् विष्णुने जो मुझे शिवलिङ्ग स्थापित करनेकी सलाह दी है, वही बात तारकासुरके वधके समय पहले आकाशवाणीने भी मुझसे कही थी। अतः मैं सब प[illegible] नाश करनेवाले शिवलिङ्गकी स्थापना करूँगा। वह शिव[illegible] मेरे पापोंको शान्त करनेवाला हो।

यों कहकर अग्निनन्दन स्कन्दने विश्वकर्माको बु[illegible] और उन्हें आदेश दिया कि 'तुम शीघ्र ही तीन [illegible] शिवलिङ्ग तैयार करो।' कार्तिकेयकी आज्ञाके अ[illegible] विश्वकर्माने तीन विशुद्ध शिवलिङ्ग तैयार किये और उनको समर्पित कर दिया। तदनन्तर भगवान् विष्णु, तथा ब्रह्मा आदि देवताओंके साथ स्कन्दने पहले पू[illegible] दिशामें थोड़ी ही दूरपर 'प्रतिज्ञेश्वर' नामक परम सुन्दर [illegible] लिङ्गकी स्थापना की। तब भगवान् महेश्वरने कुमा[illegible] प्रसन्नताके लिये वहाँ स्वयं ही यह वरदान दिया। 'जो [illegible] स्थानपर कार्तिक और चैत्र मासमें अष्टमीको स्नान, उपव[illegible] पूजा और जागरण करके निवास करेगा, वह मृत्युको लाँघ जायगा।'

इसके बाद वहाँसे अग्निकोणमें जहाँ दैत्यके कपा[illegible] शक्ति निकली थी, वहाँ कार्तिकेयने द्वितीय शिवलिङ्ग स्थापित किया। सब पापोंका नाश करनेवाला वह कल्याणक[illegible] शिवलिङ्ग 'कपालेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। कपालेश्व[illegible] समीप ही उस शक्तिका भी स्तवन करके कुमारने उस[illegible] स्थापना की। जो कापालिकेश्वरी देवीके नामसे प्रसिद्ध हुई [illegible] वहाँसे उत्तर दिशामें एक तीर्थ है, जिसे 'शक्तिछिद्र' कह[illegible] हैं। वहाँ सब पापोंका नाश करनेवाली कल्याणमयी पाता[illegible] गङ्गा प्रकट हुई हैं। उसमें स्नान करके स्कन्दने स[illegible] देवताओंके साथ कृपापूर्वक तारकासुरको जलाञ्जलि दी [illegible] जिसका सङ्कल्प-वाक्य इस प्रकार है—'महर्षि कश्यपके कुल [illegible] उत्पन्न शिवभक्त तारकको अर्पित किया जानेवाला यह तिल [illegible] सहित जल अक्षय भावसे प्राप्त हो।'

तब भगवान् महेश्वरने प्रसन्न होकर स्कन्दको सुनाते हु[illegible] कहा—'जो मनुष्य चैत्र मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी तिथि[illegible] को यहाँ स्नान और उपवास करके भगवान् कपालेश्वरका पूजन करेगा, वह तेजस्वी महात्माओंके वधजनित पातक[illegible] मुक्त हो जायगा। इसी तिथिको यदि सोमवार हो, शिवयोग हो और तैतिलकरण हो तो इन छहों योगोंके एकत्र होनेपर

* यो ह्यहं स हरिर्ज्ञेयो यो हरिः सोऽहमित्युत ॥
नावयोरन्तरं किञ्चिद्दीपयोरिव सुव्रत ।
एनं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि योऽन्वेत्येनं स मानुगः ॥
(स्क० मा० कुमा० २६ । ४१-४२)

जो पुरुष 'शक्तिछिद्रा' नामक तीर्थमें स्नान करके रातमें रुद्रियका जप करेगा, वह शरीरसहित रुद्रलोकमें चला जायगा।' भगवान् शङ्करका यह वचन सुनकर स्कन्द बहुत प्रसन्न हुए तथा सब देवता आनन्दमग्न हो 'साधु-साधु' कहने लगे।

तदनन्तर तीसरे लिङ्गकी स्थापना करनेकी इच्छावाले कार्तिकेयसे ब्रह्माजीने उनकी प्रसन्नताके लिये कहा—'कुमार! मैं स्वयं एक दूसरे लिङ्गका निर्माण करता हूँ।' यों कहकर ब्रह्माजीने स्वयं सब दोषोंसे रहित मनोहर शिवलिङ्गका निर्माण किया। इसी प्रकार सब देवताओंने भी स्कन्दको प्रसन्न करनेके लिये वहाँ एक सुन्दर सरोवर तैयार किया और उसमें गङ्गा आदि समस्त तीर्थोंकी स्थापना करके उनसे कहा—'जबतक यह सरोवर यहाँ रहे तबतक तुम सब तीर्थ इसमें निवास करो।' तब स्कन्दकी प्रसन्नताके लिये इन सब तीर्थोंने 'एवमस्तु' कहकर देवताओंकी आज्ञा स्वीकार की। तत्पश्चात् स्कन्दने प्रसन्नतापूर्वक उस सुन्दर सरोवरमें स्नान किया और सब तीर्थोंके जलसे भक्तिपूर्वक उस शिवलिङ्गको स्नान कराकर भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे 'सद्योजातादि' पाँच मन्त्रोंद्वारा पूजन किया। पूजाके समय साक्षात् भगवान् महेश्वर स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके साथ उस शिवलिङ्गमें स्थित हो स्वयं पूजनसामग्री ग्रहण करते थे। भक्तिभावमें डूबे हुए स्कन्दने पूजन करते समय भगवान् शङ्करसे पूछा—'भगवन्! आपको कौन-सा उपहार भेंट करनेसे क्या-क्या फल प्राप्त होता है?'

भगवान् महेश्वर बोले—जो मेरे लिङ्गकी स्थापना करता और उसके लिये सुन्दर मन्दिर बनवाता है, वह कल्पभर मेरे लोकमें निवास करता है। जो मेरे मन्दिरमें झाड़ू देता और धूल आदि हटाकर शुद्ध करता है, वह सब रोगोंसे छूट जाता है। देवमन्दिरको चूने आदिसे पुतवानेपर मनुष्य-का शरीर दृढ़ होता है। पुष्प, दूध आदि, कुशा, तिल, जल, अक्षत और सरसोंसे भगवान् शङ्करके मस्तकपर अर्घ्य देकर मनुष्य दस हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। दही और दूधसे शिवलिङ्गको स्नान करानेपर मनुष्यका शरीर नीरोग हो जाता है। जल, दही, दूध और घीसे स्नान करानेपर क्रमशः दसगुना फल प्राप्त होता है। उपर्युक्त वस्तुओंसे मुझे स्नान कराकर भक्तिपूर्वक गोधूम-चूर्ण आदिके द्वारा उबटन लगावे, फिर कपिला गायके पञ्चगव्यसे और गङ्गाके जलसे मुझे स्नान करावे और विधिपूर्वक मेरा पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष मेरे परम धामको प्राप्त होता है। कुशमिश्रित जलकी अपेक्षा गन्धमिश्रित जल उत्तम है, उससे भी तीर्थका जल श्रेष्ठ है तथा अन्य सब तीर्थोंके जलकी अपेक्षा महीसागर तीर्थका जल श्रेष्ठ है। ताँबे, चाँदी और सोनेके कलशोंसे स्नान करानेपर क्रमशः सौगुना फल होता है। इसी प्रकार चन्दन, अगर, केशर तथा कपूर अर्पण करनेसे उत्तरोत्तर अधिक फलकी प्राप्ति होती है। इन सब वस्तुओंको मेरे अङ्गमें लगानेसे मनुष्य धनवान्, सौभाग्यवान् तथा सुखी होता है। गुग्गुलका धूप उत्तम माना गया है, उससे भी श्रेष्ठ अगुरु है, इन सब धूपोंको मुझे अर्पण करनेसे सुख और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। दीप-दान करनेवाला पुरुष कीर्ति तथा उत्तम नेत्र प्राप्त करता है। नैवेद्य अर्पण करनेसे मनुष्य मिष्टान्नभोजी होता है। अखण्ड बिल्वपत्रों और भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे शिवलिङ्गकी पूजा करनेपर मनुष्य एक लाख वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। भगवान् शिवको चँवर भेंट करनेसे मनुष्य राजा होता है। मेरे मन्दिरमें गीत, वाद्य और नृत्य करके शुद्ध चित्त हुआ मनुष्य मुझको प्राप्त होता है। मेरी पूजाके लिये शङ्ख और घण्टा दान करके दाता अवश्य विद्वान् होता है। मेरी रथयात्राका उत्सव करके मनुष्य चिरकालके लिये शोकोंसे मुक्त हो जाता है। मुझे नमस्कार और प्रणाम करके मानव महान् कुलमें जन्म लेता है। जो मेरे आगे शास्त्रका पाठ कराता है, वह ज्ञानी होता है। भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करनेपर मनुष्य मनके मोहसे मुक्ति पा जाता है। मेरे आगे आरती घुमानेसे उपासक पीड़ारहित होता है। मुझे शीतल चन्दन अर्पण करनेपर दुःखजनित सन्तापोंसे छुटकारा मिल जाता है। शिवलिङ्गके समीप अपनी शक्तिके अनुसार दान करनेपर दाताको उस दानका सौगुना फल मिलता है तथा वह इस लोक और परलोकमें आनन्दका भागी होता है। मैं शिवलिङ्गको प्रणाम करनेपर पंद्रह, उसे स्नान करानेपर बीस तथा उसकी विधिपूर्वक पूजा करनेपर सौ अपराधोंको क्षमा कर देता हूँ। कुमार! इस तीर्थमें पूर्वोक्त सम्पूर्ण फलोंकी प्राप्ति होगी। जो लोग कुमारेश्वर नामसे यहाँ मेरी पूजा करेंगे, वे पूर्वोक्त सम्पूर्ण फलोंके भागी होंगे। बेटा! जैसे काशीपुरीमें मैं विश्वनाथके रूपमें निवास करता हूँ, उसी प्रकार इस गुप्त क्षेत्रमें मैं कुमारेश्वर नाम धारण करके रहूँगा।

देवताओंके सामने ही भगवान् शङ्करका यह वचन सुनकर कुमार कार्तिकेयको बड़ा विस्मय हुआ। वे भगवान्

गिरिजापतिको नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगे—'जो सब प्रकारके रोग-शोकसे रहित हैं, उन कल्याणस्वरूप भगवान् शिवको नमस्कार है । जो सबके भीतर मनरूपसे निवास करते हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है । सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित भगवान् शङ्करको नमस्कार है । भक्तजनों-पर निरन्तर कृपा करनेवाले आप भगवान् महेश्वरको नमस्कार है । सबकी उत्पत्तिके कारण भगवान् भवको नमस्कार है । भगवन् ! आप भवके उद्भव (संसारके स्रष्टा) हैं, आपको नमस्कार है । कामदेवका विध्वंस करनेवाले आपको नमस्कार है । आप गूढ़ भावसे महान् व्रतका पालन करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है । आप मायारूपी गहन वनके आश्रय हैं, अथवा सबको आश्रय देनेवाला आपका स्वरूप योग-मायासमावृत होनेके कारण दुर्बोध है, आपको नमस्कार है । प्रलयकालमें जगत्‌का संहार करनेवाले 'शर्व' नामधारी आपको नमस्कार है । शिवरूप आपको नमस्कार है । आप पुरातन सिद्धरूप हैं, आपको नमस्कार है । कालरूप आपको नमस्कार है । आप सबकी कलना (गणना) करनेवाले होनेके कारण 'कल' नामसे प्रसिद्ध हैं । आपको नमस्कार है । आप कालकी कलाका अतिक्रमण करके उससे बहुत दूर रहते हैं, आपको नमस्कार है । आप स्वाभाविक ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं, आपको नमस्कार है । आप अप्रमेय महिमावाले वृषभ तथा महासमृद्धिसे सम्पन्न हैं, आपको नमस्कार है । आप सबको शरण देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है । आप ही निर्गुण ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है । आपके अनुगामी सेवक भयानक गुणसम्पन्न हैं, आपको नमस्कार है । नाना भुवनोंपर अधिकार रखनेवाले आपको नमस्कार है । भक्तोंको मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है । भगवन् ! आप ही कर्मोंका फल देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है । आप ही सबका धारण, पोषण करनेवाले धाता तथा उत्तम कर्ता हैं । आपको सर्वदा नमस्कार है । आपके अनन्त रूप हैं, आपका कोप सबके लिये असह्य है । आपको सदैव नमस्कार है । आपके स्वरूपका कोई माप नहीं हो सकता, आपको नमस्कार है । वृषभेन्द्रको अपना वाहन बनानेवाले आप भगवान् महेश्वरको नमस्कार है । आप सुप्रसिद्ध महौषधरूप हैं, आपको नमस्कार है । समस्त व्याधियोंका विनाश करनेवाले आपको नमस्कार है । आप चराचरस्वरूप, सबको विचार देनेवाले, कुमारनाथके नामसे प्रसिद्ध तथा परम कल्याणस्वरूप हैं आपको नमस्कार है । प्रभो ! आप मेरे स्वामी हैं, सम्पूर्ण भूतोंके ईश्वर एवं महेश्वर हैं । आप ही समस्त भो अधिपति हैं । वाणी, बल और बुद्धिके अधिपति भी ही हैं । आप ही क्रोध और मोहपर शासन करनेवाले पर और अपर (कारण और कार्य) के स्वामी भी आ हैं । सबकी हृदयगुहामें निवास करनेवाले परमेश्वर मुक्तिके अधीश्वर भी आप ही हैं, आपको नमस्कार है ।'

पार्वतीनन्दन स्कन्दने सबको वर देनेवाले शूलप भगवान् उमापतिकी इस प्रकार स्तुति करके उनके चर मस्तक झुकाया और 'नमो नमः'का उच्चारण किया ।*

इस प्रकार भक्तिभावसे भरे हुए अपने योग्य स्त सुनकर शिवजी बहुत सन्तुष्ट हुए और पुत्र कार्तिके उन्होंने चिरकालतक अभिनन्दन करके कहा—'बेट मेरे भक्तके वध करनेका जो दुःख तुम्हारे म हुआ है, उसका विचार तुमको नहीं करना चाहिये अपने इस कर्मसे तुम मुनियोंके लिये भी स्पृहणीय बन हो । जो लोग सायंकाल और सबेरे पूर्ण भक्तिपूर्वक तु द्वारा की हुई इस स्तुतिसे मेरा स्तवन करेंगे, उनको जो प्राप्त होगा, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो—उन्हें कोई नहीं होगा, दरिद्रता भी नहीं होगी तथा प्रियजनोंसे क वियोग भी न होगा । वे इस संसारमें दुर्लभ भोगों उपभोग करके मेरे परम धामको प्राप्त होंगे । इतना ही न

---

* नमः शिवायास्तु निरामयाय नमः शिवायास्तु मनोमयाय ।
नमः शिवायास्तु सुरार्चिताय तुभ्यं सदा भक्तकृपापराय ॥
नमो भवायास्तु भवोद्भवाय नमोऽस्तु ते ध्वस्तमनोभवाय ।
नमोऽस्तु ते गूढमहाव्रताय नमोऽस्तु मायागहनाश्रयाय ॥
नमोऽस्तु शर्वाय नमः शिवाय नमोऽस्तु सिद्धाय पुरातनाय ।
नमोऽस्तु कालाय नमः कलाय नमोऽस्तु ते कालकलातिगाय ॥
नमो निसर्गात्मकभूतिकाय नमोऽस्त्वमेयोक्षमहर्द्धिकाय ।
नमः शरण्याय नमोऽगुणाय नमोऽस्तु ते भीमगुणानुगाय ॥
नमोऽस्तु नाना भुवनाधिकर्त्रे नमोऽस्तु भक्ताभिमतप्रदात्रे ।
नमोऽस्तु कर्मप्रसवाय धात्रे नमः सदा ते भगवन्सुकर्त्रे ॥
अनन्तरूपाय सदैव तुभ्यमसह्यकोपाय सदैव तुभ्यम् ।
अमेयमानाय नमोऽस्तु तुभ्यं वृषेन्द्रयानाय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥
नमः प्रसिद्धाय महौषधाय नमोऽस्तु ते व्याधिगणापहाय ।
चराचरायाथ विचारदाय कुमारनाथाय नमः शिवाय ॥
ममेश भूतेश महेश्वरोऽसि कामेश वागीश बलेश धीश ।
क्रोधेश मोहेश परापरेश नमोऽस्तु मोक्षेश गुहाशयेश ॥

(स्क० मा० कुमा० २७ । ४०-४८)

उन्हें और भी परम दुर्लभ वर प्रदान करूँगा। बेटा! मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ और तुम्हारी प्रसन्नताके लिये सब कुछ करूँगा। जो मनुष्य वैशाख मासकी पूर्णिमाको जागरके तत्पर मेरी स्तुति करेंगे, उनका वह सब जप, पूजन अक्षय होगा। जो मानव वैशाखकी पूर्णिमाको यहाँके सरोवरमें स्नान करेंगे, उन्हें सब तीर्थोंके स्नानजनित फलकी प्राप्ति होगी। कार्तिकेय! जब कभी अनावृष्टि हो, तब प्रकारके उत्तम कलशोंद्वारा विधिपूर्वक गन्धयुक्त जलसे मुझे एक, तीन, पाँच अथवा सात राततक स्नान करावे और मेरे सर्वाङ्गमें कुंकुमका लेप करे, फिर दो वस्त्र धारण कराकर लाल कनेरके पुष्पोंसे तथा जवाके पुष्पोंसे और फूलकी मालाओंसे मेरा पूजन करे। पूजनके पश्चात् उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तपस्वी ब्राह्मणोंको भोजन करावे। मेरी प्रसन्नताके लिये एक लाख आहुति हवन करे, ग्रहादिकी शान्तिके लिये भी हवन करे। तदनन्तर भूमिदान करे, गौके लिये दैनिक ग्रास (अथवा एक दिनके खानेके लिये पर्याप्त चारा, दाना आदि) दे। तत्पश्चात् मङ्गलमय शान्तिपाठ एवं रुद्रका जप करावे। इसी विधानसे उत्तम ब्राह्मणोंद्वारा अनुष्ठान करानेपर जल-शून्य बादल भी उस समय अवश्य वर्षा करते हैं। भाँति-भाँतिके धान्यों तथा हरी-हरी घासोंसे वसुधा परिपूर्ण हो जाती है। मनुष्यों और पशुओंमें कोई रोग नहीं रह जाता। इस अनुष्ठानके प्रभावसे राजा धर्मपरायण होता है। शत्रुमण्डलीसे वह कभी पीड़ित नहीं होता। जो मनुष्य यहाँ भक्तियुक्त होकर मुझे घृतसे स्नान कराता है, उसे कन्यादानका फल होता है। जो दूध अथवा पञ्चामृतसे मुझे स्नान कराता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो कुमारेश्वर तीर्थमें मृत्युको प्राप्त होता है, वह महाप्रलयकालतक मेरे लोकमें निवास करता है। अयनारम्भके दिन, विषुव योगमें (जब कि दिन और रात बराबर होते हैं), चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहण-कालमें, पूर्णिमा तथा अमावास्या तिथिको, संक्रान्तिके समय तथा वैधृति योगमें जो मनुष्य महीसागरसंगममें स्नान करके भक्तिपूर्वक कुमारेश्वरका पूजन करता है, उसके पुण्य-फलका वर्णन सुनो—पृथ्वीके सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका जो महान् फल है तथा सम्पूर्ण शिवलिङ्गोंके पूजनका जो सर्वश्रेष्ठ फल है, वह सब उसे प्राप्त होता है। कुमारेश्वरकी सेवासे मनुष्यको निश्चितरूपसे आरोग्य, पुत्र, धन तथा उत्तम सुखकी प्राप्ति होती है। जो तपस्वी इस तीर्थमें ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए, पवित्रतापूर्वक निवास करता है, वह सर्वश्रेष्ठ पाशुपत योगको प्राप्त करके मुझमें लीन हो जाता है। बेटा! यहाँ तुम्हारे द्वारा स्थापित किये हुए शिवलिङ्गको तुम्हारी प्रसन्नताकी वृद्धिके लिये मैंने ये वरदान दिये हैं।

स्कन्दने कहा—महेश्वर! आपके दिये हुए ये वरदान पाकर मैं कृतकृत्य हो गया। आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। प्रभो! आप कभी इस स्थानका त्याग न करें।

देवेश्वर भगवान् शिवसे प्रणामपूर्वक यह प्रार्थना करनेके पश्चात् स्कन्दने माता पार्वतीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर कहा—'मा! मेरा प्रिय करनेकी अभिलाषासे तुम्हें भी इस स्थानका कभी त्याग न करना चाहिये।'

पार्वती बोलीं—बेटा! जहाँ भगवान् शंकर विराजमान होते हैं, वहाँ तो मैं स्वभावसे ही निवास करती हूँ। षडानन! यहाँ स्त्रियोंद्वारा मेरी आराधना होनेपर मैं उन्हें सौभाग्य, उत्तम पति तथा अनेक पुत्र प्रदान करूँगी। चैत्र मासकी तृतीयाको शीतल जलसे स्नान करके जो नारी फूल, चन्दन, धूप आदिसे मेरी पूजा करेगी और भक्तिपूर्वक मुझे आठ सौभाग्यसूचक वस्तुएँ अर्पण करेगी, उसे मैं पिता, माता, सास, श्वशुर, पति, पुत्र, सौभाग्य तथा सम्पत्ति—ये आठ वस्तुएँ प्रदान करूँगी। कुङ्कुम, पुष्प, चन्दन, ताम्बूल, काजल, ईख, लवण और जीरा—ये आठ सौभाग्य-सूचक वस्तुएँ हैं। इन सब वस्तुओंको तराजूके पलड़ेपर रखकर उनसे अपनेको तोले तथा वह स्त्री अपने पैरसहित सम्पूर्ण अङ्गोंके साथ तुल जाय और उन वस्तुओंका मेरी प्रीतिके लिये दान कर दे। तत्पश्चात् वह बिना नमकका भोजन करे। ऐसा करनेवाली स्त्री संसारमें कभी विधवा नहीं होती—सदा सौभाग्यवती बनी रहती है। जो स्त्री माघ, कार्तिक अथवा चैत्रमें यहाँ स्नान करके मेरी पूजा करेगी, उसे दुःख, दरिद्रता और दुर्भाग्यका संयोग कभी नहीं होगा।

गिरिराजनन्दिनी पार्वतीकी यह बात सुनकर उनके पुत्र स्कन्दको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने माता पार्वतीकी सामना करके अपने भाई गणेशजीसे कहा—'विनायक! जो लोग पुष्प, धूप और मोदकसे पहले तुम्हारी पूजा करके फिर कुमारेश्वरका पूजन करते हैं, उनके सभी विघ्नोंका तुम निवारण करो।'

गणेशजी बोले—मैया ! तुम्हारे द्वारा स्थापित इस शिवलिङ्गके प्रति जो लोग भक्ति रखते हैं, उन्हें मेरी तथा मेरे अनुगामियोंकी ओरसे कोई भी विघ्न नहीं होगा।

विघ्नराज गणेशके प्रसन्नतापूर्वक ऐसा कहनेपर कुमारने उनकी भी स्थापना की । इसलिये वहाँ सर्वदा ही विशेषतः चतुर्थी तिथिको गणेशजीका पूजन अवश्य करना चाहिये । इस प्रकार भगवान् कुमारेश्वरकी स्थापना करके भगवान् शिवसे ये वरदान पाकर प्रसन्न हुए कार्तिकेयने अपनेको कृतकृत्य माना तथा वे भगवान् कुमारेश्वरके समीप स्वयं भी अंशतः निवास करने लगे । स्वामिकार्तिकेयकी यात्रा करनेवाले जो लोग इस तीर्थमें निवास करनेवाले भगवान् शङ्करका दर्शन करते हैं, उनकी वह यात्रा सफल होती है । विशेषतः कार्तिककी पूर्णिमाको कार्तिकेयजीका पूजन करे । ऐसा करनेसे स्कन्द स्वामीकी यात्राका जो फल है, वह पूर्णरूपेण प्राप्त होता है । कार्तिकेयके एक सौ आठ नामोंका ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक पवित्र भावसे एक मासतक जप करनेपर मनुष्य सब सङ्कटोंसे छुटकारा पा जाता है।* अर्जुन ! यह महीसागर-संगम तीर्थ ऐसी ही महिमावाला है।

इस प्रकार कुमारेश्वरका संक्षेपसे वर्णन किया गया, ...
कुमारेश्वरके इस माहात्म्यका उनके आगे पाठ करता है त...

* श्रीविश्वामित्रजीने कुमार कार्तिकेयजीकी स्तुति करते हुए उनके १०८ नाम इस प्रकार बतलाये हैं—

'भगवन्! आप (१) ब्रह्मवादी (वेदोंके वक्ता एवं परब्रह्म परमात्माके तत्त्वका प्रतिपादन करनेवाले) हैं, आप ही (२) ब्रह्मा हैं, आप ही (३) ब्रह्म, (४) ब्राह्मणवत्सल, (५) ब्रह्मण्य (ब्राह्मणभक्त), (६) ब्रह्मदेव, (७) ब्रह्मद (ब्रह्मज्ञानको देनेवाले) तथा (८) ब्रह्मसंग्रह (वेदार्थोंके संग्रही और केवल परब्रह्म परमात्माको ही सम्यक्‌रूपसे ग्रहण करनेवाले) हैं । आप (९) सर्वोत्कृष्ट परम तेज, (१०) मङ्गलमङ्गल (मङ्गलोंके भी मङ्गल), (११) अप्रमेयगुण (असंख्य गुणवाले) और (१२) मन्त्रमन्त्रग (मन्त्रोंके सारभूत मन्त्रमें भी गति रखनेवाले) हैं । आप ही (१३) देव ! आप ही सावित्रीमय हैं । आप (१४) सर्वत्र अपराजित (अजेय), (१५) मन्त्र, शर्वात्मक मन्त्र, (१६) देव (दिव्यप्रकाशमय) तथा (१७) षडक्षरवतां वरः (छः अक्षरवाले मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' का जप करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ) हैं । आप (१८) गवाम्पुत्र (गौ अर्थात् जलस्वरूपा गङ्गाके पुत्र), (१९) सुरारिघ्न (देवशत्रुओंका नाश करनेवाले), (२०) सम्भव (असम्भवको भी सम्भव कर दिखानेवाले), (२१) भवभावन (ब्रह्मारूपसे संसारकी सृष्टि करनेवाले), (२२) पिनाकी (शङ्कररूपसे पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले), (२३) शत्रुहा (शत्रुनाशक), (२४) श्वेत (श्वेत पर्वतरूप), (२५) गूढ (एकान्तस्थानमें जन्म ग्रहण करनेवाले अथवा छिपी हुई शक्ति और महिमावाले), (२६) स्कन्द (उछलकर चलनेवाले), (२७) सुराग्रणी (देवताओंके अगुआ), (२८) द्वादश (बारह नेत्र और कान आदि धारण करनेवाले), (२९) भू (मण्डलस्वरूप), (३०) भुवः (अन्तरिक्ष लोकस्वरूप), (३१) भावी (सबको उत्पन्न करनेवाले अथवा भवितव्यतारूप), (३२) भुवःपुत्र (पृथ्वीपर रक्खे हुए भगवान् शङ्करके वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण पृथ्वीके पुत्ररूपसे प्रसिद्ध), (३३) नमस्कृत (सबके द्वारा अभिवन्दित), (३४) नागराज (नागोंके स्वामी), (३५) सुधर्मात्मा, (३६) नाकपृष्ठ (स्वर्गके संरक्षक होनेके कारण उसकी आधारभूमि), (३७) सनातन (सदा रहनेवाले), (३८) हेमगर्भ (स्वर्णके समान कान्तिवाले तेजोमय वीर्यसे उत्पन्न), (३९) महागर्भ (अनेक माताओंके गर्भमें वास करनेवाले), (४०) जय (युद्धमें जय पानेवाले) तथा (४१) विजयेश्वर (विजयके स्वामी) हैं । आप ही (४२) कर्ता, (४३) विधाता (धारण-पोषण करनेवाले), (४४) नित्य (अविनाशी), (४५) नित्यारिमर्दन (सदा शत्रुओंका संहार करनेवाले), (४६) महासेन (विशाल सेनाके अधिपति), (४७) महातेजा (परम तेजस्वी), (४८) वीर-

जो लोग इस माहात्म्यको सुनते और प्रसन्न होते हैं, वे सभी रुद्रलोकमें निवास करते हैं। जो श्राद्धकालमें इस लिङ्गके माहात्म्यका पाठ करता है, उसका किया हुआ श्राद्ध पितरोंको अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाला होता है। यदि कोई गर्भवती स्त्रीको इस शिवलिङ्गका माहात्म्य सुनावे, तो उसके गर्भसे गुणवान् पुत्र उत्पन्न होता है। और यदि कन्या हुई तो वह पतिव्रता होती है। यह प्रसङ्ग परम पवित्र, पापहारक, धर्मानुकूल तथा अतिशय आनन्द प्रदान करनेवाला है। इसे पढ़ने और सुननेवाले मनुष्योंको यह समस्त मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाला है।

कुमारका विजयस्तम्भ, प्रलम्ब दानवका वध तथा भूगोलका वर्णन

नारदजी कहते हैं—कुमारके द्वारा कुमारेश्वरकी स्थापना हो जानेपर देवताओंने दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'प्रभो! हम आपकी विजयकीर्ति प्रकाशित करनेके लिये जलमें एक उत्तम स्तम्भ डालेंगे और उसके आगे आप विश्वकर्माके द्वारा बनाये हुए तीसरे शिवलिङ्गकी स्थापना करें।' देवताओंके ऐसा कहनेपर महामना स्कन्दने 'तथास्तु' कहकर अनुमति दे दी। तब इन्द्र आदि देवताओंने प्रसन्न होकर सुवर्ण एवं उत्तम रत्नोंके बने हुए एक उत्तम स्तम्भको जलमें डालकर खड़ा किया। उस खम्भेके चारों ओर रत्नोंका चबूतरा बनवाया। उस समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई और देवताओंके बाजे बज उठे। उस स्तम्भका नाम रक्खा गया 'विश्वनन्दक'। उसका आरोपण हो जानेके पश्चात् उसीके पश्चिम भागमें भगवान् स्तम्भेश्वरकी स्थापना की गयी। स्तम्भेश्वरसे पश्चिमकी ओर महात्मा स्कन्दने अपनी शक्तिके अग्र भागसे एक कूपका निर्माण किया, जिसमें पातालगङ्गा प्रकट हुई हैं।

सेन (पराक्रमी सैनिकोंके अधिनायक), (४९) चमूपति (सेनापति), (५०) शूरसेन (शौर्यशालिनी सेनाके सञ्चालक), (५१) सुराध्यक्ष (देवताओंके सेनानायक), (५२) भीमसेन (भयङ्कर सेनावाले), (५३) निरामय (रोगरहित), (५४) शौरि (शौर्यसम्पन्न भगवान् शङ्करके पुत्र), (५५) पटु (कुशल एवं समर्थ), (५६) महातेजा (महाप्रतापी), (५७) वीर्यवान् (बल और पराक्रमसे सम्पन्न), (५८) सत्यविक्रम (सत्यपराक्रमी), (५९) तेजोगर्भ (अग्निपुत्र अथवा तेजोमय वीर्यसे प्रादुर्भूत), (६०) असुररिपु (असुरोंके शत्रु), (६१) सुरमूर्ति (देवस्वरूप), (६२) सुरोर्जित (देवताओंसे अधिक बलवान्), (६३) कृतज्ञ (उपकारको माननेवाले) (६४) वरद (वर देनेवाले), (६५) सत्य (सत्यवादी), (६६) शरण्य (शरणागतपालक), (६७) साधुवत्सल (साधु पुरुषोंपर स्नेह रखनेवाले), (६८) सुव्रत (उत्तम व्रतका पालन करनेवाले), (६९) सूर्यसङ्काश (सूर्यके समान तेजस्वी), (७०) वह्निगर्भ (अग्निके गर्भसे उत्पन्न), (७१) रणोत्सुक (युद्धके लिये उत्कण्ठित रहनेवाले), (७२) पिप्पली (पीपलका सेवन करनेवाले), (७३) शीघ्रग (तीव्र गतिसे चलनेवाले), (७४) रौद्रि (रुद्रपुत्र), (७५) गाङ्गेय (गङ्गापुत्र), (७६) रिपुदारण (शत्रुओंको विदीर्ण करनेवाले), (७७) कार्तिकेय (कृत्तिकापुत्र), (७८) प्रभु (समर्थ), (७९) क्षान्त (क्षमाशील), (८०) नीलदंष्ट्र (नीले दाँतवाले), (८१) महामना (अत्यन्त उदार हृदयवाले), (८२) निग्रह (निरपराध लोगोंका दमन करनेकी दानवीय प्रथाको बलपूर्वक रोकनेवाले), (८३) नेता (सेनानायक) तथा आप ही, (८४) सुरनन्दन (देवताओंको आनन्दित करनेवाले), (८५) प्रग्रह (शत्रुओंको बलपूर्वक पकड़ लेनेवाले), (८६) परमानन्द, (८७) क्रोधघ्न (अपने भक्तोंके क्रोधका नाश करनेवाले), (८८) तार (उच्च स्वरसे गर्जना करनेवाले), (८९) उच्छ्रित (ऊँचे पदपर स्थित अथवा ऊँची कदवाले), (९०) कुक्कुटी (बालके लिये मोर अथवा पहाड़ी मुर्गी पालनेवाले), (९१) बहुली (बहुत साधन-सामग्रीसे सम्पन्न), (९२) दिव्य (स्वर्गीय शोभा धारण करनेवाले), (९३) कामद (मनोरथ पूर्ण करनेवाले), (९४) भूरिवर्द्धन (अधिक वृद्धि प्रदान करनेवाले), (९५) अमोघ (कभी असफल न होनेवाले), (९६) अमृतद (अमृत प्रदान करनेवाले), (९७) अग्नि (अग्निस्वरूप), (९८) शत्रुघ्न (शत्रुनाशक), (९९) सर्वबोधन (सबको ज्ञान देनेवाले), (१००) अनघ (पापरहित), (१०१) अमर (अविनाशी), (१०२) श्रीमान् (शोभासम्पन्न), (१०३) उन्नत (उन्नतिशील), १०४ अग्निसम्भव (अग्निसे उत्पन्न), (१०५) पिशाचराज (शिवके पिशाच आदि गणोंका आधिपत्य ग्रहण करनेवाले), (१०६) सूर्याभ (सूर्यके समान कान्तिमान्), (१०७) शिवात्मा (शिवस्वरूप) तथा आप ही (१०८) सनातन (नित्य) हैं। (स्क० मा० कुमा० २३। २२ से ३५)।

अर्जुन ! माघके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको जो मनुष्य उस कूपमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करेगा, उसे निश्चय ही गयाश्राद्धसे होनेवाले पुण्यफलकी प्राप्ति होगी । तर्पणके पश्चात् गन्ध और पुष्पसे भगवान् स्तम्भेश्वरकी पूजा करनी चाहिये । ऐसा करनेवाला पुरुष वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त करके भगवान् शिवके परमधाममें आनन्दका भागी होता है । जो पूर्णिमा और अमावास्याको महीसागरसङ्गममें श्राद्ध करके स्तम्भेश्वरका पूजन करता है, उसके पितर तृप्त होते हैं । तृप्त होकर उत्तम आशीर्वाद देते हैं तथा वह पुरुष सब पापोंका नाश करके भगवान् रुद्रके लोकमें प्रतिष्ठित होता है । यह बात स्वयं भगवान् शङ्करने कार्तिकेयकी प्रशंसाके लिये पहले कही थी । इस प्रकार स्कन्दद्वारा स्थापित किये हुए चौथे उत्तम लिङ्गको सब देवताओंने प्रणाम किया और 'साधु-साधु' कहकर उनके इस कार्यकी प्रशंसा की ।

इस प्रकार भगवान् शङ्करके पुत्र स्कन्दद्वारा पृथ्वीपर स्थापित किये हुए उन शिवलिङ्गोंका दर्शन करके विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता आपसमें इस प्रकार कहने लगे— 'अहो ! ये कुमार धन्य हैं, जिन्होंने परम दुर्लभ महीसागर-सङ्गममें चार शिवलिङ्ग स्थापित किये । हम लोग भी यहाँ आत्म-शुद्धिके लिये, भगवान् शङ्कर और कुमार कार्तिकेयकी प्रसन्नताके लिये, सत्कर्मका अनुष्ठान करनेके लिये तथा अपने परम लाभके लिये शिवलिङ्गोंकी परम्परा स्थापित करें । ऐसी सलाह करके सबने भगवान् महेश्वरसे आज्ञा प्राप्त की । आज्ञा मिल जानेपर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने साक्षात् ब्रह्माजीके द्वारा बनाये हुए एक उत्तम शिवलिङ्गको एकान्त स्थानमें स्थापित किया । जिनका प्रयोजन सिद्ध हो चुका था, ऐसे ब्रह्मा आदि देवताओंने उस लिङ्गकी स्थापना की थी, इस-लिये उसका नाम 'सिद्धेश्वर' रक्खा गया । फिर सब देवताओं-ने मिलकर वहाँ एक उत्तम सरोवर खोदा और उन महात्माओं-ने समस्त तीर्थोंके उत्तम जलसे उस जलाशयको भर दिया । इसी समय पातालसे शेषनागके पुत्र कुमुदने आकर शेष आदि सर्पगणोंसे कहा—'तारकासुरके साथ जब युद्ध हो रहा था, उस समय प्रलम्ब नामक दानव कुमारके भयसे भागकर पातालमें जा घुसा था । वह इस समय आपलोगोंके धन, पुत्र, पत्नी, कन्या और गृहोंका विध्वंस कर रहा है ।'

यह सुनकर कुमार कार्तिकेयने शक्ति हाथमें ली और 'प्रलम्ब नामक दैत्य मारा जाय' ऐसा सङ्कल्प करके उसे पातालकी ओर छोड़ दिया । स्कन्दके हाथसे छूटी हुई वह शक्ति पृथ्वी-को चीरकर बड़े वेगसे पातालमें जा पहुँची और दस दैत्योंसे युक्त प्रलम्बको भस्म करके जलकी लहरोंके सा लौट आयी । शक्तिने पातालको जाते समय जो बिल बन उस मार्गसे पातालगङ्गाका पापहारी जल आकर वहाँ गया । स्कन्दने उसका नाम 'सिद्धकूप' रक्खा । जो उपवासपूर्वक कृष्णपक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको सि स्नान करता और अनन्य भावसे भगवान् सिद्धेश्वरका करता है, उसका अनेक जन्मोंका पाप भाग जाता है । जं कुण्डमें श्रद्धापूर्वक स्नान करता है, वह सब पापों होकर भगवान् शङ्करकी भक्तिके योग्य हो जाता है ।

उस तीर्थमें अक्षयवट भी है, उसके ऊपर सन्तुष्ट भगवान् शङ्करने यों वरदान दिया—'यह वटवृक्ष प्रयागके वटके समान है । जो यहाँ श्राद्ध करता है, उसके पिण्ड सब पितरोंको अक्षय दान प्राप्त होता है ।'

तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओंने स्कन्दके साथ महाशक्ति भगवती सिद्धाम्बिकासे प्रार्थना की—'देवि यहीं रहकर इस क्षेत्रकी दुष्ट जीवोंसे रक्षा करो । शुभे ! और चतुर्दशीको जो लोग तुम्हारी पूजा करते हैं, उनकी प्रकारकी आपत्तियोंसे तुम्हें रक्षा करनी चाहिये ।' उनके प्रकार कहनेपर सिद्धाम्बिकाने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्र स्वीकार की । तत्पश्चात् सिद्धेश्वर लिङ्गसे उत्तर भागमें देवता भगवती सिद्धाम्बाको स्थापित किया । उस तीर्थमें भी समूहने सिद्धेश्वर क्षेत्रकी रक्षाके लिये क्षेत्रपतिके रूपमें चतु महेश्वरकी स्थापना की । उसके बाद उन्होंने सिद्धिके लिये शिवजीके पुत्र गणेशकी सिद्धिविनायकके नामसे स्थापना क जो लोग प्रत्येक कार्यके आरम्भमें सदा उनकी पूजा करते उन सबको ये प्रबल विघ्नराज सिद्धि प्रदान करते हैं । इस प्र उस तीर्थके सिद्धसप्तककी जो लोग सदा पूजा, दर्शन स्मरण करते हैं, वे सब दोषोंसे मुक्त हो जाते हैं । सिद्धे सिद्ध-वट, सिद्धाम्बिका, सिद्धविनायक, सिद्धेश क्षेत्राधिप सिद्धसर तथा सिद्धकूप—ये सात सिद्धसप्तक कहलाते हैं ।

सिद्धेशके सम्बन्धमें देवताओंने भी ये गाथा गायी है 'जो मनुष्य सिद्धलिङ्गका पूजन करेगा, उसके द्वारा हम देवता यज्ञ, जप, स्तोत्र और तपस्याद्वारा सन्तुष्ट किये हुए समान हो जायँगे ।'

यों कहकर वे सब देवता बड़े हर्षको प्राप्त हो स्कन्द साथ उस क्षेत्रसे चले गये । स्कन्दने मारुतस्कन्ध नामसे प्रसि

सप्तमस्कन्धको प्रस्थान किया । अर्जुन ! इस प्रकार मैंने तुमसे महीसागरसङ्गम तीर्थके पाँच लिङ्गोंका वृत्तान्त कह सुनाया ।

कुन्तीनन्दन ! सृष्टिके पहले यहाँ सब कुछ अव्यक्त एवं प्रकाशशून्य था । उस अव्याकृत अवस्थामें प्रकृति और पुरुष—ये दो अजन्मा (जन्मरहित) एक दूसरेसे मिलकर एक हुए, यह हम सुना करते हैं । तत्पश्चात् अपने स्वरूपभूत स्वभाव और कालकी प्रेरणा होनेपर पुरुषके ईक्षण (सृष्टिविषयक संकल्प) से क्षोभको प्राप्त हुई प्रकृतिसे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति हुई । फिर महत्तत्त्वमें विकार आनेपर अहङ्कार प्रकट हुआ । मुनियोंने उस अहङ्कारको सात्त्विक, राजस और तामसभेदसे तीन प्रकारका बतलाया है । तामस अहङ्कारसे पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं तथा उन तन्मात्राओंसे पाँच महाभूतोंकी उत्पत्ति हुई और रूप-रसादि पाँच विषय पाँच महाभूतोंके कार्य हैं । तैजस अर्थात् राजस अहङ्कारसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं । पूर्वोक्त दस इन्द्रियोंके देवता तथा ग्यारहवीं इन्द्रिय मन सात्त्विक अहङ्कारसे उत्पन्न हुए हैं, ऐसा विद्वान् पुरुषोंका मत है । ये ही चौबीस तत्त्व पूर्वकालमें उत्पन्न हुए, फिर परम पुरुष भगवान् सदाशिवकी दृष्टि पड़नेपर ये सभी तत्त्व बुलबुलेके आकारमें परिणत हो गये; उस बुलबुलेसे सुन्दर अण्ड उत्पन्न हुआ, जिसका परिमाण सौ कोटि योजन है। इसीको ब्रह्माण्ड कहते हैं ।

ब्रह्माण्डके आत्मा ब्रह्माजी बताये गये हैं, उन्होंने इसके तीन विभाग किये—ऊर्ध्वभाग, मध्यभाग और अधोभाग । ऊर्ध्वभाग स्वर्ग है, उसमें देवता निवास करते हैं। मध्यभाग भूलोक है, इसमें मनुष्य रहते हैं । अधोभागको पाताल कहते हैं, उसमें नाग और दैत्य निवास करते हैं । ये ही ब्रह्माण्डके तीन विभाग किये गये हैं । इनमेंसे एक-एक विभागके पुनः सात-सात भाग ब्रह्माजीने किये हैं । जो सात पाताल, सात द्वीप और सात स्वर्गलोकके रूपमें प्रसिद्ध हैं ।

पहले मैं सात द्वीपोंका वर्णन करूँगा । उनकी कल्पना सुनो—पृथ्वीके मध्यमें जम्बूद्वीप है; इसका विस्तार एक लाख योजनका बतलाया जाता है । जम्बूद्वीपकी आकृति सूर्यमण्डलके समान है । वह उतने ही बड़े खारे पानीके समुद्रसे घिरा हुआ है । *जम्बूद्वीप और क्षारसमुद्रके बाद शाकद्वीप है, जिसका विस्तार जम्बूद्वीपसे दुगुना है । वह अपने ही बराबर प्रमाणवाले क्षीरसमुद्रसे, उसके बाद उससे दुगुना बड़ा पुष्करद्वीप है, जो दैत्योंको मदोन्मत्त कर देनेवाले उतने ही बड़े सुरासमुद्रसे घिरा हुआ है । उससे परे कुशद्वीपकी स्थिति मानी गयी है, जो अपनेसे पहले द्वीपकी अपेक्षा दुगुने विस्तारवाला है । कुशद्वीपको उतने ही बड़े विस्तारवाले दहीके समुद्रने घेर रक्खा है । उसके बाद क्रौञ्च नामक द्वीप है; जिसका विस्तार कुशद्वीपसे दूना है । वह अपने ही समान विस्तारवाले घीके समुद्रसे घिरा है । इसके बाद इसके दूने विस्तारवाला शाल्मलि द्वीप है; जो उतने ही बड़े ईखके रसके समुद्रसे घिरा है। उसके बाद उससे दुगुने विस्तारवाला गोमेद (प्लक्ष) नामक द्वीप है; जिसे उतने ही बड़े अत्यन्त रमणीय स्वादिष्ट जलके समुद्रने घेर रक्खा है । अर्जुन ! इस प्रकार सात द्वीप और समुद्रोंसहित पृथ्वीका विस्तार दो करोड़ पचास लाख तिरपन हजार योजन है । शुक्ल और कृष्ण पक्षमें समुद्रके जलकी पाँच सौ दस अङ्गुलकी वृद्धि और क्षय देखे गये हैं । उसके बाद दस करोड़ योजनतक सुवर्णमयी भूमि है; वह देवताओंकी क्रीडास्थली है । उसके बाद कङ्कणके समान गोल आकारवाला लोकालोकपर्वत है, जिसका विस्तार दस हजार योजन है। उस पर्वतके बाह्य भागमें भयङ्कर अन्धकार है, जिसकी ओर देखना भी कठिन है । वहाँ कोई जीव-जन्तु नहीं रहते । वह अन्धकारपूर्ण प्रदेश पैंतीस करोड़, उन्नीस लाख, चालीस हजार योजनतक फैला हुआ है । उसके बाद गर्भोदक सागर है, जिसका विस्तार सात समुद्रोंके बराबर है । उसके बाद एक करोड़ योजन विस्तृत कड़ाह है, जो ब्रह्माजीके अण्डकटाहसे ढका हुआ है । ब्रह्माण्डके मध्यमें मेरुपर्वत है, उसकी दसों दिशाओंमें पचास-पचास करोड़ योजनतक ब्रह्माण्डका विस्तार जानना चाहिये । जम्बूद्वीपके मध्यभागमें मेरुपर्वत है, वह नीचेसे ऊपरतक एक लाख योजन ऊँचा है । सोलह हजार योजन तो वह पृथ्वीके नीचेतक गया हुआ है और चौरासी हजार योजन पृथ्वीसे ऊपर उसकी ऊँचाई है । मेरुके शिखरका विस्तार बत्तीस हजार योजन है । उसकी आकृति प्यालेके समान है । वह पर्वत तीन शिखरोंसे युक्त है, उसके मध्यम शिखरपर ब्रह्माजीका निवास है, ईशान कोणमें जो शिखर है, उसपर शङ्करजीका स्थान है तथा नैर्ऋत्य कोणवाले शिखरपर भगवान् विष्णुकी स्थिति है । मेरुके सुवर्णमय शिखरपर ब्रह्मा-

* भागवत आदि अन्य पुराणोंके अनुसार द्वीपोंका क्रम इस प्रकार है—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर। परंतु स्कन्दपुराणके कुमारिकाखण्डमें क्रमभेद प्राप्त होता है । इसमें यहाँ तो जम्बू, शाक, पुष्कर, कुश, क्रौञ्च, शाल्मलि तथा गोमेद (प्लक्ष) इस क्रमसे उल्लेख हुआ है, परंतु जहाँ इन द्वीपोंका विशेष वर्णन है, वहाँ पुष्करको सबके अन्तमें तथा प्लक्षद्वीपके बाद रक्खा है। मूलमें जैसा पाठ है, वैसा ही अर्थमें भी रक्खा गया है ।

जीका, रत्नमय शिखरपर शङ्करजीका तथा रजतमय शिखरपर भगवान् विष्णुका अधिकार है।

मेरुपर्वतके चारों ओर चार विष्कम्भ पर्वत माने गये हैं। पूर्वमें मन्दराचल, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें सुपार्श्व तथा उत्तरमें कुमुद नामक पर्वत है। मन्दराचल पर्वतपर कदम्बका विशाल वृक्ष है, जो विशेषरूपसे जानने योग्य है। इसी प्रकार गन्धमादन पर्वतपर जम्बू वृक्ष, सुपार्श्व पर्वतपर अश्वत्थ वृक्ष तथा कुमुद पर्वतपर वट वृक्षकी स्थिति मानी गयी है। ये चारों वृक्ष उन-उन पर्वतोंकी ध्वजाके समान हैं। इनका दीर्घ विस्तार ग्यारह-ग्यारह सौ योजन है। इनके चार वन हैं, जो पर्वतके शिखरपर ही स्थित हैं। पूर्वमें नन्दन वन, दक्षिणमें चैत्ररथ वन, पश्चिममें वैभ्राज वन तथा उत्तरमें सर्वतोभद्र नामक वन है। इन्हीं चार वनोंमें चार सरोवर भी हैं। पूर्वमें अरुणोद सरोवर, दक्षिणमें मान सरोवर, पश्चिममें शीतोद सरोवर तथा उत्तरमें महाह्रद नामक सरोवर है। ये विष्कम्भ पर्वत पचीस-पचीस हजार योजन ऊँचे हैं। इनकी चौड़ाई भी हजार-हजार योजन मानी गयी है। इनके सिवा वहाँ और भी बहुत-से केसर-पर्व[1] हैं। मेरुगिरिके दक्षिण दिशामें निषध, हेमकूट और हिमवान्—ये तीन मर्यादा पर्वत हैं। इनकी लंबाई एक लाख योजन और चौड़ाई दो हजार योजन है। मेरुके उत्तरमें भी तीन मर्यादा पर्वत हैं—नील, श्वेत और शृङ्गवान्। मेरुसे पूर्व माल्यवान् पर्वत है और मेरुके पश्चिम गन्धमादन पर्वत है। ये सभी पर्वत जम्बूद्वीपमें चारों ओर फैले हुए हैं। गन्धमादन पर्वतपर जो जम्बूका वृक्ष है, उसके फल बड़े-बड़े हाथियोंके समान होते हैं। उस जम्बूके ही नामपर इस द्वीपको जम्बूद्वीप कहा गया है।

पूर्वकालमें स्वायम्भुव नामसे प्रसिद्ध एक मनु हो गये हैं; वे ही आदि मनु और प्रजापति कहे गये हैं। उनके दो पुत्र हुए, प्रियव्रत और उत्तानपाद। राजा उत्तानपादके पुत्र परम धर्मात्मा ध्रुवजी हुए, जिन्होंने भक्ति-भावसे भगवान् विष्णुकी आराधना करके अविनाशी पदको प्राप्त कर लिया। राजर्षि प्रियव्रतके दस पुत्र हुए, जिनमेंसे तीन तो संन्यास ग्रहण करके घरसे निकल गये और परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो गये। शेष सात द्वीपोंमें उन्होंने अपने सात पुत्रोंको प्रतिष्ठित किया। राजा प्रियव्रतके ज्येष्ठ पुत्र आग्नीध्र जम्बूद्वीपके अधिपति हुए। उनके नौ पुत्र जम्बूद्वीपके नौ खण्डोंके स्वामी माने गये हैं। वे नवों खण्ड आज भी उन्हींके नामसे विख्यात हैं। प्रत्येक खण्डका विस्तार एक हजार योजन है। मेरुके चारों ओर और गन्धमादन तथा माल्यवान्‌के बीचमें सुवर्णमयी भूमिसे सुशोभित भू-भाग है, उसे इलावृत वर्ष कहते हैं। माल्यवान् पर्वतसे लेकर समुद्रपर्यन्त भद्राश्व वर्ष कहलाता है। गन्धमादनसे समुद्रतककी भूमिको केतुमाल वर्ष कहा गया है। शृङ्गवान् पर्वतसे आरम्भ करके सागरतकके भूखण्डको कुरु वर्ष कहते हैं। शृङ्गवान् और श्वेत पर्वतके बीचका भाग हिरण्मय वर्ष कहलाता है। नील और श्वेत पर्वतके बीचमें रम्यक् वर्ष है। निषध और हेमकूटके बीच हरिवर्षकी स्थिति है। हिमवान् और हेमकूटके मध्यका भूभाग किंपुरुष वर्ष माना गया है। हिमालयसे लेकर समुद्रतकके भूभागको नाभिखण्ड कहते हैं। नाभि और कुरु ये दोनों वर्ष धनुषकी-सी आकृतिवाले हैं। इनमें क्रमशः हिमवान् और शृङ्गवान् पर्वत प्रत्यञ्चाके स्थानपर स्थित बताये गये हैं। नाभिके पुत्र ऋषभ हुए और ऋषभसे 'भरत' का जन्म हुआ; जिनके नामपर इस देशको भारतवर्ष भी कहते हैं। अर्जुन! यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका उपार्जन होता है। भारतवर्षके सिवा अन्य सब द्वीपों और वर्षोंमें केवल भोगभूमि है।

शाकद्वीपमें एक हजार योजन विस्तृत शाक वृक्ष है। उसीके नामसे उस वर्षको शाकद्वीप कहा गया है। राजा प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि उस द्वीपके अधिपति हैं। उनके सात पुत्र हुए—पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप तथा विश्वधार—ये उनके पुत्रोंके नाम हैं। इन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध वहाँ सात खण्ड हैं। शाकद्वीपमें ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत नामवाले चार वर्णोंके लोग हैं, जो वायुस्वरूप भगवान्‌के नामोंका जप करते हैं। जो अपनी प्राण आदि वृत्तियोंके द्वारा सम्पूर्ण भूतोंके भीतर प्रवेश करके उनका पालन-पोषण करते हैं तथा यह जगत् जिनके अधीन है, वे अन्तर्यामी ईश्वर साक्षात् वायुदेव हम सबकी रक्षा करें। कुशद्वीपमें एक हजार योजनतक कुशोंकी झाड़ी है। उसीके चिह्नसे चिह्नित होनेके कारण उसको कुशद्वीप कहते हैं। राजा प्रियव्रतके पुत्र हिरण्यरोमा उस द्वीपके स्वामी हैं; उनके वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेव—इन सात पुत्रोंके नामसे प्रसिद्ध सात वर्ष कुशद्वीपमें हैं। वहाँके चार वर्णोंका नाम कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक है। वे भगवान् अग्निदेवकी इस प्रकार स्तुति करते हैं—'हे

१. जैसे कमलकी कर्णिकाके चारों ओर केसर होते हैं, वैसे मेरुके सब ओर दो पर्वत हैं। वे केसरके ही सदृश जान पड़ते हैं। अतः उन्हें केसर पर्वत कहा है।

अग्निदेव ! आप जन्म ग्रहण करनेवाले सम्पूर्ण भूतोंको जानते हैं; इसलिये 'जातवेदा' हैं। साक्षात् परब्रह्म परमात्माके लिये आप हविष्य पहुँचाया करते हैं। सब देवता परम पुरुष भगवान्‌के ही अङ्ग हैं। अतः उनके यजनद्वारा आप उन परम पुरुषका ही यजन करें।'

क्रौञ्चद्वीपमें क्रौञ्च नामक पर्वत है, जिसका विस्तार दस हजार योजन है। उसी पर्वतको स्वामिकार्तिकेयने विदीर्ण कर डाला था। उसके चिह्नसे चिह्नित होनेके कारण उस द्वीपका नाम क्रौञ्चद्वीप है। वहाँ प्रियव्रतके पुत्र महाराज घृतपृष्ठका अधिकार है। उनके सात पुत्र हुए—आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्णव तथा वनस्पति। इन्हींके नामपर उस द्वीपके सात वर्ष हैं। वहाँ पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक नामवाले चार वर्णोंके लोग रहते हैं और जलस्वरूप भगवान्‌की स्तुति करते हैं—'हे जल ! तुम परम पुरुष परमात्माके रेतस् हो अथवा परमेश्वर ही तुम्हारी शक्ति हैं; तुम भूः, भुवः, स्वः तीनों लोकोंको पवित्र करते हो। अतः स्वभावसे ही पापनाशक हो। हम अपने शरीरसे तुम्हारा स्पर्श करते हैं, तुम हमें पवित्र कर दो।'

शाल्मलिद्वीपमें सेमलका एक बहुत बड़ा वृक्ष है, जिसपर गरुड़जी निवास करते हैं। उसका विस्तार एक हजार योजन है। वही वहाँका चिह्न है; इसलिये उसे शाल्मलिद्वीप कहते हैं। राजा प्रियव्रतके पुत्र यज्ञबाहु उसके अधिपति हैं। उनके सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्हि, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात नामवाले सात पुत्र हैं, जिनके नामपर वहाँके सात वर्ष प्रसिद्ध हैं। उस द्वीपमें श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और ईषन्धर नामवाले चार वर्णोंके लोग भगवान् सोमका यजन एवं स्तवन करते हैं। 'जो अपनी किरणोंसे कृष्ण और शुक्ल पक्षमें पितरों और देवताओंको अन्न वितरण करते हैं, वे भगवान् चन्द्रमा हम सब प्रजाओंके राजा हों।'

गोमेद या प्लक्षद्वीपमें गोमेद नामसे प्रसिद्ध एक पाकरिका वृक्ष है, जिसकी सुगन्धित छायासे विशेष सुख मिलनेके कारण लोगोंका मेदा बढ़ जाता है। अतः उससे उपलक्षित द्वीपको गोमेदद्वीप कहते हैं। वहाँ राजा प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व राजा हैं। उनके शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत तथा अभय नामवाले सात पुत्र हैं, जिनके नामसे उस द्वीपके सात वर्ष प्रसिद्ध हुए हैं। वहाँ हंस, पतङ्ग, ऊर्ध्वञ्चन और सत्याङ्ग नामवाले चार वर्णोंके लोग रहते हैं जो भगवान् सूर्यकी आराधना करते हैं। 'जो पुराण-पुरुष भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं, सत्य, ऋत, वेद, अमृत तथा मृत्युके भी आत्मा हैं, उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं।'

पुष्करद्वीपमें एक हजार योजनतक विस्तृत स्वर्णमय कमल देदीप्यमान होता है, जिसके लाखों स्वर्णमय दल शोभा पाते हैं। वही वहाँका चिह्न है। इसलिये उसे पुष्करद्वीप कहते हैं। राजा प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र वहाँके अधिपति हैं। उनके दो ही पुत्र हैं—रमणक और धातकि। इन्हींके नामसे उस द्वीपके दो खण्ड प्रसिद्ध हैं। इन दोनों खण्डोंके मध्य भागमें मानसोत्तर नामक पर्वत है; जिसकी आकृति कंगनके समान है। उसीके ऊपर भगवान् भास्कर भ्रमण करते हैं। वहाँ वर्ण-विभाग नहीं है। सब समान हैं और केवल ब्रह्माजीका चिन्तन करते रहते हैं। वे इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—'जो सुप्रसिद्ध कर्मफलस्वरूप हैं, साक्षात् ब्रह्ममें ही जिनकी स्थिति है, सब लोग जिनका पूजन करते हैं तथा जो एकान्तनिष्ठ, अद्वितीय एवं परम शान्त हैं, उन भगवान् ब्रह्माको नमस्कार है।' पुष्करद्वीपके निवासियोंमें क्रोध और मात्सर्य नहीं होता। पुण्य और पापकी भी प्रवृत्ति नहीं होती। उनकी आयु दस हजार वर्षसे लेकर बीस हजार वर्षतककी होती है। वे लोग जप करते रहते हैं और देवताओंकी भाँति अपनी पत्नियोंके साथ विहार किया करते हैं। अर्जुन ! अब मैं तुम्हें ऊपरके लोकोंकी स्थिति बतलाऊँगा।

नवग्रहोंकी स्थिति, ऊपरके सात लोकोंका वर्णन, वायुके सात स्कन्ध, सात पाताल, इक्कीस नरक, ब्रह्माण्डकटाह एवं काल-मान आदिका निरूपण

नारदजी कहते हैं—कुरुश्रेष्ठ ! भूमिसे लाख योजन ऊपर सूर्यमण्डल है। भगवान् सूर्यके रथका विस्तार नौ सहस्र योजन है। उसका ईषादण्ड (हरसा) अठारह हजार योजन बड़ा है। इसकी धुरी डेढ़ करोड़ साढ़े सात लाख योजनकी है। उसीमें सूर्यके रथका पहिया लगा है। उस पहियेमें तीन नाभि, पाँच अरे और छः नेमि बताये गये हैं। सूर्यके रथका जो दूसरा धुरा है, उसका माप साढ़े पैंतालीस हजार योजन है। धुरेका जो प्रमाण है, वही दोनों युगार्द्धोंका भी है। उस

रथका जो छोटा धुरा और युगार्द्ध है, वह ध्रुवके आधारपर स्थित है और दूसरे बायें धुरेमें जो पहिया लगा है, वह मानसोत्तर पर्वतपर स्थित है। वेदके जो सात छन्द हैं, वे ही सूर्यरथके सात अश्व हैं। उनके नाम सुनो—गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पङ्क्ति—ये छन्द ही सूर्यके घोड़े बताये गये हैं। सदा विद्यमान रहनेवाले सूर्यका न तो कभी अस्त होता और न उदय ही होता है। सूर्यका दिखायी देना ही उदय है और उनका दृष्टिसे ओझल हो जाना ही अस्त है।

इन्द्र, यम, वरुण और कुबेर—इनमेंसे किसी एककी पुरीमें प्रकाशित होते हुए सूर्यदेव शेष तीन पुरियों और दो विकोणों (कोनों) को प्रकाशित करते हैं और जब किसी कोनकी दिशामें स्थित होते हैं तब वे शेष तीन कोनों और दो पुरियोंको प्रकाशित करते हैं। उत्तरायणके प्रारम्भमें सूर्य मकर राशिमें जाते हैं, उसके पश्चात् वे कुम्भ और मीन राशियोंमें एक राशिसे दूसरी राशिपर होते हुए जाते हैं। इन तीनों राशियोंको भोग लेनेपर सूर्यदेव दिन और रात दोनों-को बराबर करते हुए विषुवत् रेखापर पहुँचते हैं। उसके बादसे प्रतिदिन रात्रि घटने लगती है और दिन बढ़ने लगता है। फिर मेष तथा वृष राशिका अतिक्रमण करके मिथुनके अन्तमें उत्तरायणके अन्तिम सीमापर उपस्थित होते हैं और कर्क राशिपर पहुँचकर दक्षिणायनका आरम्भ करते हैं। जैसे कुम्हारके चाकके सिरे बैठा हुआ जीव बड़ी शीघ्रतासे घूमता है उसी प्रकार सूर्य भी दक्षिणायनको पार करनेमें शीघ्रतासे चलते हैं। वे वायुवेगसे चलते हुए, अत्यन्त वेगवान् होनेके कारण बहुत दूरकी भूमि भी थोड़ेमें पार कर लेते हैं। कुलाल-चक्रके मध्यमें स्थित जीव जिस प्रकार मन्द गतिसे चलता है, उसी प्रकार उत्तरायणमें सूर्य मन्द गतिसे चलते हैं, अतः वे थोड़ी-सी भूमिको भी चिरकालमें पार करते हैं।

सन्ध्याकाल आनेपर मन्देहनामक राक्षस भगवान् सूर्यको खा जानेकी इच्छा करते हैं। उन राक्षसोंको प्रजापति-का यह शाप है कि उनका शरीर तो अक्षय रहेगा, परंतु मृत्यु प्रतिदिन होगी। अतः सन्ध्याकालमें उन राक्षसोंके साथ सूर्यका बड़ा भयानक युद्ध होता है। उस समय द्विज-लोग गायत्री मन्त्रसे पवित्र किये जलका जो अर्घ्य देते हैं, उससे वे पापी राक्षस जल जाते हैं। इसलिये सदा सन्ध्यो-पासना करनी चाहिये। जो सन्ध्योपासना नहीं करते, वे कृतघ्न होनेके कारण रौरव नरकमें पड़ते हैं।

प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न सूर्य, ऋषि, गन्धर्व, राक्षस, अप्सरा, यक्ष तथा सर्प—इन सातोंसे संयुक्त भगवान् सूर्यका रथ गमन करता है। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, सविता, भग, त्वष्टा तथा विष्णु ये बारह आदित्य, चैत्र आदि मासोंमें सूर्यमण्डलमें अधिकारी माने गये हैं।

सूर्यके स्थानसे लाख योजन दूर चन्द्रमाका मण्डल स्थित है, चन्द्रमाका भी रथ तीन पहियोंवाला बताया जाता है, उसमें बायीं और दाहिनी ओर कुन्दके समान श्वेत दस घोड़े जुते होते हैं। चन्द्रमासे पूरे एक लाख योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल प्रकाशित होता है। नक्षत्रोंकी संख्या अस्सी समुद्र चौदह अरब और बीस करोड़ बतायी गयी है। नक्षत्र-मण्डलसे दो लाख योजन ऊपर बुधका स्थान है। चन्द्र-नन्दन बुधका रथ वायु तथा अग्निद्रव्यसे बना हुआ है, उसमें वायुके समान वेगवाले आठ पीले रंगके घोड़े जुते रहते हैं। बुधसे भी दो लाख योजन ऊपर शुक्राचार्यका स्थान माना गया है, उनके रथमें भी आठ घोड़े जोते जाते हैं। शुक्रसे लाख योजन ऊपर मङ्गल हैं, इनका रथ सुवर्णके समान कान्तिवाले आठ घोड़ोंसे युक्त होता है। मङ्गलसे दो लाख योजन ऊपर देवपुरोहित बृहस्पतिका स्थान माना जाता है, उनका रथ सुवर्णका बना हुआ है, उसमें श्वेत वर्णके आठ घोड़े जोते जाते हैं। बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चरका स्थान है। उनका रथ आकाशसे उत्पन्न हुए आठ चितकबरे घोड़ोंद्वारा जोता जाता है। राहुके रथमें भ्रमरके समान रंगवाले आठ घोड़े हैं, वे एक ही बार जोत दिये गये हैं और सदा उनके धूसर रथको खींचते रहते हैं। उनकी स्थिति सूर्यलोकके नीचे मानी गयी है। शनैश्चरसे एक लाख योजन ऊपर सप्तर्षियोंका मण्डल है और उनसे भी लाख योजन ऊपर ध्रुवकी स्थिति है। ध्रुव समस्त ज्योति-र्मण्डलके मेढ़ (केन्द्र) हैं। वे भी शिशुमारचक्रके पुच्छके अग्र-भागमें स्थित हैं, जिन्हें भगवान् वासुदेवका सर्वोत्तम एवं अविनाशी भक्त कहते हैं। अर्जुन! यह सारा ज्योतिर्मण्डल वायुरूपी डोरसे ध्रुवमें बँधा है। सूर्यमण्डलका विस्तार नौ हजार योजन है, उससे दूना चन्द्रमाका मण्डल बताया गया है। मण्डलाकार राहु इन दोनोंके बराबर होकर पृथ्वीकी निर्मल छाया ग्रहण करके उनके नीचे चलता है। शुक्राचार्य-का मण्डल चन्द्रमाके सोलहवें भागके बराबर है। बृहस्पति-मण्डलका विस्तार शुक्राचार्यसे एक चौथाई कम है। इसी प्रकार मङ्गल, शनैश्चर और बुध—ये बृहस्पतिकी अपेक्षा

रथका जो छोटा धुरा और युगार्द्ध है, वह ध्रुवके आधारपर स्थित है और दूसरे बायें धुरेमें जो पहिया लगा है, वह मानसोत्तर पर्वतपर स्थित है। वेदके जो सात छन्द हैं, वे ही सूर्यरथके सात अश्व हैं। उनके नाम सुनो—गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पङ्क्ति—ये छन्द ही सूर्यके घोड़े बताये गये हैं। सदा विद्यमान रहनेवाले सूर्यका न तो कभी अस्त होता और न उदय ही होता है। सूर्यका दिखायी देना ही उदय है और उनका दृष्टिसे ओझल हो जाना ही अस्त है।

इन्द्र, यम, वरुण और कुबेर—इनमेंसे किसी एककी पुरीमें प्रकाशित होते हुए सूर्यदेव शेष तीन पुरियों और दो विकोणों (कोनों) को प्रकाशित करते हैं और जब किसी कोनकी दिशामें स्थित होते हैं तब वे शेष तीन कोनों और दो पुरियोंको प्रकाशित करते हैं। उत्तरायणके प्रारम्भमें सूर्य मकर राशिमें जाते हैं, उसके पश्चात् वे कुम्भ और मीन राशियोंमें एक राशिसे दूसरी राशिपर होते हुए जाते हैं। इन तीनों राशियोंको भोग लेनेपर सूर्यदेव दिन और रात दोनोंको बराबर करते हुए विषुवत् रेखापर पहुँचते हैं। उसके बादसे प्रतिदिन रात्रि घटने लगती है और दिन बढ़ने लगता है। फिर मेष तथा वृष राशिका अतिक्रमण करके मिथुनके अन्तमें उत्तरायणके अन्तिम सीमापर उपस्थित होते हैं और कर्क राशिपर पहुँचकर दक्षिणायनका आरम्भ करते हैं। जैसे कुम्हारके चाकके सिरे बैठा हुआ जीव बड़ी शीघ्रतासे घूमता है उसी प्रकार सूर्य भी दक्षिणायनको पार करनेमें शीघ्रतासे चलते हैं। वे वायुवेगसे चलते हुए, अत्यन्त वेगवान् होनेके कारण बहुत दूरकी भूमि भी थोड़ेमें पार कर लेते हैं। कुलालचक्रके मध्यमें स्थित जीव जिस प्रकार मन्द गतिसे चलता है, उसी प्रकार उत्तरायणमें सूर्य मन्द गतिसे चलते हैं, अतः वे थोड़ी-सी भूमिको भी चिरकालमें पार करते हैं।

सन्ध्याकाल आनेपर मन्देहनामक राक्षस भगवान् सूर्यको खा जानेकी इच्छा करते हैं। उन राक्षसोंको प्रजापतिका यह शाप है कि उनका शरीर तो अक्षय रहेगा, परंतु मृत्यु प्रतिदिन होगी। अतः सन्ध्याकालमें उन राक्षसोंके साथ सूर्यका बड़ा भयानक युद्ध होता है। उस समय द्विजलोग गायत्री मन्त्रसे पवित्र किये जलका जो अर्घ्य देते हैं, उससे वे पापी राक्षस जल जाते हैं। इसलिये सदा सन्ध्योपासना करनी चाहिये। जो सन्ध्योपासना नहीं करते, वे कृतघ्न होनेके कारण रौरव नरकमें पड़ते हैं।

प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न सूर्य, ऋषि, गन्धर्व, राक्षस, अप्सरा, यक्ष तथा सर्प—इन सातोंसे संयुक्त भगवान् सूर्यका रथ गमन करता है। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, सविता, भग, त्वष्टा तथा विष्णु ये बारह आदित्य, चैत्र आदि मासोंमें सूर्यमण्डलमें अधिकारी माने गये हैं।

सूर्यके स्थानसे लाख योजन दूर चन्द्रमाका मण्डल स्थित है, चन्द्रमाका भी रथ तीन पहियोंवाला बताया जाता है, उसमें बायीं और दाहिनी ओर कुन्दके समान श्वेत दस घोड़े जुते होते हैं। चन्द्रमासे पूरे एक लाख योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल प्रकाशित होता है। नक्षत्रोंकी संख्या अस्सी समुद्र चौदह अरब और बीस करोड़ बतायी गयी है। नक्षत्रमण्डलसे दो लाख योजन ऊपर बुधका स्थान है। चन्द्रनन्दन बुधका रथ वायु तथा अग्निद्रव्यसे बना हुआ है, उसमें वायुके समान वेगवाले आठ पीले रंगके घोड़े जुते रहते हैं। बुधसे भी दो लाख योजन ऊपर शुक्राचार्यका स्थान माना गया है, उनके रथमें भी आठ घोड़े जोते जाते हैं। शुक्रसे लाख योजन ऊपर मङ्गल हैं, इनका रथ सुवर्णके समान कान्तिवाले आठ घोड़ोंसे युक्त होता है। मङ्गलसे दो लाख योजन ऊपर देवपुरोहित बृहस्पतिका स्थान माना जाता है, उनका रथ सुवर्णका बना हुआ है, उसमें श्वेत वर्णके आठ घोड़े जोते जाते हैं। बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चरका स्थान है। उनका रथ आकाशसे उत्पन्न हुए आठ चितकबरे घोड़ोंद्वारा जोता जाता है। राहुके रथमें भ्रमरके समान रंगवाले आठ घोड़े हैं, वे एक ही बार जोत दिये गये हैं और सदा उनके धूसर रथको खींचते रहते हैं। उनकी स्थिति सूर्यलोकके नीचे मानी गयी है। शनैश्चरसे एक लाख योजन ऊपर सप्तर्षियोंका मण्डल है और उनसे भी लाख योजन ऊपर ध्रुवकी स्थिति है। ध्रुव समस्त ज्योतिर्मण्डलके मेंढ़ (केन्द्र) हैं। वे भी शिशुमारचक्रके पुच्छके अग्रभागमें स्थित हैं, जिन्हें भगवान् वासुदेवका सर्वोत्तम एवं अविनाशी भक्त कहते हैं। अर्जुन! यह सारा ज्योतिर्मण्डल वायुरूपी डोरसे ध्रुवमें बँधा है। सूर्यमण्डलका विस्तार नौ हजार योजन है, उससे दूना चन्द्रमाका मण्डल बताया गया है। मण्डलाकार राहु इन दोनोंके बराबर होकर पृथ्वीकी निर्मल छाया ग्रहण करके उनके नीचे चलता है। शुक्राचार्यका मण्डल चन्द्रमाके सोलहवें भागके बराबर है। बृहस्पतिमण्डलका विस्तार शुक्राचार्यसे एक चौथाई कम है। इसी प्रकार मङ्गल, शनैश्चर और बुध—ये बृहस्पतिकी अपेक्षा

एक चौथाई कम हैं। नक्षत्रमण्डलका परिमाण पाँच चार सौ, तीन सौ, दो सौ तथा एक सौसे लेकर कम-से- एक योजन, आध योजनतकका है; इससे छोटा कोई त्र नहीं है।

पृथ्वीपर स्थित सभी लोक, जहाँ पैदल जाया जा सकता भूलोक कहलाता है। भूमि और सूर्यके मध्यवर्ती लोकको र्लोक कहते हैं। ध्रुव तथा सूर्यलोकके बीच जो चौदह व योजनका अवकाश है, उसे लोकस्थितिका विचार करने- वे विज्ञ पुरुषोंने स्वर्गलोक कहा है। ध्रुवसे ऊपर एक ोड़ योजनतक महर्लोक बताया गया है। उससे ऊपर दो ोड़ योजनतक जनलोक है, जहाँ सनकादि निवास करते हैं। उससे ऊपर चार करोड़ योजनतक तपोलोक माना गया है, जहाँ वैराज नामवाले देवता सन्तापरहित होकर निवास करते हैं। तपोलोकसे ऊपर उसकी अपेक्षा छः गुने विस्तार- ला सत्यलोक विराजमान है, जहाँ ऐसे लोग निवास करते हैं, जिनकी पुनर्मृत्यु नहीं होती (अर्थात् जो वहीं ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्माजीके साथ मुक्त हो जाते हैं। इस संसारमें उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती)। सत्यलोक ही ब्रह्मलोक माना गया है। उसके ऊपर अठारह करोड़ पचीस लाख योजन परम कल्याणमय धाम प्रकाशित होता है; उसकी कहीं उपमा नहीं वह सर्वोपरि विराजमान है।

भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—इन तीनोंको त्रैलोक्य कहते हैं। यह त्रैलोक्य कृतक (अनित्य) लोक है। जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक—ये तीनों अकृतक (नित्य) लोक हैं। कृतक और अकृतक लोकोंके मध्यमें महर्लोककी स्थिति मानी गयी है। कल्पके अन्तमें जब महाप्रलय होता है, उस समय त्रिलोकी सर्वथा नष्ट हो जाती है; महर्लोक जनशून्य ही हो जाता है, परंतु उसका अत्यन्त विनाश नहीं होता। पुण्यकर्मोंद्वारा प्राप्त होनेवाले सात लोक बताये गये हैं; वेदादि शास्त्रोंमें कहे हुए यज्ञ, दान, जप, होम, तीर्थ और व्रतसमुदाय तथा अन्यान्य साधनोंसे पूर्वोक्त सातों लोक साध्य माने गये हैं। इन सबसे ऊपर ब्रह्माण्डके शीर्षभागसे शीतल कल्याणमयी जलधाराके रूपमें श्रीगङ्गाजी उतरती हैं और समस्त लोकोंको आप्लावित करके मेरुपर्वतपर आती हैं। वहाँसे क्रमशः सम्पूर्ण भूतल और पाताललोकमें प्रवेश करती हैं। ब्रह्माण्डके शिखरपर स्थित हुई गङ्गादेवी सदैव उसके द्वारपर निवास करती हैं। कोटि-कोटि देवियों तथा पिङ्गल नामक रुद्रसे घिरी हुई महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न श्रीगङ्गादेवी सदा ब्रह्माण्डकी रक्षा तथा दुष्टगणोंका संहार करती हैं।

अर्जुन! वायुकी सात शाखाएँ हैं, उनकी स्थिति जिस प्रकार है, वह बतलाता हूँ सुनो,—पृथ्वीको लाँघकर मेघ- मण्डलपर्यन्त जो वायु स्थित है, उसका नाम 'प्रवह' है। वह अत्यन्त शक्तिमान् है और वही बादलोंको इधर-उधर उड़ाकर ले जाता है। धूम तथा गर्मीसे उत्पन्न होनेवाले मेघोंको वह प्रवह वायु ही समुद्रजलसे परिपूर्ण करती है, जिससे वे मेघ काली घटाके रूपमें परिणत हो अतिशय वर्षा करनेवाले होते हैं। वायुकी दूसरी शाखाका नाम 'आवह' है, जो सूर्यमण्डलमें बँधा हुआ है। उसीके द्वारा ध्रुवसे आबद्ध होकर सूर्यमण्डल घुमाया जाता है। तीसरी शाखाका नाम 'उद्वह' है, जो चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित है। इसीके द्वारा ध्रुवमें सम्बद्ध होकर यह चन्द्रमण्डल घुमाया जाता है। चौथी शाखाका नाम 'संवह' है, जो नक्षत्रमण्डलमें स्थित है। उसीके द्वारा वायुमयी डोरियोंसे ध्रुवमें आबद्ध होकर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल घूमता रहता है। पाँचवीं शाखाका नाम 'विवह' है, वह ग्रहमण्डलमें स्थित है। उसीके द्वारा यह ग्रहचक्र ध्रुवसे सम्बद्ध होकर घूमा करता है। वायुकी छठी शाखाका नाम 'परिवह' है, जो सप्तर्षिमण्डलमें स्थित है। इसीके द्वारा ध्रुवसे सम्बद्ध हो सप्तर्षि आकाशमें भ्रमण करते हैं। वायुके सातवें स्कन्धका नाम 'परावह' है, जो ध्रुवमें आबद्ध है। उसीके द्वारा ध्रुवचक्र तथा अन्यान्य मण्डल दृढ़तापूर्वक एक स्थानपर स्थापित हैं। ध्रुवसे ऊपर जो स्थान है, वहाँ न तो सूर्य प्रकाशित होते हैं और न नक्षत्र एवं तारे ही उदित होते हैं। वहाँके लोग अपने ही तेज और अपनी ही शक्तिसे सदा स्थिर रहते हैं। इस प्रकार ऊर्ध्वलोकोंका वर्णन किया गया है। अब पातालका वर्णन सुनो।

अर्जुन! भूमिकी ऊँचाई सत्तर हजार योजन है। इसके भीतर सात पाताल हैं, जो एक दूसरेसे दस-दस हजार योजनकी दूरीपर हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—अतल, वितल, नितल, रसातल, तलातल, सुतल तथा पाताल। कुरुनन्दन! वहाँकी भूमियाँ सुन्दर महलोंसे सुशोभित हैं। वे क्रमशः कृष्ण, शुक्ल, अरुण, पीत, कंकरीली, पथरीली तथा सुवर्णमयी हैं। उन पातालोंमें दानव, दैत्य और नाग सैकड़ों सङ्घ बनाकर रहते हैं। वहाँपर न गर्मी है, न सर्दी है, न वर्षा है, न कोई कष्ट। सातवें पातालमें 'हाटकेश्वर' शिवलिङ्ग है, जिसकी स्थापना ब्रह्माजीके द्वारा हुई है। वहाँ अनेकानेक नागराज उस शिवलिङ्गकी आराधना करते हैं। पातालके नीचे बहुत अधिक जल है और उसके नीचे नरकोंकी स्थिति बतायी

गयी है, जिनमें पापी जीव गिराये जाते हैं। महामते! उनका वर्णन सुनो—यों तो नरकोंकी संख्या पचपन करोड़ है; किंतु उनमें रौरवसे लेकर श्वभोजनतक इक्कीस प्रधान हैं।* उनके नाम इस प्रकार हैं—रौरव, शूकर, रोध, ताल, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विमोहक, रुधिरान्ध, वैतरणी, कृमिश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, भयङ्कर लालाभक्ष, पापमय पूयवह, वह्निज्वाल, अधःशिरा, संदंश, कालसूत्र, तमोमय-अवीचि, श्वभोजन और प्रतिभाशून्य अपर अवीचि तथा ऐसे ही और भी नरक बड़े भयङ्कर हैं। झूठी गवाही देनेवाला मनुष्य रौरव नरकमें पड़ता है। गौओं तथा ब्राह्मणोंको कहीं बंद करके रोक रखनेवाला पापी रोध नरकमें जाता है। मदिरा पीनेवाला शूकर नरकमें और नरहत्या करनेवाला ताल नरकमें पड़ता है। गुरु-पत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला पुरुष तप्तकुम्भ नामक नरकमें गिराया जाता है तथा जो अपने भक्तकी हत्या करता है, उसे तप्तलोह नरकमें तपाया जाता है। गुरुजनोंका अपमान करनेवाला पापी महाज्वाल नरकमें डाला जाता है। वेद-शास्त्रोंको नष्ट करनेवाला लवण नामक नरकमें गलाया जाता है। धर्म-मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाला विमोहक नरकमें जाता है। देवताओंसे द्वेष रखनेवाला मनुष्य कृमिभक्ष नामक नरकमें पड़ता है। दूषित भावनासे तथा शास्त्रविधिके विपरीत यज्ञ करनेवाला पुरुष कृमिश नरकमें जाता है। जो देवताओं और पितरोंका भाग उन्हें अर्पण किये बिना ही अथवा उन्हें अर्पण करनेसे पहले ही भोजन कर लेता है, वह लालाभक्ष नामक नरकमें यमदूतोंद्वारा गिराया जाता है।

सब जीवोंसे व्यर्थ वैर रखनेवाला तथा छलपूर्वक अस्त्र-शस्त्रोंका निर्माण करनेवाला विशसन नरकमें गिराया जाता है। असत्प्रतिग्रह ग्रहण करनेवाला अधोमुख नरकमें और अकेले ही मिष्टान्न भोजन करनेवाला पूयवह नरकमें पड़ता है। मुर्गा, कुत्ता, बिल्ली तथा पक्षियोंको जीविकाके लिये पालनेवाला मनुष्य भी पूयवह नरकमें ही पड़ता है। जो दूसरोंके घर, खेत, घास और अनाज आदिमें आग लगाता है, वह रुधिरान्ध नरकमें डाला जाता है। नक्षत्रविद्या तथा नट एवं मल्लोंकी वृत्तिसे जीविका चलानेवाला मनुष्य वैतरणी नामक नरकमें जाता है। जो धन और जवानीके मदसे उन्मत्त होकर दूसरोंके धनका अपहरण करता है, वह कृष्ण नामक नरकमें पड़ता है। व्यर्थ ही वृक्षोंको काटनेवाला मनुष्य असिपत्रवनमें जाता है। जो कपटवृत्तिसे जीविका चलाते हैं, वे सब लोग वह्निज्वाल नामक नरकमें गिराये जाते हैं। परायी स्त्री और पराये अन्नका सेवन करनेवाला पुरुष संदंश नरकमें डाला जाता है। जो दिनमें सोते हैं तथा व्रतका लोप किया करते हैं और जो शरीरके मदसे उन्मत्त रहते हैं, वे सब लोग श्वभोजन नामक नरकमें पड़ते हैं। जो भगवान् शिव और विष्णुको नहीं मानते, उन्हें अवीचि नरकमें जाना पड़ता है।

इस प्रकारके शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंके आचरणरूप पापोंसे पापी जीव सहस्रों अत्यन्त घोर नरकोंमें अवश्य ही गिरते हैं। अतः जो मनुष्य इन नरकोंसे छुटकारा पाना चाहता हो, उसे वैदिक मार्गका अवलम्बन करके भगवान् विष्णु और शिव दोनोंकी आराधना करनी चाहिये। नरकोंके निम्नभागमें कालाग्निकी स्थिति है, कालाग्निके नीचे मण्डूक और मण्डूकके नीचे अनन्त हैं, जिनके मस्तकके अग्रभागमें यह सम्पूर्ण जगत् सरसोंकी भाँति प्रतीत होता है। इस प्रकार अनन्त प्रभावके कारण वे इस मानव-जगत्में अनन्त कहलाते हैं। पद्म, कुमुद, अञ्जन और वामन—ये दिग्गज भी वहीं स्थित हैं। इनके निम्न भागमें अण्डकटाह है, जहाँ एकवीरा नामवाली देवी विराजमान हैं। अण्डकटाहका परिमाण चौवालीस करोड़, नवासी लाख, अस्सी हजार है। उसमें कपालीशा देवी रहती हैं, जो कोटि-कोटि देवियोंसे घिरकर हाथमें दण्ड लिये वहाँ पहरा देती हैं। अनन्त नामवाले भगवान् संकर्षणके निःश्वास-वायुसे प्रेरित होकर दाहक अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। इस प्रकार ये भगवान् अनन्त ही कालाग्निको प्रेरित करते हैं, जिससे वह कल्पान्तके समय सम्पूर्ण जगत्को दग्ध कर डालती है। अर्जुन! इस प्रकार पातालके अधोभागमें स्थानका निर्माण हुआ है। जिन्होंने इस परम आश्चर्यमय ब्रह्माण्डकी स्थापना की है, उन ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवजीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। विष्णुलोक और रुद्रलोक इस ब्रह्माण्डके बाहर बताया जाता है। सदा भगवान् विष्णु और शिवकी उपासना करनेवाले मुक्त पुरुष ही वहाँ जाते हैं। उस दिव्य धामका वर्णन केवल ब्रह्माजी ही कर सकते हैं। हमलोगोंकी वहाँ गति नहीं है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सब ओरसे कड़ाहद्वारा

* यहाँ चौबीस नरकोंके नाम आये हैं। इनमें कालसूत्र, तमोमय अवीचि और प्रतिभाशून्य अवीचि—ये तीन अप्रधान हैं। शेष इक्कीसको प्रधान समझना चाहिये।

का हुआ है, ठीक उसी प्रकार जैसे कपित्थका बीज ड़ाहसे (उसके गोलाकार छिलकेसे) आच्छादित रहता । यह समूचा अण्डकटाह अपनेसे दस गुने प्रमाणवाले लसे घिरा है । वह जल भी दसगुने विस्तारवाले तेजसे, तेज ायुसे, वायु आकाशसे, आकाश अहंकारसे तथा अहंकार हत्तत्त्वसे घिरा हुआ है । तथा उस महत्तत्त्वको भी सर्व-धान प्रकृति घेरकर स्थित है । पहले जो छः आवरण कहे ाये हैं, उन सबको विद्वान् पुरुष उत्तरोत्तर दसगुना बतलाते हैं और सातवाँ आवरण प्रकृतिका है । उसे अनन्त कहा गया है । उसके भीतर ऐसे-ऐसे करोड़ों और अरबों ब्रह्माण्ड स्थित हैं तथा वे सभी ऐसे ही हैं, जैसा कि यह ब्रह्माण्ड बताया गया है । कुन्तीनन्दन ! जिनका वैभव (ऐश्वर्य) ऐसा है, उन भगवान् सदाशिवको मैं प्रणाम करता हूँ । अहो ! जो ऐसे मोहमें फँस जाय कि तारनेवाले भगवान् शिवका भजन-तक न कर सके, उससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा ? वह मूढ़ तो बड़ा पापात्मा है ।

अब मैं तुमसे कालका मान बताऊँगा, उसे सुनो— विद्वान् लोग पंद्रह निमेषकी एक 'काष्ठा' बताते हैं । तीस काष्ठाकी एक 'कला' गिननी चाहिये । तीस कलाका एक 'मुहूर्त' होता है । तीस मुहूर्तके एक 'दिन-रात' होते हैं । एक दिनमें तीन-तीन मुहूर्तवाले पाँच काल होते हैं, उनका वर्णन सुनो—'प्रातःकाल', 'संगवकाल', 'मध्याह्नकाल,' 'अपराह्णकाल' तथा पाँचवाँ 'सायाह्नकाल' । इनमें पंद्रह मुहूर्त व्यतीत होते हैं । पंद्रह दिन-रातका एक 'पक्ष' कहलाता है । दो पक्षका एक 'मास' कहा गया है । दो सौरमासकी एक 'ऋतु' होती है । तीन ऋतुओंका एक 'अयन' होता है तथा दो अयनोंका एक वर्ष माना गया है । विज्ञ पुरुष मासके चार और वर्षके पाँच भेद बतलाते हैं । पहला संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनुवत्सर तथा पाँचवाँ युगवत्सर है ।* यही वर्षगणनाकी निश्चित संख्या है । मनुष्योंके एक मासका पितरोंका एक दिन-रात होता है; कृष्णपक्ष उनका दिन बताया गया है और शुक्लपक्ष उनकी रात्रि । मनुष्योंके एक वर्षका देवताओंका एक दिन माना गया है । उत्तरायण तो उनका दिन है और दक्षिणायन रात्रि । देवताओंका एक वर्ष पूरा होनेपर सप्तर्षियोंका एक दिन माना गया है । सप्तर्षियोंके एक वर्षमें ध्रुवका एक दिन होता है । मानववर्षके अनुसार सत्रह लाख अठाईस हजार वर्षोंका सत्ययुग माना गया है । मानवमानसे ही बारह लाख छानबे हजार वर्षोंका त्रेतायुग कहा गया है । आठ लाख चौसठ हजार वर्षोंका द्वापर होता है और चार लाख बत्तीस हजार वर्षोंका कलियुग माना

---

१. सौरमास, चान्द्रमास, नाक्षत्रमास और सावनमास—ये ही मासके चार भेद हैं । सौरमासका आरम्भ सूर्यकी संक्रान्तिसे होता है । सूर्यकी एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तितकका समय सौरमास है । यह मास प्रायः तीस-इकतीस दिनका होता है । कभी-कभी उनतीस और बत्तीस दिनका भी होता है । चन्द्रमाकी कलाकी ह्रास-वृद्धिवाले दो पक्षोंका जो एक मास होता है, वही चान्द्रमास है । यह दो प्रकारका है—शुक्ल प्रतिपदासे आरम्भ होकर अमावास्याको पूर्ण होनेवाला 'अमान्त' मास मुख्य चान्द्रमास है । कृष्णप्रतिपदासे पूर्णिमातक पूरा होनेवाला गौण चान्द्रमास है । यह तिथिकी ह्रास-वृद्धिके अनुसार २९, ३०, २८ एवं २७ दिनोंका भी हो जाता है । जितने समयमें चन्द्रमा अश्विनीसे लेकर रेवतीतकके नक्षत्रोंमें विचरण करता है, वह काल नाक्षत्रमास कहलाता है । यह लगभग २७ दिनोंका ही होता है । सावनमास तीस दिनोंका होता है । यह किसी भी तिथिसे प्रारम्भ होकर तीसवें दिन समाप्त होता है । प्रायः व्यापार और व्यवहार आदिमें इसका उपयोग होता है । इसके भी सौर और चान्द्र ये दो भेद हैं । सौर सावनमास सौरमासकी किसी भी तिथिसे प्रारम्भ होकर उसके तीसवें दिन पूर्ण होता है । चान्द्र सावनमास चान्द्रमासकी किसी भी तिथिसे प्रारम्भ होकर उसके तीसवें दिन समाप्त माना जाता है । प्रत्येक संवत्सरमें बारह सौर और बारह चान्द्रमास होते हैं । परंतु सौरवर्ष ३६५ दिनका और चान्द्रवर्ष ३५५ दिनका होता है; जिससे दोनोंमें प्रतिवर्ष दस दिनका अन्तर पड़ता है । इस वैषम्यको दूर करनेके लिये प्रति तीसरे वर्ष बारहकी जगह तेरह चान्द्रमास होते हैं । ऐसे बढ़े हुए मासको अधिमास या मलमास कहते हैं ।

* बृहस्पतिकी गतिके अनुसार प्रभव आदि साठ वर्षोंमें बारह युग होते हैं तथा प्रत्येक युगमें पाँच-पाँच वत्सर होते हैं । बारह युगोंके नाम ये हैं—प्रजापति, धाता, वृष, व्यय, खर, दुर्मुख, प्लव, पराभव, रोषकृत, अनल, दुर्मति और क्षय । प्रत्येक युगके जो पाँच वत्सर हैं, उनमेंसे प्रथमका नाम संवत्सर है । दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनुवत्सर और पाँचवाँ युगवत्सर है । इनके पृथक्-पृथक् देवता होते हैं; जैसे संवत्सरके देवता अग्नि माने गये हैं ।

गया है। इन चारोंके योगसे देवताओंका एक युग होता है। ऐसे इकहत्तर युगोंसे कुछ अधिक कालतक मनुकी आयु मानी गयी है। चौदह मनुओंका काल व्यतीत हो जानेपर ब्रह्माका एक दिन पूरा होता है। जो एक हजार चतुर्युगोंका माना गया है; वही कल्प है। अब कल्पोंके नाम श्रवण करो—भवोद्भव, तपोभव्य, ऋतु, वह्नि, वराह, सावित्र, औसिक, गान्धार, कुशिक, ऋषभ, खड्ग, गान्धारीय, मध्यम, वैराज, निषाद, मेघवाहन, पंचम, चित्रक, ज्ञान, आकूति, मीन, दंश, बृंहक, श्वेत, लोहित, रक्त, पीतवासा, शिव, प्रभु तथा सर्वरूप—इन तीस कल्पोंका ब्रह्माजीका एक मास होता है। ऐसे बारह मासोंका एक वर्ष होता है तथा ऐसे ही सौ वर्षोंतक ब्रह्माजीकी आयुका पूर्वार्ध मानना चाहिये। पूर्वार्धके समान ही अपरार्ध भी है। इस प्रकार ब्रह्माजीकी आयुका मान बताया गया। अर्जुन! भगवान् विष्णु तथा भगवान् शङ्करजीकी आयुका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। कहाँ तो मेरी छोटी बुद्धि और कहाँ अनन्त अपार भगवान् विष्णु और शिव (वे तो कालातीत एवं महाकालस्वरूप हैं)। पाताललोकमें भी देवताओंके मानसे ही गणना की जाती है। ये सब बातें अपनी बुद्धिके अनुसार तुम्हें मैंने बतायी हैं।

राजा शतशृङ्गकी पुत्री कुमारीका चरित्र तथा कुमारीखण्डकी श्रेष्ठता

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! नाभिके पुत्र जो ऋषभ नामसे प्रसिद्ध हुए हैं, उनके नामपर कलियुगमें नाना प्रकारके पाखण्डपूर्ण मतवादोंकी कल्पना हो जायगी, जो लोगोंको मोहमें डालनेवाली होगी। उन्हीं ऋषभजीके पुत्र भरत हुए और भरतके शतशृङ्ग हुए। शतशृङ्गके आठ पुत्र और एक कुमारी कन्या हुई। पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रद्वीप, गभस्तिमान्, नाग, सौम्य, गन्धर्व तथा वरुण। इनके अतिरिक्त जो कन्या थी, उसके मुखकी आकृति बकरीके मुखके समान थी। ऐसा होनेका एक महान् आश्चर्ययुक्त कारण था, जिसे बताता हूँ, सुनो—महीसागरके तटपर जो स्तम्भतीर्थ है, उसके समीपवर्ती दुर्गम प्रदेशमें एक दिन एक बकरी अपने झुंडसे भटककर चली आयी। वहाँ लतापताओंसे एक जाल-सा बन गया था। बकरी प्याससे पीड़ित थी। वह ज्यों ही उधरसे निकली कि लताजालमें फँसकर मृत्युको प्राप्त हो गयी। कुछ समयके पश्चात् उसके शरीरका सिरसे नीचेका भाग टूटकर सब पापोंका निवारण करनेवाले सर्वतीर्थमय महीसागरसङ्गममें गिर पड़ा। उस दिन शनैश्चर तथा अमावास्याका भी योग था। सिर तो लतागुल्मके उस जालमें फँसकर ज्यों-का-त्यों रह गया था, अतः जलमें गिरने नहीं पाया। शेष शरीर महीसागरके जलमें गिरा था, अतः उस तीर्थके प्रभावसे वह बकरी सिंहलदेशमें राजा शतशृङ्गकी पुत्री हुई। परंतु उसका मुँह बकरीका ही रह गया था। शेष सभी अङ्ग बड़े सुन्दर थे। राजा शतशृङ्ग पहले सन्तानहीन थे; अतः उनके यहाँ जो पुत्री हुई, वह उन्हें सौ पुत्रोंके समान प्रिय थी, किंतु बकरीके तुल्य उसका मुख देखकर सब राज-परिवारके लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। राजा अपनी रानियोंसहित बहुत दुखी हुए। धीरे-धीरे वह कन्या युवावस्थाको प्राप्त हुई। एक दिन उसने दर्पणमें अपना मुँह देखा; देखते ही

उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। तब उसने माता-पिताको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताकर उनसे वहाँ जानेके लिये आज्ञा ली और नावके द्वारा वह स्तम्भतीर्थमें जा पहुँची। वहाँ राजकुमारीने सर्वस्व दक्षिणावाला दान किया। तदनन्तर लता-गुल्मोंकी जालमें ढूँढ़कर उसने अपने पूर्वजन्मके मस्तकका पता लगाया और सङ्गमके समीप उसका दाह करके हड्डियोंको महीसागरमें फेंक दिया। तब उस तीर्थके प्रभावसे उसका मुँह चन्द्रमाके समान कान्तिमान् हो गया। देवता, दानव और मनुष्य सब उसके रूपसे मोहित

होकर बार-बार उसे पानेके लिये राजासे याचना करते थे, किंतु वह उनमेंसे किसीको अपना पति बनाना नहीं चाहती थी। तत्पश्चात् कुमारीने प्रसन्नतापूर्वक अत्यन्त दुष्कर एवं कठोर तपस्या प्रारम्भ की।

तपस्या करते-करते जब एक वर्ष पूरा हो गया; तब देवाधिदेव महेश्वरने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—'मैं तुझे वर देनेके लिये आया हूँ।' तब राजकुमारी भगवान्‌का पूजन करके इस प्रकार बोली—'देवेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो इस तीर्थमें सर्वदा निवास करें।' भगवान् शिवने 'एवमस्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इससे कुमारीको बड़ा हर्ष हुआ। जहाँ उसने बकरीके सिरका दाह किया था; वहीं 'वर्करेश' नामक शिवकी स्थापना की। यह आश्चर्यजनक समाचार सुनकर स्वस्तिक नामवाला नागराज कुमारीको देखनेके लिये तलातल लोकसे आया। सिरके बलसे आते समय वह पृथ्वीको जहाँ विदीर्ण करके बाहर निकला वहाँ स्वस्तिक नामक कूप हो गया। वह कूप वर्करेश्वरके ईशानकोणमें है; उसे गङ्गाजीने अपने जलसे भर दिया; इससे वह सब तीर्थोंका फल देनेवाला हो गया। वहाँ शिवलिङ्गको स्थापित देख भगवान् शिवने प्रसन्न होकर यह वरदान दिया। 'जिनके शवका यहाँ दाह होगा और दाह करके महीसागरसङ्गममें जिनकी हड्डियाँ डाली जायँगी, वे दीर्घ कालतक स्वर्गमें निवास करनेके पश्चात् इस लोकमें लौटनेपर सब प्रकारके वैभवसे परिपूर्ण प्रतापी राजा होंगे। जो मनुष्य महीसागरसङ्गमके जलमें स्नानकर भक्तिभावसे भगवान् वर्करेश्वरका पूजन करता है, उसका मनोरथ सफल होता है। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस कूपमें स्नान और अपने पितरोंका तर्पण करके वर्करेश्वरका पूजन करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा।'

ऐसा वरदान पाकर वह पुनः सिंहल देशमें लौट आयी और अपने पितासे वहाँका सब वृत्तान्त निवेदन किया। वह सुनकर राजा शतशृङ्ग तथा अन्य सब लोग भी बड़े विस्मयको प्राप्त हुए। सबने उस महातीर्थका गुण-गान किया और उसके प्रति आदरका भाव रखकर वहाँकी यात्रा की। उस तीर्थमें स्नान और नाना प्रकारके दान करके वे सब लोग पुनः सिंहलको लौट आये। तीर्थकी अद्भुत महिमा जानकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। तदनन्तर राजा शतशृङ्गने इस भारतवर्षके नौ विभाग किये; उनमेंसे आठ तो उन्होंने अपने आठ पुत्रोंको दे दिये और नवाँ भाग कुमारीको अर्पित किया। नाना प्रकारके पर्वतोंसे सुशोभित उन भागोंका मैं वर्णन करता हूँ। पुत्रों और कुमारीके नामपर ही वे नवों खण्ड प्रसिद्ध हुए। यथा—इन्द्रद्वीपखण्ड, कसेरुखण्ड, ताम्रद्वीपखण्ड, गभस्तिमत्-खण्ड, नागखण्ड, सौम्यखण्ड, गन्धर्वखण्ड, वरुणखण्ड और कुमारिकाखण्ड। अब पर्वतोंके नाम सुनो—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र। यही सात यहाँ कुलपर्वत हैं। महेन्द्र पर्वतसे परे जो भूभाग है, उसे इन्द्रद्वीप कहते हैं। पारियात्र पर्वतके पीछेका क्षेत्र कौमारिकखण्ड माना गया है। ये सभी खण्ड एक-एक सहस्र योजनका विस्तार रखते हैं। अब नदियोंके उद्गम स्थानोंका संक्षिप्त परिचय सुनो—वेद, स्मृति आदि नदियाँ पारियात्र पर्वतसे प्रकट हुई मानी गयी हैं। नर्मदा और सुरसा आदि सरिताएँ विन्ध्य पर्वतसे निकली हैं। शतद्रु और चन्द्रभागा (शतलज और चनाव), आदि ऋक्ष पर्वतकी सन्तान हैं। ऋषिकुल्या और कुमारी आदि नदियाँ शुक्तिमान्‌की शाखासे प्रकट हुई हैं। तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, महानदी कावेरी, कृष्णवेणी तथा भीमरथी—ये सह्यके समीपवर्ती पर्वतोंसे निकली हुई मानी गयी हैं। कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि सरिताएँ मलय पर्वतसे निकली हैं। त्रिसामा और ऋष्यकुल्या आदि महेन्द्र पर्वतसे प्रकट हुई हैं।

इस प्रकार राजा अपने पुत्रों तथा कुमारीको भारतवर्षके विभिन्न भाग देकर स्वयं उत्तर दिशामें शतशृङ्ग पर्वतपर चले गये और वहाँ घोर तपस्या करके ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए। इधर महाभाग्यशालिनी कुमारी स्तम्भतीर्थमें रहकर कुमारिकाखण्डकी आयसे दान देती हुई तपस्या करने लगी। तदनन्तर कुछ कालके बाद कुमारीके आठों भाइयोंसे नौ-नौ पुत्र उत्पन्न हुए, जो महान् पराक्रम, बल और उत्साहसे सम्पन्न थे। एक दिन वे सब-के-सब वहाँ आकर कुमारीसे बोले—'शुभे! तुम हमारे कुलकी देवी हो; हमपर कृपा करो। हमलोग बहत्तर भाई हैं और हमारे पास आठ खण्ड हैं; तुम स्वयं ही बटवारा करके हम सब लोगोंको दे दो; जिससे हमलोगोंमें फूट न होने पावे।'

उनके ऐसा कहनेपर सब धर्मोंको जाननेवाली कुमारीने भारतवर्षके नौ खण्डोंके बहत्तर भाग किये। मण्डलप्रदेशमें चार करोड़ ग्रामोंको सम्मिलित किया। ढाई करोड़ ग्रामोंसे युक्त प्रदेश बालाक कहलाता है। खुराशाहणक (खुरासान) देशमें सवा करोड़ ग्राम हैं; अन्धलमें चार लाख और नेपालमें एक लाख ग्राम हैं। कान्यकुब्ज देश छत्तीस लाख ग्रामोंसे युक्त बताया गया है; जनक प्रदेश बहत्तर लाख और गौड़ देशमें अठारह लाख गाँव हैं। कामरूपमें नव लाख; लाहर्व और मालदेशमें नौ-नौ लाख, कान्तिपुरमें नौ लाख, माचिपुरमें नौ लाख तथा जालन्धर और लोहपुर देशमें भी नौ लाख ही ग्राम बताये गये हैं। पाम्बीपुरमें सात लाख, रटराजमें सात लाख, हरिआलमें

पाँच लाख, इड् देशमें साढ़े तीन लाख, षाम्भण वाहकमें साढ़े तीन लाख, नीलपुरमें इक्कीस हजार, अम्ल देशमें एक लाख, नरेन्दु देशमें सवा लाख, तिलङ्ग देशमें भी सवा लाख, मालवमें अठारह लाख बानबे हजार, सयंभर देशमें सवा लाख, मेवाड़ देशमें सवा लाख, वागुरि देशमें अस्सी हजार, गुर्जर देशमें सत्तर हजार, पाण्डु देशमें सत्तर हजार, तेजाकुतिमें बयालीस हजार, काश्मीर मण्डलमें अड़सठ हजार, कौंकण देशमें छत्तीस हजार, लघु कौंकण देशमें चौदह सौ चालीस गाँव, सौराष्ट्रमें पचपन हजार गाँव तथा ताड देशमें इक्कीस हजार गाँव बताये गये हैं। अतिसिन्धुमें दस हजार, अश्वमुखमें भी दस हजार, सजानुहूति देशमें दस हजार, वेणु देशमें दस हजार, कलहज देशमें दस हजार, द्रविड देशमें दस हजार, भद्राश्व तथा देव-भद्राश्वमें भी दस-दस हजार गाँव माने गये हैं। चिरायुष और यमकोटि देशमें छत्तीस-छत्तीस हजार गाँव हैं। रोमक देशमें अठारह करोड़ गाँव बताये जाते हैं। कामरु, कर्णाटक तथा जाङ्गल इन तीन देशोंमें सवा-सवा लाख गाँव हैं। स्त्री राज्यमें पाँच लाख तथा पुलस्ति देशमें दस लाख गाँव हैं। काम्बोज और कौशलमें दस-दस लाख, बाह्लीकमें चार लाख, लङ्कामें छत्तीस हजार, वर्धमानमें चौसठ हजार, सिंहलद्वीपमें दस हजार, पाण्ड्य देशमें छत्तीस हजार, भयानक देशमें एक लाख, मगध देशमें छाछठ हजार, पङ्कु देशमें साठ हजार, वरेन्दक देशमें तीस हजार, मूलस्थानमें पचीस हजार, यवन देशमें चालीस हजार तथा पक्षबाहु देशमें चार हजार गाँव बताये गये हैं। इस प्रकार बहत्तर देशों और उनके ग्रामोंकी संख्याका वर्णन किया गया। भारतवर्षके कुल ग्रामोंकी संख्या छानबे करोड़, बहत्तर लाख, छत्तीस हजार है। इस प्रकार कुमारीने समुद्रतकके नौ खण्डोंका विभाग करके वे सब अपने भतीजोंको दे दिये। यद्यपि भतीजे अपनी बुआका अंश नहीं लेना चाहते थे, तथापि उस देवीने अपना भाग भी उन्हें दे ही दिया। इसलिये इन सब देशोंमें कुमारीखण्ड ही चतुर्वर्गका साधक होनेके कारण सबसे श्रेष्ठ बताया गया है। उसमें भी महीसागरसङ्गम ही गुप्त क्षेत्र है, जिसे कुमारी जानती थी। अतः उस गुप्त क्षेत्रमें भगवान् कुमारेशका पूजन करती हुई वह महान् व्रतका पालन करने लगी। कुमारी वहाँके छहों कुण्डों तथा सङ्गममें स्नान करती हुई उस तीर्थमें वास करने लगी। तदनन्तर बहुत समय बीत जानेपर जब स्वामि-कार्तिकेयजीका बनवाया हुआ मन्दिर पुराना हो गया तो उसके स्थानमें उसने नूतन सुवर्णमय प्रासाद निर्माण कराया। उसकी भक्तिसे महादेवजी बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होंने कुमारेश्वर लिङ्गसे प्रकट होकर उसे प्रत्यक्ष दर्शन देते हुए कहा—'भद्रे! मैं तुम्हारी भक्ति और ज्ञानसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने इस जीर्ण मन्दिरका पुनः उद्धार किया है; इसलिये अब मैं तुम्हारे नामसे विख्यात होऊँगा। मन्दिर बनानेवाला तथा उसका जीर्णोद्धार करनेवाला दोनों समान फलके भागी माने गये हैं। इसलिये आजसे लोग मुझे कुमारेश्वर और कुमारीश्वर दोनों नामोंसे पुकारेंगे। वर्करेश्वरमें जो वरदान तुम्हें दिये गये हैं, वे सदैव सङ्घटित होनेवाले हैं। अब तुम्हारा अन्तकाल समीप आ गया है। जिस स्त्रीने अपने जीवनमें पतिका वरण नहीं किया है अर्थात् जो अविवाहिता रह गयी है उसे स्वर्ग अथवा मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिये इस तीर्थमें सिद्धिको प्राप्त हुए महाकालको तुम पतिरूपमें अङ्गीकार करो।'

भगवान् शङ्करके ऐसा कहनेपर कुमारीने महाकालको पतिके रूपमें स्वीकार किया और महाकालके साथ ही वह भी रुद्रलोकमें चली गयी। वहाँ पार्वतीजीने उसे हृदयसे लगा लिया और हर्षमें भरकर कहा—'शुभे! तुमने पृथ्वीको चित्रलिखित-सा कर दिया; इसलिये चित्रलेखा नामसे प्रसिद्ध मेरी सखी होकर रहो।' तबसे वह चित्रलेखा नामवाली सखी होकर पार्वतीजीके साथ रहने लगी। उसीने

ऊषाको चित्रद्वारा अनिरुद्धका परिचय दिया था । वह योगिनियोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा महाकालकी प्राणवल्लभा हुई । इस प्रकार राजकुमारीने कुमारीश्वरलिङ्ग तथा वर्करेश्वर-लिङ्गको स्थापित किया । अर्जुन ! यहाँ मरे हुए मनुष्योंका दाह करना और उनके हड्डियोंको सङ्गमके जलमें डालना प्रयागसे भी अधिक उत्तम बताया गया है ।

कालभीतिकी तपस्या तथा धर्मनिष्ठा, महाकालका प्रादुर्भाव और कालभीतिपर भगवान् शङ्करकी कृपा

नारदजी कहते हैं—पूर्वकालकी बात है, काशीपुरीमें माण्टि नामसे प्रसिद्ध एक महायशस्वी ब्राह्मण हो गये हैं । वे जप करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ थे । महाभाग माण्टि रुद्रके मन्त्रोंका जप किया करते थे । उनके कोई पुत्र नहीं था । अतः पुत्रके लिये रुद्रमन्त्रोंका जप करते-करते उनके सौ वर्ष पूरे हो गये, इससे भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'माण्टे ! तुम्हें एक बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न होगा, जिसका प्रभाव और पराक्रम मेरे ही समान होगा । वह तुम्हारे सम्पूर्ण कुलका उद्धार करेगा ।' भगवान् शङ्करका यह वरदान सुनकर माण्टिको बड़ा हर्ष हुआ । कुछ कालके अनन्तर महात्मा माण्टिकी पत्नीने गर्भ धारण किया, उन्हें गर्भ धारण किये चार वर्ष बीत गये; परंतु गर्भका बालक माताका उदर छोड़कर बाहर नहीं निकलता था । *तब माण्टिने उससे कहा—'बेटा ! विभिन्न योनियोंमें पड़े हुए जीव यह सोचा करते हैं कि हम कब मनुष्ययोनिमें जन्म लेंगे ।* जहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी भी प्राप्ति होती है; जिसमें किये हुए पूजनका महान् फल होता है तथा जहाँ पितरों और देवताओंके सन्तोषार्थ नाना प्रकारके धर्मानुष्ठानका अवसर प्राप्त होता है । ऐसे मनुष्यजन्मको, जिसे पानेकी अभिलाषा देवता भी करते हैं, तुम अनादर करके माताके उदरमें ही क्यों स्थित हो रहे हो ?'

गर्भने कहा—*पिताजी ! मैं भी यह सब कुछ जानता हूँ । वास्तवमें यह मनुष्यजन्म परम दुर्लभ है; किंतु मैं कालके मार्गसे सदा ही बहुत डरता हूँ ।* विद्वान् पुरुषको उसी वस्तुके लिये यत्न करना चाहिये, जो दुःखयुक्त न हो । यदि मेरा यह मन भयानक एवं गम्भीर कालसे ताड़ित होकर भाँति-भाँतिके दोषोंको न प्राप्त हो, तो मैं परम दुर्लभ मनुष्यजन्मको शीघ्र प्राप्त कर सकता हूँ ।

यह सुनकर उसके पिता माण्टि भगवान् सदाशिवकी शरणमें गये और बोले—'देव महेश्वर ! मेरी रक्षा कीजिये, भगवन् ! आपने ही मुझे पुत्र दिया है और आप ही जन्म कराइये ।' तब माण्टिकी अतिशय भक्तिसे सन्तुष्ट हो भगवान् महेश्वर अपनी विभूतियोंसे बोले—'ज्ञान ! धर्म ! वैराग्य तथा ऐश्वर्य ! और अज्ञान ! अधर्म ! अवैराग्य तथा अनैश्वर्य ! तुम सब लोग शीघ्र जाओ और माण्टिके पुत्रको समझाओ ।' तब वे विभूतियाँ उस गर्भको समझाती हुई बोलीं—'महामते माण्टिकुमार ! तुम्हें अपने मनमें भय नहीं करना चाहिये । हम चारों धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य तुम्हारे मनसे कभी अलग न होंगे ।' तत्पश्चात् अधर्म आदि बोले—'हम तुम्हारे पास नहीं आयेंगे, तुम्हें नमस्कार है । तुमको हमसे कोई भय नहीं है ।' इन विभूतियोंके द्वारा ऐसा आश्वासन मिलनेपर वह गर्भका बालक शीघ्र बाहर निकल आया । बाहर जन्म लेते ही वह काँपने और रोने लगा । तब विभूतियोंने कहा—'माण्टे ! तुम्हारा पुत्र अब भी कालमार्गसे भयभीत होकर काँपता और रोता है; इसलिये यह कालभीति नामसे प्रसिद्ध होगा ।' इस प्रकार वरदान देकर वे विभूतियाँ महादेवजीके समीप चली गयीं और वह बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान प्रतिदिन बढ़ने लगा । संस्कारोंसे सुसंस्कृत होनेपर उस बुद्धिमान् बालकने पाशुपत मन्त्रकी दीक्षा ली और सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंका जप करते हुए वह तीर्थयात्रामें तत्पर हो गया । अर्जुन ! महीसागर-सङ्गमरूप गुप्त क्षेत्रके गुणोंका वर्णन सुनकर कालभीति भी वहाँ गया और महीके जलमें स्नान करके एक करोड़ मन्त्रका जप किया । जप समाप्त करके जब वह लौटा तो थोड़ी ही दूरपर उसने बिल्वका वृक्ष देखा, वहाँ जप करते समय उस ब्राह्मणकी इन्द्रियाँ लयको प्राप्त हो गयीं । वह क्षणभरमें केवल परमानन्दस्वरूप हो गया । उसके उस ब्रह्मानन्दकी तुलना स्वर्ग आदिके सुखोंसे कदापि नहीं हो सकती । दो घड़ीतक समाधिमें स्थित होनेके पश्चात् वह पुनः पूर्वावस्थामें आ गया ।

यह देखकर कालभीतिको बड़ा विस्मय हुआ । वह

मन-ही-मन कहने लगा कि—'यह महान् आनन्द तो मुझे न काशीमें मिला, न नैमिषारण्यमें, न प्रभास और केदार-क्षेत्रमें प्राप्त हुआ, न अमरकण्टकमें ही। इस समय मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ गङ्गाजीकी भाँति निर्विकार और स्वस्थ हैं तथा मेरा चित्त एक परम गोपनीय धर्मका आश्रय लेता है। अहो ! इस तीर्थका प्रभाव तो यहाँ स्पष्ट रूपसे प्रकट है। कहते हैं, जो स्थान सब प्रकारके दोषोंसे रहित, पवित्र और सम्पूर्ण उपद्रवोंसे शून्य हो, वहाँ निवास करनेवाले पुरुषकी बुद्धि धर्मके कार्यमें सहस्रगुनी हो जाती है। इसलिये इस तीर्थके प्रभावसे मैं मन-ही-मन अनुभव करता हूँ कि यह स्थान काशी आदि प्रधान तीर्थोंसे भी श्रेष्ठ है। अतः मैं यहीं रहकर बड़ी भारी तपस्या करूँगा।' ऐसा विचार करके कालभीति उस बिल्ववृक्षके नीचे एक पैरके अँगूठेके अग्रभागसे खड़े हो मन्त्रोंका जप करने लगे। जपका नियम ग्रहण करनेके पश्चात् वे सौ वर्षतक जलकी एक-एक बूँद पीकर रहे। सौ वर्ष पूर्ण होनेपर उनके सामने एक मनुष्य जलसे भरा हुआ घड़ा लेकर आया, उसने कालभीतिको प्रणाम करके बड़े हर्षसे कहा—'महामते ! आज आपका नियम पूरा हो गया, यह जल ग्रहण कीजिये।'

कालभीति बोले—आप किस वर्णके हैं तथा आपका आचार-व्यवहार कैसा है। यह सब यथार्थरूपसे बताइये। आपके जन्म और आचार जान लेनेपर मैं यह जल ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं।

आगन्तुक मनुष्य बोला—मैं अपने माता-पिताको नहीं जानता, अपने आपको सदा इसी रूपमें देखता हूँ, आचारों और धर्मोंसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं।

कालभीतिने कहा—यदि ऐसी बात है, तो मैं आपका जल कभी ग्रहण नहीं करूँगा। इस विषयमें मेरे गुरुने वैदिक सिद्धान्तके अनुसार जो उपदेश दिया है, वह सुनो—जिसके कुलका ज्ञान न हो, जिसके जन्ममें वीर्यशुद्धिका अभाव हो, उसका अन्न खाने और जल पीनेवाला साधु पुरुष तत्काल कष्टमें पड़ जाता है।* जो हीन वर्णका है तथा जो भगवान् शिवका भक्त नहीं है, इन दो प्रकारके मनुष्योंको दान देते समय उसे लेनेका अनधिकारी समझना चाहिये।

आगन्तुक मनुष्य बोला—तुम्हारी इस बातपर मुझे हँसी आती है। अहो ! तुम बड़े अविवेकी हो, जब सब भूतोंमें सदा भगवान् शङ्कर ही निवास करते हैं, तो किसीके प्रति भी भली-बुरी बात नहीं कहनी चाहिये, क्योंकि इससे भगवान् शिवकी ही निन्दा होती है। जो अपने और दूसरेके बीच अन्तर मानता है, उस भेददर्शी पुरुषके लिये मृत्यु अत्यन्त घोर भय उपस्थित करती है, अथवा यदि शुद्धिका भी विचार किया जाय, तो बताओ इस जलमें क्या अपवित्रता है ? यह घड़ा मिट्टीका बना हुआ है और अग्निसे पकाया गया है, फिर जलसे भर दिया गया है। इन सब वस्तुओंमें तो कोई अशुद्धि है नहीं। यदि कहें कि मेरे संसर्गसे अशुद्धि आ गयी है, तो यह भी स्पष्ट नहीं है, क्योंकि वैसी दशामें जब मैं इस पृथ्वीपर हूँ तो आप यहाँ क्यों रहते हैं ? बताइये आप क्यों इस पृथ्वीपर चलते हैं ? आकाशमें क्यों नहीं चलते ? अतः इस प्रकार विचार करनेपर आपकी बात मूर्खोंकी-सी जान पड़ती है।

कालभीतिने कहा—यदि ऐसा कहा जाता है कि सम्पूर्ण भूतोंमें एक शिव ही हैं, तो कथनमात्रके लिये सबको शिव माननेवाले नास्तिक लोग भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थोंको छोड़कर मिट्टी क्यों नहीं खाते ? राख और धूल क्यों नहीं फाँकते ? इसलिये संसारकी व्यवहार-सिद्धिके लिये एक मर्यादा स्थापित की गयी है, जो समयसे ही सफल होती है, अन्यथा नहीं। आप उस मर्यादाको श्रवण करें। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इस पाञ्चभौतिक जगत्की सृष्टि की और उसे नाममय प्रपञ्चसे बाँध दिया। उस नाम-प्रपञ्चके चार भेद हैं—ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य। ये ही नामात्मक प्रपञ्चके चार आधारस्थान हैं। इनमें ध्वनि 'नाद' स्वरूप है। ॐकारपूर्वक सम्पूर्ण अक्षर ही 'वर्ण' कहलाते हैं। 'शिवम्' यह सुबन्त शब्द 'पद' है और 'शिवम् भजेत्' (शिवका भजन करे) यह विधि ही एक तिङन्तक्रियासे अन्वित होनेके कारण वाक्य कही गयी है। वह वाक्य भी तीन प्रकारका होता है; ऐसा श्रुतिका सिद्धान्त है। पहला प्रभुसम्मत, दूसरा सुहृत्सम्मत तथा तीसरा कान्तासम्मत। यही त्रिविध वाक्य माने गये हैं। जैसे स्वामी सेवकको यह आदेश देता है कि 'अमुक काम करो'—यह प्रभुसम्मत वाक्य है। उसी प्रकार श्रुति और स्मृति दोनों प्रभुसम्मत वाक्यका प्रयोग करती हैं—स्वामीकी भाँति आज्ञा देती हैं। इतिहास और पुराण आदि सुहृत्सम्मत कहे जाते हैं। ये

---

* न ज्ञायते कुलं यस्य बीजशुद्धिं विना ततः।
तस्य खादन् पिबन् वापि साधुः सीदति तत्क्षणात्॥
(स्क० मा० कुमा० ३४। ५०)

सुहृदोंकी भाँति समझाकर मनुष्यको यथार्थ मार्गमें लगाते हैं तथा काव्यके जो सरस एवं व्यङ्ग्यपूर्ण आलाप आदि हैं; उन्हें कान्तासम्मत कहते हैं *। प्रभुवाक्य बाहर और भीतरसे पवित्र करनेवाला माना गया है तथा सुहृद्वाक्य भी परम पवित्र है। स्वर्ग आदि उत्तम लोकोंकी प्राप्तिकी इच्छासे उसका पालन करना चाहिये। श्रुति कहती है कि भूलोकके सम्पूर्ण मनुष्योंको प्रभुसम्मत तथा सुहृत्सम्मत वाक्यका पालन करना चाहिये। आप यदि नास्तिकवादका सहारा लेकर सर्वत्र व्यावहारिक समानताकी बात करते हैं तो इसके अनुसार क्या वेद, शास्त्र और पुराण व्यर्थ ही हैं? क्या पूर्वकालमें सप्तर्षि आदि जो ब्राह्मण और क्षत्रिय हो गये हैं, वे सब मूर्ख ही थे? केवल आप ही चतुर हैं? जो वेद, वेदाङ्ग और वेदान्तका अनुसरण करनेवाले एवं सत्त्वगुणमें स्थित हैं, वे ऊपरके लोकोंमें गमन करते हैं। रजोगुणी मनुष्य मध्यवर्ती भूलोकमें निवास करते हैं और तमोगुणी जीव नीचेके लोकों अथवा नरकोंमें रहते हैं। सात्त्विक आहार तथा सात्त्विक आचार-विचारसे मनुष्य स्वर्गगामी होता है (अतः सदाचारका ध्यान रखना आवश्यक है)। हम आपकी बातोंमें दोष ढूँढ़ते हों, ऐसी बात भी नहीं। हम यह नहीं कहना चाहते कि सम्पूर्ण भूतोंमें भगवान् शिव नहीं हैं। भगवान् तो सम्पूर्ण भूतोंमें हैं ही; किंतु इस विषयमें मैं जो उपमा दे रहा हूँ; उसे ध्यान देकर सुनिये—जैसे सुवर्णके बने हुए बहुतसे आभूषण होते हैं; उनमेंसे कोई तो विशुद्ध सुवर्णके होते हैं; और कुछ खोटे भी होते हैं। खरे, खोटे सभी आभूषणोंमें सुवर्ण तो है ही। इसी प्रकार ऊँच-नीच, शुद्ध-अशुद्ध सबमें भगवान् सदाशिव विराजमान हैं। जैसे खोटा सुवर्ण शोधित होनेपर शुद्ध सुवर्णके साथ एकताको प्राप्त होता है, उसी प्रकार इस शरीरको भी व्रत, तपस्या और सदाचार आदिके द्वारा शोधित करके शुद्ध बना लेनेपर मनुष्य निश्चय ही स्वर्गलोकमें जाता है। अतः बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह हीन या अपवित्र वस्तुको किसी प्रकार भी ग्रहण न करे। यदि वह अपने इस शरीरका शो[धन] कर ले तो शुद्ध होनेपर निश्चय ही स्वर्गलोकको प्राप्त [कर] सकता है। जो पुरुष व्रत, उपवास करके शुद्ध हो गया वह भी यदि सबसे प्रतिग्रह लेने लगे तो थोड़े ही दिन[ों में] अवश्य पतित हो जाता है।* इसलिये मैं स्पष्ट कह दे[ना] चाहता हूँ कि आपका यह जल मैं किसी तरह भी ग्रहण [न] करूँगा। यह कार्य भला हो या बुरा, मेरे लिये वेद परम प्रमाण है।

कालभीतिके ऐसा कहनेपर आगन्तुक मनुष्य हँ[सने] लगा। उसने दाहिने अंगूठेसे भूमिको खुरेदते हुए एक ब[हुत] बड़ा एवं उत्तम गड्ढा तैयार कर दिया। फिर उस[में] वह सारा जल ढुलका दिया। उससे वह गड्ढा भर गया फिर भी जल शेष रह गया; तब उसने पैरसे ही खुरेद[कर] एक तालाब बना दिया और शेष बचे हुए जलसे उस[को] भर दिया। यह परम अद्भुत कार्य देखकर भी ब्राह्[मण] देवताको कोई आश्चर्य नहीं हुआ; क्योंकि भूत, प्रेत आ[दि] की उपासना करनेवाले लोगोंमें अनेक प्रकारकी विचि[त्र] बातें होती हैं। उस विचित्रताके चक्करमें आकर अपने स[ना]तन वैदिक मार्गका परित्याग कभी नहीं करना चाहिये†।

आगन्तुक मनुष्य बोला—ब्राह्मणदेव! आप तो बड़े भारी मूर्ख; परंतु बातें पण्डितों-जैसी करते हैं क्या आपने पुराणवेत्ता विद्वानोंके मुखसे कहा हुआ [यह] श्लोक नहीं सुना है?

> कूपोऽन्यस्य घटोऽन्यस्य रज्जुरन्यस्य भारत।
> पाययत्येकः पिबत्येकः सर्वे ते समभागिनः॥

भारत! कुआँ दूसरेका, घड़ा दूसरेका और रस[्सी] दूसरेकी है; एक पानी पिलाता है और एक पीता है; वे स[ब] समान फलके भागी होते हैं।

ऐसा ही मेरा भी जल है और तुम धर्मके ज्ञाता हो फिर क्यों इसे नहीं पीयोगे?

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तदनन्तर कालभीति[ने] उक्त श्लोकके विषयमें अनेक प्रकारसे विचार किया, कि[स] किस प्रकार सब लोग समान फलके भागी होते हैं; इसक[े]

* जैसे प्रियतमा अपने प्रियतमको कोई आदेश नहीं देती, अपने हाव-भाव भ्रूभंग अथवा सरस आलापसे अपनी इच्छामात्र सूचित कर देती है और प्रियतम उसकी पूर्तिके लिये स्वयं यत्नशील हो जाता है, इसी प्रकार रामायण आदि काव्य अपने सरस वर्णनोंद्वारा सहृदयोंका मनोरञ्जन करते हुए स्वतः हृदयमें यह भाव भर देते हैं कि हमें श्रीराम आदिके आदर्शपर चलना चाहिये, रावण आदिके आदर्शपर नहीं।

* सर्वतो यः प्रतिग्राह्य निराहारो च यः पुमान्।
शुचिः स्यादल्पदिवसात् पतितोऽसौ भवेत् स्फुटम्॥
(स्क० मा० कुमा० ३४। ८१)

† यतो बहुविधं चित्रं भवेद्भूताद्युपासिषु।
तच्चित्रेण न जह्याच्च श्रुतिमार्गं सनातनम्॥
(स्क० मा० कुमा० ३४।

निश्चय न कर सके। फिर घट आदि साधनोंद्वारा जो समान फलभागी होनेकी बात कही गयी थी, उसपर विशेष विचार किया और इस निश्चयपर पहुँचे कि यदि एक कार्यमें अनेक सहायक हों तो सब समान फलके भागी होते हैं। जैसे एक नौका निर्माण करानेमें यदि अनेक पुरुषोंने धन लगाया हो तो उन सबका उसमें समान भाग होता है। इस प्रकार कर्ताको प्राप्त होनेवाला सब फल सहकारियोंमें बँटकर समान हो जाता है। इस प्रकार पुनः-पुनः विचार करके कालभीतिने उस मनुष्यसे कहा—'भद्रपुरुष! आपका यह कहना ठीक है। कूप और तालाबके जल ग्रहण करनेमें दोष नहीं है तथापि आपने तो अपने घड़ेके जलसे ही इस गड्ढेको भरा है, यह बात प्रत्यक्ष देख करके भी मेरे-जैसा मनुष्य कैसे इस जलको पी सकता है। अतः यह अच्छा हो या बुरा; मैं किसी प्रकार भी इसे नहीं पीऊँगा।' कालभीतिके इस प्रकार दृढ़ निश्चय कर लेनेपर वह पुरुष हँसकर क्षणभरमें वहाँसे अन्तर्धान हो गया। इससे कालभीतिको बड़ा विस्मय हुआ। ये बार-बार सोचने लगे कि यह क्या वृत्तान्त है। इतनेहीमें उस बिल्ववृक्षके नीचे पृथ्वीसे सहसा एक परम सुन्दर शिवलिङ्ग प्रकट हो गया, जो सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था। इन्द्रने उसके ऊपर पारिजातके फूलोंकी वर्षा की और देवता तथा मुनि नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करने लगे। तब कालभीतिने

प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक यह स्तुति प्रारम्भ की—

'जो पापके काल, संसाररूपी पङ्कके काल, कालके काल तथा कालमार्गके भी काल हैं; जिनके कण्ठमें काला चिह्न सुशोभित होता है तथा जो संसारके कालरूप हैं, उन भगवान् महाकालकी मैं शरण लेता हूँ। श्रुति आपको सम्पूर्ण विद्याओंका ईश्वर बताकर स्तुति करती है। आप समस्त भूतोंके ईश्वर तथा प्रपितामह हैं; ऐसी महिमावाले आप महेश्वरको नमस्कार है। वेद जिसकी स्तुति करता है, उस 'तत्पुरुष' नामवाले आपको हम जानते हैं और आपका ही चिन्तन करते हैं। देवेश्वर! आप हमें शरण दीजिये; आपको बारंबार नमस्कार है।'

अर्जुन! कालभीतिके इस प्रकार स्तुति करनेपर महादेवजीने उस लिङ्गसे निकलकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया और अपने तेजसे त्रिलोकीको प्रकाशित करते हुए कहा—'ब्रह्मन्! तुमने इस महातीर्थमें रहकर मेरी जो अतिशय आराधना की है, उससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। वत्स! काल तुम्हारे ऊपर किसी प्रकार भी शासन नहीं कर सकता। मैं ही तुम्हारी धर्मनिष्ठा देखनेके लिये मनुष्यरूपमें यहाँ प्रकट हुआ था। यह धर्ममार्ग धन्य है, जिसका तुम्हारे-जैसे धर्मज्ञोंद्वारा पालन होता है। मैंने यह गड्ढा और तालाब सब तीर्थोंके जलसे ही भरा है। यह परम पवित्र जल है और तुम्हारे लिये मैंने इसका संग्रह किया है। तुमने जो मेरी स्तुति की है, उसमें वैदिक मन्त्रोंका रहस्य भरा हुआ है। तुम मुझसे कोई मनोवाञ्छित वर माँगो। तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है।'

कालभीतिने कहा—भगवान् शङ्कर! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं, तो मैं धन्य हूँ। मुझपर आपका महान् अनुग्रह है। आपके सन्तोषसे ही सब धर्म सफल होते हैं। अन्यथा वे केवल श्रम देनेवाले ही माने गये हैं। प्रभो! यदि आप सन्तुष्ट हैं तो सदा यहाँ निवास करें। आपके इस शुभ लिङ्ग पर जो भी दान, पूजन आदि किया जाय, वह सब अक्षय हो। देव! पाँच हजार मन्त्र जपनेसे जो फल होता है, वही फल मनुष्योंको इस शिवलिङ्गका दर्शन करनेसे प्राप्त हो जाय। महेश्वर! आपने काल-मार्गसे मुझे छुटकारा दिलाय इसलिये यह शिवलिङ्ग महाकालके नामसे प्रसिद्ध हो मनुष्य इस कूपमें स्नान करके पितरोंका तर्पण उसे सब तीर्थोंका फल प्राप्त हो और उसके पितरोंको उ गतिकी प्राप्ति हो।

कालभीतिकी यह बात सुनकर भगवान् श प्रसन्न हो बोले—जहाँ स्वयम्भू-लिङ्ग हो, वहाँ मैं निवास करता हूँ। स्वयम्भू-लिङ्ग, रत्नमय-लिङ्ग, धातुज-लि

प्रस्तरनिर्मित लिङ्ग तथा चन्दन आदि लेपजनित लिङ्ग हैं। इनमें क्रमशः अन्तिम लिङ्गकी अपेक्षा पूर्व-पूर्ववाले लिङ्ग दस-गुना अधिक फल देनेवाले होते हैं। आकाशमें तारकामय-लिङ्ग, पातालमें हाटकेश्वर-लिङ्ग तथा भूमण्डलपर स्वयम्भू-लिङ्ग—ये तीनों शुभ होते हैं। तुमने विशेषरूपसे जिसके लिये प्रार्थना की है, वह सब पूर्ण होगा। यहाँ फूल, फल, पूजा, नैवेद्य और स्तुति निवेदन करना तथा दान या दूसरा कोई भी शुभ कर्म करना, सब अक्षय होगा। बेटा ! माघके कृष्ण-पक्षकी चतुर्दशीको शिव-योगमें जो लिङ्गार्चन-के पहले कूपमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करेगा, उसे सब तीर्थोंके फलकी प्राप्ति होगी तथा उसके पितरोंकी अक्षय गति होगी। उसी दिनकी रात्रिमें जो प्रत्येक प्रहरमें महाकालका पूजन करेगा, उसे सब लिङ्गोंके समीप जागरण करनेका फल प्राप्त होगा। द्विजोत्तम ! जो पुरुष जितेन्द्रिय रहकर शिव-लिङ्गमें मेरी पूजा करेगा, भोग मोक्ष उससे कभी दूर नहीं रहेंगे। जो चतुर्दशी, अ सोमवार तथा पर्वके दिन इस सरोवरमें स्नान करके शिव-लिङ्गकी पूजा करेगा, वह शिवको ही प्राप्त होगा। किया हुआ जप, तप और रुद्र-जप सब अक्षय होगा। नन्दीके साथ मेरे दूसरे द्वारपाल बनोगे। वत्स ! काल- पर विजय पानेसे तुम चिरकालतक महाकालके नामसे प्र होओगे। यहाँ शीघ्र ही राजर्षि करन्धम आनेवाले हैं, धर्मका उपदेश करके तुम मेरे लोकमें चले आओ।'

यों कहकर भगवान् रुद्र उस लिङ्गमें ही लीन हो और महाकाल भी प्रसन्न होकर वहाँ बड़ी भारी त करने लगे।

महाकालद्वारा करन्धमके प्रश्नानुसार श्राद्ध तथा युगव्यवस्थाका वर्णन

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! तदनन्तर महाकालका चरित्र सुनकर राजा करन्धम वहाँ आये। उन्होंने महीसागर-संगमके जलमें स्नान तथा महाकालका दर्शन करके अपने जीवन-को सफल माना। पचास हजार मन्त्रोंका जप करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही जिनके दर्शनमात्रसे मिल जाता है, उन्हीं भगवान् महाकालकी विशेष पूजा, अर्चा करके राजाने उनको प्रणाम किया और उनकी स्तुति करके उन्हींके समीप बैठे। तत्पश्चात् भगवान् शिवके वचनका स्मरण करके मुसकराते हुए महाकालजीने राजाकी अगवानी की और स्वागत सत्कारपूर्वक उन्हें अर्घ्य प्रदान किया। फिर कुशल-प्रश्नके पश्चात् जब राजा सुखपूर्वक बैठे, तो उन्होंने महाकालजीसे पूछा—'भगवन् ! मेरे मनमें सदा यह संशय बना रहता है कि मनुष्योंद्वारा पितरोंका जो तर्पण किया जाता है, उसमें जल तो जलमें ही चला जाता है; फिर हमारे पूर्वज उससे तृप्त कैसे होते हैं ? इसी प्रकार पिण्ड आदिका सब दान भी यहीं देखा जाता है। अतः हम यह कैसे मान लें कि यह पितर आदिके उपभोगमें आता है ?'

महाकालने कहा—राजन् ! पितरों और देवताओंकी योनि ही ऐसी होती है कि ये दूरकी कही हुई बातें सुन लेते, दूरकी पूजा भी ग्रहण कर लेते और दूरकी स्तुतिसे भी सन्तुष्ट होते हैं। इसके सिवा वे भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ जानते और सर्वत्र पहुँचते हैं। पाँचों तन्मात्राएँ, मन, बुद्धि, अहङ्कार और प्रकृति—इन नौ तत्त्वोंका बना उनका शरीर होता है। इसके भीतर दसवें तत्त्वके रूपमें सा भगवान् पुरुषोत्तम निवास करते हैं। इसलिये देवता पितर गन्ध तथा रस-तत्त्वसे तृप्त होते हैं। श तत्त्वसे रहते हैं तथा स्पर्श-तत्त्वको ग्रहण करते और किसीको पवित्र देखकर उनके मनमें बड़ा स होता है। जैसे पशुओंका भोजन तृण और मनुष्योंका भ अन्न कहलाता है, वैसे ही देवयोनियोंका भोजन अ सार-तत्त्व है। सम्पूर्ण देवताओंकी शक्तियाँ अचिन्त्य ज्ञानगम्य हैं। अतः वे अन्न और जलका सार-तत्त्व ही करते हैं, शेष जो स्थूल वस्तु है, वह यहीं स्थित देखी जाती

करन्धमने पूछा—श्राद्धका अन्न तो पितरोंको जाता है, परंतु वे अपने कर्मके अधीन होते हैं। यदि वे अथवा नरकमें हों, तो श्राद्धका उपभोग कैसे कर स हैं ? और वैसी दशामें वे वरदान देनेमें भी कैसे समर्थ सकते हैं ?

महाकालने कहा—नृपश्रेष्ठ ! यह सत्य है कि अपने-अपने कर्मोंके अधीन होते हैं, परंतु देवता, असुर यक्ष आदिके तीन अमूर्त तथा चारों वर्णोंके चार मूर्त—ये प्रकारके पितर माने गये हैं। ये नित्य पितर हैं, ये कर्मोंके अ नहीं, वे सबको सब कुछ देनेमें समर्थ हैं। वे सातों पितर भी वरदान आदि देते हैं। उनके अधीन अत्यन्त प्रबल इक

गण होते हैं। राजन्! इस लोकमें किया हुआ श्राद्ध उन्हीं मानव पितरोंको तृप्त करता है। वे तृप्त होकर श्राद्धकर्ताके पूर्वजोंको जहाँ कहीं भी उनकी स्थिति हो, जाकर तृप्त करते हैं। इस प्रकार अपने पितरोंके पास श्राद्धमें दी हुई वस्तु पहुँचती है और वे श्राद्ध ग्रहण करनेवाले नित्य पितर ही श्राद्धकर्ताओंको श्रेष्ठ वरदान देते हैं।

राजाने पूछा—विप्रवर! जैसे भूत आदिको उन्हींके नामसे 'इदं भूतादिभ्यः' कहकर कोई वस्तु दी जाती है, उसी प्रकार देवता आदिको संक्षेपसे क्यों नहीं दिया जाता? मन्त्र आदिके प्रयोगद्वारा विस्तार क्यों किया जाता है?

महाकालने कहा—राजन्! सदा सबके लिये उचित प्रतिष्ठा करनी चाहिये। उचित प्रतिष्ठाके बिना दी हुई कोई वस्तु वे देवता आदि ग्रहण नहीं करते। घरके दरवाजेपर बैठा हुआ कुत्ता जिस प्रकार ग्रास (फेंका हुआ टुकड़ा) ग्रहण करता है, क्या कोई श्रेष्ठ पुरुष भी उसी प्रकार ग्रहण करता है? इसी प्रकार भूत आदिकी भाँति देवता कभी अपना भाग ग्रहण नहीं करते। वे पवित्र भोगोंका सेवन करनेवाले तथा निर्मल हैं। अतः अश्रद्धालु पुरुषके द्वारा बिना मन्त्रके दिया हुआ जो कोई हव्य भाग होता है, उसे वे स्वीकार नहीं करते। यहाँ मन्त्रोंके विषयमें श्रुति भी इस प्रकार कहती है—

मन्त्रा दैवता यद्यद्विद्वान्मन्त्रवत्करोति देवताभिरेव तत्करोति यद्ददाति देवताभिरेव तद्ददाति यत्प्रतिगृह्णाति देवताभिरेव तत्प्रतिगृह्णाति तस्मान्नामन्त्रवत्प्रतिगृह्णीयात् नामन्त्रवत्प्रतिपद्यते।

'सब मन्त्र ही देवता हैं, विद्वान् पुरुष जो-जो कार्य मन्त्रके साथ करता है, उसे वह देवताओंके द्वारा ही सम्पन्न करता है। मन्त्रोच्चारणपूर्वक जो कुछ देता है, वह देवताओंद्वारा ही देता है। मन्त्रपूर्वक जो कुछ ग्रहण करता है, वह देवताओंद्वारा ही ग्रहण करता है। इसलिये मन्त्रोच्चारण किये बिना मिला हुआ प्रतिग्रह न स्वीकार करे। बिना मन्त्रके जो कुछ किया जाता है, वह प्रतिष्ठित नहीं होता।'

इस कारण पौराणिक और वैदिक मन्त्रोंद्वारा ही सदा दान करना चाहिये।

राजाने पूछा—कुश, तिल, अक्षत और जल—इन सबको हाथमें लेकर क्यों दान दिया जाता है? मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ।

महाकालने कहा—राजन्! प्राचीन कालमें मनुष्योंने बहुतसे दान किये, और उन सबको असुरोंने बलपूर्वक भीतर प्रवेश करके ग्रहण कर लिया। तब देवताओं और पितरोंने ब्रह्माजीसे कहा—'स्वामिन्! हमारे देखते-देखते दैत्यलोग सब दान ग्रहण कर लेते हैं। अतः आप उनसे हमारी रक्षा करें, नहीं तो हम नष्ट हो जायँगे।' तब ब्रह्माजीने सोच-विचारकर दानकी रक्षाके लिये एक उपाय निकाला। पितरोंको तिलके साथ दान दिया जाय, देवताओंको अक्षतके साथ दिया जाय तथा जल और कुशका सम्बन्ध सर्वत्र रहे। ऐसा करनेपर दैत्य उस दानको नहीं ग्रहण कर सकते। इन सबके बिना जो दान किया जाता है, उसपर दैत्यलोग बलपूर्वक अधिकार कर लेते हैं, और देवता तथा पितर दुःखपूर्वक उच्छ्वास लेते हुए लौट जाते हैं। वैसे दानसे दाताको कोई फल नहीं मिलता। इसलिये सभी युगोंमें इसी प्रकार (तिल, अक्षत, कुश और जलके साथ) दान दिया जाता है।

राजा करन्धम बोले—ब्रह्मन्! मैं चारों युगोंकी व्यवस्थाको यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ।

महाकालने कहा—राजन्! कृतयुगको तुम आदियुग समझो। उसके बाद त्रेतायुगकी स्थिति मानी गयी है। फिर द्वापर और कलियुग हैं। यही संक्षेपसे चारों युगोंका परिचय है। कृतयुग सत्त्वगुणप्रधान है, त्रेता रजोगुणमय है, द्वापरमें रजोगुण और तमोगुण दोनोंकी प्रधानता है तथा कलियुगको साक्षात् तमोगुणका स्वरूप जानना चाहिये। अब चारों युगोंमें जो युगका प्रधान आचार है, उसका वर्णन करता हूँ—कृतयुगमें ध्यान प्रधान है, त्रेतामें यज्ञको ही प्रधान कहा जाता है, द्वापरमें सत्य बर्ताव ही प्रधान धर्म है तथा कलियुगमें दान ही सर्वोत्तम धर्म बताया गया है।* कृतयुगमें मानसी सृष्टि होती है। उस समय सबके जीवन-निर्वाहकी वृत्ति रस और उल्लाससे परिपूर्ण होती है। समस्त प्रजा तेजस्विनी होती है। सब प्राणी सदा तृप्त रहते हैं। सभी आनन्दमग्न तथा सुखभोगकी सुविधासे सम्पन्न होते हैं। उनमें कोई ऊँच और नीच नहीं होता। सम्पूर्ण प्रजा समानरूपसे शुभ कार[illegible] तत्पर रहती है। कृतयुगमें सब लोगोंकी आयु समान होती [illegible] सबको सुख उपलब्ध होता है; रूप और सौन्दर्य भी स[illegible] समान देखे जाते हैं। किसीमें अप्रसन्नता नहीं, उद्वेग न[illegible] द्वेष नहीं और ग्लानि नहीं होती। उस समय वर्णाश्र[illegible]

* ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां यज्ञ उच्यते।
वृत्तं च द्वापरे सत्यं दानमेव कलौ युगे॥
(स्क० मा० कुमा० ३५। ४५

अवस्था होती है। वर्णसङ्करका नाम नहीं होता। कुछ लोग पर्वतों-पर और उसके आसपास तथा कुछ लोग समुद्रके तटपर निवास करते हैं। सबपर दया करना उस समयकी प्रजाको विशेष प्रिय जान पड़ता है। सब मनुष्य एकमत होकर सदा भगवान् सदाशिवका ध्यान करते हैं। कृतयुगका चतुर्थ चरण आनेपर उनकी वह रसोल्लासवृत्ति नष्ट हो गयी। तब उनके लिये गृहका काम देनेवाले कल्पवृक्ष उत्पन्न हो गये। वे वृक्ष ही उनके लिये वस्त्र, आभूषण तथा फल उत्पन्न करने लगे। उन वृक्षोंपर ही उनके लिये पत्ते-पत्तेमें उत्तम गन्ध, उत्तम रंग और उत्तम रससे युक्त अत्यन्त बलवर्धक मधु तैयार होने लगा। उसे मधुमक्खियोंने नहीं बनाया था। कृतयुगके अन्तिम भागमें उसीसे प्रजा अपने जीवनका निर्वाह करती थी। उस मधुके सेवनसे सब लोग हृष्ट, पुष्ट, अधिक बलशाली तथा नीरोग रहते थे। तदनन्तर कुछ कालके बाद जब मनुष्योंकी रसनेन्द्रिय प्रबल हो गयी, तो युगका प्रभाव पड़नेसे सब लोगोंमें भगवान्के ध्यानकी प्रवृत्ति कम होने लगी और वे उन वृक्षों तथा बिना मक्खीके उत्पन्न हुए मधुपर भी बलपूर्वक अधिकार करने लगे। उनके इस लोभ-दोषजनित अनाचारसे वे कल्पवृक्ष कहीं-कहीं मधुके साथ ही अदृश्य हो गये। उस समय उन वृक्षोंकी सम्पत्ति जब बहुत थोड़ी रह गयी, तो प्रजाजनोंमें द्वन्द्व प्रकट हो गये। वे सर्दी, गर्मी तथा मानसिक क्लेशसे बहुत दुखी हुए। तब उन्होंने अपनेको आच्छादित करनेके लिये घर बनाये। उस समय त्रेतायुगके प्रारम्भमें उनके लिये पुनः दूसरी सिद्धि प्रकट हुई। वर्षा होनेसे जल और पृथ्वीका संयोग हुआ, और उससे बिना जोते-बोये ग्राममें (गाँवमें होनेवाले) तथा अरण्यमें (जंगलोंमें होनेवाले) चौदह प्रकारके अन्न उत्पन्न हुए। तदनन्तर ऋतुओंके अनुकूल फूल और फलसे भरे हुए वृक्षों और लताओंका प्रादुर्भाव हुआ। इस तरह अनेक प्रकारके धान्य, पुष्प और फलोंसे प्रजाका जीवन-निर्वाह होने लगा। तत्पश्चात् कालके प्रभावसे पुनः उनमें राग और लोभका सञ्चार हुआ। फिर तो सब लोग अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार हठपूर्वक बड़ी शीघ्रताके साथ नदियों, पर्वतों, क्षेत्रों, वृक्षों, लताओं और धान्योंको भी अपने अधिकारमें करने लगे। इस धर्मविपरीत आचरणसे चौदहों प्रकारके धान्य नष्ट हो गये; सभी ओषधियाँ धरतीमें प्रवेश कर गयीं। इससे प्रजाको बड़ी पीड़ा होने लगी। यह देख वेनकुमार राजा पृथुने सब प्राणियोंके हितके लिये पृथ्वीका दोहन किया। तबसे सब प्रजा वार्तानामक वृत्तिके द्वारा हल और फालसे जोत-बोकर उत्पन्न किये हुए अन्नसे जीवन-निर्वाह करने लगी। उस समय क्षत्रियलोग समस्त प्रजाका पालन करते थे। वर्णाश्रम-धर्मकी प्रतिष्ठा थी। त्रेतामें सब ओर यज्ञकी ही चर्चा होने लगी। अज्ञानी मनुष्य भगवान् सदाशिवके ध्यानमय मोक्षमार्गको छोड़कर रागवश वेदोंकी यज्ञसम्बन्धिनी पुष्पित (प्रशंसापूर्ण) वाणीका आश्रय ले यज्ञद्वारा स्वर्ग-प्राप्तिके साधनमें संलग्न हो गये। तदनन्तर द्वापर आनेपर मनुष्योंमें बुद्धि-भेद उत्पन्न होता है। मन, वाणी और क्रिया-द्वारा बड़ी कठिनाईसे जीविका चलने लगती है। सबमें लोभ और अधैर्य बढ़ जाता है। भगवान् शङ्करका आश्रय छोड़ देनेसे सबमें धर्मसङ्करता आ जाती है तथा वर्ण और आश्रम-धर्मकी मर्यादा टूटने लगती है। द्वापरमें ऐसी अवस्था आनेपर भगवान् वेदव्यास प्रकट होते हैं और वे द्वापरके अन्तिम भागमें एक ही वेदके चार विभाग करते हैं। द्विजोंके हितके लिये व्यासजीके द्वारा एक ही वेद चार चरणोंमें प्रकट किया जाता है। इन्हीं वेदोंके अर्थका विस्तार होनेसे इतिहास और पुराणोंके अनेक भेद होते हैं—ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, नारदीय पुराण, सातवाँ मार्कण्डेयपुराण, आठवाँ अग्निपुराण, नवाँ भविष्यपुराण, दसवाँ ब्रह्मवैवर्तपुराण, ग्यारहवाँ लिङ्गपुराण, बारहवाँ वाराहपुराण, तेरहवाँ स्कन्दपुराण, चौदहवाँ वामन-पुराण, पंद्रहवाँ कूर्मपुराण, सोलहवाँ मत्स्यपुराण, तत्पश्चात् गरुड़पुराण और ब्रह्माण्डपुराण। ये अट्ठारह पुराण हैं।

अब इस वाराहकल्पमें होनेवाले व्यासोंके नाम सुनो—ऋतु, सत्य, भार्गव, अङ्गिरा, सविता, मृत्यु, शतक्रतु, बुद्धिमान् वशिष्ठ, सारस्वत, त्रिधामा, वेदज्ञ मुनिवर त्रिवृत, शततेजा, स्वयं भगवान् नारायण, करक, आरुणि, कृतञ्जय, भरद्वाज, कविश्रेष्ठ गौतम, मुनिवर वाजश्रवा, शुष्मायण मुनि, तृणविन्दु, ऋक्ष, शक्ति, पराशर, जातुकर्ण्य, विष्णुरूप साक्षात् द्वैपायन मुनि तथा अश्वत्थामा—ये भूत और भविष्य व्यास सूचित किये गये। द्वापरमें लोककल्याणके लिये धर्म-शास्त्रके भी अनेक भेद होते हैं। मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शङ्ख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप तथा वशिष्ठ—ये धर्मशास्त्रके प्रवर्तक ऋषि हैं।

तत्पश्चात् द्वापरकी सन्ध्यामें और कलियुगके प्रारम्भ-कालमें जब शैव योग नष्ट होने लगता है, तब योगसे आन-न्दित होनेवाले मुनि प्रकट होते हैं। श्वेतवाराहकल्पके

कलियुगमें सर्वप्रथम भगवान् रुद्र ही योगेश्वररूपमें प्रकट होते हैं। तदनन्तर सुतार, तारण, सुहोत्र, कंकण, लौगाक्षि, महामुनि जैगीषव्य, भाव्य, दधिवाहन, ऋषभ, मुनिवर धर्म, उग्र, अत्रि, बालक गौतम, वेदशीर्ष, गोकर्ण, शिखण्डी, गुहावासी, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लाङ्गली, संयमी, शूली, डिण्डी, मुण्डीश्वर, सहिष्णु, सोमशर्मा, लकुलीश तथा कायावरोहण इत्यादि योगेश्वर क्रमशः होनेवाले हैं। ये कलियुगमें संक्षेपसे शैव-धर्मका उपदेश करेंगे। राजन्! इस प्रकार कलियुगमें शास्त्रोंका संक्षेप बताया जाता है।

अब कलियुगकी प्रवृत्ति सुनो, जो हर्ष और उद्वेगमें डालनेवाली है। कलियुगमें तमोगुणसे व्याकुल इन्द्रियोंवाले मनुष्य माया (छल-कपट आदि), असूया (दोषदृष्टि) तथा तपस्वी महात्माओंकी हत्या भी करते हैं। कलिमें मन और इन्द्रियोंको मथ डालनेवाला राग प्रकट होता है। सदा भूख-मरीका भय सताता रहता है, भयङ्कर अनावृष्टिका भय भी प्राप्त होता है। सब देशोंमें नाना प्रकारके उलट-फेर होते रहते हैं। सदा अधर्म-सेवन करनेके कारण मनुष्योंके लिये वेदका प्रमाण मान्य नहीं रह जाता। प्रायः लोग अधार्मिक, अनाचारी, अत्यन्त क्रोधी और तेजहीन होते हैं। लोभके वशीभूत होकर झूठ बोलते हैं, उनमें अधिकांश नारियोंका-सा स्वभाव आ जाता है, उनकी सन्तान दुष्ट होती हैं। ब्राह्मणोंके दूषित यज्ञ-याग, दोषयुक्त स्वाध्याय, दूषित आचरण तथा असत् शास्त्रोंके सेवनरूप कर्मदोषसे समस्त प्रजाका विनाश होता है। क्षत्रिय और ब्राह्मण नाशको प्राप्त होते हैं और वैश्य तथा शूद्रोंकी वृद्धि होती है। शूद्र लोग ब्राह्मणोंके साथ एक आसनपर सोते, बैठते और भोजन भी करते हैं। शूद्र ब्राह्मणोंके आचारको अपनाते हैं और ब्राह्मण शूद्रोंके समान आचरण करते हैं। चोर राजाओंकी वृत्तिमें स्थित होते हैं और राजालोग चोरोंके समान बर्ताव करते हैं। पतिव्रता स्त्रियाँ कम होने लगती हैं और कुलटाओंकी संख्या बढ़ती है। कलियुगमें भूमि प्रायः थोड़ा फल देनेवाली होती है, कहीं-कहीं वह अधिक उपजाऊ होती है। राजालोग निडर होकर पाप करते हैं, वे रक्षक नहीं वरं प्रजाकी सम्पत्ति हड़प लेनेवाले होते हैं। कलियुगमें प्रायः क्षत्रियेतर जातिके लोग राजा होते हैं। ब्राह्मण शूद्रकी वृत्तिसे जीविका चलानेवाले होंगे। शूद्र ब्राह्मणोंसे अभिवन्दित होकर स्वयं वाद-विवाद करनेवाले होंगे। वे द्विजोंको देखकर भी अपने आसनसे उठकर खड़े न होंगे। द्विज लोग मुँहपर हाथ रखकर नीच-से-नीच शूद्रके भी कानमें अत्यन्त विनयपूर्वक कोई बात कहेंगे; द्विजोंके सामने भी शूद्र ऊँचे आसनपर बैठे रहेंगे; यह बात जानकर भी राजा उन्हें दण्ड नहीं देगा। देखो, कालका कैसा प्रभाव है। अल्प विद्या और अल्प भाग्यवाले ब्राह्मण सुन्दर-सुन्दर फूलों तथा अन्य प्रकारके अलङ्कारोंसे शूद्रोंकी अर्चना करेंगे। कलियुगके ब्राह्मण पाखण्डियोंके न लेनेयोग्य दूषित दानको भी ग्रहण करते हैं और उसके कारण दुस्तर रौरव नरकमें पड़ते हैं। करोड़ों द्विज कलिकालमें तप और यज्ञका फल बेचनेवाले तथा अन्यायी होते हैं। मनुष्योंके सन्तानोंमें पुत्र थोड़े और कन्याएँ अधिक होती हैं। कलियुगमें मनुष्य वेदवाक्यों तथा वेदार्थोंकी निन्दा करते हैं। शूद्रोंने जिसे स्वयं रच लिया हो, वही शास्त्र एवं प्रमाण माना जायगा। हिंसक जीव प्रबल होंगे और गोवंशका क्षय होगा। दान आदि कोई भी धर्म अपने शुद्धरूपमें नहीं पालित होगा। साधु पुरुषोंका अनेक प्रकारसे विनाश होगा। राजालोग प्रजाके रक्षक न होंगे। कलियुगका अन्तिम भाग उपस्थित होनेपर प्रत्येक जनपदके लोग अन्नका व्यापार करेंगे, ब्राह्मण वेद बेचनेवाले होंगे, स्त्रियाँ व्यभिचारसे अर्थोपार्जन करेंगी। घरोंमें स्त्रियोंकी प्रधानता होगी। वे अपवित्र कपड़े पहिननेवाली तथा कर्कशा होंगी। बहुत अधिक भोजनमें लिप्त होकर कृत्या (चुड़इलों) की भाँति प्रतीत होंगी। कलियुगमें प्रायः सब लोग वाणिज्य-वृत्ति करनेवाले होंगे। इन्द्र छिट-फुट वर्षा करनेवाले होंगे। मनुष्य दुराचार-सेवन आदि व्यर्थके पाखण्डोंसे घिरे होंगे और सब लोग एक दूसरेसे याचना करेंगे। उस समय लोगोंको पाप करनेमें तनिक भी शङ्का नहीं होगी। जब कलियुगके संहारका समय आयगा उस समय मनुष्य पराया धन हड़पनेवाले, परस्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करनेवाले तथा पंद्रह वर्षकी आयुवाले होंगे। चोरके घरमें भी चोरी करनेवाले तथा लुटेरेके घरमें भी लूट-मार करनेवाले होंगे। ज्ञान और कर्म दोनोंका अभाव हो जानेसे सब लोग उद्यम करना छोड़ देंगे। उस समय कीड़े, चूहे और सर्प मनुष्यको डसेंगे। वर्ण और आश्रम-धर्मके विरोधी जो अन्य पाखण्ड सुने जाते हैं, वे सब उस समय प्रकट होंगे और उनकी वृद्धि होगी। कलियुगमें स्त्री और पुत्रसे दुःख, शरीरका संहार, सदा रोगी रहना तथा पाप करनेमें आग्रह रखना आदि दोष क्रमशः बढ़ते ही जायँगे। राजन्! यद्यपि कलियुग समस्त दोषोंका भण्डार है, तथापि उसमें एक महान् गुण भी है, उसे सुनो—कलिकालमें थोड़े ही समय साधन करनेसे मनुष्य

सिद्धिको प्राप्त हो जाते हैं।* सत्ययुग, त्रेता और द्वापर— इन तीन युगोंके लोग ऐसा कहते हैं कि जो मनुष्य कलियुगमें श्रद्धापरायण होकर वेदों, स्मृतियों और पुराणोंमें बताये हुए धर्मका अनुष्ठान करते हैं, वे धन्य हैं। त्रेतामें एक वर्षतक तथा द्वापरमें एक मासतक क्लेशसहनपूर्वक धर्मानुष्ठान करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषको जो फल प्राप्त होता है वह कलियुगमें एक दिनके अनुष्ठानसे मिल जाता है। राजन्! कलियुगमें भगवान् विष्णु और शिवकी नियमपूर्वक उपासना करनेवाले जितने मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होते हैं, उतने अन्य युगोंमें तीन युगोंतक उपासना करनेसे प्राप्त होते हैं।†

राजन्! अट्ठाईसवें कलियुगमें जो कुछ होनेवाला है, उसे सुनो। कलियुगके तीन हजार दो सौ नब्बे वर्ष व्यतीत होनेपर इस भूमण्डलमें वीरोंका अधिपति शूद्रक नामवाला राजा होगा, जो चर्चिता नगरीमें आराधना करके सिद्धि प्राप्त करेगा। शूद्रक पृथ्वीका भार उतारनेवाला राजा होगा। तदनन्तर कलियुगके तीन हजार तीन सौ दसवें वर्षमें नन्द-वंशका राज्य होगा। चाणक्य नामवाला ब्राह्मण उन नन्द-वंशियोंका संहार करेगा और शुक्लतीर्थमें वह अपने समस्त पापोंसे छुटकारा पानेके लिये प्रायश्चित्तकी अभिलाषा करेगा। इसके सिवा कलियुगके तीन हजार बीस वर्ष निकल जानेपर इस पृथ्वीपर राजा विक्रमादित्य होंगे। वे नवदुर्गाओंकी सिद्धि एवं कृपासे राज्य पायेंगे और दीनोंका उद्धार करेंगे। तदनन्तर तीन हजारसे सौ वर्ष और अधिक बीतनेपर शक नामक राजा होगा। उसके बाद कलियुगके तीन हजार छः सौ वर्ष बीतनेपर मगधदेशमें हेमसदनसे अञ्जनीके गर्भसे भगवान् विष्णुके अंशावतार स्वयं भगवान् बुद्ध प्रकट होंगे, जो धर्मका पालन करेंगे। महात्मा बुद्धके अनेक उत्तम चरित्र स्मरणीय होंगे। अपने भक्तोंके लिये अपनी यशोगाथा छोड़कर वे स्वर्गलोकको चले जायँगे, भक्तजन उन्हें सर्वपापापहारी बुद्ध कहेंगे। तत्पश्चात् कलियुगके चार हजार चार सौ वर्ष बीतनेपर चन्द्रवंशमें महाराज प्रमितिका प्रादुर्भाव होगा। वे बहुत बड़ी सेनाके अधिपति तथा अत्यन्त बलवान् होंगे। करोड़ों म्लेच्छोंका वध करके सब ओरसे पाखण्डका निवारण करते हुए केवल विशुद्ध वैदिक धर्मकी स्थापना करेंगे। महाराज प्रमितिका देहावसान गङ्गा-यमुनाके मध्यवर्ती क्षेत्र प्रयागमें होगा।

तत्पश्चात् किसी समय कालके प्रभावसे जब प्रजा अत्यन्त पीड़ित होने लगेगी, तब भयंकर अधर्मका आश्रय लेकर शठतापूर्ण बर्ताव करेगी। कोई बन्धन न रहनेके कारण सब लोग लोभसे व्याप्त हो झुंड-के-झुंड निकलकर एक दूसरेको लूटेंगे और मारेंगे। सभी श्रमसे पीड़ित हो अत्यन्त व्याकुल रहेंगे। उस समय वैदिक और स्मार्त धर्म नष्ट हो जानेपर सब एक दूसरेके आघातसे नष्ट होंगे। धार्मिक और सामाजिक मर्यादाका उल्लङ्घन करेंगे। सबमें करुणा, स्नेह और लज्जाका अत्यन्त अभाव हो जायगा। सभी लोग नाटे कदके होंगे, उनकी पूरी आयु पचीस वर्षकी होगी। उनके मन और इन्द्रियाँ विषादसे व्याकुल होंगी और वे घर तथा स्त्रीका परित्याग करके हाहाकार करते हुए बाहर भटकेंगे। वर्षा न होनेसे सबकी जीविका मारी जायगी और सब लोग दुःखी हो कृषि और पशुपालनका काम छोड़कर पर्वतोंपर रहने लगेंगे। अपना देश छोड़कर नदी और समुद्रके तटपर निवास करेंगे, पर्वतोंकी गुफाओंमें रहेंगे, अत्यन्त दुःखी हो मांस और मूल-फलसे जीवन-निर्वाह करेंगे। पुराने चीथड़े, वल्कल और पत्ते तथा मृगचर्म धारण करेंगे। सभी अकर्मण्य तथा आवश्यक साधनोंसे भी रहित होंगे। उस समय शाल्य नामक म्लेच्छ धर्मका विनाश करनेके लिये उन सबका संहार करेगा। उत्तम, मध्यम और अधम सब प्रकारकी श्रेणियोंका विनाश करके वह अत्यन्त भयङ्कर कर्म करनेवाला होगा। तब उसका वध करनेके लिये सम्पूर्ण जगत्के स्वामी साक्षात् भगवान् विष्णु सम्भल-ग्राममें श्रीविष्णुयशाके पुत्र होकर अवतीर्ण होंगे और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ जाकर उस 'शाल्य' नामवाले म्लेच्छका संहार करेंगे। वे सब ओर घूम-घूमकर करोड़ों और अरबों पापियोंका वध करके उस धर्मका पालन करेंगे, जो वेदमूलक है। साधु पुरुषोंके लिये धर्मरूपी नौकाका निर्माण करके अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेके पश्चात् वे भगवान् 'कल्कि' परम धाममें पधारेंगे। राजन्! उसके बाद फिर सत्ययुगका आरम्भ होगा। प्रथम सत्ययुग,

* कलेर्दोषनिधेश्चैव शृणु चैकं महागुणम्।
यदल्पेन तु कालेन सिद्धिं गच्छन्ति मानवाः॥
(स्क० मा० कुमा० ३५। ११५)

† त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः।
यथा क्लेशं चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्यते कलौ॥
युगत्रयेण तावन्तः सिद्धिं गच्छन्ति पार्थिव।
यावन्तः सिद्धिमायान्ति कलौ हरिहरव्रताः॥
(स्क० मा० कुमा० ३५। ११७-११८)

अन्तिम सत्ययुग तथा अट्ठाईसवाँ कलियुग ये अन्य युगोंसे कुछ विशिष्टता रखते हैं। शेष युगोंकी प्रवृत्ति औरोंके समान ही होती है। कलियुग बीतनेपर सत्ययुगके प्रारम्भमें राजा मरु (अथवा पुरु) से सूर्यवंश, देवापिसे चन्द्रवंश तथा श्रुतदेवसे ब्राह्मणवंशकी परम्परा चालू होगी। राजन्! इस प्रकार चारों युगोंकी व्यवस्था बदलती रहती है। चारों युगोंमें वही लोग धन्य हैं, जो भगवान् शङ्कर और विष्णुका भजन करते हैं।

त्रिदेवोंकी श्रेष्ठता और पापोंके भेद

करन्धमने पूछा—ब्रह्मन्! कोई भगवान् शिवकी, कोई विष्णुकी तथा कोई ब्रह्माजीकी शरण लेनेसे सर्वोत्कृष्ट मोक्षकी प्राप्ति बतलाते हैं; किंतु आप किससे मुक्ति मानते हैं?

महाकालने कहा—नरश्रेष्ठ! इन तीनों देवताओंकी महिमा अपार है। इस विषयमें बड़े-बड़े योगीश्वरोंका भी मन मोहित हो जाता है, फिर मेरी तो बात ही क्या है? कहते हैं, प्राचीन कालमें कभी नैमिषारण्यनिवासी मुनियोंको भी यह सन्देह हुआ था कि इन तीनों देवताओंमें कौन सबसे श्रेष्ठ है। तब वे ब्रह्मलोकमें गये। उसी समय भगवान् ब्रह्माने इस श्लोकका पाठ किया—

अनन्ताय नमस्तस्मै यस्यान्तो नोपलभ्यते।
महेशाय च द्वावेतौ मयि स्तां सुमुखौ सदा॥

'उन भगवान् अनन्तको नमस्कार है, जिनका कहीं अन्त नहीं मिलता तथा जो सबके महान् ईश्वर हैं, उन भगवान् शङ्करको भी नमस्कार है। ये दोनों देवता सदा मुझपर प्रसन्न रहें।'

इस श्लोकके अनुसार भगवान् विष्णु और शङ्करकी श्रेष्ठताका निश्चय करके वे सब मुनि क्षीरसागरको गये। वहाँ योगेश्वर भगवान् विष्णुने इस श्लोकका पाठ किया—

ब्रह्माणं सर्वभूतेषु परमं ब्रह्मरूपिणम्।
सदाशिवं च वन्दे तौ भवेतां मङ्गलाय मे॥

'मैं सम्पूर्ण भूतोंमें व्यापक परब्रह्मस्वरूप भगवान् ब्रह्मा और सदाशिवको प्रणाम करता हूँ। वे दोनों मेरे लिये मङ्गलकारी हों।'

यह श्लोक सुनकर उन ब्रह्मर्षियोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे वहाँसे हटकर पुनः कैलाशपर्वतपर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् शङ्कर गिरिराजनन्दिनी उमासे इस प्रकार कह रहे हैं—

एकादश्यां प्रनृत्यामि जागरे विष्णुसद्मनि।
सदा तपस्याञ्चरामि प्रीत्यर्थं हरिवेधसोः॥

'देवि! मैं भगवान् विष्णु और ब्रह्माजीकी प्रसन्नताके लिये भगवान् विष्णुके मन्दिरमें एकादशीको जागरणपूर्वक नृत्य करता हूँ तथा उन्हीं दोनोंकी प्रसन्नताके लिये सदा तपस्या किया करता हूँ।'

यह सुनकर वे मुनिलोग वहाँसे भी खिसक आये और आपसमें कहने लगे—जब ये तीनों देवता ही एक दूसरेका पार नहीं पाते, तब उनके द्वारा उत्पन्न किये हुए महर्षियोंकी सन्तान-परम्परामें जन्म लेनेवाले हमलोगोंकी क्या गणना है? जो इन तीनोंमेंसे किसी एकको उत्तम, मध्यम या अधम बतलाते हैं, वे झूठ बोलनेवाले और पापात्मा हैं। उन्हें निश्चय ही नरकमें जाना पड़ता है। राजेन्द्र! नैमिषारण्य-वासी तपस्वी मुनियोंने ऐसा ही निश्चय किया। यह सत्य ही है और मेरा भी यही स्पष्ट मत है। सहस्रों जप करनेवाले, सहस्रों वैष्णव तथा सहस्रों शैव ब्रह्मा, विष्णु और शिवका अनुगमन (आराधन) करके अपनेको संसार-बन्धनसे मुक्त कर चुके हैं। इसलिये जिसका हार्दिक अनुराग जिस देवताके प्रति स्पष्टरूपसे प्रकट हो, वह उसीका भजन करे। इससे वह पापरहित हो सकता है, यही मेरा सर्वोत्तम मत है।*

करन्धमने पूछा—विप्रवर! वे कौनसे पाप हैं, जिनके द्वारा मोहित चित्तवाले मनुष्यका मन न तो देवतामें लगता है और न धर्मोंमें ही?

महाकालने कहा—राजन्! अपनी चित्तवृत्तियोंके भेदसे अधर्मके भेद जानने चाहिये। अधर्म तीन प्रकारके हैं—स्थूल, सूक्ष्म और अत्यन्त सूक्ष्म। ये ही अपने करोड़ों भेदोंके द्वारा अनेक प्रकारके हो जाते हैं। इनमेंसे जो स्थूल पापसमुदाय नरककी प्राप्ति करानेवाले हैं, उनका संक्षेपसे वर्णन किया जाता है। उन पापोंका अनुष्ठान मन, वाणी और कर्मोंद्वारा होता है। उनमेंसे मानसिक पापके चार

* तस्माद्यस्य मनोरागो यस्मिन् देवे भवेत्स्फुटम्।
स तं भजेद्विपापः स्यान्ममेदं मतमुत्तमम्॥
(स्क० मा० कुमा० ३६। १४)

त्रिदेवोंकी एकता

[पृष्ठ १३०

अर्चाविग्रहसे प्रकट होकर भगवान् विष्णु ऐतरेयको दर्शन दे रहे हैं।

[पृष्ठ १४४

भेद हैं,—पर-स्त्रीचिन्तन, दूसरोंके धन हड़प लेनेका सङ्कल्प, अपने मनसे किसीका भी अनिष्टचिन्तन तथा न करने योग्य कार्योंके लिये मनमें आग्रह रखना । इसी प्रकार वाचिक पापकर्मके भी चार भेद हैं—असङ्गत वचन बोलना, झूठ बोलना, अप्रिय भाषण करना तथा दूसरोंकी निन्दा और चुगली करना । शारीरिक पापकर्म भी चार प्रकारके हैं—अभक्ष्य-भक्षण, हिंसा, मिथ्या भोगोंका सेवन तथा पराये धनका अपहरण ।* इस प्रकार मन, वाणी और शरीरसे होनेवाले ये बारह प्रकारके पाप-कर्म बताये गये । इनके भेदोंका पुनः वर्णन करूँगा, जिनका फल अनन्त है । जो संसार-समुद्रसे तारनेवाले महादेवजीसे द्वेष रखते हैं, वे महान् पातकोंसे युक्त होनेके कारण नरकाग्नियोंमें जलते हैं । निरन्तर फल देनेवाले छः महापातक बताये जाते हैं-(१) जो मन्दिर आदिमें भगवान् शङ्करको देखकर न तो नमस्कार करते हैं और (२) न उनकी स्तुति ही करते हैं, (३) अपितु भगवान्‌के सामने निःशङ्क हो मनमानी चेष्टा करते हुए खड़े होते और क्रीडा-विलास आदि करते हैं, (४) भगवान् शिव तथा गुरुजनके समीप पूजा, नमस्कार आदि आवश्यक शिष्टाचारोंका पालन नहीं करते, (५) शिवशास्त्रोंमें बताये हुए सदाचारको नहीं मानते, (६) और शिवभक्तोंसे द्वेष रखते हैं । ये छहों प्रकारके मनुष्य महापातकी समझे जाते हैं । जो पापात्मा अपने गुरुका, कष्टमें पड़े हुए व्यक्तिका, असमर्थ पुरुषका, विदेश गये हुए व्यक्तिका तथा शत्रुओंद्वारा अपमानित मनुष्यका परित्याग करता है अथवा उनके स्त्री-पुत्र एवं मित्रोंकी अवहेलना करता है, उसका यह कृत्य गुरुनिन्दाके समान महापातक समझना चाहिये । ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, (सुवर्णकी) चोरी करनेवाला, गुरुपत्नीगामी—ये चार महापातकी हैं । जो इनके पास संसर्ग रखता है, वह पाँचवाँ महापातकी है ।* जो लोग क्रोधसे, द्वेषसे, भयसे अथवा लोभसे ब्राह्मणपर उसके मर्मको अत्यन्त पीड़ा पहुँचानेवाले महान् दोषका आरोप करते हैं, वे ब्रह्महत्यारे कहे गये हैं । जो याचना करनेवाले अकिञ्चन ब्राह्मणको बुलाकर पीछे 'नहीं है' ऐसा कहते हुए देना अस्वीकार कर देता है, वह भी ब्रह्महत्या करनेवाला माना गया है । जो सभामें उदासीनभावसे बैठे हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणको अपने विद्या-अभिमानसे निस्तेज करनेकी चेष्टा करता है, वह ब्राह्मणघाती बताया गया है । जो गुरुजनोंके साथ बलपूर्वक विरोध करके अपने झूठे गुणोंका बखान करते हुए अपने आपको उत्कृष्ट सिद्ध करना चाहता है, उसे भी ब्रह्महत्यारा कहा गया है । भूख-प्याससे जिनके शरीरको सन्ताप हो रहा है, अतएव जो भोजन करनेके इच्छुक हैं, ऐसे ब्राह्मणोंके भोजनमें जो विघ्न डालता है, उसे ब्राह्मण-घाती कहते हैं । जो सबकी चुगली करता है, सब लोगोंके छिद्र ढूँढ़नेमें ही लगा रहता है, सबके मनमें उद्वेग पैदा करता है तथा जिसमें क्रूरता भरी हुई है, ऐसा मनुष्य ब्रह्महत्यारा माना गया है । जो प्याससे पीड़ित हो जल पीनेके लिये जलाशयपर जाती हुई गौओंके मार्गमें विघ्न उपस्थित करता है, उसे गोघाती कहते हैं । ब्राह्मणोंने न्यायपूर्वक जिस धनका उपार्जन किया है, उसे छल-बलसे हर लेना ब्रह्महत्याके समान माना गया है ।

माता-पिताका त्याग करना, झूठी गवाही देना, अपने मित्रका वध करना, अभक्ष्य-भक्षण करना, किसी स्वार्थवश वनजन्तुओंका वध करना, क्रोधमें आकर गाँव, वन और गोशालाओंमें आग लगा देना इत्यादि बड़े भयानक पाप मदिरापानके समान माने गये हैं । दरिद्र मनुष्योंका सर्वस्व हर लेना; मनुष्य, स्त्री, हाथी और घोड़ोंको चुरा लेना; गौ, भूमि, रत्न, सुवर्ण, ओषधियोंके रस, चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी तथा रेशमी वस्त्रोंका अपहरण करना तथा हाथमें दी हुई धरोहरको हड़प लेना आदि पाप सुवर्णकी चोरीके समान माने गये हैं । पुत्र और मित्रकी स्त्रियों तथा बहिनोंके साथ सम्भोग करना, कन्याके साथ व्यभिचारका दुःसाहस करना, चाण्डालकी स्त्रियोंको अपने उपभोगमें लाना तथा अपने समान वर्णवाली स्त्रीके साथ भी व्यभिचार करना गुरुपत्नीगमनके समान माना गया है ।

---

* परस्त्रीद्रव्यसंकल्पश्चेतसानिष्टचिन्तनम् ।
अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्धा कर्म मानसम् ॥
असम्बद्धप्रलापित्वमसत्यं चाप्रियं च यत् ।
परापवादं पैशुन्यं चतुर्धा कर्म वाचिकम् ॥
अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्याकामस्य सेवनम् ।
परस्वानामुपादानं चतुर्धा कर्म कायिकम् ॥
(स्क० मा० कुमा० ३६ । १८—२०)

* ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥
(स्क० मा० कुमा० ३६ । २८)

अर्चाविग्रहसे प्रकट होकर भगवान् विष्णु ऐतरेयको दर्शन दे रहे हैं।

[पृष्ठ १४४

भेद हैं,—पर-स्त्रीचिन्तन, दूसरोंके धन हड़प लेनेका सङ्कल्प, अपने मनसे किसीका भी अनिष्टचिन्तन तथा न करने योग्य कार्योंके लिये मनमें आग्रह रखना। इसी प्रकार वाचिक पापकर्मके भी चार भेद हैं—असङ्गत वचन बोलना, झूठ बोलना, अप्रिय भाषण करना तथा दूसरोंकी निन्दा और चुगली करना। शारीरिक पापकर्म भी चार प्रकारके हैं—अभक्ष्य-भक्षण, हिंसा, मिथ्या भोगोंका सेवन तथा पराये धनका अपहरण।* इस प्रकार मन, वाणी और शरीरसे होनेवाले ये बारह प्रकारके पाप-कर्म बताये गये। इनके भेदोंका पुनः वर्णन करूँगा, जिनका फल अनन्त है। जो संसार-समुद्रसे तारनेवाले महादेवजीसे द्वेष रखते हैं, वे महान् पातकोंसे युक्त होनेके कारण नरकाग्नियोंमें जलते हैं। निरन्तर फल देनेवाले छः महापातक बताये जाते हैं-(१) जो मन्दिर आदिमें भगवान् शङ्करको देखकर न तो नमस्कार करते हैं और (२) न उनकी स्तुति ही करते हैं, (३) अपितु भगवान्के सामने निःशङ्क हो मनमानी चेष्टा करते हुए खड़े होते और क्रीडा-विलास आदि करते हैं, (४) भगवान् शिव तथा गुरुजनके समीप पूजा, नमस्कार आदि आवश्यक शिष्टाचारोंका पालन नहीं करते, (५) शिवशास्त्रोंमें बताये हुए सदाचारको नहीं मानते, (६) और शिवभक्तोंसे द्वेष रखते हैं। ये छहों प्रकारके मनुष्य महापातकी समझे जाते हैं। जो पापात्मा अपने गुरुका, कष्टमें पड़े हुए व्यक्तिका, असमर्थ पुरुषका, विदेश गये हुए व्यक्तिका तथा शत्रुओंद्वारा अपमानित मनुष्यका परित्याग करता है अथवा उनके स्त्री-पुत्र एवं मित्रोंकी अवहेलना करता है, उसका यह कृत्य गुरुनिन्दाके समान महापातक समझना चाहिये। ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, (सुवर्णकी) चोरी करनेवाला, गुरु-पत्नीगामी—ये चार महापातकी हैं। जो इनके पास संसर्ग रखता है, वह पाँचवाँ महापातकी है।० जो लोग क्रोधसे, द्वेषसे, भयसे अथवा लोभसे ब्राह्मणपर उसके मर्मको अत्यन्त पीड़ा पहुँचानेवाले महान् दोषका आरोप करते हैं, वे ब्रह्महत्यारे कहे गये हैं। जो याचना करनेवाले अकिञ्चन ब्राह्मणको बुलाकर पीछे 'नहीं है' ऐसा कहते हुए देना अस्वीकार कर देता है, वह भी ब्रह्महत्या करनेवाला माना गया है। जो सभामें उदासीनभावसे बैठे हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणको अपने विद्या-अभिमानसे निस्तेज करनेकी चेष्टा करता है, वह ब्राह्मणघाती बताया गया है। जो गुरुजनोंके साथ बलपूर्वक विरोध करके अपने झूठे गुणोंका बखान करते हुए अपने आपको उत्कृष्ट सिद्ध करना चाहता है, उसे भी ब्रह्महत्यारा कहा गया है। भूख-प्याससे जिनके शरीरको सन्ताप हो रहा है, अतएव जो भोजन करनेके इच्छुक हैं, ऐसे ब्राह्मणोंके भोजनमें जो विघ्न डालता है, उसे ब्राह्मण-घाती कहते हैं। जो सबकी चुगली करता है, सब लोगोंके छिद्र ढूँढ़नेमें ही लगा रहता है, सबके मनमें उद्वेग पैदा करता है तथा जिसमें क्रूरता भरी हुई है, ऐसा मनुष्य ब्रह्महत्यारा माना गया है। जो प्याससे पीड़ित हो जल पीनेके लिये जलाशयपर जाती हुई गौओंके मार्गमें विघ्न उपस्थित करता है, उसे गोघाती कहते हैं। ब्राह्मणोंने न्यायपूर्वक जिस धनका उपार्जन किया है, उसे छल-बलसे हर लेना ब्रह्महत्याके समान माना गया है।

माता-पिताका त्याग करना, झूठी गवाही देना, अपने मित्रका वध करना, अभक्ष्य-भक्षण करना, किसी स्वार्थ-वश वनजन्तुओंका वध करना, क्रोधमें आकर गाँव, वन और गोशालाओंमें आग लगा देना इत्यादि बड़े भयानक पाप मदिरापानके समान माने गये हैं। दरिद्र मनुष्योंका सर्वस्व हर लेना; मनुष्य, स्त्री, हाथी और घोड़ोंको चुरा लेना; गौ, भूमि, रत्न, सुवर्ण, ओषधियोंके रस, चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी तथा रेशमी वस्त्रोंका अपहरण करना तथा हाथमें दी हुई धरोहरको हड़प लेना आदि पाप सुवर्णकी चोरीके समान माने गये हैं। पुत्र और मित्रकी स्त्रियों तथा बहिनोंके साथ सम्भोग करना, कन्याके साथ व्यभिचारका दुःसाहस करना, चाण्डालकी स्त्रियोंको अपने उपभोगमें लाना तथा अपने समान वर्णवाली स्त्रीके साथ भी व्यभिचार करना गुरुपत्नीगमनके समान माना गया है।

---

* परस्त्रीद्रव्यसंकल्पश्चेतसानिष्टचिन्तनम्।
अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्धा कर्म मानसम्॥
असम्बद्धप्रलापित्वमसत्यं चाप्रियं च यत्।
परापवादं पैशुन्यं चतुर्धा कर्म वाचिकम्॥
अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्याकामस्य सेवनम्।
परस्वानामुपादानं चतुर्धा कर्म कायिकम्॥
(स्क० मा० कुमा० ३६। १८—२०)

० ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः।
महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गी च पञ्चमः॥
(स्क० मा० कुमा० ३६। २८)

अहङ्कार, अधिक क्रोध, पाखण्ड, कृतघ्नता, अत्यन्त विषयासक्ति, कृपणता, शठता, ईर्ष्या तथा बिना किसी अपराधके ही पुत्र, मित्र, पत्नी, स्वामी और सेवकोंका परित्याग करना; साधु, बन्धु, तपस्वी, गाय, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और शूद्रोंको मारना-पीटना, भगवान् शिवके आवास-स्थानपर लगे हुए वृक्षों और पुष्पवाटिका आदिको नष्ट करना, जो यज्ञके अधिकारी नहीं हैं, उनका यज्ञ कराना, जिनसे याचना करनी उचित नहीं, उनसे याचना करना; यज्ञ, बगीचा, पोखरा, पत्नी और सन्तानको बेचना; तीर्थ-यात्रा, उपवास, व्रत तथा मन्दिरनिर्माण आदिके पुण्योंका विक्रय करना; स्त्रीके धनसे जीविका चलाना, स्त्रियोंके अत्यन्त वशीभूत रहना, स्त्रियोंकी रक्षा न करना, ऋण न चुकाना, झूठ बोलकर जीविका चलाना, साध्वी कन्याकी बातोंमें दोष निकालना, विष तथा मारणयन्त्रोंका प्रयोग करना, किसीका मूलोच्छेद कर डालना, उच्चाटन एवं अभिचार कर्म करना, राग और द्वेषके कार्य करना, समय-पर संस्कार न कराना, स्वीकार किये हुए व्रतका परित्याग करना, सब प्रकारके आहारोंका सेवन करना, असत्-शास्त्रों-के अनुसार चलना, सूखे तर्कका सहारा लेना; देवता, अग्नि, गुरु, साधु, गौ, ब्राह्मण, राजाओं तथा चक्रवर्ती नरेशोंकी उनके सामने या परोक्षमें निन्दा करना—ये सब उपपातक हैं। जिन्होंने श्राद्ध और देवयज्ञका परित्याग कर दिया है, अपने वर्णाश्रमोचित कर्मोंको सर्वथा छोड़ दिया है; जो दुराचारी, नास्तिक, पापी और सदा झूठ बोलनेवाले हैं; जो पर्वके समय अथवा दिनमें, जलमें, विपरीत योनिमें, पशु-योनिमें, रजस्वलाओंमें अथवा अयोनिमें मैथुन करता है; जो सबसे अप्रिय बोलते हैं, क्रूर हैं, प्रतिज्ञाको तोड़नेवाले हैं, तालाब और कुँओंको नष्ट करनेवाले हैं; जो रसका विक्रय करते हैं तथा एक ही पङ्क्तिमें बैठे हुए लोगोंको भोजन कराते समय पङ्क्ति-भेद करते हैं, वे लोग इन सभी पापोंके कारण उपपातकी माने गये हैं।

जो इनकी अपेक्षा कुछ न्यून श्रेणीके पापोंसे युक्त हैं, वे पापी कहलाते हैं। अब उनका वर्णन सुनो। जो गौ, ब्राह्मण, कन्या, स्वामी, मित्र तथा तपस्वीजनोंके कार्योंमें अन्तर डालते हैं, वे पापी माने गये हैं। जो दूसरोंकी सम्पत्तिसे जलते हैं, नीच जातिकी स्त्रीका सेवन करते हैं, गोशाला, अग्नि, जल, सड़क तथा वृक्षोंकी छायामें, वृक्षोंपर, बगीचों और मन्दिरोंमें जो लोग मल-मूत्र आदिका त्याग करते हैं, वे पापी हैं। मतवाले होकर किलकारियाँ भरते हैं; वञ्चकवेष, वञ्चनापूर्ण कार्य तथा वञ्चकोंके-से आचरण करते हैं; झूठ और कपटके ही व्यवहारमें लगे रहते हैं, कपटपूर्ण शासन करते हैं और कूटनीतिका आश्रय लेकर युद्ध करते हैं, वे सब पापी हैं। जो अपने सेवकोंके प्रति अत्यन्त निष्ठुर और पशुओंका दमन करनेवाला (उनके अण्डकोष छेदन करनेवाला) है; जो झूठी बातें बोलता और स्त्री, पुत्र, मित्र, बाल, वृद्ध, दुर्बल, रोगी, भृत्यवर्ग, अतिथिवर्ग तथा भाई-बन्धुओंको भूखे छोड़कर अकेला ही भोजन करता है; स्वयं तो मिठाई खाता और ब्राह्मणोंको दूसरी वस्तुएँ देता है, उसका पाक व्यर्थ जानना चाहिये, अर्थात् उसके किये हुए दान और यज्ञ आदिका कोई फल नहीं मिलता, वह ब्रह्मवादी विद्वानोंद्वारा निन्दित होता है। जो अजितेन्द्रिय मनुष्य स्वयं ही कोई नियम लेकर फिर उन्हें त्याग देते हैं, प्रतिदिन गौओंको मारते और उन्हें बार-बार त्रास देते हैं, जो दुर्बलोंका पोषण नहीं करते, पशुओंके ऊपर अधिक भार लादकर उन्हें पीड़ा देते हैं, उनकी पीठमें घाव हो जानेपर भी उन्हें सवारीमें जोतते हैं, उनको भोजन न देकर स्वयं खाते हैं और रोगी होनेपर भी उनकी दवा नहीं करते, वे सब पापी हैं। जो सामुद्रिक शास्त्रको जीविकाका साधन बनाता है, शूद्रकुलमें उत्पन्न स्त्रीको अपनी भार्या बनाकर रखता है और जो धर्मात्मा होनेका ढोंग रचता है, वे सब-के-सब पापी माने गये हैं। जो राजा शास्त्रीय आज्ञाका उल्लङ्घन करके प्रजासे मनमाना कर लेता है, सदा दण्ड देनेकी ही रुचि रखता है अथवा जो अपराधीको भी दण्ड देनेकी रुचि नहीं रखता तथा जिसके राज्यमें प्रजा घूस लेनेवाले अधिकारियों और चोरोंसे पीड़ित होती है, वह नरककी आगमें पकाया जाता है। जो चोरीसे दूर रहनेवालेको चोर समझता है और वास्तविक चोरको चोर नहीं मानता, वह आलस्यदोषसे दूषित तथा दुर्व्यसनोंमें आसक्त राजा नरकमें जाता है।* पुराणवेत्ता विद्वान् इस प्रकारके और भी बहुत-से पाप बताते हैं। दूसरोंकी कोई भी वस्तु, वह सरसोंके

* यश्च शास्त्रमतिक्रम्य स्वेच्छया चाहरेत्करम्।
सदा दण्डरुचिर्यश्च यो वा दण्डरुचिर्न हि॥
उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते।
यस्य राज्ञः प्रजा राष्ट्रे पच्यते नरकेषु सः॥
अचौरं चौरवत्पश्येच्चौरं चाचौररूपिणम्।
आलस्योपहतो राजा व्यसनी नरकं व्रजेत्॥
(स्क० मा० कुमा० २९। ७२—७५)

बराबर भी छोटी क्यों न हो, अपहरण करनेपर मनुष्य पापी एवं नरकमें गिरनेका अधिकारी होता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । इस प्रकारके पाप बन जानेपर मनुष्य प्राणत्यागके पश्चात् नरकका कष्ट भोगनेके लिये पूर्वशरीरकी ही भाँति एक यातनादेह प्राप्त करता है । अतः नरकमें डालनेवाले इन तीनों ही प्रकारके पापकर्मोंको त्याग देना चाहिये[1] और श्रद्धापूर्वक भगवान् सदाशिवकी शरण लेनी चाहिये । संसर्गवश, कौतूहलवश अथवा लोभसे भी भगवान् शङ्करके प्रति किये हुए नमस्कार, स्तुति, पूजा तथा नाम-संकीर्तन कभी निष्फल नहीं होते ।

शिवपूजाकी विधि तथा सदाचारका निरूपण

करन्धम बोले—ब्रह्मन् ! आप भगवान् शङ्करकी पूजाका विधान संक्षेपसे बतानेकी कृपा करें, जिसका पालन करनेसे मनुष्य शिवके पूजनका पूरा फल प्राप्त कर सके ।

महाकालने कहा—राजन् ! सदा प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकालमें भगवान् शङ्करका भजन करे । उनके दर्शन और स्पर्शसे मनुष्य निश्चय ही कृतार्थ हो जाता है । पहले स्नान करे अथवा यदि रोग आदि सङ्कटसे ग्रस्त हो, तो केवल भस्मस्नान करे अथवा कण्ठतक जलसे स्नान करे । यह भी सम्भव न हो, तो केवल मन्त्रस्नान ही कर ले । स्नानके पश्चात् ऊनी वस्त्र पहने अथवा श्वेत वस्त्र धारण करे या किसी रंगमें रँगा हुआ नवीन वस्त्र पहने । मैला अथवा सिला हुआ वस्त्र न धारण करे । धौत वस्त्रके अतिरिक्त उत्तरीय वस्त्र भी धारण करना चाहिये, अन्यथा उसके बिना पूजन निष्फल होता है । जो पुरुष ललाटमें, हृदयमें और दोनों कंधोंपर भस्मका त्रिपुण्ड्र धारण करके प्रसन्नतापूर्वक महादेवजीकी पूजा करता है, वह अल्पकालमें भगवान् शिवका दर्शन पाता है । उपासक अपने सब दोषोंको मनसे निकालकर भगवान् शिवके मन्दिरमें प्रवेश करे । प्रवेश करके पहले महादेवजीको प्रणाम करे । तदनन्तर मन्दिरके गर्भगृहमें प्रवेश करे, फिर हाथ-पैर धोकर मन-ही-मन भगवान्का चिन्तन करते हुए उनके श्रीविग्रहपर चढ़े हुए निर्माल्यको हटावे । जो भगवान् शिवके मन्दिरमें भक्तिपूर्वक मार्जन करने (झाड़ू देने) का कार्य करता है, भगवान् शङ्कर भी उसके अन्तःकरणका मार्जन (शोधन) कर देते हैं । तत्पश्चात् स्वच्छ जलसे गड़ुवोंको भर ले । सभी गड़ुवे बराबर और सुन्दर होने चाहिये । उनमें कोई छेद न रहे, वे फूटे न हों, सबकी बनावट अच्छी हो, सभी वस्त्रसे छाने हुए जलसे परिपूर्ण हों, उन्हें चन्दन और धूपसे सुवासित किया गया हो; 'ॐ नमः शिवाय' इस पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करते हुए उन गड़ुवोंको धोया गया, भरा गया और लाया गया हो, ऐसे एक सौ आठ गड़ुवोंका जुगाड़ कर ले । इतना न हो तो अट्ठाईस अथवा अठारह गड़ुवोंका प्रबन्ध करे । कम-से-कम चार गड़ुवे अवश्य रक्खे, इतनेसे कम न करे । दूध, दही, घी, शहद तथा ईखका रस—इन सब सामग्रियोंको एकत्र करके भगवान् शिवके वामभागमें रख दे । तदनन्तर बाहर निकलकर पहले प्रतिहारों (द्वारपालों) की पूजा करे, उन सबके वाचक मन्त्र क्रमशः बतलाये जाते हैं—'ॐ गं गणपतये नमः, ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः, ॐ गुं गुरुभ्यो नमः'—इन तीन मन्त्रोंसे आकाशमें पूजन-सामग्री समर्पित करे । तत्पश्चात् चारों दिशाओंमें क्रमशः कुलदेवता, नन्दी, महाकाल और धाता-विधाताकी पूजा करे, इनकी पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—'ॐ कुं कुलदेवतायै नमः, ॐ नं नन्दिने नमः, ॐ मं महाकालाय नमः, ॐ धां धात्रे विधात्रे नमः ।'

इस प्रकार बाहर पूजा करनेके पश्चात् भीतर प्रवेश करके शिवलिङ्गसे कुछ दक्षिण भागमें पवित्रतापूर्वक उत्तराभिमुख होकर बैठे । शरीरको समभावसे रखते हुए आसनपर आसीन हो क्षणभर भगवान्का ध्यान करे । कमलके आकारका सूर्यमण्डल है, उसके मध्यभागमें चन्द्रमण्डलकी स्थिति है, उसके भी मध्यभागमें अग्निमण्डल है जो धर्म[2] आदिसे घिरा हुआ है । इस प्रकार अग्निमण्डलका चिन्तन करके उसके मध्यभागमें विश्वरूप भगवान् शङ्करका भावनाद्वारा साक्षात्कार करे । भगवान् शिव अपनी वामा और ज्येष्ठा आदि शक्तियोंसे संयुक्त हैं । उनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं, प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र शोभा पा रहे हैं, उनके मस्तक चन्द्रमासे विभूषित हैं, भगवान्के

१. स्थूल, सूक्ष्म और अत्यन्त सूक्ष्म अथवा महापातक, उपपातक तथा सामान्य पाप—ये ही त्रिविध पाप हैं ।

२ धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य ।

वामाङ्गमें गिरिराजनन्दिनी भगवती उमा विराजमान हैं तथा सिद्धगण बारंबार उनकी स्तुति कर रहे हैं। इस प्रकार भगवान् शिवका ध्यान करे।

राजन्! ध्यानके पश्चात् शङ्करजीकी सेवामें पाद्य और अर्घ्य निवेदन करे। जल, अक्षत, कुशा, चन्दन, पुष्प, सरसों, दूध, दही और मधु—ये अर्घ्यके नौ अङ्ग बताये गये हैं; इन सबको एकत्र करके अर्घ्य देना चाहिये। तत्पश्चात् श्रद्धासे आर्द्रचित्त हो शिवलिङ्गको स्नान कराना आरम्भ करे। पहले गड़ुवा हाथमें लेकर स्नान करावे, आधे गड़ुवेसे शिव-लिङ्गको पहले नहलावे, फिर हाथसे रगड़कर मैल साफ करे, पुनः गड़ुवेके समूचे जलसे स्नान करावे, स्नानके पश्चात् पूजन करे और धूप दे। इसके बाद भक्तिपूर्वक भगवान् शिवको प्रणाम करके मूलमन्त्रसे उन्हें स्नान करावे। 'ॐ हूं विश्वमूर्तये शिवाय नमः' यह द्वादशाक्षर मूलमन्त्र है। इसी मूलमन्त्रसे जल और धूपसे किये हुए पूजनके अतिरिक्त जल, दूध, दही, मधु, घृत और ईखके रसद्वारा पृथक्-पृथक् स्नान करावे। फिर सब गड़ुवोंके जलसे स्नान करावे। तदनन्तर गन्ध-द्रव्योंका लेपन करके श्रीविग्रहका रूखापन दूर करे। रूखापन दूर करके पुनः नहलावे और चन्दनका लेप करे। तत्पश्चात् भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे पूजन करे। उसकी विधि सुनो। आधार-पीठके अग्निकोणवाले पायेमें 'ॐ धर्माय नमः' इस मन्त्रसे धर्मकी पूजा करे, नैर्ऋत्य कोणवाले पायेमें 'ॐ ज्ञानाय नमः' इस मन्त्रके द्वारा ज्ञानका पूजन करे; इसी प्रकार वायव्य कोणमें 'ॐ वैराग्याय नमः', ईशान कोणवाले पायेमें 'ॐ ऐश्वर्याय नमः', पूर्व दिशावाले पायेमें 'ॐ अधर्माय नमः', दक्षिणमें 'ॐ अज्ञानाय नमः', पश्चिममें 'ॐअवैराग्याय नमः', उत्तरमें 'ॐ अनैश्वर्याय नमः'—इन मन्त्रोंद्वारा क्रमशः वैराग्य आदिकी पूजा करे। फिर कमलकी कर्णिकामें ही अनन्त आदिकी इन मन्त्रोंसे पूजा करे—ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ अर्कमण्डलाय नमः, ॐ सोममण्डलाय नमः, ॐ वह्निमण्डलाय नमः, ॐ वामाज्येष्ठादिपञ्चमन्त्रशक्तिभ्यो नमः, ॐ परम-प्रकृत्यै देव्यै नमः। इसके बाद ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात नामक पाँच मुखोंवाले, रुद्र-साध्य-वसु-आदित्य तथा विश्वेदेवादि देवस्वरूप, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज और जरायुजरूप स्थावर-जङ्गम मूर्ति परमेश्वर एवं विश्वमूर्ति शिवका नमस्कारपूर्वक पूजन करे। मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ईशान तत्पुरुषाघोरवामदेवसद्योजातपञ्चवक्त्राय रुद्रसाध्यवस्वादित्यविश्वेदेवादिदेवरूपायाण्डजस्वेदजोद्भिज-जरायुजरूपस्थावरजङ्गममूर्तये परमेश्वराय ॐ हूं विश्वमूर्तये शिवाय नमः।

तत्पश्चात् 'त्रिशूलधनुःखड्गकपालकुठारेभ्यो नमः'—इस मन्त्रसे त्रिशूल आदिकी पूजा करे। तदनन्तर जलाधारके मुखभागमें 'चण्डीश्वराय नमः' इस मन्त्रके द्वारा चण्डीश्वरकी पूजा करे।

इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन करके भगवान् शिवको अर्घ्य निवेदन करे। 'हे महादेवजी! जल, अक्षत, फूल और इन उत्तम फलोंसे युक्त यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये, पूजाकी पूर्तिके लिये मैं इसे समर्पित करता हूँ।' इस प्रकार अर्घ्य देनेके पश्चात् यदि अपनेमें शक्ति हो तो धनके द्वारा भी भगवान्का पूजन करे। इसके बाद क्रमशः धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे, घण्टा बजावे और आरती करे। देवाधिदेव महादेवजीके ऊपर शङ्ख आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ आरती घुमानी चाहिये। जो देवाधिदेव त्रिशूलधारी भगवान् शिवकी आरतीका दर्शन करता है, वह समस्त पातकोंसे मुक्त हो जाता है। फिर जो स्वयं ही भगवान्की आरती उतारेगा, उसके लिये तो कहना ही क्या है। जो भगवान् शिवके समीप नृत्य, संगीत तथा वाद्य—इन तीनोंका आयोजन करता है, उसपर भगवान् शिव बहुत सन्तुष्ट होते हैं; क्योंकि गीत और वाद्यका फल अनन्त होता है। तदनन्तर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा महादेवजीकी स्तुति करके दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर प्रणाम करे और देवेश्वर शिवसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करते हुए कहे—'भगवन्! मुझसे जो सुकृत अथवा दुष्कृत हुआ है उसके लिये आप क्षमा करें।'

जो इस प्रकार भगवान् शङ्करका विशेषतः इस महा-काललिङ्गमें पूजन करता है, वह अपने पिता, पितामह और प्रपितामहका सब पापोंसे उद्धार करके चिरकालतक रुद्रलोकमें निवास करता है। इस विधिसे भगवान् महेश्वरका उपासक होकर और सदाचारमें स्थित रहनेका व्रत लेकर जो मनुष्य बन्धनसे छूटनेके लिये तन्मय होकर भगवान् शिवका पूजन करता है, वह सब पापोंसे छूटकर शिवलोकमें जाता है। जो इस प्रकार भगवान् शङ्करकी पूजा करता है, उसने मानो समस्त संसारको तृप्त कर दिया। किंतु राजन्! यह सब पूजन उसीका सफल होता है, जो कभी सदाचारका उल्लङ्घन नहीं करता है। आचारसे धर्म सफल होता है, आचारसे ही मनुष्य स्वर्गका सुख भोगता है, आचारसे

आयु प्राप्त होती है तथा आचार अशुभ लक्षणोंको नष्ट कर देता है । जो इस जगत्‌में सदाचारका उल्लङ्घन करके स्वेच्छाचारपूर्ण बर्ताव करता है, उस मनुष्यके यज्ञ, दान और तप इस लोकमें कल्याणकारक नहीं होते ।* अतः सदाचारका भी कुछ संक्षिप्त परिचय दूँगा, उसे सुनो। गृहस्थको धर्म, अर्थ और काम—इन तीनोंके साधनके लिये यत्न करना चाहिये । इनकी सिद्धि होनेपर गृहस्थ पुरुषके लिये इहलोक और परलोकमें भी सिद्धि प्राप्त होती है ।

ब्राह्म-मुहूर्तमें उठे । उठकर धर्म और अर्थका चिन्तन करे । तत्पश्चात् शय्यासे उठकर मलत्यागके बाद कुल्ला-दाँतन कर ले । फिर स्नान करके द्विज सन्ध्योपासना करे । विद्वान् द्विजको उचित है कि वह शान्तचित्त, संयमी तथा पवित्र होकर पूर्व-सन्ध्याकी उपासना उस समय प्रारम्भ करे जब कि प्रातःकाल आकाशके तारे अभी कुछ दिखायी देते हों तथा पश्चिम-सन्ध्या सूर्यास्त होनेसे पहले ही प्रारम्भ करे । इस प्रकार न्यायपूर्वक सन्ध्योपासना करता रहे । आपत्तिकालके सिवा कभी भी सन्ध्या-कर्मका परित्याग नहीं करना चाहिये । राजन्! झूठ, असत्-प्रलाप तथा कठोरभाषण सदाके लिये त्याग दे । दुष्ट पुरुषोंकी सेवा, नास्तिकवाद तथा असत्-शास्त्रोंको भी सदाके लिये छोड़ दे ।† दर्पणमें मुँह देखना, दाँतन करना, बाल सँवारना और देवताओंकी पूजा करना—इन सब कार्योंको महर्षियोंने पूर्वाह्णमें करने योग्य बताया है। पलाशकी लकड़ीका आसन, खड़ाऊँ और दाँतन भी वर्जित हैं । विद्वान् पुरुष आसनको पैरसे न खींचे । एक ही साथ जल और अग्निको न ले जाय । गुरु, देवता तथा अग्निके सम्मुख पाँव न फैलावे । चौराहा, चैत्य-वृक्ष, देवालय, संन्यासी, विद्यामें बढ़े हुए पुरुष, गुरु तथा वृद्धजन—इन सबको अपने दाहिने करके चलना चाहिये । धर्मज्ञ पुरुषको आहार, विहार और मैथुन ओटमें रहकर ही करने चाहिये । इसी प्रकार अपनी वाणी और बुद्धिकी शक्ति, तपस्या, जीविका तथा आयुको अत्यन्त गुप्त रखना चाहिये ।* दिनमें उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके मल और मूत्रका त्याग करना चाहिये तथा रातमें दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके करना चाहिये । ऐसा करनेसे आयु नहीं घटती । अग्नि, सूर्य, गौ, व्रतधारी पुरुष, चन्द्रमा और जलके सम्मुख तथा सन्ध्याके समय मल-मूत्र त्याग करनेवाले मनुष्यकी बुद्धि नष्ट होती है ।† भोजन, शयन, स्नान, मल-मूत्रका त्याग तथा सड़कोंपर भ्रमण करनेपर दोनों हाथ, दोनों पैर और मुँह इन पाँचोंको भलीभाँति धोकर आचमन करे । नदीमें, श्मशान-भूमिमें, राखपर, गोबरपर, जोते-बोये हुए खेतमें तथा हरी-भरी घासवाली भूमिमें मल-मूत्रका त्याग न करे । बुद्धिमान् पुरुष कुएँ आदिसे निकाले हुए जलके द्वारा ही शौचक्रिया करे । जलके भीतरसे, देवस्थानसे, बाँबीसे और चूहोंके स्थानसे निकाली हुई तथा शौचावशिष्ट फेंकी हुई—इन पाँच प्रकारकी मिट्टियोंको त्याग दे । विद्वान् पुरुष हाथको उतना ही धोये जितनेसे मलकी गन्ध और लेप दूर हो जाय । अपने आपको ताड़ना न दे, दुःखमें न डाले, दोनों हाथोंसे अपना सिर न खुजलावे, स्त्रीकी रक्षा करे, उसके प्रति अकारण ईर्ष्या छोड़ दे, भगवान् सूर्यको अर्घ्य दिये बिना कोई कर्म न करे, प्राणियोंसे द्रोह न करके मनमें

---

* आचारात् फलते धर्मो ह्याचारात् स्वर्गमश्नुते ।
आचाराल्लभते चायुराचारो हन्त्यलक्षणम् ॥
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये ।
भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते ॥
(स्क० मा० कुमा० ३६ । १२३–१२५)

† ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चापि चिन्तयेत् ।
समुत्थाय त्वथाचम्य दन्तधावनपूर्वकम् ॥
सन्ध्यामुपासीत बुधः शान्तान्तः प्रयतः शुचिः ।
पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् ॥
उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि ।
वर्जयेदनृतं चासत् प्रलापं परुषं तथा ॥
असत्सेवामसद्वादस्त्वसच्छास्त्रं च पार्थिव ।
(स्क० मा० कुमा० ३६ । १२७—१३०)

* पादौ प्रसारयेन्नैव गुरुदेवाग्निसम्मुखे ।
चतुष्पथं चैत्यतरुं देवागारं तथा यतिम् ॥
विद्याधिकं गुरुं वृद्धं कुर्यादेतान् प्रदक्षिणान् ।
आहारनीहारविहारयोगा-
स्सुसंवृता धर्मविदा तु कार्याः ।
वाग्बुद्धिवीर्याणि तपस्तथैव
दानायुषी गुप्ततमे च कार्ये ॥
(स्क० मा० कुमा० ३६ । १३३—१३५)

† उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ ह्येवमायुर्न रिष्यते ॥
प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यञ्च प्रतिगां व्रतिनं प्रति ।
प्रतिसोमोदकं सन्ध्यां प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥
(स्क० मा० कुमा० ३६ । १३६–१३७)

ावान् शङ्करका चिन्तन करते हुए धनका उपार्जन करे। त्यन्त कृपण न होवे, किसीके प्रति ईर्ष्या न रक्खे, कृतघ्न होवे, दूसरोंसे द्रोह पैदा करनेवाले कार्यमें मन न ावे, हाथ-पैरसे चञ्चल न हो, नेत्रोंसे भी चपलता सूचित करे, सरल भावसे रहे, वाणीसे अथवा अङ्गोंकी ष्टाओंसे भी अपनी चपलताका परिचय न दे, अशिष्ट रुषका सङ्ग न करे, व्यर्थ विवाद और अकारण वैर न करे, ाम, दान और भेद—इन तीन उपायोंसे अपना मनोरथ सिद्ध रे। दण्डका आश्रय तो तभी लेना चाहिये जब उसके सिवा सरा कोई उपाय न रह जाय। फटा-टूटा आसन, टूटी खाट ौर फूटे बर्तनको त्याग दे। नृपश्रेष्ठ! अग्नि और शिवलिङ्ग —इन दोनोंके बीचसे न निकले। दो अग्नि, दो ब्राह्मण, पति ौर पत्नी, सूर्य और चन्द्रमाकी प्रतिमा तथा भगवान् शङ्कर ौर नन्दिकेश्वर-वृषभ इनके बीचमें होकर न जाय; क्योंकि नके बीचसे जानेवाला मनुष्य पापका भागी होता है। विद्वान् रुष एक वस्त्र धारण करके न तो भोजन करे, न अग्निमें ाहुति दे, न ब्राह्मणोंकी पूजा करे और न देवताओंकी र्चना ही करे। कूटना, पीसना, झाड़ देना, पानी छानना, ांधना, भोजन करना, सोना, उठना, जाना, छींकना, ार्यारम्भ करना, कार्यको समाप्त करना, मुँहसे अप्रिय वचन ंकल जाना, पीना, सूँघना, स्पर्श करना, सुनना, बोलनेकी च्छा करना, मैथुन करना तथा शौच कर्म—इन बीस कार्योंके होते ा करते समय जो सदा भगवान् शङ्करका नाम स्मरण करता , उसीको शिवभक्त जानना चाहिये; शेष दूसरे लोग नाम-ात्रके शिवभक्त कहे गये हैं। शिवजीका प्रत्येक कार्यमें स्मरण ्रनेवाला वह शिवभक्त निश्चय ही शिवस्वरूप होकर अन्तमें ावको ही प्राप्त होता है।

विद्वान् पुरुष परायी स्त्रीसे बातचीत न करे; यदि कभी ावश्यकतावश उनसे वार्तालाप करे तो माताजी! बहिनजी! ़टी! अथवा आर्ये! इस प्रकार सम्बोधन करके बोले। हाथ ौर मुँह जूठे हों तो कोई बात न करे और न किसी ास्तुका स्पर्श ही करे। उच्छिष्ट दशामें सूर्य, चन्द्रमा, तारे, देवता ौर अपने मस्तककी ओर देखना भी मना है। बहन, बेटी ाथवा माताके साथ भी एकान्तमें न बैठे; क्योंकि इन्द्रिय-ामुदाय दुर्जय होता है; उनसे विद्वान् पुरुष भी मोहमें पड़ ाते हैं।* यदि गुरुदेव घरपर आ जायँ तो उनके लिये स्वयं उठकर यत्नपूर्वक आसनकी व्यवस्था करे और चरणे मस्तक रखकर प्रणाम करे। विद्वान् मनुष्य उत्तर और पश्चि की ओर सिर करके कभी न सोवे। सिरान्हेकी ओर दक्षि दिशा अथवा पूर्वदिशाको रखकर शयन करना चाहिये रजस्वला स्त्रीका दर्शन-स्पर्श न करे, उसके साथ बा चीत भी नहीं करनी चाहिये। जलके भीतर मल-मूत्र अ मैथुन न करे। भगवान् शिवके भक्तको चाहिये कि अपने वैभवके अनुसार देवता, मनुष्य, ऋषि तथा पितरों उनका भाग समर्पित करके शेष अन्नका स्वयं भोजन करे पवित्र हो आचमन करके पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह कर दोनों हाथोंको घुटनोंके भीतर रखकर मौन भावसे भोजन करे उस समय भोजनमें ही मन लगाये रहे और अन्नके दोष चर्चा न करे। यदि वह अन्न किसी उच्छिष्ट आदि दोषसे दूषि हो गया हो तो उस दोषके प्रकट करनेमें कोई हानि न है, ऐसे दोषके अतिरिक्त किसी अन्य दोषकी चर्चा न करनी चाहिये। नग्न होकर न तो स्नान करे, न सोवे और चले ही। यदि गुरुके द्वारा कोई अनुचित कार्य भी हो जाय तो उसे अन्यत्र न कहे, वे क्रोधमें हों तो उन्हें मनावे। दूस लोगोंके मुखसे भी गुरुकी निन्दा न सुने। सैकड़ों का छोड़कर भी धर्मकी कथा-वार्ता सुने। प्रतिदिन धर्म-चर्च श्रवण करनेवाला मनुष्य अपने अन्तःकरणको उसी प्रकार शुद्ध कर लेता है, जैसे नित्यप्रति झाड़ देने अथवा सफाई करनेसे घर और दर्पण स्वच्छ होते हैं। सायङ्काल औ प्रातःकाल अतिथिकी पूजा करके भोजन करना चाहिये। दोनों सन्ध्याओंके समय सोना, पढ़ना और भोजन करना निषिद्ध है। सन्ध्याकालमें मोहवश भोजन करनेवाला मनुष्य शरावि तुल्य माना जाता है। स्नान करके मनुष्य अपने बालोंको न फटकारे। मार्गमें छींकने और थूकनेपर अपने दाहिने कानक स्पर्श करे तथा मन-ही-मन समस्त प्राणियोंसे इस अपराधके लिये क्षमा माँगे। नीलका रँगा हुआ वस्त्र न पहने, कपड़ेके उल्टा करके न पहने, मलिन वस्त्र त्याज्य है तथा जिसके कोर या किनारा न हो, ऐसा वस्त्र भी धारण करने योग्य नहीं है।

हाथ, मुँह और दोनों पैर धोकर आसनपर बैठे। दोनों हाथ घुटनोंके भीतर रखकर तीन बार आचमन करे, दो बार मुँह पोंछे। फिर जलसे मुँह, आँख, कान, नाक तथा अपने मस्तकका स्पर्श करे। पुनः दो बार आचमन करके सब कर्म करे। छींक और थूक आनेपर, दाँतमें अन्न आदि लगे रहनेपर तथा पतितोंके साथ बातचीत करनेपर अवश्य आचमन करना चाहिये। विद्वान् पुरुषको सदा तीनों वेदोंका

* स्वस्रा दुहित्रा मात्रा वा नैकान्तासनमाचरेत्।
दुर्जयो हीन्द्रियग्रामो मुह्यते पण्डितोऽपि सन्॥
(स्क० मा० कुमा० ३६। १५७)

स्वाध्याय करना चाहिये तथा धर्मपूर्वक धनका उपार्जन करके आत्मकल्याणके लिये यत्नपूर्वक भगवान्का यजन करना चाहिये । बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह नीच श्रेणीके मनुष्योंके लिये भी कभी अनादरसूचक 'तू'का प्रयोग न करे । गुरुजनोंके लिये तू कह देना या उनका वध कर डालना दोनों बराबर है । सत्य बोले, मित्र-भावसे रहे, सदा ऐसी बात बोले जो दूसरोंको सान्त्वना देनेवाली हो । परलोकमें जो हितकर हो, उसी कार्यमें गम्भीर बुद्धिवाले पुरुषों-को अपना शरीर और मन लगाना चाहिये । स्वच्छ इन्द्रियों-वाले पुरुषोंको तीर्थस्नान, उपवास, व्रत, सत्पात्रको दिये गये दान, होम, जप, यज्ञ, शिव-पूजा तथा देवताओंकी विशेष पूजा आदिके द्वारा सदा अपने अन्तःकरणका शोधन करना चाहिये । राजन् ! जिस कार्यको करते समय अपने आत्मा-को घृणा न हो तथा जो महात्मा पुरुषके लिये गोपनीय (छिपाने योग्य) न हो, वह कार्य अनासक्तभावसे अवश्य करना चाहिये । यह मैंने तुमसे संक्षिप्तरूपमें सदाचारका किञ्चिन्मात्र वर्णन किया है । शेष बातें तुम्हें स्मृतियों और पुराणोंसे सुननी चाहिये । इस प्रकार भगवान् शिवकी प्रीतिके लिये धर्माचरण करनेवाले सद्गृहस्थको इहलोकमें धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति होकर परलोकमें उसका परम कल्याण होता है ।

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! जब महाकालजी इस प्रकार भाँति-भाँतिके धर्मोंका उपदेश कर रहे थे, उस समय आकाशमें बड़ा भारी शब्द हुआ । तदनन्तर महाकाल भगवान् शिवके परमधामको चले गये । कुरुनन्दन ! इस प्रकार इस महालिङ्गका आविर्भाव हुआ है । महाकालका यह कूप और सरोवर भी परम पवित्र एवं सिद्धिदायक है । कुन्तीनन्दन ! जो मनुष्य यहाँ इस लिङ्गकी आराधनामें संलग्न होते हैं, महाकाल उन्हें अपने हृदयसे लगाकर भगवान् शिवकी सेवामें प्रस्तुत करते हैं । अर्जुन ! इस प्रकार महीसागरसङ्गम तीर्थमें ये सात लिङ्ग प्रकट हुए । जो श्रेष्ठ मानव इस प्रसंगको पढ़ते और सुनते हैं, वे भी धन्य हैं ।

नारदजीके द्वारा भगवान् वासुदेवकी स्थापना, ऐतरेयका अपनी मातासे संसारदुःखका वर्णन, भगवान्का प्रत्यक्ष प्रकट होकर ऐतरेयको वरदान देना तथा वासुदेवके ध्यानसे ऐतरेयकी मुक्ति

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! तदनन्तर महीसागर-सङ्गममें जब मैंने स्थानकी स्थापना कर ली, तब कालान्तरमें मन-ही-मन विचार किया कि यह तीर्थ भगवान् वासुदेवके बिना शोभा नहीं पा रहा है । ठीक उसी तरह, जैसे बिना सूर्यके संसार सुशोभित नहीं होता । भगवान् विष्णु भूषणके भी भूषण हैं । जिस तीर्थमें, जिस घरमें, जिस हृदयमें तथा जिस शास्त्रमें मेरे स्वामी भगवान् विष्णु नहीं हैं, वह सब असत् है । इसलिये वरदायक भगवान् पुरुषोत्तमको प्रसन्न करके सम्पूर्ण विश्वपर अनुग्रह करनेकी कामनासे इस तीर्थमें उन्हें साक्षात् कलासहित ले आऊँगा । ऐसा विचारकर मैं वहीं ठहर गया और ज्ञानयोगके द्वारा योगीश्वर श्रीहरिको सन्तुष्ट करनेके लिये सौ वर्षतक आराधना करता रहा । सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने वशमें करके वासुदेवमय होकर सब प्राणियोंपर कृपा रखते हुए अष्टाक्षरमन्त्रके जपमें लगा रहा । इस प्रकार मेरे आराधना करनेपर गरुड़पर बैठे हुए भगवान् श्रीहरिने कोटि-कोटि गणोंके साथ आकर मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया । तब मैंने श्रीहरिको विधिपूर्वक अर्घ्य दे, प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़े हुए कहा—'प्रभो ! पूर्वकाल-

में श्वेतद्वीप नामक धाममें मैंने आपके अजन्मा, सनातन, नर-नारायणात्मक स्वरूपका दर्शन किया है । जनार्दन ! उसी रूपकी एक कला यहाँ स्थापित कीजिये । भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करें ।' मेरे इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् गरुडध्वजने कहा— 'ब्रह्मपुत्र नारद ! तुम्हारे हृदयमें जिस आकाङ्क्षाका उदय हुआ है, वह उसी रूपमें पूर्ण हो । मुझे इस तीर्थमें सदैव निवास करना है ।' यों कहकर श्रीविष्णु-प्रतिमामें अपनी कला स्थापित करके भगवान् विष्णु जब चले गये, तब मैंने सम्पूर्ण विश्वपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे उनके श्रीअर्चाविग्रहकी स्थापना की । यतः साक्षात् श्वेतद्वीपनिवासी श्रीहरि यहाँ विराजमान हैं, जो कि सबसे वृद्ध हैं, अतः वे इस तीर्थमें वृद्ध वासुदेवके नामसे विख्यात हुए हैं ।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षमें जो कल्याणमयी एकादशी आती है, उस दिन झरने अथवा नदी आदिके जलमें विधि-पूर्वक स्नान करके जो पुरुष पञ्चोपचारद्वारा भक्तिभावसे श्रीहरिका पूजन करता है तथा उपवास और जागरण करते हुए श्रीहरिके आगे संगीत एवं वाद्यका आयोजन करता है, अथवा दम्भ और क्रोध त्याग कर श्रीविष्णुकी महिमा एवं लीलाकी कथा कहता है तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए प्रसन्नचित्त हो यथाशक्ति दान देता है, वह ब्रह्महत्यारा क्यों न हो, अनेक जन्मोंकी समस्त पापराशिसे मुक्त हो जाता है । इसके सिवा वह अन्तमें गरुड़सम्बन्धी विमानके द्वारा साक्षात् वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है ।

श्रद्धापूर्वक, प्रसन्नतापूर्वक, उत्साहके साथ, आन्तरिक अभिलाषासे, अहङ्कार छोड़कर, भगवान्‌को स्नान करा उन्हें धूप और चन्दन चढ़ाकर, पुष्प और नैवेद्य समर्पण करके, अर्घ्यदान देकर, प्रत्येक प्रहरमें अत्यन्त भक्तिभावसे भगवान्‌की आरती उतारकर, चँवर डुलानेका आनन्द लेते हुए, भेरी बजाते हुए, पुराण-कथा-श्रवणपूर्वक, भक्तियुक्त नृत्य करके, नींदसे दूर रहकर, क्षुधा-पिपासा तथा रसास्वादनकी इच्छासे रहित होकर, भगवच्चरणारविन्दोंकी सुगन्धको सूँघते हुए, भगवत्प्रिय रात्रि-संगीतका आयोजन करके, भगवत्तीर्थमें जाकर, प्राणायामपूर्वक, ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक, स्तोत्रपाठके साथ, भगवान्‌के चरणोदकको ग्रहण करते हुए, सत्यभाषणपूर्वक, सत्संगका लाभ उठाते हुए तथा पुण्यवार्ता (कथा-उपदेश आदि) के सहित—इन पचीस विशेषताओंके साथ जो मनुष्य एकादशीकी रातमें भगवान्‌के समीप जागरण करता है, वह फिर इस भूमिमें जन्म नहीं लेता । पूर्वकालकी बा[त] है । इस श्रेष्ठ तीर्थमें एक ऐतरेय नामक ब्राह्मण रहते थे । उ[न] परम भाग्यशाली ब्राह्मणदेवताने यहीं भगवान् वासुदेवक[ी] कृपा-सिद्धि प्राप्त की थी ।

अर्जुनने पूछा—मुने ! ऐतरेय किसके पुत्र थे ? उनक[ा] निवास-स्थान कहाँ था ? परम बुद्धिमान् ऐतरेयने किस प्रका[र] भगवान् वासुदेवके प्रसादसे सिद्धि प्राप्त की ?

नारदजीने कहा—कुन्तीनन्दन ! यहीं मेरे द्वार[ा] स्थापित स्थानमें जो हारीत मुनि रहते थे, उन्हींके वंशमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए, जो माण्डूकि नामसे विख्यात थे। वे वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत पण्डित थे । उनके 'इतरा' नामवाल[ी] पत्नी थी, जो नारीके समस्त सद्‌गुणोंसे सुशोभित थी । उसके गर्भसे जो पुत्र हुआ, उसीका नाम 'ऐतरेय' था । ऐतरे[य] बाल्यावस्थासे ही निरन्तर द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का जप करता था, उसे पूर्वजन्ममें ही इस मन्त्रक[ी] शिक्षा मिली थी । वह न तो किसीकी बात सुनता था, [न] स्वयं कुछ बोलता था और न अध्ययन ही करता था । इससे सबको निश्चय हो गया कि यह बालक गूँगा है । पिता ने अनेक उपायोंसे उसको समझाया—बोध कराया, परं[तु] उसने लौकिक व्यवहारमें कभी मन नहीं लगाया । यह देख पिताने भी यही निश्चय कर लिया कि यह सर्वथा जड है । तब उन्होंने पिंगा नामवाली दूसरी स्त्रीसे विवाह किया और उससे चार पुत्र उत्पन्न किये जो वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान् हुए ।

ऐतरेय भी प्रतिदिन तीनों समय भगवान् वासुदेवके मन्दिरमें जाकर उस उत्तम मन्त्रका जप करने लगे । वे दूसरे किसी कार्यमें परिश्रम नहीं करते थे । एक दिन उनकी माता इतरा अपनी सौतके पुत्रोंकी योग्यता देखकर सन्तप्त-चित्त हो अपने पुत्रसे बोली—'अरे ! तू तो मुझे क्लेश देनेके लिये ही पैदा हुआ ! मेरे जन्म और जीवनको धिक्कार है ! संसारमें उस नारीका जन्म निश्चय ही व्यर्थ है, जो पति-के द्वारा तिरस्कृत हो और जिसका पुत्र गुणवान् न हो । वत्स ! मैं बड़ी खोटे भाग्यवाली हूँ, अतः महीसागरसङ्गममें डूब मरूँगी । मेरा मर जाना ही अच्छा है । जीवित रहनेमें मुझे क्या लाभ है ? मेरे मर जानेपर तू भी भगवान्‌का महामौनी भक्त होकर दीर्घकालतक आनन्द भोगना ।'

नारदजी कहते हैं—माताकी यह बात सुनकर ऐतरेय ठठाकर हँस पड़े । वे बड़े धर्मज्ञ थे । उन्होंने दो घड़ी भगवान्‌का ध्यान करके माताके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—

! तुम झूठे मोहमें पड़ी हुई हो । अज्ञानको ही ज्ञान मान हो । शुभे ! जो शोचनीय नहीं है, उसीके लिये तुम शोक ी हो और जो वास्तवमें शोचनीय है उसके लिये तुम्हारे ें तनिक भी शोक नहीं होता । यह संसार मिथ्या है । ं तुम इस शरीरके लिये क्यों चिन्तित एवं मोहित हो हो ? यह तो मूर्खोंका काम है ! तुम-जैसी विदुषी स्त्रियों- यह शोभा नहीं देता ! संसारमें सारतत्त्व तो कुछ और है, किंतु अज्ञानसे मोहित मनुष्य किसी और ही असार को सार समझते हैं । तुम इस मानव-शरीरको यदि मानती हो तो लो, इसकी भी असारता सुनो । यह जो व-शरीर है, यह गर्भसे लेकर मृत्युपर्यन्त सदा न्त कष्टप्रद है । यह शरीर एक प्रकारका घर है । यों का समूह ही इसके भारको सँभालनेवाला खम्भा । नाडीजालरूपी रस्सियोंसे ही इसे बाँधा गया । रक्त और मांसरूपी मिट्टीसे इसको लीपा गया है । ा और मूत्ररूपी द्रव्योंके संग्रहका यह पात्र है । केश और रूपी तृणसे इसको छाया गया है । सुन्दर रंगकी त्वचासे के ऊपर रंग किया गया है । मुख ही इसका प्रधान : है । दो आँख, दो कान और दो नाकके छिद्र—ये ही इसकी खिड़कियाँ हैं । दोनों ओष्ठ ही इसके द्वारको ढकने- े किंवाड़ हैं । दाँत ही अर्गला (किंवाड़ बंद करनेवाली ड़ी) हैं । नाड़ी और पसीने ही नाली और जलप्रवाह हैं । सदा कालकी मुखाग्निमें स्थित है । ऐसे इस देहरूपी गेहमें न नामवाला गृहस्थ निवास करता है । इस घरमें त्रिगुण- ी प्रकृति ही उसकी पत्नी है तथा क्रोध, अहङ्कार, काम, र्या और लोभ आदि ही उक्त गृहस्थकी सन्तान हैं । हाय ! तने कष्टकी बात है कि जीव इस देह-गेहकी मोहमायासे मूढ कर तदनुकूल बर्ताव करता है । उसका जिस-जिस विषयमें से मोह होता है, वह सब बताता हूँ, सुनो । जैसे पर्वतसे रने गिरते रहते हैं, उसी प्रकार शरीरसे भी कफ और मूत्र आदि ते रहते हैं, उसी देहके लिये जीव मोहित होता है । विष्ठा र मूत्रसे भरे हुए चर्मपात्रकी भाँति यह शरीर समस्त पवित्र वस्तुओंका भण्डार है और इसका एक प्रदेश (एक श) भी पवित्र नहीं है । अपने शरीरसे निकले हुए मल- त्र आदिके जो प्रवाह हैं, उनका स्पर्श हो जानेपर मिट्टी और लसे हाथ शुद्ध किया जाता है; तथापि उन्हीं अपवित्र वस्तुओं- ं भण्डाररूप इस देहसे न जाने क्यों मनुष्यको वैराग्य नहीं ोता ? सुगन्धित तेल और जल आदिके द्वारा यत्नपूर्वक भली- ाँति संस्कार (सफाई) करनेपर भी यह शरीर अपनी स्वाभाविक अपवित्रताको नहीं छोड़ता है; ठीक उसी तरह, जैसे कुत्तेकी टेढ़ी पूँछको कितना ही सीधा किया जाय, वह अपना टेढ़ापन नहीं छोड़ पाती । अपनी देहकी अपवित्र गन्ध- से जो मनुष्य विरक्त नहीं होता, उसे वैराग्यके लिये अन्य किस साधनका उपदेश दिया जाय ? दुर्गन्ध तथा मल-मूत्रके लेपको दूर करनेके लिये ही शारीरिक शुद्धिका विधान किया गया है । इन दोनों (गन्ध और लेप)का निवारण हो जानेके पश्चात् आन्तरिक भावकी शुद्धि होनेसे मनुष्य शुद्ध होता है । भाव- शुद्धि ही सबसे बढ़कर पवित्रता है । वही सब कर्मोंमें प्रमाण- भूत है । आलिङ्गन पत्नीका भी किया जाता है और पुत्रीका भी, परंतु दोनोंमें भावका महान् अन्तर है । प्यारी पत्नीका आलिङ्गन किसी और भावसे किया जाता है एवं पुत्रीका दूसरे भावसे । एक ही स्त्रीके स्तनोंको पुत्र दूसरे भावसे स्मरण करता है और पति दूसरे भावसे । अतः अपने चित्तको ही शुद्ध करना चाहिये । बाह्यशुद्धिके दूसरे-दूसरे साधनोंसे क्या लेना है ? भावदृष्टिसे जिसका अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध है, वह स्वर्ग और मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है ।

ज्ञानरूपी निर्मल जल तथा वैराग्यरूपी मृत्तिकासे ही पुरुष- के अविद्या एवं रागमय मल-मूत्रके लेप और दुर्गन्धका शोधन होता है । इस प्रकार इस शरीरको स्वभावतः अशुद्ध माना गया है । जैसे केलेके वृक्षमें केवल वल्कल ही सार है, उसी प्रकार इस देहमें केवल त्वचामात्र सार है, वास्तवमें तो यह सर्वथा निःसार है । जो बुद्धिमान् अपने शरीरको इस प्रकार दोषयुक्त जानकर उदासीन हो जाता है—उसकी ओरसे अनुराग शिथिल कर लेता है—वही इस संसार-बन्धनसे छूटकर निकल पाता है । किंतु जो दृढ़तापूर्वक इस शरीरको पकड़े हुए रहता है—इसका मोह नहीं छोड़ता, वह संसारमें ही पड़ा रह जाता है । इस प्रकार यह मानव-जन्म लोगोंके अज्ञानदोष- से तथा नाना कर्मवशात् दुःखस्वरूप और महान् कष्टप्रद बताया गया है । जैसे बड़े भारी पर्वतसे दबा हुआ कोई प्राणी बड़े कष्टसे पीड़ित रहता है, उसी प्रकार गर्भकी झिल्लीमें बँधा हुआ मनुष्य महान् कष्टसे वहाँ ठहर पाता है । जैसे समुद्रमें गिरा हुआ कोई मनुष्य अत्यन्त व्याकुल होकर बड़े भारी दुःख- से घिर जाता है, उसी प्रकार गर्भगत जलसे भीगे हुए अङ्गों- वाला गर्भस्थ शिशु अत्यन्त व्याकुल रहता है । जैसे किसीको लोहेके घड़ेमें रखकर आगसे पकाया जाता है, वैसे ही गर्भरूपी घटमें डाला हुआ जीव जठरानलकी आँचसे पकता रहता है । यदि आगके समान दहकती हुई सुइयोंसे किसीको निरन्तर छेदा जाय तो उसे जितनी पीड़ा हो सकती है, उससे आठ-

गुनी पीड़ा गर्भमें भोगनी पड़ती है । इस प्रकार स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंको अपने-अपने गर्भके अनुरूप यह महान् गर्भ-दुःख प्राप्त होता है; ऐसा कहा गया है ।

गर्भमें स्थित होनेपर सभीको अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण हो आता है । उस समय जीव इस प्रकार सोचता है—'अहो ! मैं मरकर पुनः उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होकर पुनः मृत्युको प्राप्त हुआ । जन्म ले-लेकर मैंने सहस्रों योनियोंका दर्शन किया है । इस समय जन्म धारण करते ही मेरे पूर्वसंस्कार जाग उठे हैं; अतः अब मैं ऐसे कल्याणकारी साधनका अनुष्ठान करूँगा, जिससे पुनः मेरा गर्भवास न हो । संसार-बन्धनको दूर करनेवाले भगवदीय तत्त्वज्ञानका मैं चिन्तन करूँगा ।' इस प्रकार उस दुःखसे छूटनेके उपायपर विचार करता हुआ गर्भस्थ जीव चिन्तामग्न रहता है । जब उसका जन्म होने लगता है, उस समय तो उसे गर्भकी अपेक्षा भी कोटिगुना अधिक दुःख होता है । गर्भवासके समय जो सद्बुद्धि जाग्रत् हुई रहती है, वह जन्म हो जानेपर नष्ट हो जाती है । बाहरकी हवा लगते ही मूढ़ता आ जाती है । मोहग्रस्त होनेपर शीघ्र ही उसकी स्मरणशक्तिका नाश हो जाता है । स्मरणशक्ति नष्ट होनेपर पूर्वकर्मवशात् जीवका पुनः उसी जन्म (के शरीर आदि) में अनुराग हो जाता है । इस प्रकार राग और मोहके वशीभूत हुआ वह संसारमें न करनेयोग्य पापादि कर्मोंमें लग जाता है । उनमें फँसकर न तो वह अपनेको जानता है, न दूसरेको जानता है और न किसी देवताको ही कुछ समझता है । अपने परम कल्याणकी बाततक नहीं सुनता । आँख रहते हुए भी नहीं देखता । समतल मार्गपर धीरे-धीरे चलते हुए भी वह पग-पगपर लड़खड़ाता है । विद्वानोंके समझानेपर भी, बुद्धि रहते हुए भी वह नहीं समझ पाता इसीलिये राग और मोहके वशीभूत होकर संसारमें क्लेश उठाता रहता है । जन्म लेनेपर गर्भकालमें जाग्रत् हुई पूर्वजन्मकी स्मृति अथवा गर्भके दुःखोंकी स्मृति नहीं रहती, इसलिये महर्षियोंने गर्भदुःखका निरूपण करनेके लिये शास्त्रोंका प्रतिपादन किया है । वे शास्त्र स्वर्ग और मोक्षके उत्तम साधन हैं । सब कार्यों और प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले इस शास्त्रज्ञानके रहते हुए भी लोग उससे अपने कल्याणका साधन नहीं करते । यह अत्यन्त अद्भुत बात है ।

बाल्यावस्थामें इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ अव्यक्त रहती हैं, इसलिये जीव उस समयके महान् दुःखको बतानेकी इच्छा होनेपर भी बता नहीं सकता और न उस दुःखके निवारणके लिये कुछ कर ही सकता है । फिर जब दाँत उठने लगता है तब उसे महान् कष्ट भोगना पड़ता है । मौल रोग (सिरदर्द), नाना प्रकारके बालरोग तथा पूतना आदि बालग्रह आदिसे भी बालकको बड़ी पीड़ा होती है । भूख-प्यासकी पीड़ासे उसके सब अङ्ग व्याकुल रहते हैं तथा वह कहीं खाट आदिपर पड़ा हुआ रोता रहता है । इसके बाद जब वह कुछ बड़ा होता है, तब अक्षरोंके अध्ययन आदिसे और गुरुके शासनसे उसको महान् दुःख होता है ।

युवावस्थामें रागोन्मत्त पुरुषकी सम्पूर्ण इन्द्रिय-वृत्तियाँ काम तथा रागकी पीड़ासे सदा मतवाली रहती हैं । अतः उसे भी कहाँसे सुख प्राप्त हो सकता है । मोहवश पुरुषको यदि कहीं अनुराग हो जाता है तो ईर्ष्याके कारण उसे बड़ा भारी दुःख होता है । जो उन्मत्त और क्रोधी है उसका कहीं भी राग होना केवल दुःखका ही कारण है । रातमें कामाग्नि-जनित खेदसे पुरुषको निद्रा नहीं आती । दिनमें भी द्रव्योपार्जनकी चिन्ता लगी रहनेके कारण उसे सुख नहीं मिल सकता । स्त्रियाँ सब दोषोंका आश्रय हैं; यह बात भली-भाँति जान लेनेपर भी जो लोग उनमें मैथुनसे सुख मानते हैं, उनका वह सुख मल-मूत्र-त्यागके सदृश ही माना गया है । सम्मान अपमानसे, प्रियजनोंका संयोग-वियोगसे तथा जवानी वृद्धावस्थासे ग्रस्त है । निर्विघ्न सुख कहाँ है ?

युवावस्थाका शरीर एक दिन जरा अवस्थासे जर्जर कर

जानेपर सम्पूर्ण कार्योंके लिये असमर्थ हो जाता है। बदनमें झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, सिरके बाल सफेद हो ईं और शरीर बहुत ढीला-ढाला हो जाता है। स्त्री और का वही रूप, जो जवानीके दिनोंमें एक दूसरेका आधार जराग्रस्त हो जानेपर दोनोंमेंसे किसीको भी प्रिय नहीं । बुढ़ापेसे दबा हुआ पुरुष असमर्थ होनेके कारण पुत्र आदि बन्धु-बान्धवों तथा दुराचारी सेवकोंद्वारा अपमानित होता है। वृद्धावस्थामें रोगातुर पुरुष धर्म, काम और मोक्षका साधन करनेमें असमर्थ हो जाता सलिये युवावस्थामें ही धर्मका आचरण करना चाहिये।

वात, पित्त और कफकी विषमता ही व्याधि कहलाती इस शरीरको वात आदिका समूह बताया गया है। ये अपना यह शरीर व्याधिमय है; ऐसा जानना ये। इस शरीरमें अनेक प्रकारके रोगोंद्वारा बहुतेरे दुःख कर जाते हैं। उनका पता अपने आपको भी नहीं लगता, दूसरोंको तो लग ही कैसे सकता है। इस देहमें एक सौ व्याधियाँ स्थित हैं। इनमेंसे एक व्याधि तो कालके साथ है और शेष आगन्तुक मानी गयी हैं। जो आगन्तुक ी गयी हैं, वे तो दवा करनेसे तथा जप, होम और से शान्त हो जाती हैं; परन्तु मृत्युरूप व्याधि कभी नहीं होती। नाना प्रकारकी व्याधियाँ, सर्प आदि , विष और अभिचार (पुरश्चरण)—ये सब ारियोंकी मृत्युके द्वार बताये गये हैं। यदि जीवका काल पहुँचा है, तो सर्प और रोग आदिसे पीड़ित होनेपर उसे न्तरि भी जीवित नहीं रख सकते। कालसे पीड़ित व्यक्तो औषध, तपस्या, दान, मित्र तथा बन्धु-बान्धव— भी बचा नहीं सकते। रसायन, तपस्या, जप, योग, -महात्मा तथा पण्डित—ये सब मिलकर भी कालजनित पुको नहीं टाल सकते। समस्त प्राणियोंके लिये मृत्युके न कोई दुःख नहीं है, मृत्युके समान कोई भय नहीं है । मृत्युके समान कोई त्रास नहीं है। सती भार्या, उत्तम , श्रेष्ठ मित्र, राज्य, ऐश्वर्य और सुख—ये सभी स्नेह-में बँधे हुए हैं। मृत्यु इन सबका उच्छेद कर डालती मा! क्या तुम नहीं देखती कि हजारों मनुष्योंमेंसे पाँच शायद ही ऐसे होंगे, जो पूरे सौ वर्षतक जीनेवाले हों। ई-ही-कोई अस्सी वर्ष और सत्तर वर्षकी अवस्थामें मरते हैं। : साठ वर्ष तककी ही लोगोंकी परमायु हो गयी है; किंतु भी सबके लिये निश्चित नहीं है। जिस देहधारीको अपने पूर्वकर्मानुसार जितनी आयु प्राप्त होती है, उसका आधा भाग तो मृत्युरूपिणी रात्रि हर लेती है। बाल्यावस्था, अबोधावस्था तथा वृद्धावस्थाके द्वारा बीस वर्ष और व्यतीत हो जाते हैं—जो धर्म, अर्थ और काम—किसीके भी उपयोगमें नहीं आते। शेष आयुका आधा भाग मनुष्यपर आनेवाले बहुतसे भय तथा अनेक प्रकारके रोग और शोक आदि हर लेते हैं। इन सबसे जो शेष रह जाता है, वही मनुष्यका जीवन है।

इस जीवनकी समाप्ति होनेपर मनुष्य अत्यन्त भयङ्कर मृत्युको प्राप्त होता है। मृत्युके बाद वह पुनः करोड़ों योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। कर्मोंकी गणनाके अनुसार देह-भेदसे जो जीवका एक शरीरसे वियोग होता है, उसे 'मृत्यु' नाम दिया गया है, वास्तवमें उससे जीवका विनाश नहीं होता। मृत्युके समय महान् मोहको प्राप्त हुए जीवके मर्म-स्थान जब विदीर्ण होने लगते हैं, उस दशामें उसे जो बड़ा भारी कष्ट भोगना पड़ता है, उसकी इस संसारमें कहीं उपमा नहीं है। जैसे साँप मेंढकको निगल जाता है, उसी प्रकार मृत्यु जब मनुष्यको निगलने लगती है, उस समय वह हा तात! हा मातः! हा कान्ते! इत्यादि रूपसे पुकारता हुआ अत्यन्त दुखी हो-होकर रोता है। भाई-बन्धुओंसे साथ छूट रहा है, प्रेमीजन उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े हैं। वह सूखते हुए मुखसे गरम गरम लंबी साँस खींचता है। चारपाईपर चारों ओर बार बार करवट बदलता है। पीड़ासे मोहित होकर बड़े वेगसे इधर-उधर हाथ फेंकता है। खाट-से भूमिपर और भूमिसे खाटपर तथा फिर भूमिपर आना चाहता है। उसके वस्त्र खुल गये हैं, लज्जा छूट चुकी है, विष्ठा और मूत्रमें सना हुआ है। कण्ठ, ओष्ठ और तालू सूख जानेके कारण बार-बार पानी माँगता है। अपने धन-वैभवके लिये इस बातकी चिन्ता करता है कि मेरे मर जानेपर ये किसके हाथमें पड़ेंगे। पुनः कालपाशसे खींचे जानेपर उसका गला घुरघुराने लगता है और पार्श्ववर्ती लोगोंके देखते-देखते मृत्युको प्राप्त हो जाता है। जैसे तृणजलौका जलमें बहते हुए तिनकेके अन्ततक पहुँचकर जब दूसरा तिनका थाम लेती है, तब पहलेको छोड़ देती है। उसी प्रकार जीव एक देहसे दूसरी देहमें क्रमशः प्रवेश करता है। भावी शरीरमें अंशतः प्रवेश करके पूर्वशरीरका त्याग करता है।

विवेकी पुरुषके लिये किसीसे कुछ माँगना मृत्युसे भी अधिक दुःखदायी होता है। मृत्युका दुःख तो क्षणभरमें

समाप्त हो जाता है, परंतु याचनाजनित दुःखका कभी अन्त नहीं होता । मैंने तो इस समय यह अनुभव किया है कि मृत मनुष्य जीवित रहकर याचना करनेवालेकी अपेक्षा श्रेष्ठ है; क्योंकि अब वह फिर दूसरे किसीके सामने हाथ नहीं फैला सकता । तृष्णा ही लघुताका कारण है । आदिमें दुःख है, मध्यमें दुःख है तथा अन्तमें भी दारुण दुःख प्राप्त होता है । दुःखोंकी यह परंपरा समस्त प्राणियोंको स्वभावतः प्राप्त होती है । क्षुधाको सब रोगोंसे महान् रोग माना गया है । वह अन्नरूपी ओषधिका लेप करनेसे कुछ क्षणोंके लिये शान्त हो जाती है । क्षुधारूपी व्याधिकी तीव्र वेदना सम्पूर्ण बलका उच्छेद करनेवाली है । जैसे अन्य रोगोंसे लोग मरते हैं, उसी प्रकार क्षुधासे पीड़ित होनेपर भी मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है । (यदि कहें धन-धान्यसम्पन्न राजा सुखी होंगे तो यह भी ठीक नहीं ।) राजाको केवल यह अभिमान ही होता है कि मेरे घरमें इतना वैभव शोभा पा रहा है । वास्तवमें तो उनका सारा आभरण भाररूप है, समस्त आलेपन-द्रव्य मलमात्र है, सम्पूर्ण सङ्गीत-राग प्रलापमात्र है तथा नृत्य आदि भी पागलोंकी-सी चेष्टा है । विचार-दृष्टिसे देखनेपर इन राज्यभोगोंके द्वारा राजाओंको सुख कहाँ मिलता है ? क्योंकि वे लोग तो एक दूसरेको जीतनेके लिये सदा ही चिन्तित रहते हैं । प्रायः राज्यलक्ष्मीके मदसे उन्मत्त होनेके कारण नहुष आदि महाराज स्वर्गका साम्राज्य पाकर भी वहाँसे नीचे गिर गये हैं । राजलक्ष्मी अथवा धन-ऐश्वर्यसे भला कौन सुख पाता है ? मनुष्य स्वर्गलोकमें जो पुण्यफल भोगते हैं, वह अपने मूलधनको गँवाकर ही भोगते हैं; क्योंकि वहाँ वे दूसरा नवीन कर्म नहीं कर सकते । यही स्वर्गमें अत्यन्त [illegible] दोष है । जैसे वृक्षकी जड़ काट देनेपर वह विवश होकर पृथ्वीपर गिर पड़ता है, उसी प्रकार पुण्यरूपी मूलका क्षय हो जानेपर स्वर्गवासी जीव पुनः पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं । इस तरह विचारपूर्वक देखा जाय तो स्वर्गमें भी देवताओंको कोई सुख नहीं है । नरकमें गये हुए पापी जीवोंका दुःख तो प्रसिद्ध ही है—उनका क्या वर्णन किया जाय । स्थावर-योनिमें पड़े हुए जीवोंको भी बहुत दुःख भोगने पड़ते हैं । दावानलसे जलना, पाला पड़नेसे गलना, धूप और हवासे सूखना, कुल्हाड़ीसे काटा जाना, उनके वल्कलों (छिलकों) का उतारा जाना, प्रचण्ड आँधीके वेगसे पत्तों, डालियों और फलोंका गिराया जाना तथा हाथियों और अन्य जंगली जन्तुओंद्वारा कुचला जाना आदि उनके लिये महान् दुःख हैं ।

सर्पों और बिच्छुओंको प्यास और भूखका कष्ट रहता है उन्हें क्रोधका भी दारुण दुःख सहन करना पड़ता है संसारमें प्रायः दुष्ट साँप-बिच्छुओंको मारा जाता है, उन्हें जालमें फँसाकर बंद रक्खा जाता है । माताजी ! इस प्रकार उस योनिके जीवोंको बारंबार कष्ट उठाना पड़ता है । कीट आदिका अकस्मात् जन्म होता है और अचानक ही उनकी मौत भी हो जाती है; अतः उनका दुःख भी कम नहीं है मृगों और पक्षियोंको वर्षा, सर्दी और धूपका महान् कष्ट तो है ही, भूख-प्यासके भारी दुःखसे भी मृग सदा संत्रस्त रहते हैं । पशु-समूहके जो दुःख हैं, उन्हें भी सुन लो । भूख-प्यास तथा सर्दी-गरमी आदिका कष्ट सहना, मारा जाना, बन्धनमें डाला जाना और डंडे आदिसे पीटा जाना, नाकका छेदा जाना, चाबुक और अङ्कुशकी मार पड़ना आदि उनके महान् क्लेश हैं । इनके अतिरिक्त बोझ ढोनेका भी उन्हें बड़ा भारी कष्ट है । कार्यकी शिक्षा देते समय भी उन्हें मारा-पीटा जाता है, फिर युद्ध आदिकी पीड़ा भी सहनी पड़ती है । अपने झुंडसे जो उनका वियोग होता है और वे वनसे जो अन्यत्र लाये जाते हैं—यह सब कष्ट अलग हैं ।

दुर्भिक्ष, दुर्भाग्यका प्रकोप, मूर्खता, दरिद्रता, नीच-ऊँचका भाव, मृत्यु, राष्ट्रविप्लव (एक राज्यका नाश करके दूसरे राज्यकी स्थापना), पारस्परिक अपमानका दुःख, आपसमें एक-दूसरेसे धन-वैभव या मान-प्रतिष्ठामें बढ़ जानेका कष्ट, अपनी प्रभुताका सदा स्थिर न रहना, ऊँचे चढ़े हुए लोगोंका नीचे गिराया जाना इत्यादि महान् दुःखोंसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है । जैसे इस कंधेका भार उस कंधेपर कर देनेको मनुष्य विश्राम समझता है, उसी प्रकार इस लोकमें एक दुःख दूसरे दुःखसे ही शान्त होता है । अतः एक दूसरेसे ऊँची स्थितिमें स्थित हुए इस सम्पूर्ण जगत्को दुःखोंसे भरा हुआ जानकर उसकी ओरसे अत्यन्त उद्विग्न हो जाना चाहिये । उद्वेगसे वैराग्य होता है, वैराग्यसे ज्ञान प्रकट होता है तथा ज्ञानसे परमात्मा विष्णुको जानकर मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

मा ! जैसे कौओंके अपवित्र स्थानमें विशुद्ध राजहंस नहीं रह सकता, उसी प्रकार ऐसे दुःखमय संसारमें मैं तो कभी रम नहीं सकता । मैया ! जहाँ रहकर मैं बिना किसी विघ्न-बाधाके आनन्दपूर्वक रह सकता हूँ, वह स्थान भी बताता हूँ, सुनो । अविद्यारूपी वन तो बड़ा भयङ्कर है । उसमें नाना प्रकारके कर्ममय बड़े-बड़े वृक्ष खड़े हैं । वहाँ सङ्कल्पोंके डाँस और मच्छर बहुत हैं । शोक और हर्ष ही वहाँकी सर्दी

और धूप हैं। उस वनमें मोहका घना अन्धकार छाया रहता है। वहाँ लोभरूपी साँप और बिच्छू रहते हैं। विषयोंके अनेक मार्गोंसे वह प्रदेश व्याप्त है। काम और क्रोधरूपी बधिक तथा लुटेरे उसमें सदा डेरा डाले रहते हैं। उस महादुःखमय विशाल वनको लाँघकर अब मैं एक ऐसे महान् विपिनमें प्रवेश कर चुका हूँ, जहाँ पहुँचकर उसके तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी पुरुष न शोक करते हैं, न हर्ष। वहाँ किसीसे भय नहीं है, किसीको भी भय नहीं है। उस विद्यारूपी वनमें सात बड़े भारी वृक्ष हैं। वहाँ सात ही पर्वत हैं, जिन्होंने तीनों लोकोंको धारण कर रक्खा है। सात ही ह्रद (कुण्ड) हैं और सात ही नदियाँ हैं, जो सदा ब्रह्मरूप जल बहाया करती हैं। तेज, अभयदान, अद्रोह, कौशल (दक्षता), अचपलता, अक्रोध और प्रिय वचन बोलना—ये ही सात पर्वत उस विद्यावनमें स्थित हैं। दृढ-निश्चय, सबके साथ समता, मन और इन्द्रियोंका संयम, गुणसंचय, ममताका अभाव, तपस्या तथा संतोष—ये सात ह्रद हैं। भगवान्‌के गुणोंका विशेष ज्ञान होनेसे जो उनके प्रति भक्ति होती है, वह विद्या-वनकी पहली नदी है। वैराग्य दूसरी, ममताका त्याग तीसरी, भगवदाराधन चौथी, भगवदर्पण पाँचवीं, ब्रह्मैकत्वबोध छठी तथा सिद्धि सातवीं नदी है। ये ही सात नदियाँ वहाँ स्थित बतायी गयी हैं। वैकुण्ठ धामके निकट इन सातों नदियोंका संगम होता है। जो आत्मतृप्त, शान्त तथा जितेन्द्रिय होते हैं, वे ही महात्मा उस मार्गसे परात्पर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। कोई श्रेष्ठ ज्ञानी-जन उन वृक्षोंको प्राप्त करते हैं, कोई पर्वतोंको, कोई ह्रदोंको तथा कोई उन सात सरिताओंको ही प्राप्त होते हैं।

मा ! मैं ग्रहण किये हुए व्रतको धारण करनेकी इच्छा रखकर यहाँ ब्रह्मचर्यका आचरण करता हूँ। इस ब्रह्मचर्यमें ब्रह्म ही समिधा, ब्रह्म ही अग्नि तथा ब्रह्म ही कुशास्तरण हैं। जल भी ब्रह्म हैं और गुरु भी ब्रह्म ही हैं—यही मेरा ब्रह्मचर्य है। विद्वान् पुरुष इसीको सूक्ष्म ब्रह्मचर्य मानते हैं। माता ! अब मेरे गुरुका परिचय सुनो, जिन्होंने मुझे विद्या प्रदान की है। एक ही शिक्षक है, दूसरा कोई शिक्षक नहीं है। हृदयमें विराजमान अन्तर्यामी पुरुष ही शिक्षक होकर शिक्षा देता है। उसीसे प्रेरित होकर मैं झरनेसे बहकर जानेवाले जलकी भाँति जहाँ जिस कार्यमें नियुक्त होता हूँ, वहाँ वैसा ही करता हूँ। एक ही गुरु हैं, उनके सिवा दूसरा कोई गुरु नहीं है। जो हृदयमें विराजमान हैं, वे ही गुरु हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। उन्हीं गुरुस्वरूप भगवान् मुकुन्दकी अवहेलना करके सम्पूर्ण दानव पराभवको प्राप्त हुए हैं।* एक ही बन्धु उसके सिवा दूसरा बन्धु नहीं है। जो हृदयमें विराजमान वह परमात्मा ही बन्धु है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ। उस शिक्षा प्राप्त करके सात बन्धुमान् भाई सप्तर्षि आकाश प्रकाशित हो रहे हैं। ऐसे ही ब्रह्मचर्यका भलीभाँति से करना चाहिये। अब मेरा गार्हस्थ्य कैसा है, यह भी लो। माताजी ! प्रकृति ही मेरी पत्नी है; किन्तु मैं क उसका चिन्तन नहीं करता; वही सदा मेरा चिन्तन कि करती है। वह मेरे सब प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली है नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान, मन तथा बुद्धि— सात प्रकारकी अग्नि सदा मेरी अग्निशालामें प्रज्वलित हो रहती हैं। गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, मन्तव्य ३ बोद्धव्य—ये ही सात मेरी समिधाएँ हैं। होता भी नारा हैं और ध्यानसे साक्षात् नारायण ही उपस्थित हो र हविष्यका उपयोग भी करते हैं। ऐसे यज्ञद्वारा मैं अ इस गृहस्थीमें उन परमेश्वर विष्णुका यजन (आराधन करता हूँ। किसी भी वस्तुकी कामना नहीं रखता, तथापि सम्पूर्ण काम स्वतः सिद्ध हैं। मैं सांसारिक सम्पूर्ण दोषोंसे नहीं करता, तथापि कोई भी दोष मुझमें प्रकट नहीं होत जैसे कमलके पत्तेपर जलकी बूँदका लेप नहीं होता, उसी प्र मेरा स्वभाव राग-द्वेष आदिसे लिप्त नहीं होता। मैं नित्य बहुतोंके स्वभावोंका साक्षी हूँ, अनित्य भोग मुझपर अ प्रभाव नहीं डाल सकते। जैसे सूर्यकी किरणें आकाशमें लि नहीं होतीं, वैसे ही मेरे भगवदर्थ किये गये निष्काम कर्म भोगसमूह नहीं लिप्त होते (मेरे कर्मोंका फल भोग-सामग्र रूपमें नहीं उपस्थित होता, वे कर्म तो भगवत्प्राप्ति करानेव होते हैं), माता ! ऐसे मुझ पुत्रसे तुम दुःखी न होओ। तुम्हें उस पदपर पहुँचाऊँगा, जहाँ सैकड़ों यज्ञ करके पहुँचना असम्भव है।'

अपने पुत्रकी यह बात सुनकर इतराको बड़ा विर हुआ। वह सोचने लगी, 'अहो ! यदि मेरा पुत्र दृढनिष्ठावाला विद्वान् है, तब तो संसारमें जब इसकी ख्या होगी, उस समय मेरा भी महान् यश फैलेगा।' माता

* एको गुरुर्नास्ति ततो द्वितीयो
यो हृद्गतस्तमहं वै नमामि।
पत्रावमन्यैव गुरुं मुकुन्दं
पराभूता दानवास्सर्वं एव ॥
(स्क० मा० कुमा० ३७। ६२)

प्रकारकी बातें सोच ही रही थी कि शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णु उस अर्चा-विग्रहसे साक्षात् प्रकट हो गये। वे उस द्विजपुत्रकी बातोंसे अत्यन्त प्रसन्न थे। भगवान्की दिव्य कान्ति करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान थी। वे अपनी प्रभासे सम्पूर्ण जगत्को उद्भासित कर रहे थे। भगवान्को देखते ही ऐतरेय धरतीपर दण्डकी भाँति पड़ गये। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे। वाणी गद्गद हो गयी। बुद्धिमान् ऐतरेयने मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर भगवान्का इस प्रकार स्तवन प्रारम्भ किया—

"आप भगवान् वासुदेवका हम ध्यान और नमस्कार करते हैं। आप ही प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा सङ्कर्षण हैं, आपको नमस्कार है। आप केवल विज्ञानस्वरूप तथा परमानन्द-मूर्ति हैं, आपको नमस्कार है। आप आत्माराम, शान्त तथा आप समस्त इन्द्रियोंके स्वामी (हृषीकेश) हैं, सबसे महान् तथा अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न हैं; आपको नमस्कार है। मनसहित वाणीके थककर निवृत्त हो जानेपर जो एक-मात्र अपनी कृपासे ही सुलभ होनेवाले हैं, नाम और रूपसे रहित चैतन्यघन ही जिनका स्वरूप है, वे सत् और असत्से परे विराजमान परमात्मा हम सबकी रक्षा करें। आप परम सत्य तथा निर्मल हैं, हम आपकी उपासना करते हैं। जो षड्विध ऐश्वर्यसे युक्त परम पुरुष महानुभाव एवं समस्त महाविभूतियोंके अधिपति हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। परमेष्ठिन्! आप सबसे उत्कृष्ट हैं, सम्पूर्ण भक्तसमुदाय आपके युगल चरणारविन्दोंकी बड़े लाड़-प्यारसे सेवा करते हैं। आपको नमस्कार है। अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी आपके दोनों चरण हैं, आकाश मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र हैं, सम्पूर्ण लोक आपका शरीर है तथा चारों दिशाएँ आपकी चार भुजाएँ हैं। भगवन्! आपको नमस्कार है। हे स्तुति करनेयोग्य परमात्मन्! हे नाथ! इस पृथ्वीपर कोई भी ऐसे प्रदेश नहीं हैं, जिनमें मेरा जन्म न हुआ हो, जहाँ मेरी मृत्यु न हुई हो। मैं समझता हूँ, यदि मेरे माता-पिताओंकी गणना की जाय, तो यह विशाल पृथ्वी परमाणुओंकी स्थितिमें पहुँच जायगी—असंख्य जन्मोंके मेरे माता-पिताओंकी गणना करनेके लिये पृथ्वीके परमाणु बराबर टुकड़े करने पड़ेंगे। देवदेव! मेरे जो मित्र, शत्रु, अनुजीवी तथा भाई-बन्धु इस संसारमें हो गये हैं, उन सबकी गणना करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। नाथ! मैंने अपना मन बार-बार आपके चरणोंमें समर्पित किया, परंतु मेरा दुर्जय शत्रु काम अपने क्रोध आदि सहायकोंके द्वारा उ[से] हठात् अपने वशमें कर लेता है। भगवन्! अब आप ह[मे] बताइये, ऐसी दशामें मैं क्या करूँ? सर्वव्यापी परमेश्वर मैं बहुत ही पीड़ित हूँ। संसाररूपी गड्ढेमें गिरे हुए इ[स] दीनपर आप दया कीजिये। दुर्गतिमें पड़ा हुआ प्राणी भी महात्माओंकी शरणमें आ जानेपर कष्ट नहीं भोगता; रोगी मनुष्योंको शरण देनेवाला वैद्य है, महासागरमें डूबे हुए मनुष्यका सहारा नौका है, बालकको आश्रय देनेवाले माता और पिता हैं, परंतु भगवन्! अत्यन्त घोर संसार-बन्धनसे दुखी हुए मनुष्यको शरण देनेवाले केवल आप ही हैं।* सर्वस्वरूप सर्वेश्वर! प्रसन्न होइये, आप ही सबके कारण हैं। पारमार्थिक सारतत्त्व भी आप ही हैं। महान् दुःख-समूहसे भरे हुए, संसाररूपी गड्ढेसे स्वयं ही हाथ पकड़कर मुझे निकालिये। हे अच्युत! हे उरुक्रम! यह संसार भूख और प्याससे; वात, पित्त और कफ—इन तीन धातुओंसे; सर्दी, गरमी, आँधी और वर्षासे, आपसमें ही एक-दूसरेसे तथा कभी तृप्त न होनेवाली कामाग्नि तथा क्रोधाग्निसे बारंबार पीड़ित होता है। इसे इस दशामें देखकर मेरा मन बहुत दुखी हो रहा है। मैंने अपनी शक्तिके अनुसार सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाले परमेश्वर भगवान् आप वासुदेव-का स्तवन किया है। इससे सबका कल्याण हो, सम्पूर्ण जगत्के समस्त दोष नष्ट हो जायँ। आज मेरे द्वारा जगद्धाता वासुदेवकी स्तुति हुई है; इससे इस पृथ्वीपर, अन्तरिक्षमें, स्वर्गलोकमें तथा रसातलमें भी जो कोई प्राणी रहते हों, वे सिद्धिको प्राप्त हों। मेरे द्वारा स्तुति-पाठ करते समय जो लोग इसको सुनते हैं, इस स्तोत्रका उच्चारण करते समय जो मुझे देखते हैं, वे देवता, असुर, मनुष्य तथा पशु-पक्षी कोई भी क्यों न हों, सभी भगवान् विष्णुके तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करें। इनके सिवा जो गूँगे तथा अन्यान्य इन्द्रियोंसे रहित हैं, जो देख-सुन नहीं सकते वे, तथा पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि भी आज भगवत्तत्त्वज्ञानके भागी हो जायँ। संसारमें दुःखोंका नाश हो जाय, समस्त प्रजाके हृदयसे लोभ आदि दोषसमुदाय निकल जायँ। अपनेमें, अपने भाई

* सोऽहं भृशार्तः करुणां कुरु त्वं संसारगर्ते पतितस्य विष्णो।
महात्मनां संश्रयमभ्युपेतो नैवावसीदत्यपि दुर्गतोऽपि॥
परायणं रोगवतां हि वैद्यो महाब्धिमग्नस्य च नौर्नरस्य।
बालस्य मातापितरौ सुघोरसंसारखिन्नस्य हरे त्वमेकः॥
(स्क० मा० कुमा० ३७। ९१-९२)

और पुत्रमें जैसा प्रेम और आत्मीयताका भाव होता है, सब लोगोंका सबके प्रति वैसा ही भाव हो जाय। जो संसार-रूपी रोगके चिकित्सक, सम्पूर्ण दोषोंके निवारणमें चतुर तथा परमानन्दकी प्राप्तिके हेतुभूत हैं, वे भगवान् विष्णु सबके हृदयमें विराजमान हों और ऐसा होनेसे सब लोगोंके संसार-बन्धन शिथिल हो जायँ। सम्पूर्ण विश्वको धारण करनेवाले भगवान् वासुदेवका स्मरण करनेपर मन, वाणी और शरीरद्वारा आचरित मेरे समस्त पाप नष्ट हो जायँ। हे वासुदेव! ऐसा उच्चारण करनेपर अथवा भगवान् विष्णुके भक्तकी महिमाका कीर्तन करनेपर, अथवा श्रीहरिका स्मरण करनेपर समस्त पापोंका नाश हो जाता है। यदि यह सत्य है, तो इस सत्यके प्रभावसे मेरा पाप नष्ट हो जाय। अखिलेश्वर! आपके चरणोंमें पड़े हुए मुझ सेवकपर आप यह सोचकर कृपा कीजिये कि 'यह बेचारा मूढ है—कुछ जानता नहीं, इसकी बुद्धि बहुत थोड़ी है, इसके द्वारा उद्यम भी बहुत कम हो पाता है। विषयोंसे इसका मन सदा क्लेशमें पड़ा रहता है, इसीलिये वह मुझमें नहीं लग पाता।' देव! आपकी स्तुति करनेमें ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं। भगवन्! आप प्रसन्न होइये। विष्णो! आप बड़े दयालु हैं, मुझ अनाथपर कृपा कीजिये। हे अनन्त! हे पापहारी हरि! आप पुरुषोत्तम हैं, संसार-सागरमें डूबे हुए मुझ दीनका उद्धार कीजिये।''

अर्जुन! ऐतरेयके इस प्रकार स्तुति करनेपर विशालकाय भगवान् वासुदेवने आनन्दमग्न होकर कहा—''वत्स ऐतरेय! मैं तुम्हारी भक्तिसे और इस स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे कोई मनोवाञ्छित एवं दुर्लभ वर माँगो।'

ऐतरेयने कहा—नाथ! हरे! मेरा अभीष्ट वर तो यही है कि घोर संसारसागरमें डूबते हुए मुझ असहायके लिये आप कर्णधार हो जायँ।

भगवान् वासुदेव बोले—वत्स! तुम तो संसारसागरसे मुक्त ही हो। जो सदा इस स्तोत्रसे गुप्तक्षेत्रमें स्थित हुए मुझ वासुदेवका स्तवन करेगा, उसके सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जायगा। अतः यह 'अघनाशन' नामसे विख्यात होगा। जो एकादशी-को उपवास करके मेरे आगे इस स्तोत्रका पाठ करेगा, वह शुद्धचित्त होकर मेरे परम धामको प्राप्त होगा। जैसे सब क्षेत्रोंमें यह गुप्तक्षेत्र मुझे अधिक प्रिय है, उसी प्रकार सब स्तोत्रोंमें यह स्तोत्र मुझे विशेष प्रिय है। जिन प्राणियोंके उद्देश्यसे महात्मा पुरुष इस स्तोत्रका जप करते हैं, वे सब प्राणी मेरी कृपासे शान्ति, ऐश्वर्य तथा उत्तम बुद्धि करेंगे। बेटा! तुम श्रद्धापूर्वक वैदिक धर्मोंका आ करो, उन्हें निष्कामभावसे मुझे समर्पित कर देनेपर उ द्वारा तुम्हें बन्धन नहीं प्राप्त होगा। पत्नीका पाणि करके तुम यज्ञोंद्वारा भगवान्की आराधना करो और अ माताकी प्रसन्नता बढ़ाओ। मुझमें तीव्र ध्यान क निःसन्देह तुम मुझे ही प्राप्त होओगे। बुद्धि, मन, अह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ—ये तेरह ग्रह बोद्धव्य, मन्तव्य, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वचन, आ कर्म, गमन, मलोत्सर्ग और रतिजनित आनन्द—ये महाग्रह हैं। बेटा! अपने बुद्धि आदि शुद्ध (आसक्तिशू ग्रहोंके द्वारा मेरा ध्यान करते हुए पूर्वोक्त महाग्रहोंको रूपमें ग्रहण करो, भगवत्प्रसाद मानकर स्वीकार करो। करनेसे तुम मोक्ष प्राप्त कर लोगे। वीर! इस प्र भगवदर्पण बुद्धिसे कर्म करनेपर तुम नैष्कर्म्यभावको होओगे। ठीक उसी तरह, जैसे चतुर स्वर्णकार रसस तॉबेको सुवर्णके रूपमें उपलब्ध करता है। वर्णाश्रमोचित आ वाला पुरुष भी यदि अपने सब कर्म मुझे समर्पित स्वयं मेरे ध्यानमें संलग्न हो जाता है, तो उसे भी यह दुर्लभ नहीं है। इसलिये मेरे बताये अनुसार बर्ताव हुए नियमपरायण होकर तुम आनन्दपूर्वक रहो। अ सात पीढ़ियोंका उद्धार करके फिर मुझमें लीन हो जाओ यद्यपि वेदोंका अध्ययन तुमने नहीं किया है, तो भी स वेद तुम्हारी बुद्धिमें स्वयं प्रतिभासित होंगे। अब य कोटितीर्थमें, जहाँ हरिमेधाका यज्ञ हो रहा है, जाओ। तुम्हारी माताका सम्पूर्ण मनोरथ सफल होगा।

यों कहकर भगवान् विष्णु पुनः वासुदेव-विग्रहमे प्रवेश कर गये। उस समय ऐतरेयकी माता और ऐ दोनों एकटक दृष्टिसे भगवान्की ओर देख रहे थे। तत्प वासुदेव-विग्रहको नमस्कार करके विस्मय और आन निमग्न हुए ऐतरेयने अपनी मातासे कहा—''मा! मैं पूर्वज शूद्र था, एक दिन सांसारिक दोषोंसे भयभीत हो धर्मनिष्ठ ब्राह्मणकी शरणमें गया। वे बड़े दयालु थे। उन मुझे द्वादशाक्षर मन्त्रका उपदेश दिया और कहा, ' इस मन्त्रका जप किया कर।' उनकी इस आज्ञाके अनु मैं निरन्तर उस मन्त्रका जप करने लगा। उस ज प्रभावसे तुम्हारे गर्भसे मेरा जन्म हुआ। मुझे पूर्वजन स्मृति हुई, भगवान् विष्णुके प्रति मेरे मनमें भक्तिका उ हुआ और इस तीर्थमें सर्वदा निवास करनेका सौ

प्राप्त हुआ।" मातासे ऐसा कहकर ऐतरेय यज्ञमें गये और वहाँ यह श्लोक बोले—

नमस्तस्मै भगवते विष्णवेऽकुण्ठमेधसे।
यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मसागरे॥

'जिनकी बुद्धि कहीं कुण्ठित नहीं होती तथा जिनकी मायासे मोहितचित्त होकर हमलोग कर्मोंके समुद्रमें भटक रहे हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है।'

इस श्लोकका आशय बहुत गम्भीर है। हरिमेधा आदि ब्राह्मणोंने जब इसे सुना, तब आसन और पूजा आदिके द्वारा ऐतरेयका बहुत सत्कार किया। तत्पश्चात् ऐतरेयने अपनी विद्यासे उन वेदार्थनिपुण ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया। फिर सबने उन्हें दक्षिणा दी। हरिमेधाने ऐतरेयको अपनी पुत्री भी दे दी। धन और पत्नीको ग्रहण करके ऐतरेय अपने घर आये। उन्होंने माताको आनन्दित किया और अनेकों निर्मल पुत्रोंको जन्म दिया। ऐतरेय सदा द्वादशी व्रतका पालन करते रहे। वे अनेक यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करके निरन्तर वासुदेवका ध्यान किया करते थे। इससे देहत्यागके पश्चात् उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया। अर्जुन! ऐसी महिमावाले भगवान् वासुदेव यहाँ स्वयं विराजमान हैं। जो इनकी पूजा, अर्चा और स्तुति करता है, उसका सब पुण्य अक्षय माना गया है।

भट्टादित्यकी स्थापना तथा नारदजीके द्वारा एक सौ आठ नामोंसे उनकी स्तुति

नारदजी कहते हैं—कुन्तीनन्दन! भगवान् वासुदेवकी स्थापनाके पश्चात् मैंने पुनः मनुष्योंपर कृपा करनेकी इच्छासे प्रत्यक्ष देवता भगवान् सूर्यको इस तीर्थमें लानेका विचार किया। भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंके उद्गमस्थान हैं। वे इस लोक और परलोकमें भी सबका अभ्युदय करते हैं। श्रीसूर्यदेव सम्पूर्ण विश्वके आधार माने गये हैं। जो भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यका प्रतिदिन स्मरण, कीर्तन और पूजन करते हैं, वे निस्सन्देह कृतार्थ हो जाते हैं। जिसने इस संसारमें जन्म लेकर सहस्रों किरणोंवाले देवेश्वर भगवान् सूर्यका पूजन नहीं किया, उसने अपने आत्मासे ही द्रोह किया है। जो सदा भगवान् सूर्यकी भक्तिमें तत्पर और सर्वदा उन्हींमें मन लगाये रहनेवाले हैं, जो सदा सूर्यका ही स्मरण किया करते हैं, वे कभी दुःखके भागी नहीं होते हैं। भगवान् भास्करकी भक्ति दुर्लभ है, उनका पूजन दुर्लभ है, उनके लिये दान देनेका सौभाग्य दुर्लभ है तथा उनकी प्रसन्नताके लिये होम करना तो और भी दुर्लभ है। जिसकी जिह्वाके अग्रभागमें नमस्कार आदिसे युक्त 'रवि' ये दो अक्षर विराजते हैं, उसका जीवन सफल है। इस प्रकार भगवान् सूर्यके बड़े भारी माहात्म्यका चिन्तन करके मैंने पूरे सौ वर्षतक भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी आराधना की। मैं वायु पीकर रहता और सूर्यसम्बन्धी वैदिक मन्त्रोंके विशुद्ध जपसे भगवान् सूर्यकी स्तुति किया करता था। तब, अत्यन्त तेजके कारण जिनकी ओर देखना बहुत कठिन है, उन भगवान् सूर्यने योगबलसे दूसरी मूर्ति धारण करके आकाशमें आकर मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया। तब मैंने हाथ जोड़कर भगवान्‌को नमस्कार किया और

सामवेदके विविध मन्त्रोंद्वारा उनका स्तवन भी किया। इससे प्रसन्न होकर वर देनेवाले भगवान् सूर्यने कहा—'देवर्षे! तुमने दीर्घकालतक तपस्याके द्वारा मेरी आराधना की है। अब कोई अभीष्ट वर माँगो।'

उनके ऐसा कहनेपर मैं हाथ जोड़कर बोला—भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना उचित समझते हैं, तो आपकी जो कामरूपिणी कला है, पूर्वकालमें राजा राज्यवर्धनने जिसकी आराधना की थी, उसी कलाके द्वारा

सदा हमारी रक्षा करते रहें। तदनन्तर भगवान् सूर्यने ष्ट होकर जब 'तथास्तु' कह दिया, तब मैंने इस तीर्थमें दित्यके नामसे उनकी स्थापना की। मुझ भट्टके द्वारा ेत होनेके कारण भगवान् सूर्यका उक्त नाम प्रसिद्ध । तत्पश्चात् फूलोंसे भलीभाँति पूजा करनेपर मूर्तिमें ान् सूर्यका आवेश हुआ। यह देख मेरा सम्पूर्ण अङ्ग रसके उद्रेकमें डूब गया और मैंने सम्पूर्ण वेदोंके भूत एक सौ आठ नामोंद्वारा सूर्यदेवका इस प्रकार न किया—

भगवान् सूर्य आप १ सप्तसप्ति (सात घोड़ोंसे युक्त र विचरण करनेवाले), २ अचिन्त्यात्मा (जिनका रूप चिन्तनमें नहीं आ सकता), ३ महाकारुणिकोत्तम अत्यन्त करुणा करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ), ४ संजीवन (सबको ीभाँति जीवित रखनेवाले), ५ जय (विजयी), ६ जीव जीवनदाता), ७ जीवनाथ (जीवोंके स्वामी) और जगत्पति (संसारके स्वामी) हैं। आप ९ कालाश्रय कालके आधार), १० कालकर्ता, ११ महायोगी, १२ मति (परम बुद्धिमान्), १३ भूतान्तःकरण (समस्त ोंके अन्तरात्मा), १४ देव (द्युतिमान्), १५ कमला-नन्दन (कमलोंका आनन्द बढ़ानेवाले), १६ सहस्रपाद् किरणरूपी सहस्रों चरणोंसे सुशोभित), १७ वरद (वर वाले), १८ दिव्यमण्डलमण्डित, १९ धर्मप्रिय, २० र्चितात्मा (पूजित स्वरूपवाले), २१ सविता (सम्पूर्ण त्के उत्पादक), २२ वायुवाहन (प्रवह वायुके सहारे काशमें विचरण करनेवाले अथवा वायुके ऊपर स्थित), ३ आदित्य (अदिति-पुत्र), २४ अक्रोधन (क्रोधरहित), ५ सूर्य, २६ रश्मिमाली (किरणसमूहसे सुशोभित), ७ विभावसु (विशेषरूपसे प्रकाशित होनेवाले), २८ नकृत (अपने उदयसे दिन प्रकट करनेवाले), २९ नहृत् (स्वयं अस्त होकर दिनको हर लेनेवाले), ३० नी (मौन रहनेवाले), ३१ सुरथ (सुन्दर रथवाले), ३२ येनां वर (रथियोंमें श्रेष्ठ), ३३ राज्ञां पति (राजाओंके धिपति), ३४ स्वर्णरेता (सुवर्णरूप बीजवाले), ३५ पूषा पोषण करनेवाले), ३६ त्वष्टा, ३७ दिवाकर, ३८ ाकाशतिलक, ३९ धाता (धारण-पोषण करनेवाले), ४० विभागी (दिन-रातका विभाग करनेवाले), ४१ मनोहर, २ प्राज्ञ (विद्वान्), ४३ प्रज्ञापति (बुद्धिके स्वामी ाथवा प्रेरक), ४४ धन्य, ४५ विष्णु (व्यापक), ४६ ीश (शोभा और संपत्तिके स्वामी), ४७ भिषग्वर (अपनी किरणोंद्वारा नाना प्रकारके रोगोंके निवारण करनेवाले श्रेष्ठ वैद्य), ४८ आलोककृत (प्रकाशक), ४९ लोकनाथ, ५० लोकपालनमस्कृत, ५१ विदिताशय (सबके अभिप्रायको जाननेवाले), ५२ सुनय (उत्तम नीतिवाले), ५३ महात्मा, ५४ भक्तवत्सल, ५५ कीर्ति, ५६ कीर्तिकर, ५७ नित्य, ५८ रोचिष्णु (कान्तिमान्), ५९ कल्मषापह (पापोंका नाश करनेवाले), ६० जितानन्द (आनन्दको अपने अधीन रखनेवाले), ६१ महावीर्य (परम पराक्रमी), ६२ हंस (आकाशरूपी सरोवरमें हंसके समान विचरण करनेवाले अथवा परमात्मा), ६३ संहारकारक (प्रलयकालमें संवर्तका-नलरूपसे प्रकट होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दग्ध करनेवाले), ६४ कृतकृत्य, ६५ असङ्ग (अनासक्त), ६६ बहुसू, ६७ वचसां पति (वाणीके अधिपति), ६८ विश्वपूज्य, ६९ मृत्युहारी, ७० घृणी (दयालु), ७१ धर्मकारण, ७२ प्रणतार्तिहर (शरणागतोंका कष्ट हर लेनेवाले), ७३ अरोग (रोगरहित), ७४ आयुष्मान्, ७५ सुखद, ७६ सुखी, ७७ मंगल, ७८ पुण्डरीकाक्ष (कमलके समान नेत्रोंवाले), ७९ व्रती (व्रतोंका पालन करनेवाले), ८० व्रतफलप्रद (व्रतोंका फल देनेवाले), ८१ शुचि (पवित्र), ८२ पूर्ण, ८३ मोक्षमार्ग, ८४ दाता, ८५ भोक्ता, ८६ धन्वन्तरि, ८७ प्रियाभास (जिनका प्रकाश लोकप्रिय है), ८८ धनुर्वेदवित् (धनुर्वेदके ज्ञाता), ८९ एकराट् (आकाशमें एकमात्र प्रकाशित होनेवाले), ९० जगत्पिता, ९१ धूमकेतु (अग्निरूप), ९२ विद्युत् (विशेष दीप्तिमान्), ९३ ध्वान्तहा (अन्धकारनाशक), ९४ गुरु, ९५ गोपति (किरणोंके स्वामी), ९६ कृतातिथ्य (सब लोग अर्घ्य देकर जिनका आतिथ्यसत्कार करते हैं), ९७ शुभाचार (पुण्यकर्मोंके प्रवर्तक), ९८ शुचिप्रिय (पवित्र आचार-विचारवाले जिन्हें अधिक प्रिय हैं), ९९ सामप्रिय (साम-गानके प्रेमी), १०० लोकबन्धु, १०१ नैकरूप (अनेक रूपवाले), १०२ युगादिकृत (युगादिके उत्पादक), १०३ धर्मसेतु (धर्म-मर्यादाके रक्षक), १०४ लोकसाक्षी (सब लोगोंके शुभाशुभ कर्मोंको देखनेवाले), १०५ खेट (आकाशमें विचरनेवाले), १०६ अर्क (अर्चनीय), १०७ सर्वद (सब कुछ देनेवाले) तथा १०८ प्रभु (सर्वशक्तिमान्) हैं। मेरे द्वारा इस प्रकार एक सौ आठ नामोंसे जिनकी भलीभाँति स्तुति की गयी है, वे सर्वलोकप्रिय भगवान् सूर्य समस्त लोकोंपर प्रसन्न हों।

इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने मुझसे

कहा—देवर्षे ! तुम्हारा प्रिय करनेकी इच्छासे मैं अपनी एक कलाद्वारा सदा इस स्थानमें निवास करूँगा । जो मनुष्य भक्तिपूर्वक यहाँ मुझ भट्टादित्यकी पूजा करेगा, वह कामरूपधारी साक्षात् मुझ सहस्रांशुके पूजनसे प्राप्त होनेवाले फलको पा लेगा । जो मनुष्य मेरे उद्देश्यसे यहाँ थोड़ा या अधिक दान करेगा, उसे मैं सर्वथा स्वीकार करूँगा और उसका पुण्य अक्षय होगा । जो मानव रविवारको अथवा षष्ठी या सप्तमी तिथिको लाल कमल, कह्लार, केदार, कने सौ पत्तोंवाले महाकमलके पुष्पोंसे यहाँ मेरी पूजा क जिन-जिन कामनाओंके लिये प्रार्थना करेंगे, उन निश्चय ही प्राप्त कर लेंगे । भक्तिपूर्वक मेरा दर्शन रोग और दरिद्रताका नाश होगा । प्रतिदिन मुझे करनेसे स्वर्गकी तथा नित्य प्रति मेरी स्तुति करनेसे प्राप्ति होगी ।

महात्मा नन्दभद्रके सारभूत विचार तथा उनके द्वारा सत्यव्रतके नास्तिकतापूर्ण विचारोंका खण्डन

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! अब बहूदक स्थानकी एक अद्भुत कथा सुनो । कामरूपमें जो बहूदक नामक कुण्ड है, वह इस तीर्थमें आकर भलीभाँति प्रकट हुआ है । इसीलिये इसे बहूदक कहा गया है । महात्मा कपिलने बहुत वर्षोंतक तपस्या करके यहाँ एक बहुत सुन्दर शिवलिंगकी स्थापना की है, जो कपिलेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है । अर्जुन ! नन्दभद्र नामके एक वणिक् थे, जो तीनों समय बड़े आदरके साथ कपिलेश्वर लिङ्गकी पूजा किया करते थे । वे साक्षात् दूसरे धर्मराजकी भाँति समस्त धर्मोंके विशेषज्ञ थे । धर्मोंके विषयमें जो कुछ कहा गया है, उसमें कोई भी ऐसी बात नहीं थी, जो नन्दभद्रको ज्ञात न हो । वे सबके सुहृद् थे और सदा सभीके हितसाधनमें संलग्न रहते थे । उन्होंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा इस परोपकार-धर्मका ही आश्रय ले रक्खा था । संसारमें ऐसा कोई धर्म न तो प्रकट हुआ है और न होनेवाला है, जो सब अवस्थाओंमें सर्वथा निर्दोष हो । इस निश्चयपर पहुँचे हुए नन्दभद्रने इस विशाल धर्म-समुद्रका सब ओरसे मन्थन करके जो सारतत्त्व ग्रहण किया था, उसे बतलाता हूँ, सुनो । नन्दभद्र जीविकाके लिये वाणिज्यको ही श्रेष्ठ मानते थे और उसीको अपनाये हुए थे । उन्होंने थोड़ेसे काठ और घास-फूससे अपने रहनेके लिये घर बना रक्खा था और सब लोगोंकी भलाईके लिये वे थोड़ा-सा ही लाभ लेकर व्यापार करते थे । उनके क्रय-विक्रयकी वस्तुओंमें मदिरा सर्वथा वर्जित थी । उनके यहाँ ग्राहकोंके साथ भेद-भाव नहीं किया जाता था । झूठ और कपटका तो वहाँ नाम भी न था । वस्तुओंके आदान-प्रदानमें वे सबके साथ समतापूर्ण बर्ताव करते थे । बिना छल-कपटके दूसरोंसे खरीदकी वस्तु लेकर उसे बिना किसी धोखाधड़ीके वे सब लोगोंके हाथ बेचते ३ उनका श्रेष्ठ व्रत था । कुछ लोग यज्ञकी प्रशंसा क परंतु नन्दभद्र ऐसा नहीं मानते थे । उन्होंने यज्ञ हुए कुछ दोषोंको लक्ष्य करके ही ऐसी धारणा बनाय तथापि वे श्रद्धापूर्वक देवपूजन, नमस्कार, स्तुति, निवेदन आदि यज्ञकी सारभूत बातोंका सदा ही करते थे । कोई-कोई संन्यासकी प्रशंसा करते हैं, नन्दभद्र उनसे भी सहमत नहीं थे । उनका कहना जो विषयोंका बाहरसे त्याग करके मनके द्वारा पुनः ग्रहण करता है वह गृहस्थ और संन्यास अथवा इ और परलोक दोनों ओरसे भ्रष्ट होकर फटे हुए बा भाँति नष्ट हो जाता है । संन्यासका जो सारभूत उत्त है, उसका आदर तो नन्दभद्र भी करते थे । वे वि कर्मोंकी निन्दा या प्रशंसा नहीं करते थे । अनेक भिन्न मार्गोंमें स्थित हुए लोगोंको चन्द्रमाकी भाँति तटस्थ लीलापूर्वक देखते थे । किसीके साथ न उनका द्वेष था राग; न अनुरोध था, न विरोध । पत्थर और सुवर्णको वे स समझते तथा अपनी निन्दा और स्तुतिमें भी समान भाव थे । वे स्वभावसे ही धीर थे । सम्पूर्ण भूतोंसे निर्भय रहते अपनी आकृति ऐसी बनाये रखते थे, मानो अन्धे बहरे हों । कर्मोंके फलकी उन्हें कोई आकाङ्क्षा नहीं अतः वह कर्म उनके लिये भगवान् सदाशिवकी आरा बन जाता था । इसी कारण वे धर्मका अनुष्ठान तो च और करते थे, परंतु उसमें कोई लोभ नहीं रखते नन्दभद्रने भलीभाँति विचार करके इसीको मोक्षके सारभ ग्रहण किया था । कुछ लोग खेतीकी प्रशंसा करते हैं; प नन्दभद्रने उसके भी सारभागको ही अपनाया था । उ

जुड़ा हुआ एक हल होना चाहिये और खेतीकी । तीसवें भागका त्याग करना चाहिये—उसे धर्मके लगा देना चाहिये । बूढ़े पशुओंका भी स्वयं ही पोषण करना चाहिये । जो ऐसा करे, वही श्रेष्ठ है । नन्दभद्रने इसीको खेतीका सार मानकर इसका किया था । उनके मतसे प्रतिदिन अपनी शक्तिके देवताओं, पितरों, मनुष्यों (अतिथियों), ब्राह्मणों पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि भूतोंके लिये अन्न देना । सदा इन सबको देकर ही स्वयं भोजन करना है । कुछ लोग ऐश्वर्यकी प्रशंसा करते हैं; परंतु उसे भी प्रशंसाके योग्य नहीं मानते थे । क्योंकि मदसे उन्मत्त हो मनुष्य दूसरे मनुष्योंको दास उनका उपभोग करते हैं । वे मनुष्योंका वध हैं, उन्हें बाँधते हैं और बंदी बनाकर दिन-रात पीड़ा । ऐश्वर्यशाली पुरुष अपनेको अजर-अमर समझकर साथ दुर्व्यवहार करते हैं । उनपर ऐश्वर्यका मद ता ही है, मदिरापानके मदसे भी वे अत्यन्त मतवाले ठते हैं । वास्तवमें जो धनके मदसे उन्मत्त होता है, तित होकर विवेक खो बैठता है । अतः सम्पूर्ण भूतों गयों) को अपना स्वरूप मानकर उनके प्रति अपने सा बर्ताव करना चाहिये । जिसकी सर्वत्र आत्मदृष्टि ऐश्वर्यसे मतवाला नहीं होता । जो सबके शरीरमें ही जैसे सुख-दुःखका अनुभव करता हो, ऐसा शाली पुरुष आज कहाँ है ? इसलिये नन्दभद्रने का जो सार ग्रहण किया था, वह भी सुनो । वे अपनी के अनुसार सभी प्राणियोंकी सेवा करते थे, किसीकी वासे विमुख नहीं होते थे ।

इस प्रकार इधर-उधर प्रकट हुए सारभूत सदाचारका करके बुद्धिमान् नन्दभद्र उसीका पालन करते थे । आचरणसे रहनेवाले साधु-शिरोमणि नन्दभद्रके वहारकी देवतालोग भी स्पृहा रखते थे । इन्द्र आदि देवताओंको उनकी स्थिति देखकर बड़ा विस्मय होता । इसी स्थानमें एक शूद्र भी रहता था, जो नन्दभद्रका ी था । उसका नाम तो था सत्यव्रत, किंतु वह बड़ा नास्तिक और दुराचारी था । धर्मपरायण नन्दभद्रपर र दोषारोपण किया करता था और सदा उनके ही ढूँढ़ता रहता था । उसकी इच्छा थी, यदि इनका छिद्र देख पाऊँ तो इन्हें धर्मसे गिरा दूँ । खोटे हृदयवाले क्रूर नास्तिकोंका यह स्वभाव ही होता है कि वे अपनेको तो नीचे गिराते ही हैं, दूसरोंको भी गिरानेकी चेष्टा करते हैं ।

धार्मिक वृत्तिसे रहनेवाले बुद्धिमान् नन्दभद्रके वृद्धावस्थामें बड़े कष्टसे एक पुत्र हुआ, किंतु वह चल बसा । इसे प्रारब्धका फल मानकर उन महामति वैश्यने शोक नहीं किया । देवता हो या मनुष्य, प्रारब्धके विधानसे कौन छूट पाता है । तदनन्तर नन्दभद्रकी प्यारी पत्नी कनका, जो अरुन्धतीकी भाँति साध्वी स्त्रियोंके समस्त सद्गुणोंसे विभूषित तथा गृहस्थधर्मकी साक्षात् मूर्ति थी, सहसा मृत्युको प्राप्त हो गयी । नन्दभद्र जितेन्द्रिय थे; फिर भी पत्नीके न रहनेसे गृहस्थ-धर्मका नाश होगा, यह सोचकर उन्हें शोक हुआ ।

नन्दभद्रका यह अन्तर देखकर सत्यव्रतको बहुत दिनोंके बाद बड़ी प्रसन्नता हुई । वह 'हाय-हाय ! बड़े कष्टकी बात हुई' ऐसा कहता हुआ शीघ्र ही नन्दभद्रके पास आया और मित्रकी भाँति मिलकर उनसे बोला—'हा नन्दभद्र ! यदि तुम-जैसे धर्मात्माको भी ऐसा फल मिला तो इससे मेरे मनमें यही आता है कि यह धर्म-कर्म व्यर्थ ही है । भाई नन्दभद्र ! मैं सदा तुमसे कुछ कहना चाहता था, किंतु तुम्हारी ओरसे कोई प्रस्ताव न होनेके कारण मैंने कभी कुछ नहीं कहा, क्योंकि बिना किसी प्रस्तावके बृहस्पतिजी भी कोई बात कहें, तो उनकी बुद्धिकी अवहेलना होती है और उन्हें नीच पुरुषकी भाँति अपमान प्राप्त होता है । मैं वाणीके अठारह और बुद्धिके नौ दोषोंसे रहित सर्वथा निर्दोष वाक्य बोलूँगा । सूक्ष्मता, संख्या, क्रम, निर्णय और प्रयोजन—ये पाँच अर्थ जिसमें उपलब्ध होते हैं, उसे 'वाक्य' कहते हैं । धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके उद्देश्यसे जो कुछ कहा जाता है, वह 'प्रयोजन' नामक वाक्य कहा गया है । यह वाक्यका प्रथम लक्षण है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके विषयमें प्रतिज्ञा करके वाक्यके उपसंहारमें 'यही वह है' ऐसा कहकर जो विशेषरूपसे सिद्धान्त बताया जाता है, वह 'निर्णय' नामक वाक्य है । 'यह पहले और यह पीछे कहना चाहिये'—इस प्रकार क्रमविभागपूर्वक जो प्रस्तुत विषयका प्रतिपादन किया जाता है, उसे वाक्यतत्त्वके ज्ञाता विद्वान् 'क्रमयोग' कहते हैं । जहाँ दोषों और गुणोंका यथावत् विभाग करके दोनोंके लिये प्रमाण उपस्थित किया जाय उसे 'संख्या' वाक्य समझना चाहिये । और जहाँ वाक्यके विभिन्न अर्थोंमें अभेद देखा जाता है, उस अतिशय

अभेदकी प्रतीतिमें जो हेतु है; उसे ही 'सूक्ष्मता' कहते हैं। यह वाक्यके गुणोंकी गणना हुई। अब वाणीके अठारह दोषोंका वर्णन सुनो। अपेतार्थ, अभिन्नार्थ, अप्रवृत्त, अधिक, अश्लक्ष्ण, सन्दिग्ध, पदान्त अक्षरका गुरु होना, पराङ्मुख-मुख, अनृत एवं असंस्कृत, त्रिवर्गविरुद्ध, न्यून, कष्टशब्द, अतिशब्द, व्युत्क्रमाभिहृत, सशेष, अहेतुक तथा निष्कारण*—ये वाणीके दोष हैं। अब बुद्धिके दोषोंको सुनो। काम, क्रोध, भय, लोभ, दैन्य, अनार्जव (कुटिलता)-इन छः दोषोंसे युक्त होकर तथा दया, सम्मान और धर्म—इन तीन गुणोंसे हीन होकर मैं कोई बात न कहूँगा। (उक्त छः दोषोंके साथ दयाहीनता, सम्मानहीनता और धर्महीनता—ये तीन दोष और मिल जानेसे नौ दोष होते हैं।) जब वक्ता, श्रोता और वाक्य तीनों अविकल रहकर बोलनेकी इच्छामें समान अवस्थाको प्राप्त हों, तभी वक्ताका अभिप्राय यथावत् रूपसे प्रकट होता है। बातचीत करते समय जब वक्ता श्रोताकी अवहेलना करता है अथवा श्रोता ही वक्ताकी उपेक्षा करने लगता है, तब बोला हुआ वाक्य बुद्धिपथपर नहीं चढ़ता। इसके सिवा, जो सत्यका परित्याग करके अपनेको अथवा श्रोताको प्रिय लगनेवाला वचन बोलता है, उसके उस वाक्यमें सन्देह उत्पन्न होने लगता है; अतः वह वाक्य भी सदोष ही है। इसलिये जो अपनेको या श्रोताको प्रिय लगनेवाली बात छोड़कर केवल सत्य ही बोलता है, वही इस पृथ्वीपर यथार्थ वक्ता है, दूसरा नहीं।

शास्त्रोंके जालसे पृथक् हो मिथ्यावादोंको छोड़कर केवल सत्य कहना ही मेरा व्रत है। इसलिये मैं 'सत्यव्रत' कहलाता हूँ। मैं तुमसे सच्ची बात कहूँगा और तुम्हें भी उसे सत्य मानकर ही स्वीकार करना चाहिये। भलेमानुस! जबसे तुम पत्थर पूजनेमें लग गये, तबसे तुम्हें कोई अच्छा फल मिला हो, ऐसा मैं नहीं देखता। तुम्हारे एक ही तो पुत्र था, वह भी नष्ट हो गया। पतिव्रता पत्नी थी, सो भी संसारसे चल बसी। साधो! झूठे तथा कपटपूर्ण कर्मोंका ही ऐसा फल हुआ करता है। भैया! देवता कहाँ हैं? सब मिथ्या है। यदि होते तो दिखायी न देते? यह सब कुछ कपटी ब्राह्मणोंकी झूठी कल्पना है। लोग पितरोंके उद्देश्यसे दान देते हैं, यह देखकर मुझे तो हँसी आती है। मेरी दृष्टिमें यह अन्नकी बरबादी है। भला, मरा हुआ मनुष्य क्या खायगा? मूर्ख एवं नीच ब्राह्मण, जो समस्त संसारकी सृष्टिका अनेक प्रकारसे वर्णन किया करते हैं, उसमें भी जो यथार्थ बात है उसे सुनो। संसारकी सृष्टि और संहार—ये दोनों बातें झूठी हैं। वास्तवमें यह जगत् सत्य है और इसी रूपमें सदा बना रहता है। यह विश्व स्वभावसे ही सदा वर्तमान रहता है, ये सूर्य आदि ग्रह स्वभावसे ही आकाशमें विचरण करते हैं, स्वभावसे ही निरन्तर वायु चलती है, स्वभावसे ही मेघ पानी बरसाता है और स्वभावसे ही बोया हुआ धान्य जमता है। स्वभावसे ही पृथ्वी स्थिर है, स्वभावसे ही नदियाँ बहती हैं, स्वभावसे ही पर्वत अविचलभावसे सुशोभित हैं और स्वभावसे ही समुद्र अपनी मर्यादामें स्थित है। स्वभावसे ही गर्भवती स्त्री पुत्र पैदा करती है, स्वभावसे ही ये बहुतेरे जीव उत्पन्न होते हैं। जैसे स्वभावसे ही लोग टेढ़े होते हैं, ऋतुके स्वभावसे ही बेरोंमें काँटे पैदा होते हैं—उसी प्रकार स्वभावसे ही यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है। इसका कोई प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला कर्ता नहीं है। इस प्रकार स्वभावसे ही सम्पूर्ण लोक स्थित है। ऐसी अवस्थामें भी मूर्ख मनुष्य इस विषयको लेकर मतवालेकी भाँति व्यर्थ मोहमें पड़ा रहता है।

* जिस वाणीके उच्चारण करनेपर भी अर्थका भान न हो, वह 'अपेनार्थ' है। जिससे अर्थभेदकी स्पष्ट प्रतीति न हो, वह अभिन्नार्थ है। जो सदा व्यवहारमें न आता हो ऐसा शब्द 'अप्रवृत्त' कहा गया है। जिसके न रहनेपर भी वाक्यार्थ-बोध हो जाता है, वह वाक् या शब्द अधिक है। अस्पष्ट अथवा अपरिमार्जित वाणीको अश्लक्ष्ण कहते हैं। जिससे अर्थमें सन्देह हो वह सन्दिग्ध है। पदान्त अक्षरका गुरु उच्चारण भी एक दोष ही है। वक्ता जिस अर्थको व्यक्त करना चाहता है, उसके विपरीत अर्थकी ओर जानेवाली वाणीको पराङ्मुखमुख कहा गया है। अनृतका अर्थ है असत्य। व्याकरणसे सिद्ध न होनेवाली वाणीको असंस्कृत कहते हैं। धर्म, अर्थ और कामके विपरीत विचार प्रकट करनेवाली वाणी त्रिवर्ग-विरुद्ध कही गयी है। अर्थ-बोधके लिये पर्याप्त शब्दका न होना न्यून दोष है। जिसके उच्चारणमें क्लेश हो, वह कष्टशब्द है। अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दको यहाँ अतिशब्द कहा है। जहाँ क्रमका उल्लङ्घन करके शब्दप्रयोग हुआ हो, वह व्युत्क्रमाभिहृत कहलाता है। वाक्य पूरा होनेपर भी यदि बात पूरी नहीं हुई तो वहाँ सशेष नामक दोष है। कथित अर्थकी सिद्धिके लिये जहाँ उचित तर्क या युक्तिका अभाव हो; वहाँ अहेतुक दोष है। जब किसी बातके कहे जानेका कोई कारण नहीं बताया गया हो अथवा किसी शब्दके प्रयोगका उचित कारण न हो, तब वहाँ निष्कारण दोष है।

लो॰ इस मनुष्ययोनिको भी जो सबसे श्रेष्ठ बतलाते हैं, की भी पोल खोलता हूँ, सुनो। मनुष्ययोनिसे बढ़कर किसी योनिमें कष्ट नहीं है। मनुष्योंको जो कष्ट है, वह शत्रुओंको भी न हो। मनुष्योंके समक्ष क्षण-क्षणमें कके सहस्रों स्थान आते हैं। यह मानवयोनि क्या है, रीगृह है! कोई बड़भागी पुरुष ही इससे छुटकारा पाता । ये पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े बिना किसी बन्धनके सुख-कि विहार करते हैं; इनकी योनि अत्यन्त दुर्लभ है। ये वर (वृक्ष-पर्वत आदि) कितने निश्चिन्त हैं। पृथ्वीपर हींका सुख महान् है। अधिक क्या कहें, मनुष्योंकी अपेक्षा अन्य नियोंमें उत्पन्न होनेवाले सभी जीव धन्य हैं। कोई स्थावर कोई कीड़े हैं, कोई पतंग हैं और कोई मनुष्य आदि वोंके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। इसमें स्वभावको ही प्रधान रण समझो। पुण्य और पाप आदि तो कल्पनामात्र हैं। सलिये नन्दभद्र! तुम मिथ्याधर्मका परित्याग करके मौजसे ाओ, पीओ, खेलो और भोग भोगो। पृथ्वीपर, बस यही त्य है।'

नारदजी कहते हैं—सत्यव्रतके इन वाक्योंसे, जो अशुभकर, अयुक्तिसङ्गत तथा असमंजस (दोषपूर्ण) थे, महाबुद्धिमान् नन्दभद्र तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे क्षोभरहित समुद्रकी भाँति गम्भीर थे। उन्होंने हँसते हुए उत्तर दिया—'सत्यव्रतजी! आपने जो यह कहा कि धर्मनिष्ठ मनुष्य सदा दुःखके भागी होते हैं, वह झूठ है। हम तो पापियोंपर भी बहुतेरे दुःख आते देखते हैं। संसारबन्धन-जनित क्लेश तथा पुत्र और स्त्री आदिकी मृत्युके दुःख पापी मनुष्योंके यहाँ भी देखे जाते हैं। इसलिये मेरे मतमें धर्म ही श्रेष्ठ है। किसी पुण्यात्मा साधुपुरुषपर सङ्कट आया देखकर बड़े-बड़े लोग सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए यह कहते हैं कि 'अहो! ये तो साधु पुरुष हैं, इनपर कष्ट आया, यह तो हमारे लिये बड़े दुःखकी बात है' इत्यादि। पापियोंको तो यह सहानुभूति भी दुर्लभ है। स्त्री तथा धन आदिके लोभसे जब कोई पापी लुटेरा घरमें घुसता है, तो आप भी उससे डर जाते हैं; उसके प्रति द्वेषका परिचय देते हैं और उसके ऊपर क्रोध भी करते हैं। यह सब व्यर्थ ही तो है। दूसरी बात जो आप यह कहते हैं कि इस संसारका कारण कोई महान् ईश्वर नहीं है, यह भी बच्चोंकी-सी बात है। क्या प्रजा बिना राजाके रह सकती है? इसके सिवा जो आप यह कहते हैं कि तुम झूठे ही पत्थरके लिङ्गकी पूजा करते हो, इसके उत्तरमें मुझे इतना ही निवेदन करना है कि आप शिवलिङ्गकी महिमाको नहीं जानते हैं। ठीक उसी तरह, जैसे अन्धा सूर्यके स्वरूपको नहीं जानता। ब्रह्मा आदि समस्त देवता, बड़े-बड़े समृद्धिशाली राजा, साधारण मनुष्य तथा मुनि भी शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। उनके द्वारा स्थापित किये हुए शिवलिङ्ग उन्हींके नामसे अङ्कित एवं प्रसिद्ध हैं, क्या ये सब-के-सब मूर्ख ही थे और अकेले आप सत्यव्रतजी ही बुद्धिमानीका ठेका लिये बैठे हैं? भगवान् विष्णु (राम) ने युद्धमें रावणको मारकर समुद्रके किनारे रामेश्वरलिङ्गकी स्थापना की है, क्या वह झूठा ही है? प्राचीन कालमें इन्द्रने वृत्रासुरका वध करके महेन्द्रपर्वतपर शिवलिङ्गको स्थापित किया, जिससे वृत्रवधके पापसे मुक्त होकर इन्द्र आज भी स्वर्गलोकमें आनन्द भोगते हैं! चन्द्रमाने पश्चिम समुद्रके तटपर प्रभासक्षेत्रमें भगवान् सोमनाथकी स्थापना करके आरोग्यलाभ किया था। यमराज और कुबेरने काशीमें, गरुड़ और कश्यपने सह्यपर्वतपर तथा वायु और वरुणने नैमिषारण्यक्षेत्रमें शिवलिङ्गको स्थापित किया है। जिससे वे सदा आनन्दमग्न रहते हैं। इसी स्तम्भतीर्थमें भगवान् स्कन्द-ने कुमारेश्वरलिङ्गकी स्थापना की है, क्या वह समस्त पापोंका नाशक नहीं है? इसी प्रकार अन्य देवताओं, राजाओं और मुनियोंने जो-जो शिवलिङ्ग स्थापित किये हैं, उनकी गणना करनेमें मैं असमर्थ हूँ। भूलोकवासी, स्वर्गलोकवासी तथा

पातालनिवासी भी शिवलिङ्गके पूजनसे तृप्त होते हैं। आप जो यह कहते हैं कि देवता नहीं हैं और यदि हैं तो कहीं भी दिखायी क्यों नहीं देते? आपके इस प्रश्नसे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। जैसे दरिद्रलोग द्वार-द्वार जाकर कुलथी माँगते हैं, उसी प्रकार क्या देवता भी आपके पास आकर याचना करें? भैया! आप बड़े बुद्धिमान् हैं, आप जो चाहते हैं उसकी सिद्धि तो आपके गुरु ही कर सकते हैं। यदि आपके मतमें सब पदार्थ स्वभावसे ही सिद्ध होते हैं, तो बताइये, कर्ताके बिना भोजन क्यों नहीं तैयार हो जाता? इसलिये जो भी निर्माण-कार्य है, वह अवश्य किसी-न-किसी कर्ताका ही है। जिस पदार्थमें जितनी निर्माणशक्ति विधाताने भर दी है, वह वैसा ही है। और आपने जो यह कहा है कि ये पशु आदि प्राणी ही सुखी तथा धन्य हैं, यह बात आपके सिवा और किसीने न तो कही है और न सुनी ही है। तमोगुणी और अनेक इन्द्रियोंसे रहित जो पशु-पक्षी आदि प्राणी हैं तथा उनके जो कष्ट हैं, वे भी यदि स्पृहणीय और धन्य हैं तो सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे युक्त मनुष्य श्रेष्ठ और धन्य क्यों नहीं? मैं तो समझता हूँ कि आपका जो यह अद्भुत सत्यव्रत है, इसे आपने नरक जानेके लिये ही संग्रह किया है। आपने पहले ही जो आडम्बरपूर्ण भूमिका बाँधकर अपने ज्ञानका परिचय देना आरम्भ किया है, उसीमें आपके इन वचनोंकी सारहीनता व्यक्त हो गयी है। क्योंकि मायावी लोग जब बोलने लगते हैं, तब उनकी बातें आडम्बरसे आच्छादित होती हैं। आपने प्रतिज्ञा तो की थी कुछ और कहनेके लिये, परंतु कह डाला कुछ और ही। इसमें आपका कोई दोष नहीं है, सब दोष मेरा ही है, जो मैं आपकी बात सुनता हूँ। नास्तिक, सर्प और विष इनका तो यह गुण ही है कि ये दूसरोंको मोहित करते हैं। प्रतिदिन साधुपुरुषोंका सङ्ग करना धर्मका कारण है। इसलिये विद्वान्, वृद्ध, शुद्ध भाववाले तपस्वी तथा शान्तिपरायण संत-महात्माओंके साथ सम्पर्क स्थापित करना चाहिये। नीच, अज्ञानी तथा आत्मज्ञानसे रहित पुरुषोंका सङ्ग नहीं करना चाहिये। जिनके कुल, विद्या और कर्म तीनों शुद्ध हों और जिन्हें शास्त्रका ज्ञान हो, ऐसे पुरुषोंका विशेषरूपसे सेवन करना चाहिये। दुष्ट पुरुषोंके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप, एक आसनपर बैठने तथा एक साथ भोजन करनेसे धार्मिक आचार नष्ट होते हैं और मनुष्योंको सिद्धि नहीं प्राप्त होती। नीचोंके सङ्गसे पुरुषोंकी बुद्धि नष्ट होती है, मध्यमश्रेणीके लोगोंके साथ उठने-बैठनेसे बुद्धि मध्यम स्थितिको प्राप्त होती है और श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ समागम होनेसे बुद्धि श्रेष्ठ हो जाती है।* इस धर्मका स्मरण करके मैं पुनः आपसे मिलनेकी इच्छा नहीं रखता, क्योंकि आप सदा ब्राह्मणोंकी ही निन्दा करते हैं। वेद प्रमाण हैं, स्मृतियाँ प्रमाण हैं तथा धर्म और अर्थसे युक्त वचन प्रमाण हैं, परंतु जिसकी दृष्टिमें ये तीनों ही प्रमाण नहीं हैं, उसकी बातको कौन प्रमाण मानेगा।

महात्मा नन्दभद्र सत्यव्रतसे ऐसा कहकर उसी समय सहसा घरसे निकल पड़े और भगवान् भट्टादित्यके परम पावन बहूदक तीर्थमें जा पहुँचे।

नन्दभद्र और बालकका संवाद, बालादित्यकी स्थापना और नन्दभद्रकी मुक्ति

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर परम बुद्धिमान् नन्दभद्र बहूदक कुण्डके तटपर वर्तमान कपिलेश्वर-लिङ्गकी पूजा करके प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर भगवान्‌के आगे खड़े हुए। संसारके चरित्रोंसे उनके मनमें कुछ दुःख हो गया था। इसलिये उन्होंने दुखी होकर यह गाथा गायी—यदि इस संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् सदाशिवको मैं देख पाऊँ, तो अनेक प्रश्नोंके साथ उनसे तुरंत यह प्रश्न करूँगा कि भगवन्! क्या आपके उत्पन्न किये बिना ही यह अनेक रूपोंमें उपलब्ध होनेवाला निरीह संसार भरता चला जा रहा है? आप चेतन हैं, शुद्ध हैं और राग आदि दोषोंसे रहित हैं, तो भी आपने जो अखिल विश्वकी सृष्टि की है, उसे अपने समान ही चेतन, विशुद्ध एवं राग आदि दोषोंसे रहित क्यों नहीं बनाया? क्यों जड बना दिया? आप तो निर्वैर और समदर्शी हैं; फिर आपका बनाया हुआ यह जगत् सुख-दुःख और जन्म-मरण आदिसे क्लेश क्यों पा रहा है? संसारके ऐसे चरित्रसे मैं मोहित हो गया हूँ। अतः अब किसी दूसरे स्थानपर नहीं जाऊँगा, भोजन नहीं करूँगा और पानी भी नहीं पीऊँगा। उपर्युक्त बातोंका चिन्तन करता हुआ मृत्युपर्यन्त यहीं खड़ा

* बुद्धिश्च हीयते पुंसां नीचैस्सह समागमात्। मध्यस्थैर्मध्यतां याति श्रेष्ठतां याति चोत्तमैः॥
(स्क० मा० कुमा० ४०। २८)

रहूँगा। इस प्रकार विचार करते हुए नन्दभद्र वहीं खड़े रहे। तत्पश्चात् उसके चौथे दिन कोई सात वर्षका बालक पीड़ासे पीड़ित होकर बहूदकके सुन्दर तटपर आया। वह बहुत ही दुर्बल तथा गलित कुष्ठका रोगी था। उसे पग-पग-पर पीड़ाके मारे मूर्च्छा आ जाती थी। उस बालकने बड़े क्लेशसे अपनेको सँभालकर नन्दभद्रसे कहा—'अहो! आपके तो सभी अङ्ग सुन्दर और स्वस्थ हैं, फिर भी आप दुःखी क्यों हैं?' उसके पूछनेपर नन्दभद्रने अपने दुःखका सब कारण कह सुनाया। वह सब सुनकर बालकने दुःखी होकर कहा—'अहो! इस बातसे मुझे बड़ा भयङ्कर कष्ट हो रहा है
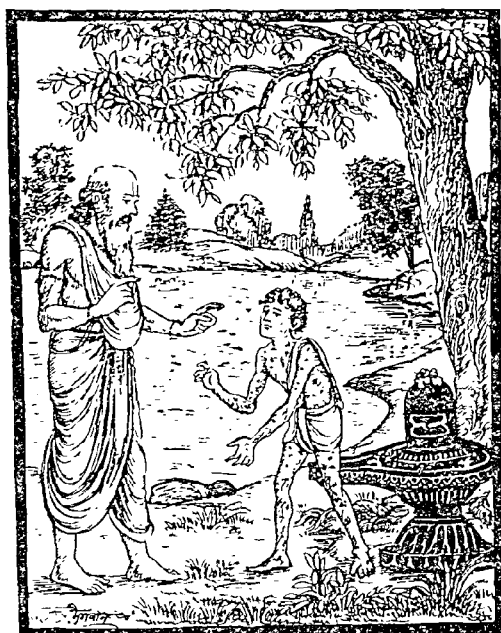
कि विद्वान् पुरुष भी अपने कर्तव्यको नहीं समझ पाते हैं। जिसका शरीर सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे युक्त और स्वस्थ है, वह भी व्यर्थ मरनेकी इच्छा रखता है। जहाँ राजा खट्वाङ्गने दो ही घड़ीमें मोक्षका मार्ग प्राप्त कर लिया, उसी भारतवर्षको आयु रहते कौन त्याग सकता है। मैं तो अपनेको ही दृढ़ मानता हूँ; क्योंकि मेरे माता-पिता कोई नहीं हैं, मुझमें चलनेकी भी शक्ति नहीं है, तथापि मैं मरना नहीं चाहता हूँ। धैर्यवान्को सभी लाभ प्राप्त होते हैं, यह श्रुतिका वचन सत्य है। आपको तो श्रुतिके इस कथनसे सन्तोष धारण करना ही उचित है; क्योंकि आपका यह शरीर अभी दृढ़ है। यदि मेरा भी शरीर किसी प्रकार नीरोग हो जाय, तो मैं एक-एक क्षणमें वह सत्कर्म करूँ, जिसको एक-एक युगमें भोगा जा सकता है। इन्द्रियाँ जिसके वशमें हों और शरीर जिसका दृढ़ हो, वह भी यदि साधनके सिवा और किसी वस्तुकी इच्छा करे, तो उससे बढ़कर मूर्ख कौन हो सकता है? मूर्ख मनुष्यको ही प्रतिदिन शोकके सहस्रों और हर्षके सैकड़ों स्थान प्राप्त होते हैं, विद्वान् पुरुषको नहीं।* जो ज्ञानके विरुद्ध हों, जिनमें नाना प्रकारके विनाशकारी विघ्न प्राप्त हों तथा जो मूलका ही उच्छेद कर डालनेवाले हों, ऐसे कर्मोंमें आप-जैसे बुद्धिमान् पुरुषोंकी आसक्ति नहीं होती। आठ अङ्गोंवाली जिस बुद्धिको सम्पूर्ण श्रेयकी सिद्धि करनेवाली बताया गया है, वह वेदों और स्मृतियोंके अनुकूल चलनेवाली निर्मल बुद्धि आपके भीतर मौजूद है। इसलिये आप-जैसे लोग दुर्गम सङ्कटोंमें तथा स्वजनोंकी विपत्तियोंमें भी शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे पीड़ित नहीं होते। पण्डितोंकी-सी बुद्धिवाले विवेकी मनुष्य प्राप्त होने योग्य वस्तुकी भी अभिलाषा नहीं करते, नष्ट हुई वस्तुके लिये शोक करना नहीं चाहते तथा आपत्तियोंमें मोहित नहीं होते हैं। सम्पूर्ण जगत् मानसिक और शारीरिक दुःखोंसे पीड़ित है। उन दोनों प्रकारके दुःखोंकी शान्तिका उपाय विस्तारपूर्वक और संक्षेपसे भी सुनिये। रोग, अनिष्ट वस्तुकी प्राप्ति, परिश्रम तथा अभीष्ट वस्तुके वियोग—इन चार कारणोंसे शारीरिक और मानसिक दुःख उत्पन्न होते हैं। अप्रियका संयोग और प्रियका वियोग—यह दो प्रकारका मानसिक महाकष्ट बताया गया है। इस प्रकार यहाँ शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारका दुःख बताया गया। जैसे लोहपिण्डके तप जानेसे उसपर रक्खा हुआ घड़ेका जल भी गरम हो जाता है, उसी प्रकार मानसिक दुःखसे शरीरको भी सन्ताप होता है। अतः शीघ्र ही औषध आदिके द्वारा उचित प्रतीकार करनेसे व्याधि अर्थात् शारीरिक दुःखका और सर्वदा परित्याग करनेसे आधि अर्थात् मानसिक दुःखका शमन होता है। इन दो क्रियायोगोंसे व्याधि और आधिकी शान्ति बतायी गयी है। इसलिये जैसे जलसे आगको बुझाया जाता है, उसी प्रकार ज्ञानसे मानसिक दुःखको शान्त करे। मानसिक दुःखके शान्त होनेपर मनुष्यका शारीरिक दुःख भी शान्त हो जाता है। मनके दुःखकी जड़ है स्नेह। स्नेहसे ही प्राणी आसक्त होता है और दुःख पाता है। स्नेहसे

* शोकस्थानसहस्राणि हर्षस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥
(स्क० मा० कुमा० ४१। २३)

दुःख और स्नेहसे ही भय उत्पन्न होते हैं। शोक, हर्ष तथा आयास—सब कुछ स्नेहसे ही होता है। स्नेहसे इन्द्रिय-राग तथा विषयरागका जन्म हुआ है, ये दोनों ही श्रेयके विरोधी हैं। इनमें पहला अर्थात् इन्द्रियराग भारी माना गया है। इसलिये जो स्नेह या आसक्तिका त्यागी, निर्वैर तथा निष्परिग्रह होता है, वह कभी दुखी नहीं होता। जो त्यागी नहीं है, वह इस संसारमें बार-बार जन्म-मृत्युको प्राप्त होता है। इस कारण मित्रोंसे तथा धनसंग्रहसे होने-वाले स्नेहमें कभी लिप्त न हो और अपने शरीरके प्रति होनेवाले स्नेहका ज्ञानद्वारा निवारण करे। ज्ञानी, सिद्ध, शास्त्रज्ञ और जितात्मा—इनमें स्नेहजनित आसक्ति नहीं होती। ठीक वैसे ही, जैसे कमलके पत्तोंमें पानी नहीं सटता। रागके वशीभूत हुए पुरुषको काम अपनी ओर खींचता है, फिर उसके मनमें भोगकी इच्छा उत्पन्न होती है, उस इच्छासे ही तृष्णा या लोभकी उत्पत्ति होती है। तृष्णा सबसे बढ़कर पापिष्ठ और सदा उद्वेगमें डालनेवाली मानी गयी है। इसके द्वारा बहुतसे अधर्म होते हैं। तृष्णाका रूप भी बड़ा भयङ्कर है। वह सबके मनको बाँधनेवाली है। खोटी बुद्धिवाले पुरुषोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे जिसका त्याग हो पाता है, जो इस शरीरके वृद्ध होनेपर भी स्वयं बूढ़ी नहीं होती तथा जो प्राणान्तकारी रोगके समान है, उस तृष्णाका त्याग करने-वालेको ही सुख मिलता है।* तृष्णाका आदि और अन्त नहीं है। जैसे लोहेकी मैल लोहेका नाश करती है, उसी प्रकार तृष्णा मनुष्योंके शरीरके भीतर रहकर उनका विनाश करती है।

नन्दभद्र बोले—शुद्ध बुद्धिवाले बालक! यह क्या बात है कि पापी मनुष्य भी निरापद होकर स्त्री और धनके साथ आनन्दमग्न देखे जाते हैं?

बालकने कहा—यह तो बहुत स्पष्ट है। जिन्होंने पूर्वजन्मोंमें तामसिक भावसे दान दिया है, उन्होंने इस जन्ममें उसी दानका फल प्राप्त किया है। परंतु तामसभावसे जो कर्म किया गया है, उसके प्रभावसे उन लोगोंका धर्ममें कभी अनुराग नहीं होता। ऐसे मनुष्य पुण्य-फलको भोग-कर अपने तामसिक भावके कारण नरकमें ही ज इसमें सन्देह नहीं है। इस संशयके विषयमें मार्कण्ड पूर्वकालमें जो बात कही है, वह इस प्रकार सुनी जात एक मनुष्य ऐसा है, जिसके लिये इस लोकमें तो भोग सुलभ है, परंतु परलोकमें नहीं। दूसरा है, जिसके लिये परलोकमें सुखका भोग सुल किंतु इस लोकमें नहीं। तीसरा ऐसा है, जिसके लि लोकमें और परलोकमें भी सुखभोग प्राप्त होता एक चौथे प्रकारका मनुष्य ऐसा है, जिसके लिये इस लोकमें सुख है और न परलोकमें ही। जिसक जन्ममें किया हुआ पुण्य शेष है, उसीको वह भो और नूतन पुण्यका उपार्जन नहीं करता, उस मन एवं भाग्यहीन मानवको प्राप्त हुआ वह सुखभोग इसी लोकके लिये बताया गया है। जिसका पूर्वजन्मो पुण्य नहीं है, किंतु वह तपस्या करके नूतन पुण्यका उ करता है, उस बुद्धिमान्को परलोकमें सदा ही सुखका प्राप्त होता है। जिसका पहलेका किया हुआ पुण्य भी व है और तपस्यासे नूतन पुण्यका भी उपार्जन हो र ऐसा बुद्धिमान् कोई-ही-कोई होता है, जिसे इहलोकमें परलोकमें भी सुख-भोग प्राप्त होता है। जिसका प भी पुण्य नहीं है और इस लोकमें भी जो पुण्यका उ नहीं करता, ऐसे मनुष्यको न इहलोकमें सुख मिल न परलोकमें ही। उस नराधमको धिक्कार है। हे महाभ ऐसा जानकर सब कार्योंका त्याग करके भगवान् सदा का भजन और वर्णधर्मका पालन कीजिये। इससे ब दूसरा कोई कर्म नहीं है। जो अपने मनोरथोंके नष्ट तथा प्राप्त होनेपर भी शोक करता है, अथवा जो भ तृप्त नहीं होता, वह निश्चय ही दूसरे जन्ममें बन पड़ता है।

नन्दभद्र बोले—हे बालक! आप बालरूपमें उप होनेपर भी वास्तवमें बालक नहीं हैं, बड़े बुद्धिमान् है आपको नमस्कार करता हूँ। मैं बड़े विस्मयमें प और आप कौन हैं, यह यथार्थरूपसे जानना चाहता मैंने बहुतसे वृद्ध पुरुषोंका दर्शन और सत्सङ्ग लाभ है, किंतु उन सबकी ऐसी बुद्धि न तो मैंने देखी है और न सुनी ही है। आपने तो मेरे जन्मभरके सन्देह खेल-खेलमें ही नष्ट कर दिये। अतः आप कोई साधारण बालक नहीं हैं, यह मेरा निश्चित मत है।

---

* तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी मता।
अधर्मबहुला चैव घोररूपानुबन्धिनी॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
यासौ प्राणान्तको रोगस्तां तृष्णां त्यजतस्सुखम्॥
(स्क० मा० कुमा० ४१। ४०-४१)

ळकने कहा—यह बड़ी लंबी कथा है। एकाग्र कर सुनिये। इससे पहले आठवें जन्ममें मैं विदिशा भीतर ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुआ था। मेरा नाम क था। मैं वेद-वेदान्तोंका तत्त्वज्ञ, धर्मशास्त्रोंके ाननेवाले विद्वानोंमें श्रेष्ठ तथा साक्षात् बृहस्पतिके धर्मशास्त्रोंका व्याख्याता था। लोगोंके लिये तो मैं कारके धर्मोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करता था, वयं अत्यन्त दुराचारी तथा पापियोंमें भी सबसे ापिराज था। मांस खाता, मदिरा पीता और परायी साथ सदा रमण किया करता था। झूठा, दम्भी, , दुष्ट, लोभी, दुरात्मा और शठ—इन सभी विशेषणों- विभूषित था। कभी और कहीं भी कोई सत्कर्म नहीं था। जाली पुरुषोंकी भाँति लोगोंको केवल जाल था। इसलिये मेरे यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले ुझे धर्मजालिक कहते थे। इस प्रकार मैंने बहुतसे बटोरे। फिर अन्तकाल आनेपर मृत्युके पश्चात् मैं में गया और वहाँ मुझे कूटशाल्मलि नामक नरकमें गया। पुनः यमदूत मुझे अपने कुकृत्योंका स्मरण हुए इधर-उधर घसीटने लगे। मैं कभी तलवारोंसे जाता और कभी कुत्तोंसे नुचवाया जाता था। इस वहाँ प्रतिक्षण जीता और मरता रहा अर्थात् बार- र्च्छित होता था। उस समय अनेक प्रकारसे अपनी करता हुआ मैं बहुत वर्षोंतक पड़ा रहा। धर्मराजके ा पीड़ित होनेपर नरकमें जैसी बुद्धि होती है, वही हाँ दो घड़ी भी रह जाय, तो मनुष्य धन्य-धन्य हो तदनन्तर अत्यन्त यातना भोगनेके पश्चात् यमदूतोंने केसी प्रकार छोड़ा। फिर स्थावर-योनिमें जाकर अनेक क्लेशोंका उपभोग करके मैं सरस्वती नदीके तटपर एक कीड़ा हुआ। कीड़ेकी योनिमें रहते एक दिन मैं मार्गमें सुखपूर्वक सो रहा था। इतने- वहाँ अकस्मात् आते हुए रथकी घरघराहट मुझे बड़े सुनायी पड़ी। उस आवाजको सुनकर मैं डर गया सहसा मार्ग छोड़कर बड़े वेगसे दूर भागने लगा। बीचमें इच्छानुसार घूमते हुए भगवान् वेदव्यास आ निकले। मुनिवर व्यासने वहाँ उस अवस्थामें ुए मुझे कृपापूर्वक देखा। ब्राह्मणजन्ममें मैंने सब ो जो नाना प्रकारके धर्मोंका उपदेश किया था, प्रभावसे उस कीट जन्ममें मुझे व्यासजीका सङ्ग हुआ। वे सब जीवोंकी भाषा जानते हैं, उन्होंने कीड़ेकी भाषामें मुझसे कहा—'ओ कीट! क्यों इस प्रकार भागा जा रहा है? किसलिये मृत्युसे इतना डरता है?

अहो! मनुष्यको यदि मृत्युसे भय हो तो उचित हो सकता है, तू तो कीट है। तुझे इस शरीरके छूटनेका इतना भय क्यों है?'

व्यासजीके ऐसा कहनेपर पूर्वपुण्यके प्रभावसे मेरी भी बुद्धि जाग्रत् हुई। तब मैंने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—'विश्ववन्द्य मुनीश्वर! मुझे इस मृत्युसे किसी प्रकारका भय नहीं, मेरे मनमें यही भय है कि मैं इससे भी नीच योनिमें न चला जाऊँ। इस कुत्सित कीटयोनिसे भी अधम दूसरी करोड़ों योनियाँ हैं। उनमें गर्भ आदि धारणके क्लेशसे मुझे डर लगता है और किसी कारणसे मैं भयभीत नहीं हूँ।'

व्यासजी बोले—कीट! तू भय न कर, जबतक तुझे ब्राह्मणशरीरमें न पहुँचा दूँगा, तबतक सभी योनियोंसे शीघ्र ही छुटकारा दिलाता रहूँगा।

व्यासजीके ऐसा कहनेपर उन जगद्गुरुको प्रणाम करके मैं पुनः मार्गमें लौट आया और रथके पहियेसे दबकर मृत्यु- को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् कौवे और सियार आदि योनियोंमें मैं जब-जब उत्पन्न हुआ, तब-तब व्यासजीने आकर मुझे पूर्वजन्मका स्मरण करा दिया। तदनन्तर बहुत-सी योनियोंमें भ्रमण करके अत्यन्त क्लेश भोगता हुआ मैं अब अन्तमें ब्राह्मण-

के घरमें आकर इस मानव-योनिमें उत्पन्न हुआ हूँ । इसमें जन्म लेकर भी अत्यन्त दुखी हूँ । जन्मसे ही पिता-माताने मुझे अकेला छोड़ दिया । मेरे शरीरमें गलित कोढ़का रोग हो गया है । इसके कारण मैं बड़ी भारी पीड़ाका अनुभव करता हूँ । जब मैं पाँच वर्षका हुआ, तभी व्यासजीने आकर मेरे कानमें सारस्वत मन्त्रका उपदेश कर दिया । उसके प्रभावसे मुझे बिना पढ़े ही वेदों, शास्त्रों तथा सम्पूर्ण धर्मोंका स्मरण हो आया । फिर व्यासजीने ही मुझे यह आज्ञा दी कि तुम भगवान् कार्तिकेयके क्षेत्रमें जाओ और वहाँ महामति नन्दभद्रको आश्वासन दो । इसके बाद बहूदक तीर्थमें प्राणत्याग करके महीसागरसङ्गमके जलमें अपनी हड्डियाँ डलवा दो । उसके बाद तुम भावी जन्ममें 'मैत्रेय' नामक श्रेष्ठ मुनि होओगे । मुनि होनेके पश्चात् तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगा ।'

स्वयं व्यासजीने इस प्रकार मुझसे कहा है, इसलिये मैं भारवाहकोंकी सहायतासे अत्यन्त क्लेश उठाकर इस तीर्थमें आया हूँ । इस प्रकार आपसे मैंने अपना सब चरित्र कह सुनाया । नन्दभद्रजी ! पाप इस प्रकार कष्टदायक होता है, अतः आप सदा ही उसका त्याग करें ।

नन्दभद्र बोले—अहो ! आपका यह चरित्र बड़ा अद्भुत है । इससे मेरे हृदयमें पुनः धर्मके लिये सौगुनी दृढ़ता आ गयी है । परंतु आपने जो मुझे धर्मका उपदेश किया है, उसके बदलेमें मैं आपकी कोई सेवा करना चाहता हूँ । अतः आप धर्मका स्मरण कीजिये और मुझे कोई निश्चित आदेश दीजिये ।

बालकने कहा—नन्दभद्रजी ! मैं इस तीर्थमें एक सप्ताहतक निराहार रहकर भगवान् सूर्यके मन्त्रोंका जप करूँगा । तत्पश्चात् शरीर त्याग दूँगा । उसके बाद आप बर्करिका तीर्थमें ले जाकर मेरे शरीरका दाह कर दीजियेगा और मेरी सब हड्डियाँ इसी तीर्थमें डाल दीजियेगा । इस बहूदक तीर्थमें जहाँ मैं प्राणत्याग करूँगा, वहाँ मेरे नामसे भगवान् सूर्यकी स्थापना भी कर दीजियेगा । भगवान् सविता सर्वश्रेष्ठ देवता हैं, द्विजोंके तो वे सर्वस्व ही हैं । वेदों और वेदाङ्गोंने भगवान् सूर्यकी महिमाका गान है । आप भी सदा इन सूर्यभगवान्‌का भजन औ बहूदक कुण्डका सेवन करते रहें । व्यासजीके बताये अ इस तीर्थका संक्षिप्त माहात्म्य भी मैं आपको बता रहा जो मनुष्य माघमासकी सप्तमी तिथिको बहूदक त स्नान करके पितरोंको पिण्डदान देता है, उनके वे अक्षय तृप्तिको प्राप्त होते हैं । बहूदक तीर्थके किनारे पि उद्देश्यसे जो कुछ भी दिया जाता है, वह अक्षय होकर समीप पहुँच जाता है । बहूदक कुण्डमें किया हुआ स दान, जप, होम, स्वाध्याय और पितृ-तर्पण सब महान् देनेवाले होते हैं ।

नारदजी कहते हैं—यों कहकर वह बालक मौ गया और बहूदक कुण्डमें स्नान करके पवित्र हो त वृक्षके नीचे बैठकर स्वयं सूर्य-मन्त्रोंका जप करने ल सातवीं रात्रि व्यतीत होनेपर बालकने प्राण त्याग दिये । नन्दभद्रने बालकके कथनानुसार ब्राह्मणोंद्वारा उसके श विधिपूर्वक दाहसंस्कार करवाया । सूर्यमन्त्रके जपमें लगे उस बालकने जहाँ प्राणत्याग किये थे, वहाँ नन्दभ बालादित्यके नामसे विख्यात भगवान् सूर्यकी प्रतिमा स्था की । जो बहूदकमें स्नान करके बालादित्यका पूजन करता उसपर भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं और वह मोक्षका उ प्राप्त कर लेता है ।

तदनन्तर नन्दभद्रने भी दूसरी स्त्रीसे विवाह क उसके गर्भसे अपने ही समान अनेक पुत्र उत्पन्न कि वे सदा भगवान् शिव तथा सूर्यकी उपासनामें लगे र अन्तमें उन्होंने भगवान् शिवका सारूप्य प्राप्त किया, जि फिर इस संसारमें लौटना नहीं होता । इस प्रकार यह महाकु बहूदकके नामसे विख्यात हुआ है । जो श्रद्धापूर्वक इस ती के माहात्म्यको सुनता है, उसपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हो हैं तथा वह अपने हृदयमें मोक्षका चिन्तन करते हु भवसागरसे मुक्त हो जाता है ।

महीसागरसङ्गमतीर्थकी रक्षा करनेवाली देवियोंका परिचय

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! तदनन्तर मैंने इस तीर्थकी रक्षाके लिये देवियोंकी आराधना करके जिस प्रकार उन्हें यहाँ स्थापित किया वह प्रसङ्ग सुनो । जैसे सबके आत्मा परमेश्वर सब भूतोंमें व्यापक हैं, उसी प्रकार उनकी शक्ति परमेश्वरी प्रकृति भी नित्य एवं व्यापक है । शक्तिके प्रस से मनुष्य सुख और समस्त सम्पदाओंको प्राप्त करता है अर्जुन ! भगवती ईश्वरी सम्पूर्ण भूतोंमें इस प्रकार स्थि है—बुद्धि, ह्री, पुष्टि, लज्जा, तुष्टि, शान्ति, क्षमा, श्रद्धा

ेतना, मन्त्रशक्ति, उत्साहशक्ति तथा प्रभुशक्ति—इन ोंमें परमेश्वरी शक्ति ही सर्वव्यापक है। यही अविद्या- न्धनका और विद्यारूपसे मोक्षका कारण होती है। सीकी आराधना करके इन्द्र आदि देवताओंने ऐश्वर्य या है। भगवती शक्ति ही परा प्रकृति है। वही अनेक भिन्न-भिन्न अनेक रूपों) में स्थित है। इसलिये न महादेवियोंको जहाँ स्थापित किया है, वह सुनो। शाओंमें चार महाशक्तियोंकी स्थापना की गयी है। शामें स्कन्दस्वामीके द्वारा सिद्धाम्बिकाकी स्थापना उन्हींको सृष्टिकी आदिमें प्रकट हुई मूलप्रकृति कहते द्धोंने उनकी आराधना की है, इसलिये उनका नाम का है। दक्षिण दिशामें तारादेवी विराजमान हैं, स्थापना मैंने ही की है। ये वही तारा हैं जिन्होंने ोंको तारनेके लिये भगवान् कच्छपका आश्रय लिया न्हींके आवेशसे युक्त होनेके कारण जगद्गुरु भगवान् देवताओंका उद्धार किया। ये गिरिराजनन्दिनी तारा आराधनाके बाद मेरेद्वारा यहाँ लायी गयी हैं। ये देवियोंसे घिरी हुई बड़ी उग्र देवी हैं। मेरे प्रति ा भाव होनेके कारण मेरी प्रार्थनासे दक्षिण दिशामें रहती हैं। इसी प्रकार पश्चिम दिशामें शुभस्वरूपा देवी स्थित हैं, जिनसे व्याप्त होकर सूर्य आदि मण्डल त होते हैं। जिनकी शक्तिसे सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल र आते-जाते हैं, वे भास्वरादेवी ही हैं। वे बड़ी प्रबल हैं। मैं आराधना करके ब्रह्माण्डकटाहसे उन्हें यहाँ हूँ। वे कोटि देवियोंसे आवृत होकर यहाँ रहती हैं और पश्चिम दिशाकी रक्षा करती हैं। उत्तर दिशामें न्दनीदेवीका निवास है, जो पूर्वकालमें भगवती ृतिके शरीरसे प्रकट हुई तथा जिनकी निर्मल दृष्टिसे ानेपर चारों सनकादिकोंने योग प्राप्त कर लिया। ये सनकादि महात्माओंने उन्हें 'योगेश्वरी' कहा है। ी मैं आराधना करके अण्डकटाहसे ही लाया हूँ। वे ियोंसे घिरी हुई यहाँ उत्तर दिशामें निवास करती हैं। कार ये चार महाशक्तियाँ इस तीर्थमें सदा स्थित हैं।

दनन्तर मैं नौ दुर्गाओंको भी यहाँ ले आया, उनका सुनो। त्रिपुरा नामसे प्रसिद्ध एक उच्चकोटिकी ी, जिनसे आविष्ट होकर जगदीश्वर भगवान् शिवने ुरको भस्म किया था। इसीलिये भगवान् हरने त्रिपुरा कहकर स्वयं देवी दुर्गाका स्तवन किया। अतः वे सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीय हैं, मैं उनकी आराधना करके उन्हें अमरेश पर्वतसे यहाँ लाया हूँ। भक्तोंकी मनोवाञ्छित कामनाएँ पूर्ण करनेवाली वे त्रिपुरादेवी भट्टादित्यके समीप विराजमान हैं। इनके सिवा दूसरी कोलम्बा नामकी देवी हैं, जो सनातन महाशक्ति हैं। उन्हींके आवेशसे युक्त होकर वाराहरूपधारी भगवान् विष्णुने इस पृथ्वीको जलसे ऊपर उठाया था। इसीलिये भगवान् विष्णुने कोलम्बा नामसे उनकी स्तुति और पूजा की है। अर्जुन! मैंने शक्तियोगसे कोलम्बादेवीको प्रसन्न किया है। वे वाराह गिरिपर निवास करती हैं, वहींसे मैं उनको यहाँ लाया हूँ। तीसरी दुर्गा भी इस पूर्व दिशामें ही स्थित हैं, उनका नाम कपालेशा है। मैंने और कार्तिकेयजीने उनकी स्थापना की है। उनके प्रभावका वर्णन पहले किया जा चुका है। वे नरश्रेष्ठ धन्य हैं जो कपालेश्वरकी पूजा करके उन कपालेशा देवीका नित्य दर्शन करते हैं। वे सम्पूर्ण विश्वकी शक्ति हैं, इस प्रकार तीन दुर्गाएँ पूर्व दिशामें विराज रही हैं। अब पश्चिम दिशामें जो परम उत्तम तीन दुर्गाएँ सुशोभित हैं, उनका वर्णन करूँगा। पश्चिममें जो सुवर्णाक्षीदेवी हैं, वे समस्त ब्रह्माण्डका भलीभाँति पालन करनेवाली हैं। मैंने बड़ी आराधना करके इस तीर्थमें उन्हें विराजमान किया है। जो उन्हें प्रणाम तथा भक्तिपूर्वक उनका पूजन करते हैं, वे तैंतीस करोड़ देवियोंके समादरके पात्र होते हैं। पश्चिममें दूसरी महादुर्गा चर्चिता भी निवास करती हैं। उन्हें मैंने बड़ी भक्ति- के साथ प्रार्थना करके रसातलसे यहाँ बुलाया है। उसी दिशामें त्रैलोक्यविजया नामसे प्रसिद्ध तीसरी महादुर्गाका भी निवास है, जिनकी आराधना करके रोहिणीवल्लभ चन्द्रमाने त्रिभुवनमें विजय प्राप्त की थी। उनको मैं सोमलोकसे लाया हूँ। वे पूजित होनेपर सदा विजय देनेवाली हैं।

अब उत्तर दिशामें निवास करनेवाली देवियोंका परिचय सुनो। उत्तरमें भी एकवीरा आदि तीन देवियाँ स्थित हैं। एकवीरा देवी पूजन तथा आराधन करनेपर मनुष्योंको उनकी समस्त अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करती हैं। अर्जुन! उन्हें मैं बड़ी आराधनाके बाद ब्रह्मलोकसे लाया हूँ। उनका नामकीर्तन भी दुष्टोंका विनाश करनेवाला है। दूसरी हरसिद्धि नामवाली दुर्गादेवी हैं, जो बड़ी बलवती हैं। उन्हें मैं शाकोत्तर नामक स्थानसे आराधना करके लाया हूँ। जो लोग हरसिद्धिकी उपासनामें तत्पर रहनेवाले हैं, उनके

पास डाकिनी आदि नहीं जातीं। तीसरी दुर्गा चण्डिका देवी ईशान कोणमें स्थित हैं। वे ही नवीं दुर्गा हैं। उन्होंने पार्वतीके शरीरसे निकलकर रोषपूर्वक चण्ड-मुण्ड नामक महान् असुरोंका संहार किया था। जो थोड़ी या बहुत सामग्रीके द्वारा कात्यायनी देवीका पूजन करते हैं, उन्हें करोड़ों देवियोंसे घिरी हुई वे दुर्गादेवी ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। जो मनुष्य देवीको प्रणाम करता है, वह सब प्रकारके अरिष्टोंसे छुटकारा पा जाता है।

उभय सोमनाथके प्रादुर्भावकी कथा और कमठके द्वारा गर्भवास तथा मानव-शरीरकी उत्पत्तिका वर्णन

नारदजी कहते हैं—अब मैं सोमनाथकी महिमाका स्पष्ट रूपसे वर्णन करूँगा। जो इसका श्रवण और कीर्तन करता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। अर्जुन! पहलेकी बात है। त्रेतायुगमें गौड़ देशके भीतर दो महातेजस्वी ब्राह्मण थे। एकका नाम था 'ऊर्जयन्त' और दूसरेका 'प्रालेय'। उन दोनोंने एक दिन पुराणमें एक श्लोक देखा। वे शास्त्रोंके ज्ञाता थे। वह श्लोक देखकर उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। श्लोक इस प्रकार था—

प्रभासाद्यानि तीर्थानि पुलस्त्यायाह पद्मभूः।
न यैस्तत्राप्लुतश्चैव न तैस्तीर्थमुपासितम्॥

'ब्रह्माजीने पुलस्त्य मुनिसे प्रभास आदि तीर्थोंका वर्णन किया है। जिन्होंने इनमें डुबकी नहीं लगायी, उन्होंने तीर्थोंका सेवन नहीं किया।'

यह श्लोक पढ़कर वे बार-बार इसे दुहराने लगे। तदनन्तर वे दोनों ब्राह्मण प्रभासस्नानके लिये घरसे निकले और वनों एवं नदियोंको धीरे-धीरे पार करते हुए महर्षियोंसे सेवित कल्याणमयी नर्मदा नदीके पारतक चले गये। मार्गमें गुप्तक्षेत्र महीसागरसङ्गमकी महिमा सुनकर वहाँ स्नान करके पुनः वे प्रभासके ही पथपर चल दिये। वह मार्ग सर्वथा जनशून्य था। वे दोनों यात्री भूख और प्याससे बहुत पीड़ित हुए और सिद्धलिङ्गके समीप पहुँचकर मूर्छित हो गये। फिर दो ही घड़ीके बाद कुछ चेतमें आनेपर प्रालेयने ऊर्जयन्तसे धैर्यपूर्वक कहा—'सखे! मुझे यहाँ कुछ सुनायी पड़ा है। वह बतलाता हूँ, सुनो। 'तीर्थयात्रासे थककर मनुष्य ज्यों-ज्यों शिथिल एवं कान्तिहीन होता जाता है, त्यों-त्यों उसके किये हुए दानसे भगवान् सोमनाथ प्रसन्न होते हैं।' यह बात एक दूसरेसे कह-सुनकर मूर्छा दूर होनेके बाद ऊर्जयन्त और प्रालेय लौटते हुए प्रभासक्षेत्रकी ओर चले। उनकी यह निष्ठा देखकर भगवान् शङ्करने दोनोंको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उन दोनोंके शरीरको अपनी कृपादृष्टिसे देखकर सुदृढ़ एवं सबल बना दिया। तब ये दोनों प्रभास तीर्थमें शिवजीके स्थानको चले गये। वे ही ये दो सोमनाथ सिद्धेश्वरके समीप विद्यमान हैं। पश्चिममें ऊर्जयन्त और पूर्वमें प्रालेयेश्वर हैं। जो सोमकुण्डके जलमें तथा महीसागरसङ्गममें धीरेसे स्नान करके युगल सोमनाथका दर्शन करता है, वह जन्मभरके पापोंसे छूट जाता है। ब्रह्माजीने यहाँ हाटकेश्वर नामक शिवलिङ्गकी स्थापना करके एकाग्रचित्त हो उसकी स्तुति की थी। अर्जुन! उस स्तुतिको सुनो। 'भगवान् रुद्र! सूर्यके समान अमित तेजस्वी आपको नमस्कार है। आप सबकी उत्पत्ति करनेवाले भव, दुःखोंको दूर भगानेवाले रुद्र तथा जलमय रस हैं; आपको नमस्कार है। आप संहारकारी शर्व हैं। पृथ्वी आपका रूप है। आप नित्य सुन्दर गन्ध धारण करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप सबके ईश्वर तथा वायुरूप हैं। आपने ही कामदेवका नाश किया है। आपको नमस्कार है। आप पशुओं (जीवों) के अधिपति, पालक तथा अत्यन्त तेजस्वी हैं। आपका स्वरूप भयङ्कर है। यह आकाश आपका ही एक रूप है। आप शब्दमात्र परमेश्वरको नमस्कार है। आप महादेव हैं। सोम (चन्द्रमारूप अथवा उमासहित) हैं तथा अमृतस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप उग्ररूप, यजमानमूर्ति तथा कर्मयोगी हैं। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार दिव्य नामोंके साथ उच्चारित इस हाटकेश्वर स्तोत्रको, जिसका निर्माण साक्षात् ब्रह्माजीने किया है, जो पढ़ता और सुनता है, वह भगवान् शिवके सायुज्यको प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं है। महीसागरसङ्गममें इस प्रकारके बहुतसे पवित्र तीर्थ हैं, जिनका मैंने संक्षेपमें वर्णन किया है।

अर्जुन बोले—मुने! आपके द्वारा स्थापित महीसागर स्थानमें जो-जो प्रधान तीर्थ हैं, उनका मुझसे वर्णन कीजिये।

नारदजीने कहा—अर्जुन! महीसागरमें जो-जो मुख्य तीर्थ हैं, उन्हें बतलाता हूँ। उस तीर्थमें जयादित्य नामसे

गवान् सूर्य विराजमान हैं। उनके प्रादुर्भावकी कथा मैं इस महीसागर-सङ्गमस्थानकी स्थापना करके कुछ अनन्तर भगवान् सूर्यका दर्शन करनेके लिये उनके या। वहाँ प्रणाम करके आसनपर बैठ जानेके बाद अर्घ्यसे मेरा पूजन किया और हँसकर मधुर वाणीमें विप्र ! आप कहाँसे आते हैं और कहाँ जायँगे।' र दिया—'प्रभो ! मैं भारतवर्षके महीनगरसे आपका रनेके लिये आया हूँ।'

र्यदेव बोले—आपने जो वहाँ स्थान स्थापित किया जो ब्राह्मण निवास करते हैं, उनके गुण मुझसे । वे ब्राह्मण कैसे गुणोंसे युक्त हैं ?

ावान् सूर्यके ऐसा पूछनेपर मैंने फिर उत्तर गवन्! यदि मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ, तो मुझपर यह गाया जा सकता है कि यह अपने आत्मीय जनोंकी रता है, और निन्दाके तो वे पात्र ही नहीं हैं; फिर से कर सकता हूँ ? दोनों ही ओर संकट है। अथवा मा ब्राह्मणोंकी महिमा तो अपार है। यदि मैंने उसे ा करके कहा तब तो मुझे महान् दोष ही लगेगा। ी यह सम्मति है कि यदि आप मेरे द्वारा पूजित महिमा श्रवण करना चाहते हों तो स्वयं वहाँ उन्हें देखें।

यह बात सुनकर भगवान् सूर्यको बड़ा विस्मय हुआ। र कहने लगे, मैं स्वयं ही चलकर उनका दर्शन यों कहकर भगवान् भास्करने मुझे तो विदा कर ार अपनी योगशक्तिके प्रभावसे आकाशमें तपते हुए स्वरूपसे समुद्रके तटको चल दिये। उन्होंने वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया था। ानसे जैसी पिंगल वर्णकी जटा हो जाती है वैसी की जटा धारण किये हुए उन महात्माको मेरे देखा। फिर तो वे हारीत आदि द्विज अपनी से उठकर उन ब्राह्मण देवताकी ओर दौड़ पड़े। उनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे। नये आये हुए द्विजको नमस्कार करके वे सब-के-सब प्रसन्नतापूर्वक विप्रवर ! आज हमारा दिन बड़ा ही पुण्यजनक है, स्थान परम उत्तम है; क्योंकि आपने स्वयं कृपा करके र्पण किया है। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तम ब्राह्मण के ही किसी धन्य गृहस्थको पवित्र करनेके लिये उसके थिके रूपमें पधारते हैं। अतः आप इन पैरोंसे चल-फिरकर आज हमारे गृहोंको पवित्र कीजिये। साथ ही दर्शन, भोजन और विश्राम आदिके द्वारा हमारेसहित इस स्थानको भी पावन बनाइये।'

अतिथि बोले—ब्राह्मणो ! भोजन दो प्रकारका होता है—एक प्राकृत और दूसरा परम। अतः मैं आपलोगोंका दिया हुआ उत्तम परम भोजन प्राप्त करना चाहता हूँ।

अतिथिकी यह बात सुनकर हारीतने अपने आठ वर्षके बालकसे कहा—'बेटा कमठ ! क्या तुम ब्राह्मणके बताये हुए भोजनको जानते हो ?'

कमठने कहा—पिताजी ! मैं आपको प्रणाम करके वैसे परम भोजनका परिचय दूँगा तथा ब्राह्मणदेवताको वह भोजन देकर तृप्त करूँगा। प्रकृति आदि चौबीस तत्त्वोंके समुदायको जो तृप्त करता है, वही प्राकृत भोजन कहलाता है। वह छः[1] रसों और पाँच[2] भेदोंवाला बताया गया है। उसके भोजन करनेसे शरीररूपी क्षेत्रकी तृप्ति होती है। दूसरा जो परम भोजन कहा गया है, उसकी व्याख्या इस प्रकार है—परम कहते हैं आत्माको, उसका जो भोजन है

---

१. मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय तथा तिक्त—ये छः रस हैं।

२. भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य तथा चोष्य—ये भोजनके पाँच भेद हैं।

पास डाकिनी आदि नहीं जातीं। तीसरी दुर्गा चण्डिका देवी ईशान कोणमें स्थित हैं। वे ही नवीं दुर्गा हैं। उन्होंने पार्वतीके शरीरसे निकलकर रोषपूर्वक चण्ड-मुण्ड नामक महान् असुरोंका संहार किया था। जो थोड़ी या बहुत सामग्रीके द्वारा कात्यायनी देवीका पूजन करते हैं, उन्हें करोड़ों देवियोंसे घिरी हुई वे दुर्गादेवी ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। जो मनुष्य देवीको प्रणाम करता है, वह सब प्रकारके अरिष्टोंसे छुटकारा पा जाता है।

उभय सोमनाथके प्रादुर्भावकी कथा और कमठके द्वारा गर्भवास तथा मानव-शरीरकी उत्पत्तिका वर्णन

नारदजी कहते हैं—अब मैं सोमनाथकी महिमाका स्पष्ट रूपसे वर्णन करूँगा। जो इसका श्रवण और कीर्तन करता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। अर्जुन! पहलेकी बात है। त्रेतायुगमें गौड़ देशके भीतर दो महातेजस्वी ब्राह्मण थे। एकका नाम था 'ऊर्जयन्त' और दूसरेका 'प्रालेय'। उन दोनोंने एक दिन पुराणमें एक श्लोक देखा। वे शास्त्रोंके ज्ञाता थे। वह श्लोक देखकर उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। श्लोक इस प्रकार था—

प्रभासाद्यानि तीर्थानि पुलस्त्यायाह पद्मभूः।
न यैस्तत्राप्लुतश्चैव न तैस्तीर्थमुपासितम्॥

'ब्रह्माजीने पुलस्त्य मुनिसे प्रभास आदि तीर्थोंका वर्णन किया है। जिन्होंने इनमें डुबकी नहीं लगायी, उन्होंने तीर्थोंका सेवन नहीं किया।'

यह श्लोक पढ़कर वे बार-बार इसे दुहराने लगे। तदनन्तर वे दोनों ब्राह्मण प्रभासस्नानके लिये घरसे निकले और वनों एवं नदियोंको धीरे-धीरे पार करते हुए महर्षियोंसे सेवित कल्याणमयी नर्मदा नदीके पारतक चले गये। मार्गमें गुप्तक्षेत्र महीसागरसङ्गमकी महिमा सुनकर वहाँ स्नान करके पुनः वे प्रभासके ही पथपर चल दिये। वह मार्ग सर्वथा जनशून्य था। वे दोनों यात्री भूख और प्याससे बहुत पीड़ित हुए और सिद्धलिङ्गके समीप पहुँचकर मूर्छित हो गये। फिर दो ही घड़ीके बाद कुछ चेतमें आनेपर प्रालेयने ऊर्जयन्तसे धैर्यपूर्वक कहा—'सखे! मुझे यहाँ कुछ सुनायी पड़ा है। वह बतलाता हूँ, सुनो। 'तीर्थयात्रासे थककर मनुष्य ज्यों-ज्यों शिथिल एवं कान्तिहीन होता जाता है, त्यों-त्यों उसके किये हुए दानसे भगवान् सोमनाथ प्रसन्न होते हैं।' यह बात एक दूसरेसे कह-सुनकर मूर्छा दूर होनेके बाद ऊर्जयन्त और प्रालेय लोटते हुए प्रभासक्षेत्रकी ओर चले। उनकी यह निष्ठा देखकर भगवान् शङ्करने दोनोंको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उन दोनोंके शरीरको अपनी कृपादृष्टिसे देखकर सुदृढ़ एवं सबल बना दिया। तब ये दोनों प्रभास तीर्थमें शिवजीके स्थानको चले गये। वे ही ये दो सोमनाथ सिद्धेश्वरके समीप विद्यमान हैं। पश्चिममें ऊर्जयन्त और पूर्वमें प्रालेयेश्वर हैं। जो सोमकुण्डके जलमें तथा महीसागरसङ्गममें धीरेसे स्नान करके युगल सोमनाथका दर्शन करता है, वह जन्मभरके पापोंसे छूट जाता है। ब्रह्माजीने यहाँ हाटकेश्वर नामक शिवलिङ्गकी स्थापना करके एकाग्रचित्त हो उसकी स्तुति की थी। अर्जुन! उस स्तुतिको सुनो। 'भगवान् रुद्र! सूर्यके समान अमित तेजस्वी आपको नमस्कार है। आप सबकी उत्पत्ति करनेवाले भव, दुःखोंको दूर भगानेवाले रुद्र तथा जलमय रस हैं; आपको नमस्कार है। आप संहारकारी शर्व हैं। पृथ्वी आपका रूप है। आप नित्य सुन्दर गन्ध धारण करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप सबके ईश्वर तथा वायुरूप हैं। आपने ही कामदेवका नाश किया है। आपको नमस्कार है। आप पशुओं (जीवों) के अधिपति, पालक तथा अत्यन्त तेजस्वी हैं। आपका स्वरूप भयङ्कर है। यह आकाश आपका ही एक रूप है। आप शब्दमात्र परमेश्वरको नमस्कार है। आप महादेव हैं। सोम (चन्द्रमारूप अथवा उमासहित) हैं तथा अमृतस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप उग्ररूप, यजमानमूर्ति तथा कर्मयोगी हैं। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार दिव्य नामोंके साथ उच्चारित इस हाटकेश्वर स्तोत्रको, जिसका निर्माण साक्षात् ब्रह्माजीने किया है, जो पढ़ता और सुनता है, वह भगवान् शिवके सायुज्यको प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं है। महीसागरसङ्गममें इस प्रकारके बहुतसे पवित्र तीर्थ हैं, जिनका मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है।

अर्जुन बोले—मुने! आपके द्वारा स्थापित महीसागर स्थानमें जो-जो प्रधान तीर्थ हैं, उनका मुझसे वर्णन कीजिये।

नारदजीने कहा—अर्जुन! महीसागरमें जो-जो मुख्य तीर्थ हैं, उन्हें बतलाता हूँ। उस तीर्थमें जयादित्य नामसे

प्रसिद्ध भगवान् सूर्य विराजमान हैं। उनके प्रादुर्भावकी कथा सुनो। मैं इस महीसागर-सङ्गमस्थानकी स्थापना करके कुछ कालके अनन्तर भगवान् सूर्यका दर्शन करनेके लिये उनके लोकमें गया। वहाँ प्रणाम करके आसनपर बैठ जानेके बाद सूर्यदेवने अर्घ्यसे मेरा पूजन किया और हँसकर मधुर वाणीमें कहा—'विप्रवर! आप कहाँसे आते हैं और कहाँ जायँगे।' मैंने उत्तर दिया—'प्रभो! मैं भारतवर्षके महीनगरसे आपका दर्शन करनेके लिये आया हूँ।'

सूर्यदेव बोले—आपने जो वहाँ स्थान स्थापित किया है, उसमें जो ब्राह्मण निवास करते हैं, उनके गुण मुझसे बतलाइये। वे ब्राह्मण कैसे गुणोंसे युक्त हैं?

भगवान् सूर्यके ऐसा पूछनेपर मैंने फिर उत्तर दिया—भगवन्! यदि मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ, तो मुझपर यह दोष लगाया जा सकता है कि यह अपने आत्मीय जनोंकी स्तुति करता है, और निन्दाके तो वे पात्र ही नहीं हैं; फिर निन्दा कैसे कर सकता हूँ? दोनों ही ओर संकट है। अथवा उन महात्मा ब्राह्मणोंकी महिमा तो अपार है। यदि मैंने उसे बहुत घटा करके कहा तब तो मुझे महान् दोष ही लगेगा। अतः मेरी यह सम्मति है कि यदि आप मेरे द्वारा पूजित द्विजेन्द्रोंकी महिमा श्रवण करना चाहते हों तो स्वयं वहाँ चलकर उन्हें देखें।

मेरी यह बात सुनकर भगवान् सूर्यको बड़ा विस्मय हुआ। वे बार-बार कहने लगे, मैं स्वयं ही चलकर उनका दर्शन करूँगा। यों कहकर भगवान् भास्करने मुझे तो विदा कर दिया और अपनी योगशक्तिके प्रभावसे आकाशमें तपते हुए भी दूसरे स्वरूपसे समुद्रके तटको चल दिये। उन्होंने महातेजस्वी वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया था। त्रिकाल-स्नानसे जैसी पिंगल वर्णकी जटा हो जाती है वैसी पिंगल वर्णकी जटा धारण किये हुए उन महात्माको मेरे ब्राह्मणोंने देखा। फिर तो वे हारीत आदि द्विज अपनी ब्रह्मशालासे उठकर उन ब्राह्मण देवताकी ओर दौड़ पड़े। उस समय उनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे। नये आये हुए उन श्रेष्ठ द्विजको नमस्कार करके वे सब-के-सब प्रसन्नतापूर्वक बोले—'विप्रवर! आज हमारा दिन बड़ा ही पुण्यजनक है, आज यह स्थान परम उत्तम है; क्योंकि आपने स्वयं कृपा करके यहाँ पदार्पण किया है। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तम ब्राह्मण कृपा करके ही किसी धन्य गृहस्थको पवित्र करनेके लिये उसके घर अतिथिके रूपमें पधारते हैं। अतः आप इन पैरोंसे चल-फिरकर आज हमारे गृहोंको पवित्र कीजिये। साथ ही दर्शन, भोजन और विश्राम आदिके द्वारा हमारेसहित इस स्थानको भी पावन बनाइये।'

अतिथि बोले—ब्राह्मणो! भोजन दो प्रकारका होता है—एक प्राकृत और दूसरा परम। अतः मैं आपलोगोंका दिया हुआ उत्तम परम भोजन प्राप्त करना चाहता हूँ।

अतिथिकी यह बात सुनकर हारीतने अपने आठ वर्षके बालकसे कहा—'बेटा कमठ! क्या तुम ब्राह्मणके बताये हुए भोजनको जानते हो?'

कमठने कहा—पिताजी! मैं आपको प्रणाम करके वैसे परम भोजनका परिचय दूँगा तथा ब्राह्मणदेवताको वह भोजन देकर तृप्त करूँगा। प्रकृति आदि चौबीस तत्त्वोंके समुदायको जो तृप्त करता है, वही प्राकृत भोजन कहलाता है। वह छः[1] रसों और पाँच[2] भेदोंवाला बताया गया है। उसके भोजन करनेसे शरीररूपी क्षेत्रकी तृप्ति होती है। दूसरा जो परम भोजन कहा गया है, उसकी व्याख्या इस प्रकार है—परम कहते हैं आत्माको, उसका जो भोजन है

१. मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय तथा तिक्त—ये छः रस हैं।

२. भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य तथा चोष्य—ये भोजनके पाँच भेद हैं।

वही परम भोजन है। अतः नाना प्रकारके धर्मका जो श्रवण है, उसे अन्न कहा गया है। क्षेत्रज्ञ आत्मा उस अन्नका भोक्ता है और दोनों कान उस अन्नको ग्रहण करनेके लिये मुख हैं। पिताजी! वही परम भोजन आज मैं इन ब्राह्मणदेवताको दूँगा। 'विप्रवर! आपकी जो इच्छा हो पूछिये, विद्वान् ब्राह्मणोंकी इस सभामें अपनी शक्तिके अनुसार मैं आपको सन्तुष्ट करूँगा।'

कमठकी यह महत्त्वपूर्ण बात सुनकर अतिथि ब्राह्मणने मन-ही-मन उसकी सराहना की और यह प्रश्न उपस्थित किया—'जीव कैसे उत्पन्न होता है?'

कमठने कहा—ब्रह्मन्! पहले गुरुको, उसके बाद धर्मको नमस्कार करके मैं इस वेदवर्णित प्रश्नका यथाशक्ति समाधान करूँगा! जीवके जन्म लेनेमें तीन प्रकारका कर्म कारण होता है—पुण्य, पाप और उभय मिश्रित। अर्थात् कर्म तीन प्रकारके हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। इन कर्मोंके अनुसार जो सात्त्विक पुरुष है, वह स्वर्गमें जाता है। फिर समयानुसार जब स्वर्गसे नीचे गिरता है, तब संसारमें धनी, धर्मी और सुखी होता है। जो तमोगुणी पुरुष है, वह नरकमें पड़ता है और वहाँ नाना प्रकारकी यातनाएँ भोगनेके पश्चात् यहाँ आकर स्थावरयोनिमें जन्म लेता है। तदनन्तर दीर्घकालतक उस योनिमें रहते हुए महात्मा पुरुषोंके दर्शन, स्पर्श, उपभोग और समीप बैठने आदिसे स्थावर शरीरसे मुक्त होकर वह मनुष्य होता है। मनुष्य होनेपर भी वह दुखी, दरिद्रता आदिसे घिरा हुआ तथा विकलेन्द्रिय (अन्धा, बहरा, काना, कुबड़ा, लँगड़ा, लूला आदि) होता है। यह सब लोगोंके प्रत्यक्ष है। यह सब पापका ही लक्षण है। जो पाप और पुण्य दोनोंसे मिश्रित कर्मवाला पुरुष है, वह पशु-पक्षी आदिकी योनिको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् वह इस संसारमें मनुष्य होता है। जिसका पुण्य अधिक और पाप थोड़ा होता है, वह पहले दुखी होकर पीछे सुखी होता है। जिसका पाप बहुत अधिक और पुण्य बहुत कम हो, वह पहले सुखी और पीछे दुखी होता है; यह मिश्रित कर्मका लक्षण है। इनमेंसे पहले मनुष्यकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनिये।

पुरुष और स्त्रीके वीर्य तथा रजका सङ्गम होनेपर सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा शुभाशुभ कर्मसंस्कारके साथ जीव गर्भमें प्रवेश करके रजोवीर्यमय कललमें स्थित होता है। उस समय वह मूर्छित अवस्थामें रहकर एक मासतक कललमें ही पड़ा रहता है। दूसरा महीना आनेपर वह कलला-कार जीव घनीभावको प्राप्त हो जाता है। तीसरे महीनेमें उसके अवयवोंका निर्माण होने लगता है। (इस प्रकार होते हुए) सातवें महीनेमें वह माताके खाये-पीये हुए अन्न और जलका सार अंश ग्रहण करने लगता है। आठवें और नवें महीनेमें उस बालकको गर्भमें बड़ा उद्वेग प्राप्त होता है। उसके सब अङ्ग झिल्लीमें लपेटे हुए होते हैं और हाथोंकी अङ्गुलियाँ मुखसे बँधी होती हैं। यदि गर्भका बालक अधिकतर उदरके मध्यभागमें रहता है तब वह नपुंसक है, यदि वाम भागमें ठहरता है तो कन्या है, और यदि दक्षिण भागमें रहा करता है तो पुरुष है। इस प्रकार वह उदरके किसी एक भागमें स्थित होता है। जिन योनियोंमें वह जन्म लेता है उनका ज्ञान उस समय उसे होता है। इतना ही नहीं, उसे पहलेके अनेक जन्मोंकी बातोंका भी स्मरण हो आता है। वह गाढ़ अन्धकारमें अदृश्य होकर पड़ा रहता है। वहाँकी दुर्गन्धसे वह अत्यन्त मोहको प्राप्त होता है। यदि माता ठंढा जल पीती है तो उसे सर्दी मालूम होती है। यदि गरम जल पीती है, तो उसे गरमीका अनुभव होता है। माताके मैथुन या परिश्रम करनेपर उसको क्लेश होता है। यदि माताको कोई रोग है तो उससे गर्भके बालकको भी पीड़ा होती है। इसके सिवा इस बालकको स्वयं भी ऐसे रोग होते हैं, जिन्हें पिता-माता नहीं देख पाते। अधिक सुकुमारता होनेसे वे रोग गर्भस्थ शिशुके अङ्गोंमें तीव्र वेदना उत्पन्न करते हैं। उस अवस्थामें थोड़े-से समयको भी वह सौ वर्षोंके समान दुःसह मानता है। अपने प्राचीन कर्मोंसे भी गर्भमें बालकको बड़ा सन्ताप होता है। वहाँ वह बार-बार पुण्य करनेके मनसूबे बाँधता है। 'यदि मैं मनुष्य-शरीरमें जन्म और जीवन पा जाऊँ तो ऐसा कार्य करूँगा, जिससे निश्चय ही मेरा मोक्ष हो जाय।' सीमन्तोन्नयन-संस्कारके बाद उपर्युक्त चिन्तामें पड़े हुए बालकके शेष दो मास अधिक पीड़ाके कारण तीन युगोंके समान बीतते हैं। तत्पश्चात् जन्मका समय आनेपर प्रसूति वायुसे प्रेरित होकर नीचे मुखवाला वह बालक बड़ी पीड़ाका अनुभव करता है तथा योनिके सङ्कीर्ण द्वारसे कष्टपूर्वक निकलने लगता है। उस समय उसे ऐसी पीड़ा होती है, मानो कोई उसकी चमड़ी नोंच रहा हो। किसीके हाथका स्पर्श आदि भी उसे आरेकी धारके स्पर्श-सा जान पड़ता है। जन्म लेनेके पश्चात् वह अचेत बालक केवल माताके स्तनमात्रको जानता है। पूर्वकर्मके अधीन होनेके कारण उसका गर्भगत ज्ञान नष्ट हो जाता है। फिर तो वह पूर्ववत् काले, लाल और सफेद (तामस, राजस और

कर्म करने लगता है। मनुष्यका शरीर एक न है। इसमें हड्डियाँ ही प्रधान स्तम्भ हैं, के बन्धनसे ही यह बँधा हुआ है, रक्त और मेट्टीसे यह लिपा हुआ है, विष्ठा और मूत्ररूपी है। सात धातुरूपी सात दीवारोंसे यह अत्यन्त आ है, केश और रोमरूपी घास-फूससे इसे छाया व ही इस घरका प्रधान दरवाजा है। शेष दो आँख, ो नाक, लिङ्ग और गुदा—ये आठ खिड़कियाँ इस ा बढ़ा रही हैं। दोनों ओठ मुखरूपी द्वारके दाँतोंकी अर्गलासे इस द्वारको बंद किया गया है। नाड़ी ही इसकी नाली और पसीने आदि ही इसके गंदे जलके प्रवाह हैं। यह देह गेह कफ और पित्तमें डूबा हुआ है। जरावस्था और शोकसे व्याप्त है, कालकी मुखाग्निमें इसकी स्थिति है, राग और द्वेष आदिसे यह सदा ग्रस्त रहता है तथा यह नाना प्रकारके शोककी उत्पत्तिका स्थान है। इस प्रकार मनुष्योंका यह देहरूपी गेह उत्पन्न होता है, जिसमें क्षेत्रज्ञ आत्मा गृहस्थके रूपमें निवास करता है और बुद्धि उसकी गृहिणी है। इस शरीरमें रहकर जीव नाना प्रकारके साधनोंमें संलग्न हो नरक, स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त करता है।

कमठद्वारा शरीरकी उत्पत्ति, विनाश तथा जीवके परलोकवासका वर्णन

थि बोले—वत्स कमठ ! तुम्हारी बुद्धि तो वृद्धों- तुम बहुत अच्छा प्रतिपादन कर रहे हो। अब ारीरका लक्षण सुनना चाहता हूँ; उसे बताओ।

मठने कहा—विप्रवर ! जैसा यह ब्रह्माण्ड है, ह शरीर भी बताया जाता है। पैरोंका मूल (तलवा) पैरोंका ऊपरी भाग रसातल है, दोनों गुल्फ तलातल पिण्डलियोंको महातल कहा गया है, दोनों घुटने नों ऊरु (जाँघ) तथा कटिभाग अतललोक हैं। भूलोक, उदरको भुवर्लोक, वक्षःस्थलको स्वर्गलोक, हर्लोक और मुखको जनलोक कहते हैं। दोनों नेत्र हैं तथा मस्तकको सत्यलोक कहा गया है। जैसे ात द्वीप स्थित हैं, उसी प्रकार इस शरीरमें सात , उनके नाम सुनिये। त्वचा, रक्त, मांस, मेदा, ज्जा और वीर्य—ये सात धातुएँ हैं। शरीरमें तीन सौ याँ हैं तथा तीस लाख छप्पन हजार नौ नाड़ियाँ बतायी जैसे नदियाँ इस पृथ्वीपर जल बहाती हैं, उसी प्रकार ाँ शरीरमें रसका सञ्चार करती हैं। यह शरीर साढ़े ाड़ स्थूल एवं सूक्ष्म रोएँसे आच्छादित है। स्थूल दिखायी देते हैं और सूक्ष्म नहीं दिखायी देते। ः अङ्ग प्रधान बताये जाते हैं—दो बाँह, दो जाँघें, और उदर। देहके भीतर साढ़े तीन-तीन व्याम पुरुषकी तीन आँतें हैं। स्त्रियोंकी आँतें तीन-तीन व्यामकी ही होती हैं; वेदवेत्ता द्विज ऐसा ही कहते हैं। हृदयमें एक कमल बताया जाता है, जिसकी नाल तो है ऊपरकी ओर और मुख है नीचेकी ओर। उस हृदय-कमलके वामभागमें प्लीहा है और दक्षिण-भागमें यकृत्। शरीरमें मज्जा, मेदा, वसा, मूत्र, पित्त, कफ, विष्ठा, रक्त तथा रसके गड्ढे हैं; इनका माप दो-दो अञ्जलि माना गया है। उन्हीं गड्ढोंसे प्रवृत्त होकर वे मज्जा, मेदा आदि धातु इस शरीरको धारण करते हैं। इन गड्ढोंके सिवा शरीरमें सात सीवनी (विशेष नाड़ी) हैं। इनमेंसे पाँच तो मस्तककी ओर गयी हैं, एक नाड़ी लिङ्ग-तक तथा एक जिह्वातक गयी है। सब नाड़ियाँ नाभि-कमलसे ही सब ओर गयी हैं। इन सबमें मस्तककी ओर गयी हुई तीन नाड़ियाँ प्रधान हैं—सुषुम्ना, इडा और पिङ्गला। इडा और पिङ्गला नाड़ी नासिकाके द्वारतक पहुँची हुई हैं। ये ही दोनों शरीरकी वृद्धि एवं पुष्टि करनेवाली हैं। शरीरमें वायु, अग्नि तथा चन्द्रमा—ये पाँच-पाँच भागोंमें विभक्त होकर स्थित हैं। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—ये वायुके पाँच भेद माने गये हैं। उच्छ्वास (ऊपरकी ओर श्वास खींचना), निःश्वास (श्वासको बाहर निकालना) तथा अन्न और जलको शरीरके भीतर पहुँचाना—ये तीन प्राणवायुके कर्म हैं। कण्ठसे लेकर मस्तकतक इसका निवासस्थान है। मल, मूत्र तथा वीर्यका त्याग और गर्भको योनिसे बाहर निकालना यह अपान वायुका कर्म बताया गया है। इसका स्थान गुदाके ऊपर है। समान वायु खाये हुए अन्नको धारण करती, उसके विभिन्न अंशोंको बिलगाती तथा सम्पूर्ण शरीरमें रस-सञ्चार करती हुई बेरोक-टोक विचरती है।

यह लंबाईकी एक माप है। दोनों हाथोंको जहाँतक हो ों बगलमें फैलानेपर एक हाथकी अँगुलियोंके सिरेसे दूसरे ंगुलियोंके सिरेतक जितनी दूरी होती है, वह व्याम है।

वाक्य बोलना, उद्गार (कण्ठके भीतरसे कुछ निकालना) तथा कर्मोंके लिये सब प्रकारके प्रयत्न करना—ये उदान वायुके कार्य हैं। इसका स्थान कण्ठसे लेकर मुखतक है। व्यान वायु सदा हृदयमें स्थित रहती है और सम्पूर्ण देहका भरण-पोषण करती है। धातुको बढ़ाना, पसीना, लार आदिको निकालना तथा आँखके खोलने-मीचनेकी क्रिया करना—ये सब व्यान वायुके कार्य हैं।

पाचक, रञ्जक, साधक, आलोचक तथा भ्राजक—इन पाँच रूपोंमें अग्नि इस शरीरके भीतर स्थित है। पाचक अग्नि सदा पक्काशयमें स्थित होकर खाये हुए अन्नको पचाती है। रञ्जक अग्नि आमाशयमें स्थित होकर अन्नके रसको रँगकर रक्तके रूपमें परिणत कर देती है। साधक अग्नि हृदयमें रहकर बुद्धि और उत्साह आदिको बढ़ाती है। आलोचक अग्नि नेत्रोंमें निवास करके रूप देखनेकी शक्ति बढ़ाती है तथा भ्राजक अग्नि त्वचामें स्थित हो शरीरको निर्मल एवं कान्तिमान् बनाती है। क्लेदक, बोधक, तर्पण, श्लेषण तथा आलम्बक—इन पाँच रूपोंमें चन्द्रमाका शरीरके भीतर निवास है। क्लेदक चन्द्रमा पक्काशयमें स्थित होकर प्रतिदिन खाये हुए अन्नको गलाता है। बोधक रसनेन्द्रियमें रहकर मधुर आदि रसोंका अनुभव कराता है। तर्पण चन्द्रमा मस्तकमें स्थित होकर नेत्र आदि इन्द्रियोंकी तृप्ति एवं पुष्टि करता है। इसीलिये उसका नाम तर्पण है। श्लेषण सब सन्धियोंमें व्याप्त होकर उन्हें परस्पर मिलाये रखता है तथा आलम्बक चन्द्रमा हृदयमें स्थित हो शरीरके सब अङ्गोंको परस्पर अवलम्बित रखता है। इस प्रकार वायु, अग्नि तथा चन्द्रमाने इस शरीरको धारण कर रक्खा है। इन्द्रियोंके छिद्र, रोमकूप तथा उदरका अवकाश-भाग—ये सब आकाशजनित हैं। नासिका, केश, नख, हड्डी, धीरता, भारीपन, त्वचा, मांस, हृदय, गुदा, नाभि, मेदा, यकृत्, मज्जा, आँत, आमाशय, शिरा, स्नायु तथा पक्काशय—इन सबको वेदवेत्ता विद्वानोंने पृथ्वीका अंश बताया है। नेत्रोंमें जो श्वेत भाग है, वह कफसे उत्पन्न होता है और काला भाग वायुसे पैदा होता है। श्वेत भाग पिताका तथा काला भाग माताका अंश है। नेत्रमें पाँच मण्डल होते हैं। पहला पक्ष्म-मण्डल, दूसरा चर्म-मण्डल, तीसरा शुक्ल-मण्डल, चौथा कृष्ण-मण्डल तथा पाँचवाँ दृङ्-मण्डल है। नेत्रके दो भाग और हैं—उपाङ्ग और अपाङ्ग। नेत्रोंका जो अन्तिम किनारा है, उसे उपाङ्ग कहते हैं और नासिकाके मूल भागसे मिला हुआ जो नेत्रका अंश है, उसका नाम अपाङ्ग है। दोनों अण्डकोष मेदा, रक्त, कफ और मांस—इन चार धातुओंसे युक्त बताये गये हैं। समस्त प्राणियोंकी जिह्वा रक्त-मांसमयी ही होती है। दोनों हाथ, दोनों ओठ, लिङ्ग और गला—इन छः स्थानोंमें चर्मप्रधान मांस और रक्त होते हैं। इस प्रकार इन सात धातुओंके बने हुए पचीस तत्त्वयुक्त शरीरमें जीव निवास करता है। त्वचा, रक्त और मांस—ये तीनों माताके अंशसे तथा मेदा, मज्जा और अस्थि—ये पिताके अंशसे उत्पन्न बताये गये हैं। इन्हीं छः कोषोंसे इस शरीरका सङ्गठन हुआ है।

यह पाञ्चभौतिक शरीर पाँच भूतोंसे उत्पन्न होनेवाले अन्नद्वारा जिस प्रकार पुष्टिको प्राप्त होता है, उसका वर्णन करता हूँ। देहधारी जीव पिण्ड, कौर तथा ग्रासके रूपमें जो अन्न खाते हैं, उसे प्राणवायु पहले स्थूलाशयमें एकत्र करती है; फिर उस अन्नमें प्रवेश करके अन्न और जलको पृथक्-पृथक् कर देती है। जलको अग्निके ऊपर रखकर अन्नको उसके ऊपर रखती है और स्वयं जलके नीचे स्थित हो धीरे-धीरे अग्निको उद्दीप्त करती है। वायुसे उद्दीप्त हुई अग्नि जलको अत्यन्त गरम कर देती है; फिर उस उष्ण जलसे वह अन्न सब ओरसे पकने लगता है। पकनेपर उसके दो भाग हो जाते हैं; मैल अलग छँट जाती है और रस पृथक् हो जाता है। मल निकलनेके बारह मार्गोंसे वह छँटी हुई मैल शरीरसे बाहर हो जाती है। दो कान, दो आँख, दो नाक, जिह्वा, दाँत, लिङ्ग, गुदा, नख और रोमकूप—ये बारह मलके आश्रय हैं। शरीरकी सब नाड़ियाँ सब ओरसे हृदय-कमलमें बँधी हुई हैं। व्यान वायु पूर्वोक्त अन्न-रसको उन नाड़ियोंके मुखमें रख देती है; तब समान वायु सभी नाड़ियोंको उस रससे परिपूर्ण करती है। तत्पश्चात् ये रसपूर्ण नाड़ियाँ देहमें सब ओर उस रसको पहुँचा देती हैं। नाड़ियोंमें स्थित हुआ वह रस रञ्जक अग्निकी उष्णतासे पकने लगता है और पकते-पकते रुधिर-रूपमें परिणत हो जाता है। तदनन्तर त्वचा, रोम, केश, मांस, स्नायु, शिरा, अस्थि, नख, मज्जा, इन्द्रियोंकी शुद्धि तथा वीर्यकी वृद्धि—ये कार्य क्रमशः होते हैं। इस प्रकार अन्नका बारह रूपोंमें परिणाम बताया जाता है। इन सबसे बना हुआ यह शरीर पुण्यके लिये प्राप्त हुआ है, जैसे सुन्दर रथ भार ढोनेके लिये ही होता है। यदि वह भार न ढो सके तो, केवल तेल लगाने आदि नाना प्रकारके

रथकी रक्षा करनेसे क्या कार्य सिद्ध हो सकता है ? ार उत्तम-उत्तम भोजनोंसे पुष्ट किये हुए इस शरीरके ्ण्य-सम्पादनके सिवा और क्या लाभ है ? यदि य नहीं करता, तो पशुके तुल्य है । इस विषयमें क स्मरण रखने योग्य है—

ास्मिन्काले च देशे च वयसा यादृशेन च ।
तं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते ॥
स्मात् सदा शुभं कार्यमविच्छिन्नसुखार्थिभिः ।
ाच्छिद्यन्तेऽन्यथा भोगा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥
स्मात्पापेन दुःखानि तीव्राणि सुबहून्यपि ।
स्मात्पापं न कर्तव्यमात्मपीडाकरं हि तत् ॥

जिस समय जिस देशमें और जिस आयुसे शुभ तथा कर्म किये जाते हैं उसी देश, काल और आयुमें उनका फल भोगना पड़ता है । इसलिये अक्षय इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको सदा शुभ कर्म ही करना । अन्यथा गरमीमें सूख जानेवाली छोटी-छोटी नदियोंकी समस्त सुख-भोग छिन्न-भिन्न हो जाते हैं । क्योंकि बहुत तीव्र दुःख प्राप्त होते हैं, अतः पाप-कर्मका कदापि नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह अपनेको देनेवाला है ।'

महात्मन् ! इस प्रकार मैंने आपके प्रश्नका यथाशक्ति दिया है । प्राणी किस प्रकार उत्पन्न होता है, यह बता दी गयी । अब किस प्रकार उसकी मृत्यु होती है सुनिये । कर्मके अनुसार आयु क्षीण होनेपर जब मृत्युकाल उपस्थित होता है, उस समय अपने अधीन रहनेवाले जीवको यमराजके दूत शरीरसे बाहर हैं । तब पुण्य और पापके बन्धनमें बँधा हुआ पञ्चतन्मात्राओंको तथा मन, बुद्धि और अहङ्कारको लेकर शरीरको त्याग देता है । पुण्यात्मा पुरुषोंके प्राण ऊर्ध्व स्थित सात छिद्रोंके द्वारा बाहर निकलते हैं । ोंके प्राण गुदा-मार्गसे बाहर होते हैं और योगी के प्राण ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर ऊर्ध्वलोकमें गमन करते हैं । मृत्यु होनेपर जीव उसी क्षणमें आतिवाहिक शरीर धारण है; वह अंगूठेकी पोरके बराबर होता है । उस का निर्माण अपने ही प्राणोंसे किया जाता है । उस ाहिक शरीरमें जब जीव स्थित हो जाता है, तब जके दूत उस देहको बाँधकर बलपूर्वक यमलोकके से ले जाते हैं । वह मार्ग तपे हुए भाड़के समान, गरम किये हुए लोहेके गोलेके सदृश, तपी हुई बालूवाले स्थानकी भाँति तथा जलते हुए ताम्रपत्रके समान होता है । पृथ्वीसे छियासी हजार योजन दूर यमराजकी पुरी है, जहाँ यमदूत पापी जीवको घसीटकर ले जाते हैं । मार्गमें कहीं अत्यन्त सर्दी पड़ती है, कहीं अत्यन्त दुर्गम स्थान लाँघना पड़ता है, कहीं भारी अन्धकार छाया रहता है तथा कहीं अग्निके समान मुखवाले काक, कङ्क, जम्बुक, मक्खी, डाँस, मच्छर तथा साँप और बिच्छू आदि जीव काट खाते हैं । उनके काटनेपर जीव चीखता और चिल्लाता है, परंतु मरता नहीं है । कहीं-कहीं भयङ्कर राक्षस उसे खाते, घसीटते और इधर-उधर फेंकते हैं । कहीं तपी हुई बालूवाले अत्यन्त भयङ्कर मार्गसे जलता हुआ पापी जीव ले जाया जाता है । यमपुरीके उस अत्यन्त दुस्तर मार्गको वह केवल दस मुहूर्त (चार घंटे) में पार करता है; परंतु उतना ही समय वह एक वर्षके बराबर बड़ा भारी समझता है । उस मार्गमें पापी जीवको पीब और रक्तकी धारा बहानेवाली भयङ्कर वैतरणी नदी पार करनी पड़ती है, जिसमें बाल ही शैवालका काम देते हैं ।

यमलोकमें पहुँचनेपर यमदूत पापी मनुष्यको ले जाकर यमराजके सामने खड़ा कर देते हैं । पापात्मा जीव काल और अन्तक आदिसे घिरे हुए यमराजको बड़े भयङ्कर रूपमें देखता है तथा पुण्यात्मा पुरुष यमराजका परम शान्त सौम्य रूपमें दर्शन पाता है । मनुष्य ही यमलोकमें जाते हैं, दूसरे प्राणी नहीं । अन्य प्राणियोंकी मृत्यु होनेपर शीघ्र ही किसी-न-किसी योनिमें उनका जन्म हो जाता है । इस प्रकार उनकी योनिपूर्ति मात्र की जाती है । केवल मनुष्य ही प्रेत होते सुने जाते हैं, अन्य प्राणी नहीं । धर्मात्मा पुरुष यमलोकमें जानेपर वहाँ पूजित होता है और पापी जीव बन्धनमें डाला जाता है ।

विप्रवर ! धर्मात्मा पुरुष जिस प्रकार परलोकमें जाते हैं, उस मार्गका वर्णन करता हूँ । जो इस लोकमें बगीचा और वृक्षका दान करते हैं, वे फल और फूलवाले वृक्षोंकी छायासे होकर सुखपूर्वक यात्रा करते हैं । इसी प्रकार जो छत्र दान करनेवाले मनुष्य हैं, वे भी छायामें ही सुखसे जाते हैं । उपानह् (जूता आदि) दान करनेवाले सवारीसे यात्रा करते हैं । कुआँ और पोखरा खुदानेवाले प्यासकी पीड़ासे रहित होकर जाते हैं । सवारी, शय्या और आसन देनेवाले लोग विमानोंपर बैठकर जाते हैं । जो लोग भोजन-दान करनेवाले हैं, वे लोग भक्ष्य-

भोज्यसे भलीभाँति तृप्त होकर यात्रा करते हैं। दीप-दान करनेवाले उजालेमें जाते हैं, गोदान करनेवाले वैतरणी नदीको सुखसे पार करते हैं। जो जन्मसे ही लेकर जीवन-भर भगवान् सूर्य, भगवान् शिव अथवा भगवान् विष्णुकी पूजा करते हैं, वे यमदूतोंसे पूजित होकर भगवान्‌के धाममें जाते हैं। भूमि, गौ, सोना, लोहा, तेल, रूई, नमक और सप्तधान्य दान करके मनुष्य सुखपूर्वक परलोककी यात्रा करते हैं।

चित्रगुप्त यमलोकमें गये हुए पापी और पुण्यात्मा पुरुषोंकी सूचना यमराजको देते हैं। फिर वह एक वर्ष-तक प्रेतलोकमें निवास करता है। उसी वर्षमें उसे भोग-देहकी प्राप्ति होती है। भाई-बन्धु जो जलयुक्त कुम्भदान और अन्न आदि दान करते हैं, उसे ही वह प्रतिदिन खा-कर पुष्ट होता है। उसने पहले भी जो अन्न आदिका दान कर रक्खा है, वह भी यमलोकमें उसके पास स्वयं उपस्थित हो जाता है। जिसने स्वयं कुछ दान नहीं किया तथा जिसके लिये दूसरा कोई अन्नदाता और जलदाता नहीं है, वह यमलोकमें भूख और प्याससे पीड़ित होता है। भाई-बन्धुओं-द्वारा किया हुआ जलदान उसके पास नदी होकर पहुँचता है। जिसके लिये यहाँ षोडश श्राद्धपूर्वक प्रतिमास मासिक श्राद्ध नहीं किया जाता, वह प्रेतयोनिसे मुक्त नहीं होता है। प्रेतलोकमें मनुष्यके दिनके बराबर ही दिन होता है। इसलिये प्रेतको प्रतिदिन एक वर्षतक अन्न देना चाहिये। यमलोकमें सर्दी, आँधी और धूपके कष्टसे युक्त पापात्मा पुरुषकी रक्षा श्मशानिक नामवाले भयङ्कर यमदूत करते हैं। जैसे इस लोकमें भी कठोर पुरुष बन्धनमें पड़े हुए किसी कैदीकी रक्षा करते हैं। जिसके लिये षोडश श्राद्ध-पूर्वक प्रेतपिण्ड नहीं दिये जाते, उसका कई युगोंके भी प्रेतयोनिसे उद्धार नहीं होता। प्रेतपिण्ड देनेके प जब भाई-बन्धु एक वर्ष पूरा होनेपर सपिण्डीकरण श्रा अनुष्ठान भलीभाँति कर देते हैं, तब जीवका भोग पूर्णताको प्राप्त हो जाता है। पापात्मा जीव भयङ्कर र प्राप्त करता है और धार्मिक पुरुषको परम उत्तम दि रूपकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर जीव अपने क अनुसार स्वर्ग या नरकमें जाता है। रौरव आदि न पातालतलमें स्थित हैं, देवता आदि पुण्यात्मा स्वर्गलोक ऊपर सत्यलोकतक निवास करते हैं। इतिहास, पुरा वेद तथा स्मृतियोंमें जो पुण्यकर्म विहित है, उससे स्वर्ग प्राप्ति होती है। उसके विपरीत पाप करनेसे नरक होता है स्वर्ग हो या नरक, वहाँ भी मनुष्य अपने कर्मोंके अनुरू नियत समयतक ही निवास करता है। वर्षके पहले ह जिसका सपिण्डीकरण श्राद्ध कर दिया जाता है, उसक भी प्रेतत्व एक वर्षतक अवश्य रहता है। जिन्होंने अश्वमेध आदि तीन यज्ञोंद्वारा यजन किया हो अथवा ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन देवताओंकी पूजा की हो, या जो सम्मुख युद्धमें मारे गये हों, वे कभी प्रेतलोकमें नहीं जाते। केवल पुण्यसे एकमात्र स्वर्गकी प्राप्ति होती है और केवल पापसे एकमात्र अन्धकारपूर्ण नरकमें जाना पड़ता है। पाप और पुण्य दोनोंके अनुष्ठानसे मानव स्वर्ग और नरक दोनोंमें जाता है और उसीके अनुसार उसको शरीर भी प्राप्त हो जाता है। विप्रवर! जन्म, मृत्यु और परलोक-वास आपके इन तीन प्रश्नोंको लेकर, जैसी कि मेरे पिताने मुझे शिक्षा दी है, आपसे निवेदन किया। अब और आप क्या सुनना चाहते हैं? उसे भी कहूँगा।

पापकर्मोंके फल, जयादित्यकी स्तुति और महिमा

अतिथि बोले—कमठ! तुमने शास्त्रीय मतका आश्रय लेकर परलोकका जो यह स्वरूप बतलाया है, वह वैसा ही है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है; तथापि इस विषयमें नास्तिक, पापाचारी तथा मन्दबुद्धि मनुष्य सन्देह करते हैं। उनका सन्देह दूर करनेके लिये तुम कर्मोंके फलका निरूपण करो। किस-किस पापकर्मका कौन-सा फल यहीं प्राप्त हो जाता है तथा किस पापके प्रभावसे मनुष्य किस रूपमें जन्म लेता है? इन सब बातोंको यदि तुम जानते हो तो बताओ।

कमठने कहा—विप्रवर! इस विषयमें मेरे पिताने जो उपदेश दिया है और मेरे चित्तमें जो विचार स्थित है, वह सब आपको बताऊँगा। आप स्थिर होकर सुनिये। ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले मनुष्यको क्षयका रोग होता है, शराबीके दाँत काले होते हैं, सोनेकी चोरी करनेवालेका नख खराब होता है, गुरुपत्नीगामीके शरीरका चमड़ा खराब हो जाता है, इन सबके साथ संसर्ग रखनेवाले पुरुषको ये सभी रोग होते हैं। ये पाँच प्रकारके लोग महापातकी कहलाते

भोज्यसे भलीभाँति तृप्त होकर यात्रा करते हैं। दीप-दान करनेवाले उजालेमें जाते हैं, गोदान करनेवाले वैतरणी नदीको सुखसे पार करते हैं। जो जन्मसे ही लेकर जीवन-भर भगवान् सूर्य, भगवान् शिव अथवा भगवान् विष्णुकी पूजा करते हैं, वे यमदूतोंसे पूजित होकर भगवान्‌के धाममें जाते हैं। भूमि, गौ, सोना, लोहा, तेल, रूई, नमक और सप्तधान्य दान करके मनुष्य सुखपूर्वक परलोककी यात्रा करते हैं।

चित्रगुप्त यमलोकमें गये हुए पापी और पुण्यात्मा पुरुषोंकी सूचना यमराजको देते हैं। फिर वह एक वर्ष-तक प्रेतलोकमें निवास करता है। उसी वर्षमें उसे भोग-देहकी प्राप्ति होती है। भाई-बन्धु जो जलयुक्त कुम्भदान और अन्न आदि दान करते हैं, उसे ही वह प्रतिदिन खा-कर पुष्ट होता है। उसने पहले भी जो अन्न आदिका दान कर रक्खा है, वह भी यमलोकमें उसके पास स्वयं उपस्थित हो जाता है। जिसने स्वयं कुछ दान नहीं किया तथा जिसके लिये दूसरा कोई अन्नदाता और जलदाता नहीं है, वह यमलोकमें भूख और प्याससे पीड़ित होता है। भाई-बन्धुओं-द्वारा किया हुआ जलदान उसके पास नदी होकर पहुँचता है। जिसके लिये यहाँ षोडश श्राद्धपूर्वक प्रतिमास मासिक श्राद्ध नहीं किया जाता, वह प्रेतयोनिसे मुक्त नहीं होता है। प्रेतलोकमें मनुष्यके दिनके बराबर ही दिन होता है। इसलिये प्रेतको प्रतिदिन एक वर्षतक अन्न देना चाहिये। यमलोकमें सर्दी, आँधी और धूपके कष्टसे युक्त पापात्मा पुरुषकी रक्षा श्माशानिक नामवाले भयङ्कर यमदूत करते हैं। जैसे इस लोकमें भी कठोर पुरुष बन्धनमें पड़े हुए किसी कैदीकी रक्षा करते हैं। जिसके लिये षोडश श्राद्ध-पूर्वक प्रेतपिण्ड नहीं दिये जाते, उसका कई युगोंमें भी प्रेतयोनिसे उद्धार नहीं होता। प्रेतपिण्ड देनेके जब भाई-बन्धु एक वर्ष पूरा होनेपर सपिण्डीकरण श्र अनुष्ठान भलीभाँति कर देते हैं, तब जीवका भोग पूर्णताको प्राप्त हो जाता है। पापात्मा जीव भयङ्कर प्राप्त करता है और धार्मिक पुरुषको परम उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर जीव अपने अनुसार स्वर्ग या नरकमें जाता है। रौरव आदि पातालतलमें स्थित हैं, देवता आदि पुण्यात्मा स्वर्गलो ऊपर सत्यलोकतक निवास करते हैं। इतिहास, पुर वेद तथा स्मृतियोंमें जो पुण्यकर्म विहित है, उससे स्व प्राप्ति होती है। उसके विपरीत पाप करनेसे नरक होता स्वर्ग हो या नरक, वहाँ भी मनुष्य अपने कर्मोंके अनु नियत समयतक ही निवास करता है। वर्षके पहले जिसका सपिण्डीकरण श्राद्ध कर दिया जाता है, उस भी प्रेतत्व एक वर्षतक अवश्य रहता है। जिन्होंने अश्वमे आदि तीन यज्ञोंद्वारा यजन किया हो अथवा ब्रह्मा, वि और शिव—इन तीन देवताओंकी पूजा की हो, या सम्मुख युद्धमें मारे गये हों, वे कभी प्रेतलोकमें नहीं जाते केवल पुण्यसे एकमात्र स्वर्गकी प्राप्ति होती है और केव पापसे एकमात्र अन्धकारपूर्ण नरकमें जाना पड़ता है पाप और पुण्य दोनोंके अनुष्ठानसे मानव स्वर्ग और नर दोनोंमें जाता है और उसीके अनुसार उसको शरीर भ प्राप्त हो जाता है। विप्रवर! जन्म, मृत्यु और परलोक वास आपके इन तीन प्रश्नोंको लेकर, जैसी कि मेरे पिताने मुझे शिक्षा दी है, आपसे निवेदन किया। अब और आप क्या सुनना चाहते हैं? उसे भी कहूँगा।

पापकर्मोंके फल, जयादित्यकी स्तुति और महिमा

अतिथि बोले—कमठ! तुमने शास्त्रीय मतका आश्रय लेकर परलोकका जो यह स्वरूप बतलाया है, वह वैसा ही है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है; तथापि इस विषयमें नास्तिक, पापाचारी तथा मन्दबुद्धि मनुष्य सन्देह करते हैं। उनका सन्देह दूर करनेके लिये तुम कर्मोंके फलका निरूपण करो। किस-किस पापकर्मका कौन-सा फल यहीं प्राप्त हो जाता है तथा किस पापके प्रभावसे मनुष्य किस रूपमें जन्म लेता है? इन सब बातोंको यदि तुम जानते हो तो बताओ।

कमठने कहा—विप्रवर! इस विषयमें मेरे पिताने जो उपदेश दिया है और मेरे चित्तमें जो विचार स्थित है, वह सब आपको बताऊँगा। आप स्थिर होकर सुनिये। ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले मनुष्यको क्षयका रोग होता है, शराबीके दाँत काले होते हैं, सोनेकी चोरी करनेवालेका नख खराब होता है, गुरुपत्नीगामीके शरीरका चमड़ा खराब हो जाता है, इन सबके साथ संसर्ग रखनेवाले पुरुषको वे सभी रोग होते हैं। ये पाँच प्रकारके लोग महापातकी कहलाते

हैं। जो साधु पुरुषोंकी निन्दा सुनता है, वह बहरा होता है; आप ही अपनी कीर्तिका बखान करनेवाला पापी गूँगा होता है; गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाला मनुष्य मिरगीके रोगसे पीड़ित होता है। जो गुरुजनोंका अपमान करता है, वह कीड़ा होता है। पूजनीय पुरुषोंके कार्यकी उपेक्षा करनेवाले पुरुषकी बुद्धि दूषित होती है। साधुजनोंके द्रव्यकी चोरी करनेको जो जितने पग आगे बढ़ाता है, वह नराधम उतने ही वर्षोंतक पङ्गु होता है। जो दान देकर फिर छीन लेता है, वह गिरगिटकी योनिमें उत्पन्न होता है। जो क्रोधमें भरे हुए पूजनीय पुरुषोंको प्रसन्न नहीं करता उसे सिरदर्दका रोग होता है। रजस्वला स्त्रीसे समागम करनेवाला मनुष्य चाण्डाल होता है। कपड़ा चुरानेवाला सफेद कोढ़से लाञ्छित होता है। आग लगानेवाला काली कोढ़के रोगसे पीड़ित होता है। चाँदी चुरानेवाला मेढक तथा झूठी गवाही देनेवाला मुन्न्फा रोगी होता है। परायी स्त्रियोंको काम-भावसे देखनेवाला नेत्ररोगसे कष्ट पाता है। कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके जो नहीं देता है वह अल्पायु होता है। ब्राह्मणकी वृत्तिका अपहरण करनेवाला सदा अजीर्णरोगका रोगी और अधम होता है। नैष्ठिक ब्रह्मचारीको भोजन करानेसे मुँह मोड़नेवाला गृहस्थ सदा रोगी होता है। बहुत-सी पत्नियोंके होनेपर किसी एकहीमें अनुराग रखनेवाला पुरुष मेदाके क्षयरोगसे युक्त होता है। स्वामीने जिसे किसी धर्मके कार्यमें लगा दिया हो, वह यदि अन्यायपूर्वक आचरण करता है; अथवा मालिकके धनको स्वयं ही खा जाता है, तो उसे जलोदर रोग होता है। जो बलवान् होकर भी किसीके द्वारा सताये जाते हुए दुर्बलकी उपेक्षा करता है—उसे बचानेकी चेष्टा नहीं करता, वह अङ्गहीन होता है। अन्न चुरानेवाला भूखसे पीड़ित रहता है। व्यवहारमें पक्षपात करनेवाला मनुष्य जिह्वाके रोगसे युक्त होता है। जो धर्मके कार्यमें लगे हुए मनुष्यको उससे मना कर देता है, वह पत्नीवियोगी होता है। जो अपनी ही बनायी हुई रसोईमें सबसे पहले स्वयं भोजन करता है, उसके गलेमें रोग होता है। पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान किये बिना ही भोजन करनेवाला मनुष्य गाँवका सूअर होता है। पर्वोंके दिन मैथुन करनेवालेको प्रमेहका रोग होता है। अर्थसङ्कटमें पड़े हुए मित्र, बन्धु, स्वामी तथा प्रिय सेवकोंका परित्याग करके उनकी ओरसे मनको हटा लेनेवाला निर्दय मनुष्य सदा जीविकाके लिये कष्ट पाता रहता है। जो माता-पिता, गुरु और स्वामीकी छलसे सेवा करता है, वह बड़े कष्टसे धन पाकर भी उससे वञ्चित हो जाता है। जो विश्वास करनेवाले पुरुषके धनको हड़प लेता है, वह सदा दुःखोंका भागी होता है। जो धार्मिक पुरुषके प्रति क्षुद्रतापूर्ण बर्ताव करता है, वह बौना होता है। जो दुबले बैलको हल या गाड़ीमें जोतता है, उसकी कमरमें लूता (मकरी) का रोग होता है। गायकी हत्या करनेवाला जन्मसे ही अन्धा होता है। गौओंको दुःख देनेवाला मनुष्य पशुसे रहित होता है। जो मारने आदिके द्वारा गौओंके प्रति निर्दयताका परिचय देता है, वह मार्गमें कष्ट भोगता है। सभामें पक्षपात करनेवालेको गलगण्डका रोग होता है। सदा क्रोध करनेवाला चाण्डाल होता है। चुगली खानेवाले मनुष्यके मुँहसे सदा दुर्गन्ध आती है। बकरी बेचनेवाला मनुष्य बहेलिया होता है। कुण्ड (पतिके जीते-जी जार पुरुषसे उत्पन्न पुत्र) का अन्न भोजन करनेवाला मनुष्य सेवक होता है। नास्तिक पुरुष तेली होता है और श्रद्धाहीन मनुष्य मुर्दोंके समान बना रहता है। अभक्ष्य भक्षण करनेवाले मनुष्यको गण्डमालाका रोग होता है। सबको दुःख देनेवाला मनुष्य सदा शोकमें डूबा रहता है। अन्यायसे ज्ञान ग्रहण करनेवाला मनुष्य मूर्ख होता है। शास्त्र चुरानेवाला राक्षस होता है। जो पवित्र कथासे द्वेष करता है, वह कीटमुख होता है। नरकसे लौटे हुए पुरुषकी बुद्धि अत्यन्त खोटी होती है। तालाब और बगीचेको नष्ट करनेवाला पुरुष बिना हाथका होता है। व्यवहारमें छलका सहारा लेनेवाला मनुष्य अपने सेवकोंसे मारा जाता है। परायी स्त्रीसे रति करनेवाला पुरुष सदा प्रमेहरोगसे पीड़ित रहता है। खोटा वैद्य वातका रोगी होता है। गुरुपत्नीगामी मनुष्य कोढ़ी होता है। पशुओंसे मैथुन करनेवाला भी प्रमेही होता है। अपने गोत्रकी स्त्रीसे मैथुन करनेवाला सन्तानहीन होता है। माता, बहिन और पतोहूसे सम्भोग करनेवाला मनुष्य नपुंसक होता है। कृतघ्न मनुष्यको समस्त कार्योंमें असफलता प्राप्त होती है।

ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने आपसे पापियोंका लक्षण संक्षेपसे बताया है। सम्पूर्ण लक्षणोंका वर्णन करनेमें तो चित्रगुप्त भी मोहित हो सकते हैं। ये नरकोंसे भ्रष्ट हुए पापात्मा सहस्रों योनियोंकी यातनाएँ भोगकर अन्तमें उपर्युक्त चिह्नोंसे युक्त मनुष्यके रूपमें उत्पन्न होते हैं। जो धर्मको नहीं मानते हैं तथा जो दुर्व्यसनोंसे पराजित हैं, उन शेष पापियोंको अनुमानसे ही जानना चाहिये। जिनका पाप

नष्ट हो गया है अथवा जो स्वर्गसे लौटे हैं, वे समस्त दुर्व्यसनोंसे मुक्त होकर एकमात्र धर्मका आश्रय लेते हैं। इस विषयमें ये श्लोक स्मरणीय हैं—

धर्मदानकृतं सौख्यमधर्माद् दुःखसम्भवम्।
तस्माद्धर्मं सुखार्थाय कुर्यात् पापं विवर्जयेत्॥
लोकद्वयेऽपि यत्सौख्यं तद्धर्मात्प्रोच्यते यतः।
धर्मं एव मतिं कुर्यात् सर्वकार्यार्थसिद्धये॥
मुहूर्तमपि जीवेद्धि नरः शुक्लेन कर्मणा।
न कल्पमपि जीवेच्च लोकद्वयविरोधिना॥

'धर्म और दानसे सुख प्राप्त होता है और अधर्मसे दुःखकी उत्पत्ति होती है, अतः सुखके लिये धर्मका आचरण करे और पापको सर्वथा त्याग दे। इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें जो सुख है, उसकी प्राप्ति धर्मसे ही बतायी जाती है; अतः समस्त कार्यों और मनोरथोंकी सिद्धिके लिये धर्ममें ही मन लगावे। मनुष्य दो घड़ी भी पुण्यकर्म करते हुए ही जीवे। उभयलोकविरोधी कर्मके साथ कल्पभर भी जीनेकी इच्छा न रक्खे।'

विप्रवर! आपने जो कुछ पूछा है उसका मैंने अपनी शक्तिके अनुसार वर्णन किया है। यह अच्छा कहा गया हो या नहीं, उसके लिये आप क्षमा करें। अब और क्या कहूँ।

नारदजी कहते हैं—आठ वर्षके बालक कमठका यह भाषण सुनकर भगवान् सूर्य अत्यन्त विस्मित एवं बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उस समय हारीत आदि ब्राह्मणोंकी इस प्रकार प्रशंसा की—'अहो! ऐसे उत्तम ब्राह्मणोंसे यह पृथ्वी धन्य है। भगवान् प्रजापति भी धन्य हैं, जिनकी मर्यादाका इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा पालन हो रहा है। इस समय इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे चारों वेद भी धन्य हो गये हैं। जिन ब्राह्मणोंमेंसे एक बालककी बुद्धि इतनी तीव्र और स्पष्ट है, उन हारीत आदि ब्राह्मणोंकी बुद्धि कैसी होगी? निश्चय ही त्रिलोकीमें ऐसी कोई बात नहीं है, जो इन ब्राह्मणोंको विदित न हो। नारदने इनके विषयमें जितना कहा है, उससे भी ये बहुत बढ़कर हैं।' इस प्रकार उन विप्रोंकी प्रशंसा करके हर्षमें भरे हुए सूर्यदेवने कहा—'श्रेष्ठ ब्राह्मणो! मैं सूर्य हूँ, आपका दर्शन करनेके लिये सूर्यलोकसे यहाँ आया हूँ। आज मेरे नेत्र सफल हो गये। आप-जैसे उत्तम ब्राह्मणोंके साथ वार्तालाप करने और बैठनेसे चाण्डाल भी पवित्र होते हैं। देवर्षि नारद भी सर्वथा धन्य हैं, जो त्रिलोकीके तत्त्वको जानते हैं। जिनका श्रेय आपके द्वारा उसी प्रकार बढ़ रहा है, जैसे वैधृति योगमें किये हुए दानका पुण्य बढ़ता है। मैं अपने मन और बुद्धिको एकाग्र करके आप सब लोगोंको प्रणाम करता हूँ; क्योंकि तप, विद्या और सदाचार ही बड़प्पनका प्रधान कारण है। देवताओंका संसर्ग निष्फल नहीं होता, इसलिये मुझसे कोई वर माँगिये; मैं उसे आपलोगोंको दूँगा।'

भगवान् सूर्यकी यह बात सुनकर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पाद्य, अर्घ्य, स्तुति और चन्दनसे अत्यन्त भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका पूजन किया और मण्डल-ब्राह्मण आदि जपनीय मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उनकी इस प्रकार स्तुति की—'आदित्य! आपकी जय हो। स्वामिन्!

आपकी जय हो। भानो! आपकी जय हो। निर्मल प्रकाश-स्वरूप! आपकी जय हो। वेदोंके पालक! दिवानाथ! सूर्यदेव! आपकी जय हो। आप हमारा उद्धार करें। ब्राह्मणोंके सबसे प्रधान देवता आप ही हैं। ब्राह्मण-सृष्टि सूर्यमयी ही है। आपकी कृपादृष्टि पड़नेसे हमारा यह स्थान अत्यन्त पवित्र हो गया। आज हमारे वेदाध्ययन सफल हो गये। आज हमें अपने समस्त पुण्यकर्मोंका फल मिल गया। गोपते! आपका सङ्ग पाकर आज हमारा यह गृह सफल हो गया। यदि आप हमें वर देना चाहते हैं, तो हम यही माँगते हैं कि आप हमारे इस स्थानका कभी परित्याग न करें।'

नष्ट हो गया है अथवा जो स्वर्गसे लौटे हैं, वे समस्त दुर्व्यसनोंसे मुक्त होकर एकमात्र धर्मका आश्रय लेते हैं। इस विषयमें ये श्लोक स्मरणीय हैं—

धर्मदानकृतं सौख्यमधर्माद् दुःखसम्भवम्।
तस्माद्धर्मं सुखार्थाय कुर्यात् पापं विवर्जयेत्॥
लोकद्वयेऽपि यत्सौख्यं तद्धर्मात्प्रोच्यते यतः।
धर्म एव मतिं कुर्यात् सर्वकार्यार्थसिद्धये॥
मुहूर्तमपि जीवेद्धि नरः शुक्लेन कर्मणा।
न कल्पमपि जीवेच्च लोकद्वयविरोधिना॥

'धर्म और दानसे सुख प्राप्त होता है और अधर्मसे दुःख-की उत्पत्ति होती है, अतः सुखके लिये धर्मका आचरण करे और पापको सर्वथा त्याग दे। इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें जो सुख है, उसकी प्राप्ति धर्मसे ही बतायी जाती है; अतः समस्त कार्यों और मनोरथोंकी सिद्धिके लिये धर्ममें ही मन लगावे। मनुष्य दो घड़ी भी पुण्यकर्म करते हुए ही जीवे। उभयलोकविरोधी कर्मके साथ कल्पभर भी जीनेकी इच्छा न रक्खे।'

विप्रवर! आपने जो कुछ पूछा है उसका मैंने अपनी शक्तिके अनुसार वर्णन किया है। यह अच्छा कहा गया हो या नहीं, उसके लिये आप क्षमा करें। अब और क्या कहूँ।

नारदजी कहते हैं—आठ वर्षके बालक कमठका यह भाषण सुनकर भगवान् सूर्य अत्यन्त विस्मित एवं बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उस समय हारीत आदि ब्राह्मणोंकी इस प्रकार प्रशंसा की—'अहो! ऐसे उत्तम ब्राह्मणोंसे यह पृथ्वी धन्य है। भगवान् प्रजापति भी धन्य हैं, जिनकी मर्यादाका इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा पालन हो रहा है। इस समय इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे चारों वेद भी धन्य हो गये हैं। जिन ब्राह्मणोंमेंसे एक बालककी बुद्धि इतनी तीव्र और स्पष्ट है, उन हारीत आदि ब्राह्मणोंकी बुद्धि कैसी होगी? निश्चय ही त्रिलोकीमें ऐसी कोई बात नहीं है, जो इन ब्राह्मणों-को विदित न हो। नारदने इनके विषयमें जितना कहा है, उससे भी ये बहुत बढ़कर हैं।' इस प्रकार उन विप्रोंकी प्रशंसा करके हर्षमें भरे हुए सूर्यदेवने कहा—'श्रेष्ठ ब्राह्मणो! मैं सूर्य हूँ, आपका दर्शन करनेके लिये सूर्यलोकसे यहाँ आया हूँ। आज मेरे नेत्र सफल हो गये। आप-जैसे उत्तम ब्राह्मणोंके साथ वार्तालाप करने और बैठनेसे चाण्डाल भी पवित्र होते हैं। देवर्षि नारद भी सर्वथा धन्य हैं, जो त्रिलोकीके तत्त्वको जानते हैं। जिनका श्रेय आपके द्वारा उसी प्रकार बढ़ रहा है, जैसे वैधृति योगमें किये हुए दान-का पुण्य बढ़ता है। मैं अपने मन और बुद्धिको एकाग्र करके आप सब लोगोंको प्रणाम करता हूँ; क्योंकि तप, विद्या और सदाचार ही बड़प्पनका प्रधान कारण है। देवताओंका संसर्ग निष्फल नहीं होता, इसलिये मुझसे कोई वर माँगिये; मैं उसे आपलोगोंको दूँगा।'

भगवान् सूर्यकी यह बात सुनकर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पाद्य, अर्घ्य, स्तुति और चन्दनसे अत्यन्त भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका पूजन किया और मण्डल-ब्राह्मण आदि जपनीय मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उनकी इस प्रकार स्तुति की—'आदित्य! आपकी जय हो। स्वामिन्!

आपकी जय हो। भानो! आपकी जय हो। निर्मल प्रकाश-स्वरूप! आपकी जय हो। वेदोंके पालक! दिवानाथ! सूर्यदेव! आपकी जय हो। आप हमारा उद्धार करें। ब्राह्मणोंके सबसे प्रधान देवता आप ही हैं। ब्राह्मण-सृष्टि सूर्यमयी ही है। आपकी कृपादृष्टि पड़नेसे हमारा यह स्थान अत्यन्त पवित्र हो गया। आज हमारे वेदाध्ययन सफल हो गये। आज हमें अपने समस्त पुण्यकर्मोंका फल मिल गया। गोपते! आपका सङ्ग पाकर आज हमारा यह गृह सफल हो गया। यदि आप हमें वर देना चाहते हैं, तो हम यही माँगते हैं कि आप हमारे इस स्थानका कभी परित्याग न करें।'

भगवान् सूर्य बोले—क्योंकि आपलोगोंने पहले 'जयादित्य' कहकर मेरा स्तवन किया है, इसलिये मैं 'जयादित्य' नामसे विख्यात होकर सदा इस स्थानमें निवास करूँगा। हे विप्रगण! जबतक पृथ्वी, समुद्र, पर्वत और नगर विद्यमान हैं, तबतक मैं इस स्थानमें अवश्य रहूँगा; कभी इसका त्याग नहीं करूँगा। यहाँ रहकर मैं अपने भक्तोंके दारिद्र्य, रोगसमूह, दाद-खुजली, कोढ़, चकत्ता तथा अन्य प्रकारकी कोढ़ आदिका नाश करता रहूँगा। जो मानव यहाँ प्रतिष्ठित हुए मेरे श्रीविग्रहका पूजन करेगा, उसकी उस पूजाको मैं ग्रहण करूँगा।

भगवान् सूर्यके ऐसा कहनेपर हारीत आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने वेदोक्त विधिसे उनकी मूर्ति स्थापित की। तत्पश्चात् सब द्विजोंने कहा—'कमठ! तुम्हारे कारण ही भगवान् सूर्य यहाँ विराजमान हुए हैं, अतः पहले तुम्हीं इनका गुणगान करो।' ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ कमठने जयादित्यको प्रणाम करके इस महास्तोत्रका गान किया—'आदिदेव! आपके यथार्थरूपका साक्षात्कार नहीं, केवल यजुर्वेद-के मन्त्रमें श्रवण हुआ है। ज्ञानीजन ऐसा ही कहते हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—यह चार प्रकारकी वाणी सदा आपसे दूर-ही-दूर रहती है—आपतक पहुँच नहीं पाती। तथापि मैं इतना धृष्ट हूँ कि स्वार्थकी कामना लेकर आपका स्तवन करता हूँ। प्रभो! मेरे इस अपराधको क्षमा करें। देव! मार्तण्ड, सूर्य, अंशु, रवि, इन्द्र, भानु, भग, अर्यमा, स्वर्णरेता, दिवाकर, मित्र तथा विष्णु—इन बारह नामोंसे आप विख्यात हैं। द्वादशात्मन्! आपको नमस्कार है। त्रिलोकी आपका गर्भ-गृह है, सम्पूर्ण आकाश जलाधार (अर्घा) है, नक्षत्रसमूह पुष्पमाला हैं तथा आप आकाशमें स्थापित ज्योतिर्मय लिङ्ग हैं; आपको नमस्कार है। आप देवताओंके देवता, अनाथोंके नाथ, पालनीय जनोंके पालक तथा दीनोंपर दया करनेवाले हैं। नेत्रोंके भी नेत्र (दृष्टिशक्ति-प्रदाता), मनुष्योंकी बुद्धिकी भी बुद्धि, बुद्धिसे परे तथा जीवके भी जीवन हैं। आपकी जय हो। आप दरिद्रताकी दरिद्रता, निधिकी निधि रोगके रोग पृथ्वीमें प्रसिद्ध हैं। अप्रमेय जयादित्य! आपकी दीर्घकाल-तक जय हो। जो नाना प्रकारकी व्याधियोंमें ग्रस्त है, कोढ़-के रोगसे पीड़ित है, जिसकी नाक गल गयी है, शरीर भी जीर्ण-शीर्ण हो गया है तथा जो अपनी चेतना भी खो बैठा है, ऐसे मनुष्यको उसके बन्धु-बान्धव, माता पिता भी छोड़ देते हैं, परंतु सबके ठुकराये हुए उस अनाथ जीवका भी आप पालन करते हैं। हे देव! हे विवस्वान्! आपके सिवा दूसरा कौन इतना दयालु श्रेष्ठ देवता है? आप मेरे पिता हैं, आप ही मेरी माता हैं, आप ही गुरु तथा आप ही बन्धु-बान्धव हैं। आप ही मेरे धर्म तथा आप ही मोक्षके मार्ग हैं। देव! मैं आपका दास हूँ। त्यागिये या उबारिये। मैं पापी हूँ, मूढ़ हूँ, अत्यन्त भयङ्कर कर्म करने-वाला एवं भयानक हूँ। इतना ही नहीं, मैं पापोंकी निधि हूँ। तथापि प्रतिदिन आपके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करके आपका भजन करता हूँ। हे श्रीजयादित्य! आप अपने भक्तोंका पालन कीजिये।'*

नारदजी कहते हैं—महात्मा कमठके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् जयादित्यने हँसते हुए स्निग्ध एवं गम्भीर वाणीमें उनसे कहा—'कमठ! तुमने जो यह जयादित्याष्टक सुनाया है, इससे जो मेरी स्तुति करेगा, उसके लिये इस पृथ्वीपर कुछ भी दुर्लभ न होगा। विशेषतः रविवारको मेरी पूजा करके जो इसका पाठ करेगा, उसके रोग और दरिद्रताका नाश होगा। वत्स! तुमने मुझे बहुत सन्तुष्ट किया है, अतः तुम्हें यह वर देता हूँ कि इस पृथ्वी-पर सर्वज्ञ होकर तुम मोक्ष प्राप्त कर लोगे। तुम्हारे पिता कभी स्मृतिकार होंगे। वत्स! मैं इस स्थानका कभी त्याग नहीं करूँगा।'

---

* त्वं नैव दृष्टः केवलसंश्रुतश्च यजुष्येवं व्याहरन्त्यादिदेव।
चतुर्विधा भारती दूरदूरं धृष्टः स्तौमि स्वार्थकामः क्षमैतत्॥
मार्तण्डसूर्यांशुरविस्तथेन्द्रो भानुर्भगश्चार्यमा स्वर्णरेताः।
दिवाकरो मित्रविष्णुश्च देव ख्यातस्त्वं वै द्वादशात्मा नमस्ते॥
लोकत्रयं वै तव गर्भगेहं जलाधारः प्रोच्यते खं समग्रम्।
नक्षत्रमाला कुसुमाभिमाला तस्मै नमो व्योमलिङ्गाय तुभ्यम्॥
त्वं देवदेवस्त्वमनाथनाथस्त्वं पाल्यपालः कृपणे कृपालुः।
त्वं नेत्रनेत्रं जनबुद्धिबुद्धिर्बुद्धेः परस्त्वं जय जीवजीव॥
दारिद्र्यदारिद्र्य निधे निधीनां रोगप्ररोगः प्रथितः पृथिव्याम्।
चिरंजयादित्य जयाप्रमेय व्याधिग्रस्तं कुष्ठरोगाभिभूतम्॥
भग्नघ्राणं शीर्णदेहं विसंज्ञं माता पिता बान्धवाः सन्त्यजन्ति।
सर्वैस्त्यक्तं पासि देव विवस्वंस्त्वत्तो देवः कोऽस्ति श्रेष्ठस्त्वदन्यः॥
त्वं मे पिता त्वं जननी त्वमेव त्वं मे गुरुर्बान्धवाश्च त्वमेव।
त्वं मे धर्मस्त्वं च मे मोक्षमार्गो दासस्तुभ्यं त्यज वा रक्ष देव॥
पापोऽस्मि मूढोऽस्मि महोग्रकर्मा रौद्रोऽस्मि पापस्य निधानमस्मि।
तथापि नित्यं प्रणिपत्य पादयोर्भजामि भक्तान् पालय श्रीजयार्क॥

भगवान् सूर्यने जब ऐसा कहा, तब ब्राह्मणोंने पुनः उनका पूजन और स्तवन किया। तत्पश्चात् उन द्विजेन्द्रसे आज्ञा लेकर वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये। कुन्तीनन्दन! इस प्रकार इस भूतलपर आश्विन मासमें जयादित्यका प्रादुर्भाव हुआ, इसलिये वह मास वहाँ अति विशेष पर्व माना जाता है। आश्विन मासमें रविवारको कोटितीर्थमें नहाकर जो जयादित्यका पूजन करता है, वह बड़े भारी पुण्यफलको प्राप्त होता है। जयादित्यको लाल फूलमाला चढ़ाने, लाल चन्दन और रोलीका लेप करने, गन्ध-धूप आदि देने तथा घृतपक्व नैवेद्य समर्पण करनेसे ब्रह्मघाती, शराबी, सुवर्णचोर तथा गुरुपत्नीगामी भी अपने समस्त पातकोंसे मुक्त हो सूर्यलोकको जाता है। इस लोकमें पुत्र, स्त्री, धन और आयु आदि संसारी सुखको पाकर अभीष्ट भोगोंसे सम्पन्न हो सूर्यलोकमें चिरकालतक निवास करता है। प्रत्येक रविवारको जयादित्यका दर्शन, कीर्तन और स्मरण भी सब रोगोंकी शान्ति करनेवाला है। जो अनादि, अनन्त, तेजोनिधि एवं अव्यक्तदेव भगवान् सूर्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं, वे रोग-शोकसे रहित सूर्यधाममें लीन होते हैं। अर्जुन! जो लोग सूर्यग्रहण प्राप्त होनेपर एकाग्रचित्त हो सूर्यकूपमें स्नान करते, प्रयत्नपूर्वक आहुति देते तथा जयादित्यके आगे यथाशक्ति दान देते हैं, उनके पुण्यकी कैसी महिमा है, यह एकाग्रचित्त होकर सुनो। कुरुक्षेत्र, प्रभास, पुष्कर, काशी, प्रयाग अथवा नैमिषारण्यमें जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य जयादित्यके प्रसादसे वे लोग वहाँ भी पा लेते हैं।

नारदजीके गुणोंका वर्णन तथा गौतमेश्वरकी महिमाके प्रसङ्गमें योगका निरूपण

अर्जुन बोले—देवर्षे! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति समान भाव रखनेवाले, जितेन्द्रिय तथा राग-द्वेषरहित हैं। तथापि आपमें जो कलह करानेकी प्रवृत्ति है, उसके कारण कई हजार देवता, गन्धर्व, राक्षस, दैत्य तथा मुनि नष्ट हो गये। विप्रवर! आपकी ऐसी चेष्टा क्यों होती है? मेरे इस सन्देहका निवारण कीजिये।

सूतजी कहते हैं—शौनक! अर्जुनके मुखसे यह बात सुनकर नारदमुनि हँसते हुए-से बाभ्रव्य मुनिके मुखकी ओर देखने लगे। बाभ्रव्यका जन्म हारीतके कुलमें हुआ था। वे उस समय नारदजीके पास ही उपस्थित थे। बाभ्रव्य बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने नारदजीका मनोभाव समझ लिया और हँसते हुए स्नेहयुक्त मधुर वाणीमें अर्जुनसे इस प्रकार कहा।

बाभ्रव्य बोले—पाण्डुनन्दन! आपने नारदजीसे जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है। प्रत्येक मनुष्यके मनमें ऐसा सन्देह हो जाता है। इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे जो बात सुनी है, वही मैं आपको बताऊँगा। आजसे कुछ काल पहलेकी बात है, सम्पूर्ण यादवोंको आनन्दित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण महीसागरसङ्गमकी यात्रामें इधर आये थे। उनके साथ उग्रसेन, वसुदेव तथा बभ्रु, प्रद्युम्न आदि भी थे। भगवान्ने कुटुम्बीजनोंके साथ महीसागरसङ्गममें स्नान करके बहुत दान किये। पिण्डदान आदि करके देवपूजनके पश्चात् नारदजीकी भी पूजा की। तदनन्तर यादवोंकी सभामें महाराज उग्रसेन इस प्रकार बोले—'जगदीश्वर श्रीकृष्ण! मैं एक सन्देह पूछता हूँ, आप उसका समाधान करें। ये जो महाबुद्धिमान् नारदजी हैं, समस्त संसारमें इनकी ख्याति है। मैं जानना चाहता हूँ, ये अत्यन्त चपल क्यों हैं? क्यों वायुकी भाँति समस्त जगत्में चक्कर लगाया करते हैं? इन्हें कलह कराना इतना प्रिय क्यों है? तथा आपमें इनका अत्यन्त प्रेम कैसे है?'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! आपने जो पूछा है, वह सत्य है। मैं इसका कारण बतलाता हूँ। पूर्वकालमें प्रजापति दक्षने मुनिश्रेष्ठ नारदको शाप दिया था। ऐसा इसलिये हुआ कि सृष्टि-मार्गमें लगे हुए दक्षके कुछ पुत्रोंको नारदजीने अपने वैराग्यपूर्ण उपदेशोंसे विरक्त बनाकर वहाँसे अन्यत्र भेज दिया। यह घटना एक ही बार नहीं, दो बार हुई। यह सब देखकर दूसरे पुत्रोंके भी विचलित होनेसे रुष्ट होकर दक्षने शाप दिया—'नारद! तुम सदा संसारमें भ्रमण करते रहोगे, कहीं भी तुम्हारे ठहरनेके लिये स्थान न मिलेगा तथा तुम इधर-उधरकी चुगली खानेवाले होओगे।' ये दो शाप प्राप्त करके उन्हें दूर करनेमें समर्थ होकर भी नारद मुनिने ज्यों-के-त्यों स्वीकार कर लिये। यही साधुता है कि स्वयं समर्थ होकर भी दूसरोंके अपराध क्षमा कर दे। नारदजी पहले यह देख लेते हैं कि

अमुक दैत्य या राक्षस आदिका विनाशकाल आ पहुँचा है, तब वे उसकी कलह-भावना बढ़ाते हैं और चुगलीके लिये झूठ न बोलकर सच्ची बात बताया करते हैं, इसलिये वे

पापसे लिप्त नहीं होते। सर्वत्र भ्रमण करते रहनेपर भी इनका मन ध्येयसे विचलित नहीं होता, अतः भ्रमदोषसे ये भ्रान्त नहीं होते तथा मुझमें जो इनका अधिक प्रेम है, उसका भी कारण सुनिये। मैं देवराज इन्द्रद्वारा किये गये स्तोत्रसे दिव्यदृष्टिसम्पन्न श्रीनारदजीकी सदा स्तुति करता हूँ। वह स्तोत्र श्रवण कीजिये—

'जो ब्रह्माजीकी गोदसे प्रकट हुए हैं, जिनके मनमें अहङ्कार नहीं है, जिनका विश्वविख्यात चरित्र किसीसे छिपा नहीं है, उन देवर्षि नारदको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनमें अरति (उद्वेग), क्रोध, चपलता और भयका सर्वथा अभाव है, जो धीर होते हुए भी दीर्घसूत्री (किसी कार्यमें अधिक विलम्ब करनेवाले) नहीं हैं, उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जो कामना अथवा लोभवश झूठी बात मुँहसे नहीं निकालते और समस्त प्राणी जिनकी उपासना करते हैं, उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अध्यात्मगतिके तत्त्वको जाननेवाले, ज्ञानशक्तिसम्पन्न तथा जितेन्द्रिय हैं, जिनमें सरलता भरी है तथा जो यथार्थ बात कहनेवाले हैं, उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जो तेज, यश, बुद्धि, नय, विनय, जन्म तथा तपस्या सभी दृष्टियोंसे बढ़े हुए हैं, उन नारदजीको मैं नमस्कार क[illegible] हूँ। जिनका स्वभाव सुखमय, वेष सुन्दर तथा [illegible] उत्तम है; जो प्रकाशमान, पवित्र, शुभदृष्टिसम्पन्न [illegible] सुन्दर वचन बोलनेवाले हैं; उन नारदजीको मैं प्र[illegible] करता हूँ। जो उत्साहपूर्वक सबका कल्याण करते हैं, [illegible] पापका लेश भी नहीं है तथा जो परोपकार करनेसे अघाते नहीं हैं, उन नारदजीको नमस्कार करता हूँ [illegible] सदा वेद, स्मृति और पुराणोंमें बताये हुए धर्मका आ[illegible] लेते हैं तथा प्रिय और अप्रियसे रहित हैं, उन नारद[illegible] प्रणाम करता हूँ। जो समस्त सङ्गोंसे अनासक्त हैं, त[illegible] सबमें आसक्त हुए-से दिखायी देते हैं, जिनके मनमें [illegible] संशयके लिये स्थान नहीं है, जो बड़े अच्छे वक्ता हैं, [illegible] नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो किसी भी शा[illegible] दोषदृष्टि नहीं करते, तपस्याका अनुष्ठान ही जिनका ज[illegible] है, जिनका समय कभी भगवच्चिन्तनके बिना व्यर्थ [illegible] जाता और जो अपने मनको सदा वशमें रखते हैं, [illegible] श्रीनारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने तपके [illegible] श्रम किया है, जिनकी बुद्धि पवित्र एवं वशमें है, [illegible] समाधिसे कभी तृप्त नहीं होते, अपने प्रयत्नमें [illegible] सावधान रहनेवाले उन नारदजीको मैं नमस्कार करता [illegible] जो अर्थलाभ होनेसे हर्ष नहीं मानते और लाभ न हो[illegible] मनमें क्लेशका अनुभव नहीं करते, जिनकी बुद्धि स्थिर [illegible] आत्मा अनासक्त है, उन नारदजीको नमस्कार करता हूँ। [illegible] सर्वगुणसम्पन्न, दक्ष, पवित्र, कातरतारहित, कालज्ञ [illegible] नीतिज्ञ हैं, उन देवर्षि नारदको मैं भजता हूँ।'

नारदजीके इस स्तोत्रका मैं नित्य जप करता हूँ। इ[illegible] वे मुनिश्रेष्ठ मुझपर अधिक प्रेम रखते हैं। दूसरा कोई [illegible] यदि पवित्र होकर प्रतिदिन इस स्तुतिका पाठ करे तो दे[illegible] नारद बहुत शीघ्र उसपर अपना अतिशय कृपाप्रसाद प्र[illegible] करते हैं। राजन्! आप भी नारदजीके इन गुणोंको सुन[illegible] प्रतिदिन इस पवित्र स्तोत्रका जप करें, इससे वे मुनि आ[illegible] बहुत प्रसन्न होंगे।

बाभ्रव्य कहते हैं—श्रीकृष्णके मुखसे नारदजीके गुणोंको सुनकर राजा उग्रसेन बहुत प्रसन्न हुए और उ[illegible] बताये अनुसार उनका स्तोत्रपाठ भी किया। तदन[illegible] नारदजीकी पूजा करके तथा पर्याप्त दान देकर अपने ब[illegible] बान्धव एवं कुटुम्बी जनोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण द्वार[illegible]

पुरीको लौट गये। अर्जुन! तुम भी नारदजीके इन गुणोंका श्रवण करके श्रद्धामय होकर उनका पूजन करो।

बाभ्रव्यका यह वचन सुनकर अर्जुनको बड़ा विस्मय हुआ। उनके अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया और उन्होंने भक्तिपूर्वक नारदजीके चरणोंमें प्रणाम किया। तत्पश्चात् इस प्रकार कहा—'मुने! आपके मुखसे इस गुप्तक्षेत्रका माहात्म्य सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती, अतः पुनः उसका वर्णन कीजिये।

नारदजीने कहा—अर्जुन! पूर्वकालमें महायोगी अक्षपाद गौतम मुनि हो गये हैं, जो गोदावरी गङ्गाको यहाँ लाये थे और अहल्याके पति थे। वे बड़े शक्तिशाली थे। उन्होंने गुप्तक्षेत्रका माहात्म्य सुनकर और उसे सर्वोत्तम जानकर वहाँ योगसाधना करते हुए भारी तपस्या प्रारम्भ की। तदनन्तर महात्मा गौतमने योगसिद्धि प्राप्त करके इस तीर्थमें गौतमेश्वर नामसे प्रसिद्ध शिवलिङ्गकी स्थापना की। इस गौतमेश्वर लिङ्गको भलीभाँति नहलाकर उसपर चन्दनका आलेप करके उसे भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे पूजे और गुग्गुलकी धूप जलावे। ऐसा करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

अर्जुन बोले—देवर्षे! मैं योगके स्वरूपका तात्त्विक विवेचन सुनना चाहता हूँ, क्योंकि योगको समस्त उत्तम साधनोंसे भी उत्तम बताकर सब लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं।

नारदजीने कहा—कुरुश्रेष्ठ! मैं संक्षेपसे ही तुम्हें योगका तत्त्व बतलाता हूँ। इसके सुननेसे भी चित्त निर्मल होता है, फिर सेवन करनेसे तो कहना ही क्या है? चित्तकी वृत्तियोंको जो रोकना है, वही योगका तत्त्व कहलाता है। योगी पुरुष अष्टाङ्गकी विधिसे उसकी साधना करते हैं। यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्येय, ध्यान और समाधि—ये योगके आठ[1] अङ्ग हैं। इस प्रकार योग आठ अङ्गोंसे युक्त बताया गया है। उन आठोंमेंसे प्रत्येकका लक्षण क्रमशः सुनो, जिसके साधनसे साधकको योगकी प्राप्ति होती है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—ये पाँच 'यम' कहे गये हैं, इन सबका भी लक्षण सुने। सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मभाव रखकर सबके हितके लिये करता है, उसकी यह प्रवृत्ति 'अहिंसा' कही गयी है। वि वेदोंमें भी विधान किया गया है, जो स्वयं देखा गया सुना गया हो, अनुमान किया गया हो, अथवा अनुभवमें लाया गया हो, उसे दूसरोंको पीड़ा न देते यथार्थरूपसे वाणीद्वारा प्रकट करना 'सत्य' कहलाता अपने ऊपर आपत्ति पड़नेपर भी मन, वाणी और क्रिया किसी प्रकार भी दूसरोंका धन न लेना 'अस्तेय' कहा है। मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा मैथुनसे सर्वथा दूर र यह संन्यासियोंका 'ब्रह्मचर्य' है तथा ऋतुकालमें अपनी पत्नीके साथ केवल एक बार समागम करना तथा अन्य सम पूर्ण संयम रखना यह गृहस्थोंका 'ब्रह्मचर्य' है। मन, वाण शरीर और क्रियाद्वारा सब वस्तुओंका त्याग कर देना संन्यासियोंका 'अपरिग्रह' है तथा सब वस्तुओंका सं रखते हुए भी केवल मनसे उनका त्याग करना—उनके प्र ममता और आसक्तिका न होना—यह गृहस्थोंका 'अपरिग्र माना गया है। ये पाँच यम बताये गये हैं। अब पाँ नियमोंका श्रवण करो। शौच, सन्तोष, तप, जप औ गुरुभक्ति—ये पाँच[1] नियम हैं। अब इनका भी पृथक्-पृथ लक्षण श्रवण करो। शौच दो प्रकारका बतलाया जाता है—बाह्य और आभ्यन्तर। मिट्टी और जलसे जो शरीरकी शुद्धि की जाती है, वह 'बाह्य शौच' कहलाता है और मनकी शुद्धि को 'आन्तरिक शौच' कहते हैं। न्यायसे प्राप्त हुई जीविका या भिक्षा अथवा वार्ता (कृषि-वाणिज्य आदि) के द्वारा जो कुछ प्राप्त हो, उसीसे सदा सन्तुष्ट रहना 'सन्तोष' कहलाता है। अपने आहारको घटाते हुए साधक पुरुष जो चान्द्रायण आदि विहित तपका अनुष्ठान करता है, उसका नाम 'तप' है। वेदोंके स्वाध्याय तथा प्रणवके अभ्यास आदिको 'जप' कहा गया है। भगवान् शिव ही ज्ञानस्वरूप गुरु हैं, उनमें जो भक्ति की जाती है, वही 'गुरुभक्ति' मानी गयी है। इस प्रकार नियमों और यमोंका भलीभाँति साधन करके विद्वान् पुरुष

---

१. पातञ्जलयोगदर्शनके अनुसार योगके आठ अङ्गोंमें आसनकी भी गणना की गयी है, ध्येय तो साध्य है। अतः साधनका अङ्ग नहीं हो सकता; इसलिये वहाँ साध्यको अष्टाङ्गोंमें नहीं लिया गया है। यम-नियम आदि अन्य सात साधन उसमें भी वे ही हैं, जो यहाँ स्कन्दपुराणमें दिये गये हैं।

१. योगदर्शनमें शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान—ये पाँच नियम कहे गये हैं। यहाँ भी तीन तो वैसे ही हैं। स्वाध्यायके स्थानमें यहाँ जप लिया गया है। परंतु जपके लक्षणमें स्वाध्यायको ग्रहण करके दोनोंकी एकता मान ली गयी है। शिवकी भक्ति ही यहाँ गुरुभक्ति है, अतः यह भी ईश्वर-प्रणिधानसे भिन्न नहीं है।

प्राणायामके लिये सन्नद्ध होवे, अन्यथा वह योगकी सिद्धि नहीं कर सकता; क्योंकि जिसका शरीर बाहर और भीतरसे शुद्ध नहीं हुआ है, उसमें वायुका महान् प्रकोप हो जाता है और वायुके प्रकोपसे शरीरमें कोढ़ हो जाती है । इतना ही नहीं, वह जडता आदिका भी उपभोग करता है (लकवा आदि मार जानेसे उसका शरीर जड हो जाता है), इसलिये बुद्धिमान् पुरुष शरीरको शुद्ध करके ही दूसरे साधनके लिये प्रयोग करे । पाण्डुनन्दन ! अब मैं प्राणायामका लक्षण बतलाता हूँ, सुनो । प्राण और अपान वायुका निरोध 'प्राणायाम' कहलाता है । विद्वान् पुरुषोंने उसे तीन प्रकारका बतलाया है—लघु, मध्यम और उत्तरीय (उत्तम) । लघु प्राणायाम बारह मात्राका होता है । आँखको बंद करने और खोलनेमें जितना समय लगता है, वह एक मात्रा है । लघुसे दूना अर्थात् चौबीस मात्रावाला मध्यम प्राणायाम बताया गया है । त्रिगुण अर्थात् छत्तीस मात्राका उत्तम प्राणायाम माना गया है । प्रथम अर्थात् लघु प्राणायामसे स्वेद (पसीने) को जीते, मध्यमसे कम्पको तथा तृतीय (उत्तम) प्राणायामसे विषादको जीते । इस प्रकार क्रमशः इन तीनों दोषोंपर विजय प्राप्त करे । किसी सुन्दर आसनपर सुखपूर्वक विराजमान हो पद्मासन[1] लगाकर रेचक, पूरक और कुम्भक भेदसे त्रिविध प्राणायामका अभ्यास करे । प्राणोंका उपरोध (संयम) करनेसे उस साधनका नाम 'प्राणायाम' है । जैसे आगमें धौंके जानेपर पर्वतीय धातुओंकी मैल जल जाती है, उसी प्रकार प्राणायाम-से इन्द्रियजनित सम्पूर्ण दोष दग्ध हो जाते हैं । सौ कपिला गायोंका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही प्राणायामसे भी मिल जाता है । इसलिये योगज्ञ पुरुष सदैव प्राणायाम करे । प्राणायामसे शान्ति आदि दिव्य गुण सिद्ध होते हैं । शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद—ये क्रमशः प्रकट होने-वाले दिव्य गुण हैं । स्वाभाविक और आगन्तुक पापोंकी निवृत्ति तथा उनकी वासनाओंका शमन यह 'शान्ति' नामक प्रथम गुण है । मन और बुद्धिके द्वारा लोभ और मोह दोषोंका पूर्णतया निराकरण करके जो शान्तिकी प्राप्ति है, उसीको इस लोकमें 'प्रशान्ति' कहते हैं । भूत, भवि दूरस्थ तथा अदृश्य पदार्थोंका यहाँ भलीभाँति ज्ञान होना 'दीप्ति' है । सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी प्रसन्नता तथा बुद्धि प्राणोंकी भी निर्मलताको 'प्रसाद' कहा गया है । इस प्र ये चार फल प्राणायामके द्वारा प्राप्त करने योग्य हैं । फलवाले प्राणायामका योगी पुरुष सदैव अभ्यास करे । सदा सेवन करनेपर सिंह, व्याघ्र और हाथी भी मृदु (कोमलता एवं नम्रता) को प्राप्त होते हैं, उसी प्र प्राणायामद्वारा साधित (संयममें लाया हुआ) प्राण भी व हो जाता है । यह प्राणायाम बताया गया । अब प्रत्याहार वर्णन सुनो । विषय-सेवनमें लगे हुए चित्तको विषयों ओरसे लौटानेका जो प्रयत्न है, उसे 'प्रत्याहार' बताया गया चित्तको संयममें रखना ही प्रत्याहारका मुख्य लक्षण इस प्रकार प्रत्याहार बताया गया । अब धारणाका लक्ष सुनो । जैसे जल पीनेकी अभिलाषा रखनेवाले लोग पत्र नाल आदिके द्वारा धीरे-धीरे जल पीते हैं, उसी प्रकार ये पुरुष धारणाद्वारा साधित वायुका धीरे-धीरे पान करता है गुदा, लिङ्ग, नाभि, हृदय, तालु तथा भ्रूमध्यभाग (ललाट में क्रमशः चतुर्दल, षड्दल, दशदल, द्वादशदल, षोडश तथा द्विदल कमलका चिन्तन करके उन सबमें प्राणवायु धारणा करे और धीरे-धीरे एक स्थानसे समेटकर दूसरे स्था ऊपर उठाते हुए उस प्राणको मस्तकके भीतर ब्रह्मरन्ध्र स्थापित कर दे । गुदा आदि छः अङ्ग और चतुर्दल आ छः चक्र—इन बारह स्थानोंमें प्राणवायुकी धारणा त सङ्कोच करनेसे सब मिलकर बारह प्राणायाम होते हैं । इसी 'धारणा' कहा गया है । इन धारणाओंको सिद्ध कर लेने योगी पुरुष अक्षर ब्रह्मकी समताको प्राप्त हो जाता है धारणामें स्थित हुए पुरुषके ये जो ध्येयतत्त्व हैं, उस लक्षण सुनो । अर्जुन ! ध्येयतत्त्व बहुत प्रकारका है, उन कहीं अन्त नहीं मिलता । कोई शिवका, कोई विष्णुका, को सूर्य और ब्रह्माका तथा कोई महादेवीका ध्यान करते हैं । जिसका ध्यान करता है, वह उसीमें लीन होता है, इसलि सदा कल्याण करनेवाले पञ्चमुख भगवान् शङ्करका ध्य करना चाहिये । भगवान् शिव वृषभकी पीठपर पद्मासन विराजमान हैं, उनकी अङ्गकान्ति गौर है, उनके दस हाथ हैं मुखपर अत्यन्त प्रसन्नता छा रही है तथा वे ध्यानमग्न हो

---

१. पद्मासन लगानेकी विधि यह है—दायीं जाँघपर बायाँ चरण रक्खे और बायीं जाँघपर दायाँ चरण रक्खे । फिर बायें हाथको पीठकी ओरसे ले जाकर दायें चरणका अँगूठा दृढ़ताके साथ पकड़ ले । इसी प्रकार दायें हाथको पीछेकी ओरसे ले जाकर बायें चरणका अँगूठा पकड़ ले । फिर गर्दन झुकाकर अपनी ठोढ़ीको छातीमें सटा ले और नेत्रोंसे केवल नासिकाके अग्रभागको ही देखे । यह योगाभ्यासी पुरुषोंके उपयोगमें आनेवाला पद्मासन कहलाता है, यह रोगोंका नाश करनेवाला है ।

हैं। इस प्रकार तुम्हारे लिये 'ध्येय'का स्वरूप बताया गया। इसका सदा ध्यान करना चाहिये। 'ध्यान' का लक्षण इस प्रकार है। धारणामें स्थित हुआ साधक आधे पलके लिये भी अपने ध्येय (इष्टदेव) से भिन्न वस्तुका चिन्तन न करे। इस प्रकार इस दुर्गम भूमिकामें स्थित होकर योगवेत्ता पुरुष कुछ भी चिन्तन न करे—यही 'समाधि' कहलाती है। समाधिका ठीक-ठीक लक्षण बता रहा हूँ, सुनो। जो शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध तथा रूपसे सर्वथा रहित है, उस परम पुरुष परमात्माको प्राप्त हुआ योगी 'समाधिस्थ' कहा गया है। समाधिमें स्थित हुआ मनुष्य कभी विघ्नोंसे अभिभूत नहीं होता। भारी-से-भारी दुःख क्यों न आ जाय, वह उससे भी विचलित नहीं होता। उसके कानोंके पास यदि सैकड़ों शङ्ख फूँके जायँ और बहुतसे नगाड़े पीटे जायँ तो भी वह बाहरके शब्दको नहीं सुनता। कोड़ोंके प्रहारसे उसे घायल कर दिया जाय, आगसे उसका शरीर जल जाय तथा सर्दीसे भरे हुए भयङ्कर स्थानमें उसे बैठा दिया जाय, तो भी वह बाहरके स्पर्शका अनुभव नहीं करता। फिर वैसे पुरुषके लिये बाहरी रूप, गन्ध और रसके विषयमें तो कहना ही क्या है ? जो इस प्रकार आत्माका साक्षात्कार करके पुनः समाधिको प्राप्त करता है, उसे भूख और प्यास कभी बाधा नहीं पहुँचा सकती। निश्चल समाधिको पाकर मनुष्य जिस सुखका अनुभव करता है, वह न तो स्वर्गलोकमें है और न पातालमें ही है; फिर मनुष्यलोकमें तो वह हो ही कहाँ सकता है।

कुरुनन्दन ! इस प्रकार योगमार्गमें आरूढ़ हुए पुरुषके लिये भी पाँच उपसर्ग प्राप्त होते हैं, जो बड़े ही कटु हैं—उनका परिचय सुनो। प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त—ये ही पाँच उपसर्ग हैं। सम्पूर्ण शास्त्रोंकी प्रतिभा (ज्ञान) का हो जाना ही 'प्रातिभ' उपसर्ग है। यह है तो सात्त्विक परंतु इसके कारण जिसके हृदयमें अहङ्कार आ जाता है, इससे वह योगी अपनी स्थितिसे नीचे गिर जाता है। हजारों योजन दूरसे भी शब्दको सुन लेना 'श्रावण' नामक उपसर्ग है। यह दूसरा विघ्न है। यह भी सात्त्विक ही है परंतु इसके कारण भी जो गर्व करता है, वह नष्ट हो जाता है (साधनासे गिर जाता है)। जिससे देवताओंकी आठ योनियोंको देखता है, उस शक्तिका प्राप्त होना 'दैव' उपसर्ग है। यह भी सात्त्विक दोष है, इससे भी घमण्ड होनेपर साधकका विनाश होता है। जैसे जलके भँवरमें डूबा हुआ मनुष्य व्याकुल होता है, उसी प्रकार सहसा प्रकट हुए विविध विज्ञानके आवर्तमें जो चित्तकी व्याकुलता होती है उसका नाम 'आवर्त' है। यह राजस दोष है, जो बड़ा भयङ्कर है। जब योगीका मन अनेक प्रकारके दोषोंसे आक्रान्त हो समस्त आधारोंसे भ्रष्ट होनेके कारण अवलम्बशून्य होकर भटकने लगता है तब उसे 'भ्रम' नामक दोष बताया जाता है। यह तामस दोष है। इन अत्यन्त घोर उपद्रवोंसे योगका नाश हो जानेके कारण सम्पूर्ण देवयोनियाँ बार-बार आवर्तन करती (आवागमनमें पड़ी रहती) हैं।

इसलिये योगी मनोमय[1] श्वेत कंबलका आवरण डालकर परब्रह्म परमात्मामें चित्तको स्थिर करके निरन्तर उन्हींका चिन्तन करे। सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले योगीको सदा सात्त्विक आहारका सेवन करना चाहिये। राजस और तामस आहारोंसे योगीको कभी सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। स्वधर्म-पालनमें लगे हुए श्रद्धालु जितेन्द्रिय श्रोत्रिय महात्माओंके यहाँ योगीको भिक्षा माँगनी चाहिये। भिक्षामें मिले हुए यवान्न, मट्ठा, दूध, जौकी लपसी, पका हुआ फल-मूल अथवा कन, तिलकी खली या सत्तू—ये सब पवित्र आहार हैं, जो योगियोंको सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं।

योगका साधक विभिन्न लक्षणोंसे अपनी मृत्युका समय जानकर कालको वञ्चित करनेके लिये एकाग्रचित्त हो योग-तत्पर हो जाय। अब मैं उन निमित्तों (लक्षणों) को बतलाता हूँ, जिनसे योगवेत्ता पुरुष अपनी मृत्युको जान लेता है। लाल चमड़ा अथवा लाल वस्त्र धारण किये हुए हँसती-गाती हुई कोई स्त्री स्वप्नमें जिस पुरुषको दक्षिण दिशाकी ओर ले जाय, वह जीवित नहीं रहता। स्वप्नमें किसी नंगे संन्यासीको हँसते और उछलते-कूदते देखकर यह समझ लेना चाहिये कि उसके रूपमें अपनी मृत्यु आ गयी है। जो स्वप्नमें रीछ और वानरसे जुते हुए रथपर बैठकर गाता हुआ दक्षिण दिशाकी ओर जाता है अथवा कीचड़ या गोबरमें डूबता है, वह जीवित नहीं रहता। स्वप्नमें बिना जलकी नदीको केश, अङ्गार, भस्म अथवा सर्पोंमेंसे किसी एकके द्वारा भरी हुई देखकर मनुष्य जीवित नहीं रहता। यदि विकराल, भयङ्कर तथा क्रूर स्वभाववाले मनुष्य हाथमें हथियार लिये स्वप्नमें पत्थरोंसे मारें तो मनुष्य तत्काल

१. मनसे यह भावना करे कि मेरे सब ओर श्वेत कंबलका आवरण पड़ा है, मैं अकेला हूँ, जगत्की कोई विघ्न-बाधा मेरे पास-तक नहीं पहुँच सकती।

मृत्युको प्राप्त हो जाता है। सूर्योदयकालमें रोती हुई गीदड़ी जिसके सामने होकर दाहिने अथवा बायें चली जाती है, वह भी शीघ्र मृत्युको प्राप्त हो जाता है। जो दीपके बुझनेकी गन्धको नहीं जानता, रातमें रक्तवमन करता है तथा दूसरेके नेत्रमें अपना प्रतिबिम्ब नहीं देख पाता, वह जीवित नहीं रहता। आधी रातमें इन्द्रधनुष और दिनमें तारागणोंको देखकर शास्त्र-विश्वासी पुरुष यह मान ले कि उसकी आयु क्षीण हो गयी है। जिसकी नाक टेढ़ी हो जाय, कानोंमें नीचाई-ऊँचाई आ जाय तथा बायीं आँख सदा बहती रहे; उसकी आयु समाप्त हो गयी है। जब मुँह कुछ-कुछ लाल हो जाय और जीभ काली पड़ जाय, तब विद्वान् पुरुषको यह समझ लेना चाहिये कि अपनी मृत्यु समीप आ गयी है। जो स्वप्नमें ऊँट और गदहेकी सवारीसे दक्षिण दिशाकी ओर जाता है तथा जो अपने दोनों कान बंद करके आवाज नहीं सुन पाता; वह जीवित नहीं रहता है। स्वप्नमें जो गड्ढेमें गिर जाय और उसके निकलने-का दरवाजा बंद कर दिया जाय, जिससे वह फिर उठ न सके; जिसकी स्वच्छ दृष्टि भी लाल हो जाय, जो स्वप्नमें अग्नि-प्रवेश करके फिर वहाँसे न निकले, इसी तरह जलमें प्रवेश करके वहाँसे न निकले, तो वही उसके जीवनका अन्तिम काल है। जो रात या दिनमें दुष्ट भूतोंद्वारा मारा जाता है तथा जिसकी प्रकृतिमें कोई विकार आ गया है, उसके निकट ही यमराज और काल मौजूद हैं। जो भक्त होकर भी देवता, गुरु, पिता-माता तथा ज्ञानी पुरुषोंकी निन्दा और अवहेलना करता है, वह जीवित नहीं रहता है।

योगवेत्ता पुरुष इस प्रकार मृत्युसूचक विपरीत लक्षणों-को देखकर उत्तम धारणाका आश्रय ले समाधिमें स्थिर हो जाय। यदि वह उस मृत्युको नहीं चाहता तो उसे वह नहीं प्राप्त होती अथवा यदि मुक्तिकी इच्छा हो तो उस मृत्युको ब्रह्मरन्ध्रमें छोड़ दे। इस प्रकार विमुक्त हुए शरीरमें भी जो उपसर्ग योगीको प्राप्त होते हैं, उनके नाम सुनो। ईशान, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, इन्द्र, चन्द्र, प्रजापति तथा ब्रह्मा—इनसे सम्बन्ध रखनेवाली आठ लोकोंमें क्रमशः आठ सिद्धियाँ होती हैं, जो इस प्रकार हैं—पार्थिवी, जलमयी, तैजसी, वायु-सम्बन्धिनी, आकाशसम्बन्धिनी, मानसी, अहङ्कारोद्भवा तथा बुद्धिजा। इनमें प्रत्येकके आठ-आठ भेद हैं

जाती है। ऐसा किस प्रकार होता है, सो सुनो होना, पतला होना, बालक बन जाना, बूढ़ा हो हो जाना, भिन्न-भिन्न जातिके जीवोंके रूपों [illegible] करना, एक ही जातिमें भी अनेक रूप ग्रहण [illegible] पार्थिव अंशके बिना ही केवल चार तत्त्वोंसे शरी[illegible] करना—ये आठ पार्थिवी सिद्धियाँ हैं, जो [illegible] पृथ्वीतत्त्वपर विजय प्राप्त होनेके बाद प्रकट हो[illegible]

जलतत्त्वपर विजय होनेके पश्चात् मनुष्य [illegible] भाँति जलमें निवास करता है। बिना किसी पात्रा[illegible] को पी सकता है, उसे सर्वत्र जलकी प्राप्ति [illegible] सूखे फलको भी हरा और रसीला कर सकता है। जलको छोड़कर केवल तीन भूतोंसे शरीर धारण[illegible] नदियोंको हाथमें रख सकता है, उसके शरीरमें नहीं होता तथा उसकी बड़ी सुन्दर कान्ति हो[illegible] प्रकार ये आठ नूतन और आठ पहलेकी सिद्धियाँ राक्षसलोकमें मानी गयी हैं।

अग्नितत्त्वपर अधिकार हो जानेपर देहसे[illegible] करना, अग्निके तापका भय दूर हो जाना, स[illegible] भस्म कर डालनेकी शक्तिका होना, पानीमें आ[illegible] हाथसे आगको उठा लेना, स्मरणमात्रसे किसीक[illegible] देना, आगसे जलकर भस्म हुए पदार्थका पुन[illegible] देना तथा केवल दो महाभूत वायु और आकाश[illegible] शरीरको धारण करना—ये आठ तैजस सिद्धि[illegible] की सोलह सब मिलकर चौबीस सिद्धियाँ या[illegible] होती हैं।

मनके समान गमनशक्तिका होना, प्र[illegible] प्रवेश करना, पर्वत आदि बड़ी भारी वस्तुओं[illegible] पूर्वक ढोना, हल्का होना, भारी हो जाना[illegible] वायुको पकड़ लेना, अङ्गुलिके अग्रभागके[illegible] पृथ्वीको हिला देना तथा एकमात्र आकाश[illegible] को धारण करना—ये वायुसम्बन्धिनी [illegible] लोकमें हैं। पहलेकी चौबीस और आठ नूतन बत्तीस सिद्धियाँ गन्धर्वलोकमें हैं।

अपनी छायाको मिटा देना, इन्द्रियोंका सदा आकाशमें चलना, इन्द्रिय और मन[illegible]

प्राप्त होनेवाली तथा पहलेकी बत्तीस कुल चालीस सिद्धियाँ इन्द्रलोकमें हैं।

इच्छाके अनुरूप वस्तुओंका प्राप्त होना, जहाँ इच्छा हो वहीं निकल जाना, सब प्रकारकी शक्तियोंका होना, समस्त गोपनीय वस्तुओंको देखना तथा समस्त संसारकी घटनाओंको देखना आदि आठ सिद्धियाँ मानसी हैं—ये तथा पहलेकी चालीस कुल अड़तालीस सिद्धियाँ चन्द्रलोकमें मानी गयी हैं।

काटना, तपाना, छेदना, संसारको बदल डालना, समस्त प्राणियोंको प्रसन्न कर देना तथा मृत्युकालपर विजय पाना आदि आठ अहङ्कारोद्भवा तथा पहलेकी अड़तालीस, कुल छप्पन सिद्धियाँ प्राजापत्यलोकमें हैं।

संकेतमात्रसे ही संसारकी सृष्टि कर देना, सबपर अनुग्रह करना, प्रलयका अधिकार प्राप्त कर लेना, अन्य लोगोंके चित्तमें प्रवेश करके उसे प्रेरित करना, जिसकी कहीं समता नहीं ऐसी वस्तु प्रकट कर देना, चित्रलिखित वस्तुको प्रत्यक्ष प्रकट कर देना, अशुभको शान्त कर देना तथा कर्तृत्वशक्तिसे सम्पन्न होना—ये आठ बुद्धिजनित सिद्धियाँ तथा पहलेकी छप्पन मिलाकर कुल चौसठ सिद्धियाँ ब्रह्मलोकमें विद्यमान हैं।

यह गोपनीय रहस्य मैंने तुमसे प्रकट किया है। ये सब सिद्धियाँ जीते-जी अथवा देह-भेद होनेपर योगीको प्राप्त होती हैं। परंतु इनके द्वारा सदैव पतनका भय बना रहता है। इसलिये योगीको इन सिद्धियोंके प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। इन सब सिद्धिजनक गुणोंका निवारण करके सदा योगसाधनामें लगे रहनेवाले योगीको ऐसी आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, जो योगमें भलीभाँति सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व तथा कामावसायिता। ये आठ सिद्धियाँ माहेश्वरपदमें स्थिति सूचित करती हैं। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म हो जाना 'अणिमा' शक्ति है। अत्यन्त शीघ्रतासे कोई काम करना 'लघिमा' है। समस्त लोकसे पूजनीय पदकी प्राप्ति होनेसे 'महिमा' मानी गयी है। 'प्राप्ति' नामक सिद्धि वह है, जब कि योगीके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं रह जाता है। सर्वत्र व्यापक होनेके कारण उसमें 'प्राकाम्य' नामक सिद्धिका उदय माना जाता है। सिद्ध योगी जिससे ईश्वरतुल्य हो जाता है, वह 'ईशित्व' नामक सिद्धि है। सबको वशमें करनेके कारण उसमें 'वशिता' नामक उत्तम सिद्धि मानी गयी है। जहाँ इच्छा हो वहीं पहुँच जाना 'कामावसायिता' नामक सिद्धि है। ये समस्त सिद्धियाँ ईश्वरपदको प्राप्त हुए योगीमें प्रकट होती हैं। इसलिये वह न तो जन्म लेता है, न बढ़ता है और न मृत्युको ही प्राप्त होता है। ऐसा योगी मुक्त कहा गया है। जो इस प्रकार मुक्ति पाता है, उसका आत्मा परमात्माके साथ उसी प्रकार एक हो जाता है, जैसे जलमें डाला हुआ जल परस्पर एकताको प्राप्त हो जाता है। योगका ऐसा फल जानकर योगी पुरुष सदा योगका अभ्यास करे। निर्मल योगीजन यहाँ योगसिद्धिके लिये कुछ उपमाएँ दिया करते हैं। जैसे सूर्यकान्तमणि चन्द्रमाकी किरणोंके संयोगसे अथवा चन्द्रकान्तमणिके सम्पर्कसे अग्नि प्रकट नहीं करता अपितु अकेला होनेपर ही सजातीय सूर्यकिरणके संयोगसे वह आग प्रज्वलित करता है, उसी प्रकार योगीकी भी उपमा है। योगी भी तभी सिद्धि लाभ करता है, जब वह प्रतिबन्धकोंसे दूर रहकर अनुकूल साधन-सामग्रीके साथ अकेला रहकर साधनमें संलग्न होता है। जैसे चिड़िया, चूहा और नेवला घरमें स्वामीकी भाँति निवास करते हैं और घर गिर जानेपर अन्यत्र चले जाते हैं, किंतु उनके मनको इसके लिये दुःख नहीं होता। यही उपमा योगीके लिये भी है। उसको भी देह-गेहमें ममता नहीं रखनी चाहिये। जैसे चींटी या दीमक अपने बहुत छोटे मुखाग्रसे थोड़ी-थोड़ी मिट्टी जमा करके मिट्टीका ढेर लगा देते हैं, यही उपदेश योगीके लिये भी है। योगी निरन्तर थोड़ी-थोड़ी साधनशक्तिका सञ्चय करते हुए एक दिन महती योगशक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। पत्र, पुष्प और फलसे भरे हुए वृक्षको पशु, पक्षी और मनुष्य आदि नष्ट कर देते हैं। इस रहस्यको समझकर योगी पुरुष सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। सारांश यह कि यदि योगी भी सिद्धिका चमत्कार प्रकट करने लगे तो संसारके लोग उसे अपनी साधनासे भ्रष्ट कर देंगे। अतः उसे गुप्त रहकर ही साधना करनी चाहिये। हिरनके बच्चेके सिरपर जब पहले सींग उगते हैं तो वे तिलकके समान दिखायी देते हैं और धीरे-धीरे बढ़कर बहुत बड़े हो जाते हैं। इस बातको लक्ष्य करके योगी उस हिरनके सींगके साथ-साथ यदि बढ़ने लगे (धीरे-धीरे अपनी साधना बढ़ाता रहे) तो वह सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। मनुष्य जल या तेल आदि द्रव पदार्थोंसे भरे हुए पात्रको लेकर पृथ्वीसे बहुत ऊँचे मार्गपर चढ़

जाता है, यह देखकर भी क्या योगी पुरुषोंको अपने कर्तव्यका ज्ञान नहीं होता ? उसको भी चाहिये कि वह अत्यन्त सावधान होकर योगके उच्च शिखरपर आरोहण करे।

वही घर है, जहाँ निवास हो; वही भोजन है, जिससे जीवनकी रक्षा हो। जिससे प्रयोजन सिद्ध हो और जो स्वयं ही योगसिद्धिमें सहायक हो, वैसे ही ज्ञानकी योगी उपासना करे। वही उसके लिये कार्यसाधक हो सकता है। नाना प्रकारके ज्ञानका जो अधिक संग्रह है, वह योगकी साधनामें विघ्नकारक ही होता है। जो 'यह जानने योग्य है, यह जानने योग्य है' ऐसा सोचते हुए बहुविध ज्ञानके लिये प्यासा फिरता है, वह एक हजार कल्पोंमें भी ज्ञेय वस्तुको नहीं प्राप्त कर सकता। आसक्ति छोड़कर, क्रोधको जीतकर परिमित आहारका सेवन करते हुए जितेन्द्रिय होवे और बुद्धिके द्वारा इन्द्रियद्वारोंको बंद करके मनको ध्यानमें लगावे। सात्त्विक आहारका सेवन करे; ऐसे आहारका नहीं, जिससे उसका चित्त काबूके बाहर हो जाय। चित्तको बिगाड़नेवाले आहारका सेवन करनेवाला मनुष्य रौरव नरकका प्रिय अतिथि होता है। वाणी दण्ड है, कर्म दण्ड है और मन दण्ड है। ये तीनों दण्ड जिसके अधीन हैं; वह 'त्रिदण्डी' यति माना गया है। जब सामने आया हुआ मनुष्य अनुरक्त हो जाय, परोक्षमें गुणोंका कीर्तन होने लगे और कोई भी जीव उससे भयभीत न हो; तब यह सब योगीके लिये सिद्धिसूचक लक्षण बताया जाता है। लोलुपताका न होना, नीरोग रहना, निष्ठुरताका अभाव होना, सुन्दर गन्ध प्रकट होना, मल और मूत्रका कम हो जाना, शरीरमें कान्ति, मनमें प्रसन्नता तथा वाणीमें कोमलता—ये योगसिद्धिके प्रारम्भिक चिह्न हैं। जो एकाग्रचित्त, ब्रह्मचिन्तनपरायण, प्रमादशून्य, पवित्र, एकान्तप्रेमी और जितेन्द्रिय है; वह महामना योगी इस योगमें सिद्धि प्राप्त करता है और उस योगके प्रभावसे मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जिसका चित्त मोक्षमार्गमें आकर परब्रह्म परमात्मामें संलग्न हो सुखके अपार सिन्धुमें निमग्न हो गया है, उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी माता कृतार्थ हो गयी, तथा उसे पाकर यह सारी पृथ्वी भी सौभाग्यवती हो गयी।* जिसकी बुद्धि अत्यन्त शुद्ध है, जो मिट्टीके ढेले और सुवर्णमें समान भाव रखता है, समस्त प्राणियोंमें सम भावसे निवास करता है; वह यत्नशील साधक अपनी साधना पूर्ण करके उस सर्वोत्कृष्ट सनातन एवं अविनाशी पदको प्राप्त होता है, जहाँ पहुँच जानेपर कोई भी मनुष्य पुनः इस संसारमें जन्म नहीं लेता।

अर्जुन! यह योगका रहस्य मैंने तुमसे बतलाया है। गौतमने ऐसे ही योगको प्राप्त किया और उन्होंने ही इस गौतमेश्वरलिङ्गको स्थापित किया है, जो कि दर्शन करनेवाले मनुष्यके समस्त कलिकलुषका विनाश करनेवाला है। जो पुरुष आश्विन मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको रात्रिमें महान् उपहार समर्पित करके इस लिङ्गका पूजन करता है, वह पापरहित हो उसी लोकमें जाता है, जहाँ इस समय महामुनि गौतम विराजमान हैं। कुन्तीनन्दन ! इस गुप्तक्षेत्रका माहात्म्य मैंने तुम्हें संक्षेपसे बताया है। जो यह सब सुनता है वह शुद्धचित्त हो जाता है। अब और क्या कहूँ ?

महीसागरसङ्गमकी श्रेष्ठता तथा उसके गुप्त-क्षेत्र होनेका कारण

अर्जुनने पूछा—नारदजी ! इस तीर्थको गुप्तक्षेत्र क्यों कहते हैं ? जिसका इतना महान् प्रभाव सुना गया है, वह गुप्त कैसे हुआ ?

नारदजी बोले—अर्जुन ! इस क्षेत्रके गुप्त होनेका जो कारण है उसके विषयमें एक बहुत प्राचीन कथा है, उसको श्रवण करो। यह क्षेत्र पूर्वकालमें शापवश गुप्त हो गया था। एक समय किसी निमित्तसे सब तीर्थोंके अधिदेवता एकत्र हो ब्रह्माजीको प्रणाम करनेके लिये उनकी सभामें गये। सब तीर्थोंको आया हुआ देखकर ब्रह्माजी अपने समस्त सभासदोंके साथ उठकर खड़े हो गये। उनके नेत्र आश्चर्यसे खिले हुए थे। भगवान् ब्रह्माने हाथ जोड़कर सब तीर्थोंको प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'तीर्थवरो ! आज आप सब लोगोंके पदार्पणसे पवित्र होकर हमारा स्थान सफल हो गया। हम सब देवता भी आपके दर्शनसे बहुत

* कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च तेन। विमुक्तिमार्गे सुखसिन्धुमग्नं लग्नं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥ (स्क० मा० कुमा० ५२ । ३८)

पवित्र हो गये । तीर्थोंका दर्शन, स्पर्श तथा स्नान सब परम कल्याणकारक है । बड़े-बड़े पापोंसे भरे हुए जो भयङ्कर एवं अत्यन्त निर्दय मनुष्य हैं, वे भी तीर्थमें पवित्र हो जाते हैं; फिर जो धर्मपरायण हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है ?' यों कहकर ब्रह्माजीने अपने पुत्र पुलस्त्यको आज्ञा दी—'बेटा ! तुम तीर्थोंके लिये शीघ्र ही अर्घ्य ले आओ, जिससे मैं पूजन करूँ । जब अर्घ्य देने योग्य असंख्य पुरुष एकत्र हो जायँ, तब पूजनकालमें उन सबमेंसे श्रेष्ठ एक पुरुषको एक अर्घ्य प्रदान करना चाहिये ।'

पिताकी यह आज्ञा पाकर पुलस्त्यजी बड़े वेगसे एक उत्तम अर्घ्यपात्र सजाकर ले आये । ब्रह्माजीने उसे हाथमें लेकर सब तीर्थोंसे कहा—'आप सब लोग मिलकर किसी एक मुख्य तीर्थका नाम बतलावें, मैं उसीको अर्घ्य देना चाहता हूँ। ऐसा करनेसे मुझे अन्यायरूपी दोष नहीं लगेगा ।'

तीर्थ बोले—प्रभो ! हम किसी प्रकार भी आपसमें श्रेष्ठताका निर्णय नहीं कर पाते । इसीलिये आपके पास आये हैं । आप ही हममेंसे जो श्रेष्ठ हो उसको समझकर अर्घ्य दे दीजिये ।

ब्रह्माजी बोले—मैं आपलोगोंमेंसे किसी एककी श्रेष्ठताको नहीं समझ पाता । आपलोगोंको नमस्कार है । आप सभी अपार महिमासे सम्पन्न हैं । अतः स्वयं ही अपनेमेंसे श्रेष्ठ पुरुषको बतलावें ।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर जब उनमेंसे कोई भी बहुत देर-तक कुछ न बोला, तब महीसागरसङ्गम तीर्थने कहा—'चतुरानन ! आप शीघ्र मुझे यह अर्घ्य प्रदान करें; क्योंकि दूसरा कोई भी तीर्थ मेरी करोड़वीं कलाके सामने भी पूरा नहीं पड़ता । पूर्वकालमें महाराज इन्द्रद्युम्नकी तपस्यासे तप-कर यह सर्वतीर्थमयी समूची पृथ्वी ही मही नामवाली नदी हो गयी । वह सब तीर्थोंसहित मुझसे आकर मिली है, इसलिये मैं तीनों लोकोंमें सर्वतीर्थमय होकर प्रसिद्ध हूँ ।'

तीर्थराज महीसागरसङ्गमके ऐसा कहनेपर अन्य सब तीर्थ मौन रहे । देखें ब्रह्माजी हमारे विषयमें क्या कहते हैं, यह सोचकर कोई कुछ न बोले । तब ब्रह्माजीके ज्येष्ठ पुत्र धर्मने अपनी दाहिनी भुजा उठाकर इस प्रकार कहा—'अहो!

बड़े कष्टकी बात है, इस तीर्थराज महीसागरसङ्गमने मोह बड़ी कुत्सित बात कह डाली है । साधु पुरुषोंको उचित कि वे अपनेमें अच्छे गुण होते हुए भी उनका अपने मुखसे बखान न करें । जो भरी सभामें दूसरोंपर आ करते हुए अपने गुणोंका वर्णन करता है, वह रजोगु अहङ्कारी तथा निन्दित है । इसलिये यह तीर्थ इन सब गुण रहते हुए भी अपने अहङ्कारके कारण विख्यात न होगा इसका स्वरूप विध्वस्त-सा हो जायगा ।'

धर्मदेवके ऐसा कहनेपर सब ओर हाहाकारका शब्द गूँ उठा । तब योगीश्वर स्कन्दजी, तथा मैं दोनों शीघ्रतापूर्व वहाँ जा पहुँचे । कार्तिकेयने उस देवसमाजमें धर्मसे इस प्रक कहा—'धर्म ! तुमने धृष्टताके कारण जो यह शाप दे डाला है वह अनुचित ही हुआ है । कोई भी बतावे तो सही कि तीन लोकोंमें विद्यमान समस्त तीर्थोंमेंसे कौन-सा ऐसा तीर्थ है जिससे यह महीसागरसङ्गम अर्घ्य पानेका अधिकारी नहीं है इस तीर्थराजने अपने जिस गुणका वर्णन किया है, व सब इसमें मौजूद है । ऐसी दशामें कौन-सी बुराई हो गयी क्योंकि अवगुण तो झूठ बोलनेमें है, सत्य कहनेमें नहीं अहो ! जो सबका पालन करनेवाले हैं, उनके द्वारा ऐसा बर्ता होना कदापि उचित नहीं है । यदि वे भी विचार न करके ऐसे कार्य करेंगे तब प्रजा किसकी शरणमें जायगी ।'

स्कन्द स्वामीके ऐसा कहनेपर धर्मने इस प्रकार उत्तर दिया—'आपका यह कहना ठीक है कि यह महीसागर-सङ्गम सब तीर्थोंमें प्रधान होने और ब्रह्माजीसे अर्घ्य पानेके सर्वथा योग्य है, किंतु साधु पुरुषोंका यह सनातन नियम है कि अपने ही मुँहसे अपने गुणोंका बखान नहीं करना चाहिये। दूसरोंका किया हुआ आक्षेप और अपनी प्रशंसा—ये दो दोष ब्रह्माजीको भी अपने पदसे विचलित कर सकते हैं। दूसरोंपर आक्षेप करते हुए अपनी प्रशंसा करनेवाले राजा ययाति क्या स्वर्गसे नीचे नहीं गिर गये थे? बुद्धिमान् ईश्वरने पूर्वकालमें जो-जो बातें प्रमाणित कर दी हैं, उन सबका भलीभाँति पालन करना चाहिये। कौन विद्वान् उनका उल्लङ्घन कर सकता है? कार्तिकेयजी! आपके पिताने आदेश देकर जिस कार्यके लिये हमें नियुक्त किया है, हम सदा उसीका पालन करते हैं। आपको भी उसका पालन करना चाहिये।'

यों कहकर धर्म जब अपनी मुद्रा त्याग देनेको तैयार हो गये, तब मैंने उस प्रस्तावपर विचार करके यह बात कही—'विश्वको धारण करनेवाले परम महान् महात्मा धर्मको नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी जिनकी प्रतिदिन पूजा करते हैं, उन पापनाशी धर्मको नमस्कार है। धर्म! यदि कदाचित् आप मुद्रा त्याग देंगे, तो हमलोगोंकी सत्ता कैसे रह सकती है? प्रभो! आप इस विश्वका नाश न कीजिये। योगीश्वर कार्तिकेयको आप सम्मान देने योग्य हैं। ये साक्षात् भगवान् शङ्करके पुत्र हैं; अतः उन्हींकी भाँति हम सबके लिये माननीय हैं। मानद! आपने इस तीर्थराजको विख्यात न होनेका जो शाप दे दिया है, उसका निवारण करनेके लिये अनुग्रह कीजिये।'

मेरे ऐसा कहनेपर ब्रह्माजीने मेरी प्रशंसा करते हुए कहा—धर्म! नारदने अच्छी बात कही है, तुम इनकी बात मानो। तब धर्मने कार्तिकेयजीसे कहा—'हमलोग जिसके किङ्कर हैं, उन परम सिद्ध कार्तिकेयजीको नमस्कार है। स्कन्द! मेरे नाथ! मेरी यह विनय ध्यान देकर सुनिये। स्तम्भ अर्थात् गर्वके कारण यह महातीर्थ अप्रसिद्ध होगा तथापि शनिवारकी अमावास्याको महीसागरकी यात्रा करनेसे जो फल मिलेगा, उसपर ध्यान दीजिये—प्रभासकी दस बार, पुष्करकी सात बार और प्रयागकी आठ बार यात्रा करनेसे जो फल होता है वही फल इसकी एक बारकी यात्रासे प्राप्त होगा।'

इस प्रकार वरदान देनेपर कार्तिकेयजी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। ब्रह्माजीने भी एकाग्रचित्त होकर स्तम्भ तीर्थको अर्घ्य दिया और उसे सब तीर्थोंमें श्रेष्ठता प्रदान की। फिर सब तीर्थों और स्कन्द स्वामीको सम्मान देकर विदा किया। इस तीर्थके गुप्त होनेका यही प्राचीन वृत्तान्त है। इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण तीर्थके महान् फलका वर्णन किया। यह सब आदिसे ही सुनकर पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—यह सब सुनकर विस्मयमें पड़े हुए अर्जुनने उस तीर्थकी बड़ी प्रशंसा की और नारद आदिसे विदा लेकर द्वारकाको प्रस्थान किया।

घटोत्कचका विवाह और बर्बरीकका जन्म

शौनकजी बोले—सूतजी! आपने गुप्तक्षेत्रके इस अत्यन्त अद्भुत, परम पावन, अनुपम तथा हर्षवर्धक माहात्म्यका वर्णन किया। यहाँ अब हम यह जानना चाहते हैं कि चण्डिल और विजय कौन थे तथा सिद्धमाताकी कृपासे उन्होंने कैसे सिद्धि प्राप्त की? यह सब यथार्थरूपसे कहिये।

उग्रश्रवा (सूतजी) ने कहा—ब्रह्मन्! इस विषयमें मैं श्रीव्यासजीके मुखसे सुनी हुई कथा कहूँगा। पहलेकी बात है, पाण्डवोंने राजा द्रुपदकी पुत्री द्रौपदीको पाकर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे इन्द्रप्रस्थ नामक नगर बसाया। वे वहाँ भगवान् वासुदेवसे सुरक्षित होकर रहते थे। एक समय पाण्डव अपनी राजसभामें बैठकर नाना प्रकारकी बातें कर रहे थे, इतनेहीमें भीमका पुत्र घटोत्कच वहाँ आया। उसे आया देख पाँचों भाई पाण्डव तथा परम पराक्रमी श्रीकृष्ण सहसा सिंहासनसे उठे और बड़ी प्रसन्नताके साथ सबने घटोत्कचको हृदयसे लगाया। भीमनन्दन घटोत्कचने भी अत्यन्त विनीतभावसे उन सबको प्रणाम किया। तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरने उसे अपनी गोदमें बिठाकर आशीर्वाद दिया और स्नेहपूर्वक उसका मस्तक सूँघते हुए सभामें इस प्रकार पूछा—'बेटा! कहाँसे आते हो? इतने दिनोंतक कहाँ विचरते रहे? हिडिम्बाकुमार! तुम देवता, ब्राह्मण, गौ तथा साधु-महात्माओंका कोई अपराध तो नहीं करते हो? भगवान् श्रीकृष्णमें और हमलोगोंमें तुम्हारा प्रेम तो है न? तुम्हारा अत्यन्त प्रिय करनेवाली तुम्हारी माता हिडिम्बा तो खूब प्रसन्न है न?'

धर्मराजके इस प्रकार पूछनेपर हिडिम्बाकुमारने

कहा—महाराज ! मेरे मामाके मारे जानेपर मैं उसीके राज्य-सिंहासनपर बिठाया गया हूँ और दुष्टोंका दमन करता हुआ सर्वत्र विचरता हूँ। मेरी माता हिडिम्बा देवी भी कुशलसे हैं, वे इस समय दिव्य तपस्यामें लगी हुई हैं। उन्होंने मुझे आज्ञा दी है—'बेटा! तुम सदा अपने पिता पाण्डवोंमें भक्ति रखनेवाले बनो।' माताकी यह बात सुनकर मैं भक्तियुक्त चित्तसे आपको प्रणाम करनेके लिये ही मेरुगिरिके शिखरसे यहाँ आया हूँ। मेरी इच्छा है कि आपलोग मुझे किसी महान् कार्यमें नियुक्त करें। क्योंकि यही इस जीवनका महान् फल है कि पुत्र सदा अपने पितृवर्गकी आज्ञाका पालन करे। इससे वह पुण्यलोकोंपर विजय पाता है और इस संसारमें भी यशस्वी होता है।

घटोत्कचके ऐसा कहनेपर धर्मराज युधिष्ठिर उससे इस प्रकार बोले—'बेटा! तुम्हीं हमारे भक्त और सहायक हो। हिडिम्बाकुमार! निश्चय ही जैसी माता होती है, वैसा ही उसका पुत्र भी होता है। तुम्हारी माता हमलोगोंके प्रति अविचल भक्ति रखनेवाली है, तुम भी ऐसे ही हो। अहो! मेरी प्यारी पतोहू हिडिम्बादेवी बड़ा कठिन कार्य कर रही है, जो कि अपने प्यारे पतिकी सेवाका सुख छोड़कर तपस्यामें ही संलग्न है।

इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर धर्मराजने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—पुण्डरीकाक्ष! आप तो जानते ही हैं कि घटोत्कचका जन्म भीमसेनसे हुआ है। यह उत्पन्न होते ही तरुण हो गया था। श्रीकृष्ण! मैं चाहता हूँ, मेरे इस पुत्रको योग्य पत्नी प्राप्त हो। आप सर्वज्ञ हैं, बताइये, इसके योग्य पत्नी कौन हो सकती है? धर्मराजके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने क्षणभर ध्यान करके उनसे कहा—'राजन्! मैं बतलाता हूँ, घटोत्कचके योग्य एक बड़ी सुन्दरी स्त्री है, जो इस समय प्राग्ज्योतिषपुरमें निवास करती है। अद्भुत पराक्रम करने-वाला जो मुर नामक दैत्य था, उसीकी वह पुत्री है। मुर दैत्य बड़ा भयङ्कर था और पाशमय दुर्गमें रहता था। वह मेरे हाथसे मारा गया। उसके मारे जानेपर उसकी पुत्री कामकटंकटा मुझसे युद्ध करनेके लिये आयी। वह अत्यन्त पराक्रमी होनेके कारण बड़ी भयानक जान पड़ती थी। तब खड्ग और खेटक धारण करनेवाली उस दैत्य-कन्याके साथ महासमरमें मैंने भी युद्ध आरम्भ किया। मेरे शार्ङ्ग नामक धनुषसे बड़े-बड़े बाण छूटने लगे, परंतु मुरकी पुत्रीने मेरे उन सभी बाणोंको खड्गसे ही काट डाला। तब मैंने उसका वध करनेके लिये अपना सुदर्शन चक्र उठाया। यह देख कामाख्या देवी मेरे आगे आकर खड़ी हो गयी और इस प्रकार बोली—'पुरुषोत्तम! आपको इसका वध नहीं करना चाहिये। मैंने स्वयं इसको खड्ग और खेटक प्रदान किये हैं, जो अजेय हैं।'

कामाख्या देवीकी यह बात सुनकर मैंने कहा—शुभे! मैं ही इस युद्धसे निवृत्त होता हूँ, तुम इस कन्याको मना करो। तब कामाख्या देवीने उसे हृदयसे लगाकर कहा—'भद्रे! तुम युद्धसे लौट चलो। ये माधव श्रीकृष्ण युद्धमें दुर्जय हैं। कोई किसी प्रकार भी संग्राममें इन्हें मार नहीं सकता। संसारमें ऐसा कोई वीर न तो हुआ है, न है और न होगा ही, जो इन्हें युद्धमें जीत सके। औरोंकी तो बात ही क्या है, साक्षात् भगवान् शङ्कर भी इन्हें परास्त नहीं कर सकते। बेटी! ये तुम्हारे भावी श्वशुर हैं; अतः तुम इन्हें प्रणाम करके युद्धसे हट जाओ। यही तुम्हारे लिये उचित होगा। तुम इनके भाई भीमसेनकी पुत्रवधू होओगी। इसलिये अपने श्वशुरके समान पूजनीय जनार्दनका तुम आदर करो। अब पिताके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। इन श्रीकृष्णके हाथसे जो तुम्हारे पिताकी मृत्यु हुई है, वह सर्वथा स्पृहणीय है; क्योंकि इनके हाथसे मरनेपर अब तुम्हारे पिता सब पातकोंसे मुक्त होकर विष्णुधाममें चले गये।' कामाख्याके ऐसा कहनेपर कामकटंकटाने क्रोध त्याग दिया और विनीत अङ्गोंसे मुझे प्रणाम किया। तब मैंने उसे आशीर्वाद देकर कहा—'बेटी! तुम भगदत्तसे सम्मानित होकर इसी नगरमें निवास करो। यहाँ रहती हुई ही तुम वीर हिडिम्बाकुमारको पतिरूपमें प्राप्त करोगी।' इस प्रकार आश्वासन देकर मैंने कामाख्या देवी तथा मौर्वी (मुरपुत्री) को विदा किया। फिर वहाँसे द्वारका होता हुआ मैं यहाँ आकर आपसे मिला हूँ। अतः वह मुरदैत्यकी सुन्दरी कन्या ही घटोत्कचके लिये योग्य स्त्री है। मैं श्वशुर हूँ, इसलिये मेरे द्वारा उसके रूपका वर्णन करना उचित न होगा। साधु पुरुषके लिये यह कदापि उचित नहीं है कि वह स्त्रियोंके रूप-सौन्दर्यका वर्णन करे। एक बात और सुन लीजिये। उसने प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि जो मुझे किसी प्रश्नपर निरुत्तर करके जीत ले तथा जो मेरे समान ही बलवान् हो, वही मेरा पति होगा। उसकी यह प्रतिज्ञा सुनकर बहुतसे दैत्य तथा राक्षस उसे जीतनेके लिये गये किंतु मौर्वीने उन सबको परास्त करके मार डाला। यदि

मुर-कन्याको न मारनेके लिये श्रीकृष्णसे कामाख्याका अनुरोध [पृष्ठ १७८

बर्बरीकका बलप्रदर्शन

[पृष्ठ १८८
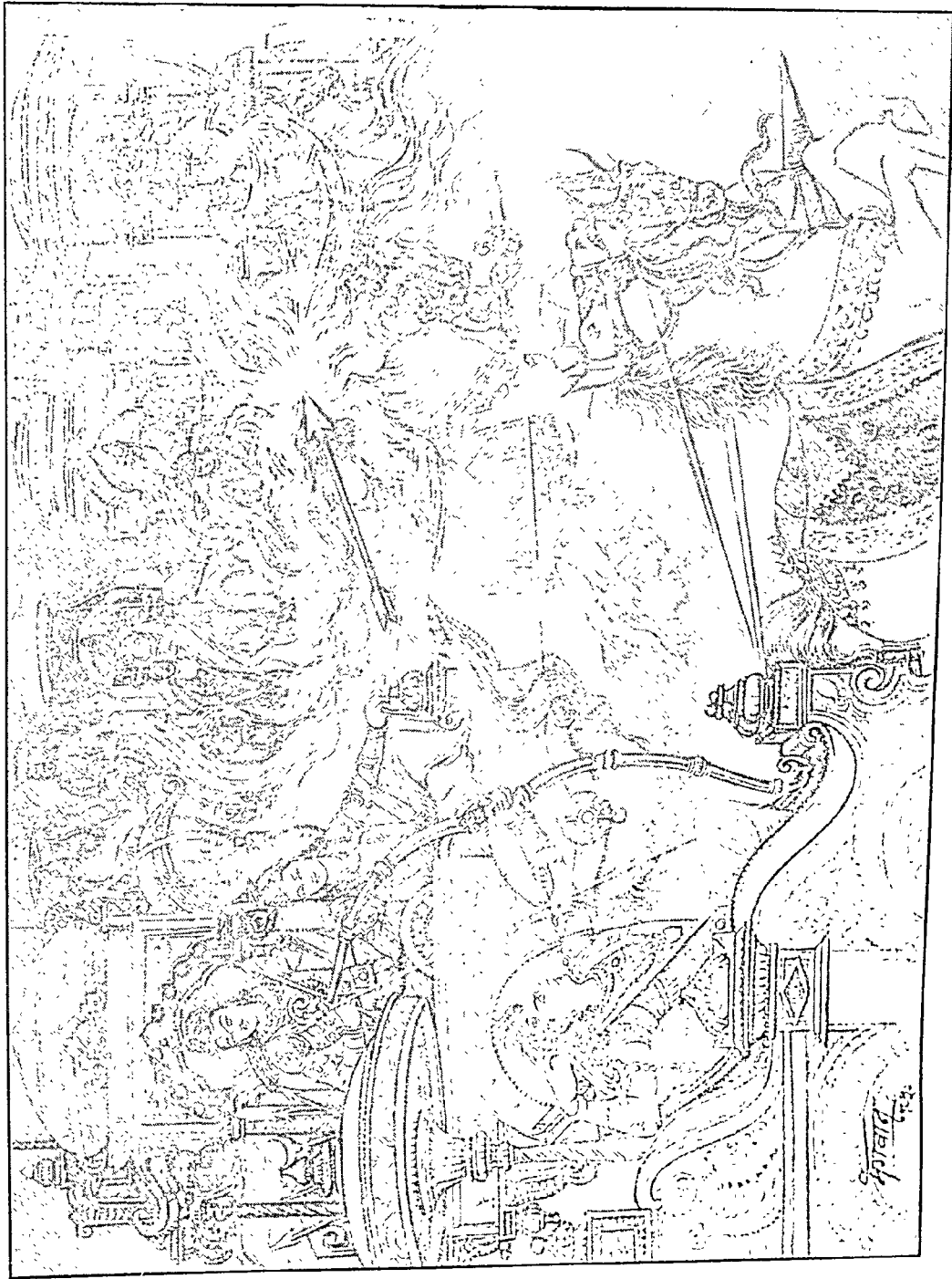
महापराक्रमी घटोत्कच ऐसी मौर्वीको जीतनेका उत्साह रखता हो, तो वह अवश्य ही इसकी पत्नी होगी ।'

युधिष्ठिर बोले—प्रभो ! उसके सब गुणोंसे क्या लाभ है, जब उसमें यह एक ही महान् अवगुण भरा हुआ है । उस दूधको लेकर क्या किया जायगा जिसमें विष मिला दिया गया हो । अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यारे भीमसेनकुमारको केवल साहसके भरोसे कैसे इस सङ्कटमें डाल दें ? यह बेचारा तो शुद्ध वाक्य भी बोलना नहीं जानता । जनार्दन ! देश-देशमें और भी तो बहुत-सी स्त्रियाँ हैं, उन्हींमेंसे किसी उत्तम स्त्रीको बतलाइये ।

भीमसेन बोले—भगवान् श्रीकृष्णने जो बात कही है, वह अनेक प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली, सत्य और उत्तम है। मेरा विश्वास है, घटोत्कच शीघ्र ही मौर्वीको प्राप्त करेगा ।

अर्जुन बोले—कामाख्या देवीने मौर्वीसे कहा है, 'भद्रे ! भीमसेनका पुत्र तुम्हारा पाणिग्रहण करेगा ।' इस कारण मेरी राय यही है कि घटोत्कच शीघ्र वहाँ जाय ।

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन ! मुझको तुम्हारी और भीमकी बात पसंद है । हिडिम्बाकुमार ! बोलो तुम्हारी क्या राय है ?

घटोत्कचने कहा—पूजनीय पुरुषोंके आगे अपने गुणोंका वर्णन करना उचित नहीं है । सूर्यकी किरणें और उत्तम गुण व्यवहारमें आकर ही प्रकाशित होते हैं । मैं सर्वथा ऐसी चेष्टा करूँगा, जिससे मेरे निर्मल पिता पाण्डव मुझ पुत्रके कारण सत्पुरुषोंकी सभामें लज्जित न हों ।

यों कहकर महाबाहु घटोत्कचने उन सबको प्रणाम किया। फिर पितरोंसे विजयका आशीर्वाद पाकर उत्साहसम्पन्न हो वहाँसे जानेका विचार किया । उस समय भगवान् जनार्दनने उसकी प्रशंसा करके कहा—'बेटा ! कथा कहते समय विजयकी प्राप्ति करानेवाले मुझ श्रीकृष्णका स्मरण अवश्य कर लेना, जिससे मैं तुम्हारी दुर्भेद्य बुद्धिको अविलम्ब बढ़ा दूँगा ।' ऐसा कहकर श्रीकृष्णने उसे हृदयसे लगाया और आशीर्वाद देकर विदा किया । तदनन्तर हिडिम्बाकुमार महापराक्रमी घटोत्कच सूर्याक्ष, बालाख्य और महोदर—इन तीन सेवकोंके साथ आकाशमार्गसे चला और दिन बीतते-बीतते प्राग्ज्योतिषपुरमें जा पहुँचा ।

वहाँ जानेपर घटोत्कचने प्राग्ज्योतिषपुरसे बाहर एक सोनेका सुन्दर भवन देखा, जो एक विशाल वाटिकामें शोभा पा रहा था । उसकी ऊँचाई एक हजार मंजिलकी थी । मेरुपर्वतके शिखरकी भाँति सुशोभित होनेवाले उस भवनके पास पहुँचकर घटोत्कचने देखा—दरवाजेपर एक दासी खड़ी है । उसका नाम 'कर्णप्रावरणा' था । वीर हिडिम्बाकुमारने सरल भाषामें उससे पूछा—'कल्याणी ! मुरकी पुत्री कहाँ है ? मैं दूर देशसे आया हुआ उनकी कामना करनेवाला अतिथि हूँ और उन्हें देखना चाहता हूँ ।'

भीमसेनकुमारकी यह बात सुनकर वह निशाचरी लड़खड़ाती हुई दौड़ी और महलकी छतपर बैठी हुई मौर्वीके पास जाकर इस प्रकार बोली—'देवि ! कोई सुन्दर तरुण कामका अतिथि होकर तुम्हारे द्वारपर खड़ा है । उसके समान सुन्दर कान्तिवाला पुरुष कोई त्रिलोकीमें भी नहीं होगा । अतः अब उसके लिये क्या कर्तव्य है, यह आज्ञा दीजिये ।'

कामकटंकटा बोली—अरी ! उन्हें शीघ्र ले आ, क्यों विलम्ब करती है ? कदाचित् दैवकी सहायतासे उन्हींके द्वारा मेरी प्रतिज्ञाकी पूर्ति हो जाय ।

मौर्वीके ऐसा कहनेपर दासीने घटोत्कचके पास जाकर कहा—कामी पुरुष ! उस मृत्युरूपा नारीके समीप शीघ्र जाओ। उसके ऐसा कहनेपर हँसते हुए घटोत्कचने वहींपर अपना धनुष छोड़कर घरके भीतर प्रवेश किया और विद्युत्की भाँति प्रकाशित होनेवाली उस दैत्य-कन्याको देखकर इस प्रकार सोचा—'अहो ! मेरे पितृस्वरूप श्रीकृष्णने मेरे लिये योग्य स्त्रीको ही बतलाया है ।' इस प्रकार विचार करते हुए उसने मौर्वीसे कहा—'ओ वज्रके समान कठोर हृदयवाली निष्ठुर नारी ! मैं अतिथि होकर तुम्हारे घर आया हूँ । अतः सत्पुरुषोंके लिये जो उचित स्वागत-सत्कार है, वह अपने हार्दिक भावके अनुसार करो ।' हिडिम्बाकुमारका यह वचन सुनकर कामकटंकटा उसके रूपसे विस्मित हो अपनी निन्दा करके इस प्रकार बोली—'भद्रपुरुष ! तुम व्यर्थ ही यहाँ चले आये । जीते-जी पुनः सुखपूर्वक लौट जाओ, अथवा यदि मुझे चाहते हो तो शीघ्र कोई कथा कहो । कथा कहकर यदि मुझे सन्देहमें डाल दोगे तो मैं तुम्हारे वशमें हो जाऊँगी । उसके बाद मेरे द्वारा तुम्हारी सेवा होगी ।'

उसके ऐसा कहनेपर घटोत्कचने यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनकी कथा है, उन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करके कथा प्रारम्भ की । 'मान लो किसी पत्नीके गर्भसे कोई बालक उत्पन्न हुआ जो युवा होनेपर बड़ा अजितेन्द्रिय निकला । उस युवकके एक पुत्री हुई तथा उसकी पत्नी मर गयी ।

तब पिताने ही उस नन्ही-सी पुत्रीकी रक्षा एवं पालन-पोषण किया। वह कन्या जब जवान हुई और उसके सब अङ्ग विकसित हो गये, तब उसके पिताका मन उसके प्रति कामलोलुप हो उठा। तदनन्तर उस पापीने अपनी ही पुत्रीसे कहा—'प्रिये! तुम मेरे पड़ोसीकी लड़की हो। मैंने तुम्हें अपनी पत्नी बनानेके लिये यहाँ लाकर दीर्घकालतक पालन-पोषण किया है। अतः अब मेरा वह अभीष्ट कार्य सिद्ध करो।' उसके ऐसा कहनेपर उस लड़कीने ऐसा ही माना। उसने इसे पतिरूपमें स्वीकार किया और इसने उसे पत्नीरूपमें। तत्पश्चात् उस कामी गदहेसे एक कन्या उत्पन्न हुई। अब बताओ, वह कन्या उसकी क्या लगेगी—पुत्री अथवा दौहित्री? यदि तुममें शक्ति है, तो मेरे इस प्रश्नका शीघ्र उत्तर दो।'

यह प्रश्न सुनकर मौर्वीने अपने हृदयमें अनेक प्रकारसे विचार किया, किंतु किसी प्रकार उसे इस प्रश्नका निर्णय नहीं सूझता था। तब उस प्रश्नसे परास्त होकर मौर्वीने अपनी शक्तिका उपयोग किया। वह ज्यों ही झूलेसे सहसा उठकर हाथमें तलवार लेना चाहती थी त्यों ही घटोत्कचने बड़े वेगसे पहुँचकर बायें हाथसे उसके केश पकड़ लिये और धरतीपर गिरा दिया। फिर उसके गलेपर बायाँ पैर रखकर दाहिने हाथमें कतरनी ले, उसकी नाक काट लेनेका विचार किया। मौर्वीने बहुत हाथ-पैर मारे, किंतु अन्तमें शिथिल होकर उसने मन्द स्वरमें कहा—'नाथ! मैं तुम्हारे प्रश्नसे और शक्ति तथा बलसे परास्त हो गयी हूँ। तुम्हें नमस्कार है। अब मुझे छोड़ दो, मैं तुम्हारी दासी हूँ। जो आज्ञा दो वही करूँगी।'

घटोत्कचने कहा—यदि ऐसी बात है तो लो, मैंने तुम्हें छोड़ दिया।

घटोत्कचके यों कहकर छोड़ देनेपर कामकटंकटाने पुनः उसे प्रणाम किया और कहा—'महाबाहो! मैं जानती हूँ, तुम बड़े वीर हो। त्रिलोकीमें कहीं भी तुम्हारे पराक्रमकी तुलना नहीं है। तुम इस पृथ्वीपर साठ करोड़ राक्षसोंके स्वामी हो। ये बातें मुझे कामाख्या देवीने बतलायी थीं, वे सब आज याद आ रही हैं। मैंने अपने सेवकों तथा इस शरीरके साथ यह सारा घर तुम्हारे चरणोंमें समर्पित कर दिया। प्राणनाथ! आज्ञा दो, मैं तुम्हारे किस आदेशका पालन करूँ?'

घटोत्कचने कहा—मौर्वी! जिसके पिता और भाई-बन्धु मौजूद हैं, उसका विवाह छिपकर हो, यह किसी प्रकार उचित नहीं है। इसलिये अब तुम शीघ्र मुझे इन्द्रप्रस्थ ले चलो। यही हमारे कुलकी परिपाटी है। इन्द्रप्रस्थमें गुरुजनोंकी आज्ञा लेकर मैं तुमसे विवाह करूँगा। तदनन्तर मौर्वी अनेक प्रकारकी सामग्री साथ ले घटोत्कचको अपनी पीठपर बैठाकर इन्द्रप्रस्थमें आयी। भगवान् श्रीकृष्ण और पाण्डवोंने घटोत्कचका अभिनन्दन किया, उसके बाद शुभलग्नमें भीमकुमारने मौर्वीका पाणिग्रहण किया। कुन्ती और द्रौपदी दोनों ही वधूको देखकर बहुत प्रसन्न हुईं। विवाह-सम्बन्ध हो जानेपर राजा युधिष्ठिरने घटोत्कचका आदर-सत्कार करके उसे पत्नीसहित अपने राज्यको जानेका आदेश दिया। महाराजकी आज्ञा शिरोधार्य करके हिडिम्बाकुमार अपनी राजधानी हिडम्ब-वनको चला गया। वहाँ उसने मौर्वीके साथ बहुत दिनोंतक क्रीड़ा की। तदनन्तर समयानुसार उसके गर्भसे एक महातेजस्वी एवं बालसूर्यके समान कान्तिमान् बालक उत्पन्न हुआ, जो जन्म लेते ही युवावस्थाको प्राप्त हो गया। उसने माता-पितासे कहा—'मैं आप दोनोंको प्रणाम करता हूँ, बालकके आदिगुरु माता-पिता ही हैं। अतः आप दोनोंके दिये हुए नामको मैं ग्रहण करना चाहता हूँ।' तब घटोत्कचने अपने पुत्रको छातीसे लगाकर कहा—'बेटा! तुम्हारे केश बर्बराकार (घुँघराले) हैं, इसलिये तुम्हारा नाम 'बर्बरीक' होगा। महाबाहो! तुम अपने कुलका आनन्द बढ़ानेवाले होओगे। तुम्हारे लिये जो परम कल्याणमय वस्तु है, उसको हमलोग द्वारकापुरी चलकर यदुकुलनाथ भगवान् वासुदेवसे पूछेंगे।'

बर्बरीक और विजयकी गुप्तक्षेत्रमें साधना तथा पाण्डवोंसे बर्बरीककी भेंट

तदनन्तर कामकटंकटाको घरपर ही छोड़कर बुद्धिमान् घटोत्कच अपने पुत्रको साथ ले आकाशमार्गसे द्वारकाको गया। वहाँ यादवोंकी सभामें पहुँचकर उसने उग्रसेन, वसुदेव, सात्यकि, अक्रूर, बलराम तथा श्रीकृष्ण आदि प्रधान-प्रधान यदुवीरोंको प्रणाम किया। पुत्रसहित घटोत्कचको अपने चरणोंमें पड़ा देख भगवान् श्रीकृष्णने उसको और उसके पुत्रको भी उठाकर छातीसे लगा लिया और आशीर्वाद दे अपने समीप बिठाकर इस प्रकार पूछा—'बेटा! कुरुवंशको बढ़ानेवाले राक्षसश्रेष्ठ! बतलाओ, तुम्हें सब ओरसे कुशल तो है न? यहाँ किसलिये तुम्हारा आगमन हुआ है?'

घटोत्कच बोला—देव! आपके प्रसादसे मुझे सब ओरसे कुशल ही है। आपकी बतायी हुई स्त्री मौर्वीके गर्भसे मेरे इस पुत्रका जन्म हुआ है, यह आपसे कुछ प्रश्न पूछेगा; उसे सुनिये। इसीलिये मैं यहाँ आया हूँ।

श्रीभगवान‍्ने कहा—बेटा मौर्वेय! तुम्हें जो-जो पूछनेकी इच्छा हो, सब पूछ लो।

बर्बरीक बोला—आदिदेव माधव! मैं मन, बुद्धि

और समाधिके द्वारा आपको प्रणाम करके यह पूछता हूँ कि संसारमें उत्पन्न हुए जीवका कल्याण किस साधनसे होता है? कोई धर्मको कल्याणकारक कहते हैं, तो कोई ऐश्वर्यदानको। कुछ लोग दम (इन्द्रिय-संयम) को, कोई तपस्याको, कोई द्रव्यको, कोई भोगोंको तथा कोई मोक्षको ही श्रेय कहते हैं। पुरुषोत्तम! इस प्रकार सैकड़ों श्रेयोंमेंसे किसी एक श्रेयको निश्चित करके बतलाइये, जो मेरे इस कुलके लिये कल्याणकारी हो।

श्रीभगवान् बोले—बेटा! प्रत्येक वर्णके लिये पृथक्-पृथक् उत्तम श्रेय बताया गया है। ब्राह्मणोंके कल्याणका मूल है—तप, इन्द्रिय-संयम तथा स्वाध्याय। मनीषी पुरुषोंने धर्मके स्वरूपका निरूपण भी ब्राह्मणोंके लिये कल्याणकी बात बतायी है। क्षत्रियोंके लिये सर्वप्रथम बल ही साध्य है, यह बात पहले ही बतायी गयी है। दुष्टोंका दमन और साधुओंका संरक्षण भी क्षत्रियोंके लिये श्रेयस्कर है। वैश्योंके श्रेयका साधन है—पशुपालन और कृषिविज्ञान। शूद्रके लिये द्विजोंकी सेवा ही श्रेयस्कर है, उसके द्वारा जीवन-निर्वाह करनेवाला शूद्र सुखी होता है। अथवा शूद्र भाँति-भाँतिके शिल्पकर्मोंद्वारा जीविका चलावे और द्विजातियोंके हितमें लगा रहे। तुम क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए हो, अतः अपना कर्तव्य सुनो। पहले तुम ऐसे बलकी प्राप्तिके लिये साधन करो, जिसकी कहीं तुलना न हो। फिर उस बलसे दुष्टोंका दमन और साधु पुरुषोंका पालन करो। ऐसा करनेसे तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति होगी। बेटा! देवियोंकी अनन्त कृपा होनेसे ही बल प्राप्त होता है, इसलिये तुम बल प्राप्त करनेके उद्देश्यसे देवीकी आराधना करो।

बर्बरीकने पूछा—प्रभो! मैं किस क्षेत्रमें, किस देवीकी, कैसे आराधना करूँ?

उसके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् दामोदरने क्षणभर ध्यान करके कहा—महीसागरसङ्गम तीर्थमें, जो गुप्तक्षेत्रके नामसे विख्यात है, वहीं नारदजीद्वारा बुलायी हुई नौ दुर्गाएँ निवास करती हैं। वहाँ जाकर उनकी आराधना करो। बर्बरीकसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने घटोत्कचसे कहा—'भीमनन्दन! तुम्हारा यह पुत्र अत्यन्त सुन्दर हृदयवाला है, इसलिये मैंने इसे 'सुहृदय' यह दूसरा नाम प्रदान किया है।' यों कहकर भगवान‍्ने उसे छातीसे लगा लिया और नाना प्रकारके धनसे उसको सन्तुष्ट करके गुप्तक्षेत्रमें जानेका आदेश दिया। तब भगवान् श्रीकृष्णको, अपने पिता घटोत्कचको और वहाँ बैठे हुए सब यादवोंको प्रणाम करके उन सबकी आज्ञा ले बर्बरीक गुप्तक्षेत्रको चला गया। घटोत्कच भी भगवान् श्रीकृष्णसे विदा ले अपने वनको गया और पुत्रके गुणोंका स्मरण करता हुआ अपने राज्यका पालन करने लगा।

तदनन्तर बुद्धिमान् सुहृदय गुप्तक्षेत्रमें रहकर प्रतिदिन कर्मके द्वारा पुष्प, धूप और नाना प्रकारके उपहारोंसे तीनों समय देवियोंकी पूजा करने लगा। तीन वर्षोंतक आराधना करनेपर देवियाँ उसपर बहुत सन्तुष्ट हुईं और प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्होंने उसको ऐसा दुर्लभ बल प्रदान किया, जो तीनों लोकोंमें किसीके पास नहीं है। तत्पश्चात् वे बोलीं—'महाद्युते! कुछ कालतक तुम यहीं निवास करो। फिर विजयकी सङ्गति पाकर तुम अधिक कल्याणके भागी होओगे।' देवियोंके ऐसा कहनेपर सुहृदय वहीं ठहर गया। तदनन्तर मगधदेशके ब्राह्मण विजय वहाँ आये। उन्होंने कुमारेश्वर आदि सात लिङ्गोंका पूजन किया और अपनी विद्याको सफल बनानेके लिये चिरकालतक देवियोंकी आराधना की। इससे सन्तुष्ट

होकर देवियोंने स्वप्नमें यह आदेश दिया—'ब्रह्मन्! तुम आँगनमें सिद्धमाताके आगे सम्पूर्ण विद्याओंका साधन करो। सुहृदय हमारा भक्त है, यह तुम्हारी सहायता करेगा।' यह बात सुनकर विजय उठा और सब देवियोंको प्रणाम करके उसने भीमपौत्र सुहृदयसे कहा—'तुम निद्रारहित एवं पवित्र हो देवीके स्तोत्रका पाठ करते हुए यहीं रहो, जिससे जबतक मैं यह विद्यासाधनरूप कर्म करूँ तबतक किसी प्रकारका विघ्न न आने पावे।'

विजयके ऐसा कहनेपर महाबली बर्बरीक जब विघ्न-निवारणके लिये वहाँ खड़ा हुआ, तब विजयने सुखपूर्वक आसनपर बैठकर 'गुं गुरुभ्यो नमः' इस मन्त्रसे गुरुओंको नमस्कार किया। उसके बाद उक्त गुरु-मन्त्रका अष्टोत्तरशत जप करके पुनः गुरुजनोंको प्रणाम करनेके पश्चात् गणेश्वर-विधान आरम्भ किया। अब मैं गणपतिके उस उत्तम मन्त्रका वर्णन करता हूँ जो बहुत छोटा होनेपर भी समस्त कार्योंका साधक, महान् प्रयोजनोंकी प्राप्ति करानेवाला तथा सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है। 'ॐ गां गीं गूं गैं गौं गः' यह सात अक्षरोंका मन्त्र है। मन्त्रका विनियोग-वाक्य इस प्रकार है—'ॐ अस्य गणपतिमन्त्रस्य गणो नाम ऋषिर्विघ्नेश्वरो देवता गं बीजम् ॐ शक्तिः पूजार्थे जपार्थे तिलकार्थे वा मन-ईप्सितार्थे होमार्थे वा विनियोगः।' अर्थात् इस गणपति-मन्त्रके गण नामक ऋषि, विघ्नेश्वर देवता, गं बीज और ॐ शक्ति है। पूजा, जप, तिलक, मनोरथसिद्धि अथवा होमके लिये इसका विनियोग है। पूर्वोक्त मूल-मन्त्रसे चन्दन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल निवेदन करे। इसके बाद मूल-मन्त्रका जप करे। अष्टोत्तरशत, सहस्र, लक्ष अथवा कोटि बार यथाशक्ति जप करके दशांश हवनके लिये अग्निदेवका आवाहन करे। आवाहनके पश्चात् 'गं गणपतये स्वाहा' इस मन्त्रसे गुग्गुलकी गोलियोंद्वारा होम करे। जो इस प्रकार सब विघ्नोंमें इस उत्तम मन्त्रका साधन करता है, उसके समस्त विघ्न नष्ट होते हैं और उसे मनोऽभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है। विजय भी इस गणेश्वर-कल्पको जानते थे। अतः उन्होंने अष्टोत्तरशत जप करके गुग्गुलकी गुटिकाओंद्वारा दशांश आहुति दी और सिद्धि-विनायकका पूजन किया। इसके बाद सिद्धाम्बिकाको नमस्कार करके अपराजिता नामक वैष्णवी महाविद्याका साधनसहित जप किया, जिसके स्मरणमात्रसे सब दुःखोंका नाश हो जाता है। विप्रवर! मैं उस विद्याका वर्णन करता हूँ, सुनो—

ॐ भगवान् वासुदेवको नमस्कार है; सहस्र मस्तकोंवाले भगवान् अनन्तको नमस्कार है; जो क्षीरसमुद्रमें शयन करते हैं, शेषनागका विशाल शरीर जिनकी शय्या है, गरुड़ जिनका वाहन है, जो पीताम्बर धारण करते हैं, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चारों व्यूह जिनके स्वरूप हैं; जिन्होंने हयग्रीवरूप धारण किया है; उन्हीं भगवान् विष्णुको नमस्कार है। नृसिंह! वामन! त्रिविक्रम! तथा वरदायक राम! आपको नमस्कार है। विश्वरूप! बहुरूप! मधुसूदन! महावराह! महापुरुष! वैकुण्ठ! नारायण! पद्मनाभ! गोविन्द! दामोदर! हृषीकेश! समस्त असुरोंका संहार करनेवाले! सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने वशमें रखनेवाले! सब दुःखोंका नाश करनेवाले! सम्पूर्ण विपत्तियोंका भञ्जन करनेवाले! सब नागोंका मान मर्दन करनेवाले! सर्वदेव महेश्वर! सबका बन्धन छुड़ानेवाले! सब शत्रुओंका संहार करनेवाले! समस्त ज्वरोंका नाश करनेवाले! सम्पूर्ण ग्रहोंका निवारण तथा सब पापोंका शमन करनेवाले! भक्तजन-आनन्ददायक! जनार्दन! आपको नमस्कार है। आपके लिये सुन्दर हविष्य-का भाग समर्पित है।

जो साधक इस अपराजिता वैष्णवी महाविद्याका जप, पाठ, श्रवण, स्मरण, धारण और कीर्तन करता है, उसे वायु, अग्नि, वज्र, पत्थर, बिजली और वर्षाका भय नहीं प्राप्त होता। उसके लिये समुद्रसे, ग्रहोंसे तथा चोरोंसे भी भय नहीं रहता है। इस प्रकार विजयने संयमशील होकर मन, बुद्धि और समाधिके द्वारा इस अपराजिता वैष्णवी महाविद्याका साधन आरम्भ किया। जो बिना साधनके भी प्रतिदिन इस विद्याका पाठ करता है, उसके भी समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं।

विजय साधनमें लगे थे। उस समय रात्रिके पहले पहरमें एक राक्षसीने विघ्न उपस्थित किया, किन्तु बर्बरीकने उस राक्षसीको भगा दिया। तत्पश्चात् आधी रातमें दूसरा विघ्न उपस्थित हुआ; बर्बरीकने उसका भी निवारण कर दिया। तदनन्तर रेपलेन्द्र नामका एक दानव विजयकी ओर दौड़ा। उसका शरीर एक योजन लम्बा था। उसके मस्तक और उदर सौ-सौ थे। वह अपने मुखोंसे अग्निकी बड़ी भारी ज्वाला उगलता हुआ आ रहा था। उसे दौड़कर आते देख महाबली बर्बरीक भी उसकी ओर वेगसे आगे बढ़ा। दोनों बहुत देरतक स्थिरतापूर्वक युद्ध करते रहे। फिर बर्बरीकने उसे भूमिपर गिराकर खूब रगड़ा और तबतक नहीं छोड़ा, जबतक उसके प्राण नहीं निकल गये। मरनेपर उसे अग्नि-

कोणमें महीसागरसङ्गमके तटपर फेंक दिया। इस प्रकार उसका वध करके वीर बर्बरीक पुनः विजयकी रक्षाके लिये खड़ा हो गया। तत्पश्चात् तीसरे पहरमें पश्चिम दिशाकी ओरसे एक राक्षसी आयी, जो पर्वताकार दिखायी देती थी। वह बड़े जोर-जोरसे गर्जना करती और अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको कँपाती हुई चलती थी; उसका नाम 'द्रुहद्रुहा' था। उसे आती देख सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी बर्बरीक बड़े वेगसे उसके समीप पहुँचा। उसने हँसते हुए मार्ग रोक लिया और मुक्केसे मारकर राक्षसीको धरतीपर गिरा दिया। उसके बाद गला दबाकर मार डाला। उसे मारकर बर्बरीक पुनः रक्षाके लिये खड़ा हो गया। तदनन्तर चौथे पहरमें एक अद्भुत नकली संन्यासी मूड़ मुड़ाये दिगम्बरवेशमें वहाँ आया। उसने बड़ा भारी व्रती होनेका ढोंग रच रक्खा था। उसने आते ही कहा—'हाय हाय! अरे भाई! यह तो बड़े कष्टकी बात है। अहिंसा ही परम धर्म है! तूने यह आग क्यों जला रक्खी है? आगमें हवन करते समय सूक्ष्म जीवोंका बड़ा भारी वध हो रहा है।' उसकी यह बात सुनकर बर्बरीकने हँसते हुए कहा—'अग्निमें आहुति देनेपर सब देवताओंकी तृप्ति होती है। दुर्बुद्धि पापी! तू झूठ बोलता है, इसलिये दण्डका पात्र है।' यों कहकर बर्बरीक सहसा उसके पास जाकर खड़ा हो गया और मुक्केसे मार-मारकर उसके सारे दाँत गिरा दिये। वास्तवमें वह एक दैत्य था। क्षणभरमें सचेत होनेपर वह बर्बरीकके भयसे भागा और एक गुफाके बिलमें समा गया। बर्बरीकने क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे उसका पीछा किया, किन्तु वह दैत्य वायुके समान वेगसे दौड़ता पातालमें समा गया। साठ योजन विस्तृत 'बहुप्रभा' नामकी नगरीमें वह निवास करता था। बर्बरीक वहाँ भी उसके पीछे-पीछे जा पहुँचा। उसे देखकर 'पलाशी' नामवाले दैत्योंमें 'दौड़ो, मारो, काटो और फाड़ डालो' आदिके रूपमें महान् कोलाहल मच गया। हल्ला सुनकर अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये नौ करोड़ भयानक दैत्य योद्धा वीर बर्बरीकपर टूट पड़े। इस प्रकार करोड़ों दैत्योंको देखकर घटोत्कचका पुत्र क्रोधसे जल उठा। उसने किन्हींको पैरोंसे, किन्हींको भुजदण्डोंसे और किन्हींको छातीके धक्केसे मार-मारकर क्षणभरमें यमलोक पहुँचा दिया।

दैत्योंके मारे जानेपर वासुकि आदि नाग वहाँ आये और नाना प्रकारके प्रिय वचनोंद्वारा सुहृदयकी स्तुति करते हुए बोले—'भैमिनन्दन! आपने नागोंका बड़ा भारी उपकार किया; क्योंकि आपके द्वारा यह पलाशी नामक दैत्य अपने सेवकोंसहित मारा गया। वीर! इस दुरात्माने अपने सेवकोंकी सहायतासे भाँति-भाँतिके उपाय करके हमलोगोंको पीड़ा [illegible] और पातालसे भी नीचे कर दिया था। आज आप हम ना[illegible] कोई मनोवाञ्छित वर माँगिये। हम सब आपपर प्रसन्न [illegible] वर देनेको उत्सुक हैं।'

बर्बरीक बोला—नागगण! यदि मुझे वर देना [illegible] तो मैं यही माँगता हूँ कि विजय सब प्रकारके विघ्नोंसे [illegible] होकर सिद्धि प्राप्त कर लें।

तब नागोंने प्रसन्न होकर कहा—बहुत अच्छा, [illegible] ही होगा। बर्बरीक नागोंको वह दैत्यपुरी देकर उनके द्व[illegible] सम्मानित हो वहाँसे लौटा। बिलके मनोहर मार्गसे लौ[illegible] समय उसने देखा, कल्पवृक्षके नीचे एक सर्वरत्न[illegible] लिङ्ग विराजमान है; उसका महान् प्रकाश सब ओर [illegible] रहा है तथा बहुत-सी नागकन्याएँ उसका पूजन कर [illegible] हैं। यह सब देखकर बर्बरीकको बड़ा विस्मय हुआ! उ[illegible] नागकन्याओंसे पूछा—'सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी [illegible] शिवलिङ्गकी किसने स्थापना की है? तथा इस शिवलिङ्गसे चा[illegible] दिशाओंकी ओर जो ये मार्ग गये हैं, इनका भी परिचय दो[illegible]

वीर बर्बरीकका यह वचन सुनकर नागकन्याओं[illegible] सकुचाते हुए कहा—सम्पूर्ण नागोंके राजा महात्मा शेष[illegible] तपस्या करके यहाँ इस महालिङ्गकी स्थापना की है। इस[illegible] दर्शन, स्पर्श, ध्यान और पूजनसे यह सब सिद्धियोंको दे[illegible] वाला है। इस लिङ्गसे पू[illegible] दिशाकी ओर जानेवाला यह मा[illegible] भूलोकमें 'श्री' पर्वततक चला गया है। नागलोग सुवि[illegible]

पूर्वक वहाँतक पहुँच सकें, इसके लिये 'इलापत्र' नागने इस मार्गका निर्माण किया है। दक्षिणसे जानेवाला यह मार्ग पृथ्वीपर 'शूर्पारक' क्षेत्रमें पहुँचता है, इसे 'कर्कोटक' नागने वहाँ जानेके लिये बनवाया है। पश्चिमका यह मार्ग अतिशय प्रकाशमान 'प्रभास'तीर्थको जाता है, इसे ऐरावतने नागोंकी यात्राके लिये बनवाया है। इसी प्रकार उत्तरसे होकर निकला हुआ यह मार्ग पृथ्वीपर 'कुरुक्षेत्र'में जाता है, महात्मा तक्षकने वहाँ जानेके लिये यह मार्ग तैयार किया है। लिङ्गसे ऊपरकी ओर जो मार्ग जाता है, जिससे जानेके लिये आप खड़े हैं; यह गुप्तक्षेत्रमें सिद्धलिङ्गके पास गया है। यह मार्ग स्वामी स्कन्दने अपनी शक्तिके प्रहारसे बनाया है। वीर! ये सब बातें हमने बता दीं, अब आप हमारा निवेदन सुनिये। पहले तो यह बताइये कि आप कौन हैं? अभी-अभी आप दैत्यके पीछे लगे गये थे और अब अकेले ही लौट रहे हैं; इसका क्या कारण है, हम सब आपकी दासियाँ हैं और पतिरूपमें आपका वरण करती हैं। आप हमारे साथ यहाँके विविध स्थानोंमें क्रीडा कीजिये।

बर्बरीकने कहा—देवियो! मेरा जन्म कुरुवंशमें हुआ है। मैं पाण्डुनन्दन भीमसेनका पौत्र हूँ। बर्बरीक मेरा नाम है। मैं उस दैत्यको मारनेके लिये आया था। वह पापी दैत्य मारा गया; अतः अब पृथ्वीपर लौटा जा रहा हूँ। आप लोगोंसे किसी प्रकार मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि मैंने सदा ब्रह्मचारी रहनेका व्रत लिया है।

यों कहकर बर्बरीकने उस शिवलिङ्गका पूजन और साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर उन सब कन्याओंके देखते-देखते ऊपरके मार्गसे चल दिया। बिलसे बाहर आकर उसने पूर्व-दिशाके मुखको प्रकाशयुक्त देखा, फिर बड़े हर्षके साथ वह विजयसे मिला। उस समयतक विजय अपना सब कार्य पूरा कर चुके थे। उन्होंने बर्बरीकसे कहा—'वीरेन्द्र! तुम्हारे प्रसादसे मैंने अनुपम सिद्धि प्राप्त की है। तुम दीर्घकालतक जीओ, आनन्द करो, दान दो और विजयी बनो। इसीलिये साधु पुरुष साधुओंका ही सङ्ग करना चाहते हैं, क्योंकि सत्पुरुषोंका सङ्ग सब दोषोंको दूर करनेकी दवा है। मेरे होमकुण्डमें सिन्दूरके समान लाल रंगका सात्त्विक एवं अत्यन्त पवित्र भस्म है, उसे हाथमें भरकर ले लो। युद्धभूमिमें इसे पहले छोड़ देनेपर शत्रुके स्थानपर मृत्यु भी हो, (साक्षात् मृत्यु ही शत्रु बन कर आ जाय) तो उसके शरीरको भी यह नष्ट कर देगा। इस प्रकार शत्रुओंपर तुम्हें सुखपूर्वक विजय प्राप्त होगी।'

बर्बरीक बोला—जो निष्काम भावसे किसीका उपकार करता है, वही साधु कहलाता है। जो किसी वस्तुकी इच्छा रखकर उपकार करता है, उसकी साधुतामें कौन गुण है।* अतः यह भस्म किसी दूसरेको दे दीजिये। मेरा इससे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं तो केवल आपको प्रसन्नमुख देखना चाहता हूँ, इसके सिवा और कुछ नहीं।

तदनन्तर देवियोंसहित देवताओंने विजयका सम्मान करके उन्हें सिद्धैश्वर्य प्रदान किया और उनका नाम 'सिद्धसेन' रक्खा। इस प्रकार विजयने अत्यन्त दुर्लभ सिद्धि प्राप्त की।

तत्पश्चात् कुछ काल बीतनेपर पाण्डवलोग जूएमें हार गये और विभिन्न तीर्थोंमें घूमते हुए उस शुभ तीर्थमें भी स्नानके लिये आये। वहाँ चण्डिका देवीका दर्शन करके मार्गके थके-माँदे होनेके कारण कहीं बैठ गये। पाँचों पाण्डवोंके साथ द्रौपदी भी थी। उस समय चण्डिकाका गण भी वहीं विराजमान था। बर्बरीकने वहाँ पधारे हुए पाण्डव वीरोंको देखा, परंतु वह उन्हें पहचानता नहीं था। पाण्डव भी उसे नहीं पहचानते थे क्योंकि जन्मसे लेकर अबतक पाण्डवोंके साथ उसकी भेंट ही नहीं हुई थी। पाण्डवोंने अपनी गठरी

* उपकुर्यान्निराकाङ्क्षी यः स साधुरितीर्यते।
साकाङ्क्षमुपकुर्याद्यः साधुत्वे तस्य को गुणः॥
(स्क० मा० कुमा० ५९। ८०)

शङ्करने आकाशमें स्थित हो बर्बरीकसे कहा—'राक्षसोंमें श्रेष्ठ महाबली बर्बरीक ! ये भरतकुलके रत्न और तुम्हारे पितामह भीमसेन हैं, इन्हें छोड़ दो। ये तीर्थयात्राके प्रसंगसे अपने भाइयों तथा द्रौपदीके साथ विचरते हुए इस तीर्थमें भी स्नान करनेके लिये ही आये हैं। अतः तुम्हारे द्वारा सर्वथा सम्मान पानेके ही योग्य हैं।'

भगवान् शङ्करका यह वचन सुनकर सुहृदय सहसा भीमसेनको छोड़कर उनके चरणोंमें गिर पड़ा और बोल उठा—'हाय ! मुझे धिक्कार है। यह बड़े कष्टकी बात है, बड़े कष्टकी बात है, पितामह ! मुझे क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये।' उसे इस प्रकार शोक करते और बार-बार मोहित होते देख भीमसेनने छातीसे लगा लिया और स्नेहसे मस्तक सूँघकर कहा—'वत्स ! जन्मकालसे ही न तो हम तुम्हें पहचानते हैं न तुम हमको। केवल घटोत्कच तथा भगवान् श्रीकृष्णसे यह सुन रक्खा है कि तुम इसी तीर्थमें निवास करते हो। किंतु यह सब बात भी हमें भूल गयी थी, क्योंकि जो लोग अनेक प्रकारके दुःखोंसे दुखी और मोहित होते हैं, उनकी सारी स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है। अतः हमपर जो यह दुःख आया है, वह सब कालकी प्रेरणासे प्राप्त हुआ है। बेटा ! तुम शोक न करो। तुम्हारा इसमें तनिक भी दोष नहीं है, क्योंकि कुमार्गपर चलनेवाला कोई भी क्यों न हो, क्षत्रियके लिये दण्डनीय ही है। साधु क्षत्रियको उचित है कि यदि कुमार्गपर चले तो अपनी आत्माको भी दण्ड दे। फिर पिता, माता, सुहृद्, भ्राता और पुत्र आदिके लिये तो कहना ही क्या है ! मुझे आज बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ है। मैं और मेरे पूर्वज धन्य हैं, जिनका पुत्र ऐसा धर्मज्ञ और धर्मपालक है। तुम वर पानेके योग्य हो, मेरे तथा दूसरे सत्पुरुषोंके द्वारा प्रशंसा पानेके अधिकारी हो। अतः यह शोक छोड़कर तुम्हें स्वस्थ हो जाना चाहिये।'

बर्बरीक बोला—पितामह ! मैं पापी हूँ, ब्रह्महत्यारेसे भी अधिक घृणाका पात्र हूँ। प्रशंसाके योग्य कदापि नहीं हूँ। प्रभो ! न तो आप मेरी ओर देखें और न मेरा स्पर्श ही करें। ब्राह्मणलोग सभी पापोंका प्रायश्चित्त बतलाते हैं; परंतु जो पिता-माताका भक्त नहीं है, उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं।* अतः जिस शरीरसे मैंने पितामहको पीड़ा पहुँचायी है, उस अपने शरीरको आज मैं महीसागर-सङ्गममें त्याग दूँगा; जिससे अन्य जन्मोंमें भी ऐसा ही पातकी न होऊँ।

यों कहकर बलवान् बर्बरीक उछलकर समुद्रके भीतर चला गया। समुद्र भी यह सोचकर काँप उठा कि 'मैं कैसे इसका वध करूँ'। तदनन्तर सिद्धाम्बिका तथा चारों दिशाओं-की देवियाँ रुद्रके साथ वहाँ आयीं और उसे हृदयसे लगाकर बोलीं—'वीरेन्द्र ! अनजानमें किये हुए पापसे दोष नहीं लगता, यह बात शास्त्रोंमें बतायी गयी है। अतः तुम्हें इसके विपरीत कोई बर्ताव नहीं करना चाहिये।† देखो, तुम्हारे पितामह भीम पुत्र-पुत्र पुकारते हुए तुम्हारे पीछे लगे हुए चले आ रहे हैं। तुम्हारी मृत्यु हो जानेपर वे स्वयं भी प्राण त्याग देनेको उत्सुक हैं। वीर ! यदि इस समय तुम शरीर छोड़ोगे तो भीमसेन भी शरीरको त्याग देंगे। उस दशामें तुम्हें बड़ा भारी पातक लगेगा। अतः महामते ! तुम ऐसा जानकर अपने शरीरको धारण करो। थोड़े ही समयमें देवकी-नन्दन श्रीकृष्णके हाथसे तुम्हारे शरीरका नाश होगा, ऐसा बताया गया है। वत्स ! वे साक्षात् भगवान् विष्णु हैं और उनके हाथसे शरीरका नाश होना बहुत उत्तम (मुक्तिदायक)

---

* सर्वेषामेव पापानां निष्कृतिः प्रोच्यते द्विजैः।
पित्रोरभक्तस्य पुनर्निष्कृतिर्नैव विद्यते॥
(स्क० मा० कुमा० ६०। ५५-५६)

† अज्ञातविहिते पापे नास्ति वीरेन्द्र कल्मषम्।
शास्त्रैरुक्तमिदं वाक्यं नान्यथा कर्तुमर्हसि॥
(स्क० मा० कुमा० ६०। ६१)

फिर उस बाणको उसने लाल रंगके भस्मसे भर दिया और कानतक खींचकर छोड़ दिया। उस बाणके मुखसे जो भस्म उड़ा, वह दोनों सेनाओंमें सैनिकोंके मर्मस्थलोंपर गिरा। केवल पाँच पाण्डव, कृपाचार्य और अश्वत्थामाके शरीरसे उसका स्पर्श नहीं हुआ। यह कर्म करके बर्बरीकने पुनः सब लोगोंसे कहा—'आपलोगोंने देखा, इस क्रियाके द्वारा मैंने मरनेवाले वीरोंके मर्मस्थानका निरीक्षण किया है। अब उन्हीं मर्मस्थानोंमें देवीके दिये हुए तीक्ष्ण और अमोघ बाण मारूँगा, जिनसे ये सभी योद्धा क्षणभरमें मृत्युको प्राप्त हो जायँगे। आप सब लोगोंको अपने-अपने धर्मकी सौगन्ध है, कदापि शस्त्र ग्रहण न करें। मैं दो ही घड़ीमें इन सब शत्रुओंको तीखे बाणोंसे मार गिराऊँगा।'

यह सुनकर युधिष्ठिर आदिके चित्तमें बड़ा विस्मय हुआ। वे सब लोग बर्बरीकको साधुवाद देने लगे, जिससे महान् कोलाहल छा गया। बर्बरीकने ज्यों ही उपर्युक्त बात कही त्यों ही श्रीकृष्णने कुपित होकर अपने तीखे चक्रसे बर्बरीकका मस्तक काट गिराया। यह देख सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। सब एक दूसरेसे कहने लगे—'अहो! यह क्या हुआ? घटोत्कचका पुत्र कैसे मारा गया?' पाण्डव भी अन्य सब राजाओंके साथ आँसू बहाने लगे। घटोत्कच तो 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहता हुआ शोकसे मूर्छित

होकर गिर पड़ा। इसी समय सिद्धाम्बिका आदि चौदह देवियाँ वहाँ आ पहुँचीं। श्रीचण्डिकाने घटोत्कचको सान्त्वना देकर उच्चस्वरसे कहा—"सब राजा सुनें। विदितात्मा भगवान् श्रीकृष्णने महाबली बर्बरीकका वध किस कारणसे किया है, वह मैं बतलाती हूँ। पूर्वकालकी बात है, मेरुपर्वतके शिखरपर सब देवता एकत्र हुए थे। उस समय भारसे पीड़ित हुई यह पृथ्वी वहाँ गयी और सब देवताओंसे बोली—'आपलोग मेरा भार उतारें।' तब ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुसे कहा—'भगवन्! आप मेरी प्रार्थना सुनें। आप ही पृथ्वीका भार उतारें, इस कार्यमें देवता आपका अनुसरण करेंगे।' तब भगवान् विष्णुने 'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजीकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इसी समय 'सूर्यवर्चा' नामक यक्षराजने अपनी भुजा ऊपर उठाकर कहा—'आप लोग मेरे रहते हुए मनुष्यलोकमें क्यों जन्म धारण करते हैं? मैं अकेला ही अवतार लेकर पृथ्वीके भारभूत सब दैत्योंका संहार करूँगा।'

सूर्यवर्चाके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजी कुपित होकर बोले—दुर्मते! पृथ्वीका यह महान् भार समस्त देवताओंके लिये भी दुःसह है, उसे तू मोहवश केवल अपने ही द्वारा साध्य बतलाता है। मूर्ख! पृथ्वीका भार उतारते समय जब युद्धका आरम्भ होगा, उस समय श्रीकृष्णके हाथसे तेरे शरीरका नाश होगा। इसमें संशय नहीं है। ब्रह्माजीके द्वारा ऐसा शाप प्राप्त होनेपर सूर्यवर्चाने भगवान् विष्णुसे यह याचना की—'भगवन्! यदि इस प्रकार मेरे शरीरका नाश होनेवाला है, तो मैं एक प्रार्थना करता हूँ—'जन्मसे ही मुझे ऐसी बुद्धि दीजिये, जो सब अर्थोंको सिद्ध करनेवाली हो।' यह सुनकर भगवान् विष्णुने देवसभामें कहा—'ऐसा ही होगा। देवियाँ तुम्हारे मस्तककी पूजा करेंगी। तुम पूज्य हो जाओगे।' भगवान्के ऐसा कहनेपर सूर्यवर्चा तथा आप सब देवता भी इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। सूर्यवर्चा ही, यह घटोत्कचका पुत्र था, जो मारा गया है। अतः समस्त राजाओंको श्रीकृष्णमें दोष नहीं देखना चाहिये।"

श्रीभगवान् बोले—राजाओ! देवीने जो कुछ कहा है, वह निःसन्देह वैसा ही है। मैंने देवसमाजमें सूर्यवर्चाको जो वर दिया था, उसका स्मरण करके ही गुप्तक्षेत्रमें देवीकी आराधनाके लिये मैंने इसे नियुक्त कर दिया था।

राजाओंसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण फिर चण्डिकासे बोले—देवि! यह भक्तका मस्तक है। इसे अमृतसे सींचो और राहुके सिरकी भाँति अजर-अमर बना दो। देवीने वैसा ही किया। जीवित होनेपर उस मस्तकने भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और कहा—'मैं युद्ध देखना चाहता

अरुणाचल-माहात्म्यखण्ड

भगवान् शङ्करका 'अरुणाचल' रूपसे प्रकट होना तथा ब्रह्मा और विष्णुका उनकी स्तुति करना

नैमिषारण्यनिवासी मुनियोंने कहा—सूतजी ! अब हमलोग आपसे अरुणाचल-माहात्म्य सुनना चाहते हैं।

श्रीसूतजी बोले—महर्षियो ! प्राचीन कालकी बात है, ब्रह्माजी सत्यलोकमें कमलके आसनपर विराजमान थे। उस समय महात्मा सनकने उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर पूछा—'भगवन् ! आप सम्पूर्ण भुवनके आधार तथा वेदवेद्य पुरुष हैं। चतुर्मुख ! आपकी कृपासे मुझे सम्पूर्ण विज्ञान प्राप्त है। दयानिधे ! भूमण्डलके समस्त शिवलिङ्गोंमें जो परम निर्मल, दिव्य तथा अपरिच्छिन्न महिमासे युक्त है, जिसके नाम-स्मरणमात्रसे समस्त पातकोंका विनाश हो जाता है, जो मनुष्योंको सदा भगवान् शिवका सारूप्य प्रदान करनेवाला है, जिसका आदि नहीं है, जो समस्त जगत्‌का आधार तथा भगवान् शङ्करका अविनाशी तेज है और जिसका दर्शन करके जीव कृतार्थ हो जाता है, उसकी महिमाका मुझे उपदेश कीजिये।'

ब्रह्माजीने कहा—बेटा ! तुमने मेरे अन्तःकरणमें पुरातन शिवयोगकी स्मृति दिलायी है। तुम्हारे प्रति आदरका भाव होनेसे मैंने चिन्तन करके उस योगको स्मरण कर लिया है। तुम्हारी अधिक तपस्याके प्रभावसे मेरे चित्तमें परम उत्तम शिवभक्तिका उदय हुआ है, जिसने मेरे हृदयको क्षणभरमें अपनी ओर आकृष्ट-सा कर लिया है। जिन पुरुषोंकी सदा आकुलतारहित (परम शान्त) भगवान् सदाशिवके प्रति भक्ति बढ़ती है, वे अपने चरित्रोंसे सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र कर देते हैं। शिवभक्तोंके साथ वार्तालाप, निवास, मेल-जोल, उनका दर्शन तथा स्मरण—ये सब पापोंका नाश करनेवाले हैं। पूर्वकालमें सबकी पापराशिको दूर करनेवाला, अविनाशी, करुणासे भरा हुआ और अद्भुत शैव तेज जिस प्रकार प्रकट हुआ था, वह वृत्तान्त सुनो। एक समय मेरे और भगवान् विष्णुके समक्ष एक अग्निमय स्तम्भ प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण लोकोंको लाँघकर ऊपरसे नीचेतक फैला था और सब ओरसे अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था। उसका कहीं भी आदि-अन्त न होनेके कारण वह सम्पूर्ण दिगन्तोंमें व्याप्त जान पड़ता था। भगवान् शिवके उस तेजोमय स्वरूपको देखकर मैंने भक्तिपूर्ण चित्तसे उसका मानसिक पूजन किया और अपने चारों मुखोंसे वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए शिवकी इस प्रकार स्तुति की—

'जो सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिके एकमात्र हेतु हैं, उन परम महान् भगवान् शिवको नमस्कार है। प्रभो ! जिनसे सब कुछ प्रकाशित होता है, उन्हीं आपको सादर नमस्कार है। शम्भो ! आपका यह विश्वव्यापी तेज सब ओर प्रकाश फैला रहा है; किंतु जो लोग आपकी कृपासे वञ्चित हैं, वे इसका दर्शन नहीं कर पाते। ठीक वैसे ही, जैसे जन्मके अन्धे सूर्यको नहीं देख पाते। अपने-आप प्रकट हुआ यह निर्मल लिङ्ग अध्यात्म-दृष्टिसे देखने योग्य है। यह भीतर और बाहर सर्वत्र विराजमान है, ऐसा आपके भक्त अनुभव करते हैं। देवेश्वर ! जैसे दर्पण अपनेमें प्रतिबिम्ब धारण करता है, उसी प्रकार योगीजन अपने अन्तरात्मामें आपके इस प्रज्वलित तेज—अपरिच्छेद्य विग्रहका दर्शन करते हैं। अथवा भगवान् शङ्करकी नित्य-शक्ति सूक्ष्मसे भी अतिशय सूक्ष्म है, वह शक्ति मुझमें भी विलीन होती है; अतः मुझसे बढ़कर दूसरा नहीं है। अणु (छोटे-से-छोटा जीव या पदार्थ) भी आपकी कृपाका पात्र बन जानेपर निश्चय ही महत्त्वको प्राप्त होता है। आपसे बढ़कर तो कोई है ही नहीं; किंतु आपका ही आश्रय लेनेके कारण मुझसे बढ़कर भी दूसरा कोई नहीं है। भगवन् ! आपमें लगाया हुआ मन आपसे एक क्षणके लिये भी वियोग नहीं चाहता, फिर किसकी प्रेरणासे मेरी वाणी आपकी महिमाके वर्णनमें प्रवृत्त हो। ईश ! महादेव ! आप समस्त भुवनोंमें सबसे उत्कृष्ट हैं; अतः स्वयं ही कृपा करके मुझपर प्रसन्न होइये। नाथ ! आपके चरणोंमें पड़े हुए इस भक्तको अपेक्षित कार्योंमें नियुक्त होनेके लिये आज्ञा दीजिये।'

विनयपूर्वक यह निवेदन करके मैंने हाथ जोड़कर देव-देवेश्वर भगवान्‌को बारंबार प्रणाम किया और उन्हींके समीप बैठ गया। तत्पश्चात् नूतन जलधरके समान गम्भीर ध्वनिवाले श्रीविष्णुने शङ्करजीकी महिमाके कीर्तनद्वारा अपनी विशुद्ध वाणीको और भी कृतार्थ करते हुए कहा—'तीनों लोकोंके अधीश्वर ! प्रभो ! गङ्गाधर ! जगन्नाथ ! विरूपाक्ष

करके निरन्तर आपके चरणकमलोंका ध्यान करना चाहिये।'

तब भगवान् चन्द्रशेखरने 'ऐसा ही होगा' यह कहकर भगवान् विष्णुको वरदान दिया और अरुणाचलरूपसे भी स्थावरलिङ्ग हो गये। समस्त लोकोंका एकमात्र कारण यह तैजसलिङ्ग अरुणाचल नामसे विख्यात हो इस भूतलपर दृष्टिगोचर हो रहा है। प्रलयकालमें सम्पूर्ण लोकोंको अपने भीतर डुबो देनेवाले चारों समुद्र भी इस अरुणाचलके निकटकी भूमिका स्पर्शतक नहीं कर पाते।

शिवके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा

ब्रह्माजी बोले—हे सनक! अरुणाचलरूपसे स्थित हुए भगवान् शङ्करके स्वरूपका जो लोग दर्शन और नमस्कार करते हैं, वे निश्चय ही कृतार्थ हो जाते हैं। अरुणाचलका दर्शन समस्त तीर्थोंमें स्नान और सम्पूर्ण यज्ञोंके अनुष्ठानका फल देनेवाला है; उससे भगवान् सदाशिवकी प्रसन्नता प्राप्त होती है। जो लोग प्रदक्षिणा, नमस्कार, तपस्या और नियमोंद्वारा अरुणाचलेश्वरका पूजन करते हैं, भगवान् शिव उनके अधीन हो जाते हैं। तपस्या, योग और दानसे भी भगवान् शङ्कर वैसे प्रसन्न नहीं होते, जैसे कि एक बार भी अरुणाचलके दर्शनसे होते हैं। जिसके द्वारा अरुणाचल-लिङ्गकी पूजा होती है, उसे कलियुगका दोष नहीं प्राप्त होता तथा उसकी आधि-व्याधि भी नहीं बढ़ने पाती।

नैमिषारण्यतीर्थमें निवास करनेवाले मुनियोंने सूतजीसे कहा—सब स्थानोंमें जो शिवजीका परम उत्तम स्थान हो उसका हमसे वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—मुनियो! पूर्वकालमें नन्दीश्वरके मुखसे मार्कण्डेयजीने जो कुछ सुना था, उसका वर्णन करता हूँ, आदरपूर्वक सुनो।

मार्कण्डेयजी बोले—नन्दीश्वर! इस त्रिलोकीमें तथा समस्त आगमों, पुराणों और वेदोंमें भी कोई ऐसी बात नहीं है जो आपको विदित न हो। आपने पहले यह बताया है कि भूमिपर मनुष्योंको लौकिक सुख, स्वर्गभोग तथा कैवल्य तीनोंकी प्राप्ति हो सकती है; इनमेंसे प्रथम दो वस्तुएँ (लौकिक सुख और स्वर्गभोग) पुण्य क्षीण होनेपर प्रायः नष्ट हो जाती हैं, परंतु तृतीय वस्तु (मोक्ष) का नाश नहीं होता। उसकी सिद्धि आपने बुद्धि एवं विज्ञानके द्वारा बतलायी है। किंतु समस्त देहधारियोंको विशुद्ध ज्ञान दुर्लभ है; वही ज्ञान किसी-किसी क्षेत्रमें शास्त्र आदि पढ़े बिना ही केवल शिवके पूजनमात्रसे सिद्ध हो जाता है। अतः जिस स्थानके माहात्म्यसे समस्त शरीरधारियोंको नियमपूर्वक शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति हो जाय, उसका मुझसे वर्णन कीजिये।

यों कहकर मार्कण्डेयजीने अन्यान्य मुनीन्द्रों और महात्माओंके साथ शिलादपुत्र नन्दीश्वरके चरणारविन्दोंमें सब शास्त्रोंकी प्राप्तिके लिये नमस्कार किया।

तब नन्दिकेश्वरने कहा—मुने! तुमने जिनके विषयमें पूछा है, वे शिवप्रधान तीर्थस्थान इस भूतलपर अवश्य हैं। भगवान् शङ्करने समस्त चराचर जीवोंका कल्याण करनेके लिये वैसे दिव्य स्थानोंको प्रकट किया है। देहधारियोंका अपने-अपने कर्मोंके अनुसार भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म होता है। आपने उन्हींके महान् हितके लिये शिवप्रधान तीर्थोंको सुननेकी इच्छा प्रकट की है; अन्यथा करोड़ों कल्पोंमें भी उन देहधारियोंके जन्म-मरणरूप संसारकी निवृत्ति नहीं हो सकती है। थोड़े कर्म तथा अधूरे ज्ञानसे जन्म-मरणकी परम्परा नहीं शान्त होती। जैसे रहटमें लगे हुए घड़े बार-बार डूबते और ऊपर आते हैं, उसी प्रकार देहधारियोंका आवागमन होता रहता है। विशुद्ध ज्ञानके सिवा अन्य किस उपायसे देहधारी जीव गर्भवासके कष्टों और सांसारिक शोकोंसे विरक्त होकर शान्ति लाभ कर सकते हैं? (शिवप्रधान तीर्थोंके सेवनसे उस ज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिससे मनुष्य संसार-बन्धनसे छुटकारा पा जाता है; अतः शैव तीर्थोंका वर्णन किया जाता है।)

'वाराणसी क्षेत्र' पाँच कोसतक परम पावन बताया गया है, जहाँ 'अविमुक्त' नामक महादेवजी 'विशालाक्षी' देवीके द्वारा पूजित होते हैं। वहीं 'कपालमोचन' तीर्थ है और वहीं कालभैरवका भी निवास है। मुने! उस काशीपुरीमें मरे हुए मनुष्योंको शिवस्वरूपकी प्राप्ति होती है। गया और प्रयाग भी सब सिद्धियोंको देनेवाले तीर्थ कहे गये हैं; वहाँ पिण्डदान करनेसे पितर बहुत सन्तुष्ट होते हैं। मुने! तुमने 'केदार' तीर्थका नाम सुना होगा; जहाँ भगवान् शङ्कर इस समय भी महिषरूप धारण करके रहते और मनुष्योंका सर्वथा कल्याण करते हैं। 'बदरिकाश्रम' तीर्थ मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। वहाँ देवी पार्वतीके साथ महादेवजी

नर-नारायणद्वारा पूजित होकर रहते हैं। तुमने 'नैमिषारण्य' क्षेत्रका नाम भी सुना होगा, जहाँ त्रिपुरासुरका विनाश करनेवाले देवाधिदेव महादेवजी निवास करते हैं। 'अमरेश' तीर्थ भी सब पुरुषार्थोंका साधक बताया गया है, वहाँ 'ओङ्कार' नामवाले महादेवजी और 'चण्डिका' नामसे प्रसिद्ध पार्वतीजी निवास करती हैं। 'पुष्कर' नामक महातीर्थमें 'रुजोगन्धि' शिव और 'पुरुहूता' देवी निवास करती हैं। 'आषाढ़ी' नामका पवित्र तीर्थस्थान है, वहाँ 'आषाढ़ेश' महादेव तथा 'रति' नामवाली देवी निवास करती हैं। 'दण्डिमुण्डी' नामसे प्रसिद्ध जो तीर्थस्थान है, वहाँ 'मुण्डी' महादेव और 'दण्डिका' देवीका निवास है। 'लाकुलि' नामक विशुद्ध तीर्थ है, जहाँ 'लाकुलीश' महादेव और 'सर्वमङ्गला' देवी निवास करती हैं। 'भारभूति' नामक स्थानमें 'भार' नामक शिव और 'भूति' नामवाली पार्वती रहती हैं। 'अरालकश्वर' नामक स्थान है, जहाँ 'सूक्ष्म' नामवाले शिव तथा 'सूक्ष्मा' नामवाली गिरिराजकुमारी निवास करती हैं। 'कुरुक्षेत्र' नामक स्थान है, जहा 'स्थाणु' नामवाले महादेव और 'स्थाणुप्रिया' नामवाली महादेवीका निवास है। 'कनखल' नामक उत्तम तीर्थस्थान है, जहाँ भगवान् शिव 'उग्र' नामसे और गिरिराजनन्दिनी 'उमा' नामसे निवास करती हैं। मार्कण्डेय! 'तालक' नामवाले तीर्थमें 'स्वयम्भू' महादेव और 'स्वायम्भुवी' महादेवी रहती हैं। 'अट्टहास' नामक महातीर्थ है, जहाँ सूर्यदेवने भगवान् शङ्करकी पूजा करके अपना मनोरथ पूर्ण किया था। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेय! 'कृत्तिवास' क्षेत्र है, जहाँका निवास महादेवजीके लिये कैलासकी अपेक्षा भी अधिक प्रिय है। 'श्रीशैल' पर भगवान् महेश्वर 'भ्रमराम्बिका' देवीके साथ 'मल्लिकार्जुन' नामसे निवास करते हैं। ब्रह्माजीने सृष्टिकार्यकी सिद्धिके लिये इनका पूजन किया था। 'सुवर्णमुखरी' नदीके तटपर भगवान् शङ्कर 'कालहस्ती' नामसे प्रसिद्ध हैं; उनके साथ 'भृङ्गमुखरालका' नामवाली अम्बिका देवी रहती हैं। भगवान् व्यासने वहाँ अम्बासहित भगवान् शिवकी आराधना की थी। 'काञ्चीपुरी'में एक आमके वृक्षके नीचे 'कामाक्षी' देवीके साथ भगवान् शिव 'कामशासन' नामसे निवास करते हैं। 'व्याघ्रपुर' नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जहाँ तिल्लीवनके भीतर नृत्य करते हुए भगवान् 'नटराज'की महर्षि पतञ्जलि उपासना करते हैं। 'सेतुबन्ध' नामक तीर्थ है, जहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने समस्त पापोंका नाश करनेवाले महादेवजीकी 'रामेश्वर' नामसे स्थापना की है। 'गजप्रपा' नामक एक तीर्थस्थान है, जहाँ भगवान् 'वृषभध्वज' सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करनेके लिये अश्वत्थवृक्षके नीचे विराजमान हैं। 'वृद्धाचल' क्षेत्रमें 'मणिमुक्ता' नदीके तटपर महादेवजी सदा निवास करते हैं, यह बात तो तुमने सुनी ही होगी। 'मध्यार्जुन' नामक उत्तम स्थानका नाम भी तुमने सुना ही होगा, जहाँ मनोवाञ्छित वर देनेवाले भगवान् शङ्कर गौरीदेवीके साथ नित्य निवास करते हैं। भगवान् 'सोमनाथ' जहाँ निवास करते हैं, उस 'सोमतीर्थ'का नाम भी तुमने सुना होगा, जहाँ शरीर त्याग करनेवाले पुरुषोंको पुनः संसार-बन्धनकी प्राप्ति नहीं होती। 'सिद्धवट' नामक क्षेत्रकी चर्चा भी तुम्हारे सुननेमें आयी होगी, जहाँ सिद्धपुरुष उत्तम 'ज्योतिर्लिङ्ग'की पूजा करते हैं। 'कमलालय' नामक क्षेत्रका नाम तुम्हारे कानोंमें अवश्य पड़ा होगा, जहाँ 'वाल्मीकेश्वर' की पूजा करनेसे लक्ष्मीदेवीने अद्भुत ज्ञान प्राप्त किया था।

'द्रोणपुर' नामक तीर्थको तो तुम जानते ही हो, जहाँ कलियुगकी समाप्तिमें समुद्रके क्षुब्ध होनेपर भगवान् पार्वतीपति नौकापर आरूढ होते हैं। 'ब्रह्मपुर' क्षेत्रका नाम भी तुम्हारे सुननेमें आया होगा, जहाँ ब्रह्माजीने पुष्करिणीके तटपर महादेवजीकी स्थापना की थी। तुम 'कोटिक' नामक क्षेत्रको भी जानते हो, जहाँ भगवान् चन्द्रशेखर भलीभाँति ध्यान करनेवाले पुरुषोंके करोड़ों पापोंका संहार करते हैं। 'गोकर्ण' क्षेत्रका नाम तुम्हारे कानोंमें पड़ा होगा, जिसके समीप भगवान् शिवकी आराधनाकी अभिलाषा रखनेवाले परशुरामजी स्वर्गलोकका सुख भी नहीं चाहते। 'त्रिपुरान्तक' क्षेत्रका नाम भी तुम्हें बताया है, जहाँ तीन नेत्रोंवाले भगवान् शिव अपना दर्शन करनेवाले पुरुषोंके नरकभयका निवारण करते हैं। 'कालञ्जर' क्षेत्र है, जहाँ निवास करनेवाले भगवान् 'नीलकण्ठ' भक्तोंके भयङ्कर संसाररोगका निवारण करते हैं। 'प्रियाल' वन प्रसिद्ध क्षेत्र है, जहाँ भगवान् अम्बिकापतिने दूधकी इच्छा रखनेवाले उपमन्युको दूधका समुद्र ही दे डाला था। 'प्रभास' क्षेत्रका परिचय भी तुम्हें दिया गया है, जहाँ भगवान् 'चन्द्रार्धशेखर'ने श्रीकृष्ण और बलभद्रसे पूजित होकर अक्षय फल प्रदान किया है। 'वेदारण्य' तीर्थको जानते हो, जहाँ प्रजापति दक्षने मोक्षके लिये भगवान् शङ्करकी प्रार्थना की थी। 'हेमकूट' का नाम तुमने सुना होगा, जो भगवान् 'त्रिलोचन'का स्थान है, जहाँ तपस्या करनेवाले पुरुषोंका पुनर्जन्म नहीं होता। 'वेणुवन' नामक क्षेत्र सब पापोंका नाश करनेवाला है, जहाँ वंशलताके गर्भसे मुक्तामणिमय भगवान् शिव प्रकट हुए। अन्धकासुरके शत्रु भगवान् शिवका 'जालन्धर' नामक स्थान तुमने सुना होगा, जहाँ तपस्या करके जलन्धरने शिवगणोंका आधिपत्य प्राप्त किया है। 'ज्वालामुख' नामक स्थानको तो तुम जानते ही हो, जहाँ ज्वालामुखी देवीने भगवान् 'कालरुद्र'का पूजन किया है। 'भद्रपट' नामसे प्रसिद्ध एक क्षेत्र है, जिसे तुमने

भी सुना होगा, जहाँ भक्तोंने सम्पत्तिके लिये भगवान् त्रिलोचनका पूजन किया है। 'गन्धमादन' क्षेत्र तुम्हारे सुननेमें आया होगा, जहाँ भगवान् मृत्युंजयकी पूजा करके मनुष्य निश्चय ही सुख प्राप्त करता है। मैंने शिवजीके 'गोपर्वत' नामक स्थानका भी परिचय दिया है, जहाँ उपासना करके पाणिनि वैयाकरणोंमें अग्रगण्य हो गये। 'वीरकोष्ठ' नामक क्षेत्रका तो तुम्हें स्मरण है न, जहाँ तपस्या करके महर्षि वाल्मीकिने कवियोंमें प्रधानता प्राप्त कर ली। 'महातीर्थ' को तो तुम जानते ही होगे, जहाँ भगवान् शङ्करने ब्रह्मा आदि देवताओंको पढ़ाया है। 'मयूरपुर' (मायावरम्) नामक माहेश्वर तीर्थ है, जहाँ तपस्या करके इन्द्रने वज्र प्राप्त किया। वेगवती नदीके तटपर 'श्रीसुन्दर' नामक क्षेत्र है, जहाँ कलियुगमें भी देवाधिदेव महादेवजी शोभा पाते हैं। भगवान् शङ्करके 'कुम्भकोण' नामक स्थानको तुम जानते हो, जहाँ माघ मासमें साक्षात् गङ्गा भी अपने पापकी शान्तिके लिये निवास करती हैं। गोदावरी नदीके तटपर 'त्र्यम्बक' नामक स्थान है, जहाँ कार्तिकेय ने तारकासुरको मारनेवाली शक्ति प्राप्त की है। श्रीपा 'व्याघ्रपुर' नामक स्थान है, जहाँ त्रिशङ्कु मुनिने जाति-शु लिये 'गङ्गाधर' शिवका पूजन किया था। 'कदम्बपुरी' ना क्षेत्र तो तुम्हें याद ही होगा, जहाँ महादेवजीने तुम्हा लिये त्रिशूलसे कालपर भी आघात किया था। 'अवि क्षेत्रमें भगवान् शिव पार्वतीदेवीके साथ सदा निवास क हैं। 'रक्तकानन' नामसे प्रसिद्ध जो क्षेत्र है, उसमे भग शिवने मित्र और वरुण देवताको वरदान दिया था पातालमें 'हाटकेश्वर' क्षेत्र है, जहाँ विरोचनकुमार अपने अभिलषित पदकी प्राप्तिके लिये महादेवजीकी करते हैं। भगवान्‌के प्रिय निवास 'कैलास' को तो तुम जा ही हो, जहाँ यक्षराज कुबेर भक्तिभावसे भगवान् त्रिलोच की पूजा करते हैं। भगवान् शिवके ये सभी स्थान बतलाये हैं, तुमने भी इनको ध्यानसे सुना ही होगा। और क्या सुनना चाहते हो ?

अरुणाचल क्षेत्रकी महिमा, विभिन्न पापोंके फल और उन पापकर्मोंका प्रायश्चित्त

मार्कण्डेयजी बोले—प्रभो ! आपने पहले जिन स्थानोंका वर्णन किया है, उनमें भिन्न-भिन्न फल प्राप्त होते हैं। जहाँ सब फलोंकी प्राप्ति एक ही जगह हो जाय, वह स्थान मुझे बतलाइये। मुझे उस देशका परिचय दीजिये, जिसके स्मरण करनेमात्रसे ज्ञानी और अज्ञानी समस्त चराचर जीवोंकी मुक्ति हो जाती है।

नन्दिकेश्वरने कहा—मुने ! तुम्हारे सिवा अ किस व्यक्तिने इस प्रकार दीर्घकालतक मेरी सेवा की है मेरा भी तुम्हारे ऊपर जैसा प्रेम है, ऐसा और किसीपर न है। इसलिये मैं तुम्हें महादेवजीके गुप्तक्षेत्रका उपदे करूँगा, जो भक्ति और मुक्ति चाहनेवाले पुरुषोंके द्वा श्रद्धापूर्वक सुनने योग्य है। मेरे द्वारा परमेश्वर शिवके रहस्यका उपदेश किया जाता है, तुम एकाग्रचित्त होक सुनो और इसपर दृढ़ विश्वास करो। कामदेवका नाश करने वाले भगवान् शिवका स्मरण करो, भगवती पार्वतीजीके चरणोंमें मस्तक झुकाओ। तत्पश्चात् ॐकारका उच्चारण करो, यह तुम्हारे लिये महान् कल्याणका अवसर प्राप्त हुआ है। तपोधन ! दक्षिण दिशामें द्राविड़देशके भीतर भगवान चन्द्रशेखरका अरुणाचल नामक महान् क्षेत्र है, जिसका विस्तार तीन योजन है। शिवभक्तोंको उस क्षेत्रका अवश्य सेवन करना चाहिये। उस प्रदेशको पृथ्वीका हृदय समझो। भगवान् शिव उसे सदा अपने हृदयमें रखते हैं। लोक-हितकारी महादेवजी उस क्षेत्रमें स्वयं ही पर्वतरूपमें प्रकट हो 'अरुणाचल' नामसे विख्यात हैं। अरुणाचल क्षेत्र समस्त सिद्धों, महर्षियों, देवताओं, विद्याधरों, यक्षों, गन्धर्वों तथा अप्सराओंका निवासस्थान है। अरुणाचल साक्षात् परमेश्वर शिवका स्वरूप है तथा वह महर्षियोंके लिये मेरु, कैलास और मन्दराचलसे भी अधिक माननीय

है । वहाँ सिंह, व्याघ्र आदि पशु भी जब काल आनेपर अपने शरीरका परित्याग करते हैं, तब उन्हें अरुणाचलवासी भगवान् शिव निश्चय ही अपने सेवकोंके रूपमें स्वीकार करते हैं । लाख-लाख वृक्षों और पल्लवोंके रूपमें लक्षित होनेवाली जटा धारण किये यह अरुणाचल जङ्गम शिवकी भाँति स्थावर शिव है । जिसके सुन्दर शिखरमें लगा हुआ नीला और लाल रंग भगवान् शिवके नीललोहित रूपकी झाँकी कराता है तथा जहाँ स्थावररूपमें प्रकट हुए महादेवजी स्थाणुभावको प्रत्यक्ष धारण करते हैं । यहीं उनका स्थाणु नाम सार्थक होता है । इस अरुणाचल क्षेत्रमें योगिराज गौतमने सहस्रों वर्षोंतक तीव्र तपस्या करके भगवान् सदाशिवका साक्षात्कार किया है । पूर्वकालमें गिरिराजनन्दिनी उमाने भी वहीं तपस्या करके प्रसन्न किये हुए शिवके शरीरमें वामार्द्ध भागपर अधिकार प्राप्त किया था । गौरीदेवीने वहाँ अरुणाचलेश्वर लिङ्गकी स्थापना की है, जो मनुष्योंको भोग और मोक्ष प्रदान करता है । पार्वतीकी आज्ञासे वहाँ साक्षात् महिषासुरमर्दिनी दुर्गादेवी निवास करती हैं, जो अपने भक्तोंको निर्विघ्न मन्त्रसिद्धि प्रदान करती हैं । वहाँ श्रीदुर्गाजीके द्वारा पूजित 'पापनाशन' नामक लिङ्ग भी सुशोभित है, जो एक बार प्रणाम करनेमात्रसे मनुष्योंके समस्त पाप हर लेता है । इस क्षेत्रमें वज्राङ्गद नामक राजाने, जो कुबेरके अपराधसे हीन दशाको पहुँच गये थे, पुनः भगवान् शिवकी भक्तिके माहात्म्यसे शिवसायुज्य प्राप्त कर लिया । अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करनेमात्रसे कान्तिशाली और कलाधर नामक विद्याधरराज दुर्वासाके शापबन्धनसे मुक्त हो गये थे । भगवान् शिवके ज्ञानसे बढ़कर दूसरा कोई ज्ञान नहीं है, रुद्रियसे बढ़कर दूसरी कोई श्रुति नहीं है, भगवान् विष्णुसे बढ़कर दूसरा कोई श्रेष्ठ शिवभक्त नहीं है, विभूतिसे बढ़कर रक्षाका कोई साधन नहीं है, भक्तिसे उत्तम कोई सदाचार नहीं है, दीक्षा देनेवालेसे बढ़कर दूसरा कोई गुरु नहीं है, रुद्राक्षसे बढ़कर कोई आभूषण नहीं है, शिवशास्त्रसे उत्तम कोई शास्त्र नहीं है, बिल्वपत्रसे उत्तम पत्र, धतूरेसे उत्तम फूल, वैराग्यसे बढ़कर सुख और मुक्तिसे बढ़कर कोई श्रेष्ठ पद नहीं है ।

शिलादपुत्र नन्दिकेश्वरके ऐसा कहनेपर मार्कण्डेयका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ । वे आश्चर्यचकित हो उठे । उन्होंने पुनः बार-बार प्रणाम करके नन्दीश्वरजीसे निवेदन किया—'प्रभो ! मनुष्योंका कौन-कौन-सा कर्म कैसे-कैसे होता है और किस प्रकार वह नरककी प्राप्ति करानेवाला सुना जाता है ? उन-उन कर्मोंका प्रतीकार (प्रायश्चित्त) कैसे होता है ? यह सब आप मुझे बताइये ।'

नन्दिकेश्वर बोले—मुने ! इस संसारमें सात्त्विक पुरुष पुण्यशील होनेके कारण कल्याणको प्राप्त होता है । कर्म तीन प्रकारके हैं—सात्त्विक, राजस और तामस । अतः विधाताने इन तमःप्रधान कर्मोंके उपभोगके लिये विचित्र-विचित्र नरकोंका भी निर्माण किया है । ब्रह्महत्याके पापसे मनुष्य मृत्युके पश्चात् गदहा, कुत्ता अथवा सूअर होकर फिर चाण्डाल होता है । शराब पीनेसे द्विज चिरकालतक नरकमें पड़े रहनेके पश्चात् कृमि, कीट एवं पतङ्गयोनिको प्राप्त होता है, अथवा कर्मकर (दास) होता है । ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेसे मनुष्य ब्रह्मराक्षस होता है तथा जिस-जिस वस्तुकी वह चोरी करता है, दूसरे जन्ममें वह-वह वस्तु उसे नहीं प्राप्त होती । गुरुपत्नीगमन करनेवाला पुरुष चिरकालतक असिपत्र वनमें यातना भोगकर अन्तमें नपुंसक होता है । पर-स्त्रीगामी मनुष्य यमदूतोंद्वारा लोहेके तपाये हुए डंडोंसे पीटा जाता और कालसूत्र नामक नरकमें निवास करता है । आग लगानेवाला घोर नरकमें वास करता है, जहर देनेवाला सुघोर नरकमें, चुगलखोर महाघोर नरकमें और धर्मकी निन्दा करनेवाला अवीची नरकमें पड़ता है । मित्रद्रोही कराल नामक नरकमें, हिंसक भीम नरकमें, छिपकर पाप करनेवाला संहार नरकमें, असत्यवादी भयानक नरकमें तथा पराये खेत और धन आदिका अपहरण करनेवाला मनुष्य अतिघोर नरकमें निवास करता है । परद्रोहपरायण पुरुष वज्रमें, मांस-भक्षण करनेवाला द्विज तरलमें, माता-पितासे द्रोह करनेवाला तीक्ष्ण और जपकी निन्दा करनेवाला तापन नामक नरकमें पड़ता है । घोड़ेकी हत्या करनेवाला निरुच्छ्वासमें, गोहत्यारा दारुणमें, भ्रूण-हत्यारा चण्डमें और स्त्रीकी हत्या करनेवाला कूलक नरकमें वास करता है । देवसम्पत्तिका अपहरण करनेवाला दहनमें और पराया धन हरण करनेवाला घोर-घोर नरकमें पड़ता है । यमराजके दूत सभी पापियोंको नरकमें गिराते हैं, उन्हें रस्सियोंसे बाँधते हैं, डंडोंसे पीटते हैं और कीलोंसे छेदते हैं । तीखी चोंचवाले बगुले, गीध, भयङ्कर नेत्रोंवाले बड़े-बड़े सर्प, काले नाग, व्याघ्र तथा अन्य हिंसक जीव उन पापियोंको डँसते हैं । शस्त्रोंसे काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं, देहको आगमें डालकर जलाते हैं, गहरे गड्ढेमें

गाड़ते हैं, ऊपरसे कोड़ोंसे पीटते हैं, खौलते हुए तेलके कड़ाहेमें पकाते हैं तथा महीन सूइयोंसे छेद-छेदकर पीड़ा पहुँचाते हैं। यमदूत पापियोंसे ऐसे बड़े-बड़े भार ढुलवाते हैं, जिनको ढोना बहुत ही कठिन है। भगवान् विष्णुसे वैर करनेवाला मनुष्य गिरगिट और शिवद्रोही पुरुष मर्कट (वानर) होता है। इस प्रकार पापोंका फल जानकर उसकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। आस्तिक पुरुषोंको इस 'अरुण' क्षेत्रमें ही पापोंका भलीभाँति प्रायश्चित्त करना उचित है।

अब मैं पापपूर्ण चित्तवाले समस्त प्राणियोंकी शुद्धिके लिये विस्तारपूर्वक प्रायश्चित्तका वर्णन करता हूँ—ब्रह्मघाती मनुष्य अरुणाचलक्षेत्रमें जाकर कद्रूतीर्थमें गोता लगावे और भस्म एवं रुद्राक्ष धारण करके पञ्चाक्षरमन्त्रका जप करते हुए उपवास करे, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर परमेश्वर भगवान् शिवकी पूजा करे और ब्राह्मणोंको भोजन करावे। तत्पश्चात् एक वर्षतक भिक्षाके अन्नपर निर्वाह करते हुए जितेन्द्रियभावसे वहाँ रहे और भगवान् अरुणाचलका भक्तिपूर्वक विशेष पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्यासे मुक्त हो ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है। मदिरा पीनेवाला मनुष्य भी अरुणक्षेत्रमें एक वर्षतक विशुद्ध आचार-विचारसे रहे और महादेवजीकी पूजा करके शतरुद्रियका पाठ करते हुए उन्हें दूधसे नहलावे। ऐसा करनेपर वह मदिरापानजनित पापसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला पातकी अरुणक्षेत्रमें महादेवजीकी बिल्वपत्रोंसे पूजा करके यदि ब्राह्मणोंको भोजन करावे तो उस दुस्तर पापसे छुटकारा पा जाता है। गुरुपत्नीगामी पुरुष अरुणाचलमें जाकर भक्तिपूर्वक व्रतका पालन करते हुए प्रतिदिन षडक्षर मन्त्रका जप करे तो उस पापसे मुक्त हो जाता है। परायी स्त्रीका अपहरण करनेवाला मनुष्य अरुणाचल-क्षेत्रमें जिते भावसे निवास करे और एक मासतक प्रतिदिन न फूलोंसे अरुण शिवकी पूजा करे तथा शक्तिके अनुसार का दान करे, तो वह तत्काल पापमुक्त हो जायगा। जहर वाला मनुष्य भी अरुण-क्षेत्रमें पूर्वोक्त रीतिसे व्रतका करते हुए निवास करे और महादेवजीको सब प्रकारके उपहा करे तो वह उस दोषसे छूट जाता है। चुगलीका करनेवाला भी अरुण-क्षेत्रमें व्रती होकर वेदोक्त कर्ममें रहते हुए यदि श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको पढ़ावे या प सहायता करे तो वह पापरहित हो जाता है। स्त्री, ब और गायकी हत्या करनेवाला पुरुष भी अरुण-क्षेत्रमें ज अपने पापका नाश करनेके लिये व्यतीपात-योगमें ब्राह्मणोंको दान करे। छिपे पाप करनेवाला भी यदि अरुण-क्षे इन्द्रियसंयमपूर्वक गुप्त दान करे तो निष्पाप हो जाता असत्यवादी मनुष्य अरुणक्षेत्रमें छः महीनेतक निवास क प्रतिदिन अरुणाचलेश्वर-स्तोत्रका पाठ करनेसे पापरहित जाता है। घरका अपहरण करनेवाला मनुष्य नूतन शिवमं बनवा दे, तो शीघ्र ही पापसे मुक्त हो भगवान् शिवके सायु को प्राप्त होता है। यदि किसी अभीष्ट वस्तुके लिये प्रार्थ करनी हो, तो पैदल चलकर ही भगवान् अरुणाचल प्रदक्षिणा करे; इससे वह शुभ अभीष्ट अनायास ही प्राप्त सकता है। छींक आनेपर, पाँव लड़खड़ानेपर, परवश होनेप बुरे सपने देखनेपर और प्रीतिकी अधिकता होनेपर भी विद्वा पुरुषोंको भगवान् अरुण—शङ्करका नामोच्चारण करना चाहिये गया, प्रयाग, काशी, पुष्कर तथा सेतुबन्ध तीर्थमें मनुष्योंको ज पुण्य प्राप्त होता है, उससे भी अधिक पुण्य इस अरुण-क्षेत्र मिलता है। अरुण-क्षेत्रके समीप किये हुए शास्त्रोक्त सोलह दा द्विगुण फल देनेवाले होते हैं।

अरुणाचलेश्वरकी पूजा, शिवजीके द्वारा सृष्टिका प्रादुर्भाव तथा विष्णुके द्वारा भगवान् शङ्करकी स्तुति

नन्दिकेश्वरजी कहते हैं—षडक्षर मन्त्रके द्वारा दहीसे और प्रणवद्वारा दूधसे भगवान् शिवको स्नान कराना चाहिये। विषुव-योगमें तथा अयनारम्भके दिन अरुणाचलनाथको प्रातःकाल भक्तिपूर्वक तुलसी निवेदन करना चाहिये। दोपहरको अमलतास और तीसरे पहरमें बेलाका पुष्प चढ़ाना अरुणाचलेश्वरके लिये उत्तम माना गया है। अघोर मन्त्रद्वारा एक हजार कलशोंके जलसे उन्हें स्नान कराना चाहिये। शिवरात्रिमें शतरुद्रियका पाठ करके बिल्वपत्रोंके द्वारा अरुणाचलेश्वरकी विशेष पूजा करनी चाहिये। रात्रिको जागरण करते हुए जितेन्द्रिय होकर कमल और कनेरके फूलोंसे तथा गीत, वाद्य और नृत्यके द्वारा दिव्य आगमोक्त विधिसे मोक्षके लिये अरुणाचलवासी महेश्वरकी पूजा करनी चाहिये। भक्तिमान् पुरुष अपने जन्म-नक्षत्रके दिन तथा सम्पत्ति, विपत्ति और भयका अवसर आनेपर भगवान् अरुणाचलनाथकी

विशेष पूजा करे। प्रवेश और यात्राके समय भी अरुणेश्वरकी पूजा करनी चाहिये। यदि इस क्षेत्रमें स्थित होकर तीनों समय शिवजीकी पूजा करे, तो भुजा उठाकर डंकेकी चोट यह कहा जा सकता है कि स्वर्ग और मोक्षके लिये अरुणाचल-क्षेत्रसे बढ़कर दूसरा कोई स्थान नहीं है। अरुण-क्षेत्र अपना स्मरण करनेसे मनको, श्रवण करनेसे दोनों कानों-को, दर्शन करनेसे दोनों नेत्रोंको तथा नामोच्चारण करनेसे जिह्वा-को तत्काल पवित्र कर देता है। इस महाक्षेत्रमें जन्म प्राप्त होनेपर देहधारी जीव जीते-जी भोग और मरनेपर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

मुने! पूर्वकालमें देव-कल्पके आदिमें विकल्पशून्य भगवान् शिवने स्वेच्छासे ही सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न किया। उत्पन्न हुए विश्वकी सृष्टि-परम्परा चालू रखने तथा सर्वदा इसकी रक्षा करनेके लिये भगवान् त्रिलोचनने अपने दाहिने अङ्गमे ब्रह्मा और बायें अङ्गसे विष्णुको प्रकट किया। तत्पश्चात् ब्रह्माको रजोगुणसे और विष्णुको सत्त्वगुणसे युक्त किया। फिर देवाधि-देव महादेवसे प्रेरित होकर वे दोनों देवता सृष्टि एवं रक्षाके कार्यमें संलग्न हो सम्पूर्ण जगत्का शासन करने लगे। तदनन्तर ब्रह्माजीने मरीचि आदि दस पुत्रोंको अपने मनः-सङ्कल्पसे तथा दक्षको दाहिने अँगूठेसे उत्पन्न किया। फिर मुखसे ब्राह्मणों, दोनों बाहोंसे क्षत्रियों, दोनों ऊरुओंसे वैश्यों और दोनों चरणोंसे शूद्रोंको प्रकट किया। मरीचिनन्दन कश्यपसे देवता और असुर उत्पन्न हुए। मरुत्, नाग, यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओंका जन्म भी उन्हींसे हुआ। इसी प्रकार मनु भी ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए, जिनकी यह मानव-सन्तान आजतक चल रही है। महर्षि अत्रिसे ऋषिवंश तथा क्षत्रियोंका विविध कुल उत्पन्न हुआ। पुलस्त्य और पुलहसे यक्ष एवं राक्षस हुए। अङ्गिरा-मुनिसे उतथ्य और बृहस्पति आदिका जन्म हुआ। भृगुसे अग्निकी उत्पत्ति हुई तथा च्यवन आदि महर्षि भी उन्हींसे उत्पन्न हुए। वसिष्ठ आदि अन्य ब्रह्मर्षियोंसे भी बहुत-से महर्षियोंका जन्म हुआ। जिनके पुत्र-पौत्रोंसे यह सम्पूर्ण जगत् भरा हुआ है। इस प्रकार ब्रह्माजीने अपनी सन्तानोंसे इस जगत्को पूर्ण किया है।

एक समय भगवान् विष्णुने भगवान् शङ्करका इस प्रकार स्तवन किया—'पृथ्वीरूप शरीरवाले महादेव! आपकी जय हो। जलरूपधारी शङ्कर! आपकी जय हो। सूर्यका रूप धारण करने-वाले शिव! चन्द्रमाकी आकृति धारण करनेवाले रुद्रदेव! आपकी जय हो! अग्निरूप महेश्वर! पवनरूपधारी परमेश्वर! यजमान-मूर्तिधारी शिव! आपकी जय हो। आकाशस्वरूप महेश्वर! त्रिगुणातीत परमेश्वर! कालस्वरूप मृत्युञ्जय! मेरी रक्षा कीजिये। अक्षय ऐश्वर्यसे सम्पन्न महादेव! करुणानिधान! मेरी रक्षा कीजिये। आप सम्पूर्ण जगत्के स्रष्टा और समस्त देहधारियोंके रक्षक हैं, सब भूतोंका संहार करनेवाला भी आपके सिवा दूसरा कौन है? आप सूक्ष्म वस्तुओंमें सबसे अधिक सूक्ष्म (परमाणु) हैं और महान् पदार्थोंमें सबसे महान् भी आप ही हैं। आप ही इस जगत्के बाहर और भीतर व्याप्त होकर विराज रहे हैं। सम्पूर्ण वेद आपके निःश्वास हैं। यह सारा विश्व आपके शिल्पकर्मकी विभूति है। प्रभो! सब कुछ आपका ही है; मुझे ज्ञान दीजिये। देवता, दानव, दैत्य, सिद्ध, विद्याधर, मनुष्य, पशु-पक्षी, पर्वत और वृक्ष भी आप ही हैं। स्वर्ग, अपवर्ग, ॐकार और यज्ञ भी आप ही हैं; आप ही योग तथा पराशक्ति हैं। महेश्वर! ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो आप नहीं हैं? स्थावर, जङ्गम सभी प्राणियोंके आदि, मध्य और अन्त भी आप ही हैं। आप ही कालरूप होकर सम्पूर्ण जगत्को अपना ग्रास बनाते हैं। आप ही परात्पर परमेश्वर, सबपर शासन करनेवाले तथा सबपर दया दिखानेवाले शिव हैं। वे भगवान् शङ्कर किस प्रकार मुझे प्रत्यक्ष दर्शन देंगे, जिनका दर्शन पाकर शरणागत भक्त परम कल्याणको प्राप्त होता है। अथवा अपनी बुद्धिके अनुसार मैं उन विश्व-विधाताकी स्तुति करता हूँ।

देव! महादेव! वामदेव! वृषध्वज! आपकी जय हो। आप कालके भी काल हैं; आपने दक्षके यज्ञका विध्वंस किया है। नीलकण्ठ! चन्द्रशेखर! आपकी जय हो। शम्भो! शिव! ईशान! शर्व! त्र्यम्बक! धूर्जटे! आपकी जय हो। आप कामके शत्रु हैं। आपने त्रिपुरासुरका विनाश किया है। आप स्थिर होनेसे स्थाणु, उद्भव-हेतु होनेसे भव तथा महान् ईश्वर होनेसे महेश्वर कहलाते हैं। ईश! आपकी जय हो। खण्डपरशो! शूलिन्! पशुपते! हर! सर्वज्ञ! भर्ग! भूतनाथ! कपालिन्! नीललोहित! आपकी जय हो। रुद्र! यज्ञविनाशन! पिनाकपाणे! प्रमथाधिप! गङ्गाधर! व्योम-केश! गिरीश! परमेश्वर! आपकी जय हो। भीम! मृगव्याध! कृत्तिवासा! कृपानिधे! आपकी जय हो। प्रभो! अग्नि आपका बीज है, आप कैलासपर सदा ही निवास करते हैं, आपहीकी आज्ञासे वायु चलती है और शेषनाग पृथ्वीका भार ढोते हैं। शर्व! आपहीके शासनसे सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं, समूचा ब्रह्माण्ड समुद्रमें तैरता रहता है और

ग्रह-नक्षत्र आकाशमें विचरण करते हैं। आपके ही आदेशसे मैं और ब्रह्मा पालन तथा सृष्टिके कार्यमें समर्थ होते हैं और कल्पके अन्तमें मैं निद्रा त्यागकर पृथ्वीका पालन करता हूँ। आपका आदि और अन्त नहीं मिला; यह आपकी महिमा ही है। अणिमा, महिमा आदि महासिद्धियोंके कारण आपका वैभव असाधारण है। आप अन्य सब देवताओंसे श्रेष्ठ हैं। शङ्कर ! मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ ! सम्पत्तिमें तो हम आपको भूल जाते हैं और विपत्तिमें स्मरण करते हैं। भक्तोंपर आपको कभी क्रोध नहीं आता; सदा ही उनपर कृपा और प्रसन्नता बनी रहती है। जब आप अपनी भक्ति प्रदान करते हैं, तब बोध प्राप्त होता है और उससे मोक्ष मिलता है।'

शिव-पार्वतीके दाम्पत्य-जीवनकी एक झाँकी, पार्वतीकी अरुणाचल क्षेत्रमें तपस्या और दुर्गादेवीके द्वारा शुम्भ, निशुम्भ और महिषासुरका वध

मार्कण्डेयजीने पूछा—भगवन् ! महादेवी गौरीने अरुणाचल-तीर्थमें किस प्रकार तपस्या की है, यह बताइये।

नन्दिकेश्वरने कहा—महामते मार्कण्डेय ! मुझे जैसा मालूम है, वैसा बता रहा हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। यह तो तुम जानते ही हो कि पूर्वकालमें भगवान् शिवने दक्ष-कन्या सतीके साथ विवाह किया था और सती उन्हें बहुत प्यारी थीं। फिर जब उनके पिता दक्षप्रजापतिने उन्हींके पति भगवान् शङ्करसे द्रोह किया, तब उन्होंने किस प्रकार क्रोधमें आकर योग-शक्तिसे अपने शरीरका त्याग कर दिया; यह बात भी तुमने सुनी ही होगी। उस समय भगवान् शिवकी आज्ञासे वीरभद्रने जो दक्ष-यज्ञका विध्वंस किया था, वह महान् इतिहास भी तुम्हें ज्ञात ही होगा। तदनन्तर देवी सतीने पुनः गिरिराज हिमवान्‌के घरमें जन्म लिया, उस समय उनका नाम उमा और पार्वती पड़ा। कुछ समय बाद देवी पार्वती स्थाणु वनमें भगवान् शिवकी एकान्त सेवा करने लगीं, परंतु महादेवजीने उनकी ओर रुचि नहीं की और कामदेवको कालाग्निसे भस्म कर दिया। तब अपने प्रियगणोंके साथ कहीं एकान्तवास करनेवाले जितेन्द्रिय शिवने देवताओंको विदा कर दिया और स्वयं पार्वतीदेवीके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे। पार्वतीजीका रंग साँवला था। उन्होंने शङ्करजीकी प्रसन्नताके लिये अपनी उस काली चमड़ीको उतार फेंका। जहाँ वह चमड़ी फेंकी गयी, वहाँ 'महाकाली-प्रपात' नामक उत्तम क्षेत्र बन गया और काली कौशिकी नामसे प्रसिद्ध हो विन्ध्याचल पर्वतपर रहकर तपस्या करने लगीं। वहीं उन्होंने अपने प्रति आसक्त होनेवाले शुम्भ-निशुम्भ नामक दोनों महादैत्योंको मार डाला। फिर वहीं परम मनोहर गौरीशिखरपर तपस्यासे गौर वर्ण प्राप्त करके देवीने अपने (आदिस्वरूपमें स्थित होकर) पतिको सन्तुष्ट किया। पुनः क्रमशः गर्भवती होकर पार्वतीने गणेश तथा छः मुखोंवाले सेनानी—इन दो पुत्रोंको जन्म दिया। बालकोंको बढ़ते हुए देखकर माता-पिता हर्षके समुद्रमें मग्न हुए-से रहते थे और पुत्रोंके प्रति उनका प्रेम अत्यन्त पुष्ट हो रहा था। भगवान् शिव और पार्वती कभी वीणा बजाते और कभी दिव्य शास्त्रोंकी चर्चा करते। कभी मैनाक, कभी मेना और कभी हिमवान् इन दोनों दम्पतिकी पूजा किया करते थे। इस प्रकार चराचर जगत्‌के माता-पिता शिव-पार्वतीने मेरु

निकलती हुई अत्यन्त पवित्र धूमराशि जहाँ होम किये हुए पुरोडाशकी सुगन्ध फैला रही थी। उस आश्रमपर एक ऋषिश्रेष्ठ दिखायी दिये, जो हाथके अग्रभागसे रुद्राक्षकी माला जप रहे थे। वहाँ पहुँचकर पार्वतीने तपोधनसे पूछा—

'तुम कौन हो? तथा यह श्रेष्ठ पर्वत कौन है? जहाँ तुम तपस्या करते हो?' वे बोले—'देवि! यह अरुणाचल पर्वत है, जो समस्त पुण्य-क्षेत्रोंमें सम्मानित है। मैं गौतम नामक मुनि हूँ और तपस्याद्वारा भगवान् शिवकी आराधना करता हूँ।' यों कहकर तथा विजया आदि सखियोंके मुँहसे पार्वतीजीका परिचय पाकर उन्होंने बड़ी भक्तिसे देवीको प्रणाम किया और अपनी पर्णशालामें ले जाकर कन्द-मूल और फल आदिके द्वारा उनका आतिथ्य-सत्कार किया। मुनिने सम्पूर्ण जगत्के मङ्गलकी मूलभूता तपस्याके लिये अनुमति दी और ज्योतिस्तम्भके प्रादुर्भावसे लेकर अरुणाचलकी समस्त महिमाका यथाशक्ति वर्णन किया। साथ ही यह भी बताया कि मैं यहीं भगवान् त्रिलोचनकी स्थापना करके पवित्र चित्तसे तपस्याके द्वारा यथाशक्ति उनकी आराधना करता हूँ। देवि! मेरे आश्रमके समीप यह बड़ा भारी पुण्यक्षेत्र है, यहाँ आश्रम बनाइये और चिरकालतक तपस्या कीजिये।

मुनिके इस प्रकार आदेश देनेपर पार्वतीने आश्रम बनाना स्वीकार किया और बड़ी भारी तपस्या करनेके लिये उद्योग किया। अन्यान्य जीवोंसे आश्रमकी रक्षा करनेके लिये वनवासिनी उमाने सुभगा और धुन्धुमारीको पूर्व आदि दिशाओंमें स्थापित किया। फिर सम्पूर्ण तपोवनकी रक्षा करनेके लिये उन्होंने उन दुर्गाजीको आदेश दिया जिनका प्रयत्न कभी प्रतिहत नहीं होता तथा जो पार्वतीजीकी आज्ञा निबाहनेमें समर्थ हैं। तत्पश्चात् उमाने मन्दारके फूल गूँथने योग्य अपनी वेणीको खोलकर उसे तपस्याके लिये जटाभ रूपमें परिणत कर दिया। हंसछाप किनारेकी हल्की साड़ उतारकर कठोर वल्कल पहन लिया। उन्होंने कुश बिल्वपत्र तोड़े तथा सबेरे पवित्र नदीमें स्नान करके चन्दनमिश्रित जल और फूलसे सूर्यनारायणको विधिप अर्घ्य दिया। उसके बाद प्रदक्षिणा करके सहस्रों बार प्र किया। फिर स्वयं ही शास्त्रोक्त विधिसे शिवलिङ्गकी स्था करके उसकी विधिपूर्वक पूजा की। पाद्य और अर्घ्य नि करके भगवान्‌का अभिषेक किया। चन्दन और पुष्प च तथा धूप और दीप अर्पण किये। तत्पश्चात् पञ्चोपचा पुनः भगवान् शिवके हृदयादि छः अङ्गोंका पूजन कि इस प्रकार एक दिनका पूजन पूर्ण करके प्रतिदिन वे प्रकार प्रदक्षिणा और प्रणाम आदिके सहित शिवजीकी करने लगीं। शिवशास्त्रोंमें बतायी हुई विधिके अ सौभाग्यदायक द्रव्योंसे पूजाके अन्तमें प्रज्वलित अग्निके वे आहुति देती थीं। कन्द, मूल, फल आदि समस्त उपक का संग्रह करके वे उनके द्वारा अतिथियोंका सत्कार क थीं। ग्रीष्म ऋतुमें पाँच प्रदीप्त अग्नियोंके मध्य अँग बलपर खड़ी रहती थीं। सर्दीमें सरोवरके भीतर खड़ चन्द्रमाकी सुधामयी किरणोंसे पुष्ट होती थीं। व रात्रियोंमें अन्धकारके भीतर स्थिरभावसे खड़ी हुई प ऐसी दिखायी देती थीं मानो वर्षाकी धाराओं बादलोंके साथ बिजली ही प्रकाशित हो रही हो। मनोरथकी सिद्धिके लिये वे सखियोंके साथ अरुणाच प्रदक्षिणा करती थीं। पञ्चाक्षरका जप, शिवजीके स्तो पाठ तथा मनके द्वारा अरुणाचल पर्वतरूपी महादेवजीका तथा साष्टाङ्ग प्रणाम करना उनका नित्यका नियम था प्रकार उन्होंने दीर्घकालतक तपस्या की।

इसी बीचमें देवताओंकी अवहेलना तथा इन्द्रके वैभ विध्वंस करनेवाले महिषासुरने कहींसे यह सुनकर अरुणाचलमें पार्वती रहती हैं, उन्हें देखनेके लिये दूतीको भेजा। वह वरदानके प्रभावसे सम्पूर्ण शस्त्र अवध्य हो गया था। वह पापी धर्ममार्गका नाशक मुनिपत्नियोंको भी कलङ्कित करनेवाला था। बल, पु नमुचि तथा वृत्रासुरसे भी उसमें अधिक बल था। उ भेजी हुई दूती तपस्विनीका रूप धारण करके पार्वतीके

आयी और सखियोंके सामने ही अनुनय-विनयके साथ इस प्रकार बोली—'सुन्दरी ! तुम इस भयङ्कर स्थानमें क्यों निवास करती हो ? तुम्हें यहाँ देखकर मुझे खेद होता है। तुम तो मनोहर अन्तःपुरके महलोंमें विहार करने योग्य हो। तुमने अपने चित्तको भोगोंकी ओरसे हटाकर किसलिये ऐसी तपस्यामें लगा रक्खा है, जो देवताओंके लिये भी दुष्कर है ? भाग्यवश तपस्वी शिवकी पूजा तो तुमने पहले ही कर ली है, तुम्हारे योग्य देवताओंमें दूसरा कोई नहीं है। किंतु इस त्रिभुवनके स्वामी दानवराज महिष अवश्य तुम्हारे योग्य हैं। सुभ्रु ! यदि तुम उन्हें देख लोगी तो क्षणभरमें इस तपस्याका त्याग कर दोगी। वे सबके स्वामी महाराज महिषासुर तुम्हें यहाँ आयी हुई सुनकर कामवेदनासे व्याकुल हो उठे हैं, उन्होंने तुम्हें बुला लानेके लिये मुझ दूतीको यहाँ भेजा है।'

इस प्रकार वह दूती जब अत्यन्त विरुद्ध और अनाप-शनाप वाक्य बोलने लगी, तब देवी पार्वतीकी मानसिक अवस्थाको जानकर उनकी सखी विजयाने उसे आश्रमके बाहर निकाल दिया। तब उसने अपना दैत्यरूप प्रकट करके अत्यन्त रोषके साथ पार्वतीको ले जानेकी प्रतिज्ञा की और घर जाकर महिषासुरको सब समाचारोंसे अवगत कराया। वह भी वहाँकी सब बातें सुनकर क्रोधसे जल उठा और अत्यन्त लाल आँखें करके करोड़ों दैत्योंके साथ पार्वती देवीको पकड़ ले जानेके लिये आया। रथ, हाथी, घोड़े और पैदल इस चतुरङ्गिणी सेनाके द्वारा उसने पृथ्वीको और रथके ध्वजोंसे आकाशको आच्छादित कर दिया। दैत्योंके पदाघातसे पृथ्वी फटने लगी। कराल, दुर्धर, चिचण्णु, विकराल, बाष्कल, दुर्मुख, चण्ड, प्रचण्ड, अमरासुर, महाहनु, महामौलि, उग्रास्य, विकटेक्षण, ज्वालास्य और दहन—ये सेनापति भी युद्धके लिये प्रस्थित हुए। यह कोलाहल सुनकर पार्वती देवीने अपनी तपस्यामें विघ्न पड़नेकी आशङ्कासे दुर्गादेवीको दैत्योंके संहारके लिये आदेश दिया। दुर्गादेवी अरुणाचलकी एकान्त गुफामें सिंहपर आरूढ़ हुई और अपने हाथोंमें प्रदीप्त अस्त्र धारण करके कालिकाकी भाँति पृथ्वीपर आयीं। उन्होंने मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान बड़ा भयङ्कर सिंहनाद किया। पार्वतीका प्रिय

तथा दैत्योंका संहार करनेके लिये दुर्गादेवीके अङ्गोंसे योगिनियोंकी मण्डली तथा सहस्रों रोषमें भरी हुई मातृकाएँ प्रकट हुईं। उन सबकी कान्ति कमलके समान थी, उन्होंने व्याघ्रपर सवार हो रणके लिये प्रस्थान किया। उनके साथ घर्घर शब्द करनेवाले बहुतसे गण तथा अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाली करोड़ों मातृकाएँ भी चलीं। चन्द्रमाके समान गौर वर्णवाली उन मातृकाओंने आश्रमके बाहर पहुँचकर हठपूर्वक चौसठ करोड़ दैत्योंको घेर लिया। तदनन्तर योगिनीमण्डल तथा दानवसेनामें परस्पर घोर युद्ध होने लगा, जो समस्त प्राणियोंके लिये भयङ्कर था। योगिनियोंके छोड़े हुए बाणोंसे दैत्योंके मस्तक कट-कटकर पृथ्वीको इस प्रकार आच्छादित करने लगे, मानो वे स्थलसे ही उत्पन्न हुए हैं। थोड़ी ही देरमें रक्तकी नदियाँ बह चलीं। कुछ दैत्य डंडोंसे, कुछ शूलोंसे, कुछ शक्तियोंसे, कुछ वज्रोंसे और कुछ योगिनियोंकी तलवारोंसे मौतके घाट उतारे गये। इस प्रकार मारे हुए दानवेश्वर बिना सेनापतिके सैनिकोंकी भाँति सर्वथा नष्ट हो गये। चामुण्डाने चक्रके अग्रभागसे चण्ड-मुण्डके मस्तक काट डाले, इन्हीं दोनों दैत्योंका संहार करनेसे इनका यह (चामुण्डा) नाम प्रसिद्ध हुआ। तब महिषासुरने क्रोधमें भरकर युद्ध करनेके लिये देवीपर आक्रमण किया। उस समय प्रचण्ड, चामर, महामौलि, महाहनु, उग्रास्य, विकराक्ष, ज्वालास्य तथा दहन भी उसके पीछे-

पीछे चले । ठीक वैसे ही, जैसे कालनेमि आदि असुर विप्रचित्तिके पीछे चलते हैं । वे सभी शिरस्त्राण (टोप) धारण किये, रथपर बैठे, तरकस बाँधे और धनुष लिये युद्ध-भूमिमें पहुँचे । दैत्य बाणोंकी वर्षा करते हुए मातृमण्डलकी ओर दौड़े । उस समय वे मातृकाएँ देवीकी इस प्रकार स्तुति करने लगीं—'देवि ! आप ही ब्रह्माकी सृष्टिशक्ति, विष्णुकी पालनशक्ति तथा रुद्रकी संहारशक्ति कही जाती हैं । आप ही यशोदा और नन्दसे उत्पन्न हुई देवी हैं, जो एका और अनंशाके नामसे प्रसिद्ध हैं । आप ही कंस आदि असुरोंका संहार करनेके कार्यमें भगवान् विष्णुकी सहायता करेंगी । देवि ! दुर्गे ! आप ही महामाया, लक्ष्मी, सरस्वती तथा पार्वती हैं ।'

इस स्तोत्रसे सन्तुष्ट होकर दुर्गादेवीने मातृकाओंको अभयदान दिया और स्वयं महिषासुरसे युद्ध करनेके लिये निकलीं । उन्होंने हलके अग्रभागसे प्रचण्डको, भिन्दिपालसे चामरको, छुरीसे महामौलिको, कृपाणसे महाहनुको, कुठारसे उग्रवक्त्रको, शक्तिसे विकटाक्षको, मुद्गरसे ज्वालामुखको और मुसलसे दहनको मार गिराया । फिर महिषासुरके सामने स्वयं ही रोषपूर्वक युद्ध करती हुई देवीने बड़ा भयङ्कर सिंहनाद किया । उस समय वे मन-ही-मन प्रसन्न थीं । देवीका सिंहनाद सुनकर महिषासुरको बड़ा क्रोध हुआ । उसने बाणोंसे दुर्गाजी-के ताल्रू और नेत्रोंपर प्रहार किया । तब दुर्गाने भी कुपित होकर उस असुरेश्वरकी दोनों बाहों, छाती और मुखमें जलती हुई धारवाले बाणोंसे प्रहार किया । यह देख दैत्यने तीन बाणोंसे दुर्गाके मुखको बींध डाला, पाँच-पाँच बाणोंसे उनकी दोनों भुजाओंमें और दो-दो बाणोंसे दोनों नेत्रोंमें आघात किया । फिर दुर्गाने भी एक बाणसे दैत्यके सारथिको और आठ बाणोंसे घोड़ोंको मार डाला । तीन बाणोंसे उसके धनुषको और चार सायकोंसे रथकी ध्वजाको भी [illegible] गिराया । तब दैत्यराज महिषने पैदल होकर दुर्गाजीके [illegible] सब ओरसे प्रज्वलित एक शतघ्नी चलायी, जो कालद[illegible] समान भयङ्कर थी । देवता हाहाकार कर उठे, मातृ[illegible] भाग खड़ी हुईं; परंतु दुर्गाने अपनी ओर आती हुई शतघ्नीको लीलापूर्वक पकड़ लिया । तब प्रलयकालीन मे[illegible] समान महिषासुरने एकके बाद एक करके धनुष, प[illegible] भुशुण्डी, तलवार, कील, शक्ति, गदा, चक्र, तोमर, फ[illegible] अङ्कुश, फरसा, भिन्दिपाल, पट्टिश और दण्ड आदि अ[illegible] शस्त्रोंकी वर्षा की, परंतु शत्रुके चलाये हुए उन सभी आयु[illegible] को अपने पास आते ही दुर्गादेवी हाथसे पकड़ लेतीं [illegible] जैसे हथिनी कमलकी नालको अनायास ही तोड़ डालती उसी प्रकार वे उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालती थ[illegible] महिषासुर क्षणमें सिंह, क्षणमें वाराह, क्षणमें व्याघ्र, क्ष[illegible] हाथी तथा क्षणमें भैंसा होकर दुर्गाजीसे युद्ध कर रहा थ[illegible] उसने अत्यन्त रोषमें भरकर अपने तीखे सींगोंसे दुर्गा[illegible] और उनके सिंहको भी बार-बार घायल किया । वह क्ष[illegible] आकाशमें चला जाता, क्षणमें पृथ्वीपर उतर आता, क्ष[illegible] चारों दिशाओंमें घूम आता और क्षणमें गर्जना [illegible] लगता था ।

इसी समय दानवराज महिष अपने असली रूपमें दे[illegible] सामने आया । तब दुर्गाने तलवारसे ही उसके मस्त[illegible] काट डाला और उस कटे हुए मस्तकको हाथमें लेकर रणभूमिमें नृत्य करने लगीं । इस प्रकार दुर्गादेवीके [illegible] समस्त भुवनोंके कण्टकरूप महिषासुरके मारे जानेपर दे[illegible] हर्षसे नाचने लगे, महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हो गये मेघोंने दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की ।

खड्गतीर्थकी उत्पत्ति, ज्योतिदर्शन, पार्वतीपर अरुणाचलेश्वरकी कृपा तथा भगवान् शिवका वरदा[illegible]

मार्कण्डेयजी बोले—प्रभो ! इस प्रकार भद्रकाली-द्वारा महिषासुरके मारे जानेपर तपस्यामें लगी हुई गिरिराज-नन्दिनी पार्वतीने क्या किया ?

नन्दिकेश्वरने कहा—मुने ! तदनन्तर दुर्गादेवीने एक हाथमें दैत्यका मस्तक लिये दूसरे खड्गयुक्त हाथसे गौरी-देवीको प्रणाम किया । हर्षसे नृत्य करती हुई दुर्गाको दयार्द्र-दृष्टिसे देखकर पार्वतीने अपने दाँतोंकी किरणोंसे आकाशमें प्रकाश बिखेरते हुए उनसे इस प्रकार कहा—'विन्ध्यवासिनि! तुमने अत्यन्त दुष्कर पराक्रम किया है । तुम्हारे प्रभ[illegible] मेरी तपस्याका विघ्न दूर हो गया । देवि ! तुम्हारा च[illegible] सम्पूर्ण जगत्में पवित्र है । तुमने अपने हाथमें जो महिषासुरका अपवित्र एवं भयङ्कर मस्तक ले रक्खा है, त्याग दो और एक नूतन पापनाशक तीर्थ उत्पन्न [illegible] जिसमें स्नान करनेसे पापका प्रायश्चित्त होगा ।' [illegible] देवीके यों कहनेपर पापकी आशङ्कावाली सामर्थ्यशा[illegible] दुर्गाने अपनी तलवारसे एक शिलाखण्डको विदीर्ण कि[illegible]

वह पत्थर पातालतक छिद्रयुक्त हो गया। फिर वहाँसे अत्यन्त निर्मल, परम पवित्र, तरङ्गयुक्त जल ऊपरकी ओर उठा। उस पावन एवं गम्भीर जलमें दुर्गादेवीने 'नमः शोणाद्रिनाथाय' इस उत्तम मन्त्रका उच्चारण करके गोता लगाया। इतनेहीमें महिषासुरके कण्ठमें स्थित शिवलिङ्ग उसमेंसे खिसककर जलके किनारे स्वयं प्रतिष्ठित हो गया और 'पापनाशन' नामसे प्रसिद्ध हुआ। तत्पश्चात् तीर्थके जलसे समस्त पाप धुल जानेपर दुर्गादेवी बाहर निकलीं। फिर उनके हाथसे महिषासुरका मस्तक नीचे गिर पड़ा।

तदनन्तर कार्तिककी पूर्णिमाको रात्रिमें अरुणाचलके शिखरपर कोई अपूर्व ज्योति दिखायी दी। ईंधन, तेल और

रूईकी बत्तीके बिना ही जलते हुए उस महाप्रदीपको देखकर पार्वतीको बड़ा विस्मय हुआ। वे प्रदक्षिणा करके पग-पगपर अरुणाचलनाथको प्रणाम करती हुई इस प्रकार स्तुति करने लगीं—'मेरुगिरिपर निवास करनेवाले आप कैलासवासी भगवान् शिवको नमस्कार है। हिमाचलके जामाता अरुणाचल-रूपधारी आपको प्रणाम है। वरुण आदि देवताओंके पूजनीय, मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजस्वी, करुणामूर्ति अरुणाचलनाथको नमस्कार है। भगवन्! आपका मस्तक जाह्नवी गङ्गा तथा चन्द्रमाकी कलासे सुशोभित है; आप भगवान् शिवकी जय हो। मायासे नारायणस्वरूप धारण करके भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करनेमें परम प्रवीण महादेव! अपने आनन्दसे ताण्डव नृत्य करनेवाले शम्भो! शिव! ईशान! देवता, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधरोंसे पूजित होने-वाले प्रभो! गणेशके जन्मदाता आपकी जय हो। छः मुखों-वाले कार्तिकेयपर अत्यन्त स्नेह रखनेवाले शिव! आपकी जय हो। हिमवान्‌कुमारी पार्वतीके प्रार्थनीय पतिदेव! प्रभो! राजाओंको भी आपका दर्शन दुर्लभ है; आपकी जय हो।'

इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक स्तुति करके उस ज्योतिमें नेत्र लगाये रखनेवाली देवी पार्वतीको देखकर उनपर दया करनेके व्याजसे भगवान् वृषभध्वज अन्तर्धान हो गये और पुनः अपने अत्यन्त सुन्दर रूपको प्रकट करके दिव्य वृषभपर आरूढ़ हो कल्याणमयी पार्वतीको सान्त्वना देनेके लिये उद्यत हुए। महादेवजीको अपने समीप आया देख उमादेवी आनन्दमें निमग्न हो गयीं। उन्होंने चिरकालसे प्राप्त प्रियतमके वियोगजनित दुःखको भुला दिया। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, मुखपर पसीना छा गया। उन्होंने काँपते-काँपते पतिदेवके चरणोंकी अङ्गुलियोंपर दृष्टि-पात किया। तब भगवान् शिव वृषभसे उतरकर उनका हाथ अपने हाथमें ले मुसकराते हुए मुखारविन्दसे प्रेमपूर्वक बोले—'देवि! क्यों अकारण अपने चित्तको व्याकुल कर रही हो? क्या तुम नहीं जानती—चन्द्रमा और चाँदनीकी भाँति हम दोनों सदा एक दूसरेसे अभिन्न हैं? मैं नारायण हूँ, तुम लक्ष्मी हो; मैं ब्रह्मा हूँ, तुम सरस्वती हो; मैं शेषनाग हूँ, तुम वारुणी हो; मैं चन्द्रमा हूँ और तुम रोहिणी हो; तुम स्वाहा, मैं अग्नि; तुम सुवर्चला, मैं सूर्य; तुम शची, मैं इन्द्र; तुम रति, मैं काम; तुम बुद्धि, मैं राजराज; तुम शिवा, मैं समीर; तुम लहर, मैं समुद्र तथा तुम प्रकृति और मैं पुरुष हूँ। तुम विद्या हो और मैं तुम्हारे द्वारा जानने योग्य तत्त्व हूँ। तुम वाणी हो, मैं अर्थ हूँ। पार्वती! मैं ईश्वर हूँ और तुम्हीं मेरी शक्ति हो। सृष्टि, पालन और संहारके कार्यमें सदा अनुग्रह रखनेवाली ईश्वरी! तुम्हें अन्य साधारण जनोंकी भाँति मुझमें और अपनेमें भेद-भाव नहीं करना चाहिये। देवि! हम दोनों चेतना और प्रकाशरूप हैं। हमने स्वेच्छासे पृथक् शरीर धारण किये हैं।'

ऐसा कहकर महादेवजीने स्वयं बैठकर पार्वतीको भी अपने वामपार्श्वमें बिठा लिया। वे लज्जासे भगवान् शिवके वामाङ्गमें मानो छिपी जा रही थीं। प्रेमसे परस्पर लीन हुए शिव-और पार्वतीके दो शरीर एकताको प्राप्त हो गये; मानो अत्यन्त सन्निकट पहुँचे हुए दो अर्थ स्पष्ट प्रतीत हो रहे

हैं। शिव और शिवाका वह एकताको प्राप्त हुआ शरीर विचित्र शोभा धारण कर रहा था। आधा अङ्ग कपूरके समान श्वेत था, तो आधा अङ्ग ईंगुरके समान लाल। आधे सिरमें घुँघराले बाल, आधी छातीमें हार और चोली, एक पैरमें नूपुर, एक कानमें झुमक और एक हाथमें कङ्कणसे वह रूप बड़ा ही मनोहर प्रतीत होता था। इस प्रकार अपना वामार्द्ध भाग पार्वतीदेवीको समर्पित करके महादेवजीने उनसे कहा—'देवि! अब तुम्हें ऐसे रोषका अवसर न मिले, जिससे कि तुम दूध पीनेकी इच्छा रखनेवाले कार्तिकेयको छोड़कर तपस्याके लिये चल दी थीं; इसलिये अब मेरे समीप इस तीर्थमें तुम 'अपीतस्तनी' नामसे निवास करो। देवि! अपीतस्तनी नामसे तुम्हारा और अरुणाचलेश्वर नामसे मेरा आराधन करके सब लोग भोग और मोक्षका सुख प्राप्त करें। तुम्हारे अंशसे उत्पन्न हुई यह महिषासुरमर्दिनी दुर्गा यहाँ साधन करनेवाले मनुष्योंको मन्त्रसिद्धि प्रदान करेंगी। यह पवित्र खड्गतीर्थ एक ही बार गोता लगानेसे मनुष्योंके सब रोगोंको हर लेनेवाला और सब पापोंका नाश करनेवाला हो। ये पापनाशक भगवान् अरुणाचलनाथ अपनेमें भक्ति और श्रद्धा रखनेवाले मनुष्योंको सदा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हों। देवि! ये गौतम मुनि तुम्हारे कृपापात्र हैं; अतः जबतक चन्द्रमा और ताराओंकी स्थिति रहे, तबतक ये सब लोकोंमें अपनी तपस्याके अनुरूप फल प्राप्त करें। ये सात लोकोंकी एकमात्र जननी सातों मातृकाएँ संसारको वैभव प्रदान करनेके लिये आजसे इस तीर्थमें निवास करें। शासक भैरव, क्षेत्रपाल और बटुक भी इस अरुणाचलक्षेत्रमें ही नित्य निवास करें। मैं भी तुम करुणामयी अरुणादेवीके साथ अरुण नाम धारण करके इस अरुणाचल क्षेत्रमें निवास करूँगा। अतः इस अरुण क्षेत्रमें सब प्रकारकी सिद्धियाँ सुलभ होंगी।' जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीद्वारा अरुणाचलेश्वरको प्रसन्न करनेके इस पावन प्रसंगको सुनता है, वह काम क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करके अनायास सुलभ स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त कर लेता है।

कान्तिशाली तथा कलाधरका उद्धार, राजा वज्राङ्गदद्वारा अरुणाचलेश्वरकी आराधना तथा भगवान् शिवकी उनके ऊपर कृपा

मार्कण्डेयजीने पूछा—भगवन्! पाण्ड्यदेशके राजा वज्राङ्गदने किस प्रकार भगवान् अरुणाचलका व्यतिक्रम किया और फिर उन्हींकी भक्तिसे वे किस प्रकार वैभवको प्राप्त हुए? कान्तिशाली और कलाधर—ये दोनों विद्याधरराज भगवान् अरुणाचलेश्वरकी कृपासे किस प्रकार दुर्वासाके शाप-बन्धनसे मुक्त हुए?

नन्दिकेश्वर बोले—मुने! पाण्ड्यदेशमें वज्राङ्गद नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। वे बड़े धर्मात्मा, न्यायवेत्ता, शिवपूजापरायण, जितेन्द्रिय, गम्भीर, उदार, क्षमाशील, शान्त, बुद्धिमान्, एकपत्नीव्रती और पुण्यात्मा थे। राजा वज्राङ्गद शीलवानोंमें सबसे श्रेष्ठ थे और शत्रुओंको जीतकर समूची पृथ्वीका शासन करते थे। एक दिन घोड़ेपर सवार हो वे शिकार खेलनेके लिये निकले और अरुणाचलतकके दुर्गम वनमें गये। उन्होंने वहाँ किसी कस्तूरी-मृगको देखा। उसके शरीरसे सब ओर बहुत सुगन्ध फैल रही थी। उसे देखते ही राजाने कौतूहलवश उसके पीछे घोड़ा दौड़ाया। मृग वायु और मनके समान वेगसे भागा और अरुणाचल पर्वतके चारों ओर चक्कर लगाने लगा। तब अधिक परिश्रम होनेके कारण राजा कान्तिहीन होकर घोड़ेसे गिर पड़े। उस समय मध्याह्नकालीन सूर्यके प्रखर तापसे उन्हें अत्यन्त पीड़ा हुई। वे ग्रहसे गृहीत हुएकी भाँति क्षणभरके लिये अपने आपकी भी सुध-बुध खो बैठे थे। तत्पश्चात् उन्होंने सोचा—'मेरी शक्ति और धैर्यका यह अकारण ह्रास कहाँसे हो गया? वह हृष्ट-पुष्ट मृग मुझे इस पर्वतपर छोड़कर कहाँ चला गया?' राजा जब इस प्रकारकी चिन्तासे व्याकुल और अज्ञानसे दुखी हो रहे थे, इसी समय आकाश सहसा विद्युत्पुञ्जसे व्याप्त-सा दिखायी दिया। उनके देखते-देखते घोड़े और मृगने तिर्यग् (पशु) योनिका शरीर त्यागकर क्षणभरमें आकाशचारी विद्याधरका रूप धारण कर लिया। उनके मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल, कण्ठमें हार और बाहोंमें भुजबन्ध शोभा पा रहे थे। दोनों रेशमी धोती और दिव्य पुष्पोंकी मालाएँ धारण करके शोभा पा रहे थे।

यह सब देखकर राजाका चित्त आश्चर्यचकित हो रहा था; तब वे दोनों विद्याधर बोले—'राजन्! विषाद करनेकी आवश्यकता नहीं। आपको मालूम होना चाहिये, हम दोनों भगवान् अरुणाचलेश्वरके प्रभावसे इस उत्तम दशाको प्राप्त हुए हैं।' उनकी इस बातसे राजाको कुछ आश्वासन-सा मिला। तब वे हाथ जोड़कर उन दोनोंसे विनयपूर्वक बोले—'आप दोनों कौन हैं? मेरा यह पराभव किस कारणसे हुआ है? आप दोनों कल्याणकारी पुरुष हैं, अतः मुझे

मेरी पूछी हुई बातें बताइये ? क्योंकि सङ्कटमें पड़े हुए पुरुषोंकी रक्षा करना महापुरुषोंका महान् गुण है।'

राजाके ऐसा प्रश्न करनेपर कलाधरने कान्तिशालीकी आज्ञासे इस प्रकार कहा—"राजन् ! हम दोनों पहले विद्याधरोंके राजा थे। हममें बसन्त और कामदेवकी भाँति परस्पर बड़ी मित्रता थी। एक दिन मेरुगिरिके पार्श्वभागमें दुर्वासाके तपोवनमें, जहाँ मनसे भी पहुँचना अत्यन्त कठिन है, हम दोनों जा पहुँचे। वहाँ मुनिकी परम पवित्र पुष्पवाटिका थी, जो एक कोसतक फैली हुई थी। वह वाटिका शिवाराधनके काममें आती थी। हमने देखा—खिले हुए फूलोंसे वह बड़ी मनोहर जान पड़ती थी। हमलोग तत्त्व-चिन्तनमें तत्पर हो फूल तोड़नेकी उत्कण्ठासे उस फुलवाड़ीमें घुस गये। उस रमणीय स्थानके प्रति प्रेम हो जानेसे हमारा मित्र यह कान्तिशाली गर्वसे फूल उठा और बारंबार वहाँकी भूमिपर पैर पटकता हुआ इधर-उधर विचरने लगा। मैं वहाँ पुष्पोंकी अतिशय सुगन्धसे मोहित हो दुर्वासनावश विकसित पुष्पोंपर हाथ रख दिया करता था।

"मेरे इस अपराधके कारण बिल्ववृक्षके नीचे व्याघ्र-चर्मके आसनपर बैठे हुए तपोराशि दुर्वासा मुनि आगकी भाँति जल उठे और अपनी दृष्टिसे मानो हमें जला डालेंगे

इस प्रकार देखते हुए हमारे समीप आ गये। आकर हमें फटकारते हुए बोले—'ओ पापियो ! तुमलोगोंने सज्जनोचित सदाचारका उल्लङ्घन किया है और अत्यन्त अहङ्कारमें भरकर मेरे इस पवित्र तपोवनमें विचर रहे हो। मेरा यह उद्यान सब प्राणियोंका पोषण करनेवाला है। इसे अपने चरणोंके प्रहारसे दूषित करनेवाला यह पापी संसारमें घोड़ा हो जाय तथा दूसरेकी सवारी ढोनेके कारण कष्ट उठाता रहे तथा दूसरा जो यह अत्यन्त उग्र स्वभाववाला है, फूलोंकी सुगन्धके प्रति लोभ रखकर आया है इसलिये कस्तूरीमृग होकर पर्वतकी कन्दरामें गिरे।'

"इस प्रकार भयानक रोषसे वज्रके समान दुर्वासा मुनिका शाप प्राप्त होनेपर उसी क्षण हम दोनोंका गर्व गल गया और हम मुनिकी शरणमें गये। उनके चरणारविन्दोंको अपने हाथोंसे पकड़कर हमने प्रार्थना की–'भगवन् ! आपका यह शाप अमोघ है, अतः यह बतानेकी कृपा करें कि इसका अन्त कब होगा।' राजन् ! तब हम दोनोंको अत्यन्त दीन एवं दुखी देखकर मुनिके हृदयमें दयाका सञ्चार हो आया। वे करुणाकी वर्षासे शीतलस्वभाव होकर बोले—'अरे ! तुम दोनों अब कभी खोटी बुद्धिका आश्रय लेकर ऐसे बर्ताव न करना। अरुणाचलकी परिक्रमा करनेसे तुम्हारे इस शापका निवारण होगा। अरुणाचल साक्षात् भगवान् शिवके स्वरूप हैं। प्राचीन कालमें इन्द्र, उपेन्द्र और यम आदि दिक्पालोंने सैकड़ों वर्षोंतक इनकी उपासना की थी। उसी समय नन्दन-वनके देवता इन्द्रने देवाधिदेव महादेवजीको एक लाल रंगका अद्भुत फल भेंट किया। वह मनको लुभा लेनेवाला था। उसे देखकर गणेश और कार्तिकेय दोनों भाई अपने बालक-स्वभावके कारण कौतूहलवश उसकी ओर आकृष्ट हो गये और अपने पिता भगवान् शङ्करसे वह फल माँगने लगे। तब भगवान् शिवने वह फल अपनी मुट्ठीमें छिपा लिया और उसकी अभिलाषा रखनेवाले दोनों कुमारोंसे इस प्रकार कहा, 'पुत्रो ! तुम दोनोंमेंसे जो भी लोकालोक पर्वतसे घिरी हुई इस समूची पृथ्वीकी परिक्रमा करनेमें समर्थ हो उसे ही यह फल दूँगा।' पार्वतीवल्लभ शिवने जब मुसकराते हुए मुख-चन्द्रसे ऐसी बात कही, तब कार्तिकेयजीने समस्त पृथ्वीकी परिक्रमा आरम्भ कर दी। परंतु गणेशजी अरुणाचलरूपी पिता महादेवजीकी ही परिक्रमा करके तत्काल उनके सामने खड़े हो गये। उनकी यह चतुराई देखकर भगवान् शिवने स्नेहसे उनका मस्तक सूँघकर उन्हींको वह फल दे दिया और यह वरदान दिया कि 'आजसे तुम सभी फलोंके अधिपति हो जाओ।' एक दाँतवाले गणेशजीको ऐसा वर देकर भगवान्

शङ्करने वहाँ आये हुए समस्त देवताओं और असुरोंसे कहा—'यह अरुणाचल मेरा स्थावर विग्रह है। जो इसकी परिक्रमा करता है वह समस्त ऐश्वर्योंका भागी होता है। जो पुरुष इस पर्वतको अपने दाहिने रखकर इसके चारों ओर चक्कर लगाता है वह चक्रवर्ती राजा होकर अन्तमें सर्वोत्कृष्ट सनातन पदको प्राप्त कर लेता है।' महादेवजीकी इस आज्ञासे सब देवताओंने अरुणाचलकी परिक्रमा करके अपना-अपना अभीष्ट मनोरथ प्राप्त किया। अतः तुम दोनों भी जब अरुणाचलकी प्रदक्षिणा कर लोगे, तब उससे तुम्हारे शापका अन्त हो जायगा। पशुयोनिमें रहनेपर भी पाण्ड्यनरेश वज्राङ्गदके सम्बन्धसे तुम दोनोंके द्वारा अरुणाचलकी परिक्रमा सम्पन्न होगी और वह सफल भी हो जायगी।"

कलाधरने कहा—नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर मेरा मित्र कान्तिशाली काम्बोजदेशमें घोड़ा हुआ और आपकी सवारीमें आया। मैं भी कस्तूरी-मृग होकर अपने ही शरीरसे उत्पन्न सुगन्धके मदसे उन्मत्त हो इस अरुणाचलपर विचरने लगा। धर्मात्मन्! आपने मृगयाके बहाने इस समय यहाँ आकर हम दोनोंसे अरुणाचलनाथकी परिक्रमा करवा दी। आपने सवारीपर चढ़कर यह परिक्रमा की है। इस दोषसे आपकी ऐसी शोचनीय दशा हो गयी है। हम दोनोंने पैदल चलनेके पुण्यसे अपने पूर्वपदको प्राप्त किया। महाराज! आपके ही सम्बन्धसे हम इस पशुयोनिके बन्धनसे छूटकर अपने धामको प्राप्त हुए हैं; इसलिये आपका सदा ही कल्याण हो।

यों कहकर कलाधर अपने मित्र कान्तिशालीके साथ जब अपने धामको जाने लगा, तब राजाने हाथ जोड़कर कहा—'आप दोनों तो अरुणाचलरूपी भगवान् शङ्करके प्रभावसे शापरूपी समुद्रके पार हो पुनः अपने पदको प्राप्त हो गये, परंतु मेरा चित्त भ्रान्त-सा हो रहा है। मेरे नेत्र अन्धे-से हो गये हैं और ऐसा जान पड़ता है मानो मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। अतः ऐसा होनेमें दैवबलका ही उत्कर्ष सूचित होता है।'

कलाधरने कहा—राजन्! मैं तुमसे तुम्हारे हितके लिये भी जो कहता हूँ उसे निश्चिन्त तथा एकाग्रचित्त होकर सुनो। संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भगवान् महेश्वरके स्वरूपभूत अरुणाचलनाथ करुणाके सागर हैं। तुम इन्हींमें अपना मन लगाओ (इनकी महिमा तो तुमने इस समय अपनी आँखों देखी जो कि पशुयोनिमें पड़े हुए हम दोनोंको इन्होंने ऐसे दिव्य पदकी प्राप्ति करा दी।) तुम भी पैदल होकर भगवान् अरुणाचलकी परिक्रमा करो। इन्हें कस्तूरीकी गन्ध बहुत प्रिय है इसलिये कस्तूरीके चन्दन और कचनारके फूलोंसे तुम इनकी पूजा करो। प्रभो! तुम्हारे पास जितनी सम्पत्ति है वह सब भगवान् अरुणाचलके मन्दिर, गोपुर, चहारदिवारी तथा आँगनका चौक आदि बनवानेके लिये दे डालो। ऐसा करनेसे शीघ्र ही तुम्हें बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त होगी। मनु, मान्धाता, नाभाग तथा भगीरथसे भी उत्कृष्ट पद तुम्हें प्राप्त हो जायगा।

तत्काल अपने धामको प्राप्त करनेवाले उन दोनों विद्याधरोंका यह वचन सुनकर राजा वज्राङ्गदने सन्देहरहित चित्तसे भगवान् अरुणाचलनाथके प्रति भक्ति बढ़ायी और उसी समयसे विशेष संयम-नियमका पालन आरम्भ किया।

मार्कण्डेयजीने पूछा—भगवन्! पाण्ड्य-नरेश वज्राङ्गदने किस प्रकार महादेवजीका पूजन किया और देव अरुणाचलनाथने कैसे उनपर अनुग्रह किया?

नन्दिकेश्वर बोले—मुने! राजा वज्राङ्गदने अपने नगरको लौटनेकी इच्छा त्यागकर उन्हीं भगवान् अरुणाचलनाथके चरणोंके समीप रहना पसंद किया। तदनन्तर रथ, हाथी, घोड़े और पैदलसे भरी हुई उनकी विशाल चतुरङ्गिणी सेना घोड़ेके मार्गका अनुसरण करती हुई वहाँ आ पहुँची। पुरोहित, मन्त्री, सामन्त, सेनापति तथा सुहृदोंने धैर्यसिन्धु महाराज वज्राङ्गदका उस अवस्थामें दर्शन किया। तब वहाँ आयी हुई सेनाको राजाने आदरपूर्वक अरुणाचल क्षेत्रके बाहर ही ठहराया और भक्तियुक्त होकर अपने सम्पूर्ण कोश तथा समृद्धिशाली देशोंको भगवान् अरुणाचलनाथकी पूजाके लिये संकल्प कर दिया। उन्होंने गौतमजीके आश्रमके निकट अपने लिये एक तपोवन बनाया और पुरोहितके कथनानुसार मन्त्रीसहित वे भगवान् शिवकी पूजामें तत्पर हो गये। अपने पदपर उन्होंने राजकुमार रत्नाङ्गदको बैठा दिया और उसके भेजे हुए धनसे भी भगवान् अरुणाचलनाथको ही तृप्त किया। राजाने अरुणाचलके चारों ओर जलसे भरे हुए जलाशय खुदवाये और ब्राह्मणोंको बहुतसे दान दिये। अग्निस्तम्भरूपी अरुणाचलनाथके तेजसे यद्यपि वह देश मरुभूमिकी भाँति निर्जल-सा हो गया था तथापि वहाँ राजा वज्राङ्गदने सैकड़ों बावलियोंका निर्माण कराया। उस समय लोपामुद्राके साथ आये हुए महर्षि अगस्त्यने अरुणाचलेश्वरकी पूजामें लगे हुए राजाका अभिनन्दन किया। प्रतिदिन नयतीर्थ नामक सरोवरमें स्नान करके वे पापनाशक श्रीप्रवालेश्वरका पूजन करते थे। समस्त दुर्गम पीड़ाओंका निवारण करनेवाली महिषासुरमर्दिनी भगवती दुर्गाकी आराधना भी उनके द्वारा प्रतिदिन होती रहती थी। ब्रह्मा और भगवान् विष्णुकी प्रार्थनासे लिङ्गरूपमें प्रकट हुए आदिदेव भगवान् शिवकी वे प्रतिक्षण नाना प्रकारकी सेवा-पूजा किया करते थे। प्रतिदिन सबेरे उठते और स्नान करके

पञ्चाक्षरमन्त्रका जप करते हुए अरुणाचलनाथकी तीन बार परिक्रमा करते थे। कार्तिककी पूर्णिमा आनेपर राजाने पार्वती-वल्लभ शिवके महादीपोत्सवका आयोजन किया, जो तीनों लोकोंमें पूजित एवं प्रशंसित है। कस्तूरी, कह्लार-पुष्प, कर्पूर और जलसे भरे हुए एक हजार स्वर्णकलशोंसे उन्होंने भगवान् त्रिलोचनका अभिषेक किया। प्रत्येक मासमें राजा ध्वजारोपणपूर्वक तीर्थोत्सव आदिका प्रबन्ध करते तथा रथपर भगवान्‌की सवारी निकालते थे। उस समय रथारोहणका बड़ा भारी उत्सव मनाया जाता था। यह उत्सव तीनों लोकोंमें विशेष सम्मानित है। महामना राजा वज्राङ्गदने तीन योजन-तक फैले हुए अरुणाचलकी प्रदक्षिणा भी की। उस समय वे 'हे अरुणाचलनाथ! हे करुणामृतसागर! हे अरुणाम्बाके प्राणनाथ!' इस प्रकार पुकारते हुए बार-बार भगवान्‌की स्तुति करते थे। भाँति-भाँतिके द्रव्योंसे भगवान्‌के अङ्गोंमें आलेपन करके पञ्चामृत आदिके द्वारा उनका अभिषेक करते तथा कपूरका चूर्ण मिलानेसे उज्ज्वल प्रतीत होनेवाले कस्तूरी-के चन्दनसे भगवान्‌की पूजा करते थे। एक लिङ्गस्वरूप अरुणाचलनाथकी पीठसे लेकर सम्पूर्ण अङ्गोंतक वे कस्तूरी और कह्लार-पुष्पोंसे भलीभाँति अर्चना करते थे। इस प्रकार तीन वर्षोंतक निरन्तर सेवा करनेसे सन्तुष्ट होकर अरुणाचल-नाथने राजाको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे हिमालयके समान श्वेत वृषभराजकी पीठपर चढ़कर अपने पीछे बैठी हुई पार्वतीदेवीसे सटे हुए थे। वसिष्ठ आदि ब्रह्मर्षि, नारद आदि महर्षि तथा निकुम्भ, कुम्भ आदि गण उनकी जय-जयकार एवं स्तुति कर रहे थे। कमलके समान विकसित एवं विशाल नेत्रोंके कटाक्षपात मानो करुणासिन्धुकी उठती हुई तरङ्ग थे और उनके द्वारा भगवान् शिव सम्पूर्ण जगत्‌की मलिनताका निवारण-सा कर रहे थे। इस प्रकार देवाधिदेव महादेवको उपस्थित देखकर महाराज वज्राङ्गदको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और मस्तक-पर अञ्जलि बाँधकर कहा—'देवेश! मैंने जो मोहवश आपके समीप सवारीपर बैठकर विचरण किया है, उस मेरे एकमात्र अपराधको आप क्षमा करें।'

इस प्रकार अत्यन्त दीन भावसे बोलनेवाले राजा-से करुणानिधान जगदीश्वर भगवान् अरुणाचलेश्वरने कहा—वत्स! भय न करो, तुम्हारा कल्याण हो। मेरी आठ मूर्तियाँ हैं। वे सब सम्पूर्ण जीवोंके कल्याणके लिये कल्पित हुई हैं। पूर्वकालमें तुम इन्द्र थे और अहङ्कारवश तुमने कैलाशशिखरपर बैठे हुए मेरा अपमान किया। तब मैंने उसी समय तुम्हें स्तम्भित करके जडवत् बना दिया। तुम्हारा सारा अभिमान और पापभार क्षणभरमें गल गया और तुम लज्जित होकर मेरे समीप बैठ गये। उस समय मैंने तुम्हें समस्त ऐश्वर्योंके कारणभूत शिवज्ञानका उपदेश किया और यह आज्ञा दी कि तुम पृथ्वीपर जन्म ले राजा वज्राङ्गद होकर मेरी कृपा प्राप्त करोगे। इस समय तुम्हारी की हुई दिन-रातकी सेवाओंसे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। अतः तुम्हें यह ज्ञान देता हूँ, सुनो। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और पुरुष—इन मेरी आठ मूर्तियोंसे व्याप्त होकर सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रकाशित होता है। मैं इन सब तत्त्वोंसे परे शिव हूँ, मुझसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। मेरे स्वरूपभूत चिदानन्द-समुद्रसे उठी हुई कुछ लहरें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंको आनन्दसे परिपूर्ण करती हैं। मैं समस्त संसारका स्वामी हूँ। यह गौरीदेवी मेरी महाशक्ति माया हैं। इन्हींके द्वारा सम्पूर्ण विश्व सदा आच्छादित होता और विस्तारको प्राप्त होता है। इन महाशक्तिके द्वारा सदा सृष्टि-रक्षा और संहाररूप लीलाविलासोंसे अत्यन्त विचित्ररूपमें प्रस्तुत किये हुए इस जगत्‌को मैं स्वेच्छासे देखता रहता हूँ। तुम अपने आपको मेरी महिमासे उसी प्रकार अभिन्न देखो जैसे समुद्रकी तरङ्ग उससे भिन्न नहीं होती। ऐसी दृष्टि हो जानेपर यह सारी पृथ्वी तुम्हें मेरे ही रूपसे सुशोभित दिखायी देगी और उसपर मेरी कृपासे प्रभुत्व प्राप्त करके तुम उत्तम भोगोंका सुखसे उपभोग करोगे। इसके बाद तुम्हें पुनः इन्द्ररूपसे दिव्य सुखदायी भोग दीर्घकालके लिये प्राप्त होंगे। तदनन्तर तुम मुझसे एकरूपता एवं विशुद्ध चिन्मयता प्राप्त कर लोगे।

यों कहकर भगवान् शङ्कर अन्तर्धान हो गये और पुण्यात्मा राजा वज्राङ्गदने भगवान् अरुणाचलनाथकी आराधना करते हुए ही समस्त भोगोंको प्राप्त किया। मुने! इस प्रकार तुमसे शिवभक्तकी उन्नतिका वृत्तान्त, अरुणाचलकी प्रदक्षिणाका फल तथा सदाचारका अक्षय परिणाम बताया गया। अरुणाचलसे बढ़कर दूसरा क्षेत्र नहीं है। अरुणाचलेश्वरसे बढ़कर और कोई देवता नहीं है तथा उनकी परिक्रमासे अधिक तीनों लोकोंमें दूसरा कोई तप नहीं है। नन्दिकेश्वरके ऐसा कहनेपर मार्कण्डेयजीके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। वे बार-बार नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी वर्षा करते हुए अमृतके महासागरमें निमग्न हो गये!

अरुणाचल-माहात्म्यखण्ड सम्पूर्ण

माहेश्वरखण्ड समाप्त

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः

संक्षिप्त श्रीस्कन्द-महापुराण

वैष्णवखण्ड

भूमिवाराहखण्ड या वेंकटाचल-माहात्म्य

मेरुगिरिपर भगवान् वाराहकी सेवामें पृथ्वीदेवीका उपस्थित होना और श्रेष्ठ पर्वतों तथा वेङ्कटाचलवर्ती तीर्थोंका माहात्म्य सुनना

एक समय कथा कहनेके लिये रोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवा मुनि आये, जो व्यासजीके परम बुद्धिमान् शिष्य थे। वहाँ आनेपर मुनियोंने उनका भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजीने उनसे स्कन्द नामक दिव्य पुराणकी कथा कही। सृष्टि-संहार, वंश-परिचय, विभिन्न वंशोंमें उत्पन्न महापुरुषोंके चरित्र तथा मन्वन्तरोंकी कथाका उन्होंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया। तीर्थोंके माहात्म्यकी बहुत-सी कथाएँ सुनकर उन मुनिवरोंने अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले सूतजीसे कथाश्रवणकी अभिलाषा मनमें रखकर इस प्रकार कहा।

ऋषि बोले—रोमहर्षणकुमार सूतजी! आप सर्वज्ञ हैं, पौराणिक विषयोंका वर्णन करनेमें कुशल हैं, अतः हमलोग आपके मुखसे भूतलके मुख्य-मुख्य पर्वतोंका माहात्म्य सुनना चाहते हैं।

सूतजीने कहा—महर्षियो! पूर्वकालमें मैंने यही प्रश्न गङ्गाजीके तटपर बैठे हुए मुनिश्रेष्ठ व्यासजीसे पूछा था। उसके उत्तरमें मेरे सर्वोत्तम गुरु व्यासजीने इस प्रकार कहा।

व्यासजी बोले—सूत! प्राचीन युगकी बात है। एक दिन मुनिश्रेष्ठ नारद नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित सुमेरु-पर्वतके शिखरपर गये और उसके मध्यभागमें ब्रह्माजीका अत्यन्त प्रकाशमान दिव्य एवं विस्तृत भवन देखा। उसके उत्तरप्रदेशमें पीपलका एक उत्तम वृक्ष था, जिसकी ऊँचाई एक हजार योजनकी और विस्तार दुगुना था। उस पीपलके मूलभागके समीप अनेक प्रकारके रत्नोंसे युक्त दिव्य मण्डप बना हुआ था, जिसमें वैदूर्य, मोती और मणियोंके द्वारा स्वस्तिक गृह बनाये गये थे। वह दिव्यमण्डप नूतन रत्नोंसे चिह्नित तथा दिव्य तोरणों (बाहरी फाटकों) से सुशोभित था। उसका मुख्यद्वार पुष्पराग मणिका बना हुआ था, जिसका गोपुर सात मंजिलका था। चमकते हुए हीरोंसे बनाये गये दो किवाड़ उस द्वारकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस मण्डपके भीतर प्रवेश करके नारदजीने देखा, दिव्य मोतियोंका एक मण्डप है, उसमें वैदूर्यमणिकी वेदी बनी हुई है। महामुनि नारद उस ऊँचे मण्डपके ऊपर चढ़ गये। वहाँ उक्त मण्डप-के मध्यभागमें एक बहुत ऊँचा सिंहासन था, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। उस मध्यभागमें सहस्र दलोंसे सुशोभित दिव्य कमल था, जिसका रंग श्वेत था। उसकी प्रभा सहस्रों चन्द्रमाओंके समान थी। उस कमलके मध्यमें दस हजार पूर्ण चन्द्रमाओंसे भी अधिक कान्तिमान् कैलाशपर्वतके समान आकारवाले एक सुन्दर पुरुष बैठे हुए थे। उनके चार भुजाएँ थीं, अङ्ग-अङ्गसे उदारता टपक रही थी, वाराहके समान मुख था। वे परम सुन्दर भगवान् पुरुषोत्तम अपने चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, अभय एवं वर धारण किये हुए थे। उनके कटिभागमें पीताम्बर शोभा पाता था। दोनों नेत्र कमलदलके

समान विशाल थे। सौम्यमुख पूर्ण चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कृत कर रहा था। मुखारविन्दसे धूपकी-सी सुगन्ध निकलती थी। सामवेद उनकी ध्वनि, यज्ञ उनका स्वरूप, स्रुक् उनका मुख था और स्रुवा उनकी नासिका थी। मस्तकपर धारण किये हुए मुकुटके प्रकाशसे उनका मुख अत्यन्त उद्भासित हो रहा था। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था। श्वेत यज्ञोपवीत धारण करनेसे उनके श्रीअङ्गोंकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। उनकी छाती चौड़ी और विशाल थी। वे कौस्तुभमणिकी दिव्य प्रभासे देदीप्यमान हो रहे थे। ब्रह्मा, वसिष्ठ, अत्रि, मार्कण्डेय तथा भृगु आदि अनेक मुनीश्वर दिन-रात उनकी सेवामें संलग्न रहते थे। इन्द्र आदि लोकपालों और गन्धर्वोंसे सेवित देवदेवेश्वर भगवान्‌के पास जाकर नारदजीने प्रणाम किया और पृथ्वीको धारण करनेवाले उन वाराह भगवान्‌का दिव्य उपनिषद्-मन्त्रोंसे स्तवन करके अत्यन्त प्रसन्न हो वे उनके पास ही खड़े हो गये।

इतनेहीमें दिव्य दुन्दुभी बज उठी। तत्पश्चात् वहाँ पृथ्वीदेवीका शुभागमन हुआ। रत्नोंसहित समुद्रके सदृश दिव्य वस्त्र धारण करके वे बड़ी शोभा पा रही थीं। इला और पिंगला नामवाली दो सखियाँ उनके साथ थीं। उन दोनोंके लाये हुए फूलोंको लेकर पृथ्वीदेवीने भगवान् वाराह-के चरणोंमें बिखेर दिया और उन देवदेवेश्वरको प्रणाम करके वे दोनों हाथ जोड़कर उनके आगे खड़ी हो गयीं।

तब भगवान् वाराहने कहा—'पृथ्वीदेवि! मैं तुम्हें शेषनागके सुखदायक मस्तकपर बिठाकर और सम्पूर्ण विश्वको तुम्हारे ऊपर स्थापित करके पर्वतोंको तुम्हारा सहायक बनाकर यहाँ आया हूँ। *फिर किसलिये तुम यहाँ आयी हो?'*

पृथ्वी बोली—भगवन्! आपने पातालसे मेरा उद्धार करके ऊँचे रत्नसिंहासनकी भाँति शेषनागके रत्नयुक्त मस्तक-पर, जो सहस्रों फणोंसे सुशोभित है, मुझे बिठाया है। इस प्रकार मुझे भलीभाँति स्थिर करके मुझे धारण करनेमें समर्थ पुण्यमय पर्वतोंको भी मेरे ऊपर स्थापित किया है, जो आपके ही स्वरूप हैं। महाबाहु पुरुषोत्तम! उन पर्वतोंमेंसे जो मेरे आधारभूत मुख्य-मुख्य पर्वत हैं, उनका मुझे परिचय दीजिये।

श्रीभगवान् वाराहने कहा—सुमेरु, हिमवान्, विन्ध्याचल, मन्दराचल, गन्धमादन, शालग्राम, चित्रकूट, माल्यवान्, पारियात्रक, महेन्द्र, मलय, सह्य, सिंहाचल, रैवत तथा मेरुपुत्र अञ्जन, जो बड़ा भारी स्वर्णमय पर्वत है; वसुन्धरे! ये सभी श्रेष्ठ पर्वत तुम्हारे आधार हैं। मैंने देवसमूह और ऋषिसमूहके साथ इन पर्वतोंका सेवन किया है। माधवि! इनमें जो श्रेष्ठ पर्वत हैं, उनका यथार्थ वर्णन करता हूँ, सुनो। देवि! शालग्राम, सिंहाचल तथा गिरिराज गन्ध-मादन—ये उत्तम शैल हिमालयकी ओर उत्तर दिशामें स्थित हैं। वसुधे! अब मैं दक्षिणके प्रधान पर्वतोंका नाम बतलाता हूँ—अरुणाचल, हस्तिपर्वत, गृध्राचल तथा घटिकाचल—ये सभी श्रेष्ठ पर्वत क्षीर नदीके समीपवर्ती हैं। हस्तिपर्वतसे पाँच योजन उत्तर सुवर्णमुखरी नामक उत्तम नदी बहती है। उसीके उत्तर तटपर कमला सरोवर है, जिसके किनारे शुकदेव-जीको वर देनेवाले तथा भक्तोंकी पीड़ाओंका नाश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण बलभद्रजीके साथ निवास करते हैं। शुद्ध चित्तवाले वानप्रस्थ मुनि सदा उनकी आराधना करते हैं। कमला सरोवरसे उत्तर दो कोसकी दूरीपर कल्पवृक्षोंसे सुशोभित श्रेष्ठ वनमें श्रीवेङ्कटाचल नामक प्रसिद्ध पर्वत है, जो भगवान् विष्णुका महान् आश्रय है। वह शैलराज एक योजन ऊँचा और सात योजन चौड़ा है। वह समूचा पर्वत सुवर्णमय है। उसके शिखर रत्न धारण करनेवाले हैं। इन्द्र आदि देवता, वसिष्ठ आदि मुनीश्वर, सिद्ध, साध्य, मरुद्गण, दानव, दैत्य, राक्षस तथा रम्भा आदि अप्सराएँ वहाँ नियमपूर्वक निवास करती हैं। नाग, गरुड़ और किन्नर वहाँ तपस्या करते हैं। इन सबसे सेवित अनेक नदियाँ हैं,

जिनका दर्शन भी पुण्यप्रद है। पृथ्वी ! उस पर्वतपर अनेक प्रकारके दिव्य सरोवर शोभा पा रहे हैं।

अब सब तीर्थोंमें प्रधान चक्र आदि तीर्थोंका वर्णन सुनो। चक्रतीर्थ, दैवतीर्थ, आकाशगङ्गा, कुमारधारिकातीर्थ, पापनाशनतीर्थ, पाण्डवतीर्थ तथा स्वामिपुष्करिणी तीर्थ—ये सात तीर्थ उस उत्तम नारायणगिरि (वेङ्कटाचल) पर सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। इन सातोंमें भी सबसे श्रेष्ठ कल्याणमयी स्वामिपुष्करिणी है। भूदेवि ! उस स्वामिपुष्करिणीके पश्चिम तटपर तुम्हारे साथ मैं निवास करता हूँ और दक्षिण तटपर सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् लक्ष्मीनिवास (विष्णु) विराजमान हैं। समुद्रवसना पृथ्वी ! वह स्वामिपुष्करिणी गङ्गा आदि सम्पूर्ण तीर्थोंके समान है। तीनों लोकोंमें जो तीर्थ, सरोवर और नदियाँ हैं, उन सबका आधिपत्य स्वामिपुष्करिणी तीर्थको प्राप्त है। उस परम पवित्र स्वामिपुष्करिणी तीर्थका सेवन करनेके लिये दिव्य गिरि वेङ्कटाचलपर सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। उनमें भी छः सबसे प्रधान हैं।

माधवि ! अब मैं तुम्हें नारायणगिरिका माहात्म्य बतलाता हूँ, ध्यान देकर सुनो। देवता, ऋषि तथा सनकादि योगी सत्ययुगमें अञ्जनगिरिको, त्रेतामें नारायणगिरिको, द्वापरमें सिंहाचलको और कलियुगमें श्रीवेङ्कटाचलको परमात्मा भगवान् विष्णुका निवासस्थान कहते हैं। अन्य विद्वानोंका भी यही मत है। जो सहस्रों योजन दूरसे अथवा द्वीपान्तरमें पहुँचकर भी गिरिराज वेङ्कटाचलको प्रणाम करता है, उसे प्रणाम करनेके उद्देश्यसे उसकी दिशाकी ओर भक्तिभावसे मस्तक झुकाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। उस पर्वतपर जो छः प्रधान तीर्थ हैं, उनका समयानुसार माहात्म्य बतलाता हूँ। माघमासमें जब भगवान् सूर्य कुम्भ राशिपर स्थित हों, तब मघा-नक्षत्रयुक्त महातिथि पूर्णिमाको गिरिराज वेङ्कटाचलपर जो कुमारधारिका नामवाली पुष्करिणी है, वह समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली हो जाती है। जिसके तटपर कृत्तिका और अग्निसे उत्पन्न पार्वतीनन्दन स्कन्द देवसेनाके साथ भगवान् विष्णुका पूजन करते हुए निवास करते हैं, उस तीर्थमें जो मध्याह्नकालमें स्नान करता है, उसके पुण्यफलको श्रवण करो। वसुधे ! गङ्गा आदि सब तीर्थोंमें जो बारह वर्षोंतक नियमपूर्वक स्नान करता है, उसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल कुमारधारा तीर्थमें स्नान करनेवालेको भी मिल जाता है। जो उस तीर्थमें यथाशक्ति दक्षिणाके साथ अन्नदान करता है, उसे भी उतना ही फल मिलता है, जितना स्नानके लिये बताया गया है।

वसुन्धरे ! जब मीन राशिके सूर्य हों, तब उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा तिथिको चौथे पहरमें पर्वतकी गुफाके भीतर तुम्बतीर्थमें जो मनुष्य स्नान करता है, वह पुनः गर्भमें नहीं आता। जब सूर्यदेव मेष राशिपर स्थित हों, तब चित्रा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा तिथिको पुण्यमय प्रभातके समय आकाशगङ्गाके जलमें स्नान करनेवाला पुरुष मोक्ष प्राप्त कर लेता है। सूर्यदेव जब वृष राशिपर विराजमान हों, तब वैशाखमासमें शुक्ल या कृष्ण पक्षकी द्वादशी तिथिको रविवार या मंगलवारका योग होनेपर अथवा शुक्ल या कृष्ण पक्षमें रविवारके दिन पुष्य या हस्त नक्षत्रके योग होनेपर जो मनुष्य संगवकालमें पाण्डवतीर्थके भीतर स्नान करता है, वह इस लोकमें कभी दुःख नहीं पाता तथा परलोकमें सुख भोगता है। महाभागे ! शुक्ल अथवा कृष्ण पक्षमें रविवारके साथ जो सप्तमी तिथि आवे, उसमें यदि पुष्य नक्षत्र अथवा हस्त नक्षत्रका योग हो, तब गिरिराज वेङ्कटाचलके शिखरपर वर्तमान पापनाशन नामक तीर्थमें जो स्नान करता है, वह श्रेष्ठ मनुष्य कोटिजन्मोपार्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है। भूदेवि ! अब तुम एक रहस्यकी बात सुनो। अनन्त नामक महापर्वतपर मेरे दिव्य मन्दिरके वायव्य कोणमें शिखरपर स्थित गुफामें देवतीर्थ नामसे प्रसिद्ध एक परम सुंन्दर सरोवर है। उसमें पुष्य नक्षत्रयुक्त बृहस्पतिवारको अथवा व्यतीपात योगमें अथवा श्रवण नक्षत्रयुक्त सोमवारको जो स्नान करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो। इस लोकमें जान-बूझकर या अनजानमें किये हुए जो कोई भी पाप हैं, वे सब अत्यन्त पावन देवतीर्थमें गोता लगाते ही नष्ट हो जाते हैं, पुण्यकी वृद्धि होती है तथा अन्तमें वह चन्द्रलोकमें सम्मानित होता है।

यह सब सुनकर पृथ्वीदेवीने भगवान् वाराहकी इस प्रकार स्तुति की—देवदेवेश्वर ! वाराहमुख ! अच्युत ! आपको नमस्कार है। महाबाहो ! आपकी श्वेतकान्ति क्षीरसागरके समान है। वज्रश्रृङ्ग ! आपको नमस्कार है। देव ! आपकी सहस्रों भुजाएँ हैं। आपने कल्पके आदिमें एकार्णवके जलसे मेरा उद्धार किया है; तभी मैं सम्पूर्ण जगत्को धारण करती हूँ। प्रभो ! आप अनेक दिव्य आभूषणोंसे विभूषित तथा यज्ञसूत्रसे सुशोभित हैं, लाल-लाल वस्त्र धारण करते हैं और दिव्य रत्नोंसे अलङ्कृत होते हैं। आपके चरणारविन्द प्रातःकाल उदय होनेवाले सूर्यनारायणके समान अरुण कान्तिवाले हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आपके दाढ़ोंका अग्रभाग बाल-चन्द्रमाके समान शोभा

पाता है। आपका बल और पराक्रम महान् है। आपके श्रीअङ्गोंमें दिव्य चन्दनका आलेप लगा हुआ है और कानोंमें तपाये हुए सुवर्णके कुण्डल झिलमिला रहे हैं। आप इन्द्रनीलमणिसे प्रकाशमान, सुवर्णमय अङ्गद (बाजूबन्द) से विभूषित हैं। महाबल! आपने अपनी दाढ़ोंके अग्रभागसे हिरण्याक्ष नामक दैत्यका वक्षःस्थल चीर डाला है। आपके नेत्र खिले हुए कमलपुष्पके समान परम सुन्दर हैं। आप अपने मुखसे सामवेदके मन्त्रोंका गान करते समय मेरे मनको मोहे लेते हैं। विशाललोचन! ब्रह्माजी और भगवान् शिव आपके चरणोंकी वन्दना करते हैं। आपका श्रीविग्रह सर्वविद्यामय है। आप शब्दोंकी पहुँचसे परे हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आनन्दविग्रह! अनन्त! कालकाल! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करके पृथ्वीदेवीने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया। यह देखकर भगवान् वाराहदेवके नेत्र हर्षसे खिल उठे। उन्होंने पृथ्वीदेवीको साथ लेकर, गरुड़पर आरूढ़ हो, वहाँसे वृषभाचल (वेङ्कटगिरि) को प्रस्थान किया। नारद आदि मुनीश्वरोंसे प्रशंसित होकर पृथ्वीपति भगवान् वाराह स्वामिपुष्करिणीके लोकपूजित पश्चिम तटपर निवास करते हैं। वहाँ अनेकानेक मुनीश्वर, महाभाग वैखानस तथा ब्रह्माजीके तुल्य महात्मा पुरुष वाराहमुख भगवान् विष्णुकी आराधनामें संलग्न रहते हैं। सूत! जो मनुष्य हम दोनोंके इस धर्ममय पावन संवादको सुनता अथवा देवता और ब्राह्मणोंके आगे पढ़ता है, वह प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है। तथा जितने लोग सुनते हैं, उन सभीको अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है।

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो! भगवान् व्यासने यह माहात्म्य मुझसे कहा है और मैंने जैसा सुना है, वैसा ही आपलोगोंके सामने वर्णन किया है।

भगवान् वाराहका मन्त्र, उसके जपकी विधि, ध्यान तथा उसके अनुष्ठानका फल

ऋषियोंने कहा—सूतजी! पृथ्वीके साथ भगवान् वाराह जब वृषभाचलपर चले गये, तब वहाँ उन्होंने पृथ्वीसे क्या कहा? महामते! वह सब प्रसङ्ग हमें सुनाइये।

सूतजी बोले—मुनियो! आप सब लोग पूर्वकालकी पुण्यमयी कथा श्रवण करें। पहले वैवस्वत मन्वन्तरके परम पवित्र सत्ययुगमें वाराहरूपधारी पृथ्वीपति देवेश्वर भगवान् विष्णु नारायणगिरिपर निवास करते थे। उस समय पृथ्वीदेवी अपनी सखियोंके साथ उनकी सेवामें उपस्थित हुई और उनके चरणोंमें प्रणाम करके उन्होंने भगवान्‌के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया—'देवेश! आप किस मन्त्रसे आराधना करनेपर प्रसन्न होंगे? जो मन्त्र आपको सदा ही प्रिय है और नियमपूर्वक रहनेवाले मनुष्योंको आपके परम धामकी प्राप्ति करा देता है, उसका मुझे उपदेश कीजिये।'

भूदेवीके इस प्रकार प्रश्न करनेपर भगवान् वाराहने प्रेमसे मुसकराते हुए कहा—देवि! सुनो। यह परम गोपनीय मन्त्र है, इसे कभी अनधिकारीके सामने प्रकाशमें नहीं लाना चाहिये। जो सेवा करनेवाला भक्त तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला है, उसीको इस मन्त्रका उपदेश करना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धारणाय स्वाहा'। मुमुक्षु पुरुषोंको इस मन्त्रका सदैव जप करना चाहिये। भूदेवि! यह मन्त्र सब सिद्धियोंको देनेवाला है। इस मन्त्रके संकर्षण ऋषि हैं और मैं ही देवता कहा गया हूँ। इसका छन्द पंक्ति है, श्री बीज है। सद्गुरुसे इस मन्त्रकी दीक्षा लेकर इसका चार लाख जप करना चाहिये और घी तथा मधु मिलाये हुए खीरका हवन करना चाहिये।

अब मैं अपने स्वरूपका ध्यान बतला रहा हूँ, जो अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाला है। समुद्रवसने! मेरे अङ्गोंकी कान्ति शुद्ध स्फटिक गिरिके समान श्वेत है। खिले हुए लाल कमलदलोंके समान सुन्दर नेत्र हैं, वाराहके समान मुख है, स्वरूप सौम्य है, चार भुजाएँ हैं, मस्तकपर किरीट शोभा पाता है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न है। हाथोंमें चक्र, शङ्ख, अभयदायिनी मुद्रा और कमल सुशोभित हैं। मेरी बायीं जाँघपर तुम बैठी हो। मैंने लाल, पीले वस्त्र पहनकर लाल रंगके ही आभूषणोंसे अपनेको विभूषित किया है। श्रीकच्छपके पृष्ठके मध्यभागमें शेषनागकी मूर्ति है। उसके ऊपर सहस्रदल कमलका आसन है और उसपर मैं विराजमान

हूँ। इस प्रकार ध्यान करके जो सदा अष्टोत्तरशत मन्त्रका जप करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाता और अन्तमें निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

यह सुनकर पृथ्वीदेवीने पुनः प्रश्न किया—देव! पूर्वकालमें किसने इस मन्त्रका अनुष्ठान किया है और उसे किस फलकी प्राप्ति हुई है?

भगवान् वाराहने कहा—देवि! पहले कृतयुगमें धर्म नामक महात्मा मनुने ब्रह्माजीसे इस मन्त्रको प्राप्त किया और इसी पर्वतपर उसका जप करके मेरा प्रत्यक्ष दर्शन पाया। फिर मुझसे अभीष्ट वरदान प्राप्त करके वे मेरे पदको प्राप्त हो गये। पूर्वकालमें इन्द्र दुर्वासाके शापसे स्वर्गभ्रष्ट हो गये थे; उस समय इसी मन्त्रसे यहीं मेरी आराधना करके उन्होंने पुनः स्वर्गका राज्य प्राप्त कर लिया। भूदेवि! अन्यान्य मुनियोंने भी इस मन्त्रका जप करके परम गति प्राप्त की है। सर्पोंके स्वामी अनन्तने कश्यपजीसे इस मन्त्रको पाकर श्वेतद्वीपमें इसका जप किया और उसीसे अद्भुत शक्ति पाकर वे पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ हुए हैं। अतः पृथ्वीकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्योंको इहलोकमें सदा ही इस मन्त्रका जप करना चाहिये।

महर्षि अगस्त्यकी प्रार्थनासे भगवान् विष्णुका वेङ्कटाचलपर श्री-भू देवियोंके साथ निवास तथा आकाशराजके यहाँ पद्मावती और वसुदानका जन्म

भगवान् वाराह कहते हैं—महादेवी पृथ्वी! मैं तुम्हें एक पवित्र इतिहास सुनाता हूँ, सुनो। वैवस्वत मन्वन्तरके आदि सत्ययुगमें वायु देवताका बड़ा भारी तप देखकर लक्ष्मीनिवास भगवान् विष्णु श्रीदेवी और भूदेवीके साथ स्वामिपुष्करिणीके तटपर आये। इसके दक्षिण तटपर परम पवित्र आनन्द नामक विमानमें वे श्रीलक्ष्मीकान्त विष्णु सदा वायु देवताका प्रिय करते हुए निवास करते हैं। तभीसे कुमार कार्तिकेयद्वारा निरन्तर पूजित हो, भगवान् हृषीकेश इस विमानपर अदृश्य भावसे रहते हैं और आगे भी रहेंगे।

पृथ्वीने पूछा—मनुष्योंकी दृष्टिमें न आनेवाले भगवान् विष्णु किस प्रकार यहाँ उन्हें प्रत्यक्ष दिखायी देंगे?

भगवान् वाराहने कहा—देवि! महर्षि अगस्त्यने इस पर्वतपर आकर सनातनदेव भगवान् विष्णुका दर्शन किया और बारह वर्षोंतक आराधना करके उन्हें बारंबार प्रसन्न किया। तत्पश्चात् भगवान्‌से यह याचना की कि 'प्रभो! आप सदा यहाँ निवास करें और सब लोगोंको आपका प्रत्यक्ष दर्शन होता रहे।'

उनके ऐसा कहनेपर श्री-भू देवियोंके साथ भगवान् विष्णु इस प्रकार बोले—देवर्षे! मैं तुम्हारे सन्तोषके लिये यहाँ समस्त देहधारियोंको प्रत्यक्ष दर्शन देता हुआ निवास करूँगा, परंतु यह विमान कभी किसीकी दृष्टिमें नहीं आवेगा। भगवान्‌का यह वचन सुनकर अगस्त्य मुनि प्रसन्न हो अपने आश्रमको चले गये। तबसे भगवान् विष्णु मुनियोंके ही ध्यानमें आनेवाले इस विमानपर मनुष्य आदि प्राणियोंकी दृष्टिके विषय होकर चतुर्भुज रूपसे निवास करते हैं और आगे भी निवास करते रहेंगे। स्कन्दस्वामी सदा उनकी आराधना करते हैं और वायु देवता सेवामें संलग्न रहते हैं। एक समयकी बात है कि मित्रवर्माकी मनोरमा धर्मपत्नीके गर्भसे 'आकाश' नामक पुत्र हुआ, जो अपने कुलका आभूषण था। शक्रवंशमें उत्पन्न धरणी नामवाली कन्या राजकुमार आकाशकी धर्मपत्नी हुई। नृपश्रेष्ठ मित्रवर्माने अपने उस पुत्रको राज्यका सारा भार सौंपकर स्वयं वेङ्कटाचलके समीप पवित्र तपोवनको प्रस्थान किया। राजकुमार आकाश महान् चक्रवर्ती राजा हुए। वे एकपत्नीव्रती थे। केवल अपनी धर्मपत्नी धरणीके प्रति

ही उनका मन अनुरक्त था । एक दिन उन्होंने यज्ञके लिये आरणी नदीके किनारे भूमिका शोधन कराया । जब सोनेके हलसे पृथ्वी जोती जाने लगी तब बीजकी मुट्ठी बिखेरते समय राजाने देखा, पृथ्वीसे एक कन्या प्रकट हुई है, जो कमलकी शय्यापर सोयी हुई है। वह बड़ी सुन्दरी और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी। सोनेकी पुतली-सी शोभा पा रही थी। उसे देखकर राजाके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे । उन्होंने उसे गोदमें उठा लिया और 'यह मेरी ही पुत्री है' ऐसा बार-बार कहते हुए मन्त्रियोंके साथ बड़े प्रसन्न हुए। इसी समय आकाशवाणी हुई—'राजन्! वास्तवमें यह तुम्हारी ही पुत्री है। इस सुन्दर नेत्रवाली कन्याका तुम पालन-पोषण करो ।' यह सुनकर राजाके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने अपने नगरमें प्रवेश किया और महारानी धरणीदेवीको बुलाकर कहा—'प्रिये! यह भगवान्‌की दी हुई अपनी कन्या है, इसे देखो । यह पृथ्वीसे प्रकट हुई है। हम दोनों सन्तानहीन हैं। हमारे लिये यही पुत्री होगी ।' यों कहकर आकाशराजने रानीके हाथमें प्रेमपूर्वक वह कन्या दे दी । उस कन्याके घरमें प्रवेश करनेपर धरणीदेवीने भी गर्भ धारण किया और समय आनेपर उन्होंने उत्तम मुहूर्तमें पुत्रको जन्म दिया। उस समय पाँच ग्रह उच्च स्थानोंमें स्थित थे और सूर्यदेव मेष राशिपर विराजमान थे । उस पुत्रके जन्म-कालमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं तथा राजाके घरमें फूलोंकी वर्षा हुई। उस समय सुखदायिनी हवा चल रही थी। जिन लोगोंने महाराजको पुत्र-जन्मका समाचार सुनाया, उन्हें अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने जो कुछ उनके पास था, सब दे डाला । केवल छत्र और चामर रख लिया। एक करोड़ कपिला गौएँ और एक करोड़ एक सौ बैल दान किये। बारहवें दिनका पुण्यमुहूर्त आनेपर उन्होंने जातकर्म आदि क्रियाएँ सम्पन्न कीं और स्वयं ही पुत्रका नाम वसुदान रक्खा।

पृथ्वीदेवी! आकाशराजका पुत्र वसुदान बड़ा ही सुन्दर था। वह बालक प्रतिदिन शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ने लगा । वेदोंके पारङ्गत विद्वान् गुरुजनोंने उस विनयशील कुमारका उपनयन-संस्कार किया। पितासे ही उसने मन्त्रपूर्वक अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा पायी । अङ्ग और उपाङ्गोंसहित धनुर्वेदके चारों पादोंका अध्ययन किया।

पृथ्वीदेवीने पूछा—भगवन्! आपने आकाशराजके पुत्रका नाम बताया । अब यह बतानेकी कृपा करें कि उनकी अयोनिजा कन्याका नाम उस समय क्या रक्खा गया था?

भगवान् वाराहने कहा—देवि! बुद्धिमान् आकाशराजने उस कन्याका नाम पद्मिनी (पद्मावती, पद्मालया आदि) रक्खा था। धीरे-धीरे वह युवा अवस्थाको प्राप्त हुई। एक दिन पद्मिनी शुक और कोकिलोंके कलरवसे व्याप्त उपवनमें अपनी सखियोंके साथ विहार कर रही थी। उसी समय मुनिश्रेष्ठ नारद अकस्मात् घूमते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने वनकी मूर्तिमती लक्ष्मीकी भाँति उस कन्याको देखकर विस्मयसे पूछा—'भीरु! तुम कौन हो, किसकी कन्या हो? मुझे अपना हाथ तो दिखाओ ।' यह सुनकर पद्मिनीने नारदजीसे कहा—'ब्रह्मन्! मैं आकाशराजकी कन्या हूँ। मेरे लक्षण बताइये।'

नारदजी बोले—सुन्दरि! सुनो, तुम्हारा मस्तक गोलाकार और सम है। इसके ऊपर चिकने और लंबे बाल शोभा पा रहे हैं। तुम्हारा मुख मन्द मुसकानसे सुशोभित है और तुम्हारे अधर बिम्बाफलके समान अरुण हैं। इस प्रकार तुम्हारा यह मुख भगवान् विष्णुके ही योग्य है । ऐसा मेरी बुद्धिका निश्चय है। तुम क्षीरसागरसे प्रकट हुई साक्षात् लक्ष्मीके समान दिखायी देती हो।

वेङ्कटाचलनिवासी श्रीहरि और पद्मावतीका विवाह

भगवान् वाराह कहते हैं—यों कहकर नारदजी पद्मिनी और उसकी सखियोंद्वारा सम्मानित हो वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर सखियोंने पद्मिनीसे कहा—'सखि! चलो वनमें फूल लानेके लिये चलें।' यों कहकर आकाशराजकी कन्याके साथ वे सखियाँ वनमें गयीं और फूलोंको तोड़ती हुई इधर-उधर विचरने लगीं। फिर वे सब सखियाँ एक वनस्पतिके नीचे जा बैठीं। इसी समय उन्होंने चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णवाले एक ऊँचे घोड़ेको देखा। उसके ऊपर श्यामवर्णका पुरुष सवार था, जिसकी आकृति और कान्ति कामदेवको भी लज्जित कर रही थी । उसके विशाल नेत्र पद्मपत्राकार कानोंके समीप पहुँचे हुए थे । उसने एक हाथमें दिव्य शार्ङ्ग धनुष और दूसरेमें सुवर्णमय बाण धारण

कर रक्खा था। उसका कटि-प्रदेश पीले रंगके रेशमी वस्त्रसे आच्छादित था। शरीरका मध्यभाग बहुत ही सुन्दर था। वह रत्ननिर्मित कङ्कण, बाजूबंद और करधनीसे सुशोभित था। उसकी छाती चौड़ी थी, जिससे उस पुरुषकी दक्षिणावर्त-नाभि अधिक शोभा पा रही थी। उसका बायाँ कंधा स्वर्णमय यज्ञोपवीतसे चमक रहा था। इस प्रकार उस तरुण-का सुन्दर रूप मनको मोह लेनेवाला था। उसे देखकर वे सब स्त्रियाँ चकित हो उठीं। वह घुड़सवार एक भेड़ियेको ढूँढ़ता हुआ वहाँ फूल तोड़नेवाली स्त्रियोंके समीप आया और उनसे पूछने लगा—'इधर कोई भेड़िया आया है क्या?' स्त्रियोंने उत्तर दिया—'तुम धनुष धारण किये हमारे वनमें क्यों आये हो? यहाँके सभी मृग अवध्य हैं। आकाशराजके द्वारा सुरक्षित इस वनसे शीघ्र बाहर निकल जाओ।' उनकी यह बात सुनकर सवार घोड़ेसे उतर पड़ा। उसने पूछा—'तुम सब लोग कौन हो? यह कमलके समान रंगवाली परम सुन्दरी कन्या कौन है?' उसका यह प्रश्न सुनकर एक सखीने उत्तर दिया—'शूरवीर! ये हमारी स्वामिनी हैं। इनका नाम पद्मिनी है। ये आकाशराजकी पुत्री हैं, इनका प्रादुर्भाव पृथ्वीसे हुआ है। सुन्दर शरीरवाले पुरुष! तुम अपना परिचय दो। तुम्हारा नाम क्या है और निवासस्थान कहाँ है? तुम किसलिये यहाँ आये हो?'

सखियोंके इस प्रकार पूछनेपर उस पुरुषने मन्द मुसकान-युक्त मुखारविन्दसे इस प्रकार कहा—'मेरे नाम अनन्त हैं। तपस्वी लोग रंग, रूप और नाम दोनों ही दृष्टियोंसे मुझे कृष्ण कहते हैं। मैं वह हूँ, जिसके धनुषकी समता करने-वाला कोई धनुष देवताओंके पास भी नहीं है। लोग मुझे वेङ्कटाचलनिवासी वीरपति कहते हैं। शिकारके लिये वनमें आया हूँ। इस वनकी शोभा देखते हुए मेरी दृष्टि सुन्दरीपर भी पड़ गयी। क्या यह मुझे प्राप्त हो सकती है?'

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर सब सखियाँ कुपित हो गयीं। तब कृष्ण घोड़ेपर चढ़कर शीघ्र ही वेङ्कटाचलपर चले गये। वहाँ अपने दिव्य निवासस्थानपर पहुँचकर वे घोड़ेसे उतर गये। कृष्णके रूपमें साक्षात् श्रीहरि ही थे। घोड़ेसे उतरकर उन्होंने रत्नमय मण्डपमें प्रवेश किया और मुक्ता-मय मन्दिरमें आकर नूतन रत्नमय सिंहासनपर वे विराजमान

हुए और उसी विशाल नेत्रोंवाली तथा मन्द मुसकानसे सुशोभित मुखारविन्दवाली पद्मावतीका स्मरण करने लगे।

तदनन्तर मध्याह्न कालमें भगवान्के भोग लगाने योग्य दिव्य उत्तम एवं सुगन्धित अन्न तैयार करके वकुलमालिका नामकी सखी भगवान्को देखनेके लिये शीघ्रतापूर्वक गयी और उनके चरणोंमें भक्ति-भावसे प्रणाम करके पास ही बैठ गयी। उसने देखा, श्रीहरि नेत्र बंद किये किसीकी याद कर रहे हैं। तब उस सखीने कहा—'देवदेवेश्वर! उठिये, पुरुषोत्तम! आपके लिये बहुत उत्तम रसोई तैयार की गयी है। माधव! अब भोजनके लिये पधारिये।'

श्रीभगवान् बोले—सखी! प्राचीन कालकी बात है। पवित्र त्रेतायुगमें जब मैंने रावणका वध किया था, उस समय वेदवती नामवाली एक कन्याने लक्ष्मीजीकी सहायता की थी। लक्ष्मी राजा जनकके यहाँ पृथ्वीसे उत्पन्न हो सीताके रूपमें निवास करती थीं। फिर मुझसे विवाह होने-पर जब वे मेरे साथ वनमें गयीं, तब एक दिन पञ्चवटीमें मारीच नामक राक्षसका वध करनेके लिये मैं आश्रमसे बाहर गया। मेरा छोटा भाई लक्ष्मण भी सीताके कहनेसे मेरे ही पीछे चला आया। तत्पश्चात् राक्षसराज रावण सीताको हर ले जानेके लिये मेरे आश्रमके समीप आया। उस समय मेरे अग्निहोत्र-गृहमें विद्यमान अग्निदेव रावणकी वैसी चेष्टा जानकर सीताको साथ ले पातालमें चले गये और अपनी स्त्री

स्वाहाकी देख-रेखमें सीताको सौंपकर लौट आये। पूर्वकालमें कल्याणमयी वेदवतीको एक बार उसी राक्षसने स्पर्श कर लिया था, जिससे दुखी होकर उसने प्रज्वलित अग्निमें अपने शरीरको त्याग दिया। उस समय उसी वेदवतीको रावणका संहार करनेके उद्देश्यसे अग्निदेवने सीताके समान रूपवाली बना दिया और मेरी पर्णशालामें सीताके स्थानपर उसे लाकर छोड़ दिया। रावणने उसीका अपहरण करके लङ्कामें ला बिठाया। तदनन्तर रावणके मारे जानेपर अग्नि-परीक्षाके समय उसी वेदवतीने अग्निमें प्रवेश किया। उस समय अग्निदेवने स्वाहाके समीप सुरक्षित जनकनन्दिनी सीतारूपा लक्ष्मीको लाकर पुनः मेरे हाथमें दिया और इस प्रकार कहा—'देव! यह वेदवती सीताका परम प्रिय करनेवाली है; अतः आप इसे वरदान देकर प्रसन्न करें।' अग्निकी यह बात सुनकर कल्याणमयी सीताने भी मुझसे कहा—'प्रभो! यह वेदवती सदा मेरा प्रिय कार्य करनेवाली है। यह उच्च कोटिकी भगवद्भक्त है। अतः आप स्वयं ही इसे अङ्गीकार करें।'

तब मैंने कहा—देवि! मैं कलियुगमें तुम्हारे कथनानुसार कार्य करूँगा। तबतक यह देवताओंसे पूजित होकर ब्रह्मलोकमें निवास करे। पश्चात् पृथ्वीसे उत्पन्न होकर आकाशराजकी पुत्री होगी। सखी! इस प्रकार मैंने और लक्ष्मीने पूर्वकालमें जिसे वरदान दिया था, वह सुन्दरी इस समय नारायणपुरमें पृथ्वीसे प्रकट हुई है। वह लक्ष्मीके समान ही सद्गुणवती है। उसके नेत्र कमलके समान परम सुन्दर हैं। आज जब मैं शिकार खेलने गया था, तब वह मेरे देखनेमें आयी थी। वह अपने ही समान सुन्दरी सखियोंके साथ वनमें फूल तोड़ रही थी। वकुलमालिके! तुम वहाँ जाकर उस कन्याको देखो और यह जान लो कि वह अपने अनुपम रूप और लावण्यसे इस प्रशंसाके योग्य है या नहीं।

तब वकुलमालिका सखी देवाधिदेव भगवान्‌को प्रणाम करके गुञ्जाके दानेके समान लाल रंगवाले घोड़ेपर सवार हुई और उनके बताये हुए मार्गसे चल दी। रास्तेमें अनेक प्रकारके मृगों, पक्षियों तथा वृक्ष-लताओंका अवलोकन करती और बार-बार प्रसन्न होती हुई वह अरणी नदीके पश्चिम तटपर जा पहुँची। वह स्थान बहुतेरे वृक्षोंसे हरा-भरा था। वहाँ अगस्त्येश्वरके समीप अपने लाल घोड़ेसे उतरकर वकुलमाला स्नान तथा जलपान करके नदीके तटपर विश्राम करने लगी। इतनेमें ही राजभवनसे बहुत-सी स्त्रियाँ देवताके समीप वहाँ आयीं। वे सब-की-सब पद्मावतीकी सखियाँ थीं। उन्हें देखकर वकुलमालिका उनके समीप गयी और इस प्रकार बोली—'सुन्दरियो! तुम कौन हो? तुम्हारे आभूषण और हार तो बड़े विचित्र हैं। तुम कहाँसे आयी हो और इस स्थानपर तुम्हारा क्या कार्य है?'

उसकी बात सुनकर सखियोंने मन्द-मन्द मुसकराते हुए कहा—हम आकाशराजकी रनिवासमें रहनेवाली स्त्रियाँ और महाराजकी पुत्री पद्मावतीकी सहेलियाँ हैं। एक दिन राजकुमारीको आगे करके हम वनमें गयी थीं। वहाँ उनके लिये फूल तोड़ती हुई सब सखियाँ एक वृक्षके नीचे जा बैठीं। वहीं हमें एक सुन्दर पुरुषका दर्शन प्राप्त हुआ। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति इन्द्रनीलमणिके समान श्याम थी। उनका वक्षःस्थल लक्ष्मीका निवास जान पड़ता था। मुखपर मन्द-मन्द मुसकानकी छटा छा रही थी। दोनों भुजाएँ बहुत ही सुन्दर, विशाल और हृष्ट-पुष्ट थीं। कटिप्रदेशमें शुद्ध पीताम्बर शोभायमान था। उन्होंने एक हाथमें सुवर्णमय धनुष और दूसरेमें बाण धारण कर रक्खा था। मस्तकपर सोनेका मुकुट चमक रहा था। वे हार और भुजबंद आदि आभूषणोंसे विभूषित थे। उन्हें देखकर सुवर्णसदृश गौर वर्णवाली हमारी कमलनयनी सखी पद्मावती सहसा बोल उठी—'देखो, देखो!' तब हम सब सखियाँ उन्हींकी ओर देखने लगीं। इतनेहीमें वे शीघ्र चले गये। उनके चले जानेपर सखी पद्मावती मूर्च्छित हो गयी। उसे उसी अवस्थामें हमलोग राजभवनमें ले गयीं। पुत्रीकी ऐसी अवस्था देखकर महाराजने ज्यौतिषीसे पूछा—'विप्रवर! मेरी पुत्रीकी ग्रहदशाका फल बताइये।' तब बृहस्पतिके समान विद्वान् ब्राह्मणने मन-ही-मन ग्रहोंको विचारकर कहा—'नृपश्रेष्ठ! कोई उत्तम पुरुष आपकी कन्याके समीप आया था, उसे ही देखकर राजकुमारी मूर्च्छित हो गयी हैं। उसीके साथ पद्मावतीका विवाहसम्बन्ध होगा।'

राजासे ऐसा कहकर ज्यौतिषीजी अपने घर चले गये। तब आकाशराजने वैदिक ब्राह्मणोंको बुलाकर आदरपूर्वक कहा—'ब्राह्मणो! आपलोग देवमन्दिरमें जाकर वेदमन्त्रोंके साथ शङ्करजीका महा-अभिषेक कीजिये।' उनको ऐसा आदेश देकर महाराजने हमें बुलाया और इस प्रकार कहा—'कन्याओ! तुम भगवान्‌के महा-अभिषेककी सामग्री जुटाओ।' राजाकी यह आज्ञा पाकर हम सब सखियाँ देवमन्दिरमें आयी हैं। सुभगे! अब तुम हमें अपना परिचय दो। कहाँसे या किसके कामसे यहाँ आगमन हुआ है अथवा यहाँसे कहाँ जानेका तुम्हारा विचार है? जान पड़ता है, इस दिव्य अश्वपर आरूढ़ होकर तुम देवलोकसे आयी हो।

सखियोंके इस प्रकार पूछनेपर वकुलमालिकाको बड़ा हर्ष हुआ। उसने मधुर वाणीमें कहा—'मैं वेङ्कटाचलसे इस घोड़ेपर सवार होकर आयी हूँ और महारानी धरणीदेवीसे मिलना चाहती हूँ। क्या राजभवनमें महारानीके दर्शन हो सकते हैं ?' उसकी यह बात सुनकर उन कन्याओंने कहा—'शुभे ! तुम हमारे साथ धरणीदेवीका दर्शन कर सकती हो।' तब वकुलमालिका उन कन्याओंके साथ राजभवनमें आयी। उधर धरणीदेवीने अन्तःपुरमें जाकर अपनी पुत्रीसे कहा—'बेटी ! तुम्हारा कौन कार्य करूँ ? तुम्हें कौन वस्तु प्रिय लगती है ?' माताके इस प्रकार पूछनेपर मनस्वी कन्या पद्मावतीने मन्द स्वरमें कहा—'अम्बे ! संसारमें जो सबसे अधिक नयनाभिराम है, साधु-संतोंके मनको भी जो परम प्रिय लगता है, ब्रह्मा आदि देवता भी जिसके दर्शनकी इच्छा रखते हैं, जो सबसे महान् और सर्वत्र व्यापक है, तेजस्वी पदार्थोंमें भी सर्वाधिक तेजस्वी है, देवताओंका भी देवता है, श्रेष्ठ भक्तोंको ही जो इस लोकमें सुलभ है तथा अभक्तोंको जिसकी प्राप्ति कभी नहीं होती, उसी वस्तुमें मेरा मन लग रहा है। माताजी ! वह भक्तोंको सम्पूर्ण कामनाएँ देनेवाला है, तुम मेरे लिये उसी वस्तुकी खोज कराओ।'

धरणी बोली—सुलोचने ! उसके भक्तोंका लक्षण बतलाओ, जिनके लिये वह संसारमें सुलभ है।

पद्मावतीने कहा—उनके मनोरम लक्षणोंका वर्णन करती हूँ, सुनो। वे वेदोंके स्वाध्यायमें तत्पर होकर सदा वैदिक कर्मका अनुष्ठान करते हैं, सत्य बोलते हैं, दूसरोंके दोषोंको कभी नहीं देखते हैं, परायी निन्दासे दूर रहते हैं, दूसरोंके धनका अपहरण नहीं करते। परायी स्त्रियाँ कितनी ही सुन्दरी क्यों न हों, वे न तो उनकी याद करते हैं, न उनकी ओर देखते हैं और न कभी उनका स्पर्श ही करते हैं। ऐसे सदाचारी महात्माओंको ही तुम वैष्णव जानो। जो सब प्राणियोंके प्रति दयाभावसे युक्त होकर सबके हितमें संलग्न रहते हैं तथा देवेश्वर विष्णुके गुणोंका गान करते हैं, उनको निश्चय ही भगवान्‌का भक्त समझो। जिस किसी वस्तुसे भी जो सन्तुष्ट रहते, अपनी ही स्त्रीके प्रति अनुराग रखते तथा राग, भय और क्रोधसे दूर रहते हैं, उन पुरुषोंको तुम भगवान् विष्णुका भक्त जानो। जो ऐसे लक्षणोंसे युक्त हैं, वे ही वैष्णव माने गये हैं। ऐसे सदाचारी भक्तोंको ही उन परमात्माकी प्राप्ति होती है। उन्हीं परमेश्वरमें मेरा प्रेम हो गया है, मेरा मन उन्हींसे मिलना चाहता है। मा ! भगवान् विष्णुके सिवा और किसी वस्तुकी मुझे कोई इच्छा नहीं है। मैं श्यामसुन्दर भगवान् विष्णुका स्मरण करती हूँ। उन्हींके हरि, अच्युत आदि नाम लेती हूँ और उन्हींके सहारे जीवन धारण करती हूँ। अतः जिस प्रकार उनसे सम्बन्ध हो सके वैसा उपाय सोचो।

मातासे ऐसा कहकर दयनीय दशाको पहुँची हुई कमल-सदृश मुखवाली पद्मावती चुप हो गयी। पुत्रीकी बातें सुनकर धरणीदेवी यह सोचने लगी कि—'भगवान् विष्णु कैसे प्रसन्न होंगे ?' इसी समय अगस्त्येश्वरकी पूजा करके पूर्वोक्त कन्याएँ वकुलमालिकाके साथ धरणीदेवीका दर्शन करनेके लिये आयीं। महारानी धरणीने घरपर पधारे हुए ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन दे उनका स्वागत-सत्कार करके वस्त्र और आभूषणों-सहित पर्याप्त दक्षिणा दी तथा अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये आशीर्वाद लेकर उन सबको विदा किया। तत्पश्चात् वहाँ आयी हुई मनस्विनी कन्याओंसे पूछा—'बताओ, यह श्रेष्ठ कन्या कौन है ? तुमलोगोंसे इसका साथ कहाँ हुआ है ? इस राजभवनमें यह किसलिये आयी है ? मुझे तो यह कोई पूजनीया देवी प्रतीत होती है।'

कन्याएँ बोलीं—महारानी ! यह देवी वास्तवमें दिव्याङ्गना है और किसी कार्यसे आपके ही पास आयी है। देवालयमें भगवान् शङ्करके समीप हमलोगोंसे यह मिली है। हमारे पूछनेपर इसने बताया कि 'मैं पूजनीया महारानीसे मिलने आयी हूँ।' तब हमने कहा—'तुम हमारे ही साथ चलो। हम महारानीकी दासियाँ हैं और अभी राजमहलमें चलेंगी।' इस प्रकार यह आपके समीप आयी है। अब आप ही पूछें, इसके आगमनका क्या उद्देश्य है।

तब धरणीदेवीने पूछा—तुम कहाँसे आयी हो ? मुझसे तुम्हें क्या काम है ? सच-सच बताओ।

वकुलमालिका बोली—महारानी ! मैं वेङ्कटाचलसे आयी हूँ। मेरा नाम वकुलमालिका है। हमारे स्वामी भगवान् नारायण सदा श्रीवेङ्कटाचलमें निवास करते हैं। एक दिन वे हंसके समान श्वेत और मनके समान वेगशाली अश्वपर सवार हो वेङ्कटगिरिके पास ही वनमें शिकार खेलनेके लिये गये और एक वनसे दूसरे वनमें विचरते हुए आरणी नदीके तटपर जा पहुँचे। वहाँ घोड़ेसे उतरकर वे नदीके सुन्दर तटपर भ्रमण करने लगे। उसी समय उन्होंने फूल तोड़ती हुई कुछ सुन्दरी कन्याओंको देखा। उनके बीचमें एक तन्वङ्गी कन्या थी, जो लक्ष्मीजीके समान सुवर्ण गौरी एवं अत्यन्त

मनोहर थी। उस कन्याके प्रति भगवान्‌का मन अनुरक्त हो गया। उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे श्रीहरिने उन कन्याओंसे पूछा—'यह सुन्दरी कुमारी कौन है?' कन्याओंने उत्तर दिया—'महाबल! यह आकाशराजकी कन्या है।' इतना सुनकर वे घोड़ेपर सवार हो गये और बड़े वेगसे अपने निवासस्थान वेङ्कटाचलपर जा पहुँचे। वहाँ स्वामिपुष्करिणीके किनारे अपने धाममें प्रवेश करके भगवान्‌ने मुझे बुलाया और इस प्रकार कहा—'सखी वकुलमालिके! तुम आकाशराजके नगरमें जाकर महाराजके अन्तःपुरमें प्रवेश करो और महारानी धरणीसे मिलकर कुशल-प्रश्न पूछनेके पश्चात् उनकी सुन्दरी पुत्री पद्मालयाको मेरे लिये माँगो तथा राजाका मनोभाव जानकर शीघ्र लौट आओ।' महारानी! भगवान्‌की ऐसी आज्ञा होनेपर मैं तुम्हारे महलमें आयी हूँ। अब तुम मन्त्रीसहित महाराजसे सलाह करके जो उचित जान पड़े वैसा करो।

वकुलमालिकाकी बात सुनकर महारानी धरणी बहुत प्रसन्न हुई। उन्होंने आकाशराजको बुलाया और पद्मालयाके पास जाकर मन्त्रियोंके बीचमें उसकी कही हुई सारी बातें कह सुनायीं। सुनकर राजा भी अत्यन्त प्रसन्न हुए और मन्त्रियों तथा पुरोहितोंसे बोले—'मेरी पुत्री पद्मालया दिव्य-रूपवाली अयोनिजा कन्या है। उसके लिये वेङ्कटाचल-निवासी देवाधिदेव भगवान् नारायणने याचना की है। आज मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। बताइये, आपलोगोंकी क्या राय है?' महाराजका उत्तम वचन सुनकर सब मन्त्री प्रसन्न-चित्त होकर बोले—'राजेन्द्र! यदि ऐसी बात है, तो हम सब लोग कृतार्थ हो गये। इस सम्बन्धसे आपका यह कुल सबसे उन्नत होगा। आपकी अनुपम कन्या साक्षात् भगवती लक्ष्मीके साथ आनन्दपूर्वक रहेगी। आप इसे देवाधिदेव शार्ङ्गधनुषधारी परमात्मा विष्णुको समर्पित करें। यह शोभामय वसन्त ऋतु है। इसमें इस शुभ कार्यका अनुष्ठान शीघ्र कर डालना चाहिये। बृहस्पतिजीको बुलाकर आप विवाहके लिये लग्न निश्चित करें।'

तदनन्तर 'बहुत अच्छा' कहकर आकाशराजने देवलोकसे बृहस्पतिजीको बुलाया और वर-कन्याके विवाहके लिये लग्न पूछा—'ब्रह्मन्! कन्याका जन्मनक्षत्र मृगशिरा है और वरका श्रवण। अतः इन दोनोंके विवाह-सम्बन्धका विचार कीजिये।' तब बृहस्पतिजीने कहा—'वर और कन्या दोनोंके सुखकी वृद्धिके लिये ज्यौतिषियोंने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रको सर्वश्रेष्ठ माना है। अतः वैशाख मासके उत्तराफाल्गु[illegible] नक्षत्रमें दोनोंका विधिपूर्वक विवाहकार्य सम्पन्न किय[illegible] जाय।' यह सुनकर राजाने बृहस्पतिजीकी पूजा करके उन[illegible] विदा किया और भगवान्‌की दूतीसे कहा—'शुभे! तु[illegible] भगवान्‌के निवासस्थानको जाओ और देवाधिदेव नारायण[illegible] कहो—वैशाख मासमें यह मङ्गलकार्य सम्पन्न होगा। आ[illegible] वैवाहिक मङ्गलाचार सम्पन्न करके यहाँ पधारें।'

इसके बाद देवीका प्रिय करनेवाले शुकरूपी दूतको वकुलमालिकाके साथ भेजकर आकाशराजने अपने पुत्रको वायु, इन्द्र आदि देवताओंके बुलानेके कार्यमें नियुक्त किया। साथ ही विश्वकर्माको बुलाकर अपने नगरकी सजावटके काममें लगाया। विश्वकर्माने पलभरमें अपना कार्य पूर्ण कर दिया। उधर वकुलमालिका अश्वपर सवार हो शुकके साथ प्रस्थित हुई और वेङ्कटाचलपर पहुँचकर देवालयके समीप घोड़ेसे नीचे उतरी। फिर शुकको अपने साथ ले मन्दिरके भीतर गयी। वहाँ सुन्दर नेत्रोंवाले भगवान् नारायणको लक्ष्मीजीके साथ रत्नसिंहासनपर विराजमान देख प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक बोली—'प्रभो! वहाँका कार्य तो मैंने पूरा कर लिया, उधरसे माङ्गलिक वार्ता करनेके लिये यह शुक आया हुआ है।' तब भगवान्‌की आज्ञा पाकर शुकने उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'माधव! भूमि-कन्या पद्मावतीने आपके पास यह सन्देश भेजा है कि मुझे अङ्गीकार कीजिये। रमापते! मैं आपके ही नाम लेती हूँ, आपके ही स्वरूपका सदा स्मरण करती हूँ। मधुसूदन! आपकी प्रसन्नताके लिये ही मैं सब कार्य करती हूँ। मेरे इस काममें पिता और माताकी भी सम्मति है। देवेश! मुझपर कृपा करके मुझे अङ्गीकार कीजिये।'

शुकका यह प्रिय वचन सुनकर श्रीहरिने कहा—'शुक! जाओ और पद्मालयासे इस प्रकार कहो—'देवि! श्रीनारायण-देवने कहा है कि मैं देवताओंको साथ लेकर मङ्गलमय विवाहकार्य सम्पन्न करनेके लिये अवश्य आऊँगा।' भगवान्‌का यह वचन सुनकर और प्रसादरूपसे उनकी दी हुई वनमाला लेकर शुक शीघ्र ही आकाशराजकी कन्याके पास लौट गया। उसने कस्तूरीकी सुगन्धसे युक्त वह तुलसीमाला राजकुमारीको देकर प्रणाम किया और भगवान्‌का शुभ सन्देश कह सुनाया। सुनकर उस प्रसाद-मालाको हाथमें ले पद्मालयाने उसे मस्तकपर चढ़ा लिया और भगवान्‌के आगमनकी प्रतीक्षा करती हुई योग्य आभूषण

राजा वज्राङ्गदपर भगवान् अरुणाचलेश्वरकी कृपा

[पृष्ठ २०६
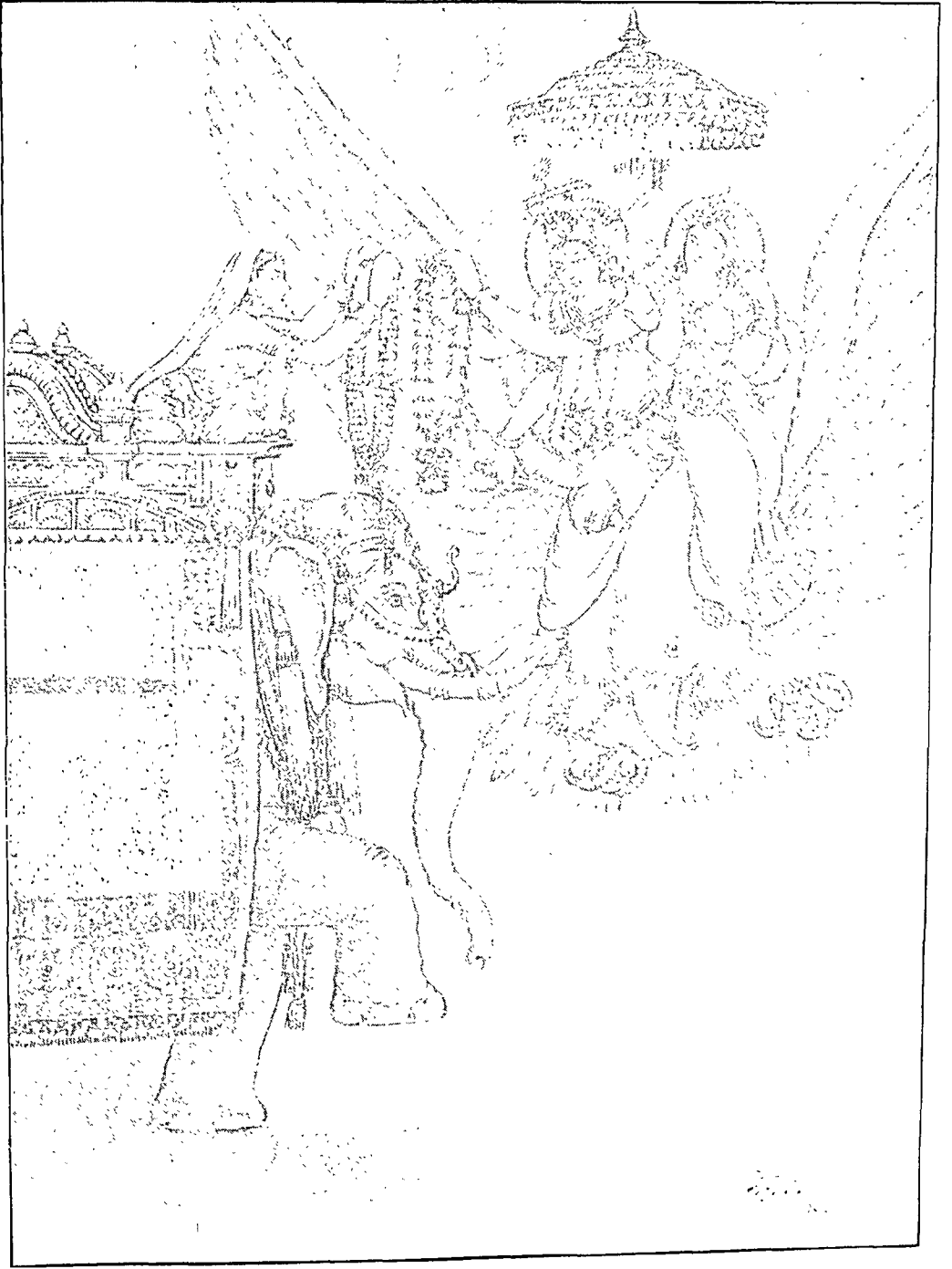
पद्मालया और भगवान्‌का परस्पर माला पहनाना

[पृष्ठ २१७

धारण किये। आकाशराजने भी आनन्दमग्न हो चन्द्रदेवको बुलाकर आदरपूर्वक कहा—'राजन्! आप नाना प्रकारका सरस भोजन तैयार कीजिये जो भगवान् विष्णुके भोगमें आने योग्य हो। उत्तम-से-उत्तम अन्नकी व्यवस्था होनी चाहिये।' इस प्रकार प्रबन्ध करके भगवान्‌के आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए आकाशराज प्रसन्न मनसे राजसभामें बैठे थे।

तदनन्तर देवाधिदेव भगवान् नारायणने भी लक्ष्मीजीको बुलाकर कहा—'कल्याणी! अपनी सखियोंको आज्ञा दो और वैवाहिक कार्य सम्पन्न करो।' भगवान्‌का यह आदेश सुनकर लक्ष्मीदेवीने सखियोंको बुलाया और सबको आवश्यक कार्य करनेकी आज्ञा दी। लक्ष्मीकी आज्ञासे प्रीतिदेवीने सुगन्धित तेल लिया, श्रुतिदेवी रेशमी वस्त्र लेकर भगवान्‌के समीप खड़ी हुईं, स्मृति भी भाँति-भाँतिके आभूषण लेकर प्रसन्नतापूर्वक उपस्थित हुईं। धृतिने दर्पण हाथमें लिया, शान्तिने कस्तूरीको प्रस्तुत किया, लज्जादेवी यक्षकर्दम[1] लेकर भगवान्‌के सामने खड़ी हुईं, कीर्तिने सोनेका पट्ट तथा रत्नयुक्त मुकुट हाथमें लिया, शचीने छत्र लगाया, सरस्वतीदेवी चँवर डुलाने लगीं, गौरीदेवीने दूसरा चँवर हाथमें लिया, विजया और जया पंखा झलने लगीं। उपर्युक्त सब देवियोंको वहाँ उपस्थित देख लक्ष्मीदेवीने शीघ्रतापूर्वक उठकर सुगन्धित तेल हाथमें लिया और भगवान्‌के मस्तकसे लेकर सब अङ्गोंमें उसे लगाकर सुगन्धित चूर्णसे उबटन किया। इस प्रकार श्रीनारायणदेवके सब अङ्गोंको भलीभाँति मलकर आकाशगङ्गा आदि तीर्थोंसे भरकर लाये हुए सौ सुवर्णमय कलश मँगवाये और उनमेंसे एक-एकको लेकर उसके जलसे भगवान्‌का अभिषेक किया। तत्पश्चात् सुनहरे रंगके सुगन्धयुक्त चन्दनसे भगवान्‌के अङ्गमें लेप लगाया। फिर उनकी कमरमें रेशमी पीताम्बर बाँधकर उसमें करधनी पहना दी। मस्तकपर मुकुट रक्खा और अन्यान्य आभूषणोंसे भी विभिन्न अङ्गोंको विभूषित किया। उनकी सभी अङ्गुलियोंमें लक्ष्मीजीने दिव्य सोनेकी अंगूठियाँ पहना दीं। इसके बाद धृतिदेवीने भगवान्‌के समीप जाकर दर्पण दिखाया। दर्पण देखकर देवाधिदेव विष्णुने स्वयं ही ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किया। तदनन्तर वे लक्ष्मीजीके साथ गरुड़पर आरूढ़ हुए। इसी समय ब्रह्मा, महादेवजी, इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर उनकी सेवामें उपस्थित हुए। इन सब देवताओं, वसिष्ठ आदि मुनीश्वरों, सनकादि योगियों तथा अन्य भगवद्भक्तोंके साथ भगवान् विष्णु नारायणपुरको गये। उस समय भगवान् विष्णुके समीप देवताओंके नगाड़े बज रहे थे। मुनिलोग स्वस्त्ययनसम्बन्धी सूक्तोंका जप करते हुए भगवान्‌के पीछे-पीछे चल रहे थे। भगवान्‌के साथ सम्पूर्ण देवता और विष्वक्सेन आदि पार्षद चल रहे थे। वकुलमाला आदि सखियाँ रथोंमें बैठकर गयीं। इस प्रकार भगवान्‌ने बारात लेकर आकाशराजके सजे-सजाये नगरमें प्रवेश किया।

आकाशराजने देखा, भगवान् आ गये और पुत्री पद्मावती भी ऐरावतपर बैठकर समस्त पुरीकी परिक्रमा करके गोपुरद्वारपर आ पहुँची है। तब वे वर-वधूको साथ ले आकर भाई-बन्धुओंके साथ भगवान्‌का दर्शन करते हुए खड़े हो गये। भगवान्‌ने अपने कण्ठमें पड़ी हुई माला हाथमें लेकर पद्मालयाके गलेमें डाल दी और पद्मालयाने बेलाके फूलोंका गजरा लेकर भगवान्‌के कण्ठमें पहना दिया। ऐसा करके वे दोनों सवारीसे उतर गये और थोड़ी देर पीढ़ेपर खड़े होनेके पश्चात् सुन्दर गृहमें प्रवेश किया। उनके साथ ब्रह्मा आदि देवताओंका समुदाय भी था। ब्रह्माजीने अङ्कुरारोपणपूर्वक माङ्गल्य-सूत्र-बन्धन (कङ्कण-बन्धन) से लेकर लाजाहोम तककी सम्पूर्ण वैवाहिक विधि सम्पन्न करायी। फिर व्रत-पालनकी आज्ञा लेकर पद्मालया और श्रीहरिने पृथक्-पृथक् शयन किया। पुनः चौथे दिन चतुर्थी कर्म आदि सब कार्य पूर्ण करके चतुर्मुख ब्रह्माने आकाशराजकी अनुमति ले दोनों देवियोंके साथ भगवान्‌को गरुड़पर बिठाया और देवताओंके साथ वहाँसे चलनेकी तैयारी की। तब आकाशराजने इन्द्र आदि देवताओंके साथ अपनी पुत्री और दामादका प्रिय करनेके लिये सोनेके कड़ाहोंमें अगहनीके चावल, मूँगसे भरे हुए अनेक पात्र और सैकड़ों घीके घड़े दहेजमें दिये। हजारों घड़े दूध और दहीसे भरे हुए अनेकों भाण्ड, आम, केला और नारियलके दिव्य फल, आँवले, कूष्माण्ड, राजकदलीके फल, कटहल, बिजौरा नीबू, शक्करसे भरे हुए घड़े, सोना, मणि, मोती, करोड़ों रेशमी वस्त्र, हजारों दास-दासी, करोड़ों गाय, हंस और चन्द्रमाके समान श्वेत रंगके दस हजार घोड़े और सदा उन्मत्त रहनेवाले सौसे अधिक ऊँचे-ऊँचे हाथी—ये सारी वस्तुएँ भगवान् विष्णुको भेंट करके आकाशराज उनके आगे खड़े हुए।

---

१. कपूर, अगर, कस्तूरी और कंकोलसे बनी हुई अङ्गराग-सामग्रीका नाम 'यक्षकर्दम' है।

पद्मावती और लक्ष्मीदेवीके साथ वेङ्कटनाथ भगवान् विष्णु दहेजकी वह सब सामग्री देखकर बड़े प्रसन्न हुए और अपने श्वशुरसे बोले—'राजन् ! इस समय आप मेरे गुरु हैं । आपकी जो इच्छा हो मुझसे वर माँगिये ।' भगवान्‌की यह बात सुनकर आकाशराजने कहा—'देव ! इस संसारमें आपकी अनन्य सेवा ही मेरेद्वारा होती रहे, मेरा मन आपके चरणारविन्दोंमें रमता रहे और आपमें मेरी निरन्तर भक्ति बनी रहे ।'

श्रीभगवान् बोले—राजेन्द्र ! आपने जो कहा है, वह सब पूर्ण होगा । तत्पश्चात् ब्रह्मा आदि देवताओंने और शुक आदि मुनिगणोंने भगवान् पुरुषोत्तमका स्तवन किया । फिर ब्रह्मा आदि सब देवताओंका यथायोग्य सत्कार करके श्रीहरिने उन्हें स्वर्गलोकमें जानेके लिये प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी । उन सबके चले जानेपर भगवान् नारायण स्वामिपुष्करिणीके तटपर लक्ष्मीदेवी और पद्मावतीके साथ अपने दिव्य धाममें रहने लगे ।

तोण्डमानको निषादके साथ भगवान् श्रीनिवासका दर्शन होना

पृथ्वीने पूछा—मुझे धारण करनेवाले प्रियतम ! कलियुगमें आपका दर्शन किसको होगा तथा परम सुन्दर विग्रहवाले भगवान् श्रीनिवासका दर्शन भी किसे प्राप्त हो सकेगा ? यह मुझे बतलाइये ।

भगवान् वाराह बोले—देवि ! सुनो । जो भविष्यमें होनेवाली बात है उसे भूतकालकी भाँति बतला रहा हूँ । इस पवित्र पर्वतपर एक वसु नामक निषाद था, जो श्यामाक वन (सावाँके जंगल) की रक्षा किया करता था । भगवान् पुरुषोत्तमके प्रति उसके मनमें बड़ी भक्ति थी । वह सावाँके चावलोंका भात बनाकर उसमें मधु मिला देता और श्रीदेवी तथा भूदेवीसहित देवाधिदेव भगवान् विष्णुको निवेदन करके स्वयं प्रसाद पाता था । इस प्रकार भक्ति करनेवाले उस निषादकी कल्याणमयी भार्या चित्रवतीने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम वीर था । वसु अपने पुत्र तथा पतिव्रता पत्नीके साथ आनन्दपूर्वक रहता था । एक दिन वह अपने पुत्रको सावाँकी रक्षा करनेका आदेश दे स्वयं पत्नीके साथ मधुकी खोजमें चला । मधुका छाता देखनेकी इच्छासे वह एक वनसे दूसरे वनमें शीघ्रतापूर्वक चला जा रहा था । इधर उसके पुत्रने सावाँके तैयार किये हुए भातको लेकर कुछ अग्निमें डाल दिया और कुछ पीसकर वृक्षकी जड़में भगवान् श्रीपतिको भोग लगाया । फिर भगवान्‌का प्रसाद खाकर वीर वहाँ सुखसे बैठा रहा । तदनन्तर वसु मधु लेकर आया और सावाँके चावलोंको खाया हुआ देख अपने पुत्रको फटकारने लगा । उसने बड़ी उतावलीके साथ वीरको मार डालनेके लिये तलवार लेकर हाथको ऊपर उठाया । उस समय भगवान् विष्णु उस वृक्षपर ही विराजमान थे। उन्होंने वसुकी तलवार हाथसे पकड़ ली । तब उसने वृक्षकी

ओर देखा । भगवान् विष्णु हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा लिये तथा आधा शरीर वृक्षपर टिकाये खड़े थे । उन्हें देखते ही वसुने तलवार छोड़ दी और भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'देवदेवेश्वर ! आप यह क्या कर रहे हैं ?'

श्रीभगवान् बोले—वसो ! तुम मेरी बात सुनो । तुम्हारा पुत्र मुझमें भक्ति रखता है । यह तुमसे भी बढ़कर मुझे प्यारा है । इसलिये मैंने इसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया । इसकी दृष्टिमें मैं सर्वत्र हूँ, किंतु तुम्हारी दृष्टिमें केवल स्वामिपुष्करिणीके तटपर रहता हूँ ।

भगवान्‌का यह वचन सुनकर वसु बड़ा प्रसन्न हुआ। एक समय चन्द्रवंशमें तोण्डमान नामसे प्रसिद्ध एक राजा हुए। वे बड़े वीर थे। उनके पिताका नाम सुवीर और माताका नाम नन्दिनी था। पाँच ही वर्षकी अवस्थामें उनके हृदयमें भगवान् विष्णुकी भक्ति प्रकट हो गयी थी। वे बड़े बुद्धिमान् और सुशीलता, शूरता तथा पराक्रम आदि गुणोंकी निधि थे। युवा होनेपर उन्होंने पाण्ड्यनरेशकी सुन्दरी पुत्री पद्माके साथ विवाह किया। तत्पश्चात् भिन्न-भिन्न देशोंकी सैकड़ों स्वयंवरा कन्याओंको भी वे ब्याह लाये और नारायणपुरमें रहकर इस पृथ्वीपर देवराज इन्द्रकी भाँति सुख भोगने लगे। एक दिन सिंहके समान पराक्रमी तोण्डमान अपने पिताकी आज्ञा लेकर वेङ्कटाचलके समीप शिकार खेलनेके लिये गये। वहाँ अपने सेवकोंके साथ पैदल घूमते हुए उन्होंने एक यूथपति गजराजको देखा और उसे पकड़नेके लिये उसका पीछा किया। सुवर्णमुखरी नदीको पार करके वे परम उत्तम ब्रह्मर्षि शुकके पास गये और उन्हें प्रणाम करके उनकी आज्ञा ले एक वनसे दूसरे वनमें चलते गये। एक जगह उन्होंने रेणुकादेवीको देखा, जो वल्मीक—बाँबी (बिमौट)-के आकारमें खड़ी थीं। उनको प्रणाम करके वीर तोण्डमान पश्चिमकी ओर चले गये। आगे जाकर उन्हें एक पँचरंगा तोता दिखायी दिया। फिर उसे पकड़नेके लिये वे भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। तोता श्रीनिवासका नाम रटता हुआ शीघ्र ही पर्वतके शिखरपर जा पहुँचा। पीछा करते हुए राजा भी गिरिराज-पर चढ़ गये और उस तोतेको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते श्यामाक वनमें जा पहुँचे। वहाँ तोतेको न देखकर उन्होंने उस वनकी रक्षा करनेवाले निषादको देखा। उसने भी राजाको आते देख शीघ्रतापूर्वक आगे आकर उनकी अगवानी की और उन्हें प्रणाम करके विनीतभावसे वह दोनों हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तोण्डमानने भी उसका आदर करके उससे पूछा—'वनेचर! इधर कोई पँचरंगा तोता आया है? क्या तुमने उसे देखा है? वह 'श्रीनिवास-श्रीनिवास'की रट लगा रहा था। बताओ वह किधर गया है?'

वनेचर बोला—महाराज! वह पाँच रंगोंवाला शुक भगवान् श्रीनिवासको बहुत प्रिय है। उसे श्रीदेवी और भूदेवीने पाल-पोसकर बड़ा किया है। वह सदा भगवान् श्रीहरिके ही पास रहता है और स्वामिपुष्करिणीके तटपर भगवान्‌के समीप विचरता रहता है। उस सुन्दर शुकको कोई भी पकड़ नहीं सकता। राजकुमार! अब मैं भगवान्‌की आराधनाके लिये जाऊँगा, जबतक मैं लौटकर न आऊँ तबतक आप यहीं वृक्षके नीचे विश्राम कीजिये।

राजा बोले—वनेचर! मैं भी तुम्हारे साथ भगवान् जनार्दनका दर्शन करनेके लिये चलूँगा। तुम मुझे वेङ्कटाचल-निवासी देवेश्वरका दर्शन कराओ।

राजाकी यह बात सुनकर निषादने मधुमिश्रित सावाँका भात आमके पत्तेके दोनेमें रख लिया और राजाको भी साथ लेकर वह भगवान्‌के समीप गया। वहाँ राजासहित विधिपूर्वक स्नान करके निषादराजने स्वामिपुष्करिणीके तटपर बिल्ववृक्षके नीचे विराजमान भगवान् विष्णुका राजाको दर्शन कराया। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति अलसीके फूलकी भाँति श्याम थी। कमलदलके समान सुन्दर एवं विशाल नेत्र थे। वे चार भुजाओंसे सुशोभित थे। उनके अङ्ग-अङ्गसे उदारता प्रकट हो रही थी। मुखारविन्दपर मन्द-मन्द मुसकानकी छटा छा रही थी। उनके अङ्गोंपर दिव्य पीताम्बर शोभा पा रहा था। मस्तकपर किरीट और हाथोंमें कङ्कण आदि आभूषणोंसे उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। भगवान्‌के दोनों पार्श्वमें परम सुन्दरी श्रीदेवी और भूदेवी विराज रही थीं। शङ्ख, चक्र, खड्ग, गदा, शार्ङ्ग धनुष और बाण आदि आयुध मूर्तिमान् होकर सब ओरसे भगवान्‌की सेवामें उपस्थित थे। इस प्रकार उन पुरुषोत्तमका दर्शन करके उन दोनोंने आनन्दमग्न होकर उन्हें प्रणाम किया। निषादने भी मधुमिश्रित सावाँ-का भात भगवान्‌को निवेदन किया। फिर राजाके साथ श्यामाक वनमें अपनी पवित्र पर्णकुटीपर वह लौट आया। राजा एक रात उसकी कुटीमें रहे और सवेरे उठकर अपनी सेनाके साथ पुनः नगरकी ओर लौटे। फिर देवीके वनमें जाकर वे घोड़ेसे उतरे और चैत्र शुक्ला नवमीको उन्होंने रेणुकादेवीका पूजन किया। उनसे पूजित होकर देवीने प्रसन्न हो उन्हें वर दिया—'राजन्! तुम्हारा राज्य निष्कण्टक होगा। राजधानी तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगी। मेरे समीप तुम दीर्घकालतक राज्य करोगे और तुम्हारे ऊपर देवाधिदेव भगवान् विष्णुका कृपाप्रसाद सदा बना रहेगा।'

इस प्रकार वरदान पाकर राजा पुनः शुकमुनिके आश्रम-पर गये और उन्हें प्रणाम करके उनके द्वारा सम्मानित हो हर्षको प्राप्त हुए। फिर उन्होंने मुनिसे कहा—'महर्षे! आप कमलसरोवरका माहात्म्य बतलाइये।'

श्रीशुक मुनिने कहा—राजन् ! यह कमलसरोवर-नामक तड़ाग सब पापोंका नाश करनेवाला है। कीर्तन, स्मरण और स्नान करनेसे यह मनुष्योंको इस पृथ्वीपर लक्ष्मी प्रदान करनेवाला होता है। तुम भी इसमें स्नान करके अपने पिताके समीप जाओ।

शुक मुनिका यह वचन सुनकर राजकुमारने कमल-सरोवरमें स्नान किया और मुनिको प्रणाम करके घोड़ेपर सवार हो अपने नगरको प्रस्थान किया। पिताने तोण्डमानको तीन वर्षके लिये युवराज बनाकर देख लिया कि मेरे पुत्रमें प्रजाको प्रसन्न रखनेकी योग्यता, सामर्थ्य, पराक्रम, शौर्य, सुशीलता और ब्राह्मणभक्ति है। तब उन्होंने मन्त्रियोंसे सलाह करके विधिपूर्वक पुत्रका राज्याभिषेक किया और उन्हें अपने पदपर स्थापित करके उनकी अनुमति ले राजा सुवीर वनमें चले गये। तोण्डमानने वह विशाल साम्राज्य पाकर धर्मपूर्वक राज्य किया।

वाराह भगवान् तथा अस्थिसरोवर तीर्थकी महिमा, भक्त कुम्हार तथा राजा तोण्डमानका परमधामगमन

भगवान् वाराह कहते हैं—एक दिन निषादराज वंसु तोण्डमानके द्वारपर आया। द्वारपालोंसे उसके आगमनकी सूचना पाकर महाराजने उसे दरबारमें बुलाया और मन्त्रियों-के साथ पुत्र और परिवारसहित उसका स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् प्रसन्न होकर उन्होंने वसुसे पूछा—'वनेचर ! किस कार्यसे तुम्हारा यहाँ आगमन हुआ है ?'

वसुने कहा—राजन् ! मैंने वनमें एक बड़े आश्चर्यकी बात देखी है, उसे सुनिये। रातमें कोई श्वेत रंगका वाराह आकर मेरा सावाँ चरने लगा। तब मैंने हाथमें धनुष लेकर उसका पीछा किया। खदेड़नेपर वह वायुके समान वेगसे भागा और मेरे देखते-देखते स्वामिपुष्करिणीके तटपर वल्मीकमें घुस गया। तब मैंने क्रोधवश उस वल्मीकको खोदना आरम्भ किया। इतनेमें ही मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसी समय मेरा यह पुत्र भी आ गया और मुझे पृथ्वीपर मूर्छित होकर पड़ा देख पवित्र होकर देवाधिदेव भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करने लगा। तब भगवान् वाराह-का मुझमें आवेश हुआ, उन्होंने मेरे पुत्रसे कहा—'निषादराज ! तुम शीघ्र राजाके पास जाकर मेरा सारा वृत्तान्त उनसे कहो। राजा काली गौके दूधसे अभिषेक करते हुए इस वल्मीकको धो डालें, तब इसके भीतर एक परम सुन्दर शिला दिखायी देगी। उसे लेकर किसी कारीगरसे मेरी मूर्ति बनवावें, जिसमें मैं भूमिदेवीको अपने बायें अङ्क-में लेकर खड़ा रहूँ और मेरा मुख सूकरके समान हो। मूर्ति तैयार हो जानेपर बड़े-बड़े मुनीश्वरों और वैखानस महात्माओंद्वारा उसकी स्थापना कराकर स्वयं तोण्डमान भी उसकी पूजा करें।' यों कहकर भगवान् वाराहने मुझे छोड़ दिया, तब मैं स्वस्थ हो गया। देवाधिदेव भगवान् वाराह आपसे क्या कराना चाहते हैं, यह बतलानेके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ।

राजा तोण्डमान भी यह सुनकर बहुत प्रसन्न और विस्मित हुए। तदनन्तर पुष्कर आदि मन्त्रियोंके साथ कार्य-का निश्चय करके वेङ्कटाचल जानेका विचार किया और सब ग्वालोंको बुलाकर कहा—'गोपगण ! जितनी भी मेरी काली और कपिला गौएँ हैं, उन सबको बछड़ोंसहित वेङ्कटाचलके समीप लाओ।' गोपोंको ऐसी आज्ञा देकर राजाने मन्त्रियोंको सूचित किया—'कल ही यात्रा करनी है।' इसके बाद सब प्रजाको विदा करके जितेन्द्रिय राजाने अन्तःपुरमें प्रवेश किया और अपनी पत्नियोंसे वाराहजीकी वह कथा सुनाकर वे रातमें वहीं सोये। सपनेमें भगवान् श्रीनिवासने राजाको बिलका मार्ग दिखाया और उनके नगरसे लेकर बिलके अन्ततक मार्गमें पल्लव बिछा दिये। राजा यह स्वप्न देखकर जब सबेरे उठे, तब उन्होंने शीघ्र ही मन्त्रियों, प्रजाओं और ब्राह्मणोंको भी बुलाया। उन सबसे अपना देखा हुआ स्वप्न सुनाकर जब उन्होंने दरवाजेपर दृष्टि डाली, तब वहाँ पल्लव बिछे हुए दिखायी दिये। तब उपयुक्त मुहूर्तमें घोड़ेपर सवार हो राजा तोण्डमान घरसे चले और बिलके पास पहुँचकर वहीं उन्होंने नगर बनाया। उस समय देवाधिदेव भगवान्ने स्वयं राजाको यह आदेश दिया अर्थात् संकेत किया कि 'इमली और चम्पा—ये दो वृक्ष बहुत उत्तम हैं, इनका पालन करो। इमली मेरा आश्रय है और चम्पा लक्ष्मीजीका स्थान है। अतः राजाओं, ऋषियों, देवताओं तथा मनुष्योंको इन दो वृक्षोंकी वन्दना करनी चाहिये।'

तोण्डमानसे ऐसा कहकर भगवान् विष्णु चुप हो गये। उनका वचन सुनकर राजाने चहारदिवारी बनवायी और

वैखानस कुलके मुनियोंसे पूजन कराथा। वे प्रतिदिन बिलके मार्गसे आकर भगवान्‌को प्रणाम करते और लौट जाते थे। उन्होंने उत्तम भोग भोगते हुए धर्मपूर्वक राज्य किया। इसी समय दक्षिण देशके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण गङ्गास्नानके लिये स्त्रीसहित घरसे चले। मार्गमें ब्राह्मणी गर्भवती हो गयी। उसे इस दशामें देखकर और अपने साथ चलनेमें असमर्थ जानकर ब्राह्मण देवता राजाके द्वारपर आये। द्वारपालसे उनके आगमनकी सूचना पाकर राजाने उन्हें दरबारमें बुलाया और उनकी विधिपूर्वक पूजा करके उनसे कुशल-समाचार पूछा—'ब्रह्मन्! आपके आगमनका क्या हेतु है? बताइये, मैं आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ?'

ब्राह्मणने कहा—नृपश्रेष्ठ! मैं वशिष्ठकुलमें उत्पन्न वीरशर्मा नामक सामवेदी ब्राह्मण हूँ। घरसे गङ्गास्नान करनेके लिये पत्नीको साथ लेकर निकला था। मार्गमें यह गर्भवती हो गयी। यह कुशिकवंशकी कन्या तथा बड़ी पुण्यशालिनी है। इसका नाम लक्ष्मी है। यह बड़ी सुशील और पतिव्रता है। इसे मैं आपके घरमें रखकर अपना व्रत पूर्ण करना चाहता हूँ। अतः जबतक मैं लौटकर न आऊँ, तबतक आप इसकी रक्षा करें।

ब्राह्मणकी बात सुनकर राजाने छः महीनेके लिये चावल और धन देकर ब्राह्मणीके लिये अन्तःपुरमें एक घर दे दिया। अपनी पत्नीको वहाँ रखकर ब्राह्मण प्रसन्नतापूर्वक गङ्गास्नानके लिये चले गये। उत्तम क्षेत्र प्रयागमें भागीरथी गङ्गाके तटपर पहुँचकर उन्होंने स्नान किया। वहाँसे काशी-की यात्रा की और वहाँ भी तीन दिनोंतक रहकर वे गया चले गये। वहाँ उन श्रेष्ठ ब्राह्मणने अपने पितरोंका श्राद्ध किया। तत्पश्चात् अयोध्यापुरीकी यात्रा करके वे बद्रिकाश्रम-को गये। फिर शालिग्राम-तीर्थका सेवन करके अपने देशकी ओर लौटे। इसीमें दो वर्ष बीत गये। वैशाख मासकी शुक्ल-पक्षीया एकादशी तिथिको वे पुनः राजाके पास गये। राजा ब्राह्मणीको भूल गये थे। उन्होंने उसका कभी स्मरण नहीं किया। ब्राह्मणी स्वाभिमानिनी थी, (छः महीने बाद अन्न समाप्त हो जानेपर भी वह माँगने नहीं गयी) घरमें ही मरकर सूख गयी थी। तदनन्तर वीरशर्मा ब्राह्मणने गङ्गाजलकी पिटारी खोलकर एक शीशी गङ्गाजल राजाको भेंट किया और पूछा—'मेरी धर्मपत्नी कुशलसे तो है न?' तब राजाने ब्राह्मणको स्मरण करके कहा, 'आप ठहरिये, मैं अभी आता हूँ।' यों कहकर उन्होंने अन्तःपुरमें जाकर देखा तो ब्राह्मणी घरमें मर गयी थी। ब्राह्मणको यह बात न बताकर राजाने उसी उत्तम बिलमें प्रवेश किया और श्री तथा भूदेवीके सहित भगवान् श्रीनिवासका दर्शन करनेके लिये वे वेङ्कटाचलपर गये। राजाको सहसा आते देख श्रीदेवी और भूदेवी—दोनों छिप गयीं। उन्हें प्रणाम करते देख भगवान्‌ने पूछा, 'राजन्! यह असमयमें तुम्हारा आगमन कैसे हुआ?' राजाने भयभीत होकर ब्राह्मणीकी मृत्युका वृत्तान्त बतलाया। उसे सुनकर देवदेव भगवान् विष्णुने कहा—'राजन्! उस श्रेष्ठ ब्राह्मणसे भय न करो। तुम ब्राह्मणीके शवको डोलीमें बैठाकर अपनी रानियोंके साथ यहाँ ले आओ और मेरे निवासस्थानसे पूर्व भागमें जो अस्थिसरोवर है, उसीमें द्वादशीको नहलाओ। वह सरोवर अपमृत्युका निवारण करनेवाला है। उसमें स्नान करके ब्राह्मणी जीवित हो जायगी और अन्य स्त्रियोंके साथ ही सरोवरसे बाहर निकलेगी। फिर उसका ब्राह्मणके साथ संयोग होगा।'

भगवान् श्रीनिवासका यह वचन सुनकर राजा अपने नगरमें गये और सुन्दर-सुन्दर डोलियोंमें अपनी रानियोंको तथा एक डोलीमें मरी हुई ब्राह्मणीको भी बैठाकर ब्राह्मणको आगे करके वहाँसे भगवान्‌का दर्शन करनेके लिये चले। अस्थिकूट-सरोवरपर पहुँचकर राजाने उन सब स्त्रियोंको स्नान करनेकी आज्ञा दी। उनकी रानियोंने अस्थिचर्मविशिष्ट ब्राह्मणीको भी सरोवरमें डाल दिया। फिर तो वह जी उठी। उसके शरीरके सभी चिह्न पूर्ववत् प्रकट हो गये। तत्पश्चात् वह मङ्गलमयी ब्राह्मणी रानियोंके साथ नहाकर सरोवरसे बाहर आयी और तीर्थयात्रासे पुनः लौटे हुए अपने स्वामी ब्राह्मणदेवतासे

प्रसन्नतापूर्वक मिली। राजाने भगवान्‌की पूजा करके ब्राह्मण-को धन दिया। एक हजार स्वर्णमुद्रा और भाँति-भाँतिके वस्त्र देकर स्वदेश जानेके लिये उन ब्राह्मणदम्पतिको सादर विदा किया। ब्राह्मणने जब अपनी स्त्रीका समाचार और भगवान् वेङ्कटेश्वरका प्रभाव सुना, तब राजाको आशीर्वाद देकर अपने देशको प्रस्थान किया।

राजा तोण्डमान भगवान् श्रीनिवासजीकी आज्ञाके अनुसार प्रतिदिन सुवर्णमय कमलोंसे उनकी पूजा किया करते थे। एक दिन उन्होंने देखा भगवान्‌के ऊपर मिट्टीका बना हुआ तुलसी-पुष्प चढ़ा हुआ है। इससे विस्मित होकर राजाने पूछा—'भगवन्! ये मिट्टीके कमल और तुलसीपुष्प चढ़ाकर कौन आपकी पूजा करता है?' उनके इस प्रकार पूछनेपर देवाधिदेव भगवान्‌ने स्मरण करके कहा—'मेरा एक भक्त कुम्हार है जो कूर्मग्राममें निवास करता है। वह अपने घरमें मेरी पूजा करता है और मैं उसे स्वीकार करता हूँ।'

भगवान्‌की यह बात सुनकर राजा उस कुम्हारको देखने-के लिये गये और कूर्मपुरमें जाकर उसके घर पहुँचे। राजाको आया देख कुम्हार उन्हें प्रणाम करके आगे खड़ा हो गया; उसका नाम भीम था। राजाने उससे पूछा—'भीम! तुम अपने कुलमें सबसे श्रेष्ठ हो, बताओ भगवान्‌की पूजा किस प्रकार करते हो?' उनके पूछनेपर कुलालने कहा—'महाराज! मैं कभी कोई पूजा नहीं जानता। भला, आपसे किसने कह दिया कि कुम्हार पूजा करता है?'

तोण्डमान बोले—स्वयं भगवान् श्रीनिवासने तुम्हारे पूजनकी बात कही है।

राजाकी बात सुनकर कुम्हारको पूर्वकालमें दिये हुए भगवान्‌के वरदानका स्मरण हो आया। उसने कहा—'महाराज! पहले भगवान् वेङ्कटेश्वरने मुझे यह वरदान दिया है कि 'जब तुम्हारी की हुई पूजा प्रकाशित हो जायगी, जब राजा तोण्डमान तुम्हारे द्वारपर आ जायँगे और उनके साथ तुम्हारा संवाद होगा, तब तुम्हें मोक्ष प्राप्त हो जायगा।' यों कहकर पत्नीसहित कुम्हारने वहाँ आये हुए विमानको और उसपर बैठे हुए भगवान् जनार्दनको देखकर उन्हें प्रणाम करते हुए प्राण त्याग दिया तथा राजाधिराज तोण्डमानके देखते-देखते विमानपर बैठकर दिव्य रूप धारण करके दिव्य रूपधारिणी पत्नीके साथ वह भगवान् विष्णुके परम धाम-को चला गया।

यह अद्भुत घटना देखकर राजा हर्षमें भरे हुए अपने नगरको आये और अपने श्रीनिवास नामक पुत्रका विधिपूर्वक राज्याभिषेक करके बोले—'वत्स! तुम धर्मपूर्वक सब मनुष्योंका पालन और पृथ्वीकी रक्षा करो।' पुत्रको यह आज्ञा देकर बुद्धिमान् राजाने बड़ी भारी तपस्या की। तपस्या करते समय भगवान्‌ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे श्री तथा भूदेवियोंके साथ गरुड़पर आरूढ़ होकर वहाँ आये थे।

श्रीभगवान् बोले—नृपश्रेष्ठ! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत सन्तुष्ट हूँ, बोलो—तुम्हारी किस इच्छाको पूर्ण करूँ?

देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसा कहनेपर सम्राट् तोण्डमान अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें बोले—'माधव! मैं आपके जरा-मृत्युरहित धाममें निवास करना चाहता हूँ, मुझे यही मनोवाञ्छित वरदान दीजिये।' ऐसा कहकर राजा भगवान्‌के समीप पृथ्वीपर साष्टाङ्ग पड़ गये और शरीर त्यागकर विमानपर जा बैठे। उस समय गन्धर्व-गण उनकी स्तुति कर रहे थे। राजा भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त करके शोक-मोहरहित जरा-मरणवर्जित तथा पुनरावृत्तिशून्य वैकुण्ठधामको चले गये।

सूतजी कहते हैं—देवाधिदेव भगवान् वाराहके द्वारा कहे हुए इस भविष्य प्रसङ्गको जो सुनता है तथा पुण्यमयी पुराणकथाका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह सब कामनाओंको भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है।

राजा परीक्षित्‌को ब्राह्मणका शाप, तक्षकके काटनेसे उनकी मृत्यु तथा उनकी रक्षा न करनेके पापसे कलङ्कित काश्यप ब्राह्मणका स्वामिपुष्करिणीमें स्नान करके शुद्ध होना

श्रीसूतजी कहते हैं—महर्षियो! अब मैं श्रीस्वामि-पुष्करिणीके माहात्म्यका प्रतिपादन करनेवाला इतिहास कहता हूँ, जो इसे पढ़नेवालोंके भी पापका नाश करनेवाला है। अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षित् धर्मके अनुसार इस पृथ्वीका पालन करते हुए हस्तिनापुरमें निवास करते थे। एक समय वे मृगयामें अनुरक्त होकर वनमें घूम रहे थे। उस समय उनकी अवस्था साठ वर्षकी हो गयी थी। वे भूख और प्याससे पीड़ित थे। घूमते-घूमते उन्होंने एक ध्यानमग्न

भक्त भीम कुम्हारका पत्नीसहित विमानारोहण [पृष्ठ २२२

भूदेवी तथा श्रीदेवीसहित सपरिकर भगवान् विष्णु

[पृष्ठ २१९

मुनिको देखकर पूछा—'मुने ! मैंने इस समय वनमें अपने बाणसे एक मृगको घायल किया है। वह भयसे कातर होकर भाग गया है। क्या आपने उसे देखा है ?' मुनिकी समाधि लग गयी थी, उन्होंने मौन रहनेका व्रत भी लिया था, इस कारण राजाको कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब राजाने कुपित हो एक मरे हुए साँपको धनुषसे उठाकर मुनिके कंधेपर रख दिया और अपने नगरकी राह ली। मुनिके एक पुत्र था, जिसका नाम शृङ्गी रक्खा गया था। शृङ्गीके कृष नामवाला कोई श्रेष्ठ द्विज मित्र था। उसने विवादमें अपने मित्र शृङ्गीसे व्यङ्ग्यपूर्वक कहा—'सखे ! तुम्हारे पिता इस समय मरा हुआ साँप कंधेपर ढो रहे हैं। तुम बहुत घमंड न दिखाया करो और मेरे आगे यह व्यर्थ क्रोध न किया करो।'

यह सुनकर शृङ्गी कुपित हो उठा और शाप देते हुए बोला—'जिस मूढ़बुद्धि मानवने मेरे पिताके कंधेपर मरा हुआ साँप रक्खा है, वह सातवें दिन तक्षक नागके काटनेपर मृत्युको प्राप्त होगा।' इस प्रकार उस मुनिकुमारने उत्तरानन्दन परीक्षित्‌को शाप दे दिया। उसके पिता शमीक मुनिने जब यह सुना कि मेरे पुत्रने राजाको शाप दिया है, तब वे उससे बोले—'अरे ! समस्त लोगोंकी रक्षा करनेवाले राजाको तूने क्यों शाप दिया ? राजाके न रहनेपर हमलोग संसारमें सुखपूर्वक कैसे रह सकेंगे ? क्रोधसे पाप होता है और दयासे सुख मिलता है। जो मनुष्य मनमें आये हुए क्रोधको क्षमासे शान्त कर देता है, वह इहलोक और परलोकमें भी अतिशय सुखका भागी होता है। क्षमायुक्त मनुष्य ही उत्तम श्रेय प्राप्त करते हैं।' बेटेको इस प्रकार समझाकर शमीकने दौर्मुख नामवाले अपने शिष्यसे कहा—'वत्स दौर्मुख ! तुम जाकर राजा परीक्षित्‌से मेरे पुत्रके दिये हुए शापका वृत्तान्त, जिसमें तक्षक नागके डँसनेकी बात है, बता दो। महामते ! फिर शीघ्र मेरे पास लौट आना।'

शमीकके ऐसा कहनेपर दौर्मुखने उत्तराकुमार राजा परीक्षित्‌के पास जाकर कहा—'राजन् ! आपके द्वारा पिताके कंधेपर रक्खे हुए मृतक सर्पको देखकर शमीकके पुत्र शृङ्गी ऋषिने रोषमें आकर आपको यों शाप दिया है—'आजसे सातवें दिन अभिमन्युपुत्र परीक्षित् महानाग तक्षकके काटनेपर उसकी विषाग्निसे जलकर भस्म हो जायँ।' राजासे ऐसा कहकर दौर्मुख शीघ्र लौट गया। उसके जानेपर राजाने गङ्गाकी बीच धारामें एक ही खंभेका एक बहुत ऊँचा और विस्तृत मण्डप बनवाया और भगवान् विष्णुके प्रति भक्तिभाव बढ़ाते हुए अनेक देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा राजर्षियोंके साथ वे उस ऊँचे मण्डपमें रहने लगे। उसी अवसरपर मन्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ काश्यप नामवाला ब्राह्मण तक्षकके महान् विषसे राजाकी प्राणरक्षा करनेके लिये सातवें दिन वहाँ जा रहा था। दरिद्र होनेके कारण वह राजासे धन पानेकी इच्छा रखता था। इसी बीचमें तक्षक नाग भी ब्राह्मणका रूप धारण करके आ गया। मार्गमें काश्यपको देखकर उसने पूछा—'ब्रह्मन् ! महामुने ! तुम कहाँ जाते हो ? मुझे बताओ।' काश्यपने उत्तर दिया—'आज महाराज परीक्षित्‌को तक्षक नाग अपनी विषाग्निसे जलायेगा। उसकी विषाग्निको शान्त करनेके लिये मैं महाराजके समीप जाता हूँ।'

तक्षक बोला—विप्रवर ! मैं ही तक्षक हूँ। मैं जिसे काट लूँ, उसकी चिकित्सा सौ वर्षोंमें भी दस हजार महामन्त्रोंसे भी नहीं हो सकती। यदि तुममें मेरे काटे हुएको भी अपनी चिकित्साद्वारा जिला देनेकी शक्ति है, तो बहुत ऊँचे इस वृक्षको मैं डँसता हूँ, तुम जिला दो।

यों कहकर तक्षकने उस वृक्षको काट लिया। उसके डँसते ही वह अत्यन्त ऊँचा वृक्ष जलकर भस्म हो गया।

उस वृक्षपर पहलेसे ही कोई मनुष्य चढ़ा हुआ था, वह भी तक्षकके विषकी ज्वालाओंसे दग्ध हो गया। तब मन्त्रज्ञोंमें श्रेष्ठ काश्यपने अपनी मन्त्रशक्तिसे उस जले हुए वृक्षको

भी जिला दिया। उसके साथ ही वह मनुष्य भी जी उठा। यह देख तक्षकने मन्त्रकुशल काश्यपसे कहा—'ब्रह्मन्! राजा तुम्हें जितना धन दे सकते हैं, उससे दूना मैं देता हूँ। इसे लेकर शीघ्र लौट जाओ।' यों कहकर तक्षकने उसे बहुमूल्य रत्न देकर लौटा दिया।

तत्पश्चात् तक्षकने सब सर्पोंको बुलाकर कहा—'तुम सब लोग मुनियोंके वेष धारण करके राजाके पास जाओ और उन्हें भेंटमें फल समर्पित करो।' 'बहुत अच्छा' कहकर सभी राजाको फल देने लगे। उस समय तक्षक भी किसी बेरके फलमें कृमिका रूप धारण करके राजाको डँसनेके लिये बैठ गया। ब्राह्मणरूपी सर्पोंके दिये हुए सभी फल राजा परीक्षित्ने बूढ़े मन्त्रियोंको देकर कौतूहलवश एक मोटे फलको हाथमें ले लिया। इसी समय सूर्य भी अस्ताचलपर पहुँच गये। उस फलमें सब लोगोंने तथा राजाने भी एक लाल रंगका कीट देखा, वही तक्षक था। उसने शीघ्र ही फलसे निकलकर राजाके शरीरको लपेट लिया। यह देख आसपास बैठे हुए सब लोग भयसे भाग गये। ब्राह्मणो! तक्षककी अत्यन्त प्रबल विषाग्निसे राजा परीक्षित् मण्डप-सहित तत्काल जलकर भस्म हो गये। पुरोहित और मन्त्रियों-ने उनका और्ध्वदेहिक संस्कार करके प्रजाकी रक्षाके लिये उनके पुत्र जनमेजयको राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया।

तक्षकसे राजाकी रक्षा करनेके लिये जो काश्यप नामक ब्राह्मण आया था, उसकी सब लोग निन्दा करने लगे। अन्तमें वह शाकल्य मुनिकी शरणमें गया और उन्हें प्रणाम करके बोला—'भगवन्! आप सब धर्मोंके ज्ञाता और भगवान् विष्णुके प्रिय भक्त हैं। ये मुनि, ब्राह्मण, सुहृद् तथा अन्य लोग जो मेरी निन्दा करते हैं, इसका क्या कारण है, यह मैं नहीं जानता। यदि आप जानते हों, तो बतायें।' तब महा-मुनि शाकल्यने क्षणभर ध्यान करके काश्यपसे कहा—'तुम तक्षकसे महाराज परीक्षित्को बचानेके लिये जा रहे थे, किंतु आधे मार्गमें तक्षकने तुम्हें मना कर दिया। जो मनुष्य विष, रोग आदिकी चिकित्सा करनेमें समर्थ होकर भी काम, क्रोध, भय, लोभ, मात्सर्य अथवा मोहसे विष एवं रोगसे पीड़ित मनुष्यकी रक्षा नहीं करता, वह ब्रह्महत्यारा, शराबी, चोर, गुरुपत्नीगामी तथा इन सबके संसर्गदोषसे दूषित है। उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं है। महाराज परीक्षित् पवित्र यशवाले, धर्मात्मा, विष्णुभक्त, महायोगी तथा चारों वर्ण रक्षा करनेवाले थे। उन्होंने व्यासपुत्र शुकदेवजीसे भक्तिपू श्रीमद्भागवतकी कथा सुनी थी। ऐसे पुण्यात्मा राजाकी न करके जो तुम तक्षकके कहनेसे (धन लेकर) लौट गये कारणसे श्रेष्ठ ब्राह्मण और बन्धु-बान्धव तुम्हारी निन्दा क हैं। मरनेवाले मनुष्यके प्राण जबतक कण्ठमें रहते हैं, तब उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। तुम चिकित्सा कर समर्थ होकर भी उनकी दवा किये बिना ही आधे मा लौट आये। इसलिये तुम वास्तवमें निन्दाके पात्र हो।'

काश्यप बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शाकल जी! मेरे दोषकी शान्तिके लिये कोई उपाय बताइये। जिस मेरे बन्धु-बान्धव और सुहृद् मुझे ग्रहण करें। आप भगवान प्रिय भक्त हैं, मुझपर अवश्य कृपा करें।

तब मुनिवर शाकल्यने क्षणभर ध्यान करके कृपा पूर्वक काश्यपसे कहा—ब्रह्मन्! इस पापकी शान्तिके लिये तुम्हें एक उपाय बताता हूँ। सुवर्णमुखरी नदीके तटपर भगवा लक्ष्मीपतिकी निवासभूमि है, उसका नाम वेङ्कटाचल है जो सब लोगोंमें पूजित है। उसका दूसरा नाम शेषाचल भ है। वह परम पवित्र तथा देवता और दानवोंसे भी वन्दि है। ब्रह्महत्या, सुरापान तथा सुवर्णकी चोरी आदि बड़े-ब पापोंका वह नाश करनेवाला है। उसी पर्वतपर स्वामिपुष्करिण है, जो सब पापोंका निवारण करनेवाली है। वह मङ्गल दायिनी पुष्करिणी भगवान् श्रीनिवासके स्थानसे उत्तर दिशा है। तुम वेङ्कटाचलपर जाकर कल्याणमयी स्वामिपुष्करिणी सङ्कल्पपूर्वक स्नान करो। फिर पश्चिम तटपर बसे हुए वाराह स्वामीकी सेवा करके भगवान्के मुख्य मन्दिरमें जाओ। वह भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले शङ्ख-चक्रधारी वनमाला विभूषित स्वर्णाचलनिवासी भगवान् श्रीनिवासका विधिपूर्वक दर्शन करके तुम सब पापोंसे मुक्त हो जाओगे।

यह सुनकर मुनिवर काश्यपने देव-दानववन्दित स्वामि-पुष्करिणीमें नियमपूर्वक स्नान किया। इससे वे शुद्ध और स्वस्थ हो गये। फिर सब बन्धु-बान्धवोंने उनका विधिपूर्वक पूजन करके कहा—'आप निःसन्देह हमारे पूज्य हैं।' ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे वेङ्कटाचलकी महिमाका वर्णन किया है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसे सुनता है, वह विष्णु-लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

स्वामितीर्थकी महिमा और उसमें स्नान करनेसे राजा धर्मगुप्तके शापजनित उन्मादका निवारण

ऋषि बोले—सूतजी ! आप स्वामिपुष्करिणी तीर्थकी महिमाका पुनः वर्णन कीजिये ।

सूतजीने कहा—जो लोग स्वामितीर्थमें स्नान करते हैं, वे तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, कृमिभक्ष, अन्धकूप, सन्दंश, शाल्मलि, लालाभक्ष, अवीचि, सारमेयादन, वज्रकर्णक, क्षारकर्दमपातन, रक्षोगणाशन, शूलप्रोतनिरोधन, तिरोधान, सूचीमुख, पूयभक्ष, शोणितभक्ष और विषाग्निपरिपीडन आदि अट्ठाईस नरकोंमें नहीं जाते। जो दूसरोंके धन, सन्तान और स्त्रियोंका अपहरण करनेवाला है, वह बहुत वर्षोंतक तामिस्र नामक भयंकर नरकमें डाला जाता है । जो अधम मनुष्य माता-पिता और ब्राह्मणोंसे द्वेष रखता है, वह दस हजार योजन विस्तृत कालसूत्र नरकमें डाला जाता है । जो वेदमार्गका उल्लङ्घन करके कुपथपर चलता है, वह यमदूतोंद्वारा भयंकर असिपत्रवनमें गिराया जाता है । जो पकवान और दाल-शाक आदि अन्न पंक्तिभेद करके खाता है और मोहवश पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान किये बिना ही भोजन करता है, वह कृमिभोजन नरकमें डाला जाता है, जहाँ सैकड़ों कीड़े उसको खाते हैं और वह भी कीड़ोंको ही खाकर रहता है । जो स्नेह अथवा बलसे ब्राह्मणका धन हड़प लेता है तथा जो राजा या राजपुरुष दूसरोंके धनका अपहरण कर लेता है, वह सन्दंश नामक भयङ्कर नरकमें गिराया जाता है । जो नीच मानव अगम्या स्त्रीके साथ गमन करता है, अथवा जो नारी अगम्य पुरुषके साथ सङ्गम करती है, वे दोनों क्रमशः लोहेकी तपायी हुई नारी-मूर्ति और पुरुष-मूर्तिका आलिङ्गन करके तबतक खड़े रहते हैं, जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता रहती है। तत्पश्चात् वे सूचीनामक घोर नरकमें डाले जाते हैं । जो मनुष्य अनेक प्रयत्नों और उपद्रवोंसे सब प्राणियोंको सताता है, वह बहुत काँटोंवाले भयङ्कर शाल्मलि नरकमें गिराया जाता है । जो राजा अथवा राजाका नौकर पाखण्डमतका अनुयायी होकर धार्मिक मर्यादाओंको तोड़ता है, वह वैतरणी नरकमें डाला जाता है । वृषलीसङ्गसे दूषित, शौचाचारहीन, अशास्त्रीय कर्मोंके करनेमें लज्जित न होनेवाले, वेदमार्गके त्यागी, सदा पशुका-सा आचरण करनेवाले व्यक्तियोंको यमकिङ्कर पूय, विष्ठा, मूत्र, कफ और पित्तादिसे पूर्ण अत्यन्त वीभत्स नरकमें गिराते हैं । जो कुत्तोंको अथवा जङ्गलमें वन्य मृगादि पशुओंको बाणोंके द्वारा पीड़ा पहुँचाता है, यमकिङ्कर उसको बाणोंके द्वारा बींधते हैं और पुनः प्राणरोध नामक नरकमें गिराते हैं। जो पाखण्डी यज्ञमें पशुओंकी हत्या करता है, वह परलोकमें वैशस नामक नरकमें गिराया जाता है । जो लुटेरोंके मार्गका आश्रय लेकर दूसरोंको जहर देता, गाँवोंको जला डालता और बनियोंके धनका अपहरण करता है, वह परलोकमें वज्रदंष्ट्र नामक भयानक नरकमें दीर्घकालतकके लिये डाल दिया जाता है। ये तथा और भी जितने नरक हैं, उन सबमें वह मनुष्य कभी नहीं पड़ता, जो स्वामिपुष्करिणी तीर्थमें गोता लगाता है । स्वामिपुष्करिणीमें एक बार स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है । उसे आत्मज्ञान तथा चार प्रकारकी साक्षात् मुक्तिकी भी प्राप्ति होती है । जो महापातकों अथवा सम्पूर्ण पातकोंसे युक्त है, वह भी स्वामितीर्थमें गोता लगानेसे तत्काल पवित्र हो जाता है । स्वामितीर्थके सेवनसे मनुष्योंकी बुद्धि, लक्ष्मी, कीर्ति, सम्पत्ति, ज्ञान, धर्म और वैराग्यकी वृद्धि तथा मनकी शुद्धि होती है ।

इस प्रकार अद्वैतज्ञान, भोग और मोक्ष तथा मनोवाञ्छित कामना प्रदान करनेवाले अज्ञाननाशक स्वामितीर्थके प्रभावका वर्णन किया गया, जो मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश करनेवाला है ।

नैमिषारण्यनिवासी महर्षियो ! मैं तुमलोगोंसे स्वामितीर्थकी महिमाका अभी और वर्णन करूँगा । चन्द्रवंशमें नन्द नामसे प्रसिद्ध एक महाराजा थे, जो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे । उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम धर्मगुप्त था । नन्दने राज्यकी रक्षाका भार अपने पुत्रपर रख दिया और स्वयं इन्द्रियोंको वशमें करके आहारपर विजय पाकर तपस्याके लिये तपोवनमें चले गये । पिताके तपोवन चले जानेपर राजा धर्मगुप्तने सारी पृथ्वीका पालन किया । वे धर्मोंके ज्ञाता और नीतिपरायण थे । उन्होंने अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा इन्द्र आदि देवताओंका पूजन किया और ब्राह्मणोंको धन एवं बहुत-से क्षेत्र प्रदान किये । उनके शासनकालमें समस्त प्रजा अपने-अपने धर्मका पालन करती थी । उनके राज्यमें कभी चोर आदिसे किसीको कष्ट नहीं प्राप्त हुआ । एक दिन धर्मगुप्त उत्तम घोड़ेपर सवार हो वनमें गये । वहीं रात हो गयी । विनयशील राजाने वहीं सायं-सन्ध्याकी उपासना करके वेदमाता गायत्रीका जप किया । तत्पश्चात् सिंह, व्याघ्र

आदिके भयसे वे एक वृक्षपर जा बैठे। उस वृक्षके पास एक रीछ आया, जो सिंहके भयसे पीड़ित था। वनमें विचरनेवाला एक सिंह उस रीछका पीछा कर रहा था। रीछ वृक्षपर चढ़ गया। वहाँ उसने महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न राजा धर्मगुप्तको बैठे देखा। उन्हें देखकर रीछ बोला—'महाराज! भय न करो। हम दोनों रातभर यहीं रहेंगे, क्योंकि वृक्षके नीचे बड़ा भयङ्कर सिंह आया हुआ है। महामते! तुम आधी राततक निर्भय होकर नींद लो, मैं सजग होकर तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा। उसके बाद जब मैं सो जाऊँ, तब शेष आधी राततक तुम मेरी रक्षा करना।'

रीछकी यह बात सुनकर धर्मगुप्त सो गये। उस समय सिंहने रीछसे कहा—'यह राजा तो सो गया है, अब तुम इसे मेरे लिये नीचे गिरा दो।' तब धर्मज्ञ रीछने सिंहको उत्तर दिया—'वनचारी मृगराज! तुम धर्मको नहीं जानते। अहो! विश्वासघात करनेवाले प्राणियोंको संसारमें बड़ा कष्ट भोगना पड़ता है। मित्रद्रोहियोंका पाप दस हजार यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नष्ट नहीं होता। ब्रह्महत्या आदि पापोंका तो किसी प्रकार निवारण हो सकता है, परंतु विश्वासघातियोंका पाप कोटि-जन्मोंमें भी नष्ट नहीं हो सकता है।* सिंह! मैं मेरुपर्वतको इस पृथ्वीका बड़ा भारी भार नहीं मानता, संसारमें जो विश्वासघाती है, उसीको मैं भूतलका महान् भार समझता हूँ।'

* ब्रह्महत्यादिपापानां कथञ्चिन्निष्कृतिर्भवेत्।
विश्वासघातिनां पापं न नश्येज्जन्मकोटिभिः॥
(स्क० पु० ब्रै० वे० १३। २२)

रीछके ऐसा कहनेपर सिंह चुप हो गया। तत्पश्च धर्मगुप्त जागे और रीछ वृक्षपर सो गया। तब सिंहने राज कहा—'इस रीछको नीचे छोड़ दो।' तब राजाने अपने अङ्क सिर रखकर सोये हुए रीछको पृथ्वीपर ढकेल दिया। राजा गिरानेपर रीछ वृक्षकी डाली पकड़ता लटक गया। व पुण्यवश वृक्षसे नीचे नहीं गिरा। अब वह राजाके पा आकर क्रोधपूर्वक बोला—'राजन्! मैं इच्छानुसार रूप धार करनेवाला ध्यानकाष्ठ नामक मुनि हूँ। मेरा जन्म भृगुवंश हुआ है। मैंने स्वेच्छासे रीछका रूप धारण किया है। मैं तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया था। फिर सोते समय तुम मुझे क्यों ढकेला? जाओ, मेरे शापसे बहुत शीघ्र पाग होकर पृथ्वीपर विचरो।' राजाको इस प्रकार शाप देक मुनिने सिंहसे कहा—'तुम सिंह नहीं, महायक्ष हो। पहले कुबेरके मन्त्री थे। एक दिन अपनी स्त्रीके साथ हिमालयके शिखरप आकर अनजानमें गौतम मुनिके समीप ही तुम विहार कर लगे थे। दैवकी प्रेरणासे महर्षि गौतम समिधा लानेके लि कुटीसे बाहर निकले। उन्होंने तुम्हें नंगा देख इस प्रकार शाप दिया—'अरे! तू मेरे आश्रममें आकर नंगा खड़ा है। अतः अभी तू सिंह हो जायगा।' इस प्रकार तुम्हें सिंहयोनि प्राप्त हुई है। मृगराज! ये सारी बातें मैं ध्यानसे जानता हूँ।' ध्यानकाष्ठ मुनिके ऐसा कहनेपर उसने सिंहका रूप त्याग दिया और कुबेर-सचिवके रूपमें दिव्य यक्षका शरीर धारण कर लिया। उसके बाद उसने हाथ जोड़कर कहा—'महामुने! आज मुझे अपने समस्त पूर्ववृत्तान्तका ज्ञान हो गया। गौतमजीने शाप देते समय उसके उद्धारका समय भी इस प्रकार बताया था—'जब रीछरूपधारी ध्यानकाष्ठके साथ तुम्हारा वार्तालाप होगा, तब तुम सिंह-देह त्याग करके यक्ष-रूप धारण कर लोगे।'

यों कहकर वह यक्षराज मुनिवर ध्यानकाष्ठको प्रणाम करके उत्तम विमानपर बैठा और अलकापुरीको चला गया। नृपश्रेष्ठ धर्मगुप्तको पागलके रूपमें देखकर मन्त्रीलोग उन्हें नर्मदाके तटपर उनके पिता नन्दके पास ले गये और यह बताया कि आपके पुत्रकी बुद्धि विकृत हो गयी है। पुत्रका वृत्तान्त जानकर राजा नन्द उसे साथ ले सहसा जैमिनि मुनिके समीप गये और उनसे इस प्रकार बोले—'भगवन्! मेरा पुत्र इस समय उन्मादग्रस्त हो गया है। महामुने! इस रोगके निवारणका कोई उपाय बतलाइये।' उनके ऐसा पूछनेपर मुनिवर जैमिनिने दीर्घकालतक ध्यान करके कहा, 'राजन्! तुम्हारा पुत्र ध्यानकाष्ठ मुनिके शापसे उन्मत्त हुआ है। इस

पसे छुटकारा पानेके लिये मैं तुम्हें उपाय बतलाता हूँ। र्णमुखरी नदीके तटपर एक वेङ्कट नामसे प्रसिद्ध पर्वत है, सब पापोंको हरनेवाला तथा परम पवित्र है। उसके शिखर- स्वामिपुष्करिणी नामक एक बड़ा भारी तीर्थ है। महामते! हीं ले जाकर अपने पुत्रको उसमें नहलाओ। ऐसा करनेसे सका उन्माद तत्काल नष्ट हो जायगा।' यह सुनकर राजा न्दने मुनिश्रेष्ठ जैमिनिको प्रणाम किया और पुत्रको लेकर स्वामिपुष्करिणी तीर्थको गये। वहाँ नियमपूर्वक पुत्रको हलाया। स्नान करते ही उसी क्षण उसका उन्माद नष्ट हो गया। राजा नन्दने स्वयं भी स्वामिपुष्करिणीके जलमें स्नान किया। फिर पुत्रके साथ एक दिन उस तीर्थमें निवास किया और वेङ्कटगिरिके स्वामी दयानिधान भगवान् श्रीनिवासकी सेवा करके पुनः तपस्याके लिये वनको प्रस्थान किया। पिताके चले जानेपर राजा धर्मगुप्तने भगवान् वेङ्कटेश्वरमें भक्ति रखते हुए ब्राह्मणोंको बहुत धन-धान्य और क्षेत्र प्रदान किये। तत्पश्चात् मन्त्रियोंके साथ वे अपनी नगरीको चले गये। ब्राह्मणो! इस प्रकार तुमसे मैंने राजा धर्मगुप्तकी कल्याणमयी कथा सुनायी। इसके श्रवणमात्रसे ब्रह्महत्याका नाश हो जाता है।

कृष्णतीर्थ और भगवान् वेङ्कटेश्वरका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो! सब पापोंका नाश करनेवाले महान् पुण्यप्रद वेङ्कटाचलपर जो कृष्णतीर्थ है, उसका माहात्म्य श्रवण करो। पूर्वकालमें विप्रवर रामकृष्ण नामक एक बहुत बड़े मुनि थे। वे सत्यवादी, शीलवान्, उत्तम भक्त, सब प्राणियोंपर दया करनेवाले, शत्रु और मित्रके प्रति समभाव रखनेवाले, जितात्मा, तपस्वी और जितेन्द्रिय थे। परब्रह्ममें निष्णात तथा एकमात्र ब्रह्मतत्त्वके आश्रित थे। ऐसे प्रभाववाले मुनिवर रामकृष्णने उस तीर्थमें बड़ी कठोर तपस्या की। वे अपने सब अङ्गोंको स्थिर करके खड़े रहते। वहाँ खड़े होकर तपस्या करते हुए उनको कई सौ वर्ष बीत गये। उनके सब अङ्गोंपर वल्मीककी मिट्टी जम गयी और उसने उन्हें आच्छादित कर लिया। तो भी महामुनि रामकृष्ण तपस्यामें संलग्न रहे। उन्होंने वल्मीककी कोई परवा नहीं की। इन्द्रने तपस्या करते हुए उस मुनिश्रेष्ठपर मेघोंको भेजकर बड़े वेगसे वृष्टि करवायी। सात दिनोंतक लगातार वर्षा होती रही। मूसलाधार पानी पड़नेपर भी मुनिने अपने नेत्र बंद करके वर्षाको सहन किया। तब बड़ी भारी गड़गड़ाहटके साथ कानोंको बधिर बनाती हुई बिजली वल्मीकके ऊपर गिरी। वल्मीक ढह गया। उसी समय शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु प्रकट हो गये। वे विनतानन्दन गरुड़पर आरूढ़ थे। गलेमें पड़ी हुई वनमाला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। श्रीरामकृष्णकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो भगवान् इस प्रकार बोले—'रामकृष्ण! तुम

वेद-शास्त्रके पारङ्गत विद्वान् हो और तपस्याकी निधि हो। मेरे प्रादुर्भावके दिन जो मनुष्य यहाँ स्नान करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन शेषनाग भी नहीं कर सकते। सूर्य मकर राशिपर स्थित हों और महातिथि पूर्णिमा पुष्य नक्षत्रसे युक्त हो तो वह इस तीर्थमें स्नान करनेका सर्वोत्तम समय बताया गया है। जो मनुष्य उस दिन कृष्णतीर्थमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। आजसे यह महातीर्थ तुम्हारे ही नामसे संसारमें प्रसिद्ध हो।' ऐसा कहकर भगवान् श्रीनिवास वहीं

अन्तर्धान हो गये। उस तीर्थका ऐसा प्रभाव है कि वह बड़े-बड़े पापोंको शुद्ध करनेवाला है। मनुष्योंकी बुद्धिको शुद्ध करता और उन्हें सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको देता है। ब्राह्मणो! इस प्रकार तुमलोगोंसे यह कृष्णतीर्थका माहात्म्य बतलाया गया, जो इसके श्रोता और वक्ता दोनोंको विष्णुलोक प्रदान करनेवाला है।

अब मैं भगवान् वेङ्कटेश्वरके वैभवका वर्णन करूँगा, जिसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मानव एक बार भगवान् वेङ्कटेश्वरका दर्शन कर लेता है, वह मोक्षको प्राप्त होता है। सत्ययुगमें जो पुण्य दस वर्षोंमें प्राप्त किया जाता है, वही त्रेतामें एक ही वर्षमें, द्वापरमें पाँच महीनोंमें और कलियुगमें एक ही दिनमें सिद्ध हो जाता है। परंतु जो भगवान् श्रीनिवासका दर्शन करते हैं, उन्हें एक-एक पलमें वही पुण्यफल कोटि-कोटि गुना होकर मिलता है। श्रीभगवान् वेङ्कटेश्वरमें सम्पूर्ण तीर्थ, सब देवता, मुनि और पितर विद्यमान हैं। भगवान् वेङ्कटेशका सच्चिदानन्दमय विग्रह श्रेष्ठ शङ्खसे पूजित है। उसके स्मरण करनेमात्रसे यमराजकी पीड़ा नहीं होती। जो इस पृथ्वीपर परम दुर्लभ मनुष्य-शरीर पाकर सर्वश्रेष्ठ देवता भगवान् वेङ्कटेशका दर्शन एवं पूजन करते हैं, उनका जन्म सफल है और वे ही कृतार्थ हैं। भगवान् नारायणका दर्शन होनेपर सहस्रों ब्रह्महत्या और दस हजार मद्यपानके पाप भी पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य सदा भोग और स्वर्गलोकका राज्य चाहते हैं, वे एक बार प्रसन्नतापूर्वक वेङ्कटाचलनिवासी भगवान् श्रीनिवासको प्रणाम करें। करोड़ों जन्मोंमें किये हुए जो कोई भी पाप हैं, वे सब भगवान् वेङ्कटेश्वरके दर्शनसे नष्ट हो जाते हैं। जो सम्पर्कसे, कौतूहलसे, लोभसे अथवा भयसे भी महादेव वेङ्कटाचलेश्वरका स्मरण करता है, वह इहलोक और परलोकमें कभी दुःखका भागी नहीं होता। वेङ्कटाचलवासी देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुका कीर्तन और पूजन करनेवाला अवश्य ही श्रीविष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि क्षणभरमें ढेर-के-ढेर इन्धन जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही भगवान् वेङ्कटेश्वरका दर्शन सब पापोंको दग्ध कर देता है।

भगवान् वेङ्कटेश्वरकी भक्ति आठ प्रकारकी मानी गयी है—१-भगवान्के भक्तोंके प्रति स्नेह भाव, २-भगवद्भक्तोंकी पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट करना, ३-स्वयं भक्तिपूर्वक भगवान्की पूजा करना, ४-अपने शरीरकी समस्त चेष्टाएँ भगवान्के लिये ही करना, ५-भगवान्के माहात्म्यकी कथामें रुचि रखना और उसे सुननेमें आदरका भाव होना, ६-अपने नेत्र और शरीरमें भगवद्भक्ति एवं भगवत्प्रेमजनित विकारका स्फुरण होना, ७-भगवान् श्रीनिवासका निरन्तर स्मरण करना तथा ८-वेङ्कटाचलनिवासी भगवान् श्रीनिवासकी शरण लेकर ही जीवन धारण करना। ऐसी आठ प्रकारकी भक्ति यदि किसी म्लेच्छमें भी हो तो वह निश्चय ही मोक्षको प्राप्त कर लेता है। भगवान्की अनन्य भक्ति तथा ब्रह्मज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति निश्चित है। संन्यासियों और नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंको वेदान्तशास्त्रश्रवण-जनित ज्ञानसे जो मुक्ति प्राप्त होती है, वही सब लोगोंको केवल भगवान् वेङ्कटेश्वरके दर्शनसे अविलम्ब मिल जाती है। वेङ्कटगिरिके स्वामी भगवान् श्रीनिवासका दर्शन कर लेनेपर सब लोग महापुरुषकी श्रेणीमें चले आते हैं, उनमेंसे कोई एक दूसरेसे कम या अधिक नहीं रह जाता। सब पातकोंका नाश करनेवाले परम पवित्र वेङ्कटाचलपर जाकर जो सर्वश्रेष्ठ देव भगवान् श्रीनिवासका भक्तिपूर्वक दर्शन करता है, उसकी समानता इस भूतलपर चारों वेदोंका विद्वान् भी नहीं कर सकता। सम्पूर्ण वेद भगवान् श्रीनिवासका ही प्रतिपादन करते हैं। सब यज्ञ श्रीनिवासकी ही आराधनाके साधन हैं तथा सब लोग भगवान् श्रीनिवासके ही आश्रित हैं। अन्य सबका आश्रय छोड़कर भगवान् श्रीनिवासकी ही शरण लेनी चाहिये। वेङ्कटाचलनिवासी भगवान् श्रीहरिका दो घड़ी चिन्तन करनेवाला मनुष्य भी अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके विष्णुलोकमें सम्मानित होता है। इस प्रकार यह वेङ्कटेश्वरका माहात्म्य बताया गया। जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इसको सुनता अथवा पढ़ता है, वह भगवान् वेङ्कटनाथकी सेवाका फल पाता है।

पापनाशन तीर्थकी महिमा—भद्रमति ब्राह्मणका चरित्र

वेङ्कटाचलपर चढ़नेके पूर्व उस पुण्यवर्द्धक पर्वतकी इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—हे स्वर्णाचल! हे महापुण्यमय! सर्वदेवसेवित गिरिश्रेष्ठ! ब्रह्मा आदि देवता भी जिनकी श्रद्धा-पूर्वक सेवा करते हैं, उन्हीं आपके ऊपर मैं अपने दोनों पैरोंसे चलूँगा। मुझ पापचेता पुरुषके इस पापको आज आप कृपापूर्वक क्षमा करें। आपके शिखरपर निवास करने-वाले भगवान् लक्ष्मीपतिका आप मुझे दर्शन करायें। इस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ वेङ्कटाचलकी प्रार्थना करके मनुष्य उसपर

धीरे-धीरे चले। ऊपर पहुँचकर सब पापोंका नाश करनेवाले परम पुण्यमय स्वामिपुष्करिणी तीर्थमें नियमपूर्वक स्नान करे। तत्पश्चात् पितरोंको पिण्डदान करे। ऐसा करनेसे स्वर्गवासी पितर मोक्षको प्राप्त होते हैं और नरकवासी पितर स्वर्गमें चले जाते हैं।

तदनन्तर उस पर्वतके ऊपर जो सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ और पवित्र पापविनाशन नामक तीर्थ है, जिसके स्मरणमात्रसे मनुष्य फिर गर्भमें नहीं आता, उसके पास जाकर उसमें स्नान करना चाहिये। वह स्वामितीर्थसे उत्तर दिशामें है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य वैकुण्ठधाममें जाते हैं।

पूर्वकालमें भद्रमति नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जो वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत पण्डित थे, परंतु वे बड़े दरिद्र थे। उनके पास जीविकाका कोई साधन नहीं था। उन बुद्धिमान् ब्राह्मणने सम्पूर्ण शास्त्र, पुराण और धर्मशास्त्रोंका श्रवण किया था। उनके छः स्त्रियाँ थीं। कृता, सिन्धु, यशोवती, कामिनी, मालिनी और शोभा—ये उनके नाम थे। उनके गर्भसे ब्राह्मणने दो सौ पुत्र उत्पन्न किये थे। वे सभी पुत्र आदि भूखसे पीड़ित हो रहे थे। अपने प्यारे पुत्रों और प्रियतमा पत्नियोंको क्षुधासे व्याकुल देखकर दरिद्र भद्रमति विलाप करने लगा—'हाय! भाग्यहीन जन्मको धिक्कार है, धन और कीर्तिसे रहित जीवनको धिक्कार है। उस जन्मको भी धिक्कार है, जिसमें धनाभावके कारण अतिथियोंका सत्कार न हो पाता हो। ज्ञान और सदाचारसे शून्य जीवनको भी धिक्कार है और बहुत सन्तानोंवाले मनुष्यके धनहीन जन्मको भी धिक्कार है। ब्राह्मण, पुत्र, पौत्र, भाई, बन्धु और शिष्य आदि सभी मनुष्य धनहीन पुरुषको त्याग देते हैं। जो धनवान् है, वह निर्दयी हो या दयावान्, गुणहीन हो या गुणवान्, मूर्ख हो या पण्डित तथा सब धर्मोंसे युक्त हो या धर्महीन, यदि वह ऐश्वर्यके गुणसे युक्त है, तो पूजने ही योग्य होता है। अहो! दरिद्रता बड़ा भारी दुःख है, उसमें भी आशा तो अत्यन्त दुःखदायिनी होती है। आशाके वशीभूत हुए मनुष्य क्षण-क्षणमें दुःख भोगते हैं। जो आशाके दास हैं, वे समस्त संसारके दास हैं और जिन्होंने आशाको अपनी दासी बना लिया है उनके लिये यह सम्पूर्ण जगत् दासके तुल्य है।* अहो! दरिद्रता महान् दुःख है, महान् दुःख है, महान् दुःख है। उसमें भी पुत्र और स्त्रियोंका अधिक होना तो और भी दुःखदायी है।'

ऐसा उद्गार प्रकट करके सब शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारङ्गत विद्वान् भद्रमति मन-ही-मन ऐसे धर्मका विचार करने लगे, जो अत्यन्त ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला हो। उस समय उनकी स्त्रियोंमें जो कामिनी नामवाली पतिव्रता पत्नी थी, उसने अपने पतिदेवसे कहा—'भगवन्! मेरे प्राणनाथ! मेरी एक बात सुनिये। ऋषि-मुनियोंसे सेवित सुवर्णमुखरी नदीके तटपर देवताओंके निवास करनेयोग्य परम पवित्र वेङ्कट पर्वत है। उसके शिखरपर सब पापोंका नाश करनेवाला पावन तीर्थ है। महामते! आप पत्नी और पुत्रोंके साथ वहाँ चलकर पापनाशन तीर्थमें स्नान कीजिये। मैंने बचपनमें अपने पिताके समीप नारदजीके मुखसे उस तीर्थका माहात्म्य इस प्रकार सुना था कि 'सब पापोंका नाश करनेवाले परम पवित्र वेङ्कटाचलपर पापनाशन नामक एक महान् तीर्थ है, जो समस्त दुःखोंका निवारण तथा सब प्रकारकी सम्पदाओंका दान करनेवाला है। उसमें संकल्पपूर्वक स्नान करके अधिक ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले धर्मका मन-ही-मन चिन्तन करना चाहिये। सब दानोंमें उत्तम भूमिदान है। वह परलोकमें उत्तम फलकी प्राप्ति करानेवाला तथा समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको देनेवाला है। भूमिदान देकर मनुष्य अपनी सभी अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है।' नारदजीकी यह बात सुनकर मेरे पिता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने शेषाचलपर जाकर पापनाशन तीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् एक श्रोत्रिय ब्राह्मणको भूमिदान दिया, जो समस्त ऐश्वर्योंको देनेवाला है। उससे मेरे पिता इस संसारमें सब प्रकारसे सौभाग्यशाली हुए और अन्तमें भगवान् विष्णुके परम धाममें गये। महाभाग! आप भी गिरिश्रेष्ठ वेङ्कटाचलपर चलकर सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला भूमिदान कीजिये। अग्निहोत्री श्रोत्रिय ब्राह्मणको थोड़ी-सी भी भूमिका दान करके मनुष्य पुनरावृत्ति-रहित ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वेङ्कटाचल पर्वतपर किया हुआ भूमिदान सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो ईख, गेहूँ, धान और सुपारी आदि वृक्षोंसे युक्त पृथ्वीका दान करता है, वह साक्षात् विष्णुके समान है। जीविकाहीन कुटुम्बी एवं दरिद्र ब्राह्मणको थोड़ी भी भूमि देकर मनुष्य भगवान् विष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है।'

अपनी पत्नीकी बात सुनकर और शेषाचलनिवासी भगवान् विष्णुका ध्यान करके भद्रमति ब्राह्मण बहुत सन्तुष्ट

* आशाया ये दासा दासास्ते सर्वलोकस्य।
आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः॥
(स्क० पु० वै० वे० २०। १८)

हुए। उन्होंने अपनी बुद्धिसे परम उत्तम क्रीडाचल पर्वतपर जानेका निश्चय किया। वे पूर्णतः धर्मपरायण थे, अपनी स्त्रीके साथ सुशाली नामवाली नगरीमें गये और सब ऐश्वर्योंसे सम्पन्न विप्रवर सुघोषसे उन्होंने पाँच हाथ भूमि माँगी। सुघोष भी बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने प्रसन्नचित्तवाले इन कुटुम्बी ब्राह्मणको देखकर इनका विधिपूर्वक पूजन किया और इस प्रकार कहा—'भद्रमते! मैं कृतार्थ हो गया, आज मेरा जन्म सफल हुआ।' यों कहकर सुघोषने—

पृथिवी वैष्णवी पुण्या पृथिवी विष्णुपालिता।
पृथिव्यास्तु प्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः॥

'पृथिवी भगवान् विष्णुकी प्रिया है, पवित्र पृथिवी भगवान् विष्णुद्वारा सुरक्षित है, पृथिवीके दानसे भगवान् जनार्दन मुझपर प्रसन्न हों।'

—इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक विष्णुबुद्धिसे भद्रमतिकी पूजा करके पाँच हाथ पृथिवी उन्हें दे दी। उस भूमिदानके पुण्यसे सुघोष भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त हुआ, जहाँ जाकर कोई भी शोक नहीं करता। तदनन्तर भद्रमति अपने पुत्रों और स्त्रियोंके साथ देव-दानववन्दित वेङ्कटाचलपर गये। वहाँ स्वामिपुष्करिणीके परम पवित्र निर्मल जलमें उन्होंने स्त्रियों और पुत्रोंके साथ संकल्पपूर्वक स्नान किया। तत्पश्चात् उसके पश्चिम तटपर पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् श्वेतवाराहको नमस्कार करके वे भगवान् श्रीनिवासके मन्दिर-में गये। वहाँ ब्रह्मा आदि देवताओंसे सेवित कृपानिधान श्रीनिवासका अपने पुत्र आदिके साथ दर्शन किया और भगवान्-को प्रणाम करके पत्नी और पुत्रसहित पापनाशन तीर्थमें आये। फिर वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके धर्म आदि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान किया और किसी श्रोत्रिय विष्णुभक्त पुरुषको विष्णुबुद्धिसे मोक्षदायक भूमिदान (जो सुघोषसे ली थी वह) दिया। उस दानके प्रभावसे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले वनमालाविभूषित भगवान् विष्णु गरुड़पर चढ़े हुए पापनाशन तीर्थके तटपर प्रकट हुए। उस समय शान्त स्वभाववाले भद्रमतिने भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति आरम्भ की—

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय
नमो नमस्तेऽखिलपालकाय।
नमो नमस्तेऽमरनायकाय
नमो नमो दैत्यविमर्दनाय॥
नमो नमो भक्तजनप्रियाय
नमो नमः पापविदारणाय।
नमो नमो दुर्जननाशकाय
नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय॥
नमो नमः कारणवामनाय
नारायणायामितविक्रमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥
नमः पयोराशिनिवासकाय
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतयेऽव्ययाय।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय
नमो नमः पुण्यगतागताय॥
नमो नमोऽर्केन्दुविलोचनाय
नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय।
नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय
नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय॥
नमो नमः कारणकारणाय
नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय।
नमोऽस्तु तेऽभीष्टसुखप्रदाय
नमो नमो भक्तमनोरमाय॥
नमो नमस्तेऽद्भुतकारणाय
नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय।
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने
नमो हिरण्याक्षविदारकाय॥
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे
नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय
नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय॥
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने।
श्रितार्तिनाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः॥

'सबके कारणरूप आप भगवान्‌को नमस्कार है, नमस्कार है। सबको पालन करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। समस्त देवताओंके स्वामी आपको नमस्कार है, नमस्कार है। दैत्यों-का संहार करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। जो भक्तजनोंके प्रियतम, पापोंके नाशक तथा दुष्टोंके संहारक हैं, उन जगदीश्वरको बार-बार नमस्कार है। जिन्होंने किसी विशेष हेतुसे वामनरूप धारण किया, जो नारस्वरूप जलमें निवास करनेके कारण नारायण कहलाते हैं, जिनके विक्रमकी कोई

सीमा नहीं है तथा जो शङ्ख, चक्र, खड्ग और गदा धारण करते हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको बार-बार नमस्कार है। क्षीरसिन्धुमें निवास करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। अविनाशी लक्ष्मीपतिको नमस्कार है। जिनके अनन्त तेजकी सूर्य आदिसे भी तुलना नहीं हो सकती, उन भगवान्‌को नमस्कार है तथा जो पुण्य-कर्मपरायण पुरुषोंको स्वतः प्राप्त होते हैं, उन कृपालु श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, जो सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाले हैं, यज्ञाङ्गोंसे जिनकी शोभा होती है तथा जो साधु पुरुषोंके परम प्रिय हैं, उन भगवान् श्रीनिवासको बार-बार नमस्कार है। जो कारणके भी कारण, शब्दादि विषयोंसे रहित, अभीष्ट सुख देनेवाले तथा भक्तोंके हृदयमें रमण करनेवाले हैं, उन भक्तवत्सल भगवान्‌को नमस्कार है। अद्भुत कारणरूप आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मन्दराचल पर्वत धारण करनेवाले कच्छपरूपधारी आपको नमस्कार है। यज्ञवाराहरूपमें प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है। हिरण्याक्षको विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है। वामनरूपधारी आपको नमस्कार है। क्षत्रियकुलका अन्त करनेवाले परशुरामरूपमें आपको नमस्कार है। रावणका मर्दन करनेवाले श्रीरामरूपधारी आपको नमस्कार है तथा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके बड़े भाई बलरामरूपमें आपको नमस्कार है। कमलाकान्त! आपको नमस्कार है। सबको सुख देनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! आप शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं। आपको बारंबार नमस्कार है।'

ब्राह्मण भद्रमतिके इस प्रकार स्तुति करनेपर भक्तवत्सल दयानिधान भगवान् श्रीनिवासने वात्सल्यपूर्वक कहा—'तात! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे इस महास्तोत्रसे मैं सन्तुष्ट हूँ। ब्रह्मन्! तुम इस संसारमें पुत्र-पौत्र आदिके साथ सब भोगोंसे सम्पन्न होकर सुख भोगनेके पश्चात् अन्तमें मोक्ष प्राप्त करोगे।' ऐसा कहकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने पापनाशन तीर्थकी महिमा और उसके तटपर भूमिदानकी महत्ताका भी वर्णन किया।

आकाशगङ्गातीर्थकी महिमा—रामानुजपर भगवान्‌की कृपा तथा भगवद्भक्तोंका लक्षण

श्रीसूतजी कहते हैं—तपोधनो! रामानुज नामसे प्रसिद्ध एक जितेन्द्रिय विष्णुभक्त ब्राह्मण थे। धर्मात्मा रामानुजने वानप्रस्थ-आश्रममें स्थित होकर आकाशगङ्गातीर्थके समीप तपस्या की। गरमीमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए वे पञ्चाग्निके मध्यमें स्थित रहते थे, वर्षामें खुले आकाशके नीचे बैठकर मुखसे अष्टाक्षर (ॐ नमो नारायणाय) मन्त्रका जप और हृदयमें भगवान् जनार्दनका ध्यान करते थे तथा जाड़ेमें जलके भीतर निवास करते थे। वे समस्त प्राणियोंके हितैषी, जितेन्द्रिय तथा सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे दूर रहनेवाले थे। उन्होंने कितने ही वर्षोंतक सूखे पत्ते खाकर निर्वाह किया, कुछ कालतक जलका ही आहार किया और कुछ वर्षोंतक वे केवल वायु पीकर रहे। तदनन्तर उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर भक्तवत्सल भगवान् विष्णुने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। भगवान्‌के हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा आदि शोभा पा रहे थे। उनके नेत्र विकसित कमलके दलोंकी भाँति सुन्दर थे, श्रीअङ्गोंकी दिव्य प्रभा कोटि-कोटि सूर्यके समान थी। वे विनतानन्दन गरुड़पर आरूढ हो छत्र और चमरसे सुशोभित थे। हार, भुजबन्द, मुकुट और कड़े आदि आभूषण उनके अङ्गोंकी शोभा बढ़ाते थे। विष्वक्सेन और सुनन्द आदि पार्षद भगवान्‌को सब ओरसे घेरकर खड़े थे। वीणा, वेणु और मृदङ्ग आदि बाजे बजानेवाले नारद आदिके द्वारा उनकी महिमाका गान हो रहा था। भगवान्‌का ऐश्वर्य परम उत्तम रूपसे प्रकट हो रहा था। वे पीताम्बरसे शोभायमान थे। उनके वक्षःस्थलमें लक्ष्मीका निवास था। श्याम मेघके समान उनकी कान्ति थी। दोनों पार्श्व-भागमें खड़े हुए सनक आदि महायोगी भगवान्‌की सेवामें लगे थे। अपनी मन्द-मन्द मुसकानसे तीनों लोकोंको मोहते और अङ्गोंकी दिव्य प्रभासे दसों दिशाओंको सम्मानित ए प्रकाशित करते हुए भक्त-सुलभ दयानिधान भगवान् वेङ्कटेश्वर महामुनि रामानुजके समीप उपस्थित हुए। उन्होंने अपनी चारों बाहोंसे मुनिको पकड़कर हृदयसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक कहा—'महामुने! कोई वर माँगो, मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने जो नमस्कार किया है, उससे मेरा प्रेम और बढ़ गया है। मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ।'
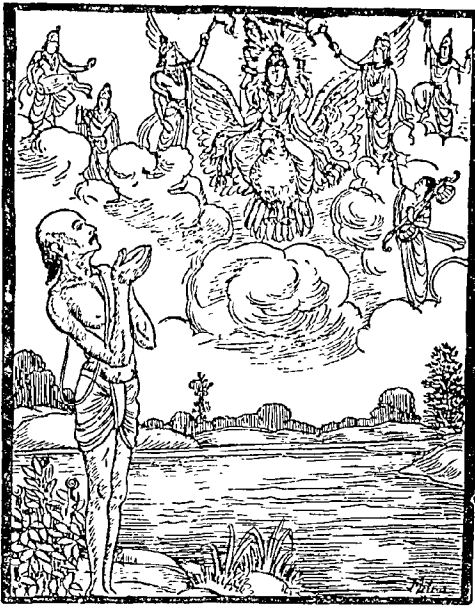
रामानुज बोले—नारायण ! रमानाथ ! श्रीनिवास ! जगन्मय ! जनार्दन ! जगद्धाम ! गोविन्द ! नरकान्तक ! वेङ्कटाचलशिरोमणे ! मैं आपके दर्शनसे ही कृतार्थ हो गया। धर्मनिष्ठ पुरुष आपको नमस्कार करते हैं; क्योंकि आप धर्मके रक्षक हैं। जिन्हें महादेवजी और ब्रह्माजी भी नहीं जानते, तीनों वेदोंको भी जिनका ज्ञान नहीं हो पाता, उन्हीं आप परमात्माको आज मैं जान पाया हूँ। इससे अधिक और कौन-सा वरदान हो सकता है ? जिन्हें योगी नहीं देख पाते, केवल कर्मकाण्डीलोग जिनकी झाँकी नहीं कर पाते, उन्हीं आप परमात्माका आज मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ? सम्पूर्ण जगत्के स्वामी वेङ्कटेश्वर ! मैं इतनेसे ही कृतार्थ हूँ। जिनके नामका स्मरण करनेमात्रसे बड़े-बड़े पातकी मनुष्य भी मुक्तिको प्राप्त हो जाते हैं, उन्हीं भगवान् जनार्दनका आज मैं प्रत्यक्ष दर्शन करता हूँ। प्रभो ! आपके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी अविचल भक्ति बनी रहे।

श्रीभगवान्ने कहा—महामते रामानुज ! मुझमें तुम्हारी दृढ़ भक्ति हो। ब्रह्मन् ! मेरी कही हुई दूसरी बात भी सुनो। जब सूर्य मेष राशिपर जाते हैं, उस समय चित्रा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा होनेपर जो लोग आकाशगङ्गामें स्नान करते हैं, वे पुनरावृत्तिरहित परम धामको प्राप्त होते हैं। रामानुज ! तुम आकाशगङ्गाके समीप ही निवास करो। प्रारब्ध-कर्मके अनुसार प्राप्त हुए इस शरीरका अन्त होनेपर तुम्हें मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होगी। इस विषयमें बहुत कहनेकी क्या आवश्यकता है। आकाशगङ्गाके शुभ जलमें जो कोई भी स्नान करते हैं, वे सभी उत्तम भगवद्भक्त हो जाते हैं।

रामानुजने पूछा—भगवन् ! भगवद्भक्तोंके लक्षण क्या हैं ? किस कर्मसे उनकी पहचान होती है ? मैं इस विषयको सुनना चाहता हूँ।

भगवान् वेङ्कटेश बोले—मुनिश्रेष्ठ ! तुम भगवद्भक्तोंके लक्षण सुनो। जो समस्त प्राणियोंके हितैषी हैं, जिनमें दूसरोंके दोष देखनेका स्वभाव नहीं है, जो किसीसे भी डाह नहीं रखते और ज्ञानी, निःस्पृह तथा शान्तचित्त हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा दूसरेको पीड़ा नहीं देते और जिनमें संग्रह करनेका स्वभाव नहीं है तथा उत्तम कथा श्रवण करनेमें जिनकी सात्त्विक बुद्धि संलग्न रहती है तथा जो मेरे चरणारविन्दोंके भक्त हैं, जो उत्तम मानव माता-पिताकी सेवा करते हैं, देवपूजामें तत्पर रहते हैं, जो भगवत्पूजनके कार्यमें सहायक होते हैं और पूजा होती देखकर मनमें आनन्द मानते हैं, वे भगवद्भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। जो ब्रह्मचारियों और संन्यासियोंकी सेवा करते हैं तथा दूसरोंकी निन्दा कभी नहीं करते हैं, जो श्रेष्ठ मनुष्य सबके लिये हितकारक वचन बोलते हैं और जो लोकमें सद्गुणोंके ग्राहक हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो सब प्राणियोंको अपने समान देखते हैं तथा शत्रु और मित्रमें समभाव रखते हैं, जो धर्मशास्त्रके वक्ता तथा सत्यवादी हैं और जो ऐसे पुरुषोंकी सेवामें रहते हैं, वे सभी उत्तम भगवद्भक्त हैं। दूसरोंका अभ्युदय देखकर जो प्रसन्न होते हैं तथा भगवन्नामोंका कीर्तन करते रहते हैं, जो भगवान्के नामोंका अभिनन्दन करते, उन्हें सुनकर अत्यन्त हर्षमें भर जाते और सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्चित हो उठते हैं, जो अपने आश्रमोचित आचारके पालनमें तत्पर, अतिथियोंके पूजक तथा वेदार्थके वक्ता हैं, वे उत्तम वैष्णव हैं। जो अपने पढ़े हुए शास्त्रोंको दूसरोंके लिये बतलाते हैं और सर्वत्र गुणोंको ग्रहण करनेवाले हैं, जो एकादशीका व्रत करते, मेरे लिये सत्कर्मोंका अनुष्ठान करते रहते, मुझमें मन लगाते, मेरा भजन करते, मेरे भजनके लिये लालायित रहते तथा सदा मेरे नामोंके स्मरणमें तत्पर होते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। सद्गुणोंकी ओर जिनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, वे सभी श्रेष्ठ भक्त हैं।

दान-पात्र-विचार, चक्रतीर्थकी महिमा, पद्मनाभकी तपस्या, भगवान्‌का वरदान तथा राक्षसके आक्रमणसे चक्रद्वारा पद्मनाभकी रक्षा

ऋषियोंने पूछा—भगवन् ! दान किसको देना चाहिये ? दानका समय कौन-सा है ?

सूतजी बोले—द्विजवरो ! नपुंसक, पुत्रहीन, पाखण्डी, वेदवेत्ताओं तथा ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाले और अपने वर्णाश्रमोचित कर्मका त्याग करनेवाले पुरुषको दिया हुआ दान निष्फल होता है । जो परायी स्त्रियोंमें आसक्त है, दूसरोंके धनका जिसके मनमें बड़ा लोभ है तथा जो गीत गानेवाला है, ऐसे ब्राह्मणको दिया हुआ दान निष्फल होता है । जिसके मनमें असूया (दोष-दर्शन) का भाव भरा है, जो कृतघ्न और मायावी है, जिसमें ज्ञानका अभाव है, जो सदा भीख माँगनेवाला है, हिंसक है, जो नाम-विक्रय, वेद-विक्रय, स्मृति-विक्रय तथा धर्म-विक्रय करनेवाला है और दूसरोंको सताना ही जिसका स्वभाव बन गया है; ऐसे ब्राह्मणको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है । जो कोई भी पापमें संलग्न रहनेवाले हैं, उनसे न तो कुछ लेना चाहिये और न उन्हें कुछ देना ही चाहिये । उत्तम कर्ममें तत्पर श्रोत्रिय, अग्निहोत्री, जीविकाहीन, दरिद्र तथा कुटुम्बी ब्राह्मणको दान देना चाहिये । जो देवताओंकी पूजामें लगा रहनेवाला और पुराणोंकी कथा बाँचनेवाला है, ऐसे ब्राह्मणको, उनमें भी प्रायः जो दरिद्र हो उसे, दान देना उचित है । पाखण्डी, पतित, संस्कारभ्रष्ट, वेद बेचनेवाले, कृतघ्न तथा पापपरायण ब्राह्मणको कभी प्रणाम न करे । जो स्नान कर रहा हो, जिसके हाथोंमें समिधा और फूल हो, जिसने जलपात्र ले रक्खा हो तथा जो भोजन करता हो, ऐसे व्यक्तिको प्रणाम न करे । जो कलहप्रिय, अत्यन्त क्रोधी, वमन करनेवाला, जनसमुदायके मध्यमें स्थित, भिक्षान्नधारी तथा सोया हुआ हो, उसको भी प्रणाम न करे । रजस्वला, व्यभिचारिणी, सूतिका, गर्भपात करनेवाली, व्रत नाश करनेवाली तथा अत्यन्त क्रोधमें भरी हुई स्त्रीको कभी प्रणाम न करे । जो श्राद्धके नियममें नियुक्त हो, देवताओंकी पूजा कर रहा हो अथवा यज्ञ एवं तर्पण कर रहा हो—ऐसे पुरुषको भी प्रणाम न करे । यदि श्राद्धके लिये कोई सुपात्र ब्राह्मण न मिले तो केवल सूत कातकर (जनेऊ आदि बनाकर) जीविका चलानेवाले सदाचारी एवं पुत्रवान् ब्राह्मणको श्राद्धके लिये निमन्त्रित करे । यदि वह भी न मिले, तो पुत्रको या छोटे भाईको अथवा अपनेको ही श्राद्धमें नियुक्त करे । पुत्रहीन ब्राह्मणको किसी प्रकार भी श्राद्धके लिये नियुक्त न करे ।

पूर्वकालमें श्रीवत्स गोत्रमें उत्पन्न पद्मनाभ नामक एक जितेन्द्रिय ब्राह्मण था । वह दयालु, उपवासशील, सत्यवादी, सब प्राणियोंको अपने ही समान देखनेवाला तथा विषय-कामनासे रहित था । सब भूतोंका हितैषी, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला तथा सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित था । कितने ही वर्ष तक वह सूखे पत्ते चबाकर रहा, कुछ कालतक केवल जल पीता रहा, फिर कई वर्ष तक उसने केवल वायुका आहार किया । इस प्रकार महामुनि पद्मनाभने बारह वर्ष तक कठोर तपस्या की ।

तदनन्तर भगवान् लक्ष्मीपतिने पद्मनाभकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया । श्रीहरिने अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा आदिको धारण किया था । उनके नेत्र खिले हुए कमलदलकी भाँति शोभा पा रहे थे और श्रीअङ्गोंकी कान्ति कोटि-कोटि सूर्यको भी लज्जित कर रही थी । पद्मनाभने आँख खोलकर शङ्ख-चक्रधारी, शान्तस्वरूप, करुणासागर वेङ्कटनाथ भगवान् श्रीनिवासका दर्शन किया । उन्हें देखकर मुनिने इस प्रकार स्तुति प्रारम्भ की—

'शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले देवाधिदेव भगवान् वेङ्कटेश्वरको नमस्कार है । नारायणगिरिपर निवास करनेवाले आप श्रीनिवासजीको नमस्कार है । पापोंका नाश करनेवाले सर्वव्यापी भगवान् विष्णुको नमस्कार है । शेषाचलनिवासी आप भगवान् श्रीनिवासको नमस्कार है । जो तीनों लोकोंके स्वामी, विश्वरूप, सबके साक्षी तथा शिव और ब्रह्मा आदिके लिये भी वन्दनीय हैं, जिनके नेत्र कमलके समान हैं, जो क्षीरसागरमें शयन करते हैं तथा जो दुष्ट राक्षसोंका संहार करते हैं, उन भगवान् श्रीनिवासको नमस्कार है । जो भक्तोंके प्रियतम, दिव्यस्वरूप, देवताओंके स्वामी तथा शरणागतकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं, जो योगियोंके पालक, वेदवेद्य तथा भक्तोंके पापोंका संहार करनेवाले हैं, उन श्रीनिवास भगवान् विष्णुको नमस्कार है ।'

चक्रतीर्थनिवासी पद्मनाभ मुनिके द्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर परम ऐश्वर्यशाली, विश्वरूप, दयानिधान वेङ्कटनाथ भगवान् श्रीनिवासजी बहुत सन्तुष्ट हुए और बोले—'महाभाग ! तुम मेरे चरणारविन्दोंके पूजक हो । द्विजश्रेष्ठ ! इस चक्रतीर्थ-तटपर मेरी पूजा करते हुए तुम एक कल्प निवास करो ।' ऐसा कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये । तबसे परम बुद्धिमान्

पद्मनाभ मुनि चक्रतीर्थके किनारे निवास करने लगे। कुछ कालके पश्चात् वहाँ एक भयङ्कर राक्षस आया। वह क्रूर क्षुधासे पीड़ित होकर नारायणपरायण पद्मनाभ मुनिको अपना ग्रास बनाना चाहता था। उसने बड़े वेगसे ब्राह्मणको पकड़ लिया। तब उन्होंने शरणागतोंके रक्षक दयासागर चक्रपाणि श्रीनारायणको पुकारा और बार-बार ऐसा कहा—'प्रभो! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, हे वेङ्कटेश! हे दयासिन्धो! हे शरणागतपालक! हे पुरुषसिंह! मैं राक्षसके वशमें आ गया हूँ। मेरी रक्षा कीजिये। हे लक्ष्मीकान्त! हे दुःखहारी हरि! हे विष्णुदेव! हे वैकुण्ठनाथ! हे गरुड़ध्वज! आपने ग्राहके चंगुलमें फँसे हुए गजराजकी जिस प्रकार रक्षा की थी उसी प्रकार राक्षसके आक्रमणसे दबे हुए मुझ भक्तकी रक्षा कीजिये। हे दामोदर! हे जगन्नाथ! हे हिरण्यकशिपु दैत्यका मर्दन करनेवाले नृसिंह! प्रह्लादजीकी भाँति मैं भी राक्षसके द्वारा अत्यन्त पीड़ित हूँ; अतः उन्हींके समान आप मेरी भी रक्षा कीजिये।'

पद्मनाभके इस प्रकार स्तुति करनेपर अपने भक्तके ऊपर भय आया हुआ जानकर दयानिधान चक्रपाणिने भक्तकी रक्षाके लिये अपने चक्रको भेजा। भगवान्‌का वह चक्र बड़े वेगसे चक्रतीर्थके तटपर आया। वह अनन्त सूर्यके समान तेजस्वी तथा अनन्त अग्निके समान ज्वालामालाओंसे प्रज्वलित था। उससे बड़े जोरकी गड़गड़ाहट हो रही थी। बड़े-बड़े असुरोंका संहार करनेवाले उस सुदर्शन चक्रको देखकर राक्षस भागा, परंतु सुदर्शनने सहसा पास पहुँचकर उसका मस्तक

काट डाला। राक्षसको पृथ्वीपर पड़ा हुआ देख विप्रवर पद्मनाभ मुनि अत्यन्त प्रसन्न हो सुदर्शन चक्रकी स्तुति करने लगे।

पद्मनाभ बोले—सम्पूर्ण विश्वके संरक्षणकी दीक्षा लेनेवाले विष्णुचक्र! आपको नमस्कार है। आप भगवान् नारायणके कर-कमलको विभूषित करनेवाले हैं। आप युद्धमें असुरोंका संहार करनेमें कुशल हैं। अतिशय गर्जना करनेवाले सुदर्शन! आप भक्तोंकी पीड़ाका विनाश करते हैं। आपको नमस्कार है। मैं भयसे उद्विग्न हूँ। आप सब प्रकारके पाप-तापसे मेरी रक्षा कीजिये। स्वामिन्! सुदर्शन! प्रभो! संकटसे छुटकारा चाहनेवाले सम्पूर्ण जगत्‌का हित करनेके लिये आप सदा इस चक्रतीर्थमें निवास करें।

पद्मनाभ ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णुके चक्रने अपने स्नेहसे उन्हें तृप्त-से करते हुए कहा—'पद्मनाभ! यह चक्रतीर्थ अत्यन्त उत्तम और परम पवित्र है। मैं सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये सदा इस तीर्थमें निवास करूँगा। आपके ऊपर दुरात्मा राक्षसके द्वारा आये हुए सङ्कटका विचार करके भगवान् विष्णुसे प्रेरित होकर मैं शीघ्र यहाँ आ पहुँचा। आपको पीड़ा देनेवाले उस अधम राक्षसको मैंने मार डाला और आपकी उसके भयसे रक्षा की; क्योंकि आप भगवान्‌के भक्त हैं। विप्रवर! सब पापोंका हरण करनेवाले इस परम पवित्र चक्रतीर्थमें सब लोगोंकी रक्षाके लिये मैं सदा निवास करूँगा। मेरे निवास करनेसे यह तीर्थ चक्रतीर्थके नामसे प्रसिद्ध होगा और जो मनुष्य इस मोक्षदायक चक्रतीर्थमें स्नान करेंगे, उन सबके पुत्र, पौत्र आदि वंशज निष्पाप होकर भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त होंगे।' यों कहकर भगवान् विष्णुके चक्रने पद्मनाभ मुनि तथा अन्य ब्राह्मणोंके देखते-देखते सहसा उस चक्र-सरोवरमें प्रवेश किया। शौनकादि महर्षियो! इस प्रकार मैंने तुमलोगोंसे चक्रतीर्थके माहात्म्यका वर्णन किया। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस अध्यायको पढ़ता या सुनता है उसे चक्रतीर्थमें स्नान करनेका उत्तम फल प्राप्त होता है।

सुन्दर गन्धर्वका वशिष्ठजीके शापसे राक्षसभावको प्राप्त होकर पुनः उससे मुक्त होना

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! वह राक्षस कौन था ने भगवान् विष्णुके भक्त महात्मा ब्राह्मणको कष्ट या ?

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! पूर्वकालकी बात है । क्षेत्रमें जो वैकुण्ठके सदृश भगवान् विष्णुका विशाल र है, उसमें वशिष्ठ और अत्रि आदि महातेजस्वी मोक्षके वैष्णव भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले देवेश्वर श्रीविष्णु-ान्की उपासना करते थे । एक दिन वीरबाहुका बलवान् सुन्दर नामवाला गन्धर्व सैकड़ों स्त्रियोंके साथ उस क्षेत्र-आया और एक जलाशयमें नग्न होकर नग्न हुई त्रियोंके साथ आनन्दपूर्वक जल-विहार करने लगा । उसी । मध्याह्न-सन्ध्या करनेके लिये मुनिवर वशिष्ठ अन्य षियोंके साथ श्रीरङ्ग-मन्दिरसे बाहर निकले और उस शयपर गये । उन ऋषियोंको देखकर वे सभी रमणियाँ से कातर हो अपने-अपने कपड़े ओढ़कर बैठ गयीं; परंतु सी सुन्दर ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा । यह देख वशिष्ठ नें कुपित होकर उस निर्लज्जको शाप दिया—'सुन्दर र्व ! तूने हमलोगोंको देखकर भी लज्जावश वस्त्र धारण ं किया इसलिये तू शीघ्र राक्षस हो जा ।'

महर्षि वशिष्ठके ऐसा कहनेपर उसकी स्त्रियाँ हाथ जोड़ उनके चरणोंमें गिर पड़ीं और भक्तिभावसे विनीतचित्त र बोलीं—'भगवन् ! आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं, साक्षात् ाजीके पुत्र हैं । दयासिन्धो ! पति ही नारियोंका उत्तम ण कहलाता है । पतिहीन नारी सौ पुत्रोंवाली होकर भी ारमें विधवा ही कहलाती है । ऐसी नारियोंका जन्म व्यर्थ मझा जाता है । अतः मुने ! हमारे पतिके ऊपर आप प्रसन्न । तत्त्वदर्शी मुनियोंको एक अपराध क्षमा कर देना ाहिये । दयासिन्धो ! सुन्दर आपका शिष्य है, इसे मा करें ।'

सुन्दरकी स्त्रियोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर वशिष्ठजी-ने कहा—'सुन्दरियो ! मेरा वचन कभी व्यर्थ नहीं होगा इससे छूटनेका उपाय बतलाता हूँ, उसे श्रद्धापूर्वक सुनो । यह राक्षसके समान आकारवाला सुन्दर आजसे सोलह वर्षोंके बाद इच्छानुसार घूमता-घामता सर्वपापहारी वेङ्कटाचल-पर पहुँच जायगा और वहाँ चक्रतीर्थपर जायगा । देवाङ्गनाओ! चक्रतीर्थपर महायोगी मुनिवर पद्मनाभजी रहते हैं । उन्हें खा जानेके लिये जब यह आक्रमण करेगा, तब ब्राह्मणकी रक्षा-के लिये भगवान् विष्णुका भेजा हुआ उत्तम चक्र इसका मस्तक काट डालेगा । तदनन्तर शापसे मुक्त होकर यह तुम्हारा पति सुन्दर अपने स्वरूपको प्राप्त होकर पुनः स्वर्गलोकमें चला जायगा ।'

श्रीरङ्गनाथमें भक्ति करनेवाले वशिष्ठजी ऐसा कहकर शीघ्र ही अपने आश्रमको चले गये । तदनन्तर राक्षसरूपमें परिणत हुआ भयानक आकारवाला सुन्दर इधर-उधर घूमता हुआ गिरिश्रेष्ठ वेङ्कटाचलपर गया और चक्रतीर्थपर भी जा पहुँचा । इस भ्रमणमें ही उसके सोलह वर्ष पूरे हो गये थे । तदनन्तर चक्रतीर्थनिवासी पद्मनाभको खा जानेके लिये उसने बड़े वेगसे आक्रमण किया । मुनिने भगवान् विष्णुकी स्तुति की और भगवान्ने राक्षसद्वारा पीड़ित पद्मनाभकी रक्षाके लिये चक्रको भेजा । इस प्रकार चक्रने आकर उस राक्षसका मस्तक काट डाला । तब वह राक्षस शरीर छोड़कर दिव्य देह धारण करके विमानपर जा बैठा । उस समय उसके ऊपर फूलों-की वर्षा हो रही थी । उसने हाथ जोड़कर सुदर्शनको प्रणाम किया । फिर उन द्विजश्रेष्ठ पद्मनाभको भी प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकर सुन्दर गन्धर्व स्वर्गको चला गया ।

ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने उस राक्षसकी उत्पत्तिका वृत्तान्त और चक्रतीर्थका पापनाशक माहात्म्य आपलोगोंसे बतलाया । इसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ।

घोणतीर्थका माहात्म्य—गन्धर्वपत्नीका उद्धार

ब्राह्मणो ! अब घोणतीर्थका माहात्म्य सुनो ! महा-पापोंमें तत्पर, चाण्डालकुलमें सबसे नीच, क्रूर, कुलका नाश करनेवाला, कष्टकारक, दानशून्य, सत्कर्मरहित, पशु-घाती, परद्रोही, चुगलखोर, असत्यवादी, पाखण्डी, मित्रद्रोही, कृतघ्न, भ्रूणहत्या करनेवाला, परस्त्रीगामी, स्वामीसे द्रोह करनेवाला, ठग, लोभी, पितृघाती, देवताओंसे विमुख, आत्मप्रशंसा करनेवाला, शठ, अयोग्य पात्रके लिये व्यय करनेवाला, धर्ममें बाधा डालनेवाला, अनुकूलतामें अन्तर

डालनेवाला, फल-फूल और पल्लवोंसे युक्त वृक्षको काटनेवाला, विश्वासघाती, वीरहत्यापरायण, अग्निहोत्रका त्याग करनेवाला, विषका प्रयोग करनेवाला, गुरुद्वेषी, पति-पत्नीमें वैमनस्य उत्पन्न करनेवाला, गाँवका अगुआ, देवमन्दिरका अध्यक्ष, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, कठोर कर्म करनेवाला, पापोंमें स्वभावतः रत रहनेवाला, गुप्त पाप करनेवाला, अनजानमें या जान-बूझकर दुष्कर्म करनेवाला—इन सभी प्रकारके पापियोंको परम मनोहर घोणतीर्थ अपनेमें स्नान और जलपान आदि करनेपर पवित्र कर देता है।

इस विषयमें मैं एक प्राचीन इतिहास सुनाऊँगा, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें महातेजस्वी गार्ग्य मुनिने महात्मा देवलको नमस्कार करके कहा—'महाभाग! आप घोणतीर्थके सर्वपापहारी शुभ माहात्म्यका वर्णन कीजिये।'

देवलने कहा—मुने! तुम्बुरु नामक गन्धर्व अपनी पतिव्रता पत्नीको शाप देकर इस तीर्थमें स्नान करके दयानिधान वेङ्कटेश्वरकी पूजा करनेसे पुनरावृत्तिरहित विष्णुधामको प्राप्त हो गया था। वह वृत्तान्त इस प्रकार है। एक दिन तुम्बुरु नामक गन्धर्वने अपनी प्यारी पत्नीसे इस प्रकार कहा—'देवि! सब पातकोंका नाश करनेवाले माघमासमें सूर्योदयके समय इस तटपर भगवान् विष्णुकी पूजा करनी है इसलिये गोबरसे इस भूमिको लीप दो और इस माघमें प्रतिदिन माधवके लिये दीप-बत्ती बनाओ। भगवान्‌के आगे भक्तिपूर्वक धूप समर्पित करो, पवित्र होकर भगवान्‌के लिये रसोई तैयार करो और मेरे साथ-साथ रहकर परिक्रमा तथा नमस्कार आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक भगवान्‌की पूजा करो। नित्यप्रति आलस्य छोड़कर भगवान् विष्णुकी पुराण-कथा सुनो। नित्य सबेरे स्नान करके यत्नपूर्वक श्रीहरिका चरणोदक पान करो। कृष्ण, विष्णु, मुकुन्द, नारायण, जनार्दन, अच्युत, अनन्त और विश्वात्मन् इत्यादि भगवन्नामोंका सदा कीर्तन किया करो और क्रोध, मात्सर्य तथा लोभ आदिका परित्याग करके व्रत-नियमका पालन करो। इससे तुम्हें भवबन्धनसे छुटकारा मिलेगा और सनातन विष्णुधामकी प्राप्ति होगी।'

स्वामीका ऐसा कथन सुनकर गन्धर्वकी उस प्यारी पत्नीने क्रोधपूर्वक उत्तर दिया—'आर्यपुत्र! माघके महीनेमें बहुत सर्दी पड़ती है, उस समय प्रातःकाल, जब कि सूर्यका तेज बहुत मन्द रहता है, सूर्योदय-कालमें कोई कैसे स्नान करेगा? माघमें उस समय शीतका अधिक कष्ट रहता है। इसलिये आपके बताये हुए ये सब कार्य मुझसे बार-बार न हो सकेंगे। अतः प्रातःकालमें मैं आपके साथ स्नान नहीं करूँगी। क्योंकि अधिक सर्दी पड़नेसे यदि मेरी मृत्यु हो गयी, तो उस समय आप मेरी रक्षा नहीं करेंगे।'

पत्नीकी यह बात सुनकर तुम्बुरुने सोचा कि 'धर्मविरुद्ध चलनेवाले पुत्रको, अप्रिय वचन बोलनेवाली पत्नीको तथा ब्राह्मण एवं ईश्वरको न माननेवाले राजाको तत्काल शापके द्वारा दण्ड देना चाहिये।' इस नीतिके वचनका विचार करके गन्धर्वने अपनी सती पत्नीको इस प्रकार शाप दिया—'ओ मूढ़े! सौ पातकोंका नाश करनेवाले परम पुण्यमय वेङ्कटाचलपर घोणतीर्थके समीप जो पीपलका वृक्ष है, उसके खोखलेमें तू मेढकी हो जा।' पतिदेवकी यह बात सुनकर वह गन्धर्ववल्लभा उनके चरणोंमें गिर पड़ी और प्रार्थना करने लगी। तब तुम्बुरुने उसे शापसे मुक्त होनेकी यह अवधि बतलायी कि अपनी इन्द्रियोंपर विजय पानेवाले परम तपस्वी महाभाग अगस्त्य मुनि जब महातिथि पूर्णिमाको परम उत्तम घोणतीर्थमें जाकर स्नान करेंगे और उसी पीपल वृक्षके समीप बैठकर शिष्योंको घोणतीर्थका माहात्म्य बतलावेंगे, उस समय पीपलके खोखलेमें ही एकाग्रचित्त होकर जब तुम मोक्षदायक घोणतीर्थका माहात्म्य सुनोगी, तब समस्त पापोंका नाश करके मेरे साथ आ मिलोगी।

गन्धर्वके ऐसा कहनेपर उसकी धर्मपत्नी चुप हो गयी। स्वामीके शापसे उसने मेढकके शरीरमें प्रवेश किया और धीरे-धीरे शेषाचलके शिखरपर घोणतीर्थके दक्षिण उस पीपल वृक्षके खोखलेमें जाकर रहने लगी। तदनन्तर किसी समय अगस्त्यजी मनोहर वेङ्कटाचलपर गये। वहाँ उन्होंने नियमपूर्वक स्वामितीर्थमें स्नान करके वाराहस्वामीको नमस्कार किया। तत्पश्चात् उस तीर्थके दक्षिण वेङ्कटेशजीके मन्दिरमें जाकर वेदोंके द्वारा जानने योग्य विशाल नेत्रवाले सनातन देवदेव दयानिधान श्रीनिवासजीको मस्तक झुकाया। उसके बाद वे घोणतीर्थमें गये और वहाँ शिष्योंके साथ उस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करके उसी पीपल वृक्षकी छायामें जा बैठे। उस समय उन्होंने शिष्योंसे भक्तिपूर्वक घोणतीर्थका पवित्र माहात्म्य वर्णन किया, जो ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला तथा सम्पूर्ण मङ्गलों और समस्त सम्पदाओंको देनेवाला है। उस माहात्म्यको सुनकर वह मेढकी पूर्ववत् गन्धर्वपत्नीके मनोहर स्वरूपको प्राप्त होकर योगी अगस्त्यके चरणोंमें गिर पड़ी और बोली—'योगियोंमें श्रेष्ठ दयानिधान अगस्त्यजी! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। ब्रह्मन्! मैं पतिके वचनोंका विरोध करनेवाली स्त्री हूँ, दया करके मेरी रक्षा कीजिये।'

अगस्त्यजी बोले—देवि ! तुम्हारे पतिकी बुद्धि बड़ी है। उन्होंने जो रोपमें आकर तुम्हें शाप दिया है, वह वचनोंका विरोध करनेवाली तुम-जैसी स्त्रीके लिये ा ही है। जो स्त्री पतिके वचनोंकी अवहेलना करके इच्छाके अनुसार बर्ताव करती है, वह जबतक चन्द्रमा तारे रहते हैं तबतक घोर नरकमें निवास करती है। के लिये स्वतन्त्रता उचित नहीं है, उन्हें पतिकी आज्ञाका ङ्घन नहीं करना चाहिये। स्त्रियाँ पतिकी सेवा तथा ायरूपी पुण्यसे ही भगवान् विष्णुके परम धाममें जाती स्त्रियोंके लिये पति ही माता है, पति ही विष्णु है, पति ह्मा है, पति ही शिव है, पति ही गुरु है तथा पति ही है, ऐसा विद्वान् पुरुष मानते हैं।* पतिकी बात टालकर जो स्त्री दूसरे-दूसरे पुण्योंमें सदा लगी रहती है, वह भी शुद्ध नहीं होती। वही स्त्री जब पतिकी प्रेरणाके अनुसार चलती, पतिकी बुद्धिके अधीन रहती और पतिके चरणारविन्दोंके पवित्र जलसे अपना अभिषेक करती है, तब भगवान्‌को प्रिय होती है। इसलिये तुम्हारा किया हुआ दोष ही तुम्हें इस शापके रूपमें प्राप्त हुआ था। उसे यहाँ भोगकर घोणतीर्थका माहात्म्य सुनते-सुनते तुम्हारी उस शापसे मुक्ति हो गयी और पहलेके समान तुम्हें सुन्दर अङ्गोंवाला नारीरूप पुनः प्राप्त हो गया। इसीलिये विद्वान् पुरुष घोणतीर्थको परम पवित्र मानते हैं। जो मनुष्य सब पापोंका नाश करनेवाले इस इतिहासका श्रवण करता है, वह वाजपेय-यज्ञका फल पाता है और उसे सनातन विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

ङ्कटाचलके मुख्य तीर्थोंका वर्णन, पुराण-श्रवणकी महिमा और नियम तथा अर्जुनकी तीर्थयात्रा

ऋषियोंने पूछा—पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजी ! इस ाचलपर उत्तम धर्मविषयक अनुराग प्रदान करनेवाले य-मुख्य तीर्थ कितने हैं ? कौन ज्ञानदायक हैं ? कौन ि और वैराग्य देनेवाले हैं ? तथा कौन मोक्ष प्रदान करने- हैं ? उन सबका वर्णन कीजिये।

श्रीसूतजी बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ाक ! इस श्रेष्ठ पर्वतपर मुख्य-मुख्य एक सौ आठ तीर्थ हैं, जो उत्तम धर्ममें अनुराग प्रदान करनेवाले हैं। इन सौ आठ तीर्थोंमें साठ तीर्थ भक्ति और वैराग्य देनेवाले और इस वेङ्कटाचलके शिखरपर छः तीर्थ मुक्तिदायक ने गये हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—स्वामिकरिणी, आकाशगङ्गा, पापविनाशन, पाण्डुतीर्थ, कुमाररिका तीर्थ और तुम्बु तीर्थ। जो मनुष्य इन र्थोंके माहात्म्यके साथ भगवान् विष्णुकी भुवनपावनी थाको सर्वदा श्रवण करते हैं, वे इस लोकमें निश्चय ही गवान् विष्णुके भक्त होते हैं। सम्पूर्ण भुवनोंको पवित्र रनेवाली श्रीविष्णुकथाको सर्वदा श्रवण करनेमें यदि कोई मर्थ न हो, तो दो घड़ी, एक घड़ी अथवा एक क्षण भी ो भक्तिपूर्वक इसे श्रवण कर लेता है, उसकी कभी दुर्गति हीं होती। सम्पूर्ण यज्ञों और सब प्रकारके दानोंसे जो फल ाप्त होता है, वही फल मनुष्य एक बार पुराणकथाका श्रवण करनेसे प्राप्त कर लेता है। पुराणका श्रवण और भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन—ये दो ही मनुष्यके पुण्यरूपी वृक्षके महान् फल हैं। यदि कोई बड़ा प्रयत्न करके अमृत ही पी ले, तो भी वह अकेला ही अजर-अमर होता है; परंतु भगवान् विष्णुका कथारूप अमृत तो समस्त कुलको ही अजर-अमर बना देता है। पुराणका जाननेवाला विद्वान् बालक, युवा, वृद्ध, दरिद्र अथवा दुर्भाग्ययुक्त ही क्यों न हो, वह पुण्यात्मा पुरुषोंद्वारा सदैव वन्दनीय और पूजनीय होता है। पुराणवेत्ता ब्राह्मण जब कथा कहनेके लिये व्यासासनपर बैठ जाय तब प्रसङ्गकी समाप्ति होनेतक वह किसीको प्रणाम न करे। जहाँ खोटे मनुष्य रहते हों, जो स्थान हिंसक जन्तुओंसे घिरा हो तथा जिस घरमें जुआ खेला जाता हो, वहाँ विद्वान् पुरुष पवित्र कथा न कहे। जो उत्तम ग्राम हो, जहाँ अच्छे लोग बसते हों, जो उत्तम क्षेत्र पवित्र देवालय अथवा नदीका पवित्र तट हो, वहीं विद्वान् पुरुष पवित्र कथा बाँचे। जो श्रद्धा और भक्तिसे युक्त हों, अन्य कार्यमें जिनका मन न लगा हो तथा जो मौन, पवित्र और शान्त भावसे सुनते हों ऐसे श्रोता पुण्यके भागी होते हैं। जो अधम मनुष्य बिना भक्ति-भावके पवित्र कथा सुनते हैं, उनको पुण्य फलकी प्राप्ति नहीं होती। जो पान चबाते हुए भगवान्‌की पवित्र कथा सुनते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं। जो पाखण्डी ऊँचे आसनपर

---

* पतिर्माता पतिर्विष्णुः पतिर्ब्रह्मा पतिः शिवः। पतिर्गुरुः पतिस्तीर्थमिति सर्वं विदुर्बुधाः॥

(स्क० पु० वै० वे० २९। ८३-८४)

बैठकर कथा सुनते हैं, वे नरकोंको भोगकर अन्तमें कौवे होते हैं। जो वीरासन लगाकर अथवा सिंहासनपर बैठकर भगवान्‌की कथा सुनते हैं, वे टेढ़े-मेढ़े वृक्ष होते हैं। जो प्रणाम न करके कथा सुनते हैं, वे विष-वृक्ष होते हैं और जो स्वस्थ होकर भी सोकर कथा सुनते हैं, वे अजगर होते हैं। जो वक्ताके समान आसनपर बैठकर कथा सुनता है, वह पापका भागी होकर नरकमें पड़ता है। जो पुराणके ज्ञाता विद्वान्‌की तथा सब पापोंका नाश करनेवाली उत्तम कथाकी निन्दा करते हैं, वे कुत्ते होते हैं। जब कथा बाँची जाती हो, उस समय जो दुष्टतापूर्ण उत्तर-प्रत्युत्तर करते हैं, वे गधे होते हैं तथा उसके बाद गिरगिटकी योनिमें जन्म लेते हैं। जो कथा होते समय उसमें विघ्न डालते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरक भोगकर अन्तमें ग्राम-सूकर होते हैं। जो नरश्रेष्ठ पुराणवेत्ता विद्वान्‌के बैठनेके लिये कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र तथा चौकी देते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर मनोवाञ्छित भोगोंको भोगकर ब्रह्मादि देवताओंके लोकोंमें स्थित होते और निरामय पदको प्राप्त हो जाते हैं। जो पुराणके बेंटनके लिये सूत और नया कपड़ा देते हैं, वे प्रत्येक जन्ममें भोगवान् और ज्ञानसम्पन्न होते हैं।

इस प्रकार वेङ्कटाचलके माहात्म्यको सुनकर सब ऋषियोंने पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजीका यथायोग्य सम्मान करके अनुपम हर्ष प्राप्त किया।

ऋषि बोले—सूतजी! अब हमलोग कटाहतीर्थका माहात्म्य सुनना चाहते हैं।

सूतजी बोले—विप्रवरो! कटाहतीर्थ सब लोकोंमें प्रसिद्ध है। वह सब प्रकारकी सम्पत्तियोंको देनेवाला, शुद्ध तथा सब पापोंका नाश करनेवाला है। उससे दुःस्वप्नोंका नाश हो जाता है। वह महापातकोंका नाश करनेवाला, बड़े-बड़े विघ्नोंका निवारण करनेवाला तथा मनुष्योंको परम शान्ति देनेवाला है। कटाहतीर्थ स्मरण करनेमात्रसे सब पापोंका संहार कर देता है। अतः 'केशवाय नमः, नारायणाय नमः, माधवाय नमः'—इन नामोंसे पृथक्-पृथक् उस तीर्थके जलका आचमन करे। अथवा तीनों नामोंसे एक ही बार उस तीर्थके कल्याणप्रद जलका पान करे अथवा भगवान् वेङ्कटेश्वरके अष्टाक्षर मन्त्रसे भोग, मोक्ष प्रदान करनेवाले उक्त तीर्थका जल पीये। पहले यह प्रार्थना करे कि हे तीर्थवर! जन्मान्तरमें किये हुए मेरे महापापका शीघ्र नाश करो। उसके बाद मोक्षमार्गके एकमात्र साधन कटाहतीर्थके जलका नित्य पान करे। स्वामिपुष्करिणी-तीर्थका स्नान, वाराह स्वामीका दर्शन और कटाहतीर्थके जलका पान—ये तीन बातें त्रिलोकीमें दुर्लभ हैं। कटाहतीर्थका यत्नपूर्वक सेवन करना चाहिये; क्योंकि उस तीर्थका परम उत्तम जल पीकर पापी भी कृतार्थ हो जाते हैं। ब्राह्मणो! कटाहतीर्थका माहात्म्य मैंने जैसा सुना था, उसी प्रकार तुम्हें बताया है।

अब मैं एक दिव्य पापनाशक कथा सुनाता हूँ, तुम सब लोग सावधान होकर सुनो। द्वापरकी बात है। कुन्तीके पुत्र पाँचों पाण्डव परम बुद्धिमान् राजा द्रुपदसे उनकी पुत्री याज्ञसेनीको पाकर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे हस्तिनापुरमें गये। वहाँ पितामह भीष्म तथा अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रके द्वारा सम्मानित होकर उन्होंने दुर्योधन आदिके साथ पाँच वर्षोंतक निवास किया। तदनन्तर भीष्म आदिके समझानेसे महायशस्वी धृतराष्ट्रने अपने कुलके सभी बड़े-बूढ़ोंके सामने और भगवान् श्रीकृष्णके आगे पाण्डवोंकी सेवासे प्रसन्न हो, उन्हें आधे राज्यके साथ खाण्डवप्रस्थ (वर्तमान दिल्ली) नामक नगर प्रदान किया। तब धृतराष्ट्र आदि कौरवोंकी अनुमति ले सब पाण्डव श्रीकृष्णके साथ खाण्डवप्रस्थमें चले गये। वहाँ विश्वकर्मासे सुरक्षित इन्द्रप्रस्थ नामक पुरमें रहते हुए भाइयों-सहित युधिष्ठिरने पृथ्वीका पालन किया। भगवान् श्रीकृष्णके द्वारका चले जानेपर धर्मके जाननेवाले कुन्तीपुत्रोंने नारदजीके उपदेशसे द्रौपदीके विषयमें यह प्रतिज्ञा की कि द्रौपदी क्रमशः एक-एक वर्ष एक-एक पाण्डवके घरमें निवास करेगी। इस निर्णयके बाद जो दूसरे भाईके घरमें रहती हुई पाञ्चाल-राजकुमारी द्रौपदीको देख लेगा, उसे एक वर्षतक तीर्थ-सेवन करना पड़ेगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वे पाण्डव आलस्य छोड़कर सामान्य लौकिक व्यापारोंमें संलग्न हो समय व्यतीत करने लगे।

तदनन्तर एक दिन उसी जनपदके निवासी ब्राह्मणने राजाके आँगनमें खड़े होकर कई बार पुकार लगायी—'महाराज! चोरोंने मेरी गाय चुरा ली।' उसकी आवाज सुनकर अर्जुन वहाँ आये और ब्राह्मणको सान्त्वना देकर अपने अस्त्र-शस्त्र लानेके लिये शीघ्रतापूर्वक शस्त्रागारको गये। वहाँ उन्होंने द्रौपदी और राजा युधिष्ठिरको एक जगह बैठे देखा। इस विषयमें की हुई प्रतिज्ञाको जानते हुए भी उन्होंने वहाँसे धनुष और बाण ले लिये और युद्धमें लुटेरोंको मारकर ब्राह्मणकी गाय लौटा ली। फिर उसे ले जाकर ब्राह्मणको आदरपूर्वक समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् अर्जुनने धर्मनन्दन युधिष्ठिरको सूचित किया कि मेरे द्वारा प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन हुआ है, इसलिये मुझे तीर्थयात्रा करनी चाहिये।

अपने छोटे भाईकी बात सुनकर सब धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ धर्म-

दन युधिष्ठिरने आदरपूर्वक कहा, 'सुव्रत ! तुमने ब्राह्मण र गायके लिये ऐसा किया है। प्रजाकी रक्षा करना राजाका र्व्य है; यदि उसके द्वारा चोरोंकी उपेक्षा हो जाय तो े ब्रह्महत्याका पाप लगता है और चोरोंको दण्ड देनेपर वह ण्यका भागी होता है। तुमने राजा और प्रजा दोनोंके लिये हितकर कार्य है, वही किया है; इसलिये तुम्हारा दोष ीं है।' धर्मराजका यह वचन सुनकर सदा धर्ममें तत्पर नेवाले अर्जुनने हाथ जोड़कर कहा, 'भूपाल ! आप ऐसी बात कहें, आप धर्मके सर्वस्वको जानते हैं, धर्मके साक्षात् स्वरूप तथा कर्तव्य और अकर्तव्यके ज्ञाता हैं। समर्थ पुरुषको पनी की हुई प्रतिज्ञाका कभी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। ार्य ! यदि मुझपर दया करके मुझे तीर्थोंमें जानेसे रोक देंगे, संसारके मनुष्य यदि मुझे हतप्रतिज्ञ कहने लगें, तो उन्हें ौन रोक सकता है। मेरा मन भी तीर्थयात्राकी उत्कण्ठासे तावला हो रहा है। राजन् ! नारदजीने जो अनुशासन किया , वह हमारे लिये सर्वथा कर्तव्य है। अतः महाराज ! तीर्थ-ात्राके लिये मैंने जो यह उद्योग किया है, इससे आपको सन्न होना चाहिये। स्वामीको सेवकोंकी प्रतिज्ञाका उनके ारा निर्वाह करवाना चाहिये।'

तब भाइयोंकी सलाह ले 'बहुत अच्छा' कहकर युधिष्ठिरने र्जुनका अनुरोध स्वीकार कर लिया। अर्जुनने प्रणाम और िनय आदिके द्वारा अपने बड़े भाईको सन्तुष्ट किया। फिर यथायोग्य भीमसेन आदि बन्धुओंसे भी विदा ले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर अर्जुनने वहाँसे यात्रा की। राजकुमार अर्जुनने पहले गङ्गा नदीके तटपर पहुँचकर उसीके किनारे-किनारे निकटवर्ती मार्गसे जाते हुए हरिद्वार, प्रयाग और काशी आदि तीर्थोंका सेवन किया और अन्य तीर्थोंका दर्शन करते हुए वे ऊँची-ऊँची तरङ्गोंसे लहराते हुए दक्षिण समुद्रतक जा पहुँचे। फिर परम पवित्र महानदी, प्रसिद्ध पुरुषोत्तम तीर्थ और सिंहाचलका दर्शन करके उन्होंने अपनेको कृतकृत्य माना। तत्पश्चात् अर्जुनने समस्त पातकसमूहका विनाश करनेके कारण अतिशय गौरवको प्राप्त हुई पुण्यमयी गोदावरी नदीका दर्शन किया। उसके जलसे विधिपूर्वक स्नान करके वे मलापहा नदीके तटपर गये। उसके दर्शनसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके बाद वे सरिताओंमें श्रेष्ठ कृष्णवेणी नदीके समीप जा पहुँचे और भगवान् शंकरके निवास-स्थान श्रीपर्वतका दर्शन किया। फिर पिनाकिनी नदीको पार करके देवताओं और ऋषियोंद्वारा सेवित वेङ्कटाचल पर्वतका दर्शन किया, जो भगवान् नारायणका प्रिय निवास है। उस पर्वतके शिखरपर स्थित सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र स्वामी सुप्रसिद्ध भगवान् श्रीहरिका अर्जुनने कल्याणकी सिद्धिके लिये भक्तिपूर्वक पूजन किया। तदनन्तर महापर्वत वेङ्कटाचलके शिखरसे उतरकर उन्होंने सिद्धों और मुनियोंके समुदायसे सेवित सुवर्णमुखरी नामवाली नदीका दर्शन किया, जिसे मुनिवर अगस्त्यजी यहाँ ले आये थे।

अर्जुनका कालहस्तीश्वरके समीप भरद्वाजके आश्रमपर जाना और भरद्वाजजीके द्वारा अगस्त्यजीके प्रभावका वर्णन

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार सब तीर्थोंका दर्शन करके आये हुए अर्जुनके मनमें महानदी सुवर्णमुखरीने कई गुना आनन्द बढ़ा दिया। उस नदीके पूर्व तटपर अर्जुनने एक ऊँचा पर्वत देखा, जो कालहस्तीके नामसे प्रसिद्ध है। उस महानदीमें स्नान करके वे पर्वतके शिखरपर गये और वहाँ देवपूजित कालहस्तीश्वर नामक महादेवजीका दर्शन किया। पार्वतीके साथ महादेवजीका भक्तियुक्त चित्तसे पूजन करके वे कृतार्थ हो गये। तदनन्तर अर्जुन वहाँके अभूतपूर्व पदार्थोंका दर्शन करनेके लिये उस पर्वतपर विचरने लगे। वहाँ पर्वतीय शिखरोंपर एकान्त प्रदेशमें उन्होंने शिवजीके ध्यानमें तत्पर हुए अनेकानेक दिव्य योगियोंका दर्शन किया। साथ ही इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाले अनेकों शान्त मुनियोंको भी देखा। उनमें कोई तो निराहार रहते थे, कोई वायु पीते थे, कोई पत्ते चबाते थे और कोई सूर्यकी धूपके ही आहारपर निर्वाह करते थे। उसके बाद उस पर्वतके दक्षिण भागमें घूमते हुए उन्होंने महर्षि भरद्वाजका पवित्र आश्रम देखा, जो सब प्रकारकी लक्ष्मीसे सुशोभित था। कौतुकका तो वह एकमात्र स्थान था। सिंह, हाथी, व्याघ्र, चीता, रुरु, रङ्कु तथा अन्य मृगोंसे भरा हुआ था और वे सभी जीव आपसका सहज वैर भुलाकर एक-दूसरेका हितसाधन करते थे। उस आश्रमको देखकर पाण्डुनन्दन अर्जुनने तपस्वियोंके प्रभावकी प्रशंसा की। अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मण उस यात्रामें अर्जुनके साथ थे। उन सभी मित्रोंके साथ उन्होंने आश्रममें प्रवेश किया और अपने सामने ही अनेक मुनियोंसे घिरे हुए प्रज्वलित

अग्निके समान तेजस्वी भरद्वाजजीको बैठे देखा। उनके सब अङ्गोंमें भस्म लगा हुआ था और कंधेपर मृगचर्मका उत्तरीय शोभा पा रहा था। इससे वे नूतन श्याम मेघसे आच्छादित कैलासकी भाँति सुशोभित हो रहे थे। सुवर्णके समान पीले रंगकी लम्बी जटाओंसे प्रकाशमान थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो श्रुति-स्मृति और पुराणोंके अर्थने एकीभूत होकर मुनिका शरीर धारण कर लिया हो। वे दिव्य ज्ञानके शुभ आश्रय थे। धृति, क्षान्ति, दया, तुष्टि और शान्ति आदि सद्गुण नित्य उनकी सेवामें रहते थे। वे अखण्ड ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान हो रहे थे। अर्जुनने धीरे-धीरे निकट जाकर मुनिके चरणारविन्दोंके आगे पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

अपने आश्रमपर आये हुए कुन्तीनन्दन अर्जुनको मुनिने स्वयं उठाकर अभ्युदयका आशीर्वाद दिया। उस समय उनका चित्त हर्षोल्लाससे परिपूर्ण था। यथायोग्य अर्घ्य आदि प्रस्तुत करके मुनिने अपने प्रिय अतिथिका सत्कार किया और एक आसनकी ओर सङ्केत करके उन्हें उसपर बिठाया। जब वे बैठ गये तब उनसे स्वास्थ्यसम्बन्धी कुशल-प्रश्न किया। तदनन्तर अर्जुन भोजन करके तपोनिधि भरद्वाज मुनिके समीप ही बैठे और कथा सुननेके कौतूहलसे दिनका शेष भाग वहीं व्यतीत किया। तत्पश्चात् सायं-सन्ध्या करके अग्निमें आहुति दे अपने साथ आये हुए ब्राह्मणोंसहित वे मुनिके कुटी गृहमें गये और वहाँ उनके आशीर्वादसे आनन्दित होकर बैठे। उस समय सुवर्णमुखरी नदीके शीतल जलको छूकर चलनेवाली ठंडी वायुसे अर्जुनको बड़ा हर्ष प्राप्त हो रहा था।

सूतजी कहते हैं—अर्जुनने सुखपूर्वक बैठे हुए भरद्वाज मुनिको प्रणाम करके विनयपूर्वक यह गम्भीर वचन कहा—'मुनिश्रेष्ठ! इस संसारमें एकमात्र मैं ही धन्य हूँ, जिसका आपने अपने पुत्रके समान भलीभाँति आदर किया है। भगवन्! यह महानदी किस पर्वतसे प्रकट हुई है और कौन इसे ले आया है? तथा इसमें स्नान, दान आदि करनेसे कौन सा पुण्य प्राप्त होता है?'

भरद्वाजजीने कहा—महाबाहु अर्जुन! तुम कौरवकुलको पवित्र करनेवाले हो और धर्मपुत्र युधिष्ठिरके छोटे भाई हो। मैंने अनेक राजा देखे हैं। परंतु वे तुम्हारे समान लीलायुक्त, सरलता, दया, उदारता, धीरता और गम्भीरता आदि गुणोंसे सुशोभित नहीं थे। कुल, विद्या और धन—ये बलवान् पुरुषोंके अभिमानमें कारण होते हैं। परंतु तुम्हारे-जैसे कल्याणमय पुरुषोंके लिये वे भी नम्रता लानेमें कारण हुए हैं। राजन्! मैंने मुनियोंके मुखसे जो दिव्य कथा सुनी है, वह तुमसे कहता हूँ, उसे सुनो। पूर्वकालकी बात है, दक्षकुमारी सती अपने पितासे अपमानित हो शरीर त्यागकर हिमालयकी पुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुईं। फिर सप्तर्षियोंने आकर जब प्रार्थना की, तब गिरिराज हिमालय विवाहके समय अपनी पुत्री भगवान् शङ्करको देनेको उद्यत हुए। उसके बाद जगदीश्वर शिव पार्वतीको ब्याह लानेके लिये हिमालयके निवासस्थानपर गये। उस समय स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी भगवान् शिवके मङ्गलमय विवाहका अभिनन्दन करनेके लिये वहाँ उपस्थित हुए। उन सबके भारी भारसे उत्तरकी भूमि नीची हो गयी और दक्षिणकी भूमि भार न होनेसे अत्यन्त हल्केपनके कारण ऊँची हो गयी। इससे सबको बड़ा भय हुआ। तब महादेवजीने अगस्त्यजीके समीप जाकर कहा, 'मुने! यह पृथ्वी अधिक भारसे दबकर विकृतावस्थाको प्राप्त हो गयी है, तुम्हीं इसको बराबर करनेमें समर्थ हो। अतः मेरे कहनेसे इस पृथ्वीको बराबर करो।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् शिवको प्रणाम करके अगस्त्यजी दक्षिण दिशामें चले गये। विन्ध्यगिरिको लाँघकर अगस्त्यके दक्षिण दिशामें जाते ही पृथ्वी समभावको प्राप्त हो गयी।

तदनन्तर अगस्त्यजीने आगे जाकर किसी ऊँचे पर्वतको देखा, जो अपनी फैली हुई घाटियोंसे पृथ्वीको धारण करके स्थित था। वे धीरे-धीरे उस पर्वतपर चढ़ गये और उसके मनोहर शिखरकी सुरम्य स्थलीमें उन्होंने रहनेका विचार किया। वहाँ अमृतके समान जलसे भरा हुआ एक सरोवर था, जिसमें पद्म और उत्पल आदि फूलोंकी शोभा फैली हुई थी। उसके चारों ओर बहुतसे वृक्ष लगे थे। अगस्त्यजीने उसी सरोवरके उत्तर तटपर एक मनोहर भूभागमें उत्तम आश्रम बनाकर तथा पितरों, देवताओं, ऋषियों और वास्तुदेवका विधिपूर्वक पूजन करके मुनिसमुदायके साथ उसमें दीर्घकालतक निवास किया। तपस्यामें मनकी वृत्तियोंको लगाकर वहाँके तपोवनमें जब अगस्त्य मुनि रहने लगे, तब वह उत्तम सौभाग्यसे सुशोभित पर्वत अगस्ति शैलके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

महर्षि अगस्त्यकी तपस्यासे सुवर्णमुखरी नदीका प्रादुर्भाव और उसका माहात्म्य

भरद्वाजजी कहते हैं—एक दिन मुनिवर अगस्त्यजी पूर्वाह्नकालका नित्य-नियम पूरा करके भगवान् शिवकी आराधना करनेके लिये देवमन्दिरमें गये। उसी समय आकाशवाणी हुई—'मुने! यह प्रदेश नदीसे हीन है, अतः ज्ञान-विज्ञानसे रहित केवल शरीरधारी ब्राह्मणकी भाँति, दक्षिणाहीन दीक्षा और चाँदनीशून्य रात्रिके समान शोभा नहीं पाता। इसलिये तुम सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये इस भूभागमें कोई ऐसी नदी बहाओ, जो अगाध पापराशिजनित भयका निवारण करके सदैव सुशोभित रहे। मुनिवर! देवसमुदायकी यही प्रार्थना है, जो सबके लिये हितकर है।'

इस आकाशवाणीको सुनकर ब्रह्मर्षि अगस्त्यजी क्षणभर कुछ विचार करते रहे। तत्पश्चात् देव-पूजन समाप्त करके वे बाहर वेदीपर बैठे। उनके आश्रमपर जितने मुनि रहते थे, उन सबको उन्होंने बुलवाया और आकाशवाणीकी कही हुई बात कह सुनायी। तब मुनियोंने अगस्त्यजीको प्रणाम करके कहा, 'महर्षे! आपके हुंकारमात्रसे राजा नहुष देवताओंके साम्राज्यसे नीचे गिर गये और सर्पयोनिको प्राप्त हुए। जिसने सम्पूर्ण भूमण्डलको घेर रक्खा है तथा जो अपनी उत्ताल तरङ्गों-से आकाशको भी ताड़ित करता है, ऐसे महासागरको भी आपने अपने चुल्लूमें रख लिया। विन्ध्यपर्वत भगवान् सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये उद्यत हुआ था, परंतु आपने उसे भी शान्त कर दिया। इन सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात और क्या हो सकती है। महामुने! तीनों लोकोंमें हम सब लोग कृतार्थ हैं जो कि आपसे सनाथ होकर आपके इस आश्रममें निवास करते हैं। यह प्रदेश दक्षिण दिशामें वर्णनीय है और समस्त वस्तुओं-से परिपूर्ण है तो भी बहुत दूरतक यहाँ कोई नदी नहीं है, इसलिये यह शोभा नहीं पाता। अनघ! कब ऐसा शुभ अवसर प्राप्त होगा जब हम इस देशमें आपके द्वारा बहायी हुई किसी महानदीमें स्नान करके कृतार्थताका अनुभव करेंगे। हमारी भी प्रार्थना है कि आप यहाँ सबको शरण देनेवाली किसी सर्वश्रेष्ठ विश्ववन्द्य नदीको निश्चय ही ले आनेके लिये प्रयत्न कीजिये।'

तब मुनीश्वरोंकी आज्ञा ले देवताओं तथा भगवान् शिव-की विशेष पूजा करके मुनिने महान् क्लेशमय दुःसह व्रतको अङ्गीकार किया और बड़े यत्नसे भारी तपस्या प्रारम्भ की। गरमीमें पञ्चाग्निका ताप सहन किया। वर्षामें आँधी-पानी और विद्युत्का सामना किया तथा सर्दीमें गलेतक पानीमें खड़े हो जप-ध्यान करते रहे। तत्पश्चात् मनकी वृत्तियोंको रोककर, निराहार रह, इन्द्रियोंको काबूमें करके वे पत्थरकी भाँति स्थिर हो गये। उस समय उन्हें बाहरकी बातोंका कुछ भी भान नहीं होता था। तदनन्तर तपस्यामें लगे हुए अगस्त्यजीके आगे ब्रह्माजी प्रकट हुए। उन्हें देखकर मुनिने प्रणाम किया और अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा स्तुति की। तब विनयावनत अगस्त्यजीकी ओर देखकर प्रसन्नवदन हो ब्रह्माजीने पवित्र वाणीमें कहा, 'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षे! तुम्हारे इस दुष्कर तपसे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम्हें जो-जो अभीष्ट हो, माँगो, मैं उसे दूँगा।'

अगस्त्यजी बोले—प्रभो! आपकी कृपासे मुझे सब कुछ प्राप्त है, किंतु इस प्रदेशको नदीसे हीन देखकर मेरे मन-में खेद होता है। देवेश्वर! यहाँकी भूमिको पवित्र और सुरक्षित करनेमें समर्थ किसी महानदीको प्रकट करनेकी कृपा करें। यही मेरे लिये अभीष्ट वर है।

अगस्त्यजीका वचन सुनकर ब्रह्माजीने कहा, 'ऐसा ही होगा।' फिर उन्होंने अपने मनसे आकाशगङ्गाका स्मरण किया और जब वह उनके आगे आकर खड़ी हो गयी तब उससे कहा, 'गङ्गे! संसारका उपकार करनेवाले कार्यमें संलग्न होनेके लिये मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। इस नदीहीन देशमें सब लोगोंके हितके लिये कोई नदी प्रवाहित करनेके लिये ये अगस्त्यजी तपस्या एवं चेष्टा कर रहे हैं। इसलिये तुम अपने एक अंश-से पृथ्वीपर उतरकर अगस्त्यजीके दिखाये हुए मार्गसे जाओ और यहाँके रहनेवाले मनुष्योंको पवित्र करो। समस्त नदियों-में तुम्हारा श्रेष्ठ स्थान हो और तुम अपनी शरणमें आये हुए लोगोंकी रक्षा करो।' यों कहकर ब्रह्माजी उस आकाशगङ्गा और अगस्त्य मुनिके द्वारा किये गये प्रणाम, पूजा तथा विशेष स्तुतियोंसे अभिनन्दित होकर वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् मुनीश्वर अगस्त्यके आगे अपने अंशसे उत्पन्न दिव्य तेजोमयी मूर्तिका दर्शन कराकर आकाशगङ्गाने कहा, 'मुनीश्वर! यह मेरा अंश है, यह पृथ्वीपर पहुँचकर नदीरूपमें परिणत हो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेगा।'

ऐसा कहकर आकाशगङ्गा तो चली गयी और उनके अंशसे उत्पन्न हुई दिव्य मूर्तिने पूछा—'मुने! मुझे किस मार्गसे चलना होगा?' तब मुनिने कहा—'कल्याणि! मैं

आगे-आगे चलकर तुम्हारे जाने योग्य मार्ग दिखाऊँगा। तुम मेरे पीछे-पीछे आओ।' तदनन्तर मुनिवर अगस्त्यजी अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर गङ्गाजीको अभीष्ट मार्ग दिखलाते

हुए आगे-आगे चले। उस नदीको देखकर उस भूमिके निवासी मनुष्य बड़े प्रसन्न हुए। 'अहो! हमारे सौभाग्यसे यह सुधाके समान मधुर एवं निर्मल जल प्राप्त हुआ'—ऐसा कहते हुए वे अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये। उस समय ब्रह्माजीकी आज्ञासे सब देवताओंके सुनते हुए वायुदेवने कहा—'यह नदी लोकोंके सौभाग्यसे सुवर्णकी भाँति प्राप्त हुई है तथा महर्षि अगस्त्यके द्वारा इस पृथ्वीपर लायी जानेपर अपनी कल-कलध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाओंको मुखरित कर रही है। इसलिये यह सुवर्णमुखरीके नामसे प्रसिद्ध होगी तथा मोक्ष-सम्पत्ति प्रदान करनेवाले अपने तेजसे सम्पूर्ण लोकोंद्वारा प्रशंसित होगी।' इस प्रकार यह दिव्य नदी स्नान-पान आदिकी व्यवस्थासे सब मनुष्योंको सुख पहुँचाती हुई इस पृथ्वीपर प्रतिष्ठित हुई। जो रोगोंसे पीड़ित और अधिक व्याकुल मनुष्य हैं, उन सबके रोगोंका निवारण करके उन्हें स्वस्थ बना देनेवाला एकमात्र सुवर्णमुखरीका जल है। अर्जुन! वह नदी कीचड़से रहित, अत्यन्त निर्मल, पापनाशक, मङ्गलयुक्त और अत्यन्त स्वादिष्ट अमृतके समान जल धारण करती है। अगस्त्य पर्वतसे इसकी उत्पत्ति हुई है तथा उत्तम तीर्थसमूहोंसे सुशोभित होकर यह दक्षिण समुद्रमें जाकर मिली है। महर्षि अगस्त्य इस नदीका दक्षिण समुद्रसे सङ्गम कराकर इसकी स्तुति कृतार्थताका अनुभव करते हुए पुनः इच्छानुसार आश्रमपर लौट आये।

अर्जुनने कहा—भगवन्! आपने इस महान उत्पत्तिका वृत्तान्त कहा। अब मैं इसके प्रभावको चाहता हूँ।

भरद्वाजजी बोले—पाण्डुनन्दन! सौ योजन भी इस सुवर्णमुखरीका स्मरण करके मनुष्य सब पापोंसे हो जाता है। यदि सुवर्णमुखरीके जलमें देहधारिय अस्थि डाल दी जाय, तो वह उनके ब्रह्मलोकपर चढ़ लिये सीढ़ी बन जाती है। सुवर्णमुखरीका स्मरण हुए मनुष्य जहाँ कहीं भी अन्य जलोंमें स्नान कर लें, उन्हें उत्तम पदकी प्राप्ति होती है। इन्द्र आदि दे सुवर्णमुखरी नदीमें स्नान करनेके लिये ललचाये चित्तसे मनुष्य-शरीरको ही प्राप्त करना चाहते हैं। तोला भर भी सुवर्णमुखरी नदीका जल पी लिया जाय, वह देहधारियोंके पर्वतसमान पापोंका भी शीघ्र नाश देता है। देवताओंमें विष्णु, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, मनुष्य राजा, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, महाभूतोंमें आकाश, सम शक्तियोंमें मायाशक्ति, मन्त्रोंमें गायत्री मन्त्र, देवताअ अस्त्र-शस्त्रोंमें वज्र, तत्त्वोंमें आत्मतत्त्व, यजुर्वेदके मन्त्र रुद्राष्टाध्यायी, नागोंमें शेषनाग, पर्वतोंमें हिमालय, क्षेत्र वराहक्षेत्र तथा इन्द्रियोंमें मनके समान सम्पूर्ण नदियों सुवर्णमुखरी नदी श्रेष्ठ है। 'अगस्त्य पर्वतसे प्रकट हो दक्षि समुद्रमें मिलनेवाली और सब पापोंका नाश करनेवा तुम स्वर्णमुखरी नदीकी मैं शरण लेता हूँ। जगदम्बे बड़े-बड़े पातकोंसे दग्ध हुए अपने इस शरीरको मैं तुम्ह जलसे धोता हूँ। मुझे कल्याणसे युक्त करो।'* इन द सूक्तोंका भलीभाँति उच्चारण करके जो मनुष्य नियम पूर्वक सुवर्णमुखरीके जलमें स्नान करता है, वह शुद्ध होक आनन्दका भागी होता है। कुन्तीनन्दन! चन्द्रग्रहण औ सूर्यग्रहणके समय सुवर्णमुखरीके तटपर किया हुआ स्नान

* अगस्त्याचलसम्भूतां दक्षिणोदधिगामिनीम्।
समस्तपापहन्त्रीं त्वां सुवर्णमुखरी श्रये ॥
महापातकविप्लुष्टं गात्रं मम तवोदकैः।
क्षालयामि जगद्धात्रि श्रेयसा योजयस्व माम् ॥

(स्का० पु० वै० वे० ३३। ४२-४३)

दान आदि अनन्त फलकी प्राप्ति करानेवाला होता है। संक्रान्ति, अयन तथा व्यतीपातके दिन सुवर्णमुखरी नदीमें किया हुआ स्नान मनुष्यका उद्धार कर देता है। सुवर्णमुखरीके जलमें स्नान करके मनुष्य दुःस्वप्नके विघ्नसे तथा ग्रहोंके दुष्ट स्थानमें रहनेसे प्राप्त होनेवाले पाप-तापसे तर जाता है। सुवर्णमुखरीके तटपर किया हुआ जप, होम, तप, दान, श्राद्ध और देवपूजन सौगुना फल देनेवाला होता है।

अर्जुन ! इस प्रकार तुमसे महानदी सुवर्णमुखरीकी उत्पत्ति और प्रभावका भलीभाँति वर्णन किया गया।

सुवर्णमुखरी नदीके तीर्थोंका वर्णन, भगवान् विष्णुकी महिमा, प्रलयकालकी स्थिति तथा श्वेतवाराहरूपमें भगवान्‌का प्राकट्य
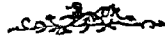
अर्जुनने पूछा—मुने ! सुवर्णमुखरी नदीमें किन-किन पवित्र नदियोंका संगम हुआ है ? तथा इसमें कहाँ स्नान करनेसे समस्त पाप कट जानेके कारण मनुष्य यमराजके भयको नहीं प्राप्त होते हैं ?

भरद्वाजजी बोले—कुन्तीनन्दन ! अगस्त्य पर्वतसे जहाँ पहले-पहल महानदी सुवर्णमुखरी पृथ्वीपर उतरी है, उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। वह पावन तीर्थ त्रिभुवनमें अगस्त्यतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। उस तीर्थमें जो प्रयत्नशील साधक अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए स्नान करते हैं, वे सम्पूर्ण फल प्राप्त करते हैं। वहाँ सब लोगोंको आनन्द देनेवाले अगस्त्य मुनिके द्वारा स्थापित किये हुए भगवान् शिव अगस्त्येश्वरके नामसे प्रसिद्ध हैं। उस महानदीमें स्नान करके जो लोग अगस्त्येश्वरकी पूजा करते हैं, उन्हें दस अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। अगस्त्यतीर्थसे ईशानकोणकी ओर एक कोसकी दूरीपर तीन तीर्थ हैं, जो देवतीर्थ, ऋषितीर्थ तथा पितृतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हैं। वहींपर अगस्त्यमुनिने देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका पूजन किया था। जो लोग स्नान करके उन तीर्थोंमें तर्पण करते हैं, वे तीनों ऋणोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गको प्राप्त होते हैं। वहाँसे पूर्व-उत्तरकी ओर दो योजनकी सीमामें वेणा नामवाली महानदी सुवर्णमुखरीमें मिली है। इन दोनों नदियोंके सङ्गममें विधिपूर्वक स्नान करनेवाले मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त करते हैं। वेणासे मिलकर परम पवित्र सुवर्णमुखरी नदी पर्वतोंके दुर्गम मार्गसे उत्तरवाहिनी होकर गयी है। फिर पर्वतोंके बीचसे होकर विषम मार्गसे आगे बढ़ती हुई चार योजन दूर जाकर प्रकाशमें आयी है। वहाँसे पूर्व डेढ़ योजनकी दूरीपर उदफल नामक मनोहर स्थानमें यह महानदी पूर्ववाहिनी हो गयी है। वहीं भगवान् शङ्करका अगस्त्येश्वर नामसे प्रसिद्ध एक और शिवलिङ्ग है, जो स्मरणमात्रसे मनुष्योंके समस्त पापोंका निवारण करता है। जो मनुष्य उस महानदीमें स्नान करके इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए अगस्त्यमुनिके द्वारा स्थापित भगवान् पार्वतीनाथका दर्शन करते हैं, वे अनेक जन्मोंकी उपार्जित पापराशिको दूर करके अनन्त कालतक स्वर्गलोकमें सुख भोगते हैं। वहाँसे तीर्थसमुदायसे सुशोभित सुवर्णमुखरी नदी पुनः आधे योजनतक उत्तरकी ओर गयी है। वह प्रदेश हिन्ताल, ताल और शाल आदि वृक्षोंसे बड़ा मनोहर प्रतीत होता है। वहीं व्याघ्रपदा नामवाली नदी सुवर्णमुखरी नदीमें मिली है। उन दोनों नदियोंके सङ्गममें स्नान करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका पूर्ण फल प्राप्त करते हैं। व्याघ्रपदा नदीके तटपर शङ्खतीर्थ सुशोभित है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। अर्जुन ! वहाँ शङ्खेश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिव विराजमान हैं। जो उस तीर्थमें भलीभाँति स्नान करके भगवान् शङ्करका दर्शन करते हैं, वे दस अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त करके देवलोकमें जाते हैं। व्याघ्रपदा-सङ्गमसे एक योजन भूमि आगे जाकर शुभ एवं निर्मल जल बहानेवाली मुनीन्द्रसेवित सुवर्णमुखरी नदी वृषभाचलके समीप पहुँची है।

वहाँ मङ्गलदायिनी कल्या नामवाली पवित्र नदी सुवर्णमुखरीमें आकर मिली है। वह वृषभाचलसे प्रकट हुई है। तीर्थराजसे उसकी शोभा और बढ़ गयी है। नदियोंमें उत्तम कल्या नदी पापसमूहका नाश करनेवाली है। उन दोनों नदियोंके सङ्गमकी महिमा बतलानेमें कौन समर्थ है ? जहाँ नदीके बीचमें महाशिला विराजमान है और अगस्त्यजीकी तपस्याके प्रभावसे जहाँ गङ्गा तीर्थका वास है। उन दोनों नदियोंके पवित्र सङ्गममें स्नान करनेवाले मनुष्य सौ पुण्डरीक

यज्ञोंका फल प्राप्त करते हैं और उनके ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । तदनन्तर महानदी सुवर्णमुखरीके उत्तर भागमें आधे योजन दूर सुप्रसिद्ध वेङ्कटाचल पर्वत विराजमान है, जिसकी ऊँचाई एक योजनकी है । भगवान् मधुसूदनने पहले वाराह शरीरसे इस पर्वतको अपने रहनेके लिये स्वीकार किया था, इसलिये श्रेष्ठ पुरुषोंने इसे वाराहक्षेत्र कहा है । वेङ्कटाचलपर भगवान् विष्णु श्रीलक्ष्मीजीके साथ सदैव निवास करते हैं । जो लोग वेङ्कटाचलनिवासी जगदीश्वर विष्णुका स्मरण करते हैं, वे सब दोषोंसे रहित हो सनातन अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं ।

अर्जुनने पूछा—महामुने ! लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु परम पवित्र वेङ्कटाचलपर कैसे प्रकट हुए ? किस पुण्यात्मापर प्रसन्न होकर उन्होंने भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले अपने अद्भुत रूपको प्रकाशित किया है ?

भरद्वाजजी बोले—कुन्तीनन्दन ! पूर्वकालमें भागीरथी-के तटपर यज्ञदीक्षापरायण तथा विशुद्ध ज्ञानसे विभूषित महात्मा राजा जनकसे वामदेवजीने जो पापनाशक कथा कही थी, वह भगवान् विष्णुके कीर्तनसे युक्त होनेके कारण सबको पवित्र करनेवाली है । वही कथा अब मैं तुम्हें सुनाऊँगा । भगवान् नारायण ही समस्त प्राणियोंके आदिकारण हैं । सम्पूर्ण विश्व उन्हींका रूप है, वे जगत्के स्रष्टा हैं, उनका स्वरूप चिन्मय तथा निरञ्जन है । उनके सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं । उन्हींके तेजसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है । उनसे बढ़कर तेज, उनसे बड़ा तप, उनसे बड़ा ज्ञान, उनसे बड़ा योग तथा उनसे बड़ी विद्या भी नहीं है । वे भगवान् श्रीहरि सदा समस्त प्राणियोंमें विद्यमान हैं । समस्त जीव उन्हींमें सुखपूर्वक निवास करते हैं । वे ही यज्ञ, यजमान और यज्ञके स्रुक्-स्रुवा आदि साधन हैं । वे ही फल हैं, वे ही फलदाता हैं और वे ही सबके प्राप्त करने योग्य परम गति हैं । हरि, सदाशिव, ब्रह्मा, महेन्द्र, परम तथा स्वराट् आदि सभी नाम उन सर्वेश्वर विष्णुके ही पर्याय कहे गये हैं । जो एकाग्रचित्त होकर परमात्मा नारायण-के इस माहात्म्यका अनुसन्धान करता है, वह पुनः संसारमें जन्म नहीं लेता । भगवान् विष्णु चिदानन्दस्वरूप, सबके साक्षी, निर्गुण, उपाधिशून्य तथा नित्य होते हुए भी स्वेच्छा-से भिन्न-भिन्न अवस्थाओंको अङ्गीकार करते हैं । वे पवित्रोंमें परम पवित्र हैं, निराश्रितोंकी परम गति हैं, देवताओंके भी देवता हैं तथा कल्याणमय वस्तुओंमें भी परम कल्याणस्वरूप हैं ।* बोध्य पदार्थोंमें एकमात्र वे ही बोध्य हैं । ध्येय त वे ही सर्वोत्तम ध्येय हैं । विनयोंमें सबसे अधिक विनय नय भी वे ही हैं । वे सम्पूर्ण तेजोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, तपस्याओंमें उच्चकोटिकी तपस्या हैं तथा सब प्राणि परम आधार हैं । जनार्दन भगवान् विष्णुका आदि अन्त नहीं है । उनके स्वरूपको इदमित्थम् रूपसे जान ले ब्रह्मा आदि भी मूढ हैं । वे अजन्मा होकर भी जन्म लेते सर्वात्मा होकर भी शत्रुओंका वध करते हैं तथा स्व होकर भी अपने भक्तोंके परतन्त्र रहते हैं । सर्वज्ञ भग गरुडध्वज ही कर्मोंके साक्षी हैं । मुनिलोग एकाग्रचित्त हो उनके स्वरूपकी खोज करते हैं । भगवान्‌की चतुर्व्यूह ना प्रसिद्ध चार मूर्तियाँ हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—संकर्ष वासुदेव, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध । पहले प्रणवका उच्चारण तत्पश्चात् भगवान्‌के प्रकाशमान हृदयस्वरूप नमः पद उच्चारण हो, उसके बाद भगवान् और वासुदेव—ये दो हों, इनसे जो मन्त्र बनता है, वह (ॐ नमो भग वासुदेवाय) मन्त्र भगवान्‌के स्वरूपका प्रकाशक है । प्रतिदिन एकाग्रचित्त होकर इस मन्त्रराजका जप करता वह भगवान् विष्णुकी कृपासे समस्त सिद्धियोंका भाजन हो है । आपत्तियोंका निवारण और सम्पत्तियोंकी प्राप्ति करा वाले भोग-मोक्षप्रदाता श्रीहरिने कल्पके आदिमें जिस प्रक प्राणियोंकी सृष्टि की है, वह सुनो । सृष्टिका चिन्तन कर समय भगवान् विष्णुका जो रजोगुणयुक्त तेजोमय स्वरू प्रकट हुआ, वह ब्रह्माके नामसे विख्यात हुआ । उन्हं भगवान्‌के मुखसे त्रिभुवनके स्वामी इन्द्र और अग्नि उत्प हुए । उनके नित्य करुणापूर्ण शीतल हृदयसे चन्द्रम प्रकट हुए, जो जल, समस्त ओषधिवर्ग तथा ब्राह्मणोंवे रक्षक हैं । भगवान्‌के नेत्रोंसे सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करने वाले तेजोनिधि सूर्य उत्पन्न हुए, जो जाड़ा, गरमी और वर्षा कालके कारण हैं । श्रीहरिके प्राणोंसे समस्त जगत्के प्राण-स्वरूप महाबली वायुका प्रादुर्भाव हुआ, जो ग्रह, नक्षत्र आदिको धारण करनेवाले हैं । महात्मा भगवान्‌की नाभिसे अन्तरिक्ष और मस्तकसे आकाशकी उत्पत्ति हुई, जो समस्त भूतोंके आविर्भावका कारण है । भगवान् विष्णुके चरणा-रविन्दोंसे सब भूतोंको आश्रय देनेवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई ।

---

* पवित्राणां पवित्रं यो जगतां परमा गतिः ।
दैवतं देवतानां च श्रेयसां श्रेय उत्तमम् ॥
(स्क० पु० वै० वे० ३५ । २८)

उन परमात्माके कानोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकट हुईं। उनके चिन्तनमात्रसे भूर्भुवः आदि लोक, रसातल आदि पाताल और यक्ष-राक्षसगण आदि उत्पन्न हुए। भगवान्‌ने अपने मुख, बाहु, ऊरु और चरणोंसे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदिको जन्म दिया। वेद, यज्ञ, घोड़े, गौ और भेड़ आदि जीव, जिनकी उत्पत्तिका कारण अचिन्त्य है, जिन परमेश्वरसे उत्पन्न हुए हैं, उन्हीं देवाधिदेव भगवान् विष्णुके सङ्कल्पसे स्थावर-जङ्गम प्राणियोंका समुदाय तथा भूत, भविष्य, वर्तमान काल भी प्रकट हुआ है। वे ही बडवानलका रूप धारण करके समुद्रोंका जल पीते हैं और प्रलयकालमें अपने भीतर विलीन हुए समस्त जगत्‌की पुनः कल्पके आरम्भमें सृष्टि करते हैं। सूर्य और चन्द्रमाका रूप धारण करके वे ही अन्धकारका नाश करते और सबको कालके अनुसार धर्ममें लगाते हैं। इस प्रकार वे सब जीवोंकी जीवन-वृत्ति चलाते हैं। फिर कल्पान्तके समय समस्त संसारको अपने उदरमें रखकर लीलासे शिशुकी आकृति धारण किये एकार्णवके जलमें वटके पत्रपर शयन करते हैं। इसके बाद प्रचण्ड नागराजके शरीरकी सुखशय्यापर सोकर केवल भगवती लक्ष्मीजीके साथ योगनिद्राका आश्रय लेते हैं। यह सब अपनी इच्छाके अनुसार योगशक्तिको प्रवृत्त करनेवाले भगवान् मुकुन्दकी लीला है। उन परमेश्वरको यथार्थ रूपसे कोई भी नहीं जानता। जब-जब धर्मकी हानि होती और अधर्म बढ़ने लगता है अथवा जब-जब देवताओंको बड़ी भारी पीड़ा भोगनी पड़ती है और जब-जब अपने भक्त साधु पुरुषोंपर भय उत्पन्न करनेवाली भारी विपत्ति अनिवार्य-रूपसे आ जाती है, तब-तब कौतुकवश उस अवसरके अनुकूल रूप धारण करके भगवान् शीघ्र ही अधर्मका निवारण और जगत्‌का कल्याण करते हैं। स्वयं ही रजोगुणका आश्रय लेकर वे ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हो सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुणमें स्थित हो हरि-नाम धारण करके सारे संसारके पालन-पोषणका भार ढोते हैं और तमोगुणी वृत्तिको अपनाकर हर-नामसे प्रसिद्ध हो सबका संहार करते हैं। भगवान् मधुसूदनकी महिमाको यथार्थ रूपसे जाननेवाला कोई नहीं है।

और दैत्योंका दिन-रात एक दूसरेके विपरीत है। सूर्यका उत्तरायण देवताओंका दिन और दैत्योंकी रात्रि, इसी प्रकार दक्षिणायन दैत्योंका दिन और देवताओंकी रात्रि है। यह सब क्रमके अनुसार समझना चाहिये। अर्जुन! तैंतालीस लाख बीस हजार वर्षोंका एक महायुग होता है, जिसमें सत्ययुगसे लेकर कलियुगतक सभी युग सम्मिलित हैं। इकहत्तर महा-युगोंका एक मन्वन्तर होता है। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष—ये छः मनु अपने इन्द्र, देवता और ऋषियोंसहित व्यतीत हो चुके हैं। इस समय सातवें मनु वर्तमान हैं। इनके समयमें आदित्य, वसु तथा रुद्र आदि देवतागण हैं। सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करके तेजस्वीने इन्द्रपद प्राप्त किया है। विश्वामित्र, मैं (भरद्वाज), अत्रि, जमदग्नि, कश्यप, वशिष्ठ तथा गौतम ये ही सप्तर्षि हैं। वैवस्वत मनुके महाबली शूरवीर पुत्र धर्मपरायण राजा इक्ष्वाकु आदिने इस पृथ्वीका पालन किया है। सूर्य, दक्ष, ब्रह्म, धर्म तथा रुद्र इन पाँचोंके पाँच सावर्णिसंज्ञक पुत्र और रौच्य तथा भौम आदि ये सात भविष्यमें होनेवाले मनु हैं। ये चौदहों मनु ब्रह्माके एक दिनमें पूरे हो जाते हैं। इसीका नाम कल्प है। उसके अन्तमें उसीके समान रात्रि होती है। ब्रह्माके दिनकी समाप्ति होते समय पृथ्वीपर सौ वर्षोंतक बड़ा भयङ्कर उत्पात होता है। उस उपद्रवके समय पृथ्वी सूखकर रसहीन हो जाती है, जिससे उसपर रहनेवाले चार प्रकारके प्राणी नष्ट हो जाते हैं। तब सूर्यदेव अग्निके समान आगकी ज्वाला उगलती हुई प्रज्वलित लपटोंकी आकारवाली किरणोंसे संयुक्त होते हैं। उनके दुःसह तापसे गाँव, नगर, शैल, वन और वृक्ष आदिके भस्म हो जानेपर कछुएकी पीठकी-सी आकृति धारण करनेवाली यह पृथ्वी तपाये हुए लोहेके पिण्डकी भाँति जान पड़ती है। तब ब्रह्माजीके अङ्गोंसे महामेघ उत्पन्न होते हैं और घोर गर्जना करते हुए समस्त आकाशको आच्छादित कर लेते हैं। वे सौ वर्षोंतक बड़ी भारी वर्षा करते हैं। उस जलसे सूर्यद्वारा उत्पन्न की हुई प्रचण्ड आग बुझ जाती है। वे महामेघ पुनः सौ वर्षोंतक भयङ्कर वृष्टि करते हैं। उस वृष्टिके जलसे समुद्र अपनी मर्यादा लाँघकर क्षोभको प्राप्त होते हैं। उस समय पृथ्वी जलमें डूबकर पातालके तलमें चली जाती है। ...

छोड़कर भगवान् ब्रह्मा उस जलमें योगनिद्राका आश्रय लेकर सोते हैं। योगनिद्रामें पड़े-पड़े ब्रह्माजीकी उतनी ही बड़ी रात व्यतीत होती है, जितना बड़ा उनका दिन है। रात बीतनेपर ब्रह्माजी उठते हैं और भगवान् विष्णुकी आज्ञासे पूर्ववत् सब जीवोंकी वेगपूर्वक सृष्टि करने लगते हैं। प्रत्येक कल्पमें समुचित रूप धारण करके भगवान् विष्णु जगत्का पालन करते हैं। इस कल्पमें उन्होंने श्वेत वर्णके यज्ञ वाराहका रूप धारण किया और उसी वाराह-शरीरसे भूतलपर विहार करते हुए उन्होंने अपने पूर्व कल्पोंके निश्चित निवासस्थान वेङ्कटाचल पर्वतपर पदार्पण किया। स्वामिपुष्करिणीके तटपर चिरकालतक विचरण करते हुए वाराहजीने कमलके आसनपर विराजमान भक्तियुक्त ब्रह्माजीको देखा। ब्रह्माजीने भक्तिभावन भगवान्की पूजा करके प्रार्थना की—'प्रभो! अपने पुरातन दिव्य स्वरूपको धारण कीजिये।' ब्रह्माजीकी यह विनय सुनकर भगवान्ने वाराहकी आकृति त्याग दी और अनन्य भावसे भजन करनेयोग्य विश्वमय रूपको ग्रहण कर लिया।

वेङ्कटाचलपर राजा शङ्ख और महर्षि अगस्त्य आदिको भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन तथा वर-प्राप्ति

अर्जुनने पूछा—मुने! भगवान् श्रीहरि नेत्रोंद्वारा दर्शन और मनद्वारा चिन्तन आदिके विषय नहीं हैं, तो भी वे यहाँ मनुष्योंको प्रत्यक्ष कैसे हुए?

भरद्वाजजीने कहा—अर्जुन! हैहयवंशमें श्रुत नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जिन्होंने पृथ्वी और यहाँकी प्रजाका दीर्घकालतक अपनी सन्तानकी भाँति पालन किया था। उनके पुत्र शङ्ख हुए, जो समस्त गुणोंके निधि और सब शास्त्रोंमें कुशल थे। उन्होंने भी पृथ्वीका न्यायपूर्वक शासन किया। कमलके समान नेत्रोंवाले जगदीश्वर भगवान् विष्णुमें राजा शङ्खकी निश्चल एवं अनन्य भक्ति थी। उन्होंने दृढ़ निश्चयपूर्वक अद्भुत महिमावाले देवाधिदेव जगत्पति अनन्य पुरुषोत्तमका सदैव ध्यान करते हुए नाना प्रकारके व्रत, दान और पुण्य किये। तथा वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य भगवान् मधुसूदनकी प्रीतिके लिये ही अश्वमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठान किया। भक्तवत्सल केशवमें मन लगाकर वे प्रतिदिन गोविन्द-का स्मरण, अविनाशी अच्युतका जप, कमलनयन विष्णुका पूजन तथा शार्ङ्ग धनुषधारी श्रीहरिका कीर्तन करते थे। पुराणके विद्वानोंद्वारा कही जानेवाली पवित्र भगवत्कथाओंको, जो संसार-समुद्रसे पार उतारनेवाली हैं, वे सदैव सुना करते थे। भगवत्प्रीतिके लिये ही ब्राह्मणोंकी पूजा-अर्चा करते थे। इस प्रकार सर्वथा अविराम गतिसे श्रीहरिकी आराधनामें संलग्न होनेपर भी राजा शङ्खने परम स्वतन्त्र भगवान् पुरुषोत्तम-का कभी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं पाया। भगवान्का दर्शन न पानेसे उनका हृदय शोकसे व्याकुल हो गया, वे बड़ी चिन्ता-को प्राप्त हुए।

शङ्ख बोले—मैंने बीते हुए सहस्राधिक जन्मोंमें बहुत बड़ा पाप किया है, जिसके कारण आजतक मुझे भगवान् विष्णुका दर्शन नहीं प्राप्त हुआ। अनेक जन्मोंमें उपार्जित सम्पूर्ण तपस्याओंका यह एक ही अखण्ड फल है कि मधुसूदन भगवान् विष्णुका दर्शन प्राप्त हो। अहो! भगवान् मेरे नेत्रोंके समक्ष कैसे प्रकट होंगे? कानोंसे उनके वचन सुननेका सौभाग्य कैसे प्राप्त होगा?

इस प्रकार चिन्तासे व्याकुल होकर जब राजाके मनमें जीवित रहनेकी अभिलाषा नहीं रह गयी, तब अव्यक्तमूर्ति भगवान् विष्णुने सबके सुनते हुए कहा—'राजन्! तुम शोकके अधीन न होओ। तुम तो एकमात्र मेरी शरणमें आये हुए साधु भक्त हो। मैं तुम्हारा त्याग कैसे कर सकता हूँ। यह वेङ्कट नामक पर्वत तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। राजन्! यहाँका निवास मुझे वैकुण्ठसे भी अधिक प्रिय है। उस श्रेष्ठ पर्वतपर जाकर भक्तिपूर्वक तपस्या करते रहनेपर मैं तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन दूँगा। तुम्हारी ही तरह महर्षि अगस्त्य भी ब्रह्माजीकी आज्ञासे अञ्जनाचलके महानिवासमें तपस्या करनेके लिये आवेंगे। उसी पवित्र पर्वतपर निवास करते हुए तुम भी मेरी आराधना करो। इससे मेरा दर्शन प्राप्त कर लोगे।'

भगवान्के इस प्रकार आज्ञा देनेपर राजा शङ्खको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मन-ही-मन अपनेको धन्य माना और अपने पुत्र वज्रको प्रजापालनके कार्यमें नियुक्त करके भगवान् विष्णुके दर्शनकी आकाङ्क्षासे नारायणगिरिको प्रस्थान किया। उस पर्वतके ऊँचे शिखरपर पहुँचकर उन्होंने अमृतके समान दिव्य जलसे परिपूर्ण कल्याणमयी स्वामि-

प्रतीत होता था । उस तेजका दर्शन करके सबको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसके भीतर परमानन्दविग्रह दिव्यरूपधारी भगवान् श्रीनारायणका चिन्तन किया, जो मन और वाणीके मार्गसे सर्वथा दूर हैं, अपने विख्यात ऐश्वर्यसे सदा प्रकाशित होते हैं, सहस्र नेत्र, सहस्र भुजा और सहस्र चरणोंसे संयुक्त हैं, तपाये हुए सुवर्णके समान देदीप्यमान कान्तिसे जिनका रूप बड़ा मनोहर लगता है। जो अपने वक्षःस्थलपर लक्ष्मीको धारण करते और कौस्तुभमणिसे सुशोभित होते हैं। जिनका स्वरूप अचिन्त्य है। जो अनादि और अनन्त हैं, समस्त ब्रह्माण्डको अपने आपमें ही प्रकाशित करते हैं और सर्वत्र व्यापक हैं। उन्हीं भगवान् जगन्नाथको अपने सामने देखकर अगस्त्य और शङ्ख आदि सब मुनियोंके मनमें बड़ा हर्ष हुआ । सबने बार-बार भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाया । उस समय लोकरक्षाके लिये सब ओर भ्रमण करनेवाले भगवान्‌के तेजबलसम्पन्न आयुध उनकी सेवामें उपस्थित हो गये। सूर्यके समान तेजस्वी चक्र, दिव्य गदा, नन्दक नामक खड्ग, कमल तथा भयानक गर्जना करनेवाला चन्द्रमाके समान कान्तिमान् पाञ्चजन्य शङ्ख—ये सभी उपस्थित हो गये। शङ्खने अपनी ध्वनिसे समस्त ब्रह्माण्डको परिपूर्ण कर दिया। उस शङ्खनादको सुनकर वसिष्ठ आदि मुनि, गन्धर्व, नाग, किन्नर, विष्वक्सेन, गरुड़ तथा जय-विजय आदि श्वेतद्वीप-निवासी पार्षद भी आये । देववृक्षोंसे उत्पन्न पारिजात आदि फूलोंकी वहाँ अद्भुत वर्षा होने लगी, जिसकी घनीभूत सुगन्धसे सबका अन्तःकरण आमोदित हो उठा । भक्तवत्सल कमलनयन भगवान् विष्णुको प्रसन्न देखकर सब देवताओं और ऋषियोंने नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे साष्टाङ्ग प्रणामपूर्वक स्तवन किया ।

ब्रह्मा आदि देवता बोले—दयासागर भगवान् विष्णु ! आपकी जय हो। कमलनयन ! आपकी जय हो। समस्त लोकोंको एकमात्र वर देनेवाले भक्तार्तिभञ्जन ! आपकी जय हो, जय हो । आप अनन्त हैं, अविनाशी हैं, परम शान्त हैं। मन और वाणीकी आपतक पहुँच नहीं है। आपका स्वरूप विशुद्ध सच्चिदानन्दमय है। आपको सम्यक् रूपसे कौन जानता है ? विद्वान् पुरुष आपको सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, स्थूलसे भी स्थूल, सबके भीतर विराजमान, प्रकृतिसे परे अच्युत पुरुष कहते हैं । वेदान्तका सारभूत ब्रह्म आपका स्वरूप है। आप सबके भीतर और बाहर भी विद्यमान हैं। मायाके अधीन रहनेवाले देहाभिमानी पुरुषोंमेंसे कौन आपका वर्णन करनेमें समर्थ है ? आपका यह स्वरूप अत्यन्त भयदायक है, इसे देखकर हम भयसे उद्विग्न हुए जाते हैं; अतः आप शान्तरूप धारण करें ।

ब्रह्मा आदि देवताओंके द्वारा इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् गरुडध्वजने उसी क्षण सौम्यरूप धारण कर लिया। उनका मुख चन्द्रमण्डलके समान शोभा पाने लगा । प्रचण्ड तेज शान्त हो गया। श्रीअङ्गोंकी श्यामकान्ति नील कमलदलके समान सुशोभित हुई। दिव्य शरीरपर सुनहरे रंगका पीताम्बर छवि पा रहा था । भगवान् रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित दिखायी देने लगे। उनके चारों हाथ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे शोभायमान थे । भगवान् लक्ष्मीपतिके इस मनोहर रूपको देखकर सबने बार-बार प्रणाम किया । भगवान्‌ने अभीष्ट वरदानसे ब्रह्मा आदि देवताओंको सन्तुष्ट करके मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यसे कहा—'मुनीन्द्र ! तुमने मेरे लिये कठोर व्रतोंका अनुष्ठान करके बहुत क्लेश उठाया है। अतः मैं तुम्हें अभीष्ट वरदान दूँगा। बोलो क्या चाहते हो ?' भगवान् लक्ष्मीपतिका यह वचन सुनकर अगस्त्यजीके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। वे भगवान्‌को बार-बार प्रणाम करके बोले—'प्रभो ! आपने जो मेरा इतना आदर किया, इसीसे मैंने जो भी हवन किया है, जो भी तप, स्वाध्याय और श्रवण किया है वह सब सफल हो गया। भगवन् ! मैं तो आपको ढूँढ़ रहा था और आप मुझे ढूँढ़ते हुए आ गये। आपकी कृपासे मैं सब कुछ पहले ही पा गया हूँ। माधव ! इस समय बहुत सोचने-विचारनेपर भी मुझे ऐसी कोई वस्तु नहीं दिखायी देती, जो प्राप्त करने योग्य हो। अतः आपके चरणारविन्दोंमें निरन्तर ऐसी ही भक्ति बनी रहे, यही कृपा कीजिये । सुवर्णमुखरी नदीके जलमें स्नान करके जो लोग वेङ्कटाचलपर विराजमान आपका दर्शन करें, वे भोग और मोक्षके भी भागी हों। भगवन् ! थोड़ी आयुवाले अज्ञानी मनुष्य व्रत, स्वाध्याय और कर्मोंद्वारा आपका दर्शन नहीं कर सकते। अतः आप सबपर कृपा करनेके

लिये सदैव उस पर्वतपर निवास कीजिये और सबको मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले होइये ।'

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्मन् ! तुमने जो प्रार्थना की है वह सब पूर्ण होगी । आजसे वैकुण्ठ नामवाले इस पर्वतपर मैं सदा निवास करूँगा । सुवर्णमुखरी नदीके जलमें स्नान करके अपने पाप-पङ्कको धोकर जो लोग एकाग्रचित्तसे इस वैकुण्ठ शैलपर मेरा दर्शन करेंगे, वे पुनरावृत्तिसे रहित तथा केवल परमानन्दसे प्रकाशमान मेरे परम धामको प्राप्त होंगे । जो मनुष्य जिन कामनाओंकी अपेक्षासे यहाँ आकर मेरा दर्शन करेंगे, वे उन-उन कामनाओंको निःसन्देह प्राप्त कर लेंगे ।

अगस्त्य मुनिसे ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने राजा शङ्खकी ओर देखा और ब्रह्मा आदिके सुनते हुए कहा—राजन् ! मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत सन्तुष्ट हूँ, तुम कोई मनोवाञ्छित वर माँगो ।

शङ्ख बोले—भगवन् ! आपके चरण-कमलोंकी सेवाके अतिरिक्त दूसरा मैं कुछ नहीं माँगता । आपके भक्त जिस गतिको पाते हैं, उसी उत्तम गतिके लिये मैं भी याचना करता हूँ ।

श्रीभगवान्‌ने कहा—राजन् ! तुमने जो कुछ माँगा है, वह सब उसी रूपमें प्राप्त होगा । मेरी सेवामें लगे रहनेवाले कल्याणमय पुरुषोंके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है ?

तदनन्तर ब्रह्मा आदि सब देवताओंको विदा करके भगवान् कमलनयन विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये । अर्जुन ! यह वेङ्कटाचलका प्रभाव तुम्हें बताया गया है । इस पावन कथाको श्रवण करके सब मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाते हैं । ब्रह्माण्डमें भगवान् वेङ्कटेश्वरके समान दूसरा कोई देवता न हुआ है न होगा और वेङ्कटाचलके समान कोई तीर्थस्थान न हुआ है न होगा । स्वामितीर्थके समान सरोवर अन्यत्र कहीं नहीं है । जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर भगवान् वेङ्कटेश्वरका स्मरण करते हैं, मोक्ष उनके हाथमें है । जो श्रेष्ठ मानव वेङ्कटाचलका माहात्म्य सुनते हैं, उन्हें इहलोक और परलोकमें भोग और मोक्ष प्राप्त होते हैं ।

आकाशगङ्गातीर्थमें अञ्जनाकी तपस्या और उसे वायुदेवद्वारा वरदानकी प्राप्ति
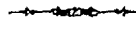
सूतजी कहते हैं—पूर्वकालमें पुत्ररहित अञ्जना दुखी होकर तपस्यामें संलग्न हुई । उसे देखकर मुनियोंमें श्रेष्ठ विष्णुभक्त मतङ्गजीने कहा—'अञ्जना देवि ! उठो, तुम किस लिये तपस्यामें लगी हो ?' अञ्जनाने कहा—'मुनिश्रेष्ठ ! केसरी नामक श्रेष्ठ वानरने मेरे पितासे मेरे लिये याचना की । तब पिताजीने मुझे उनकी सेवामें समर्पित कर दिया । पतिदेवके साथ सुखपूर्वक विहार करते हुए मुझे बहुत समय व्यतीत हो गया, परंतु अबतक मुझे कोई पुत्र नहीं प्राप्त हुआ । मैंने किष्किन्धा महापुरीमें अनेक प्रकारके व्रत भी किये तथापि पुत्र न पाकर मुझे दुःख हुआ । अतः अब मैं तपस्यामें तत्पर हुई हूँ । विप्रवर ! किस प्रकार मुझे त्रिभुवनमें प्रसिद्ध पुत्र प्राप्त होगा, यह बताइये । मैं आपके आगे मस्तक झुकाकर यही माँगती हूँ ।' तब मुनिवर मतङ्गने अञ्जनासे कहा—'देवि ! सुनो । यहाँसे दक्षिण दिशामें दस योजनकी दूरीपर घनाचल नामसे प्रसिद्ध पर्वत है, जो भगवान् नृसिंहका निवासस्थान है । उसके ऊपर परम मनोहर ब्रह्मतीर्थ है । उसके पूर्वभागमें दस योजन दूर सुवर्णमुखरी नामवाली श्रेष्ठ नदी बहती है । उस नदीके उत्तरभागमें वृषभाचल (वेङ्कटाचल) नामक पर्वत है और उस पर्वतके शिखरपर स्वामिपुष्करिणी तीर्थ है । वहाँ जाकर उसके शुभ जलका दर्शन करते ही तुम्हारा मन पवित्र हो जायगा । उसमें विधिपूर्वक स्नान करके वाराहस्वामीको प्रणाम करो और भगवान् वेङ्कटेश्वरको नमस्कार करके स्वामितीर्थके उत्तर जाओ । वहाँ आकाशगङ्गा नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थ

शोभा पाता है। उसमें सङ्कल्पपूर्वक विधिवत् स्नान करके उसके शुभ जलको पी लेना। फिर उस तीर्थके सामने खड़ी हो वायुदेवकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे तपस्या करना। ऐसा करनेसे तुम्हें देवता, राक्षस, ब्राह्मण, मनुष्य तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे भी अवध्य पुत्र प्राप्त होगा।'

मुनिके ऐसा कहनेपर अञ्जना देवीने उन्हें बार-बार प्रणाम किया और पतिको साथ लेकर वह शीघ्र ही वेङ्कटाचल पर्वतपर गयी। वहाँ स्वामिपुष्करिणीमें नहाकर उसने वाराह स्वामीको प्रणाम किया और भगवान् वेङ्कटेश्वरके चरणोंमें भी मस्तक नवाया। तत्पश्चात् वह शीघ्र ही आकाशगङ्गाके तटपर गयी और उसमें नहाकर उसके उत्तम जलको पीकर उसीके तटपर तीर्थकी ओर मुख करके खड़ी हो प्राणस्वरूप वायुदेवताकी प्रसन्नताके लिये संयम एवं व्रतका पालन करती हुई तपस्या करने लगी। तब सूर्यदेवके मेषराशिपर रहते समय चित्रानक्षत्रयुक्त पूर्णिमा तिथिको परम बुद्धिमान् वायुदेव प्रकट हुए और इस प्रकार बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवि! तुम कोई वर माँगो। मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।' उनकी बात सुनकर सती अञ्जनाने कहा—'महाभाग! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये।'

वायुदेवताने कहा—'सुमुखि! मैं ही तुम्हारा पुत्र होऊँगा और तुम्हारे नामको विश्वमें विख्यात कर दूँगा।' अञ्जनाको ऐसा वरदान देकर महाबली वायु वहीं रहने लगे और अञ्जना देवी भी वह वरदान पाकर अपने पतिके साथ बहुत प्रसन्न हुई।

वेङ्कटाचल-माहात्म्य (अथवा भूमिवाराहखण्ड) सम्पूर्ण।
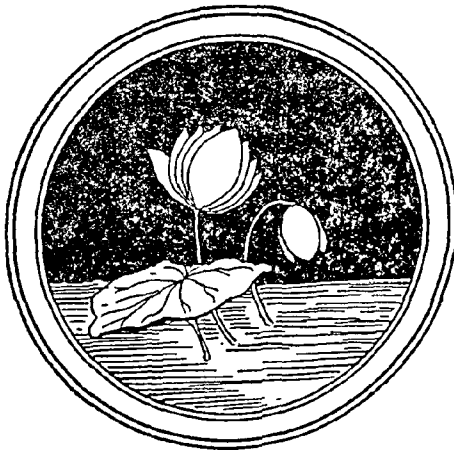
उत्कलखण्ड या पुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्य

भगवान् विष्णुका ब्रह्माजीको पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जानेका आदेश

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

'भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर, देवी सरस्वती तथा महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके तत्पश्चात् भगवान्‌की विजय-कथासे परिपूर्ण इतिहास-पुराणादिका कीर्तन करे।'

मुनि बोले—भगवन्! आप सब शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ तथा सब तीर्थोंके महत्त्वको जाननेवाले हैं। भगवन्! पुरुषोत्तमक्षेत्र परम पावन है, जहाँ भगवान् लक्ष्मीपति विष्णु मानवलीलाके अनुसार काष्ठमय विग्रह धारण करके विराजमान हैं, जो दर्शनमात्रसे ही सबको मोक्ष देनेवाले और सब तीर्थोंका फल प्रदान करनेवाले हैं, उनकी महिमाका हमसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

जैमिनिजीने कहा—मुनियो! यह अत्यन्त गूढ़ रहस्य है, सुनो। यद्यपि ये भगवान् जगन्नाथ सर्वत्र व्यापक और सबको उत्पन्न करनेवाले हैं तथापि यह परम उत्तम पुरुषोत्तम-क्षेत्र इन महात्मा जगदीश्वरका साक्षात् स्वरूप है। वहाँ वे स्वयं ही शरीर धारण करके निवास करते हैं। इसीलिये उस क्षेत्रको भगवान्‌ने अपने नामसे प्रसिद्ध किया। वह क्षेत्र दस योजनके विस्तारमें है। उसका प्रादुर्भाव तीर्थराज समुद्रके जलसे हुआ है तथा वह सब ओर बालुकाराशिसे व्याप्त है। उसके मध्यभागमें महान् नीलगिरि उस तीर्थकी शोभा बढ़ाता है। पूर्वकालमें वराहरूपधारी भगवान्‌ने इस पृथ्वीको समुद्रके जलसे निकालकर जब सब ओरसे बराबर करके स्थापित किया और पर्वतोंद्वारा सुस्थिर कर दिया, तब ब्रह्माजीने पहलेकी भाँति समस्त चराचर जगत्‌की सृष्टि करके तीर्थों, सरिताओं, नदियों और क्षेत्रोंको यथास्थान स्थापित किया। तत्पश्चात् सृष्टिके भारसे पीड़ित होकर वे सोचने लगे। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीन प्रकारके तापोंसे पीड़ित होनेवाले संसारके जीव इनसे किस प्रकार मुक्त होंगे। इस प्रकार विचार करते हुए ब्रह्माजीके मनमें यह भाव आया कि मैं मुक्तिके एकमात्र कारण परमेश्वर श्रीविष्णुका स्तवन करूँ।

तब ब्रह्माजी बोले—शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले जगदाधार! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेवाला मैं ब्रह्मा आपके नाभिकमलसे उत्पन्न हुआ हूँ। अतः जगन्मय! अपने यथार्थ स्वरूपको आप ही जानते हैं। जिनकी मायासे महत्तत्त्व आदि सम्पूर्ण जगत् रचा गया है और जिनके निःश्वाससे प्रकट हुआ शब्द-ब्रह्म (वेद) ऋक्, साम और यजु—इन तीन भेदोंमें अभिव्यक्त हुआ है, जिसका सहारा लेकर मैंने सम्पूर्ण भुवनोंकी सृष्टि की है, उन्हीं आप परमात्मासे भिन्न स्थूल-सूक्ष्म, ह्रस्व-दीर्घ आदि कोई भी वस्तु नहीं है। भगवन्! तीनों गुणोंके विभाग-पूर्वक भिन्न-भिन्न कार्योंके रूपमें आप ही यह चराचर जगत् हैं; ठीक उसी तरह जैसे सुवर्ण ही कङ्कण, कुण्डल आदिके रूपमें विभासित होता है। प्रभो! आप ही सृष्टिकर्ता और सृज्य पदार्थ हैं तथा आप ही पोषक और पोष्य जगत् हैं। परमेश्वर! आप ही आधार, आधेय और उन दोनोंको धारण करनेवाले हैं। मनुष्य आपकी ही प्रेरणासे कर्म करता है और आप ही द्वारा की हुई व्यवस्थासे वह कर्मानुसार गति प्राप्त करता है। परमेश्वर! आप ही इस जगत्‌की गति, भर्ता और साक्षी हैं। चराचरगुरो! आप अखिल जीवस्वरूप हैं। दयामय जगन्नाथ! मैं सदा आपकी शरणमें हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये।

ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर मेघके समान श्याम, शङ्ख, चक्र आदि चिह्नोंसे उपलक्षित भगवान् विष्णु गरुड़पर आरूढ़ हो वहाँ प्रकट हुए। उनका मुखकमल पूर्णतः प्रकाशमान था। उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा—'ब्रह्मन्! तुम जिस कार्यके लिये मेरी स्तुति करते हो, वह सम्भव नहीं जान पड़ता। तथापि यदि इसके लिये तुम्हारा उद्योग है, तो जिस क्रमसे यह सिद्ध होता है, वह तुम्हें बतला रहा हूँ। ब्रह्मन्! मैं तुम हो और तुम मैं हूँ। सम्पूर्ण जगत् मुझसे व्याप्त (विष्णुमय) है। जहाँ तुम्हारी रुचि है, वहाँ मेरी है। अतः तुम्हारी मनोवाञ्छाकी सिद्धिका उपाय बतलाता हूँ—समुद्रके उत्तर तटपर महानदीके दक्षिण भागमें जो प्रदेश है, वह इस भूतलपर सब तीर्थोंका फल देनेवाला है। वहाँ जो उत्तम बुद्धिवाले मनुष्य निवास करते हैं, वे अन्य जन्मोंमें किये हुए पुण्यका फल भोगते हैं। ब्रह्मन्! समुद्रके किनारे जो नीलपर्वत सुशोभित हो रहा है, वह पग-पगपर

अत्यन्त श्रेष्ठ और परम पावन है। वह स्थान इस पृथ्वीपर गुप्त है। वहाँ सब प्रकारके सङ्गोंसे दूर रहनेवाला मैं देह धारण करके निवास करता हूँ और क्षर तथा अक्षर दोनोंसे ऊपर उठकर पुरुषोत्तमस्वरूपमें विद्यमान हूँ। मेरा वह पुरुषोत्तमक्षेत्र सृष्टि और प्रलयसे आक्रान्त नहीं होता। ब्रह्मन्! चक्र आदि चिह्नोंसे युक्त मेरा जैसा स्वरूप यहाँ देखते हो, वैसा ही वहाँ जाकर भी देखोगे। नीलाचलके भीतरकी भूमिमें कल्पांतक रहनेवाले अक्षयवटकी जड़के समीप पश्चिम दिशामें जो रौहिण नामसे विख्यात कुण्ड है, उसके किनारे निवास करते हुए मुझ पुरुषोत्तमको जो चर्म-चक्षुओंसे देखते हैं, वे उसके जलसे क्षीणपाप होकर मेरे सायुज्यको प्राप्त कर लेते हैं। महाभाग! वहाँ जाओ। उस तीर्थमें मेरा दर्शन करके ध्यान करते समय तुम्हारे समक्ष पुरुषोत्तमक्षेत्रकी श्रेष्ठ महिमा स्वतः प्रकाशमें आ जायगी। वह क्षेत्र श्रुतियों, स्मृतियों, इतिहासों और पुराणोंमें गुप्त है। मेरी मायासे वह किसीको ज्ञात नहीं होता। मेरी ही कृपासे अब वह प्रकाशमें आयगा और सबको प्रत्यक्ष उपलब्ध होगा। व्रत, तीर्थ, यज्ञ और दानका जो पुण्य बताया गया है, वह सब यहाँ एक दिनके निवाससे ही प्राप्त हो जाता है और एक निःश्वासभर निवास करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है।' ब्राह्मणो! इस प्रकार ब्रह्माजीको आदेश देकर भगवान् पुरुषोत्तम सबके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये।

यमराज तथा मार्कण्डेयजीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमा

जैमिनिजी कहते हैं—मनुष्य जिनका नाम लेकर सब पापोंसे मुक्त हो जाता है, उन्हींके दर्शन करनेपर क्या मोक्ष दुर्लभ होगा? मनसे भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए यदि मनुष्य प्राणत्याग करता है, तो वह भी मुक्त हो जाता है। फिर जिसने साक्षात् भगवान्‌का दर्शन कर लिया, वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है तो क्या आश्चर्य है?* पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी महिमा अद्भुत है। वह क्षेत्र अज्ञानियोंको भी मुक्ति देनेवाला है। फिर जो सदैव शान्त, वैराग्य और ज्ञानसे संयुक्त हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये तो कहना ही क्या है?

ऋषियोंने पूछा—मुने! नीलाचलपर भगवान् विष्णु-का दर्शन करके ब्रह्माजीने क्या किया?

जैमिनिजी बोले—पुरुषोत्तमक्षेत्रका अत्यन्त अद्भुत माहात्म्य देखकर ब्रह्मा जबतक भगवान् विष्णुका ध्यान करते रहे, तबतक पितरोंके स्वामी यमराज अपने अधिकारके सङ्कुचित होनेसे व्याकुल होकर दीनमुखसे नीलाचलपर्वत-पर आये और वहाँ भगवान् लक्ष्मीपतिका दर्शन तथा उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपने अधिकारकी दृढ़ताके लिये भगवान् जगन्नाथकी स्तुति करने लगे।

यमराज बोले—सृष्टि, पालन और संहारके एकमात्र कारण देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। सूतमें मणियोंकी भाँति आपमें यह सब जगत् गुँथा हुआ है। आपने ही इस विश्वको धारण किया है, आपने ही इसकी सृष्टि की है तथा आपहीने इसका पालन-पोषण भी किया है। चन्द्रमा और सूर्य आदिका रूप धारण करके आप सदा समस्त संसारको प्रकाशित करते हैं। आप इस विश्वके स्वामी, जगत्‌की उत्पत्तिके कारण, संसारके आवासस्थान, जगद्गुरु, लोकसाक्षी तथा आदि-अन्तसे रहित हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूँ। प्रभो! आप उत्तम करुणारूपी जलसे भरे हुए समुद्र हैं, आपको नमस्कार है। आपका वैभव पर, अपर एवं परात्परसे भी अतीत है। आप ही इस विश्वके उत्पादक हैं। संसारके सन्तापरूपी हिमको सुखा डालनेवाले सूर्य! आपको नमस्कार है। दीनबन्धो! आपको नमस्कार है। आपने अपनी मायासे समस्त वैभवोंकी रचना की है, तीनों गुण आपकी रज्जु (रस्सी) हैं, आपको मेरा नमस्कार है। कमल-केसरकी भाँति निर्मल पीत वस्त्र धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके कटाक्षपात मात्रसे ही संसारकी सृष्टि, पालन और संहार होते हैं तथा यह ऊँच-नीच जगत् बार-बार जन्म लेता है। नीलाचलकी गुफामें निवास करनेवाले आप कृपानिधान प्रभुको मैं प्रणाम करता हूँ। आप शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले तथा सबको शुभ प्रदान करनेवाले हैं। शरणागत प्राणियोंके समस्त पापोंका नाश करनेवाले मुरारिको मैं नमस्कार करता हूँ। आपका मनोहर एवं विशाल वक्ष श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभमणिसे उद्भासित है, आपको नमस्कार है। आपके युगल चरणारविन्दों-का आश्रय लेनेसे ऐश्वर्यभागिनी लक्ष्मीकी सब लोग शरण लेते हैं और वे सबको पृथक्-पृथक् ऐश्वर्य देनेमें समर्थ होती हैं।

---

* मनसा ध्यायन् विष्णुं त्यजन् प्राणान् विमुच्यते ।
साक्षात्कृतो भगवतः किं चित्रं मुक्तिमेति यः ॥
(स्क० वै० उ० २ । ९-१०)

ब्रह्मा और यमराजके द्वारा भगवान् विष्णुका स्तवन [पृष्ठ २५२ तथा ३७०
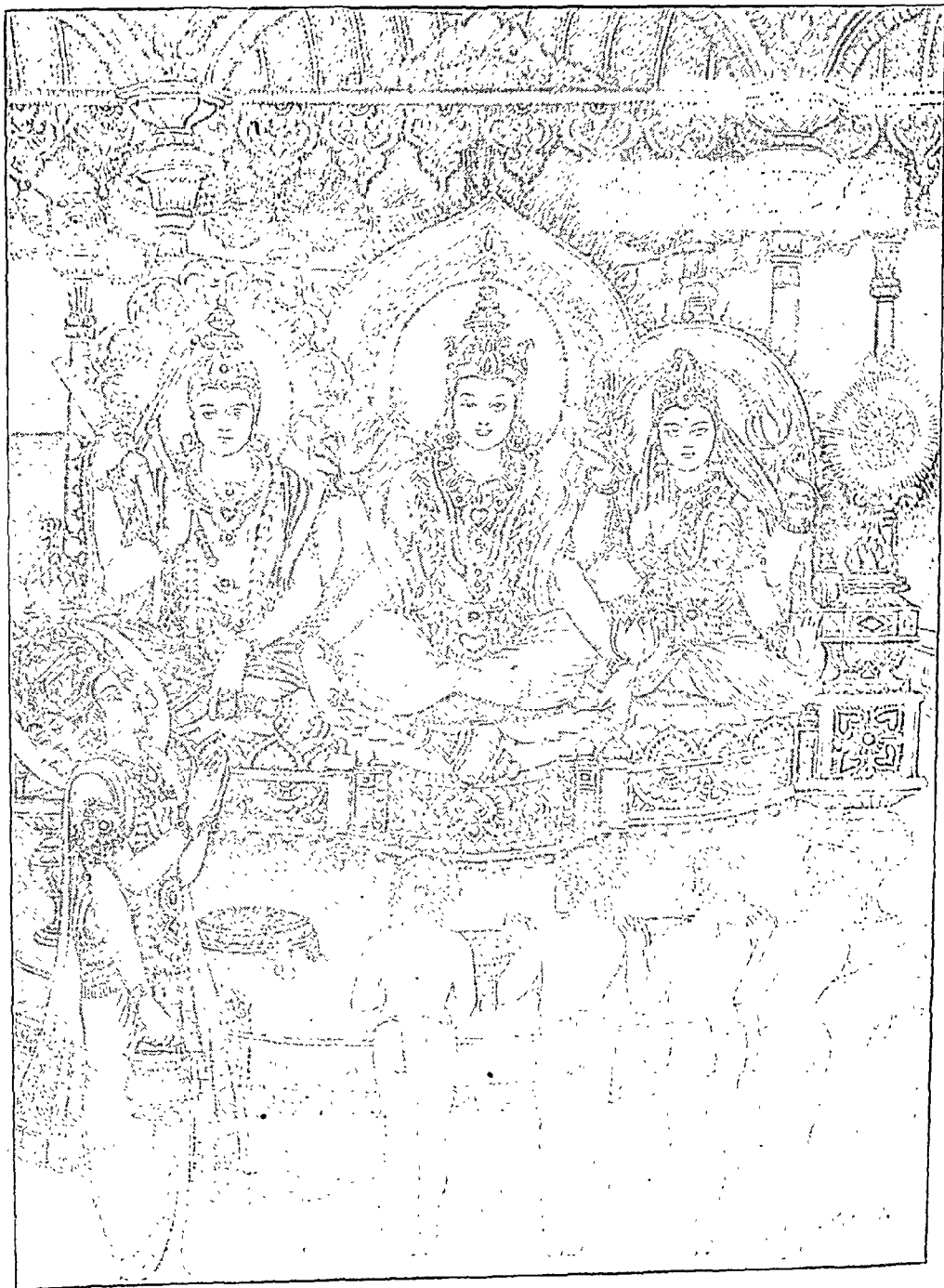
राजा इन्द्रद्युम्नको ध्यानमें भगवान्‌के दर्शन

[पृष्ठ २७६

वे लक्ष्मी आपकी परा और अपरा प्रकृति हैं। वे समस्त शुभ लक्षणोंसे लक्षित होती हैं तथा आप लक्ष्मीपतिके वक्षःस्थलपर नित्य निवास करती हैं । भगवन् ! आपकी प्रिया उन लक्ष्मीको मैं प्रणाम करता हूँ।

उस समय धर्मराजके इस प्रकार स्तुति करनेपर परम सन्तोषको प्राप्त हुए भगवान् लक्ष्मीपतिने अपने वामपार्श्वमें बैठी हुई लक्ष्मीजीकी ओर कटाक्षपूर्वक देखकर उनसे कुछ कहनेके लिये सङ्केत किया। उनकी प्रेरणा पाकर संसारदुःखका विनाश करनेवाली लक्ष्मीने सब लोगोंके कल्याणके लिये यमराजसे कहा—'सूर्यनन्दन ! तुम जिस उद्देश्यसे यहाँ हम दोनोंकी स्तुति करते हो, उसकी सिद्धि इस क्षेत्रमें तो दुर्लभ है; क्योंकि हमारे लिये इस पुरुषोत्तमक्षेत्रका त्याग करना असम्भव है। इस क्षेत्रमें कभी कर्मोंके फल नहीं प्राप्त होते। यहाँ बसनेवाले मनुष्यों और पशु-पक्षियोंके पाप भी जलकर भस्म हो जाते हैं। इस क्षेत्रमें नीलेन्द्रमणिके समान मनोहर श्यामविग्रहधारी साक्षात् भगवान् नारायणका दर्शन करके मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है। अतः इसको छोड़कर अन्यत्र कर्मभूमिमें ही तुम्हारा अधिकार है । जो तुम्हारे भी प्रपितामह हैं, वे ब्रह्माजी इस क्षेत्रका माहात्म्य जानकर भगवान् गदाधरकी स्तुति करते हैं। इसलिये जो प्राणी यहाँ निवास करते हैं, वे तुम्हारे वशमें जाने योग्य नहीं हैं । वैवस्वत ! यहाँ जीवन्मुक्त एवं मुमुक्षु पुरुष निवास करते हैं।'

लक्ष्मीजीके इस प्रकार समझानेपर लज्जासे विनीत हो यमराजने कहा—सुरेश्वरि! आपने जो यह कहा है कि यह क्षेत्र भगवान् विष्णुके सान्निध्यसे मोक्ष देनेवाला है, सो ठीक है। ईश्वरकी इच्छा निरङ्कुश (प्रतिबन्धरहित)होती है । जो विष्णु अन्यत्र किसीको बन्धन देते हैं, वही यहाँ मोक्ष प्रदान करते हैं। मातः ! मेरे तथा स्वर्ग-नरकके भी वे ही स्रष्टा हैं। अतः यदि उनकी इच्छासे यहाँ मरे हुए लोगोंको मोक्ष प्राप्त होता है, तो इस क्षेत्रका प्रमाण और यहाँ निवास करनेका फल आदि सब बातें मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइये ।

लक्ष्मीदेवीने कहा—रविनन्दन ! जब समस्त चराचर जगत् नष्ट होकर प्रलयकालके समुद्रमें डूब चुका था, उस समय सात कल्पोंतक जीवित रहनेवाले मार्कण्डेय मुनि कहीं भी ठहरनेके लिये स्थान न पाकर बहुत चिन्तित हुए । उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिलती थी। जलके समुद्रमें इधर-उधर बहते हुए वे पुरुषोत्तमक्षेत्रमें आये। यहाँ उन्होंने अक्षयवटको देखा और एक बालकका वचन अपने कानोंसे सुना—'मार्कण्डेय ! शोक न करो, मेरे पास आकर अपने अनुपम दुःखको छोड़ दो।' यह विचित्र वचन, जिसके सुनायी देनेकी कोई आशा नहीं थी, सुनकर मार्कण्डेय मुनिको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे—'इस महाभयानक एकार्णवके जलमें यह क्षेत्र नौकाकी भाँति दिखायी देता है और इसमें यह महान् बरगदका वृक्ष खम्भके समान खड़ा है । इस प्रलयकालीन एकार्णवमें जब समस्त स्थावर-जङ्गमका नाश हो गया है, तब भूतलका यह प्रदेश बहुत सुस्थिर कैसे प्रतीत होता है तथा 'मार्कण्डेय ! आओ' यह स्नेह एवं आग्रहयुक्त वचन कहाँसे सुन पड़ता है।'

यही सब सोचते और जलमें तैरते हुए मार्कण्डेयजीने शङ्ख, चक्र, गदा हाथमें लिये भगवान् विष्णुको तथा उनके हृदय-कमलके आसनपर बैठी हुई मुझ लक्ष्मीको भी देखा। तब उनका चित्त प्रसन्न हो गया और उन्होंने हम दोनोंको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तदनन्तर भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये वे इस प्रकार स्तुति करने लगे—'दयासागर ! आज आपके चरणारविन्दोंकी सेवाका प्रसङ्ग पाकर मैं रुद्र, इन्द्र और ब्रह्माजीके समान वैभवसम्पन्न हो गया हूँ। आजतक सब ओर सन्ताप उठाता रहा। प्रभो ! अब अपनी शरणमें आये हुए मुझ दीनकी रक्षा कीजिये। आपके युगल चरणारविन्द अचिन्त्य शक्तिसे सम्पन्न और कल्याणकी प्राप्तिके प्रधान कारण हैं। इसीलिये ब्रह्मा आदि देवता सदा उनकी परिचर्यामें लगे रहते हैं। मैं तो भक्ति-भावसे हीन और दीन हूँ। दयासिन्धो ! मेरी रक्षा कीजिये । यह समस्त ब्रह्माण्ड जिनके अङ्गसे उत्पन्न हुआ है और ऐसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड जिनमें स्थित प्रतीत होते हैं तथा जिनके लीला-विलाससे ही सबकी सृष्टि, पालन और संहार-कार्य होते हैं; वे ही आप विष्णु हैं। भगवन् ! मुझ अत्यन्त दीनकी रक्षा कीजिये। जैसे एक ही सुवर्ण कड़े और कुण्डल आदिके भेदसे अनेक-सा प्रतीत होता है, अथवा जिस प्रकार आकाशमें उदित एक ही सूर्य आधारकी विषमतासे विषम प्रतीत होनेवाली अनेक जलराशियोंमें प्रतिबिम्बित होकर अनेक रूपोंमें प्रतीत होता है, उसी प्रकार आप एकमात्र निर्गुण परमात्मा ही भिन्न-भिन्न शरीरोंमें प्रवेश करके अनेकवत् प्रतीत होते हैं। हे अपार शक्तिशाली परमेश्वर ! आप सब प्रकारकी समस्त इच्छाओंसे रहित तथा ग्रहण और संकल्पसे शून्य हैं तथापि प्रत्येक युगमें दीनोंके ऊपर दया करनेके योग्य शरीर धारण करते रहते हैं। जगदीश्वर ! पूर्वकालमें अनात्म पदार्थोंमें चित्त आसक्त

होनेके कारण जो मैंने आपके चरणारविन्दोंका सेवन नहीं किया, इसीलिये भगवद्विमुख कर्मसे मुझे भयङ्कर परिणाम भोगना पड़ा है। दयासागर! मुझ दीनकी रक्षा कीजिये। महात्मन्! सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि, पालन और संहारकी लीलासे सुशोभित होनेवाला जो आपका त्रिगुणमय (ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक) स्वरूप है, वही महत्तत्त्व आदिका भी कारण है। आप प्रकृतिसे परे तथा सबके आदिकारण हैं, आपको नमस्कार है। सर्वव्यापी जगन्नाथ! मेरी रक्षा कीजिये। मैं संसार-समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। गोविन्द! अपनी कृपाकटाक्ष-पूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखकर इस भव-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये।'

इस प्रकार स्तुति करते हुए ब्रह्मर्षि मार्कण्डेयको कृपा-दृष्टिसे देखकर भगवान् नारायण इस प्रकार बोले—'विप्रवर! मेरे तत्त्वको न जाननेके कारण ही तुम अत्यन्त दीन हो रहे हो। तुमने अत्यन्त दुष्कर तपका अनुष्ठान किया है, किंतु उससे केवल दीर्घजीवी हुए हो। महामुने! इस कल्पवटके ऊपर पत्तेके दोनेमें सोये हुए उस बालस्वरूपको देखो। वह सबका कालरूप है। उसके फैले हुए मुखमें प्रवेश करके वहाँ सुख-पूर्वक रह सकते हो।' भगवान्के ऐसा कहनेपर मार्कण्डेयजी-का मुख आश्चर्यसे चकित हो गया। उन्होंने वृक्षपर चढ़कर भगवान्के बालरूपको देखा और उसमें प्रवेश किया। भीतर जानेपर उन्होंने चौदह भुवन देखे। ब्रह्मा आदि देवता, दिक्पाल, सिद्ध, गन्धर्व, राक्षस, ऋषि, मुनि, देवर्षि, समुद्रोंसे चिह्नित भूतल, अनेक तीर्थ, नदी, पर्वत तथा वनोंसे उपलक्षित श्रेष्ठ नगर देखा। सातों पाताल और सहस्रों नाग-कन्याएँ देखीं। हजारों फणोंसे सुशोभित सम्पूर्ण जगत्का भार धारण करनेवाले शेषनागका दर्शन किया तथा ब्रह्माण्डके मध्यमें ब्रह्माजीने जो कुछ भी सृष्टि की है, वह सब अवलोकन किया। इधर-उधर घूमनेपर भी कहीं उस बालकके उदरका अन्त नहीं मिला, तब पुनः कण्ठमार्गसे बाहर निकलकर उन्होंने मेरे साथ पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुका दर्शन किया।

श्रीभगवान् बोले—मुने! यह विचित्र क्षेत्र मेरा सनातन धाम है, ऐसा समझो। यहाँ न सृष्टि है, न प्रलय है और न संसारका बन्धन ही है। सदा एक रूपसे रहनेवाले मुझ मोक्षदायक पुरुषोत्तमको यहाँ विद्यमान जानकर इस क्षेत्रमें प्रवेश करनेवाला पुरुष घनानन्दस्वरूप हो पुनः गर्भमें नहीं आता।

महामुनि मार्कण्डेयने कहा—प्रभो! मैं यहाँ निवास करूँगा। पुरुषोत्तम! मुझपर कृपा कीजिये।

श्रीभगवानने कहा—ब्रह्मर्षे! इस मोक्षसाधक क्षेत्रमें मैं प्रलयकी समाप्तिपर्यन्त रहूँगा। प्रलयके अन्तमें तुम्हारे लिये यहाँ सनातन तीर्थका निर्माण करूँगा, जिसके तटपर तपस्या करके मेरे द्वितीय शरीर शिवकी आराधना करते हुए तुम मेरी कृपासे मृत्युको निश्चितरूपसे जीत लोगे।

इस प्रकार पहलेसे वरदान पाये हुए मार्कण्डेय महामुनि वटके वायव्य कोणमें भगवान्के चक्रसे एक कुण्ड खोदा उस पवित्र कुण्डमें रहकर भारी तपस्यासे भगवान् महेश्वरक आराधना करके उन्होंने मृत्युको अनायास ही जीत लिया उन्हीं मार्कण्डेयजीके नामसे यह कुण्ड प्रसिद्ध है, जिस स्नान करके मार्कण्डेयेश्वर शिवका दर्शन करनेसे अश्वमे यज्ञका फल मिलता है। यह पुरुषोत्तमक्षेत्र पाँच कोसतक तो समुद्रके भीतर स्थित है और दो कोसतक उसके तटक भूमिपर विद्यमान है। यह अत्यन्त निर्मल, सुनहरी बालुकाओं से व्याप्त तथा नीलगिरिसे सुशोभित है। वे जो विश्वनाथ भगवान् शिव हैं, साक्षात् नारायणस्वरूप ही हैं। वे भगवान् जगन्नाथकी उपासना करनेके लिये समुद्रके तटपर निवास करते हैं। यमराजके दण्डका भय नष्ट करनेके कारण उनका नाम यमेश्वर है। उनका दर्शन और पूजन करनेसे कोटि शिव लिङ्गोंके दर्शन और पूजनका फल प्राप्त होता है।

पुरुषोत्तमक्षेत्रके विभिन्न तीर्थों और देवताओंका परिचय, तीर्थ और भगवान्की महिमा तथा पापपरायण पुण्डरीक और अम्बरीषका उस क्षेत्रमें आना

श्रीलक्ष्मीजी कहती हैं—इस क्षेत्रका आकार शङ्खके समान है। उसके मस्तकपर पश्चिमकी सीमामें सब कामनाओं-को पूर्ण करनेवाले भगवान् शङ्कर विराजते हैं। शङ्खके आगे अर्थात् पूर्व सीमापर भगवान् नीलकण्ठ हैं। इन दोनोंके मध्य-का प्रदेश एक कोसका है। भगवान् नारायणका यह परम पावन क्षेत्र अत्यन्त दुर्लभ है। यहाँ मृत्यु होनेसे प्राणियोंकी मुक्ति हो जाती है तथा यहाँका समुद्र स्नानमात्रसे मोक्ष प्रदान करनेवाला है। शङ्खाकार तीर्थके दूसरे आवर्तमें कपाल-

मोचन नामक लिङ्ग स्थित है। जो मनुष्य कपालमोचनका दर्शन, पूजन और उन्हें प्रणाम करता है, वह ब्रह्महत्या आदि पापोंको त्याग देता है। धर्मराज! शङ्खके तृतीय आवर्तके स्थानमें मेरी आद्याशक्ति विमला देवीको स्थित जानो। वे भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। जो भक्तिपूर्वक इनका दर्शन, पूजन और इन्हें प्रणाम करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और अन्तमें मोक्षको भी पाता है। शङ्खके नाभिस्थानमें कुण्ड, वट और भगवान् पुरुषोत्तम—इन तीनोंकी स्थिति है। कपालमोचनसे लेकर अर्द्धाशिनीतक शङ्खका मध्य भाग जानना चाहिये। जो अर्द्धाशिनीका दर्शन करके उन्हें प्रणाम करता है, वह अक्षय भोगोंका उपभोग करता है। तीनों लोकोंमें जो स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले तीर्थ हैं, उन सबमें यह पुरुषोत्तमक्षेत्र तीर्थराज कहा गया है। मुक्तिदायक जितने क्षेत्र हैं, उन सबमें यह सायुज्य प्रदान करनेवाला माना गया है। यहाँ निवास करनेवाले प्राणी जन्म, मृत्यु और जराका शोक नहीं करते। रौहिण नामक कुण्ड भगवान्‌के करुणारूप जलसे भरा हुआ है। वह स्पर्श करनेमात्रसे भवबन्धनसे मुक्ति देता है। प्रलयकालमें जो जल बढ़ता है, वह पीछे इसी कुण्डमें विलीन हो जाता है। धर्मराज! यहाँके निवासी मोक्षके अधिकारी हैं। उनपर तुम्हारा शासन नहीं चल सकता। यह क्षेत्र पृथ्वीपर रहनेवाले सब प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करता है। कामाख्य और क्षेत्रपालके मध्यमें विमलाकी स्थिति है। भगवान् पुरुषोत्तमके दक्षिण भागमें साक्षात् ब्रह्मस्वरूप नृसिंहजी विराजमान हैं। ये प्रभासे उज्ज्वल हैं और हिरण्यकशिपुका वक्षःस्थल विदीर्ण करके यहाँ स्थित हुए हैं। इनके दर्शनसे सब पापोंका नाश हो जाता है। इनके आगे प्राणोंका त्याग करनेवाला मनुष्य ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होता है। अविमुक्तक्षेत्र (काशी) में मरनेवाले प्राणीके कानोंमें भगवान् महेश्वर बोधके उपायभूत ब्रह्मज्ञानका उपदेश करते हैं। बुद्धिसे उसका अभ्यास करके जीव क्रमशः मोक्षको प्राप्त होता है। उपदेशक भगवान् शिवकी महिमासे वह ज्ञान विस्मृत नहीं होता, क्रमशः अभ्यासमें आकर मोक्षकी प्राप्ति करा देता है। परंतु जो लोग इस पुरुषोत्तमक्षेत्रमें प्राणत्याग करते हैं, उनकी तत्काल मुक्ति हो जाती है। यहाँ समुद्र स्नान करनेसे, भगवान् पुरुषोत्तम अपने दर्शनसे, कल्पवृक्ष अपनी छायामें जानेसे तथा यह सम्पूर्ण क्षेत्र अपने भीतर कहीं भी मृत्यु होनेसे मोक्ष प्रदान करता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिसमें विश्वास करता है, वह उसीसे यहाँ मुक्त हो जाता है। ऐसा तीर्थ दूसरा नहीं है। इस क्षेत्रमें अन्तर्वेदीकी रक्षाके लिये आठ शक्तियाँ बतायी गयी हैं—वटवृक्षकी जड़में मङ्गला, पश्चिममें विमला, शङ्खके पृष्ठभागमें सर्वमङ्गला, उत्तर दिशामें अर्द्धाशिनी तथा लम्बा, दक्षिणमें कालरात्रि, पूर्वमें मरीचिका तथा कालरात्रिके पीछे चण्डरूपा शक्ति स्थित है। इस प्रकार इन उग्र रूपवाली आठ शक्तियोंसे यह क्षेत्र सब ओरसे सुरक्षित है। इन आठों शक्तियोंके दर्शन तथा कीर्तनसे सब पापोंका नाश होता है। रुद्राणीके आठ भेद देखकर भगवान् शङ्कर भी अपनेको आठ स्वरूपोंमें व्यक्त करके परमेश्वर श्रीहरिकी उपासना करते हैं। कपालमोचन, क्षेत्रपाल, यमेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, ईशान, बिल्वेश्वर, नीलकण्ठ और वटवृक्षकी जड़में वटेश्वर—ये आठ भगवान् शिवके लिङ्ग हैं, जिनका दर्शन, स्पर्श और पूजन करके मनुष्य मुक्त हो जाता है। इस क्षेत्रमें जिनकी मृत्यु होती है, उनके स्वामी यमराज नहीं हैं। तथापि भक्तको आत्मसमर्पण करनेवाले शरणागत-दुःखभञ्जन भगवान् जगन्नाथको यमराजने अपनी भक्तिसे सन्तुष्ट कर लिया है। इसलिये मेरे और सुदर्शनचक्रके साथ भगवान् विष्णु स्वर्णबालुकासे आवृत होकर न त्यागने योग्य इस उत्तम तीर्थमें अदृश्य भावसे रहेंगे।

यमराजसे ऐसा कहकर लक्ष्मीजीने आगे खड़े हुए ब्रह्माजीसे कहा—सत्ययुगमें राजा इन्द्रद्युम्न होनेवाले हैं, जो भगवान् विष्णुके परम भक्त तथा शास्त्रोंके विद्वान् होंगे। प्रजानाथ! उस राजापर अनुग्रह करनेके लिये भगवान् एक काष्ठसे उत्पन्न चार प्रतिमाओंके रूपमें अभिव्यक्त होंगे। काष्ठकी उन प्रतिमाओंका निर्माण स्वयं विश्वकर्मा करेंगे और तुम इन्द्रद्युम्नपर प्रसन्न होकर उन प्रतिमाओंकी स्थापना कराओगे। लक्ष्मीजीकी यह बात सुनकर ब्रह्मा और यमराज दोनों परम प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको चले गये। पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमाका बार-बार स्मरण करके विस्मय और हर्षसे उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आता था।

मुनियो! इस समय उस क्षेत्रमें इन्द्रद्युम्नकी भक्तिसे सन्तुष्ट हो नीलमेघके समान श्यामसुन्दर शङ्खचक्रधारी भगवान् काष्ठमय शरीर धारण करके सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेके लिये नीलाचलकी गुफामें विराजमान हैं। करुणासागर भगवान् काष्ठनिर्मित बलभद्र, सुभद्रा तथा सुदर्शनचक्रकी प्रतिमाओंके साथ स्वयं भी दारुमय विग्रह धारण करके शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करते हैं। उनका दर्शन करके

मनुष्य पापोंके सुदृढ़ बन्धनसे भी मुक्त हो जाता है। भगवान् विष्णुका यह परम उत्तम स्थान अत्यन्त गुप्त है तथा वह अलौकिक प्रतिमा लौकिकरूपसे प्रकाशित है। राजा इन्द्रद्युम्नको दारुमय शरीर धारण करनेवाले भगवान्‌ने वर दिया है। भगवान् दीनों और अनाथोंके एकमात्र शरण हैं। भवसागरसे पार उतारनेके लिये नौका हैं। उनके चरण समस्त चराचर जगत्‌के लिये वन्दनीय हैं। वे ही सबके परम आश्रय हैं। भगवान् नारायण सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिके स्थान तथा सृष्टि और संहारके कारण हैं। वे समस्त पापोंको छुड़ानेवाले तथा सब आपत्तियोंका नाश करनेवाले हैं। विभूतियोंका प्रसार करनेवाले तथा सब योगियोंको वरण करनेवाले हैं। सम्पूर्ण जीवोंका भरण तथा अखिल विश्वको धारण करनेवाले भी वे ही हैं। वे सब भाषाओंको बोलते और समस्त दुष्कर्मोंका विनाश करते हैं। मुनीश्वरो! तुम अनन्यभावसे उन्हीं भगवान् श्रीहरिकी शरण लो। वे चेष्टा-रहित काष्ठशरीर धारण करके भी दिव्य लीलाविलास करने-वाले हैं। थोड़ी-सी भक्ति करनेपर भी मनुष्योंके सौ-सौ अपराध क्षमा करते हैं।

कुरुक्षेत्रमें उत्पन्न हुए एक ब्राह्मण और एक क्षत्रिय दोनों मित्र थे। दोनोंने प्रेमपूर्वक परदेशकी यात्रा की। उनका आहार-विहार एक ही था। दोनों सदाचारके मार्गसे भ्रष्ट हो चुके थे और मोहवश शास्त्रनिषिद्ध आचरण करते थे। स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा (श्राद्ध-तर्पण) और स्वाहा (यज्ञ) इनसे वे कोसों दूर थे। महापातकोंसे कलङ्कित होकर वे मदिरा पीते और वेश्याके सहवासमें रहकर आनन्द-का अनुभव करते थे। परलोककी चिन्ता तो उन्हें कभी स्वप्नमें भी नहीं होती थी। इसी प्रकार मनमाना बर्ताव करते हुए उनकी आधी आयु बीत गयी। एक दिन घूमते हुए वे दोनों यज्ञशालामें जा पहुँचे और दूरसे ही स्तोत्र तथा शास्त्रचर्चा सुनने लगे। वहाँ होनेवाली वैदिक क्रियाओंको देखकर उस समय उन अधार्मिकोंके मनमें भी धर्मके प्रति श्रद्धा हो गयी। उनका नाम पुण्डरीक और अम्बरीष था। वे अपनी उच्च जातिका स्मरण करके अपने दुराचारोंकी निन्दा करते हुए एक-दूसरेसे कहने लगे—'हम दोनों पापके भयङ्कर समुद्रको कैसे पार करेंगे? हमने जो-जो पाप सञ्चित किये हैं, उनको शास्त्र भी नहीं जानता। उन घोर पापोंका प्रायश्चित्त अत्यन्त दुर्लभ है तथापि इस यज्ञसभामें जो ये ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण पधारे हुए हैं, उन्हें प्रणामसे प्रसन्न करके हम अपने उद्धारका उपाय पूछें।'

ऐसा निश्चय करके उन दोनोंने ब्राह्मणोंको प्रणाम किया और अपने-अपने पापोंको ठीक-ठीक बताकर उनसे प्रायश्चित्त पूछा। उन दोनोंकी बातें सुनकर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने आँखें बंद कर लीं। किसीने कुछ भी नहीं कहा। उनके बीच एक श्रेष्ठ वैष्णव थे, जो उस यज्ञसभामें प्रधान थे। भगवान्‌की भक्तिके माहात्म्यसे उन्होंने समस्त पापोंका नाश कर दिया था। वक्ताओंमें श्रेष्ठ उन वैष्णव ब्राह्मणने हँसकर वहाँ बैठे हुए उन दोनोंसे कहा—'हे ब्राह्मण! और हे क्षत्रियकुमार! यदि तुम दोनों अत्यन्त भयङ्कर पापराशिसे छुटकारा पाना चाहते हो तो शीघ्र पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चले जाओ। वह सब क्षेत्रोंसे उत्तम है, जहाँ राजर्षि इन्द्रद्युम्नकी भक्तिसे उनपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तम काष्ठमय शरीर धारण करके रहते हैं। शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले उन भगवान् जगन्नाथकी आराधना करके तुम इच्छानुसार पापक्षय और मोक्ष भी पा सकोगे, यह ध्रुव सत्य है। उनका दर्शन करनेसे सब पाप एक साथ ही नष्ट हो जाते हैं। इसलिये परम पवित्र उत्कलदेशमें दक्षिण समुद्रके तटपर नीलाचलके शिखरपर निवास करनेवाले सर्वव्यापी भगवान् जगदीशकी शरणमें जाओ। वे करुणानिधान भगवान् तुम दोनोंका मनोरथ अवश्य सिद्ध करेंगे।'

वैष्णव महात्माके इस प्रकार आदेश देनेपर वे ब्राह्मण और क्षत्रिय अत्यन्त हर्षयुक्त हो उसी मार्गसे पुरुषोत्तम-क्षेत्रको चल दिये।

पुण्डरीक और अम्बरीषद्वारा भगवान्‌की स्तुति तथा पुरुषोत्तमक्षेत्रमें रहकर भजन करनेसे उनकी मुक्तिका वर्णन

जैमिनिजी कहते हैं—उन दोनोंके मनमें निर्वेद (खेद एवं वैराग्य) का उदय हुआ था। वे कुसङ्ग छोड़कर मन-ही-मन भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए तथा शुद्ध आहार और व्रतका पालन करते हुए कुछ समयमें भगवान् पुरुषोत्तमके नीलाचल-निवासपर पहुँचे। वहाँ तीर्थराजके जलमें विधिपूर्वक स्नान करके वे मन्दिरके दरवाजेपर खड़े हो गये और साष्टाङ्ग प्रणाम करके भगवान्‌का निरीक्षण करने लगे। परंतु उस समय उन्हें भगवद्विग्रहका दर्शन नहीं

हुआ । तब चिन्तासे व्याकुल होकर उन्होंने भगवान्‌का दर्शन जबतक न हो जाय तबतकके लिये अनशन आरम्भ किया और भगवान्‌के पापनाशक नामोंका कीर्तन करने लगे। तीसरी रात्रिमें उन्हें एक ज्योतिका दर्शन हुआ । तत्पश्चात् वे पुनः तीन दिनोंतक धैर्यपूर्वक उपवास करते रहे । इस प्रकार जब सातवीं रात्रि आयी, तब उन्हें भगवत्स्वरूपका दर्शन हुआ । उनके भीतर दिव्य ज्ञान प्रकट हुआ और वे पापसे छूटकर साक्षात् भगवान् जगन्नाथ-का दर्शन करने लगे। भगवान्‌के हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा विराजमान थे । वे दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित थे। उन्होंने अपने चरणकमलोंको रत्नमयी पादुकाके ऊपर रक्खा था । खिले हुए कमलके समान विशाल नेत्र शोभा पा रहे थे । मुखपर प्रसन्नता छायी हुई थी। बायीं ओर श्रीलक्ष्मीजी विराजमान थीं। आगे खड़े होकर भगवत्स्वरूप-का ध्यान करनेवाले प्रह्लाद आदि वैष्णवोंको, जो कि भगवान्‌का चित्त अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे, भगवान् श्रीहरि मानो अपने श्रीविग्रहमें धारण कर रहे थे। वक्षःस्थल-पर शोभा पानेवाली कौस्तुभमणिमें प्रतिबिम्बित हुए देवता आदिके द्वारा मानो भगवान् अपनी विश्वमय मूर्तिका प्रकाश कर रहे थे। इस प्रकार भगवान्‌की झाँकी करके वे ब्राह्मण और क्षत्रिय क्षणभरमें सब विद्याओंके पारङ्गत विद्वान् हो गये । उन्होंने तीन बार देवेश्वर विष्णुकी परिक्रमा करके दोनों हाथ जोड़कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर स्तुति प्रारम्भ की।

पुण्डरीक बोले—जगदाधार ! आपको नमस्कार है। आप सृष्टि, पालन और संहारके कारण हैं। परमात्मन्! नारायण ! आप सबको शरण देनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। एकमात्र आप ही परमार्थ हैं। उत्पत्ति और नाश आदि विकार आपसे सर्वथा दूर हैं। ध्यानरूपी नेत्रोंसे देखनेवाले महात्मा आपको नित्यानन्दस्वरूप मानते हैं। आप चैतन्यमात्र सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी, सबके अधिष्ठान तथा परसे भी परे हैं। आपका स्वरूप अत्यन्त निर्मल है। मूढ हृदयवाले मनुष्य आपको कैसे जान सकते हैं ? नाथ! मैं अत्यन्त दीन होकर आपकी शरणमें आया हूँ, मुझपर दया कीजिये। मैं अज्ञानी, पापाचारी तथा संसार-समुद्रमें डूबा हुआ हूँ, मेरा उद्धार कीजिये । ब्रह्माण्डमें आपके समान दूसरा कौन बन्धु है, जो अपने स्वार्थकी अपेक्षा न रखकर दीनों और अनाथोंपर दया करता हो ? जो मूढ़ योग और क्षेमकी इच्छा रखकर अनायास ही मोक्ष प्रदान करनेवाले आपकी उपासना करते हैं, वे आपकी मायासे मोहित हैं। जगन्नाथ ! अकस्मात् लिया हुआ आपका 'नारायण' नाम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि अकेले ही कर देता है । नाथ! संसार-सागरमें डूबे हुए लोगोंके लिये एकमात्र आप ही शरण हैं। आप अनन्य भक्तिसे चिन्तन करनेपर ज्ञानरूपी नौकापर आरूढ़ हो करुणाकी पतवार हाथमें लेकर अचेतन प्राणीको संसार-समुद्रके दूसरे पार पहुँचानेमें अकेले ही समर्थ हैं । भगवन् ! मुझे अपने चरणकमलोंके प्रति दृढ़ भक्ति प्रदान कीजिये, जिससे मैं इस अत्यन्त दुस्तर भयङ्कर संसार-समुद्रके पार हो जाऊँ। धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गका सेवन केवल मन्दबुद्धि पुरुष ही करते हैं। ये तीनों बहुत क्षुद्र हैं और अहितकर एवं अल्प सुख प्रदान करनेवाले हैं। अतः इनसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है । मुझे तो आप अब अपने युगल-चरणारविन्दोंके चिन्तनसे बढ़े हुए घनीभूत आनन्दके समुद्रमें अवगाहन करनेकी आज्ञा दीजिये।

इस प्रकार स्तुति करके ब्राह्मण पुण्डरीक अश्रुगद्गद वाणीसे 'त्राहि कृष्ण' की पुकार लगाते हुए भगवान् जगन्नाथके चरणकमलोंमें गिर पड़े । तत्पश्चात् क्षत्रिय-कुमार अम्बरीषने उठकर हाथ जोड़े हुए इस प्रकार स्तवन किया।

अम्बरीष बोला—देव ! सर्वात्मन् ! मुझपर प्रसन्न होइये । आपके मस्तक और भुजाएँ असंख्य हैं। नासिका, नेत्र और हाथ-पैरोंकी भी कोई संख्या नहीं है। आपको नमस्कार है । विश्वमूर्ते ! आप छत्तीस तत्त्वोंसे परे हैं। प्रपञ्चसे रहित होते हुए भी इसके विस्तारमें सहायक हैं। जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज—इन चार प्रकारके प्राणियोंसे भरे हुए जगत्‌के आप ही आश्रय हैं। आपको नमस्कार है। जिनके चरणोंसे प्रकट हुई गङ्गा तीनों लोकोंको पवित्र करती है, जिनका नाम ब्रह्महत्या आदि पापोंकी निश्चित शुद्धि करनेवाला है तथा कीर्तन करनेपर सबको कल्याण प्रदान करता है, उन कल्याणस्वरूप आप परमात्माको नमस्कार है । देव ! केवल आपके नामकीर्तनसे भी सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं । बुद्धिशाली विद्वान् पुरुष कौतूहलपूर्वक आपकी खोज करते हैं। नाथ! आपके चरणकमलोंके जल (चरणोदक) का आश्रय लेनेपर वह सन्तापको हर लेता है। मैं तीनों तापोंसे पीड़ित हूँ । अपने इन युगल

चरणोंमें मेरी भक्ति दृढ़ कर दीजिये। मेरा दूसरा कोई स्वामी नहीं है तथा मेरे माँगने योग्य दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है। जगन्नाथ! मैं आपके चरणोंमें सहस्रों बार प्रणाम करके यह याचना करता हूँ कि जबतक मैं प्राण धारण करूँ तबतक आपके इन युगल चरण-कमलोंमें ही मेरी दृढ़ भक्ति बनी रहे। आपके ये चरण ही समस्त पुरुषार्थोंके बीज हैं। इन चरणोंकी भक्ति करके ब्रह्माजीने यह सृष्टि की है, रुद्रदेव सबका संहार करते हैं तथा लक्ष्मीजी सबको ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। दीनोंपर दया करनेवाले प्रभो! मैं अनन्यचित्त होकर आपके उन्हीं चरणोंकी भक्ति माँगता हूँ। अनादि अविद्याके इस दुस्तर एवं सुदृढ पङ्कमें डूबकर मैं कोई आश्रय न मिलनेके कारण नष्ट हो रहा हूँ। जगन्नाथ! इससे मेरा उद्धार करनेके लिये आपकी महामहिमामयी भक्तिके सिवा दूसरा कोई आश्रय नहीं है। आपकी भक्तिको छोड़कर कोई भी साधन प्राणियोंका उद्धार करनेमें समर्थ नहीं है। स्वामिन्! आपके अतिरिक्त दूसरा कोई मुझे शरण देनेवाला नहीं है। प्रभो! मुझ शरणागतपर कृपा कीजिये।

इस प्रकार स्तुति करते हुए अम्बरीष भगवान् जगन्नाथके चरण-कमलोंके समीप 'प्रभो! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये' ऐसा बार-बार कहकर दण्डकी भाँति गिर पड़ा। तदनन्तर पुण्डरीक और अम्बरीषने जब पुनः नेत्र खोले तब चर्मचक्षुसे दिव्य सिंहासनपर विराजमान नीलमेघके समान श्यामसुन्दर भगवान् पुरुषोत्तमको देखा। उनके नेत्र खिले हुए कमलके समान विशाल थे। अधर लाल और नासिका मनोहर थी। उनके कानोंमें दिव्य कुण्डल झिलमिला रहे थे। भगवान्ने अपने चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रक्खे थे। वे वनमालासे विभूषित थे। उनका वक्षःस्थल ऊँचा दिखायी देता था। कण्ठमें परम सुन्दर हार शोभा पा रहे थे। मस्तकपर बहुमूल्य मुकुट प्रकाशमान था। वक्षमें श्रीवत्सका चिह्न और कौस्तुभमणि शोभा दे रहे थे। भुजाओंमें उन्होंने दिव्य अङ्गद (भुजबंद) धारण कर रक्खे थे। उनकी विशाल भुजाएँ घुटनोंतक लंबी थीं। वे दीनों और दुखियोंकी रक्षाके लिये सदैव उद्यत प्रतीत होते थे। उनकी कटिमें दिव्य पीताम्बर शोभा पाता था। उसके ऊपर सोनेकी करधनी बँधी हुई थी, जिसकी बिचली गाँठमें मणि पिरोयी गयी थी। भगवान् दिव्य हार और दिव्य चन्दनसे विभूषित थे। वे सुवर्णमय कमलके आसनपर विराजमान थे। उनके सब अङ्गोंमें अनुपम शोभाका निवा[स] था। वे शरणागतोंका सन्ताप हरनेके लिये महान् सुधा[-] सागरके समान प्रतीत होते थे। भलीभाँति खिले हुए कल्पवृक्ष के समान वे सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाले थे। उनके दक्षिण भागमें हलमय शस्त्र धारण करनेवाले भगवान् बलभद्र बैठे थे। जिन्होंने अपने महान् बलसे समस्त ब्रह्माण्डका भार धारण किया है, वे बलभद्रजी नागराज शेषके रूपमें शोभा पाते थे। मस्तकपर सात फन उन्हें सुशोभित करते थे। वे कैलास शिखरके समान ऊँचे और श्वेतवर्ण थे। उनके कानोंमें कुण्डल प्रकाशित हो रहा था। गलेमें विचित्र वनमाला थी। उन्होंने दिव्य नीलवस्त्र पहन रक्खा था। उनकी पीठ नीची और छाती ऊँची थी। वे सम्पूर्ण शरीरको कुण्डलित करके बैठे थे। उनके चार हाथोंमें भी शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभायमान थे। अनेक प्रकारके अलङ्कार धारण करनेसे वे और भी सुन्दर प्रतीत होते थे। भगवान् बलभद्र प्रणाम करनेवालोंके समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। इन दोनोंके मध्यभागमें कुङ्कुमके समान लाल वर्णवाली कल्याणमयी सुभद्रा-देवी विराजमान थीं, जो सम्पूर्ण लावण्यका निवासस्थान जान पड़ती थीं। समस्त देवता उनके चरणोंमें मस्तक झुकाते थे। उन्होंने अपने हाथोंमें कमल धारण कर रक्खा था। वे दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थीं। सुभद्रा भी शरणागतोंके लिये कल्पवृक्ष हैं। समस्त पापोंका नाश करने-वाली हैं तथा संसार-समुद्रमें डूबे हुए मनुष्योंको पार उतारने-वाली और देवताओंको भी तारनेवाली हैं। भगवान् पुरुषोत्तमके वामभागमें उत्तम चक्र प्रकाशित होता था। श्रेष्ठ काष्ठसे निर्मित तथा स्वर्णके संयोगसे परम उज्ज्वल चार स्वरूपोंमें स्थित भगवान् पुरुषोत्तमका प्रातःकालका दर्शन करके उन ब्राह्मण और क्षत्रियकुमारोंने अपने परिश्रमको सार्थक माना और पूर्वोक्त स्वप्नलीलाका स्मरण करके वे बड़े विस्मयको प्राप्त हुए और सोचने लगे 'यह काष्ठकी प्रतिमा नहीं, यहाँ तो साक्षात् ब्रह्म प्रकाशमान हैं।' उस समय उन्होंने यज्ञसभामें आये हुए ब्राह्मणोंकी बातपर पूर्ण विश्वास किया और आपसमें कहा—'कहाँ हम दोनों महापातकी क्रमशः यमयातना भोगनेके अधिकारी और कहाँ देवताओंसे सेवित भगवान् विष्णुका दर्शन! हम तो निरे मूर्ख थे। इस समय अठारह विद्याओंमें प्रवीण हो गये हैं। इसलिये यह भ्रम नहीं, वास्तविक ज्ञान है। यथार्थवादी ब्राह्मणोंने जो कहा था कि तीर्थराज समुद्रके तटपर साक्षात् ब्रह्म विराजमान हैं और पटब्रह्मकी

जड़में ये सदा प्रकाशमान होते हैं। उनके दर्शनसे सब प्राणी मुक्त हो जाते हैं, उन सब बातोंका आज प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। ये वही भगवान् जगन्नाथ हैं, जो चार स्वरूपोंमें स्थित हुए हैं। पृथ्वीपर जब ये अवतार लेते हैं, तब चार रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। अब हम दोनों जबतक प्राण धारण करेंगे, इन्हींके समीप रहेंगे। क्षुद्र कामनाओंसे मुँह मोड़कर अन्यत्र जानेका नाम भी न लेंगे।'

ऐसा निश्चय करके वे दोनों भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर हो गये। सदा नारायणका नाम जपते हुए उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया। यह पापनाशक चरित्र अत्यन्त गोपनीय है। इस तीर्थके प्रसङ्गसे मैंने इसका वर्णन किया है। जो मनुष्य पुण्डरीक और अम्बरीषके इस चरित्रको सुनते और कहते हैं, वे परम आनन्दके साथ भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त होते हैं।

उत्कल देशके भव्य रूपका परिचय, राजा इन्द्रद्युम्नका एक तीर्थयात्रीसे पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमा सुनकर पुरोहितके भाईको वहाँ भेजना और उनका नीलाचलके समीप शबरसे वार्तालाप

मुनियोंने पूछा—द्विजश्रेष्ठ ! जहाँ काष्ठप्रतिमाके रूपमें साक्षात् भगवान् नारायण विराजमान हैं, वह पुरुषोत्तम-क्षेत्र किस देशमें है ?

जैमिनिजीने उत्तर दिया—उत्कल (उड़ीसा) नामसे प्रसिद्ध एक परम पावन देश है, जहाँ अनेक तीर्थ और बहुतसे पवित्र देवमन्दिर हैं। वह प्रदेश दक्षिण समुद्रके तटपर बसा हुआ है। उसमें रहनेवाले पुरुष सदाचारके आदर्श हैं। वहाँके ब्राह्मण उत्तम आचार और स्वाध्यायसे सम्पन्न हो सदा यज्ञकर्ममें संलग्न रहते हैं। सृष्टिके आदिमें यज्ञ और वेदाध्ययनकी प्रवृत्ति वहींसे होती है, अतः वहाँके निवासी ब्राह्मण वेद-शास्त्रोंके प्रवर्तक हैं। उस देशको अठारह विद्याओंकी निधि बताया गया है। वहाँ भगवान् नारायणकी आज्ञासे घर-घरमें लक्ष्मीका वास है। उस देशके निवासी मनुष्य लज्जाशील, विनयी, चिन्ता तथा रोगसे रहित, पिता-माताके सेवक, सत्यवादी तथा विष्णुभक्त होते हैं। वहाँ कोई भी ऐसा पुरुष नहीं होगा, जो विष्णुका भक्त एवं आस्तिक न हो। उस देशके सब लोग परोपकारी होते हैं। लोभी, दुष्ट और शठ मनुष्योंका वहाँ सर्वथा अभाव है। उस प्रदेशके लोग दीर्घजीवी होते हैं। स्त्रियाँ पतिव्रता, सुशीला, धर्मपरायणा, लज्जा और सदाचारसे विभूषित, रूपवती, सब प्रकारके आभूषणोंसे अलङ्कृत तथा कुल, शील और वयके अनुसार आचार-विचारका पालन करनेवाली होती हैं।

वहाँके क्षत्रिय भी अपने कर्तव्यका पालन करते हैं। वे सब-के-सब प्रजाकी रक्षाके व्रतमें दीक्षित होते हैं। दान देनेमें उदार और सब शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण होते हैं। सदा अधिक दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं। उनकी यज्ञवेदियाँ सदा प्रज्वलित रहती हैं तथा सुवर्णभूषित यूप शोभा पाते रहते हैं। उनके घरपर पधारे हुए अतिथियोंको उनकी कामनासे अधिक वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट किया जाता है। उत्कल-के वैश्य भी कृषि, वाणिज्य और गोरक्षाकी वृत्तिमें स्थित होते हैं। वे अपनी भक्ति और धनसे देवता, गुरु और ब्राह्मणोंको तृप्त करते हैं। वहाँ एकके घरपर पधारे हुए याचकको दूसरेके घरपर जानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। उस देशके शूद्र संगीत, काव्य, कला और शिल्पमें कुशल तथा प्रिय वचन बोलनेवाले होते हैं। धार्मिक एवं स्नान-दानादि कर्मोंमें तत्पर होते हैं। वे अपने मन, वाणी, क्रिया तथा धनके द्वारा द्विजोंकी सेवामें लगे रहते हैं। वहाँ वर्ण-सङ्करजातिके लोग भी अपने-अपने धर्ममें स्थित होते हैं। ऋतुएँ विपरीतभाव नहीं धारण करतीं। मेघ असमयमें वर्षा नहीं करते। खेतीको हानि नहीं पहुँचती। हवाका भी कष्ट नहीं होता तथा प्रजाको भूखकी पीड़ा नहीं सहन करनी पड़ती। अकाल और महामारीका प्रकोप नहीं होता। राज्यका नाश नहीं होता। पृथिवीपर होनेवाली कोई भी वस्तु वहाँ अलभ्य नहीं है। यही वह सब देशोंमें श्रेष्ठ उत्कल है। दक्षिण समुद्रमें मिलनेवाली ऋषिकुल्या नदीतक पहुँचकर स्वर्णरेखा और महानदीके बीचमें जो देश प्रतिष्ठित है, वही उत्कल है। इस पवित्र प्रान्तमें बहुतसे उत्तम क्षेत्र हैं।

सत्ययुगमें इन्द्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ राजा हो गये हैं। उनका जन्म सूर्यवंशमें हुआ था। वे ब्रह्माजीसे पाँचवीं पीढ़ी नीचे थे। राजा इन्द्रद्युम्न सत्यवादी, सदाचारी, शुद्ध तथा सात्त्विक पुरुषोंमें अग्रगण्य थे। प्रजाको अपनी सन्तान समझकर सदा न्यायपूर्वक उसका पालन करते थे। वे

चरणोंमें मेरी भक्ति दृढ़ कर दीजिये । मेरा दूसरा कोई स्वामी नहीं है तथा मेरे माँगने योग्य दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है । जगन्नाथ ! मैं आपके चरणोंमें सहस्रों बार प्रणाम करके यह याचना करता हूँ कि जबतक मैं प्राण धारण करूँ तबतक आपके इन युगल चरण-कमलोंमें ही मेरी दृढ़ भक्ति बनी रहे । आपके ये चरण ही समस्त पुरुषार्थोंके बीज हैं । इन चरणोंकी भक्ति करके ब्रह्माजीने यह सृष्टि की है, रुद्रदेव सबका संहार करते हैं तथा लक्ष्मीजी सबको ऐश्वर्य प्रदान करती हैं । दीनोंपर दया करनेवाले प्रभो ! मैं अनन्यचित्त होकर आपके उन्हीं चरणोंकी भक्ति माँगता हूँ । अनादि अविद्याके इस दुस्तर एवं सुदृढ पङ्कमें डूबकर मैं कोई आश्रय न मिलनेके कारण नष्ट हो रहा हूँ । जगन्नाथ ! इससे मेरा उद्धार करनेके लिये आपकी महामहिमामयी भक्तिके सिवा दूसरा कोई आश्रय [न]हीं है । आपकी भक्तिको छोड़कर कोई भी साधन [प्र]ाणियोंका उद्धार करनेमें समर्थ नहीं है । स्वामिन् ! आपके [अ]तिरिक्त दूसरा कोई मुझे शरण देनेवाला नहीं है । प्रभो ! [इ]स शरणागतपर कृपा कीजिये ।

इस प्रकार स्तुति करते हुए अम्बरीष भगवान् जगन्नाथके [च]रण-कमलोंके समीप 'प्रभो ! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये' ऐसा [बा]र-बार कहकर दण्डकी भाँति गिर पड़ा। तदनन्तर पुण्डरीक [औ]र अम्बरीषने जब पुनः नेत्र खोले तब चर्मचक्षुसे [दि]व्य सिंहासनपर विराजमान नीलमेघके समान श्यामसुन्दर [भ]गवान् पुरुषोत्तमको देखा । उनके नेत्र खिले हुए कमलके [स]मान विशाल थे । अधर लाल और नासिका मनोहर थी । उनके कानोंमें दिव्य कुण्डल झिलमिला रहे थे । भगवान्ने [अ]पने चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर [र]क्खे थे । वे वनमालासे विभूषित थे । उनका वक्षःस्थल ऊँचा दिखायी देता था । कण्ठमें परम सुन्दर हार शोभा [प]ा रहे थे । मस्तकपर बहुमूल्य मुकुट प्रकाशमान [थ]ा । वक्षमें श्रीवत्सका चिह्न और कौस्तुभमणि शोभा दे [र]हे थे । भुजाओंमें उन्होंने दिव्य अङ्गद (भुजबंद) धारण कर [र]क्खे थे । उनकी विशाल भुजाएँ घुटनोंतक लंबी थीं । वे दीनों और दुखियोंकी रक्षाके लिये सदैव उद्यत प्रतीत होते थे । उनकी कटिमें दिव्य पीताम्बर शोभा पाता था । उसके ऊपर सोनेकी करधनी बँधी हुई थी, जिसकी बिचली गाँठमें मणि पिरोयी गयी थी । भगवान् दिव्य हार और दिव्य चन्दनसे विभूषित थे । वे सुवर्णमय कमलके आसनपर विराजमान थे । उनके सब अङ्गोंमें अनुपम शोभाका[…] था । वे शरणागतोंका सन्ताप हरनेके लिये महान[…] सागरके समान प्रतीत होते थे । भलीभाँति खिले हुए व[…] के समान वे सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाले थे[…] दक्षिण भागमें हलमय शस्त्र धारण करनेवाले भगवान् बल[…] थे । जिन्होंने अपने महान् बलसे समस्त ब्रह्माण्डका भा[…] किया है, वे बलभद्रजी नागराज शेषके रूपमें शो[…] थे । मस्तकपर सात फन उन्हें सुशोभित करते थे । वे[…] शिखरके समान ऊँचे और श्वेतवर्ण थे । उनके[…] कुण्डल प्रकाशित हो रहा था । गलेमें विचित्र [...] थी । उन्होंने दिव्य नीलवस्त्र पहन रक्खा था । उन[…] नीची और छाती ऊँची थी । वे सम्पूर्ण शरीरको कु[…] करके बैठे थे । उनके चार हाथोंमें भी शङ्ख, चक्र, ग[…] पद्म शोभायमान थे । अनेक प्रकारके अलङ्कार धारण[…] वे और भी सुन्दर प्रतीत होते थे । भगवान् बलभद्र[…] करनेवालोंके समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं । इन[…] मध्यभागमें कुङ्कुमके समान लाल वर्णवाली कल्याणमयी[…] देवी विराजमान थीं, जो सम्पूर्ण लावण्यका निवासस्था[…] पड़ती थीं । समस्त देवता उनके चरणोंमें मस्तक[…] थे । उन्होंने अपने हाथोंमें कमल धारण कर[…] था । वे दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थीं । सुभ[…] शरणागतोंके लिये कल्पवृक्ष हैं । समस्त पापोंका नाश[…] वाली हैं तथा संसार-समुद्रमें डूबे हुए मनुष्योंको पार उ[…] वाली और देवताओंको भी तारनेवाली हैं । भगवान् पुरुषो[…] वामभागमें उत्तम चक्र प्रकाशित होता था । श्रेष्ठ काष्ठसे[…] तथा स्वर्णके संयोगसे परम उज्ज्वल चार स्वरूपोंमें[…] भगवान् पुरुषोत्तमका प्रातःकालका दर्शन करके उन[…] और क्षत्रियकुमारोंने अपने परिश्रमको सार्थक माना[…] पूर्वोक्त स्वप्नलीलाका स्मरण करके वे बड़े विस्मयको[…] हुए और सोचने लगे 'यह काष्ठकी प्रतिमा नहीं, य[…] साक्षात् ब्रह्म प्रकाशमान हैं ।' उस समय उन्होंने यत्न[…] आये हुए ब्राह्मणोंकी बातपर पूर्ण विश्वास किया[…] आपसमें कहा—'कहाँ हम दोनों महापातकी क्रमशः यम[…] भोगनेके अधिकारी और कहाँ देवताओंसे सेवित भ[…] विष्णुका दर्शन ! हम तो निरे मूर्ख थे । इस समय उ[…] विद्याओंमें प्रवीण हो गये हैं । इसलिये यह भ्रम नहीं, यथा[…] ज्ञान है । यथार्थवादी ब्राह्मणोंने जो कहा था कि नी[…] समुद्रके तटपर साक्षात् ब्रह्म विराजमान हैं और यहा[…]

जड़में ये सदा प्रकाशमान होते हैं। उनके दर्शनसे सब प्राणी मुक्त हो जाते हैं, उन सब बातोंका आज प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। ये वही भगवान् जगन्नाथ हैं, जो चार स्वरूपोंमें स्थित हुए हैं। पृथ्वीपर जब ये अवतार लेते हैं, तब चार रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। अब हम दोनों जबतक प्राण धारण करेंगे, इन्हींके समीप रहेंगे। क्षुद्र कामनाओंसे मुँह मोड़कर अन्यत्र जानेका नाम भी न लेंगे।'

ऐसा निश्चय करके वे दोनों भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर हो गये। सदा नारायणका नाम जपते हुए उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया। यह पापनाशक चरित्र अत्यन्त गोपनीय है। इस तीर्थके प्रसङ्गसे मैंने इसका वर्णन किया है। जो मनुष्य पुण्डरीक और अम्बरीषके इस चरित्रको सुनते और कहते हैं, वे परम आनन्दके साथ भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त होते हैं।

उत्कल देशके भव्य रूपका परिचय, राजा इन्द्रद्युम्नका एक तीर्थयात्रीसे पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमा सुनकर पुरोहितके भाईको वहाँ भेजना और उनका नीलाचलके समीप शबरसे वार्तालाप

मुनियोंने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! जहाँ काष्ठप्रतिमाके रूपमें साक्षात् भगवान् नारायण विराजमान हैं, वह पुरुषोत्तम-क्षेत्र किस देशमें है?

जैमिनिजीने उत्तर दिया—उत्कल (उड़ीसा) नामसे प्रसिद्ध एक परम पावन देश है, जहाँ अनेक तीर्थ और बहुतसे पवित्र देवमन्दिर हैं। वह प्रदेश दक्षिण समुद्रके तटपर बसा हुआ है। उसमें रहनेवाले पुरुष सदाचारके आदर्श हैं। वहाँके ब्राह्मण उत्तम आचार और स्वाध्यायसे सम्पन्न हो सदा यज्ञकर्ममें संलग्न रहते हैं। सृष्टिके आदिमें यज्ञ और वेदाध्ययनकी प्रवृत्ति वहींसे होती है, अतः वहाँके निवासी ब्राह्मण वेद-शास्त्रोंके प्रवर्तक हैं। उस देशको अठारह विद्याओंकी निधि बताया गया है। वहाँ भगवान् नारायणकी आज्ञासे घर-घरमें लक्ष्मीका वास है। उस देशके निवासी मनुष्य लज्जाशील, विनयी, चिन्ता तथा रोगसे रहित, पिता-माताके सेवक, सत्यवादी तथा विष्णुभक्त होते हैं। वहाँ कोई भी ऐसा पुरुष नहीं होगा, जो विष्णुका भक्त एवं आस्तिक न हो। उस देशके सब लोग परोपकारी होते हैं। लोभी, दुष्ट और शठ मनुष्योंका वहाँ सर्वथा अभाव है। उस प्रदेशके लोग दीर्घजीवी होते हैं। स्त्रियाँ पतिव्रता, सुशीला, धर्मपरायणा, लज्जा और सदाचारसे विभूषित, रूपवती, सब प्रकारके आभूषणोंसे अलङ्कृत तथा कुल, शील और वयके अनुसार आचार-विचारका पालन करनेवाली होती हैं।

वहाँके क्षत्रिय भी अपने कर्तव्यका पालन करते हैं। वे सब-के-सब प्रजाकी रक्षाके व्रतमें दीक्षित होते हैं। दान देनेमें उदार और सब शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण होते हैं। सदा अधिक दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं। उनकी यज्ञवेदियाँ सदा प्रज्वलित रहती हैं तथा सुवर्णभूषित यूप शोभा पाते रहते हैं। उनके घरपर पधारे हुए अतिथियोंको उनकी कामनासे अधिक वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट किया जाता है। उत्कलके वैश्य भी कृषि, वाणिज्य और गोरक्षाकी वृत्तिमें स्थित होते हैं। वे अपनी भक्ति और धनसे देवता, गुरु और ब्राह्मणोंको तृप्त करते हैं। वहाँ एकके घरपर पधारे हुए याचकको दूसरेके घरपर जानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। उस देशके शूद्र संगीत, काव्य, कला और शिल्पमें कुशल तथा प्रिय वचन बोलनेवाले होते हैं। धार्मिक एवं स्नान-दानादि कर्मोंमें तत्पर होते हैं। वे अपने मन, वाणी, क्रिया तथा धनके द्वारा द्विजोंकी सेवामें लगे रहते हैं। वहाँ वर्ण-सङ्करजातिके लोग भी अपने-अपने धर्ममें स्थित होते हैं। ऋतुएँ विपरीतभाव नहीं धारण करतीं। मेघ असमयमें वर्षा नहीं करते। खेतीको हानि नहीं पहुँचती। हवाका भी कष्ट नहीं होता तथा प्रजाको भूखकी पीड़ा नहीं सहन करनी पड़ती। अकाल और महामारीका प्रकोप नहीं होता। राज्यका नाश नहीं होता। पृथिवीपर होनेवाली कोई भी वस्तु वहाँ अलभ्य नहीं है। यही वह सब देशोंमें श्रेष्ठ उत्कल है। दक्षिण समुद्रमें मिलनेवाली ऋषिकुल्या नदीतक पहुँचकर स्वर्णरेखा और महानदीके बीचमें जो देश प्रतिष्ठित है, वही उत्कल है। इस पवित्र प्रान्तमें बहुतसे उत्तम क्षेत्र हैं।

सत्ययुगमें इन्द्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ राजा हो गये हैं। उनका जन्म सूर्यवंशमें हुआ था। वे ब्रह्माजीसे पाँचवीं पीढ़ी नीचे थे। राजा इन्द्रद्युम्न सत्यवादी, सदाचारी, शुद्ध तथा सात्त्विक पुरुषोंमें अग्रगण्य थे। प्रजाको अपनी सन्तान समझकर सदा न्यायपूर्वक उसका पालन करते थे। वे

आध्यात्मिक ज्ञानमें कुशल, शूर, समरविजयी, सदा उद्यमशील, ब्राह्मणपूजक तथा पितृ-भक्त थे। अठारह विद्याओंमें दूसरे बृहस्पतिके समान प्रवीण थे। ऐश्वर्यमें देवराज इन्द्र तथा कोष-संग्रहमें कुबेरकी समानता करते थे। रूपवान्, सौभाग्यशाली, शीलवान्, दानी, भोगी, प्रिय वक्ता, समस्त यज्ञोंका यजन करनेवाले तथा सत्यप्रतिज्ञ भी थे। उनमें भगवान् विष्णुकी भक्ति थी, सत्यभाषणका गुण था। उन्होंने क्रोध और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली थी। वे श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ तथा सहस्रों अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कर चुके थे। संसारबन्धनसे मुक्त होनेकी इच्छा रखकर सदा धर्माचरणमें ही लगे रहते थे। इस प्रकार वे सर्वगुणसम्पन्न राजा इन्द्रद्युम्न समूची पृथ्वीका पालन करते हुए मालव देशमें विख्यात और समस्त रत्नोंसे सम्पन्न द्वितीय अमरावतीके समान सुशोभित अवन्ति नामवाली नगरीमें निवास करते थे। वहाँ रहते हुए राजाने भगवान् विष्णुमें मन, वाणी और क्रियाद्वारा परम अद्भुत एवं उत्तम भक्ति बढ़ायी।

एक दिन भगवान् लक्ष्मीपतिकी पूजाके समय देवपूजागृहमें बैठे हुए राजाने अपने पुरोहितसे आदरपूर्वक कहा—'आप उस उत्तम क्षेत्रका पता लगाइये जहाँ हम इसी नेत्रसे साक्षात् भगवान् जगन्नाथका दर्शन करें।' वैष्णव राजाके ऐसा कहनेपर पुरोहितजीने तीर्थयात्रियोंके एक झुंडको देखकर उनसे प्रेमपूर्वक कहा—'तीर्थोंमें विचरनेवाले तथा तीर्थोंका ज्ञान रखनेवाले धर्मात्मा पुरुषो! हमारे महाराज जो आज्ञा देते हैं उसे तुमलोगोंने सुना है क्या? तुममेंसे किसीको उत्तम तीर्थका पता है क्या?' उनका अभिप्राय समझकर उन यात्रियोंमेंसे एक व्यक्ति, जो बहुत तीर्थोंमें घूम चुका था और अच्छा वक्ता था, राजाके पास आ हाथ जोड़कर बोला—'राजन्! मैंने बचपनसे ही अनेक तीर्थोंमें भ्रमण किया है। भारतवर्षमें ओड्र नामसे प्रसिद्ध एक देश है। उस देशमें दक्षिण समुद्रके तटपर श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र है, जहाँ नीलाचल नामक एक पर्वत है। वह सब ओरसे वनोंद्वारा घिरा हुआ है। उसके बीचमें कल्पवृक्ष है, जिसके पश्चिम भागमें रौहिण कुण्ड है। वह भगवान्की करुणारूप जलसे भरा हुआ है, जो स्पर्श करनेमात्रसे ही मोक्ष देनेवाला है। उसके पूर्वीय तटपर इन्द्रनीलमणिकी बनी हुई भगवान् वासुदेवकी प्रतिमा है, जो साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाली है। उस कुण्डमें स्नान करके जो भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करता है; वह मुक्त हो जाता है। वहाँ शबरदीपक नामक एक श्रेष्ठ आश्रम है, जो भगवद्विग्रहसे पश्चिम दिशामें स्थित है। उस आश्रमसे एक पगडंडीका रास्ता है, जिससे भगवान् विष्णुके स्थानतक जा सकते हैं। वहाँ शङ्ख-चक्र-गदाधारी साक्षात् भगवान् जगन्नाथ विराजमान हैं। वे करुणाके समुद्र हैं, दर्शनमात्रसे ही सब जीवोंको मुक्ति प्रदान करते हैं। राजन्! देवाधिदेव जगन्नाथजीकी प्रसन्नताके लिये मैंने एक वर्षतक पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास किया। मैं महामूर्ख था परंतु उनकी कृपासे इस समय अठारहों विद्याओंमें प्रवीण हो गया हूँ। मेरी बुद्धि भी निर्मल हो गयी है, जिससे भगवान् विष्णुके सिवा और कुछ मैं नहीं देखता। तुम सदैव दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले विष्णुभक्त हो, इसलिये तुम्हारे पास आया हूँ। मैं तुमसे इस समय धन अथवा भूमि नहीं माँगता। केवल इतना ही कहता हूँ कि मेरी इस बातको झूठ न मानकर वहाँ पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपतिका भजन करो।'

यों कहकर वह जटाधारी यात्री सबके देखते-देखते शीघ्र अन्तर्धान हो गया। इससे राजाको बड़ा विस्मय हुआ। वे व्याकुल होकर पुरोहितसे बोले—'यह अलौकिक वृत्तान्त अलौकिक पुरुषसे ही सुना गया है। अब मेरी बुद्धि जहाँ भगवान् गदाधर विराजमान हैं; वहाँ जानेके लिये उतावली कर रही है। द्विजश्रेष्ठ! मेरे धर्म, अर्थ और काम एक-दूसरेके अनुकूल रहकर सदा आपके अधीन रहे हैं। आपके प्रसादसे मैंने त्रिवर्गका साधन तो कर लिया। यदि आप इस भगवद्दर्शनके कार्यमें भी मेरे साथ चलेंगे तो मैं आपके सहयोगसे चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त कर लूँगा।'

पुरोहित बोले—राजन्! मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि हमलोग सहायकोंसहित पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चलकर बस जायँ। जन्मकी सफलता इससे बढ़कर और क्या हो सकती है कि साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपतिका दर्शन किया जाय। इस समय मेरा छोटा भाई विद्यापति सब देशोंमें घूमनेवाले दूतोंके साथ वहाँ जायगा और जगन्नाथजीका दर्शन करके उस पर्वतपर सैनिकोंके ठहरने योग्य स्थानका पता लगाकर शीघ्र सब समाचार ले आयगा। इससे हमलोगोंका कल्याण होगा।

पुरोहितकी यह बात सुनकर राजा इन्द्रद्युम्नने कहा—ब्रह्मन्! बहुत अच्छा। अब मैं भगवान् विष्णुके समीप उसी क्षेत्रमें चलकर बसूँगा।

ऐसा कहकर राजाने प्रसन्नतापूर्वक अन्तःपुरमें

प्रवेश किया और पुरोहितने उन सब यात्रियोंको यथायोग्य सम्मान देकर अपने-अपने आश्रमको भेजा। फिर अपने भाईको ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर शुभ मुहूर्तमें भेजा। विद्यापति समस्त विश्वसनीय पुरुषोंके साथ पुष्पशोभित रथपर आरूढ़ हो वहाँसे प्रस्थित हुआ। उसने रथमें बैठे-बैठे यह विचार किया कि 'अहो! मेरा जन्म सफल हो गया। मेरी रात्रि मङ्गलमय प्रभातका दर्शन करानेवाली होगी; क्योंकि मैं भगवान्‌के उस मुखारविन्दका दर्शन करूँगा, जो समस्त पापोंको दूर करनेवाला है। श्रवण, मनन आदि साधनोंसे निरन्तर प्रयत्न करनेवाले साधक जिन्हें अपने हृदय-कमलके मध्य विराजमान देखते हैं, उन्हीं भगवान् चक्रपाणिको आज मैं नीलाचलके शिखरपर साक्षात् शरीर धारण किये देखूँगा, जो शरीरबन्धनका नाश करनेवाले हैं। श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणके वचनोंद्वारा जिनके स्वरूपका भलीभाँति निरूपण करना असम्भव है, उन्हीं भगवान् लक्ष्मीनिधिके अदृष्टपूर्व स्वरूपका दर्शन करके आज मैं भवसागरसे पार हो जाऊँगा। जिनके नाम-संकीर्तनमात्रसे उनका स्मरण करनेवाले मनुष्योंके त्रिविध पापोंका संहार हो जाता है, उन्हीं अप्रमेय भगवान् जगन्नाथके नीलगिरिनिवासी स्वरूपका आज मैं प्रत्यक्ष दर्शन करूँगा। जिनके रोम-रोममें असंख्य ब्रह्माण्डोंकी मालाएँ हैं, जिनके सहस्रों मस्तक, चरण और नेत्र हैं, जिनकी निःश्वास-वायुसे सम्पूर्ण वेदोंकी राशि प्रकट हुई है तथा जो सब प्रपञ्चोंके स्वामी हैं, उन पुराणपुरुष भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। अहा! मेरा कैसा भाग्य है कि इन्हीं चर्म-चक्षुओंसे मैं जगत्‌के आदिकारण भगवान् नारायणका दर्शन करूँगा।'

इसी विचारमें पड़े हुए प्रसन्नचित्त ब्राह्मणको रथके वेगसे लाँघे हुए विशाल मार्गका कुछ भी पता न चला। मार्गमें मिले हुए अनेकों वन, पर्वत तथा दुर्गम स्थानोंको देखते हुए वे सूर्यास्तके समय महानदीके तटपर जा पहुँचे। उन्होंने रथसे उतरकर विधिपूर्वक नित्यकर्म किया और सायंसन्ध्या करके भगवान् मधुसूदनका ध्यान किया। तत्पश्चात् रथपर ही बैठे-बैठे रात बितायी। सबेरा होनेपर शीघ्र ही महानदीको पार किया। फिर प्रातःकालिक कृत्य समाप्त करके रथपर आरूढ़ हो गोविन्दका चिन्तन करते हुए ही आगेको प्रस्थान किया। भगवान्‌के निकट जानेवाले मार्गको देखते हुए वे एकाम्रवनमें पहुँचे। उसके बाद कल्पवटसे विभूषित गगनचुम्बी नीलाचलका शिखर देखा, जो दर्शकोंके पापोंका नाश करनेवाला है।

साक्षात् शरीरधारी भगवान् विष्णुके उस अद्भुत निवास-स्थानको खोजते हुए विद्यापति नीलाचलकी उपत्यका (तराई) में जा पहुँचे। अब वे भगवान्‌के दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये; किंतु आगे बढ़नेका मार्ग नहीं मिला। तब भूमिपर कुशा बिछाकर मौनभावसे लेट गये और भगवद्दर्शन-की सिद्धिके लिये भगवान्‌के ही शरणागत हो गये। तब पर्वतसे पश्चिम भगवद्भक्तके विषयमें बातचीत करनेवाले लोगोंकी अलौकिक वाणी सुनायी देने लगी। तब वे प्रसन्न होकर उसी शब्दका अनुसरण करते हुए आगे बढ़े। कुछ ही दूरपर विख्यात शबरदीपक नामक आश्रम मिला। वहाँ उन्होंने वैष्णव भक्तोंका दर्शन किया और उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब विश्वावसु नामक शबर भगवान् विष्णुका पूजन समाप्त करके पूजाके प्रसादसे सुशोभित हो पर्वतके बीचसे वहाँ आया। उसे देखकर ब्राह्मणको बड़ा हर्ष हुआ और वे सोचने लगे—ये श्रेष्ठ वैष्णव हैं, इनसे मुझे भगवान् विष्णुके सम्बन्धमें दुर्लभ समाचार प्राप्त होगा। इसी विचारमें पड़े हुए ब्राह्मणसे शबरने कहा—'ब्रह्मन्!

आप कहाँसे इस वनमें पधारे हैं? यह वनका मार्ग तो बड़ा दुस्तर है, आप भूख-प्याससे बहुत थक गये होंगे? यहाँ सुख-पूर्वक बैठिये और दीर्घकालतक विश्राम कीजिये।' ऐसा कहते हुए विश्वावसुने ब्राह्मणके लिये पाद्य, आसन और अर्घ्य प्रदान किया तथा विनययुक्त वाणीमें पूछा—'विप्रवर!

आप फलाहार करेंगे या तैयार की हुई रसोई ? जैसी आपकी रुचि हो, वैसा ही भोजन मैं प्रस्तुत करूँगा । भगवन् ! आज मेरा अहोभाग्य है, यह जीवन सफल हो गया; क्योंकि आप साक्षात् दूसरे विष्णुकी भाँति मेरे घरपर पधारे हैं ।'

इस प्रकार पूछनेपर श्रेष्ठ ब्राह्मण विद्यापतिने कहा—वैष्णवश्रेष्ठ ! फल अथवा तैयार की हुई रसोईसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। मैं बहुत दूरसे जिस उद्देश्यको लेकर यहाँ आया हूँ, उसे सफल करें । मैं अवन्तीपुरीके निवासी महाराज इन्द्रद्युम्नका पुरोहित हूँ और भगवान् विष्णुके दर्शनकी इच्छासे यहाँ आया हूँ । राजाने मुझे यहाँ निवास करनेवाले नीलमाधव श्रीहरिका दर्शन करनेके लिये भेजा है । दर्शन करके मैं जबतक राजाके पास इसका समाचार न पहुँचा दूँगा, तबतक राजा निराहार रहेंगे । इसलिये आप मुझे भगवान् विष्णुका दर्शन कराइये ।

विद्यापतिका शबरके साथ नीलमाधवका दर्शन करके तीर्थकी परिक्रमा करना और अवन्तीमें जाकर राजा इन्द्रद्युम्नको सब समाचार सुनाना

जैमिनिजी कहते हैं—ब्राह्मणकी बात सुनकर शबरने अविनाशी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए कहा—'विप्रवर ! हमने पहलेसे भी यह समाचार सुन रक्खा है कि इस तीर्थमें राजा इन्द्रद्युम्न निवास करेंगे । चलिये, पर्वतके ऊपरकी भूमिपर चलें ।' ऐसा कहकर शबर ब्राह्मणको उसी मार्गसे गहन वनमें ले गया । ऊपर-ऊपर चढ़कर शिलाखण्डोंके कारण ऊँची-नीची भूमिपर एक-एक मनुष्यके चलने योग्य रास्ता था, वह भी काँटोंसे भरा होनेके कारण अति दुर्गम हो रहा था और वहाँ प्रायः अन्धकार छाया रहता था । शबर वाणीद्वारा बोल-बोलकर ब्राह्मणको रास्तेका परिचय कराता चलता था । इस प्रकार चार घड़ीतक चलकर वे दोनों रौहिण कुण्डके तटपर पहुँचे । उसे देखकर शबरने कहा—'द्विजश्रेष्ठ ! यह रौहिण नामक कुण्ड है, जो समस्त जलोंकी उत्पत्तिका कारणभूत महातीर्थ है । यहाँ स्नान करके मनुष्य वैकुण्ठ धाममें जाता है । इसके पूर्वभागमें यह महान् कल्पवट है, जिसकी छायामें जाकर मनुष्य ब्रह्महत्याका भी नाश कर देता है । इन दोनोंके मध्यभागमें जो कुञ्ज है, उसमें वेदान्तप्रतिपादित साक्षात् भगवान् जगन्नाथजी विराजमान हैं; इनका दर्शन कीजिये । दर्शन करके समस्त पापराशिका विनाश कर डालिये और इसके बाद 'मैं भवसागरमें पड़ा हूँ', इस शोक और चिन्ताको सदाके लिये त्याग दीजिये ।'

तब विद्वान् ब्राह्मण विद्यापतिने प्रसन्नचित्त होकर उस कुण्डमें स्नान किया और दूरसे ही मन, वाणी एवं मस्तकद्वारा भगवान्को प्रणाम करके हर्षगद्गद वचन बोलकर उनकी स्तुति की—'प्रभो ! आप प्रकृति और पुरुषसे सर्वथा अतीत पुरुषोत्तम हैं । सर्वव्यापी एवं परात्पर हैं । इस चराचर जगत्को भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें परिणत करनेवाले आप ही हैं । परमार्थस्वरूप परमेश्वर ! आपको नमस्कार है । जगत्पते ! श्रुति-स्मृति पुराण और इतिहासद्वारा प्रतिपादित समस्त कर्मोंसे एकमात्र आपकी ही आराधना होती है । जिनके चरणकमलोंके संयोगसे सर्वतीर्थमयी गङ्गा सब लोगोंको पवित्र करती हैं, उन परमपावन भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है । जिनके अंशभूत आनन्दको पाकर सम्पूर्ण विश्वके प्राणी आनन्दमय होकर जीवन धारण करते हैं, समस्त पापोंसे रहित उन ब्रह्मस्वरूप विष्णुको नमस्कार है । प्रभो ! आप निर्मलस्वरूप, कल्याणरूप, सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित तथा विश्वसाक्षी हैं, आपको नमस्कार है । आपके असंख्य चरण, नेत्र, मस्तक, मुख और भुजाएँ हैं । आप सबको जीतनेवाले हैं । सभी जीव आपके स्वरूप हैं; आप सर्वरूपी परमात्माको नमस्कार है । भगवन् ! इस असार संसारमें चक्कर लगानेके कारण मैं रोग और शोकोंसे बहुत पीड़ित हो गया हूँ और आपके युगल चरणारविन्दोंकी शरणमें आया हूँ । आप इस सांसारिक दुःखसमुदायसे मेरा उद्धार कीजिये ।'

प्रणवरूपी देवेश्वर भगवान् विष्णुका इस प्रकार स्तवन करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर विद्यापति ब्राह्मण भगवान् विष्णुके आगे प्रणवमन्त्रका जप करने लगे । जपके अन्तमें शबरने कहा—'द्विजश्रेष्ठ ! इस समय आप भगवान्का दर्शन पाकर कृतार्थ हो गये । दिन बीत गया, आप थके-मादे और भूखे-प्यासे हैं, अतः चलिये घर चलें । इस घोर वनमें हिंसक जन्तुओंका निवास है; इसलिये हमारा यहाँ ठहरना उचित नहीं है । जबतक सूर्यकी किरणोंका प्रकाश

है, तबतक ही हमलोग अपने घर पहुँच जायँ।' ऐसा कहकर ब्राह्मणके साथ शबर शीघ्रतापूर्वक आश्रमको लौटा ब्राह्मण भी आनन्दसागर भगवान् जगन्नाथके ध्यानमें डूबे हुए थे, अतः उन्हें भूख-प्यास और थकावटसे प्राप्त होनेवाले दुःखोंका भान नहीं हुआ। भगवच्चिन्तनमें संलग्न होनेसे शरीरमें उनकी आस्था नहीं रह गयी थी। वे शरीरस्थितिसे ऊपर उठ चुके थे, इसलिये कण्टकराशिसे व्याप्त शिलाखण्डोंके ऊँचे-नीचे दुर्गम मार्गमें चलते हुए भी कष्टका अनुभव नहीं करते थे। घर आनेपर शबरने ब्राह्मण अतिथिको नाना प्रकारके पवित्र दिव्य पदार्थ देकर भलीभाँति उनका पूजन किया। तदनन्तर शबरके दिये हुए राजोचित उपचारोंसे पूर्णतः तृप्त होकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने चकित होकर कहा—'साधो! तुमने मेरे सत्कारके लिये जो ये अलौकिक वस्तुएँ समर्पित की हैं, उनका दर्शन राजाओंने भी नहीं किया था। तुम्हारे घरमें ऐसी दिव्य वस्तुओंका संग्रह आश्चर्यकी बात है!'

शबरने कहा—द्विजश्रेष्ठ! इन्द्र आदि देवता प्रतिदिन दिव्य उपचार लेकर जगन्नाथजीकी पूजा करनेके लिये आते हैं, पूजा करके भक्तिपूर्वक स्तुति और नमस्कार करते हैं। फिर गीत, वाद्य और नृत्यके द्वारा भगवान्‌को सन्तुष्ट करके अपने स्थानको लौट जाते। ये सब दिव्य पदार्थ जगन्नाथजीके प्रसाद हैं, जो मैंने आपको अर्पित किये हैं। भगवान्‌के इस प्रसादको खाकर हमलोगोंके रोग और बुढ़ापेका नाश हो गया है। जिसके सेवनसे मनुष्य मोक्षका भागी होता है, उस प्रसादका यदि ऐसा प्रभाव हो तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

भगवत्प्रसादका यह दुर्लभ प्रभाव सुनकर ब्राह्मणके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, आनन्दके आँसुओंसे उनकी आँखें बंद हो गयीं और उन्होंने अपनेको कृतार्थ मानते हुए कहा—'अहो! यह शबरकुलमें उत्पन्न मनुष्य प्रतिदिन अविनाशी परमात्माका दर्शन करता है और उनके प्रसाद-स्वरूप दिव्य भोगका उपभोग करता है। इस पृथ्वीपर चराचर जगत्‌में इसके समान भाग्यवान् दूसरा कोई नहीं है। इसके साथ मैत्री करके मैं भी इस वनमें निवास करूँगा।' इस प्रकार दीर्घकालतक विचार करके भगवान् श्रीविष्णुमें मन लगाये रहनेवाले उस ब्राह्मणने शबरसे कहा—'यदि मुझपर तुम्हारा अनुग्रह हो, तो मैं तुम्हारे साथ मित्रता करूँगा। यह मेरे मनका महान् निश्चय है। बड़े भाग्यसे तुम्हारे साथ समागम हुआ है। अब तुम्हारे प्रसादसे मैं दुस्तर भवसागरको पार कर जाऊँगा। वैष्णवके साथ मित्रता होना दुःखमय संसारसे पार करनेवाला है। इसीको इस असार संसारसागरमें सार वस्तु बताकर साधु पुरुष इसकी सराहना करते हैं। तुम-जैसे मित्रके सहवाससे कमलके समान नेत्रोंवाले, शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका पुनः प्रत्यक्ष दर्शन होगा। सखे! मेरे लौट जानेपर राजा इन्द्रद्युम्न भगवान्‌की आराधना करनेके लिये यहीं आकर निवास करेंगे। उनकी इच्छा है, यहाँ एक विशाल मन्दिर बनवावें, जो भगवान्‌को प्रिय है। जगन्नाथजीकी पूजाके लिये सहस्रों उपचारोंका प्रबन्ध करूँगा—यह उनकी महाप्रतिज्ञा है।'

शबरने कहा—सखे! यह भी पुरातनकालसे वैसी ही बात प्रसिद्ध है, जैसी कि आपने इन्द्रद्युम्नके आगमनके सम्बन्धमें कही है। केवल इतनी ही बात होगी कि राजा यहाँ नीलमाधवका दर्शन नहीं कर सकेंगे। भगवान्‌ने यमराजसे एक प्रतिज्ञा की है, उसके अनुसार वे शीघ्र ही स्वर्णमयी बालुकामें छिपकर अदृश्य हो जायँगे। आपने महान् सौभाग्यके फलसे भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन कर लिया है। इन्द्रद्युम्नके आनेपर निश्चय ही आँखोंसे ओझल हो जायँगे, परन्तु यह बात आपको राजाके आगे नहीं कहनी चाहिये। राजा जब यहाँ आकर भगवान्‌को नहीं देखेंगे और अन्न-जल त्यागकर मरनेको तैयार हो जायँगे, तब स्वप्नमें उन्हें भगवान् गदाधरका दर्शन होगा और उन्हींके आदेशसे वे भगवान्‌की काष्ठमयी चार मूर्तियोंको ब्रह्माजीके द्वारा स्थापित कराकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करेंगे।

इस प्रकार परस्पर पुण्यमयी चर्चा करके दोनों सुन्दर स्थानमें पल्लव बिछी हुई शय्यापर सो गये। सबेरा होनेपर दोनोंने तीर्थराज समुद्रके जलमें विधिपूर्वक स्नान किया और भगवान् माधवको प्रणाम करके राजाके रहने योग्य उत्तम स्थानका निश्चय करनेके पश्चात् वे दोनों लौट आये। तत्पश्चात् मित्रसे विदा लेकर ब्राह्मण रथपर आरूढ़ हो अवन्तीपुरीको चले।

रथपर बैठे हुए विद्यापति ब्राह्मणने यह विचार किया कि मैंने जो भगवान् नीलमाधवका दर्शन कर लिया, उससे मेरा कर्तव्य पूरा हो गया। अब श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रकी परिक्रमा करके शीघ्र यहाँसे लौटूँ। ऐसा निश्चय करके वे नाना प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुए क्षेत्र और वनको देखते हुए

उस समय उस पुरुषोत्तमतीर्थकी परिक्रमा करने लगे। परिक्रमा पूरी करके भगवान्‌का ध्यान करते हुए बिना खाये-पीये चले और सन्ध्या होते-होते अवन्तीपुरीमें पहुँच गये। दूतोंने महाराजको उनके लौटनेका समाचार सुनाया; सुनकर महाराज इन्द्रद्युम्न बहुत प्रसन्न हुए। वे भगवान् जनार्दनकी पूजा करके विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक बैठे और विद्यापतिके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। इसी समय प्रवेशमार्ग बतानेवाले छड़ीदार सिपाहियों और द्वारपालोंद्वारा सूचित किये हुए रास्तेसे उत्कण्ठित पुरवासियोंके साथ विद्यापति ब्राह्मणने भगवान् नीलमाधवकी प्रसादस्वरूप सुन्दर माला हाथमें लेकर राजाके आगे दरबारमें प्रवेश किया। उन्हें देखकर राजा सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये और 'हे जगदीश! प्रसन्न होइये' ऐसा कहते हुए उनके समीप गये। तत्पश्चात् यों बोले—'आज मेरा जीवन जन्म और कर्म—दोनों ही दृष्टियोंसे सफल हो गया; क्योंकि इस समय मैं यहाँ प्रसाद-मालाके रूपमें साक्षात् माधवका दर्शन कर रहा हूँ। संसारके समस्त पापोंका विनाश करनेवाली भगवान् विष्णुके मस्तकपर चढ़ी हुई इस दिव्य मालाको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके चरणकमलोंकी धूलिको अपने मस्तकमें लगाकर ब्रह्मा आदि देवताओंने महान् ऐश्वर्य प्राप्त किया है, उन भगवान् विष्णुके श्रीअङ्गोंमें लगे हुए उज्ज्वल अङ्गरागसे संयुक्त पुष्पोंकी आधारभूत इस मालाको मैं प्रणाम करता हूँ। हे नीलाचलके शिखरको विभूषित करनेवाले पापहारी हरि! आपकी जय हो। शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले श्रीमान् नारायण! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरा उद्धार कीजिये।'

अश्रुगद्गद वाणीसे इस प्रकार कहते हुए राजा इन्द्रद्युम्नने धरतीपर मस्तक रखकर भगवान्‌को प्रणाम किया। उस समय उनके अङ्ग-अङ्गमें रोमाञ्च हो आया था। वे विद्यापति ब्राह्मण भी समस्त पापोंसे रहित हो भगवान् माधव-का ध्यान करते हुए राजाके सम्मुख उपस्थित हुए और इस प्रकार बोले—'अपने तेजसे सम्पूर्ण लोकोंके पापोंका निवारण करनेवाले परम बुद्धिमान् नीलाचलशिखरनिवासी भगवान् श्रीमाधव आपपर अनुग्रह करें।' यों कहकर विद्यापतिने वह माला राजा इन्द्रद्युम्नके गलेमें डाल दी। राजाने भी उठकर अपने हृदयपर लटकती हुई मालाको देखकर ऐसा माना कि इसके रूपमें साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपति ही मेरे हृदयमें आ गये हैं। फिर दोनों हाथ मस्तकपर जोड़कर उन्होंने अपने नेत्र कुछ-कुछ बंद कर लिये और आनन्दके आँसुओंसे गद्गदकण्ठ होकर श्रीहरिका इस प्रकार स्तवन किया।

इन्द्रद्युम्न बोले—समस्त संसारकी सृष्टि, पालन और संहाररूपी शिल्पके कारीगर! आपकी जय हो। अपने विश्वरूपके रोम-रोममें लीलासे ही असंख्य ब्रह्माण्डोंका भार धारण करनेवाले नारायण! आपकी जय हो। प्रभो! आप सबके अन्तर्यामी तथा शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले हैं। ब्रह्मा, इन्द्र तथा रुद्र आदि देवताओंके मुकुटसे आपके चरणारविन्दोंकी विचित्र शोभा होती है। आप दीनों, अनाथों और विपत्तिग्रस्त प्राणियोंकी रक्षामें सदैव तत्पर रहते हैं। अकारणकरुणावरुणालय! परात्पर! आपकी जय हो। जगन्नाथ! भक्तवत्सल! मैं अनादि कालसे भ्रममें भटकनेवाला दीन मनुष्य एकमात्र आपकी शरणमें आया हूँ, आप मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति करके राजा अपने आसनपर बैठे। उस समय गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी सब उन्हें घेरे हुए थे। अठारहों विद्याओंमें कुशल यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंके साथ राजाने बहुत आदरपूर्वक विद्यापतिका पूजन किया और अपने सामने चौकीपर बिठाकर आदिसे ही कुशल-समाचार पूछा। पुरुषोत्तमक्षेत्रके माहात्म्य, नीलमणिविग्रहधारी भगवान् विष्णुकी महिमा तथा स्वरूपके विषयमें भी प्रश्न किया। तब विद्यापतिने अपने अनुभवमें आये हुए शबरद्वीपमें प्रवेशसे लेकर समुद्रमें स्नान करनेतकके पुरुषोत्तम-क्षेत्रसम्बन्धी समस्त वृत्तान्तको विस्तारपूर्वक कह सुनाया। नीलाचलपर चढ़ना, नीलमाधवका दर्शन करना, रौहिण कुण्डमें स्नान करना, कल्पवटकी महिमा, नृसिंह आदि स्वरूपोंकी प्रतिष्ठा, आठ शिव और आठ शक्तियोंकी स्थिति, रथसे घूमकर देखी हुई पुरुषोत्तमक्षेत्रकी लंबाई और चौड़ाई—सबका क्रमशः यथावत् वर्णन किया। वह अद्भुत वृत्तान्त सुनकर प्रसन्नचित्त हुए राजा इन्द्रद्युम्नने कहा—'भगवन्! नीलेन्द्रमणिमय विग्रहवाले भगवान् विष्णुके स्वरूपका यथार्थ वर्णन कीजिये।'

विद्यापति बोले—राजन्! मैं भगवान् जगन्नाथकी उस दिव्य मूर्तिका वर्णन करता हूँ, जिसे इस चर्मचक्षुसे देखकर मनुष्य मोक्षका भाजन बन जाता है। भगवान्‌की यह मूर्ति बहुत प्राचीन तथा इन्द्रनीलमणि नामक प्रस्तरकी बनी है। ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्र आदि देवता प्रतिदिन जाकर उसकी पूजा करते हैं। यह दिव्यमाला देवताओंने ही पूजामें चढ़ायी

थी। राजन्! यह न तो कभी मलिन होती है और न कभी इसकी सुगन्ध ही कम होती है। भगवान्‌के दिव्य उपहारमें आये हुए प्रसादके भक्षण करनेसे मेरे समस्त पाप क्षीण हो गये हैं और मैं देवताओंके सदृश अलौकिक तेजसे सम्पन्न हो गया हूँ। क्या आप इस बातको नहीं देख रहे हैं? महाराज! वहाँ भोग और मोक्ष दोनों एक ही साथ स्थित हैं। बुढ़ापा, रोग और शोक आदि दुःखोंका वहाँ अत्यन्त अभाव है। उस तीर्थमें विकसित नीलकमलके सदृश विशाल नेत्रोंवाले साक्षात् भगवान् जगन्नाथ प्रसन्नवदनसे विराजमान हैं, जो शरणागतोंको अमृतमय मोक्ष प्रदान करते हैं।

भगवान् जगन्नाथके नीलमणिमय विग्रहका वर्णन, इन्द्रद्युम्नके पास नारदजीका आगमन और भक्ति एवं भक्तके स्वरूपका विवेचन

इन्द्रद्युम्नने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! जन्मसे लेकर कुछ काल पहलेतक तो आप पुरुषोत्तमक्षेत्रमें कभी गये ही नहीं थे, फिर आपने वहाँके दिव्य वृत्तान्तको कैसे जान लिया?

विद्यापतिने कहा—राजन्! मैं सन्ध्याके समय पुरुषोत्तमतीर्थमें भगवान् नीलाचलवासी विष्णुके समीप पहुँचा था। उस समय वहाँ दिव्य सुगन्धयुक्त वायु चल रही थी। आकाशमार्गमें देवताओंका सम्मिलित शब्द सुनायी पड़ता था। वहाँ विश्वावसु नामक शबर मेरा मित्र है, उसने दिव्य उपहार, भोजन तथा यह माला मुझे प्रदान की थी। कभी मलिन न होनेवाली यह बहुमूल्य माला लक्ष्मी तथा राज्यका सुख प्रदान करनेवाली है और दरिद्रता एवं पापका संहार करनेवाली है। इसलिये इसे आपके योग्य समझकर मैं यहाँ ले आया हूँ। भगवान् विष्णुका वह उत्तम क्षेत्र सब ओरसे घने जंगलोंसे व्याप्त है। नीलाचल उसकी नाभि (केन्द्रस्थान) है, लंबाई और चौड़ाईमें वह (वर्गके हिसाबसे) पाँच कोसका बताया गया है। तीर्थराज समुद्रके तटपर उसकी स्थिति है और वह सब ओरसे सुवर्णमयी बालुकाद्वारा आवृत है। पर्वतके शिखरपर एक बहुत ऊँचा वटवृक्ष है, जो प्रलयकालमें भी स्थिर रहता है। उसकी लंबाई एक कोसकी है। वह फूल और फलसे रहित तथा पल्लवोंसे सुशोभित है। सूर्यके हटनेपर भी उसकी छायामें कोई परिवर्तन नहीं होता। उसके पश्चिम रौहिण नामसे प्रसिद्ध कुण्ड है, वहाँ जलका उद्गम है। उसमें उतरनेके लिये नील पत्थरोंकी सीढ़ी उसकी शोभा बढ़ाती है। कुण्डके बाहर चारों दिशाओंमें स्फटिकमणिकी चार वेदियाँ हैं; पापराशिका संहार करनेवाले पवित्र जलसे भरा हुआ वह कुण्ड बड़ा ही मनोरम है। कुण्डकी पूर्व दिशामें जो वेदी है, उसके मध्यभागमें शङ्ख-चक्र-गदाधारी इन्द्रनीलमणिमय भगवान् विष्णु विराजमान हैं। वह स्थान वटवृक्षकी छाया पड़नेसे सदा शीतल बना रहता है। भगवान्‌का वह विग्रह इक्यासी अङ्गुल ऊँचा है और सुवर्णमय कमलके ऊपर स्थित है। उस श्रीविग्रहके मुखचन्द्रसे तीनों प्रकारके तापोंका निवारण होता है। भगवान्‌के दोनों नासिकापुट तिलके फूलके समान शोभा धारण करते हैं। प्रस्तरमयी मूर्ति होनेपर भी भगवान्‌के अधरपर सुन्दर मुसकानकी छटा छायी रहती है। हँसीसे खिले हुए युगल कपोलोंद्वारा ठोढ़ी बहुत सुन्दर दिखायी देती है। मुँहके दोनों कोने ऐसे दिखायी देते हैं मानो और किसी मूर्तिके मुखकोण वैसे कभी बने ही न हों। हासयुक्त अधर, कपोल, ठोढ़ी और मुँहके सुन्दर कोने आदिको धारण करनेवाले भगवान् माधव विश्वकर्मा आदि शिल्पियोंके लिये आदर्श बने हुए हैं। मकराकार कुण्डलोंसे सुशोभित दोनों कानोंके द्वारा भगवान्‌का मुखचन्द्र गुरु और शुक्रके मध्यभागमें स्थित पूर्णचन्द्रका उपहास कर रहा है। गलेके सुन्दर आभूषणसे शोभा-

जनक कण्ठप्रदेशके द्वारा भगवान् अपना दर्शन करनेवाले पुरुषोंके चित्तमें दक्षिणावर्त शङ्खसे मुक्तामणिके प्रकट होनेकी आशङ्का उत्पन्न करते हैं। उनके कन्धे मोटे और चौड़े हैं। घुटनेतककी लंबी चार भुजाएँ हैं। वक्षःस्थलपर स्वच्छ एवं निर्मल हार शोभा पा रहा है। दिव्य कौस्तुभमणिमें पड़े हुए प्रतिबिम्बके रूपमें मानो वे चौदह भुवनोंको धारण करते हैं। गहरे नाभिरूपी सरोवरमें प्रविष्ट हुई सूक्ष्म रोमावलियोंके कारण भगवान्का श्रीविग्रह बड़ा मनोहर प्रतीत होता है। गलेमें लटकता हुआ हार त्रिवलीके मध्यभागतकका स्पर्श करता है। मोतीकी माला कमरके पासतक लटकी हुई है। वे पीताम्बरसे शोभा पाते हैं। दोनों जङ्घाएँ दो खम्भोंके समान जान पड़ती हैं, मानो वे मोक्षके मङ्गलमय धाममें जानेके लिये बाहरी द्वारके आश्रय हों। भगवान्के दोनों चरण गोलाकार घुटनों, पैरोंतक लटकती हुई वनमाला तथा रत्नमय कड़ोंसे शोभा पाते हैं। वे हार, कङ्कण, भुजबन्द और मुकुट आदिसे विभूषित हैं। भगवान् अपने चारों हाथोंमें क्रमशः चक्र, पद्म, गदा और शङ्ख-रूपमें परिणत ज्ञान, अहङ्कार, ऐश्वर्य तथा शब्दब्रह्म (वेद-राशि) को धारण करते हैं।* भगवान् जगन्नाथ सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए नीलाचलके शिखरपर विराजमान हैं, जिनका दर्शन करके भक्तिपूर्वक प्रणाम करनेसे मनुष्य देहबन्धनसे मुक्त हो जाता है। भगवान्के वामपार्श्वमें भगवती लक्ष्मी वीणा बजा रही हैं। उनकी दृष्टि भगवान्के मुखकी ओर है। वे सम्पूर्ण लावण्यका निवास तथा समस्त अलङ्कारोंसे विभूषित हैं। जगत्के पिता और माता भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मी दोनों उस पर्वतपर निवास करते हैं। मैंने उन दोनोंका दर्शन किया। वे दोनों मौनभावसे बैठे हैं और अपनी मुसकराती हुई दृष्टिसे दर्शन करनेवाले प्राणीपर कृपाकी वर्षा करते हैं। दीनोंपर दया करनेके कारण मैंने उन्हें चैतन्यरूप ही माना है। उनके पीछे अपने फणोंका छत्र लगाये भगवान् शेषनाग खड़े हैं और आगे सुदर्शन चक्रको दिव्य शरीर धारण करके खड़े हुए देखा है। सुदर्शनके पीछे गरुड़जी हाथ जोड़े खड़े हैं। इस प्रकार अद्भुत रूप धारण करनेवाले साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुका दर्शन करके मेरा मन बार-बार उन्हींकी ओर दौड़ रहा है मानो कोई इसे रस्सियोंमें बाँधकर अपनी ओर खींच रहा हो। तीर्थस्नान, तप, दान, देवयज्ञ और व्रतोंके द्वारा भी कोई वैसे दिव्यरूपमें भगवान्का दर्शन नहीं कर सकता। जो लोग निर्मल आकाश-की भाँति प्रतीत होनेवाले पुरुषोत्तमतीर्थनिवासी नीलविग्रह भगवान् विष्णुका ध्यान करते हैं, वे सब प्रकारके बन्धनों-रहित होकर भगवान् विष्णुके धाममें प्रवेश करते हैं। जिस नीलाचलनाथ भगवान्का दर्शन कर लिया है, वही दानी वही यज्ञकर्ता, वही सत्यवादी, वही धर्मात्मा तथा वही सम्पूर्ण गुणोंसे श्रेष्ठ और समस्त जगत्में महान् है। राजन्! वहाँ जगदीश्वर माधवके जो सेवक हैं, उन्हींसे मैंने भगवान्के इस माहात्म्यका परिचय प्राप्त किया। वहाँ आदिसृष्टिकी परम्परासे चला आता हुआ पुरातन एवं सुप्रसिद्ध आख्यान सुनकर मैं यहाँ आया हूँ। महाराज! आपकी ही आज्ञासे श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करके वहाँका सब वृत्तान्त आपसे निवेदन किया है। अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें।

इन्द्रद्युम्न बोले—भगवन्! आपका वचन मेरे लिये सर्वथा विश्वसनीय है। आपके मुखसे भगवान्के पापहारी स्वरूपका वर्णन सुनकर तथा इस दिव्य प्रसादमालाका संयोग पाकर मैं कृतकृत्य हो गया। अनेक जन्मोंमें उपार्जित मेरी समस्त पापराशि आज नष्ट हो गयी। अब मैं भगवान् लक्ष्मी-पतिके दर्शनका अधिकारी हो गया। सर्वतोभावेन वहाँकी यात्रा करूँगा और इस राज्य एवं बढ़ी हुई समृद्धिके द्वारा पुरुषोत्तमतीर्थमें निवासस्थान, नगर और दुर्ग बनवाऊँगा। भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करूँगा और प्रतिदिन सैकड़ों उपचारोंसे श्रीनाथजीकी पूजा करूँगा। व्रत, उपवास और नियमोंद्वारा जगद्गुरु भगवान्को प्रसन्न करूँगा जिससे वे मुझ सन्तप्त प्राणीको अपने वचनामृतसे अभिषिक्त करेंगे। भगवान् नारायण दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं।

इस प्रकार राजा इन्द्रद्युम्न श्रद्धा और भक्तिसे भगवान् जगदीश्वरकी स्तुति कर रहे थे। इतनेमें ही सम्पूर्ण भुवनोंको देखनेकी उत्सुकता रखनेवाले देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे। विष्णुभक्तोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र नारदजीको आते देख राजा सहसा उठकर खड़े हो गये और पाद्य, अर्घ्य एवं आचमनीय निवेदन करके उन्हें उत्तम आसनपर बैठाकर प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर बोले—'आज मेरे सम्पूर्ण यज्ञ, दान, स्वाध्याय और तप सफल हो गये; क्योंकि मेरे घरपर ब्रह्माजीके द्वितीय स्वरूप देवर्षि नारद कृपापूर्वक पधारे हैं। मुने! आपने यहाँतक आनेकी कृपा की, इतनेसे ही यद्यपि मैं कृतार्थ हो गया हूँ तथापि

* तेजोमय सुदर्शन चक्र प्रकाशस्वरूप ज्ञानका प्रतीक है। इस प्रकार कमल अहङ्कारका, गदा ऐश्वर्यका और शङ्ख नादात्मक शब्द-ब्रह्मका प्रतीक है।

आपकी प्रसन्नताके लिये आपकी क्या सेवा करूँ, आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ ? कौन-सा प्रयोजन लेकर आपने मेरे इस घरको पवित्र किया है ?'

भक्ति और विनयसे सनी हुई राजाकी यह कोमल वाणी सुनकर नारदजीने मुसकराते हुए कहा—'नृपश्रेष्ठ ! तुम्हारे निर्मल गुणोंसे ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता, सिद्ध और मुनि अत्यन्त प्रसन्न हैं। तुमने बहुत अच्छा निश्चय किया। हजारों जन्मोंके अभ्याससे नीलाचलगुहानिवासी भगवान् माधवमें भक्ति होती है। परम बुद्धिमान् ब्रह्माजीने उन्हीं भगवान् जगदीश्वरकी आराधना करके इस सृष्टिका निर्माण किया और पितामहकी पदवी पायी है। तुम भी उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए हो, अतः भगवान्के प्रति तुम्हारी ऐसी भक्ति होनी उचित ही है। पग-पगपर दुःख और सङ्कटोंसे व्याप्त इस संसाररूपी वनमें भटकते हुए मनुष्योंके लिये एकमात्र भगवान् विष्णुकी भक्ति ही सुख देनेवाली है। यह संसार एक समुद्र है जहाँ कोई भी सहारा देनेवाला नहीं है। सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंकी प्रचण्ड आँधीसे इसमें सदा तूफान आता रहता है, इस कारण यह अत्यन्त दुस्तर है। इस भवसागरमें डूबे हुए मनुष्योंके लिये भगवान् विष्णुकी भक्ति ही नौका मानी गयी है। एकमात्र माता भगवती विष्णु-भक्तिका आश्रय लेकर सन्तुष्ट रहनेवाले साधुपुरुष कभी शोक नहीं करते। राजन् ! देहधारियोंकी जो बड़ी भारी पापराशि है, वह विष्णुभक्तिरूपी महान् दावानलमें पतङ्गोंकी भाँति जल जाती है। प्रयाग, गङ्गा आदि तीर्थ, तपस्या, श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ, महान् दान, व्रत, उपवास और नियम—इन सबका सहस्रों बार सेवन किया जाय और इनके पुण्यसमूहको कोटि-कोटि गुना करके एकत्र किया जाय तो भी वह विष्णु-भक्तिके हजारवें अंशके बराबर भी नहीं बताया गया है* ।'

नारदजीके बताये हुए विष्णुभक्ति-माहात्म्यको सुनकर राजा इन्द्रद्युम्नके मनमें विष्णुभक्तिका स्वरूप जाननेकी इच्छा हुई। अतः उन्होंने पूछा—'भगवन् ! भक्तिका क्या स्वरूप है ? उसके लक्षणका वर्णन कीजिये।'

नारदजीने कहा—राजन् ! सावधान होकर सुनो। मैं भगवान् विष्णुकी सनातन भक्तिका सामान्य और विशेषरूपसे वर्णन करता हूँ। गुणोंके भेदसे भक्तिके तीन भेद हैं—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। इनके अतिरिक्त एक चौथी भक्ति भी है, जो निर्गुणा मानी गयी है। राजन् ! जो लोग काम और क्रोधके वशीभूत हैं और प्रत्यक्ष (इस जगत्) के सिवा और किसी (परलोक आदि) की ओर दृष्टि नहीं रखते, वे अपने-को लाभ और दूसरोंको हानि पहुँचानेके लिये जो भजन करते हैं, उनकी वह भक्ति तामसी कही गयी है। अधिक यशकी प्राप्तिके लिये अथवा दूसरेकी स्पर्धा (लाग-डाँट) से, प्रसङ्गवश परलोकके लिये भी, जो भक्ति होती है, वह राजसी मानी गयी है। पारलौकिक लाभको स्थायी समझकर और इहलोक-के समस्त पदार्थोंको नश्वर देखकर अपने वर्ण तथा आश्रमके धर्मोंका परित्याग न करते हुए आत्मज्ञानके लिये जो भक्ति की जाती है, वह सात्त्विकी है। यह जगत् जगन्नाथका ही स्वरूप है, उनसे भिन्न इसका दूसरा कोई कारण नहीं है, मैं भी भगवान्से भिन्न नहीं हूँ और वे भी मुझसे पृथक् नहीं हैं, ऐसा समझकर भेद उत्पन्न करनेवाली बाह्य उपाधियोंका त्याग करना और अधिक प्रेमसे भगवत्-स्वरूपका चिन्तन करते रहना—यह अद्वैत (निर्गुणा) नामवाली भक्ति है, जो मुक्तिका साक्षात् साधन है। यह अत्यन्त दुर्लभ है।*

अब मैं भगवान् विष्णुके भक्तोंका लक्षण बतलाता हूँ—जिनका चित्त अत्यन्त शान्त है, जो सबके प्रति कोमल भाव रखते हैं, जिन्होंने स्वेच्छानुसार अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली है तथा जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी दूसरोंसे द्रोह करनेकी इच्छा नहीं रखते, जिनका चित्त दयासे द्रवीभूत होता है, जो चोरी और हिंसासे सदा ही मुख मोड़े रहते हैं, सद्गुणोंके संग्रह तथा दूसरोंके कार्यसाधनमें जो प्रसन्नता-पूर्वक संलग्न रहते हैं, सदाचारसे जिनका जीवन सदा उज्ज्वल (निष्कलङ्क) बना रहता है, जो दूसरोंके उत्सवको अपना उत्सव मानते हैं, सब प्राणियोंके भीतर भगवान् वासुदेवको विराजमान देखकर कभी किसीसे ईर्ष्या-द्वेष नहीं रखते, दीनोंपर दया करना जिनका स्वभाव बन गया है और जो सदा

---

* अश्वमेधः क्रतुवरो दानानि सुमहान्ति च।
व्रतोपवासनियमाः सहस्राण्यर्जिता अपि॥
समूह एषामेकत्र गणितः कोटिकोटिभिः।
विष्णुभक्तेः सहस्रांशसमोऽसौ न हि कीर्तितः॥
(स्क० वै० उ० १०। ७३-७४)

* जगच्चेदं जगन्नाथो नान्यच्चापि च कारणम्॥
अहं च न ततो भिन्नो मत्तोऽसौ न पृथक् स्थितः।
हानं बहिरुपाधीनां प्रेमोत्कर्षेण भावनम्॥
दुर्लभा भक्तिरेषा हि मुक्तयेऽद्वैतसंज्ञिता॥
(स्क० वै० उ० १०। ८६—८८)

परहितसाधनकी इच्छा रखते हैं, अविवेकी मनुष्योंका विषयोंमें जैसा प्रेम होता है, उससे सौ कोटि गुनी अधिक प्रीतिका विस्तार वे भगवान् श्रीहरिके प्रति करते हैं,* नित्य कर्तव्य-बुद्धिसे विष्णुस्वरूप शङ्कर आदि देवताओंका भक्तिपूर्वक पूजन और ध्यान करते हैं, पितरोंमें भगवान् विष्णुकी ही बुद्धि रखते हैं, भगवान् विष्णुसे भिन्न दूसरी किसी वस्तुको नहीं देखते। समष्टि और व्यष्टि सब भगवान्के ही स्वरूप हैं, भगवान् जगत्से भिन्न होकर भी भिन्न नहीं हैं, 'हे भगवान् जगन्नाथ! मैं आपका दास हूँ, आपके स्वरूपमें भी मैं हूँ, आपसे पृथक् कदापि नहीं हूँ, जब आप भगवान् विष्णु अन्तर्यामीरूपसे सबके हृदयमें विराजमान हैं, तब सेव्य अथवा सेवक कोई भी आपसे भिन्न नहीं है।' इस भावनासे सदा सावधान रहकर जो ब्रह्माजीके द्वारा वन्दनीय युगल चरणारविन्दोंवाले श्रीहरिको सदा प्रणाम करते, उनके नामोंका कीर्तन करते, उन्हींके भजनमें तत्पर रहते और संसारके लोगोंके समीप अपनेको तृणके समान तुच्छ मानकर विनयपूर्ण बर्ताव करते हैं। जगत्में सब लोगोंका उपकार करनेके लिये जो कुशलताका परिचय देते हैं, दूसरोंके कुशल-क्षेमको अपना ही मानते हैं, दूसरोंका तिरस्कार देखकर उनके प्रति दयासे द्रवीभूत हो जाते हैं तथा सबके प्रति मनमें कल्याणकी भावना करते हैं, वे ही विष्णुभक्तके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो पत्थर, परधन और मिट्टीके ढेलेमें, परायी स्त्री और कूटशाल्मली नामक नरकमें, मित्र, शत्रु, भाई तथा बन्धुवर्गमें समान बुद्धि रखनेवाले हैं, वे ही निश्चितरूपसे विष्णुभक्तके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो दूसरोंकी गुणराशिसे प्रसन्न होते और पराये मर्मको ढकनेका प्रयत्न करते हैं, परिणाममें सबको सुख देते हैं, भगवान्में सदा मन लगाये रहते तथा प्रिय वचन बोलते हैं, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं।† जो भगवान्के पापहारी शुभनाम सम्बन्धी मधुर पदका जप करते और जय-जयकी घोषणाके साथ भगवन्नामोंका कीर्तन करते हैं, वे अकिञ्चन महात्मा वैष्णवके रूपमें प्रसिद्ध हैं। जिनका चित्त श्रीहरिके चरणारविन्दोंमें निरन्तर लगा रहता है, जो प्रेमाधिक्यके कारण जडबुद्धि-सदृश बने रहते हैं, सुख और दुःख दोनों ही जिनके लिये समान हैं, जो भगवान्की पूजामें चतुर हैं तथा अपने मन और विनययुक्त वाणीको भगवान्की सेवामें समर्पित कर चुके हैं, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं। मद और अहङ्कार गल जानेके कारण जिनका अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध हो गया है, अमरोंके विश्वसनीय बन्धु भगवान् नृसिंहका यजन करके जो शोकरहित हो गये हैं, ऐसे वैष्णव निश्चय ही उच्चपदको प्राप्त होते हैं। भगवान्में सदैव उत्तम भक्ति रखनेवाले भक्तोंके शुभ चरित्र और लक्षणका वर्णन मैंने तुमसे किया है। यह मनुष्योंके कानोंमें पड़ते ही उनके चिरसञ्चित मलका नाश करता है। भगवान्के भजनके लिये कभी धनकी आवश्यकता तथा शरीरको कष्ट देकर किये जानेवाले किसी विशेष प्रकारके प्रयोगकी भी आवश्यकता नहीं है। मृदुल एवं मन्द स्वरसे वाणीके द्वारा भगवान्के नामोंका कीर्तन होता रहे, तो मैं इसीको भजन मानता हूँ। तुम्हारे मनमें भगवान्के दास्यभावका ही चिन्तन होना चाहिये।

किंतु जो मनुष्योंके शुभ आचरणोंसे भी द्वेष करते हैं और स्वयं अपने चित्तको दुराचारमें ही बाँधे रखते हैं, बड़े भारी अमङ्गलको पा करके भी निश्चिन्त रहते हैं और सदा ऐश्वर्य तथा विषयभोगके रसमें ही सुखका अनुभव करते हैं, वे मनुष्य वैष्णव नहीं हैं; वे तो बहुत ही निम्नश्रेणीके मनुष्य हैं। अपने हृदयरूपी कमलमें विराजमान परमानन्दमय श्रीहरिके स्वरूपका जो क्षणभर भी चिन्तन नहीं करते, उन्मत्त-भावसे बैठे रहते हैं और अपने झूठे वचनोंके जालसे भगवान्के नामको भी निरन्तर आच्छादित किये रहते हैं, वे भी भगवान्के भक्त नहीं हैं। जिनके मनमें परायी स्त्री और पराये धनके लिये सदा लोभ बना रहता है, जो कृपण बुद्धिवाले हैं और सदा अपना ही पेट भरनेमें लगे रहते हैं, वे नरपशु विष्णुभक्तिसे सर्वथा रहित हैं। जो निरन्तर दुष्ट

---

* विषयेष्वविवेकानां या प्रीतिरुपजायते।
वितन्वते तु तां प्रीतिं शतकोटिगुणां हरौ॥
(स्क० वै० उ० १०। १०४-१०५)

† दृषदि परधने लोष्टखण्डे
परवनितासु च कूटशाल्मलीषु।
सखिरिपुसहजेषु बन्धुवर्गे
सममतयः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥

गुणगणसुमुखाः परस्य मर्म-
च्छदनपराः परिणामसौख्यदा हि।
भगवति सततं प्रदत्तचित्ताः
प्रियवचसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥
(स्क० वै० उ० पु० १०। ११-१२)

पुरुषोंके साथ अनुराग रखते हैं, दूसरोंका तिरस्कार और हिंसा करते हैं, जिनका स्वभाव अत्यन्त भयङ्कर है तथा जो भगवान् नृसिंहके चरणोंके चिन्तनसे विरक्त रहते हैं, उन मलिन मनुष्योंको दूरसे ही त्याग देना चाहिये।

राजा इन्द्रद्युम्नका पुरुषोत्तमक्षेत्रको प्रस्थान और महानदीके तटपर विश्राम

जैमिनिजी कहते हैं—ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदसे इस प्रकार उत्तम भगवद्भक्तिका वर्णन सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न बहुत प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले—'भगवन्! विद्वान् पुरुषोंने मुझे बताया था कि साधुपुरुषोंका सङ्ग संसाररूपी रोगका नाश करनेवाला है, ऐसा साधुसङ्ग मुझे इसी समय प्राप्त हुआ है। आपके सङ्गसे मेरे अज्ञानमय अन्धकारका नाश हो गया, क्योंकि मेरा चित्त इस समय नीलमाधवकी पूजा करनेके लिये अत्यन्त उतावला हो रहा है। अतः हम और आप दोनों ही रथपर बैठकर चलें और भगवान् नीलमाधवका दर्शन करें। यदि आपके मुखसे पुरुषोत्तम-क्षेत्रके तीर्थोंका ज्ञान प्राप्त कर सकूँ, तो पहलेके कहे हुए महात्माओंके वचन भी सफल हो जायँ।'

नारदजीने कहा—राजन्! यह तो बड़े हर्षकी बात है। मैं तुम्हें पुरुषोत्तमक्षेत्र और वहाँके तीर्थोंके दर्शन कराऊँगा। उस तीर्थमें जो शक्तियाँ और शिव आदि हैं, उन्हें भी दिखाऊँगा। उस क्षेत्रके माहात्म्यका भी परिचय दूँगा। तुम वहाँ भक्तोंको आत्मसमर्पण करनेवाले देवेश्वर भगवान् जगन्नाथका साक्षात् दर्शन करोगे।

इस प्रकार वार्तालाप करके दोनोंने प्रसन्नतापूर्वक दिनका कृत्य समाप्त किया और ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी बुधवारको पुष्य नक्षत्रमें उत्तम लग्न आनेपर यात्रा अनुकूल होगी, ऐसा निर्णय करके दोनोंने रातके समय एक ही स्थानपर शयन किया। फिर सबेरा होनेपर नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नने भाइयों-सहित नीलाचलपर जानेके विषयमें अपने राज्यमें यह घोषणा करायी कि 'हमलोग जीवनपर्यन्त पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करेंगे। राजालोग अपनी रानियों, मन्त्रियों तथा परिकरों-समेत रथ, हाथी, घोड़ा, खजाना और पैदल सेना साथ लेकर वहाँ चलें।' इस प्रकार आज्ञा देकर राजा इन्द्रद्युम्न अपने आगे खड़े हुए नारद मुनिकी परिक्रमा करके छड़ीदार सिपाहियोंसे घिरे हुए मध्यद्वारपर आये। उनके आगे-आगे अग्निहोत्रकी अग्नि ले जायी जा रही थी। वहाँ उन्होंने अपने दाहिनी ओर ब्राह्मणोंको खड़े हुए देखा, जो माङ्गल्य-सूक्तका पाठ कर रहे थे। राजाने भक्तिसे विनीत होकर वस्त्र, आभूषण, माला, सुगन्ध और अनुलेपनके द्वारा उन ब्राह्मणोंका पूजन किया। इसी समय एक ही साथ सैकड़ों शङ्ख बज उठे। उनके साथ और भी बहुतसे बाजोंकी तुमुल ध्वनि महाराजने सुनी। तदनन्तर वे मन्दिरमें भगवान् विष्णुका दर्शन करनेके लिये गये, जिनका स्मरण करनेसे मनुष्य सब प्रकारके कल्याणका भागी होता है। दिव्य सिंहासनपर बैठे हुए उन्हीं भगवान् विष्णुका दूरसे दर्शन करके उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उपनिषदोंकी दिव्य वाणीसे उनकी स्तुति करके दुर्गाजीके चरणोंमें भी मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् उन दोनों देवताओंकी परिक्रमा करके उन्हें पालकीमें बिठाया और उनको आगे करके प्रस्थान किया। बाहरके दरवाजेपर पहुँचकर उन्होंने अपना रथ तैयार देखा और परिक्रमा करके वे नारदजीके साथ उस रथपर बैठे। इन्द्रद्युम्नके रथके दोनों ओर उनके अधीन राजाओंके अनेकों रथ शोभा पा रहे थे, जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे संयुक्त तथा ध्वजा-पताकाओंसे अलङ्कृत थे। उसी समय पुरवासी भी अपना-अपना सामान लेकर तैयार हो गये और घोड़े, खच्चर तथा ऊँट आदि वाहनोंपर चढ़कर वहाँसे चल दिये। राजाओंकी सैकड़ों रानियाँ, नपुंसक सिपाहियोंसे घिरी हुई अनेक प्रकारकी सवारियोंपर चढ़कर राजभवनसे बाहर निकलीं। बड़े-बड़े राज्याधिकारी तथा विशाल सैनिक भी उनकी रक्षामें तत्पर थे। राजाके सामन्त, मन्त्री, सेवक, पुरोहित, ऋत्विग् तथा राजाके व्यक्तिगत सेवक भी सब प्रकारके उपयोगी सामान साथ लेकर चले। कोषके संरक्षणमें नियुक्त किये गये राजकर्मचारी सारा खजाना साथ लेकर शीघ्र ही प्रस्थित हुए, जो अवसरके अनुसार राजसेवामें उपस्थित होते थे। सामान बेचकर जीविका चलानेवाले सेठ, व्यापारी, माली आदि भी अपनी-अपनी विक्रयकी वस्तुएँ लेकर राजाज्ञाका पालन करते हुए चले। जिसके लिये जो मार्ग सीधा प्रतीत हुआ, वह उसीसे गया। नीलाचलपर पहुँचानेवाले कठिन-से-कठिन मार्गके द्वारा भी लोगोंने यात्रा की। महाराज इन्द्रद्युम्न समस्त पुरवासियों तथा हर्षमें भरी हुई चतुरङ्गिणी सेनासे घिरे हुए

थे। जंगलका रास्ता जाननेवाले पुरुष जो मार्ग बतलाते, उसीसे राजा यात्रा करते थे। मार्गके दोनों ओर आनेवाले देशों और वनोंको देखते हुए वे बड़ी शीघ्रतासे यात्रा कर रहे थे। महानदीके तटपर जहाँ वृक्ष बहुत कम थे तथा पर्वतीय गुफाओंके कारण जो स्थान बहुत प्रसिद्ध था, वहाँ उन्होंने अपराह्न कालका आवश्यक कृत्य करनेके लिये अपनी सेनाका पड़ाव डाला। फिर अपने पुरोहितके साथ नदीके जलमें उतरे और स्नान करके देवताओं तथा पितरोंका तर्पण किया। तत्पश्चात् विधिपूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करके नारदजीके साथ बैठकर भोजन किया। जब सूर्य अस्ताचलके

शिखरपर पहुँचे, तब सायङ्कालकी उपासना पूरी करके राजा सभामें बैठे। उस समय उन्होंने श्रेष्ठ वैष्णवोंका चन्दन, माला और ताम्बूलोंसे पूजन किया। तदनन्तर भगवान्के सर्वपापापहारी चरित्रका श्रवण करनेके लिये सिंहासनपर बैठे हुए मुनिवर नारदजीसे इस प्रकार कहा—'भगवन्! आप वेद और वेदाङ्गोंकी निधि हैं, भगवान्के प्रिय भक्त हैं। यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो भगवान् विष्णुकी लीला-कथारूपी सुधासे मेरे मलिन अन्तःकरणको शुद्ध कर दीजिये।'

देवर्षि नारद तथा राजा इन्द्रद्युम्नमें इस प्रकारकी बात चल ही रही थी कि द्वारपालने समीप आकर सूचना दी 'महाराज! उत्कल देशके राजा आपके द्वारपर उपस्थित हैं और श्रीमान्के चरणारविन्दोंका दर्शन करना चाहते हैं।' राजा बोले—'श्रीमान् ओढ्रनरेशको शीघ्र ही भीतर ले आओ, उनका दर्शन करके हम सब लोग पापरहित हो जायँगे।' महाराजका यह वचन सुनकर द्वारपालने शीघ्र ही राजसभामें उत्कल-नरेशका प्रवेश कराया। अपने वैष्णव मन्त्रियोंके साथ राजसभामें प्रवेश करके ओढ्रदेशके राजाने इन्द्रद्युम्नके वन्दनीय चरणोंको सादर नमस्कार किया। तब उन वैष्णव नरेशको उठाकर महाराज इन्द्रद्युम्नने उनका सत्कार किया और अपने आसनपर ही बिठाकर विनययुक्त वाणीमें कहा—'राजन्! आप कुशलसे तो हैं न? ओढ्रपते! नीलाचल-शिखरनिवासी भगवान् माधव तो वहाँ विजयपूर्वक विराज रहे हैं न? क्या आपकी निर्मल बुद्धि भगवान्के चरणारविन्दोंमें लगती है? समस्त प्राणियोंमें समान चित्त रखनेवाले आपका मन भगवान्में अनुरक्त तो है न?'

तब उत्कलनरेशने हाथ जोड़ नम्रतापूर्वक कहा—'स्वामिन्! आपके चरणोंकी कृपासे मेरे लिये सर्वत्र कुशल है। दक्षिण समुद्रके तटपर जंगलोंसे घिरा हुआ नीलाचल विद्यमान है, किंतु वहाँ लोगोंका आना-जाना नहीं है। भगवान् नीलमाधव भी वहीं हैं परंतु इस समय प्रचण्ड आँधीके कारण उठी हुई अधिक बालुकाराशिसे छिप गये हैं, ऐसी बात सुनी जाती है। इसीलिये मेरे राज्यमें भी अकाल और मृत्युका भय बढ़ गया है, परंतु अब आप पधारे हैं, तो सर्वत्र कुशल ही होगा।' उत्कलनरेशके ऐसा कहनेपर राजा इन्द्रद्युम्नने उनका आदर करते हुए उन्हें विदा किया और नारदजीकी ओर देखकर उदासीन भावसे कहा—'मुने! यह क्या हो गया?'

नारदजी बोले—राजन्! इस विषयमें तुम्हें विस्मय नहीं करना चाहिये। श्रेष्ठ वैष्णव भाग्यवान् होता है। वैष्णवोंका मनोरथ कभी निष्फल नहीं होता। जगत्के आदि-कारण एवं रोग-शोकसे रहित प्रत्यक्ष शरीर धारण किये हुए भगवान् नारायणको तुम अवश्य देखोगे। वे तुमपर ही अनुग्रह करनेके लिये इस पृथ्वीपर उतरेंगे। सम्पूर्ण चराचर जगत् भगवान् विष्णुके वशमें है। सनातन परमात्मा विष्णु किसीके भी वशमें नहीं हैं; वे भगवान् भक्तवत्सल हैं। अतः केवल भक्तिके वशमें रहते हैं। भगवान् विष्णुकी भक्ति ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चारों पुरुषार्थोंकी जड़ है। वह भक्ति ही भगवान्को वशमें करनेका उपाय है। एक ही भगवान् विष्णु अपनी मायासे अनेक रूपमें प्रकट हुए हैं।

इसलिये उन परमात्माके सिवा और कोई भी सुखका कारण नहीं है। राजेन्द्र ! तुम ब्रह्माजीकी सन्तान-परम्परामें पाँचवें पुरुष हो, साथ ही श्रेष्ठ वैष्णव हो। तुमने अठारह विद्याओंमें पूर्ण विद्वत्ता प्राप्त की है और तुम सदैव सदाचारमें स्थित रहते हो। तुमने इस पृथ्वीका न्यायपूर्वक पालन किया है, विशेषतः तुम ब्राह्मणोंके पूजक हो। अतः पुरुषोत्तमक्षेत्रमें इन चर्म-चक्षुओंसे भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा। तुम्हारे इस कार्यमें स्वयं ब्रह्माजीने मुझे नियुक्त किया है। पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चलनेपर वह सब बात मैं तुम्हें बताऊँगा। इस समय रातका तीसरा पहर चल रहा है; इन सब राजाओंको अपने-अपने डेरेमें जानेकी आज्ञा दो और तुम भी आराम करो।

राजाका एकाम्रक्षेत्र (भुवनेश्वर) में जाकर भगवान् शिवका पूजन करना और भगवान् शिवका नारदजीसे उनके कर्तव्यकार्योंका संकेत करना

जैमिनिजी कहते हैं—नारदजीके इस प्रकार आश्वासन देनेपर राजा इन्द्रद्युम्नने प्रसन्नचित्त होकर जब उत्तम बुद्धिसे विचार किया, तब अपने परिश्रमको सफल माना और सभासदोंको विदा करके मुनिका हाथ अपने हाथमें लेकर अन्तःपुरमें प्रवेश किया। फिर विधिपूर्वक उनकी पूजा करके उन्हें पलंगपर सुलाया और उन्हींके साथ बातचीत करते शेष रात्रि व्यतीत की। तदनन्तर निर्मल प्रभात होनेपर नित्य-कर्म पूरा करके उन्होंने जगन्नाथजीका पूजन किया। तदनन्तर सब महानदीके पार उतरे। इसके बाद ओढ्रदेशके राजाके बताये हुए मार्गसे राजा इन्द्रद्युम्न अपनी सेनाके साथ एकाम्रवन नामक क्षेत्रकी ओर चले। वहाँसे कुछ दूर आगे जानेपर मार्गमें 'गन्धवहा' नामवाली नदी मिली, जो बड़े वेगसे बह रही थी। उसको पार करके आगे बढ़नेपर शङ्ख आदि वाद्योंकी ध्वनि सुनायी पड़ी। तब राजाने नारदजीसे पूछा—'महामुने ! यह शब्द कहाँ हो रहा है ?'

नारदजीने कहा—राजन् ! यह अत्यन्त दुर्लभ क्षेत्र है, जिसे भगवान् विष्णुने गुप्त कर रक्खा है। तुम भाग्यवानोंमें श्रेष्ठ हो, इसीलिये तुम्हारे सौभाग्यसे जितेन्द्रिय पुरोहितने किसी प्रकार जाकर भगवान्‌का दर्शन किया है। यहाँसे तीसरे योजनपर नीलगिरि विद्यमान है और यह भगवान् गौरीपतिका एकाम्रवन नामक क्षेत्र है, जो अब अधिक दूर नहीं है। एक समय भगवान् शिवने लोकोंके आदिकारण अनादि पुरुषोत्तमका इस प्रकार स्तवन किया—'हे नारायण ! हे परम धाम ! हे परमात्मन् ! हे परात्पर ! हे सच्चिदानन्दमय वैभवसे युक्त निरञ्जन परमेश्वर ! आपको मेरा नमस्कार है। आप संसारके कारण हैं और गुणोंके भेदसे सृष्टि, पालन तथा संहाररूप कर्म किया करते हैं। स्वप्रकाश परमात्मन् ! आपने अपनी ही योगमायासे अपनेको गुप्त कर रक्खा है; आपको नमस्कार है। आप न भीतर हैं न बाहर, साथ ही बाहर भी हैं और भीतर भी। दूर होते हुए भी अत्यन्त निकट हैं; भारी, हल्के, स्थिर, अत्यन्त सूक्ष्म और अतिशय स्थूल भी आप ही हैं; आपके लिये नमस्कार है। जिनके कटाक्ष-विलाससे कोटि-कोटि ब्रह्मा और अगणित रुद्र उत्पन्न होते हैं, उन कालात्मा श्रीहरिको नमस्कार है। जिनके एक-एक रोममें अनेकानेक ब्रह्माण्डोंका समुदाय भरा हुआ है तथा जिनका शरीर माँप-जोखके बाहर है, उन विश्वरूप भगवान्‌को नमस्कार है। जिनके स्वरूपभूत कालके परिमाणसे ब्रह्माकी सृष्टि और प्रलय होते हैं, मन्वन्तर आदिकी सङ्घटना करनेवाले उन भगवान्‌को नमस्कार है।'

त्रिपुरासुरका दाह करनेवाले भगवान् शङ्करने जब इस प्रकार स्तवन किया, तब शङ्ख, चक्र, गदा धारण करनेवाले, वनमालाविभूषित, हार, कुण्डल, केयूर और मुकुट आदिसे सुशोभित कृपानिधान भगवान् गरुड़वाहन विष्णुने शिवजीसे कहा—'दक्षिण समुद्रके किनारे नीलाचलसे विभूषित जो दस योजन विस्तृत क्षेत्र चित्रोत्पला नदीसे लेकर समुद्रतक फैला हुआ है, उसके उत्तर 'एकाम्रवन' नामक सुन्दर वन है। वहीं पार्वतीजीके साथ आप निवास करें। वहाँ सब लोकोंकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी मेरे आदेशसे आपको कोटि लिङ्गोंके अधीश्वर पदपर अभिषिक्त करेंगे।'

भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर शिवजीने कहा—'देवदेव ! जगन्नाथ ! शरणागतदुःखभञ्जन ! प्रभो ! जगत्पते ! आप पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जानेके लिये जो आज्ञा दे रहे हैं, उसे शिरोधार्य करके मैं उस मोक्षदायक कल्याणमय तीर्थमें जाऊँगा।' यों कहकर भगवान् शङ्कर उस क्षेत्रमें पधारे। साक्षात् ब्रह्माजीने वहाँ भगवान् शङ्करकी स्थापना की। राजन् ! अब हम सब लोग वहाँ चलें और

त्रिपुरविनाशक शिवजीका दर्शन करेंगे। यह जो शिवजीका क्षेत्र है, इसे तमोगुणका नाशक बताया गया है। जो रजोगुणको धो डालनेवाला क्षेत्र है, वह 'विरजमण्डल' नामसे प्रसिद्ध है। सत्त्वगुणकी अधिकताके कारण पुरुषोत्तमक्षेत्र मुक्तिदायक बताया गया है। महाराज! जिनका चित्त पापकर्मोंसे मलिन हो गया है, उनका विश्वास इस क्षेत्रपर नहीं जमता।

नारदजीकी बात सुनकर राजाका चित्त प्रसन्न हो गया और वे बोले—'ब्रह्मन्! आपने मुझे परम पावन क्षेत्रका परिचय दिया। जहाँपर साक्षात् भगवान् उमापति विराजमान हैं वहाँपर हम अवश्य चलेंगे।' इस निश्चयके अनुसार देवर्षि नारद और राजा इन्द्रद्युम्न दोपहरके समय सेनाके साथ एकाम्रवन नामक क्षेत्रमें पहुँच गये। वहाँ विन्दुतीर्थमें स्नान करके उसके तटपर विद्यमान भगवान् पुरुषोत्तमका उन्होंने विधिपूर्वक पूजन किया। उसके बाद वे कोटीश्वर महालयको गये। वहाँके जलसे भलीभाँति आचमन करके सात्त्विक धर्ममें स्थित राजाने त्रिभुवनेश्वर (भुवनेश्वर) नामक लिङ्गका महास्नानकी विधिसे पूजन किया। फिर अनन्यचित्तसे भगवान् शङ्करका ध्यान करते हुए वे खड़े रहे। तब परमेश्वर भगवान् शङ्करने प्रसन्न होकर स्पष्ट वाणीमें कहा—'महाराज इन्द्रद्युम्न! थोड़े ही समयमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।' तत्पश्चात् उन्होंने नारदजीसे कहा—'महाभाग! ब्रह्माजीने जो आज्ञा दी है, उसे इस राजाद्वारा अश्वमेध यज्ञ कराते हुए पूर्ण करो। पुरुषोत्तमक्षेत्र साक्षात् भगवान् विष्णुका स्वरूप है। उसमें भी परम पुण्यमयी अन्तर्वेदी भगवान् विष्णुके हृदयके समान मानी गयी है, जिसकी रक्षाके लिये श्रीविष्णुने आठ स्वरूपोंमें मुझे स्थापित किया है। शङ्खाकार पुरुषोत्तमक्षेत्रके अग्रभागमें दुर्गा देवीके साथ मैं नीलकण्ठ नामसे निवास करता हूँ, वहीं इस राजाको ले चलो। इस समय नीलमणिमय विग्रहवाले भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये हैं। वहाँ मेरी आज्ञासे भगवान् श्रीनृसिंह-देवका क्षेत्र बनाओ। उस क्षेत्रमें हमारे समीप नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ करें। यज्ञ समाप्त होनेपर इन्हें वह अद्भुत ब्रह्मस्वरूप वृक्ष दिखलाओ। उसके द्वारा विश्वकर्मा चार प्रतिमाओंका निर्माण करेंगे और उन प्रतिमाओंकी स्थापनाके समय ब्रह्माजी स्वयं पधारेंगे। तदनन्तर ये राजा समस्त पापोंका नाश करनेवाले और सम्पूर्ण जगत्के आधारभूत भगवान् विष्णुका दर्शन करेंगे। काष्ठमय शरीर धारण करके प्रकट हुए भगवान् दर्शनमात्रसे मोक्ष प्रदान करनेवाले होंगे। नारद! भगवान् विष्णु अपनी आज्ञाके पालन एवं भक्तिसे प्रसन्न होते हैं।'

नारदजी भी जगद्गुरु महादेवजीको प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—प्रभो! आपने जो आदेश दिया है वैसा ही करनेके लिये ब्रह्माजीने भी मुझे आज्ञा दी है। नाथ! आप और ब्रह्माजी परमात्मा श्रीहरिसे भिन्न नहीं हैं। इन राजा इन्द्रद्युम्नकी भाग्य-समृद्धि महान् है, इसीसे इन्हें आप तीनों देवताओंका वह विशाल अनुग्रह प्राप्त हुआ, जिसको मनके द्वारा सोचा भी नहीं जा सकता था। जिनके प्रसङ्गसे पापी मनुष्य भी भवसागरसे तर जाते हैं, वे भूतभावन भगवान् विष्णु अचिन्त्य महिमावाले हैं। वे भगवान् कितनी भक्तिसे प्रसन्न होते हैं, यह बात बुद्धिमें नहीं आ सकती। वेदोंके स्वाध्याय आदि साधनोंद्वारा चिरंकालतक विद्वान् पुरुष यत्न करते रह जाते हैं, किंतु सफलता नहीं पाते। और एक नीच मनुष्य अनायास होनेवाले कर्मसे मोक्ष पा जाता है। वनचर ग्वालोंके घरमें रहकर दही-दूध एवं जंगली फल-मूलोंसे जीविका चलानेवाली गोपियाँ भगवान्के स्नेह-सुखका उपभोग करके ही मुक्ति पा गयीं। निरन्तर भगवान्से द्रोह रखनेवाला शिशुपाल भी राजसूय यज्ञकी सभामें भगवान्को कटु वचन सुनाकर भी मोक्षको प्राप्त हुआ। भगवान्का चरित्र ऐसा है, वैसा है, इस प्रकारके निश्चयका विषय नहीं है। बहुत समयतक महान् प्रयत्न करते रहनेपर भी भगवान् विष्णुके दिव्य चरित्रके विषयमें कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता। इस संसारमें पुरुषोत्तमक्षेत्रका निवास भगवान्की सायुज्यकी प्राप्ति करानेवाला है। भगवान् विष्णु इन्द्रद्युम्नके प्रसङ्गसे वहाँ सब लोगोंको प्रत्यक्ष दर्शन देंगे।

तदनन्तर महादेवजी 'तथास्तु' कहकर उसी क्षण अन्तर्धान हो गये।

राजा इन्द्रद्युम्नका नारदजीके साथ नृसिंहजी, कल्पवट तथा नीलमाधवके स्थानका दर्शन करना और आकाशवाणी सुनना

जैमिनिजी कहते हैं—तदनन्तर नारदजी और राजा इन्द्रद्युम्न पुरोहितके छोटे भाई विद्यापतिके साथ पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें नीलकण्ठ महादेवजीके समीप गये। वहाँ महादेवजीकी पूजा करके राजाने श्रीदुर्गाजीको भी प्रणाम किया। फिर सब लोग अपना उत्तम रथ छोड़कर अनुगामियोंसहित पैदल हो गये और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए नीलगिरिपर

चढ़नेके लिये आगे बढ़े। वह पर्वत नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त था। भाँति-भाँतिके पक्षी वहाँ कलरव करते थे। बड़ी-बड़ी चट्टानोंके कारण उस पर्वतका किनारा ऊँचा-नीचा एवं दुर्गम दिखायी देता था। वह नीलगिरि चारों ओरसे गोलाकार था। वे सब लोग उस मार्गसे गये, जहाँ काले अगुरु वृक्षके नीचे सब विपत्तियों और भयोंको हरनेवाले दिव्य सिंहरूपधारी भगवान् नृसिंह निवास करते हैं, जिनका दर्शन करके मनुष्योंकी कोटि-कोटि ब्रह्महत्याएँ विलीन हो जाती हैं। उनका मुख फैला हुआ है, दाँत बड़े भयङ्कर दिखायी देते हैं। कुछ पीले रंगके अयालों (गर्दनके बालों) से उनका मुखमण्डल व्याप्त है। वे तीन नेत्रोंसे युक्त एवं भयानक हैं। अपनी जाँघोंपर उत्तान सोये हुए दैत्यके वक्षःस्थलको वज्रतुल्य कठोर नखोंसे विदीर्ण कर रहे हैं। मुखपर अट्टहासकी छटा है, जिसमें लपलपाती हुई लाल रंगकी जिह्वा शोभा पाती है। उनके हाथोंमें शङ्ख और चक्र सुशोभित हैं। मस्तक किरीट-मुकुटसे उद्भासित हो रहा है। नेत्रोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलती हैं, जिनसे समस्त दिशाएँ संत्रस्त हो रही हैं। प्रचण्ड आघातके कारण भगवान्‌के चरण-कमल धरतीमें धँस गये हैं। उन आदिमूर्ति भगवान् नृसिंहका दर्शन करके सबने प्रणाम किया। इन्द्रद्युम्नने भी भगवान् नृसिंहका दर्शन करके नारदजीके वचनोंपर विश्वास किया और कहा—'महर्षे! मैं कृतार्थ हो गया। आप तो ज्ञानकी निधि हैं। मैं तो भगवान्‌के दर्शनमात्रसे ही सब पातकोंसे छूट गया। दयासिन्धु भगवान्‌की नीलमणिमयी मूर्ति किस स्थानपर विराजमान है, जो दर्शनमात्रसे ही मुक्ति देनेवाली है। विप्रवर! उसीका मुझे दर्शन कराइये।' तब नारदजीने राजा इन्द्रद्युम्नको उस परम पावन स्थानका दर्शन कराया, जहाँ भगवान् विष्णु स्वर्णमयी बालुकासे आच्छादित हो गये थे। मुनिने वहाँ ले जाकर राजासे कहा—'महाराज! इस दो योजन ऊँचे और एक योजनतक फैले हुए वटवृक्षको देखो। यह प्रलयकालमें भी स्थिर रहता है और मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है। इसकी छायामें जानेसे ही मानव पापसे मुक्त हो जाता है। इसकी जड़में प्राण त्याग करनेवाला मनुष्य मोक्षको प्राप्त होता है। फिर जो इसकी पूजा और स्तुति करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। इसके मूलभागसे पश्चिम और नृसिंहजीसे उत्तर भगवान् नीलमाधव विराजमान थे। वे ही तुमपर अनुग्रह करनेके लिये अब चार स्वरूपोंमें यहाँ प्रकट होंगे। जैसे श्वेत-द्वीपके भीतर भगवान्‌का अपना धाम है, उसी प्रकार जम्बू-द्वीपके अन्तर्गत यह पुरुषोत्तमक्षेत्र ही भगवान्‌का अपना धाम है। राजन्! जो मोक्षका अधिकारी है, वही इसकी महिमाको समझ पाता है। अन्य मनुष्योंके विशेषतः पाप-कर्मियोंके लिये यह विश्वासकी भूमि नहीं है। भगवान् जगन्नाथका अन्तर्धान होना या छिप जाना किसी विशेष कारण-से होता है, परंतु वे साधुपुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये प्रत्येक युगमें प्रकट होते रहते हैं। राजन्! भगवान् मत्स्य, कच्छप आदि अनेक अवतारोंके द्वारा जब अवतारका उद्देश्य पूर्ण कर देते हैं, तब कारणकी निवृत्ति हो जानेसे वे अन्तर्धान हो जाते हैं। परंतु वे ही दयासागर भगवान् इस पुरुषोत्तमक्षेत्रमें बिना किसी कारणके नित्य निवास करते हैं। जैसे श्वेतद्वीपसे जाकर भगवान् विष्णु अन्यत्र अवतार लेते हैं, उसी प्रकार यहाँ रहते हुए भी वे द्वारिका, काञ्ची और पुष्कर आदिमें कृपापूर्वक प्रकट होते हैं। राजन्! अनेकानेक तीर्थ, देश, क्षेत्र और मन्दिरोंमें भगवान् विराज रहे हैं।'

महात्मा नारदजीके दिखाये हुए उस स्थानको महाराज इन्द्रद्युम्नने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और भगवान्‌को वहाँ प्रत्यक्ष स्थित मानकर इस प्रकार स्तवन किया—'देवदेव! जगन्नाथ! शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले कमलनयन नारायण! मैं भवसागरमें डूबा हुआ हूँ, मेरा उद्धार कीजिये। परमेश्वर! एकमात्र आप ही दुःखराशिका विध्वंस करनेवाले हैं। क्षुद्र मनुष्य लेशमात्र सुखकी लिप्सासे क्षुद्र देवताओंकी सेवा करते हैं। भगवन्! आप भक्तिभावसे आराधना करनेपर मनुष्यों-को साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। अजामिल ब्राह्मणने अपने वर्णाश्रमोचित कर्मोंका परित्याग करके कौन-सा पाप नहीं किया था? किंतु नाथ! वह भी आपके नामका उच्चारण करनेमात्रसे मुक्त हो गया। आपके स्मरणमात्रसे ही पाश हाथमें लेकर आये हुए यमदूतोंने उसे छोड़ दिया। देवेश्वर! समस्त शास्त्रीय उपाय आपके दर्शनके लिये ही बताये गये हैं। आपका साक्षात्कार हो जानेपर हृदयके सभी संशय नष्ट हो जाते हैं, उसी क्षण मनुष्य सन्देहरहित हो जाता है। प्रभो! आप ही सबको आश्रय देनेवाले हैं। मुझ दीनपर अनुग्रह कीजिये। मैं आपसे केवल इतनी ही भीख माँगता हूँ कि आपकी जो मूर्ति यहाँ विराजमान है, उसका मैं इस नेत्रसे दर्शन करूँ। इसके सिवा दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है।

इस प्रकार हाथ जोड़े हुए राजा इन्द्रद्युम्नने भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करके पृथ्वीपर लोटकर उन्हें साष्टाङ्ग

प्रणाम किया। उस समय उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये थे। इसी समय आकाशवाणी हुई, जिसे इन्द्रद्युम्नने भी सुना—'राजन्! चिन्ता न करो, मैं तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन दूँगा। देवर्षि नारदने ब्रह्माजीका जो वचन तुमसे कहा है, उसके अनुसार कार्य करो।' उस दिव्य वाणीको सुनकर राजाने नारदजीसे कहा—'मुने! आपने ब्रह्माजीकी आज्ञासे जो कुछ कहा था, इस आकाशवाणीने भी उसीका अनुमोदन किया है। ब्रह्माजी साक्षात् जगन्नाथ हैं। इन दोनोंमें कुछ भी भेद नहीं है। आप ब्रह्माजीके पुत्र हैं, आपका वचन भगवान्‌का ही वचन है; अतः मुझे उसका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये।'

देवर्षि नारदजीके द्वारा भगवान् नृसिंहकी स्थापना और राजा इन्द्रद्युम्नके द्वारा उनका स्तवन

नारदजीने कहा—राजन्! चलो, अब हमलोग भगवान् नीलकण्ठके समीप चलें। वहीं सब राक्षसोंका संहार तथा समस्त विघ्नोंका निवारण करनेवाले भगवान् नृसिंहकी पश्चिमाभिमुख स्थापना करूँगा। इससे अन्तर्धानको प्राप्त हुए भगवान् विष्णु नृसिंहजीके रूपमें प्रकट होंगे और उनके समीप किया हुआ यज्ञ अतिशय फल देनेवाला होगा। तुम आगे चलो और शीघ्र ही वहाँ एक मन्दिर बनवाओ। मेरे स्मरण करनेसे विश्वकर्माका पुत्र आकर शीघ्र पश्चिमाभिमुख मन्दिरका निर्माण करेगा। भगवान् नीलकण्ठके दक्षिण सौ धनुषकी दूरीपर जो बहुत बड़ा चन्दनका वृक्ष है, उसके पश्चिमका स्थान क्षेत्र होगा। वहीं तुम्हें एक हजार यज्ञोंका अनुष्ठान करना है। तुम अभी जाओ। मैं पाँच दिनोंतक अभी यहीं ठहरूँगा और इन ज्योतिःस्वरूप अनन्तशक्तिसम्पन्न दिव्य नृसिंह भगवान्‌की आराधना करके एक अर्चाविग्रहमें इनकी प्रतिष्ठा करूँगा। वे उसमें प्राण, इन्द्रिय और मनके साथ विराजेंगे।

नारदजीकी यह बात सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न चन्दन-वृक्षके समीप गये। वहाँ उन्होंने विश्वकर्माके पुत्र सुघटकको उपस्थित देखा। सुघटक राजाको देखकर हाथ जोड़कर बोले—'देव! मैं शिल्पशास्त्रका ज्ञाता हूँ; इस समय आपके परम सुन्दर नृसिंह-भवनका निर्माण करूँगा।' राजा बोले—'तुम कोई साधारण शिल्पी नहीं, विश्वकर्माके पुत्र हो। यह नारदजीने मुझे बता दिया है। अतः प्राकार और तोरणके साथ नृसिंहजीका सुन्दर मन्दिर तुम शीघ्र तैयार करो। उसका मुख्य द्वार पश्चिमकी ओर होगा।' यों कहकर देवशिल्पीका विधिवत् पूजन-सत्कार करके राजाने उन्हें मन्दिरनिर्माणके कार्यमें नियुक्त किया और शिला-संग्रह करनेवाले सेवकोंको बहुत धन देकर उस कार्यमें लगा दिया। वह सुन्दर मन्दिर यद्यपि बहुत दिनमें बननेवाला था, तथापि देव-शिल्पीकी महिमासे चौथे दिन ही बनकर तैयार हो गया। तदनन्तर पाँचवें दिन सबेरे नित्यकर्मके पश्चात् प्रतिष्ठा-विधिकी सारी सामग्री एकत्र करके जब राजा नारदजीके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे तभी शङ्ख, मृदङ्ग, ढोल, गीत, मङ्गलवाद्य तथा हाथियोंके घण्टाके शब्द सहसा सुनायी पड़े। साथ ही उच्च स्वरसे जय-जयकारका शब्द आकाश-मण्डलमें गूँज उठा। इतनेमें ही नारदजी विश्वकर्माकी बनायी हुई सुन्दर नृसिंह मूर्तिको लेकर वहाँ आ गये। उस मूर्तिमें प्राणप्रतिष्ठा हो चुकी थी। उसने दिव्यमाला और वस्त्र धारण किये थे। उसपर दिव्य चन्दनका अनुलेप किया गया था। वह सब ओरसे तेजःपुञ्जसे व्याप्त थी और सबको हर्ष प्रदान करती थी। उसे देखकर राजा और उनके अनुयायी बहुत प्रसन्न हुए। सबने देवर्षि नारदजीकी प्रशंसा की। फिर निकटसे देखकर उसमें नृसिंहजीकी आकृति पहचानी और यह निश्चय किया कि यह आदिमूर्ति भगवान् नृसिंहजीकी प्रतिमा है। तब प्रसन्नचित्त हुए राजा इन्द्रद्युम्नने भगवान् नृसिंहकी परिक्रमा की और धरतीपर मस्तक रखकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तत्पश्चात् राजाके अनुरोधसे नारदमुनिने भूदेवी और लक्ष्मी देवीके साथ देवाधिदेव भगवान् नृसिंहकी प्रतिमाको रत्नमयी वेदीपर शुभ मुहूर्तमें स्थापित कराया। उसके बाद वैष्णव, ब्राह्मण, अन्यान्य नरेशगण तथा बुद्धिमान् नारदजीके साथ राजा इन्द्रद्युम्नने उपनिषदों और धर्मशास्त्रीय स्तोत्रोंद्वारा प्रसन्नता-पूर्वक भगवान्‌का स्तवन किया—'भगवन्! आप एक, अनेक, स्थूल, सूक्ष्म तथा अत्यन्त लघु शरीर धारण करते हैं, आप आकाशसे परे होकर भी आकाशस्वरूप हैं, आपका रूप सदा एकरस रहता है, अथवा आप अद्वितीयस्वरूप हैं। आपका आकार आकाशके समान सर्वव्यापी है, आप आकाशमें स्थित हैं, आकाशपर आरूढ़ हैं। व्योमकेश शिव तथा पद्मयोनि ब्रह्मा आपके ही स्वरूप हैं। दिव्य नृसिंहरूपमें प्रकट हुए परमात्मन्! आपका तेज कई करोड़ सूर्योंके समान है। प्रभो! आप दुःखरूपी समुद्रसे मेरा उद्धार कीजिये। आप नित्य सर्वत्र

हैं, दूर-से-दूर स्थित हैं, न दूर हैं, न समीप हैं तथा बोध्य और बोध आपके ही स्वरूप हैं। आप ज्ञेयके भी ज्ञेय हैं, ज्ञानगम्य होते हुए भी अगम्य हैं। मायासे अतीत हैं, आपतक किसी भी प्रमाणकी पहुँच नहीं है, तो भी लोग अनुमानसे आपके विषयमें विचार करते हैं। आप सबके आदि, सबके कर्ता, सबको अनुमति प्रदान करनेवाले तथा सबके पालक और संहारक हैं। विश्वसाक्षिन्! आपको नमस्कार है। आप ज्योतिः-स्वरूप, ज्ञानरूप, प्रकाशपुञ्ज, व्यूहाकार और सृष्टिके हेतु हैं। दुःखोंके विनाश करनेके एकमात्र कारण होकर भी आप वस्तुतः कारण नहीं हैं। सबके संशयोंको छिन्न-भिन्न करनेके लिये आप सबसे पहले प्रकट हुए हैं। स्वामिन्! आप मुझे अपने चरणारविन्दोंकी श्रेष्ठ भक्ति प्रदान कीजिये; जो चारों पुरुषार्थोंकी मूल कारण मानी गयी है। भक्तोंके अभीष्ट मनोरथकी पूर्ति करनेवाले आप भगवान् नृसिंहकी मैं शरण लेता हूँ। अपने चरणोंका आश्रय लेनेवाले लोगोंकी पापराशिका विनाश करनेवाले दयासागर श्रीनृसिंहजीको मैं प्रणाम करता हूँ। तीनों लोक जिनके उदरमें स्थित हैं, उन नृसिंहदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। दीनोंपर दया करनेवाले विष्णो! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। आप मुझ अनाथकी रक्षा कीजिये। मैं अपने इस चर्मचक्षुसे आपके दिव्य स्वरूपका दर्शन कर सकूँ, ऐसी कृपा कीजिये। आपकी कृपासे मेरे सहस्र अश्वमेधयज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हों; मेरी करोड़ों पापराशियाँ नष्ट हो जायँ। भगवन्! जो मनुष्य आपकी शरण लेते हैं, वे मोक्षके भागी होते हैं।'

इस प्रकार दिव्य नृसिंहकी स्तुति करके राजा इद्रद्युम्नके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बार-बार धरतीपर लेटकर भगवान्को दण्डवत् प्रणाम किया। जो लोग इस स्तोत्रसे दिव्य नृसिंहजीकी स्तुति करते हैं, उन्हें भगवान् नृसिंह मोक्ष प्रदान करते हैं। ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको स्वाती-नक्षत्रके योगमें महर्षि नारदने उस क्षेत्रमें दिव्य नृसिंहदेवकी स्थापना की है। जो लोग वहाँ उनका दर्शन करते हैं, वे सहस्र अश्वमेध यज्ञसे अधिक फल प्राप्त करते हैं। जो पञ्चामृत, दूध, नारियलके रस अथवा सुगन्धित जलसे भगवान् नृसिंहको नहलाते, खीर आदि उपचार समर्पित करके पूजा करते, जवाकुसुमकी माला, चन्दन, धूप, दीप और ताम्बूल चढ़ाकर, स्तुति-पाठ, जय-जयकार, परिक्रमा, प्रणाम तथा दानसे नृसिंहजीको सन्तुष्ट करते हैं, वे ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। वैशाखकी चतुर्दशीको शनिवारके दिन स्वातीनक्षत्र-में प्रदोषके समय भगवान् नृसिंहका आदि-अवतार हुआ है। उस तिथिको विधिपूर्वक नृसिंहजीकी पूजा करके मनुष्य अपने करोड़ों जन्मोंकी सञ्चित पापराशिको तत्काल भस्म कर देता है। जो भगवान् नृसिंहका दर्शन, स्पर्श, नमस्कार, भक्तिपूर्वक दण्डवत् तथा स्तुति करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

इन्द्रद्युम्नके द्वारा सहस्र अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान और ध्यानमें भगवान्का दर्शन

मुनियोंने पूछा—महर्षे! उस क्षेत्रमें भगवान् नृसिंहके स्थापित हो जानेपर राजा इन्द्रद्युम्नने क्या किया?

जैमिनिजी बोले—राजाने सर्वप्रथम इन्द्रादि देवताओंका आवाहन किया। छहों अङ्ग, पद और क्रमसहित चारों वेदोंके विद्वान् सहस्रों ऋषियों और ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया, जो यज्ञविद्यामें कुशल और मीमांसाशास्त्रमें परिनिष्ठित थे। सदाचारी, शुद्ध, कुलीन एवं सत्यवादी वैष्णवोंको भी आदरपूर्वक निमन्त्रित किया। राजाका सभा-भवन पत्थरका बना हुआ था। उसकी ऊँचाई बहुत थी और वह चूनेसे लेपा गया था। उसका विस्तार दो कोसका था। उसमें नीचेकी भूमि कहीं रत्नोंसे मढ़ी गयी थी, कहीं सोनेसे, कहीं स्फटिकमणिसे तथा कहीं चाँदीसे। उस भवनके चारों ओर सुखपूर्वक उतरनेके लिये सैकड़ों सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें सब सभासदोंकी बैठक बुलाकर राजाने सबको यथायोग्य आसन दिया। जब सब लोग यथा-योग्य स्थानपर सुखपूर्वक बैठ गये, तब राजाने अपने पुरोहितके साथ उपस्थित हो देवताओं, ऋषियों तथा राजाओंके बीचमें रत्नसिंहासनपर बैठे हुए शचीपति इन्द्रका दिव्य माला, चन्दन, वस्त्र और विष्टर (आसन) आदिके द्वारा सबसे पहले पूजन किया। तत्पश्चात् वैष्णवोंकी पूजा की। फिर नारद और पुरोहितसहित उन्होंने इन्द्रसे कहा—'देवेश्वर! मैं अश्वमेध-यज्ञद्वारा यज्ञपुरुष भगवान् विष्णुका पूजन करूँगा, आप इसके लिये मुझे आज्ञा दें और जबतक सहस्र यज्ञ पूर्ण न हो जायँ, तबतक देवताओंसहित आप इस सभाभवनमें निवास करें। आपने पहले यहाँ जिन शरीर-धारी नीलमाधवका दर्शन किया है, वे बालुकाराशिमें छिप

गये हैं। उनके पुनः प्रकाशमें आनेपर आपलोगोंका भी कल्याण होगा। इसीलिये मेरा सारा प्रयत्न है।' राजाके इस प्रकार सूचित करनेपर इन्द्रादि देवताओंने कहा— 'इन्द्रद्युम्न! तुम सचमुच महात्मा हो। तुमने इस पृथ्वीपर सत्यव्रतका पालन किया है। हमने पहलेसे ही तुम्हारे भविष्य कार्यक्रमको जान लिया है। तुम्हारा यह कार्य तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला है। हम इसमें तुम्हारे सहायक होंगे। तुम भक्तवत्सल भगवान् विष्णुका सहस्र अश्वमेध यज्ञोंद्वारा सुखपूर्वक पूजन करो।'

तदनन्तर राजाने यज्ञके आरम्भके लिये भगवान्‌का पूजन किया। भगवान् विष्णुको सभाभवनमें इष्टदेवके स्थानपर बिठाकर राजा अपनी पत्नीके साथ निश्चित लग्नकी प्रतीक्षा करने लगे। स्वस्तिवाचन हो जानेपर पुण्याहवाचन और आभ्युदयिक श्राद्ध सम्पन्न किया। उसके बाद सब सामग्री लेकर राजाने ऋत्विजोंका वरण किया। वरण हो जानेपर उन्होंने सपत्नीक राजाको यज्ञकी दीक्षा दी। वेदीका संस्कार करके उसपर प्रज्वलित आहवनीय अग्निकी स्थापना की गयी। वह अग्नि साक्षात् भगवान् विष्णुका तेज है। फिर प्रोक्षण और अभिमन्त्रण करके उत्तम लक्षणोंवाले अश्वको छोड़ा गया। यज्ञकी दीक्षा लिये हुए राजा मौन होकर मृगचर्मपर बैठे। जबतक महायज्ञका कार्य चलता रहा, तबतक सब मनुष्योंके लिये वहाँ छः प्रकारके अन्न-पान आदि चतुर रसोइयोंद्वारा तैयार किये जाते थे। उस यज्ञमें प्रतिदिन लोगोंके सम्मान और आदरमें वृद्धि होती थी। साथ ही नित्य नये-नये भोज्यपदार्थ एक-से-एक बढ़कर प्रस्तुत किये जाते थे। वहाँ सर्वत्र प्रयत्न करके लोगोंका आदर-सम्मान किया जाता और आग्रहपूर्वक भोजन कराया जाता था। वहाँ किसीको याचना नहीं करनी पड़ती थी। कोई विमुख नहीं लौटता था। महाराजके महल सब मनुष्योंके लिये अपने घरके समान हो गये थे। भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले उस यज्ञमें यज्ञानुष्ठानमें कुशल तथा सदाचारविभूषित विद्वान् कार्य करते थे। अग्न्याधानसे लेकर अवभृथ-प्रचारतक सब कार्य क्रमशः और विधिके अनुसार सम्पन्न हुए। कोई भी मन्त्र कभी स्वर और वर्णसे हीन नहीं होने पाया। विधिके विधायक महर्षि ही वहाँ यज्ञ-कर्मके अधिष्ठाता थे; अतः कर्ममें कहीं कोई त्रुटि नहीं होने पाती थी। वहाँ सप्तर्षि याज्ञवल्क्य आदि मुनि, जो गुण-दोषका विभाग करनेवाले हैं, यज्ञके दिव्य सदस्य, यज्ञके साक्षी और यज्ञ-कर्म करानेवाले थे उन्हींका ऋत्विजोंके रूपमें वरण कराया गया था। यज्ञमें सम्मिलित हुए मुनिलोग परस्पर कथा-वार्ताके प्रसङ्गमें वैदिक वाकोवाक्य, सूक्त तथा गुह्य उपनिषद्‌की चर्चा करते थे। सब पापोंका नाश करनेवाले भगवच्चरित्रोंकी कथा वहाँ सभामें हुआ करती थी। राजा इन्द्रद्युम्नके यज्ञमें सब देवता प्रत्यक्ष होकर हविष्य ग्रहण करते थे। वह यज्ञ तीनों लोकोंको प्रसन्न करनेवाला था।

इस प्रकार क्रमशः विधिपूर्वक चलनेवाला वह अश्वमेध-यज्ञ नौ सौ निन्यानबेकी संख्यातक पहुँच गया। जब अन्तिम यज्ञ होने लगा, तब राजा इन्द्रद्युम्न प्रतिदिन दिव्यावस्थाको प्राप्त होने लगे। सुत्या (सोमरस निकालनेके दिन) से सात दिनके बाद जो रात्रि आयी, उसके चौथे पहरमें राजा इन्द्रद्युम्नने अविनाशी भगवान् विष्णुका ध्यान किया। उस ध्यानमें उन्होंने स्फटिकमणिमय श्वेतद्वीपको प्रत्यक्ष हुआ-सा देखा। उसके चारों ओर क्षीरसमुद्र लहरा रहा था। उस श्वेतद्वीपके मध्यभागमें दिव्य मणियोंका बना हुआ एक उत्तम मण्डप दिखायी दिया। उसके भीतर प्रकाशमान रत्नसिंहासन सुशोभित था। उस रत्नसिंहासनपर मध्यभागमें शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका दर्शन हुआ। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति नीलमेघके समान श्याम थी। वे वनमालासे विभूषित थे। उनके दाहिने भागमें हिमालयके सदृश गौर तथा कोटि चन्द्रमाओंके समान कान्तिमान् धरणीधर अनन्त विराजमान थे, जो फणरूपी मुकुटका विस्तार करके सुन्दर छत्रके आकारमें परिणत हो गये थे। उनका स्वरूप बड़ा ही मनोहर था। उनके कानोंमें दो रत्नमय कुण्डल झिलमिला रहे थे। शरीरपर सुन्दर नील वस्त्र शोभायमान था। भगवान्‌के वाम भागमें शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न भगवती लक्ष्मी विराजमान थीं। उनके हाथोंमें वर और अभयकी मुद्रा तथा कमल सुशोभित थे। उनके शरीरकी कान्ति कुङ्कुमके समान थी और नेत्र बड़े सुन्दर थे। वे कमलके आसनपर बैठी हुई थीं। भगवान्‌के आगे ब्रह्माजी हाथ जोड़े खड़े थे। श्रीहरिके वाम भागमें नाना मणिमय सुदर्शनचक्र स्थित था। सनकादि मुनीश्वर उन जगद्गुरु भगवान् विष्णुकी स्तुति कर रहे थे। ध्यानमें भगवान्‌का इस प्रकार दर्शन पाकर राजा इन्द्रद्युम्नको बड़ा हर्ष हुआ। वे गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे।

इन्द्रद्युम्न बोले—जगदाधार ! आपको नमस्कार है । जगदात्मन् ! आपको नमस्कार है । कैवल्यस्वरूप ! त्रिगुणातीत ! गुणाञ्जन ! आपको नमस्कार है । आप विशुद्ध निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । शब्दब्रह्म नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है । जगत्स्वरूप ! आपको नमस्कार है । संसारसागरमें गिरे हुए दीन-दुखी मनुष्योंके दुःखका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है । हृदयकी दुर्भेद्य ग्रन्थियोंका भेदन करनेवाले आपको नमस्कार है । आप चौदह भुवनरूपी भवनके मूलस्तम्भ हैं । आपको नमस्कार है । कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी रचना करनेवाले शिल्पीरूप आप भगवान् चक्रपाणिको नमस्कार है । आप करुणारूपी अमृतसिन्धुको बढ़ानेवाले चन्द्रमा हैं, आपको नमस्कार है । दीनोंका उद्धार करनेके लिये एकमात्र गुप्त दयासिन्धु-स्वरूप आपको नमस्कार है । जगत्‌को प्रकाशित करनेवाले जो सूर्य आदि ज्योतिर्मय ग्रह और नक्षत्र हैं, उनकी भी ज्योति आप हैं; आपको नमस्कार है । आप अन्तःकरणके पापोंको जलानेके लिये प्रदीप्त अग्निरूप हैं, आपको नमस्कार है । आप सबको पवित्र करनेवाले हैं । पवित्र वस्तुओंमें सबसे अधिक पवित्र हैं, आपको बार-बार नमस्कार है । आप सबसे अधिक भारी, सबसे महान् और सबसे अधिक विस्तारयुक्त हैं, आपको बार-बार नमस्कार है । आप अतिशय निकट बहुत ही दूर और अत्यन्त छोटे हैं, आपको बार-बार नमस्कार है । नारायण ! आप सबसे श्रेष्ठ और परम पवित्र हैं, आपको नमस्कार है । जगन्नाथ ! मेरी रक्षा कीजिये । दीनबन्धो ! आपको नमस्कार है । प्रभो ! आपको सुखदायिनी नौकाके रूपमें पाकर मैं भवसागरके पार हो गया । रमानाथ ! आपका दर्शन होनेसे मेरे सब क्लेश दूर हो गये । आप सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं । आपको प्राप्त हुए मनुष्योंके दुःखोंका सर्वथा नाश हो जाता है ।

इस प्रकार ध्यानमें स्थित हुए राजा इन्द्रद्युम्नने जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी यों स्तुति करके उन्हें प्रणाम किया । फिर ध्यानके अन्तमें राजाको अपने आपका भान हुआ । वे सोचने लगे—यहाँपर भगवान् विष्णु कैसे स्वयं मेरे प्रत्यक्ष होंगे ? इस चिन्तासे उनका मन व्याकुल हो उठा । उन्होंने नारदजीसे सब बातें कहीं । तब नारदजीने आश्वासन देते हुए कहा—'राजन् ! अब तुम्हारा शोक समाप्त हो गया । इस यज्ञके अन्तमें भगवान् तुम्हें यहाँ प्रत्यक्ष दर्शन देंगे । ये सब बातें दूसरे किसीके आगे प्रकाशित न करना ।'

अश्वमेधकी पूर्ति, आकाशवाणी, भगवान्‌की काष्ठमयी प्रतिमाका निर्माण, संस्कार तथा स्तवन

जैमिनिजी कहते हैं—तदनन्तर राजाके अश्वमेध यज्ञमें सुत्या (सोमरस निकालने) का उत्सव प्रारम्भ हुआ । उसमें दीनोंको बेरोक-टोक मनोवाञ्छित दान दिये जाने लगे । उस समय नारदजीने नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नसे कहा—'राजन् ! अब पूर्णाहुतिका कार्य समाप्त हो, जिससे यह यज्ञ सफल हो जाय । पहले ध्यानमें तुमने जो कुछ देखा है, उसके अनुसार तुम्हारे भाग्योदयका समय समीप आ गया है । श्वेतद्वीपमें जिन विश्वमूर्ति अविनाशी विष्णुका तुमने दर्शन किया है, उनके शरीरसे गिरा हुआ रोम वृक्षभावको प्राप्त हो जाता है । वह इस पृथ्वीपर स्थावररूपमें भगवान्‌का अंशावतार होता है । भक्तवत्सल भगवान् अब उसी रूपमें अवतीर्ण हो रहे हैं । तुम्हारे ही सौभाग्यसे सर्वपापापहारी भगवान् यहाँ सब लोगोंके नेत्रोंके अतिथि बनेंगे । अब यज्ञान्तस्नान समाप्त करके वृक्षरूपमें प्रकट हुए यज्ञेश्वर भगवान् विष्णुको तुम इस महावेदीपर स्थापित करो ।' इस प्रकार विचार करके नारद और इन्द्रद्युम्न दोनों प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये

और उस वृक्षको देखकर 'इसके रूपमें साक्षात् ब्रह्म भगवान् विष्णु प्रकट हो गये' ऐसा मानते हुए सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। चार शाखाओंसे युक्त उस चतुर्भुज वृक्षका दर्शन करके राजाने अपने परिश्रमको सफल माना। फिर नीलमणि माधवके अन्तर्धान होनेका जो शोक था, उसे उन्होंने त्याग दिया और बार-बार उस वृक्षको प्रणाम करके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुए राजाने ब्राह्मणोंसे उस वृक्षको मँगवाया। वे लोग माला और चन्दनसे विभूषित विष्णुके उस दिव्य वृक्षको महावेदीपर ले आये। नारदजीके कहनेके अनुसार राजाने उस वृक्षका पूजन किया और पूजा समाप्त करके मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे पूछा—'मुने! भगवान् विष्णुकी कैसी प्रतिमाएँ बनेंगी और उन्हें कौन बनायेगा?' नारदजीने उत्तर दिया—'राजन्! भगवान्‌की लीला सब लोकोंसे परे है, उसे कौन जान सकता है।' इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि ऊपरसे आकाशवाणी सुनायी दी—'भगवान् विष्णु अत्यन्त गुप्त रक्खी हुई महावेदीपर स्वयं अवतीर्ण होंगे। पंद्रह दिनोंतक इसे ढक दिया जाय। हाथमें हथियार लेकर उपस्थित हुआ जो यह बूढ़ा बढ़ई है, इसे भीतर प्रवेश कराकर सब लोग यत्नपूर्वक दरवाजा बंद कर लें। जबतक मूर्तियोंकी रचना हो, तबतक बाहर बाजे बजते रहें; क्योंकि रचनाका शब्द कानमें पड़नेपर वह बहरा बना देनेवाला है। कोई भी भीतर प्रवेश न करे और न कभी देखनेकी चेष्टा करे; क्योंकि वहाँ काम करनेवालेके अतिरिक्त जो भी देखेगा, उसके दोनों नेत्र अन्धे हो जायँगे।'

तत्पश्चात् राजाने जिस प्रकार आकाशवाणीने कहा था, वैसी ही व्यवस्था कर दी। क्रमशः पंद्रहवाँ दिन आते ही भगवान् स्वयं चार विग्रहोंमें प्रकट हुए। बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शनचक्रके साथ भगवान् जनार्दन दिव्य सिंहासनपर विराजमान हुए। भगवान्‌के चार दिव्य रूप सम्पन्न हो जानेपर सम्पूर्ण विश्वके उपकारके लिये पुनः आकाशवाणी हुई—'राजन्! इन चारों प्रतिमाओंको वस्त्रोंसे भलीभाँति आच्छादित करके इन्हें अपने-अपने स्वाभाविक रंगकी प्राप्ति कराओ। भगवान् जनार्दन नीलमेघके समान श्यामवर्ण धारण करें, भगवान् बलभद्र शङ्ख और चन्द्रमाके समान गौर वर्णसे विराजमान हों, सुदर्शन चक्रका रंग लाल होना चाहिये और सुभद्रादेवी कुङ्कुमके समान अरुण वर्णकी होनी चाहिये। इन विग्रहोंपर पहलेका किया हुआ रंग आदि संस्कार छूटनेपर प्रतिवर्ष नूतन संस्कार कराना चाहिये। केवल दिव्य वल्कल-लेप रहने देना चाहिये। यदि कोई प्रमादवश इस लेपको दूर करेगा तो राज्यमें दुर्भिक्ष और महामारी फैलेगी। राजन्! तुम्हें भी नग्न रूपमें इन मूर्तियोंका दर्शन नहीं करना चाहिये। अन्य मनुष्य भी यदि नग्न रूपमें देखेंगे तो उनके लिये भी ये भय उपस्थित करनेवाली होंगी। नाना प्रकारके लेपसे लिप्त एवं विचित्र शृङ्गारोंसे युक्त मूर्तियोंका ही दर्शन करना चाहिये। राजन्! तुम्हारे ऊपर कृपा करके भगवान् प्रकट हुए हैं और तुम्हारे ही प्रसादसे वे सब जीवोंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रदान करेंगे। नीलाचलपर कल्पवृक्षके वायव्य कोणमें सौ हाथकी दूरीपर और भगवान् नृसिंहके उत्तर भागमें जो बहुत बड़ा मैदान है, उसमें अत्यन्त सुदृढ़ और हजार हाथ ऊँचा मन्दिर बनवाकर उसीमें भगवान्‌की स्थापना करो। पहले इस पर्वतपर जो प्रतिदिन भगवान् नीलमाधवका पूजन करता था, वह विश्वावसु नामवाला शबर (भील) वैष्णवोंमें श्रेष्ठ है। उसके साथ तम्हारे पुरोहितकी मित्रता हो चुकी है। इन्हीं दोनोंकी सन्ततिको भावी उत्सवोंमें भगवान्‌के विग्रहका लेप और संस्कार करनेके कार्यमें लगाया जाय।'

इतना कहकर वह दिव्य आकाशवाणी मौन हो गयी। उसका उपदेश सुनकर राजाने प्रसन्नतापूर्वक उसका पालन किया। जब बलराम, श्रीकृष्ण, सुभद्रा तथा सुदर्शन चक्रार आकाशवाणीके कथनानुसार लेप आदि संस्कार हो गया, तब उनकी आकृति बड़ी ही सुन्दर हो गयी। उसके बाद राजाने महावेदीका पर्दा खुलवा दिया। फिर सबने रत्नसिंहासनपर विराजमान भगवान्‌की झाँकी की। (वस्त्रालङ्कारोंसहित) उन भगवद्विग्रहोंका दर्शन करके राजा इन्द्रद्युम्न आनन्दके समुद्रमें डूब गये और नेत्रोंको कुछ-कुछ बंद किये प्रेमके आँसू बहाते हुए हाथ जोड़कर खम्भेके समान खड़े रहे। तब नारदजीने राजासे कहा—'नृपश्रेष्ठ! कमलके समान नेत्रोंवाले इन भगवान् जगन्नाथका दर्शन करो। ये भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये सम्पूर्ण ज्ञानकी निधि हैं। इन्हीं श्रीहरिको देखनेके लिये योगीलोग मनको संयममें रखकर सदा प्रयत्न करते रहते हैं। वे ही भगवान् विष्णु आज काष्ठमय शरीरमें स्थित हो तुमपर अनुग्रह करनेके लिये प्रत्यक्ष हुए हैं। इन करुणासागर भगवान्‌की स्तुति करो।'

नारदजीके द्वारा इस प्रकार सचेत किये जानेपर राजा इन्द्रद्युम्नने करुणामय जगन्नाथका स्तवन किया—'दयासागर मुरारे! कहाँ तो ब्रह्मा, रुद्र तथा इन्द्रके मुकुटोंमें मग्न हुए आपके निर्मल युगलचरणारविन्द और कहाँ मल, मूत्र, रक्त, मांस एवं हड्डियोंसे बना और चमड़ेसे ढका हुआ मुझ दीनका यह

अधम शरीर ? ईश ! इस असार संसारमें भटकते रहनेके कारण मैं श्रमसे व्याकुल हूँ । भला आपको कैसे जानूँ ? देव ! मैंने अपने कर्मोंद्वारा सुख भोगनेके लिये जिन विषय-भोगोंका संग्रह किया, वे ही परिणाममें मेरे लिये दुःखरूप हो गये। अतः मेरे समान दुखी दूसरा कोई नहीं है। प्रभो ! यदि मैंने पहले कभी मनसे भी आपकी उपासना की होती तो दुःख भोगनेके लिये बार-बार नाना प्रकारके जन्म मुझे क्यों प्राप्त होते ? मुरारे ! क्या आपके चरणारविन्दोंसे दूर रहनेका ही यह फल नहीं है ? सम्पूर्ण पृथ्वीके धनसे भरा हुआ मेरा खजाना, सेना, मनके अनुकूल सैकड़ों स्त्रियाँ और निष्कण्टक राज्य यह सब कुछ आपके तत्त्वज्ञानसे शून्य पशुके तुल्य मुझ अधमके लिये बड़ा भारी भार हो रहा है। इसमें सदा कष्ट ही प्राप्त हुआ करता है। दीनोंपर दया करनेवाले प्रभो ! आपके स्मरण करनेमात्रसे ही जीवकी मुक्ति होती है। इस संसारमें आपके सिवा मेरा कोई बन्धु नहीं है। मेरी बुद्धि आपके चरणारविन्दोंसे कभी अलग न हो। आप सच्चिदानन्दमय परिपूर्ण सिन्धु हैं। जो सहस्रों जन्मोंका भाग्योदय होनेपर आपको पा गये हैं, वे क्या कभी लेशमात्र सुख और अनन्त दुःखोंसे भरे हुए विषय-भोगरूपी इन्द्रजालकी ओर आँख उठाकर देखते हैं ? कहाँ तो जिसमें लेशमात्र सुख और अनन्त दुःखोंकी खानरूप सैकड़ों ग्रन्थियाँ हैं, ऐसे कर्मोंका अटूट बन्धन और कहाँ अनन्त, अनादि, एक एवं आनन्दप्रद आपके पवित्र चरणारविन्द ? सबपर स्वभावतः कृपा करनेवाले प्रभो ! मूलभूत आप परमेश्वरको न पाकर तुच्छ कार्यके लिये बहुत भटकनेवाले क्लेशके ही भाजनरूप मुझ अत्यन्त दीनकी रक्षा कीजिये। सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र वन्दनीय विष्णुदेव ! वेदान्तवेद्य ! अव्यय ! विश्वनाथ ! आप ही समस्त पापराशियोंका नाश करनेमें समर्थ हैं। बलवानोंमें श्रेष्ठ बलभद्र ! आपका विग्रह सहस्रों फणोंसे आवृत है। आप ईश्वर हैं, मैं आपकी शरणमें आया हूँ। संसारको आश्रय देनेवाली तथा सम्पूर्ण देवताओंको उत्पन्न करनेवाली मङ्गलमयी सुभद्राके दोनों चरणोंको प्रणाम करता हूँ। हे नाथ ! यह ब्रह्माण्डोंका समूह जिसकी किरणोंके समुदायसे रचा गया है और जो दैत्योंकी सेनाका संहार करनेवाला है, उस सुदर्शन चक्रके रूपमें आपको मैं प्रणाम करता हूँ।'

इस प्रकार स्तुति करके श्रेष्ठ राजा इन्द्रद्युम्नने भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—'अनाथोंके बन्धु जगन्नाथ ! संसार-समुद्रमें डूबे हुए मुझ दीन तथा दुःख-शोकसे व्याकुल मनुष्यका आप कृपापूर्वक उद्धार करें।'

तत्पश्चात् नारदजीने कहा—अपार भवसागरसे पार उतारनेमें तत्पर भगवान् नारायण ! आपकी जय हो, जय हो। सनक, सनन्दन और सनातन आदि श्रेष्ठ योगी आपके दिव्य तत्त्वका चिन्तन करते रहते हैं। आप सर्वलोकस्वरूप, सब लोगोंको सुख देनेवाले, सम्पूर्ण विश्वके उपकारक तथा समस्त जगत्‌के वन्दनीय हैं। कोटि-कोटि ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, साध्य तथा सिद्धगण आपके लीला-विलाससे उत्पन्न हैं। सम्पूर्ण देवता और दानव आपके चरणोंमें प्रणाम करते हैं। त्रिभुवनगुरो ! आप किसीके भी पूर्णतया जाननेमें नहीं आते। आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

तदनन्तर अन्यान्य राजा, वेदोंके पारङ्गत विद्वान्, श्रोत्रिय मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा विद्वान् वैश्य जातिके लोगोंने भी वैदिक सूक्तों, स्तोत्रों, पौराणिक स्तुतियों और स्वरचित कविताओंसे, जैसे बना उसी प्रकार, बलभद्र और सुभद्राके साथ कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन किया। इसके बाद राजाने पुरोहितजीसे भगवान् वासुदेवकी पूजाके लिये सामग्री संग्रह करनेको कहा। फिर नारदजीके उपदेशसे स्वयं राजाने ही विधि एवं मन्त्रोच्चारणके साथ क्रमशः उन सब विग्रहोंका पूजन किया। द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रसे बलभद्रजीकी पूजा की। इसी मन्त्रके द्वारा उपासना करके ध्रुवजीने परम उत्तम स्थान प्राप्त किया है। पुरुषसूक्तसे राजाने यथाशक्ति भगवान् नारायणकी पूजा की। देवीसूक्तसे सुभद्राका और सुदर्शन सम्बन्धिनी ऋचासे सुदर्शन चक्रका पूजन किया। इस प्रकार अपने वैभवके अनुसार भक्तिपूर्वक उन सबकी पूजा करके भगवत्प्रीतिके लिये उन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दिया। इसके बाद राजाने शुभ समय एवं शुभ नक्षत्रमें नारद आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करके स्वस्तिवाचन कराया और जगन्नाथजीका स्मरण करते हुए वास्तुपूजनपूर्वक शिल्पीका भी पूजन किया। भगवान् विष्णुके उस काष्ठमय अवतारको देखकर कृतार्थ एवं पापरहित हुए राजाओंको इन्द्रद्युम्नने बड़े आदरके साथ विदा किया।

देवताओं तथा ब्रह्माजीके द्वारा भगवद्विग्रहोंका स्तवन और उनकी स्थापना

जैमिनिजी कहते हैं—तदनन्तर राजा इन्द्रद्युम्नने शिल्पशास्त्रमें प्रवीण सब कारीगरोंको मन्दिरके निर्माणकार्यमें नियुक्त किया। थोड़े ही समयमें मन्दिर बनकर इतना ऊँचा हो गया कि वह नीचेसे दिखायी नहीं पड़ता था। उस समय भारतवर्षमें जितने समकालीन राजा थे, वे सभी राजा इन्द्रद्युम्नके उस कार्यमें संलग्न थे। वह मन्दिर ऊँचाईमें

आकाशको छूता था और चौड़ाईमें सब दिशाओंको पूरा कर रहा था। उसमें स्थान-स्थानपर सुवर्ण जड़ा हुआ था और अनेक प्रकारके रत्नोंसे वह परम उज्ज्वल प्रतीत होता था। कहीं स्फटिक-शिलाका योग होनेसे उसकी छवि शरद्‌ऋतुके बादलोंकी-सी श्वेत जान पड़ती थी। कहीं काले पत्थरकी बनी हुई दीवार बादलोंकी काली घटा-सी दिखायी पड़ती थी। इस प्रकार परम सुन्दर बने हुए भगवान् विष्णुके मनोहर प्रासादमें विधिपूर्वक गर्भप्रतिष्ठा करके बिजली गिरने आदि उपद्रवोंसे मन्दिरको कोई क्षति न पहुँचे, इसके लिये शिल्पशास्त्रोंमें निश्चित विधानके अनुसार अपने पुरुषार्थसे उपार्जित की हुई मणि आदिको यथायोग्य स्थानोंपर लगाया। फिर मन्दिर-निर्माणके लिये आवश्यक सामग्रीके अनुरूप बहुमूल्य वस्तुओं-का वहाँ यत्नपूर्वक संग्रह करवाया। तीनों लोकोंके राजा मन-से भी जिसकी सम्भावना नहीं कर सकते थे, ऐसे मनोहर एवं कीर्ति बढ़ानेवाले मन्दिरका निर्माण होने लगा। उसके तैयार हो जानेपर राजा इन्द्रद्युम्नने मुनिवर नारदजीसे कहा—'देवताओं और असुरोंके लिये भी जो असम्भव था, वह सब मेरा कार्य भगवत्कृपासे सम्पन्न हो गया।' यह कहकर उन्होंने नारदजीके चरणोंमें प्रणाम किया। नारदजीने भी राजाको उठाकर उनका सत्कार किया और कहा—'राजन्! इस समय तुम जीवन्मुक्त हो गये हो। भगवान्‌के चरणारविन्दोंमें अनन्य भक्तिपूर्वक तुम्हारा चित्त जिस प्रकार लगा हुआ है, उससे बढ़कर मनुष्यके लिये और कौन-सा पुरुषार्थ हो सकता है? भूपाल! तीर्थ, मन्त्र, जप, दान, बहुत दक्षिणावाले यज्ञ, व्रत, स्वाध्याय और तपस्यासे भी जिसे प्राप्त करना असम्भव है, वही केवल भक्तिसे तुम्हारे हाथमें आ गया है। राजेन्द्र! तुम दीर्घकालतक पृथ्वीपर स्थित रहकर बड़े-बड़े उत्सवों और उपचारोंसे जगन्नाथजीकी उत्कृष्ट पूजा करो।'

तत्पश्चात् इन्द्रद्युम्नने जगन्नाथजीको दण्डवत्-प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की—'ब्रह्मण्यदेव भगवान्‌को नमस्कार है। गौओं और ब्राह्मणोंके हितैषी, शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले तथा चार पुरुषार्थोंके एकमात्र हेतु भगवान् श्रीहरि-को नमस्कार है। हिरण्यगर्भरूप पुरुष और प्राकृत व्यक्त जगत् दोनों आपके स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। शुद्ध ज्ञानस्वरूप सच्चिदानन्दमय भगवान् वासुदेवको नमस्कार है।' इस प्रकार स्तुति करते हुए राजाके नेत्रोंमें आँसू भर आया। उन्होंने परिक्रमा करके बार-बार भगवान्‌को प्रणाम किया। तदनन्तर जो अन्य देवता वहाँ आये थे, वे प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌को प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले— परब्रह्म और परमात्माके नामसे जिसकी महिमाका गान किया जाता है, वह पुरुष ही भूत, वर्तमान और भविष्य सब कुछ है। इतनी इसकी महिमा (अपार वैभव) है। यह परम पुरुष श्रीहरि सबसे ज्येष्ठ और सबका स्वामी है। सम्पूर्ण विश्व इसके एक अंशमें स्थित है। इसका शेष तीन अंश विशुद्ध अमृतस्वरूप है, जो परम व्योममें विराजमान है। भगवन्! वह अमृतमय पुरुष आप ही हैं। आप-से ही वेद प्रकट हुए हैं, यज्ञमय पुरुष भी आपसे ही उत्पन्न हैं। आपसे ही घोड़े, गौ और भेड़ आदि पशु उत्पन्न हुए हैं। ब्राह्मण आपके मुखसे प्रकट हुए हैं, क्षत्रिय आपकी भुजाओंसे उत्पन्न हैं, वैश्योंका जन्म आपके ऊरुसे हुआ है तथा शूद्र आपके चरणोंसे प्राप्त हुए हैं। आपके मनसे चन्द्रमा, नेत्रसे सूर्य, कानों और प्राणोंसे वायु तथा जिह्वासे अग्निकी उत्पत्ति हुई है। आपकी नाभिसे आकाश, मस्तक-से स्वर्ग, पैरोंसे पृथ्वी और कानोंसे आठो दिशाएँ प्रकट हुई हैं। आपहीसे यज्ञकुण्डकी सात परिधियाँ (मेखलाएँ) तथा इक्कीस समिधाएँ प्रकट हुई हैं। समस्त चराचर भाव आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी और संरक्षक हैं। परमेश्वर! भयानक रूप धारण करके सृष्टिका संहार करनेवाले भी आप ही हैं। आप ही यज्ञ, यज्ञांश, यज्ञेश तथा परात्पर परमात्मा हैं। आप शब्दब्रह्मसे परे और शब्दब्रह्मरूप ही हैं। जगन्नाथ! आप ही विश्वराट्, स्वराट्, सम्राट् और विराट् हैं। जगत्पते! आप जगत्-स्वरूप हैं। आपने ही ऊपर-नीचे तथा दायें-बायें सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त कर रक्खा है। आपका यजन करनेवाले याज्ञिक पुरुष परम धामको प्राप्त होते हैं। आप ही भोज्य, भोक्ता, हविष्य, होता, हवन और उसके फलदाता हैं। प्रभो! आप समस्त कर्मोंके भोक्ता, सर्वकर्मस्वरूप, सब कर्मोंके उपकरण तथा सम्पूर्ण कर्मोंके फल देनेवाले हैं। आप ही सत्कर्मोंके लिये प्रेरणा करते हैं। धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि देनेवाले भी आप ही हैं। हृषीकेश! मुक्ति देनेवाला भी आपके सिवा दूसरा कौन है? आपको नमस्कार है। आपका कहीं अन्त नहीं है। आपके सहस्रों रूप, सहस्रों पैर, नेत्र, मस्तक, ऊरु और भुजाएँ हैं। आपको नमस्कार है। सहस्रों कोटि युगोंको धारण करनेवाले और सहस्रों नामोंवाले आप सनातन पुरुषको

नमस्कार है। प्रभो! संसारसमुद्रमें गिरे हुए प्राणीको शरण देनेवाले एकमात्र आप ही हैं। आपकी सृष्टिमें आपके समान दीनोंकी रक्षा करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। दीनों और अनाथोंके एकमात्र आश्रय आप हैं। प्रभो! आप ही इस जगत्के पिता, पालक, पोषक और सम्पूर्ण आपत्तियोंका निवारण करनेवाले हैं। जगन्नाथ! विष्णो! हमारी रक्षा कीजिये। परमेश्वर! हमारी रक्षा कीजिये। कमलाकान्त! आपके सिवा कौन हमारी रक्षा करनेमें समर्थ है? अन्तर्यामिन्! आपको नमस्कार है। सर्वतेजोनिधे! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करके देवताओंने बार-बार प्रणाम किया और इन्द्रद्युम्नके साथ बाहर निकलकर सब-के-सब भगवान् नृसिंहके क्षेत्रमें गये। वहाँ साष्टाङ्ग प्रणाम और नमस्कार करके परम भक्तिपूर्वक उन्होंने श्रीनृसिंहदेवका पूजन किया। उसके बाद वे नीलाचलके शिखरपर, जहाँ उत्तम प्रासादका निर्माण हुआ था, गये। देवताओंने आकाशमण्डलमें व्याप्त उस उच्चतम मन्दिरको देखा। राजा इन्द्रद्युम्नने विचार किया कि यह पूर्ण हुआ भगवान्का उत्तम मन्दिर दीर्घकालके बाद मेरे दृष्टिपथमें आया है। यह सब भगवान्के अनुग्रहसे हुआ है, इसमें मनुष्यका कोई पुरुषार्थ नहीं है। तदनन्तर उन्होंने अपने सहायकोंसे कहा—'जब काष्ठमय शरीर धारण करके स्वयं भगवान् यहाँ प्रकट हुए थे, उस समय आकाशवाणीने मुझसे कहा था कि तुम नीलाचलके शिखरपर जगन्नाथजीकी प्रतिष्ठाके लिये एक हजार हाथका मन्दिर बनाओ, उसकी स्थापनाके समय स्वयं ब्रह्माजी सिद्धों, ब्रह्मर्षियों और देवताओंके साथ पधारेंगे।'

तत्पश्चात् राजाने नारदजीसे पूछा—मुनिश्रेष्ठ! मैं प्रतिष्ठाविधिकी वस्तुओंके विषयमें कोई जानकारी नहीं रखता। जो-जो एकत्र करने योग्य वस्तुएँ हों, उन सबको क्रमसे बतलाइये।

ऊपर कमलके चिह्नसे युक्त ध्वजा लगायी गयी हो। श्रीबलभद्रजीके रथपर तालध्वज या हलके चिह्न-युक्त ध्वज होना चाहिये। श्रीविष्णुके रथमें सोलह, बलभद्रके रथमें चौदह और सुभद्राके रथमें बारह पहिये होने चाहिये। चक्रधारी श्रीकृष्णके रथका विस्तार सोलह हाथ, बलभद्रजीके रथका विस्तार चौदह हाथ और सुभद्राजीके रथका विस्तार बारह हाथका हो।' नारदजीके इस वचनको सुनकर एक दिनमें तीन रथ बनाये गये, जिनके धुरे, चक्के, खंभे और द्वार सभी सुन्दर थे। तीनों रथोंका विस्तार उत्तम था। सबमें सुन्दर ध्वजा-पताका लगी थी। नाना प्रकारकी चित्रकारीसे वे तीनों रथ बड़े मनोहर प्रतीत होते थे। उनमें लगाम और बागडोरसे युक्त वायुके समान वेगवाले सैकड़ों सफेद घोड़े जुते हुए थे। नारदजीने शास्त्रके अनुकूल विधिसे रथोंकी प्रतिष्ठा की।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीकी प्रेरणासे उस उत्तम प्रासादके समीप शुभ मुहूर्तमें सब देवता आ पहुँचे। राजा इन्द्रद्युम्नकी आज्ञासे विश्वकर्माने एक बहुत बड़ी रत्नमयी शाला तैयार की। उसमें प्रतिष्ठाकालिक पूजनोपयोगी वस्तु, हविष्य, समिधा, कुशा तथा अनेक प्रकारके भोजन और सम्पत्तिका सञ्चय करके रक्खा गया।

उस समय पृथ्वीपर 'गाल' नामक राजा राज्य करते थे। उन्होंने भी माधवकी एक प्रस्तरमूर्ति बनवायी और उसके लिये एक छोटा-सा मन्दिर तैयार कराकर उसमें उसकी स्थापना और पूजा की। फिर दूतके मुखसे राजा इन्द्रद्युम्नके उद्योगको सुनकर राजाको क्रोध हुआ और वे सेनासमेत कुपित हो नीलाचलपर आये। वहाँ आनेपर उन्होंने प्रतिष्ठाका ऐसा आयोजन देखा, जो मनुष्योंके लिये स्वप्नमें भी दुर्लभ था। उसे देखकर राजाके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। वहाँके सब वृत्तान्तको जानकर राजा गालने अपनेको कृतार्थ माना और यह अनुभव किया कि इससे

लोकमें कीर्ति और धर्मका उपार्जन करता है। आप तो भगवान्‌के भक्त हैं। अतः आपको विशेषरूपसे सफलता मिलेगी। राजन्! काष्ठरूपमें अवतीर्ण हुए साक्षात् भगवान् विष्णुका यह प्रासाद है। चार स्वरूपोंमें व्यक्त हुए भगवान् जनार्दनकी इस मन्दिरमें स्थापना करके मैं यह मन्दिर आपको ही सौंपकर चला जाऊँगा। आप ही इसमें पूजा आदिकी व्यवस्था करेंगे।' यह सब सुनकर राजा गाल बहुत प्रसन्न हुए। इन्द्रद्युम्नने जो-जो आदेश दिया, उसका वे बड़ी शीघ्रताके साथ पालन करने लगे। इस प्रकार सब सामग्री जुट जानेपर देवताओंसे घिरे हुए सिंहासनपर विराजमान राजा इन्द्रद्युम्न इन्द्रकी भाँति शोभा पाने लगे। इतनेमें ही देवताओंके जय-जयकारसे स्तुति किये जाते हुए साक्षात् ब्रह्माजी दिखायी पड़े। राजा इन्द्रद्युम्नने दोनों हाथ जोड़कर भक्तिभावसे उन्हें मस्तक झुकाया तथा गालराज और नारदजीके साथ भूमिपर सिर रखकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर उठकर प्रसन्नताका अनुभव करते हुए अपनेको कृतार्थ माना। उस समय उनके सब अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया था।

जैमिनिजी कहते हैं—राजा इन्द्रद्युम्नको अपने चरणोंमें प्रणाम करते देख प्रजापति ब्रह्माजीने मुसकराते हुए कहा—'राजन्! अपना सौभाग्य तो देखो—ये सब देवता, ऋषि, पितर और सिद्ध-विद्याधर आदि मुझे आगे करके तुम्हारे लिये यहाँ एकत्र हुए हैं।' ऐसा कहकर ब्रह्माजी शीघ्र ही भगवान् नारायणके रथके समीप गये और उन जगदीशजीको प्रणाम करके तीन बार परिक्रमा करनेके पश्चात् आनन्दके समुद्रमें निमग्न हो गये। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने गद्गद स्वरमें अपने ही स्वरूपभूत भगवान् जगन्नाथकी इस प्रकार स्तुति की—'प्रभो! आपको नमस्कार है। मैं आप हैं और आप मैं हूँ। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपका ही स्वरूप है। महत्तत्त्वसे लेकर सम्पूर्ण प्राकृत जगत् आपकी ही मायाका विलास है। विश्वात्मन्! यह संसार आपमें ही अध्यस्त (आरोपित) है और आपके ही द्वारा इसमें परिणाम (परिवर्तन अथवा विकार) होता है। यह सम्पूर्ण प्रपञ्च, जो भासित हो रहा है, आपके तत्त्वको न जाननेके कारण ही है। आपके स्वरूपका यथार्थ बोध हो जानेपर यह आपमें ही विलीन हो जाता है। ठीक उसी तरह जैसे रज्जुके स्वरूपका निश्चय हो जानेपर उसमें भ्रमवश प्रतीत होनेवाला स ॅ वहीं लीन हो जाता है। सत्ताके विचारसे यह सब कुछ सत्स्वरूप होनेके कारण अनिर्वचनीय ही है। प्रभो! आप अद्वितीय हैं। जगत्‌को आपसे ही प्रकाश मिलता है, आप स्वयंप्रकाश हैं। आपको नमस्कार है। संसारका समस्त आनन्द सहजानन्दस्वरूप आप परमात्माका एक तुच्छतम अंश है, जिसके सहारे सब प्राणी जीवन धारण करते हैं। आप प्रपञ्चशून्य, निराकार, निर्विकार और निराश्रय हैं। आप स्थूल हैं, सूक्ष्म हैं, अणु हैं और महान् हैं; साथ ही आप स्थूल, सूक्ष्म आदि सभी भेदोंसे रहित हैं। गुणोंसे अतीत होकर भी समस्त गुणोंके आधार हैं। त्रिगुणात्मन्! आपको नमस्कार है। मैं आपके नाभिकमलसे उत्पन्न हुआ हूँ। जैसे इस ब्रह्माण्डके मध्य मैं सृष्टिकर्ममें लगाया गया हूँ, वैसे आपके एक-एक रोममें ब्रह्माण्ड हैं और उन ब्रह्माण्डोंमें मुझ-जैसे करोड़ों ब्रह्मा हैं। आपकी महिमा अचिन्त्य है, आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप चिन्मय है, आपको बार-बार नमस्कार है। आप देवताओंके अधिदेवता हैं, आपको नमस्कार है। देवदेव! आपको नमस्कार है। दिव्य और अदिव्य स्वरूपवाले आपको नमस्कार है। दिव्य रूपमें प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है। आप जरा और मृत्युसे रहित तथा मृत्युरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप मृत्युकी भी मृत्यु हैं, शरणागतोंकी मृत्युका नाश करनेवाले हैं, सहज आनन्द आपका स्वरूप है, भक्ति आपको प्रिय है, आप जगत्‌के माता और पिता हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करनेके लिये सदा उद्योग करनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है। आप दीनोंके प्रति करुणाके स्वाभाविक समुद्र हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। आप पर हैं, पररूप हैं तथा परपार (भवसागरके दूसरे पार) हैं, आपको नमस्कार है। जिसको कहीं पार नहीं मिलता उसके पारस्वरूप आप ही हैं, आप ही ब्रह्मरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप परमार्थस्वरूप तथा परहेतु (उत्कृष्ट कारण) हैं, आपको नमस्कार है। परम्परासे व्याप्त परमतत्त्वमें तत्पर रहनेवाले आपको नमस्कार है। प्रणतजनोंके दुःखका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है। नाथ! यदि आप प्रसन्न हों, तो मेरे लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है? अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छन्न हुए इस विश्वरूपी कारागारके भीतर मुक्तिकी इच्छासे भटकनेवाला मनुष्य आपके सिवा और कोई द्वार नहीं पाता। आप सम्पूर्ण विश्वके लिये एकमात्र वन्दनीय हैं, आपको नमस्कार है। देवता और दानव सभी आपके चरणारविन्दोंकी अर्चना करते हैं, आपको नमस्कार है। आप सन्ताप हरनेके लिये एकमात्र चन्द्रमा हैं,

आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप कल्याणमय ज्ञानघन-स्वरूप हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। आप कल्पना करनेवालोंसे सदा ही दूर रहते हैं, आपको नमस्कार है। आप दुर्लभ कामनाओंको देनेवाले कल्पवृक्षरूप हैं, आपको नमस्कार है। दीनों, असहायों और शरणागतोंकी दुःख-राशिका संहार करनेके लिये एकमात्र आप ही सदा कमर कसे रहते हैं, आपको नमस्कार है। जगन्नाथ ! दुःखके समुद्रमें डूबे हुए प्राणियोंपर आप प्रसन्न होइये। करुणाकर ! आप लीलापूर्वक कृपाकटाक्ष करके उन सबका उद्धार कीजिये।'

इस प्रकार वेदार्थोंद्वारा श्रीजगन्नाथकी स्तुति करके ब्रह्माजी धरणीधर शेषके अवतारभूत बलभद्रजीका दर्शन करनेके लिये गये और अतिशय भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उन्होंने उनका भी स्तवन किया—'देवेश ! आकाश आपका मस्तक है और जल आपका शरीर है। पृथ्वी चरण है, अग्नि मुख है और वायुदेवता श्वास हैं। मन चन्द्रमा, नेत्र सूर्य और भुजा सम्पूर्ण दिशाएँ हैं। नाथ ! ज्ञानदर्पण ! आपको नमस्कार है। चौदहों भुवनोंके मूल स्तम्भरूप आप हलधरको नमस्कार है। जो आपके चरणारविन्दोंकी शरण लेते हैं, उनकी पाप-राशिको आप विदीर्ण कर डालते हैं; आपको नमस्कार है। आपके मुख, नेत्र, कान, चरण और भुजाएँ अनन्त हैं। अनादि, महामूल, अज्ञानान्धकार-राशिका विनाश करनेके लिये सूर्यस्वरूप आप बलभद्रजीको नमस्कार है। वेदत्रयी आपका स्वरूप है। तीन प्रकारके दोषोंका नाश करनेके लिये त्रिविध अवतार धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन् ! ये नारायणदेव, जो वेदान्तोंमें गाये जाते हैं, आपसे भिन्न नहीं हैं। आप शय्या हैं और वे शयन करनेवाले हैं। वे आच्छादनीय हैं और आप उनका आच्छादन करनेवाले हैं। जो कृष्ण हैं, वे बलराम हैं; जो बलराम हैं, वे ही कृष्ण हैं। आप दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। जगन्मय ! आप प्रसन्न होइये।'

इस प्रकार परमेश्वर बलभद्रजीको प्रणाम करके ब्रह्माजी जगदीश्वरी सुभद्राका दर्शन करनेके लिये उनके रथके समीप गये और इस प्रकार बोले—'जगदम्ब ! देवि ! तुम्हारी जय हो। परमेश्वरि ! तुम्हीं सर्वशक्ति हो, तुम्हें नमस्कार है। कैवल्य मोक्ष प्रदान करनेवाली सुभद्रा देवी ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। कल्याणमयी सुभद्रे ! तुम्हारी जय हो।'

इस प्रकार ब्रह्माजीने कल्याणमयी सुभद्राकी स्तुति करके उन्हींके समीप रथपर विराजमान भगवान् विष्णुके चौथे स्वरूप चक्र सुदर्शनको भी प्रणाम किया। तत्पश्चात् बड़ी भक्तिसे उसकी इस प्रकार स्तुति की—'हे सुदर्शन ! आप महाज्वालामय हैं। आपकी प्रभा करोड़ों सूर्योंके समान है। जो अज्ञानरूपी अन्धकारसे अन्धे हो रहे हैं, उन्हें वैकुण्ठका मार्ग दिखानेवाले आप ही हैं। आप नित्य शोभाशाली तथा वैष्णवोंके अपने धाम हैं। आप भगवान् विष्णुके ही एक स्वरूप हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।'

इस प्रकार प्रणाम और स्तुति करके ब्रह्माजी देवताओंके साथ मन्दिरके समीप गये और वहाँ उन्होंने अपने मनको अनुकूल प्रतीत होनेवाली परम सुन्दर शाला देखी। तदनन्तर वे राजाके दिये हुए दिव्य सिंहासनपर आसीन हुए। ब्रह्माजीकी आज्ञासे राजा इन्द्रद्युम्नने शान्तिकर्म करनेके लिये महामुनि भरद्वाजका वरण किया। प्रतिष्ठाकर्ममें भेंट-पूजा चढ़ानेके लिये जो-जो देवता अभीष्ट माने गये हैं तथा होमकर्ममें भिन्न-भिन्न देवताओंके लिये आहुति देनेका विधान है, वे सभी स्मरण करनेपर ब्रह्माजीकी आज्ञासे चारों दिशाओंमें आकर स्वयं उपस्थित हो गये। फिर गन्ध, पुष्प, माला, अलङ्कार और आभूषण आदिके द्वारा उनकी भलीभाँति पूजा की गयी। तत्पश्चात् बुद्धिमान् भरद्वाजजीने देवाधिदेव ब्रह्मा तथा सब देवताओंके समक्ष कर्म आरम्भ किया। राजा इन्द्रद्युम्नने बड़ी प्रसन्नताके साथ सबका पूजन किया। भगवान्‌के विग्रहस्वरूप उस मनोहर मन्दिरकी, जिसमें अत्यन्त महान् ध्वज फहरा रहा था, प्रतिष्ठा करके भरद्वाजजीने भगवद्विग्रहोंमें प्राणप्रतिष्ठाके लिये ब्रह्माजीसे अनुरोध किया। तब ब्रह्माजी उठे। उन्होंने नारद आदि ऋषियों तथा विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ स्वयं स्वस्तिवाचन किया। ब्राह्मणलोग वैदिक सूक्तोंका पाठ करने लगे। भाँति-भाँतिके मङ्गल वाद्य बजने लगे। उस समय सबने रथके समीप जाकर सीढ़ियोंके मार्गसे सावधानीके साथ भगवद्विग्रहको उतारा। दोनों बगलमें, भुजाओंमें, मस्तकपर तथा दोनों चरणोंमें हाथ लगाकर लोग धीरे-धीरे भगवान् नारायणको रूईदार गद्देपर विश्राम कराते हुए मन्दिरके समीप ले गये। ऊपर-ऊपरसे पारिजात पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। ब्रह्माजी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'जगन्नाथ श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो। सब पापोंका नाश करनेवाले प्रभो ! आपकी जय हो। लीलासे काष्ठ-विग्रह धारण करनेवाले नारायण ! आपकी जय हो। सबको मनोवाञ्छित फल देनेवाले माधव ! आपकी जय हो। संसार-सागरमें डूबे हुए जीवोंका लीला-पूर्वक उद्धार करनेवाले अविनाशी परमेश्वर ! आपकी जय हो, जय हो। करुणासागर ! आपकी जय हो। दीनोद्धार-

परायण ! आपकी जय हो। अच्युत! अनन्त! ईशान! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। प्रभो! आपको नमस्कार है।' यह स्तुति होते समय नारदजी बड़ी प्रसन्नताके साथ वीणा बजाते थे। भगवान्‌के मस्तकपर पीछेकी ओरसे दो रत्नमय छत्र लगाये गये। दोनों पार्श्वभागमें चामरग्राही देवता पंक्तिबद्ध खड़े थे, जो धीरे-धीरे चँवर डुला रहे थे। इसी प्रकार सब लोग बड़े कौतूहलके साथ बलभद्र, सुभद्रा तथा सुदर्शन चक्रके विग्रहोंको भी ले गये। मन्दिरके मुख्यद्वारपर रत्नमय स्तम्भोंसे सुशोभित मण्डप तैयार किया गया था। उसमें अभिषेकके लिये भगवान्‌को पधराया गया। उन सब विग्रहों-के सामने दर्पण रख दिये गये। फिर रत्नोंके कलशोंमें रखे हुए तीर्थोंके जलसे क्रमशः पुरुषसूक्त और श्रीसूक्तका पाठ करते हुए स्वयं ब्रह्माजीने लोकशिक्षाके लिये अभिषेक किया। तत्पश्चात् अलङ्कार धारण कराकर भगवद्विग्रहोंको गन्ध और माला आदिसे सुशोभित करके ब्रह्माजीने स्वयं ही आरती उतारी और मन्त्र पढ़ते हुए उन सब विग्रहोंको रत्नमय सिंहासनोंपर स्थापित किया।

ब्रह्माजी बोले—सम्पूर्ण जगत्‌के आधार तथा समस्त लोकोंमें प्रतिष्ठित सर्वव्यापी जनार्दन! आप इस मन्दिर सुस्थिर भावसे विराजमान होइये। यह प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठा हो नाथ! आपके प्रतिष्ठित होनेपर हम सब यहाँ प्रतिष्ठित होंगे आपकी आज्ञा और आपके प्रसादसे यह प्रतिष्ठा परिपूर्ण हो

इस प्रकार जगन्नाथकी स्थापना करके ब्रह्माजीने उन हृदय-कमलका स्पर्श करते हुए आनुष्टुभ मन्त्रराज*का ए सहस्र जप किया। वैशाख मासके शुक्ल पक्षमें अष्टमी तिथि पुष्य नक्षत्रके योगमें उत्तम बृहस्पतिके दिन भगवान् जगन्नाथ प्रतिष्ठा की गयी। इसलिये वह दिन परम पवित्र एवं स पापोंका नाश करनेवाला है। उसमें किया हुआ स्नान, दान तप, होम आदि सब पुण्यकार्य अक्षय होता है। जो मनुष्य उ दिन भक्तिभावसे भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राजीक दर्शन करते हैं, वे निःसन्देह मोक्षके भागी होते हैं। वैशाख मासमें जो शुक्ल पक्षकी अष्टमी आती है, उसमें यदि बृहस्पति-वार और पुष्य नक्षत्रका योग हो तो उस दिन किया हुआ जगन्नाथजीका पूजन कोटि जन्मोंके पापोंका नाश करनेवाला होता है।

ब्रह्माजीके द्वारा भगवत्स्वरूपकी एकताका प्रतिपादन तथा भगवान्‌का राजा इन्द्रद्युम्नको अपनी सेवाका आदेश देना

जैमिनिजी कहते हैं—तदनन्तर राजा इन्द्रद्युम्नने मन-ही-मन आश्चर्यसे चकित होकर ब्रह्माजीसे पूछा, 'भगवन्! यज्ञके अन्तमें भगवान् विष्णुने वैसे ही काष्ठनिर्मित स्वरूप धारण किये थे, जो रथपर विराजमान थे। आपने मन्दिरके भीतर भी उन्हीं विग्रहोंके रूपमें भगवान्‌की प्रतिष्ठा की है। पहले आकाशवाणीने भी मुझसे यही कहा था कि इस अपौरुषेय वृक्षसे भगवान् चार स्वरूपोंमें अभिव्यक्त होंगे। परंतु इस समय ये एक सच्चिदानन्दघन ब्रह्मरूपमें प्रतिष्ठित दिखायी देते हैं। प्रभो! यदि आप मुझे इस रहस्यको सुननेका अधिकारी समझते हैं तो ठीक-ठीक बताइये।'

ब्रह्माजीने कहा—राजन्! यह काष्ठकी मूर्ति है, ऐसा सोचकर तुम्हारे मनमें इसके प्रति साधारण प्रतिमा-बुद्धि न हो। वास्तवमें यह परब्रह्मका स्वरूप है। जो विदारण करे या दान दे, उसको दारु कहते हैं। परब्रह्म परमात्मा स्वभावसे ही सब दुःखोंका विदारण और अखण्ड आनन्दका दान करते हैं। इसलिये उनका नाम दारु है। इस प्रकार चारों वेदोंके अनुसार भगवान् श्रीहरि दारुमय हैं। वे जगत्‌के स्रष्टा हैं। इसलिये उन्होंने अपनेको भी दारुमय स्वरूपमें प्रकट कर लिया। शब्दब्रह्म और परब्रह्ममें कोई भेद नहीं है। प्रलयके समय दोनों एक हैं। केवल सृष्टिकालमें व्यावहारिक भेद रहता है। शब्द और अर्थ दोनों एक दूसरेकी अपेक्षा रखनेवाले हैं। अर्थके अभावमें शब्द नहीं और शब्दके अभावमें अर्थबोध नहीं होता। इसलिये चारों वेद जैसे शब्द हैं, वैसे ही अर्थ भी हैं। भगवान् हलधर ऋग्वेद-स्वरूप हैं। नृसिंहजी सामवेदरूप हैं। सुभद्रादेवी यजुर्वेदकी मूर्ति हैं और यह सुदर्शन चक्र अथर्ववेदका स्वरूप माना गया है। वेद चार हैं—यह भेद दृष्टि है। अभेद दृष्टिसे सम्पूर्ण वेद एक ही राशि हैं। अतः तुम्हारे मनमें सन्देह नहीं होना

* मन्त्रराज आनुष्टुभ इस प्रकार है—

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥

ये। एक ही सर्वव्यापी भगवान् अनेक रूपोंमें व्यक्त हैं। अन्य अवतारोंमें भी वे इसी न्यायसे बर्ताव करते राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् जगन्नाथके भेद अभेद—दोनों ही बताये हैं। जिससे तुम्हारे मनको सन्तोष उसी दृष्टिसे भक्तिपूर्वक भगवान्‌की आराधना करो। वान् सर्वरूपमय हैं तथा सर्वमन्त्रमय हैं। जो जिस प्रकार की आराधना करता है, उसे वे उसी प्रकार फल देते हैं। महिमासे भगवान् विष्णु यहाँ प्रकट हुए हैं। जिसका ना विश्वास है, उसे उतनी सिद्धि प्राप्त होती है। तुम चित्तसे मन, वाणी और क्रियाद्वारा यहाँ दारु-विग्रह काष्ठमय स्वरूप) धारण करनेवाले भगवान् गोविन्दकी राधना करो और इस मन्त्रराजके द्वारा श्रीहरिकी पूजा या करो। इस मन्त्रसे बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र न हुआ न होगा। इससे पूजित होनेपर भगवान् विष्णु तत्काल न्न होते हैं तथा भक्तवत्सल भगवान् अपना परम धाम देते हैं। जन्! मैं तुमसे एक तत्त्वकी बात कहता हूँ, ध्यान देकर नो। समुद्रके तटपर वटवृक्षके मूलके समीप नीलाचल तके शिखरपर निवास करनेवाले जो काष्ठमयी मूर्तिके व्याजसे क्षात् अमृतमय परब्रह्म हैं, उनका दर्शन करके मनुष्य श्चय ही मोक्षको प्राप्त होता है।

ब्रह्माजीने लोकशिक्षाके लिये राजासे यह सब कहकर ले प्रकाशमें आये हुए भगवान् विष्णुके चतुर्विध स्वरूप- प्रकट किया। रथसे उतारते समय जो चार मूर्तियाँ खी गयी थीं, अब वे ही सिंहासनके ऊपर विराजमान हो यीं, यह सब लोगोंने प्रत्यक्ष देखा। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने दशाक्षर मन्त्रसे बलभद्रजीकी, पुरुषसूक्तसे भगवान् रायणकी, देवीसूक्तसे सुभद्राजीकी तथा द्वादशाक्षर ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रसे सुदर्शन चक्रकी जा की। उसके बाद राजापर अनुग्रह करनेके लिये उन्होंने भगवान्‌से इस प्रकार निवेदन किया।

ब्रह्माजी बोले—भगवन्! भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले विदेवेश्वर! इन्द्रद्युम्न दीर्घकालसे आपकी भक्ति करते आ रहे हैं और अब इन्हें आपका दर्शन हुआ। भगवन्! यद्यपि आपका दर्शन सायुज्य मुक्तिका कारण है तो भी ये भक्तियोगके द्वारा आपकी पूजा करनेकी ही अभिलाषा रखते हैं। इसलिये इन्हें आज्ञा दीजिये, जिससे ये भक्तियोगके द्वारा देशकालोचित व्रत आदि तथा भाँति-भाँतिके उपचारोंसे आपकी पूजा करते रहें।

ब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार निवेदन करनेपर काष्ठमय शरीर धारण किये होनेपर भी भगवान्‌ने मुसकराते हुए गम्भीर वाणीमें कहा, 'इन्द्रद्युम्न! मैं तुम्हारी भक्ति तथा निष्काम कर्मोंसे बहुत प्रसन्न हूँ। मुझमें तुम्हारी स्थिर भक्ति हो। करोड़ोंका धन लगाकर जो तुमने मेरा मन्दिर बनवाया है, इसके भङ्ग हो जानेपर भी मैं इस स्थानका परित्याग नहीं करूँगा। कालान्तरमें भी जो कोई दूसरा पुरुष यहाँ मन्दिर बनवायेगा, तुम्हारे प्रेमसे उसमें भी मेरी स्थिति रहेगी। मन्दिर भङ्ग होनेपर भी मैं इस स्थानका कभी त्याग नहीं करूँगा। जबतक ब्रह्माजीका दूसरा परार्ध पूरा होगा, तबतक इस काष्ठमय विग्रहसे ही मैं यहाँ निवास करूँगा। सत्ययुगके प्रथम ज्येष्ठमें यज्ञका प्रारम्भ हुआ और ज्येष्ठकी अमावस्याको * मैंने अवतार लिया है। वही मेरा पवित्र जन्मदिन है। उस दिन महास्नानकी विधिसे प्रत्यर्चामें अधिवासपूर्वक मुझे स्नान कराना चाहिये। ऐसा करनेसे मैं कोटि जन्मोंमें उपार्जित पापराशिका विनाश कर डालूँगा। उस दिन मेरा दर्शन करनेवालोंको सम्पूर्ण तीर्थों, यज्ञों और दानोंका फल प्राप्त होगा। वटवृक्षके उत्तर एक सर्वतीर्थमय कूप है, उसे खोदकर प्रकाशमें लाओ। ज्येष्ठकी अमावस्याको प्रातःकाल मुझको, बलभद्रजीको और सुभद्राको उस कूपके जलसे स्नान कराकर मनुष्य मेरे लोकको प्राप्त कर लेगा। आषाढ़ मासकी शुक्ला द्वितीया यदि पुष्य नक्षत्रसे युक्त हो, तो वह इस तीर्थमें मोक्षदायिनी मानी गयी है। नक्षत्रके अभावमें भी मेरी प्रसन्नताके लिये उस तिथिको यात्रा करनी चाहिये। आषाढ़ शुक्ल पक्षकी पुष्य नक्षत्रयुक्त द्वितीया तिथिको मुझको, बलभद्रजीको, सुभद्राको रथपर बिठाकर महान् उत्सवके लिये बहुत-से ब्राह्मणोंको तृप्त करके 'गुण्डिचामण्डप' नामक स्थानको ले जाना चाहिये, जहाँ पहले मैं प्रकट हुआ था। सहस्र अश्वमेध यज्ञकी महावेदी उस समय वहीं थी। उससे बढ़कर पवित्र स्थान इस पृथ्वीपर दूसरा नहीं है। जैसे ब्रह्माके अनुरोधसे और तुम्हारे बनवाये हुए इस महामन्दिरसे इस समय यह नीलाचलका शिखर मेरी अत्यन्त प्रसन्नताका कारण हो रहा है, उसी प्रकार नृसिंह क्षेत्रमें तुम्हारे यज्ञकी वह महावेदी तथा मेरी उत्पत्ति-का वह मण्डप मुझे अत्यन्त प्रसन्नता देनेवाला है। मैं

* यह तिथि गुजरातके हिसाबसे है। अन्य कई प्रान्तोंकी गणनासे यह आषाढ़ कृष्णा अमावस्या होती है। शुक्ल पक्षमें सब प्रान्तोंकी गणना समान है।

बहुत समयतक वहाँ स्थित रहा हूँ; इसलिये उसपर मेरा बहुत प्रेम है। मैं यहाँ तुम्हारी भक्तिसे सदैव स्थित रहूँगा। मेरे उत्थान (हरिबोधिनी एकादशी), मेरे शयन (हरिशयनी एकादशी), मेरे करवट बदलने (भाद्रपद शुक्ला एकादशी), मेरे मार्ग प्रावरण तथा पुष्य स्नानका महोत्सव करें। फाल्गुनकी पूर्णिमाको मेरे लिये दोलोत्सव करना चाहिये। जो दोलमें दक्षिणाभिमुख पूजित हुए मेरा दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं।'

समुद्रमें स्नानकी विधि और भगवद्विग्रहोंका वर्णन

मुनियोंने पूछा—महर्षे ! इन्द्रद्युम्नने भगवान् लक्ष्मीपतिके जन्मस्नानका उत्सव किस विधिसे किया ? इसके अतिरिक्त भगवान्‌के अन्य सब उत्सवोंका भी विधिपूर्वक वर्णन कीजिये।

जैमिनिजी बोले—मुनिवरो ! इस समय मैं ज्येष्ठ-स्नानका वर्णन करता हूँ। ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको व्रत-संकल्प करके मौन रहे। प्रातःकाल उठकर 'मार्कण्डेयावट' नामक तीर्थको जाय और आचमन करके दोनों हाथ जोड़कर मार्कण्डेयेश्वरको प्रणाम करके भगवान् भैरवसे भी आज्ञा ले। फिर तीर्थमें प्रवेश करके वरुणदेवता सम्बन्धी पाँच वैदिक मन्त्रोंसे, तीन आहुति करके अघमर्षण सूक्तसे तथा निम्नाङ्कित मन्त्रसे स्नान करे—

संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम्।
त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते॥

'भगनेत्रविनाशक भगवान् त्रिपुरारि ! आपको नमस्कार है। मैं पापग्रस्त मूढ़ मानव संसार-सागरमें डूबा हुआ हूँ, मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार स्नान करके बाहर निकले और भगवान् शङ्करका दर्शन करके मौनभावसे भगवान् नारायणके समीप जाय। मार्कण्डेयेश्वरसे दक्षिण दिशामें जो विष्णुस्वरूप उत्तम वटवृक्ष स्थित है, वह दर्शनमात्रसे पाप-राशिका नाश करनेवाला है। उसका दर्शन करके उसमें भगवान् पुरुषोत्तमकी भावना करते हुए दूरसे ही प्रणाम करे। फिर निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए उसकी परिक्रमा करे—

अमरस्त्वं सदा कल्प विष्णोरायतनं महत्।
न्यग्रोध हर मे पापं विष्णुरूप नमोऽस्तु ते॥
नमोऽस्त्वव्यक्तरूपाय महाप्रलयस्थायिने।
एकाश्रयाय जगतां कल्पवृक्षाय ते नमः॥

'हे कल्पवट ! आप सदाके लिये अमर हैं। भगवान् विष्णुके महान् निवासस्थान हैं। हे विष्णुरूप वट ! मेरे पापको हर लीजिये, आपको नमस्कार है। आप अव्यक्त-स्वरूप, महाप्रलय कालमें भी स्थिर रहनेवाले, जगत्‌के एकमात्र आश्रय तथा कल्पवृक्ष हैं। आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तुति करके मनुष्य उस वृक्षके नीचे भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुके नामोंका जप करे। इससे वह सौ करोड़ जन्मोंके पापोंसे भी मुक्त हो जाता है। उसकी छायामें चलनेमात्रसे भी मनुष्यके पाप दूर हो जाते हैं। तत्पश्चात् भगवान्‌के वाहनरूप गरुड़जीको, जो भगवान् श्रीहरिके आगे भक्तिसे नतमस्तक होकर हाथ जोड़े खड़े हैं, प्रणाम करे। उसके बाद—

छन्दोमय जगद्धामन् यानरूप त्रिवृद्वपुः।
यज्ञरूप जगद्व्यापिन् प्रीयमाणाय ते नमः॥

'हे गरुड़ ! आप छन्दोमय, जगत्‌के आश्रय, भगवान्‌के वाहनरूप, वेदत्रयीमय शरीरवाले, यज्ञरूप और विश्वव्यापी हैं। सदा प्रसन्न रहनेवाले आपको मेरा नमस्कार है।'

इस प्रकार गरुड़की स्तुति करके भगवान्‌के मन्दिरमें प्रवेश करे और उसकी तीन बार परिक्रमा करके मन्त्रराज आनुष्टुभसे या पुरुषसूक्तसे अथवा द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रसे—जिसमें जिसकी रुचि हो उससे, पूजन करे। पञ्चोपचारकी विधिसे परमेश्वर जगन्नाथजीकी पूजा करे। पूजाके पश्चात् हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करे—'देवदेव जगन्नाथ ! आप संसार-समुद्रसे तारनेवाले हैं। भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले जगदीश्वर ! आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, आप सदा मेरी रक्षा करें। श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो। जगन्नाथ ! आपकी जय हो। आप सबके पापोंका नाश करनेवाले हैं। आपके युगल चरणारविन्द विश्वके लिये वन्दनीय हैं। आपको नमस्कार है। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके ईश्वर ! आपकी जय हो। वेद आपके निःश्वास वायु हैं, समस्त जगत्‌के आधारभूत परमात्मन् ! आपको नमस्कार है। प्रभो ! आप शरणमें आये हुए ब्रह्मा, इन्द्र तथा रुद्र आदि देवताओं और प्रणतजनोंकी पीड़ाको दूर करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है।

समस्त संसारके निवासस्थान आपकी जय हो। अन्तर्यामिन् ! आपको नमस्कार है। अकारण करुणासागर ! दीनदयालु ! आपकी जय हो। दीनों और अनाथोंको एकमात्र शरण देनेवाले विश्वसाक्षी परमेश्वर ! आपको नमस्कार है। देवेश्वर ! जिसमें मोहरूपी भँवर उठते हैं, जो अत्यन्त दुस्तर है, क्षुधा-पिपासा आदि छहों ऊर्मियोंके कारण जिसके दूसरे किनारेतक पहुँचना अत्यन्त कठिन है, कुकर्मरूपी ग्राहोंके कारण जो अत्यन्त भयानक दिखायी देता है, जहाँ कोई आश्रय अथवा अवलम्ब नहीं दिखायी देता, जो सर्वथा निस्सार और दुःखरूपी फेनसे युक्त है, उस संसारसमुद्रके जलमें मैं आपकी मायाके गुणोंसे आबद्ध होकर विवश अवस्थामें पड़ा हूँ। आप अपनी कृपाकटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखकर वहाँसे मेरा उद्धार कीजिये। सुरश्रेष्ठ ! आप अपनी परम प्रसन्नताके प्रकाशक हैं। जगन्नाथ ! संसारभयसे डरनेवाले जीवोंके सहायक बन्धु एकमात्र आप ही हैं। भूख और प्यास प्राणके, शोक और मोह मनके तथा जरा और मृत्यु शरीरके कष्ट हैं। ये ही संसार-सागरकी छः ऊर्मियाँ हैं। इनसे रक्षा कीजिये। भगवन् ! आपकी सृष्टिमें आपके समान दीनोंका पालन करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, अतः सब लोगोंपर कृपा करनेके लिये आप स्वयं अवतीर्ण हुए हैं। अन्यथा आप पूर्णकाम परमेश्वरके इस पृथ्वीपर आनेका और क्या कारण हो सकता है ? जगत्पते ! आपके चरणकमलोंकी शरणमें आ जानेसे कोई चिन्ता नहीं रह जाती, क्योंकि आपके चरणारविन्द चारों पुरुषार्थोंके एकमात्र साधक हैं—दर्शनमात्रसे सबके समस्त मनोवाञ्छित फल देनेवाले हैं।'

तदनन्तर शेषसम्बन्धी मन्त्रसे भगवान् बलभद्रजीकी पूजा करे। द्वादशाक्षर मन्त्रसे अथवा आदिमें प्रणव लगाकर नाम मन्त्रसे भी पूजा कर सकते हैं। फिर एकाग्रचित्त होकर प्रणाम करके स्तुतिपाठके द्वारा उन्हें प्रसन्न करे—'सदा सत्पुरुषोंको सुख देनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप बलरामजी ! आपकी जय हो। आपकी निर्मल आकृति अविद्यामय पङ्कसे रहित है, आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्का भार धारण करके भी कभी थकित न होनेवाले बलभद्र ! आपकी जय हो। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों तापोंका विकर्षण (विनाश) करनेके लिये आप सदा अपने हाथमें हल लिये रहते हैं। शरणागतों और दीनोंकी रक्षाके लिये आपके नेत्र सदा खुले रहते हैं। ईश्वर ! आप ही दूसरोंके समस्त पापोंका नाश करनेमें समर्थ हैं। निर्मल करुणासागर ! दीनबन्धु ! आपको नमस्कार है। आपने अपने फणके अग्रभागसे समस्त चराचरसहित इस पृथ्वीको धारण कर रक्खा है। प्रभो ! जिसके पार जाना कठिन है, उस अपार भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये। आप पर और अपर—सबसे श्रेष्ठ हैं। परमेश्वर ! आपको नमस्कार है।'

मुसलधारी नागराज बलभद्रकी इस प्रकार स्तुति करके जगत्की आदिकारणरूपा कल्याणमय नेत्रोंवाली सुभद्रा देवीकी पूजा करे। फिर चरणोंमें प्रणाम करके उन विजयस्वरूपा भगवतीको स्तुतिद्वारा इस प्रकार प्रसन्न करे—'देवि ! सुभद्रे ! आपकी जय हो। संसारसे पार उतारनेवाली महादेवी ! आप प्रसन्न होइये। शरणागतोंको सुख देनेवाली तथा सबको सन्तुष्ट करनेवाली देवि ! आपकी जय हो। परमात्माके सृष्टि, पालन और संहार आदि कर्मोंकी सिद्धि करनेवाली उनकी अनुपम शक्ति एकमात्र आप ही हैं। आप ही सब लोकोंकी जननी, भगवान् विष्णुकी माया, तपस्विनी तथा भद्ररूपा सुभद्रा हैं। आपको नमस्कार करता हूँ। जगत्की मूलभूता सुभद्रा देवीको मैं प्रणाम करता हूँ।'

इसके बाद समुद्रस्नानके लिये भगवान् पुरुषोत्तमकी प्रार्थना करे—'विश्वव्यापी ! चराचरस्वरूप भगवान् विष्णु ! आपको नमस्कार है। प्रभो ! मेरा समुद्रस्नान निर्विघ्न पूर्ण हो। शङ्ख-चक्र-गदाधारी जगदीश्वर ! मुझे स्नानके लिये आज्ञा दीजिये।' तदनन्तर भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए एकाग्रचित्त एवं मौन होकर समुद्रके समीप जाय और तीर्थराजके आत्माका चिन्तन करते हुए हाथ जोड़कर इस मन्त्रका उच्चारण करे—

सुदर्शन नमस्तेऽस्तु कोटिसूर्यसमप्रभ।
अज्ञानतिमिरान्धस्य विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय॥

'कोटि-कोटि सूर्योंके समान प्रकाशमान सुदर्शन ! आपको नमस्कार है। मैं अज्ञानान्धकारसे अन्धा हो रहा हूँ, मुझे भगवान् विष्णुका मार्ग दिखाइये।'

इस प्रकार सुदर्शनकी प्रार्थना करके तीर्थराज समुद्रके जलके समीप पृथ्वीपर घुटने टेककर भक्तिभावसे प्रणाम करे और—

तीर्थराज नमस्तुभ्यं जलरूपाय विष्णवे।
जीवनाय च जन्तूनां परं निर्वाणहेतवे॥

'हे तीर्थराज ! आप जलरूपी विष्णु हैं, समस्त जन्तुओंके जीवनदाता हैं और परम शान्तिके हेतु हैं। आपको नमस्कार है।'

यह मन्त्र पढ़ते हुए जलके भीतर प्रवेश करे। समुद्रके जलमें डूबकर मन्त्र-जप करनेका विधान नहीं है। समुद्रमें स्नान करके उठे और विधिपूर्वक आचमन करके प्रार्थना करे—'जगत्पते! तीर्थराज! तुम्हें नमस्कार है। पहलेके कोटि सहस्र जन्मोंमें जिस पाप-राशिका सञ्चय किया गया है, वह सब नष्ट हो जाय।' इस प्रकार स्नान करके तटपर आ जाय और आचमन करके मौन हो दो उज्ज्वल वस्त्र धारण करे। फिर भू-देवी और लक्ष्मी-देवीके साथ शङ्ख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज भगवान् नारायणका ध्यान करके उन्हें मानसिक पूजासे सन्तुष्ट करे। तत्पश्चात् बाहर आवाहन करके भी पूजा करे, जिसकी विधि इस प्रकार है—भगवान्‌के लिये भावनाद्वारा रत्नसिंहासन देकर यह चिन्तन करे कि भगवान् इसपर विराजमान हैं। फिर उनके दोनों चरणारविन्दोंमें पाद्य निवेदन करे। वह पाद्य श्यामाक, कमल, दूर्वा और अपराजिता लतासे युक्त हो तथा मूलमन्त्रसे उसका संस्कार किया गया हो। पाद्य अर्पण करनेके पश्चात् सोने, चाँदी, ताँबे अथवा शङ्खके पात्रमें जल, चन्दन, फूल, यव, दूर्वा, कुशाग्र, फल, सरसों और तिलसे विधिपूर्वक अर्घ्यका संस्कार करे। दूर्वा और कुशके अग्रसे अर्घ्य करे। जल लेकर भगवान्‌के मस्तकपर सींचे। फिर बचे हुए जलको उन्हींके आगे पृथ्वीपर गिरा दे। यह अर्घ्यकी विधि बतायी गयी। उसके बाद जायफल, कंकोल और लवङ्गसे संस्कार किये हुए जलको भगवान्‌के आचमनके लिये दे। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार पाट, रेशम अथवा कपासके बने हुए दो वस्त्र अर्पण करने चाहिये। फिर यथाशक्ति हार, केयूर, मुकुट और कण्ठा आदि आभूषण भगवान्‌के अङ्गोंमें पहनावे। सूतके बने हुए यज्ञोपवीतको गन्ध एवं चन्दनसे चर्चित करके अर्पण करे। तत्पश्चात् कपूर, चन्दन, कस्तूरी और कुङ्कुमसे अनुलेपन करे। चमेली, कमल, चम्पा, अशोक, पुन्नाग, नागकेसर तथा अन्य सुगन्धित पुष्पोंसे बनी हुई माला अथवा माल्य और तुलसीदलकी माला पहनावे तथा कुछ छूटे फूल भी भगवान्‌के मस्तकपर बिखेरे। जो गलेसे लेकर पैरोंतक लंबी हो, उसका नाम माला है और जिसकी लंबाई कण्ठसे लेकर जंघातक हो, उसे माल्य कहते हैं। जो केशोंके मध्यमें पहनाया जाय, वह गर्भक कहा गया है। उसके बाद मस्तकपर पुष्पाञ्जलि बिखेरनी चाहिये। पुष्पाञ्जलिके पश्चात् गुग्गुल, अगुरु, खस, शक्कर, घी, मधु और चन्दनके द्वारा सुगन्धित धूप तैयार करके दे। उसके बाद गायके घीसे सुन्दर दीप जलाकर दे अथवा कर्पूरयुक्त बत्तीके साथ तिलके तेलसे दीपक जलाकर दे। तदनन्तर घीमें तैयार किया हुआ सुगन्धित अन्न, गायका दही, गायके दूधमें पकाकर शक्कर मिलाया हुआ केला, नाना प्रकारके व्यञ्जनोंसे युक्त पूआ और भाँति-भाँतिके फल—इन सबके सहित मनोरम सुगन्धयुक्त सरस एवं नूतन नैवेद्य तैयार करके भगवान्‌को समर्पित करे। धूप, दीप, नैवेद्य, स्नान, अर्घ्य, मधुपर्क, वस्त्र तथा यज्ञोपवीत इनमेंसे प्रत्येकके अर्पण करनेपर भगवान्‌को आचमन करावे। अन्य कर्मोंमें आचमनके लिये केवल जल देना चाहिये। परंतु नैवेद्यके अन्तमें संस्कार किया हुआ उपचारयुक्त आचमन देना चाहिये। साथ ही करोद्वर्तनके लिये सुगन्धित चन्दन भी देना चाहिये। उसके बाद कपूर, लवंग, इलायची, जायफल और सुपारीके साथ ताम्बूल अर्पण करे। तत्पश्चात् एक सौ आठ बार मूल मन्त्रका जप करके अनन्य भावसे स्तुतिपाठ करे। फिर प्रदक्षिणा करके भगवान् पुरुषोत्तमकी प्रार्थना करे—'समस्त तीर्थोंके प्रवर्तक देवाधिदेव जगन्नाथ! आप सर्वतीर्थमय तथा सर्वदेवमय हैं। पापकी राशिमें डूबे हुए मुझ सेवककी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार देवेश्वर भगवान् नारायणकी पूजा करके तीर्थराज समुद्रमें स्नान करनेवाला मनुष्य सब तीर्थोंका फल पाता है। कोटि गोदानसे, कोटि यज्ञसे, कोटि ब्राह्मणभोजनसे तथा कोटि महादानोंसे कर्म करनेवालोंके लिये जो पुण्य बताया गया है, वह इस समुद्रस्नानपूर्वक भगवत्-पूजनसे प्राप्त हो जाता है। अन्य तीर्थोंमें किया हुआ पाप समुद्रके किनारे नष्ट होता है और समुद्रके किनारे किया हुआ पाप समुद्रमें स्नान करनेसे नष्ट होता है। ब्रह्महत्यारा, शराबी, गोघाती आदि पाँच प्रकारके महापातकी मनुष्य भी समुद्रस्नान करनेसे निःसन्देह उन पापोंका प्रायश्चित्त कर लेते हैं। जो मनुष्य अपने जन्म, जीवन और शास्त्राध्ययनको सफल बनाना चाहे, वह समुद्रतटपर आकर देवताओं और पितरोंका तर्पण अवश्य करे। कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि तप सुलभ हैं, बहुत दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञ भी सुलभ हैं, परंतु सिन्धुके जलसे पितरोंका तर्पण अत्यन्त दुर्लभ है। स्नानके आदि और अन्तमें जगन्नाथजीका पूजन और बीचमें तीर्थराजके जलमें स्नान करके मनुष्य मोक्षका भागी होता है। तदनन्तर शुद्ध चित्तवाला मनुष्य श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राको नमस्कार करके उनके स्वरूपका चिन्तन करे।

इन्द्रद्युम्न-सरोवरमें स्नान, नृसिंहजीका दर्शन-पूजन तथा भगवद्विग्रहोंके ज्येष्ठ-स्नानका वर्णन

जैमिनिजी कहते हैं—इसके बाद अपनेको कृतार्थ मानता हुआ मनुष्य अश्वमेध यज्ञके अङ्गसे उत्पन्न हुए इन्द्रद्युम्न-सरोवरके समीप जाय। उसीके तटपर नृसिंहका स्वरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं। वहाँ नृसिंहजीकी प्रार्थना करके विधिपूर्वक स्नान करे। प्रार्थना इस प्रकार है—'हे भगवान् नृसिंह! आपको नमस्कार है। आपके उत्तम क्षेत्रमें आपके ही प्रसादसे नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नने एक सहस्र अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। प्रभो! उस यज्ञके अङ्गसे प्रकट हुए इस सरोवरमें स्नान करनेके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।'

इस प्रकार भगवान्की प्रार्थना करनेके पश्चात् सरोवरके किनारे जाकर हाथ धो आचमन करके अञ्जलि बाँधे प्रार्थना करे—'हे तीर्थप्रवर! अश्वमेध यज्ञके अङ्गभूत दानके लिये लायी हुई करोड़ों गौओंके खुरसे आपकी भूमि खोदी गयी है। उन गौओंके मूत्र, फेन और दानके जलसे परिपूर्ण होनेके कारण आप सबको पवित्र करनेवाले हैं। मैं आपके सर्वतीर्थमय पवित्र जलमें स्नान करनेके लिये आया हूँ। आप स्नानसे मेरे सब पापोंको छुड़ा दीजिये।'

तत्पश्चात् स्नान करे। जलके भीतर डुबकी लगाकर तीन बार अघमर्षण मन्त्रका जप करे। उसके बाद पुनः तीर्थकी प्रार्थना करे—'अश्वमेधके अङ्गसे प्रकट हुए सर्वपापनाशक तीर्थ! तुममें स्नान करनेसे मेरे पाप नष्ट हो जायँ।' इस प्रकार तीन बार कहकर तीन बार जलमें गोता लगावे। नृसिंहाकारधारी भगवान् विष्णुका स्मरण करे। देवताओं, ऋषियों और पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करे। फिर पश्चिमाभिमुख विराजमान भगवान् नृसिंहके समीप जाय और अथर्ववेदके मन्त्रसे उनकी पूजा करे। वह अथर्ववेदोक्त मन्त्रराज पूर्वकालमें नारदजीके द्वारा प्रतिष्ठित हुआ। तत्पश्चात् राजा इन्द्रद्युम्नने दीर्घकालतक उस मन्त्रकी उपासना की। नृसिंहाकार भगवान्की उपासनाके लिये उसके समान दूसरा मन्त्र नहीं है। उसके उच्चारणमात्रसे भगवान् नृसिंह प्रसन्न हो जाते हैं। ब्रह्माजीने इसी मन्त्रसे काष्ठविग्रहधारी जगदीशजीकी भी स्थापना की है। पूर्वोक्त उपचारोंसे तथा लाल जवापुष्प और अन्यान्य सुगन्धित पुष्पोंसे भगवान् नृसिंहकी पूजा करे। मिश्री और गायका घी मिलाकर गोदुग्धमें तैयार की हुई खीर, घीमें पकाकर बनाये हुए खाँड़ और कपूरसे युक्त मोदक, संयाव (हलवा), घीमें बने हुए पूए, नाना प्रकारके फल, शक्कर और दही मिलाये हुए चावल आदि नैवेद्य निवेदन करे। भगवान् नृसिंहका दर्शन, चरण-स्पर्श, नमस्कार और पूजन करके मनुष्य अपने-अपने मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है।

फिर पूर्णिमाको प्रातःकाल पूर्वोक्त विधिसे तीर्थराजके जलमें स्नान करके शुद्ध आहारका सेवन तथा इन्द्रियोंका संयम करते हुए मनुष्य भगवत्प्रीतिके लिये पाँच दिनोंतक केवल एक समय भोजन करे। तत्पश्चात् मन्दिरमें प्रवेश करके मञ्चपर विराजमान पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राजीका दर्शन करके मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है। जो ज्येष्ठकी अमावास्याको सर्वतीर्थमय कूपसे लाये हुए सुगन्धित जलके द्वारा स्नान कराये जाते हुए श्रीहरिका दर्शन करता है, उसके तन-मनमें पापका सम्पर्क नहीं रहता।

चतुर्दशीको तृण अथवा काष्ठका सुदृढ़ एवं सुन्दर मञ्च बनवाकर हरी-हरी घासवाली भूमिपर स्थापित करे। उसके ऊपर सुन्दर चँदोवा लगाकर उसे भलीभाँति सजा दे। नाना प्रकारकी मणियोंकी मालासे बन्दनवार बनावे। इस प्रकार मञ्चको स्थापित करके उसके दक्षिण भागमें कुएँसे जल निकालकर कलशोंमें भरकर शास्त्रोक्त विधिसे उन्हें शालाके भीतर रक्खे। फिर उन कलशोंमें पावमानी ऋचाके द्वारा सुवासित जल भरे। यह कर्म चतुर्दशीकी आधी रातमें करने योग्य बताया गया है। तदनन्तर धीरे-धीरे भगवान् बलभद्र और श्रीकृष्णको राजासे सम्मानित ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ले जायँ। चँवर और ताड़के पंखेसे उनपर निरन्तर हवा करते रहें। भगवान्के शरीरपर जो पहले किया हुआ कच्चा लेप हो, उसे न छुड़ावे। जिस प्रकार सुगन्धित लेपसे प्रतिदिन भगवान्का अङ्ग पुष्ट हो, वैसा प्रयत्न करे। भगवान्को ले जानेवाले मनुष्य सावधान और सदाचारी हों। उन्हें ले जाकर मञ्चपर विराजमान करें। फिर शान्तिपूर्वक अधिवासित कलशोंके जलसे समुद्रज्येष्ठा मन्त्रके द्वारा भगवद्विग्रहोंको स्नान करावे। यह स्नान दर्शन करने तथा अभिषेक करनेवाले मनुष्योंको कृतकृत्य करनेवाला है। जो मनुष्य वहाँ खड़े होकर प्रसन्नतापूर्वक भगवान्के ज्येष्ठस्नान और यात्राका उत्कण्ठित चित्तसे दर्शन करते हैं, वे संसारसमुद्रमें नहीं गिरते। श्रीहरिके इस स्नानका दर्शन करनेवाले पुरुषोंकी जान-बूझकर

या अनजानमें की हुई अनादिसञ्चित पापराशि तत्काल नष्ट हो जाती है। स्नान-दर्शन करनेमें जो पुण्य बताया गया है, वही मञ्चपर विराजमान श्रीहरिका दर्शन करनेसे भी प्राप्त होता है। ब्राह्मणो! वहाँ एक ही जगन्नाथजी तीन विग्रहोंमें स्थित हैं। उनमेंसे एक-एकका भी स्नान-दर्शन भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। जो भगवान्‌के स्नानके समय 'जय राम भद्र! जय सुभद्रे! जय कृष्ण! जय जगन्नाथ!' इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक उच्चारण करता है, वह मोक्षको प्राप्त होता है।

श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्रा, गुण्डिचा-महोत्सव तथा पुनः मन्दिरप्रवेशसम्बन्धी यात्रा एवं उत्सवकी महिमा

जैमिनिजी कहते हैं—तदनन्तर श्रद्धासे युक्त प्रस्तुत किये हुए उपचारोंद्वारा बलभद्र, श्रीकृष्ण और सुभद्राजीका [पू]जन करे। उसके बाद जैसे पहले मन्दिरसे ले आते समय उत्सव किया गया था, उसी प्रकार महान् उत्सव करके उन [ती]न भगवत्स्वरूपोंको पुनः दक्षिणाभिमुख ले जाय। उस [स]मय जो मनुष्य दक्षिणाभिमुख जाते हुए श्रीकृष्ण, बलभद्र [औ]र सुभद्राका दर्शन करता है, वह स्नान-दर्शनजनित समस्त [पु]ण्य-फलको प्राप्त करता है। मन्दिरके समीप पहुँचनेपर [ब]लभद्र और सुभद्राके साथ जगन्नाथजीकी आरती उतारकर [म]न्दिरके भीतर प्रवेश करावे और फिर किसी प्रकार उन्हें देखे।

ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षमें जो पूर्णिमा आती है, उसमें [ज्ये]ष्ठा नक्षत्रके एक ही अंशमें चन्द्रमा और बृहस्पति हों, [बृ]हस्पतिका ही दिन हो और शुभ योग भी हो तो वह [मह]ाज्येष्ठी पूर्णिमा कहलाती है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली [है]। महाज्येष्ठी पूर्णिमा महापुण्यमयी तथा भगवान्‌की प्रीतिको [ब]ढ़ानेवाली है। उसमें करुणासिन्धु देवेश्वर जगन्नाथजीका [पू]जन और उनके स्नानका दर्शन करके मनुष्य पापराशिसे [मु]क्त हो जाता है।

वैशाखके शुक्लपक्षमें जो पापनाशिनी तीज आती है, [उ]समें रोहिणी नक्षत्रका योग होनेपर राजा पवित्र भावसे [सं]कल्पपूर्वक एक आचार्यका वरण करे। फिर जिन्होंने काम [दे]खा और जाना हो, ऐसे एक या तीन बढ़इयोंसे पूर्वोक्त [प्र]कारसे श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राजीके लिये तीन रथ [तै]यार करावे, जिनमें बैठनेके लिये सुन्दर आसन हों और [जो] सुन्दर कलापूर्ण ढंगसे बनाये गये हों। रथोंका निर्माण [हो] जानेपर राजा शास्त्रोक्त विधिसे मन्त्रके अनुसार पूर्ववत् [उन]की प्रतिष्ठा करे। मार्गका भलीभाँति संस्कार करावे। [मार्ग]के दोनों ओर फूलोंके गुच्छे, माल्य, सुन्दर वस्त्र, चँवर, [क]मलता आदि और फूलोंके द्वारा मण्डल बनावे। देखनेपर ऐसा मालूम हो कि वहाँ सुन्दर फूलोंसे सुशोभित वन-पङ्क्ति शोभा पा रही है। रास्तेकी भूमि बराबर कर देनी चाहिये। वहाँ कीचड़ नहीं रहनी चाहिये, जिससे भगवान्‌का रथ सुख-पूर्वक चल सके। पग-पगपर रास्तेके दोनों पार्श्वोंमें दिशाओं-को सुगन्धित करनेवाले धूपपात्र रक्खे जायँ। सड़कपर चन्दनके जलका छिड़काव हो। नगाड़ा और ढक्का आदि बाजे बजाये जायँ। सोने-चाँदीके ध्वज, जिनके बीचमें चित्रकारी की गयी हो, लगाये जायँ और उनपर पताकाएँ फहराती रहें। भूमिपर बहुत-सी वैजयन्ती मालाएँ बिछी हों। अनेकों कसे-कसाये हाथी-घोड़े प्रस्तुत किये जायँ, जिनका भलीभाँति शृङ्गार किया गया हो। इस प्रकार सामग्री एकत्र करके उत्तम भक्तिसे युक्त राजा महान् उत्सव करे।

आषाढ़के शुक्लपक्षमें पुष्य नक्षत्रसे युक्त द्वितीया तिथि आनेपर उसमें अरुणोदयके समय भगवान्‌की पूजा करे। ब्राह्मणों, वैष्णवों, तपस्वी और यतियोंके साथ स्वयं भी हाथ जोड़कर राजा देवाधिदेव भगवान्‌से यात्राके लिये निवेदन करे—'प्रभो! आपने पूर्वकालमें राजा इन्द्रद्युम्नको जैसी आज्ञा दी, है उसके अनुसार रथसे गुण्डिचामण्डपके प्रति विजययात्रा कीजिये। आपकी कृपा-कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे दसों दिशाएँ पवित्र हों तथा स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी कल्याण-को प्राप्त हों। आपने यह अवतार लोगोंके ऊपर दयाकी इच्छासे ग्रहण किया है। इसलिये भगवन्! आप प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीपर चरण रखकर पधारिये।'

इसके बाद कुछ लोग मङ्गलगीत गावें। कोई जय-जयकार करें और 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष॰' इत्यादि मन्त्रका उच्च स्वरसे जप करें। सूत, मागध आदि हर्षमें भरकर भगवान्‌के पवित्र यशका गान करें। भगवान्‌के दोनों पार्श्वमें सुवर्णमय दण्डसे सुशोभित व्यजनोंकी पंक्ति धीरे-धीरे डुलती रहे। कृष्णागरुकी धूपसे सम्पूर्ण दिशाएँ और वहाँका आकाश सुवासित रहे। झाँझ, करताल, वेणु, वीणा, माधुरिका

आदि वाद्य गोविन्दकी इस विजययात्राके समय मधुर स्वरसे बजते रहें। इस प्रकार उत्सव आरम्भ होनेपर बलभद्र, श्रीकृष्ण और सुभद्राको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग धीरे-धीरे पैर रखते हुए ले जायँ। बीच-बीचमें रूईदार बिछौनोंपर उन्हें विश्राम करावें और इस प्रकार उन सबको रथपर ले जायँ। फिर उस उत्तम रथको घुमाकर बलभद्र, कृष्ण तथा सुभद्राको सुन्दर चँदोवायुक्त मण्डपसे सुशोभित रथमें विराजमान करे। उन सबको रूईदार गद्दोंपर बैठाकर भक्तिपूर्वक भाँति-भाँतिके वस्त्र, आभूषण और मालाओंसे विभूषित करे। नाना प्रकारके उपचारोंसे उनकी पूजा भी करे। उस समय रथपर विराजमान होकर यात्रा करते हुए श्रीजगन्नाथजीका जो लोग भक्तिपूर्वक दर्शन करते हैं, उनका भगवान्के धाममें निवास होता है। भगवान् श्रीहरिके उस उत्सवका माहात्म्य क्या बतलाऊँ। जिनके नामका सङ्कीर्तन करनेमात्रसे सौ जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है, रथमें स्थित हो महावेदीकी ओर जाते हुए उन पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राजीका दर्शन करके मनुष्य अपने करोड़ों जन्मोंके पापोंका नाश कर लेता है। मेघोंके द्वारा जलकी वर्षाके संयोगसे रथका मार्ग जब कीचड़युक्त हो जाता है, उस समय भी वह श्रीकृष्णकी दिव्यदृष्टि पड़नेसे समस्त पापोंका नाश करनेवाला होता है। उस पङ्किल रथमार्गमें जो उत्तम वैष्णव भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं, वे अनादिकालसे अपने ऊपर चढ़े हुए पापपङ्कको त्याग कर मुक्त हो जाते हैं। जो भगवान् वासुदेवके आगे जय शब्दका उच्चारण करते हुए स्तुति करते हैं, वे भाँति-भाँतिके पापोंपर निःसन्देह विजय पा जाते हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष वहाँ नृत्य करते और गाते हैं, वे उत्तम वैष्णवोंके संसर्गसे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जो भगवान्के नामोंका कीर्तन करता हुआ उस यात्रामें साथ-साथ जाता है तथा गुण्डिचा नगरको जाते हुए श्रीकृष्णकी ओर देखकर भक्तिपूर्वक 'जय कृष्ण, जय कृष्ण, जय कृष्ण'का उच्चारण करता है, वह माताके गर्भमें निवास करनेका दुःख कभी नहीं भोगता। जो मनुष्य रथके आगे खड़ा होकर चँवर, व्यजन, फूलके गुच्छों अथवा वस्त्रोंसे भगवान् पुरुषोत्तमको हवा करता है, वह ब्रह्मलोकमें जाकर मोक्ष पाता है। जो पवित्र सहस्रनामका पाठ करते हुए रथकी प्रदक्षिणा करते हैं, वे भगवान् विष्णुके समान होकर वैकुण्ठधाममें निवास करते हैं। जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णके उद्देश्यसे दान देता है, उसका वह थोड़ा भी दान मेरुदानके समान अक्षय फल देनेवाला होता है। जो भगवान्के आगे रहकर उनके मुखारविन्दका दर्शन करते हुए पग-पगपर प्रणाम करते हैं और मार्गकी धूलि या कीचड़में लोटते हैं, वे क्षणभरमें मुक्तिरूपी फलको पाकर श्रीविष्णुके उत्तम धाममें जाते हैं।

इस प्रकार बलभद्र और सुभद्राके साथ भगवान् श्रीकृष्ण उत्तम रथपर विराजमान हो चारों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए और अपने अङ्गोंका स्पर्श करके बहनेवाली वायुके द्वारा समस्त देहधारियोंके पापोंका नाश

करते हुए यात्रा करते हैं। वे बड़े दयालु और भक्तोंके पालक हैं। जो अज्ञानी और अविश्वासके पात्र हैं, उनके मनमें भी विश्वास उत्पन्न करनेके लिये भगवान् विष्णु प्रतिवर्ष यात्रा प्रारम्भ करते हैं।

इस प्रकार गुण्डिचा नगरमें जाकर भगवान् विन्दुतीर्थके तटपर सात दिन निवास करते हैं; क्योंकि प्राचीन कालमें उन्होंने राजा इन्द्रद्युम्नको यह वर दिया था कि 'मैं तुम्हारे तीर्थके किनारे प्रतिवर्ष निवास करूँगा। मेरे वहाँ स्थित रहनेपर सभी तीर्थ उसमें निवास करेंगे। उस तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करके जो लोग सात दिनोंतक गुण्डिचामण्डपमें विराजमान मेरा, बलरामका और सुभद्राका दर्शन करेंगे, वे मेरा सायुज्य प्राप्त कर लेंगे।' अतः परम पवित्र, सर्वपापनाशक, अकेले ही सब तीर्थोंका फल देनेवाले तथा

श्रीविष्णुकी प्रसन्नता बढ़ानेवाले उस शुभ तीर्थमें स्नान करके पितरों और देवताओंका विधिपूर्वक तर्पण करनेके पश्चात् जो तटवर्ती नृसिंह भगवान्‌का दर्शन, पूजन और उन्हें नमस्कार करता है तथा पुनः महावेदीके समीप जाकर पूर्ववत् भक्तिपूर्वक भगवान्‌का पूजन और वन्दन करता है, वह पुरुष हो या स्त्री, उसे भगवान् विष्णुकी सायुज्यमुक्ति प्राप्त हो जाती है।

मघा नक्षत्र पितरोंका है, अतः वह पितरोंको अधिक प्रीति प्रदान करनेवाला है। उस नक्षत्रमें पुत्रोंद्वारा दिया हुआ श्राद्धका दान पितरोंको विशेष तृप्त करता है। उक्त सर्वतीर्थमय सरोवरके तटपर भगवान् विष्णुके समीप नृसिंह और नीलकण्ठके मध्यवर्ती अतिपवित्र स्थानमें यदि मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करे तो अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार करता है। आषाढ़के शुक्ल पक्षमें पञ्चमी तिथि, मघा नक्षत्र और जगन्नाथजीका महावेदीपर आगमन—ये तीनों योग यदि इन्द्रद्युम्न-सरोवरपर प्राप्त हों तो वह पितरोंको अक्षय प्रीति देनेवाला चतुष्पाद योग माना गया है। भाद्रपद मासकी अमावास्याको अथवा चारों युगादि तिथियोंमें जो पितरोंके उद्देश्यसे अश्वमेधाङ्ग-सम्भूत इन्द्रद्युम्न-सरोवरपर श्राद्ध करता है, उसका किया हुआ वह श्राद्ध सब पापोंका नाश करनेवाला है। सात दिनोंतक मौनभावसे तीनों काल स्नान करे और तीनों सन्ध्याओंमें कलशपर भक्तिपूर्वक भगवान्‌की पूजा करे। गायके घी अथवा तिलके तेलसे दीपक जलावे और उसे भगवान्‌के आगे रखकर रात-दिन उसकी रक्षा करे। दिनमें मौन रहे और रातमें जागरण करके भगवत्सम्बन्धी मन्त्रका जप करे। इस प्रकार सात दिन बिताकर आठवें दिन प्रातःकाल उठकर प्रतिष्ठा करावे। इस व्रतराजका विधिपूर्वक पालन करके मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको अपनी रुचिके अनुसार प्राप्त करता है।

सात दिनोंतक वहाँ रथकी भलीभाँति रक्षा करके आठवें दिन उन सब रथोंको पुनः दक्षिणाभिमुख कर दे और वस्त्र, माला, पताका तथा चँवर आदिसे उनकी पुनः सजावट करे। आषाढ़ शुक्ला नवमीको प्रातःकाल उन सब भगवद्विग्रहोंको रथपर विराजमान करे। भगवान् विष्णुकी यह दक्षिणाभिमुख यात्रा अत्यन्त दुर्लभ है। भक्ति और श्रद्धासे युक्त मनुष्योंको इस यात्रामें प्रयत्नपूर्वक भाग लेना चाहिये। जैसे पहली यात्रा है उसी प्रकार यह दूसरी भी है। दोनों ही मोक्षदायिनी हैं। यात्रा और मन्दिरप्रवेश—ये दोनों मिलाकर भगवान्‌का एक ही उत्सव माना गया है। यह पूरी यात्रा नौ दिनकी होती है। जिन लोगोंने तीन अङ्गोंवाली इस यात्राकी पूर्णतः उपासना की है, उन्हींके लिये यह महावेदी महोत्सव सम्पूर्ण फल देनेवाला होता है। गुण्डिचामण्डपसे रथपर बैठकर दक्षिण दिशाकी ओर आते हुए श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राका जो दर्शन करते हैं, वे मोक्षके भागी होते हैं, अर्थात् भगवान्‌के वैकुण्ठधाममें जाते हैं।

मुनिवरो! इस प्रकार मैंने तुमसे महावेदी महोत्सवका वर्णन किया, जिसके कीर्तनमात्रसे मनुष्य निर्मल हो जाता है। जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इस प्रसङ्गका पाठ करता है अथवा सावधान होकर सुनता है और भगवत्प्रतिमाका चित्र लेकर भी उसे रथपर बैठाकर भक्तिभावसे इस रथयात्राको सम्पन्न करता है, वह भी भगवान् विष्णुकी कृपासे गुण्डिचा-महोत्सवके फलस्वरूप वैकुण्ठ-धाममें जाता है।

पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चातुर्मास्यकी महिमा, राजा श्वेतपर भगवत्कृपा तथा भगवत्प्रसादका माहात्म्य

जैमिनिजी कहते हैं—सूर्यके कर्क राशिपर रहते हुए आषाढ़ शुक्ला एकादशीसे लेकर कार्तिक शुक्ला एकादशीतक वर्षाकालिक चार महीनोंमें भगवान् विष्णुका शयन होता है। यह श्रीहरिकी आराधनाका परम पवित्र समय है। वर्षाके चार महीनोंमें जितने दिन मनुष्य जनार्दनके समीप रहकर व्यतीत करता है, उतने समयतक वह प्रतिदिन अश्वमेधयज्ञके फलका भागी होता है। समुद्रके पवित्र जलमें स्नान करके श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करते हुए चातुर्मास्य व्रतका पालन करना मुक्तिका साधन माना गया है। इसलिये मनुष्य बड़े यत्नसे पुण्यमय पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करे। चातुर्मास्यमें भगवान् शेषशय्यापर शयन करते हैं। आठ महीने पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करके प्रतिदिन भगवान् विष्णुका दर्शन करनेसे मनुष्य जिस फलको पाता है, उसीको चातुर्मास्यमें एक दिनके निवास और दर्शनसे प्राप्त कर लेता है। जो सब प्रकारके पापोंमें आसक्त, सम्पूर्ण सदाचारोंसे भ्रष्ट तथा समस्त धर्मोंसे बहिष्कृत हो, वह भी पुरुषोत्तम-

भगवान् विष्णुको लक्ष्मीदेवी भोजन परोस रही हैं।
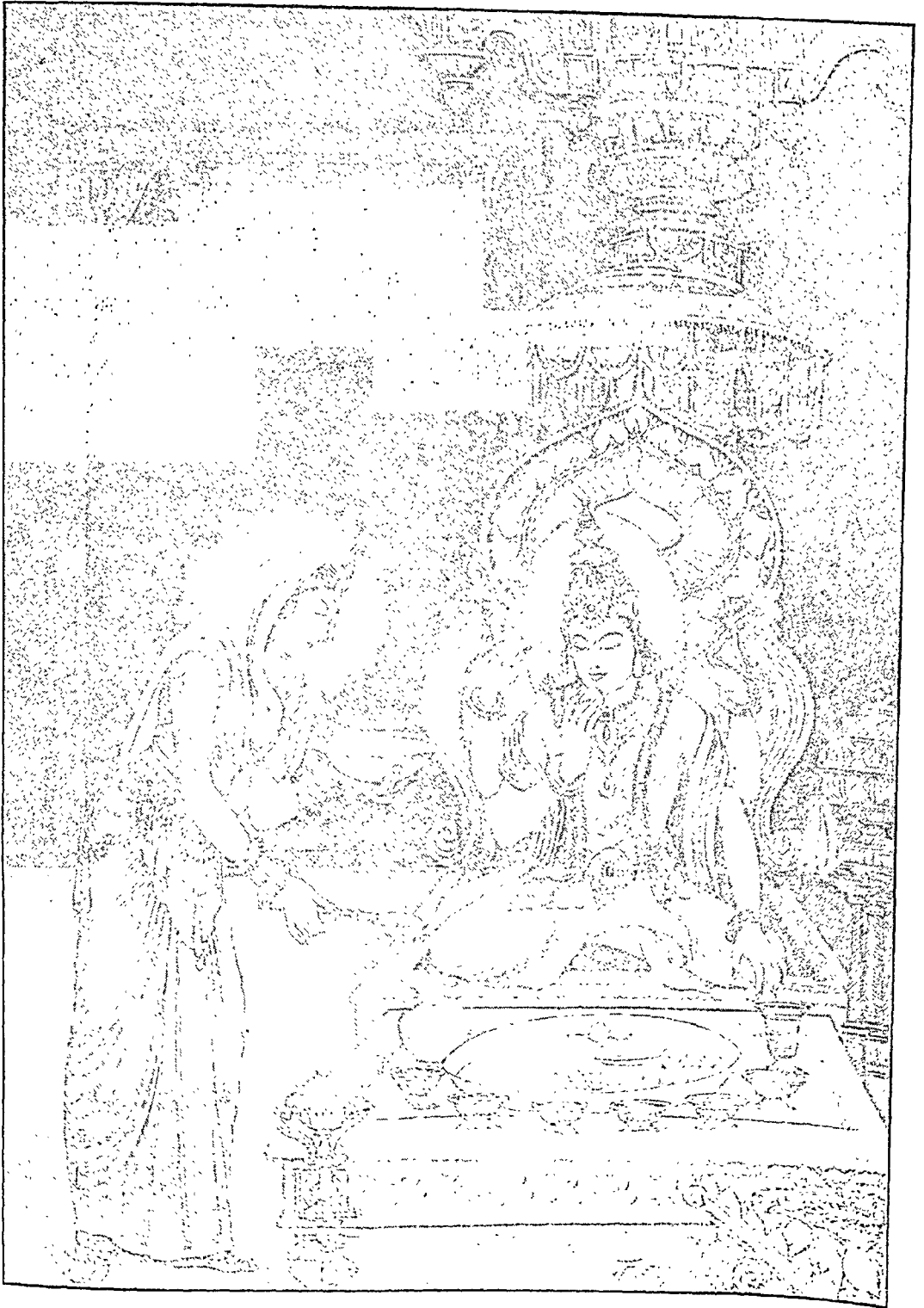
[पृष्ठ २९३
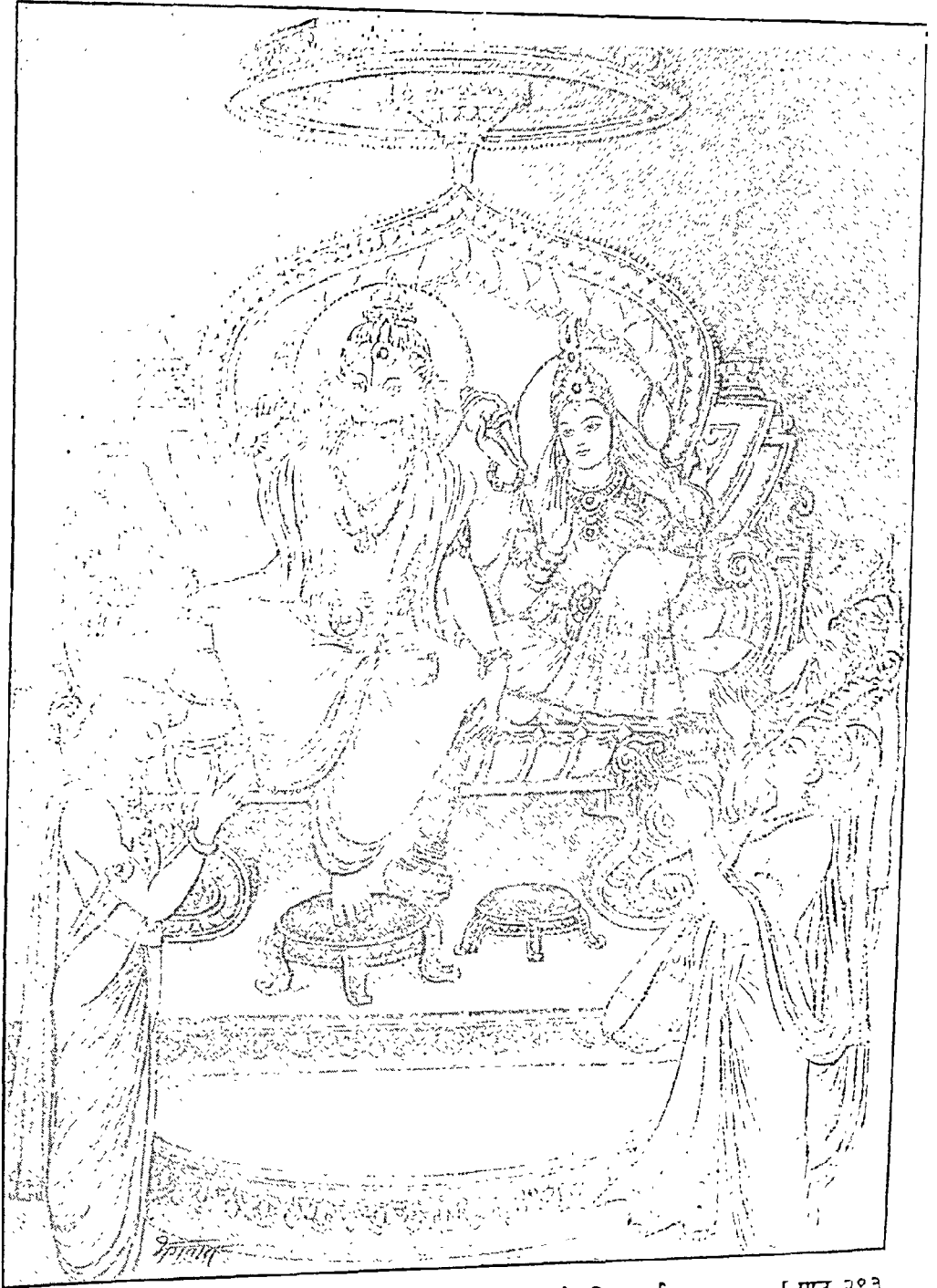
राजा श्वेतको भगवान् लक्ष्मी-नृसिंहके दिव्यदर्शन

[पृष्ठ २९३

क्षेत्रमें निवास करे। जो दूध पीकर अथवा शाकाहार करके यहाँ चातुर्मास्य व्यतीत करता है, वह यहाँ प्रचुर सुख भोगकर अन्तमें परम शान्तिको प्राप्त होता है। देवाधिदेव भगवान्की प्रसन्नताके लिये मनुष्य यहाँ भीष्मपञ्चक नामक उत्तम व्रतका पालन करे और जंगली फल-मूल खाकर रहे। यह व्रत भगवान्की प्रसन्नताको बढ़ानेवाला, सब पापोंका नाश करनेवाला और वैकुण्ठधामरूपी सद्गति देनेवाला है। मुनीश्वरो! यह सब तुम्हें रहस्यकी बातें बतायी गयी हैं। ये जितने भी व्रत हैं, वे भगवद्भक्तिहीन मनुष्योंके लिये निष्फल होते हैं, यह अच्छी तरह जान लो। तीर्थोंका तथा सात्त्विक दान और तपस्याओंका जो उत्तम फल है, वह सब केवल विष्णुभक्तिसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है।

प्राचीन कालकी बात है, त्रेतायुगमें श्वेत नामक एक महान् राजा हो गये हैं। उन्होंने व्रतमें स्थित होकर भगवान् पुरुषोत्तममें बड़ी भक्ति की। राजा इन्द्रद्युम्नके द्वारा निश्चित किये हुए भोगोंकी मात्राके अनुसार वे प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक भगवान् लक्ष्मीपतिके लिये भोग प्रस्तुत करते थे। अनेक प्रकारके भक्ष्य, भोज्य पदार्थ, भलीभाँति संस्कार किये हुए छहों रस, विचित्र माल्य, सुगन्ध, अनुलेपन तथा बहुत प्रकारके राजोचित उपचार अवसर-अवसरपर भगवान्की सेवामें समर्पित करते थे। एक दिन राजा श्वेत प्रातःकाल पूजाके समय भगवान्का दर्शन करनेके लिये गये और पूजा होते समय उन्होंने श्रीहरिका दर्शन किया। देवाधिदेव भगवान्को प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़े प्रसन्नतापूर्वक वे मन्दिरके द्वारके समीप खड़े रहे। अपने ही द्वारा तैयार किये हुए उत्तम उपचारों तथा सहस्रों उपहारकी सामग्रियोंको राजाने भगवान्के सामने उपस्थित देखा। तब वे कुछ ध्यानस्थ होकर मन-ही-मन सोचने लगे—'क्या भगवान् श्रीहरि यह मनुष्यनिर्मित भोग ग्रहण करेंगे? यह बाह्यपूजनकी सामग्री भावदूषित होनेके कारण निश्चय ही भगवान्को प्रसन्न करनेवाली न होगी।'

इस प्रकार विचार करते हुए राजाने देखा—दिव्य सिंहासनपर साक्षात् भगवान् विष्णु विराजमान हैं और दिव्य सुगन्ध, दिव्य वस्त्र एवं दिव्य हारोंसे विभूषित साक्षात् लक्ष्मीदेवी उनके आगे अन्न-पान आदि भोजनसामग्री परोस रही हैं और भगवान् भोजन कर रहे हैं। यह अद्भुत झाँकी देखकर राजाने अपनेको कृतार्थ माना तथा आँखें खोल दीं। फिर उन्हें पहले देखी हुई सब बातें दिखायी दीं। इससे राजाको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। भगवान्को निवेदित किये हुए प्रसादको ही खानेवाले व्रतशील राजाने बड़ी भारी तपस्या की। उस तपस्याका उद्देश्य यह था कि मेरे राज्यमें किसीकी अकालमृत्यु न हो और मरे हुए प्राणियोंकी मुक्ति हो जाय। शरणागतोंके लिये कल्पवृक्षस्वरूप मन्त्रराज आनुष्टुभका उन्होंने नित्य नियमपूर्वक जप किया। इस प्रकार सौ वर्षतक जप और तपस्याके पश्चात् राजाने समस्त पापोंका अपहरण करनेवाले साक्षात् भगवान् नृसिंहका दर्शन प्राप्त किया। वे योगासनपर कमलके ऊपर विराजमान थे। उनके वामभागमें भगवती लक्ष्मी शोभा पा रही थीं। देवता, सिद्ध और मुक्त पुरुष उनकी स्तुतिमें लगे थे। ऐसे भगवान्को उपस्थित देखकर आश्चर्यसे चकित होकर राजा श्वेत हर्ष-गद्गद वाणीमें 'हे नाथ! प्रसन्न होइये' ऐसा कहते हुए धरतीपर गिर पड़े। तपस्यासे दुर्बल तथा चरणोंमें पड़े हुए निष्पाप राजा श्वेतसे भक्तवत्सल भगवान् नृसिंहने कहा—'वत्स! उठो, मुझे भक्तिसे प्रसन्न जानो और कोई अभीष्ट वर माँगो।' भगवान्का यह वचन सुनकर राजा उठे और दोनों हाथ जोड़कर भक्तिसे विनम्र होकर बोले—'स्वामिन्! यदि मुझपर आपकी अत्यन्त दुर्लभ कृपा है, तो मैं मरनेके बाद आपके समान रूप प्राप्त करके आपके समीप ही सेवामें रहूँ तथा जबतक इस पृथ्वीपर मैं राजाके पदपर रहूँ, तबतक मेरे राज्यमें कोई भी मनुष्य अकालमृत्युको न प्राप्त हो और जिसकी कालमृत्यु हो, उसका भी [illegible] हो जाय।'

यह सुनकर भगवान्ने परम उत्तम राजा श्वेतसे कहा—'श्वेत! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो। एक हजार वर्षतक तुम अपने समृद्धिशाली राज्यका उपभोग करो। प्रतिदिन मेरे नैवेद्यको भोजन करनेसे तुम्हारी सारी पापराशि नष्ट हो जायगी और अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध हो जायगा। तत्पश्चात् तुम मेरी सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर लोगे। तुम्हारे राज्यमें जो लोग मेरे निर्माल्यका भोजन करेंगे, उनकी कभी अकालमृत्यु नहीं होगी।'

इस प्रकार राजा श्वेतको वरदान देकर भगवान् नृसिंह अन्तर्धान हो गये। यहाँ अमृतके समान स्वादिष्ट एवं सुपक्व अन्नको सबके स्वामी भगवान् नारायण भोजन करते हैं। उनके प्रसादका उपभोग सब पापोंका क्षय करनेवाला है। भगवान् जगन्नाथजीके मन्दिरमें पहुँचकर भगवान्को भोग लग जानेपर जैसे भगवान् विष्णु नित्य शुद्ध हैं, वैसे ही उनका प्रसाद भी शुद्ध है। व्रतपरायण विधवा स्त्रियाँ,

वर्णाश्रम-धर्ममें तत्पर रहनेवाले मनुष्य, यज्ञमें दीक्षित पुरुष तथा अग्निहोत्री भी भगवान् पुरुषोत्तमके प्रसादको खाकर पवित्र होते हैं। दरिद्र, कृपण, गृहस्थ, प्रभु, स्वदेशी, परदेशी, जो भी वहाँ आते हैं, उन्हें चाहिये कि वे कोई भी भगवान् विष्णुका प्रसाद ग्रहण करनेमें अहङ्कार न दिखावें। भक्तिसे, लोभसे, कौतूहलसे अथवा क्षुधा-शान्तिके निमित्त आकण्ठ भोजन किया हुआ भगवत्प्रसाद सब पापोंको पवित्र कर देता है। जो पण्डितमानी मूर्ख अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुके उस अमृतमय प्रसादकी निन्दा करते हैं, उनकी निश्चय ही दुर्गति होती है। उस प्रसादको बेचना या मोल लेना भी अच्छा नहीं माना गया है। मैं जगन्नाथजीके प्रसादका भोजन करके और कुछ नहीं खाऊँगा, इस प्रकार सच्ची प्रतिज्ञा करके जो प्रतिदिन प्रसाद ग्रहण करता है, वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त एवं शुद्धचित्त होकर विशुद्ध वैकुण्ठधामको जाता है। भगवान्का प्रसाद यदि चिरकालका रक्खा हो, सूख गया हो अथवा दूर देशमें लाया गया हो, जिस किसी प्रकार भी उसका उपयोग करनेपर वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। जगन्नाथजीके प्रसादका अन्न और गङ्गाजल दोनों बराबर हैं। उनको भोजन करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है। वहाँ काष्ठरूपी परब्रह्म सबके नेत्रोंके समक्ष प्रकाशित हैं। थोड़े पुण्यवाले मनुष्योंका उस प्रसादमें विश्वास नहीं होता, उसकी महिमाको कोई नहीं जानता। भयङ्कर कलिकालमें धर्मके तीन चरणोंका नाश हो जाता है, उसका एक ही पाद रह जाता है। उस समय प्रायः सब लोग असत्यवादी, दम्भी और शठवृत्तिके होते हैं, धर्मसे विमुख तथा जिह्वा और उपस्थके भोगोंमें तत्पर रहते हैं। ध्यान, तपस्या और व्रत कभी नहीं करते, सभी अत्यन्त अधर्मी, लोभी और हिंसक होते हैं। अपना कोई प्रयोजन न होनेपर भी दूसरोंकी निन्दासे सन्तुष्ट होते हैं, प्रसङ्ग अथवा कौतूहलवश भी दूसरोंके कार्यकी हानि करते हैं और अपने छोटेसे कार्यके लिये भी दूसरोंके महत्त्वपूर्ण कार्योंमें बाधा उपस्थित करते हैं। धर्मतः प्राप्त होकर अपने घरमें आयी हुई सुन्दरी स्त्रीकी भी अवहेलना करके दूसरोंकी निन्दनीय स्त्रीमें आसक्त होते हैं। अग्निहोत्र आदि कर्म अथवा दूसरा कोई व्रत भी कहीं पालित नहीं होता। यदि कहीं है, तो वह ब्राह्मणोंकी जीविकाके रूपमें है। जो पारलौकिक कर्म हैं, वे भी यथार्थरूपसे सम्पादित न होनेके कारण फलदायक नहीं होते। कलियुगमें राजालोग प्रायः प्रजाकी रक्षासे मुँह मोड़े रहते हैं। वे सदा कर वसूल करते हैं, प्रायः पापिष्ठ और चोरीकी वृत्तिवाले होते हैं। कलियुगमें प्रायः सब लोग वर्णसङ्कर और शूद्रके तुल्य हो जाते हैं। राजा ही प्रजाका धन अपहरण करते और शूद्र राजसेवक होते हैं। वैदिक और स्मार्त आदि कर्मोंका कलिमें भलीभाँति अनुष्ठान नहीं किया जाता। उस समय दान-धर्म सबसे उत्तम है। कलियुग प्राप्त होनेपर यहाँ भगवान् विष्णु ही सबकी गति हैं। शालग्राम आदि क्षेत्रमें भगवान्का स्मरण और कीर्तन किया जाता है, परंतु यह पुण्यक्षेत्र नीलाचल तो उन क्षेत्रज्ञ परमात्माका शरीर है। काष्ठके बहाने सबके जीवनरूप विष्णु साक्षात् शरीर धारण करके यहाँ विराजमान हैं। पापियोंके कलिकालजनित पापका नाश करनेके लिये ही यहाँ भगवान्का प्राकट्य हुआ है। वे यहाँ अपने दर्शन, स्तवन और प्रसादभोजनसे मोक्षदायक होते हैं। भगवान्के प्रसादसे जिसका शरीर व्याप्त है, वह उस विशुद्ध आहारसे विशुद्धात्मा होनेके कारण पातकोंसे लिप्त नहीं होता। भगवान् जगदीश इसी तीर्थमें अर्पित किये हुए नैवेद्यका साक्षात् भोजन करते हैं।

भगवान् विष्णुके श्रीअङ्गोंसे उतारी हुई तुलसीकी मालाको जो भक्त अपने मस्तक या गलेमें धारण करता है अथवा जो उसे हृदयसे लगाये रखता है या भगवत्प्रसादरूप तुलसीदल भक्षण करता है, वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। तुलसीदलसे मिश्रित भगवत्प्रसाद भोजन करके मनुष्य निश्चय ही मोक्ष पाता है। भगवान् विष्णुके आचमन, चरणोदक तथा स्नान-जल सब पापोंका नाश करनेवाले हैं। शव आदि अपवित्र वस्तुओंके स्पर्शजनित दोषका भी उनके द्वारा नाश होता है। इतना ही नहीं, वे समस्त दीक्षाओं और व्रतोंके फल देनेवाले तथा ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेवाले हैं। भगवान्का चरणामृत अकालमृत्युका निवारण, रोगसमूहका संहार तथा पापराशिका नाश करनेवाला है। इस प्रकार पुरुषोत्तमतीर्थमें लक्ष्मीजीके साथ निवास करनेवाले भगवान् विष्णु सब लोगोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे निवास करते हुए अनायास ही मोक्ष देते हैं।
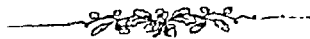
भगवान् पुरुषोत्तमके पार्श्व-परिवर्तन, उत्थापन और प्रावरण आदि उत्सवोंका महत्त्व

जैमिनिजी कहते हैं—जगन्मय भगवान् पुरुषोत्तम सब प्रकारसे इस संसारका कल्याण करनेके लिये ही अनेक प्रकारके रूप और लीलाएँ करते हुए नाना शरीर धारण करके प्रकट होते हैं। अहङ्कारके बिना कर्मका फल नहीं भोगना पड़ता। अहङ्कारसे मनुष्य इस संसाररूपी कारागारमें बाँधे जाते हैं। बुद्धि और अहङ्कारसे युक्त होकर मनुष्य जो कर्म करता है, उसके अनुसार शुभाशुभ फलको पाता है। उन कर्म करनेवाले मनुष्योंमें जो सात्त्विक बुद्धिके लोग हैं, वे फलप्राप्तिकी इच्छा न रखकर मुमुक्षुभावसे केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही कर्म करते हैं। उन सात्त्विक पुरुषोंके द्वारा दर्शन, ध्यान अथवा स्मरण भी करनेपर सर्वभावन भगवान् जगन्नाथ उन्हें मोक्ष प्रदान करते हैं।

भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी एकादशीको जगन्नाथजीके शयन-गृहके दरवाजेपर धीरे-धीरे जाकर उसमें प्रवेश करे और शय्यापर सोये हुए उन जगदीश्वरको नमस्कार करके उपचारोंद्वारा उनके चरणोंकी पूजा करे। तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक प्रणाम करके गुह्य उपनिषदोंसे स्तुति करे। फिर निम्नाङ्कित प्रार्थना करते हुए भगवान्‌की करवट बदलकर उन्हें उत्तरकी ओर मुँह करके सुला दे। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करे—'देवाधिदेव जगन्नाथ! आप अनेकानेक कल्पोंका परिवर्तन करनेवाले हैं, आपसे ही यह स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण जगत् परिवर्तित होता है। भगवन्! आपने स्वेच्छासे स्वीकार की हुई जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिरूप चेष्टाओंद्वारा जगत्‌का हित करनेके लिये ही शयन किया है। अब इस समय करवट बदल लीजिये; क्योंकि जगत्‌का पालन करनेके लिये यह आपके करवट बदलनेका समय प्राप्त हुआ है।'

इस प्रकार भगवान्‌की प्रार्थना करके व्यजन और चँवर डुलावे तथा सुगन्धित चन्दनका भगवान्‌के सब अङ्गोंपर लेपन करे। तत्पश्चात् स्वादयुक्त मिठाई, खीर, हलुवा, भाँति-भाँतिके फल, अन्य स्वादिष्ट व्यञ्जन, घीके बने हुए पूए तथा ताम्बूलपत्र आदि सब सामग्री शयनगृहके द्वारपर रखकर भक्तिपूर्वक निवेदन करे। उस दिन यदि भगवान्‌के स्वरूपका दर्शन हो जाय, तो बड़ा भारी फल होता है।

कौमुदी नामक महोत्सवके अवसरपर जगन्नाथजीकी पूजा करके उसी पूर्णिमाकी रातको उत्सवपूर्वक नारियल आदि द्रव्यों तथा पिष्टक (पीठी) से भगवान् विष्णुकी पूजा करे। तत्पश्चात् सवेरे कार्तिक मास आरम्भ होनेपर उत्तम व्रतका सङ्कल्प ले शुक्लपक्षकी एकादशीतक उसी व्रतके नियमसे रहे। एकादशी आनेपर सोये हुए भगवान् जगदीश्वरको उठावे। पहलेकी भाँति आधी रातके समय जगद्गुरु भगवान्‌की पूजा करके निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌को जगावे—

> उत्तिष्ठ देवदेवेश तेजोराशे जगत्पते।
> वीक्षस्व सकलं देव प्रसुप्तं तव मायया॥
> प्रफुल्लपुण्डरीकश्रीहारिणा नयनेन वै।
> त्वया दृष्टं जगदिदं पावित्र्यं परमेष्यति॥

'देवदेवेश्वर! उठिये। तेजःपुञ्ज जगदीश्वर! देव! सम्पूर्ण जगत् आपकी मायासे सो रहा है, इसकी ओर दृष्टिपात कीजिये। प्रभो! खिले हुए कमलकी शोभाका अपहरण करनेवाले आपके नेत्रसे देखा जानेपर यह जगत् अत्यन्त पवित्र हो जायगा।'

इस प्रकार जगदीशजीको जगाकर शङ्ख, धौंसा, ढोल आदि वाद्यों, नृत्य और गीतों, जय-जयकारके शब्दों तथा नाना प्रकारके स्तोत्रोंके साथ नृत्यमण्डपमें ले जाय। वहाँ सुगन्धित तेलसे उबटन करके जगन्नाथजीको पञ्चामृत, फलोंके रस तथा नारियलके जलसे स्नान करावे। उसके बाद सुगन्धयुक्त आँवले और जौके चूर्णसे भगवान्‌के शरीरपर लेप करे। तुलसीके चूर्णसे उनके शरीरको मले और सुगन्धित चन्दनका लेप करे। उस समय जो लोग हर्षपूर्वक श्रीजगदीशजीका दर्शन करते हैं, वे अनेक जन्मोंके सुदृढ़ पापपङ्कको धो डालते हैं। तत्पश्चात् बड़े-बड़े उपचारोंसे भगवान्‌की विधिवत् पूजा करके उनकी आरती उतारे और हाथ जोड़कर बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रार्थना करे—'प्रभो! यह सम्पूर्ण चराचर जगत् केवल आपकी ही शरणमें है, जगद्गुरो! अपनी कृपासुधासे परिपूर्ण दृष्टिद्वारा इसे पवित्र कीजिये।' तदनन्तर शेष रात्रि भगवत्सम्बन्धी नृत्य-गीतको देखते हुए व्यतीत करे। जो लोग शयनसे उठे हुए भगवान् गदाधरका दर्शन करते हैं, वे अपनी

मोहमयी निद्राका भेदन करके शान्त ज्योतिःस्वरूप श्रीहरिको प्राप्त होते हैं।

शालग्रामशिलामें स्थित भगवान् श्रीहरिकी चक्रमूर्तिका शुद्धचित्त होकर पूजन करे। पूजाके समय भगवान्‌का ध्यान इस प्रकार करे—दामोदर-स्वरूपधारी भगवान्‌के चार भुजाएँ हैं। उन्होंने हाथोंमें शङ्ख और कमल धारण कर रक्खा है। उनके वामभागमें कमलके आसनपर लक्ष्मीजी बैठी हैं और वे बायें हाथसे उनका स्पर्श करके बैठे हैं। भगवान् अपने दाहिने हाथसे भक्तोंको वर देनेके लिये उद्यत हैं। उनकी नासिका, ललाट, उनके दोनों नेत्र और कान भी बहुत सुन्दर हैं। उनका वक्षःस्थल विशाल है, वे सम्पूर्ण लावण्यसे सुशोभित हैं, समस्त अलङ्कारोंको धारण करके वे बड़े ही मनोहर प्रतीत होते हैं। उनके श्रीअङ्गोंपर दिव्य पीताम्बर शोभा पा रहा है।

मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षमें षष्ठी तिथिको मनुष्य भक्तिभावसे प्रावरणोत्सव अथवा उस उत्सवका दर्शन करके भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। पञ्चमीकी रात्रिमें भगवान्‌का वस्त्राधिवास करे, भगवान्‌को वस्त्रोंके मध्यमें स्थापित करके अन्य वस्त्रसे आच्छादित करे और पुरुषोत्तमके स्मरणपूर्वक उनका स्पर्श करके इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे वस्त्र! जो अविनाशी भगवान् विष्णु अपने तेजसे सम्पूर्ण जगत्‌को आच्छादित करनेवाले हैं, उनका भी वसन (आच्छादन) करनेसे तुम्हारा नाम वस्त्र है। तुम जगदीश्वरके वासस्थानमें निवास करो।' तत्पश्चात् चन्दन और पुष्पसे भगवान्‌का पूजन करे और नृत्य-गीतके द्वारा जागरणपूर्वक रात्रि व्यतीत करे। फिर अरुणोदयकालमें प्रातःसन्ध्याके समीप पूर्ववत् एकाग्रचित्त हो पुनः भगवान्‌की पूजा करे। उसके बाद तीन बार मन्दिरकी परिक्रमा करके भगवान्‌को भी तीन बार घुमावे और उस आच्छादित वस्त्र को हटाकर दर्शन आदिके द्वारा संस्कार करे। तदनन्तर दूर्वा और अक्षतसे पूजा करके भगवान्‌की आरती उतारे।

हेमन्त ऋतुके आनेपर जो लोग उत्तम वस्त्रोंद्वारा भगवान् नृसिंहको आच्छादित करते हैं अथवा जो आच्छादन-महोत्सवका दर्शन करते हैं, वे कभी मोहसे आच्छादित नहीं होते। देवाधिदेव भगवान्‌के इस प्रावरण-महोत्सवका जो लोग भक्तिपूर्वक दर्शन करते हैं, वे सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेते हैं।

पुष्यस्नानोत्सव, उत्तरायणोत्सव तथा दोलारोहणोत्सवका वर्णन

जैमिनिजी कहते हैं—पौषके महीनेमें पूर्णिमाको जब पुष्य नक्षत्र हो, तब भगवान्‌का पुष्यस्नानोत्सव करे। चतुर्दशीकी रातमें ८१ कलशोंका अधिवासन (स्थापन) करे। भगवान्‌के आगे सर्वतोभद्रमण्डल बनावे और उसके बीचमें एक बड़ा-सा दर्पण स्थापित करे। रात्रिमें गीत और नृत्य आदिके द्वारा जागरण करे। प्रातःकाल दर्पणमें प्रतिबिम्बित भगवान् पुरुषोत्तमका उपचारोंद्वारा पूजन करे। तदनन्तर वृषसूक्तसे कलशोंको अभिमन्त्रित करके फिर उन कलशोंके जलसे अटूट धारा गिराते हुए भगवान् पुरुषोत्तमको स्नान करावे। फिर पावमानीय सूक्त और श्रीसूक्तसे भी क्रमशः बलभद्र और सुभद्राको स्नान करावे। फिर विष्णुगायत्रीसे* चन्दनयुक्त जलके द्वारा स्नान कराकर श्रीसूक्तसे पूजा करे। तत्पश्चात् भगवान्‌के श्रीअङ्गोंमें गन्ध और चन्दनसे लेप करे और उन्हें सुगन्धित पुष्पोंकी मालाओंसे विभूषित करे। फिर रत्नमय छत्र ऊपर उठाकर लक्ष्मीसहित पुरुषोत्तमका पूजन करे। फिर उच्चस्वरसे शङ्खध्वनि, मङ्गलगीत और नृत्य आदि हों। भगवान्‌को चँवर डुलाये जायँ, ब्राह्मणलोग जय-जयकार करें और तीन बार अञ्जलिमें दूर्वा एवं अक्षत लेकर भगवान्‌की पूजा करके कपूरयुक्त बत्तियोंवाले गायके घीमें जलाये हुए दीपकोंसे जगन्नाथजीकी आरती करे। उसके बाद सुन्दर पानका बीड़ा लगाकर धीरे-धीरे भगवान्‌के मुखके समीप निवेदन करे। तत्पश्चात् आचार्यको दक्षिणा दे और ब्राह्मणोंका पूजन करे। जो प्रसन्नतापूर्वक पुष्यस्नानका पवित्र उत्सव देखते हैं, वे भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं।

जब भगवान् सूर्य उत्तरदिशाकी ओर गमन करनेकी इच्छासे मकर राशिपर जाते हैं, उस समय उत्तरायण प्रारम्भ होता है। उनके संक्रमणकालका आधा दिन [illegible] परम पुण्यमय काल माना गया है। यह पितरों, देवताओं तथा ब्राह्मणोंको अत्यन्त प्रिय है। उस समय तीर्थराज समुद्रमें

* विष्णुगायत्री इस प्रकार है—

ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।
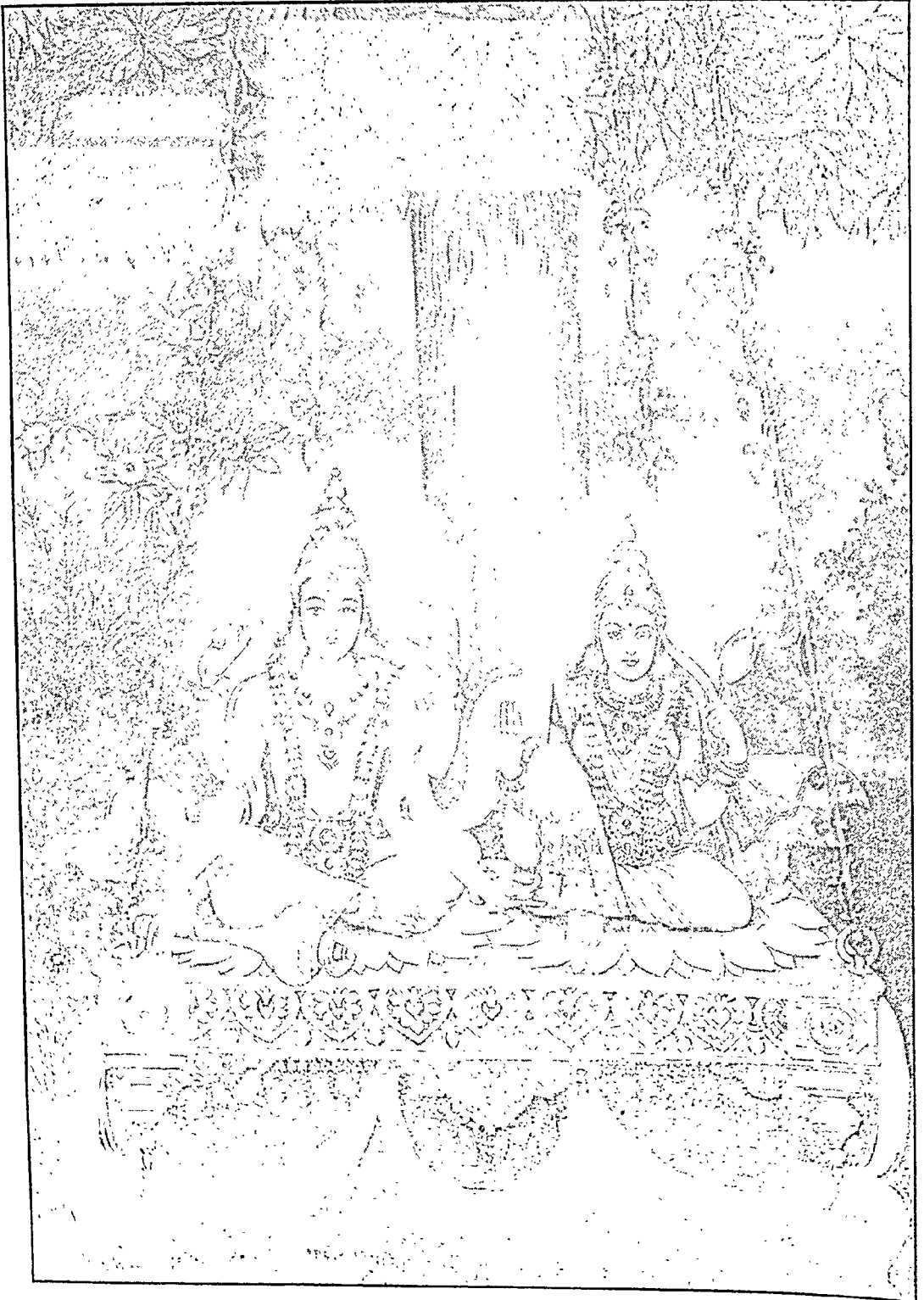
रत्नहिंडोलेपर भगवान् लक्ष्मीनारायण

[पृष्ठ २९७
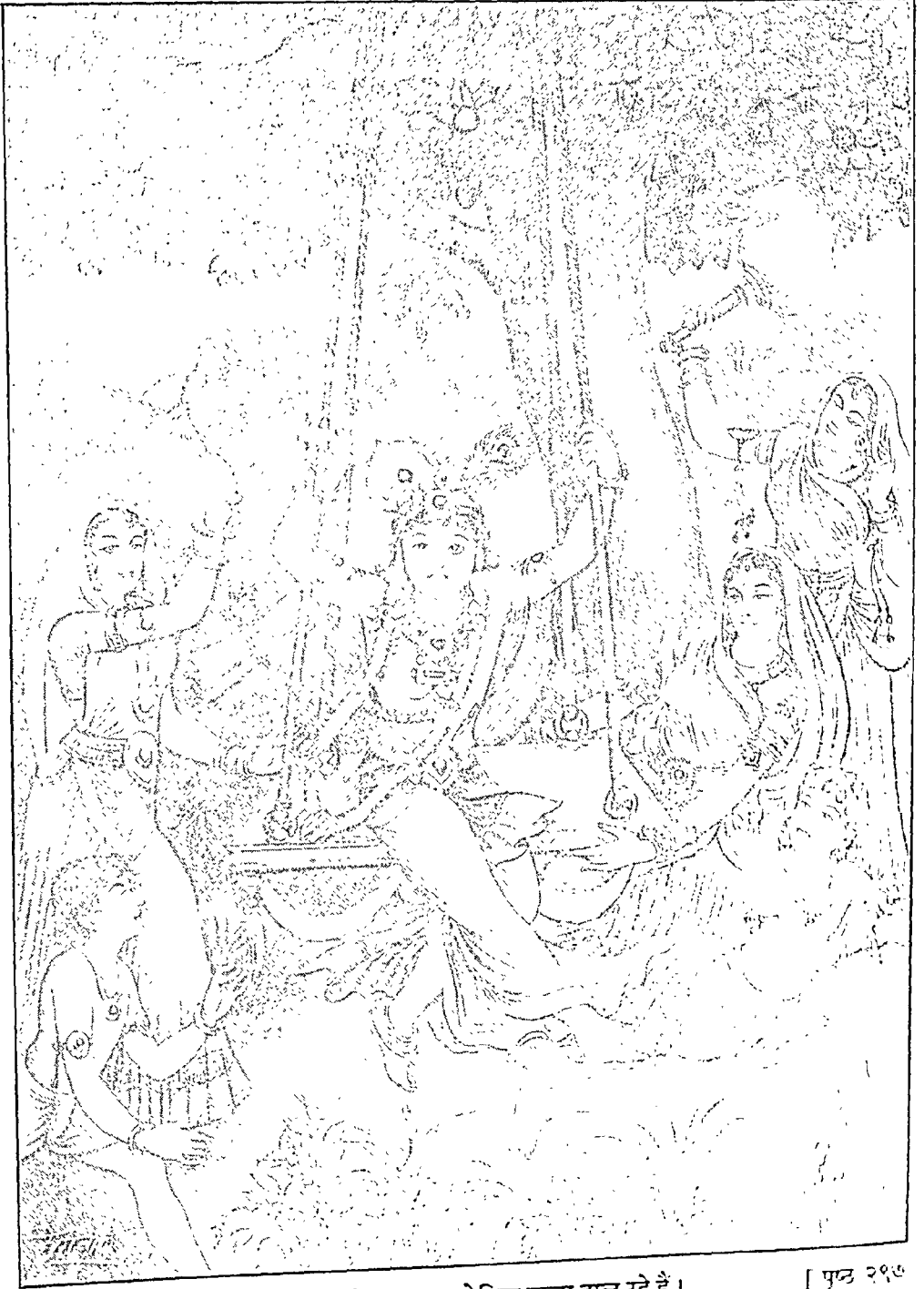
कदम्बमूलमें भगवान् गोविन्द झूला झूल रहे हैं।

[पृष्ठ २१७

जलमें विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य भगवान् नारायणका पूजन करे। कल्पवृक्षको प्रणाम करके देवमन्दिरमें प्रवेश करे और तीन बार श्रीपुरुषोत्तमकी परिक्रमा करके मन्त्रराजके द्वारा उनकी पूजा करे। इसी प्रकार बलभद्र और सुभद्राका भी उन-उनके नाममन्त्रोंद्वारा पूजन करे। उत्तरायणके प्रारम्भकालमें भगवान् विष्णुका दर्शन करके मनुष्य देह-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। पूर्वकालमें महर्षि कश्यपने सृष्टि-रचना करके इस महान् उत्सवको भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किया था। कश्यपजीके द्वारा चालू किये हुए इस उत्सवका जो लोग दर्शन करते हैं, वे मोक्षको प्राप्त होते हैं। मुनियो! इस उत्सवमें भी रसोईघरका और अग्निका संस्कार करना चाहिये तथा प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करना चाहिये। अग्न्याधानपूर्वक अग्निका संस्कार हो जानेपर प्रतिदिन दिव्य-रूपा भगवती लक्ष्मी अदृश्यभावसे वहाँ पहुँचकर भगवान्‌के भोजनके लिये स्वयं रसोई तैयार करती हैं। उत्तरायण या मकरसंक्रान्तिके उत्सवमें किये हुए स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितृतर्पण सब अक्षय होते हैं।

फाल्गुन मासमें भगवान्‌के लिये दोलारोहणका उत्तम उत्सव करना चाहिये। देवदेव श्रीविष्णुकी गोविन्द नामसे प्रसिद्ध प्रतिमा बनवाये और मन्दिरके आगे सोलह खंभोंका एक ऊँचा मण्डप तैयार करे। वह मण्डप चौकोर हो, उसमें चार दरवाजे हों और बीचमें वेदी बनी हुई हो। वेदीके ऊपर सुन्दर चँदोवा तना हो और माल्य, चँवर तथा ध्वजा आदिसे मण्डपको सुशोभित किया गया हो। वेदीके ऊपर श्रीपर्णी (गम्भारी) काष्ठका बना हुआ भद्रासन स्थापित करे और पाँच या तीन दिनतक वहाँ फाल्गुनोत्सव मनावे। गोविन्दजी-की पूजा करके उन्हें कुछ दूरतक भ्रमण करावे। चतुर्दशीको प्रातःकाल गोविन्दजीकी सुन्दर प्रतिमा जगन्नाथजीके आगे स्थापित करके उन भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करे। तत्पश्चात् गोविन्दजीकी प्रतिमाका भी पूजन करे। उसके बाद वस्त्र और माला उतारकर मन्त्रज्ञ पुरुष परम ज्योतिकी भावना करते हुए प्रतिमामें उसका न्यास (स्थापन) करे। तदनन्तर वह प्रतिमा पुरुषोत्तमरूप हो जाती है। फिर उसे रत्नमयी डोलीमें बैठाकर स्नानमण्डपमें ले जाय। वहाँ छत्र, ध्वजा, पताका, चँवर, व्यजन तथा दीपमालाओंसे बड़ा भारी उत्सव करे। उसके बाद भद्रासनपर पधराकर विभिन्न उपचारोंद्वारा गोविन्दजीकी पूजा करे। पहले महास्नानकी विधिसे उनको स्नान करावे। फिर सुगन्धित जलसे श्रीसूक्तके द्वारा अभिषेक करे। अभिषेकके पश्चात् वस्त्र, अलङ्कार और पुष्पहारसे भगवान्‌का शृङ्गार करे और पूजन-आरती करके सात बार मन्दिरकी परिक्रमा करावे। तत्पश्चात् भगवान्‌को डोला-मण्डपमें ले आवे। मण्डपके निम्न भागमें सात बार भ्रमण करावे। फिर मण्डपके ऊर्ध्व भागमें सात बार भ्रमण कराकर स्तम्भवेदीपर भी सात बार घुमावे। उसके बाद यात्राके अन्तमें भी पुनः इसी क्रमसे इक्कीस बार भ्रमण करावे। रत्न-निर्मित हिंडोलेमें भगवान्‌को विराजमान करे। भगवान्‌के मस्तकपर सुन्दर रत्नमय मुकुट हो, वक्षःस्थलपर तारहार उनकी शोभा बढ़ा रहा हो, कानोंमें बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित कुण्डल झिलमिला रहे हों। अन्य अङ्गोंमें भी यथा-योग्य शोभा बढ़ानेवाले दिव्य आभूषणोंसे भगवान्‌का मनोहर शृङ्गार किया गया हो। भगवान् विकसित कमलपुष्पके मध्यमें लक्ष्मीजीके साथ बैठे हों। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म तथा कण्ठमें वनमाला हो। मुखपर प्रसन्नता छा रही हो। सुन्दर नासिका हो। पीन वक्षःस्थलके कारण भगवान्‌का सौन्दर्य और भी बढ़ गया हो। ऐसी मनोहर झाँकीसे सुशोभित गोविन्दजीको डोलापर बैठाकर सब दिशाओंमें सुगन्धित चन्दनकी धूलि बिखेरते हुए उनकी पूजा करे। उस समय गोविन्दजीका ध्यान इस प्रकार करे—'भगवान् कदम्ब वृक्षके नीचे गोपियोंके मध्यमें विराजमान हैं। गोपी और ग्वालबाल लीलापूर्वक हिंडोलेको झुला रहे हैं और भगवान् उसके भीतर बैठकर लीलारसमें निमग्न हैं।' ऐसा ध्यान करके लाल, पीले और सफेद रंगके कर्पूरयुक्त सुगन्धित चूर्ण, अबीर, गुलाल आदि सब ओर बिखेरे। फिर दिव्य वस्त्र, दिव्य माल्य, दिव्य गन्ध और उत्तम धूप निवेदन करके चँवर डुलाने, गीत गाने और स्तुति-पाठ करने आदिके द्वारा भगवान्‌की पूजा करके धीरे-धीरे सात बार डोलामें विराजमान भगवान्‌को झुलावे। उस समय जो लोग भगवान् श्रीकृष्णजीके विग्रहका दर्शन करते हैं, उनकी निःसन्देह मुक्ति होती है और उनके ब्रह्महत्या आदि पाँच महापातकोंका भी नाश हो जाता है। हिंडोलेमें झूलते हुए भगवान्‌का दर्शन करके मनुष्य सम्पूर्ण पापों और आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंसे भी छूट जाता है।
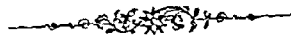
भगवान्‌की द्वादशादित्य मूर्तियोंकी उपासना, दक्षके द्वारा भगवान्‌की आराधना और वर-प्राप्ति तथा विभिन्न विभूतियोंके रूपमें भगवान्‌की उपासनाका फल

जैमिनिजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! अनादिदेव भगवान् विष्णुकी जो बारह मूर्तियाँ हैं, उनका प्रतिमास पूजन करे। उनमेंसे एक-एक मूर्तिकी एक-एक मासमें प्रतिदिन पूजा करते हुए बारह महीनोंमें बारह मूर्तियोंकी पूजा सम्पन्न होती है। क्रमशः बारह पुष्पों और बारह फलोंसे पूजन करना चाहिये। अशोक, मल्लिका (बेला), पाटल, कदम्ब, कनर, चमली, मालती, शतदलकमल, नीलकमल, वासन्ती, कुन्द और पुन्नाग—इन पुष्पोंको भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये क्रमशः एक-एक मासमें अर्पण करना चाहिये। अनार, नारियल, आम, कटहल, खजूर, ताल, प्राचीन आँवला, श्रीफल, नारंगी, सुपारी, करौंदा और जायफल—इन बारह फलोंको भी क्रमशः एक-एक मासमें देना चाहिये। भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य और मधुर भोजन तथा आसन आदि उपचार समर्पित करके जगद्गुरु भगवान्‌की स्तुति करे—'हे सर्वव्यापी जगन्नाथ ! आप भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालोंके स्वामी हैं। कमलनयन विष्णो ! आप संसारसागरसे मेरी रक्षा कीजिये। मधुसूदन ! आपने पूर्वकालमें अत्यन्त भयङ्कर तथा अवलम्बनरहित एकार्णवके जलमें सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाके लिये मधु नामक दैत्यका वध किया था। इस समय मेरी रक्षा कीजिये। त्रिविक्रम ! जिन्होंने तीन पग चलकर तीनों लोकोंको नाप लिया और दैत्योंकी विशाल सेनाका वध करके त्रिभुवनकी रक्षा की, उन आपके लिये नमस्कार है। जिन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदका ज्ञान अपने भीतर लिये हुए वामनरूप धारण करके अद्भुत रूपसे सबको मोहित कर लिया, उन मायावी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो भक्तोंके लिये ही अपने हृदयमें लक्ष्मीजीको धारण करते हैं और उन्हें सम्पत्ति देते हैं, उन भगवान् श्रीधरको नमस्कार है। हृषीकेश ! आप समस्त इन्द्रियोंके अधिष्ठाता, सबके स्वामी और सदा भक्तोंके सुखके एकमात्र हेतु हैं, आपको नमस्कार है। पद्मनाभ ! आपके नाभिकमलसे यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है। वह कमल ही विधाताका आसन है। आपको नमस्कार है। जिनके तीन गुणोंसे यह चराचर जगत् बँधा हुआ है, उन्हींको गोपीने अपने दाम (रस्सी) से बाँध लिया; इसलिये दामोदर नाम धारण करनेवाले प्रभो ! आपको नमस्कार है। जो जगत्‌के आदिकारण हैं और जिन्होंने ब्रह्माजीके रूपसे सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि की, उन अचिन्त्य महिमावाले आप सर्वव्यापी नारायणको नमस्कार है। गोविन्द ! आप ज्ञानियोंके लिये ज्ञानगम्य हैं और अशरणको शरण देनेवाले हैं, आपके प्रसादसे मेरा यह व्रत सम्पूर्ण हो।'

इस प्रकार प्रतिमास पूजाके अन्तमें इन स्तुतियोंद्वारा अतिशय भक्तिके साथ हाथ जोड़कर भगवान् जनार्दनकी प्रार्थना करनी चाहिये।

ब्राह्मणो ! प्राचीन कालमें प्रजापति दक्षने मनुष्योंको आध्यात्मिक आदि पापोंसे अत्यन्त क्लेश उठाते देख वैशाख मासके शुक्ल पक्षमें तृतीयाको जगन्नाथजीके अङ्गमें चन्दनका लेप करके प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार स्तवन किया था—'देवदेव जगन्नाथ ! आप सहज आनन्दसे परिपूर्ण एवं निर्मल हैं। परमेश्वर ! संसारसागरमें डूबे हुए हम दुखियोंका उद्धार कीजिये। ये मनुष्य नाना प्रकारके संतापोंसे संतप्त हो रहे हैं। हे कृष्णमेघ ! मुझपर कृपा करनेकी बुद्धिसे अपनी शुभ दृष्टिमयी सुधाधारासे इन सबको तृप्त कीजिये। जगदीश्वर ! कलियुगके पापसे मोहित हुए मनुष्योंका उद्धार करनेके लिये ही इस नीलाचल-गुफामें आपका यह अवतार हुआ है। जय कृष्ण ! जय ईशान ! जय अक्षर ! जय अविनाशी परमेश्वर ! आप प्रसन्न होइये और इन दीन, मूढ एवं अज्ञानी मनुष्योंपर कृपा कीजिये।'

इस प्रकार स्तुति करके 'हे ईश्वर ! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये' ऐसा कहते हुए दक्ष प्रजापतिने जगन्नाथजीके चरणारविन्दोंमें दण्डवत्-प्रणाम किया। तब भगवान्‌ने स्पष्ट वाणीमें प्रजापतिसे कहा—'वत्स ! उठो, मैंने तुम्हें दुर्लभ

वर प्रदान किया। तुम्हारी जो अभिलाषा है, वह मेरे प्रसादसे निःसन्देह पूर्ण होगी। यह तो तुम जानते ही हो कि अल्प पुण्यवाले प्राणियोंको मेरा अनुग्रह दुर्लभ है, परंतु मेरे उत्सवसे मुझे सन्तुष्ट करके तुमने मेरी प्रार्थना की है, इसलिये मैं तुम्हें यह वर देता हूँ—'जो मनुष्य भक्तिपूर्वक अक्षय तृतीयाको इस अक्षय यात्राका दर्शन करते हैं, वे उस समय मनमें जो इच्छा करते हैं, उसीको प्राप्त कर लेते हैं।' जैसे चन्दनका लेप तापको हर लेता है, वैसे ही मेरा यह उत्सव तीनों तापोंका विनाश करनेवाला है। मैंने तुम्हारी बुद्धिको प्रेरित किया है, इसीलिये तुमने इस उत्सवको सम्पन्न किया है। मैंने दीनोंका उद्धार करनेके लिये मन-ही-मन यह सङ्कल्प किया था, उसीके अनुसार तुम इस कार्यमें प्रवृत्त हुए हो। प्रजापते! तुमने जो अभिलाषा की है, वह सब मैं पूर्ण करूँगा। ये गुण्डिचा आदि बारह महायात्राएँ पवित्र करनेवाली मानी गयी हैं। इनमेंसे एक-एक यात्रा मुक्ति देनेवाली है और सब यात्राएँ तो धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त करानेवाली हैं। जो भक्तिपूर्वक इनमेंसे एक यात्राका भी दर्शन करता है, वह उसी एकसे भवसागरको पार करके भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।'

प्रजापति दक्षसे ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तब श्रद्धालु दक्ष प्रजापतिने भगवान्‌की आज्ञासे एक वर्षतक नीलाचलपर निवास करके वहाँके सब बड़े-बड़े उत्सवोंका दर्शन किया। जो अल्पबुद्धिवाले मनुष्य हैं, उनमें भी भगवन् विश्वास बढ़ानेके लिये ये यात्राएँ बतायी गयी हैं। जिस किसी प्रकार भी जगन्नाथजीका दर्शन करनेपर वे निश्चय ही मोक्ष प्रदान करते हैं।

इस संसारमें जो समस्त चराचर विभूतियाँ हैं, वे सब भगवान् विष्णुकी ही हैं। विभूति और उसके दाता वे एक ही परमेश्वर हैं। जो मनुष्य जिस भावसे भगवान्‌की सेवा करता है, वह वैसा ही हो जाता है। भगवान्‌की इतनी ही महिमा है, इस प्रकार उसका माप नहीं किया जा सकता। जो जिस भावसे भगवान्‌की उपासना करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके लिये एक ही मार्ग है—दारुब्रह्म जगन्नाथजीकी उपासना। धर्मके स्वरूपका यथार्थ निश्चय करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। भगवान् विष्णु ही धर्म हैं। ये जनार्दन ही धर्म और जगत् दोनोंके स्वामी हैं। वे ही चतुर्विध पुरुषार्थस्वरूप हैं। उनमें जिसकी भक्ति स्थिर हो गयी है, वह सम्पूर्ण कामनाओंसे तृप्त होकर न कभी शोक करता है और न आकाङ्क्षा। इन्द्ररूपसे उपासना किये जानेपर वे ही भगवान् विष्णु त्रिलोकीका ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। ब्रह्माजीके रूपमें ध्यान किये जानेपर वंशकी वृद्धि करते हैं, सनत्कुमारके रूपमें इनका चिन्तन किया जाय, तो ये दीर्घ आयु प्रदान करते हैं। राजा पृथुके रूपमें भावना करनेपर जीविका और सम्पत्ति प्रदान करते हैं, बृहस्पतिके रूपमें भगवान्‌की उपासना की जाय, तो वे गङ्गा आदि तीर्थोंका फल देते हैं। सूर्यरूपसे चिन्तन करनेपर वे अन्तःकरणके अज्ञानान्धकारका नाश करते हैं। चन्द्रमाके रूपमें श्रीहरिकी उपासना की जाय, तो वे अनुपम सौभाग्य देते हैं। भगवान् वाणीके अधिपति हैं, इस रूपमें भावना करनेपर मनुष्य अष्टादश विद्याओंका तत्त्वज्ञ होता है। यज्ञेश्वर-स्वरूपमें चिन्तन करनेपर जगन्मय सनातन भगवान् अश्वमेध आदि यज्ञोंका फल देते हैं। कुबेररूपमें ध्यान किया जाय तो भगवान् अनुपम समृद्धि प्रदान करते हैं। इस प्रकार दीनों और अनाथोंपर अनुग्रह करनेके लिये दयासागर भगवान् काष्ठमय शरीर धारण करके नीलगिरिपर निवास करते हैं। ब्राह्मणो! तुम सब लोग वहाँ जाओ, एकाग्रचित्त होकर निवास करो और भगवान् लक्ष्मीपतिके युगल चरणारविन्दोंकी शरण लो।

राजा इन्द्रद्युम्नका ब्रह्मलोकगमन, पुराण-श्रवणकी विधि और ग्रन्थका उपसंहार

मुनियोंने पूछा—भगवन्! विष्णुभक्त राजा इन्द्रद्युम्नने मन्दिरकी प्रतिष्ठाके पश्चात् कौन-सा कार्य किया?

जैमिनिजी बोले—साक्षात् ब्रह्मस्वरूप जगन्नाथजीसे वरदान पाकर नरश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नने अपनेको कृतार्थ माना। भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार उन्होंने पुण्य एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली सम्पूर्ण यात्राएँ करवायीं। अनेक प्रकारके उपचारोंसे जगद्गुरु श्रीहरिकी नाना प्रकारसे पूजा की और राजा गाल श्वेतको भगवान्‌की आज्ञा भलीभाँति समझाकर धर्म और न्यायसे युक्त यह वचन कहा—'राजन्! तुम बहुश्रुत विद्वान् हो, धर्ममें तुम्हारी निष्ठा है, भगवान्‌में भी मन, वाणी और क्रियाद्वारा तुम्हारी बड़ी भक्ति है। भगवान् श्रीहरि किसी एकके उपदेशके लिये अनुशासन नहीं

के लिये प्रतिदिन कीर्तन करना चाहिये । तदनन्तर ग्रन्थ समाप्त होनेपर भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये बड़ी भक्तिके साथ वस्त्र, माला, चन्दन और आभूषण आदिकी विशेष व्यवस्था करके व्याससदृश माननीय आचार्यको विभूषित करे और अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक दक्षिणा दे । दक्षिणा ऐसी देनी चाहिये जिससे आचार्यको सन्तोष हो जाय । शान्तिकर्म, पौष्टिककर्म, व्रतबन्ध, विवाह आदि कर्म, मोक्षसाधक कर्म, पुराण-श्रवण, यज्ञादिका अनुष्ठान, दान और अनेक प्रकारके व्रत—ये यदि दक्षिणाहीन हों, तो निष्फल हो जाते हैं । तत्पश्चात् यथाशक्ति तैयार कराये हुए अन्नसे ब्राह्मणोंको भोजन करावे । मुनिवरो ! इस प्रकार तुमलोगोंसे पुराण-श्रवणकी यह साङ्गोपाङ्ग विधि बतायी गयी ।

मुनि बोले—अहो ! हमारा महान् सौभाग्य है कि पापराशिका विनाश करनेवाला यह पुराण-श्रवणका फल हमने आपके मुखारविन्दसे सुना । मुने ! इस समय इसके फलकी प्राप्तिके लिये हम आपको यथाशक्ति दक्षिणा देते हैं, इसे आप प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करें । यह कह उन अकिञ्चन मुनियोंने समिधा, कुशा, फूल, फल और अक्षत आदि जैमिनिजीको देकर बड़े हर्षके साथ पुरुषोत्तमक्षेत्रको प्रस्थान किया ।

॥ उत्कलखण्ड या पुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्य संपूर्ण ॥
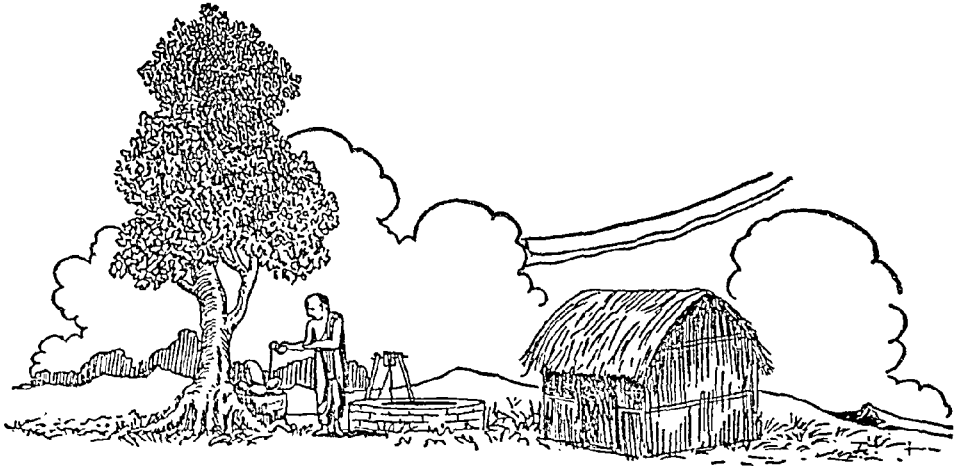
बदरिकाश्रम-माहात्म्य

सब तीर्थोंका संक्षिप्त माहात्म्य तथा बदरीक्षेत्रकी विस्तृत महिमाका उपक्रम

शौनकजी बोले—समस्त धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ पुराणपरिनिष्ठित सूतजी ! सब धर्मोंसे रहित भयङ्कर कलियुग प्राप्त होनेपर मनुष्य दुष्कर्ममें प्रवृत्त हो सब धर्मोंका त्याग कर देते हैं, उनकी आयु बहुत थोड़ी होती है, उनकी प्राणशक्ति, बल, पराक्रम, तपस्या और कर्मानुष्ठान सब अत्यन्त क्षीण हो जाते हैं। वे सब अधर्मपरायण और वेदशास्त्रसे दूर होते हैं; तीर्थयात्रा, तपस्या, दान और भगवान् विष्णुकी भक्तिका उनमें अभाव-सा होता है। ऐसे क्षुद्र मनुष्योंका थोड़े प्रयाससे किस प्रकार उद्धार हो सकता है ?

सूतजी बोले—महाभाग शौनक ! तुम्हें साधुवाद है, तुम सदा दूसरोंके हितमें तत्पर रहते हो, भगवान् विष्णुकी भक्तिमें आसक्त होनेके कारण तुम्हारे मनका मल धुल गया है। संसारमें साधुपुरुषोंका सङ्ग दुर्लभ है। वह देहाभिमानी अजितात्मा पुरुषोंकी सञ्चित पापराशिको हर लेता है और अधिक पुण्यके कारण उन्हें उत्तम गति प्रदान करता है। तीनों लोकोंके मनुष्योंके लिये सत्सङ्ग दुर्लभ है, वह कर्मपाशसे पीड़ित मनुष्योंकी हृदय-ग्रन्थि (आन्तरिक बन्धन) को दूर करता है, बहुत कम बोलनेवाले और एकमात्र भगवान्‌का भजन करनेवाले लोगोंको उच्च पद प्रदान करता है और जन्म-मृत्युके चक्रसे थके हुए मानवोंको चिर-विश्रामकी प्राप्ति करानेका कारण होता है*। शौनकजी ! यही प्रश्न पूर्वकालमें परम सुन्दर कैलाश-पर्वतके शिखरपर श्रोता ऋषियोंके समक्ष सत्पुरुषोंका कल्याण करनेके लिये स्वामिकार्तिकेयजीने भगवान् शङ्करके आगे उपस्थित किया था।

तब श्रीमहादेवजीने कहा—षडानन ! परमार्थके पथपर चलनेवाले पुरुषोंको वैकुण्ठधामका निवास प्रदान करनेवाले बहुत-से तीर्थ और क्षेत्र हैं। कोई कामनाके अनुसार फल देनेवाले हैं और कोई मोक्षदायक हैं। गङ्गा, गोदावरी, नर्मदा, तपती, यमुना, क्षिप्रा, पुण्यमयी गौतमी, कौशिकी, कावेरी, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, महेन्द्रजा, चित्रोत्पला, वे सरयू, चर्मण्वती, शतद्रु, पयस्विनी, गण्डकी, बाहुदा, और सरस्वती—ये सब पवित्र नदियाँ हैं और बार-बार करनेपर भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। अ द्वारका, काशी, मथुरा, अवन्ती, कुरुक्षेत्र, रामतीर्थ, ः पुरुषोत्तमक्षेत्र, पुष्करक्षेत्र, दर्दुरक्षेत्र, वाराहक्षेत्र तथा नामक महापुण्यमय क्षेत्र, जो सब मनोरथोंका साधक है, ये उत्तम तीर्थ हैं। मुक्तिकी एक साधन अयोध्यापुरीका पूर्वक दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् वि धाममें जाते हैं। भाँति-भाँतिसे भगवान् विष्णुकी पूर्वक पूजन, नृत्य और कीर्तन करनेवाले पुरुष घर त्या श्रीहरिका चिन्तन करनेसे गृहकी आसक्ति तथा मृ पराक्रमपर विजय पा जाते हैं। द्वारकामें सा भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं, वे अपने निवास-मन्दि कभी नहीं छोड़ते। षडानन ! गोमतीमें स्नान करके भग श्रीकृष्णके मुखारविन्दका दर्शन करनेसे बिना ज्ञानके मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है।

असी और वरुणाके बीचमें पाँच कोसतक वाराणसीक्षेत्र वहाँ मणिकर्णिका, ज्ञानवापी, विष्णुपादोदक और पञ्च कुण्ड (पञ्चगङ्गा) में स्नान करके मनुष्य पुनः माताके स्त का दूध नहीं पीता है। किसी प्रसङ्गसे भी काशीमें विश्वना जीका दर्शन करके मनुष्यको जन्म-मृत्युरहित मुक्ति प्राप्त हो है। कार्तिकेय ! तपस्या और उपवासमें लगा हुआ मनु मथुरापुरीमें जन्मस्थानपर जाकर सब पापोंसे मुक्त हो जा है। विश्रामतीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करके तिलसहित जल तर्पण करे, तो मनुष्य अपने पितरोंका नरकसे उद्धार कर स्वयं विष्णुलोकको जाता है। अवन्तीपुरीमें वैशाखमास आने पर मनुष्य क्षिप्राके जलमें विधिपूर्वक स्नान करके कोटि तीर्थ गोता लगावे और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर महाकालेश

---

* हरति हृदयबन्धं कर्मपाशार्दितानां
वितरति पदमुच्चैरल्पजल्पैकभाजाम् ।
जननमरणकर्मश्रान्तविश्रान्तिहेतु-
स्त्रिजगति मनुजानां दुर्लभः सत्प्रसङ्गः ॥
(स्क० पु० वै० बद० १ । ८२)

भोगता है। विष्णुकाञ्चीमें साक्षात् भगवान् विष्णु और शिवकाञ्चीमें साक्षात् भगवान् शिव निवास करते हैं। दोनोंमें कोई भेद न होनेके कारण दोनोंकी ही भक्तिसे मुक्ति हाथमें आ जाती है, भेदबुद्धि पैदा करनेसे मनुष्योंकी निन्दित गति होती है। पुरुषोत्तमक्षेत्रमें मार्कण्डेय-सरोवरके जलमें स्नान करके एक बार जगन्नाथजीका दर्शन कर लेनेसे मनुष्य ज्ञान अथवा योगके बिना भी पुनः माताके स्तनोंका दूध नहीं पीता। रोहिणिक्षेत्रके अन्तर्गत समुद्रमें तथा इन्द्रद्युम्न-सरोवरमें स्नान करके भगवान् विष्णुके प्रसादको खाकर मनुष्य वैकुण्ठ धाममें स्थान पाता है। कार्तिकी पूर्णिमाको पुष्करतीर्थमें स्नान करके दक्षिणासहित श्राद्ध एवं भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-भोजन कराकर मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। माघ मासमें भक्तिभावसे त्रिवेणीसंगममें स्नान करके मनुष्य उस पुण्यको प्राप्त करता है, जो बदरीतीर्थके कीर्तनसे प्राप्त होता है।

भगवान् विष्णुका बदरी नामक क्षेत्र तीनों लोकोंमें दुर्लभ है, उसके स्मरणमात्रसे महापातकी मनुष्य भी तत्काल पापरहित होकर मृत्युके पश्चात् मोक्षके भागी होते हैं। स्वर्ग, पृथ्वी तथा रसातलमें बहुत-से तीर्थ हैं, परंतु बदरी तीर्थके समान दूसरा कोई तीर्थ न हुआ है, न होगा। कार्तिकेय! तप, योग और समाधिसे तथा सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह बदरीक्षेत्रके भलीभाँति दर्शनमात्रसे मिल जाता है।

बदरीक्षेत्रकी महिमा—अग्निदेवके सर्वभक्षणरूप दोषका निवारण

स्कन्दने पूछा—यह क्षेत्र कैसे उत्पन्न हुआ? किन लोगोंने इसका सेवन किया है तथा इस क्षेत्रके अधिपति कौन हैं? यह सब बातें मुझे विस्तारपूर्वक बताइये।

भगवान् शिवने कहा—यह बदरीक्षेत्र अनादिसिद्ध है। जैसे वेद भगवान्‌के शरीर हैं, उसी प्रकार यह भी है। इस क्षेत्रके अधिपति साक्षात् भगवान् नारायण हैं। नारद आदि महर्षियोंने इस तीर्थका सेवन किया है। काशीमें, श्रीपर्वतके शिखरपर तथा कैलासमें पार्वतीसहित मेरी जैसी प्रीति है, उससे अनन्तगुनी अधिक बदरीक्षेत्रमें है। अन्य तीर्थोंमें स्वधर्मका विधिपूर्वक पालन करते हुए मृत्यु होनेसे मुक्ति होती है; परंतु बदरीक्षेत्रके दर्शनमात्रसे ही मुक्ति मनुष्योंके हाथ आ जाती है। जहाँ भगवान् नारायणके चरणोंका सान्निध्य है, जहाँ साक्षात् अग्निदेवका निवास है और केदाररूपसे मेरा लिङ्ग प्रतिष्ठित है, वह सब बदरीक्षेत्रके अन्तर्गत है। केदारके दर्शन, स्पर्श तथा भक्तिभावसे पूजन करनेपर कोटि-कोटि जन्मोंका पाप तत्काल भस्म हो जाता है। उस क्षेत्रमें विशेषतः मैं अपनी सम्पूर्ण कलासे स्थित रहता हूँ। वहाँ मेरे श्रीविग्रहमें पंद्रहों कलाएँ विद्यमान हैं। वहाँ कोमल कमलकी-सी कान्तिसे सुशोभित मुखकमलवाले शिवभक्त दोनों हाथ जोड़े मुझ महादेवकी ओर ही दृष्टि लगाये प्रदोषकालमें मेरी ही उपासना करते हैं। हाथमें जपमाल तथा मनमें शान्ति और सन्तोष धारण किये प्रतिदिन मेरी वन्दना और प्रार्थना करनेवाले मेरे भक्त सदा मेरे चरणोंके चिन्तनसे विज्ञानस्वरूप हो हृदयस्थित कामको नष्ट करके सर्वतोभावसे निरन्तर मेरा भजन करते हैं। काशीमें मरे हुए पुरुषोंको तारकब्रह्म मुक्ति देनेवाला होता है, परंतु केदारक्षेत्रमें मेरे लिङ्गके पूजनसे मनुष्योंकी मुक्ति हो जाती है। श्रीनारायणके चरणोंके समीप प्रकाशमान अग्नितीर्थका तथा मेरे केदारसंज्ञक महालिङ्गका दर्शन करके मनुष्य पुनर्जन्मका भागी नहीं होता।

पूर्वकालमें ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले) ऋषियोंका समुदाय प्रयागमें एकत्र हुआ था। जहाँ भगवती गङ्गा यमुनाके साथ मिली हैं और जहाँ त्रिभुवनविख्यात

दशाश्वमेध नामक तीर्थ है, वहाँ भगवान् अग्निदेवने ऋषियोंके आगे उपस्थित हो विनीतभावसे पूछा—'आपलोगोंकी एक दृष्टि और एक ज्ञान है; आप सभी ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, दीनोंके लिये करुणासे भरे हुए आर्द्रहृदय और दयालु हैं। आप लोगोंको यहाँ उपस्थित देखकर मैं पूछता हूँ—सब प्रकारकी दूषित वस्तुओंके भक्षणजनक पातकसे मेरा अन्तःकरण लिप्त हो गया है। ब्रह्मज्ञानियो! बताइये मेरा उद्धार कैसे होगा?'

इतनेमें ही सब मुनियोंमें श्रेष्ठ व्यासजी गङ्गामें स्नान करके वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार बोले—'अग्निदेव! आपके सर्वभक्षणरूप पापकी निवृत्तिके लिये एक श्रेष्ठ उपाय है। आप बदरीक्षेत्रकी शरण लीजिये, जहाँ देवताओंके देवता साक्षात् भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, जो सबके पापोंका नाश करनेवाले हैं। वहाँ गङ्गाजीके जलमें स्नान करके भगवान्‌की परिक्रमा और दण्डवत्-प्रणाम करनेसे सब पापोंका क्षय हो जाता है।'

तब अग्निदेव उत्तराभिमुख होकर गन्धमादनपर्वतपर आये और बदरीतीर्थमें पहुँचकर गङ्गाजीके जलमें स्नान करके भगवान् नारायणके आश्रमपर गये। वहाँ भगवान्‌को प्रणाम करके उन्होंने भक्तिपूर्वक स्तवन किया। 'जो विशुद्ध विज्ञानघनस्वरूप पुराणपुरुष सनातन प्रजापतियोंके पति, सबके गुरु, एक होते हुए भी अनेक रूपोंको धारण करनेवाले और सम्पूर्ण जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं, शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले उन शुद्धबुद्धि नारायणको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अपनी मायामयी शक्तिका आश्रय लेकर संसारकी सृष्टि करनेके उद्देश्यसे रजोगुणसे युक्त ब्रह्माका रूप धारण करते हैं, सत्त्वगुणसे युक्त होकर इस जगत्‌की रक्षामें कारण बनते हैं और तमोगुणसे संयुक्त हो इस विश्वके भयङ्कर संहारकारी रुद्र बने हुए हैं, उन त्रिविध रूपधारी भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ। जो अविद्यासे मोहितचित्त सम्पूर्ण विश्वके रूपमें प्रकट हुआ है और विद्यासे समस्त त्रिलोकीमें एक ही रूपसे व्याप्त हो रहा है, विद्याका आश्रय लेनेसे जिसे सर्वज्ञ और ईश्वर कहते हैं, उस परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। जिन्होंने भक्तोंकी इच्छासे अपने दिव्य स्वरूपको प्रकट किया है, योगनिद्राको स्वीकार करके शेषनागकी विशाल शय्यापर अपनेको अर्पित कर रक्खा है, जो रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं और आठ प्रकारकी विचित्र शक्तियोंसे सम्पन्न हैं, उन भगवान् विष्णुकी मैं स्तुति करता हूँ।'

इस प्रकार स्तुति किये जानेपर सर्वान्तर्यामी भगवान् नारायण प्रसन्न होकर पवित्रताकी इच्छा रखनेवाले अग्निदेवसे मधुर वाणीमें बोले—'अनघ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम कोई वर माँगो। मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ। मैं तुम्हारी इस स्तुति और विनयसे बहुत प्रसन्न हूँ।'

अग्नि बोले—प्रभो! मैं जिस उद्देश्यसे आया हूँ, वह सब आपको ज्ञात है। तथापि कहता हूँ और इस रूपमें आप जगदीश्वरकी आज्ञाका पालन करता हूँ। मुझे सर्वभक्षी तो होना ही पड़ता है, किंतु मेरे इस दोषका निवारण कैसे हो, यही सोचकर मुझे अत्यन्त भय हो रहा है।

भगवान् नारायणने कहा—इस क्षेत्रका दर्शन करनेमात्रसे किसी भी प्राणीका पाप नहीं रह जाता। मेरे प्रसादसे तुममें कभी पातकका सम्पर्क न होगा।

तबसे लेकर सब दोषोंसे रहित भूतात्मा अग्निदेव यहाँ अपनी कलासे विराजमान हैं। जो प्रातःकाल उठकर पवित्र भावसे इस प्रसङ्गको सुनता और सुनाता है, वह निश्चय ही अग्नितीर्थमें स्नान करनेका फल पाता है।

बदरीक्षेत्रकी पाँच शिलाओंमेंसे नारदशिला और मार्कण्डेयशिलाका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! जो महापातकी और अतिपातकी हैं, वे भी अग्नितीर्थमें स्नान करनेमात्रसे पवित्र हो जाते हैं। जैसे अत्यन्त मलिन सोना आगमें तपानेसे शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार देहधारी प्राणी अग्नितीर्थमें आकर पापमुक्त हो जाता है। जो पाँच प्रकारके महापातक करनेवाले हैं, वे भी इस तीर्थमें स्नान करके प्राणायाम और जप करनेसे शुद्ध हो जाते हैं, ऐसा मेरा मत है। यहाँ जो पाँच शिलाएँ हैं, उनमें सदा भगवान् विष्णुकी स्थिति है, वहींपर सब पापोंका नाश करनेवाला अग्नितीर्थ है।

स्कन्दने पूछा—पिताजी! वहाँ कैसी पाँच शिलाएँ हैं और किसने उनका निर्माण किया है? ये सब बातें पूर्णतः बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् शिवने कहा—बेटा! वहाँ नारदी, नारसिंही, वाराही, गारुड़ी और मार्कण्डेयी—ये पाँच शिलाएँ विख्यात हैं, जो सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाली हैं। एक समय भगवान् नारदने एक शिलापर बैठकर वायु पीकर रहते हुए

महाविष्णुका दर्शन करनेके लिये अत्यन्त कठोर तपस्या की। वे साठ हजार वर्षोंतक वृक्षकी भाँति स्थिरभावसे उस शिलापर विराजमान रहे। तदनन्तर भगवान् विष्णु ब्राह्मणका रूप धारण करके कृपापूर्वक उनके सामने गये और उन मुनिश्रेष्ठ नारदसे इस प्रकार बोले—'मुने! बताओ, तुम क्या चाहते हो?'

नारदजीने कहा—आप कौन हैं? इस निर्जन वनमें आपके दर्शनसे मेरे मनमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

नारदजीके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णुने कृपा करके उन्हें अपने दिव्य स्वरूपका दर्शन कराया। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा आदि आयुध शोभा पा रहे थे। वे पीताम्बरसे सुशोभित और कमलोंकी मालासे विभूषित थे। लक्ष्मीका निर्मल निवासभूत भगवान्‌का वक्ष श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभ-मणिकी प्रभासे प्रकाशमान था। सुनन्द आदि पार्षद भगवान् जनार्दनकी स्तुति कर रहे थे। उन्हें देखकर नारदजीके शरीरमें नूतन प्राण-सा आ गया। वे सहसा खड़े हो गये और हाथ जोड़कर बार-बार नमस्कार करते हुए जगदीश्वरोंके भी ईश्वर श्रीविष्णुकी स्तुति करने लगे—'जो सबके साक्षी और सम्पूर्ण जगत्‌के अधीश्वर हैं, जिन्होंने भक्तोंकी इच्छासे दिव्य देह धारण किया है, जो शरणागतोंके लिये दयाके महासागर हैं, वे पावन दिव्यमूर्तिधारी भगवान् श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों। जो सम्पूर्ण जगत्‌के हितके लिये और साधु-पुरुषोंके मनको सन्तुष्ट और उनका कल्याण करनेके लिये शीघ्र ही अपनी उत्तम कलाओंद्वारा दिव्य देह धारणकर प्रसन्नता-पूर्वक दिव्यलीला और हास्यपूर्ण दृष्टि प्रकट करते हैं, सत्त्वगुणका समुदाय ही जिनका स्वरूप है, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जिनके चरणारविन्दोंका अर्चन करनेसे निर्मल चित्त हुए मनुष्य ज्ञानरूपी खड्गसे संसारबन्धनके मूल हेतुओंको काट डालते हैं और खेदरहित हो जिनके स्वरूपभूत ब्रह्मानन्दकी उपलब्धि कर लेते हैं, दीनोंपर दयार्द्र-चित्त रहनेवाले वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जिनका अनुसरण करनेवाले देवता विपत्तियोंके समुद्रको भी बछड़ेके खुरके समान लाँघकर निर्भय हो स्वर्गमें निवास करते हैं, वे सर्वभूतात्मा हैं। प्रभो! आप वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धस्वरूप विष्णुको बार-बार नमस्कार है। जनार्दन! आज आपके दर्शनसे मेरा जीवन धन्य हो गया, मेरी तपस्या फलवती हुई और मेरा ज्ञान भी सफल हो गया।'

श्रीभगवान् बोले—नारद! तुम्हारी इस तपस्या और स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूँ। तीनों लोकोंमें तुमसे बढ़कर दूसर मेरा भक्त नहीं है। तुम्हारा कल्याण हो, तुम कोई वर म

नारदजीने कहा—देव! यदि आप मुझे वर दे तो एक तो अपने चरणकमलोंमें अविचल भक्ति दीजिये शिलाके समीप रहना आप कभी न छोड़िये, यह दूसरा और मेरे इस तीर्थके दर्शन, स्पर्श, स्नान और आ करनेवाला मनुष्य पुनः संसारमें शरीर न धारण करे मेरा तीसरा वर है।

श्रीभगवान् बोले—'एवमस्तु'। मैं तुम्हारे स्ने समस्त चराचर जीवोंको मुक्ति देनेके लिये तुम्हारे निवास करूँगा।

ऐसा कहकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो तदनन्तर नारदजी भी कुछ दिनोंतक बदरीक्षेत्रमें करके मथुरापुरीको चले गये।

स्कन्दने कहा—भगवन्! अब मुझे मार्कण्डेयशि महिमा बताइये।

भगवान् शिव बोले—पहले त्रेतायुगके अ मार्कण्डेयजी तीर्थयात्राका परिश्रम उठाते हुए मथुरामें अ वहाँ उन्हें नारदजीका दर्शन हुआ। मार्कण्डेयजीने नारद पूजन और उन्हें प्रणाम किया। तब उन्होंने जहाँ साक्षात् नार विद्यमान हैं, उस बदरीक्षेत्रका माहात्म्य इस प्रकार बताय 'साधो! बदरीतीर्थ महाक्षेत्र है, वहाँ भगवान् विष्णुका निवास है। तुम वहीं जाओ, वहाँ तुम्हें साक्षात् श्रीह दर्शन होगा।' यह सुनकर मार्कण्डेयजीको बड़ा विस्मय हु वे विशालापुरी (बदरिकाश्रम) में आये और वहाँ करके शिलापर बैठकर परम उत्तम अष्टाक्षर (ॐ नारायणाय) मन्त्रका जप करने लगे। तीन राततक करनेके बाद भगवान् जनार्दन उनपर प्रसन्न हुए और शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला आदिसे विभू स्वरूपका दर्शन कराया। उन्हें देखकर मार्कण्डेयजी स उठे और प्रणाम करके प्रेमसे गद्गदवाणीमें उनकी स करने लगे।

मार्कण्डेयजी बोले—परमेश्वर! इस अथा (क्षणभङ्गुर) संसारमें आपके युगल चरणारविन्द ही हैं। संसारी मनुष्योंका उद्धार कैसे हो? अच्युत! आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंसे अत्यन्त थका हुआ हूँ, अ प्रकारके बढ़े हुए अज्ञानसे आच्छादित होकर संसाररूपी कु भटक रहा हूँ, अतः मेरा उद्धार कीजिये। करुणाकर

अनेक प्रकारके योनियन्त्रोंमें दबकर निकलनेसे प्राप्त हुई गर्भवासजनित शारीरिक वेदनाको मैं कितनी ही बार पा चुका हूँ, अब मेरी रक्षा कीजिये। जरा, मृत्यु और बाल्यावस्था आदिके दुःखोंसे भरे हुए संसारसे मैं बहुत पीड़ित हूँ तथापि इस दुःखके समुद्रमें मेरी सुखबुद्धि हो रही है; दयासिन्धो! मेरी रक्षा कीजिये। कभी मैं कीटयोनिमें पड़ा, कभी स्वेदज जीवके रूपमें जन्म लिया, कभी उद्भिज्ज योनिमें आया और कभी सौभाग्यवश मनुष्य-शरीरको भी प्राप्त हुआ। सब योनियोंमें जन्म लेकर विपत्ति भोग चुका हूँ, अब सर्वथा निस्तेज और अनाथ हूँ। अच्युत ! कृपा करके अपनी शरणमें आये हुए मुझ सेवकका उद्धार कीजिये।

बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके द्वारा ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीविष्णुने प्रसन्न होकर कहा—'ब्रह्मर्षे ! मुझसे कोई वर माँगो।' मार्कण्डेयजीने कहा—'भगवन् ! दीनवत्सल ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो अपने पूजन और दर्शनमें मुझे अविचल भक्ति दीजिये। साथ ही, मैं चाहता हूँ इस शिलापर आपका निवास बराबर बना रहे। यही मेरे लिये वर है।' 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर मार्कण्डेयजी अत्यन्त प्रसन्न हो अपने पिताके आश्रमपर चले गये। जो मनुष्य इस प्रसङ्गको सुनता और सुनाता है, उसे भगवान् गोविन्दकी प्राप्ति होती है।

गरुड़शिला, वाराहीशिला और नारसिंहीशिलाकी उत्पत्ति और महिमा

भगवान् शिव कहते हैं—कश्यपजीसे विनताके गर्भसे दो महाबली और महापराक्रमी पुत्र हुए, जिनका नाम था गरुड़ और अरुण। इनमेंसे अरुण तो सूर्यके सारथि हुए और गरुड़ने भगवान् विष्णुका वाहन होनेकी अभिलाषासे बदरी-क्षेत्रके दक्षिण भागमें गन्धमादनके शिखरपर तपस्या प्रारम्भ की। वे फल-मूल और जलका आहार करते, द्वन्द्वोंको धैर्यपूर्वक सहते और जप करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ होकर एक पैरसे पृथ्वीपर खड़े हो जप करते थे। भगवान्‌के दर्शनकी लालसासे उन्होंने बहुत वर्षोंतक तपस्या की। तब साक्षात् भगवान् विष्णु पीताम्बर धारण करके अपने शङ्ख, चक्र आदि आयुधोंसे युक्त हो, पूर्व दिशामें उदित होनेवाले पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति गरुड़के सामने प्रकट हुए और मेघके समान गम्भीर शब्द करते हुए बोले। तथापि गरुड़की बाह्य वृत्ति नहीं हुई। तब उन्होंने अपना श्रेष्ठ शङ्ख बजाया, पर उससे भी महात्मा गरुड़का ध्यान नहीं टूटा। तब भगवान् श्वासके साथ गरुड़के भीतर प्रवेश करके उनमें बहिर्मुखवृत्ति पैदा करते हुए पुनः बाहर आकर प्रकट हो गये। उस समय भगवान् विष्णुको अपने सामने देखकर गरुड़ निर्भय हो गये। उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया और उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्‌की स्तुति प्रारम्भ की—'भगवन् ! तीनों

आपके सिंहासनपर जो कमल है, वह प्रणाम करनेवाले समस्त देवताओं और असुरोंके अतिशय प्रकाशमान कोटि-कोटि किरीटोंसे सुशोभित होता है। आप अपने भक्तोंके हृदयमें फैली हुई अज्ञानमय अनन्त अन्धकारराशिका चन्द्रमाकी भाँति निवारण करते हैं। आपके मनोहर चरण आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकारके सन्तापसमूहका अपहरण करनेवाले हैं। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहाररूपी लीलाविलाससे विलसित जो आपकी ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपी त्रिविध मूर्ति है, उसकी कीर्तिमयी प्रभासे सम्पूर्ण जगत्समुदाय प्रकाशित होता है, ठीक उसी प्रकार, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे समस्त विश्वको प्रकाशित करते हैं। आप अपने भक्तजनोंके हृदयकमलमें भ्रमरकी भाँति शोभा पाते हैं। अपने ज्ञानमें आयी हुई सम्पूर्ण वेदविद्यासे आपका मानस सदैव प्रकाशमान रहता है। जो मुनिजन आपके भक्त हैं, वे आपके चरणोंकी सदा वन्दना किया करते हैं तथा आपके चरणनखोंके प्रक्षालनसे प्रकट हुई गङ्गाके जलसे अपनेको पवित्र करनेवाले देवता और मुनि आपकी चरणरेणुको हृदयसे प्रणाम करते हैं और उसीको आपकी प्रसन्नताका सार मानते हैं। जगदीश्वर ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। जो आप

अनेक प्रकारके योनियन्त्रोंमें दबकर निकलनेसे प्राप्त हुई गर्भवासजनित शारीरिक वेदनाको मैं कितनी ही बार पा चुका हूँ, अब मेरी रक्षा कीजिये। जरा, मृत्यु और बाल्यावस्था आदिके दुःखोंसे भरे हुए संसारसे मैं बहुत पीड़ित हूँ तथापि इस दुःखके समुद्रमें मेरी सुखबुद्धि हो रही है; दयासिन्धो! मेरी रक्षा कीजिये। कभी मैं कीटयोनिमें पड़ा, कभी स्वेदज जीवके रूपमें जन्म लिया, कभी उद्भिज योनिमें आया और कभी सौभाग्यवश मनुष्य-शरीरको भी प्राप्त हुआ। सब योनियोंमें जन्म लेकर विपत्ति भोग चुका हूँ, अब सर्वथा निस्तेज और अनाथ हूँ। अच्युत! कृपा करके अपनी शरणमें आये हुए मुझ सेवकका उद्धार कीजिये।

बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके द्वारा ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीविष्णुने प्रसन्न होकर कहा—'ब्रह्मर्षे! मुझसे कोई वर माँगो।' मार्कण्डेयजीने कहा—'भगवन्! दीनवत्सल! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो अपने पूजन और दर्शनमें मुझे अविचल भक्ति दीजिये। साथ ही, मैं चाहता हूँ इस शिलापर आपका निवास बराबर बना रहे। यही मेरे लिये वर है।' 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर मार्कण्डेयजी अत्यन्त प्रसन्न हो अपने पिताके आश्रमपर चले गये। जो मनुष्य इस प्रसङ्गको सुनता और सुनाता है, उसे भगवान् गोविन्दकी प्राप्ति होती है।

गरुड़शिला, वाराहीशिला और नारसिंहीशिलाकी उत्पत्ति और महिमा

भगवान् शिव कहते हैं—कश्यपजीसे विनताके गर्भसे दो महाबली और महापराक्रमी पुत्र हुए, जिनका नाम था गरुड़ और अरुण। इनमेंसे अरुण तो सूर्यके सारथि हुए और गरुड़ने भगवान् विष्णुका वाहन होनेकी अभिलाषासे बदरी-क्षेत्रके दक्षिण भागमें गन्धमादनके शिखरपर तपस्या प्रारम्भ की। वे फल-मूल और जलका आहार करते, द्वन्द्वोंको धैर्यपूर्वक सहते और जप करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ होकर एक पैरसे पृथ्वीपर खड़े हो जप करते थे। भगवान्के दर्शनकी लालसासे उन्होंने बहुत वर्षोंतक तपस्या की। तब साक्षात् भगवान् विष्णु पीताम्बर धारण करके अपने शङ्ख, चक्र आदि आयुधोंसे युक्त हो, पूर्व दिशामें उदित होनेवाले पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति गरुड़के सामने प्रकट हुए और मेघके समान गम्भीर शब्द करते हुए बोले। तथापि गरुड़की बाह्य वृत्ति नहीं हुई। तब उन्होंने अपना श्रेष्ठ शङ्ख बजाया, पर उससे भी महात्मा गरुड़का ध्यान नहीं टूटा। तब भगवान् श्वासके साथ गरुड़के भीतर प्रवेश करके उनमें बहिर्मुखवृत्ति पैदा करते हुए पुनः बाहर आकर प्रकट हो गये। उस समय भगवान् विष्णुको अपने सामने देखकर गरुड़ निर्भय हो गये। उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया और उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्की स्तुति प्रारम्भ की—'भगवन्! तीनों लोकोंमें निवास करनेवाले देहधारियोंका अन्तःकरण आपका निवासस्थान है, आपकी जय हो, जय हो। आप अपने गुणोंसे सम[illegible] पापराशिका विनाश करते हैं, सम्पूर्ण देहवृन्द आपके युगल चरणारविन्दोंकी मनोहर सुगन्धका अभिवन्दन करते हैं, आप असंख्य शत्रुओंके समूहका विनाश करनेवाले हैं। आपके सिंहासनपर जो कमल है, वह प्रणाम करनेवाले समस्त देवताओं और असुरोंके अतिशय प्रकाशमान कोटि-कोटि किरीटोंसे सुशोभित होता है। आप अपने भक्तोंके हृदयमें फैली हुई अज्ञानमय अनन्त अन्धकारराशिका चन्द्रमाकी भाँति निवारण करते हैं। आपके मनोहर चरण आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकारके सन्तापसमूहका अपहरण करनेवाले हैं। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहाररूपी लीलाविलाससे विलसित जो आपकी ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपी त्रिविध मूर्ति है, उसकी कीर्तिमयी प्रभासे सम्पूर्ण जगत्समुदाय प्रकाशित होता है, ठीक उसी प्रकार, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे समस्त विश्वको प्रकाशित करते हैं। आप अपने भक्तजनोंके हृदयकमलमें भ्रमरकी भाँति शोभा पाते हैं। अपने ज्ञानमें आयी हुई सम्पूर्ण वेदविद्यासे आपका मानस सदैव प्रकाशमान रहता है। जो मुनिजन आपके भक्त हैं, वे आपके चरणोंकी सदा वन्दना किया करते हैं तथा आपके चरणनखोंके प्रक्षालनसे प्रकट हुई गङ्गाके जलसे अपनेको पवित्र करनेवाले देवता और मुनि आपकी चरणरेणुको हृदयसे प्रणाम करते हैं और उसीको आपकी प्रसन्नताका सार मानते हैं। जगदीश्वर! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। जो आठ शक्तियोंके साथ विराजमान हैं, जिनके गलेमें वनमाला शोभा दे रही है, जो पीताम्बर और पुष्पोंकी मालासे शोभायमान हैं, जिनके चरण कमलवनसे सुशोभित होते हैं तथा जिनकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ सतत सावधान रहती हैं, वे भगवान् विष्णु मेरी रक्षा करें! चल, अचल, त्रिविध तापकी शान्तिके

लिये जो चन्द्रमाके समान हैं, देदीप्यमान सूर्यके सदृश जिनकी कान्ति है, जिन्होंने एक होकर भी अनेक रूप धारण कर रखे हैं, वे परम बुद्धिमान् श्रीहरि मेरी रक्षा करें। जो भक्तोंके चिन्तनके लिये नूतन अवतार रूप धारण किया करते हैं, जो वैदिकमार्गमें चलनेवालोंका अनेक प्रकारसे हित किया करते हैं, जिन परमेश्वरकी यही (लोक-हित साधन) रीति है तथा जो समस्त गुणोंसे शोभा पाते हैं, प्रेम और भक्तिसे सम्पन्न पुरुषोंको ही जिनकी उपलब्धि होती है और अपने सेवकोंको देखनेमात्रसे ही जिनके हृदयमें करुणा उमड़ आती है, वे भगवान् विष्णु समस्त संसारकी रक्षा करें। ये ही भगवान् अपने हाथमें दण्ड लेकर स्वेच्छाचारी मनुष्योंका यमराजकी भाँति शासन करते हैं और ये ही अपने बताये हुए नियमोंमें संलग्न रहनेवाले महापुरुषोंका पालन करनेके लिये सदा अनुकूल बनकर शोभा पाते हैं। ये भगवान् श्रीहरि हमारे सम्पूर्ण दुःखोंका निवारण करनेवाले हों।'

महात्मा गरुड़के इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् विष्णुने वहाँ त्रिपथगामिनी गङ्गाको बुलाया। तब उस पर्वतके ऊपर साक्षात् पञ्चमुखी गङ्गा प्रकट हुईं। उन्हींके जलसे गरुड़जीने भगवान्‌को पादार्घ्य दिया। फिर वर माँगनेके लिये भगवान्‌के प्रेरित करनेपर गरुड़जीने कहा—'भगवन्! मैं एकमात्र आपका वाहन होऊँ और आपके प्रसादसे देवता और दैत्योंमेंसे कोई भी बल, वीर्य एवं पराक्रमद्वारा मुझे जीत न सके। यह शिला मेरे नामसे विख्यात होकर समस्त पापोंका अपहरण करनेवाली हो तथा इसके स्मरणसे मनुष्योंको कभी विषजनित व्याधि न हो।' तदनन्तर 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये।

स्कन्दने कहा—भगवन्! अब वाराहीशिलाका माहात्म्य बतलाइये।

भगवान् शिव बोले—रसातलसे पृथ्वीका उद्धार करके और युद्धमें हिरण्याक्ष नामक दैत्यको मारकर भगवान् वाराह बदरीक्षेत्रमें आये तथा प्रलयकालकी समाप्तितक वहीं बने रहे। वाराहजीने शिलाके रूपमें ही वहाँ निवास किया।

स्कन्दने कहा—प्रभो! अब नारसिंहीशिलाका माहात्म्य कहिये।

भगवान् शिव बोले—भगवान् नृसिंह अपने नखोंके अग्रभागसे ही लीलापूर्वक हिरण्यकशिपुका वध करके प्रलयकालकी अग्निके समान उद्दीप्त दिखायी देने लगे। दयालु देवताओंने आकर और दूर ही खड़े रहकर ली अवतार-विग्रह धारण करनेवाले भगवान् विष्णुका स किया। तब अपने तेजसे समस्त देवताओं और असु भी व्याप्त करनेवाले भयानक पराक्रमी नृसिंहजी प्रसन्न ह बोले—'देवताओ! तुमलोग मुझसे कोई वर माँगो, तुम्हारी शान्ति और सुखका एकमात्र साधन हो।' समय देवताओंके स्वामी ब्रह्माजीने कहा—'भगवान् नृसि आपका यह अत्यन्त उग्ररूप समस्त देहधारियोंको भय करनेवाला है, अतः इसको समेट लीजिये।' उनकी प्रा के अनुसार दिव्य रूप धारण करके भगवान्‌ने फिर कह 'देवताओ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, बोलो तुम्हारा कौ कार्य करूँ?' देवता बोले—'हमारा अभीष्ट वर यही है आप मनको प्रसन्न करनेवाले परम शान्त चतुर्भुज ही हमें दर्शन दिया करें।' तब भगवान् उन्हें दिव्य देखकर विशालापुरी (बदरिकाश्रम) को चले ग तदनन्तर देवताओंका भय शान्त हो गया और उ जलके मध्यमें विराजमान भगवान् विष्णुका दर्शन, नमस और परिक्रमा करके उन्हींमें अपना मन लगाकर अ अपने लोकको प्रस्थान किया। तत्पश्चात् अतिशय भ भारसे नम्र तपस्वी ऋषि आये और अत्यन्त अद्भुत परा वाले भगवान् नृसिंहका दर्शन करके उनकी इस प्र स्तुति करने लगे—'सम्पूर्ण विश्वके स्वामी जगदीश आपको नमस्कार है, नमस्कार है। विश्वको अभय प्रदान क वाले विश्वमूर्ते! आप कृपाके समुद्र हैं, आपके चरणक सेवन करने योग्य तीर्थरूप हैं। लक्ष्मीपते! हमपर कीजिये। भक्तकी इच्छाके अनुसार विचित्र शरीर ध करनेवाले विश्वमुख! विश्वभावन! आप प्रसन्न होइये तब भगवान् नृसिंहने प्रसन्न होकर ऋषियोंसे कहा— माँगो।' ऋषि बोले—'जगदीश्वर! यदि आप प्रसन्न तो कृपा करके कभी बदरीक्षेत्रका त्याग न करें, यही हम अभीष्ट वर है।' भगवान्‌ने 'एवमस्तु' कहकर उनकी प्रा स्वीकार कर ली। उसके बाद सब ऋषि अपने-अ आश्रमको चले गये और भगवान् नृसिंह भी शिला हो गये। जो तीन उपवास करके वहाँ भगवान् नृसि जप और ध्यानमें तत्पर होता है, वह साक्षात् नृसिंहरूप भगवान्‌का दर्शन पाता है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक प्रसङ्गको सुनता और सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त वैकुण्ठमें निवास करता है।

बदरीक्षेत्र और वहाँ भगवान्‌के प्रसाद-ग्रहणकी विशेष महिमा

स्कन्दने पूछा—प्रभो ! भगवान् विष्णु वहाँ किस लिये निवास करते हैं ? उनके दर्शन और स्पर्श आदिसे किस पुण्य और किस फलकी प्राप्ति होती है ?

भगवान् शिव बोले—पहले सत्ययुगके आदिमें भगवान् विष्णु सब प्राणियोंका हित करनेके लिये मूर्तिमान् होकर रहते थे। त्रेतायुगमें ऋषिगणोंको केवल योगाभ्याससे दृष्टिगोचर होते थे। द्वापर आनेपर भगवान् सर्वथा दुर्लभ हो गये, उनका दर्शन कठिन हो गया। तब देवता और मुनि बृहस्पतिजीको आगे करके ब्रह्माजीके लोकमें गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'पितामह ! आपको नमस्कार है। आप समस्त जगत्‌के आश्रय और शरणागतोंके दुःख दूर करनेवाले हैं। सुरेश्वर ! आपका हृदय करुणासे भरा हुआ है। जबसे द्वापर आया है, विशाल बुद्धिवाले भगवान् विष्णु विशालापुरी (बदरिकाश्रम) में नहीं दिखायी देते हैं। इसका क्या कारण है, बतलाइये ?'

ब्रह्माजी बोले—देवताओ ! मैं इस बातको नहीं जानता। आज तुम्हारे ही मुँहसे इसको सुना है। आओ, हमलोग क्षीरसमुद्रके तटपर चलें।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर देवता और तपोधन मुनि उन्हें आगे करके गये और क्षीरसागरपर पहुँचकर विचित्र पद एवं अर्थवाली वाणीद्वारा देवाधिदेव जगदीश्वर विष्णुकी स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी बोले—'समस्त प्राणियोंकी हृदयगुफामें निवास करनेवाले पुरुषाध्यक्ष ! आपको नमस्कार है। वासुदेव ! आप सबके आधार हैं, संसारकी उत्पत्तिके कारण हैं और यह समस्त जगत् आपका स्वरूप है। आप ही सम्पूर्ण भूतोंके हेतु, पति और आश्रय हैं। एकमात्र सुन्दर पुरुषोत्तम ! आप अपनी माया-शक्तिका आश्रय लेकर विचरते हैं। आप एक होकर भी अनेक रूपोंमें व्यक्त होते हैं, सर्वत्र व्यापक होनेपर भी दयावश भक्तोंके हृदयकमलमें भ्रमरकी भाँति विराजते हैं और उन्हें नाना प्रकारसे आनन्द देते हैं, आप जगदीश्वर विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके नामोंकी सुधाका रस एक बार भी पी लेनेपर मनुष्य मोक्षसुखको तिनकेकी भाँति ठुकरा देता है, उन भगवान् विष्णुका मैं भजन करता हूँ।

इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् विष्णु क्षीरसागरसे ऊपर उठे। उन्हें केवल ब्रह्माजी देख सके, अन्य लोगोंने न तो उन्हें देखा और न जाना ही। भगवान्‌ने जो कुछ कहा, उसे ब्रह्माजीने सुना और भगवान्‌को प्रणाम करके देवताओंको समझाया—'देवताओ ! सब लोगोंकी बुद्धि खोटी हो गयी है, यह देखकर भगवान् उनकी दृष्टिसे छिप गये हैं।' यह सुनकर सब देवता स्वर्गलोकको चले गये। तब मैंने संन्यासीका रूप धारण करके नारदतीर्थसे भगवान् विष्णुको उठाया और समस्त लोकोंके हितकी इच्छासे विशालापुरीमें स्थापित कर दिया। उनके दर्शनमात्रसे बड़े-बड़े पातक क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं। षडानन ! बदरीतीर्थके स्वामी भगवान् श्रीहरिका दर्शन करके मनुष्य धर्म और अधर्मपर विजय पाकर अनायास ही मोक्ष पा जाते हैं। बदरीतीर्थमें साक्षात् भगवान् नारायण निवास करते हैं। कलिकालको पाकर जिन्हें मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उन्हें बदरीक्षेत्रका दर्शन अवश्य करना चाहिये; क्योंकि वहाँ ज्ञान और योगसाधनके बिना ही केवल एक जन्ममें मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जैसे दीपकको देखनेसे अन्धकारकी बाधा नहीं रहती, वैसे ही बदरीक्षेत्रका दर्शन कर लेनेपर मनुष्यको जन्म-मृत्युका भय नहीं रह सकता। भगवान् बदरीनाथको मैं प्रणाम करता हूँ। बदरीक्षेत्रमें पग-पगपर भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा होती है। षडानन ! बदरीक्षेत्रमें भगवान् विष्णुके प्रसादका एक दाना भी मिल जाय, तो वह भोजन करनेपर समस्त पापोंको उसी प्रकार शुद्ध करता है, जैसे भूसीकी आग सोनेको तपाकर शुद्ध करती है। भगवान् विष्णु नारद आदि ऋषियोंके साथ जिस अन्नको ग्रहण करते हैं, वह प्रसाद अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये सबको बिना विचारे भोजन करना चाहिये। भगवान्‌का प्रसाद ग्रहण करनेके लिये देवता भी बदरीक्षेत्रमें आते हैं और भगवान्‌के भोजन कर लेनेके बाद प्रसाद लेकर अपने लोकको लौट जाते हैं। इसी प्रकार प्रह्लाद आदि भक्त वह प्रसाद लेकर भगवान्‌के धाममें जाते हैं। बचपन, जवानी और बुढ़ापेमें जान-बूझकर भी जो पाप किया गया है, वह बदरीक्षेत्रमें जाकर भगवान् विष्णुका प्रसाद भक्षण करनेपर नष्ट हो जाता है। जिस पापके लिये प्राणोंका अन्त कर देना ही प्रायश्चित्त बतलाया गया है,

वह भी बदरीक्षेत्रमें भगवान् विष्णुका प्रसाद खानेसे निवृत्त हो जाता है। बदरीक्षेत्रमें भगवान् विष्णुका प्रसाद भक्षण करनेसे मनुष्य भगवान्की सालोक्य मुक्तिको पाता है। जिसके हृदयमें भगवान् विष्णुका रूप, मुखमें भगवान्का नाम, पेटमें श्रीहरिका प्रसाद और मस्तकपर निर्माल्यसहित भगवान्का चरणामृत है, वह विष्णुस्वरूप ही है। ब्रह्म-हत्या, मदिरापान, चोरी और गुरुपत्नीगमन—ये महापाप बदरीक्षेत्रमें भगवान् विष्णुका प्रसाद ग्रहण करनेसे नष्ट हो जाते हैं। पृथ्वीमें जो तीर्थ, व्रत और नियम हैं, उनसे भी शीघ्र बदरीक्षेत्रमें भगवान्का चरणामृत पवित्र करनेवाला है। यदि बदरीक्षेत्रमें मनुष्यको एक बूँद भी भगवान्का चरणामृत मिल जाय, तो उसको क्या दुर्लभ है? प्रायश्चित्त तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक बदरीक्षेत्रमें भगवान्का चरणामृत नहीं मिल जाता है। जिन मनुष्योंको अनायास ही मोक्षके मार्गपर जानेकी इच्छा हो, उन्हें प्रयत्नपूर्वक बदरीक्षेत्रमें भगवान् विष्णुके प्रसादका भक्षण करना चाहिये। जो मनुष्य बदरीक्षेत्रमें दिये हुए दानको ग्रहण करते हैं, वे पापी जन्म-मरणरूप संकटके भागी होते हैं। उनको कभी यात्राका फल नहीं मिलता। बदरीक्षेत्रमें संन्यासियोंको भोजन देनेसे अपराधी भी भगवान्को प्रिय हो जाता है। विष्णुके समान कोई देवता नहीं, विशालाके समान कोई पुरी नहीं, संन्यासीके समान कोई सेवाका पात्र नहीं और ऋषितीर्थ (बदरीक्षेत्र) के समान कोई तीर्थ नहीं है*। संन्यासियोंको वहाँ विशेष फलकी प्राप्ति बतायी गयी है। दस बार वेदान्तश्रवणसे जो पुण्य कहा गया है, वह बदरीतीर्थके दर्शनमात्रसे संन्यासियोंको प्राप्त हो जाता है। ज्ञानी, अज्ञानी, संन्यासी अथवा मत-परायण सभी पुरुषोंको अभीष्ट फलकी प्राप्तिके लिये बदरीक्षेत्रका अवश्य दर्शन करना चाहिये।

स्वामी और परम शान्त हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये शरीर धारण करनेवाले भगवान् शार्ङ्गपाणिको नमस्कार है। अनन्त क्लेशोंका नाश करनेवाले गदाधारी ब्रह्मको नमस्कार है। संसारकी विविध असार वस्तुओंसे निवृत्त करनेके लिये कर्म करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। समस्त जीवोंके रक्षक विजयशील विष्णुको नमस्कार है। विश्वम्भर! समस्त गुणवृत्तियोंसे निवृत्त होनेवाले आपको नमस्कार है। देवताओं और असुरोंके श्रेष्ठतम अवलम्बन! सांसारिक विषयोंसे निवृत्ति और समस्त विश्वकी रक्षा—ये दोनों आपकी कीर्तियाँ हैं। आपको नमस्कार है।

सबके हृदयमें रहनेवाले सर्वज्ञ महेश्वर श्रीविष्णुकी ब्रह्माजीने जब इस प्रकार स्तुति की, तब वे शीघ्र ही वहाँ गये और उन दोनों दैत्योंको बाँधकर उन्होंने लीलापूर्वक उन्हें मार डाला। तत्पश्चात् वेदोंको लेकर वे ब्रह्माजीके समीप आये और ब्रह्माजीको देकर स्वरूपमें स्थित हो गये। तबसे ब्रह्माद्वारा प्रकट किया हुआ वह तीर्थ तीनों लोकोंमें ब्रह्मकुण्डके नामसे विख्यात हुआ। उसके दर्शनमात्रसे महापातकी मनुष्य भी पापरहित हो तत्काल ब्रह्मलोकमें चले जाते हैं। जो लोग यहाँ स्नान और व्रत करते हैं, वे ब्रह्मलोकको भी लाँघकर विष्णुलोकमें जाते हैं।

स्कन्दने पूछा—वेदोंको पाकर ब्रह्माजीने क्या किया?

श्रीमहादेवजी बोले—वत्स! बदरिकाश्रमतीर्थ देखकर चारों वेद ब्रह्माजीके साथ जाना नहीं चाहते थे। तब सिद्धोंके समक्षानेपर वेदोंने दो स्वरूप धारण किये। द्रवरूपसे तो वे बदरिकाश्रमतीर्थमें रह गये और ज्ञानरूपसे ब्रह्माजीके साथ गये। तब ब्रह्माजीने (वेदोंके अनुसार) विधिपूर्वक तीनों लोकोंको रचा। (इस ओर) ब्रह्मकुण्डमें, जहाँ द्रवरूपी वेद स्थित हैं, किये हुए स्नान, दान और तप प्रलयकालतक नष्ट नहीं होते। फलरूपसे वैदिक ज्ञानकी अभिलाषा रखकर जो मनुष्य वहाँ तीन उपवास करते हैं, वे चारों वेदोंकी व्याख्या करनेवाले होते हैं। वेदतीर्थसे उत्तर जलरूपा सरस्वती हैं, जो अपने नामका जप करनेपर मनुष्योंकी जड़ताका नाश करती हैं। सरस्वतीके जलमें स्थित होकर एकाग्रचित्तसे जो जप करता है, उसका मन्त्र कभी खण्डित नहीं होता। जगदीश्वर विष्णुने तीनों लोकोंका हित करनेके लिये वाग्वैभव प्रदान करनेवाली सरस्वती नदीका विधिपूर्वक यहाँ स्थापन किया है। इस तीर्थके दर्शन, स्पर्श, स्नान, पूजन, स्तुति और प्रणाम करनेसे मनुष्यके कुलमें कभी सरस्वतीसे विछोह नहीं होता। सरस्वतीके दक्षिण भागमें द्रवधारा नामसे प्रसिद्ध इन्द्रपद तीर्थ है, जहाँ इन्द्रने तपस्या की थी। प्रत्येक मासके शुक्लपक्षमें त्रयोदशी तिथिको इन्द्रको सन्तुष्ट करनेवाले उस तीर्थमें स्नान करके दो उपवास और भगवान् विष्णुका पूजन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहीं मानसोद्भेद तीर्थ है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। वह सब जीवोंके लिये दुर्लभ है। वहाँ जो महर्षि हैं, वे हृदयग्रन्थिका भेदन करते हैं, सब संशयोंको काटते हैं और कर्मबन्धनको क्षीण कर डालते हैं। इसीलिये उस तीर्थका नाम मानसोद्भेद है। यदि भाग्यवश मनुष्य वहाँ एक बूँद भी जल पा जाय, तो तत्काल उसकी मुक्ति हो जाती है। जो मनके विषयोंको जीत चुके हैं, जिनकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण है और जो फल, मूल एवं जलका आहार करके रहते हैं, ऐसे महर्षिगण यहाँकी पर्वतीय गुफाओंमें निवास करते हैं। ये मुनि फलाहार, शुद्ध वायुसेवन, गुफाका निवास, झरनोंके जलमें स्नान तथा आश्रमधर्मका पालन करते हैं और वल्कल या ऊर्णामय उत्तम वस्त्र धारण करके तीनों समयके स्नानसे दुर्जय इन्द्रियोंके पराक्रमपर भी विजय पा चुके हैं। यहाँपर बिना इच्छाके भी मुक्ति होती है। यदि कोई प्रमादवश किसी वस्तुकी कामना करता है, तो उस कामनाके अनुसार फल भोग लेनेपर फिर उसकी मुक्ति होती ही है। मानसोद्भेदतीर्थसे पश्चिम वसुधारा नामसे प्रसिद्ध एक मनोहर तीर्थ है। कहते हैं कि त्रिलोकीमें बदरिकाश्रम सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ है, यह बात नारदजीके मुँहसे सुनकर सभी वसु वहाँ गये। उन्होंने पत्ते चबाकर और जल पीकर वहाँ बड़ी कठोर तपस्या की। इससे उन्हें भगवान्‌का दर्शन प्राप्त हुआ और वे आनन्दमें डूब गये। इस प्रकार नारायणदेवका दर्शन करके उनसे मनोरम वरदानके रूपमें हरिभक्ति, सुख और ऐश्वर्य पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। इस वसुतीर्थमें स्नान और आचमन करके भगवान् जनार्दनका पूजन करनेसे मनुष्य इहलोकमें सुख भोगता और अन्तमें परमपदको प्राप्त होता है। यहाँ पुण्यात्मा पुरुषोंको जलके मध्यसे ज्योति निकलती दिखायी देती है, जिसे देखकर मनुष्य फिर गर्भवासमें नहीं आता। यहाँ तीन दिनतक पवित्र हो उपवास और भक्तिपूर्वक भगवान् जनार्दनकी पूजा करनेसे साधुपुरुष सिद्धोंका दर्शन पाते हैं। जो लोभी और चपल हैं, जो

सत्य नहीं बोलते, परिहासके व्याजसे पराये धन और परायी स्त्रीको कपटसे ग्रहण करना चाहते हैं, जिन्होंने सत्कर्मोंका त्याग कर दिया है, जो अशान्त और अपवित्र रहते हैं, ऐसे मलिनचित्त मानवोंको यहाँ कोई फल नहीं मिलता। जो साधनसंलग्न, शान्त, एकाकी और विधिमार्गका पालन करनेवाले हैं, उनके द्वारा यथाशक्ति किये हुए जप, तप, होम, दान और व्रत आदि कर्म यहाँ अक्षय फल देनेवाले होते हैं। जो मनुष्य भक्तिभावसे विभूषित हो इस पुण्यतीर्थके विषयको पढ़ते-पढ़ाते एवं प्रकाशित करते हैं, वे भगवान् विष्णुके कल्याणमय धाममें जाते हैं।

पञ्चतीर्थ, सोमतीर्थ, द्वादशादित्यतीर्थ, चतुःस्रोततीर्थ, सत्यपदतीर्थ तथा नर-नारायणाश्रमकी महिमा

भगवान् शिवजी कहते हैं—वहाँसे नैर्ऋत्य कोणमें पाँच धाराएँ गिरती हैं, उन्हें द्रवरूपमें पाँच तीर्थ जानो; जिनके नाम इस प्रकार हैं—प्रभास, पुष्कर, गया, नैमिष और कुरुक्षेत्र। उनमें विधिपूर्वक स्नान और नित्यकर्म करके पवित्र हुआ मनुष्य उन-उन तीर्थोंका फल पाता और अन्तमें परम पदको प्राप्त होता है। उन तीर्थोंमें भगवान् विष्णुकी पूजा करके मानव इस लोकमें बहुत सुख भोगता और अन्तमें विष्णुका सालोक्य प्राप्त करता है। उसके बाद सोमकुण्ड नामक निर्मल तीर्थ है, जहाँ चन्द्रमाने तपस्या की है। पूर्वकालमें अत्रिकुमार चन्द्रमा जब युवावस्थाको प्राप्त हुए, तब उन्होंने गन्धर्वोंसे स्वर्गवासियोंके सुखकी बार-बार प्रशंसा सुनकर अपने पितासे पूछा कि 'स्वर्गीय सुख कैसे मिलता है।' अत्रिने कहा—'बेटा! तपस्या, यम और नियमोंके द्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना की जाय तो साधुपुरुषोंके लिये इहलोक और परलोकमें कौन-सी वस्तु दुर्लभ है?' तदनन्तर नारदजीसे यह सुनकर कि 'बदरीक्षेत्र अत्यन्त निर्मल है' वे अपने पिताको प्रणाम करके उत्तर दिशाको गये। बदरीतीर्थमें पहुँचकर उन्होंने पवित्र फलोंसे भगवान् विष्णुका पूजन किया और परम उत्तम अष्टाक्षर 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्रका जप प्रारम्भ किया। दीर्घकालतक जप-तप करनेके पश्चात् भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न होकर चन्द्रमासे बोले—'सुव्रत! कोई वर माँगो'। तब चन्द्रमाने उठकर बार-बार प्रणाम करके कहा—'भगवन्! मैं आपके प्रसादसे ग्रह, नक्षत्र, तारा, ओषधिवर्ग तथा सम्पूर्ण ब्राह्मणोंका राजा होना चाहता हूँ।'

जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य निष्पाप हो जाते हैं। उसमें आचमन करनेसे निन्दित मनुष्य भी चन्द्रलोकमें जाते हैं और वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करनेवाला पुरुष चन्द्रलोकको भेदकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है। वहाँ तीन राततक भगवान् विष्णुकी पूजा करके जप करनेवाले पुरुषको विशेषरूपसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है। मनुष्य मन, वाणी और क्रियाद्वारा जो पाप करता है, वह सब यहाँ सोमकुण्डके दर्शनसे नष्ट हो जाता है। वहाँसे आगे द्वादशादित्य नामक तीर्थ है, जहाँ तपस्या करके कश्यपजीके पुत्रने सूर्यकी पदवी प्राप्त की है। वहाँ प्रत्येक रविवारको सप्तमी तिथिमें अथवा संक्रान्तिके अवसरपर विधिपूर्वक स्नान करनेमात्रसे मनुष्य सात जन्मोंके पापसे मुक्त हो जाता है। महान् रोगसे पीड़ित पुरुष यदि यहाँ स्नान करके जल पीकर पवित्र हो, तो शीघ्र ही वह रोगसे छुटकारा पा जाता है। इसके सिवा वहाँ चतुःस्रोत नामक तीर्थ है। उस वैष्णवक्षेत्रमें भगवान्की आज्ञाके अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ द्रवरूप होकर स्थित हैं, जो सब प्राणियोंकी मुक्तिके हेतु हैं। पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः उनकी स्थिति है अर्थात् पूर्वमें धर्म, दक्षिणमें अर्थ, पश्चिममें काम और उत्तरमें मोक्ष नामक स्रोत हैं। ये धर्मप्रधान पुरुषोंकी भाँति मूर्तिमान् होकर स्थित हैं। जो क्रमशः विद्यमान उन चारों तीर्थोंका सेवन करते हैं, उन्हें सदैव प्रसन्नता प्राप्त होती है। पूर्वोपार्जित पुण्यपुञ्जके प्रभावसे श्रेष्ठ जन्म पाकर जो मनुष्य साधनमें प्रवृत्त हैं, वे उन चारों पुरुषार्थों-

विष्णु पधारते हैं। तत्पश्चात् ऋषि, मुनि, तपस्वी उस कुण्डमें स्नान करनेके लिये आते हैं। उस तीर्थके दर्शनसे बड़े-बड़े पातक भाग जाते हैं। उसमें स्नान करके बुद्धिमान् पुरुष सत्यलोकको प्राप्त होता है और वहाँसे उसका मोक्ष हो जाता है। जो वहाँ एक दिन और एक रात उपवास करके भगवान् जनार्दनकी यथाशक्ति पूजा करता है, वह जीवन्मुक्तिका भागी होता है। त्रिकोण आकृतिसे सुशोभित सत्यपदतीर्थ सब पापोंसे मुक्ति चाहनेवाले पुरुषोंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक दर्शन करने योग्य है। वहाँ जप, तप, हरिस्तोत्र, पूजा, स्तुति और प्रणाम करनेवाले पुरुषोंकी महिमाका वर्णन ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते।

तदनन्तर अत्यन्त निर्मल भगवान् नर-नारायणका आश्रम है। वहाँका स्वच्छ जल दो प्रकारका दिखायी देता है। उन दोनों जलोंके सेवनसे उन दोनों नर और नारायणके प्रति प्रीति होती है, यह निश्चय किया गया है। वहाँ स्नान और यत्नपूर्वक भगवान्‌का पूजन करनेसे मनुष्य तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। धर्मकी पत्नी मूर्तिसे भगवान्‌का नर और नारायणके रूपमें अवतार हुआ। वे दोनों माता-पिताकी आज्ञा लेकर तपस्याके लिये गये और नर-नारायण नामवाले दोनों पर्वतोंके बीच तपस्याकी साक्षात् मूर्तिके समान स्थित हो गये। उस तीर्थमें स्नान करके भगवान् विष्णुका पूजन करनेसे मनुष्य नरसे नारायण हो जाता है। वहाँ प्राणियोंका कल्याण करनेवाले साक्षात् भगवान् नारायण तपोमूर्ति होकर स्थित हैं। वहाँ वायु श्रीलक्ष्मीपतिके चरणारविन्दोंसे प्राप्त होनेवाली सुगन्ध लेकर बहती है, जिसका स्पर्श होनेसे कलियुगके पापसे आतुर हुए मनुष्योंका पाप नष्ट हो जाता है। उस तीर्थमें जाकर मुनियोंकी बुद्धि बाह्य पदार्थोंको नहीं देखती; केवल भगवच्चरणारविन्दोंके चिन्तनमें संलग्न रहती है और वहाँ विराजमान साक्षात् भगवान् विष्णु क्रमशः वहाँकी यात्रा करनेवाले पुरुषोंको अपना पद प्रदान करते हैं। उस नारायणगिरिपर सब पापोंका नाश करनेवाले बहुतसे तीर्थ हैं, जिन्हें मैं जानता हूँ, साधारण मनुष्य नहीं जानते। उसके दक्षिण भागमें जगदीश्वर विष्णुके अस्त्र विद्यमान हैं, जिनके दर्शनसे मनुष्य अस्त्र-शस्त्रोंके भयका भागी नहीं होता। जो एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक इस माहात्म्यको सुनता अथवा सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुका सालोक्य प्राप्त करता है।

मेरुतीर्थ, लोकपालतीर्थ, दण्डपुष्करिणी, गङ्गासङ्गम तथा धर्मक्षेत्र आदिका माहात्म्य और ग्रन्थका उपसंहार

भगवान् शिव कहते हैं— ब्रह्मकुण्डसे दक्षिण नरका निवासभूत महान् पर्वत है। जहाँ भगवान् श्रीहरिने लोकसुन्दर मेरुपर्वतको स्थापित किया है। जब भगवान्‌का निवास विशालापुरीमें हुआ, तब विद्याधर और चारणोंसहित सम्पूर्ण देवता, महर्षि और सिद्ध भगवद्दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो मेरुपर्वतके शिखरोंको छोड़कर वहाँ आ गये। भगवान्‌के दर्शनसे उन्हें ऐसा आह्लाद प्राप्त हुआ कि देवलोक तुच्छ प्रतीत होने लगा। तब भगवान्‌ने उनके सुखके लिये एक ही हाथसे मेरुपर्वतके शिखरोंको उखाड़ लिया और लीलापूर्वक उन्हें यहाँ स्थापित कर दिया; क्योंकि भगवान् विष्णु सबकी प्रीति बढ़ानेवाले हैं। उस समय वहाँ सुवर्णनिर्मित पर्वतको देखकर सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणका उन्होंने इस प्रकार स्तवन किया।

देवता बोले—जो हम देवताओंके सुखके लिये तथा संसारबन्धनजनित दुःखको दूर करनेके लिये लीलामय शरीर धारण करके स्वर्णमय पर्वतको यहाँ ले आये हैं तथा जिन्होंने एकमात्र देवताओंका पक्ष लेकर सैकड़ों दैत्योंपर विजय पायी है, उग्र तपस्याकी दिव्य शोभासे सम्पन्न उन भगवान् नारायणको हम नमस्कार करते हैं। जो दीनजनोंकी पीड़ारूपी रूईको भस्म करनेके लिये अग्निमय पर्वत हैं, हमपर दया करके जो हमें दयालु पिताकी भाँति उत्तम शिक्षा देते हैं, त्रिभुवनकी रक्षा करनेमें समर्थ दृष्टिपातसे जो पूर्णसुधाका समुद्र प्रवाहित करते हैं, वे भगवान् विपत्तियोंसे हमारी रक्षा करें। ऋषि बोले—'यह समस्त संसार जिनसे व्याप्त होकर शोभा पा रहा है, उन आप सनातन प्रभुको हम प्रणाम करते हैं।' सिद्ध बोले—'भगवान्‌की दयाके लवलेशमात्रसे महापुरुष सिद्धिको प्राप्त हुए हैं तथा दूसरे संसारी मनुष्य भी उनकी कृपाके कणमात्रसे भयङ्कर संसारसागरसे शीघ्र ही पार हो गये हैं। ऐसा हमारी बुद्धिका निश्चय है।' विद्याधर बोले—'सर्वव्यापी प्रभो! आप सद्गुणोंके समूह, कल्याणकी

मूर्ति परमेश्वर और सम्मानके विस्तारमें हेतु हैं, आपके चरणारविन्दोंके रसका आस्वादन करके हम कृतार्थ हो गये।'

तब भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर देवताओंसे कहा—'तुमलोग कोई वर माँगो।' यह आज्ञा पाकर देवताओंने वरदाताओंमें श्रेष्ठ श्रीहरिसे कहा—'आप देवताओंके भी देवता और साक्षात् लक्ष्मीपति हैं। यदि आप सन्तुष्ट हैं, तो हम यही चाहते हैं कि आप बदरीतीर्थ और मेरुपर्वतका कभी त्याग न करें। जो पुण्यभागी मनुष्य यहाँ मेरु-शिखरका दर्शन करते हैं, आपके प्रसादसे उनका मेरुगिरिपर निवास हो और वहाँ चिरकालतक उत्तम भोग भोगनेके पश्चात् उनका आपमें लय हो।' तब 'एवमस्तु' कहकर भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये।

इसके पश्चात् परम उत्तम लोकपालतीर्थ है, जहाँ भगवान् विष्णुने स्वयं ही लोकपालोंको स्थापित किया है। एक समय भगवान् विष्णु मेरुनिवासी देवताओंको यहाँ लानेकी इच्छासे वहाँ गये और देवताओं तथा प्रधान-प्रधान ऋषियोंके चरित्रको देखनेके लिये उद्यत हुए। भगवान्‌को वहाँ उपस्थित देख सब देवताओंने सहसा उठकर नमस्कार किया और विनयपूर्वक कहा—'भगवन्! प्रसन्न होइये।' क्षणभर विश्राम करनेके पश्चात् भगवान्‌ने वहाँकी विरल भूमिको भलीभाँति देखा और देवताओं तथा ऋषियोंका वहाँ एक साथ रहना उचित न समझकर हँसते हुए कहा—'लोकपालो! आपको यहाँ नहीं रहना चाहिये। आपलोगोंके योग्य स्थानकी व्यवस्था मैंने पहलेसे ही कर रक्खी है।' यों कहकर उन्होंने लोकपालोंको बुलाया और बदरीक्षेत्रमें सुन्दर पर्वतके शिखरपर स्थापित किया। वहीं जलकी इच्छासे उन्होंने शैलदण्डके द्वारा एक पर्वतको तोड़कर मनोहर सरोवर बनाया, जहाँ भगवान् विष्णु द्वादशी और पूर्णिमाको स्नान करनेके लिये आते हैं। तत्पश्चात् तपस्वी ऋषि-मुनि वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके जलमें असङ्ग परम ज्योतिका दर्शन करते हैं। सब तीर्थोंमें स्नान करनेका जो फल कहा गया है, वह दण्डपुष्करिणीके दर्शनमात्रसे तत्काल प्राप्त हो जाता है। वहाँ मनीषी पुरुषोंके सभी काम्य कर्म सफल होते हैं तथा यज्ञ, दान और तप सब अक्षय हो जाते हैं। वहाँ ज्येष्ठ मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको विधिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। जो सदा भगवान्‌के निकट स्थान प्राप्त करना चाहता हो, उसे प्रयत्नपूर्वक बदरीक्षेत्रका सेवन करना चाहिये। मानसोद्भेदतीर्थके समीप जो गङ्गाजीमें सङ्गम है, वह निर्मल एवं पवित्र तीर्थ प्रयागसे भी अधिक महत्त्वशाली है। तीस हजार वर्षोंतक वायु पीकर तपस्या करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह गङ्गा-सङ्गममें स्नान करनेमात्रसे मिल जाता है।

सङ्गमसे दक्षिण भागमें धर्मक्षेत्र है, जहाँ मूर्तिके गर्भसे नर-नारायण ऋषिकी उत्पत्ति हुई सुनी जाती है। मर्त्यलोकमें वह सबसे उत्तम एवं पावन क्षेत्र है। वहाँ भगवान् धर्म चारों चरणोंसे स्थित हैं। वहाँ मनुष्य यज्ञ, दान, तप आदि जो कोई भी सत्कर्म करते हैं, उसके पुण्यका करोड़ों कल्पोंमें भी क्षय नहीं होता। वहाँसे दक्षिण भागमें उर्वशी-सङ्गम नामक तीर्थ है, जो स्नानमात्रसे ही मनुष्योंके सब पापोंको हर लेनेवाला है। उसके बाद कूर्मोद्धारतीर्थ है, जो भगवान् विष्णुकी भक्तिका एकमात्र साधन है। वहाँ स्नान करनेसे ही प्राणियोंके अन्तःकरणकी शुद्धि हो जाती है। तदनन्तर ब्रह्मावर्ततीर्थ है, जो साक्षात् ब्रह्मलोककी प्राप्तिका प्रधान कारण है। उस तीर्थके दर्शनसे ही सब पापोंका क्षय हो जाता है। वत्स! यहाँ बहुतसे तीर्थ हैं, जो देहधारियोंके लिये दुर्गम हैं। मैंने तुम्हारे स्नेहवश संक्षेपसे बतलाया है। जो मनुष्य सदा एकाग्रचित्त होकर प्रतिदिन इस माहात्म्यको सुनता या सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो मनुष्य एक- मासतक एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक इसको सुनता है, उसके दुर्लभ अभीष्टकी भी सिद्धि हो जाती है। जिन घरोंमें इस माहात्म्यका पाठ होता है, वहाँ आधि-व्याधिका घोर भय, दरिद्रता और कलह—ये कभी नहीं होते हैं।

कार्तिक मास-माहात्म्य

कार्तिक मासकी श्रेष्ठता तथा उसमें करनेयोग्य स्नान, दान, भगवत्पूजन आदि धर्मोंका मह

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

'भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा सरस्वतीदेवीको नमस्कार करके जयस्वरूप इतिहास-पुराणका पाठ करना चाहिये।'

ऋषि बोले—सूतजी ! हमलोग कार्तिक मासका माहात्म्य सुनना चाहते हैं।

सूतजी बोले—ऋषियो ! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, उसीको ब्रह्मपुत्र नारदजीने जगद्गुरु ब्रह्मासे इस प्रकार पूछा था—'पितामह ! मासोंमें सबसे श्रेष्ठ मास, देवताओंमें सर्वोत्तम देवता और तीर्थोंमें विशिष्ट तीर्थ कौन हैं, यह बताइये।'

ब्रह्माजी बोले—मासोंमें कार्तिक, देवताओंमें भगवान् विष्णु और तीर्थोंमें नारायणतीर्थ (बदरिकाश्रम) श्रेष्ठ है। ये तीनों कलियुगमें अत्यन्त दुर्लभ हैं।

इतना कहकर ब्रह्माजीने भगवान् राधाकृष्णका स्मरण किया और पुनः नारदजीसे कहा—बेटा ! तुमने समस्त लोकोंका उद्धार करनेके लिये यह बहुत अच्छा प्रश्न किया। मैं कार्तिकका माहात्म्य कहता हूँ। कार्तिक मास भगवान् विष्णुको सदा ही प्रिय है। कार्तिकमें भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ पुण्य किया जाता है, उसका नाश मैं नहीं देखता। नारद ! यह मनुष्ययोनि दुर्लभ है। इसे पाकर मनुष्य अपनेको इस प्रकार रक्खे कि उसे पुनः नीचे न गिरना पड़े। कार्तिक सब मासोंमें उत्तम है। यह पुण्यमय वस्तुओंमें सबसे अधिक पुण्यतम और पावन पदार्थोंमें सबसे अधिक पावन है। इस महीनेमें तैंतीसों देवता मनुष्यके सन्निकट हो जाते हैं और इसमें किये हुए स्नान, दान, भोजन, व्रत, तिल, धेनु, सुवर्ण, रजत, भूमि, वस्त्र आदिके दानोंको विधिपूर्वक ग्रहण करते हैं। कार्तिकमें जो कुछ दिया जाता है, जो भी तप किया जाता है, उसे सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुने अक्षय फल देनेवाला बतलाया है। भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे मनुष्य कार्तिकमें जो कुछ दान देता है, उसे वह अक्षयरूपमें प्राप्त करता है। उस समय अन्नदानका महत्त्व अधिक है। उससे पापोंका सर्वथा नाश हो जाता है। जो कार्तिक मास प्राप्त हुआ देख पराये अन्नको सर्वथा त्याग देता है, वह अतिकृच्छ्र यज्ञका फल प्राप्त करता है। कार्तिक मासके समान कोई मास नहीं, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं, वेदोंके समान कोई श और गङ्गाजीके समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है* प्रकार अन्नदानके सदृश दूसरा कोई दान नहीं है। दा वाले पुरुषोंके लिये न्यायोपार्जित द्रव्यके दानका दुर्लभ है, उसका भी तीर्थमें दान किया जाना तो दुर्लभ है। मुनिश्रेष्ठ ! पापसे डरनेवाले मनुष्यको कार्ति में शालग्रामशिलाका पूजन और भगवान् वासुदेवका अवश्य करना चाहिये। दान आदि करनेमें असमर्थ प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक नियमसे भगवन्नामोंका स्मरण कार्तिकमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये विष्णु अथवा शिव-मन्दिरमें रातको जागरण करे। शिव और के मन्दिर न हों तो किसी भी देवताके मन्दिरमें जागरण यदि दुर्गम वनमें स्थित हो या विपत्तिमें पड़ा हो तो ' वृक्षकी जड़में अथवा तुलसीके वनोंमें जागरण करे। भ विष्णुके समीप उन्हींके नामों और लीला-कथाओंका करे। यदि आपत्तिमें पड़ा हुआ मनुष्य कहीं अधिक न पावे अथवा रोगी होनेके कारण जलसे स्नान न क तो भगवान्के नामसे मार्जनमात्र कर ले। व्रतमें स्थित पुरुष यदि उद्यापनकी विधि करनेमें असमर्थ हो, तो समाप्तिके बाद उसकी पूर्णताके लिये केवल ब्राह्मणोंको कराये। जो स्वयं दीपदान करनेमें असमर्थ हो, वह दू बुझे हुए दीपको जला दे अथवा हवा आदिसे यत्नपूर्वक उ रक्षा करे। भगवान् विष्णुकी पूजा न हो सकनेपर तु अथवा आँवलेका भगवद्बुद्धिसे पूजन करे। मन-ही भगवान् विष्णुके नामोंका निरन्तर कीर्तन करता रहे।

गुरुके आदेश देनेपर उनके वचनका कभी उल्लङ्घन करे। यदि अपने ऊपर दुःख आदि आ पड़े तो गु शरणमें जाय। गुरुकी प्रसन्नतासे मनुष्य सब कुछ प्राप्त लेता है। परम बुद्धिमान् कपिल और महातपस्वी सुमति अपने गुरु गौतमकी सेवासे अमरत्वको प्राप्त हुए। इसलिये विष्णु-भक्त पुरुष कार्तिकमें सब प्रकारसे प्रयत्न क

* न कार्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम् ।
न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् ॥
(स्क० पु० वै० का० मा० १ । ३६-३७)

गुरुकी सेवा करे। ऐसा करनेसे उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। सब दानोंसे बढ़कर कन्यादान है, उससे अधिक विद्यादान है, विद्यादानसे भी गोदानका महत्त्व अधिक है और गोदानसे भी बढ़कर अन्नदान है; क्योंकि यह समस्त संसार अन्नके आधारपर ही जीवित रहता है। इसलिये कार्तिकमें अन्नदान अवश्य करना चाहिये। कार्तिकमें नियमका पालन करनेपर अवश्य ही भगवान् विष्णुका सारूप्य एवं मोक्षदायक पद प्राप्त होता है। कार्तिकमें ब्राह्मण पति-पत्नीको भोजन कराना चाहिये, चन्दनसे उनका पूजन करना चाहिये, अनेक प्रकारके वस्त्र, रत्न और कम्बल देने चाहिये। ओढ़नेके साथ ही रूईदार बिछावन, जूता और छाता भी दान करने चाहिये। कार्तिकमें भूमिपर शयन करनेवाला मनुष्य युग-युगके पापोंका नाश कर डालता है। जो कार्तिक मासमें भगवान् विष्णुके आगे अरुणोदयकालमें जागरण करता है और नदीमें स्नान, भगवान् विष्णुकी कथाका श्रवण, वैष्णवोंका दर्शन तथा नित्यप्रति भगवान् विष्णुका पूजन करता है, उसके पितरोंका नरकसे उद्धार हो जाता है। अहो! जिन लोगोंने भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन नहीं किया, वे इस कलियुगकी कन्दरामें गिरकर नष्ट हो गये, लुट गये। जो मनुष्य कमलके एक फूलसे देवताओंके स्वामी भगवान् कमलापतिकी पूजा करता है, वह करोड़ों जन्मोंके पापोंका नाश कर डालता है। मुनिश्रेष्ठ! जो कार्तिकमें एक लाख तुलसीदल चढ़ाकर भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह एक-एक दलपर मुक्तादान करनेका फल प्राप्त करता है। जो भगवान्के श्रीअङ्गोंसे उतारी हुई प्रसादस्वरूपा तुलसीको मुखमें, मस्तकपर और शरीरमें धारण करता है तथा भगवान्के निर्माल्योंसे अपने अङ्गोंका मार्जन करता है, वह मनुष्य सम्पूर्ण रोगों और पापोंसे मुक्त हो जाता है। भगवत्पूजनसम्बन्धी प्रसादस्वरूप शङ्खका जल, भगवान्की भक्ति, निर्माल्य-पुष्प आदि, चरणोदक, चन्दन और धूप ब्रह्महत्याका नाश करनेवाले हैं। नारद! कार्तिक मासमें प्रातःकाल स्नान करे और प्रतिदिन अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको अन्न-दान दे; क्योंकि सब दानोंमें अन्न-दान ही सबसे बढ़कर है। अन्नसे ही मनुष्य जन्म लेता और अन्नसे ही बढ़ता है। अन्नको समस्त प्राणियोंका प्राण माना गया है। अन्न-दान करनेवाला पुरुष संसारमें सब कुछ देनेवाला और सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला है। पूर्वकालमें सत्यकेतु ब्राह्मणने केवल अन्न-दानसे सब पुण्योंका फल पाकर परम दुर्लभ मोक्षको भी प्राप्त कर लिया था। कार्तिक मासमें अनेक प्रकारके दान देकर भी यदि मनुष्य भगवान्का चिन्तन नहीं करता तो वे दान उसे कभी पवित्र नहीं करते। भगवन्नाम-स्मरणकी महिमाका वर्णन मैं भी नहीं कर सकता। 'गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण। गोविन्द गोविन्द रथाङ्गपाणे गोविन्द दामोदर माधवेति।' इस प्रकार प्रतिदिन कीर्तन करे। नित्यप्रति भागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकका भी कार्तिकमें श्रद्धा और भक्तिके साथ अवश्य पाठ करे। जिन्होंने भागवतपुराणका श्रवण नहीं किया, पुराणपुरुष भगवान् नारायणकी आराधना नहीं की और ब्राह्मणोंके मुखरूपी अग्निमें अन्नकी आहुति नहीं दी, उन मनुष्योंका जन्म व्यर्थ ही गया। देवर्षे! जो मनुष्य कार्तिक मासमें प्रतिदिन गीताका पाठ करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। गीताके समान कोई शास्त्र न तो हुआ है और न होगा। एकमात्र गीता ही सदा सब पापोंको हरनेवाली और मोक्ष देनेवाली है*। गीताके एक अध्यायका पाठ करनेसे मनुष्य घोर नरकसे मुक्त हो जाते हैं, जैसे जड़ ब्राह्मण मुक्त हो गया था। सात समुद्रोंतककी पृथ्वीका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, शालग्राम-शिलाके दान करनेसे मनुष्य उसी फलको पा लेता है। अतः कार्तिक मासमें स्नान तथा दानपूर्वक शालग्रामशिलाका दान अवश्य करना चाहिये।

---

* कार्तिके मासि विप्रेन्द्र यस्तु गीतां पठेन्नरः। तस्य पुण्यफलं वक्तुं मम शक्तिर्न विद्यते॥
गीतायास्तु समं शास्त्रं न भूतं न भविष्यति। सर्वपापहरा नित्यं गीतैका मोक्षदायिनी॥

(स्क० पु० वै० का० मा० २। ४९-५०)

विभिन्न देवताओंके संतोषके लिये कार्तिकस्नानकी विधि तथा स्नानके लिये श्रेष्ठ तीर्थोंका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—कार्तिकका व्रत आश्विन शुक्ल पक्षकी दशमीसे आरम्भ करके कार्तिक शुक्ला दशमीको समाप्त करे, अथवा आश्विनकी पूर्णिमाको आरम्भ करके कार्तिककी पूर्णिमाको पूरा करे। भक्तिमान् पुरुष आश्विन शुक्ल पक्षकी एकादशी आनेपर भगवान् विष्णुको नमस्कार करके उनसे कार्तिकव्रत करनेकी आज्ञा प्राप्त करे और विधिसे कार्तिकव्रतका पालन करे। बारहों महीनोंमें मार्गशीर्ष मास अत्यन्त पुण्यप्रद है, उससे अधिक पुण्यफल देनेवाला नर्मदातटपर वैशाख मास बताया गया है। उससे लाख गुना अधिक प्रयागमें माघ मासका महत्त्व है। उससे भी महान् फल देनेवाला कार्तिक मास है। इसका महत्त्व सर्वत्र जलमें एक-सा ही है। एक ओर सब दान, व्रत और नियम तथा दूसरी ओर कार्तिकका स्नान तराजूपर रखकर ब्रह्माजीने तौला, तो कार्तिकका ही पलड़ा भारी रहा। स्नान, दीपदान, तुलसीके पौधोंको लगाना और सींचना, पृथ्वीपर शयन, ब्रह्मचर्यका पालन, भगवान् विष्णुके नामोंका सङ्कीर्तन तथा पुराणोंका श्रवण—इन सब नियमोंका जो कार्तिक मासमें (निष्कामभावसे) पालन करते हैं, वे ही जीवन्मुक्त हैं। यह व्रत भगवान् श्रीकृष्णको बहुत प्रिय है। सूर्यभक्त, गणेशभक्त, शक्ति-उपासक, शिवोपासक और वैष्णव—सभीको सब पापोंका निवारण करनेके लिये कार्तिक-स्नान करना चाहिये। सूर्यकी प्रीतिके लिये जबतक सूर्य-नारायण तुला राशिपर स्थित हों, तबतक व्रत करना चाहिये। आश्विनकी पूर्णिमासे लेकर कार्तिककी पूर्णिमातक भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये स्नान करना चाहिये। देवीपक्ष अर्थात् आश्विन शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे लेकर कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीकी महारात्रिके आनेतक भगवती दुर्गाकी प्रसन्नताके लिये स्नान करना चाहिये। गणेशजीकी प्रसन्नताके लिये आश्विन कृष्ण चतुर्थीसे लेकर कार्तिक कृष्ण चतुर्थीतक नियमपूर्वक स्नान करना चाहिये। जो आश्विन शुक्ल पक्षकी एकादशीसे लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशीतक कार्तिकव्रतकी समाप्ति करता है, उसके ऊपर भगवान् जनार्दन प्रसन्न होते हैं। जो दूसरोंके सङ्गवश या बलात्कारसे जानकर अथवा बिना जाने ही कार्तिक मासमें प्रातःस्नानका नियम पूरा कर लेता है, वह कभी यम-यातनाको नहीं देखता। अथवा जो ब्राह्मण कार्तिकमें प्रातःस्नान करते हैं, उन्हें ओढ़नेके लिये कम्बल या रजाई देकर स्नानजनित पुण्यफलको प्राप्त करे। कार्तिक मासमें विशेषतः श्रीराधा और श्रीकृष्णकी पूजा करनी चाहिये। जो कार्तिकमें तुलसीवृक्षके नीचे श्रीराधा और श्रीकृष्णकी मूर्तिका (निष्कामभावसे) पूजन करते हैं,

उन्हें जीवन्मुक्त समझना चाहिये। हजारों पापोंसे युक्त मनुष्य क्यों न हो, वह कार्तिकस्नानसे अवश्य पापमुक्त हो जाता है। तुलसीके अभावमें आँवलेके नीचे पूजा करनी चाहिये। मुख्य पूजाकी विधि सूर्यमण्डलमें करनी चाहिये अर्थात् सूर्यमण्डलकी ओर देखकर सूर्यरूपी नारायणके लिये पूजनोपचार समर्पित करना चाहिये। सब देवता अप्रत्यक्ष हैं, केवल ये भगवान् सूर्य ही प्रत्यक्ष हैं। अन्य सब देवता कालके अधीन हैं, परंतु भगवान् सूर्य कालके भी काल हैं। जो दरिद्र है, वही दानका पात्र है। उसकी अपेक्षा भी विद्वान् पुरुष दानका विशेष पात्र है। भगवान् विष्णुकी चल मूर्तिसे अचल मूर्ति श्रेष्ठ मानी गयी है। मूर्तिके अभावमें भगवद्बुद्धिसे पीपल अथवा वटकी पूजा करनी चाहिये। पीपल भगवान् विष्णुका और वट भगवान् शङ्करका स्वरूप है। शालग्रामशिलाके चक्रमें सदा भगवान् विष्णुका निवास है, इसलिये प्रयत्नपूर्वक शालग्रामकी पूजा करनी चाहिये। पलाश

ब्रह्माजीके अंशसे उत्पन्न हुआ है। जो कार्तिक मासमें उसके पत्तलमें भोजन करता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। पीपलके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु विराजमान हैं, इसलिये कार्तिकमें प्रयत्नपूर्वक उसका पूजन करना चाहिये। जो लोग कार्तिक मासमें स्नान, जागरण, दीपदान और तुलसीवनकी रक्षा करते हैं, वे भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं। जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें झाड़ू देकर स्वस्तिक आदिका (निष्काम भावसे) मङ्गल चिह्न बनाते और भगवान् विष्णुकी पूजा करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं।

जब दो घड़ी रात बाकी रहे, तब तुलसीकी मृत्तिका, वस्त्र और कलश लेकर जलाशयके समीप जाय। पैर धोकर गङ्गा आदि नदियों तथा विष्णु और शिव आदि देवताओं-का स्मरण करे। फिर नाभिके बराबर जलमें खड़ा होकर इस मन्त्रको पढ़े।

कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन।
प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह॥

'जनार्दन! देवेश्वर दामोदर! लक्ष्मीसहित आपकी प्रसन्नताके लिये मैं कार्तिकमें प्रातःस्नान करूँगा।'

तत्पश्चात्—

गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे।
नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने॥
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते।

'भगवन्! आप श्रीराधाके साथ मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको स्वीकार करें। हरे! आप कमलनाभको नमस्कार है। जलमें शयन करनेवाले आप नारायणको नमस्कार है। हृषीकेश! यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये, आपको बार-बार नमस्कार है।'

मनुष्य किसी भी तीर्थमें स्नान करे, उसे गङ्गाका स्मरण अवश्य करना चाहिये। पहले मृत्तिका आदिसे स्नान करके पावमानी ऋचाओंद्वारा अपने मस्तकपर अभिषेक करे। अघमर्षण और स्नानाङ्गतर्पण करके पुरुषसूक्तसे सिरपर जल छिड़के। उसके बाद बाहर आकर पुनः मस्तकपर तीर्थका जल सींचे। फिर हाथमें तुलसी लेकर तीन बार आचमन करके पानीसे बाहर धोती निचोड़े। वस्त्र निचोड़नेके पश्चात् तिलक आदि करे। कार्तिकमें जहाँ कहीं भी प्रत्येक जलाशयके जलमें स्नान करना चाहिये। गरम जलकी अपेक्षा ठण्डे जलमें स्नान करनेसे दसगुना पुण्य होता है। उससे सौगुना पुण्य बाहरी कुएँके जलमें स्नान करनेसे होता है। उससे अधिक पुण्य बावड़ीमें और उससे भी अधिक पुण्य पोखरेमें स्नान करनेसे होता है। उससे दसगुना झरनोंमें और उससे भी अधिक पुण्य कार्तिकमें नदीस्नान करनेसे होता है। उससे भी दसगुना तीर्थस्थानमें बताया गया है। तीर्थसे दसगुना पुण्य वहाँ होता है, जहाँ दो नदियोंका सङ्गम हो और यदि कहीं तीन नदियोंका सङ्गम हो, तब तो पुण्यकी कोई सीमा ही नहीं है। सिन्धु, कृष्णा, वेणी, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, विपाशा (व्यास), नर्मदा, तमसा, मही, कावेरी, सरयू, क्षिप्रा, चर्मण्वती (चम्बल), वितस्ता (झेलम), वेदिका, शोणभद्र, वेत्रवती (बेतवा), अपराजिता, गण्डकी, गोमती, पूर्णा, ब्रह्मपुत्रा, मानसरोवर, वाग्मती[1], शतद्रु (शतलज)—ये तीर्थ कार्तिकमें दुर्लभ हैं। सब स्थलोंसे अधिक आर्यावर्त (विन्ध्याचल और हिमालयके भीतरका प्रदेश—उत्तर भारत) पुण्यदायक है, उससे भी कोल्हापुरी श्रेष्ठ है, कोल्हापुरीसे श्रेष्ठ विष्णुकाञ्ची और शिवकाञ्ची हैं। उससे श्रेष्ठ है अनन्तसेनका निवासस्थान वराहक्षेत्र, वराहक्षेत्रसे चक्रक्षेत्र और चक्रक्षेत्रसे अधिक पुण्यमय मुक्तिक्षेत्र है। उससे श्रेष्ठ अवन्तीपुरी और अवन्तीपुरीसे श्रेष्ठ बदरिकाश्रम है। बदरिकाश्रमसे अयोध्या, अयोध्यासे गङ्गाद्वार, गङ्गाद्वारसे कनखल और कनखलसे भी श्रेष्ठ मथुरा है; क्योंकि कार्तिकमें वहाँ स्वयं भगवान् राधाकृष्ण स्नान करते हैं। मथुरासे भी श्रेष्ठ द्वारका है। जिन्होंने भगवान् गोविन्दमें अपने चित्तको लगा रक्खा है, उनके लिये द्वारका सूर्यके समान पुण्यका प्रकाश करनेवाली है। द्वारकासे भी श्रेष्ठ भागीरथी हैं। वह भी जहाँ विन्ध्यपर्वतसे मिलती हैं, वहाँ अधिक श्रेष्ठ हैं। उससे दसगुना पुण्य तीर्थराज प्रयागमें होता है। उससे श्रेष्ठ काशी है, जिसके आश्रयसे गङ्गाजी भी मनुष्योंके सब पापोंका नाश करती हैं। काशीमें पञ्चनद (पञ्चगङ्गा) तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। कार्तिक मास आनेपर रौरव नरकमें पड़े हुए पितर भी चिल्लाते हैं कि क्या हमारे वंशमें कोई ऐसा भाग्यवान् पैदा होगा, जो पञ्चगङ्गामें जाकर हमारे लिये नरकसे उद्धार करनेवाला तर्पण करेगा। लाखों पाप करके भी मनुष्य यदि पञ्चगङ्गामें नहाकर बिन्दुमाधवजीकी पूजा करे तो उसके सभी पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

कुछ रात बाकी रहे तभी स्नान किया जाय तो वह

१. नेपालकी एक पुण्यमयी नदी जो सरस्वतीका स्वरूप समझी जाती है और जिसका महत्त्व गङ्गाके समान है।

उत्तम और भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाला है। सूर्योदयकालमें किया हुआ स्नान मध्यम श्रेणीका है, जबतक कृत्तिका अस्त न हो, तभीतक स्नानका उत्तम समय है, अन्यथा बहुत विलम्ब करके किया हुआ स्नान कार्तिकस्नानकी श्रेणीमें नहीं आता। स्त्रियोंको पतिकी आज्ञा लेकर कार्तिकस्नान करना चाहिये; क्योंकि पतिसे बिना पूछे जो धर्मकार्य किया जाता है, वह पतिकी आयुको क्षीण कर देता है। स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा छोड़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है*। जो पतिकी आज्ञाका पालन करे, वही इस संसारमें धर्मवती है; केवल व्रत आदिसे धर्मवती नहीं होती। पति यदि दरिद्र, पतित, मूर्ख अथवा दीन भी हो, तो वह वैसा होता हुआ भी स्त्रीका आश्रय है। उसके त्यागसे स्त्री नरकमें गिरती है। जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर, वाणी और मन—ये काबूमें रहें तथा जिसमें विद्या, तप एवं कीर्ति हो, वही मनुष्य तीर्थके फलका भागी होता है। जिसकी तीर्थोंमें श्रद्धा न हो, जो तीर्थमें भी पापकी ही बात सोचता हो, नास्तिक हो, जिसका मन दुविधामें पड़ा हो तथा जो कोरा तर्कवादी हो—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थफलके भागी नहीं होते†। जो ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर तीर्थमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है।

स्नानका तत्त्व जाननेवाले मनीषी पुरुषोंने चार प्रकारके स्नान बतलाये हैं—वायव्य, वारुण, ब्राह्म और दिव्य। गोधूलिसे किया हुआ स्नान वायव्य कहलाता है। समुद्र आदिके जलमें जो स्नान किया जाता है, उसे वारुण कहते हैं। वेद-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक जो स्नान होता है, उसका नाम ब्राह्म है तथा मेघों अथवा सूर्यकी किरणोंद्वारा जो जल अपने शरीरपर गिरता है, उसे दिव्य स्नान कहा गया है। इन सभी स्नानोंमें वारुण स्नान सबसे उत्तम है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करना चाहिये। स्त्री और शूद्रके लिये बिना मन्त्रके ही स्नानका विधान है। प्राचीन समयमें श्रेष्ठ तीर्थ पुष्करमें जहाँ नन्दा-सङ्गम है, वहीं नन्दाके कहनेसे राजा प्रभञ्जन कार्तिक मासमें पुष्कर-स्नान करके व्याघ्रयोनिसे मुक्त हुए थे और नन्दा भी कार्तिकमें पुष्करका स्पर्श पाकर परम धामको प्राप्त हुई थी।

कार्तिकव्रत करनेवाले मनुष्यके लिये पालनीय नियम

ब्रह्माजी कहते हैं—व्रत करनेवाले पुरुषको उचित है कि वह सदा एक पहर रात बाकी रहते ही सोकर उठ जाय। फिर नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति करके दिनके कार्यका विचार करे। गाँवसे नैर्ऋत्य कोणमें जाकर विधिपूर्वक मल-मूत्रका त्याग करे। यज्ञोपवीतको दाहिने कानपर रखकर उत्तराभिमुख होकर बैठे। पृथ्वीपर तिनका बिछा दे और अपने मस्तकको वस्त्रसे भलीभाँति ढक ले, मुखपर भी वस्त्र लपेट ले, अकेला रहे तथा साथ जलसे भरा हुआ पात्र रक्खे। इस प्रकार दिनमें मल-मूत्रका त्याग करे। यदि रातमें करना हो, तो दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके बैठे। मलत्यागके पश्चात् गुदामें पाँच या सात बार मिट्टी लगाकर धोवे, बायें हाथमें दस बार मिट्टी लगावे, फिर दोनों हाथोंमें सात बार और दोनों पैरोंमें तीन बार मिट्टी लगानी चाहिये। यह गृहस्थके लिये शौचका नियम बताया गया है। ब्रह्मचारीके लिये इससे दूना, वानप्रस्थके लिये तीन गुना और संन्यासीके लिये चौगुना शौच कहा गया है। यह दिनमें शौचका नियम है। रातमें इससे आधा ही पालन करे। यात्रामें गये हुए मनुष्यके लिये उससे भी आधे शौचका विधान है तथा स्त्रियों और शूद्रोंके लिये उससे भी आधा शौच बताया गया है। शौचकर्मसे हीन पुरुषकी समस्त क्रियाएँ निष्फल होती हैं।

तदनन्तर दाँत और जिह्वाकी शुद्धिके लिये वृक्षके पास जाकर यह मन्त्र पढ़े—

---

* अपृष्ट्वा यत्कृतं धर्म्यं भर्तारं तत्क्षयं नयेत्। स्त्रीणां नास्त्यपरो धर्मो भर्तारं प्रोज्झ्य कश्चन॥

† दरिद्रः पतितो मूर्खो दीनोऽपि यदि चेत्पतिः। तादृशः शरणं स्त्रीणां तत्त्यागान्निरयं भजेत्॥
यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनश्च सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलभाङ्नरः॥
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकश्छिन्नमानसः। हेतुवादी च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥
(स्क० पु० वै० का० मा० ४। ७२। ७४, ७६, ७७)

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।
मह्य प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥

'हे वनस्पते ! आप मुझे आयु, बल, यश, तेज, सन्तति, पशु, धन, वैदिक ज्ञान, प्रज्ञा और धारणाशक्ति प्रदान करें ।'

ऐसा कहकर वृक्षसे बारह अंगुलकी दाँतन ले, दूधवाले वृक्षोंसे दाँतन नहीं लेनी चाहिये । इसी प्रकार कपास, काँटेदार वृक्ष तथा जले हुए पेड़से भी दाँतन लेना मना है । जिससे उत्तम गन्ध आती हो और जिसकी टहनी कोमल हो, ऐसे ही वृक्षसे दन्तधावन ग्रहण करना चाहिये । उपवासके दिन, नवमी और षष्ठी तिथिको, श्राद्धके दिन, रविवारको, ग्रहणमें, प्रतिपदाको तथा अमावास्याको भी काष्ठसे दाँतन नहीं करनी चाहिये* । जिस दिन दाँतनका विधान नहीं है, उस दिन बारह कुल्ले कर लेने चाहिये । विधिपूर्वक दाँतोंको शुद्ध करके मुँहको जलसे धो डाले और भगवान् विष्णुके नामोंका उच्चारण करते हुए दो घड़ी रात रहते ही स्नानके लिये जलाशयपर जाय । कार्तिकके व्रतका पालन करनेवाला पुरुष विधिसे स्नान करे । फिर धोती निचोड़कर अपनी रुचिके अनुसार तिलक करे । तत्पश्चात् अपनी शाखाके अनुकूल आह्निकसूत्रकी बतायी हुई पद्धतिसे सन्ध्योपासन करे । जबतक सूर्योदय न हो जाय, तबतक गायत्रीमन्त्रका जप करता रहे । यह रात्रिके अन्तका कृत्य बताया गया है । अब दिनका कार्य बताया जाता है । सन्ध्योपासनाके अन्तमें विष्णुसहस्रनाम आदिका पाठ करे, फिर देवालयमें आकर पूजन प्रारम्भ करे । भगवत्सम्बन्धी पदोंके गान, कीर्तन और नृत्य आदि कार्योंमें दिनका प्रथम प्रहर व्यतीत करे । तत्पश्चात् आधे पहरतक भलीभाँति पुराण-कथाका श्रवण करे । उसके बाद पुराण बाँचनेवाले विद्वान्‌की और तुलसीकी पूजा करके मध्याह्नका कर्म करनेके पश्चात् दालके सिवा शेष अन्नका भोजन करे । बलिवैश्वदेव करके अतिथियोंको भोजन कराकर जो मनुष्य स्वयं भोजन करता है, उसका वह भोजन केवल अमृत है । मुखशुद्धिके लिये तीर्थ-जल (भगवच्चरणामृत) से तुलसी-भक्षण करे । फिर शेष दिन सांसारिक व्यवहारमें व्यतीत करे । सायंकालमें पुनः भगवान् विष्णुके मन्दिरमें जाय और सन्ध्या करके शक्तिके अनुसार दीपदान करे । भगवान् विष्णुको प्रणाम करके उनकी आरती उतारे और स्तोत्रपाठ आदि करते हुए प्रथम प्रहरमें जागरण करे । प्रथम प्रहर बीत जानेपर शयन करे । ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे । इस प्रकार एक मासतक प्रतिदिन शास्त्रोक्त विधिका पालन करे । जो कार्तिक मासमें उत्तम व्रतका पालन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके सालोक्यको प्राप्त होता है ।

कार्तिक मास आनेपर निषिद्ध वस्तुओंका त्याग करना चाहिये । तेल लगाना, परान्न भोजन करना, तेल खाना, जिसमें बहुतसे बीज हों ऐसे फलोंका सेवन तथा चावल और दाल—ये सभी कार्तिक मासमें त्याज्य हैं । लौकी, गाजर, बैंगन, वनभंटा (ऊंटकटारा), बासी अन्न, भँसीड़, मसूर, दुबारा भोजन, मदिरा, पराया अन्न, काँसीके पात्रमें भोजन, छत्राक, काँजी, दुर्गन्धित पदार्थ, समुदाय (संस्था आदि) का अन्न, वेश्याका अन्न, ग्रामपुरोहित और शूद्रका अन्न और सूतकका अन्न—ये सभी त्याग देने योग्य हैं । श्राद्धका अन्न, रजस्वलाका दिया हुआ अन्न, जननाशौचका अन्न और लसोड़ेका फल—इन्हें कार्तिकव्रतका पालन करनेवाला पुरुष अवश्य त्याग दे । निषिद्ध पत्तलोंमें भोजन न करे । महुआ, केला, जामुन और पकड़ी—इनके पत्तोंमें भोजन करना चाहिये । कमलके पत्तेपर कदापि भोजन न करे । कार्तिक मास आनेपर जो वनवासी मुनियोंके अनुसार नियमित भोजन करता है, वह चक्रपाणि भगवान् विष्णुके परम धाममें जाता है । कार्तिकमें प्रातःकाल स्नान और भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये । उस समय कथाश्रवण उत्तम माना गया है । कार्तिकमें केला और आँवलेके फलका दान करे और शीतसे कष्ट पानेवाले ब्राह्मणको कपड़ा दे । जो कार्तिकमें भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुको तुलसीदल समर्पित करता है, वह संसारसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है । श्रीहरिके परम प्रिय कार्तिक मासमें जो नित्य गीतापाठ करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता । जो श्रीमद्भागवतका भी श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परम शान्तिको प्राप्त होता है* । जो कार्तिककी एकादशीको निराहार रहकर व्रत

---

* उपवासे नवम्यां च षष्ठ्यां श्राद्धदिने रवौ ।
ग्रहणे प्रतिपद्दर्शे न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥
(स्क० पु० वै० का० मा० ५ । १५)

* गीतापाठं तु यः कुर्यात् कार्तिके विष्णुवल्लभे ।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं नालं वर्षशतैरपि ॥
श्रीमद्भागवतस्यापि श्रवणं यः समाचरेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति ॥
(स्क० पु० वै० का० मा० ६ । १९-२०)

करता है, वह निःसन्देह पूर्वजन्मके पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो कार्तिकमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये दूसरेके अन्नका त्याग करता है, वह भगवान् विष्णुके प्रेमको भलीभाँति प्राप्त करता है। जो राह चलकर थके माँदे और भोजनके समयपर घरपर आये हुए अतिथिका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, वह सहस्रों जन्मोंके पापका नाश कर डालता है। जो मूढ़ मानव वैष्णव महात्माओंकी निन्दा करते हैं, वे अपने पितरोंके साथ महारौरव नरकमें गिरते हैं। जो भगवान्‌की और भगवद्भक्तोंकी निन्दा सुनते हुए भी वहाँसे दूर नहीं हट जाता, वह भगवान्‌का प्रिय भक्त नहीं है। जो कार्तिक मासमें भगवान् विष्णुकी परिक्रमा करता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो कार्तिक मासमें परायी स्त्रीके साथ सङ्गम करता है, उसके पापकी शान्ति कैसे होगी यह बताना असम्भव है। जिसके ललाटमें तुलसीकी मृत्तिकाका तिलक दिखायी देता है, उसकी ओर देखनेमें यमराज भी समर्थ नहीं है; फिर उनके भयानक दूतोंकी तो बात ही क्या ? कार्तिकमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। मासव्रतकी समाप्ति होनेपर उस व्रतकी पूर्णताके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। जो कार्तिकमें भगवान् विष्णुके मन्दिरमें चूना आदिका दे कराता है या तसवीर आदि लिखता है, वह भगवान् विष्णु समीप आनन्दका अनुभव करता है। जो ब्राह्मण कार्ति मासमें गभस्तीश्वरके समीप शतरुद्रीका जप करता है, उसे मन्त्रकी सिद्धि होती है। जिन्होंने तीन वर्षोंतक काशी रहकर भक्तिपूर्वक साङ्गोपाङ्ग कार्तिकव्रतका अनुष्ठान किय है, उन्हें सम्पत्ति, सन्तति, यश तथा धर्मबुद्धिकी प्राप्तिके द्वार इस लोकमें ही उस व्रतका प्रत्यक्ष फल दिखायी देता है कार्तिकमें प्याज, शृंग (सिंघाड़ा), सेज, बेर, राई, नशीलं वस्तु, चिउड़ा—इन सबका उपयोग न करे। कार्तिकका व्रत करनेवाला मनुष्य देवता, वेद, ब्राह्मण, गुरु, गौ, व्रती, स्त्री, राजा और महात्माओंकी निन्दा न करे। कार्तिकमें केवल नरकचतुर्दशी (दिवालीके एक रोज पहले) को शरीरमें तेल लगाना चाहिये। उसके सिवा और किसी दिन व्रती मनुष्य तेल न लगावे। नालिका, मूली, कुम्हड़ा, कैथ इनका भी त्याग करे। रजस्वला, चाण्डाल, म्लेच्छ, पतित, व्रतहीन, ब्राह्मणद्वेषी और वेद-बहिष्कृत लोगोंसे व्रती मनुष्य बातचीत न करे।

कार्तिकव्रतसे एक पतित ब्राह्मणीका उद्धार तथा दीपदान एवं आकाशदीपकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—स्त्रियों और पुरुषोंने जन्मसे लेकर जो पाप किया है, वह सब कार्तिकमें दीपदानसे नष्ट हो जाता है। इस विषयमें मैं तुमसे एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालमें द्रविड़देशमें एक बुद्ध नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री बड़ी दुष्टा और दुराचारपरायणा थी। उसके संसर्गदोषसे पतिकी आयु क्षीण हो गयी और वह मृत्युको प्राप्त हुआ। पतिके मर जानेपर भी वह विशेषरूपसे व्यभिचारमें लग गयी। उसको लोकनिन्दासे तनिक भी लज्जा नहीं होती थी। उसके न तो कोई पुत्र था और न भाई ही। वह सदा भिक्षाके अन्नका भोजन करती थी। अपने हाथसे बनाये हुए शुद्ध और स्वल्प अन्नको कभी न खाकर माँगकर लाये हुए बासी अन्नको ही खाती थी। दूसरेके घर रसोई बनाया करती और तीर्थयात्रा आदिसे दूर रहती थी। उसने कभी कथा भी नहीं सुनी थी। एक दिन तीर्थयात्रामें लगा हुआ कोई विद्वान् ब्राह्मण उसके घरपर आया। उसका नाम कुत्स था। उसको व्यभिचारमें आसक्त देखकर उस ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ कुत्सने कहा—'ओ मूढ़ नारी! तू मेरी बातको ध्यान देकर सुन। पृथ्वी आदि पाँच भूतोंसे बने हुए और पीब एवं रक्तसे भरे हुए इस शरीरको, जो केवल दुःखका ही कारण है, तू क्यों पोसती है ? अरी ! यह देह पानीके बुलबुलेके समान है, एक दिन इसका नाश होना निश्चित है। इस अनित्य शरीरको यदि तू नित्य मानती है तो अपने मनमें बैठे हुए इस मोहको विचारपूर्वक त्याग दे। सबसे श्रेष्ठ देवता भगवान् विष्णुका चिन्तन कर और उन्हींकी लीला-कथाको आदरपूर्वक सुन और जब कार्तिक मास आवे, तब भगवान् दामोदरकी प्रीतिके लिये स्नान, दान आदि कर, दीपदान दे, भगवान् विष्णुकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम कर। यह व्रत विधवा और सौभाग्यवती सभी स्त्रियोंके करनेयोग्य है, यह सब पापोंकी शान्ति और समस्त उपद्रवोंका नाश करनेवाला है। कार्तिक मासमें निश्चय ही दीपदान भगवान् विष्णुकी प्रसन्नता बढ़ानेवाला है।'

ऐसा कहकर कुत्स ब्राह्मण दूसरेके घर चला गया और वह ब्राह्मणी भी कुत्सकी बात सुनकर पश्चात्ताप करती हुई इस निश्चयपर पहुँची कि मैं कार्तिक मासमें अवश्य व्रत करूँगी।

श्चात् कार्तिक मास आनेपर उसने पूरे महीनेभर प्रातः दयकालमें स्नान और दीपदान किया । तदनन्तर कुछ लके बाद आयु समाप्त होनेपर उसकी मृत्यु हो गयी । वह र्गलोकमें गयी और समयानुसार उसकी मुक्ति भी हो गयी। ार्तिकके व्रतमें तत्पर हो दीपदान आदि करनेवाला जो इस दीप- नका इतिहास सुनता है, वह मोक्षको प्राप्त होता है ।

नारद ! अब आकाशदीपका माहात्म्य सुनो । कार्तिक मास ानेपर जो प्रातःस्नानमें तत्पर हो आकाशदीपका दान करता है, ह सब लोकोंका स्वामी और सब सम्पत्तियोंसे सम्पन्न होकर स लोकमें सुख भोगता और अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। सलिये कार्तिकमें स्नान-दान आदि कर्म करते हुए भगवान् वेष्णुके मन्दिरके कँगूरेपर एक मासतक अवश्य दीपदान करना चाहिये । महाराज सुनन्दने चन्द्रशर्मा ब्राह्मणके बताये अनुसार एक मासतक विधिपूर्वक व्रत किया । वे कार्तिकमें प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके पवित्र होते और कोमल तुलसीदलोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करके रातमें उनके लिये आकाशदीप देते थे । दीप देनेके समय वे इस मन्त्रका उच्चारण करते थे—

दामोदराय विश्वाय विश्वरूपधराय च ।
नमस्कृत्वा प्रदास्यामि व्योमदीपं हरिप्रियम् ॥

'मैं सर्वस्वरूप एवं विश्वरूपधारी भगवान् दामोदरको नमस्कार करके यह आकाशदीप देता हूँ, जो भगवान्‌को परम प्रिय है ।'

'देवेश्वर ! इस व्रतसे आपमें मेरी भक्ति बढ़े' इस भावसे प्रार्थना करके राजा सुनन्द दीपदान करते थे । ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर वे पुनः आकाशदीप देते थे। उनका प्रातःकाल स्नान और भगवान् विष्णुकी पूजाका क्रम नियमपूर्वक चलता रहा । मासकी समाप्तिपर उन्होंने व्रतका उद्यापन करके आकाशदीपके नियमको भी समाप्त किया और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर इस विष्णुव्रतकी पूर्ति की । इस पुण्यके प्रभावसे राजाने इस लोकमें स्त्री, पुत्र, पौत्र और स्वजनोंके साथ लाख वर्षोंतक पार्थिव भोगोंका उपभोग किया और अन्तमें स्त्रियोंसहित सुन्दर विमानपर आरूढ़ हो चार भुजाधारी, शङ्ख, चक्र, गदा आदि आयुधोंसे सुशोभित, पीताम्बरधारी विष्णुका-सा दिव्य शरीर पाकर मोक्षका आश्रय लिया । वे विष्णुलोकमें भगवान् विष्णुके ही समान सुखपूर्वक रहने लगे । अतः कार्तिक मासमें दुर्लभ मनुष्य-जन्मको पाकर भगवान् विष्णुको प्रिय लगनेवाले आकाशदीपका विधिपूर्वक दान देना चाहिये । जो संसारमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये आकाशदीप देते हैं, वे कभी अत्यन्त क्रूर मुखवाले यमराजका दर्शन नहीं करते ।

एकादशीसे, तुलाराशिके सूर्यसे अथवा पूर्णिमासे लक्ष्मी- सहित भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये आकाशदीप प्रारम्भ करना चाहिये ।

नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे ।
नमो यमाय रुद्राय कान्तारपतये नमः ॥

'पितरोंको नमस्कार है, प्रेतोंको नमस्कार है, धर्मस्वरूप विष्णुको नमस्कार है, यमराजको नमस्कार है तथा दुर्गम पथमें रक्षा करनेवाले भगवान् रुद्रको नमस्कार है ।'

—इस मन्त्रसे जो मनुष्य पितरोंके लिये आकाशमें दीपदान करते हैं, उनके वे पितर नरकमें हों तो भी उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं । जो देवालयमें, नदीके किनारे, सड़कपर तथा नींद लेनेके स्थानमें दीप देता है, उसे सर्वतोमुखी लक्ष्मी प्राप्त होती हैं । जो ब्राह्मण या अन्य जातिके मन्दिरमें दीपक जलाता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । जो कीट और काँटोंसे भरी हुई दुर्गम एवं ऊँची-नीची भूमिपर दीप दान करता है, वह नरकमें नहीं पड़ता है । पूर्वकालमें राजा धर्मनन्दनने आकाशदीप-दानके प्रभावसे श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो विष्णुलोकको प्रस्थान किया । जो कार्तिक मासमें हरिबोधिनी एकादशीको भगवान् विष्णुके आगे कपूरका दीपक जलाता है, उसके कुलमें उत्पन्न हुए सभी मनुष्य भगवान् विष्णुके प्रिय भक्त होते और अन्तमें मोक्ष प्राप्त करते हैं । पूर्वकालमें कोई गोप अमावास्या तिथिको भगवान् विष्णुके मन्दिरमें दीपक जलाकर तथा बार-बार जय-जयका उच्चारण करके राजराजेश्वर हो गया था ।

कार्तिकमें तुलसी वृक्षके आरोपण और पूजन आदिकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—कार्तिक मासमें जो विष्णुभक्त पुरुष प्रातःकाल स्नान करके पवित्र हो कोमल तुलसीदलसे भगवान् दामोदरकी पूजा करता है, वह निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है । जो भक्तिसे रहित है, वह यदि सुवर्ण आदिसे भगवान्‌की पूजा करे, तो भी वे उसकी पूजा ग्रहण नहीं करते । सभी वर्णके लिये भक्ति ही सबसे उत्कृष्ट मानी गयी है । भक्तिहीन कर्म भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला नहीं होता । यदि तुलसीके आधे पत्तेसे भी प्रतिदिन भक्ति-

पूर्वक भगवान‌्की पूजा की जाय, तो भी वे स्वयं आकर दर्शन देते हैं। पूर्वकालमें भक्त विष्णुदास भक्तिपूर्वक तुलसी-पूजनसे शीघ्र ही विष्णुधामको चला गया और राजा चोल उसकी तुलनामें गौण हो गये। अब तुलसीका माहात्म्य सुनो—वह पापका नाश और पुण्यकी वृद्धि करनेवाली है। अपनी लगायी हुई तुलसी जितना ही अपने मूलका विस्तार करती है, उतने ही सहस्र युगोंतक मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यदि कोई तुलसीसंयुक्त जलमें स्नान करता है, तो वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें आनन्दका अनुभव करता है। महामुने! जो लगानेके लिये तुलसीका संग्रह करता और लगाकर तुलसीका वन तैयार कर देता है, वह उतनेसे ही पापमुक्त हो ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। जिसके घरमें तुलसीका बगीचा विद्यमान है, उसका वह घर तीर्थके समान है, वहाँ यमराजके दूत नहीं जाते। तुलसी-वन सब पापोंको नष्ट करनेवाला, पुण्यमय तथा अभीष्ट कामनाओंको देनेवाला है। जो श्रेष्ठ मानव तुलसीका बगीचा लगाते हैं, वे यमराजको नहीं देखते। जो मनुष्य तुलसी-काष्ठसंयुक्त गन्ध धारण करता है, क्रियमाण पाप उसके शरीरका स्पर्श नहीं करता। जहाँ तुलसीवनकी छाया होती है, वहीं पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्ध करना चाहिये। जिसके मुखमें, कानमें और मस्तकपर तुलसीका पत्ता दिखायी देता है, उसके ऊपर यमराज भी दृष्टि नहीं डाल सकते; फिर दूतोंकी तो बात ही क्या है। जो प्रतिदिन आदरपूर्वक तुलसीकी महिमा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो ब्रह्म-लोकको जाता है।

पूर्वकालकी बात है, काश्मीर देशमें हरिमेधा और सुमेधा नामक दो ब्राह्मण थे, जो भगवान् विष्णुकी भक्तिमें संलग्न रहते थे। उनके हृदयमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दया थी। वे सब तत्त्वोंका यथार्थ मर्म समझनेवाले थे। किसी समय वे दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मण तीर्थयात्राके लिये चले। जाते-जाते किसी दुर्गम वनमें वे परिश्रमसे व्याकुल हो गये; वहाँ उन्होंने एक स्थानपर तुलसीका वन देखा। उनमेंसे सुमेधाने वह तुलसीका महान् वन देखकर उसकी परिक्रमा की और भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। यह देख हरिमेधाने तुलसीका माहात्म्य और फल जाननेके लिये बड़ी प्रसन्नताके साथ बार-बार पूछा—'ब्रह्मन्! अन्य देवताओं, तीर्थों, व्रतों और मुख्य-मुख्य ब्राह्मणोंके रहते हुए तुमने तुलसीवनको क्यों प्रणाम किया है?'

सुमेधा बोला—महाभाग! सुनो। यहाँ धूप सता रही है, इसलिये हमलोग उस बरगदके समीप चलें। उसकी छाया-में बैठकर मैं यथार्थरूपसे सब बात बताऊँगा।

वहाँ विश्राम करके सुमेधाने हरिमेधासे कहा—विप्रवर! पूर्वकालमें दुर्वासाके शापसे जब इन्द्रका ऐश्वर्य छिन गया था, उस समय ब्रह्मा आदि देवताओं और असुरोंने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया। उससे ऐरावत हाथी, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, कौस्तुभमणि तथा धन्वन्तरि-रूप भगवान् श्रीहरि और दिव्य ओषधियाँ प्रकट हुईं। तदनन्तर अजरता और अमरता प्रदान करनेवाले उस अमृतकलशको दोनों हाथोंमें लिये हुए श्रीविष्णु बड़े हर्षको प्राप्त हुए। उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी कुछ बूँदें उस अमृतके ऊपर गिरीं। उनसे तत्काल ही मण्डलाकार तुलसी उत्पन्न हुई। इस प्रकार वहाँ प्रकट हुई लक्ष्मी तथा तुलसीको ब्रह्मा आदि देवताओंने श्रीहरिकी सेवामें समर्पित किया और भगवान‌्ने उन्हें ग्रहण कर लिया। तबसे तुलसीजी जगदीश्वर श्रीविष्णुकी अत्यन्त प्रिय करनेवाली हो गयीं। सम्पूर्ण देवता भगवत्प्रिया तुलसीकी श्रीविष्णुके समान ही पूजा करते हैं। भगवान् नारायण संसारके रक्षक हैं और तुलसी उनकी प्रियतमा हैं; इसलिये मैंने उन्हें प्रणाम किया है।

सुमेधा इस प्रकार कह ही रहे थे कि सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी एक विशाल विमान उनके निकट ही दिखायी दिया। उन दोनोंके आगे ही वह बरगदका वृक्ष गिर पड़ा और उससे दो दिव्य पुरुष निकले, जो अपने तेजसे सूर्यके समान सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। उन दोनोंने हरिमेधा और सुमेधाको प्रणाम किया। उन्हें देखकर वे दोनों ब्राह्मण भयसे विह्वल हो गये और आश्चर्यचकित होकर बोले—'आप दोनों कौन हैं? देवताओंके समान आपका सर्वमङ्गलमय स्वरूप है। आप नूतन मन्दारकी माला धारण किये कोई देवता प्रतीत हो रहे हैं।' उन दोनोंके इस प्रकार पूछनेपर वृक्षसे निकले हुए पुरुष बोले—'विप्रवरो! आप दोनों ही हमारे माता-पिता और गुरु हैं, बन्धु आदि भी आप ही दोनों हैं।'

इतना कहकर उनमेंसे जो ज्येष्ठ था, वह बोला—'मेरा नाम आस्तीक है, मैं देवलोकका निवासी हूँ। एक दिन मैं नन्दनवनमें एक पर्वतपर क्रीडा करनेके लिये गया। वहाँ देवाङ्गनाओंने मेरे साथ इच्छानुसार विहार किया। उस समय युवतियोंके मोती और बेलाके हार तपस्या करते हुए लोमश मुनिके ऊपर गिर पड़े। यह सब देखकर मुनिको

भक्त विष्णुदासके द्वारा चाण्डालकी सेवा

चाण्डालके स्थानपर विष्णुदासको भगवान्‌का दर्शन

[पृष्ठ ३३२

त्रयोदशीसे लेकर दीपावलीतकके उत्सवकृत्यका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीको प्रातःकाल दन्तधावन करके स्नान करे और त्रिरात्रिव्रतका नियम लेकर भगवान् गोविन्दके भजनमें तत्पर रहे तथा इस व्रतके अन्तमें गोवर्द्धनोत्सव मनावे । त्रयोदशी तीन मुहूर्तसे अधिक हो, तो वह इस व्रतमें ग्राह्य है; परतिथिसे वेध होना दोषकी बात नहीं है । कार्तिकके कृष्ण पक्षमें त्रयोदशीके प्रदोषकालमें यमराजके लिये दीप और नैवेद्य समर्पित करे, तो अपमृत्यु (अकालमृत्यु या दुर्मरण) का नाश होता है ।

एक दिन यमदूतोंने यमराजसे कहा—प्रभो ! ऐसे महोत्सवके अवसरपर जिस प्रकार जीव अपने जीवनसे वियुक्त न हो, वह उपाय हमारे आगे वर्णन कीजिये ।

यमराजने कहा—कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीको प्रतिवर्ष प्रदोषकालमें जो अपने घरके दरवाजेपर निम्नाङ्कित मन्त्रसे उत्तम दीप देता है, वह अपमृत्युको प्राप्त होनेपर भी यहाँ ले आने योग्य नहीं है । वह मन्त्र इस प्रकार है—

मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन च मया सह ।
त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्यजः प्रीयतामिति ॥

'त्रयोदशीको दीपदान करनेसे मृत्यु, पाश, दण्ड, काल और लक्ष्मीके साथ सूर्यनन्दन यम प्रसन्न हों ।'

इस मन्त्रसे जो अपने द्वारपर उत्सवमें दीपदान करता है, उसे अपमृत्युका भय नहीं होता । दीपावलीके पहलेकी चतुर्दशीको तेलमात्रमें लक्ष्मी और जलमात्रमें गङ्गा निवास करती हैं । जो उस दिन प्रातःकाल स्नान करता है, वह यमलोक नहीं देखता । नरकभयका नाश करनेके लिये स्नानके बीचमें अपामार्ग (चिचिड़ा) को मस्तकपर घुमावे । तीन बार मन्त्र पढ़कर तीन ही बार घुमाना चाहिये । मन्त्र इस प्रकार है—

सीतालोष्ठसमायुक्त सकण्टकदलान्वित ।
हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ॥

'जोते हुए खेतके ढेलेसे युक्त और कण्टकविशिष्ट पत्तोंसे सुशोभित अपामार्ग ! तुम बार-बार घुमाये जानेपर मेरे पापोंको हर लो ।'

ऐसा कहकर अपने सिरपर अपामार्ग घुमावे । स्नान करके भीगे वस्त्रसे मृत्युके पुत्ररूप दो कुत्तोंको दीपदान दे । उस समय यह मन्त्र पढ़े—

शुनकौ श्यामशबलौ भ्रातरौ यमसेवकौ ।
तुष्टौ स्यातां चतुर्दश्यां दीपदानेन मृत्युजौ ॥

'काले और चितकबरे रंगके दो श्वान जो मृत्युके पुत्र, यमराजके सेवक तथा परस्पर भाई हैं, चतुर्दशीको दीपदान करनेसे मुझपर प्रसन्न हों ।'

फिर स्नानाङ्गतर्पण करनेके पश्चात् चौदह यमोंका तर्पण करे, जिनके नाम-मन्त्र इस प्रकार हैं—

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥

औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः ॥

ये चौदह नाम-मन्त्र हैं । इनमेंसे प्रत्येकके अन्तमें नमः पद जोड़कर बोले और एक-एक मन्त्रको तीन-तीन बार कहकर तिलमिश्रित जलकी तीन-तीन अञ्जलियाँ दे । यमराजका तर्पण यज्ञोपवीती होकर अर्थात् यज्ञोपवीतको बायें कन्धेपर रखकर अथवा प्राचीनावीती होकर (जनेऊको दाहिने कन्धेपर करके) भी किया जा सकता है । क्योंकि यमराज देवता और पितर दोनों ही पदोंपर स्थित हैं । अतः उनमें उभयरूपता है । जिसके पिता जीवित हों, वह भी यम और भीष्मके लिये तर्पण कर सकता है । कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको यदि अमावास्या भी हो और उसमें स्वाती नक्षत्रका योग हो, तो उसी दिन दीपावली होती है । उस दिनसे आरम्भ करके तीन दिनोंतक दीपोत्सव करना चाहिये । क्योंकि एक समय राजा बलिने भगवान्से यह वर माँगा था कि 'मैंने छलसे वामनरूप धारण करनेवाले आपको भूमिदान दी है और आपने उसे तीन दिनोंमें तीन पगोंद्वारा नाप लिया है, अतः आजसे लेकर तीन दिनोंतक प्रतिवर्ष पृथ्वीपर मेरा राज्य रहे । उस समय जो मनुष्य पृथ्वीपर दीपदान करें, उनके घरमें आपकी पत्नी लक्ष्मी स्थिरभावसे निवास करें ।'

दैत्यराज बलिको भगवान् विष्णुने चतुर्दशीसे लेकर तीन दिनोंतकका राज्य दिया है । इसलिये इन तीन दिनोंमें यहाँ सर्वथा महोत्सव करना चाहिये । चतुर्दशीकी रात्रिमें देवी महारात्रिका प्रादुर्भाव हुआ है, अतः शक्तिपूजापरायण पुरुषोंको चतुर्दशीका उत्सव अवश्य करना चाहिये । भगवान् सूर्यके तुलाराशिमें स्थित होनेपर चतुर्दशी और अमावास्याकी सन्ध्याके समय मनुष्य हाथमें उल्का लेकर पितरोंको मार्ग-प्रदर्शन करावें । कार्तिक मासमें चतुर्दशी आदि तीन तिथियाँ दीपदान आदिके कार्योंमें ग्रहण करने योग्य हैं । यदि ये तीन तिथियाँ सङ्गवकालसे पहले ही समाप्त हो जाती हों, तो दीपदान आदिके कार्योंमें इन्हें पूर्वतिथिसे युक्त ही ग्रहण करना चाहिये* ।

तदनन्तर अमावास्याके प्रातःकाल स्नान करके भक्तिपूर्वक देवताओं और पितरोंकी पूजा और उन्हें प्रणाम करे । फिर दही, दूध तथा घी आदिसे पार्वण श्राद्ध करे । इस दिन बालकों और रोगियोंके सिवा और किसीको दिनमें भोजन नहीं करना चाहिये । प्रदोषके समय कल्याणमयी लक्ष्मीदेवीका पूजन करे । उस दिन लक्ष्मीजीका सुख बढ़ानेके लिये जो उनके लिये कमलके फूलोंकी शय्या बनाता है, उसके घरको छोड़कर भगवती लक्ष्मी कहीं नहीं जातीं । जावित्री, लवङ्ग, इलायची और कपूरके साथ गायके दूधको अच्छी तरह पकाकर उसमें आवश्यकताके अनुसार शक्कर देकर लड्डू बना ले तथा उन्हें महालक्ष्मीजीको अर्पण करे । पूजाके पश्चात् लक्ष्मीजीकी स्तुति इस प्रकार करनी चाहिये—'दीपककी ज्योतिमें विराजमान महालक्ष्मी ! तुम ज्योतिर्मयी हो । सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, सुवर्ण और तारा आदि सभी ज्योतियोंकी ज्योति हो; तुम्हें नमस्कार है । कार्तिककी दीपावलीके पवित्र दिनको इस भूतलपर और गौओंके गोष्ठमें जो लक्ष्मी शोभा पाती हैं, वे सदा मेरे लिये वरदायिनी हों ।'

इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् प्रदोषकालमें दीपदान करे । अपनी शक्तिके अनुसार देवमन्दिर आदिमें दीपकोंका वृक्ष बनावे । चौराहेपर, श्मशान-भूमिमें, नदीके किनारे, पर्वतपर, घरोंमें, वृक्षोंकी जड़ोंमें, गोशालाओंमें, चबूतरोंपर तथा प्रत्येक गृहमें दीपक जलाकर रखने चाहिये । पहले ब्राह्मणों और भूखे मनुष्योंको भोजन कराकर पीछे स्वयं नूतन वस्त्र और आभूषणसे विभूषित होकर भोजन करना चाहिये । जीवहिंसा, मदिरापान, अगम्यागमन, चोरी और विश्वासघात—ये पाँच नरकके द्वार कहे गये हैं । इनका सदैव त्याग करना चाहिये । तदनन्तर आधी रातके समय नगरकी शोभा देखनेके लिये धीरे-धीरे पैदल चले और उस समयका आनन्दोत्सव देखकर अपने घर लौट आवे ।

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा और यमद्वितीयाके कृत्य तथा बहिनके घरमें भोजनका महत्त्व

ब्रह्माजी कहते हैं—तत्पश्चात् प्रतिपद्को आरती करके स्वयं सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित हो कथा, गायन, कीर्तन और दान आदिके द्वारा दिनको व्यतीत करे । इस दिन स्त्री और पुरुष सभीको तिलका तेल लगाकर स्नान करना चाहिये । इस प्रतिपदाको जो लोग तैल, स्नान आदि पूर्वक पूजन करेंगे, उनका वह सब कुछ अक्षय होगा । संसारमें प्रतिपद् तिथि प्रसिद्ध है, उसे पूर्वविद्धा होनेपर नहीं ग्रहण करना चाहिये । अमावास्याविद्ध प्रतिपदामें तैलाभ्यङ्ग नहीं करना चाहिये,

* यदि त्रयोदशी तीन मुहूर्तसे कम हो तो द्वादशी ले लेनी चाहिये ।

अन्यथा मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है। यदि दूसरे दिन एक घड़ी भी अविद्धा (अमावास्याके वेधसे रहित) प्रतिपदा हो, तो उत्सव आदि कार्योंमें मनीषी पुरुषोंको उसे ही ग्रहण करना चाहिये। दूसरे दिन यदि थोड़ी भी प्रतिपदा न हो, तो पूर्वविद्धा तिथि ही ग्रहण करनी चाहिये, उस दशामें वह दोषकारक नहीं होती है। जो मनुष्य उस तिथिमें या उस शुभ दिनमें जिस रूपसे स्थित होता है, उसी स्थितिमें वह एक वर्षतक रहता है। इसलिये यदि सुन्दर, दिव्य एवं उत्तम भोगोंको भोगनेकी इच्छा हो, तो उस दिन मङ्गलमय उत्सव अवश्य करे। प्रातःकाल गोवर्द्धनकी पूजा करे। उस समय गौओंको विभूषित करना चाहिये और उनसे बोझ ढोने या दूहनेका काम नहीं लेना चाहिये। गोवर्द्धनपूजनके समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

गोवर्द्धनधराधार गोकुलत्राणकारक।
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव॥
या लक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता।
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु॥
अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

'पृथ्वीको धारण करनेवाले गोवर्द्धन! आप गोकुलकी रक्षा करनेवाले हैं। भगवान् विष्णुने अपनी भुजाओंसे आपको ऊँचे उठाया था। आप मुझे कोटि गोदान देनेवाले हों। लोकपालोंकी जो लक्ष्मी यहाँ धेनुरूपसे विराज रही है और यज्ञके लिये घृतका भार वहन करती है, वह मेरे पापोंको दूर करे। गायें मेरे आगे हों, गायें मेरे पीछे हों, गायें मेरे हृदयमें हों और मैं सदा गौओंके मध्यमें निवास करूँ।'

इस प्रकार गोवर्द्धन-पूजा करके उत्तमभावसे देवताओं, सत्पुरुषों तथा साधारण मनुष्योंको सन्तुष्ट करे। अन्य लोगोंको अन्न-पान देकर और विद्वानोंको सङ्कल्पपूर्वक वस्त्र, ताम्बूल आदिके द्वारा प्रसन्न करे। कार्तिक शुक्लपक्षकी यह प्रतिपदा तिथि वैष्णवी कही गयी है। जो लोग सब प्रकारसे सब मनुष्योंको आनन्द देनेवाले दीपोत्सव तथा शुभके हेतुभूत बलिराजका पूजन करते हैं, वे दान, उपभोग, सुख और बुद्धिसे सम्पन्न कुलोंका हर्ष प्राप्त करते हैं और उनका सम्पूर्ण वर्ष आनन्दसे व्यतीत होता है। प्रतिपदा और अमावास्याके योगमें गौओंकी क्रीड़ा उत्तम मानी गयी है। उस दिन गौओंको भोजन आदिसे भलीभाँति पूजित करके अलङ्कारोंसे विभूषित करे और गाने-बजाने आदिके साथ सबको नगरसे बाहर ले जाय। वहाँ ले जाकर सबकी आरती उतारे। ऐसा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

अब तुम मृत्युनाशक यमद्वितीया व्रतका वर्णन सुनो। द्वितीया तिथिको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर मन-ही-मन अपने हितकी बातोंका चिन्तन करे। तदनन्तर शौच आदिसे निवृत्त हो दन्तधावनपूर्वक प्रातःकाल स्नान करे। फिर श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्पोंकी माला और श्वेत चन्दन धारण करे। नित्यकर्म पूरा करके प्रसन्नतापूर्वक औदुम्बर (गूलर) के वृक्षके नीचे जाय। वहाँ उत्तम मण्डल बनाकर उसमें अष्टदल कमल बनावे। तत्पश्चात् उस औदुम्बर-मण्डलमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा वीणापुस्तकधारिणी वरदायिनी सरस्वती-देवीका स्वस्थचित्तसे आवाहन एवं पूजन करे। चन्दन, अगरु, कस्तूरी, कुङ्कुम, पुष्प, धूप, नैवेद्य एवं नारियल आदिके द्वारा पूजन करके अपमृत्युनिवारणके लिये वेदवेत्ता ब्राह्मणको अलङ्कारसहित दूध देनेवाली सवत्सा गाय दान करे। उस समय ब्राह्मणसे इस प्रकार कहे—'हे विप्र! मैं अपमृत्युका निवारण करनेके लिये संसारसमुद्रसे तारनेवाली यह सीधी-सादी गाय आपको दे रहा हूँ।' यदि गाय न मिल सके तो ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक एक जोड़ा जूता ही अर्पण करे। तदनन्तर पूजा समाप्त करके भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए अपने कुटुम्बके श्रेष्ठ वयोवृद्ध पुरुषोंको श्रद्धा-भक्तिके साथ प्रणाम करे। फिर अनेक प्रकारके सुन्दर फलोंद्वारा अपने स्वजनोंको तृप्त करे। उसके बाद अपनी सहोदरा बड़ी भगिनीके घर जाय और उसे भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए कहे—'सौभाग्यवती बहिन! तुम कल्याणमयी हो। मैं अपने कल्याणके लिये तुम्हारे चरणारविन्दोंमें प्रणाम करनेके उद्देश्यसे तुम्हारे घर आया हूँ।' ऐसा कहकर बहिनको भगवद्बुद्धिसे प्रणाम करे। तब बहिन भाईसे यह उत्तम वचन कहे—'भैया! आज मैं तुम्हें पाकर धन्य हो गयी। आज सचमुच मैं मङ्गलमयी हूँ। कुलदीपक! आज अपनी आयु-वृद्धिके लिये तुम्हें मेरे घरमें भोजन करना चाहिये। मेरे सहोदर भैया! पूर्वकालमें इसी कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको यमुनाजीने अपने भाई यमराजको अपने ही घरपर भोजन कराया और उनका सत्कार किया था। उस दिन कर्मपाशमें बँधे हुए नारकीय पापियोंको भी यमराज छोड़ देते हैं, जिससे वे अपनी इच्छाके अनुसार घूमते हैं। इस तिथिमें विद्वान् पुरुष भी प्रायः अपने घर भोजन नहीं करते।' बहिनके ऐसा कहनेपर व्रतवान् पुरुष वस्त्र और आभूषणोंसे हर्षपूर्वक उसका

पूजन करे। बड़ी बहिनको प्रणाम करके उसका आशीर्वाद ले। तत्पश्चात् सभी बहिनोंको वस्त्र और आभूषण देकर सन्तुष्ट करे। अपनी सगी बहिन न होनेपर चाचाकी पुत्री अथवा पिताकी बहिनके घर जाकर आदरपूर्वक भोजन करे।

नारद! जो इस प्रकार यमद्वितीयाका व्रत करता है, वह अपमृत्युसे मुक्त हो पुत्र-पौत्र आदिसे सम्पन्न होता है और अन्तमें मोक्ष पाता है। ये सभी व्रत और नाना प्रकारके दान गृहस्थके लिये ही योग्य हैं। व्रतमें लगा हुआ जो पुरुष यम-द्वितीयाकी इस कथाको सुनता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है, ऐसा माधवका कथन है। कार्तिक शुक्लकी द्वितीयाको यमुनाजीमें स्नान करनेवाला पुरुष यमलोकका दर्शन नहीं करता। जिन्होंने यमद्वितीयाके दिन अपनी सौभाग्यवती बहिनोंको वस्त्रदान आदिसे सन्तुष्ट किया है, उन्हें एक वर्षतक कलह अथवा शत्रुभयका सामना नहीं करना पड़ता। उस तिथिको यमुनाजीने बहिनके स्नेहसे यमराजदेवको भोजन कराया था। इसलिये उस दिन जो बहिनके हाथसे भोजन करता है, वह धन एवं उत्तम सम्पदाको प्राप्त होता है। राजाओंने जिन कैदियोंको कारागृहमें डाल रक्खा हो, उन्हें यमद्वितीयाके दिन बहिनके घर भोजन करनेके लिये अवश्य भेजना चाहिये। वह भी न हो तो मौसी अथवा मामाकी पुत्रीको बहिन माने अथवा गोत्र या कुटुम्बके सम्बन्धसे किसीके साथ बहिनका नाता जोड़ ले। सबके अभावमें किसी भी समान वर्णकी स्त्रीको बहिन मान ले और उसीका आदर करे। वह भी न मिल सके तो किसी गाय या नदी आदिको ही बहिन बना ले। उसके भी अभावमें किसी जंगल, झाड़ीको ही बहिन मानकर वहाँ भोजन करे। यमद्वितीयाको कभी भी अपने घर भोजन न करे। भाईके भोजनमें वही द्वितीया ग्राह्य है, जो दोपहरके बादतक मौजूद रहे।

आँवलेके वृक्षकी उत्पत्ति और उसका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—कार्तिकके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको आँवलेका पूजन करे। आँवलेका महान् वृक्ष सब पापोंका नाश करनेवाला है। उक्त चतुर्दशीका नाम वैकुण्ठचतुर्दशी है। उस दिन आँवलेकी छायामें जाकर मनुष्य राधासहित देवेश्वर श्रीहरिका पूजन करे। तदनन्तर आँवलेकी एक सौ आठ प्रदक्षिणा करे। फिर साष्टाङ्ग प्रणाम करके परमेश्वर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी प्रार्थना करे। आँवलेकी छायामें बैठकर इस कथाको सुने, फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और यथाशक्ति दक्षिणा दे। ब्राह्मणोंके सन्तुष्ट होनेपर मोक्षदायक श्रीहरि भी प्रसन्न होते हैं।

पूर्वकालमें जब सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न हो गया था, समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो गये थे, उस समय देवाधिदेव सनातन परमात्मा ब्रह्माजी अविनाशी परब्रह्मका जप करने लगे थे। ब्रह्मका जप करते-करते उनके आगे श्वास निकला। साथ ही भगवद्दर्शनके अनुरागवश उनके नेत्रोंसे जल निकल आया। प्रेमके आँसुओंसे परिपूर्ण वह जलकी बूँद पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसीसे आँवलेका महान् वृक्ष उत्पन्न हुआ, जिसमें बहुत-सी शाखाएँ और उपशाखाएँ निकली थीं। वह फलोंके भारसे लदा हुआ था। सब वृक्षोंमें सबसे पहले आँवला ही प्रकट हुआ, इसलिये उसे 'आदिरोह' कहा गया। ब्रह्माने पहले आँवलेको उत्पन्न किया। उसके बाद समस्त प्रजाकी सृष्टि की। जब देवता आदिकी भी सृष्टि हो गयी, तब वे उस स्थानपर आये जहाँ भगवान् विष्णुको प्रिय लगनेवाला आँवलेका वृक्ष था। उसे देखकर देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी समय आकाशवाणी हुई—'यह आँवलेका वृक्ष सब वृक्षोंसे श्रेष्ठ है; क्योंकि यह भगवान् विष्णुको प्रिय है। इसके स्मरणमात्रसे मनुष्य गोदानका फल प्राप्त करता है। इसके दर्शनसे दुगुना और फल खानेसे तिगुना पुण्य होता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके आँवलेके वृक्षका सेवन करना चाहिये। क्योंकि वह भगवान् विष्णुको परम प्रिय एवं सब पापोंका नाश करनेवाला है, अतः समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये आँवलेके वृक्षका पूजन करना उचित है।'

जो मनुष्य कार्तिकमें आँवलेके वनमें भगवान् श्रीहरिकी पूजा तथा आँवलेकी छायामें भोजन करता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है। आँवलेकी छायामें वह जो भी पुण्य करता है, वह कोटिगुना हो जाता है। प्राचीन कालकी बात है, कावेरीके उत्तर तटपर देवशर्मा नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जो वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् थे। उनके एक पुत्र हुआ, जो बड़ा दुराचारी निकला। पिताने उसे हितकी बात बताते हुए कहा—'बेटा! इस समय कार्तिकका महीना है, जो भगवान् विष्णुको बहुत ही प्रिय है। तुम इसमें स्नान, दान, व्रत और नियमोंका पालन करो; तुलसीके फूलसहित भगवान् विष्णुकी

किसकी पुत्री थी, जो इस जन्ममें आपकी प्रियतमा पत्नी हुई ? यह सब बातें मुझे बताइये ।'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—प्रिये ! सत्ययुगके अन्तमें हरद्वारमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे, जिनका नाम देवशर्मा था। वे अत्रिकुलमें उत्पन्न हुए थे और वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् थे। उनकी अवस्था बहुत अधिक हो चली थी, किंतु उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। केवल एक कन्या थी, जिसका नाम गुणवती था। देवशर्माने चन्द्र नामक अपने शिष्यको ही अपनी पुत्री ब्याह दी और उसीको पुत्रकी भाँति माना। चन्द्र जितेन्द्रिय तथा आज्ञाकारी था; वह देवशर्माको पिताके ही समान मानकर उनकी सेवा करता था। एक दिन वे दोनों कुश लानेके लिये वनमें गये; वहाँ यमराजके समान आकारवाले किसी विकराल राक्षसने उन दोनोंको मार डाला। वे दोनों अपने-अपने पुण्यके प्रभावसे भगवान् विष्णुके लोकमें गये। उनके मारे जानेका समाचार सुनकर गुणवती पिता और पतिके वियोगदुःखसे पीड़ित होकर करुणस्वरमें विलाप करने लगी। उसने घरका सारा सामान बेचकर अपनी शक्तिके अनुसार उन दोनोंका पारलौकिक कर्म सम्पन्न किया। उसके बाद वह उसी नगरमें निवास करने लगी। जीवित रहनेपर भी गुणवती संसारके लिये मर चुकी थी। उसने होश सँभालनेके बादसे मृत्युपर्यन्त दो व्रतोंका विधिपूर्वक पालन किया—एक तो एकादशीका उपवास और दूसरा कार्तिक मासका भली-भाँति सेवन। इस प्रकार गुणवती प्रतिवर्ष कार्तिकका व्रत किया करती थी। एक समय, जब कि वह रुग्णा थी, उसके सारे अङ्ग दुर्बल हो गये थे और ज्वरसे वह बहुत पीड़ित थी, किसी तरह धीरे-धीरे चलकर गङ्गाजीमें स्नान करनेके लिये गयी। ज्यों-ही जलके भीतर घुसी, शीतसे पीड़ित हो काँपती हुई गिर पड़ी। उस व्याकुलताकी दशामें ही उसने देखा, आकाशसे विमान उतर रहा है। मृत्युके पश्चात् वह दिव्य रूपसे उस विमानपर बैठकर वैकुण्ठलोकको चली गयी। कार्तिकव्रतके पुण्यसे वह मेरे समीप रहने लगी। तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओंकी प्रार्थनासे जब मैं इस पृथ्वीपर आया, तब मेरे साथ मेरे समस्त पार्षद भी यहाँ आये। भामिनि ! ये सब यदुवंशी मेरे पार्षदगण ही हैं। पूर्वजन्मके देवशर्मा ही तुम्हारे पिता सत्राजित हुए और वे चन्द्र नामक ब्राह्मण ही इस समय अक्रूर हुए हैं तथा तुम वही कल्याणमयी गुणवती हो। कार्तिकव्रतके पुण्यसे तुम मेरे लिये अधिक प्रसन्नता देनेवाली बन गयी। पूर्वजन्ममें तुमने जो मेरे मन्दिरके द्वारपर तुलसीकी वाटिका लगा रक्खी थी, उसीका फल है कि इस समय तुम्हारे आँगनमें यह कल्पवृक्ष शोभा पा रहा है। तुमने जो मृत्युपर्यन्त कार्तिकव्रतका अनुष्ठान किया है, उसके प्रभावसे तुम्हारा मुझसे कभी भी वियोग नहीं होगा।

प्रिये ! पूर्वकालमें राजा पृथु और महर्षि नारदका इस विषयमें जो संवाद हुआ है, उसको सुनो। पृथुके पूछनेपर नारदजीने इस प्रकार कहना आरम्भ किया। प्राचीन कालमें शङ्ख नामक एक असुर था, जो समुद्रसे उत्पन्न हुआ था। उसने इन्द्र आदि समस्त लोकपालोंके अधिकार छीन लिये। देवता मेरुगिरिकी दुर्गम कन्दराओंमें छिपकर रहने लगे। उस समय दैत्यने विचार किया—'यद्यपि मैंने देवताओंको जीत लिया है तथापि वे बलवान् दिखायी देते हैं। अब इस विषयमें मुझे क्या करना चाहिये। यह बात तो मुझे अच्छी तरह मालूम है कि देवता वेदमन्त्रोंके बलसे ही प्रबल प्रतीत होते हैं। अतः मैं वेदोंका ही अपहरण करूँगा। इससे सब देवता निर्बल हो जायँगे।' ऐसा निश्चय करके वह दैत्य ब्रह्माजीके सत्यलोकसे शीघ्र ही वेदोंको हर लाया। उसके द्वारा ले जाये जाते हुए वेद भयसे उसके चंगुलसे निकल भागे और यज्ञ, मन्त्र एवं बीजोंके साथ जलमें समा गये। शङ्खासुर उन्हें ढूँढ़ता हुआ समुद्रके भीतर घूमने लगा, किंतु उसने कहीं भी एक जगह वेदमन्त्रोंको नहीं देखा। इधर देवताओंने भगवान् विष्णुके पास जाकर उनकी स्तुति की। तब

भगवान् जगे और इस प्रकार बोले—'देवताओ ! मैं तुम्हारे गीत वाद्य आदि मङ्गल साधनोंसे प्रसन्न होकर तुम्हें वर देनेके लिये उद्यत हूँ। कार्तिक शुक्ल पक्षकी एकादशीको तुमने मुझे जगाया है, इसलिये यह तिथि मेरे लिये अत्यन्त प्रीतिदायिनी और माननीय है। शङ्खासुरके द्वारा हरे गये सम्पूर्ण वेद जलमें स्थित हैं। मैं सागरपुत्र शङ्खका वध करके उन वेदोंको अभी लाये देता हूँ। इस कार्तिक मासमें जो श्रेष्ठ मनुष्य प्रातःकाल स्नान करते हैं, वे सब यज्ञके अवभृथ-स्नानद्वारा भलीभाँति नहा लेते हैं। आजसे मैं भी कार्तिकमें जलके भीतर निवास करूँगा। तुम सब देवता भी मुनीश्वरोंसहित मेरे साथ जलमें आओ।' ऐसा कहकर मछलीके समान रूप धारण करके भगवान् विष्णु आकाशसे जलमें गिरे। फिर, शङ्खासुरको मारकर भगवान् विष्णु बदरीवनमें आ गये और वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण ऋषियोंको बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया—'मुनीश्वरो! तुम जलके भीतर बिखरे हुए वेदमन्त्रोंकी खोज करो और जितनी जल्दी हो सके, उन्हें सागरके जलसे बाहर निकाल लाओ। तबतक मैं देवताओंके साथ प्रयागमें ठहरता हूँ।'

तब उन तपोबलसम्पन्न महर्षियोंने यज्ञ और बीजोंसहित सम्पूर्ण वेदमन्त्रोंका उद्धार किया। उनमेंसे जितने मन्त्र जिस ऋषिने उपलब्ध किये, वही उन मन्त्रोंका उस दिनसे ऋषि माना जाने लगा। तदनन्तर सब ऋषि एकत्र होकर प्रयागमें गये। वहाँ उन्होंने ब्रह्माजीसहित भगवान् विष्णुको उपलब्ध हुए सभी वेदमन्त्र समर्पित कर दिये। सब वेदोंको पाकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने देवताओं और ऋषियोंके साथ प्रयागमें अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होनेपर सब देवताओंने भगवान्‌से यह निवेदन किया—

देवता बोले—देवाधिदेव जगन्नाथ ! इस स्थानपर ब्रह्माजीने खोये हुए वेदोंको पुनः प्राप्त किया है और हमने भी यहाँ आपके प्रसादसे यज्ञभाग पाये हैं। अतः यह स्थान पृथ्वीपर सबसे श्रेष्ठ, पुण्यकी वृद्धि करनेवाला एवं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला हो। साथ ही यह समय भी महापुण्यमय और ब्रह्मघाती आदि महापापियोंकी भी शुद्धि करनेवाला हो तथा यह स्थान यहाँ दिये हुए दानको अक्षय बना देनेवाला भी हो, यह वर दीजिये !

भगवान् विष्णुने कहा—देवताओ ! तुमने जो कुछ कहा है, वह मुझे भी स्वीकार है; तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। आजसे यह स्थान ब्रह्मक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध होगा। सूर्यवंशमें उत्पन्न राजा भगीरथ यहाँ गङ्गाको ले आयेंगे और वह यहाँ सूर्यकन्या यमुनासे मिलेंगी। ब्रह्माजी और तुम सब देवता मेरे साथ यहाँ निवास करो। आजसे यह तीर्थ तीर्थराजके नामसे विख्यात होगा। तीर्थराजके दर्शनसे तत्काल सब पाप नष्ट हो जायँगे। सूर्य जब मकर राशिमें स्थित होंगे, उस समय यहाँ स्नान करनेवाले मनुष्योंके सब पापोंका यह तीर्थ नाश करेगा। यह काल भी मनुष्योंके लिये सदा महान् पुण्यफल देनेवाला होगा। माघमें सूर्यके मकर राशिमें स्थित होनेपर यहाँ स्नान करनेसे सालोक्य आदि फल प्राप्त होंगे।

देवाधिदेव भगवान् विष्णु देवताओंसे ऐसा कहकर ब्रह्माजीके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् इन्द्रादि देवता भी अपने अंशसे प्रयागमें रहते हुए वहाँसे अन्तर्धान हो गये। जो मनुष्य कार्तिकमें तुलसीजीकी जड़के समीप श्रीहरिका पूजन करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें वैकुण्ठधामको जाता है।

कार्तिकव्रतके पुण्यदानसे एक राक्षसीका उद्धार

नारदजी कहते हैं—कार्तिकके उद्यापनमें तुलसीके मूल प्रदेशमें भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है, क्योंकि वह उन्हें अधिक प्रीति प्रदान करनेवाली मानी गयी है। राजन् ! जिसके घरमें तुलसीवन है, वह घर तीर्थस्वरूप है; वहाँ यमराजके दूत नहीं आते। तुलसीका वन सदा सब पापोंका नाश करनेवाला तथा अभीष्ट कामनाओंको देनेवाला है। जो श्रेष्ठ मनुष्य तुलसीका बगीचा लगाते हैं, वे यमराजको नहीं देखते। नर्मदाका दर्शन, गङ्गाका स्नान और तुलसीवनका संसर्ग—ये तीनों एक समान कहे गये हैं। जो तुलसीकी मञ्जरीसे संयुक्त होकर प्राणत्याग करता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त हो, तो भी यमराज उसकी ओर नहीं देख सकते। जो मनुष्य आँवलेके फलों और तुलसीके पत्तोंसे मिश्रित जलके द्वारा स्नान करता है, उसे गङ्गास्नान करनेका फल प्राप्त होता है।

पूर्वकालकी बात है, सह्यपर्वतपर करवीरपुरमें धर्मदत्त नामसे विख्यात कोई धर्मज्ञ ब्राह्मण थे। एक दिन कार्तिक मासमें भगवान् विष्णुके समीप जागरण करनेके लिये वे भगवान्‌के मन्दिरकी ओर चले। उस समय एक पहर रात

बाकी थी। भगवान्‌के पूजनकी सामग्री साथ लिये जाते हुए ब्राह्मणने मार्गमें देखा एक भयङ्कर राक्षसी आ रही है। उसे देखते ही ब्राह्मण भयसे थर्रा उठे। उनका सारा शरीर काँपने लगा। उन्होंने साहस करके पूजाकी सामग्री तथा जलसे ही उस राक्षसीके ऊपर प्रहार किया। उन्होंने हरिनामका स्मरण करके तुलसीदलमिश्रित जलसे उसको मारा था, इसलिये उसका सारा पातक नष्ट हो गया। अब उसे अपने पूर्वजन्मके कर्मोंके परिणामस्वरूप प्राप्त हुई दुर्दशाका स्मरण हो आया। उसने ब्राह्मणको दण्डवत् प्रणाम करके इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! मैं पूर्वजन्मके कर्मोंके फलसे इस दशाको पहुँची हूँ। अब कैसे मुझे उत्तम गतिकी प्राप्ति होगी?'

धर्मदत्तने पूछा—किस कर्मके फलसे तुम इस दशाको पहुँची हो? कहाँकी रहनेवाली हो? तुम्हारा नाम क्या है और आचार-व्यवहार कैसा है? ये सारी बातें मुझे बताओ।

कलहा बोली—ब्रह्मन्! मेरे पूर्वजन्मकी बात है, सौराष्ट्र नगरमें भिक्षु नामके एक ब्राह्मण रहते थे। मैं उन्हींकी पत्नी थी। मेरा नाम कलहा था और मैं बड़े क्रूरस्वभावकी स्त्री थी। मैंने वचनसे भी कभी अपने पतिका भला नहीं किया, उन्हें कभी मीठा भोजन नहीं परोसा। सदा अपने स्वामीको धोखा ही देती रही। मुझे कलह विशेष प्रिय था, इससे मेरे पतिका मन मुझसे सदा उद्विग्न रहा करता था। अन्ततोगत्वा उन्होंने दूसरी स्त्रीसे विवाह करनेका निश्चय कर लिया। तब मैंने विष खाकर अपने प्राण त्याग दिये। फिर यमराजके दूत आये और मुझे बाँधकर पीटते हुए यमलोकमें ले गये। वहाँ यमराजने मुझे देखकर चित्रगुप्तसे पूछा—'चित्रगुप्त! देखो तो सही इसने कैसा कर्म किया है? जैसा इसका कर्म हो, उसके अनुसार यह शुभ या अशुभ प्राप्त करे।'

चित्रगुप्तने कहा—इसका किया हुआ कोई भी शुभ कर्म नहीं है। यह स्वयं मिठाइयाँ उड़ाती थी और अपने स्वामीको उसमेंसे कुछ भी नहीं देती थी। इसने सदा अपने स्वामीसे द्वेष किया है, इसलिये यह चमगादुरी होकर रहे। तथा सदा कलहमें ही इसकी प्रवृत्ति रही है, इसलिये यह विष्ठाभोजी सूकरीकी योनिमें रहे। जिस बरतनमें भोजन बनाया जाता है, उसीमें यह सदा अकेली खाया करती थी। अतः उसके दोषसे यह अपनी ही सन्तानका भक्षण करनेवाली बिल्ली हो। इसने अपने पतिको निमित्त बनाकर आत्मघात किया है, इसलिये यह अत्यन्त निन्दनीय स्त्री प्रेतके शरीरमें भी कुछ कालतक अकेली ही रहे। इसे यमदूतोंके द्वारा निर्जल प्रदेशमें भेज देना चाहिये, वहाँ दीर्घकालतक यह प्रेतके शरीरमें निवास करे। उसके बाद यह पापिनी शेष तीन योनियोंका भी उपभोग करेगी।

कलहा कहती है—विप्रवर! मैं वही पापिनी कलहा हूँ। इस प्रेतशरीरमें आये मुझे पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। मैं सदा भूख-प्याससे पीड़ित रहा करती हूँ। एक बनियेके शरीरमें प्रवेश करके मैं इस दक्षिण देशमें कृष्णा और वेणीके सङ्गमतक आयी हूँ। ज्यों-ही सङ्गम-तटपर पहुँची, त्यों-ही भगवान् शिव और विष्णुके पार्षदोंने मुझे बलपूर्वक उसके शरीरसे दूर भगा दिया। तबसे मैं भूखका कष्ट सहन करती हुई इधर-उधर घूम रही हूँ। इतनेमें ही आपके ऊपर मेरी दृष्टि पड़ी है। आपके हाथसे तुलसीमिश्रित जलका संसर्ग पाकर मेरे सब पाप नष्ट हो गये। द्विजश्रेष्ठ! अब आप ही कोई उपाय कीजिये। बताइये मैं इस प्रेतशरीरसे और भविष्यमें होनेवाली भयङ्कर तीन योनियोंसे किस प्रकार मुक्त होऊँगी?

कलहाका यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ धर्मदत्तने बहुत समयतक सोच-विचार करनेके बाद कहा—'तीर्थमें दान और व्रत आदि सत्कर्म करनेसे मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं, परंतु तू तो प्रेतके शरीरमें है; अतः उन कर्मोंको करनेकी अधिकारिणी नहीं है। इसलिये मैंने जन्मसे लेकर अबतक जो कार्तिकका व्रत किया है, उसके पुण्यका आधा भाग मैं तुझे देता हूँ। तू उसीसे सद्गतिको प्राप्त हो जा।' यों कहकर धर्मदत्तने द्वादशाक्षर-मन्त्रका श्रवण कराते हुए तुलसीमिश्रित जलसे ज्यों-ही उसका अभिषेक किया, त्यों-ही वह प्रेतयोनिसे मुक्त हो प्रज्वलित अग्निशिखाके समान तेजस्विनी एवं दिव्य-रूपधारिणी देवी हो गयी और सौन्दर्यमें लक्ष्मीजीकी समानता करने लगी। तदनन्तर उसने भूमिपर दण्डकी भाँति गिरकर ब्राह्मणदेवताको प्रणाम किया और हर्षगद्गद वाणीमें कहा—'द्विजश्रेष्ठ! आपके प्रसादसे आज मैं इस नरकसे छुटकारा पा गयी। मैं पापके समुद्रमें डूब रही थी, आप मेरे लिये नौकाके समान हो गये।' वह इस प्रकार ब्राह्मणसे कह ही रही थी कि आकाशसे एक दिव्य विमान उतरता दिखायी दिया। वह अत्यन्त प्रकाशमान एवं विष्णुरूपधारी पार्षदोंसे युक्त था। विमानके द्वारपर खड़े हुए पुण्यशील और सुशीलने उस देवीको उठाकर श्रेष्ठ विमानपर चढ़ा लिया। तब धर्मदत्तने बड़े विस्मयसे

साथ उस विमानको देखा और विष्णुरूपधारी पार्षदोंको देखकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। पुण्यशील और सुशीलने प्रणाम करनेवाले ब्राह्मणको उठाया और उसकी सराहना करते हुए कहा—'द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हें साधुवाद है; क्योंकि तुम सदा भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर रहते हो, दीनोंपर दया करते हो, सर्वज्ञ हो तथा भगवान् विष्णुके व्रतका पालन करते हो। तुमने बचपनसे लेकर अबतक जो कार्तक-व्रतका अनुष्ठान किया है, उसके आधे भागका दान करनेसे तुम्हें दूना पुण्य प्राप्त हुआ है और इसके सैकड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो गये हैं। अब यह वैकुण्ठधाममें ले जायी जा रही है। तुम भी इस जन्मके अन्तमें अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें जाओगे। धर्मदत्त ! जिन्होंने तुम्हारे समान भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुकी आराधना की है, वे धन्य और कृतकृत्य हैं। इस संसारमें उन्हींका जन्म सफल है। भलीभाँति आराधना करनेपर भगवान् विष्णु देहधारी प्राणियोंको क्या नहीं देते हैं? उन्होंने ही उत्तानपादके पुत्रको पूर्वकालमें ध्रुवपदपर स्थापित किया। उनके नामोंका स्मरण करनेमात्रसे समस्त जीव सद्गतिको प्राप्त होते हैं। पूर्वकालमें ग्राहग्रस्त गजराज उन्हींके नामोंका स्मरण करनेसे मुक्त हुआ था। तुमने जन्मसे ही लेकर जो भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाले व्रतका अनुष्ठान किया है, उससे बढ़कर न यज्ञ है, न दान है और न तीर्थ हैं। विप्रवर ! तुम धन्य हो, क्योंकि तुमने जगद्गुरु भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला ऐसा व्रत किया है कि जिसके आधे भागके फलको पाकर यह स्त्री हमारे साथ भगवान्‌के लोकमें जा रही है।'

भक्तिके प्रभावसे विष्णुदास और राजा चोलका भगवान्‌के पार्षद होना

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार विष्णुपार्षदोंके वचन सुनकर धर्मदत्तने कहा, 'प्रायः सभी मनुष्य भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले श्रीविष्णुकी यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थसेवन तथा तपस्याओंके द्वारा विधिपूर्वक आराधना करते हैं। उन समस्त साधनोंमें कौन-सा ऐसा साधन है, जो भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला तथा उनके सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है।'

दोनों पार्षद अपने पूर्वजन्मकी कथा कहने लगे—ब्रह्मन् ! पहले काञ्चीपुरीमें चोल नामक एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं। उन्हींके नामपर उनके अधीन रहनेवाले सभी देश चोल नामसे विख्यात हुए। राजा चोल जब इस भूमण्डलका शासन करते थे, उस समय उनके राज्यमें कोई भी मनुष्य दरिद्र, दुःखी, पापमें मन लगानेवाला अथवा रोगी नहीं था। एक समयकी बात है, राजा चोल अनन्तशयन नामक तीर्थमें गये, जहाँ जगदीश्वर भगवान् विष्णुने योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन किया था। वहाँ भगवान् विष्णुके दिव्य विग्रहकी राजाने विधिपूर्वक पूजा की। दिव्य मणि, मुक्ताफल तथा सुवर्णके बने हुए सुन्दर पुष्पोंसे पूजन करके राजाने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रणाम करके वे ज्यों-ही बैठे, उसी समय उनकी दृष्टि भगवान्‌के पास आते हुए एक ब्राह्मणपर पड़ी, जो उन्हींकी काञ्चीनगरीके निवासी थे। उनका नाम विष्णुदास था। उन्होंने भगवान्‌की पूजाके लिये अपने हाथमें तुलसीदल और जल ले रखा था। निकट आनेपर उन ब्रह्मर्षिने विष्णुसूक्तका पाठ करते हुए देवाधिदेव भगवान्‌को स्नान कराया और तुलसीकी मञ्जरी तथा पत्तोंसे उनकी विधिवत् पूजा की। राजा चोलने जो पहले रत्नोंसे भगवान्‌की पूजा की थी, वह सब तुलसीपूजासे ढक गयी। यह देख राजा कुपित होकर बोले—'विष्णुदास ! मैंने मणियों तथा सुवर्णसे भगवान्‌की जो पूजा की थी, वह कितनी शोभा पा रही थी; तुमने तुलसीदल चढ़ाकर उसे ढक दिया। बताओ, ऐसा क्यों किया? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि तुम दरिद्र और गवाँर हो! भगवान् विष्णुकी भक्तिको बिल्कुल नहीं जानते!'

राजाकी यह बात सुनकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुदासने कहा—'राजन् ! आपको भक्तिका कुछ भी पता नहीं है; केवल राजलक्ष्मीके कारण आप घमण्ड कर रहे हैं। बतलाइये तो, आजसे पहले आपने कितने वैष्णवव्रतोंका पालन किया है?' तब नृपश्रेष्ठ चोलने हँसकर कहा—'तुम तो दरिद्र और निर्धन हो, तुम्हारी भगवान् विष्णुमें भक्ति ही कितनी है? तुमने भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाला कोई भी यज्ञ और दान आदि नहीं किया और न पहले कभी कोई देवमन्दिर ही बनवाया है। इतनेपर भी तुम्हें अपनी भक्तिका इतना गर्व है! अच्छा, तो ये सभी ब्राह्मण मेरी बात सुन लें। भगवान् विष्णुके

दर्शन पहले मैं करता हूँ, या यह ब्राह्मण । इस बातको आप सब लोग देखें । फिर हम दोनोंमेंसे किसकी भक्ति कैसी है, यह सब लोग स्वतः जान लेंगे ।'

ऐसा कहकर राजा अपने राजभवनको चले गये । वहाँ उन्होंने महर्षि मुद्गलको आचार्य बनाकर वैष्णव यज्ञ प्रारम्भ किया । उधर सदैव भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाले शास्त्रोक्त नियमोंमें तत्पर विष्णुदास भी व्रतका पालन करते हुए, वहीं भगवान् विष्णुके मन्दिरमें टिक गये । उन्होंने माघ और कार्तिकके उत्तम व्रतका अनुष्ठान, तुलसीवनकी रक्षा, एकादशीको द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रका जप, नृत्य, गीत आदि मङ्गलमय आयोजनोंके साथ प्रतिदिन षोडशोपचारसे भगवान् विष्णुकी पूजा आदि नियमोंका आचरण किया । वे प्रतिदिन चलते, फिरते और सोते—सब समय भगवान् विष्णुका स्मरण किया करते थे । उनकी दृष्टि सर्वत्र सम हो गयी थी । वे सब प्राणियोंके भीतर एकमात्र भगवान् विष्णुको ही स्थित देखते थे । इस प्रकार राजा चोल और विष्णुदास दोनों ही भगवान् लक्ष्मीपतिकी आराधनामें संलग्न थे, दोनों ही अपने-अपने व्रतमें स्थित रहते थे और दोनोंकी ही सम्पूर्ण इन्द्रियाँ तथा समस्त कर्म भगवान् विष्णुको समर्पित हो चुके थे । इस अवस्थामें उन दोनोंने दीर्घकाल व्यतीत किया ।

एक दिनकी बात है, विष्णुदासने नित्यकर्म करनेके पश्चात् भोजन तैयार किया । किंतु कोई अलक्षित रहकर उसको चुरा ले गया । विष्णुदासने देखा भोजन नहीं है, परन्तु उन्होंने दुबारा भोजन नहीं बनाया; क्योंकि ऐसा करनेपर सायंकालकी पूजाके लिये उन्हें अवकाश नहीं मिलता । अतः प्रतिदिनके नियमका भङ्ग हो जानेका भय था । दूसरे दिन पुनः उसी समयपर भोजन बनाकर वे ज्यों-ही भगवान् विष्णुको भोग अर्पण करनेके लिये गये, त्यों ही किसीने आकर फिर सारा भोजन हड़प लिया । इस प्रकार लगातार सात दिनोंतक कोई आ-आकर उनके भोजनका अपहरण करता रहा । इससे विष्णुदासको बड़ा विस्मय हुआ । वे मन ही-मन इस प्रकार विचार करने लगे—'अहो ! कौन प्रतिदिन आकर मेरी रसोई चुरा ले जाता है । यदि दुबारा रसोई बनाकर भोजन करता हूँ, तो सायंकालकी पूजा छूट जाती है ! यदि रसोई बनाकर तुरंत ही भोजन कर लेना उचित हो, तो भी मुझसे यह न होगा; क्योंकि भगवान् विष्णुको सब कुछ अर्पण किये बिना कोई भी वैष्णव भोजन नहीं करता । आज उपवास करते मुझे सात दिन हो गये । इस प्रकार मैं मनमें कबतक स्थिर रह सकता हूँ । अच्छा आज मैं रसोईकी भलीभाँति रक्षा करूँगा ।'

ऐसा निश्चय करके भोजन बनानेके पश्चात् वे वहीं कहीं छिपकर खड़े हो गये । इतनेमें ही उन्हें एक चाण्डाल दिखायी दिया, जो रसोईका अन्न हरकर जानेके लिये तैयार खड़ा था । भूखके मारे उसका सारा शरीर दुर्बल हो गया था, मुखपर दीनता छा रही थी, शरीरमें हाड़ और चामके सिवा और कुछ शेष नहीं बचा था । उसे देखकर श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णुदासका हृदय करुणासे भर आया । उन्होंने भोजन चुरानेवाले चाण्डालकी ओर देखकर कहा—'भैया ! जरा ठहरो, ठहरो । क्यों रूखा-सूखा खाते हो ? यह घी तो ले लो ।' यों कहते हुए विप्रवर विष्णुदासको आते देख वह चाण्डाल भयके मारे बड़े वेगसे भागा और कुछ ही दूरपर मूर्छित होकर

गिर पड़ा । चाण्डालको भयभीत और मूर्छित देखकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास बड़े वेगसे उसके समीप आये तथा दयावश अपने वस्त्रके छोरसे उसको हवा करने लगे । तदनन्तर जब वह उठकर खड़ा हुआ, तब विष्णुदासने देखा, वहाँ चाण्डाल नहीं है, साक्षात् भगवान् नारायण ही शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये सामने उपस्थित हैं । अपने प्रभुको प्रत्यक्ष देखकर विष्णुदास सात्त्विक भावोंके वशीभूत हो गये । वे स्तुति और नमस्कार करनेमें भी समर्थ न हो सके । तब

गवान् विष्णुने सात्त्विक व्रतका पालन करनेवाले अपने भक्त ष्णुदासको छातीसे लगा लिया और उन्हें अपने ही जैसा प देकर वे वैकुण्ठधामको ले चले। उस समय यज्ञमें ीक्षित हुए राजा चोलने देखा—विष्णुदास एक श्रेष्ठ विमान-र बैठकर भगवान् विष्णुके समीप जा रहे हैं। विष्णुदासको वैकुण्ठधाममें जाते देख राजाने शीघ्र ही अपने गुरु महर्षि मुद्गलको बुलाया और इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—'जिसके साथ स्पर्धा करके मैंने इस यज्ञ, दान आदि कर्मका अनुष्ठान किया है, वह ब्राह्मण आज भगवान् विष्णुका रूप धारण करके मुझसे पहले ही वैकुण्ठधामको जा रहा है। मैंने इस वैष्णवयागमें भलीभाँति दीक्षित होकर अग्निमें हवन किया और दान आदिके द्वारा ब्राह्मणोंका मनोरथ पूर्ण किया। तथापि अभीतक भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न नहीं हुए और इस विष्णुदासको केवल भक्तिके ही कारण श्रीहरि-ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। अतः जान पड़ता है भगवान् विष्णु केवल दान और यज्ञोंसे प्रसन्न नहीं होते। उन प्रभु-का दर्शन करानेमें भक्ति ही प्रधान कारण है।'

दोनों पार्षद कहते हैं—यों कहकर राजाने अपने भानजेको राजसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। वे बचपनसे ही यज्ञकी दीक्षा लेकर उसीमें संलग्न रहते थे, इसलिये उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ था। यही कारण है कि उस देशमें अबतक भानजे ही राज्यके उत्तराधिकारी होते हैं। भानजेको राज्य देकर राजा यज्ञशालामें गये और यज्ञकुण्डके सामने खड़े होकर भगवान् विष्णुको सम्बोधित करते हुए तीन बार उच्चस्वरसे निम्नाङ्कित वचन बोले—'भगवान् विष्णु ! आप मुझे मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा होनेवाली अविचल भक्ति प्रदान कीजिये।' यों कहकर वे सबके देखते-देखते अग्निकुण्डमें कूद पड़े। बस, उसी क्षण भक्तवत्सल भगवान् विष्णु अग्निकुण्डमें प्रकट हो गये। उन्होंने राजा-को छातीसे लगाकर एक श्रेष्ठ विमानपर बैठाया और उन्हें साथ ले वैकुण्ठधामको प्रस्थान किया।

नारदजी कहते हैं—राजन् ! जो विष्णुदास थे, वे तो पुण्यशील नामसे प्रसिद्ध भगवान्के पार्षद हुए और जो राजा चोल थे, उनका नाम सुशील हुआ। इन दोनोंको अपने ही समान रूप देकर भगवान् लक्ष्मीपतिने अपना द्वारपाल बना लिया।

जय-विजयका चरित्र

धर्मदत्तने पूछा—मैंने सुना है कि जय और विजय भी भगवान् विष्णुके द्वारपाल हैं। उन्होंने पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्य किया था, जिससे वे भगवान्के समान रूप धारण करके वैकुण्ठधामके द्वारपाल हुए ?

दोनों पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन् ! पूर्वकालमें तृणबिन्दु-की कन्या देवहूतिके गर्भसे महर्षि कर्दमकी दृष्टिमात्रसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे बड़ेका नाम जय था और छोटेका विजय। पीछे उसी देवहूतिके गर्भसे योगधर्मके जाननेवाले भगवान् कपिल उत्पन्न हुए। जय और विजय सदा भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर रहते थे। वे नित्य अष्टाक्षर (ॐ नमो नारायणाय) मन्त्रका जप और वैष्णवव्रतोंका पालन करते थे। एक समय राजा मरुत्तने उन दोनोंको अपने यज्ञमें बुलाया। वहाँ जय ब्रह्मा बनाये गये और विजय आचार्य। उन्होंने यज्ञकी सम्पूर्ण विधि पूर्ण की। यज्ञान्तमें अवभृथस्नानके पश्चात् राजा मरुत्तने उन दोनोंको बहुत धन दिया। धन लेकर दोनों भाई अपने आश्रमपर गये। वहाँ उस धनका विभाग करते समय दोनोंमें परस्पर लाग-डाँट पैदा हो गयी। जयने कहा—'इस धनको बराबर-बराबर बाँट लिया जाय।' विजयका कहना था—'नहीं। जिसको जो मिला है, वह उसीके पास रहे।' तब जयने क्रोधमें आकर लोभी विजयको शाप दिया—'तुम ग्रहण करके देते नहीं हो, इसलिये ग्राह हो जाओ।' जयके इस शापको सुनकर विजयने भी शाप दिया—'तुमने मदसे भ्रान्त होकर शाप दिया है, इसलिये मातङ्ग (हाथी) की योनिमें जाओ।' तत्पश्चात् उन्होंने भगवान्से शापनिवृत्ति-के लिये प्रार्थना की। श्रीभगवान्ने कहा—'तुम मेरे भक्त हो, तुम्हारा वचन कभी असत्य नहीं होगा। तुम दोनों अपने ही दिये हुए इन शापोंको भोगकर फिर मेरे धामको प्राप्त होओगे।' ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर वे दोनों गण्डकी नदीके तटपर ग्राह और गज हो गये। उस योनिमें भी उन्हें पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा और वे विष्णुके व्रतमें तत्पर रहे। किसी समय वह गजराज कार्तिक मासमें स्नानके लिये गण्डकी नदीमें गया। उस समय ग्राहने शापके हेतुको स्मरण करते हुए उस गजको पकड़ लिया। ग्राहसे पकड़े जानेपर गजराजने भगवान् रमानाथका स्मरण किया। तब भगवान् विष्णु शङ्ख, चक्र

और गदा धारण किये वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने चक्र चलाकर ग्राह और गजराज दोनोंका उद्धार किया और उन्हें अपने ही जैसा रूप देकर वे वैकुण्ठधामको ले गये। तबसे वह स्थान हरिक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध है। वे ही दोनों विश्वविख्यात जय और विजय हैं, जो भगवान् विष्णुके द्वारपाल हुए हैं।

धर्मदत्त! तुम भी मात्सर्य और दम्भका त्याग करके सदा भगवान् विष्णुके व्रतमें स्थिर रहो, समदर्शी बनो, तुला (कार्तिक), मकर (माघ) और मेष (वैशाख) के महीनोंमें सदैव प्रातःकाल स्नान करो। एकादशीव्रतके पालनमें स्थिर रहो। तुलसीके बगीचेकी रक्षा करते रहो। ऐसा करनेसे तुम भी शरीरका अन्त होनेपर भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होओगे। भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाले तुम्हारे इस व्रतसे बढ़कर न यज्ञ हैं, न दान हैं और न तीर्थ ही हैं। विप्रवर! तुम धन्य हो, जिसके व्रतके आधे भागका फल पाकर यह स्त्री हमारे द्वारा वैकुण्ठधाममें ले जायी जा रही है।

नारदजी कहते हैं—राजन्! धर्मदत्तको इस प्रकार उपदेश करके वे दोनों विमानचारी पार्षद उस कलहाके साथ वैकुण्ठधामको चले गये। धर्मदत्त जीवनभर भगवान्के व्रतमें स्थिर रहे और देहावसानके बाद उन्होंने अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ वैकुण्ठधाम प्राप्त कर लिया। इस प्राचीन इतिहासको जो सुनता और सुनाता है, वह जगद्गुरु भगवान्की कृपासे उनका सान्निध्य प्राप्त करानेवाली उत्तम गति पाता है।

सांसर्गिक पुण्यसे धनेश्वरका उद्धार, दूसरोंके पुण्य और पापकी आंशिक प्राप्तिके कारण तथा मासोपवास व्रतकी संक्षिप्त विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! नारदजीके मुखसे यह कथा सुनकर राजा पृथुके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने नारदजीका भलीभाँति पूजन करनेके पश्चात् उन्हें विदा किया। पूर्वकालमें अवन्तिपुरीमें धनेश्वर नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह क्रय-विक्रयके कार्यसे घूमता हुआ किसी समय माहिष्मतीपुरीमें जा पहुँचा, जहाँ पापनाशिनी नर्मदा सदैव शोभा पाती है। वहाँ कार्तिकका व्रत करनेवाले बहुतसे मनुष्य अनेक गाँवोंसे स्नान करनेके लिये आये हुए थे। धनेश्वरने उन सबको देखा और अपना सामान बेचता हुआ वह एक मासतक वहीं रहा। वह प्रतिदिन नर्मदाके किनारे घूम-घूमकर स्नान, जप और देवार्चनमें लगे हुए ब्राह्मणोंको देखता और वैष्णवोंके मुखसे भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन सुनता था। इस प्रकार नर्मदा-तटपर रहते हुए उसको जब एक मास बीत गया, तब एक दिन अकस्मात् उसे किसी काले साँपने डँस लिया। इससे विह्वल होकर वह भूमिपर गिर पड़ा। यमदूत उसे बाँधकर ले गये और कुम्भीपाकमें डाल दिया। वहाँ उसके गिरते ही सारा कुण्ड शीतल हो गया; ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें प्रह्लादजीको डालनेसे दैत्योंकी जलायी हुई आग ठंडी हो गयी थी। तदनन्तर यमराज इस विषयमें पूछ-ताछ करने लगे। इतनेमें ही वहाँ नारदजी आये और इस प्रकार बोले—'सूर्यनन्दन! यह नरकोंका उपभोग करने योग्य नहीं है। जो मनुष्य पुण्यकर्म करनेवाले लोगोंका दर्शन, स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप करता है, वह उनके पुण्यका छठा अंश प्राप्त कर लेता है। यह धनेश्वर तो एक मासतक श्रीहरिके कार्तिकव्रतका अनुष्ठान करनेवाले असंख्य मनुष्योंके संपर्कमें रहा है, अतः यह उन सबके पुण्यांशका भागी हुआ है। इसको अनिच्छासे पुण्य प्राप्त हुआ है, इसलिये यह यक्षकी योनिमें रहे और पापभोगके रूपमें सब नरकोंका दर्शनमात्र करके ही यमयातनासे मुक्त हो जाय।'

प्रिये! यों कहकर देवर्षि नारद चले गये। तब प्रेतराजने धनेश्वरको नरकोंके समीप ले जाकर उन सबको दिखलाते हुए कहा—'धनेश्वर! महान् भय देनेवाले इन घोर नरकोंकी ओर दृष्टि डालो। इनमें पापी पुरुष सदा दूतोंद्वारा पकाये जाते हैं। इन नरकोंके पृथक्-पृथक् चौरासी भेद हैं। तुम्हें कार्तिकव्रत करनेवाले पुरुषोंका संसर्ग प्राप्त हुआ था, उससे पुण्यकी वृद्धि हो जानेके कारण ये सभी नरक तुम्हारे लिये निश्चय ही नष्ट हो गये हैं।' इस प्रकार धनेश्वरको नरकोंका दर्शन कराकर प्रेतराज उसे यक्षलोकमें ले गये। वहाँ जाकर वह यक्ष हुआ। वही कुबेरके अनुचर 'धनयक्ष'के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार अपनी आनन्दप्रिय

सत्यभामाको यह कथा सुनाकर भगवान् श्रीकृष्ण सन्ध्योपासना करनेके लिये माताके घरमें गये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! यदि कार्तिकव्रत करनेके लिये अपनेमें सामर्थ्य न हो तो अन्य उपायसे भी इसका फल प्राप्त हो सकता है। ब्राह्मणको धन देकर कार्तिक-व्रतके उत्तम फलको ग्रहण करे। शिष्यसे, भृत्यवर्गसे, स्त्रियोंसे अथवा अपने किसी विश्वासपात्र मनुष्यसे भी व्रतका पालन करावे । ऐसा करनेसे भी मनुष्य फलका भागी होता है ।

नारदजीने पूछा—पितामह ! यह कार्तिकव्रत थोड़े परिश्रमद्वारा साध्य होनेवाला और महान् फल देनेवाला है, तो भी मनुष्य इसे क्यों नहीं करते हैं ?

ब्रह्माजीने कहा—काम, क्रोध और लोभके वशीभूत होनेवाले मनुष्य व्रत आदि धर्मकृत्य नहीं कर पाते । जो इनसे मुक्त हैं, वे ही धर्मकार्य करते हैं। इस पृथ्वीपर श्रद्धा और मेधा—ये दो वस्तुएँ ऐसी हैं, जो काम, क्रोध आदिका विनाश करनेवाली हैं। इनसे व्याप्त मनुष्य भगवान् विष्णुका श्रवण, कीर्तन आदि करता है। पर जिसकी बुद्धि खोटी है, वह यह सब नहीं करता । इसीसे वह अन्धकारपूर्ण नरकमें गिरता है। पढ़ानेसे, यज्ञ करानेसे और एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेसे मनुष्य दूसरोंके किये हुए पुण्य और पापका चौथाई भाग प्राप्त कर लेता है। एक आसनपर बैठने, एक सवारीपर यात्रा करने तथा श्वाससे शरीरका स्पर्श होनेसे मनुष्य निश्चय ही पुण्य और पापके छठे अंशके फलका भागी होता है। दूसरेके स्पर्शसे, भाषणसे तथा उसकी प्रशंसा करनेसे भी मानव सदा उसके पुण्य और पापके दसवें अंशको पाता है । दर्शन और श्रवणसे अथवा मनके द्वारा उसका चिन्तन करनेसे, वह दूसरेके पुण्य और पापका शतांश प्राप्त करता है । जो दूसरेकी निन्दा करता, चुगली खाता तथा उसे धिक्कार देता है, वह उसके किये हुए पातकको स्वयं लेकर बदलेमें उसे अपना पुण्य देता है। जो मनुष्य किसी पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषकी सेवा करता है, वह यदि उसकी पत्नी, भृत्य और शिष्योंसे भिन्न है तथा उसे उसकी सेवाके अनुरूप कुछ धन नहीं दिया जा रहा है, तो वह भी सेवाके अनुसार उस पुण्यात्माके पुण्यफलका भागी होता है । जो एक पंक्तिमें बैठे हुए पुरुषको रसोई परोसते समय छोड़कर आगे बढ़ जाता है, उसके पुण्यका छठा अंश वह छूटा हुआ व्यक्ति पा लेता है । स्नान और सन्ध्या आदि करते समय जो दूसरेका स्पर्श अथवा दूसरेसे भाषण करता है, वह अपने कर्मजनित पुण्यका छठा अंश उसे निश्चय ही दे डालता है । जो धर्मके उद्देश्यसे दूसरोंके पास जाकर धनकी याचना करता है, उसके उस पुण्यकर्मजनित फलका भागी वह धन देनेवाला भी होता है। जो दूसरोंका धन चुराकर उसके द्वारा पुण्यकर्म करता है, वहाँ कर्म करनेवाला तो पापी होता है तथा जिसका धन चुराकर उस कर्ममें लगाया गया है, वही उसके पुण्यफलको प्राप्त करता है । जो दूसरोंका ऋण चुकाये बिना मर जाता है, उसके पुण्यमेंसे वह धनी अपने धनके अनुरूप हिस्सा बँटा लेता है । जो बुद्धि (सलाह) देनेवाला, अनुमोदन करनेवाला, साधनसामग्री देनेवाला तथा बल लगानेवाला है, वह भी पुण्य-पापमेंसे छठे अंशको ग्रहण करता है। प्रजाके पुण्य और पापमेंसे छठा अंश राजा लेता है। इसी प्रकार शिष्यसे गुरु, स्त्रीसे उसका पति और पुत्रसे उसका पिता पुण्य-पापका छठा अंश ग्रहण करता है । स्त्री भी यदि अपने पतिके मनके अनुकूल चलनेवाली और सदा उसे सन्तुष्ट रखनेवाली हो, तो वह उसके पुण्यका आधा भाग प्राप्त कर लेती है। जो दूसरेके हाथसे दान आदि पुण्य कर्म करता है, उसके पुण्यका छठा अंश वह कर्ता ही ले लेता है परंतु यदि वह पुत्र अथवा भृत्य हो तो षष्ठांशका भागी नहीं होता है। वृत्ति देनेवाला पुरुष वृत्ति भोगनेवालेके पुण्यका छठा अंश ले लेता है। किंतु ऐसा तभी होता है, जब वह उस वृत्ति भोगनेवालेसे अपनी या दूसरेकी सेवा न कराता हो । इस प्रकार दूसरोंके द्वारा सञ्चित किये हुए पुण्य-पाप बिना दिये हुए भी आ जाते हैं। पूर्वकालमें एक दम्भी तपस्वी पतिव्रता स्त्रीके शुद्ध प्रभावसे, पिता-माताका पूजन देखनेसे, कार्तिकव्रतका सेवन करके उत्तम लोकको प्राप्त हो गया था ।

नारदजीने कहा—भगवन् ! मैं मासोपवासकी विधि और उसके फलका यथोचित वर्णन सुनना चाहता हूँ ।

ब्रह्माजीने कहा—नारद ! जैसे देवताओंमें भगवान् विष्णु श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण व्रतोंमें यह मासोपवास व्रत श्रेष्ठ है। अपने शरीरके बलाबलको समझकर मासोपवास व्रत करना चाहिये । आश्विनके शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास करके तीस दिनोंके लिये इस व्रतको ग्रहण करना चाहिये और उतने दिनोंतक भगवान्‌के मन्दिरमें जाकर तीनों समय भक्ति-पूर्वक नैवेद्य, धूप, दीप तथा नाना प्रकारके पुष्पोंसे मन,

वाणी और क्रियाद्वारा भगवान् गरुडध्वजकी पूजा करनी चाहिये । स्वधर्मपरायण मनुष्य और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाली सौभाग्यवती अथवा विधवा स्त्री भगवान् वासुदेवकी पूजा करे । दूसरेका अन्न ग्रहण न करे, परंतु स्वयं दूसरोंको अन्न दे । व्रतस्थ पुरुष शरीरमें उबटन लगाना, मस्तकमें तेल मलना, पान खाना और चन्दन आदिका लेप करना छोड़ दे । इसके सिवा अन्य निषिद्ध वस्तुओंका भी त्याग करे । व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य विपरीत कर्ममें लगे रहनेवाले किसी मनुष्यका न तो स्पर्श करे और न उससे वार्तालाप ही करे । गृहस्थ भी देवमन्दिरमें रहकर व्रतका आचरण करे । यथोक्त विधिसे मासोपवासव्रत पूरा करके द्वादशीमें परम पवित्र भगवान् विष्णुका पूजन करे, दक्षिणा दे । मासोपवासके अन्तमें तेरह ब्राह्मणोंका वरण करके वैष्णव यज्ञ करावे । तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें ताम्बूलसहित दो-दो वस्त्र देकर पूजनपूर्वक विदा करे । इस प्रकार मासोपवासकी विधि बतायी गयी ।

तुलसीविवाह और भीष्मपञ्चक-व्रतकी विधि एवं महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—कार्तिक शुक्ला नवमीको द्वापर युगका प्रारम्भ हुआ है । अतः वह तिथि दान और उपवासमें क्रमशः पूर्वाह्णव्यापिनी तथा पराह्णव्यापिनी हो तो ग्राह्य है । इसी तिथिको (नवमीसे एकादशीतक) मनुष्य शास्त्रोक्त विधिसे तुलसीके विवाहका उत्सव करे तो उसे कन्यादानका फल होता है । पूर्वकालमें कनककी पुत्री किशोरीने एकादशी तिथिमें सन्ध्याके समय तुलसीकी वैवाहिकविधि सम्पन्न की । इससे वह किशोरी वैधव्य दोषसे मुक्त हो गयी । अब मैं उसकी विधि बतलाता हूँ—एक तोला सुवर्णकी भगवान् विष्णुकी सुन्दर प्रतिमा तैयार करावे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार आधे या चौथाई तोलेकी ही प्रतिमा बनवा ले । फिर तुलसी और भगवान् विष्णुकी प्रतिमामें प्राणप्रतिष्ठा करके स्तुति आदिके द्वारा भगवान्को उठावे । पुनः पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा षोडशोपचारसे पूजा करे । पहले देश-कालका स्मरण करके गणेशपूजन करे, फिर पुण्याहवाचन कराकर नान्दीश्राद्ध करे । तत्पश्चात् वेदमन्त्रोंके उच्चारण और बाजे आदिकी ध्वनिके साथ भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको तुलसीजीके निकट लाकर रक्खे । प्रतिमाको वस्त्रोंसे आच्छादित किये रहे । उस समय भगवान्का इस प्रकार आवाहन करे—

आगच्छ भगवन् देव अर्चयिष्यामि केशव ।
तुभ्यं दास्यामि तुलसीं सर्वकामप्रदो भव ॥

'भगवान् केशव ! आइये, देव ! मैं आपकी पूजा करूँगा । आपकी सेवामें तुलसीको समर्पित करूँगा । आप मेरे सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करें ।'

इस प्रकार आवाहनके पश्चात् तीन-तीन बार अर्घ्य, पाद्य और विष्टरका उच्चारण करके इन्हें बारी-बारीसे भगवान्को समर्पित करे । फिर आचमनीय पदका तीन बार उच्चारण करके भगवान्को आचमन करावे । इसके बाद कांस्यके पात्रमें दही, घी और मधु रखकर उसे कांस्यके पात्रसे ही ढक दे तथा भगवान्को अर्पण करते हुए इस प्रकार कहे—'वासुदेव ! आपको नमस्कार है, यह मधुपर्क ग्रहण कीजिये ।' तदनन्तर हरिद्रालेपन और अभ्यङ्ग-कार्य सम्पन्न करके गोधूलिकी बेलामें तुलसी और श्रीविष्णुका पूजन पृथक्-पृथक् करना चाहिये । दोनोंको एक-दूसरेके सम्मुख रखकर मङ्गल-पाठ करे । जब भगवान् सूर्य कुछ-कुछ दिखायी देते हों, तब कन्यादानका सङ्कल्प करे । अपने गोत्र और प्रवरका उच्चारण करके आदिकी तीन पीढ़ियोंका भी आवर्तन करे । तत्पश्चात् भगवान्से इस प्रकार कहे—

अनादिमध्यनिधन त्रैलोक्यप्रतिपालक ।
इमां गृहाण तुलसीं विवाहविधिनेश्वर ॥
पार्वतीबीजसम्भूतां वृन्दाभस्मनि संस्थिताम् ।
अनादिमध्यनिधनां वल्लभां ते ददाम्यहम् ॥
पयोघटैश्च सेवाभिः कन्यावद्वर्द्धिता मया ।
त्वत्प्रियां तुलसीं तुभ्यं ददामि त्वं गृहाण भोः ॥

'आदि, मध्य और अन्तसे रहित त्रिभुवनप्रतिपालक परमेश्वर ! इस तुलसीको आप विवाहकी विधिसे ग्रहण करें । यह पार्वतीके बीजसे प्रकट हुई है, वृन्दाकी भस्ममें स्थित रही है तथा आदि, मध्य और अन्तसे शून्य है । आपको तुलसी बहुत ही प्रिय है, अतः इसे मैं आपकी सेवामें अर्पित करता हूँ । मैंने जलके घड़ोंसे सींचकर और अन्य प्रकारकी सेवाएँ करके अपनी पुत्रीकी भाँति इसे पाला, पोसा और बढ़ाया है, आपकी प्रिया तुलसी मैं आपको ही दे रहा हूँ । प्रभो ! आप इसे ग्रहण करें ।'

इस प्रकार तुलसीका दान करके फिर उन दोनों (तुलसी

और विष्णु) की पूजा करे । विवाहका उत्सव मनाये । सबेरा होनेपर पुनः तुलसी और विष्णुका पूजन करे । अग्निकी स्थापना करके उसमें द्वादशाक्षरमन्त्रसे खीर, घी, मधु और तिलमिश्रित हवनीय द्रव्यकी एक सौ आठ आहुति दे । फिर 'स्विष्टकृत्' होम करके पूर्णाहुति दे । आचार्यकी पूजा करके होमकी शेष विधि पूरी करे । उसके बाद भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—'देव ! प्रभो !! आपकी प्रसन्नताके लिये मैंने यह व्रत किया है । जनार्दन ! इसमें जो न्यूनता हो, वह आपके प्रसाद-से पूर्णताको प्राप्त हो जाय ।'

यदि द्वादशीमें रेवतीका चौथा चरण बीत रहा हो तो उस समय पारण न करे । जो उस समय भी पारण करता है, वह अपने व्रतको निष्फल कर देता है । भोजनके पश्चात् तुलसीके स्वतः गलकर गिरे हुए पत्तोंको खाकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । भोजनके अन्तमें ऊख, आँवला और बेरका फल खा लेनेसे उच्छिष्ट-दोष मिट जाता है ।

तदनन्तर भगवान्‌का विसर्जन करते हुए कहे—'भगवन् ! आप तुलसीके साथ वैकुण्ठधाममें पधारें । प्रभो ! मेरे द्वारा की हुई पूजा ग्रहण करके आप सदा सन्तुष्ट रहें ।' इस प्रकार देवेश्वर विष्णुका विसर्जन करके मूर्ति आदि सब सामग्री आचार्यको अर्पण करे । इससे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है ।

कार्तिक शुक्ल पक्षमें एकादशीको प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान करके पाँच दिनका व्रत ग्रहण करे । बाणशय्यापर सोये हुए महात्मा भीष्मने राजधर्म, मोक्षधर्म और दानधर्मका वर्णन किया, जिसे पाण्डवोंके साथ ही भगवान् श्रीकृष्णने भी सुना । उससे प्रसन्न होकर भगवान् वासुदेवने कहा—'भीष्म ! तुम धन्य हो, धन्य हो, तुमने धर्मोंका स्वरूप अच्छी तरह श्रवण कराया है । कार्तिककी एकादशीको तुमने जलके लिये याचना की और अर्जुनने बाणके वेगसे गङ्गाजल प्रस्तुत किया, जिससे तुम्हारे तन, मन, प्राण सन्तुष्ट हुए । इसलिये आजसे लेकर पूर्णिमातक तुम्हें सब लोग अर्घ्यदानसे तृप्त करें और मुझको सन्तुष्ट करनेवाले इस भीष्मपञ्चक नामक व्रतका पालन प्रतिवर्ष करते रहें ।'

निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर सव्यभावसे महात्मा भीष्मके लिये तर्पण करना चाहिये । यह भीष्मतर्पण सभी वर्णोंके लोगों-के लिये कर्तव्य है *। मन्त्र इस प्रकार है—

सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने ।
भीष्मायैतद् ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ॥

'आजन्म ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले परम पवित्र सत्य-व्रतपरायण गङ्गानन्दन महात्मा भीष्मको मैं यह अर्घ्य देता हूँ ।'

जो मनुष्य पुत्रकी कामनासे स्त्रीसहित भीष्मपञ्चकव्रतका पालन करता है, वह वर्षके भीतर ही पुत्र प्राप्त करता है । जो भीष्मपञ्चकव्रतका पालन करता है, उसके द्वारा सब प्रकारके शुभकृत्योंका पालन हो जाता है । यह महापुण्यमय व्रत महापातकोंका नाश करनेवाला है । अतः मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करना चाहिये । इसमें भीष्मजीके लिये जल-दान और अर्घ्यदान विशेष यत्नसे करना चाहिये । जो नीचे लिखे मन्त्रसे भीष्मजीके लिये अर्घ्यदान करता है, वह मोक्षका भागी होता है ।

अर्घ्य-मन्त्र

वैयाघ्रपदगोत्राय साङ्कृतप्रवराय च ।
अपुत्राय ददाम्येतदुदकं भीष्मवर्मणे ॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च ।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे ॥

'जिनका व्याघ्रपद गोत्र और साङ्कृत प्रवर है, उन पुत्र-रहित भीष्मवर्माको मैं यह जल देता हूँ । वसुओंके अवतार, शान्तनुके पुत्र, आजन्म ब्रह्मचारी भीष्मको मैं अर्घ्य देता हूँ ।'

पञ्चगव्य, सुगन्धित चन्दनके जल, चन्दन, उत्तम गन्ध और कुङ्कुमके द्वारा भक्तिपूर्वक सर्वपापहारी श्रीहरिका पूजन करे। कर्पूर और खस मिले हुए कुङ्कुमसे भगवान् गरुड़ध्वजके अङ्गोंमें लेप करे । सुन्दर पुष्प एवं गन्ध, धूप आदिके द्वारा भगवान्‌की अर्चना करे । पाँच दिनोंतक भगवान्‌के समीप दिन-रात दीपक जलाता रहे । देवाधिदेव भगवान्‌के लिये उत्तम-से-उत्तम नैवेद्य निवेदन करे । इस प्रकार भगवान्‌की पूजा-अर्चा, ध्यान और नमस्कारके पश्चात् 'ॐ नमो वासुदेवाय' इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे । फिर घी मिलाये हुए तिल, चावल और जौ आदिके द्वारा स्वाहाविशिष्ट षडक्षर (ॐ रामाय नमः) मन्त्रसे आहुति दे । इसके बाद सायं-सन्ध्या करके भगवान् विष्णुको प्रणाम करे तथा पूर्ववत् मन्त्र जपकर धरतीपर ही शयन करे । भक्तिपूर्वक भगवान्‌में ही मनको लगावे । व्रतके समय बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पापपूर्ण विचार तथा पापके कारणभूत मैथुनका परित्याग करे । शाकाहार तथा मुनियोंके अन्नसे निर्वाह करते हुए सदा भगवान् विष्णुके पूजनमें तत्पर रहे । रात्रिमें पञ्चगव्य लेकर

---

* सव्येनानेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम् ।
(स्क० पु० वै० का० मा० ३२ । १०)

भोजन करे। इस प्रकार भलीभाँति व्रतको समाप्त करे। ऐसा करनेसे मनुष्य शास्त्रोक्त फलको पाता है। स्त्रियोंको अपने पतिकी आज्ञा लेकर पुण्यकी वृद्धि करनी चाहिये। विधवाओंको भी मोक्षसुखकी वृद्धिके लिये व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। पहले अयोध्यापुरीमें कोई अतिथि नामके राजा हो गये हैं। उन्होंने वशिष्ठजीके वचनसे इस परम दुर्लभ व्रतका अनुष्ठान किया था, जिससे इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें वे भगवान् विष्णुके परम धाममें गये। इस प्रकार नियम, उपवास और पञ्चगव्यसे तथा दूध, फल, मूल एवं हविष्यके आहारसे निर्वाह करते हुए भीष्मपञ्चक व्रतका पालन करे। पौर्णमासी आनेपर पहलेके समान पूजन करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे और बछड़े सहित गौका दान करे। एकादशीसे लेकर पूर्णिमातक पाँच दिनोंका भीष्मपञ्चकव्रत समस्त भूमण्डलमें प्रसिद्ध है। अन्न भोजन करनेवाले पुरुषके लिये यह व्रत नहीं कहा गया है, इसमें अन्नका निषेध है। इस व्रतका पालन करनेपर भगवान् विष्णु शुभ फल प्रदान करते हैं।

एकादशीको भगवान्‌के जगानेकी विधि, कार्तिकव्रतका उद्यापन और अन्तिम तीन तिथियोंकी महिमाके साथ ग्रन्थका उपसंहार

ब्रह्माजी कहते हैं—जो पुरुष कार्तिक मासमें प्रतिदिन पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा अथवा पाञ्चरात्र आगममें बतायी हुई विधिके अनुसार भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह मोक्षका भागी होता है। जो कार्तिकमें 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रसे श्रीहरिकी आराधना करता है, वह नरकके दुःखोंसे मुक्त हो, रोग-शोकसे रहित वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। कार्तिक मासमें जो मनुष्य विष्णुसहस्रनाम तथा गजेन्द्र-मोक्षका पाठ करता है, उसका फिर संसारमें जन्म नहीं होता। सुव्रत! जो कार्तिक मासमें रात्रिके पिछले पहरमें भगवान्‌की स्तुतिका गान करता है, वह पितरोंसहित श्वेतद्वीपमें निवास करता है। आषाढ़के शुक्ल पक्षमें एकादशी तिथिको शङ्खासुर दैत्य मारा गया है। अतः उसी दिनसे आरम्भ करके भगवान् चार मासतक क्षीरसमुद्रमें शयन करते हैं और कार्तिक शुक्ला एकादशीको जागते हैं। इस कारण वैष्णवोंको एकादशीमें निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करके भगवान्‌को जगाना चाहिये।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यमङ्गलं कुरु॥

'हे गोविन्द! उठिये, उठिये, हे गरुड़ध्वज! उठिये, हे कमलाकान्त! निद्राका त्याग कर तीनों लोकोंका मङ्गल कीजिये।'

ऐसा कहकर प्रातःकाल शङ्ख और नगाड़े आदि बजवावे। वीणा, वेणु और मृदङ्ग आदिकी मधुर ध्वनिके साथ नृत्य-गीत और कीर्तन आदि करे। देवेश्वर श्रीविष्णुको उठाकर उनकी पूजा करे और सायंकालमें तुलसीकी वैवाहिक विधिको सम्पन्न करे। एकादशी सदा ही पवित्र है, विशेषतः कार्तिककी एकादशी परम पुण्यमयी मानी गयी है। उत्तम बुद्धिवाला मनुष्य वृद्ध माता-पिताका विधिपूर्वक पूजन करके अपनी स्त्रियोंके साथ भगवान् विष्णुके प्रसादको भक्षण करे। जो इस प्रकार विधिसे द्वादशी व्रतका अनुष्ठान करता है, वह मनुष्य उत्तम सुखोंका उपभोग करके अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्य द्वादशी तिथिके इस परम उत्तम पुण्यमय माहात्म्यका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है।

अब मैं कार्तिक-व्रतके उद्यापनका वर्णन करता हूँ, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीको व्रतकी पूर्ति और भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये उद्यापन करे। तुलसीके ऊपर एक सुन्दर मण्डप बनवावे। उसे केलेके खंभोंसे संयुक्त करके नाना प्रकारकी धातुओंसे उसकी विचित्र शोभा बढ़ावे। मण्डपके चारों ओर दीपकोंकी श्रेणी सुन्दर ढंगसे सजाकर रक्खे। उस मण्डपमें सुन्दर बंदनवारोंसे सुशोभित चार दरवाजे बनावे और उन्हें फूलों तथा चँवरसे सुसज्जित करे। द्वारोंपर पृथक्-पृथक् मिट्टीके द्वारपाल बनाकर उनकी पूजा करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—जय, विजय, चण्ड, प्रचण्ड, नन्द, सुनन्द, कुमुद और कुमुदाक्ष। उन्हें चारों दरवाजोंपर दो-दोके क्रमसे स्थापित कर भक्तिपूर्वक पूजन करे। तुलसीकी जड़के समीप चार रंगोंसे सुशोभित सर्वतोभद्रमण्डल बनावे और उसके ऊपर पूर्णपात्र तथा पञ्चरत्नसे संयुक्त कलशकी स्थापना करे। कलशके ऊपर शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका पूजन करे। भक्तिपूर्वक उस तिथिमें उपवास करे तथा रात्रिमें गीत, वाद्य, कीर्तन आदि मङ्गलमय आयोजनोंके साथ जागरण करे। जो भगवान् विष्णुके लिये जागरण करते समय भक्तिपूर्वक भगवत्सम्बन्धी पदोंका गान करते हैं, वे सैकड़ों जन्मोंकी पापराशिसे मुक्त हो जाते हैं। उसके बाद पूर्णमासीमें एक सपत्नीक ब्राह्मणको निमन्त्रित करे। प्रातःकाल स्नान और देवपूजन करके वेदीपर अग्निकी स्थापना करे और 'अतो देव' इत्यादि मन्त्रसे

द्वारा देवाधिदेव भगवान्‌की प्रीतिके लिये तिल और खीरकी आहुति दे। होमकी शेष विधि पूरी करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन करे और उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा दे। भगवान् द्वादशी तिथिको शयनसे उठे, त्रयोदशीको देवताओंसे मिले और चतुर्दशीको सबने उनका दर्शन एवं पूजन किया, इसलिये उस तिथिमें भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। गुरुकी आज्ञासे भगवान् विष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमाका पूजन करे। इस पूर्णिमाको पुष्कर तीर्थकी यात्रा श्रेष्ठ मानी गयी है। नारद! कार्तिक मासमें इस विधिका पालन करना चाहिये। जो इस प्रकार कार्तिकके व्रतका पालन करते हैं, वे धन्य और पूजनीय हैं; उन्हें उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जो भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर हो कार्तिकमें व्रतका पालन करते हैं, उनके शरीरमें स्थित सभी पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जो श्रद्धापूर्वक कार्तिकके उद्यापन-का माहात्म्य सुनता है या सुनाता है, वह भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त करता है।

भगवान् विष्णुकी पूजामें रात्रिकालव्यापिनी चतुर्दशी ग्रहण करनी चाहिये और अरुणोदयके समय भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये। सायंकाल काशीके पञ्चगङ्गातीर्थमें स्नान करके भगवान् बिन्दुमाधवकी पूजा करे। पहले विष्णुकाञ्चीमें स्नान करके भगवान् अनन्तशेनकी पूजा करे। फिर रुद्रकाञ्चीमें स्नान करके ओङ्कारेश्वरके अग्नितीर्थमें नहाकर भगवान् नारायणकी, रेतोदकमें स्नान करके केदारेश्वरकी, प्रयागकी यमुनामें नहाकर भगवान् वेणी-माधवकी और फिर गङ्गामें स्नान करके सङ्गमेश्वरकी पूजा करे। जो ऐसा करता है, उसके सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ अधीन हो जाती हैं।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षमें जो अन्तिम तीन पुण्यमयी तिथियाँ हैं, वे त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा कल्याण करनेवाली मानी गयी हैं। उनकी अति पुष्करिणी संज्ञा है। वे सब पापोंका नाश करनेवाली हैं। जो पूरे कार्तिक मासमें स्नान करता है, वह इन्हीं तीन तिथियोंमें स्नान करके पूर्ण फलका भागी होता है। त्रयोदशीमें समस्त वेद आकर प्राणियोंको पवित्र करते हैं, चतुर्दशीमें यज्ञ और देवता सब जीवोंको पावन बनाते हैं और पूर्णिमामें भगवान् विष्णुसे अधिष्ठित सम्पूर्ण श्रेष्ठ तीर्थ ब्रह्मघाती और शराबी आदि सब पापी प्राणियोंको शुद्ध करते हैं। जो गृहस्थ उक्त तीन तिथियोंमें ब्राह्मणकुटुम्बको भोजन कराता है, वह अपने समस्त पितरोंका उद्धार करके परम पदको प्राप्त होता है। जो कार्तिकके अन्तिम तीन दिनोंमें गीतापाठ करता है, उसे प्रतिदिन अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। जो उक्त तीनों दिन विष्णुसहस्रनामका पाठ करता है, वह जलसे कमलके पत्तोंकी भाँति पापोंसे कभी लिप्त नहीं होता। वैसा करनेवाले कुछ मनुष्य देवता और कुछ सिद्ध होते हैं। कार्तिक मासकी अन्तिम तीन तिथियोंमें सब पुण्योंका उदय होता है। उनमें भी पूर्णिमाका महत्त्व विशेष है। पूर्णिमाको प्रातःकाल उठकर शौच-स्नानादिसे निवृत्त हो समस्त नित्यकर्मोंकी समाप्ति करके भगवान् विष्णुका पूजन करे। बगीचेमें अथवा घरपर भगवद्भक्त पुरुष कार्तिक-पूर्णिमाके दिन मण्डप बनावे। उसे केलेके खंभों-से सुशोभित करे। उसमें आमके पल्लवोंकी बंदनवार लगावे और ऊखके डंडे खड़े करके उस मण्डपको सजावे। विचित्र वस्त्रोंसे मण्डपको अलङ्कृत करके उसमें भगवान् विष्णुकी पूजा करे। पवित्र, चतुर, शान्त, ईर्ष्यारहित, साधु, दयालु, उत्तम वक्ता और श्रेष्ठ बुद्धिवाला पुराणज्ञ विद्वान् वहाँ बैठकर पवित्र कथा कहे। पौराणिक विद्वान् जब व्यासासनपर बैठ जाय, तबसे लेकर उस प्रसङ्गकी समाप्ति होनेतक किसीको नमस्कार न करे। जहाँ दुष्ट मनुष्य भरे हुए हों, जो शूद्र और हिंसक प्राणियोंसे घिरा हुआ हो अथवा जहाँ जुएका अड्डा हो—ऐसे स्थानमें बुद्धिमान् पुरुष पुण्यकथा न कहे। जो श्रद्धा और भक्तिसे संयुक्त, अन्य कार्योंकी अभिलाषा न रखनेवाले, मौन, पवित्र एवं चतुर हों, वे ही श्रोता पुण्यके भागी होते हैं। जो मनुष्य बिना भक्तिके तथा अधम भाव लेकर पवित्र कथाको सुनते हैं, उनको पुण्यफल नहीं प्राप्त होता। मासके अन्तमें गन्ध-माल्य-वस्त्र-आभूषण तथा धनके द्वारा भक्तिपूर्वक पौराणिक विद्वान्‌का पूजन करे। जो मनुष्य कल्याणमयी पुराणकथाको सुनाते हैं, वे सौ कोटि कल्पोंसे अधिक कालतक ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। जो पौराणिक विद्वान्‌के बैठनेके लिये कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, चौकी अथवा पलंग देते हैं, जो पहननेके लिये कपड़े देते हैं, वे ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। यह कार्तिक-माहात्म्य सब रोगों और सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य इस माहात्म्यको भक्तिपूर्वक पढ़ता और जो सुनकर धारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जिसकी बुद्धि खोटी हो तथा जो श्रद्धासे हीन हो, ऐसे किसी भी मनुष्यको यह माहात्म्य नहीं सुनाना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—ब्रह्माजीके मुखसे इस प्रकार कार्तिक-माहात्म्यकी कथा सुनकर नारदजी प्रेममें मग्न हो गये। उन्होंने ब्रह्माजीको बारंबार प्रणाम किया और स्वेच्छानुसार वहाँसे चले गये।

कार्तिकमास-माहात्म्य सम्पूर्ण।

मार्गशीर्षमास-माहात्म्य

मार्गशीर्ष मासमें प्रातःस्नानकी महिमा, स्नानविधि, तिलक-धारण, गोपीचन्दनका माहात्म्य, तुलसीमालाका महत्त्व, भगवत्पूजनका विधान और शङ्खकी महिमा

सूतजी कहते हैं—

देवकीनन्दनं कृष्णं जगदानन्दकारकम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं वन्दे माधवं भक्तवत्सलम् ॥

'जो सम्पूर्ण जगत्को आनन्द प्रदान करनेवाले तथा भोग और मोक्ष देनेवाले हैं, उन लक्ष्मीपति भक्तवत्सल देवकीनन्दन श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।'

श्वेतद्वीपमें देवाधिदेव भगवान् रमाकान्त सुखसे विराजमान थे। उस समय ब्रह्माजीने उन्हें नमस्कार करके पूछा—'हृषीकेश ! आप सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाले

हैं। आपके नामोंका श्रवण और कीर्तन परम पवित्र है। आपने पहले यह कहा है कि 'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्'—महीनोंमें मैं मार्गशीर्ष हूँ। अतः उस महीनेका माहात्म्य क्या है, यह मैं यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ।'

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन् ! जो कोई पुण्य करनेवाले मेरे भक्त हैं, उन्हें मार्गशीर्ष मासका व्रत अवश्य करना चाहिये, क्योंकि यह मेरी प्राप्ति करानेवाला है। मार्गशीर्ष मास मुझे सदैव प्रिय है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर मार्गशीर्षमें विधिपूर्वक स्नान करता है, उसपर सन्तुष्ट होकर मैं अपने आपको भी उसे समर्पित कर देता हूँ। इस विषयमें इस इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं—इस पृथ्वीपर महात्मा नन्दगोप सर्वत्र विख्यात थे। उनके रमणीय गोकुलमें सहस्रों गोपकन्याएँ थीं। उन सबका चित्त मेरे स्वरूपमें लग गया। तब मैंने उन्हें मार्गशीर्षमें स्नान करनेकी सलाह दी। उन्होंने उस समय प्रतिदिन प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान और पूजन किया, हविष्यान्न भोजन किया और अपने इष्टदेवको नमस्कार किया। इस प्रकार विधिपूर्वक मार्गशीर्षव्रतका पालन करनेसे मैं उनपर बहुत प्रसन्न हुआ और वरदानके रूपमें मैंने अपने आपको ही उनके अर्पित कर दिया। अतः सब लोगोंको मार्गशीर्षव्रतकी विधिका पालन करना चाहिये।

रात्रिके अन्तमें शयनसे उठकर विधिपूर्वक आचमन करके अपने गुरुको नमस्कार करे तथा आलस्य छोड़कर मेरा चिन्तन करे। भक्तिपूर्वक सहस्रनामोंका पाठ एवं कीर्तन करे। फिर मौन होकर गाँवके बाहर जाय और विधिपूर्वक मल-मूत्रका त्याग करके हाथ-मुँह धोवे, यथोचित रीतिसे कुल्ला करे तथा शुद्ध होकर दन्तधावनपूर्वक स्नान करे। स्नानकी विधि इस प्रकार है—तुलसीके जड़की मिट्टीको उसके पत्रके साथ लेकर मूलमन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) अथवा गायत्रीमन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित करे। मन्त्रसे ही उस मृत्तिकाको अपने अङ्गोंमें लगावे और जलमें प्रवेश करके अघमर्षण स्नान करे। विद्वान् पुरुष उक्त अष्टाक्षर मन्त्रसे ही तीर्थकी कल्पना करे। 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रको ही मूलमन्त्र कहा गया है। स्नान करते समय निम्नाङ्कित मन्त्रसे गङ्गाजीकी प्रार्थना करे।

विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता ।
त्राहि नस्त्वमघादस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ॥

'गङ्गे ! तुम भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हो,
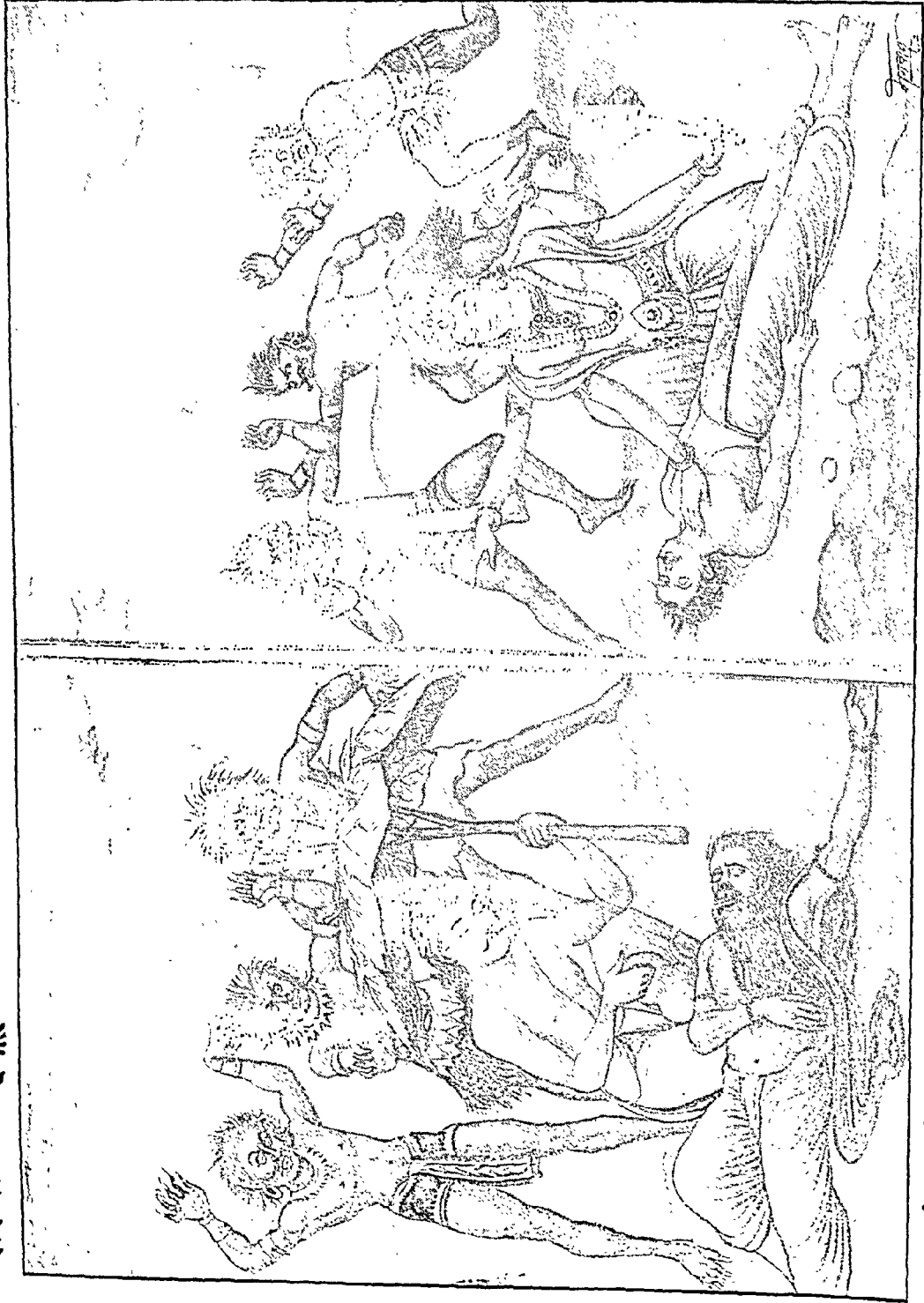
हेमकान्तके द्वारा त्रितमुनिको छत्र-जल-दान

छत्र और जल-दानसे हेमकान्तपर भगवत्कृपा [पृष्ठ ३६६
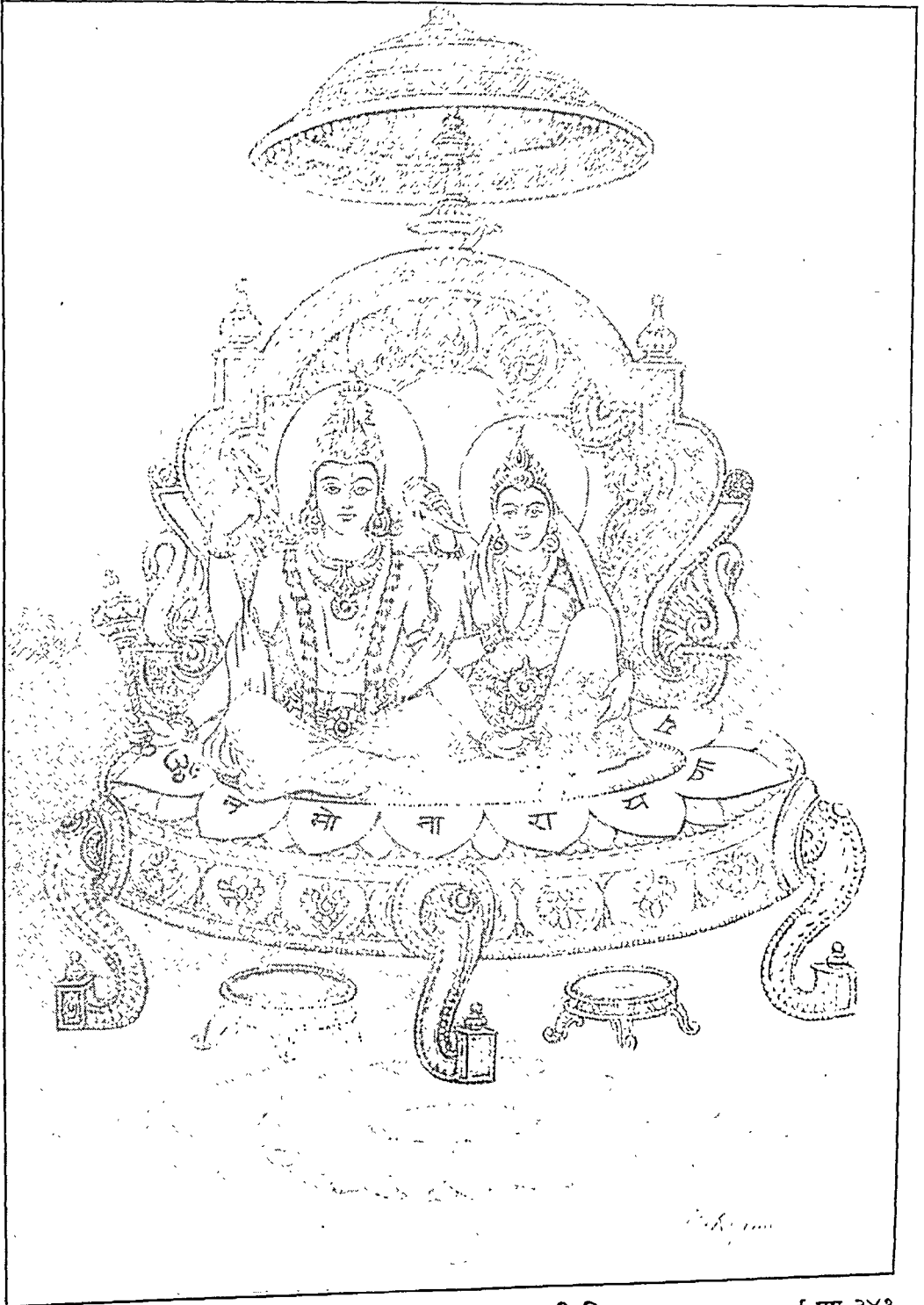
रत्नसिंहासनपर भगवान् लक्ष्मी-विष्णु

[पृष्ठ ३४१

इसलिये वैष्णवी हो। श्रीविष्णु ही तुम्हारे देवता हैं। तुम जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त सभी पापोंसे मेरी रक्षा करो।'

इस प्रकार सात बार जप करके हाथ जोड़कर तीर्थ-जलको प्रणाम करे और तीन, चार, पाँच या सात बार जलमें गोता लगावे। तत्पश्चात् पूर्ववत् मिट्टीको भी अभिमन्त्रित करके उससे शरीरमें लेप करे तथा नहावे। मृत्तिकाको अभिमन्त्रित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
नमस्ते सर्वभूतानां प्रभवारणि सुव्रते॥

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चलते हैं, भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने पगोंसे नाप लिया था। मृत्तिके! मैंने जो दुष्कर्म किया है, उस मेरे सारे पापको तुम हर लो। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवी! जैसे अरणीसे अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार तुम समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका अधिष्ठान हो। तुम्हें सैकड़ों भुजाओंवाले वराहावतारधारी भगवान् विष्णुने एकार्णवके जलसे ऊपर निकाला है, तुम्हें नमस्कार है।'

इस प्रकार स्नान करके विधिपूर्वक आचमन करे और जलाशयके किनारे आकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करे। तत्पश्चात् पुनः आचमन करके देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंका तर्पण करनेके बाद खोले हुए वस्त्रको निचोड़े। तदनन्तर पुनः आचमन करके धौत वस्त्रसे अपनेको आच्छादितकर तीर्थकी विमल मृत्तिका हाथमें ले और उक्त मन्त्रसे ही अभिमन्त्रित करके उसके द्वारा वैष्णव पुरुष ललाट आदि अङ्गोंमें ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। ललाटमें तिलक लगाते समय 'केशवाय नमः' कहकर भगवान् केशवका चिन्तन करे। इसी प्रकार उदरमें नारायण, वक्षःस्थलमें माधव, कण्ठकूपमें गोविन्द, दाहिनी कुक्षिमें विष्णु, दाहिनी भुजामें मधुसूदन, कानोंके मूलभागमें त्रिविक्रम, वामपार्श्वमें वामन, बायीं भुजामें श्रीधर, पीठमें पद्मनाभ, गर्दनके पीछे दामोदर और मस्तकमें भगवान् वासुदेवका न्यास एवं चिन्तन करे। इस प्रकार भगवान् विष्णुके सालोक्यकी सिद्धिके लिये नित्य ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये।

जो द्वारकाकी मृत्तिकाको हाथमें लेकर उससे प्रतिदिन अपने ललाटमें ऊर्ध्वपुण्ड्र करता है, उसके द्वारा किये जानेवाले सत्कर्मोंका फल कोटिगुना हो जाता है। ललाटमें गोपीचन्दनका तिलक करनेसे मनुष्य अपने कर्मोंका अक्षय फल पाता है। जो ब्राह्मण गोपीचन्दनका सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र प्रतिदिन अपने ललाटमें धारण करता है, वह मेरे धाममें स्थित होता है और मैं लक्ष्मीजीके साथ उस घरमें सदैव निवास करता हूँ। मृत्युकालमें जिसकी भुजाओंमें, ललाटमें, हृदयमें और मस्तकमें गोपीचन्दन लगा होता है, वह मुझ लक्ष्मीपतिके लोकमें जाता है। जिसके ललाटमें गोपीचन्दन विद्यमान है, उसको मेरे प्रभावसे ग्रह, राक्षस, यक्ष, पिशाच, नाग और भूत आदि पीड़ा नहीं देते हैं। चतुरानन! मेरा प्रिय करनेके लिये तथा अपने कल्याण और रक्षाके लिये मेरा भक्त प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल मेरी पूजा और होममें एकाग्रचित्त हो, ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। ऊर्ध्वपुण्ड्र संसारबन्धनका नाश करनेवाला है।

जो तुलसीकाष्ठकी माला मुझे भक्तिपूर्वक निवेदन करके फिर प्रसादरूपसे उसको स्वयं धारण करता है, उसके पातकोंका नाश हो जाता है और उसके ऊपर मैं सदैव प्रसन्न रहता हूँ। जिसके घरमें तुलसीका काष्ठ अथवा तुलसीका हरा या सूखा पत्ता रहता है, उसके घरमें कलियुगका पाप नहीं फैलता। इसलिये तुलसीकी मालाको प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये। पद्माक्ष और आँवलेकी माला भी भक्तिपूर्वक मुझे निवेदन करके धारण की जाय, तो वह उत्तम पुण्य देनेवाली होती है।

रत्नमय सिंहासनकी भावना करके उसके ऊपर अष्टदल कमलका चिन्तन करे। उसके प्रत्येक दलमें 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्रका एक-एक अक्षर है। उस कमलपर बैठे हुए कोटि-कोटि चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुझ चतुर्भुज विष्णुका ध्यान करे। उस समय मेरे हाथोंमें महान् पद्म, शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित हैं, नेत्र विकसित कमलदलके समान बिशाल हैं, विग्रह समस्त शुभ लक्षणोंसे लक्षित है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्स चिह्न और कौस्तुभमणि शोभा पा रहे हैं, कटिप्रदेशमें पीताम्बर शोभायमान है, मेरा स्वरूप दिव्य अलङ्कारोंसे अलङ्कृत, दिव्य चन्दनोंसे चर्चित, दिव्य पुष्पोंसे सुशोभित तथा तुलसीके कोमल दल और वनमालासे विभूषित है। मेरी अङ्गकान्ति करोड़ों प्रभातकालीन सूर्योंके सदृश उद्भासित हो रही है। मेरे साथ समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिव्यरूपा महालक्ष्मीजी भी विराजमान हैं। इस प्रकार मेरा ध्यान करते हुए एकाग्रचित्त हो मेरे

मन्त्रका यथाशक्ति हजार या सौ बार जप करे। पहले मानसिक पूजन करके फिर पूजन-सामग्रियोंद्वारा विधिपूर्वक बाह्य पूजा करे। मेरा स्मरण करके पूजनके प्रारम्भमें मङ्गलपाठ करे। उसके बाद मेरे परम प्रिय पाञ्चजन्य शङ्खकी पूजा करे। शङ्खके पूजनमें निम्नाङ्कित मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए प्रार्थना करे—

> त्वं पुरा सागरोत्पन्न विष्णुना विधृतः करे।
> निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते॥
> तव नादेन जीमूता वित्रसन्ति सुरासुराः।
> शशाङ्कायुतदीप्ताभ पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते॥

'पाञ्चजन्य शङ्ख! तुम पूर्वकालमें समुद्रसे उत्पन्न हुए और भगवान् श्रीविष्णुने तुम्हें अपने हाथमें धारण किया तथा सम्पूर्ण देवताओंने मिलकर तुम्हें सँवारा है। तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारी गम्भीर ध्वनिसे मेघ डर जाते हैं, देवता और असुर थर्रा उठते हैं, तुम्हारी उज्ज्वल आभा दस हजार चन्द्रमाओंसे भी अधिक उद्दीप्त है। पाञ्चजन्य! तुम्हें नमस्कार है।'

तत्पश्चात् सुगन्धित तेलसे मेरे विग्रहमें अभ्यङ्ग (आमर्दन) करे। फिर कस्तूरीके चन्दनसे उबटन आदि लगावे। उत्तम गन्धसे वासित शुभ जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक नहलाकर पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय अर्पण करे। उसके बाद अन्य सब उपचारोंको भी क्रमशः चढ़ावे। पीठको दिव्य वस्त्र और आभूषणोंसे अलङ्कृत करके पुष्पोंसे उसकी पूजा करे। उसके ऊपर मेरे विग्रहको पधराकर श्रद्धापूर्वक मेरे लिये वस्त्र, अलङ्कार और गन्ध आदि निवेदन करे। खीर तथा पूआ आदिके साथ नाना प्रकारका नैवेद्य भोग लगावे। फिर भक्तिपूर्वक कर्पूरयुक्त ताम्बूल भेट करे। उत्तम गन्धवाले पुष्पोंको भक्तिभावसे निवेदन करे। दशाङ्ग अथवा अष्टाङ्ग धूप देकर अतिशय सुन्दर दीप जलाकर रक्खे। प्रणाम करके आदरपूर्वक स्तुति करे। तदनन्तर पलंगपर सुलाकर मङ्गल अर्घ्य निवेदन करे।

द्वादशी अथवा पूर्णिमाको यदि गायके दूधसे मुझे स्नान कराया जाय, तो वह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य मार्गशीर्ष मासमें मुझको मधु और शक्करसे स्नान कराता है, वह स्वर्गसे इस लोकमें लौटनेपर राजा होता है। जो अगहनमें मुझे दूधसे नहलाता है, वह स्वर्गलोकमें चन्द्रमा, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गणोंपर विजय पाता है। जो उपासक मार्गशीर्षके महीनेमें शङ्खमें तीर्थका जल लेकर उसकी एक बूँदसे भी मुझे नहलाता है, वह अपने समूचे कुलको तार देता है। जो अगहन मासमें भक्तिपूर्वक शङ्ख-ध्वनि करके मुझे स्नान कराता है, उसके पितर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होते हैं। जो शङ्खमें जल लेकर 'ॐ नमो नारायणाय' का उच्चारण करते हुए मुझे नहलाता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। नदी, तड़ाग, बावड़ी और कूआँ आदिका जो जल शङ्खमें रक्खा जाता है, वह सब गङ्गाजलके समान हो जाता है। जो वैष्णव मेरे चरणोदकको शङ्खमें रखकर अपने मस्तकपर धारण करता है, वह तपस्वी मुनियोंमें सबसे श्रेष्ठ है। तीनों लोकोंमें जितने तीर्थ हैं, वे सब मेरी आज्ञासे शङ्खमें निवास करते हैं, इसलिये शङ्ख श्रेष्ठ माना गया है। जो शङ्खमें फूल, जल और अक्षत रखकर मुझे अर्घ्य देता है, उसे अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो वैष्णव मेरे मस्तकपर शङ्खका जल घुमाकर उससे अपने घरको सींचता है, उसके घरमें कोई अशुभ नहीं होता है। बाजोंके उच्च स्वर और गीत-कीर्तन आदिके मङ्गलमय शब्दोंके साथ जो भक्तिपूर्वक मुझे स्नान कराता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

भगवान्‌के पूजनमें घण्टानाद, चन्दन, पुष्प, तुलसीदल, धूप और दीपका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—घण्टा सर्ववाद्यमय है, वह मुझे सर्वदा प्रिय है। मेरी पूजाके समय उसे बजानेसे मनुष्य सौ कोटि यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। घण्टानाद सदा ही करने योग्य है। विशेषतः मेरी पूजाके समय घण्टा अवश्य बजाना चाहिये। मृदङ्ग और शङ्खकी ध्वनि तथा प्रणवके उच्चारण-के साथ किया हुआ मेरा पूजन मनुष्योंको सदैव मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मेरे पूजनके समय जो घण्टानाद करता है, उसके सौ जन्मोंके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य गरुड़की पीठपर लक्ष्मीके साथ बैठे हुए मुझ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मधारी विष्णुकी पूजा करते हैं, वे मेरे धामको प्राप्त होते हैं। मेरे समीप गीत, कीर्तन और नृत्य करके मनुष्य अपने पितरोंका उद्धार करता है। जो गरुड़चिह्नसे युक्त घण्टा हाथमें लेकर धूप, आरती, स्नान, पूजा और विलेपनके समय मेरे आगे प्रतिदिन बजाता है, वह प्रत्येक उपचारमें बजानेके बदले सौ-सौ चान्द्रायणसे प्राप्त होनेवाले फलको पाता है। जो तुलसीकाष्ठका घिसा हुआ चन्दन मुझे

अर्पण करता है, उसके सौ जन्मोंके समस्त पातकोंको मैं भस्म कर देता हूँ। जो कलियुगके मार्गशीर्ष मासमें मुझे तुलसी-काष्ठका चन्दन देते हैं, वे निश्चय ही कृतार्थ हो जाते हैं। जो शङ्खमें चन्दन रखकर मार्गशीर्ष मासमें मेरे अङ्गोंमें लगाता है, उसके ऊपर मैं विशेष प्रेम करता हूँ। जो अगहनमें तुलसीदल और आँवलोंसे भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मनोवाञ्छित फलको पाता है।

बेला, चमेली, जूही, अतिमुक्ता (माधवीलता), कनेर, वैजयन्ती, विजया, चमेलीके गुच्छे, कर्णिकार, कुरैया, चम्पक, चातक, कुन्द, कर्चूर, मल्लिका, अशोक, तिलक तथा अपर-यूथिका इत्यादि फूल मेरी पूजाके लिये उत्तम होते हैं। केतकीका पत्ता और पुष्प, भृङ्गराज, तुलसीका पत्ता और फूल—ये सब मुझे शीघ्र प्रसन्न करनेवाले हैं। लाल, नील और सफेद कमल मार्गशीर्ष मासमें मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरी पूजाके लिये वे ही फूल उत्तम माने गये हैं, जो सुन्दर रंगवाले होनेके साथ ही सरस और सुगन्धित हों। बिल्वपत्र, शमीपत्र, भृङ्गराजपत्र और आमलकीपत्र—ये मेरे पूजनके लिये शुभ हैं। वन अथवा पर्वतमें उत्पन्न होनेवाले फूल और पत्र यदि तुरंतके तोड़े हुए छिद्ररहित और कीटवर्जित हों, तो उन्हें जलसे धोकर उनके द्वारा मेरी पूजा करनी चाहिये। बगीचेमें खिलनेवाले फूलोंसे भी मेरी पूजा की जा सकती है। जिन वृक्षोंके फूल मेरी पूजाके लिये उत्तम माने गये हैं, उनके पत्ते भी उत्तम हैं। फूलों और पत्तोंके अभावमें उनके फल भी चढ़ाये जा सकते हैं। इन पत्तों, फलों और फूलोंसे जो अगहनमें मेरी पूजा करता है, उसपर प्रसन्न होकर मैं अपनी भक्ति देता हूँ।

जो मनुष्य तुलसीकी मञ्जरियोंसे मेरी पूजा करता है, वह मोक्षका भागी होता है। जो तुलसीका पौधा लगाकर उसके पत्तोंसे मेरी पूजा करता है, वह मेरे निवासस्थान श्वेतद्वीपमें आनन्दका अनुभव करता है। जो तुलसीदलसे प्रतिदिन मुझ लक्ष्मीपतिकी पूजा करता है, उसके महापातक भी नष्ट हो जाते हैं, फिर उपपातकोंकी तो बात ही क्या है। बासी फूल और बासी जल पूजाके लिये वर्जित हैं। परंतु तुलसीदल और गङ्गाजल बासी होनेपर भी वर्जित नहीं हैं*। बिल्वपत्र, शमीपत्र, चमेलीपत्र और कमल तथा कौस्तुभमणिसे भी तुलसीदल मुझे अधिक प्रिय है। जिसके पत्ते कटे न हों और जो मञ्जरीके साथ हो, ऐसी तुलसी मुझे लक्ष्मीके समान प्रिय है। जैसी कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षोंकी एकादशी मुझे प्रिय है, उसी प्रकार गौर और कृष्ण दोनों प्रकारकी तुलसी मुझे प्रिय है। कौस्तुभ आदि असंख्य रत्न तभीतक गर्जते हैं, जबतक कि श्यामा तुलसीकी श्याम मञ्जरी नहीं मिलती है। जो मेरी पूजाके लिये माँगनेवालोंको तुलसीदल देते हैं तथा अन्य भक्तोंको भी तुलसीदल अर्पण करते हैं, वे मेरे अविनाशी धामको जाते हैं।

जो काले अगुरुके बने हुए धूपसे मेरे मन्दिरको सुवासित करता है, वह वैष्णव नरक-समुद्रसे मुक्त हो जाता है। गुग्गुलमें भैंसका घी और शक्कर मिलाकर जो मुझे धूप देता है, उसकी अभिलाषाको मैं पूर्ण करता हूँ। अगुरुका धूप देह और गेह दोनोंको पवित्र करता है, रालका बना हुआ धूप यक्षों और राक्षसोंका नाश करता है। चमेलीका फूल, इलायची, गुग्गुल, हर्रे, कूट, राल, गुड़, छडछरीला और वज्रनखी नामक गन्ध-द्रव्य—इनके साथ धूपका संयोग होनेसे इन सबको दशाङ्ग धूप कहते हैं†। यदि मेरे अत्यन्त प्रिय मार्गशीर्ष मासमें कोई मनुष्य दशाङ्ग धूप देता है, तो मैं उसे अत्यन्त दुर्लभ मनोरथ, बल, पुष्टि, स्त्री, पुत्र और भक्ति देता हूँ।

अनेक बत्तियोंसे युक्त और घीसे भरे हुए दीपको जलाकर जो मनुष्य मेरी आरती उतारता है, वह कोटि कल्पोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। जो अगहनके महीनेमें मेरे आगे होती हुई आरतीका दर्शन करता है, वह अन्तमें परम पदको प्राप्त होता है। जो मेरे आगे भक्तिपूर्वक कपूरकी आरती करता है, वह मुझ अनन्तमें प्रवेश कर जाता है। जो मन्त्रहीन और क्रियाहीन मेरा पूजन किया गया है, वह मेरी आरती कर देनेपर सर्वथा परिपूर्ण हो जाता है। जो मार्गशीर्ष मासमें कपूरसे दीपक जलाकर मुझे अर्पण करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है।

---

* वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम्। न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम्॥

† जातिपुष्पमथैला च गुग्गुलश्च हरीतकी। कूटः सर्जरसश्चैव गुडः शैलाच्छडस्तथा॥
नखयुक्तानि चैतानि दशाङ्गो धूप उच्यते। (स्क० पु० वै० मा० मा० ८।९, ८।२७)

स्तुतिपाठ, मन्त्रजप, साष्टाङ्ग प्रणाम तथा दामोदरमन्त्रके जपका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—तदनन्तर नैवेद्यका भोग लग जानेपर कर्पूरवासित जलसे मुझे आचमन करावे, पान दे और हाथ धोनेके लिये चन्दन अर्पण करे। फिर पुष्पाञ्जलि देकर भक्तिपूर्वक कपूरसे आरती करे। मुकुट और आभूषण आदि समर्पित करके छत्र, चँवर भेंट करे तथा श्यामसुन्दर विग्रहवाले भगवान् विष्णु मेरे प्रति कृपापूर्वक प्रसन्नमुख हैं, ऐसा ध्यान करते हुए अष्टाक्षर मन्त्रका एक सौ आठ बार जप और स्तोत्रोंद्वारा भगवान्का स्तवन करे। विद्वान् पुरुष चलते, हँसते और अगल-बगलमें देखते हुए तथा पैरसे पैरको दबाकर हाथको मस्तकपर रखकर, खड़े होकर और व्यग्रचित्त होकर मेरे मन्त्रका जप न करे। जपके समय तथा व्रत, होम और पूजन आदिमें दूसरोंसे वार्तालाप न करे। जपका फल तीर्थ आदिमें सहस्रगुना और मेरे समीप अनन्तगुना होता है।

इस प्रकार अगहनके महीनेमें मेरी पूजा करके जो प्रदक्षिणा करता है, वह पग-पगपर सात द्वीपोंवाली पृथ्वीकी परिक्रमाका पुण्यफल पाता है। सहस्रनामका पाठ अथवा केवल एक नामका उच्चारण करते हुए जो भक्तिपूर्वक मेरी एक परिक्रमा भी करता है, वह प्रतिदिनके पापको भस्म कर डालता है। जिसने भक्तिभावके साथ मेरी एक सौ आठ बार परिक्रमा की है, उसने उत्तम दक्षिणावाले सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान पूरा कर लिया। अब तुम एक गूढ़ रहस्यकी बात सुनो। अपने दामोदर नामसे मुझे ऐसी प्रसन्नता होती है कि जिसकी कहीं तुलना नहीं है। गोकुलमें जब मैंने दहीका मटका फोड़ डाला, तब मैया यशोदाने मेरी कमरमें रस्सी लपेटकर मुझे खूब कसकर ओखलीमें बाँध दिया, तभीसे मेरा दामोदर नाम प्रसिद्ध हुआ। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त हो सूर्योदयकालमें पवित्रतापूर्वक 'दामोदराय नमः' मन्त्रका तीन हजार जप करता है और साढ़े तीन लाख [जप] पूरा होनेपर उसका उद्यापन करता है, जपके दशांशका हव[न,] तर्पण और ब्राह्मण-भोजन कराता है और इस प्रकार भ[क्ति]पूर्वक इस अनुष्ठानको पूरा करता है, उसे मैं मनोवाञ्छि[त] वस्तुएँ देता हूँ। 'दामोदराय नमः' इस मन्त्रराजका जप कर[ते] हुए प्रतिदिन मेरी प्रदक्षिणा और दण्डकी भाँति पृथ्वी[पर] गिरकर सदैव मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। दो[नों] हाथ, दोनों पैर, दोनों घुटने, छाती, मस्तक, मन, वाणी औ[र] दृष्टिसे जो प्रणाम किया जाता है, उसे साष्टाङ्ग प्रणाम कह[ते] हैं *। अपने मस्तकको मेरे चरणोंपर रखकर दोनों भुजाओंक[ो] परस्पर मिला दे और प्रार्थना करे, 'हे परमेश्वर! मैं मृत्युरूपी ग्राहसे परिपूर्ण इस संसारसमुद्रसे भयभीत होकर आपकी शरणमें आया हूँ, आप मेरी रक्षा करें।' फिर मेरेद्वारा दी हुई प्रसाद-माला आदिको सादर मस्तकपर चढ़ाकर मेरी पूजाकी पूर्तिके लिये इस प्रकार कहे 'देव जनार्दन! मैंने मन्त्रहीन, भक्तिहीन और क्रियाहीन जो पूजन किया है, वह सब आपकी कृपासे परिपूर्ण हो।'†

विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, गजेन्द्रमोक्ष, अनुस्मृति तथा गीता—ये पाँच प्रकारके स्तोत्र मुझे अभीष्ट हैं। महाभाग! इन्हें सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। जो मनुष्य एक बूँद भी शालग्रामशिलाका जल पी लेता है, वह मोक्षका भागी होता है। जिनके मस्तकपर शालग्रामशिलाका चरणोदक है तथा जो उस चरणोदकको पीते हैं, उनपर सूतक और मृतकका भी अशौच लागू नहीं होता। मृत्युकालमें जिसको वह चरणामृत दिया जाता है, वह भी उत्तम गतिको प्राप्त होता है।

राजा वीरबाहुके पूर्वजन्मका वृत्तान्त एवं एकादशीव्रत और उसका उद्यापन

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन्! काम्पिल्य नगरमें वीरबाहु नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। वे सत्यवादी, क्रोधपर विजय पानेवाले, ब्रह्मज्ञानी तथा मेरे भक्त थे। उनका स्वभाव बड़ा दयालु था। वे वैष्णवोंके भक्त थे और मेरी कथा सुननेमें सदा रुचि रखते थे। दानी, विद्वान्, क्षमाशील, पराक्रमी, जितेन्द्रिय तथा अपनी ही स्त्रीसे स्नेह रखनेवाले थे।

---

* पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा। मनसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते ॥

† मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन। यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥

(स्क० पु० वै० मा० मा० १०। ३०, ३१)

उनकी स्त्री पतिव्रता, परम साध्वी तथा मेरी भक्तिमें तत्पर रहनेवाली थी। अपनी उस रानीके साथ वे समूची पृथ्वीका पालन करते और मेरे सिवा दूसरे किसी देवताको नहीं जानते थे। एक दिन महामुनि भारद्वाज महात्मा वीरबाहुके घर पधारे। उन्हें देखकर राजाने विधिपूर्वक अर्घ्य दे उनका स्वागत-सत्कार किया। अपने ही हाथसे उनके लिये आसन बिछाया और बड़ी भक्तिसे प्रणाम करके मुनिके आगे खड़े होकर कहा—'ब्रह्मर्षे! आज मेरा जन्म सफल हो गया। परमात्मा भगवान् विष्णु मुझपर बहुत प्रसन्न हैं, जिससे आप-जैसे योगिराजने आज मेरे घरपर पदार्पण किया। आपकी पवित्र दृष्टि पड़नेसे आज मैं कोटि-कोटि पापोंसे मुक्त हो गया।'

भारद्वाज बोले—महाभाग! तुम भगवान् विष्णुके भक्त हो। उत्तम प्रजाओंसे युक्त वह धरती धन्य है, जिसकी तुम रक्षा करते हो। जहाँका राजा भगवान् विष्णुका भक्त न हो, उस राज्यमें निवास नहीं करना चाहिये। जंगल और तीर्थमें निवास करना अच्छा है, परंतु वैष्णवहीन राज्यमें रहना कदापि श्रेयस्कर नहीं। जहाँ भगवद्भक्त राजा इस पृथ्वीका शासन करता है, उस पापशून्य राज्यको वैकुण्ठ मानना चाहिये। जैसे मन्त्रहीन आहुति, मरे हुए बछड़ेवाली गायका दूध, दशमीविद्धा एकादशी, लम्बे-लम्बे केश रखनेवाली विधवा तथा स्नानके बिना व्रत—ये सब श्रेष्ठ नहीं माने जाते, उसी प्रकार बिना वैष्णवका राज्य भी अच्छा नहीं है।*

राजन्! मैंने जो तुम्हारी ओर देखा है, उससे मेरी दृष्टि सफल हो गयी। जो तुम्हारे साथ वार्तालाप करती है, वह मेरी वाणी भी आज सफल हो गयी। तुम भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर रहनेवाले परम पवित्र राजा हो। मैंने तुम्हारा दर्शन कर लिया। तुम्हारा कल्याण हो, तुम सुखी रहो, अब मैं जाऊँगा।

इसी समय महारानी कान्तिमतीने भी आकर मुनिश्रेष्ठ भारद्वाजको प्रणाम किया। तब मुनिने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—'सुन्दरि! तुम सौभाग्यवती और पतिव्रता रहो। शुभे! भगवान् विष्णुमें तुम्हारी अविचल भक्ति हो।'

तत्पश्चात् राजाने पूछा—'मुनिश्रेष्ठ! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्य किया है, जिससे मुझे अकण्टक राज्य, गुणवान् पुत्र, मुझमें मन लगाये रहनेवाली परम सुन्दरी एवं भगवद्भक्त पत्नी आदिकी प्राप्ति हुई? मुने! मैं कौन था और मेरी यह स्त्री कौन थी?'

भारद्वाजने कहा—राजन्! तुम पूर्वजन्ममें जीवहिंसा-परायण शूद्र थे। नास्तिक, दुराचारी, परस्त्रीगामी, कृतघ्न, उद्दण्ड और सदाचारशून्य थे। परंतु तुम्हारी जो यह स्त्री है, यह पूर्वजन्ममें भी तुम्हारी ही पत्नी थी। इसके लिये मन, वाणी और क्रियाद्वारा सेवन करने योग्य तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं था। यह पतिव्रता नारी निरन्तर तुम्हारी ही सेवामें रहती थी। तुम पापकर्मी थे इसलिये मित्रोंने तुम्हारा साथ छोड़ा, भाई-बन्धुओंने तुम्हें त्याग दिया, तुम्हारे पूर्वजोंने जो धन सञ्चित कर रक्खा था, वह सब नष्ट हो गया। धन नष्ट हो जानेपर भी तुम्हें भोगकी अभिलाषा ज्यों-की-त्यों बनी रही। पूर्वकर्मोंके परिणामसे तुम्हारी खेती भी चौपट हो गयी। उस दशामें सबने तुम्हें छोड़ दिया, परंतु इस साध्वी स्त्रीने प्रतिदिन क्षीणकाय होती हुई भी तुम्हें नहीं छोड़ा। सब ओरसे विफलमनोरथ होकर तुम निर्जन वनमें चले गये और वहाँ अनेक प्रकारके जीवोंको मारकर अपना पोषण करने लगे। इस प्रकार रहते हुए तुम्हें बहुत वर्ष बीत गये।

---

* यथाऽऽहुतिर्मन्त्रहीना मृतवत्सापयो यथा ॥
सकेशा विधवा यद्वद् व्रतं स्नानविवर्जितम्।
द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥

एक दिनकी बात है, एक महामुनि राह भूलकर उधर आ निकले। वे श्रेष्ठ ब्राह्मण थे और उनका नाम देवशर्मा था। उन्हें दिशाका भी ज्ञान नहीं रह गया था। वे भूख और प्याससे अत्यन्त पीड़ित होकर दोपहरके समय वनमें गिर पड़े। उस दुःखसे पीड़ित ब्राह्मणको देखकर तुम्हारे मनमें दया आ गयी। वे बूढ़े थे और तुमसे अपरिचित भी थे, तो भी तुमने उनका हाथ पकड़कर उठाया और कहा—'ब्रह्मर्षे! तुम कृपा करके मेरे आश्रमपर चलो। वहाँ जलसे भरा हुआ सरोवर है, जो कमलोंके समुदायसे सदा सुशोभित रहता है। वह आश्रम सुन्दर फल-फूलोंवाले मनोहर वृक्षोंसे घिरा हुआ है। वहाँ ठंडे जलमें स्नान करके नित्यकर्म करो, उसके बाद फल खाओ और शीतल जल पीओ।' ब्राह्मणको कुछ-कुछ चेत हुआ और वे उस शूद्रका हाथ पकड़कर जलाशयके समीप गये। वहाँ सरोवरके तटपर वृक्षकी छायामें बैठे। फिर विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेके पश्चात् भगवान् विष्णुकी पूजा की और शीतल जल पिया। वृक्षके नीचे आकर जब वे विश्राम करने लगे, तब उस शूद्रने अपनी स्त्रीके साथ आकर मुनिको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और बड़ी भक्तिसे कहा—'ब्रह्मर्षे! आप हमारे अतिथि हैं और हम दोनोंका उद्धार करनेके लिये यहाँ पधारे हैं। आपके दर्शनमात्रसे हमारे सब पापोंका नाश हो गया।' यह कहकर उसने अपनी स्त्रीसे कहा—'प्रिये! इन ब्राह्मण देवताके लिये तुम स्वादिष्ट, कोमल, सरस, पके हुए तथा प्रिय लगनेवाले फल अर्पण करो।'

ब्राह्मण बोले—बेटा! मैं तुम्हें नहीं जानता। पहले तुम अपनी जाति और कुलका परिचय दो, क्योंकि बिना जाने हुए ब्राह्मणके यहाँ भी भोजन नहीं करना चाहिये।

शूद्रने कहा—द्विजश्रेष्ठ! मैं शूद्र हूँ, मेरे दुष्ट बन्धुओंने मुझे त्याग दिया है।

वे दोनों इस प्रकार बात कर रहे थे। इतनेमें ही शूद्रकी पत्नीने ब्राह्मणके आगे फल परोस दिये। ब्राह्मणने उन फलोंको भोजन किया और ठंडा जल पीकर उनका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। वहाँ सुख पाकर उन्होंने वृक्षके नीचे विश्राम किया। शूद्रने भी घरमें जाकर अपनी पत्नीके साथ भोजन किया और फिर ब्राह्मणके समीप आकर कहा—'मुनिश्रेष्ठ! आप कहाँसे इस निर्जन वनमें आये हैं।'

ब्राह्मणने उत्तर दिया—महाभाग! मैं ब्राह्मण हूँ और प्रयाग जाना चाहता हूँ। अपरिचित मार्गसे चलकर इस भयङ्कर वनमें आ गया हूँ। तुमने आज मुझे जीवनद दिया है। बोलो, मैं तुम्हारा क्या उपकार करूँ? श् बोला—'राजा भीमसे सुरक्षित विदर्भ नगरी मेरा निवा स्थान है, मैं महाराष्ट्र प्रान्तका रहनेवाला हूँ, मेरी जा शूद्र है, मैं सदा पापमें ही लगा रहा, अपने वर्णधर्मको मैं छोड़ दिया, फिर बन्धुओंने मुझे त्याग दिया और मैं इ वनमें चला आया। यहाँ प्रतिदिन जीवहिंसा करके अप स्त्रीके साथ जीवन-निर्वाह करता हूँ। महामुने! अब इ पातकसे मुझे अत्यन्त खेद और वैराग्य हो गया है। प्रभो मुझ पापीके ऊपर कुछ अनुग्रह कीजिये। द्विजश्रेष्ठ! मे किसी पूर्वपुण्यके प्रभावसे आप यहाँ आये हैं। आप कृप करके ऐसा उपदेश दें, जिसके प्रभावसे मुझे अपनी पत्नी साथ यमराजका दर्शन न करना पड़े। मैं भगवान् विष्णुको छोड़कर और कुछ नहीं चाहता।'

देवशर्माने कहा—शूद्र! सहसा तुम्हारे मनमें भगवान विष्णुके ऊपर जो ऐसी पूर्ण श्रद्धाबुद्धि हुई है, इससे तुम तीर्थ और व्रतके बिना ही करोड़ों पापोंसे मुक्त हो गये। आतिथ्य-सत्कार और भक्तिसे तुम्हें भगवान् विष्णुका पद प्राप्त हुआ। यों कहकर देवशर्मा ब्राह्मण तीर्थराज प्रयागको चले गये। राजन्! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब कुछ मैंने तुमसे कह सुनाया।

राजा बोले—ब्रह्मन्! सम्पूर्ण एकादशीकी उत्तम विधिका उपदेश कीजिये, जिससे भगवान् विष्णुकी प्रसन्नता प्राप्त हो।

ऋषिने कहा—नृपश्रेष्ठ! मार्गशीर्ष आदि महीनोंमें सभी द्वादशी तिथियोंको कल्याणमय अखण्ड एकादशी व्रतका पालन करना चाहिये। दशमीको नक्तव्रत करे, एकादशीको दिनमें और रात्रिमें भी उपवास करे तथा द्वादशीको पारणाके रूपमें केवल एक बार भोजन करे। इसे अखण्डा एकादशी कहते हैं। दिनके आठवें भागमें जब सूर्यकी ज्योति मन्द हो गयी हो, उसी समयको नक्त जानना चाहिये; उसमें किये हुए भोजनको नक्तव्रत कहते हैं। रात्रिमें भोजन करनेका नाम नक्तव्रत नहीं है।* काँसके बर्तनमें भोजन,

---

* दशम्यां चैव नक्तं च एकादश्यामुपोषणम्।
द्वादश्यामेकभुक्तं च अखण्डा इति कथ्यते॥
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे।
तद्धि नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम्॥
(स्क० पु० वै० मा० मा० १२। २३-२४)

उड़द, मसूर, चना, कोदो, साग, शहद, दूसरेका अन्न, दुबारा भोजन और मैथुन—इन दस वस्तुओंको विष्णुभक्त मनुष्य दशमीको त्याग दे।* बार-बार जलपान, हिंसा, अपवित्रता, असत्य-भाषण, पान चबाना, दाँतन करना, दिनमें सोना, मैथुन-सेवन, जुआ खेलना, रातमें सोना और पतित मनुष्योंसे वार्तालाप करना—विष्णुभक्त पुरुष इन ग्यारह बातोंको एकादशीके दिन त्याग दे। एकादशीको भगवान्‌से प्रार्थना करे कि—'हे केशव ! आज आपकी प्रसन्नताके लिये मेरे द्वारा दिन और रातमें संयम-नियमका पालन हो। मेरी सोयी हुई इन्द्रियोंके द्वारा यदि स्वप्नमें कोई विकलता, भोजन या मैथुनकी क्रिया हो जाय अथवा मेरे दाँतोंके अंदर यदि पहलेसे अन्न सटा हुआ हो, तो हे पुरुषोत्तम ! इन सब बातोंको क्षमा कीजिये।'

पापोंसे उपावृत्त (निवृत्त) होकर जो गुणोंके साथ वास किया जाय, उसीको 'उपवास' समझना चाहिये। शरीरको सुखा डालनेका नाम 'उपवास' नहीं है†। पहले कही हुई दस बातें तथा पराया अन्न, शहद और शरीरमें तेल मलना आदि कार्य द्वादशीके दिन विष्णुभक्त पुरुष न करे। फिर द्वादशी आनेपर भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे भगवान् गरुड़ध्वज ! आज सब पापोंका नाश करनेवाली पुण्यमयी पवित्र द्वादशी तिथि मेरे लिये प्राप्त हुई है। इसमें मैं पारण करूँगा। आप प्रसन्न होइये।'

तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। इस विधिसे जबतक वर्षकी समाप्ति हो, तबतक विद्वान् पुरुष एकादशी व्रत करता रहे। वर्ष पूरा होनेपर उसका उद्यापन करे। मार्गशीर्ष मासके शुभ शुक्ल पक्षमें एकादशीका उद्यापन किया जाता है। उसमें विधिके जाननेवाले बारह ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके तेरहवें विधिज्ञ आचार्यको पत्नीसहित आमन्त्रित करे। यजमान स्नान करके पवित्र हो श्रद्धा एवं इन्द्रियसंयमपूर्वक पाद्य, अर्घ्य और वस्त्र आदि सामग्रियोंसे आचार्य आदिका पूजन करे। तत्पश्चात् आचार्य उत्तम रंगोंसे चक्र-कमलसंयुक्त सर्वतोभद्रमण्डल बनावे। उस मण्डलको श्वेत वस्त्रसे आवेष्टित करे। फिर पञ्चपल्लव तथा पञ्चरत्नसे युक्त कर्पूर और अगुरुके सुगन्धसे वासित जलपूर्ण कलशको लाल कपड़ेसे वेष्टित करके उसके ऊपर ताँबेका पूर्णपात्र रक्खे। साथ ही उस कलशको फूलोंकी मालाओंसे भी आवेष्टित करे और उसे सर्वतोभद्रमण्डलके ऊपर स्थापित कर दे। कलशके ऊपर भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायणकी स्थापना करे। तदनन्तर सर्वतोभद्रमण्डलमें बारह मासोंके अधिपतियोंकी स्थापना करके अखण्ड व्रतकी पूर्तिके लिये उनका पूजन करना चाहिये। मण्डलसे पूर्वभागमें शुभ शङ्खकी स्थापना करते हुए कहे—'हे पाञ्चजन्य ! तुम पहले समुद्रसे उत्पन्न हुए, फिर भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने हाथोंमें धारण किया। सम्पूर्ण देवताओंने तुम्हारे रूपको सँवारा है, तुम्हें नमस्कार है।'

सर्वतोभद्रमण्डलसे उत्तर दिशामें हवनके लिये वेदी बनावे और सङ्कल्पपूर्वक वेदोक्त विष्णुसम्बन्धी मन्त्रोंसे हवन करे। फिर भगवान् विष्णुकी प्रतिमाका स्थापन और पुरुषसूक्त एवं पौराणिक शुभ मन्त्रोंसे उसका पूजन करे। नैवेद्य चढ़ावे, धूप-दीप आदि उपहार भेंट करके आरती उतारे। फिर यक्ष-कर्दम (कपूर, अगुरु, कस्तूरी और कंकोलसे बनाये हुए अङ्गलेप) से पूजा करके परिक्रमा करे। ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर नमस्कार करे। उसके बाद ब्राह्मणोंको आचार्य आदि क्रमसे वैदिक मन्त्रोंका जप करना चाहिये। जपके लिये पवमानसूक्त, मण्डलब्राह्मण 'मधुव्वाता ऋतायते' इत्यादि तीन मन्त्र 'तेजोऽसि०', 'शुक्रज्ं०', 'वाचं ब्रह्म' (साम०), 'पवित्रवन्तं सूर्यस्य०' तथा 'विष्णोर्महसि' इत्यादि वैदिक संहितोक्त मन्त्र श्रेष्ठ माने गये हैं। जपके अन्तमें भगवान् विष्णुका कलशके ऊपर स्थापन करना चाहिये। सबेरे दिन निकलनेपर नीचे लिखे क्रमसे हवन करे। यज्ञाग्निक्रियापरायण पुरुष पहले पात्र-स्थापन करके विधिपूर्वक पूजा करनेके पश्चात्

करे। समिधाओंकी एक सौ आहुति देनेके बाद तिलकी दो सौ आहुतियाँ दे। इस प्रकार वैष्णव होम करके ग्रहयज्ञ प्रारम्भ करे। उसमें भी क्रमशः समिधाहोम, चरुहोम और तिलहोम करने चाहिये। तत्पश्चात् स्वस्तिवाचन कराकर पूजन करे। फिर ऋत्विजोंको दक्षिणा दे और भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको एक दूध देनेवाली गौ तथा सुन्दर बैल दे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको तेरह पद दान करे। सपत्नीक आचार्यको वस्त्रोंसे सन्तुष्ट करे और धनसहित महादान दे। पारण कर लेनेपर रातको ब्राह्मणोंको जलसे भरे हुए वस्त्र वेष्टित पचीस कलश दान करे। अपनी शक्तिके अनुसार व्रत का उद्यापन करना चाहिये। इस प्रकार अखण्ड एकादशी व्रतका वर्णन किया गया।

एकादशीके जागरण और मत्स्योत्सवकी विधि एवं माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—गीत, वाद्य, नृत्य, पुराणपाठ, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, चन्दन, अनुलेपन, फल-निवेदन, श्रद्धा, दान, इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण, निद्रात्याग, प्रसन्नतापूर्वक मेरा पूजन, आश्चर्य और उत्साहसहित पाप और आलस्यादिका त्याग, प्रदक्षिणा, नमस्कार, हर्षयुक्त हृदयसे नीराजन तथा प्रत्येक पहरमें आरती—इन गुणोंसे युक्त जागरण एकादशीकी रात्रिमें करना चाहिये। जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक जागरण करता है, वह पुनः इस संसारमें जन्म नहीं लेता। यदि कोई कथावाचक मिले तो एकादशीके जागरणमें पहले पुराण-पाठकी व्यवस्था करनी चाहिये। जो अविद्ध एकादशीके दिन-रातमें मेरे लिये जागरण करते हैं, उनके बीचमें मैं प्रसन्न होकर नृत्य करता हूँ। जो एकादशीकी रातमें जागरण करते समय दीप-दान करता है, वह एक-एक निमेषमें गोदानका फल पाता है। जो जागरणमें मेरे लिये कपूर और गुग्गुल मिलाया हुआ धूप देता है, वह अपने लाखों जन्मोंकी पापराशिको भस्म कर डालता है। मेरे लिये जागरण करते समय जो भक्तिपूर्वक पुराणकी पुस्तक बाँचता है, वह मेरे समीप निवास करता है। मेरी परिक्रमा करनेसे विद्वानोंने जिस फलकी प्राप्ति बतायी है, वह पुण्यफल चार करोड़ यज्ञोंसे भी नहीं प्राप्त हो सकता। जो जागरणकालमें मेरे बालचरित्रोंका पाठ करता है, वह कोटि सहस्र युगोंतक श्वेत-द्वीपमें निवास करता है। जो रात्रिमें गीता और विष्णुसहस्र-नामका पाठ करता है, वह उसके साथ जागरण करनेसे वेद और पुराणोंमें बताये हुए सभी पुण्यफलोंको पाता है। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा जागरण करते हैं, उनकी मेरे लोकसे किसी प्रकार भी पुनरावृत्ति नहीं होती। बहुत पुत्रों-के उत्पन्न होनेसे क्या लाभ, एक ही गुणवान् एवं भक्त पुत्र हो, तो एकादशीके जागरणसे समस्त पूर्वजोंको तार दे। जो मेरे द्वारा कहे हुए जागरणके माहात्म्यको भक्तिपूर्वक पढ़ता है, वह सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। अनजानमें या जान-बूझकर जो पातक किया गया है, पूर्वजन्ममें और इस जन्ममें ही जिस पापराशिका सञ्चय किया गया है, एकादशीके जागरणसे उन सबका नाश हो जाता है। चतुरानन! जो द्वादशीके इस माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर सनातन गतिको प्राप्त होता है। द्वादशी-व्रतके प्रभावसे सदा धर्मपर बुद्धि स्थिर रहती है, मेरे प्रति अत्यन्त निर्मल भक्तिका उदय होता है और मनुष्यको पाप नहीं लगता।

मार्गशीर्ष शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिमें विद्वानोंको प्रातः काल विधिपूर्वक मत्स्योत्सव मनाना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है—मार्गशीर्ष मासकी दशमी तिथिको मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए बुद्धिमान् पुरुष देवपूजनके पश्चात् विधिपूर्वक अग्निस्थापन करे। उसके बाद शङ्ख, चक्र, गदा, किरीट तथा पीताम्बर धारण करनेवाले सर्व-लक्षणलक्षित मुझ प्रसन्नवदनारविन्द गोविन्दका ध्यान करके हाथमें अर्घ्यके लिये जल ले और मुझे सूर्यमण्डलमें स्थित जानकर उस हाथके जलसे अर्घ्य दे। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—'कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् अच्युत! मैं एकादशीको निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा, आप मेरे रक्षक हों।'

तदनन्तर रात्रिमें मेरे विग्रहके समीप बैठकर विधिपूर्वक 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रका जप करे। एकादशीके प्रातःकाल किसी स्वच्छ जलवाली समुद्रगामिनी नदीके समीप जाकर अथवा दूसरी किसी नदी या तड़ागके समीप पहुँचकर आगे बताये जानेवाले मन्त्रसे वहाँकी मिट्टी ले—

> धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा।
> तेन सत्येन मे पापं यावन्मोचय सुव्रते॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवि! सम्पूर्ण भूतोंका

धारण और पोषण सदा तुमसे ही होता है, इस सत्यके प्रभावसे तुम मेरे समस्त पापोंको छुड़ाओ।'

तत्पश्चात् वरुणसे प्रार्थना करे—

त्वयि नित्यं रसाः सर्वे स्थिता वरुण सर्वदा।
तेनेमां मृत्तिकां प्लाव्य पूतां कुरुष्व मा चिरम्॥

'हे वरुण! सब रस सदा आपमें ही स्थित रहते हैं, इसलिये इस मृत्तिकाको आप्लावित करके आप शीघ्र पवित्र कीजिये।'

इस प्रकार मृत्तिका और जलके अधिष्ठाता देवताओंको प्रसन्न करके उस मिट्टी और जलको अपने शरीरमें लगावे। समूची मिट्टी-के तीन भाग करके उसे जलमें मिलाकर नाभिसे नीचेके भागोंमें, नाभि और वक्षःस्थलके बीचमें तथा वक्षःस्थलसे ऊपरके भाग-में लगाना चाहिये। उसके बाद जलमें, जहाँ मगर और कछुओंका भय न हो, नहाकर नित्यकर्म करके फिर मेरे मन्दिर-में आवे और मुझ भगवान् नारायणकी आराधना करे। '[केश]वाय नमः' इस मन्त्रसे मेरे दोनों पैरोंकी पूजा करे। इसी [प्रका]र 'दामोदराय नमः' से कटिभागकी, 'नृसिंहाय नमः' से [दोनों] घुटनोंकी, 'श्रीवत्सधारिणे नमः' से वक्षःस्थलकी, 'कौस्तुभ-[नाथ]ाय नमः' से कण्ठकी, 'श्रीपतये नमः' से हृदयकी, 'त्रैलोक्य-[विज]याय नमः' से बाहुकी, 'सर्वात्मने नमः' से सिरकी, 'रथाङ्ग-[धा]रिणे नमः' से चक्रकी, 'श्रीकराय नमः' से शङ्खकी, 'गम्भीराय [नम]ः' से गदाकी और 'शान्तमूर्तये नमः' से पद्मकी पूजा करे। [इस] प्रकार सबके स्वामी मुझ देवेश्वर नारायणकी पूजा करके [मेर]े आगे चार कलशोंकी स्थापना करे, जो जलसे भरे हुए, मालासे सुशोभित, श्वेत चन्दनसे चर्चित, आम्रपल्लवोंसे संयुक्त, श्वेत वस्त्रोंसे अवगुण्ठित तथा सुवर्णयुक्त तिल-सहित ताँबेके पूर्णपात्रोंसे आच्छादित हों। उन कलशोंके मध्य-में एक पीठ (छोटी-सी चौकी) स्थापित करे; जिसके ऊपर वस्त्र बिछा हुआ हो। उस पीठके ऊपर एक पात्र रक्खे और उसे जलसे भर दे। फिर उसमें मत्स्यावतार भगवान्की सुवर्णमयी प्रतिमा रक्खे। उस प्रतिमामें देवाधिदेव भगवान्के सभी अङ्ग स्पष्ट होने चाहिये। उनके हाथ श्रुतियों और स्मृतियोंके ग्रन्थोंसे विभूषित हों। वहाँ अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थों, फल, फूल, गन्ध, धूप और वस्त्र आदि सामग्रियोंसे विधिपूर्वक भगवान्की पूजा करके यह प्रार्थना करे—

रसातलगता वेदा यथा देव त्वयोद्धृताः।
मत्स्यरूपेण तद्वन्मां भवादुद्धर केशव॥

'देव! केशव! पूर्वकालमें मत्स्यरूप धारण करके आपने जिस प्रकार रसातलमें गये हुए वेदोंका उद्धार किया, उसी प्रकार मेरा भी इस संसारसे उद्धार कीजिये।'

ऐसा कहकर भगवान्के आगे जागरण करे। फिर प्रातःकाल होनेपर वे चारों कलश चार ब्राह्मणोंको दे दे। भगवान् मत्स्यकी मूर्तिको गन्ध, धूप और वस्त्र आदिसे पूजित करके आचार्यको दे दे। जो मनुष्य इस विधिसे मत्स्योत्सव करता है और भक्तिपूर्वक इस उत्तम द्वादशीव्रत-को सुनता-सुनाता है, वह सभी पातकोंसे छूट जाता है।

ब्राह्मण-भोजन, प्रसाद-भक्षण और श्रीकृष्णकीर्तनकी महिमा

श्रीभगवान् कहते हैं—मार्गशीर्ष मासमें कीर्तियुक्त भगवान् केशवकी पूर्वोक्त विधिसे पूजा करनी चाहिये। जो प्रतिदिन एक बार भोजन करके समूचे मार्गशीर्षको व्यतीत करता है और भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह रोगों और पातकोंसे मुक्त हो जाता है। मानद! अग्नि और ब्राह्मण दोनों ही मेरे मुख हैं, परंतु ब्राह्मण नामक मुख जैसा श्रेष्ठ है, वैसा अग्नि नहीं है। अग्नि नामक मुख तो ब्राह्मणके अधीन है, परंतु ब्राह्मण स्वतन्त्र है। अगहनमें कुमुदके समान स्वच्छ और सुगन्धदायक सुन्दर भात, मूँगकी दाल और गायके प्रचुर घीसे पूर्ण भोजनका ब्राह्मणके मुखमें हवन करे। चतुर्मुख! मेरे भक्तोंको मेरा प्रसाद भोजन करना चाहिये। वह पवित्र करनेवाला तथा पापियोंको भी मुक्त करनेवाला है। इसलिये अन्न-पानादि ओषधि मुझको अर्पण करे और अशुद्धको भी शुद्ध करनेवाले उस प्रसादको भक्ति-पूर्वक भोजन करे। अन्य देवताओंका नैवेद्य न ग्रहण करे। अगहनके महीनेमें विशेषरूपसे 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर मेरा नाम लेना चाहिये। यह मुझे अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला है। मेरी एक प्रतिज्ञा है, जिसे देवता और असुर भी नहीं जानते। वह प्रतिज्ञा इस प्रकार है—जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा मेरी शरणमें आ जाता है, वह यहाँ सम्पूर्ण लौकिक कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और अन्तमें सर्वोत्कृष्ट वैकुण्ठधाममें जाता है। जो 'हे कृष्ण! हे कृष्ण!! हे कृष्ण!!!' ऐसा कहकर मेरा प्रतिदिन स्मरण करता है, उसे जिस प्रकार कमल जलको भेदकर ऊपर निकल आता है, उसी प्रकार मैं

नरकसे निकाल लाता हूँ ।* जो विनोदसे, पाखण्डसे, मूर्खतासे, लोभसे अथवा छलसे भी मेरा भजन करता है, वह मेरा भक्त कभी कष्टमें नहीं पड़ता । मृत्युकाल उपस्थित होनेपर जो कृष्ण-नामकी रट लगाते हैं, वे यदि पापी हों तो भी कभी यमराजका दर्शन नहीं करते । पूर्व अवस्थामें किसीने सम्पूर्ण पाप किये हों तथापि यदि वह अन्तकालमें श्रीकृष्णका स्मरण कर लेता है, तो निश्चय ही मुझे प्राप्त होता है । मृत्युकाल उपस्थित होनेपर यदि कोई 'परमात्मा श्रीकृष्णको नमस्कार है' ऐसा विवश होकर भी कहे, तो वह अविनाशी पदको प्राप्त होता है । जो श्रीकृष्णका उच्चारण करके प्राण त्याग करता है, उसे प्रेतराज यम दूरसे ही खड़े होकर स्वर्गमें जाते देखते हैं । यदि कृष्ण-कृष्णका उच्चारण करता हुआ कोई श्मशानमें अथवा सड़कपर भी मर जाता है तो वह मुझे ही प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है । जो मेरे भक्तोंका दर्शन करके कहीं मृत्युको प्राप्त होता है, वह मनुष्य मेरा स्मरण किये बिना भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है† । बेटा ! पापरूपी प्रज्वलित अग्निसे भय न करो, श्रीकृष्णके नामरूपी मेघोंके जलकी बूँदोंसे उसे सींचकर बुझा दिया जाता है । तीखे दाढ़ोंवाले कलिकालरूपी सर्पका क्या भय है ? श्रीकृष्णके नामरूपी इन्धनसे उत्पन्न आगके द्वारा वह जलकर नष्ट हो जाता है । पापरूपी अग्निसे दग्ध होकर जो सत्कर्मकी चेष्टासे शून्य हो गये हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये श्रीकृष्णके नाम-स्मरणके सिवा दूसरी कोई ओषधि नहीं है । जैसे प्रयागमें गङ्गा, शुक्लतीर्थमें नर्मदा और कुरुक्षेत्रमें सरस्वती हैं, उसी प्रकार सर्वत्र श्रीकृष्णका कीर्तन सब पापोंका नाश करनेवाला है । संसार-समुद्रमें डूबकर जो महान् पापोंकी लहरोंमें गिर गये हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये श्रीकृष्ण-स्मरणके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है । जो पापी हैं, जिनमें श्रीकृष्ण-स्मरणकी इच्छा नहीं है, ऐसे मनुष्योंके लिये मृत्युकालमें तथा परलोक-की यात्राके समय श्रीकृष्ण-चिन्तनके सिवा दूसरा कोई पाथेय (राहखर्च) नहीं है । बेटा ! जिस मन्दिरमें प्रतिदिन कृष्ण-कृष्णका कीर्तन होता है, वहाँ गया, काशी, पुष्कर और कुरुक्षेत्र सब तीर्थ हैं । उसीका जन्म और जीवन सफल है तथा उसीका मुख सार्थक है, जिसकी जिह्वा सदा 'कृष्ण-कृष्ण'का कीर्तन करती है । जिसने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षके लिये जानेको कमर कस ली है । समस्त पापोंको भस्म कर डालनेके लिये मुझ भगवान्‌के नाममें जितनी शक्ति है, उतना पातक कोई पातकी मनुष्य कर ही नहीं सकता* । 'कृष्ण-कृष्ण'के कीर्तनसे मनुष्यका शरीर और मन कभी श्रान्त नहीं होता, उसे पाप नहीं लगता और विकलता भी नहीं होती । जो श्रीकृष्णनामोच्चारणरूपी पथ्यका कलियुगमें त्याग नहीं करता; उसके चित्तमें पापरूपी रोग नहीं पैदा होते । श्रीकृष्णनामका कीर्तन करते हुए मनुष्यकी आवाज सुनकर दक्षिण दिशाके अधिपति यमराज उसके सौ जन्मोंके पापोंका परिमार्जन कर देते हैं । सैकड़ों चान्द्रायण और सहस्रों पराक व्रतसे जो पाप नष्ट नहीं होता, वह कृष्ण-कृष्णके कीर्तनसे चला जाता है । श्रीकृष्णनामका उच्चारण करनेसे मेरी अधिकाधिक प्रीति बढ़ती है । कोटि-कोटि चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणमें स्नान करनेसे जो फल बतलाया गया है, उसे मनुष्य कृष्ण-कृष्णके कीर्तनमात्रमें पा लेता है । जैसे सूर्य-किरणोंके तापसे बर्फ गल जाती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण-कीर्तनसे गुरुपत्नीगमन और सुवर्णकी चोरी आदि महापातक नष्ट हो जाते हैं । अगम्यागमन आदि महापापोंसे युक्त मनुष्य भी अन्तकालमें एक बार श्रीकृष्णनामका कीर्तन कर ले तो वह उससे पापमुक्त हो जाता है । जो जिह्वा कलिकालमें श्रीकृष्णके गुणोंका कीर्तन नहीं करती, वह दुष्टा मुँहमें न रहे, रसातलको चली जाय । जो कलियुगमें श्रीकृष्णके गुणोंका प्रयत्नपूर्वक कीर्तन करती है, वह जिह्वा अपने मुखमें हो या दूसरेके मुखमें, वन्दना करने योग्य है । जो दिन-रात श्रीकृष्णके गुणोंका कीर्तन नहीं करती, वह जिह्वा नहीं—मुखमें कोई पापमयी लता है, जिसे जिह्वाके नामसे

* कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥
(स्क० पु० वै० मा० मा० १५ । ३६)

† श्मशाने यदि रथ्यायां कृष्ण कृष्णेति जल्पति ।
म्रियते यदि चेत्पुत्र मामेवैति न संशयः ॥
दर्शनान्मम भक्तानां मृत्युमाप्नोति यः क्वचित् ।
विना मत्स्मरणात्पुत्र मुक्तिमेति स मानवः ॥
(स्क० पु० वै० मा० मा० १५ । ४२-४३)

* जीवितं जन्मसाफल्यं मुखं तदेव सार्थकम् ।
सततं रसना यस्य कृष्ण कृष्णेति जल्पति ॥
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥
नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्दहने मम ।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥
(स्क० पु० वै० मा० मा० १५ । ५१-५३)

पुकारा जाता है। जो 'श्रीकृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-श्रीकृष्ण' इस प्रकार श्रीकृष्णनामका कीर्तन नहीं करती, वह रोगरूपिणी जिह्वा सौ टुकड़े होकर गिर जाय *।

जो श्रीकृष्णके नामकी इस महिमाका प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, उसके लिये निश्चय ही मैं कल्याणदाता होता हूँ। जो तीनों सन्ध्याओंके समय श्रीकृष्णनामके माहात्म्यका पाठ करता है, वह जीते-जी सम्पूर्ण कामनाओंको और मरनेपर परम गतिको पाता है।

श्रीकृष्णके बालस्वरूपका ध्यान, दामोदरमन्त्रके अधिकारी शिष्य और गुरुका लक्षण और श्रीमद्भागवतकी महिमा

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं ध्यानका वर्णन करता हूँ। शोभाशाली उद्यानसे घिरी हुई एक सुवर्णमयी स्थली है। उसमें जगमगाते हुए रत्नोंका बना हुआ एक प्रकाशमान मण्डप है। उसके भीतर कल्पवृक्ष शोभा पा रहा है। उसके नीचे उद्दीप्त रत्नमय सिंहासन है, जिसके ऊपर कमलका आसन है। उसके ऊपर बालगोपाल श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण विराजमान हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति महानील-मणिके समान श्याम है। उनकी अत्यन्त बाल्यावस्था है। मुखके समीपतक चिकने काले, घुँघराले बाल बिखरे हुए हैं। उनसे उनके मुग्ध मुखारविन्दकी ऐसी शोभा हो रही है, मानो खिले हुए कमलपर भ्रमरोंके समूह छा रहे हों। उनके नेत्र नील-कमलके समान परम सुन्दर हैं। फूलके समान खिले हुए गाल हिलते हुए कुण्डलोंसे अतिशय सुशोभित हो रहे हैं। उनकी नुकीली नाक, लाल ओष्ठ और मन्द-मुसकानसे सुशोभित मुख सभी सुन्दर हैं। कण्ठमें अनेकानेक चमकते हुए आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे विकसित कमलके समान बघनखा पहने हुए हैं। उनके नेत्र सुन्दर हैं। गौओंकी धूलि पड़नेसे उनका वक्षःस्थल धूसरित हो रहा है। उनके सभी अङ्ग हृष्ट-पुष्ट हैं। सुवर्णमय अलङ्कारोंसे उनकी दीप्ति बढ़ रही है। मनोहर पिण्डलियों और जाँघोंसे सुशोभित कटिप्रदेशमें करधनी बँधी हुई है, जिसकी क्षुद्र-घण्टिकाओंसे मधुर झनकार हो रही है। बन्धुजीव पुष्पके समान लाल-लाल हथेली और लाल कमलके समान चरणोंकी उदार शोभासे वे सुशोभित हैं। वे मन्द-मन्द हँस रहे हैं। उनके दाहिने हाथमें खीर है और बायें हाथमें वे तुरंतका निकाला हुआ शुद्ध माखन लिये हुए हैं। गायें और गोपियाँ उन्हें घेरकर बैठी हैं। इन्द्र आदि देवता भी उनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं। शेषनाग और वज्र आदिसे उपलक्षित उन देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करके भक्तिभावसे नम्र हो प्रातःकाल उनकी पूजा करे और माखन-मिश्री, दही-दूध एवं कमल आदि अर्पण करके उन्हें प्रसन्न करे।

जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल आस्तिक भावसे युक्त होकर सदा इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करता है, वह शीघ्र ही इस लोकमें समग्र लक्ष्मीको प्राप्त करता है और मृत्युके पश्चात् शुद्ध परम धाममें गमन करता है। उनका लोक-मनोहर मन्त्र पहले ही बतलाया गया है। उसका नाम है श्रीमद्दामोदर-मन्त्र (श्रीदामोदराय नमः)। इस मन्त्रके कौन-कौन अधिकारी हैं, उनका वर्णन सुनो। इस मन्त्रराजका उपदेश किसी अयोग्य व्यक्तिको नहीं देना चाहिये। यह शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाला एक रहस्य है, इसलिये यत्न-पूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिये। आलसी, मलिन, क्लेश-ग्रस्त, दम्भी, मोहयुक्त, दरिद्र, रोगी, क्रोधी, रागी, भोग-लोलुप, दोषदर्शी, ईर्ष्या रखनेवाला, शठ, कटुवादी, अन्याय-पूर्वक धन कमानेवाला, परस्त्रियोंमें आसक्त रहनेवाला, विद्वानोंका वैरी, मूर्ख, अपनेको पण्डित माननेवाला, व्रतभ्रष्ट, जीविकाके क्लेशसे युक्त, चुगलखोर, दुष्टचित्त, बहुभोजी, निर्दयतापूर्ण चेष्टावाला, दुष्टोंका नेता, कंजूस, पापी, भयङ्कर, आश्रितोंको भय देनेवाला—इस प्रकारके दुर्गुणोंसे युक्त शिष्यको इस मन्त्रके उपदेशके लिये कभी नहीं ग्रहण करना चाहिये। यदि कोई ग्रहण करता है तो शिष्यका दोष प्रायः गुरुमें भी आ जाता है। मन्त्रीका दोष राजामें, स्त्रीका दोष पतिमें और शिष्यका दोष गुरुमें आता है—इसमें कोई सन्देह नहीं। इसलिये गुरुको चाहिये कि वह सदा शिष्यकी परीक्षा लेकर ही उसे ग्रहण करे।

जो मन, वाणी और शरीरसे गुरुकी सेवामें तत्पर

* पततां शतखण्डा तु सा जिह्वा रोगरूपिणी। श्रीकृष्णकृष्णकृष्णेति श्रीकृष्णेति न जल्पति ॥
(स्क० पु० वै० मा० मा० १५ । ६६)

रहनेवाला हो, जिसमें चोरीकी वृत्तिका सर्वथा अभाव हो, जो आस्तिक होनेके साथ ही मोक्षके लिये उद्योगशील हो, ब्रह्मचर्यका पालन करता हो, सदा दृढ़तापूर्वक व्रतमें स्थित रहता हो, जिसकी पापमें प्रवृत्ति न हो, जिसका चित्त प्रसन्न और अन्तःकरण निर्मल हो, जिसमें शठताका अभाव हो, जो शुद्ध, परोपकारी और स्वार्थकामनासे रहित हो, अपने तन, मन और धनसे गुरुको सन्तुष्ट रखनेवाला हो, आश्रितजनोंको प्रसन्न रखनेवाला और पवित्र हो—ऐसे ही शिष्यको मन्त्रका उपदेश दे, अन्यथा नहीं।

अब गुरुका लक्षण बतलाता हूँ। जिसका चित्त सम और शान्त हो, जो क्रोधरहित, सब लोगोंका सुहृद्, साधु, महात्मा, लोकमें सबपर समान दृष्टि रखनेवाला हो, वह गुरु कहा गया है। जो सदा मेरे व्रतको धारण करता है, वैष्णवगण जिसे सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं, जो मेरी कथा-वार्तामें अनुरक्त और मेरे उत्सवोंमें संलग्न रहता है, जो दयासागर, पूर्णकाम, सर्वभूतोपकारी, सब ओरसे निःस्पृह, सिद्ध, सर्वविद्याविशारद, समस्त संशयोंको निवारण करनेवाला और आलस्यरहित है, जो सब कालोंका ज्ञाता है तथा सबपर अनुग्रह रखता है, ऐसा आदरणीय ब्राह्मण गुरु कहा गया है। पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त शिष्य ऐसे गुरुसे मेरी प्राप्ति करानेवाले मार्गशीर्ष मासमें उक्त दामोदर-मन्त्रका उपदेश ग्रहण करे।

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह वैष्णवोंके व्रतोंको स्वीकार करे। मुझे प्रिय लगनेवाले परम उत्तम श्रीमद्भागवतपुराणका सदा श्रवण करे। जो मनुष्य प्रतिदिन श्रीमद्भागवतपुराणका पाठ करता है, उसे प्रत्येक अक्षरपर कपिला गौके दानका फल मिलता है। जो प्रतिदिन श्रीमद्भागवतके आधे या चौथाई श्लोकका पाठ करता अथवा सुनता है, उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। जो प्रतिदिन पवित्रचित्त हो भागवतके श्लोकका पाठ करता है, उसे अठारह पुराणोंके पाठ करनेका फल मिलता है। जहाँ नित्य मेरी कथा होती है, वहाँ वैष्णवगण स्थित होते हैं। जो सदा मेरी पूजा करते हैं, वे मनुष्य कलियुगके बाहर हैं। जो कलियुगमें अपने घरपर प्रतिदिन भागवत-शास्त्रकी पूजा करते हैं, उनके ऊपर मैं प्रसन्न होता हूँ। बेटा! जितने दिनोंतक घरमें भागवत-शास्त्र रहता है, उतने दिनोंतक पितर दूध, घी और मधुके साथ जल पीते हैं। जो भक्तिपूर्वक वैष्णव विद्वान्को भागवत-शास्त्र देते हैं, वे मेरे लोकमें निवास करते हैं। जो अपने घरपर सदा भागवत-शास्त्रकी पूजा करते हैं, उनके उस पूजनसे सब देवता प्रलय-कालतकके लिये तृप्त हो जाते हैं। सदा मेरी प्रसन्नताके लिये सबको वैष्णव-शास्त्रोंका संग्रह करना चाहिये। कलियुगमें जहाँ-जहाँ परम पवित्र भागवत-शास्त्र रहता है, वहाँ-वहाँ मैं सम्पूर्ण देवताओंके साथ सदैव निवास करता हूँ। वहीं सम्पूर्ण तीर्थ, नदी, नद, सरोवर, यज्ञ, सातों पुरी तथा सम्पूर्ण पवित्र पर्वत निवास करते हैं। धर्मबुद्धि पुरुषको पापके नाश और मोक्षकी प्राप्तिके लिये सदा भागवत-शास्त्र श्रवण करना चाहिये। श्रीमद्भागवत परम पवित्र, आयु, आरोग्य तथा पुष्टिको देनेवाला है। इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो परम उत्तम श्रीमद्भागवतको न तो सुनते हैं और न सुनकर प्रसन्न ही होते हैं, उनपर सदा यमराजका प्रभुत्व रहता है, यह सर्वथा सत्य बात है। जिसके घरमें भागवतका एक या आधा श्लोक भी लिखकर रक्खा हुआ है, उसके यहाँ मैं स्वयं निवास करता हूँ। जो मेरी कथा बाँचता है, मेरी कथा सुननेमें संलग्न रहता है और मेरी कथा सुनकर जिसका मन प्रसन्न होता है, उस मनुष्यको मैं कभी नहीं छोड़ता। जो श्रीमद्भागवतका दर्शन करके उठकर खड़ा हो जाता और बारंबार प्रणामके द्वारा उसका सम्मान करता है, उसको देखकर मुझे अनुपम प्रसन्नता होती है। जो दूरसे भागवत-शास्त्रको देखकर उसके सामने जाता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। जो श्रीमद्भागवतको सुनते हैं, मैं उनके वशमें होता हूँ। जो वस्त्र, आभूषण, पुष्प, धूप, दीप और नाना प्रकारके उपहारोंके साथ भक्तिपूर्वक मेरी प्रसन्नताके लिये श्रीमद्भागवत सुनते हैं, वे मुझे वशमें कर लेते हैं। ठीक उसी तरह जैसे साध्वी स्त्री अपने श्रेष्ठ पतिको वशमें कर लेती है।

मार्गशीर्ष मासमें मथुरासेवनका माहात्म्य और ग्रन्थका उपसंहार

श्रीभगवान् कहते हैं—मथुरा नामसे विख्यात जो मेरा उत्तम क्षेत्र है, वह मेरी परम प्रिय प्रशस्त एवं रमणीय जन्मभूमि है। चतुर्मुख! मथुरामें जहाँ कहीं भी मनुष्य स्नान करता है, घोर पापसे मुक्त हो जाता है। सब धर्मोंसे रहित दुष्टात्मा पुरुषोंके लिये पापनाशिनी मथुरा नरककी पीड़ा दूर करनेवाली है। कृतघ्न, शराबी, चोर तथा प्रतिज्ञा भङ्ग

करनेवाला मनुष्य मथुरामें जाकर घोर पापसे मुक्त हो जाता है। जो किसी दूसरे प्रसङ्गसे अथवा व्यापार या नौकरीके लिये भी जाते हैं, वे भी मथुरामें स्नान करनेमात्रसे पापरहित होकर स्वर्गलोकमें चले जाते हैं। मथुराका नाम लेनेवाले लोगोंकी भी मुक्ति होती है। जो मनुष्य वहाँ तीन रात भी निवास करते हैं, वे अपने दर्शन तथा चरणरेणुके स्पर्शसे भी दूसरोंको पवित्र कर देते हैं। जैसे छोटी-छोटी चिनगारियाँ घास-फूसके बड़े भारी ढेरको भी जला डालती हैं, उसी प्रकार मथुरापुरी बड़े-बड़े पापोंको भस्म कर देती है। अन्य स्थानोंमें किया हुआ पाप तीर्थस्थानमें जानेसे नष्ट होता है, किंतु तीर्थोंमें किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है*। चतुरानन! अन्य स्थानोंमें जिस पापका भोग दस वर्षमें पूरा होता है, वह मथुरामें दस दिनमें ही पूरा हो जाता है। स्वर्ग, पाताल, अन्तरिक्ष तथा मनुष्यलोकमें मथुरापुरीके समान मेरा प्रिय क्षेत्र दूसरा नहीं है।

तीर्थराज प्रयागमें एक हजार वर्षतक निवास करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह मथुरापुरीमें केवल अगहनमें निवास करनेसे मिल जाता है। जिसने कभी मथुरापुरी नहीं देखी है और उसे देखनेकी इच्छा रखता है, उसकी कहीं भी मृत्यु क्यों न हो, वह मथुरामें जन्म लेता है। मेरे प्रिय भक्तो! तुम मथुरापुरीमें निवास करो, निवास करो। वहाँ गोपकन्याओंसे घिरा हुआ मैं सदैव निवास करता हूँ। संसारमें डूबे हुए शिष्यो! मेरी बात सुनो—यदि तुम घनीभूत आनन्द पाना चाहते हो, तो मथुरापुरीमें निवास करो। अहो! यह संसार बड़ा अंधा है, आँखें होते हुए भी नहीं देखता। मुक्तिदायिनी मथुराके होते हुए भी सदा जन्म-मरणरूपी संसार-चक्रका ही सेवन करता है। सौभाग्यवश अनुपम मनुष्ययोनि पाकर भी जिन्होंने मथुरापुरी नहीं देखी, उनकी आयु व्यर्थ ही बीत गयी। अहो! यह कैसी बुद्धिकी दुर्बलता है, मोहकी कितनी अद्भुत महिमा है कि मनुष्य मथुरापुरीका सेवन नहीं करते। जो मथुरापुरीको पाकर भी अन्यत्र जानेकी अभिलाषा करता है, वह अज्ञानसे ही सम्पन्न है। जो पापकी राशियोंसे आक्रान्त हैं, दरिद्रतासे पराजित हैं और जिनकी कहीं भी गति नहीं है, उन सबके लिये मेरी मथुरापुरी आश्रय है। यह सारसे भी अतिशय सारभूत स्थान है, गोपनीयसे भी अति गोपनीय परम रहस्य है। उत्तम गतिकी खोज करनेवाले पुरुषोंके लिये मथुरापुरी परम गति है। योगयुक्त ब्रह्मज्ञानी मनीषी पुरुषकी जो गति होती है, वही मथुरामें प्राणत्याग करनेवाले मनुष्यकी भी होती है। संसारमें काशी आदि पुरियाँ भी मोक्ष देनेके लिये प्रसिद्ध हैं तथापि उनमें मथुरा ही धन्य है; क्योंकि वह मनुष्योंको चार प्रकारकी मुक्ति प्रदान करती है। मथुरामें आकर मरे हुए कीट, पतंग आदि भी चतुर्भुजरूप हो जाते हैं। मथुरामें जिसे साँप डँस लेता है, जो पशुओंसे मारे जाते हैं, आगमें जलकर या पानीमें डूबकर मरते हैं—इस प्रकार अपमृत्यु पानेवाले लोग भी मेरे लोकमें जाते हैं। जो कामना रखनेवाले पुरुषोंको धर्म, अर्थ और काम देनेवाली है, मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करती है और भक्तिकी इच्छा रखनेवालोंको भक्ति देती है, उस मथुराका कौन विद्वान् पुरुष आश्रय नहीं लेगा। ऐसी महिमामयी मधुपुरी मार्गशीर्ष मासमें सेवन करने योग्य है। मार्गशीर्ष मासमें जो पूर्णिमा होती है, उसमें जो पुण्य किया जाता है, वह मुझे अधिक प्रसन्न करनेवाला होता है। पुष्कर और मथुरामें पूर्णिमा तिथिको स्नान अवश्य करना चाहिये। मार्गशीर्षकी पूर्णिमा अनन्त फल देनेवाली है। अतः सब प्रकारके प्रयत्नोंसे उसका आदर करना चाहिये। जो भक्तिपूर्वक मेरे परम प्रिय मार्गशीर्ष मासका व्रत करता है, वह पुत्ररहित हो तो पुत्र पाता है, निर्धन हो तो उसे धन मिलता है, विद्यार्थी हो तो विद्या और रूपार्थी हो तो रूप प्राप्त करता है। ब्राह्मण ब्रह्मतेजको पाता है, क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य खजानेका मालिक होता है और शूद्र पापसे शुद्ध होता है। तीनों लोकोंमें जो दुर्लभ वस्तु है, वह सब मनुष्य मार्गशीर्ष मासमें स्नान एवं व्रत करनेसे प्राप्त कर लेता है। मुझको वशमें करनेवाली उत्तम भक्ति सर्वथा दुर्लभ है। वह भी इस मार्गशीर्ष मासका माहात्म्य श्रवण करनेपर प्राप्त हो जाती है।

मार्गशीर्ष-मास-माहात्म्य सम्पूर्ण।

* अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य नश्यति। तीर्थेषु यत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥

(स्क० पु० वै० मा०-मा० १७।१७)

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

परीक्षित् और वज्रनाभका समागम, शाण्डिल्य मुनिके मुखसे भगवान्‌की लीलाके रहस्य और व्रजभूमिके महत्त्वका वर्णन

महर्षि व्यास कहते हैं—

श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूपिणे
कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे ।
विश्वोद्भवस्थाननिरोधहेतवे
नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेऽनिशम् ॥

'जिनका स्वरूप सच्चिदानन्दघन है, जो अपने सौन्दर्य और माधुर्यादि गुणोंसे सबका मन अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं और सदा-सर्वदा अनन्त सुखकी वर्षा करते रहते हैं, जिनकी ही शक्तिसे इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं—उन भगवान् श्रीकृष्णको हम भक्तिरसका आस्वादन करनेके लिये नित्य-निरन्तर प्रणाम करते हैं।'

नैमिषारण्यक्षेत्रकी बात है, श्रीसूतजी स्वस्थ चित्तसे अपने आसनपर बैठे हुए थे । उस समय भगवान्‌की अमृतमयी लीलाकथाके रसिक, उसके रसास्वादनमें अत्यन्त कुशल शौनकादि ऋषियोंने सूतजीको प्रणाम करके उनसे यह प्रश्न किया ।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! धर्मराज युधिष्ठिर जब मथुरामण्डलमें अनिरुद्धनन्दन वज्रका और हस्तिनापुरमें अपने पौत्र परीक्षित्‌का राज्याभिषेक करके हिमालयपर चले गये, तब राजा वज्र और परीक्षित्‌ने कैसे-कैसे कौन-कौन-सा कार्य किया ?

सूतजी बोले—शौनकादि ब्रह्मर्षियो ! जब धर्मराज युधिष्ठिर आदि पाण्डवगण स्वर्गारोहणके लिये हिमालय चले गये, तब सम्राट् परीक्षित् एक दिन मथुरा गये । उनकी इस यात्राका उद्देश्य इतना ही था कि वहाँ जाकर वज्रनाभसे मिल-जुल आयें । जब वज्रनाभको यह समाचार मालूम हुआ कि मेरे पितातुल्य परीक्षित् मुझसे मिलनेके लिये आ रहे हैं, तब उनका हृदय प्रेमसे भर गया । उन्होंने नगरसे आगे बढ़कर उनकी अगवानी की, चरणोंमें प्रणाम किया और बड़े प्रेमसे उन्हें वे अपने महलमें ले आये । वीर परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रेमी भक्त थे । उनका मन नित्य-निरन्तर आनन्दघन श्रीकृष्णचन्द्रमें ही रमता रहता था । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभका बड़े प्रेमसे आलिङ्गन किया । इसके बाद अन्तःपुरमें जाकर भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नियोंको नमस्कार किया । श्रीकृष्ण-पत्नियोंने भी सम्राट् परीक्षित्‌का अत्यन्त सम्मान किया । वे जब आराममे बैठ गये, तब उन्होंने वज्रनाभसे यह बात कही ।

राजा परीक्षित्‌ने कहा—तुम्हारे पिता और पितामहोंने मेरे पिता-पितामहको बड़े-बड़े सङ्कटोंसे बचाया है । मेरी रक्षा भी उन्होंने ही की है ।

वज्रनाभ बोले—महाराज ! आप मुझसे जो कुछ कह रहे हैं, वह सर्वथा आपके अनुरूप है । आपके पिताने भी मुझे धनुर्वेदकी शिक्षा देकर मेरा महान् उपकार किया है । इसलिये मुझे किसी बातकी तनिक भी चिन्ता नहीं है । क्योंकि उनकी कृपासे मैं क्षत्रियोचित शूरवीरतासे भलीभाँति सम्पन्न हूँ । मुझे चिन्ता है, तो केवल एक बातकी । सचमुच वह बहुत बड़ी चिन्ता है । आप उसके सम्बन्धमें कुछ विचार कीजिये । वह चिन्ता यह है कि यद्यपि मैं मथुरामण्डलके राज्यपर अभिषिक्त हूँ, तथापि मैं यहाँ निर्जन वनमें ही रहता हूँ । इस बातका मुझे कुछ भी पता नहीं है कि यहाँकी प्रजा कहाँ चली गयी; क्योंकि राज्यका सुख तो तभी है जब प्रजा रहे । जब वज्रनाभने परीक्षित्‌से यह बात कही, तब उन्होंने वज्रनाभका सन्देह मिटानेके लिये महर्षि शाण्डिल्यको बुलवाया । ये ही महर्षि शाण्डिल्य पहले नन्द आदि गोपोंके पुरोहित थे । परीक्षित्‌का सन्देश पाते ही महर्षि शाण्डिल्य वहाँ आ पहुँचे । वज्रनाभने विधिपूर्वक उनका स्वागत-सत्कार किया और वे एक ऊँचे आसनपर विराजमान हुए एवं उनको सान्त्वना देते हुए कहने लगे ।

शाण्डिल्यजीने कहा—प्रिय परीक्षित् और वज्रनाभ ! मैं तुमलोगोंसे व्रजभूमिका रहस्य बतलाता हूँ । तुम एकाग्र होकर सुनो ! 'व्रज' शब्दका अर्थ है व्याप्ति । व्यापक होनेके कारण ही इस भूमिका नाम 'व्रज' पड़ा है । सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंसे अतीत जो परब्रह्म है, वही व्यापक है । इसलिये उसे 'व्रज' कहते हैं । वह सदानन्दस्वरूप,

परम ज्योतिर्मय और अविनाशी है। जीवन्मुक्त पुरुष उसीमें स्थित रहते हैं। इस परब्रह्मस्वरूप व्रजधाममें नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका निवास है। उनका एक-एक अङ्ग सच्चिदानन्दस्वरूप है। वे आप्तकाम हैं। प्रेमरसमें डूबे हुए रसिकजन ही उनका अनुभव करते हैं। 'काम' शब्दका अर्थ है—कामना, अभिलाषा; व्रजमें भगवान् श्रीकृष्णके वाञ्छित पदार्थ हैं—गौएँ, ग्वालबाल, गोपियाँ और उनके साथ लीला-विहार आदि; ये सब-के-सब यहाँ नित्य प्राप्त हैं। इसीसे श्रीकृष्णको 'आप्तकाम' कहा गया है। भगवान् श्रीकृष्णकी यह रहस्यलीला प्रकृतिसे परे है। वे जिस समय प्रकृतिके साथ खेलने लगते हैं, उस समय दूसरे लोग भी उनकी लीलाका अनुभव करते हैं। प्रकृतिके साथ होनेवाली लीलामें ही रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी प्रतीति होती है। इस प्रकार यह निश्चय होता है कि भगवान्की लीला दो प्रकारकी है—एक वास्तवी और दूसरी व्यावहारिकी। वास्तवी लीला स्वसंवेद्य है—उसे स्वयं भगवान् और उनके रसिक भक्तजन ही जानते हैं। जीवोंके सामने जो लीला होती है, वह व्यावहारिकी लीला है। वास्तवी लीलाके बिना व्यावहारिकी लीला नहीं हो सकती; परंतु व्यावहारिकी लीलाका वास्तवी लीलाके राज्यमें कभी प्रवेश नहीं हो सकता। तुम दोनों भगवान्की जिस लीलाको देख रहे हो, वह व्यावहारिकी लीला है। यह पृथ्वी और स्वर्ग आदि लोक इसी लीलाके अन्तर्गत हैं। इसी पृथ्वीपर यह मथुरामण्डल है। यहीं वह व्रजभूमि है, जिसमें भगवान्की वह वास्तवी रहस्यलीला गुप्तरूपसे सदा होती रहती है। वह कभी-कभी प्रेमपूर्ण हृदयवाले रसिक भक्तोंको सब ओर दीखने लगती है। कभी अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें जब भगवान्की रहस्य-लीलाके अधिकारी भक्तजन यहाँ एकत्र होते हैं, जैसा कि इस समय भी कुछ काल पहले हुए थे, उस समय भगवान् अपने अन्तरङ्ग प्रेमियोंके साथ अवतार लेते हैं। उनके अवतारका यह प्रयोजन होता है कि रहस्य-लीलाके अधिकारी भक्तजन भी अन्तरङ्ग परिकरोंके साथ सम्मिलित होकर लीला-रसका आस्वादन कर सकें। इस प्रकार जब भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं, उस समय भगवान्के अभिमत प्रेमी देवता और ऋषि आदि भी सब ओर अवतार लेते हैं।

अभी-अभी जो अवतार हुआ था, उसमें भगवान् अपने सभी प्रेमियोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण करके अब अन्तर्धान हो चुके हैं। इससे यह निश्चय हुआ कि यहाँ पहले तीन प्रकारके भक्तजन उपस्थित थे; ऐसा माननेमें तनिक भी सन्देहके लिये गुंजाइश नहीं है। उन तीनोंमें प्रथम तो उनकी श्रेणी है, जो भगवान्के नित्य 'अन्तरङ्ग' पार्षद हैं—जिनका भगवान्से कभी वियोग होता ही नहीं। दूसरे वे हैं, जो एकमात्र भगवान्को पानेकी इच्छा रखते हैं—उनकी अन्तरङ्ग लीलामें अपना प्रवेश चाहते हैं। तीसरी श्रेणीमें देवता आदि हैं। इनमेंसे जो देवता आदिके अंशसे अवतीर्ण हुए थे, उन्हें भगवान्ने व्रजभूमिसे हटाकर पहले ही द्वारका पहुँचा दिया था; फिर जब ब्राह्मणोंके शापसे यदुवंशका संहार करनेके लिये साम्बके पेटसे मूसल प्रकट हुआ और उस मूसलके चूरेसे प्रभासक्षेत्रमें एरका नामकी घास उत्पन्न हो गयी, उस समय परस्पर कलह होनेपर सभी यदुवंशी उन एरकाओंसे एक-दूसरेको मारकर मर गये। इस प्रकार भगवान्ने उस मूसलके मार्गसे यदुकुलमें उत्पन्न हुए देवताओंको स्वर्गमें भेजकर पुनः अपने-अपने अधिकारपर स्थापित कर दिया। तथा जिन्हें एकमात्र भगवान्को ही पानेकी इच्छा थी, उन्हें प्रेमानन्द-स्वरूप बनाकर श्रीकृष्णने सदाके लिये अपने नित्य अन्तरङ्ग पार्षदोंमें सम्मिलित कर लिया। जो नित्य पार्षद हैं, वे यद्यपि यहाँ गुप्तरूपसे होनेवाली नित्यलीलामें सदा ही रहते हैं, परंतु जो उनके दर्शनके अधिकारी नहीं हैं, ऐसे पुरुषोंके लिये वे भी अदृश्य हो गये हैं। जो लोग व्यावहारिक लीलामें स्थित हैं, वे नित्यलीलाका दर्शन पानेके अधिकारी नहीं हैं; इसीलिये यहाँ आनेवालोंको सब ओर निर्जन वन—सूना-ही-सूना दिखायी देता है; क्योंकि वे वास्तविक लीलामें स्थित भक्तजनोंको देख नहीं सकते।

इसलिये वज्रनाभ! तुम्हें तनिक भी चिन्ता न करनी चाहिये। तुम मेरी आज्ञासे यहाँ बहुत-से गाँव बसाओ; इससे निश्चय ही तुम्हारे मनोरथोंकी सिद्धि होगी। भगवान् श्रीकृष्णने जहाँ जैसी लीला की है, उसके अनुसार उस स्थानका नाम रखकर तुम अनेकों गाँव बसाओ और इस प्रकार परम उत्तम व्रजभूमिका सम्यक् प्रकारसे सेवन करते रहो। गोवर्धन, दीर्घपुर (डीग), मथुरा, महावन (गोकुल), नन्दिग्राम (नन्दगाँव) और बृहत्सानु (बरसाना) आदिमें तुम्हें अपने लिये छावनी बनवानी चाहिये और उन-उन स्थानोंमें रहकर भगवान्की लीलाके स्थल नदी, पर्वत, कन्दरा, सरोवर और कुण्ड तथा कुञ्ज-वन आदिका सेवन करते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे तुम्हारे राज्यमें प्रजा बहुत ही सम्पन्न

होगी और तुम भी अत्यन्त प्रसन्न रहोगे। यह व्रजभूमि सच्चिदानन्दमयी है—इसके कण-कणमें भगवान् श्रीकृष्ण रम रहे हैं; अतः तुम्हें हर तरहसे प्रयत्नपूर्वक इस भूमिका सेवन करना चाहिये। मैं आशीर्वाद देता हूँ; मेरी कृपासे भगवान्की लीलाके जितने भी स्थल हैं, सबकी तुम्हें ठीक-ठीक पहचान हो जायगी। वज्रनाभ! एक और बड़े महत्त्वकी बात बतलाता हूँ। इस व्रजभूमिका सेवन करते रहनेसे तुम्हें किसी दिन उद्धवजी मिल जायँगे। फिर तो अपनी ... सहित तुम उन्हींसे इस भूमिका तथा भगवान्की ... रहस्य भी जान लोगे।

मुनिवर शाण्डिल्यजी उन दोनोंको इस प्रकार बुझाकर भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए अपने ... पर चले गये। उनकी बातें सुनकर राजा परीक्षि... वज्रनाभ दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए।

यमुना और श्रीकृष्णपत्नियोंका संवाद, कीर्तनोत्सवमें उद्धवजीका प्रकट होना

सूतजी कहने लगे—महाराज परीक्षित्को भगवान् श्रीकृष्णने ही जीवन-दान दिया था; अतः वे उनके पौत्र वज्रनाभके लिये क्या नहीं कर सकते थे? अखिल भूमण्डलके सम्राट् तो थे ही, उनकी आज्ञा कौन नहीं मानता! उन्होंने इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) से हजारों बड़े-बड़े सेठोंको बुलवाकर उन्हें मथुरामें रहनेकी जगह दी। इनके अतिरिक्त मथुरामण्डलके ब्राह्मणोंको, जो भगवान्के बड़े ही प्रेमी थे, बुलवाया और उन्हें आदरके योग्य समझकर मथुरानगरीमें बसाया। इस प्रकार राजा परीक्षित्की सहायता और महर्षि शाण्डिल्यकी कृपासे वज्रनाभने क्रमशः उन सभी स्थानोंकी खोज की, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रेमी गोप-गोपियोंके साथ नाना प्रकारकी लीलाएँ करते थे। लीलास्थानोंका ठीक-ठीक निश्चय हो जानेपर उन्होंने वहाँ-वहाँकी लीलाके अनुसार उस-उस स्थानका नामकरण किया, भगवान्के लीलाविग्रहोंकी स्थापना की तथा उन-उन स्थानोंपर अनेकों गाँव बसाये। स्थान-स्थानपर भगवान्के नामसे कुण्ड और कुएँ खुदवाये। कुंज और बगीचे लगवाये, शिव आदि देवताओंकी स्थापना की तथा गोविन्ददेव, हरिदेव आदि नामोंसे भगवद्विग्रह स्थापित किये। इन सब शुभ कर्मोंके द्वारा वज्रनाभने अपने राज्यमें सब ओर एकमात्र श्रीकृष्णभक्तिका प्रचार किया और ऐसा करके वे बड़े ही प्रसन्न हुए। उनके प्रजाजनोंको भी बड़ा आनन्द था। वे सदा भगवान्के मधुर नाम तथा लीलाओंके कीर्तनमें संलग्न हो परमानन्दके समुद्रमें डूबे रहते थे और सदा ही वज्रनाभके राज्यकी प्रशंसा किया करते थे।

एक दिनकी बात है, भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार रानियाँ यमुनाके तटपर स्नानके लिये गयीं। वे सभी निरन्तर भगवान्की विरह-वेदनासे व्याकुल रहती थीं। यमुनाजी भी भगवान्की ही पत्नी थीं, पर उनपर भगवान्के वियोगका कुछ असर न था। श्रीकृष्णकी पत्नियोंने देखा—यमुनाजी बहुत प्रसन्न हैं, उनके अंदरसे आनन्दकी लहरें उठ ... सौतकी यह प्रसन्नता देखकर भी रानियोंके मनमें ... हुई। वे सरलभावसे पूछ बैठीं।

श्रीकृष्णकी रानियोंने कहा—बहिन कालि... जैसे हम सब श्रीकृष्णकी धर्मपत्नी हैं, वैसे ही तुम हो। हम तो उनकी विरहाग्निमें जली जा रही हैं, वियोगदुःखसे हमारा हृदय व्यथित हो रहा है; किंतु यह स्थिति नहीं है, तुम प्रसन्न हो। इसका क्या कारण ... कल्याणी! कुछ बताओ तो सही।

उनका प्रश्न सुनकर यमुनाजी हँस पड़ीं। साथ ... सोचकर कि मेरे प्रियतमकी पत्नी होनेके कारण ये ... ही बहिनें हैं, पिघल गयीं; उनका हृदय दयासे द्र... उठा। अतः वे इस प्रकार कहने लगीं।

यमुनाजी बोलीं—अपनी आत्मामें ही रमण ... कारण भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं और उनकी ... हैं—श्रीराधाजी। मैं दासीकी भाँति राधाजीकी सेवा ... रहती हूँ; अवश्य ही उनकी सेवाका यह फल है कि मैं ... हूँ। उनकी दासताके प्रभावसे ही विरह-शोक मुझे छू ... सकता। भगवान् श्रीकृष्णकी जितनी भी रानियाँ हैं, स... सब श्रीराधाके ही अंशका विस्तार हैं। भगवान् श्री... और राधा सदा एक दूसरेके सम्मुख हैं, उनका परस्पर संयोग है, इसलिये राधाके स्वरूपमें अंशतः विद्यमा... श्रीकृष्णकी अन्य रानियाँ हैं, उनको भी भगवान्का नित्य ... प्राप्त है। श्रीकृष्ण ही राधा हैं और राधा ही श्रीकृष्ण हैं ... दोनोंका प्रेम ही वंशी है तथा राधाकी प्यारी सखी चन्द्र... भी श्रीकृष्णचरणोंके नखरूपी चन्द्रमाओंकी सेवामें आ... रहनेके कारण ही 'चन्द्रावली' नामसे कही जाती है। श्री... और श्रीकृष्णकी सेवामें उसकी बड़ी लालसा, बड़ी लग...

इसीलिये वह कोई दूसरा स्वरूप धारण नहीं करती। मैंने श्रीराधामें ही रुक्मिणी आदिका भी समावेश देखा है। यह सब तरहसे निश्चित बात है कि तुमलोगोंका भी श्रीकृष्णसे वियोग नहीं हुआ है; किंतु तुम इस रहस्यको इस रूपमें जानती नहीं हो, इसीलिये इतनी व्याकुल हो रही हो। इसी प्रकार पहले भी जब अक्रूर श्रीकृष्णको नन्दगाँवसे मथुरामें ले आये थे, उस अवसरपर जो गोपियोंको श्रीकृष्णसे विरहकी प्रतीति हुई थी, वह भी वास्तविक विरह नहीं, केवल विरहका आभास था। इस बातको जबतक वे नहीं जानती थीं, तबतक उन्हें बड़ा कष्ट था; फिर जब उद्धवजीने आकर उनका समाधान किया, तब वे इस बातको समझ सकीं। उद्धवजीने उनके इस विरहको विरहाभास ही बतलाया, वास्तवमें तो उनका भगवान्‌से नित्य संयोग था। यदि तुम्हें भी उद्धवजीका सत्संग प्राप्त हो जाय, तो तुम सब भी अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ नित्य विहारका सुख प्राप्त कर लोगी।

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण! जब उन्होंने इस प्रकार समझाया, तब श्रीकृष्णकी पत्नियाँ सदा प्रसन्न रहनेवाली यमुनाजीसे पुनः बोलीं। उस समय उनके हृदयमें इस बातकी बड़ी लालसा थी कि किसी उपायसे उद्धवजीका दर्शन हो, जिससे हमें अपने प्रियतमके नित्य संयोगका सौभाग्य प्राप्त हो सके।

श्रीकृष्णपत्नियोंने कहा—सखी! तुम्हारा ही जीवन धन्य है; क्योंकि तुम्हें कभी भी अपने प्राणनाथके वियोगका दुःख नहीं भोगना पड़ता। जिन श्रीराधिकाजीकी कृपासे तुम्हारे अभीष्ट अर्थकी सिद्धि हुई है, उनकी अब हमलोग भी दासी हुईं। किंतु तुम अभी कह चुकी हो कि उद्धवजीके मिलनेपर ही हमारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे; इसलिये कालिन्दी! अब ऐसा कोई उपाय बताओ, जिससे उद्धवजी भी शीघ्र ही मिल जायँ।

सूतजी कहते हैं—श्रीकृष्णकी रानियोंने जब यमुनाजीसे इस प्रकार कहा, तब वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सोलह कलाओंका चिन्तन करती हुई उनसे कहने लगीं—"उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्णके मन्त्री थे। जब भगवान् अपने परमधामको पधारने लगे, तब उन्होंने मन्त्री उद्धवसे कहा—'उद्धव! साधना करनेकी भूमि है बदरिकाश्रम, अतः अपनी साधना पूर्ण करनेके लिये तुम वहीं जाओ।' भगवान्‌की इस आज्ञाके अनुसार उद्धवजी इस समय अपने साक्षात् स्वरूपसे बदरिकाश्रममें विराजमान हैं और वहाँ ज[illegible] जिज्ञासु लोगोंको भगवान्‌के बताये हुए ज्ञानका [illegible] करते रहते हैं। साधनकी फलरूपा भूमि है—व्रजभू[illegible] भी इसके रहस्योंसहित भगवान्‌ने पहले ही उद्धव[illegible] दिया था। किंतु वह फलभूमि यहाँसे भगवान्‌के अ[illegible] होनेके साथ ही स्थूल दृष्टिसे परे जा चुकी है; इसीलि[illegible] समय यहाँ उद्धव प्रत्यक्ष दिखायी नहीं पड़ते। [illegible] एक स्थान है, जहाँ उद्धवजीका दर्शन हो सकता[illegible] गोवर्धन पर्वतके निकट भगवान्‌की लीलासहचरी गो[illegible] विहार-स्थली है; वहाँकी लता, अङ्कुर और बेलोंके [illegible] अवश्य ही उद्धवजी वहाँ निवास करते हैं। लताओंके [illegible] उनके रहनेका यही उद्देश्य है कि भगवान्‌की प्रि[illegible] गोपियोंकी चरणरज उनपर पड़ती रहे। उद्धवजीके स[illegible] एक निश्चित बात यह भी है कि उन्हें भगवान्‌ने [illegible] उत्सव-स्वरूप प्रदान किया है। भगवान्‌का उत्सव उद्ध[illegible] का अङ्ग है, वे उससे अलग नहीं रह सकते; इसलिये [illegible] तुमलोग वज्रनाभको साथ लेकर वहाँ जाओ और कु[illegible] सरोवरके पास ठहरो। भगवद्भक्तोंकी मण्डली एकत्रित [illegible] वीणा, वेणु और मृदंग आदि बाजोंके साथ भगवान्‌के [illegible] और लीलाओंके कीर्तन, भगवत्सम्बन्धी काव्य-कथा [illegible] श्रवण तथा भगवद्गुणगानसे युक्त सरस संगीतोंद्वारा [illegible] उत्सव आरम्भ करो। इस प्रकार जब उस महान् उत[illegible] विस्तार होगा, तब निश्चय है कि वहाँ उद्धवजीका [illegible] मिलेगा। उद्धवजी ही भलीभाँति तुम सब लोगोंके म[illegible] पूर्ण करेंगे।"

सूतजी कहते हैं—यमुनाजीकी बतायी हुई [illegible] सुनकर श्रीकृष्णकी रानियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। उ[illegible] यमुनाजीको प्रणाम किया और वहाँसे लौटकर वज्रनाभ[illegible] परीक्षित्‌से वे सारी बातें कह सुनायीं। सब बातें सु[illegible] परीक्षित्‌को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने वज्रनाभ [illegible] श्रीकृष्णपत्नियोंको उसी समय साथ ले उस स्थानपर पहुँ[illegible] तत्काल वह सब कार्य आरम्भ करवा दिया, जो कि य[illegible] जीने बताया था। गोवर्धनके निकट वृन्दावनके [illegible] कुसुमसरोवरपर, जो सखियोंकी विहार-स्थली है, वहाँ [illegible] श्रीकृष्णकीर्तनका उत्सव आरम्भ हुआ। श्रीराधाजी [illegible] उनके प्रियतम श्रीकृष्णकी वह लीलाभूमि जब सा[illegible] सङ्कीर्तनकी शोभासे सम्पन्न हो गयी, उस समय [illegible] रहनेवाले सभी भक्तजन एकाग्र हो गये; उनकी दृष्टि, उ[illegible] मनकी वृत्ति कहीं अन्यत्र न जाती थी। तदनन्तर स[illegible]

देखते-देखते वहाँ फैले हुए तृण, गुल्म और लताओंके समूहसे प्रकट होकर श्रीउद्धवजी सबके सामने आये। उनका शरीर श्यामवर्ण था, उसपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। वे गलेमें वनमाला और गुंजाकी माला धारण किये हुए थे तथा मुखसे बारंबार गोपीवल्लभ श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंका गान कर रहे थे। उद्धवजीके आगमनसे उस सङ्कीर्तनोत्सवकी शोभा कई गुनी बढ़ गयी। उस समय सभी लोग आनन्दके समुद्रमें निमग्न हो अपना सब कुछ भूल गये, सारी सुध-बुध खो बैठे। थोड़ी देर बाद जब उनकी चेतना दिव्य लोकसे नीचे आयी, अर्थात् जब उन्हें होश हुआ तब उद्धवजीको भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूपमें उपस्थित देख, अपना मनोरथ पूर्ण हो जानेके कारण प्रसन्न हो वे उनकी पूजा करने लगे।

श्रीमद्भागवतका माहात्म्य, भागवतश्रवणसे श्रोताओंको भगवद्धामकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—उद्धवजीने वहाँ एकत्र हुए सब लोगोंको श्रीकृष्णकीर्तनमें लगा देखकर सभीका सत्कार किया और राजा परीक्षित्‌को हृदयसे लगाकर कहा।

उद्धवजी बोले—राजन्! तुम्हारा मन इस श्रीकृष्णकीर्तनके उत्सवमें रम रहा है, अतः तुम धन्य हो; तुम्हारा अन्तःकरण सदा ही केवल श्रीकृष्ण-भक्तिसे परिपूर्ण रहता है। तात! तुम जो कुछ कर रहे हो, सब तुम्हारे अनुरूप ही है। क्यों न हो, श्रीकृष्णने ही तुम्हें शरीर और वैभव प्रदान किया है; अतः तुम्हारा उनके प्रपौत्रपर प्रेम होना स्वाभाविक ही है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि समस्त द्वारकावासियोंमें ये लोग सबसे बढ़कर धन्यवादके पात्र हैं, जिन्हें व्रजमें निवास करानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको आज्ञा की थी। श्रीकृष्णका मनरूपी चन्द्रमा राधाके मुखकी प्रभारूप चाँदनीसे युक्त हो उनकी लीलाभूमि वृन्दावनको अपनी किरणोंसे सुशोभित करता हुआ यहाँ सदा प्रकाशमान रहता है। श्रीकृष्ण-चन्द्र नित्य परिपूर्ण हैं, प्राकृत चन्द्रमाकी भाँति उनमें वृद्धि और क्षयरूप विकार नहीं होते। उनकी जो सोलह कलाएँ हैं, उनसे सहस्रों चिन्मय किरणें निकलती रहती हैं; इससे उनके सहस्रों भेद हो जाते हैं। इन सभी कलाओंसे युक्त, नित्य परिपूर्ण श्रीकृष्ण इस व्रजभूमिमें सदा ही विद्यमान रहते हैं। इस भूमिमें और उनके स्वरूपमें कुछ अन्तर नहीं है। राजेन्द्र परीक्षित्! इस प्रकार विचार करनेपर सभी व्रजवासी भगवान्‌के अङ्गमें स्थित हैं। शरणागतोंका भय दूर करनेवाले जो ये वज्र हैं, इनका स्थान श्रीकृष्णके दाहिने चरणमें है। श्रीकृष्णका प्रकाश प्राप्त हुए बिना किसीको भी अपने स्वरूपका बोध नहीं हो सकता। जीवोंके अन्तःकरणमें जो श्रीकृष्णतत्त्वका प्रकाश है, उसपर सदा मायाका पर्दा पड़ा रहता है। अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें जब भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही सामने प्रकट होकर मायाका पर्दा उठा लेते हैं, उस समय जीवोंको उनका प्रकाश प्राप्त होता है। किंतु अब वह समय तो बीत गया; इसलिये उनके प्रकाशकी प्राप्तिके लिये अब दूसरा उपाय बतलाया जा रहा है, सुनो। अट्ठाईसवें द्वापरके अतिरिक्त समयमें यदि कोई श्रीकृष्णतत्त्वका प्रकाश पाना चाहे, तो उसे वह श्रीमद्भागवतसे ही प्राप्त हो सकता है। भगवान्‌के भक्त जहाँ जब कभी श्रीमद्भागवत-शास्त्रका कीर्तन और श्रवण करते हैं, वहाँ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात्‌रूपसे विराजमान रहते हैं। जहाँ श्रीमद्भागवतके एक या आधे श्लोकका ही पाठ होता है, वहाँ भी श्रीकृष्ण अपनी प्रियतमा गोपियोंके

साथ विद्यमान रहते हैं। जिन बड़भागियोंने प्रतिदिन श्रीमद्भागवत शास्त्रका सेवन किया है, उन्होंने अपने पिता, माता और पत्नी—तीनोंके ही कुलका भलीभाँति उद्धार कर दिया। श्रीमद्भागवतके स्वाध्याय और श्रवणसे ब्राह्मणोंको विद्याका प्रकाश (बोध) प्राप्त होता है, क्षत्रियलोग शत्रुओं-पर विजय पाते हैं, वैश्योंको धन मिलता है और शूद्र स्वस्थ—नीरोग बने रहते हैं। श्रीमद्भागवतसे स्त्रियों तथा अन्त्यज आदि अन्य लोगोंकी भी इच्छा पूर्ण होती है। अतः कौन ऐसा भाग्यवान् पुरुष है, जो श्रीमद्भागवतका नित्य ही सेवन न करेगा। अनेकों जन्मोंतक साधना करते-करते जब मनुष्य पूर्ण सिद्ध हो जाता है, तब उसे श्रीमद्भागवतकी प्राप्ति होती है। भागवतसे भगवान्‌का प्रकाश मिलता है, जिससे भगवद्भक्ति उत्पन्न होती है। पूर्वकालमें भगवान्‌ने श्रीमद्भागवतका उपदेश देकर कहा—'ब्रह्मन्! तुम अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये सदा ही इसका सेवन करते रहो।' ब्रह्माजी श्रीमद्भागवतका उपदेश पाकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीकृष्णकी नित्य-प्राप्तिके लिये तथा सात आवरणोंका भङ्ग करनेके लिये श्रीमद्भागवतका सप्ताह-पारायण किया। उस रहस्यका स्वयं ही उपदेश किया और मेरी बुद्धिमें उसका दृढ़ निश्चय करा दिया। उसीके प्रभावसे मैं बदरिकाश्रममें रहकर भी यहाँ व्रजकी लताओं और बेलोंमें निवास करता हूँ। उसीके बलसे यहाँ नारदकुण्डपर सदा स्वेच्छानुसार विराजमान रहता हूँ। भगवान्‌के भक्तोंको श्रीमद्भागवतके सेवनसे श्रीकृष्ण-तत्त्वका प्रकाश प्राप्त हो सकता है, इस कारण यहाँ उपस्थित हुए इन सभी भक्तजनोंके कार्यकी सिद्धिके लिये मैं श्रीमद्भागवतका पाठ करूँगा; किंतु इस कार्यमें तुम्हें ही सहायता करनी पड़ेगी।

सूतजी कहते हैं—यह सुनकर राजा परीक्षित् उद्धवजीको प्रणाम करके उनसे बोले।

परीक्षित्‌ने कहा—हरिदास उद्धवजी! आप निश्चिन्त होकर श्रीमद्भागवत-कथाका कीर्तन करें और इस कार्यमें मुझे जिस प्रकारकी सहायता करनी आवश्यक हो, उसके लिये आज्ञा दें।

सूतजी कहते हैं—परीक्षित्‌का यह वचन सुनकर उद्धवजी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए और बोले।

उद्धवजीने कहा—राजन्! भगवान् श्रीकृष्णने जबसे

भी आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ, अतः मुझपर भी आपको अनुग्रह करना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—उनके इस वचनको सुनकर उद्धवजी पुनः बोले।

उद्धवजीने कहा—राजन्! तुम्हें तो किसी भी बातके लिये किसी प्रकार भी चिन्ता न करनी चाहिये; क्योंकि इस भागवत-शास्त्रके प्रधान अधिकारी तो तुम्हीं हो। संसारके मनुष्य नाना प्रकारके कर्मोंमें रचे-पचे हुए हैं, ये लोग आजतक प्रायः भागवत-श्रवणकी बात भी नहीं जानते। तुम्हारे ही प्रसादसे इस भारतवर्षमें रहनेवाले अधिकांश मनुष्य श्रीमद्भागवत-कथाकी प्राप्ति होनेपर उस नित्य सनातन सुखस्वरूप परमात्माको प्राप्त करेंगे। महर्षि भगवान् श्रीशुकदेवजी साक्षात् नन्दनन्दन श्रीकृष्णके स्वरूप हैं। वे ही तुम्हें श्रीमद्भागवतकी कथा सुनायेंगे, इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है। राजन्! उस कथाके श्रवणसे तुम व्रजेश्वर श्रीकृष्णके नित्यधामको प्राप्त करोगे। इसके पश्चात् इस पृथ्वीपर श्रीमद्भागवत-कथाका प्रचार होगा। अतः राजेन्द्र परीक्षित्! तुम जाओ और कलियुगको जीतकर अपने वशमें करो।

सूतजी कहते हैं—उद्धवजीके इस प्रकार कहनेपर राजा परीक्षित्ने उनकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया और दिग्विजयके लिये चले गये। इधर वज्रने भी अपने पुत्र प्रतिबाहुको अपनी राजधानी मथुराका राजा बना दिया और माताओंको साथ ले उसी स्थानपर, जहाँ उद्धवजी प्रकट हुए थे, जाकर श्रीमद्भागवत सुननेकी इच्छासे रहने लगे। तदनन्तर उद्धवजीने वृन्दावनमें गोवर्धन पर्वतके निकट एक महीनेतक श्रीमद्भागवत-कथाके रसकी धारा बहायी। उस रसका आस्वादन करते समय प्रेमी श्रोताओंकी दृष्टिमें सब ओर भगवान्‌की सच्चिदानन्दमयी लीला प्रकाशित हो गयी और उन्हें सर्वत्र श्रीकृष्णचन्द्रका साक्षात्कार होने लगा। उस समय सभी श्रोताओंने अपनेको भगवान्‌के स्वरूपमें स्थित देखा। वज्रनाभने श्रीकृष्णके दाहिने चरणकमलमें अपनेको स्थित देखा और श्रीकृष्णके विरहशोकसे मुक्त होकर उस स्थानपर अत्यन्त सुशोभित होने लगे। वज्रनाभकी वे रोहिणी आदि माताएँ भी रासकी रजनीमें प्रकाशित होनेवाले श्रीकृष्णरूपी चन्द्रमाके विग्रहमें अपनेको कला और प्रभाके रूपमें स्थित देख बहुत ही विस्मित हुईं तथा अपने प्राणप्यारेकी विरह-वेदनासे छुटकारा पाकर उनके परम धाममें प्रविष्ट हो गयीं। इनके अतिरिक्त भी जो श्रोतागण वहाँ उपस्थित थे, वे भी भगवान्‌की नित्य अन्तरङ्ग लीलामें सम्मिलित होकर इस स्थूल व्यावहारिक जगत्से तत्काल अन्तर्धान हो गये। वे सभी सदा ही गोवर्धन पर्वतके कुञ्ज और झाड़ियोंमें, वृन्दावन-काम्यवन आदि वनोंमें तथा वहाँकी दिव्य गौओंके बीचमें श्रीकृष्णके साथ विचरते हुए अनन्त आनन्दका अनुभव करते रहते हैं। जो लोग श्रीकृष्णके प्रेममें मग्न हैं, उन भावुक भक्तोंको उनके दर्शन भी होते हैं।

सूतजी कहते हैं—जो लोग इस भगवत्प्राप्तिकी कथाको सुनेंगे और कहेंगे, उन्हें भगवान् मिल जायँगे और उनके दुःखोंका सदाके लिये अन्त हो जायगा।

श्रीमद्भागवतका स्वरूप, प्रमाण, श्रोता-वक्ताके लक्षण, श्रवणविधि और माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण! श्रीमद्भागवत और श्रीभगवान्‌का स्वरूप सदा एक ही है और वह है सच्चिदानन्दमय। भगवान् श्रीकृष्णमें जिनकी लगन लगी है, उन भावुक भक्तोंके हृदयमें जो भगवान्‌के माधुर्य भावको अभिव्यक्त करनेवाला, उनके दिव्य माधुर्य-रसका आस्वादन करानेवाला सर्वोत्कृष्ट वचन है, उसे श्रीमद्भागवत समझो। जो वाक्य ज्ञान, विज्ञान, भक्ति एवं इनके अङ्गभूत साधन-चतुष्टयको प्रकाशित करनेवाला है तथा जो मायाका मर्दन करनेमें समर्थ है, उसे भी तुम श्रीमद्भागवत समझो। श्रीमद्भागवत अनन्त, अक्षरस्वरूप है; इसका नियत प्रमाण भला कौन जान सकता है? पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीके प्रति चार श्लोकोंमें इसका दिग्दर्शनमात्र कराया था। विप्रगण! इस भागवतकी अपार गहराईमें डुबकी लगाकर इसमेंसे अपनी अभीष्ट वस्तुको प्राप्त करनेमें केवल ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि ही समर्थ हैं, दूसरे नहीं। परंतु जिनकी बुद्धि आदि वृत्तियाँ परिमित हैं, ऐसे मनुष्योंका हितसाधन करनेके लिये श्रीव्यासजीने परीक्षित् और शुकदेवजीके संवादके रूपमें जिसका गायन किया है, उसीका नाम श्रीमद्भागवत है। उस ग्रन्थकी श्लोकसंख्या अठारह हजार है। इस भवसागरमें जो प्राणी कलिरूपी

ग्राहसे ग्रस्त हो रहे हैं, उनके लिये वह श्रीमद्भागवत ही सर्वोत्तम अवलम्बन है।

श्रोता दो प्रकारके माने गये हैं—प्रवर (उत्तम) तथा अवर (अधम)। प्रवर श्रोताओंके 'चातक', 'हंस', 'शुक' और 'मीन' आदि कई भेद हैं। अवरके भी 'वृक', 'भूरुण्ड', 'वृष' और 'उष्ट्र' आदि अनेकों भेद बतलाये गये हैं। 'चातक' कहते हैं पपीहेको। वह जैसे बादलसे बरसते हुए जलमें ही स्पृहा रखता है, दूसरे जलको छूता ही नहीं—उसी प्रकार जो श्रोता सब कुछ छोड़कर केवल श्रीकृष्णसम्बन्धी शास्त्रोंके श्रवणका व्रत ले लेता है, वह 'चातक' कहा गया है। जैसे हंस दूधके साथ मिलकर एक हुए जलसे निर्मल दूध ग्रहण कर लेता और पानीको छोड़ देता है, उसी प्रकार जो श्रोता अनेकों शास्त्रोंका श्रवण करके भी उसमेंसे सार भाग अलग करके ग्रहण करता है, उसे 'हंस' कहते हैं। जिस प्रकार भलीभाँति पढ़ाया हुआ तोता अपनी मधुर वाणीसे शिक्षकको तथा पास आनेवाले दूसरे लोगोंको भी प्रसन्न करता है, उसी प्रकार जो श्रोता कथावाचक व्यासके मुँहसे उपदेश सुनकर उसे सुन्दर और परिमित वाणीमें पुनः सुना देता और व्यास एवं अन्यान्य श्रोताओंको अत्यन्त आनन्दित करता है, वह 'शुक' कहलाता है। जैसे क्षीरसागरमें मछली मौन रहकर अपलक आँखोंसे देखती हुई सदा दुग्ध पान करती रहती है, उसी प्रकार जो कथा सुनते समय निर्निमेष नयनोंसे देखता हुआ मुँहसे कभी एक शब्द भी नहीं निकालता और निरन्तर कथारसका ही आस्वादन करता रहता है, वह प्रेमी श्रोता 'मीन' कहा गया है। ये प्रवर अर्थात् उत्तम श्रोताओंके भेद बताये गये। अब अवर यानी अधम श्रोता बताये जाते हैं। 'वृक' कहते हैं भेड़ियेको। जैसे भेड़िया वनके भीतर वेणुकी मीठी आवाज सुननेमें लगे हुए मृगोंको डरानेवाली भयानक गर्जना करता है, वैसे ही जो मूर्ख कथाश्रवणके समय रसिक श्रोताओंको उद्विग्न करता हुआ बीच-बीचमें जोर-जोरसे बोल उठता है, वह 'वृक' कहलाता है। हिमालयके शिखरपर एक भूरुण्ड जातिका पक्षी होता है। वह किसीके शिक्षाप्रद वाक्य सुनकर वैसा ही बोला करता है, किन्तु स्वयं उससे लाभ नहीं उठाता। इसी प्रकार जो उपदेशकी बात सुनकर उसे दूसरोंको तो सिखाये, पर स्वयं आचरणमें न लाये, ऐसे श्रोताको 'भूरुण्ड' कहते हैं। 'वृष' कहते हैं बैलको। उसके सामने मीठे-मीठे अंगूर हों या कड़वी खली, दोनोंको वह एक-सा ही मानकर खाता है। उसी प्रकार जो सुनी हुई सभी बातें ग्रहण करता है, पर सार और असार वस्तुका विचार करनेमें उसकी बुद्धि अंधी—असमर्थ होती है, ऐसा श्रोता 'वृष' कहलाता है। जिस प्रकार ऊँट माधुर्यगुणसे युक्त आमको भी छोड़कर केवल नीमकी ही पत्ती चबाता है, उसी प्रकार जो भगवान्‌की मधुर कथाको छोड़कर उसके विपरीत संसारी बातोंमें रमता रहता है, उसे 'उष्ट्र' कहते हैं। ये कुछ थोड़े-से भेद यहाँ बताये गये। इनके अतिरिक्त भी प्रवर-अवर दोनों प्रकारके श्रोताओंके 'भ्रमर' और 'गर्दभ' आदि बहुत-से भेद हैं; इन सब भेदोंको उन-उन श्रोताओंके स्वाभाविक आचार-व्यवहारोंसे परखना चाहिये। जो वक्ताके सामने उन्हें विधिवत् प्रणाम करके बैठे और अन्य संसारी बातोंको छोड़कर केवल श्रीभगवान्‌की लीला-कथाओंको ही सुननेकी इच्छा रक्खे, समझनेमें अत्यन्त कुशल हो, नम्र हो, हाथ जोड़े रहे, शिष्यभावसे उपदेश ग्रहण करे और भीतर श्रद्धा तथा विश्वास रक्खे, इसके सिवा जो कुछ सुने उसका बराबर चिन्तन करता रहे, जो बात समझमें न आवे, उसे पूछे और पवित्र भावसे रहे तथा श्रीकृष्णके भक्तोंपर सदा ही प्रेम रखता हो—ऐसे ही श्रोताको वक्तालोग उत्तम श्रोता कहते हैं। अब वक्ताके लक्षण बतलाते हैं। जिसका मन सदा भगवान्‌में लगा रहे, जिसे किसी भी वस्तुकी अपेक्षा न हो, जो सबका सुहृद् और दीनोंपर दया करनेवाला हो तथा अनेकों युक्तियोंसे तत्त्वका बोध करा देनेमें चतुर हो, उसी वक्ताका मुनिलोग भी सम्मान करते हैं।

विप्रगण! अब मैं भारतवर्षकी भूमिपर श्रीमद्भागवत-कथाका सेवन करनेके लिये जो आवश्यक विधि है, उसे बतलाता हूँ; आप सुनें। इस विधिके पालनसे श्रोताकी सुख-परम्पराका विस्तार होता है। श्रीमद्भागवतका सेवन चार प्रकारका है—सात्त्विक, राजस, तामस और निर्गुण। जिसमें यज्ञकी भाँति तैयारी की गयी हो, बहुत-सी पूजा-सामग्रियोंके कारण जो अत्यन्त शोभासम्पन्न दिखायी दे रहा हो और बड़े ही परिश्रमसे बहुत उतावलीके साथ सात दिनोंमें ही जिसकी समाप्ति की जाय, वह प्रसन्नतापूर्वक किया हुआ श्रीमद्भागवतका सेवन 'राजस' है। एक या दो महीनेमें धीरे-धीरे कथाके रसका आस्वादन करते हुए बिना परिश्रमके जो श्रवण होता है, वह पूर्ण आनन्दको बढ़ानेवाला 'सात्त्विक' सेवन कहलाता है।

तामस सेवन वह है जो कभी भूलसे छोड़ दिया जाय और याद आनेपर फिर आरम्भ कर दिया जाय, इस प्रकार एक वर्षतक आलस्य और अश्रद्धाके साथ चलाया जाय। यह 'तामस' सेवन भी न करनेकी अपेक्षा अच्छा और सुख ही देनेवाला है। जब वर्ष, महीना और दिनोंके नियमका आग्रह छोड़कर सदा ही प्रेम और भक्तिके साथ श्रवण किया जाय, तब वह सेवन 'निर्गुण' माना गया है। राजा परीक्षित् और शुकदेवके संवादमें भी जो भागवतका सेवन हुआ था, वह निर्गुण ही बताया गया है। उसमें जो सात दिनोंकी बात आती है, वह राजाकी आयुके बचे हुए दिनोंकी संख्याके अनुसार है, सप्ताह-कथाका नियम करनेके लिये नहीं।

भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य स्थानोंमें भी त्रिगुण (सात्त्विक, राजस और तामस) अथवा निर्गुण सेवन अपनी रुचिके अनुसार करना चाहिये। तात्पर्य यह कि जिस किसी प्रकार भी हो सके, श्रीमद्भागवतका सेवन, उसका श्रवण करना ही चाहिये। जो केवल श्रीकृष्णकी लीलाओंके ही श्रवण, कीर्तन एवं रसास्वादनके लिये लालायित रहते और मोक्षकी भी इच्छा नहीं रखते उनका तो श्रीमद्भागवत ही धन है। तथा जो संसारके दुःखोंसे घबड़ाकर अपनी मुक्ति चाहते हैं, उनके लिये भी यही इस भवरोगकी ओषधि है। अतः इस कलिकालमें इसका प्रयत्नपूर्वक सेवन करना चाहिये। इनके अतिरिक्त जो लोग विषयभोगोंमें ही परायण रहनेवाले हैं, सांसारिक सुखोंकी ही जिन्हें सदा चाह रहती है, उनके लिये भी अब इस कलियुगमें सामर्थ्य, धन और विधि-विधानका ज्ञान न होनेके कारण कर्ममार्ग (यज्ञादि) से मिलनेवाली सिद्धि अत्यन्त दुर्लभ हो गयी है। ऐसी दशामें उन्हें भी सब प्रकारसे अब इस भागवत-कथाका ही सेवन करना चाहिये। यह श्रीमद्भागवतकी कथा धन, पुत्र, स्त्री, हाथी-घोड़े आदि वाहन, यश, मकान और निष्कण्टक राज्य भी दे सकती है। सकाम भावसे भागवतका सहारा लेनेवाले मनुष्य इस संसारमें मनोवाञ्छित उत्तम भोगोंको भोगकर अन्तमें श्रीमद्भागवतके ही सङ्गसे श्रीहरिके परमधामको प्राप्त हो जाते हैं।

जिनके यहाँ श्रीमद्भागवतकी कथा-वार्ता होती हो तथा जो लोग उस कथाके श्रवणमें लगे रहते हों, उनकी सेवा और सहायता अपने शरीर और धनसे करनी चाहिये। उन्हींके अनुग्रहसे सहायता करनेवाले पुरुषको भी भागवत-सेवनका पुण्य प्राप्त होता है। कामना दो वस्तुओंकी होती है—श्रीकृष्णकी और धनकी। श्रीकृष्णके सिवा जो कुछ भी चाहा जाय वह सब धनके अन्तर्गत है, उसकी 'धन' संज्ञा है। श्रोता और वक्ता भी दो प्रकारके माने गये हैं, एक श्रीकृष्णको चाहनेवाले और दूसरे धनको चाहनेवाले। जैसा वक्ता, वैसा ही श्रोता भी हो तो वहाँ कथामें रस मिलता है, अतः सुखकी वृद्धि होती है। यदि दोनों विपरीत विचारके हों तो रसाभास हो जाता है, अतः फलकी हानि होती है। किंतु जो श्रीकृष्णको चाहनेवाले वक्ता और श्रोता हैं, उन्हें विलम्ब होनेपर भी सिद्धि अवश्य मिलती है। श्रीकृष्णकी चाह रखनेवाला सर्वथा गुणहीन हो और उसकी विधिमें कुछ कमी रह जाय तो भी, यदि उसके हृदयमें प्रेम है तो, वही उसके लिये सर्वोत्तम विधि है। सकाम पुरुषको कथाकी समाप्तिके दिनतक स्वयं सावधानीके साथ सभी विधियोंका पालन करना चाहिये। भागवतकथाके श्रोता और वक्ता दोनोंके ही पालन करनेयोग्य विधि यह है—प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके अपना नित्यकर्म पूरा कर ले। फिर भगवान्‌का चरणामृत पीकर पूजाके सामानसे श्रीमद्भागवतकी पुस्तक और गुरुदेव (व्यास) का पूजन करे। इसके पश्चात् अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक श्रीमद्भागवतकी कथा स्वयं कहे अथवा सुने। दूध या खीरका मौन भोजन करे। नित्य ब्रह्मचर्यका पालन और भूमिपर शयन करे। क्रोध और लोभ आदिको त्याग दे। प्रतिदिन कथाके अन्तमें कीर्तन करे और कथा समाप्त होनेपर रात्रिमें जागरण करे। समाप्ति होनेपर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणासे सन्तुष्ट करे। कथावाचक गुरुको वस्त्र, आभूषण आदि देकर गौ भी अर्पण करे। इस प्रकार विधि-विधान पूर्ण करनेपर मनुष्यको स्त्री, घर, पुत्र, राज्य और धन आदि जो-जो उसे अभीष्ट होता है, वह सब मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। परंतु सकामभाव बहुत बड़ी विडम्बना है, वह श्रीमद्भागवतकी कथामें शोभा नहीं देता। श्रीशुकदेवजीके मुखसे कहा हुआ यह श्रीमद्भागवतशास्त्र तो कलियुगमें साक्षात् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाला और नित्य प्रेमानन्द प्रदान करनेवाला है। इसका तुच्छ कामनाके लिये उपयोग उचित नहीं है।

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य सम्पूर्ण

वैशाखमास-माहात्म्य

वैशाख मासकी श्रेष्ठता; उसमें जल, व्यजन, छत्र, पादुका और अन्न आदि दानोंकी महिमा

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

'भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर, देवी सरस्वती तथा महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके भगवान्‌की विजय-कथासे परिपूर्ण इतिहास-पुराण आदिका पाठ करना चाहिये।'

सूतजी कहते हैं—राजा अम्बरीषने परमेष्ठी ब्रह्माके पुत्र देवर्षि नारदसे पुण्यमय वैशाख मासका माहात्म्य इस प्रकार पूछा—'ब्रह्मन्! मैंने आपसे सभी महीनोंका माहात्म्य सुना। उस समय आपने यह कहा था कि सब महीनोंमें वैशाख मास श्रेष्ठ है। इसलिये यह बतानेकी कृपा करें कि वैशाख मास क्यों भगवान् विष्णुको प्रिय है और उस समय कौन-कौन-से धर्म भगवान् विष्णुके लिये प्रीतिकारक हैं?'

नारदजीने कहा—वैशाख मासको ब्रह्माजीने सब मासोंमें उत्तम सिद्ध किया है। वह माताकी भाँति सब जीवोंको सदा अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाला है। धर्म, यज्ञ, क्रिया और तपस्याका सार है। सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित है। जैसे विद्याओंमें वेद-विद्या, मन्त्रोंमें प्रणव, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, धेनुओंमें कामधेनु, देवताओंमें विष्णु, वर्णोंमें ब्राह्मण, प्रिय वस्तुओंमें प्राण, नदियोंमें गङ्गाजी, तेजोंमें सूर्य, अस्त्र-शस्त्रोंमें चक्र, धातुओंमें सुवर्ण, वैष्णवोंमें शिव तथा रत्नोंमें कौस्तुभ-मणि है, उसी प्रकार धर्मके साधनभूत महीनोंमें वैशाख मास सबसे उत्तम है। संसारमें इसके समान भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला दूसरा कोई मास नहीं है। जो वैशाख मासमें सूर्योदयसे पहले स्नान करता है, उससे भगवान् विष्णु निरन्तर प्रीति करते हैं। पाप तभीतक गर्जते हैं, जबतक जीव वैशाख मासमें प्रातःकाल जलमें स्नान नहीं करता। राजन्! वैशाखके महीनेमें सब तीर्थ आदि देवता (तीर्थके अतिरिक्त) बाहरके जलमें भी सदैव स्थित रहते हैं। भगवान् विष्णुकी आज्ञासे मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये वे सूर्योदयसे लेकर छः दण्डके भीतरतक वहाँ मौजूद रहते हैं।

वैशाखके समान कोई मास नहीं है, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं है, वेदके समान कोई शास्त्र नहीं है और गङ्गाजीके समान कोई तीर्थ नहीं है।* जलके समान दान नहीं है, खेतीके समान धन नहीं है और जीवनसे बढ़कर कोई लाभ नहीं है। उपवासके समान कोई तप नहीं, दानसे बढ़कर कोई सुख नहीं, दयाके समान धर्म नहीं, धर्मके समान मित्र नहीं, सत्यके समान यश नहीं, आरोग्यके समान उन्नति नहीं, भगवान् विष्णुसे बढ़कर कोई रक्षक नहीं और वैशाख मासके समान संसारमें कोई पवित्र मास नहीं है। ऐसा विद्वान् पुरुषोंका मत है। वैशाख श्रेष्ठ मास है और शेषशायी भगवान् विष्णुको सदा प्रिय है। सब दानोंसे जो पुण्य होता है और सब तीर्थोंमें जो फल होता है, उसीको मनुष्य वैशाख मासमें केवल जलदान करके प्राप्त कर लेता है। जो जलदानमें असमर्थ है, ऐसे ऐश्वर्यकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको उचित है कि वह दूसरेको प्रबोध करे, दूसरेको जलदानका महत्त्व समझावे। यह सब दानोंसे बढ़कर हितकारी है। जो मनुष्य वैशाखमें सड़कपर यात्रियोंके लिये प्याऊ लगाता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। नृपश्रेष्ठ! प्रपादान (पौंसला या प्याऊ) देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंको अत्यन्त प्रीति देनेवाला है। जिसने प्याऊ लगाकर रास्तेके थके-माँदे मनुष्योंको सन्तुष्ट किया है, उसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंको सन्तुष्ट कर लिया है। राजन्! वैशाख मासमें जलकी इच्छा रखनेवालेको जल, छाया चाहनेवालेको छाता और पंखेकी इच्छा रखनेवालेको पंखा देना चाहिये। राजेन्द्र! जो प्याससे पीड़ित महात्मा पुरुषके लिये शीतल जल प्रदान करता है, वह उतने ही मात्रसे दस हजार राजसूय यज्ञोंका फल पाता है। धूप और परिश्रमसे पीड़ित ब्राह्मणको जो पंखा डुलाकर हवा करता है, वह उतने ही मात्रसे निष्पाप होकर भगवान्‌का पार्षद हो जाता है। जो मार्गसे थके हुए श्रेष्ठ द्विजको वस्त्रसे भी हवा करता है, वह उतनेसे ही मुक्त हो भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो शुद्ध चित्तसे ताड़का पंखा देता है, वह सब पापोंका नाश करके ब्रह्मलोकको जाता है। जो

---

* न माधवसमो मासो न कृतेन युगं समम्।
न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्॥
(स्क० पु० वै० वै० मा० २।१)

विष्णुप्रिय वैशाख मासमें पादुका दान करता है, वह यमदूतोंका तिरस्कार करके विष्णुलोकमें जाता है । जो मार्गमें अनाथोंके ठहरनेके लिये विश्रामशाला बनवाता है, उसके पुण्य-फलका वर्णन किया नहीं जा सकता । मध्याह्नमें आये हुए ब्राह्मण अतिथिको यदि कोई भोजन दे, तो उसके फलका अन्त नहीं है । राजन् ! अन्नदान मनुष्योंको तत्काल तृप्त करनेवाला है, इसलिये संसारमें अन्नके समान कोई दान नहीं है । जो मनुष्य मार्गके थके हुए ब्राह्मणके लि[ये] आश्रय देता है, उसके पुण्यफलका वर्णन किया नहीं [जा] सकता । भूपाल ! जो अन्नदाता है, वह माता-पिता आदिक[ो] भी विस्मरण करा देता है । इसलिये तीनों लोकोंके निवास[ी] अन्नदानकी ही प्रशंसा करते हैं । माता और पिता केवल जन्मक[े] हेतु हैं, पर जो अन्न देकर पालन करता है, मनीषी पुरुष इ[स] लोकमें उसीको पिता कहते हैं ।

वैशाख मासमें विविध वस्तुओंके दानका महत्त्व तथा वैशाखस्नानके नियम

नारदजी कहते हैं—वैशाख मासमें धूपसे तपे और थके-माँदे ब्राह्मणोंको श्रमनाशक सुखद पलंग देकर मनुष्य कभी जन्म-मृत्यु आदिके क्लेशोंसे कष्ट नहीं पाता । जो वैशाख मासमें पहननेके लिये कपड़े और बिछावन देता है, वह उसी जन्ममें सब भोगोंसे सम्पन्न हो जाता है और समस्त पापोंसे रहित हो ब्रह्मनिर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त होता है । जो तिनकेकी बनी हुई या अन्य खजूर आदिके पत्तोंकी बनी हुई चटाई दान करता है, उसकी उस चटाईपर साक्षात् भगवान् विष्णु शयन करते हैं । चटाई देनेवाला बैठने और बिछाने आदिमें सब ओरसे सुखी रहता है । जो सोनेके लिये चटाई और कम्बल देता है, वह उतने ही मात्रसे मुक्त हो जाता है । निद्रासे दुःखका नाश होता है, निद्रासे थकावट दूर होती है और वह निद्रा चटाईपर सोनेवालेको सुखपूर्वक आ जाती है । धूपसे कष्ट पाये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणको जो सूक्ष्मतर वस्त्र दान करता है, वह पूर्ण आयु और परलोकमें उत्तम गतिको पाता है । जो पुरुष ब्राह्मणको फूल और रोली देता है, वह लौकिक भोगोंका भोग करके मोक्षको प्राप्त होता है । जो खस, कुश और जलसे वासित चन्दन देता है, वह सब भोगोंमें देवताओंकी सहायता पाता है तथा उसके पाप और दुःखकी हानि होकर परमानन्दकी प्राप्ति होती है । वैशाखके धर्मको जाननेवाला जो पुरुष गोरोचन और कस्तूरीका दान करता है, वह तीनों तापोंसे मुक्त होकर परम शान्तिको प्राप्त होता है । जो विश्रामशाला बनवाकर प्याऊसहित ब्राह्मणको दान करता है, वह लोकोंका अधिपति होता है । जो सड़कके किनारे बगीचा, पोखरा, कुआँ और मण्डप बनवाता है, वह धर्मात्मा है, उसे पुत्रोंकी क्या आवश्यकता है । उत्तम शास्त्रका श्रवण, तीर्थयात्रा, सत्सङ्ग, जलदान, अन्नदान, पीपलका वृक्ष लगाना तथा पुत्र—इन सातको विज्ञ पुरुष सन्तान मानते हैं । जो वैशाख मासमें तापनाशक तक्र दान करता है, वह इस पृथ्वीपर विद्वान् और धनवान् होता है । धूपके समय मट्ठे[के] समान कोई दान नहीं, इसलिये रास्तेके थके-माँदे ब्राह्मणक[ो] मट्ठा देना चाहिये । जो वैशाख मासमें धूपकी शान्तिके लि[ये] दही और खाँड़ दान करता है तथा विष्णुप्रिय वैशाख मासमें ज[ो] स्वच्छ चावल देता है, वह पूर्ण आयु और सम्पूर्ण यज्ञोंक[ा] फल पाता है । जो पुरुष ब्राह्मणके लिये गोघृत अर्पण करत[ा] है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाकर विष्णुलोकमें आनन्द का अनुभव करता है । जो दिनके तापकी शान्तिके लिये सायंकालमें ब्राह्मणको ऊख दान करता है, उसको अक्षय पुण्य प्राप्त होता है । जो वैशाख मासमें शामको ब्राह्मणके लिये फल और शर्बत देता है, उससे उसके पितरोंको निश्चय ही अमृतपानका अवसर मिलता है । जो वैशाखके महीनेमें पके हुए आमके फलके साथ शर्बत देता है, उसके सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं । जो वैशाखकी अमावास्याको पितरोंके उद्देश्यसे कस्तूरी, कपूर, बेला और खसकी सुगन्धसे वासित शर्बतसे भरा हुआ घड़ा दान करता है, वह छियानवे घड़ा दान करनेका पुण्य पाता है ।

वैशाखमें तेल लगाना, दिनमें सोना, कांस्यके पात्रमें भोजन करना, खाटपर सोना, घरमें नहाना, निषिद्ध पदार्थ खाना, दुबारा भोजन करना तथा रातमें खाना—ये आठ बातें त्याग देनी चाहिये* । जो वैशाखमें व्रतका पालन करनेवाला पुरुष पद्म-पत्तेमें भोजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है । जो विष्णुभक्त पुरुष वैशाख मासमें नदी-स्नान करता है, वह तीन जन्मोंके पापसे निश्चय ही मुक्त हो जाता है । जो प्रातःकाल सूर्योदयके समय

* तैलाभ्यङ्गं दिवास्वापं तथा वै कांस्यभोजनम् ।
खट्वानिद्रां गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम् ॥
वैशाखे वर्जयेदष्टौ द्विभुक्तं नक्तभोजनम् ।
(स्क० पु० वै० वै० मा० ४ । १-२)

किसी समुद्रगामिनी नदीमें वैशाख-स्नान करता है, वह सात जन्मोंके पापसे तत्काल छूट जाता है। जो मनुष्य सात गङ्गाओंमेंसे किसीमें भी ऊषःकालमें स्नान करता है, वह करोड़ों जन्मोंमें उपार्जित किये हुए पापसे निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। जाह्नवी (गङ्गा), वृद्ध गङ्गा (गोदावरी), कालिन्दी (यमुना), सरस्वती, कावेरी, नर्मदा और वेणी—ये सात गङ्गाएँ कही गयी हैं।* वैशाख मास आनेपर जो प्रातःकाल बावलियोंमें स्नान करता है, उसके महापातकोंका नाश हो जाता है। कन्द, मूल, फल, शाक, नमक, गुड़, बेर, पत्र, जल और तक्र—जो भी वैशाखमें दिया जाय, वह सब अक्षय होता है। ब्रह्मा आदि देवता भी बिना दिये हुए कोई वस्तु नहीं पाते। जो दानसे हीन है, वह निर्धन होता है। अतः सुखकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको वैशाख मासमें अवश्य दान करना चाहिये। सूर्यदेवके मेषराशिमें स्थित होनेपर भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे अवश्य प्रातःकाल स्नान करके भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। कोई महीरथ नामक एक राजा था, जो कामनाओंमें आसक्त और अजितेन्द्रिय था। वह केवल वैशाख-स्नानके सुयोगसे स्वतः वैकुण्ठधामको चला गया। वैशाख मासके देवता भगवान् मधुसूदन हैं। अतएव वह सफल मास है। वैशाख मासमें भगवान्‌की प्रार्थनाका मन्त्र इस प्रकार है—

मधुसूदन देवेश वैशाखे मेषगे रवौ।
प्रातःस्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु माधव॥

'हे मधुसूदन! हे देवेश्वर माधव! मैं मेषराशिमें सूर्यके स्थित होनेपर वैशाख मासमें प्रातःस्नान करूँगा, आप इसे निर्विघ्न पूर्ण कीजिये।'

तत्पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे—

वैशाखे मेषगे भानौ प्रातःस्नानपरायणः।
अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण मधुसूदन॥

'सूर्यके मेषराशिपर स्थित रहते हुए वैशाख मासमें प्रातःस्नानके नियममें संलग्न होकर मैं आपको अर्घ्य देता हूँ। मधुसूदन! इसे ग्रहण कीजिये।'

इस प्रकार अर्घ्य समर्पण करके स्नान करे। फिर वस्त्रोंको पहनकर सन्ध्या-तर्पण आदि सब कर्मोंको पूरा करके वैशाख मासमें विकसित होनेवाले पुष्पोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करे। उसके बाद वैशाख मासके माहात्म्यको सूचित करनेवाली भगवान् विष्णुकी कथा सुने। ऐसा करनेसे कोटि जन्मोंके पापोंसे मुक्त होकर मनुष्य मोक्षको प्राप्त होता है। यह शरीर अपने अधीन है, जल भी अपने अधीन ही है, साथ ही अपनी जिह्वा भी अपने वशमें है। अतः इस स्वाधीन शरीरसे स्वाधीन जलमें स्नान करके स्वाधीन जिह्वासे 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण करे। जो वैशाख मासमें तुलसीदलसे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह विष्णुकी सायुज्य मुक्तिको पाता है। अतः अनेक प्रकारके भक्तिमार्गसे तथा भाँति-भाँतिके व्रतोंद्वारा भगवान् विष्णुकी सेवा तथा उनके सगुण या निर्गुण स्वरूपका अनन्य चित्तसे ध्यान करना चाहिये।

वैशाख मासमें छत्रदानसे हेमकान्तका उद्धार

नारदजी कहते हैं—एक समय विदेहराज जनकके घर दोपहरके समय श्रुतदेव नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ मुनि पधारे, जो वेदोंके ज्ञाता थे। उन्हें देखकर राजा बड़े उल्लासके साथ उठकर खड़े हो गये और मधुपर्क आदि सामग्रियोंसे उनकी विधिपूर्वक पूजा करके राजाने उनके चरणोदकको अपने मस्तकपर धारण किया। इस प्रकार स्वागत-सत्कारके पश्चात् जब वे आसनपर विराजमान हुए, तब विदेहराजके प्रश्नके अनुसार वैशाख मासके माहात्म्यका वर्णन करते हुए वे इस प्रकार बोले।

श्रुतदेवने कहा—राजन्! जो लोग वैशाख मासमें धूपसे सन्तप्त होनेवाले महात्मा पुरुषोंके ऊपर छाता लगाते हैं, उन्हें अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। पहले वङ्गदेशमें हेमकान्त नामसे विख्यात एक राजा हो गये हैं। वे कुशकेतुके पुत्र परम बुद्धिमान् और शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ थे। एक दिन वे शिकार खेलनेमें आसक्त होकर एक गहन वनमें जा घुसे। वहाँ अनेक प्रकारके मृग और वराह आदि जन्तुओंको मारकर जब वे बहुत थक गये, तब

* जाह्नवी वृद्धगङ्गा च कालिन्दी च सरस्वती। कावेरी नर्मदा वेणी सप्तगङ्गाः प्रकीर्तिताः॥

(स्क० पु० वै० वै० मा० ४। १५)

दोपहरके समय मुनियोंके आश्रमपर आये । उस समय आश्रमपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शतर्चि नामवाले ऋषि समाधि लगाये बैठे थे, जिन्हें बाहरके कार्योंका कुछ भी भान नहीं होता था। उन्हें निश्चल बैठे देख राजाको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उन महात्माओंको मार डालनेका निश्चय किया । तब उन ऋषियोंके दस हजार शिष्योंने राजाको मना करते हुए कहा—'ओ खोटी बुद्धिवाले नरेश ! हमारे गुरुलोग इस समय समाधिमें स्थित हैं, बाहर कहाँ क्या हो रहा है—इसको ये नहीं जानते । इसलिये इनपर तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये ।'

तब राजाने क्रोधसे विह्वल होकर शिष्योंसे कहा—द्विजकुमारो ! मैं मार्गसे थका-माँदा यहाँ आया हूँ । अतः तुम्हीं लोग मेरा आतिथ्य करो । राजाके ऐसा कहनेपर वे शिष्य बोले—'हमलोग भिक्षा माँगकर खानेवाले हैं। गुरुजनोंने हमें किसीके आतिथ्यके लिये आज्ञा नहीं दी है । हम सर्वथा गुरुके अधीन हैं । अतः तुम्हारा आतिथ्य कैसे कर सकते हैं ।' शिष्योंका यह कोरा उत्तर पाकर राजाने उन्हें मारनेके लिये धनुष उठाया और इस प्रकार कहा—'मैंने हिंसक जीवों और लुटेरोंके भय आदिसे जिनकी अनेकों बार रक्षा की है, जो मेरे दिये हुए दानोंपर ही पलते हैं, वे आज मुझे ही सिखलाने चले हैं । ये मुझे नहीं जानते, ये सभी कृतघ्न और बड़े अभिमानी हैं। इन आततायियोंको मार डालनेपर भी मुझे कोई दोष नहीं लगेगा ।' ऐसा कहकर वे कुपित हो धनुषसे बाण छोड़ने लगे । बेचारे शिष्य आश्रम छोड़कर भयसे भाग चले । भागनेपर भी हेमकान्तने उनका पीछा किया और तीन सौ शिष्योंको मार गिराया । शिष्योंके भाग जानेपर आश्रमपर जो कुछ सामग्री थी, उसे राजाके पापात्मा सैनिकोंने लूट लिया । राजाके अनुमोदनसे ही उन्होंने वहाँ इच्छानुसार भोजन किया । तत्पश्चात् दिन बीतते-बीतते राजा सेनाके साथ अपनी पुरीमें आ गये । राजा कुशकेतुने जब अपने पुत्रका यह अन्यायपूर्ण कार्य सुना, तब उसे राज्य करनेके अयोग्य जानकर उसकी निन्दा करते हुए उसे देशनिकाला दे दिया । पिताके त्याग देनेपर हेमकान्त घने वनमें चला गया । वहाँ उसने बहुत वर्षोंतक निवास किया । ब्रह्महत्या उसका सदा पीछा करती रहती थी, इसलिये वह कहीं भी स्थिरतापूर्वक रह नहीं पाता था । इस प्रकार उस दुष्टात्माके अट्ठाईस वर्ष व्यतीत हो गये । एक दिन वैशाख मासमें जब दोपहरका समय हो रहा था, महामुनि त्रित तीर्थयात्राके प्रसङ्ग उस वनमें आये । वे धूपसे अत्यन्त संतप्त और तृषासे बहुत पीड़ित थे, इसलिये किसी वृक्षहीन प्रदेशमें मूर्छित होकर गिर पड़े । दैवयोगसे हेमकान्त उधर आ निकला; उस मुनिको प्याससे पीड़ित, मूर्छित और थका-माँदा देख उसने बड़ी दया की । उसने पलाशके पत्तोंसे छत्र बनाकर उनके ऊपर आती हुई धूपका निवारण किया । वह स्वयं मुनिके मस्तकपर छाता लगाये खड़ा हुआ और तूँबीमें रखा हुआ जल उनके मुँहमें डाला । इस उपचारसे मुनिको चेत हो आया और उन्होंने क्षत्रियके दिये हुए पत्तेके छातेको लेकर अपनी व्याकुलता दूर की । उनकी इन्द्रियोंमें कुछ शक्ति आयी और वे धीरे-धीरे किसी गाँवमें पहुँच गये । उस पुण्यके प्रभावसे हेमकान्तकी तीन सौ ब्रह्महत्याएँ नष्ट हो गयीं । इसी समय यमराजके दूत हेमकान्तको लेनेके लिये वनमें आये । उन्होंने उसके प्राण लेनेके लिये संग्रहणी रोग पैदा किया । उस समय प्राण छूटनेकी पीड़ासे छटपटाते हुए हेमकान्तने तीन अत्यन्त भयङ्कर यमदूतोंको देखा, जिनके बाल ऊपरकी ओर उठे हुए थे । उस समय अपने कर्मोंको याद करके वह चुप हो गया । छत्र-दानके प्रभावसे उसको भगवान् विष्णुका स्मरण हुआ । उसके स्मरण करनेपर भगवान् महाविष्णुने विष्वक्सेनसे कहा—'तुम शीघ्र जाओ, यमदूतोंको रोको, हेमकान्तकी रक्षा करो । अब वह निष्पाप एवं मेरा भक्त हो गया है । उसे नगरमें ले जाकर उसके पिताको सौंप दो । साथ ही मेरे कहनेसे कुशकेतुको यह समझाओ कि तुम्हारे पुत्रने अपराधी होनेपर भी वैशाख मासमें छत्र-दान करके एक मुनिकी रक्षा की है । अतः वह पापरहित हो गया है । इस पुण्यके प्रभावसे वह मन और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेवाला दीर्घायु, शूरता और उदारता आदि गुणोंसे युक्त तथा तुम्हारे समान गुणवान् हो गया है । इसलिये अपने इस महाबली पुत्रको तुम राज्यका भार सँभालनेके लिये नियुक्त करो । भगवान् विष्णुने तुम्हें ऐसी ही आज्ञा दी है । इस प्रकार राजाको आदेश देकर हेमकान्तको उनके अधीन करके यहाँ लौट आओ ।'

भगवान् विष्णुका यह आदेश पाकर महाबली विष्वक्सेनने हेमकान्तके पास आकर यमदूतोंको रोका और अपने कल्याणमय हाथोंसे उसके सब अङ्गोंमें स्पर्श किया । भगवद्भक्तके स्पर्शसे हेमकान्तकी सारी व्याधि क्षणभरमें दूर हो गयी । तदनन्तर विष्वक्सेन उसके साथ राजाकी पुरीमें गये । उन्हें देखकर महाराज कुशकेतुने आश्चर्ययुक्त हो

भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और भगवान्‌के पार्षदका अपने घरमें प्रवेश कराया। वहाँ नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे इनकी स्तुति तथा वैभवोंसे उनका पूजन किया। तत्पश्चात् महाबली विष्वक्सेनने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजाको हेमकान्तके विषयमें भगवान् विष्णुने जो सन्देश दिया था, वह सब कह सुनाया। उसे सुनकर कुशकेतुने पुत्रको राज्यपर बिठा दिया और स्वयं विष्वक्सेनकी आज्ञा लेकर उन्होंने पत्नीसहित वनको प्रस्थान किया। तदनन्तर महामना विष्वक्सेन हेमकान्तसे पूछकर और उसकी प्रशंसा करके श्वेतद्वीपमें भगवान् विष्णुके समीप चले गये। तबसे राजा हेमकान्त वैशाख मासमें बताये हुए भगवान्‌की प्रसन्नताको बढ़ानेवाले शुभ धर्मोंका प्रतिवर्ष पालन करने लगे। वे ब्राह्मणभक्त, धर्मनिष्ठ, शान्त, जितेन्द्रिय, सब प्राणियोंके प्रति दयालु और सम्पूर्ण यज्ञोंकी दीक्षामें स्थित रहकर सब प्रकारकी सम्पदाओंसे सम्पन्न हो गये। उन्होंने पुत्र-पौत्र आदिके साथ समस्त भोगोंका उपभोग करके भगवान् विष्णुका लोक प्राप्त किया। वैशाख सुखसे साध्य, अतिशय पुण्य प्रदान करनेवाला है। पापरूपी इन्धनको अग्निकी भाँति जलानेवाला, परम सुलभ तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है।

महर्षि वशिष्ठके उपदेशसे राजा कीर्तिमान्‌का अपने राज्यमें वैशाख मासके धर्मका पालन कराना और यमराजका ब्रह्माजीसे राजाके लिये शिकायत करना

मिथिलापतिने पूछा—ब्रह्मन्! जब वैशाख मासके धर्म अतिशय सुलभ, पुण्यराशि प्रदान करनेवाले, भगवान् विष्णुके लिये प्रीतिकारक, चारों पुरुषार्थोंकी तत्काल सिद्धि करनेवाले, सनातन और वेदोक्त हैं, तब संसारमें उनकी प्रसिद्धि कैसे नहीं हुई?

श्रुतदेवजीने कहा—राजन्! इस पृथ्वीपर लौकिक कामना रखनेवाले ही मनुष्य अधिक हैं। उनमेंसे कुछ राजस और कुछ तामस हैं। वे लोग इस संसारके भोगों तथा पुत्र-पौत्रादि सम्पदाओंकी ही अभिलाषा रखते हैं। कहीं किसी प्रकार कभी बड़ी कठिनाईसे कोई एक मनुष्य ऐसा मिलता है, जो स्वर्गलोकके लिये प्रयत्न करता है और इसीलिये वह यज्ञ आदि पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान बड़े प्रयत्नसे करता है; परंतु मोक्षकी उपासना प्रायः कोई नहीं करता। तुच्छ आशाएँ लेकर बहुत-से कर्मोंका आयोजन करनेवाले लोग प्रायः काम्य-कर्मोंके ही उपासक हैं। यही कारण है कि संसारमें राजस और तामस धर्म अधिक विख्यात था। वे अपनी इन्द्रियोंपर और क्रोधपर विजय पा चुके थे। ब्राह्मणोंके प्रति उनके मनमें बड़ी भक्ति थी। राजाओंमें उनका स्थान बहुत ऊँचा था। एक दिन वे मृगयामें आसक्त होकर महर्षि वशिष्ठके आश्रमपर आये। वैशाखकी चिलचिलाती हुई धूपमें यात्रा करते हुए राजाने मार्गमें देखा, महात्मा वशिष्ठके शिष्य जगह-जगह अनेक प्रकारके कार्योंमें विशेष तत्परताके साथ संलग्न थे। वे कहीं पौंसला बनाते थे और कहीं छायामण्डप। किनारेपर झरनोंके जलको रोककर स्वच्छ बावली बनाते थे। कहीं वृक्षोंके नीचे बैठे हुए लोगोंको वे पंखा डुलाकर हवा करते थे, कहीं ऊख देते, कहीं सुगन्धित पदार्थ भेंट करते और कहीं फल देते थे। दोपहरीमें लोगोंको छाता देते और सन्ध्याके समय शर्बत। कोई शिष्य घनी छायावाले वनमें झाड़-बुहारकर साफ किये हुए आश्रमके प्राङ्गणोंमें हितकारक बालुका बिछाते थे और कुछ लोग वृक्षोंकी शाखामें झूला लटकाते थे।

नहीं है, आप गुरुजीसे ही यथोचित प्रश्न कीजिये । वे महायशस्वी महर्षि इन धर्मोंको यथार्थरूपसे जानते हैं।'

शिष्योंसे ऐसा उत्तर पाकर राजा शीघ्र ही महर्षि वशिष्ठके पवित्र आश्रमपर, जो विद्या और योगशक्तिसे सम्पन्न था, गये। राजाको आते देख महर्षि वशिष्ठ मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सेवकोंसहित महात्मा राजाका विधिपूर्वक आतिथ्य-सत्कार किया। जब वे आरामसे बैठ गये, तब गुरु वशिष्ठसे प्रसन्नतापूर्वक बोले—'भगवन्! मैंने मार्गमें आपके शिष्योंद्वारा परम आश्चर्यमय शुभ कर्मोंका अनुष्ठान होते देखा है; किंतु उसके सम्बन्धमें जब प्रश्न किया, तब उन्होंने दूसरी कोई बात न बताकर आपके पास जानेकी आज्ञा दी। उनकी आज्ञाके अनुसार मैं इस समय आपके समीप आया हूँ। मेरे मनमें उन धर्मोंको सुननेकी बड़ी इच्छा है। अतः आप मुझसे उनका वर्णन करें।'

तब महायशस्वी वशिष्ठजीने प्रसन्नतापूर्वक कहा— राजन्! तुम्हारी बुद्धिको उत्तम शिक्षा मिली है। अतः उसने यह उत्तम निश्चय किया है। भगवान् विष्णुकी कथाके श्रवण और भगवद्धर्मोंके अनुष्ठानमें जो तुम्हारी बुद्धिकी आत्यन्तिक प्रवृत्ति हुई है, यह तुम्हारे किसी पुण्यका ही फल है। जिसने वैशाख मासमें बताये हुए महाधर्मोंके द्वारा भगवान् श्रीहरिकी आराधना की है, उसके उन धर्मोंसे भगवान् बहुत सन्तुष्ट होते और उसे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् लक्ष्मीपति समस्त पापराशिका विनाश करनेवाले हैं। वे सूक्ष्म धर्मोंसे प्रसन्न होते हैं, केवल परिश्रम और धनसे नहीं। भगवान् विष्णु भक्तिसे पूजित होनेपर अभीष्ट वस्तु प्रदान करते हैं; इसलिये सदा भगवान् विष्णुकी भक्ति करनी चाहिये। जगदीश्वर श्रीहरि जलसे भी पूजा करनेपर अशेष क्लेशका नाश करते और शीघ्र प्रसन्न होते हैं। वैशाख मासमें बताये हुए ये धर्म थोड़े-से परिश्रमद्वारा साध्य होनेपर भी भगवान् विष्णुके लिये प्रीतिकारक एवं शुभ होनेके कारण अधिक व्ययसे सिद्ध होनेवाले बड़े-बड़े यज्ञादि कर्मोंका भी तिरस्कार करनेवाले हैं। अतः भूपाल! तुम भी वैशाख मासमें बताये हुए धर्मोंका पालन करो और तुम्हारे राज्यमें निवास करनेवाले अन्य सब लोगोंसे भी उन कल्याणकारी धर्मोंका पालन कराओ।

इस प्रकारसे वैशाख-धर्मके पालनकी आवश्यकताको शास्त्रों और युक्तियोंसे भलीभाँति सिद्ध करके वशिष्ठजीने वैशाख मासके सब धर्मोंका राजाके समक्ष वर्णन किया। उन सब धर्मोंको सुनकर राजाने गुरुका भक्तिभावसे पूजन किया और घर आकर वे सब धर्मोंका विधिपूर्वक पालन करने लगे। देवाधिदेव भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए राजा कीर्तिमान् देवेश्वर पद्मनाभके अतिरिक्त और किसी देवताको नहीं देखते थे। उन्होंने हाथीकी पीठपर नगाड़ा रखकर सिपाहियोंसे अपने राज्यभरमें डंकेकी चोट यह घोषणा करा दी कि 'मेरे राज्यमें जो आठ वर्षसे अधिककी आयुवाला मनुष्य है, उसकी आयु जबतक अस्सी वर्षकी न हो जाय, तबतक मेषराशिमें सूर्यके स्थित होनेपर यदि वह प्रातःकाल स्नान नहीं करेगा तो मेरे द्वारा दण्डनीय, वध्य तथा राज्यसे निकाल देने योग्य समझा जायगा—यह मेरा निश्चित आदेश है। पिता, पुत्र, पत्नी अथवा सुहृद्—जो कोई भी वैशाखधर्मका पालन नहीं करेगा, वह चोरकी भाँति दण्डका पात्र समझा जायगा। प्रातःकाल शुभ जलमें स्नान करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। तुम सब लोग अपनी शक्तिके अनुसार पौंसला और दान आदि धर्मोंका आचरण करो।'

राजा कीर्तिमान्ने प्रत्येक ग्राममें धर्मका उपदेश करनेवाले एक-एक ब्राह्मणको बसाया। पाँच-पाँच गाँवोंपर एक-एक ऐसे अधिकारीकी नियुक्ति की, जो धर्मका त्याग करनेवाले लोगोंको दण्ड दे सके। उस अधिकारीकी सेवामें दस-दस घुड़सवार रहते थे। इस प्रकार चक्रवर्ती नरेशके शासनसे सर्वत्र और सब देशोंमें यह धर्मका पौधा प्रारम्भ हुआ और आगे चलकर खूब बढ़े हुए वृक्षके रूपमें परिणत हो गया। उस राजाके राज्यमें जो लोग मर जाते थे, वे भगवान् विष्णुके धाममें जाते थे। वहाँके मनुष्योंको विष्णुलोककी प्राप्ति निश्चित थी। एक बार भी वैशाखस्नान कर लेनेसे मनुष्य यमराजके पास नहीं जाता। अपने धर्मानुकूल कर्ममें स्थित हुए सब लोगोंके विष्णुलोकमें चले जानेसे यमपुरीके सब नरक खाली हो गये। वहाँ एक भी पापी प्राणी नहीं रह गया। वैशाख मासके प्रभावसे यमपुरीके मार्गकी यात्रा ही बंद हो गयी। सब मनुष्य दिव्य आकृति धारण करके भगवान्के धाममें जाने लगे। देवताओंके जो लोक हैं, वे सब भी शून्य हो गये। स्वर्ग और नरक दोनोंके शून्य हो जानेपर एक दिन नारदजीने धर्मराजके पास जाकर कहा—'धर्मराज! आपके इस नरकमें अब पहले-जैसा कोलाहल नहीं सुनायी पड़ता, पहलेकी भाँति पाप-कर्मोंका लेखा भी नहीं लिखा जा रहा है। चित्रगुप्तजी तो ऐसे मौनभावसे बैठे हुए हैं, जैसे कोई मुनि हों। महाराज! इसका कारण तो बताइये?'

महात्मा नारदके ऐसा कहनेपर राजा यमने कुछ दीनताके स्वरमें कहा—नारद ! इस समय पृथ्वीपर जो यह राजा राज्य करता है, वह पुराणपुरुषोत्तम भगवान् विष्णुका बड़ा भक्त है। उसके भयसे कोई भी मनुष्य कभी वैशाख मासका उल्लङ्घन नहीं करता। उस पुण्यकर्मके प्रभावसे सभी भगवान् विष्णुके परम धाममें चले जाते हैं। मुनिश्रेष्ठ! उस राजाने इस समय मेरे लोकका मार्ग लुप्त-सा कर रक्खा है। स्वर्ग और नरक दोनोंको शून्य बना दिया है। अतः ब्रह्माजीके समीप जाकर यह सब समाचार उनसे निवेदन करके तभी मैं स्वस्थ होऊँगा। ऐसा निश्चय करके यमराज ब्रह्माजीके लोकमें गये और वहाँ बैठे हुए उन ब्रह्माजीका दर्शन किया, जिनका आश्रय ध्रुव है, जो इस जगत्के बीज तथा सब लोकोंके पितामह हैं और समस्त लोकपाल, दिक्पाल तथा देवता जिनकी उपासना करते हैं।

ब्रह्माजीने यमराजको देखा और यमराज ब्रह्माजीके आगे पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर यमराजने कहा—'कमलासन! काममें लगाया हुआ जो पुरुष स्वामीकी आज्ञाका ठीक-ठीक पालन नहीं करता और उसका धन लेकर भोगता है, वह काठका कीड़ा होता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य लोभवश भी विष्णुलोकमें चले जाते हैं। इतना ही नहीं, पत्नीके पिता—श्वशुर आदि भी मेरे लेखको मिटाकर विष्णुलोकमें चले जाते हैं। देव! बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा भी मनुष्य वैसी गति नहीं पाता है, जैसी वैशाख माससे मिल रही है। सम्पूर्ण तीर्थोंसे, दान आदिसे, तपस्याओंसे, व्रतोंसे अथवा सम्पूर्ण धर्मोंसे युक्त मनुष्य भी उस गतिको नहीं पाता, जो वैशाखधर्ममें तत्पर हुए मनुष्यको प्राप्त हो रही है। वैशाखमें प्रातःकाल स्नान करके देवपूजन, मास-माहात्म्यकी कथाका श्रवण तथा भगवान् विष्णुको प्रिय लगनेवाले तदनुकूल धर्मका पालन करनेवाला मनुष्य एकमात्र विष्णुलोकका स्वामी होता है और जगत्पति भगवान् विष्णुके लोककी तो मेरी समझमें कोई सीमा ही नहीं है; क्योंकि सब ओरसे कोटि-कोटि प्राणियोंका समुदाय वहाँ पहुँच रहा है तो भी वह भरता नहीं है। इस संसारमें पवित्र और अपवित्र सभी लोग राजाकी आज्ञासे वैशाख मासके धर्मका पालन करके विष्णुलोकको जा रहे हैं। लोकनाथ! उसकी प्रेरणासे संस्कारहीन मनुष्य भी वैशाख-स्नानमात्रसे वैकुण्ठधाममें चले जाते हैं। वह केवल भगवान् विष्णुके चरणोंकी शरण लेनेवाला है। जान पड़ता है, वह समस्त संसारको विष्णुलोकमें पहुँचा देगा। जो पुत्र धर्म,

जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि' ये दो अक्षर विद्यमान हैं, उसको कुरुक्षेत्र तीर्थके सेवन अथवा सरस्वती नदीके जलमें स्नान करनेसे क्या लेना है? जो मृत्युकालमें भगवान् विष्णु-का स्मरण करता है, वह अभक्ष्य-भक्षण आदिसे प्राप्त हुई पाप-राशिका परित्याग करके भगवान् विष्णुके सायुज्यको पाता है; क्योंकि भगवान् विष्णुको अपना स्मरण बहुत ही प्रिय है। यमराज! इसी प्रकार वैशाख नामक मास भी भगवान् विष्णुको प्रिय है। जिसके धर्मको श्रवण करनेमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है, उसके अनुष्ठानमें तत्पर रहनेवाला मनुष्य यदि मुक्तिको प्राप्त हो तो उसके लिये क्या कहना है? वैशाख मासमें भगवान् पुरुषोत्तमके नाम और यशका गान किया जाता है, जिससे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं। पुरुषोत्तम श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्के स्वामी और हमारे जनक हैं। यह राजा कीर्तिमान् वैशाख मासमें उन्हीं भगवान्के प्रिय धर्मोंका अनुष्ठान करता है, जिससे प्रसन्नचित्त होकर भगवान् विष्णु सदा उसकी सहायतामें स्थित रहते हैं। भगवान् वासुदेवके भक्तोंका कभी अमङ्गल नहीं होता; उन्हें जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिका भय भी नहीं प्राप्त होता। कार्यमें नियुक्त किया हुआ पुरुष यदि अपनी पूरी शक्ति लगाकर स्वामीके कार्यसाधनकी चेष्टा करता है तो उतनेसे ही वह कृतार्थ हो जाता है। यदि शक्तिके बाहरका कार्य उपस्थित हो जाय तो स्वामीको उसकी सूचना दे दे। उतना कर देनेसे वह उऋण हो जाता है और सुखका भागी होता है। जिसने उस प्रयोजनको स्वामीसे निवेदित कर दिया है, उसके ऊपर न तो कोई ऋण है और न पातक ही लगता है। अपने कर्तव्य-पालनके लिये पूरा यत्न कर लेनेपर प्राणीका कोई अपराध नहीं रहता। यह कार्य तुम्हारे लिये असम्भव है। अतः इसके विषयमें तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर यमराजने दीन वाणीमें कहा, 'तात! मैंने आपके चरणोंकी सेवासे सब कुछ पा लिया।' तब ब्रह्माजीने पुनः समझाते हुए कहा—'धर्मराज! राजा कीर्तिमान् विष्णुधर्मके पालनमें तत्पर है। चलो, हमलोग भगवान् विष्णुके समीप चलें और उन्हें सब बात बताकर पीछे उनके कथनानुसार कार्य किया जायगा। वे ही इस जगत्के कर्ता, धर्मके रक्षक और नियामक हैं।'

इस प्रकार यमराजको आश्वासन देकर ब्रह्माजी उनके साथ क्षीरसागरके तटपर गये। वहाँ उन्होंने सच्चिदानन्द-स्वरूप गुणातीत परमेश्वर विष्णुका स्तवन किया। ब्रह्माजी-की स्तुतिसे संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु वहाँ प्रकट हु[ए।] यमराज और ब्रह्माजीने तुरंत ही उनके चरणोंमें म[स्तक] झुकाया। तब भगवान् महाविष्णुने मेघके समान गम्[भीर] वाणीमें उन दोनोंसे कहा—'तुमलोग यहाँ क्यों आये ह[ो?'] ब्रह्माजीने कहा—'प्रभो! आपके श्रेष्ठ भक्त राजा कीर्तिमा[न्के] शासनकालमें सब मनुष्य वैशाख-धर्मके पालनमें सं[लग्न] हो आपके अविनाशी पदको प्राप्त हो रहे हैं। इससे यम[पुरी] सूनी हो गयी है।'

उनके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णु हँसते [हुए] बोले—मैं लक्ष्मीको त्याग दूँगा। अपने प्राण, शरीर, श्रीव[त्स,] कौस्तुभमणि, वैजयन्ती माला, श्वेतद्वीप, वैकुण्ठधाम, क्ष[ीर]सागर, शेषनाग तथा गरुड़जीको भी छोड़ दूँगा, परंतु अ[पने] भक्तका त्याग नहीं कर सकूँगा। जिन्होंने मेरे लिये [सब] भोगोंका त्याग करके अपना जीवनतक मुझे सौंप दिया [है,] जो मुझमें मन लगाकर मेरे स्वरूप हो गये हैं, उन महा[भाग] भक्तोंको मैं कैसे त्याग सकता हूँ?* राजा कीर्तिमान्को पृथ्वीपर मैंने दस हजार वर्षोंकी आयु दी है। उसमेंसे अ[...] हजार वर्ष तो बीत गये। शेष आयु और बीत जानेपर [...] मेरा सायुज्य प्राप्त होगा। उसके बाद पृथ्वीपर बेन नाम[क] दुष्टात्मा राजा होगा, जो संपूर्ण वेदोक्त महाधर्मोंका [...] कर देगा। उस समय वैशाख मासके धर्म भी छिन्न-भिन्न [हो] जायँगे। बेन अपने ही पापसे भस्म हो जायगा। तत्पश्[चात्] मैं पृथु होकर पुनः सब धर्मोंका प्रचार करूँगा। उस सम[य] लोगोंमें वैशाख मासके धर्मको भी प्रसिद्ध करूँगा। सह[स्रों] मनुष्योंमें कोई एक ऐसा होता है, जो मुझमें अपने मन-प्रा[ण] अर्पित करके अपना सर्वस्व मुझे समर्पित कर दे और मे[रा] भक्त हो जाय। जो ऐसा होता है, वही मेरे धर्मोंका प्रच[ार] करता है। इस वैशाख मासमेंसे भी मैं वैशाखधर्ममें तत्[पर] रहनेवाले महात्मा पुरुषों तथा राजाके द्वारा समयानुसा[र] तुम्हारे लिये भाग दिलाऊँगा। लोकमें जो कोई भी वैशा[ख] मासका व्रत करेंगे, वे तुम्हें भाग देनेवाले होंगे। उन[...]

* लक्ष्मीं वापि परित्यक्ष्ये प्राणान्देहमथापि वा ।
श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां वैजयन्तीमथापि वा ॥
श्वेतद्वीपं च वैकुण्ठं क्षीरसागरमेव च ।
शेषं च गरुडं चैव न भक्तं त्यक्तुमुत्सहे ॥
विसृज्य सकलान् भोगान् मदर्थे त्यक्तजीवितान् ।
मदात्मकान् महाभागान् कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥
(स्क० पु० वै० वै० मा० १३ । ३४-३६

वैशाख मासमें बताये हुए महाधर्मके पालनमें तुम कभी विघ्न न उपस्थित करना।

यमराजको इस प्रकार आश्वासन देकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। ब्रह्माजी भी अपने सेवकोंके साथ सत्यलोकको चले गये। उनके बाद यमराज भी अपनी पुरीको पधारे। वैशाख मासकी पूर्णिमाको पहले धर्मराजके उद्देश्यसे जलसे भरा हुआ घड़ा, दही और अन्न देना चाहिये। उसके बाद पितरों, गुरुओं और भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे शीतल जल, दही, अन्न, पान और दक्षिणा फलके साथ काँसीके पात्रमें रखकर ब्राह्मणको देना चाहिये। भगवान् विष्णुकी दिव्य प्रतिमा वैशाख मासकी माहात्म्यकथा सुनानेवाले दीन ब्राह्मणको देनी चाहिये। उस धर्मवक्ता ब्राह्मणको अपने धनसे भी पूजित करना चाहिये। राजा कीर्तिमान्‌ने सब कुछ उसी प्रकार किया। उन्होंने पृथ्वीपर मनोवाञ्छित भोग भोगकर शेष आयु पूर्ण होनेके पश्चात् पुत्र-पौत्र आदिके साथ श्रीविष्णुधामको प्रस्थान किया।

मिथिलापतिने कहा—महामते! दुरात्मा राजा वेन प्रथम (स्वायम्भुव) मन्वन्तरमें हुआ था और ये राजा इक्ष्वाकुकुलभूषण कीर्तिमान् वैवस्वत मन्वन्तरके व्यक्ति हैं। यह बात पहले मैंने आपके मुखसे सुन रक्खी है। परंतु इस समय आपने और ही बात कही है कि यह राजा जब वैकुण्ठवासी हो जायँगे, उसके बाद राजा वेन उत्पन्न होगा। मेरे इस संशयको आप निवृत्त कीजिये।

श्रुतदेवने कहा—राजन्! पुराणोंमें जो विषमता प्रतीत होती है, वह युगभेद और कल्पभेदकी व्यवस्थाके अनुसार है। (किसी कल्पमें ऐसा ही हुआ होगा कि पहले राजा कीर्तिमान् और पीछे वेन हुआ होगा) इसलिये कहीं कथामें समयकी विपरीतता देखकर उसके अप्रामाणिक होनेकी आशङ्का नहीं करनी चाहिये।

भगवत्कथाके श्रवण और कीर्तनका महत्त्व तथा वैशाख मासके धर्मोंके अनुष्ठानसे राजा पुरुयशाका सङ्कटसे उद्धार

श्रुतदेव बोले—मेषराशिमें सूर्यके स्थित रहनेपर जो वैशाख मासमें प्रातःकाल स्नान करता है और भगवान् विष्णुकी पूजा करके इस कथाको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त होता है। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहते हैं, जो सब पापोंका नाशक, पवित्रकारक, धर्मानुकूल, वन्दनीय और पुरातन है।

गोदावरीके तटपर शुभ ब्रह्मेश्वर क्षेत्रमें महर्षि दुर्वासाके दो शिष्य रहते थे, जो परमहंस, ब्रह्मनिष्ठ, उपनिषद्विद्यामें परिनिष्ठित और इच्छारहित थे। वे भिक्षामात्र भोजन करते और पुण्यमय जीवन बिताते हुए गुफामें निवास करते थे। उनमेंसे एकका नाम था सत्यनिष्ठ और दूसरेका तपोनिष्ठ। वे इन्हीं नामोंसे तीनों लोकोंमें विख्यात थे। सत्यनिष्ठ सदा भगवान् विष्णुकी कथामें तत्पर रहते थे। जब कोई श्रोता अथवा वक्ता न होता, तब वे अपने नित्यकर्म किया करते थे। यदि कोई श्रोता उपस्थित होता तो उसे निरन्तर वे भगवत्कथा सुनाते और यदि कोई कथावाचक भगवान् विष्णुकी कल्याणमयी पवित्र कथा कहता तो वे अपने सब कर्मोंको समेटकर श्रवणमें तत्पर हो उस कथाको सुनने लगते थे। वे अत्यन्त दूरके तीर्थों और देवमन्दिरोंको छोड़कर तथा कथाविरोधी कर्मोंका परित्याग करके भगवान्‌की दिव्य कथा सुनते और श्रोताओंको स्वयं भी सुनाते थे। कथा समाप्त होनेपर सत्यनिष्ठ अपना शेष कार्य पूरा करते थे। कथा सुननेवाले पुरुषको जन्म-मृत्युमय संसारबन्धनकी प्राप्ति नहीं होती। उसके अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, भगवान् विष्णुमें जो अनुरागकी कमी है, वह दूर हो जाती है और उनके प्रति गाढ़ अनुराग होता है। साथ ही साधुपुरुषोंके प्रति सौहार्द बढ़ता है। रजोगुणरहित गुणातीत परमात्मा शीघ्र ही हृदयमें स्थित हो जाते हैं। श्रवणसे ज्ञान पाकर मनुष्य भगवच्चिन्तनमें समर्थ होता है। श्रवण, ध्यान और मनन—यह वेदोंमें अनेक प्रकारसे बताया गया है। जहाँ भगवान् विष्णुकी कथा न होती हो और जहाँ साधुपुरुष न रहते हों, वह स्थान साक्षात् गङ्गातट ही क्यों न हो, निःसन्देह त्याग देने योग्य है। जिस देशमें तुलसी नहीं है अथवा भगवान् विष्णुका मन्दिर नहीं है, ऐसा स्थान निवास करने योग्य नहीं है। यह निश्चय करके मुनिवर सत्यनिष्ठ सदा भगवान् विष्णुकी कथा और चिन्तनमें संलग्न रहते थे।

दुर्वासाका दूसरा शिष्य तपोनिष्ठ दुराग्रहपूर्वक कर्ममें तत्पर रहता था। वह भगवान्‌की कथा छोड़कर अपना कर्म पूरा करनेके लिये इधर-उधर हट जाता था। कथाकी अवहेलनासे उसे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। अन्ततोगत्वा कथापरायण सत्यनिष्ठने ही उसका सङ्कटसे उद्धार किया।

जहाँ लोगोंके पापका नाश करनेवाली भगवान् विष्णुकी पवित्र कथा होती है, वहाँ सब तीर्थ और अनेक प्रकारके क्षेत्र स्थित रहते हैं। जहाँ विष्णु-कथारूपी पुण्यमयी नदी बहती रहती है, उस देशमें निवास करनेवालोंकी मुक्ति उनके हाथमें ही है।

पूर्वकालमें पाञ्चालदेशमें पुरुयशा नामक एक राजा थे, जो पुण्यशील एवं बुद्धिमान् राजा भूरियशाके पुत्र थे। पिताके मरनेपर पुरुयशा राज्यसिंहासनपर बैठे। वे धर्मकी अभिलाषा रखनेवाले, शूरता, उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न और धनुर्वेदमें प्रवीण थे। उन महामति नरेशने अपने धर्मके अनुसार पृथ्वीका पालन किया। कुछ कालके पश्चात् राजाका धन नष्ट हो गया। हाथी और घोड़े बड़े-बड़े रोगोंसे पीड़ित होकर मर गये। उनके राज्यमें ऐसा भारी अकाल पड़ा, जो मनुष्योंका अत्यन्त विनाश करनेवाला था। पाञ्चालनरेश राजा पुरुयशाको निर्बल जानकर उनके शत्रुओंने आक्रमण किया और युद्धमें उनको जीत लिया। तदनन्तर पराजित हुए राजाने अपनी पत्नी शिखिणीके साथ पर्वतकी कन्दरामें प्रवेश किया। साथमें दासी आदि सेवकगण भी थे। इस प्रकार छिपे रहकर राजा मन-ही-मन विचार करने लगे कि मेरी यह क्या अवस्था हो गयी। मैं जन्म और कर्मसे शुद्ध हूँ, माता और पिताके हितमें तत्पर रहा हूँ, गुरुभक्त, उदार, ब्राह्मणोंका सेवक, धर्मपरायण, सब प्राणियोंके प्रति दयालु, देवपूजक और जितेन्द्रिय भी हूँ; फिर किस कर्मसे मुझे यह विशेष दुःख देनेवाली दरिद्रता प्राप्त हुई है? किस कर्मसे मेरी पराजय हुई और किस कर्मके फलस्वरूप मुझे यह वनवास मिला है?

इस प्रकार चिन्तासे व्याकुल होकर राजाने खिन्न चित्तसे अपने सर्वज्ञ गुरु मुनिश्रेष्ठ याज और उपयाजका स्मरण किया। राजाके आवाहन करनेपर दोनों बुद्धिमान् मुनीश्वर वहाँ आये। उन्हें देखकर पाञ्चालप्रिय नरेश सहसा उठकर खड़े हो गये और बड़ी भक्तिके साथ गुरुके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। फिर वनमें पैदा होनेवाली शुभ सामग्रियोंके द्वारा उन्होंने उन दोनोंका पूजन किया और विनीतभावसे पूछा—'विप्रवरो! मैं गुरुचरणोंमें भक्ति रखनेवाला हूँ। मुझे किस कर्मसे यह दरिद्रता, कोष-हानि और शत्रुओंसे पराजय प्राप्त हुई है? किस कारणसे मेरा वनवास हुआ और मुझे अकेले रहना पड़ा? मेरे न कोई पुत्र है, न भाई है और न हितकारी मित्र ही हैं। मेरे द्वारा सुरक्षित राज्यमें यह बड़ा भारी अकाल कैसे पड़ गया! ये सब बातें विस्तारपूर्वक मुझे बताइये।'

राजाके इस प्रकार पूछनेपर वे दोनों मुनिश्रेष्ठ कुछ देर ध्यानमग्न हो इस प्रकार बोले—राजन्! तुम पहलेके दस जन्मोंतक महापापी व्याध रहे हो। तुम सब लोगोंके प्रति क्रूर और हिंसापरायण थे। तुमने कभी लेशमात्र भी धर्मका अनुष्ठान नहीं किया। इन्द्रियसंयम तथा मनोनिग्रहका तुममें सर्वथा अभाव था। तुम्हारी जिह्वा किसी प्रकार भगवान् विष्णुके नाम नहीं लेती थी। तुम्हारा चित्त गोविन्दके चारु चरणारविन्दोंका चिन्तन नहीं करता था और तुमने कभी मस्तक नवाकर परमात्माको प्रणाम नहीं किया। इस प्रकार दुरात्मा व्याधका जीवन व्यतीत करते हुए तुम्हारे नौ जन्म पूरे हो गये। दसवाँ जन्म प्राप्त होनेपर तुम सह्य पर्वतपर पुनः व्याध हुए। वहाँ सब लोगोंके प्रति क्रूरता करना ही तुम्हारा स्वभाव था। तुम मनुष्योंके लिये यमके समान थे। दयाहीन, शस्त्रजीवी और हिंसापरायण थे। अपनी स्त्रीके साथ रहते हुए राह चलनेवाले पथिकोंको तुम बड़ा कष्ट दिया करते थे। बड़े भारी शठ थे। इस प्रकार अपने हितको न जानते हुए तुमने बहुत वर्ष व्यतीत किये। जिनके छोटे-छोटे बच्चे हैं, ऐसे मृगों और पक्षियोंके वध करनेके कारण तुम दयाहीन दुर्बुद्धिको इस जन्ममें कोई पुत्र नहीं प्राप्त हुआ। तुमने सबके साथ विश्वासघात किया, इसलिये तुम्हारे कोई सहोदर भाई नहीं हुआ। मार्गमें सबको पीड़ा देते रहे, इसलिये इस जन्ममें तुम मित्ररहित हो। साधुपुरुषोंके तिरस्कारसे शत्रुओंद्वारा तुम्हारी पराजय हुई है। कभी दान न देनेके दोषसे तुम्हारे घरमें दरिद्रता प्राप्त हुई है। तुमने दूसरोंको सदा उद्वेगमें डाला, इसलिये तुम्हें दुःसह वनवास मिला। सबके अप्रिय होनेके कारण तुम्हें असह्य दुःख मिला है। तुम्हारे क्रूर कर्मोंके फलसे ही इस जन्ममें मिला हुआ राज्य भी छिन गया है। वैशाख मासकी गरमीमें तुमने स्वार्थवश एक दिन एक ऋषिको दूरसे तालाब बता दिया था और छायाके लिये पलाशका एक सूखा पत्ता दे दिया था। बस, जीवनमें इस एक ही पुण्यके कारण तुम्हारा यह जन्म परम पवित्र राजवंशमें हुआ है। अब यदि तुम सुख, राज्य, धन-धान्यादि सम्पत्ति, स्वर्ग और मोक्ष चाहते हो अथवा सायुज्य एवं श्रीहरिके पदकी अभिलाषा रखते हो तो वैशाख मासके धर्मोंका पालन करो। इससे सब प्रकारके सुख पाओगे। इस समय वैशाख मास चल रहा है। आज अक्षय तृतीया है। आज

तुम विधिपूर्वक स्नान और भगवान् लक्ष्मीपतिकी पूजा करो। यदि अपने समान ही गुणवान् पुत्रोंकी अभिलाषा करते हो तो सब प्राणियोंके हितके लिये प्याऊ लगाओ। इस पवित्र वैशाख मासमें भगवान् मधुसूदनकी प्रसन्नताके लिये यदि तुम निष्कामभावसे धर्मोंका अनुष्ठान करोगे, तो अन्तःकरण शुद्ध होनेपर तुम्हें भगवान् विष्णुका प्रत्यक्ष दर्शन होगा।

यों कहकर राजाकी अनुमति ले उनके दोनों ब्राह्मण पुरोहित याज और उपयाज जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। उनसे उपदेश पाकर महाराज पुरुयशाने वैशाख मासके सम्पूर्ण धर्मोंका श्रद्धापूर्वक पालन किया और भगवान् मधुसूदनकी आराधना की। इससे उनका प्रभाव बढ़ गया तथा बन्धु-बान्धव उनसे आकर मिल गये। तत्पश्चात् वे मरनेसे बची हुई सेनाको साथ ले बन्धुओंसहित पाञ्चाल नगरीके समीप आये। उस समय पाञ्चाल राजाके साथ राजाओंका पुनः संग्राम हुआ। महारथी पुरुयशाने अकेले ही समस्त महाबाहु राजाओंपर विजय पायी। विरोधी राजाओंने भागकर विभिन्न देशोंके मार्गोंका आश्रय लिया। विजयी पाञ्चालराजने भागे हुए राजाओंके कोष, दस करोड़ घोड़े, तीन करोड़ हाथी, एक अरब रथ, दस हजार ऊँट और तीन लाख खच्चरोंको अपने अधिकारमें करके अपनी पुरीमें पहुँचा दिया। वैशाखधर्मके माहात्म्यसे सब राजा भग्नमनोरथ हो पुरुयशाको कर देनेवाले हो गये और पाञ्चालदेशमें अनुपम सुकाल आ गया। भगवान् विष्णुकी प्रसन्नतासे इस वसुधापर उनका एकछत्र राज्य हुआ और गुरुता, उदारता आदि गुणोंसे युक्त उनके पाँच पुत्र हुए, जो धृष्टकीर्ति, धृष्टकेतु, धृष्टद्युम्न, विजय और चित्रकेतुके नामसे प्रसिद्ध थे। धर्मपूर्वक प्रतिपालित होकर समस्त प्रजा राजाके प्रति अनुरक्त हो गयी। इससे उसी क्षण उन्हें वैशाख मासके प्रभावका निश्चय हो गया। तबसे पाञ्चालराज भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये वैशाख मासके धर्मोंका निष्कामभावसे बराबर पालन करने लगे। उनके इस धर्मसे सन्तुष्ट होकर भगवान् विष्णुने अक्षय तृतीयाके दिन उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया।

राजा पुरुयशाको भगवान्‌का दर्शन, उनके द्वारा भगवत्स्तुति और भगवान्‌के वरदानसे राजाकी सायुज्य मुक्ति

श्रुतदेव कहते हैं—परमात्मा भगवान् नारायण चार भुजाओंसे सुशोभित थे। उन्होंने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रक्खे थे। वे पीताम्बर धारण करके वनमालासे विभूषित थे। भगवती लक्ष्मी तथा एक पार्षदके साथ गरुड़की पीठपर विराजित थे। उनका दुःसह तेज देखकर राजाके नेत्र सहसा मुँद गये। उनके सब अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया और नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। भगवद्दर्शनके आनन्दमें उनका हृदय सर्वथा डूब गया। उन्होंने तत्काल आगे बढ़कर भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया; फिर प्रेमविह्वल नेत्रोंसे विश्वात्मदेव जगदीश्वर श्रीहरिको बहुत देरतक निहारकर उनके चरण धोये और उस जलको अपने मस्तकपर धारण किया। उन्हीं चरणोंकी धोवनरूपा श्रीगङ्गाजी ब्रह्माजीसहित तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं। तत्पश्चात् राजाने महान् वैभवसे, बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण और चन्दनसे, हार, धूप, दीप तथा अमृतके समान नैवेद्य निवेदन आदिसे एवं अपने तन, मन, धन और आत्माका समर्पण करके अद्वितीय पुराणपुरुष भगवान् विष्णुका पूजन किया। पूजाके बाद इस प्रकार स्तुति की—

'जो निर्गुण, निरञ्जन एवं प्रजापतियोंके भी अधीश्वर हैं, ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता जिनकी वन्दना करते रहते हैं, उन परम पुरुष भगवान् श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। शरणागतोंकी पापराशिका नाश करनेवाले आपके चरणारविन्दोंको परिपक्व योगवाले योगियोंने जो अपने हृदयमें धारण किया है, यह उनके लिये बड़े सौभाग्यकी बात है। बढ़ी हुई भक्तिके द्वारा अपने अन्तःकरण तथा जीवभावको भी आपके चरणोंमें ही चढ़ाकर वे योगिजन उन चरणोंके चिन्तनमात्रसे आपके धामको प्राप्त हुए हैं। विचित्र कर्म करनेवाले! आप स्वतन्त्र परमेश्वरको नमस्कार है। साधु पुरुषोंपर अनुग्रह करनेवाले! आप परमात्माको प्रणाम है। प्रभो! आपकी मायासे मोहित होकर मैं स्त्री और धनरूपी विषयोंमें ही भटकता रहा हूँ, अनर्थमें ही मेरी अर्थदृष्टि हो गयी थी। प्रभो! विश्वमूर्ते! जब जीवपर आप अनन्त शक्ति परमेश्वरकी कृपा होती है, तभी उसे महापुरुषोंका सङ्ग प्राप्त होता है, जिससे यह संसारसमुद्र गोपदके समान हो जाता है। ईश्वर! जब सत्सङ्ग मिलता है, तभी आपमें

तथा बुद्धिका अनुराग होता है*। मेरा समस्त राज्य मुझसे छिन गया था, वह भी आपका मुझपर महान् ुग्रह ही हुआ था, ऐसा मैं मानता हूँ। मैं न तो राज्य हता हूँ, न पुत्र आदिकी इच्छा रखता हूँ और न कोषकी अभिलाषा करता हूँ। अपितु मुनियोंके द्वारा ध्यान ने योग्य जो आपके आराधनीय चरणारविन्द हैं, उन्हीं- नित्य सेवन करना चाहता हूँ। देवेश्वर! जगन्निवास! ुझपर प्रसन्न होइये, जिससे आपके चरणकमलोंकी स्मृति ाबर बनी रहे। तथा स्त्री, पुत्र, खजाना एवं आत्मीय हे जानेवाले सब पदार्थोंमें जो मेरी आसक्ति है, वह दाके लिये दूर हो जाय। भगवन्! मेरा मन सदा आपके रणारविन्दोंके चिन्तनमें लगा रहे, मेरी वाणी आपकी व्य कथाके निरन्तर वर्णनमें तत्पर हो, मेरे ये दोनों नेत्र ापके श्रीविग्रहके दर्शनमें, कान कथाश्रवणमें तथा रसना ापके भोग लगाये हुए प्रसादके आस्वादनमें प्रवृत्त हों। भो! मेरी नासिका आपके चरणकमलोंकी तथा आपके क्तजनोंके गन्ध-विलेपन आदिकी सुगन्ध लेनेमें, दोनों ाथ आपके मन्दिरमें झाड़ू देने आदिकी सेवामें, दोनों पैर आपके तीर्थ और कथास्थानकी यात्रा करनेमें तथा मस्तक निरन्तर आपको प्रणाम करनेमें संलग्न रहें। मेरी कामना आपकी उत्तम कथामें और बुद्धि अहर्निश आपका चिन्तन करनेमें तत्पर हो। मेरे घरपर पधारे हुए मुनियोंद्वारा आपकी उत्तम कथाका वर्णन तथा आपकी महिमाका गान होता रहे और इसीमें मेरे दिन बीतें। विष्णो! एक क्षण तथा आधे पलके लिये भी ऐसा प्रसङ्ग न उपस्थित हो, जो आपकी चर्चासे रहित हो। हरे! मैं परमेष्ठी ब्रह्माका पद, भूतलका चक्रवर्ती राज्य और मोक्ष भी नहीं चाहता, केवल आपके चरणोंकी निरन्तर सेवा चाहता हूँ, जिसके लिये लक्ष्मीजी तथा ब्रह्मा, शंकर आदि देवता भी सदा प्रार्थना किया करते हैं।†

राजाके इस प्रकार स्तुति करनेपर कमलनयन भगवान् विष्णुने प्रसन्न हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें इस प्रकार कहा—'राजन्! मैं जानता हूँ—तुम मेरे श्रेष्ठ भक्त हो, कामना- रहित और निष्पाप हो। नरेश्वर! मुझमें तुम्हारी दृढ़ भक्ति हो और अन्तमें तुम मेरा सायुज्य प्राप्त करो। तुम्हारे द्वारा किये हुए इस स्तोत्रसे इस पृथ्वीपर जो लोग स्तुति करेंगे, उनके ऊपर सन्तुष्ट हो मैं उन्हें भोग और मोक्ष प्रदान करूँगा। यह अक्षय तृतीया इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध होगी, जिसमें भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ। जो मनुष्य इस तिथिको किसी भी बहानेसे अथवा स्वभावसे ही स्नान, दान आदि क्रियाएँ करते हैं, वे मेरे अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य पितरोंके उद्देश्यसे अक्षय तृतीयाको श्राद्ध करते हैं, उनका किया हुआ वह श्राद्ध अक्षय होता है। इस तिथिमें थोड़ा-सा भी जो पुण्य किया जाता है, उसका फल अक्षय होता है। नृपश्रेष्ठ! जो कुटुम्बी ब्राह्मणको गाय दान करता है, उसके हाथमें सब सम्पत्तियोंकी वर्षा करनेवाली भुक्ति और मुक्ति भी आ जाती है। जो वैशाख मासमें मेरा प्रिय करनेवाले धर्मोंका अनुष्ठान करता है, उसके जन्म, मृत्यु, जरा, भय और पापको मैं हर लेता हूँ। अनघ! यह वैशाख मास मेरे चरण-चिन्तनकी ही भाँति ऐसे सहस्रों पापोंको हर लेता है, जिनके लिये शास्त्रोंमें कोई प्रायश्चित्त नहीं मिलता है।

---

* तदैव जीवस्य भवेत्कृपा विभो दुरन्तशक्तेस्तव विश्वमूर्ते।
समागमः स्यान्महतां हि पुंसां भवाम्बुधिर्येन हि गोष्पदायते॥
सत्सङ्गमो देव यदैव भूयात्तर्हीश देवे त्वयि जायते मतिः।
(स्क० पु० वै० वै० मा० १६। १८-१९)

† भूयान्मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्वचांसि ते दिव्यकथानुवर्णने।
नेत्रे ममेमे तव विग्रहेक्षणे
श्रोत्रे कथायां रसना त्वदर्पिते॥
घ्राणं च त्वत्पादसरोजसौरभे
त्वद्भक्तगन्धादिविलेपनेऽसकृत्।
स्यातां च हस्तौ तव मन्दिरे विभो
सम्मार्जनादौ मम नित्यदैव॥
पादौ विभोः क्षेत्रकथानुसर्पणे
मूर्धा च मे स्यात्तव वन्दनेऽनिशम्।
कामश्च मे स्यात्तव सत्कथायां
बुद्धिश्च मे स्यात्तव चिन्तनेऽनिशम्॥
दिनानि मे स्युस्तव सत्कथोदयै-
रुद्गीयमानैर्मुनिभिर्गृहागतैः।
हीनः प्रसङ्गस्तव मे न भूयात्
क्षणं निमेषार्धमथापि विष्णो॥
न पारमेष्ठ्यं न च सार्वभौमं न चापवर्गं स्पृहयामि विष्णो।
त्वत्पादसेवां च सदैव कामये प्रार्थ्यां श्रिया ब्रह्मभवादिभिः सुरैः॥
(स्क० पु० वै० वै० मा० १६। २४-२८)

राजाको यह वरदान देकर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन सबके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर राजा पुरुयशा सदा भगवान्में ही मन लगाये हुए उन्हींकी सेवामें तत्पर रहकर इस पृथ्वीका पालन करने लगे। देवदुर्लभ समस्त मनोरथोंका उपभोग करके अन्तमें उन्होंने चक्रधारी भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लिया। जो इस उत्तम उपाख्यानको सुनते और सुनाते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होते हैं।

शङ्ख-व्याध-संवाद, व्याधके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

श्रुतदेवजी कहते हैं—राजन्! पम्पाके तटपर कोई शङ्ख नामसे प्रसिद्ध परम यशस्वी ब्राह्मण थे, जो बृहस्पतिके राशिमें स्थित होनेपर कल्याणमयी गोदावरी नदीमें करनेके लिये गये। मार्गमें परम पवित्र भीमरथीको करनेके बाद दुर्गम, जलशून्य एवं भयङ्कर निर्जन वनमें से विकल हो गये थे। वैशाखका महीना था और हरका समय। वे किसी वृक्षके नीचे जा बैठे। इसी समय ई दुराचारी व्याध हाथमें धनुष धारण किये वहाँ आया। ह्मणके दर्शनसे उसकी बुद्धि पवित्र हो गयी और वह इस कार बोला—'मुने! मैं अत्यन्त दुर्बुद्धि एवं पापी हूँ। ऊपर आपने बड़ी कृपा की है; क्योंकि साधु-महात्मा भावसे ही दयालु होते हैं। कहाँ मैं नीच कुलमें उत्पन्न आ व्याध और कहाँ मेरी ऐसी पवित्र बुद्धि—मैं इसे केवल आपका ही उत्तम अनुग्रह मानता हूँ। साधुब्राह्मण! मैं आपका शिष्य हूँ, कृपापात्र हूँ। साधुपुरुषोंका समागम होनेपर मनुष्य फिर कभी दुःखको नहीं प्राप्त होता; अतः आप मुझे अपने पापनाशक वचनोंद्वारा ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे संसारबन्धनसे छूटनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य अनायास ही भवसागरसे पार हो जाते हैं। साधु पुरुषोंका चित्त सबके प्रति समान होता है। वे सब प्राणियोंके प्रति दयालु होते हैं। उनकी दृष्टिमें न कोई नीच है, न ऊँच; न अपना है, न पराया। मनुष्य सन्तप्त होकर जब-जब गुरुजनोंसे उपाय पूछता है, तब-तब वे उसे संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले ज्ञानका उपदेश करते हैं। जैसे गङ्गाजी मनुष्योंके पापका नाश करनेवाली हैं, उसी प्रकार मूढ़ जनोंका उद्धार करना साधुपुरुषोंका स्वभाव ही माना गया है।'

व्याधके ये वचन सुनकर शङ्खने कहा—'व्याध! यदि तुम कल्याण चाहते हो तो वैशाख मासमें भगवान् विष्णुको प्रसन्न और संसार समुद्रसे पार करनेवाले जो दिव्य धर्म बताये गये हैं, उनका पालन करो।' मुनिश्रेष्ठ शङ्ख प्याससे बहुत कष्ट पा रहे थे। दोपहरके समय उन्होंने सुन्दर सरोवरमें स्नान किया और युगल वस्त्र धारण करके मध्याह्नकालकी उपासना पूरी की। फिर देव-पूजा करनेके पश्चात् व्याधके लाये हुए श्रमहारी एवं स्वादिष्ट कैथका फल खाया। जब खा-पीकर सुखपूर्वक विराजमान हुए, उस समय व्याधने हाथ जोड़कर कहा—'मुने! किस कर्मसे मेरा तमोमय व्या कुलमें जन्म हुआ और किससे ऐसी सद्बुद्धि तथा महात्माकी सङ्गति प्राप्त हुई? प्रभो! यदि आप ठीक समझें तो मैं जो कुछ पूछा है, वह तथा अन्य जानने योग्य बातें मुझसे कहिये।'

शङ्ख बोले—पूर्वजन्ममें तुम वेदोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण थे। शाकल्य नगरमें तुम्हारा जन्म हुआ था। तुम्हारा गोत्र श्रीवत्स और नाम स्तम्भ था। उस समय तुम बड़े तेजस्वी समझे जाते थे; किंतु आगे चलकर किसी वेश्यामें तुम्हारी आसक्ति हो गयी। उसके सङ्ग-दोषसे तुमने नित्यकर्मोंको त्याग दिया और शूद्रकी भाँति घर आकर रहने लगे। यद्यपि तुम सदाचारशून्य, दुष्ट तथा धर्म-कर्मके त्यागी थे, तो भी उस समय तुम्हारी ब्राह्मणी कान्तिमतीने वेश्यासहित तुम्हारी सेवा की। वह तुम्हारा प्रिय करनेमें लगी रहती थी। वह तुम दोनोंके धोती, दोनोंकी आज्ञाका पालन करती और दोनोंसे आसनपर सोती थी। इस प्रकार वेश्यासहित पतिकी करती हुई उस दुःखिनी ब्राह्मणीका इस भूतलपर समय बीत गया। एक दिन उसके पतिने मूलीसहित खाया और तिलमिश्रित निष्पाव भक्षण किया। अपथ्य भोजनसे उसका मुँह-पेट चलने लगा और उसे भयङ्कर भगन्दर रोग हो गया। वह उस रोगसे दिन जलने लगा। जबतक घरमें धन रहा, तबतक वेश्या भी टिकी रही। उसका सारा धन लेकर पीछे उसने उसको छोड़ दिया। वेश्या तो क्रूर और निर्दयी होती ही है छोड़कर दूसरेके पास चली गयी!

तब वह ब्राह्मण रोगसे व्याकुलचित्त हो रोता

अपनी स्त्रीसे बोला—'देवि ! मैं वेश्याके प्रति आसक्त और अत्यन्त निष्ठुर मनुष्य हूँ, मेरी रक्षा करो। सुन्दरी ! तुम परम पवित्र हो, मैंने तुम्हारा कुछ भी उपकार नहीं किया। कल्याणि ! जो पापी एवं निन्दित मनुष्य अपनी विनीत पत्नीका आदर नहीं करता, वह पंद्रह जन्मोंतक नपुंसक होता है। महाभागे ! दिन-रात साधुपुरुष उसकी निन्दा करते हैं। तुम साध्वी और पतिव्रता हो, मैं तुम्हारा अनादर करके पाप योनिमें गिरूँगा। तुम्हारा अनादर करनेसे जो तुम्हारे मनमें क्रोध हुआ होगा, उससे मैं दग्ध हो चुका हूँ।'

इस प्रकार अनुतापयुक्त वचन कहते हुए पतिसे वह पतिव्रता हाथ जोड़कर बोली—'प्राणनाथ ! आप मेरे प्रति किये हुए व्यवहारको लेकर दुःख न मानें, लज्जाका अनुभव न करें। मेरा आपके ऊपर तनिक भी क्रोध नहीं है, जिससे आप अपनेको दग्ध हुआ बतलाते हैं। पूर्वजन्ममें किये हुए पाप ही इस जन्ममें दुःखरूप होकर आते हैं। जो उन दुःखोंको धैर्यपूर्वक सहन करती है, वही स्त्री साध्वी मानी जाती है और वही पुरुष श्रेष्ठ समझा जाता है।' वह उत्तम वर्णवाली स्त्री अपने पिता और भाइयोंसे धन माँगकर लायी और उसीसे पतिका पालन करने लगी। उसने अपने स्वामीको साक्षात् क्षीरसागरनिवासी विष्णु ही माना। वह दिन-रात पतिके मल-मूत्र साफ करती और उसके शरीरमें पड़े हुए कष्टदायक कीड़ोंको धीरे-धीरे नखसे खींचकर निकालती थी। ब्राह्मणी न रातमें सोती थी, न दिनमें। अपने स्वामीके दुःखसे संतप्त होकर वह दुःखिनी सदा इस प्रकार प्रार्थना किया करती थी—'प्रसिद्ध देवता और पितर मेरे स्वामीकी रक्षा करें, इन्हें रोगहीन एवं निष्पाप कर दें। मैं पतिके आरोग्यके लिये चण्डिकादेवीको भैंसका दही और उत्तम अन्न चढ़ाऊँगी, महात्मा गणेशजीकी प्रसन्नताके लिये मोदक बनवाऊँगी, दस शनिवारोंको उपवास करूँगी तथा मीठा और घी नहीं खाऊँगी। मेरे पति रोगहीन होकर सौ वर्ष जीवें।'

इस प्रकार वह देवी प्रतिदिन देवताओंसे प्रार्थना क[रती] थी। उन्हीं दिनों कोई देवल नामक महात्मा वहाँ आ[ये]। वैशाख मासमें धूपसे पीड़ित हो सायङ्कालके समय [उस] ब्राह्मणके घरमें उन्होंने पदार्पण किया। ब्राह्मणीने महात्[माके] चरण धोकर उस जलको मस्तकपर चढ़ाया और [धूपसे] कष्ट पाये हुए महात्माको पीनेके लिये शर्बत दिया। प्रातः[काल] सूर्योदय होनेपर मुनि जैसे आये थे, वैसे चले गये। तदन[न्तर] थोड़े ही समयमें उस ब्राह्मणको सन्निपात हो गया। ब्राह[्मणी] सोंठ, मिर्च और पीपल लेकर जब उसके मुँहमें डालने ल[गी] तब उसने पत्नीकी अँगुली काट ली। उसके दोनों [दाँत] सहसा सट गये और ब्राह्मणीकी अँगुलीका वह कोमल ख[ण्ड] उसके मुँहमें ही रह गया। अँगुली काटकर उस वेश्याका चिन्तन करता हुआ वह ब्राह्मण मर गया। तब उसकी प[त्नी] कान्तिमतीने कङ्कन बेचकर बहुत-सा इन्धन खरीदा [और] चिता बनाकर वह साध्वी पतिके साथ उसमें जा बैठी। उ[सने] पतिके रोगी शरीरका गाढ़ आलिङ्गन करके उसके साथ अ[पने] आपको भी चितामें जला दिया। शरीर त्यागकर वह सह[सा] भगवान् विष्णुके धाममें चली गयी। उसने वैशाख मासमें देवल मुनिको शर्बत पिलाया और उनके चरणोदकको शी[श]पर चढ़ाया था, इससे उसको योगिगम्य परम पदकी प्रा[प्ति] हुई। तुमने अन्तकालमें वेश्याका चिन्तन करते हुए शर[ीर] त्याग किया था, इसलिये इस घोर व्याधके शरीरमें आये और हिंसामें आसक्त हो सबको उद्वेगमें डाला करते हो। तुमने वैशाख मासमें मुनिको शर्बत देनेके लिये ब्राह्मणी[को] अनुमति दी थी, उसी पुण्यसे आज व्याध होनेपर भी तु[म्हें] सब सुखोंके एकमात्र साधन धर्मविषयक प्रश्न पूछनेके लि[ये] उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई है। तुमने जो सब पापोंको हरनेवा[ले] मुनिके चरणोदकको सिरपर धारण किया था, उसीका य[ह] फल है कि वनमें तुम्हें मेरा सङ्ग मिला है।

भगवान् विष्णुके स्वरूपका विवेचन, प्राणकी श्रेष्ठता, जीवोंके विभिन्न स्वभावों और कर्मोंका कारण तथा भागवतधर्म

व्याधने पूछा—ब्रह्मन् ! आपने पहले कहा था कि भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये कल्याणकारी भागवतधर्मोंका और उनमें भी वैशाख मासमें कर्तव्यरूपसे बताये हुए नियमोंका विशेषरूपसे पालन करना चाहिये। वे भगवान् विष्णु कैसे हैं ? उनका क्या लक्षण है ? उनकी सत्तामें क्या प्रमाण है तथा वे सर्वव्यापी भगवान् किनके द्वारा जाने जा[ते] हैं ? वैष्णव धर्म कैसे हैं ? और किससे भगवान् श्री[हरि] प्रसन्न होते हैं ? महामते ! मैं आपका किङ्कर हूँ, मुझे ये स[ब] बातें बताइये।

व्याधके इस प्रकार पूछनेपर शङ्खने रोग-शोक[से]

रहित सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् नारायणको प्रणाम करके कहा—व्याध ! भगवान् विष्णुका स्वरूप कैसा है, यह सुनो। भगवान् समस्त शक्तियोंके आश्रय, सम्पूर्ण गुणोंकी निधि तथा सबके ईश्वर बताये गये हैं। वे निर्गुण, निष्कल तथा अनन्त हैं। सत्-चित् और आनन्द—यही उनका स्वरूप है। यह जो अखिल चराचर जगत् है, अपने अधीश्वर और आश्रयके साथ नियत रूपसे जिसके वशमें स्थित है, जिससे इसकी उत्पत्ति, पालन, संहार, पुनरावृत्ति तथा नियमन आदि होते हैं, प्रकाश, बन्धन, मोक्ष और जीविका—इन सबकी प्रवृत्ति जहाँसे होती है, वे ही ब्रह्म नामसे प्रसिद्ध भगवान् विष्णु हैं। वे ही विद्वानोंके सम्मान्य सर्वव्यापी परमेश्वर हैं। ज्ञानी पुरुषोंने उन्हींको साक्षात् परब्रह्म कहा है। वेद, शास्त्र, स्मृति, पुराण, इतिहास, पाञ्चरात्र और महाभारत—सब विष्णु-स्वरूप हैं—विष्णुके ही प्रतिपादक हैं। इन्हींके द्वारा महा-विष्णु जानने योग्य हैं। वेदवेद्य, सनातनदेव भगवान् नारायण-को कोई इन्द्रियोंसे (प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा), अनुमानसे और तर्कसे भी नहीं जान सकता है। उन्हींके दिव्य जन्म-कर्म तथा गुणोंको अपनी बुद्धिके अनुसार जानकर उनके अधीन रहनेवाले जीव-समूह सदा मुक्त होते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् प्राणसे उत्पन्न हुआ है, प्राणस्वरूप है, प्राणरूपी सूत्रमें पिरोया हुआ है तथा प्राणसे ही चेष्टा करता है। सबका आधारभूत यह सूत्रात्मा प्राण ही विष्णु है,—ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं।

व्याधने पूछा—ब्रह्मन् ! जीवोंमें यह सूत्रात्मा प्राण सबसे श्रेष्ठ किस प्रकार है ?

शङ्खने कहा—व्याध ! पूर्वकालमें सनातन देव भगवान् नारायणने ब्रह्मा आदि देवताओंकी सृष्टि करके कहा—'देवताओ ! मैं तुम्हारे सम्राट्के पदपर ब्रह्माजीकी स्थापना करता हूँ, यही तुम सबके स्वामी हैं। अब तुम-लोगोंमें जो सबसे अधिक शक्तिशाली हो, उसे तुम स्वयं ही युवराजके पदपर प्रतिष्ठित करो।' भगवान्के इस प्रकार कहनेपर इन्द्र आदि सब देवता आपसमें विवाद करते हुए कहने लगे—'मैं युवराज होऊँगा, मैं होऊँगा।' किसीने सूर्यको श्रेष्ठ बताया और किसीने इन्द्रको। किन्हींकी दृष्टिमें कामदेव ही सबसे श्रेष्ठ थे। कुछ लोग मौन ही खड़े रहे। आपसमें कोई निर्णय होता न देखकर वे भगवान् नारायणके पास पूछनेके लिये गये और प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—'महाविष्णो ! हम सबने अच्छी तरह विचार कर लिया, किंतु हम सबमें श्रेष्ठ कौन है, यह हम अभीतक किसी प्रकार निश्चय न कर सके। अब आप ही निर्णय कीजिये।' तब भगवान् विष्णुने हँसते हुए कहा—'इस विराट् ब्रह्माण्डरूपी शरीरसे जिसके निकल जानेपर यह गिर जायगा और जिसके प्रवेश करनेपर पुनः उठकर खड़ा हो जायगा, वही देवता सबसे श्रेष्ठ है।'

भगवान्के ऐसा कहनेपर सब देवताओंने कहा—'अच्छा ऐसा ही हो।' तब सबसे पहले देवेश्वर जयन्त विराट् शरीरके पैरसे बाहर निकला। उसके निकलनेसे उस शरीरको लोग पङ्गु कहने लगे; परंतु शरीर गिर न सका। यद्यपि वह चल नहीं पाता था तो भी सुनता, पीता, बोलता, सूँघता और देखता हुआ पूर्ववत् स्थिर रहा। तत्पश्चात् गुह्यदेशसे दक्ष प्रजापति निकलकर अलग हो गये। तब लोगोंने उसे नपुंसक कहा; किंतु उस समय भी वह शरीर गिर न सका। उसके बाद विराट् शरीरके हाथसे सब देवताओंके राजा इन्द्र बाहर निकले। उस समय भी शरीरपात नहीं हुआ। विराट् पुरुषको सब लोग हस्तहीन (लूला) कहने लगे। इसी प्रकार नेत्रोंसे सूर्य निकले। तब लोगोंने उसे अंधा और काना कहा। उस समय भी शरीरका पतन नहीं हुआ। तदनन्तर नासिकासे अश्विनीकुमार निकले, किंतु शरीर नहीं गिर सका। केवल इतना ही कहा जाने लगा कि यह सूँघ नहीं सकता। कानसे अधिष्ठातृ देवियाँ दिशाएँ निकलीं। उस समय लोग उसे बधिर कहने लगे; परंतु उसकी मृत्यु नहीं हुई। तत्पश्चात् जिह्वासे वरुणदेव निकले। तब लोगोंने यही कहा कि यह पुरुष रसका अनुभव नहीं कर सकता; किंतु देहपात नहीं हुआ। तदनन्तर वाक्-इन्द्रियसे उसके स्वामी अग्निदेव निकले। उस समय उसे गूँगा कहा गया; किंतु शरीर नहीं गिरा। फिर अन्तःकरणसे बोधस्वरूप रुद्र देवता अलग हो गये। उस दशामें लोगोंने उसे जड कहा; किंतु शरीरपात नहीं हुआ। सबके अन्तमें उस शरीरसे प्राण निकला; तब लोगोंने उसे मरा हुआ बतलाया। इससे देवताओंके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'हमलोगोंमेंसे जो भी इस शरीरमें प्रवेश करके इसे पूर्ववत् उठा देगा—जीवित कर देगा, वही युवराज होगा।' ऐसी प्रतिज्ञा करके सब क्रमशः उस शरीरमें प्रवेश करने लगे। जयन्तने पैरोंमें प्रवेश किया; किंतु वह शरीर नहीं उठा। प्रजापति दक्षने गुह्य इन्द्रियोंमें प्रवेश किया; फिर भी शरीर नहीं उठा। इन्द्रने हाथमें, सूर्यने नेत्रोंमें, दिशाओंने

कानमें, वरुणदेवने जिह्वामें, अश्विनीकुमारने नासिकामें, अग्निने वाक्-इन्द्रियमें तथा रुद्रने अन्तःकरणमें प्रवेश किया; किंतु वह शरीर नहीं उठा, नहीं उठा। सबके अन्तमें प्राणने प्रवेश किया, तब वह शरीर उठकर खड़ा हो गया। तब देवताओंने प्राणको ही सब देवताओंमें श्रेष्ठ निश्चित किया। बल, ज्ञान, धैर्य, वैराग्य और जीवनशक्तिमें प्राण-को ही सर्वाधिक मानकर देवताओंने उसीको युवराज पदपर अभिषिक्त किया। इस उत्कृष्ट स्थितिके कारण प्राणको उक्थ कहा गया है। अतः समस्त चराचर जगत् प्राणात्मक है। जगदीश्वर प्राण अपने पूर्ण एवं बलशाली अंशोंद्वारा सर्वत्र परिपूर्ण है। प्राणहीन जगत्का अस्तित्व नहीं है। प्राणहीन कोई भी वस्तु वृद्धिको नहीं प्राप्त होती। इस जगत्में किसी भी प्राणहीन वस्तुकी स्थिति नहीं है; इस कारण प्राण सब जीवोंमें श्रेष्ठ, सबका अन्तरात्मा और सर्वाधिक बलशाली सिद्ध हुआ। इसलिये प्राणोपासक प्राणको ही सर्वश्रेष्ठ कहते हैं। प्राण सर्वदेवात्मक है, सब देवता प्राणमय हैं। वह भगवान् वासुदेवका अनुगामी तथा सदा उन्हींमें स्थित है। मनीषी पुरुष प्राणको महाविष्णुका बल बतलाते हैं। महाविष्णुके माहात्म्य और लक्षणको इस प्रकार जानकर मनुष्य पूर्व-बन्धनका अनुसरण करनेवाले अज्ञानमय लिङ्गको उसी प्रकार त्याग देता है, जैसे सर्प पुरानी केंचुलको। लिङ्गदेहका त्याग करके वह परम पुरुष अनामय भगवान् नारायणको प्राप्त होता है।

शङ्ख मुनिकी कही हुई यह बात सुनकर व्याधने पुनः पूछा—ब्रह्मन्! यह प्राण जब इतना महान् प्रभावशाली और इस सम्पूर्ण जगत्का गुरु एवं ईश्वर है, तब लोकमें इसकी महिमा क्यों नहीं प्रसिद्ध हुई?

शङ्खने कहा—पहलेकी बात है। प्राण अश्वमेध यज्ञों-द्वारा अनामय भगवान् नारायणका यजन करनेके लिये गङ्गाके तटपर प्रसन्नतापूर्वक गया। अनेक मुनिगणोंके साथ उसने फलोंके द्वारा पृथ्वीका शोधन किया। उस समय वहाँ समाधिमें स्थित हुए महात्मा कण्व बाँबीकी मिट्टीमें छिपे हुए बैठे थे। हल जोतनेपर बाँबी गिर जानेसे वे बाहर निकल आये और क्रोधपूर्वक देखकर सामने खड़े हुए महाप्रभु प्राणको शाप देते हुए बोले—'देवेश्वर! आजसे लेकर आपकी महिमा तीनों लोकोंमें—विशेषतः भूलोकमें प्रसिद्ध न होगी। हाँ, आपके अवतार तीनों लोकोंमें विख्यात होंगे।'

व्याध! तभीसे संसारमें महाप्रभु प्राणकी महिमा प्रसिद्ध नहीं हुई। भूलोकमें तो उसकी ख्याति विशेष रूपसे नहीं।

व्याधने पूछा—महामते! भगवान् विष्णुके रचे हुए करोड़ों एवं सहस्रों सनातन जीव नाना मार्गपर चलने और भिन्न-भिन्न कर्म करनेवाले क्यों दिखायी देते हैं? इन सबका एक-सा स्वभाव क्यों नहीं है? यह सब विस्तारपूर्वक बतलाइये?

शङ्खने कहा—रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुणके भेदसे तीन प्रकारके जीवसमुदाय होते हैं। उनमें राजस स्वभाववाले जीव राजस कर्म, तमोगुणी जीव तामस कर्म तथा सात्त्विक स्वभाववाले जीव सात्त्विक कर्म करते हैं। कभी-कभी संसारमें इनके गुणोंमें विषमता भी होती है, उसीसे वे ऊँच और नीच कर्म करते हुए तदनुसार फलके भागी होते हैं। कभी सुख, कभी दुःख और कभी दोनोंको ही ये मनुष्य गुणोंकी विषमतासे प्राप्त करते हैं। प्रकृतिमें स्थित होनेपर जीव इन तीनों गुणोंसे बँधते हैं। गुण और कर्मोंके अनुसार उनके कर्मोंका भिन्न-भिन्न फल होता है। ये जीव फिर गुणोंके अनुसार ही प्रकृतिको प्राप्त होते हैं। प्रकृतिमें स्थित हुए प्राकृतिक प्राणी गुण और कर्मसे व्याप्त होकर प्राकृतिक गतिको प्राप्त होते हैं। तमोगुणी जीव तामसी वृत्तिसे ही जीवननिर्वाह करते और सदा महान् दुःखमें डूबे रहते हैं। उनमें दया नहीं होती, वे बड़े क्रूर होते हैं और लोकमें सदा द्वेषसे ही उनका जीवन चलता है। राक्षस और पिशाच आदि तमोगुणी जीव हैं, जो तामसी गतिको प्राप्त होते हैं। राजसी लोगोंकी बुद्धि मिश्रित होती है। वे पुण्य तथा पाप दोनों करते हैं; पुण्यसे स्वर्ग पाते और पापसे यातना भोगते हैं। इसी कारण ये मन्दभाग्य पुरुष बार-बार इस संसारमें आते-जाते रहते हैं। जो सात्त्विक स्वभावके मनुष्य हैं, वे धर्मशील, दयालु, श्रद्धालु, दूसरोंके दोष न देखनेवाले तथा सात्त्विक वृत्तिसे जीवननिर्वाह करनेवाले होते हैं। इसीलिये भिन्न-भिन्न कर्म करनेवाले जीवोंके एक-दूसरेसे पृथक् अनेक प्रकारके भाव हैं; उनके गुण और कर्मके अनुसार महाप्रभु विष्णु अपने स्वरूपकी प्राप्ति करानेके लिये उनसे कर्मोंका अनुष्ठान करवाते हैं। भगवान् विष्णु पूर्णकाम हैं, उनमें विषमता और निर्दयता आदि दोष नहीं हैं। वे समभावसे ही सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। सब जीव अपने गुणसे ही कर्मफलके भागी होते हैं। जैसे माली बगीचेमें लगे हुए सब वृक्षोंको समानरूपसे सींचता है और एक ही कूएँके जलसे सभी वृक्ष पलते हैं तथापि वे पृथक्-

पृथक् स्वभावको प्राप्त होते हैं। बगीचा लगानेवालेमें किसी प्रकार विषमता और निर्दयताका दोष नहीं होता।

देवाधिदेव भगवान् विष्णुका एक निमेष ब्रह्माजीके एक कल्पके समान माना गया है। ब्रह्मकल्पके अन्तमें देवाधिदेव-शिरोमणि भगवान् विष्णुका उन्मेष होता है अर्थात् वे आँख खोलकर देखते हैं। जबतक निमेष रहता है तबतक प्रलय है। निमेषके अन्तमें भगवान् अपने उदरमें स्थित सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करनेकी इच्छा करते हैं। सृष्टिकी इच्छा होनेपर भगवान् अपने उदरमें स्थित हुए अनेक प्रकारके जीवसमूहोंको देखते हैं। उनकी कुक्षिमें रहते हुए भी सम्पूर्ण जीव उनके ध्यानमें स्थित होते हैं। अर्थात् कौन जीव कहाँ किस रूपमें है, इसकी स्मृति भगवान्को सदा बनी रहती है। भगवान् विष्णु चतुर्व्यूहस्वरूप हैं। वे उन्मेष-कालके प्रथम भागमें ही चतुर्व्यूह रूपमें प्रकट हो, व्यूहगामी वासुदेवस्वरूपसे महात्माओंमेंसे किसीको सायुज्य-साधक तत्त्वज्ञान, किसीको सारूप्य, किसीको सामीप्य और किसीको सालोक्य प्रदान करते हैं। फिर अनिरुद्ध मूर्तिके वशमें स्थित हुए सम्पूर्ण लोकोंको वे देखते हैं, देखकर उन्हें प्रद्युम्न मूर्तिके वशमें देते हैं और सृष्टि करनेका सङ्कल्प करते हैं। भगवान् श्रीहरिने पूर्ण गुणवाले वासुदेव आदि चार व्यूहोंके द्वारा क्रमशः माया, जया, कृति और शान्तिको स्वयं स्वीकार किया है। उनसे संयुक्त चतुर्व्यूहात्मक महाविष्णुने पूर्णकाम होकर भी भिन्न-भिन्न कर्म और वासनावाले लोकोंकी सृष्टि की है। उन्मेषकालका अन्त होनेपर भगवान् विष्णु पुनः योगमायाका आश्रय लेकर व्यूहगामी सङ्कर्षण स्वरूपसे इस चराचर जगत्का संहार करते हैं। इस प्रकार महात्मा विष्णुका यह सब चिन्तन करनेयोग्य कार्य बतलाया गया, जो ब्रह्मा आदि योगसे सम्पन्न पुरुषोंके लिये भी अचिन्त्य एवं दुर्विभाव्य है।

व्याधने पूछा—मुने! भागवतधर्म कौन-कौन-से हैं और किनके द्वारा भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं?

शङ्खने कहा—जिससे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, जो साधुपुरुषोंका उपकार करनेवाला है तथा जिसकी किसीने भी निन्दा नहीं की है, उसे तुम सात्त्विक धर्म समझो। वेदों और स्मृतियोंमें बताये हुए धर्मका यदि निष्कामभावसे पालन किया जाय तथा वह लोकमें विरुद्ध न हो, तो उसे भी सात्त्विक धर्म जानना चाहिये। वर्ण और आश्रम विभागके अनुसार जो चार-चार प्रकारके धर्म हैं, वे सभी नित्य, नैमित्तिक और काम्य भेदसे तीन प्रकारके माने गये हैं। वे सभी अपने-अपने वर्ण और आश्रमके धर्म जब भगवान् विष्णुको समर्पित कर दिये जाते हैं, तब उन्हें सात्त्विक धर्म जानना चाहिये। वे सात्त्विक धर्म ही मङ्गलमय भागवतधर्म हैं। अन्यान्य देवताओंकी प्रीतिके लिये सकामभावसे किये जानेवाले धर्म राजस माने गये हैं। यक्ष, राक्षस, पिशाच आदिके उद्देश्यसे किये जानेवाले लोकनिष्ठुर, हिंसात्मक निन्दित कर्मोंको तामस धर्म कहा गया है। जो सत्त्वगुणमें स्थित हो भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाले शुभकारक सात्त्विक धर्मोंका सदा निष्कामभावसे अनुष्ठान करते हैं, वे भागवत (विष्णुभक्त) माने गये हैं। जिनका चित्त सदा भगवान् विष्णुमें लगा रहता है, जिनकी जिह्वापर भगवान्का नाम है और जिनके हृदयमें भगवान्के चरण विराजमान हैं, वे भागवत कहे गये हैं। जो सदाचारपरायण, सबका उपकार करनेवाले और सदैव ममतासे रहित हैं, वे भागवत माने गये हैं। जिनका शास्त्रमें, गुरुमें और सत्कर्मोंमें विश्वास है तथा जो सदा भगवान् विष्णुके भजनमें लगे रहते हैं, उन्हें भागवत कहा गया है। उन भगवद्भक्त महात्माओंको जो धर्म नित्य मान्य हैं, जो भगवान् विष्णुको प्रिय हैं तथा वेदों और स्मृतियोंमें जिनका प्रतिपादन किया गया है, वे ही सनातनधर्म माने गये हैं*। जिनका चित्त विषयोंमें आसक्त है, उनका सब देशोंमें घूमना, सब कर्मोंको देखना और सब धर्मोंको सुनना कुछ भी लाभकारक नहीं है। साधु-पुरुषोंका मन साधु-महात्माओंके दर्शनसे पिघल जाता है। निष्काम पुरुषोंद्वारा श्रद्धापूर्वक जिसका सेवन किया जाता है तथा जो भगवान् विष्णुको सदा ही प्रिय है, वह भागवत धर्म माना गया है।

भगवान् विष्णुने क्षीरसागरमें सबके हितकी कामनासे भगवती लक्ष्मीजीको दहीसे निकाले हुए मक्खनकी भाँति सब शास्त्रोंके सारभूत वैशाख धर्मका उपदेश किया है। जो दम्भरहित होकर वैशाख मासके व्रतका अनुष्ठान करता है, वह सब पापोंसे रहित हो सूर्यमण्डलको भेदकर भगवान् विष्णुके योगिदुर्लभ परम धाममें जाता है।

इस प्रकार द्विजश्रेष्ठ शङ्खके द्वारा भगवान् विष्णुके प्रिय वैशाख मासके धर्मोंका वर्णन होते समय वह पाँच शाखाओं-

---

* तेषां हि संमता धर्माः शाश्वता विष्णुवल्लभाः।
श्रुतिस्मृत्युदिता ये च ते धर्माः शाश्वता मताः॥
(स्क० पु० वै० वै० मा० २०। ६३)

वाला वटवृक्ष तुरंत ही भूमिपर गिर पड़ा । उसके खोंखलेमें एक विकराल अजगर रहता था, वह भी पाप-योनिमय शरीरको त्यागकर तत्काल दिव्य स्वरूप हो मस्तक झुकाये शङ्खके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया ।

वैशाख मासके माहात्म्य-श्रवणसे एक सर्पका उद्धार और वैशाखधर्मके पालन तथा राम-नाम-जपसे व्याधका वाल्मीकि होना

श्रुतदेव कहते हैं—तदनन्तर व्याधसहित शङ्ख मुनिने विस्मित होकर पूछा—'तुम कौन हो ? और तुम्हें यह दशा कैसे प्राप्त हुई थी ?'

सर्पने कहा—पूर्वजन्ममें मैं प्रयागका एक ब्राह्मण था । मेरे पिताका नाम कुशीद मुनि और मेरा नाम रोचन था । मैं धनाढ्य, अनेक पुत्रोंका पिता और सदैव अभिमान-से दूषित था । बैठे-बैठे बहुत बकवाद किया करता था । बैठना, सोना, नींद लेना, मैथुन करना, जुआ खेलना, लोगोंकी बातें करना और सूद लेना यही मेरे व्यापार थे । मैं लोकनिन्दासे डरकर नाममात्रके शुभ कर्म करता था; सो भी दम्भके साथ । उन कर्मोंमें मेरी श्रद्धा नहीं थी । इस प्रकार मुझ दुष्ट और दुर्बुद्धिके कितने ही वर्ष बीत गये । तदनन्तर इसी वैशाख मासमें जयन्त नामक ब्राह्मण प्रयागक्षेत्रमें निवास करनेवाले पुण्यात्मा द्विजोंको वैशाख मासके धर्म सुनाने लगे । स्त्री, पुरुष, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सहस्रों श्रोता प्रातःकाल स्नान करके अविनाशी भगवान् विष्णुकी पूजाके पश्चात् प्रतिदिन जयन्तकी कही हुई कथा सुनते थे । वे सभी पवित्र एवं मौन होकर उस भगवत्कथामें अनुरक्त रहते थे । एक दिन मैं भी कौतूहलवश देखनेकी इच्छासे श्रोताओंकी उस मण्डलीमें जा बैठा । मेरे मस्तकपर पगड़ी बँधी थी । इसलिये मैंने नमस्कार तक नहीं किया और संसारी वार्तालापमें अनुरक्त हो कथामें विघ्न डालने लगा । कभी मैं कपड़े फैलाता, कभी किसीकी निन्दा करता और कभी जोरसे हँस पड़ता था । जबतक कथा समाप्त हुई, तबतक मैंने इसी प्रकार समय बिताया । तत्पश्चात् दूसरे दिन सन्निपात रोगसे मेरी मृत्यु हो गयी । मैं तपाये हुए शीशेके जलसे भरे हुए हलाहल नरकमें डाल दिया गया और चौदह मन्वन्तरोंतक वहाँ यातना भोगता रहा । उसके बाद चौरासी लाख योनियोंमें क्रमशः जन्म लेता और मरता हुआ मैं इस समय क्रूर तमोगुणी सर्प होकर इस वृक्षके खोंखलेमें निवास करता था । मुने ! सौभाग्यवश आपके मुखारविन्दसे निकली हुई अमृतमयी कथाको मैंने अपने दोनों नेत्रोंसे सुना, जिससे तत्काल मेरे सारे पाप नष्ट हो गये । मुनिश्रेष्ठ ! मैं नहीं जानता कि आप किस जन्मके मेरे बन्धु हैं; क्योंकि मैंने कभी किसीका उपकार नहीं किया है तो भी मुझपर आपकी कृपा हुई । जिनका चित्त समान है, जो सब प्राणियोंपर दया करनेवाले साधुपुरुष हैं, उनमें परोपकारकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है । उनकी कभी किसीके प्रति विपरीत बुद्धि नहीं होती । आज आप मुझपर कृपा कीजिये, जिससे मेरी बुद्धि धर्ममें लगे । देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी मुझे कभी विस्मृति न हो और साधु चरित्र-वाले महापुरुषोंका सदा ही सङ्ग प्राप्त हो । जो लोग मदसे अंधे हो रहे हों, उनके लिये एकमात्र दरिद्रता ही उत्तम अञ्जन है । इस प्रकार नाना भाँतिसे स्तुति करके रोचनने बार-बार शङ्खको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर चुपचाप उनके आगे खड़ा हो गया ।

तब शङ्खने कहा—ब्रह्मन् ! तुमने वैशाख मास और भगवान् विष्णुका माहात्म्य सुना है, इससे उसी क्षण तुम्हारा सारा बन्धन नष्ट हो गया । द्विजश्रेष्ठ ! परिहास, भय, क्रोध, द्वेष, कामना अथवा स्नेहसे भी एक बार भगवान् विष्णुके पापहारी नामका उच्चारण करके बड़े भारी पापी भी रोग-शोकरहित वैकुण्ठधाममें चले जाते हैं । फिर जो श्रद्धासे युक्त हो क्रोध और इन्द्रियोंको जीतकर सबके प्रति दयाभाव रखते हुए भगवान्‌की कथा सुनते हैं, वे उनके लोकमें जाते हैं, इस विषयमें तो कहना ही क्या है* । कितने ही मनुष्य केवल भक्तिके बलसे एकमात्र भगवान्‌की कथा-वार्तामें तत्पर हो अन्य सब धर्मोंका त्याग कर देनेपर भी भगवान् विष्णुके परम पदको पा लेते हैं ।

* हास्याद्भयात्तथा क्रोधाद्द्वेषात्कामादथापि वा ।
स्नेहाद्वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामापहारि च ॥
पापिष्ठा अपि गच्छन्ति विष्णोर्धाम निरामयम् ।
किमु तच्छ्रद्धया युक्ता जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ॥
दयावन्तः कथां श्रुत्वा गच्छन्तीति द्विजोत्तम ।
(स्क० पु० वै० वै० मा० २१ । ३६-३८)

भक्तिसे अथवा द्वेष आदिसे भी जो कोई भगवान्‌की भक्ति करते हैं, वे भी प्राणहारिणी पूतनाकी भाँति परमपदको प्राप्त होते हैं। सदा महात्मा पुरुषोंका सङ्ग और उन्हींके विषयमें वार्तालाप करना चाहिये। रचना शिथिल होनेपर भी जिसके प्रत्येक श्लोकमें भगवान्‌के सुयशसूचक नाम हैं, वही वाणी जनसमुदायकी पापराशिका नाश करनेवाली होती है; क्योंकि साधुपुरुष उसीको सुनते, गाते और कहते हैं। जो भगवान् किसीसे कष्टसाध्य सेवा नहीं चाहते, आसन आदि विशेष उपकरणोंकी इच्छा नहीं रखते तथा सुन्दर रूप और जवानी नहीं चाहते, अपितु एक बार भी स्मरण कर लेनेपर अपना परम प्रकाशमय वैकुण्ठधाम दे डालते हैं, उन दयालु भगवान्‌को छोड़कर मनुष्य किसकी शरणमें जाय। उन्हीं रोग-शोकसे रहित, चित्तद्वारा चिन्तन करनेयोग्य, अव्यक्त, दयानिधान, भक्तवत्सल भगवान् नारायणकी शरणमें जाओ। महामते! वैशाख मासमें कहे हुए इन सब धर्मोंका पालन करो, उससे प्रसन्न होकर भगवान् जगन्नाथ तुम्हारा कल्याण करेंगे।

ऐसा कहकर शङ्ख मुनि व्याधकी ओर देखकर चुप हो रहे। तब उस दिव्य पुरुषने पुनः इस प्रकार कहा—'मुने! मैं धन्य हूँ, आप-जैसे दयालु महात्माने मुझपर अनुग्रह किया है। मेरी कुत्सित योनि दूर हो गयी और अब मैं परमगतिको प्राप्त हो रहा हूँ, यह मेरे लिये सौभाग्यकी बात है।' यों कहकर दिव्य पुरुषने शङ्ख मुनिकी परिक्रमा की तथा उनकी आज्ञा लेकर वह दिव्यलोकको चला गया। तदनन्तर सन्ध्या हो गयी। व्याधने शङ्खको अपनी सेवासे सन्तुष्ट किया और उन्होंने सायंकालकी सन्ध्योपासना करके शेष रात्रि व्यतीत की। भगवान्‌के लीलावतारोंकी कथा-वार्ताद्वारा रात व्यतीत करके शङ्ख मुनि ब्राह्ममुहूर्तमें उठे और दोनों पैर धोकर मौनभावसे तारक ब्रह्मका ध्यान करने लगे। तत्पश्चात् शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर वैशाख मासमें सूर्योदयसे पहले स्नान किया और सन्ध्या-तर्पण आदि सब कर्म समाप्त करके उन्होंने हर्षयुक्त हृदयसे व्याधको बुलाया। बुलाकर उसे 'राम' इस दो अक्षरवाले नामका उपदेश दिया, जो वेदसे भी अधिक शुभकारक है। उपदेश देकर इस प्रकार कहा—'भगवान् विष्णुका एक-एक नाम भी सम्पूर्ण वेदोंसे अधिक महत्त्वशाली माना गया है। ऐसे अनन्त नामोंसे अधिक है भगवान् विष्णुका सहस्रनाम। उस सहस्रनामके समान राम-नाम माना गया है*। इसलिये व्याध! तुम निरन्तर रामनामका जप करो और मृत्युपर्यन्त मेरे बताये हुए धर्मोंका पालन करते रहो। इस धर्मके प्रभावसे तुम्हारा वल्मीक ऋषिके घर जन्म होगा और तुम इस पृथ्वीपर वाल्मीकि नामसे प्रसिद्ध होओगे।'

व्याधको ऐसा आदेश देकर मुनिवर शङ्खने दक्षिण दिशाको प्रस्थान किया। व्याधने भी शङ्ख मुनिकी परिक्रमा करके बार-बार उनके चरणोंमें प्रणाम किया और जबतक वे दिखायी दिये, तबतक उन्हींकी ओर देखता रहा। फिर उसने अति योग्य वैशाखोक्त धर्मोंका पालन किया। जंगली कैथ, कटहल, जामुन और आम आदिके फलोंसे राह चलनेवाले थके-मादे पथिकोंको वह भोजन कराता था। जूता, चन्दन, छाता, पंखा आदिके द्वारा तथा बालूके बिछावन और छाया आदिकी व्यवस्थासे पथिकोंके परिश्रम और पसीनेका निवारण करता था। प्रातःकाल स्नान करके दिन-रात राम-नामका जप करता था। इस प्रकार धर्मानुष्ठान करके वह दूसरे जन्ममें वल्मीकका पुत्र हुआ। उस समय वह महायशस्वी वाल्मीकिके नामसे विख्यात हुआ। उन्हीं वाल्मीकिजीने अपनी मनोहर प्रबन्ध रचनाद्वारा संसारमें दिव्य राम-कथाको प्रकाशित किया, जो समस्त कर्म-बन्धनोंका उच्छेद करनेवाली है।

मिथिलापते! देखो, वैशाखका माहात्म्य कैसा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला है, जिससे एक व्याध भी परम दुर्लभ ऋषि-भावको प्राप्त हो गया। यह रोमाञ्चकारी उपाख्यान सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो इसे सुनता और सुनाता है, वह पुनः माताके स्तनका दूध पीनेवाला नहीं होता।

धर्मवर्णकी कथा, कलिकी अवस्थाका वर्णन, धर्मवर्ण और पितरोंका संवाद एवं वैशाखकी अमावास्याकी श्रेष्ठता

मिथिलापतिने पूछा—ब्रह्मन्! इस वैशाख मासमें कौन-कौन-सी तिथियाँ पुण्यदायिनी हैं?

श्रुतदेवजी बोले—सूर्यके मेष राशिपर स्थित होनेपर वैशाख मासमें तीसों तिथियाँ पुण्यदायिनी मानी गयी हैं। एकादशीमें किया हुआ पुण्य कोटिगुना होता है। उसमें स्नान, दान, तपस्या, होम, देवपूजा, पुण्यकर्म एवं कथाका श्रवण

* विष्णोरेकैकनामापि सर्ववेदाधिकं मतम्। तादृङ्नामसहस्रेण रामनामसमं मतम्। तेभ्यश्चानन्तनामभ्योऽधिकं नाम्नां सहस्रकम्॥ (स्क० पु० वै० वै० मा० २१। ५३-५४)

किया जाय, तो वह तत्काल मुक्ति देनेवाला है । जो रोग आदिसे ग्रस्त और दरिद्रतासे पीड़ित हो, वह मनुष्य इस पुण्यमयी कथाको सुनकर कृतकृत्य होता है । वैशाख मास मनसे सेवन करने योग्य है; क्योंकि वह समय उत्तम गुणोंसे युक्त है । दरिद्र, धनाढ्य, पङ्गु, अन्धा, नपुंसक, विधवा, साधारण स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, वृद्ध तथा रोगसे पीड़ित मनुष्य ही क्यों न हो, वैशाख मासका धर्म सबके लिये अत्यन्त सुखसाध्य है । परम पुण्यमय वैशाख मासमें जब सूर्य मेष राशिमें स्थित हों, तब पापनाशिनी अमावास्या कोटि गयाके समान फल देनेवाली होती है । राजन् ! जब पृथ्वीपर राजर्षि सावर्णिका शासन था, उस समय तीसवें कलियुगके अन्तमें सभी धर्मोंका लोप हो चुका था । उसी समय आनर्त देशमें धर्मवर्ण नामसे विख्यात एक ब्राह्मण थे । मुनिवर धर्मवर्णने उस कलियुगमें ही किसी समय महात्मा मुनियोंके सत्रयागमें सम्मिलित होनेके लिये पुष्कर क्षेत्रकी यात्रा की । वहाँ कुछ व्रतधारी महर्षियोंने कलियुगकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा था—'सत्ययुगमें भगवान् विष्णुको संतुष्ट करनेवाला जो पुण्य एक वर्षमें साध्य है, वही त्रेतामें एक मासमें और द्वापरमें पंद्रह दिनोंमें साध्य होता है; परंतु कलियुगमें भगवान् *विष्णुका स्मरण कर लेनेसे ही उससे दशगुना पुण्य होता है**। कलिमें बहुत थोड़ा पुण्य भी कोटिगुना होता है । जो एक बार भी भगवान्‌का नाम लेकर दयादान करता है और दुर्भिक्षमें अन्न देता है, वह निश्चय ही ऊर्ध्वलोकमें गमन करता है ।'

यह सुनकर देवर्षि नारद हँसते हुए उन्मत्तके समान नृत्य करने लगे । सभासदोंने पूछा—'नारदजी ! यह क्या बात है ?' तब बुद्धिमान् नारदजीने हँसते हुए उन सबको उत्तर दिया—'आपलोगोंका कथन सत्य है। इसमें सन्देह नहीं कि कलियुगमें स्वल्प कर्मसे भी महान् पुण्यका साधन किया जाता है तथा क्लेशोंका नाश करनेवाले भगवान् केशव स्मरणमात्रसे ही प्रसन्न हो जाते हैं। तथापि मैं आपलोगोंसे यह कहता हूँ कि कलियुगमें ये दो बातें दुर्घट हैं—शिश्नेन्द्रियका निग्रह और जिह्वाको वशमें रखना । ये दोनों कार्य जो सिद्ध कर ले, वही नारायणस्वरू[प] है । अतः कलियुगमें आपको यहाँ नहीं ठहरना चाहिये ।'

नारदजीकी यह बात सुनकर उत्तम व्रतका पाल[न] करनेवाले महर्षि सहसा यज्ञको समाप्त करके सुखपूर्व[क] चले गये । धर्मवर्णने भी वह बात सुनकर भूलोकको त्या[ग] देनेका विचार किया । उन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करके द[ण्ड] और कमण्डलु हाथमें लिया और जटा-वल्कलधारी हो[कर] वे कलियुगके अनाचारी पुरुषोंको देखनेके लिये घर छो[ड़]कर चल दिये । उनके मनमें बड़ा विस्मय हो रहा था[।] उन्होंने देखा, प्रायः मनुष्य पापाचारमें प्रवृत्त हो ब[ड़े] भयङ्कर एवं दुष्ट हो गये हैं । ब्राह्मण पाखण्डी हो चले हैं[।] शूद्र संन्यास धारण करते हैं । पत्नी अपने पतिसे द्वेष रखत[ी] है । शिष्य गुरुसे वैर करता है । सेवक स्वामीके और पु[त्र] पिताके घातमें लगा हुआ है । ब्राह्मण शूद्रवत् और गौ[एँ] बकरियोंके समान हो गयी हैं । वेदोंमें गाथाकी ह[ी] प्रधानता रह गयी है । शुभकर्म साधारण लौकिक कृत्योंके ही समान रह गये हैं, इनके प्रति किसीकी महत्त्व बुद्धि नहीं है । भूत, प्रेत और पिशाच आदिकी उपासना चल पड़ी है । सब लोग मैथुनमें आसक्त हैं और उसके लि[ये] अपने प्राण भी खो बैठते हैं । सब लोग झूठी गवाही दे[ते] हैं । मनमें सदा छल और कपट भरा रहता है । कलियुगमें सदा लोगोंके मनमें कुछ और, वाणीमें कुछ और तथा क्रियामें कुछ और ही देखा जाता है । सबकी विद्या किसी-न-किसी स्वार्थको लेकर ही होती है और केवल राजभवनमें उसका आदर होता है । सङ्गीत आदि कलात्मक विद्याएँ भी राजाओं को प्रिय हैं । कलिमें अधम मनुष्य पूजे जाते हैं और श्रेष्ठ पुरुषोंकी अवहेलना होती है । कलिमें वेदोंके विद्वान ब्राह्मण दरिद्र होते हैं । लोगोंमें प्रायः भगवान्‌की भक्ति नहीं होती । पुण्यक्षेत्रमें पाखण्ड अधिक बढ़ जाता है । शूद्रलोग जटाधारी तपस्वी बनकर धर्मकी व्याख्या करते हैं । सभी मनुष्य अल्पायु, दयाहीन और शठ होते हैं । कलिमें प्रायः सभी धर्मके व्याख्याता बन जाते हैं और दूसरोंसे कुछ लेनेमें ही उत्सव मानते हैं । अपनी पूजा कराना चाहते हैं और व्यर्थ ही दूसरोंकी निन्दा करते हैं । अपने घर आनेपर सभी अपने स्वामीके दोषोंकी चर्चामें तत्पर रहते हैं । कलिमें लोग साधुओंको नहीं जानते । पापियोंको ही बहुत आदर देते हैं । दुराग्रही लोग इतने दुराग्रही होते हैं कि साधुपुरुषोंके एक दोषका भी ढिंढोरा पीटते हैं

* कृते यद् वत्सरात्साध्यं पुण्यं माधवतोषणम् ।
त्रेतायां मासतः साध्यं द्वापरे पक्षतो नृप ॥
तस्माद्दशगुणं पुण्यं कलौ विष्णुस्मृतेर्भवेत् ।
(स्क० पु० वै० वै० मा० २२ । २०-२१)

और पापात्माओंके दोषसमूहोंको भी गुण बतलाते हैं। कलिमें गुणहीन मनुष्य दूसरोंके गुण न देखकर उनके दोष ही ग्रहण करते हैं। जैसे पानीमें रहनेवाली जोंक प्राणियोंके रक्त पीती है, जल नहीं पीती, उसी प्रकार जोंकके धर्मसे संयुक्त हो मनुष्य दूसरेका रक्त चूसते हैं। ओषधियाँ शक्तिहीन होती हैं। ऋतुओंमें उलट-फेर हो जाता है। सब राष्ट्रोंमें अकाल पड़ता है। कन्या योग्य समयमें सन्तानोत्पत्ति नहीं करती। लोग नट और नर्तकोंकी विद्याओंसे विशेष प्रेम करते हैं। जो वेद-वेदान्तकी विद्याओंमें तत्पर और अधिक गुणवान् हैं, उन्हें अज्ञानी मनुष्य सेवककी दृष्टिसे देखते हैं, वे सब-के-सब भ्रष्ट होते हैं। कलिमें प्रायः लोग श्राद्धकर्मका त्याग करते हैं। वैदिक कर्मोंको छोड़ बैठते हैं। प्रायः जिह्वापर भगवान् विष्णुके नाम कभी नहीं आते। लोग श्रृङ्गार रसमें आनन्दका अनुभव करते हैं और उसीके गीत गाते हैं। कलियुगके मनुष्योंमें न कभी भगवान् विष्णुकी सेवा देखी जाती है, न शास्त्रीय चर्चा होती है, न कहीं यज्ञकी दीक्षा है, न विचारका लेश है, न तीर्थयात्रा है और न दान-धर्म ही होते देखे जाते हैं। यह कितने आश्चर्यकी बात है !

उन सबको देखकर धर्मवर्णको बड़ा भय लगा। पापसे कुलकी हानि होती देख, अत्यन्त आश्चर्यसे चकित हो वे दूसरे द्वीपमें चले गये। सब द्वीपों और लोकोंमें विचरते हुए बुद्धिमान् धर्मवर्ण किसी समय कौतूहलवश पितृलोकमें गये। वहाँ उन्होंने कर्मसे कष्ट पाते हुए पितरोंको बड़ी भयङ्कर दशामें देखा। वे दौड़ते, रोते और गिरते-पड़ते थे। उन्होंने अपने पितरोंको भी नीचे अन्धकूपमें पड़े हुए देखा। उनको देखकर आश्चर्यचकित हो दयालु धर्मवर्णने पूछा—'आपलोग कौन हैं, किस दुस्तर कर्मके प्रभावसे इस अन्धकूपमें पड़े हैं ?'

पितरोंने कहा—हम श्रीवत्स गोत्रवाले हैं। पृथ्वीपर हमारी कोई सन्तान नहीं रह गयी है, अतः हम श्राद्ध और पिण्डसे वञ्चित हैं, इसीलिये यहाँ हमें नरकका कष्ट भोगना पड़ता है। सन्तानहीन दुरात्माओंका अन्धकूपमें पतन होता है। हमारे वंशमें एक ही महायशस्वी पुरुष है, जो धर्मवर्णके नामसे विख्यात है। किंतु वह विरक्त होकर अकेला घूमता-फिरता है। उसने गृहस्थ-धर्मको नहीं स्वीकार किया है। वह एक ही तन्तु हमारे कुलमें अवशिष्ट है। उसकी भी आयु क्षीण हो जानेपर हमलोग घोर अन्धकूपमें गिर पड़ेंगे, जहाँसे फिर निकलना कठिन होगा। इसलिये तुम पृथ्वीपर जाकर धर्मवर्णको समझाओ। हमलोग दयाके पात्र हैं, हमारे वचनोंसे उसको यह बताओ कि 'हमारी वंशरूपा दूर्वाको कालरूपी चूहा प्रतिदिन खा रहा है। क्रमशः सारे वंशका नाश हो गया है, एक तुम्हीं बचे हो। जब तुम भी मर जाओगे तब सन्तान-परम्परा न होनेके कारण तुम्हें भी अन्धकूपमें गिरना पड़ेगा। इसलिये गृहस्थ-धर्मको स्वीकार करके सन्तानकी वृद्धि करो। इससे हमारी और तुम्हारी दोनोंकी ऊर्ध्वगति होगी। यदि एक भी पुत्र वैशाख, माघ अथवा कार्तिक मासमें हमारे उद्देश्यसे स्नान, श्राद्ध और दान करेगा तो उससे हमलोगोंकी ऊर्ध्वगति होगी और नरकसे उद्धार हो जायगा। यदि एक पुत्र भी भगवान् विष्णुका भक्त हो जाय, एक भी एकादशीका व्रत रहने लगे अथवा यदि एक भी भगवान् विष्णुकी पापनाशक कथा श्रवण करे तो उसकी सौ बीती हुई पीढ़ियोंका तथा सौ भावी पीढ़ियोंका उद्धार होता है। वे पीढ़ियाँ पापसे आवृत होनेपर भी नरकका दर्शन नहीं करतीं। दया और धर्मसे रहित उन बहुतसे पुत्रोंके जन्मसे क्या लाभ, जो कुलमें उत्पन्न होकर सर्वव्यापी भगवान् नारायणकी पूजा नहीं करते *।' इस प्रकार प्रिय वचनोंद्वारा धर्मवर्णको समझाकर तुम उसे विरक्तिपूर्ण ब्रह्मचर्य-आश्रमसे गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करनेकी सलाह दो।

पितरोंकी यह बात सुनकर धर्मवर्ण अत्यन्त विस्मित हुआ और हाथ जोड़कर बोला—'मैं ही धर्मवर्ण नामसे विख्यात आपके वंशका दुराग्रही बालक हूँ। यज्ञमें महात्मा नारदजीका यह वचन सुनकर कि 'कलियुगमें प्रायः कोई भी रसनेन्द्रिय और शिश्नेन्द्रियको दृढ़तापूर्वक संयममें नहीं रखता'—मैं दुर्जनोंकी संगतिसे भयभीत हो अबतक दूसरे-दूसरे द्वीपोंमें घूमता रहा। इस कलियुगके तीन चरण बीत गये, अन्तिम चरणमें भी साढ़े तीन भाग व्यतीत हो चुके हैं। मेरा जन्म व्यर्थ बीता है; क्योंकि जिस कुलमें मैंने जन्म लिया, उसमें माता-पिताके ऋणको भी मैंने नहीं चुकाया। पृथ्वीके भारभूत उस शत्रुतुल्य पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या लाभ जो पैदा होकर भगवान् विष्णु और देवताओं तथा पितरोंकी पूजा न करे। मैं आपलोगोंकी आज्ञाका पालन करूँगा। बताइये, पृथ्वीपर किस प्रकार मुझे कलियुगसे और संसारसे भी बाधा नहीं प्राप्त होगी ?'

---

* किमन्यैर्बहुभिः पुत्रैर्दयाधर्मविवर्जितैः ।
ये जाता नार्चयन्त्यत्र विष्णुं नारायणं कुले ॥
(स्क० पु० वै० वै० मा० २२ । ८१)

धर्मवर्णकी बात सुनकर पितरोंके मनको कुछ आश्वासन मिला, वे बोले—बेटा! तुम गृहस्थ-आश्रम स्वीकार करके सन्तानोत्पत्तिके द्वारा हमारा उद्धार करो। जो भगवान् विष्णुकी कथामें अनुरक्त होते, निरन्तर श्रीहरिका स्मरण करते और सदाचारके पालनमें तत्पर रहते हैं, उन्हें कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता। मानद! जिसके घरमें शालग्राम शिला अथवा महाभारतकी पुस्तक हो, उसे भी कलियुग बाधा नहीं दे सकता। जो वैशाख मासके धर्मोंका पालन करता, माघ-स्नानमें तत्पर होता और कार्तिकमें दीप देता है, उसे भी कलिकी बाधा नहीं प्राप्त होती। जो प्रतिदिन महात्मा भगवान् विष्णुकी पापनाशक एवं मोक्षदायिनी दिव्य कथा सुनता है, जिसके घरमें बलिवैश्वदेव होता है, शुभकारिणी तुलसी स्थित होती हैं तथा जिसके आँगनमें उत्तम गौ रहती हैं, उसे भी कलियुग बाधा नहीं देता। अतः इस पापात्मक युगमें भी तुम्हें कोई भय नहीं है। बेटा! शीघ्र पृथ्वीपर जाओ। इस समय वैशाख मास चल रहा है, यह सबका उपकार करनेवाला मास है। सूर्यके मेषराशिमें स्थित होनेपर तीसों तिथियाँ पुण्यदायिनी मानी गयी हैं। एक-एक तिथिमें किया हुआ पुण्य कोटि-कोटि गुना अधिक होता है। उनमें भी जो वैशाखकी अमावास्या तिथि है, वह मनुष्योंको मोक्ष देनेवाली है, देवताओं और पितरोंको वह बहुत प्रिय है, शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति करानेवाली है। जो उस दिन पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करते और जलसे भरा हुआ घड़ा एवं पिण्ड देते हैं, उन्हें अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। अतः महामते! तुम शीघ्र जाओ और जब अमावास्या हो, तब कुम्भसहित श्राद्ध ए पिण्डदान करो। सबका उपकार करनेके लिये गृहस्थ-धर्मका आश्रय लो। धर्म, अर्थ और कामसे सन्तुष्ट हो, उत्तम सन्तान पाकर फिर मुनिवृत्तिसे रहते हुए सुखपूर्वक द्वीप-द्वीपान्तरोंमें विचरण करो।

पितरोंके इस प्रकार आदेश देनेपर धर्मवर्ण मुनि शीघ्रतापूर्वक भूलोकमें गये। वहाँ मेषराशिमें सूर्यके स्थित रहते हुए वैशाख मासमें प्रातःकाल स्नान करके देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण किया; फिर कुम्भदानसहित पापविनाशक श्राद्ध करके उसके द्वारा पितरोंको पुनरावृत्तिरहित मुक्ति प्रदान की। तत्पश्चात् उन्होंने स्वयं विवाह करके उत्तम सन्तानको जन्म दिया और लोकमें उस पापनाशिनी अमावास्या तिथिको प्रसिद्ध किया। तदनन्तर वे भक्तिपूर्वक भगवान्‌की आराधना करनेके लिये हर्षके साथ गन्धमादन पर्वतपर चले गये। इसलिये वैशाख मासकी यह अमावास्या तिथि परम पवित्र मानी गयी है।

वैशाखकी अक्षय तृतीया और द्वादशीकी महत्ता, द्वादशीके पुण्यदानसे एक कुतियाका उद्धार

श्रुतदेवजी कहते हैं—जो मनुष्य अक्षय तृतीयाको सूर्योदयकालमें प्रातःस्नान करते हैं और भगवान् विष्णुकी पूजा करके कथा सुनते हैं, वे मोक्षके भागी होते हैं। जो उस दिन श्रीमधुसूदनकी प्रसन्नताके लिये दान करते हैं, उनका वह पुण्यकर्म भगवान्‌की आज्ञासे अक्षय फल देता है। वैशाख मासकी पवित्र तिथियोंमें शुक्ल पक्षकी द्वादशी समस्त पापराशिका विनाश करनेवाली है। शुक्ला द्वादशीको योग्य पात्रके लिये जो अन्न दिया जाता है, उसके एक-एक दानेमें कोटि-कोटि ब्राह्मण-भोजनका पुण्य होता है। शुक्ल पक्षकी एकादशी तिथिमें जो भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये जागरण करता है, वह जीवन्मुक्त होता है। जो वैशाखकी द्वादशी तिथिको तुलसीके कोमलदलोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह समूचे कुलका उद्धार करके वैकुण्ठलोकका अधिपति होता है। जो मनुष्य त्रयोदशी तिथिको दूध, दही, शक्कर, घी और शुद्ध मधु—इन पाँच द्रव्योंसे भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये उनकी पूजा करता है तथा जो पञ्चामृतसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिको स्नान कराता है, वह सम्पूर्ण कुलका उद्धार करके भगवान् विष्णुके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो सायङ्कालमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये शर्बत देता है, वह अपने पुराने पापको शीघ्र ही त्याग देता है। वैशाख शुक्ला द्वादशीमें मनुष्य जो कुछ पुण्य करता है, वह अक्षय फल देनेवाला होता है।

प्राचीन कालमें काश्मीरदेशमें देवव्रत नामक एक ब्राह्मण थे। उनके सुन्दर रूपवाली एक कन्या थी, जो मालिनीके नामसे प्रसिद्ध थी। ब्राह्मणने उस कन्याका विवाह सत्यशील नामक बुद्धिमान् द्विजके साथ कर दिया। मालिनी कुमार्गपर चलनेवाली पुंश्चली होकर स्वच्छन्दतापूर्वक इधर-उधर रहने लगी। वह केवल आभूषण धारण करनेके लिये पतिका जीवन चाहती थी, उसकी हितैषिणी नहीं थी। उसके घरमें काम-काज करनेके बहाने उपपति रहा करता था। नीच जातिके मनुष्य जारके रूपमें उसके यहाँ ठहरते थे। वह कभी पतिकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर नहीं हुई। इसी

दोषसे उसके सब अङ्गोंमें कीड़े पड़ गये, जो काल, अन्तक और यमकी भाँति उसकी हड्डियोंको भी छेदे डालते थे। उन कीड़ोंसे उसकी नाक, जिह्वा और कानोंका उच्छेद हो गया, स्तन तथा अङ्गुलियाँ गल गयीं, उसमें पङ्गुता भी आ गयी। इन सब क्लेशोंसे मृत्युको प्राप्त होकर वह नरककी यातनाएँ भोगने लगी। एक लाख पचास हजार वर्षोंतक वह ताँबेके भाण्डमें रखकर जलायी गयी, सौ बार उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ा। तत्पश्चात् सौवीर देशमें पद्मबन्धु नामक ब्राह्मणके घरमें वह अनेक दुःखोंसे घिरी हुई कुतिया हुई। उस समय भी उसके कान, नाक, पूँछ और पैर कटे हुए थे, उसके सिरमें कीड़े पड़ गये थे और योनिमें भी कीड़े भरे रहते थे। राजन्! इस प्रकार तीस वर्ष बीत गये। एक दिन वैशाखके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको पद्मबन्धुका पुत्र नदीमें स्नान करके पवित्र हो भीगे वस्त्रसे घर आया। उसने तुलसीकी वेदीके पास जाकर अपने पैर धोये। दैववशसे वह कुतिया वेदीके नीचे सोयी हुई थी। सूर्योदयसे पहलेका समय था, ब्राह्मणकुमारके चरणोदकसे वह नहा गयी और तत्काल उसके सारे पाप नष्ट हो गये। फिर तो उसी क्षण उसे अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण हो आया। पहलेके कर्मोंकी याद आनेसे वह कुतिया तपस्वीके पास जाकर दीनतापूर्वक पुकारने लगी—'हे मुने! आप हमारी रक्षा करें।' उसने पद्मबन्धु मुनिके पुत्रसे अपने पूर्वजन्मके दुराचारपूर्ण वृत्तान्त सुनाये और यह भी कहा—'ब्रह्मन्! जो कोई भी दूसरी युवती पतिके ऊपर वशीकरणका प्रयोग करती है, वह दुराचारिणी मेरी ही तरह ताँबेके पात्रमें पकायी जाती है। पति स्वामी है, पति गुरु है और पति उत्तम देवता है। साध्वी स्त्री उस पतिका अपराध करके कैसे सुख पा सकती है!* पतिका अपराध करनेवाली स्त्री सैकड़ों बार तिर्यग्योनि (पशु-पक्षियोंकी योनि) में और अरबों बार कीड़ेकी योनिमें जन्म लेती है। इसलिये स्त्रियोंको सदैव अपने पतिकी आज्ञा पालन करनी चाहिये। ब्रह्मन्! आज मैं आपकी दृष्टिके सम्मुख आयी हूँ। यदि आप मेरा उद्धार नहीं करेंगे, तो मुझे पुनः इसी यातनापूर्ण घृणित योनिका दर्शन करना पड़ेगा। अतः द्विजवर! मुझ पापाचारिणीको वैशाख शुक्ल पक्षमें अपना पुण्य प्रदान करके उद्धार कीजिये। आपने जो पुण्यकी वृद्धि करनेवाली द्वादशी की है, उसमें स्नान, दान और अन्नभोजन करानेसे जो पुण्य हुआ है, उससे मुझ दुराचारिणीका भी उद्धार हो जायगा। महाभाग! दीनवत्सल! मुझ दुखियाके प्रति दया कीजिये। आपके स्वामी जगदीश्वर जनार्दन दीनोंके रक्षक हैं। उनके भक्त भी उन्हींके समान होते हैं। दीनवत्सल! मैं आपके दरवाजेपर रहनेवाली कुतिया हूँ। मुझ दीनाके प्रति दया कीजिये, मेरा उद्धार कीजिये। अन्तमें मैं आप द्विजेन्द्रको नमस्कार करती हूँ।'

उसका वचन सुनकर मुनिके पुत्रने कहा—कुतिया! सब प्राणी अपने किये हुए कर्मोंके ही सुख-दुःखरूप फल भोगते हैं। जैसे साँपको दिया हुआ शर्करामिश्रित दूध केवल विषकी वृद्धि करता है, उसी प्रकार पापीको दिया हुआ पुण्य उसके पापमें सहायक होता है।

मुनिकुमारके ऐसा कहनेपर कुतिया दुःखमें डूब गयी और उसके पिताके पास जाकर आर्तस्वरसे क्रन्दन करती हुई बोली—'पद्मबन्धु बाबा! मैं तुम्हारे दरवाजेकी कुतिया हूँ। मैंने सदा तुम्हारी जूठन खायी है। मेरी रक्षा करो, मुझे बचाओ। गृहस्थ महात्माके घरपर जो पालतू जीव रहते हैं, उनका उद्धार करना चाहिये, यह वेदवेत्ताओंका मत है। चाण्डाल, कौवे, कुत्ते—ये प्रतिदिन गृहस्थोंके दिये हुए टुकड़े खाते हैं; अतः उनकी दयाके पात्र हैं। जो अपने ही पाले हुए रोगादिसे ग्रस्त एवं असमर्थ प्राणीका उद्धार नहीं करता, वह नरकमें पड़ता है, यह विद्वानोंका मत है। संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् विष्णु एकको कर्ता बनाकर स्वयं ही पत्नी, पुत्र आदिके व्याजसे समस्त जन्तुओंका पालन करते हैं; अतः अपने पोष्यवर्गकी रक्षा करनी चाहिये, यह भगवान्की आज्ञा है। दयालु होनेके कारण आप मेरा उद्धार कीजिये।'

दुःखसे आतुर हुई कुतियाकी यह बात सुनकर घरमें बैठा हुआ मुनिपुत्र तुरंत घरसे बाहर निकला। इसी समय दयानिधान पद्मबन्धुने कुतियासे पूछा—'यह क्या वृत्तान्त है?' तब पुत्रने सब समाचार कह सुनाया। उसे सुनकर पद्मबन्धु बोले—'बेटा! तुमने कुतियासे ऐसा वचन क्यों कहा? साधुपुरुषोंके मुँहसे ऐसी बात नहीं निकलती। वत्स! देखो तो, सब लोग दूसरोंका उपकार

---

* भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता भर्ता दैवतमुत्तमम्।
विप्रियं कृत्य साध्वी सा कथं सुखमवाप्नुयात्॥
(स्क० पु० वै० वै० मा० २४। ६२)

करनेके लिये उद्यत रहते हैं। चन्द्रमा, सूर्य, वायु, रात्रि, अग्नि, जल, चन्दन, वृक्ष और साधुपुरुष सदा दूसरोंकी भलाईमें लगे रहते हैं। दैत्योंको महाबली जानकर महर्षि दधीचिने देवताओंका उपकार करनेके लिये दयापूर्वक उन्हें अपने शरीरकी हड्डी दे दी थी। महाभाग! पूर्वकालमें राजा शिविने कबूतरके प्राण बचानेके लिये भूखे बाजको अपने शरीरका मांस दे दिया था। पहले इस पृथ्वीपर जीमूतवाहन नामक राजा हो गये हैं। उन्होंने एक सर्पका प्राण बचानेके लिये महात्मा गरुड़को अपना जीवन समर्पित कर दिया था। इसलिये विद्वान् ब्राह्मणको दयालु होना चाहिये; क्या इन्द्रदेव शुद्ध स्थानमें ही वर्षा करते हैं, अशुद्ध स्थानमें जल नहीं बरसाते? क्या चन्द्रमा चाण्डालोंके घरमें प्रकाश नहीं करते? अतः बार-बार प्रार्थना करनेवाली इस कुतियाका मैं अपने पुण्योंसे उद्धार करूँगा।'

इस प्रकार पुत्रकी मान्यताका निराकरण करके परम बुद्धिमान् पद्मबन्धुने सङ्कल्प किया—'कुतिया! ले, मैंने द्वादशीका महापुण्य तुझे दे दिया।' ब्राह्मणके इतना कहते ही कुतियाने सहसा अपने प्राचीन शरीरका त्याग कर दिया और दिव्य देह धारणकर दिव्य वस्त्र-आभूषणोंसे विभूषित हो, दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई ब्राह्मणकी आज्ञा ले स्वर्गलोकको चली गयी। वहाँ महान् सुखोंका उपभोग करके इस पृथ्वीपर भगवान् नर-नारायणके अंशसे 'उर्वशी' नामसे प्रकट हुई।

वैशाख मासकी अन्तिम तीन तिथियोंकी महत्ता तथा ग्रन्थका उपसंहार

श्रुतदेवजी कहते हैं—राजेन्द्र! वैशाखके शुक्ल पक्षमें जो अन्तिम तीन त्रयोदशीसे लेकर पूर्णिमातककी तिथियाँ हैं, वे बड़ी पवित्र और शुभकारक हैं। उनका नाम 'पुष्करिणी' है, वे सब पापोंका क्षय करनेवाली हैं। जो सम्पूर्ण वैशाख मासमें स्नान करनेमें असमर्थ हो, वह यदि इन तीन तिथियोंमें भी स्नान करे, तो वैशाख मासका पूरा फल पा लेता है। पूर्वकालमें वैशाख मासकी एकादशी तिथिको शुभ अमृत प्रकट हुआ। द्वादशीको भगवान् विष्णुने उसकी रक्षा की। त्रयोदशीको उन श्रीहरिने देवताओंको सुधा-पान कराया। चतुर्दशीको देवविरोधी दैत्योंका संहार किया और पूर्णिमाके दिन समस्त देवताओंको उनका साम्राज्य प्राप्त हो गया। इसलिये देवताओंने सन्तुष्ट होकर इन तीन तिथियोंको वर दिया—'वैशाख मासकी ये तीन शुभ तिथियाँ मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाली तथा उन्हें पुत्र-पौत्रादि फल देनेवाली हों। जो मनुष्य इस सम्पूर्ण मासमें स्नान न कर सका हो, वह इन तिथियोंमें स्नान कर लेनेपर पूर्ण फलको ही पाता है। वैशाख मासमें लौकिक कामनाओंका नियमन करनेपर मनुष्य निश्चय ही भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। महीनेभर नियम निभानेमें असमर्थ मानव यदि उक्त तीन दिन भी कामनाओंका संयम कर सके तो उतनेसे ही पूर्ण फलको पाकर भगवान् विष्णुके धाममें आनन्दका अनुभव करता है।'

इस प्रकार वर देकर देवता अपने धामको चले गये। अतः पुष्करिणी नामसे प्रसिद्ध अन्तिम तीन तिथियाँ पुण्यदायिनी, समस्त पापराशिका नाश करनेवाली तथा पुत्र-पौत्रको बढ़ानेवाली हैं। जो वैशाख मासमें अन्तिम तीन दिन गीताका पाठ करता है, उसे प्रतिदिन अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। जो उक्त तीनों दिन विष्णुसहस्रनामका पाठ करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन करनेमें इस भूलोक तथा स्वर्गलोकमें कौन समर्थ है।

पूर्णिमाको सहस्रनामोंके द्वारा भगवान् मधुसूदनको दूधसे नहलाकर मनुष्य पापहीन वैकुण्ठधाममें जाता है। वैशाख मासमें प्रतिदिन भागवतके आधे या चौथाई श्लोकका पाठ करनेवाला मनुष्य ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। जो वैशाखके अन्तिम तीन दिनोंमें भागवतशास्त्रका श्रवण करता है, वह जलसे कमलके पत्तेकी भाँति कभी पापोंसे लिप्त नहीं होता। उक्त तीनों दिनोंके सेवनसे कितने ही मनुष्योंने देवत्व प्राप्त कर लिया, कितने ही सिद्ध हो गये और कितनोंने ब्रह्मत्व पा लिया। ब्रह्मज्ञानसे मुक्ति होती है। अथवा प्रयागमें मृत्यु होनेसे या वैशाख मासमें नियमपूर्वक प्रातःकाल जलमें स्नान करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये वैशाखके अन्तिम तीन दिनोंमें स्नान, दान और भगवत्पूजन आदि अवश्य करना चाहिये। वैशाख मासके उत्तम माहात्म्यका पूरा-पूरा वर्णन रोग-शोकसे रहित जगदीश्वर भगवान् नारायणके सिवा दूसरा कौन कर सकता है। तुम भी वैशाख मासमें दान आदि उत्तम कर्मका अनुष्ठान करो। इससे निश्चय ही तुम्हें भोग और मोक्षकी प्राप्ति होगी।

इस प्रकार मिथिलापति जनकको उपदेश देकर श्रुतदेवजीने उनकी अनुमति ले वहाँसे जानेका विचार किया। तब राजर्षि जनकने अपने अभ्युदयके लिये उत्तम उत्सव कराया और श्रुतदेवजीको पालकीपर बिठाकर विदा किया। वस्त्र, आभूषण, गौ, भूमि, तिल और सुवर्ण आदिसे उनकी पूजा और वन्दना करके राजाने उन परिक्रमा की। तत्पश्चात् उनसे विदा हो महातेजस्वी परम यशस्वी श्रुतदेवजी सन्तुष्ट हो प्रसन्नतापूर्वक वहाँ अपने स्थानको गये। राजाने वैशाखधर्मका पालन कर मोक्ष प्राप्त किया।

नारदजी कहते हैं—अम्बरीष! यह उत्तम उपाख्या मैंने तुम्हें सुनाया है, जो कि सब पापोंका नाशक त सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको देनेवाला है। इससे मनुष्य भुक्ति मुक्ति, ज्ञान एवं मोक्ष पाता है।

नारदजीका यह वचन सुनकर महायशस्वी राजा अम्बरी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बाह्य जगत व्यापारोंसे निवृत्त होकर मुनिको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और अपने सम्पूर्ण वैभवोंसे उनकी पूजा की। तत्पश्चात् उ विदा लेकर देवर्षि नारदजी दूसरे लोकमें चले गये; क्यों दक्ष प्रजापतिके शापसे वे एक स्थानपर नहीं ठहर सकते राजर्षि अम्बरीष भी नारदजीके बताये हुए सब धर्म अनुष्ठान करके निर्गुण परब्रह्म परमात्मामें विलीन हो गये जो इस पापनाशक एवं पुण्यवर्द्धक उपाख्यानको सु अथवा पढ़ता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जि घरमें यह लिखी हुई पुस्तक रहती है, उनके हाथमें मु आ जाती है। फिर जो सदा इसके श्रवणमें मन लगाते उनके लिये तो कहना ही क्या है।

वैशाख मास-माहात्म्य सम्पूर्ण।

श्रीअयोध्या-माहात्म्य

अयोध्यापुरीकी महिमा और सीमाका वर्णन, चक्रतीर्थ एवं श्रीविष्णुहरिका माहात्म्य

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

महाक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें जब महात्मा राजा श्रीरामचन्द्रजीका बारह वर्षोंमें पूरा होनेवाला यज्ञ चल रहा था, उस समय स यज्ञमें निमन्त्रित होकर शुद्ध अन्तःकरणवाले सभी नि पधारे थे, जो वेदों और वेदाङ्गोंके पारगामी विद्वान् । वे वहाँ स्नान करके न्यायपूर्वक जप आदि कर्म करके द-वेदाङ्गोंके पारङ्गत पण्डित भरद्वाज मुनिको आगे करके मशः विचित्र-विचित्र आसनोंपर बैठे। उस समय व्यास-ष्य रोमहर्षण सूतजीसे भरद्वाज आदि मुनिवरोंने पूछा—हाभाग! इस समय हम महापुरी अयोध्याका गुणोंसे उज्ज्वल वं रहस्ययुक्त सनातन माहात्म्य सुनना चाहते हैं। विष्णु-या अयोध्या कैसी है? उसमें कैसे स्थान हैं, कौन-कौनसे र्थ हैं और उसके सेवनसे कैसा फल प्राप्त होता है?'

सूतजी बोले—तपोधनो! मैं भगवान् व्यासको प्रणाम रके आपके आगे महापुरी अयोध्याके रहस्ययुक्त माहात्म्य- यथावत् वर्णन करता हूँ। अलसीके फूलकी भाँति जिनकी ाम कान्ति है तथा जिन्होंने रावणका विनाश किया है, कमलके समान नेत्रोंवाले अविनाशी परमात्मा श्रीरामचन्द्र-को मैं नमस्कार करता हूँ।* अयोध्यापुरी परम पवित्र है, ी मनुष्योंको इसकी प्राप्ति होनी बहुत कठिन है। जिसमें क्षात् भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं, वह अयोध्यापुरी ा किसके सेवनके योग्य नहीं है? अयोध्या सरयूके तटपर ी है। वह दिव्य पुरी परम शोभासे युक्त है। प्रायः बहुतसे तपस्वी ात्मा उसके भीतर निवास करते हैं। जिस पुरीमें सूर्यवंशी वाकु आदि सब राजा प्रजापालनमें तत्पर रहे हैं। जिसके नारे मानसरोवरसे निकली हुई पुण्यसलिला सरयू नाम-की नदी सदा सुशोभित होती है और उसके तटपर भ्रमरों-गुंजन एवं पक्षियोंके कलरव होते रहते हैं। मुनिवरो! वान् विष्णुके दहिने चरणके अँगूठेसे गङ्गाजी और बायें चरणके अँगूठेसे शुभकारिणी सरयूजी निकली हैं। इसलिये वे दोनों नदियाँ परम पवित्र तथा सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हैं। इनमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य ब्रह्महत्याका नाश कर डालता है। अकार कहते हैं ब्रह्माको, यकार विष्णुका नाम है और धकार रुद्रस्वरूप है, इन सबके योगसे 'अयोध्या' नाम शोभित होता है। समस्त उपपातकोंके साथ ब्रह्महत्या आदि महापातक इस पुरीसे युद्ध नहीं कर सकते, इसलिये इसे 'अयोध्या' कहते हैं। यह भगवान् विष्णुकी आदिपुरी है और विष्णुके सुदर्शनचक्रपर स्थित है। अतएव पृथ्वीपर अतिशय पुण्य-दायिनी है। इस पुरीकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु आदरपूर्वक निवास करते हैं। सहस्रधारातीर्थसे पूर्व दिशामें एक योजनतक और सम नामक स्थानसे पश्चिम दिशामें एक योजनतक, सरयूतटसे दक्षिण दिशामें एक योजनतक और तमसासे उत्तर दिशामें एक योजनतक इस अयोध्याक्षेत्रकी स्थिति है। यही भगवान् विष्णुका अन्तर्गृह है। यह विष्णुपुरी मछलीके आकारवाली बतलायी गयी है। पश्चिम दिशामें गो-प्रतारतीर्थसे लेकर असीतीर्थपर्यन्त इसका मस्तक है, पूर्व दिशामें इसका पुच्छ भाग है और दक्षिण एवं उत्तर दिशामें इसका मध्यम भाग है।

प्राचीन कालमें विष्णुशर्मा नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। वे वेद-वेदाङ्गके तत्त्वज्ञ और धर्म-कर्ममें तत्पर रहनेवाले थे। विष्णुशर्मा निरन्तर भगवान् विष्णुके भजनमें संलग्न रहते थे। एक दिनकी बात है, वे तीर्थयात्राके प्रसङ्ग-से अयोध्यापुरीमें आये। वहाँ उन्होंने शाक, मूल और फल खाकर तपस्या प्रारम्भ की। सबेरे स्नान करके विधिपूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करते और इन्द्रियसमुदायको वशमें करके विशुद्ध चित्तसे भगवान् विष्णुमें मन लगाकर प्राणायाम करते हुए ओंकारका जप करते तथा हृदयमें विकसित कमल-का चिन्तन करके उसके ऊपर पीताम्बरधारी शङ्ख-चक्र-गदाधर भगवान् विष्णुका ध्यान एवं पुष्प आदिसे मानसिक पूजन करते थे। ब्रह्मरूप श्रीहरिका ध्यान और द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते हुए वे वायु पीकर रहने लगे। इस प्रकार उस ब्राह्मणके तीन वर्ष बीत गये। तदनन्तर विप्रवर विष्णु-

* नमामि परमात्मानं रामं राजीवलोचनम्।
अतसीकुसुमश्यामं रावणान्तकमव्ययम्॥
(स्क० पु० वै० अ० मा० १। २९)

शर्माने ध्यानपूर्वक भगवान् विष्णुका इस प्रकार स्तवन किया।

विष्णुशर्मा बोले—भगवन्! विष्णो! आप प्रसन्न होइये। पुरुषोत्तम! प्रसन्न होइये। देवदेवेश्वर! प्रसन्न होइये। कमलनयन! प्रसन्न होइये। कृष्ण! आपकी जय हो। अचिन्त्य परमेश्वर! आपकी जय हो। विष्णो! आपकी जय हो। अव्यय! आपकी जय हो। नाथ! यज्ञपते! आपकी जय हो। विष्णो! आप सबके पालक और सर्वत्र व्यापक हैं, आपकी जय हो। पापहारी अनन्त! आपकी जय हो। जन्मरूपी ज्वरका निवारण करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है तथा जो कमलकी माला धारण करते हैं, ऐसे आप श्रीहरिको नमस्कार है, नमस्कार है। सर्वेश! आपको नमस्कार है। कैटभका संहार करनेवाले भूतेश्वर! आपको नमस्कार है। जगत्के मूल कारण जगदीश्वर! आप तीनों लोकोंके रक्षक हैं, आपको नमस्कार है। आप देवताओंके भी अधिदेवता हैं, आपको नमस्कार है। आप जलमें शयन करनेवाले नारायण हैं, आपको नमस्कार है। सबको अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले सच्चिदानन्दमय श्रीकृष्णको नमस्कार है। जहाँ योगीजनोंका मन रमण करता है, उन श्रीरामको नमस्कार है। चक्र-सुदर्शनधारी श्रीहरिको नमस्कार है। आप सब लोगोंकी माता हैं, आप ही जगत्के पिता हैं, भयसे व्याकुल प्राणियोंके लिये आप ही सुहृद् और मित्र हैं, आप ही पिता और पितामह हैं, हविष्य, वषट्कार, प्रभु और अग्नि सब कुछ आप ही हैं, आप ही करण, कारण, कर्ता और परमेश्वर हैं। हाथमें शङ्ख-चक्र-गदा धारण करनेवाले माधव! मेरा उद्धार कीजिये। मन्दराचलधारी कच्छप! आप प्रसन्न होइये। मधुसूदन! प्रसन्न होइये। कमलाकान्त! प्रसन्न होइये। भुवनेश्वर! प्रसन्न होइये।

इस प्रकार स्तुति करते हुए महात्मा विष्णुशर्माकी भक्तिसे प्रसन्न हो विश्वात्मा भगवान् विष्णु गरुड़की पीठपर बैठे हुए वहाँ प्रकट हुए। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा शोभा पा रहे थे। वे पीताम्बरधारी अविनाशी श्रीहरि प्रसन्न चित्त हो विष्णुशर्मासे इस प्रकार बोले—'वत्स! मैं तुम्हारी बड़ी भारी तपस्यासे इस समय सन्तुष्ट हूँ। इस स्तोत्रसे तुम्हारा पाप नष्ट हो गया है। विप्रवर! कोई वर माँगो।' विष्णुशर्मा बोले—'देवेश! इस समय आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया हूँ। जगदीश्वर! मुझे एकमात्र अपनी अविचल भक्ति प्रदान कीजिये।'

श्रीभगवान्ने कहा—तुम्हें मोक्ष देनेवाली मेरी अविचल वैष्णवी भक्ति प्राप्त हो और यहींपर मुक्तिदायिनी गङ्गा भी प्रकट होकर अविचलरूपसे रहें।

यों कहकर देवदेवेश्वर श्रीविष्णुने चक्रसे उस स्थलको खोदकर पातालमण्डलसे गङ्गाजीका जल प्रकट किया। तबसे वह स्थान चक्रतीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वह त्रिभुवन-प्रसिद्ध तीर्थ समस्त पापराशिका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य विष्णुलोकमें जाता है। तदनन्तर भगवान् विष्णुने विष्णुशर्मासे पुनः कहा—'विप्रवर! यहाँ भक्तोंको मुक्ति देनेवाली मेरी मूर्ति विष्णुहरिके नामसे प्रसिद्ध होकर रहे।' भगवान्की यह बात सुनकर बुद्धिमान् ब्राह्मणने भगवान् विष्णुकी उस मूर्तिको स्थापित किया। तबसे शङ्ख, चक्र, गदा और पीताम्बर धारण करनेवाले चतुर्भुज भगवान् विष्णु वहाँ विष्णुहरिके नामसे स्थित हुए। कार्तिक शुक्ल पक्षकी दशमीसे लेकर पूर्णिमातक वहाँकी वार्षिक यात्रा होती है। चक्रतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डदान करेगा, उसके पितर तृप्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें जायँगे। समस्त सद्गुणोंके सागर ध्येयमूर्ति सच्चिदानन्दमय श्रीहरि इस प्रकार लोगोंको मुक्ति प्रदान करनेके लिये उत्तम स्वरूप धारण करके वहाँ स्थित हुए। जो वहाँ चक्रतीर्थमें स्नान करके अधिक भक्तिभावसे भगवान् विष्णुहरिकी पूजा करता है, वह पुण्यात्मा मनुष्य वैकुण्ठधाममें निवास करता है।

ब्रह्मकुण्ड, ऋणमोचन तथा पापमोचन आदि तीर्थोंकी महिमा

सूतजी कहते हैं—प्राचीन कालमें जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुको अयोध्यापुरीमें निवास करते देख स्वयं भी यहाँ रहनेका निश्चय किया। उन्होंने यहाँकी यात्रा की और अपने नामसे एक विशाल कुण्ड बनाया, जो अनेक देवताओंसे संयुक्त तथा अगाध जलराशिकी लोल लहरोंसे सुशोभित था। कुमुद, उत्पल, कह्लार और पुण्डरीकसे आच्छादित हुआ वह कुण्ड सब पापोंका नाश करनेवाला है। उस समय ब्रह्माजीने कुण्डके विषयमें इस प्रकार कहा—'इसमें विधिपूर्वक

स्नान करनेसे पापी जीव भी विमानपर बैठकर सुन्दर, दिव्य वस्त्रसे सुशोभित हो प्रलयकालपर्यन्त ब्रह्मलोकमें निवास करेंगे। यहाँ यथाशक्ति दान और होम करनेसे मनुष्य तुलादान और अश्वमेध यज्ञका पुण्य प्राप्त कर लेंगे। इस तीर्थमें विधिपूर्वक किया हुआ स्नान, दान और जप आदि कर्म सम्पूर्ण यज्ञोंके समान महापातकोंका नाश करनेवाला होगा। यह कुण्ड ब्रह्मकुण्डके नामसे प्रसिद्ध होगा और इसके समीप मैं सदा निवास करूँगा।'

यों कहकर देवदेव, लोकपितामह ब्रह्माजी उस तीर्थको देखकर देवताओंके साथ अन्तर्धान हो गये। तभीसे वह कुण्ड इस पृथ्वीपर विशेष विख्यात है। वह महाकुण्ड चक्र-तीर्थसे पूर्व दिशामें स्थित है। ब्रह्मकुण्डसे पूर्व-उत्तर दिशामें सात सौ धनुषकी दूरीपर सरयूजीके जलमें ऋणमोचन नामक तीर्थ विद्यमान है। वहाँ पूर्वकालमें तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे आये हुए मुनिवर लोमशने विधिपूर्वक स्नान किया था। इससे वे ऋणमुक्त एवं पापशून्य हो गये। तब उन्होंने अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर हर्षसे आँसू बहाते हुए कहा—'यह ऋणमोचन नामक तीर्थ बहुत उत्तम है। मनुष्यपर इहलोक और परलोकके जो तीन प्रकारके ऋण हैं, वे सब इस तीर्थमें स्नान करनेमात्रसे क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं। इसलिये यहाँ फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको श्रद्धापूर्वक विधिके साथ यथाशक्ति स्नान और दान करना चाहिये।' इस प्रकार तीर्थका माहात्म्य बतलाकर मुनिश्रेष्ठ लोमश उसके गुणकी प्रशंसा करते हुए अन्तर्धान हो गये। ऋणमोचन तीर्थसे पूर्व दिशामें बीस धनुषकी दूरीपर पापमोचन तीर्थ है। यह भी सरयूके जलमें ही है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य उसी क्षण सब पापों-से मुक्त हो शुद्धचित्त हो जाता है। पाञ्चालदेशमें नरहरि नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण था, जो दुष्टोंके सङ्गके प्रभावसे पापात्मा हो गया था। उसने ब्रह्महत्या आदि अनेक प्रकारके पाप किये थे। पापियोंके संसर्गमें आकर वह तीनों वेदोंके मार्गकी निन्दा करता था। वह किसी समय साधुओंके साथ तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे अयोध्याजीमें आया। उस महापातकी ब्राह्मणने साधुसङ्गसे पापमोचन तीर्थमें स्नान किया। फिर तो उसी क्षण उसकी सारी पापराशि नष्ट हो गयी और वह निष्पाप हो दिव्य विमानपर बैठकर विष्णुधाममें चला गया। मनुष्योंको सब पापकी शुद्धिके लिये वहाँ माघकृष्ण चतुर्दशी-को विशेषरूपसे स्नान और दान करना चाहिये। अन्य समयमें भी स्नान करनेपर सब पापोंका क्षय हो जाता है।

पापमोचन तीर्थसे पूर्व दिशामें सौ धनुषकी दूरीपर सहस्रधारा नामक उत्तम तीर्थ है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। उसीमें शत्रु-वीरोंका नाश करनेवाले वीरवर लक्ष्मण श्रीरामचन्द्र-की आज्ञासे योगशक्तिद्वारा प्राण त्यागकर अपने शेष नामक स्वरूपको प्राप्त हुए थे। एक धनुषका प्रमाण साढ़े तीन हाथ माना गया है और चार हाथका एक दण्ड बताया गया है। पहलेकी बात है, रघुकुलनायक श्रीरामचन्द्रजी देवताओं-का कार्य पूरा करके कालके साथ बैठकर एकान्तमें मन्त्रणा कर रहे थे। उस समय उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि परस्पर मन्त्रणा करते समय हम दोनोंको जो कोई समीप आकर देखेगा, वह शीघ्र ही मेरेद्वारा त्याग दिया जायगा। ऐसा निश्चय करके जब वे मन्त्रणा करने लगे तब लक्ष्मणजी राजद्वारपर खड़े हो पहरा देने लगे। उसी समय तेजोनिधि, तपोराशि दुर्वासाजी आ पहुँचे और भूखसे व्याकुल हो लक्ष्मणजीसे प्रेमपूर्वक बोले—'सुमित्रानन्दन! तुम शीघ्र जाओ तथा श्रीरामचन्द्रजीके आगे मेरे आगमनकी सूचना दो। मैं कार्यवश उनसे मिलने आया हूँ। तुम्हें मेरी यह बात टालनी नहीं चाहिये।'

तब लक्ष्मणजी शापसे डरकर शीघ्र ही भीतर गये और श्रीरामचन्द्रजी तथा कालदेव दोनोंके सामने खड़े हो यह निवेदन किया कि 'तपोराशि अत्रिनन्दन दुर्वासा श्रीरघुनाथजी-का दर्शन करनेके लिये आये हैं।' श्रीरामचन्द्रजीने कालसे सलाह करके उन्हें विदा किया तथा स्वयं बाहर निकले। बाहर आनेपर उन्होंने मुनिको देखा और प्रणाम करके उन्हें आदरपूर्वक भोजन कराया। उसके बाद उन्हें सम्मानपूर्वक विदा किया तथा सत्य-भङ्ग होनेके भयसे श्रीरघुवीरने लक्ष्मणको त्याग दिया। लक्ष्मणजी भी अपने बड़े भाईकी आज्ञाको सफल बनानेके लिये सरयूके तटपर आये और स्नान करके ध्यानका आश्रय ले सच्चिदानन्दमय परमेश्वरमें अपने शान्त मनको शीघ्र ही लगाकर अविचलभावसे बैठ गये। तदनन्तर सहस्रफणोंसे सुशोभित शेषनाग पृथ्वीको सहस्र छिद्रोंमें भेदन
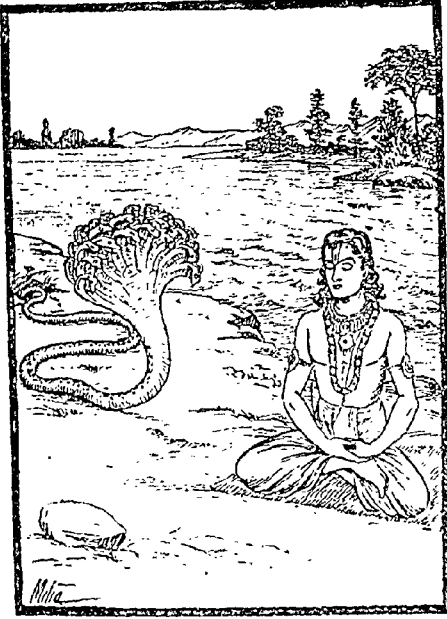
...के यहाँ प्रकट हुए। इसी समय देवराज इन्द्र भी देवताओं... साथ लेकर स्वर्गलोकसे वहाँ आये। शेषनागके फणोंकी ...ल मणियोंसे वहाँकी पृथ्वी दग्ध हो गयी थी; इसलिये सरयूतटवर्ती यह शुभकारक महातीर्थ सहस्रधाराके नामसे विख्यात हुआ। इस क्षेत्रका प्रमाण पच्चीस धनुष है; इस तीर्थमें मनुष्य श्रद्धापूर्वक स्नान, दान और श्राद्ध करनेसे सब पापोंसे शुद्ध हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। इसमें स्नान करके अविनाशी भगवान् शेषकी विधिपूर्वक पूजा करनेवाला मनुष्य वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। अतः इस तीर्थमें विधिवत् स्नान करना चाहिये। श्रावणके शुक्ल पक्षमें जो पञ्चमी तिथि होती है, उसमें यहाँ नागोंके उद्देश्यसे यत्नपूर्वक उत्सव करना चाहिये। उस उत्सवमें पहले शेषनागका पूजन करना उचित है। नागपूजापूर्वक ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक सन्तुष्ट किया जाय, तो सभी सर्प प्रसन्न होते हैं और प्रसन्न होनेपर वे मनुष्योंको कभी पीड़ा नहीं देते हैं। जो वैशाख मासमें एकाग्रचित्त होकर यहाँ स्नान करते हैं, उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। इसलिये मनुष्योंको इस तीर्थमें यत्नपूर्वक वैशाख मासका स्नान, दान, श्रीहरिका पूजन और ब्राह्मणोंका सत्कार करना चाहिये। जो बुद्धिमान् मनुष्य इस तीर्थमें अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक स्नान-दान आदि करता है, वह शुद्धचित्त होकर इस लोकमें प्रचुर सुखोंका उपभोग करता है और भक्तिभावके प्रभावसे अन्तमें शेषशायी भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

स्वर्गद्वार तथा चन्द्रहरितीर्थकी महिमा, चन्द्रसहस्रव्रतकी उद्यापनविधि

सूतजी कहते हैं—स्वर्गद्वार नामसे प्रसिद्ध तीर्थ सब पापोंको दूर करनेवाला है। स्वर्गद्वारके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है, इसलिये संक्षेपसे सुनो। सरयूके जलमें सहस्रधारा तीर्थसे लेकर पूर्व दिशामें छः सौ छत्तीस धनुषतक पुराणके ज्ञाताओंने स्वर्गद्वारका विस्तार बतलाया है। सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल अपनेको प्राप्त हो, ऐसी इच्छा रखनेवाले पुरुषको यहाँ विशेषरूपसे प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। स्वर्गद्वारमें जो जप, तप, हवन, दर्शन और ध्यान, अध्ययन एवं दान आदि किया जाता है, वह सब अक्षय होता है। सहस्रों जन्मान्तरोंमें पहले जो पाप सञ्चित किया गया है, वह स्वर्गद्वारमें प्रवेश करनेमात्रसे तत्काल नष्ट हो जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसङ्कर, म्लेच्छ, संकीर्ण पापयोनि, कीड़े, मकोड़े, मृग, पक्षी जो भी स्वर्गद्वारमें कालसे मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे सब हाथमें कौमोदकी गदा ले गरुडध्वज रथपर आरूढ़ हो सुन्दर कल्याणमय वैकुण्ठधाममें जाते हैं। जो लोग आदरपूर्वक यहाँ मन्वादिमें स्नान करते हैं तथा जो जितेन्द्रिय पुरुष स्वर्गद्वारमें निराहार व्रत करते हैं अथवा जो एक मासतक उपवास करनेवाले हैं, वे सभी उत्तम स्थानको प्राप्त होते हैं। जो स्वर्गद्वारमें ब्राह्मणोंको अन्नदान, रत्नदान, भूमिदान, गोदान तथा वस्त्रदान करते हैं, वे सब श्रीहरिके धामको जाते हैं। देवाधिदेव भगवान् विष्णु अपने स्वरूपको चार शरीरोंमें व्यक्त करके रघुवंशशिरोमणि श्रीराम होकर अपने तीनों भाइयोंके साथ यहाँ नित्य विहार करते हैं। इसी स्वर्गद्वारमें कैलासनिवासी शिव भी वास करते हैं। मेरु तथा मन्दराचलके समान पापकी बड़ी भारी राशि भी स्वर्गद्वारमें पहुँचते ही नष्ट हो जाती है। ऋषि, देवता, असुर, जप-होमपरायण मनुष्य, संन्यासी और मुमुक्षु पुरुष स्वर्गद्वारका सेवन करते हैं। काशीमें योगयुक्त होकर शरीर त्याग करनेवाले पुरुषोंको जो गति प्राप्त होती है, वही एकादशीको सरयूमें स्नान करनेमात्रसे मिल जाती है। वे भगवान् विष्णुकी भक्तिको पाकर निश्चय ही परमानन्दको प्राप्त होते हैं।

एक समय दीप्तिदेव चन्द्रमा अयोध्यावासी भगवान्

विष्णुको नमस्कार करके उत्कण्ठापूर्वक यहाँके तीर्थकी महिमाका साक्षात्कार करनेके लिये आये। यहाँ आकर उन्होंने क्रमशः प्रत्येक तीर्थमें विधिपूर्वक यात्रा की। इससे उन्हें अनेक प्रकारके आश्चर्यका अनुभव हुआ। तत्पश्चात् दुष्कर तपस्याद्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना करके उनकी प्रसन्नता प्राप्त की और वहाँ अपने नामके साथ भगवान्‌का नाम रखकर उनके अर्चाविग्रहको स्थापित किया। इससे वे भगवान् वहाँ चन्द्रहरिके नामसे विख्यात हुए। श्रीवासुदेवके प्रसादसे वह स्थान अद्भुत हो गया। वह श्रीविष्णुका अत्यन्त गूढ़ स्थान है। समस्त प्राणियोंके मोक्षके स्वामी श्रीरघुनाथजीके इस दिव्य स्थानमें सिद्धपुरुष सदा श्रीविष्णुका व्रत धारण किये निवास करते हैं। नाना प्रकारके वेषवाले जितेन्द्रिय मुक्तात्मा पुरुष यहाँ विष्णुलोककी आकाङ्क्षा रखकर नित्य उत्तम योगका अभ्यास करते हैं। यहाँ मनुष्य जिस प्रकार धर्मका फल पाता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं पाता। इसमें किया हुआ दान, व्रत और होम सब अक्षय होता है। मनुष्योंको यहाँ भगवान् चन्द्रहरिके आगे ब्राह्मणकी प्रधानतामें चन्द्रसहस्रव्रतकी उद्यापनविधि करनी चाहिये। दो वर्ष, आठ महीने और सत्रह दिन बीतनेपर दिनके आठवें भागमें एक अधिमास आकर प्राप्त होता है*। तिरासी वर्ष चार महीनेमें एक सहस्रसे अधिक चन्द्रमा (पूर्णमासी तिथियें) होते हैं। उतने समयतक जो मनुष्य जीवित रहता है, उसको यात्राके प्रसङ्गसे यहाँ आकर उद्यापन करना चाहिये। चतुर्दशीमें दन्तधावनपूर्वक स्नान करके पवित्र हो, ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए मन, वाणी और शरीरको काबूमें रक्खे और पूर्णिमा तिथिको भी उसी प्रकार रहते हुए चन्द्रमाकी पूजा करे। पहले गौरी आदि षोडश मातृकाओंकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद भक्तिपूर्वक नान्दीमुख श्राद्ध करके ऋत्विजोंका पूजन करे। मनको पवित्र रखते हुए चन्द्रमण्डलके आकारकी प्रतिमा बनवावे। तदनन्तर शास्त्रोक्त विधानसे चन्द्रमाकी पूजा करे। चन्द्रमाके मन्त्रसे होम करे। प्रतिमा स्थापन करते समय भी सोममन्त्रका उच्चारण करे, सोमकी उत्पत्ति और सोमसूक्तका पाठ करे। मण्डलमें चन्द्रन्यास, कलान्यास और विधिपूर्वक एकादश इन्द्रियोंका न्यास करे। उत्तम अक्षतोंसे चन्द्रबिम्बके समान मण्डल बनावे। उसके बीचमें गायके दूधसे भरे हुए कलशकी स्थापना करे। फिर उस मण्डलमें भिन्न-भिन्न नामोंद्वारा क्रमशः चन्द्रमाकी पूजा करे—हिमांशवे नमः, सोमचन्द्राय नमः, चन्द्राय नमः, विधवे नमः, कुमुदबन्धवे नमः, सुधांशवे नमः, सोमाय नमः, ओषधीशाय नमः, अब्जाय नमः, मृगाङ्काय नमः, कलानिधये नमः, नक्षत्रनाथाय नमः, शर्वरीपतये नमः, जैवातृकाय नमः, द्विजराजाय नमः, चन्द्रमसे नमः—इन सोलह नामोंसे क्रमशः चन्द्रमाका स्तवन करे। तदनन्तर पवित्र चित्त हो शङ्खमें जल, फल, फूल और चन्दन लेकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे विधिपूर्वक अर्घ्य दे—

अर्घ्य-मन्त्र

नमस्ते मासमासान्ते जायमान पुनः पुनः।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्क त्वं रोहिण्या सहितो मम ॥

'प्रत्येक मासके अन्तमें पूर्णरूपेण प्रकट होनेवाले चन्द्रदेव! आपको नमस्कार है, आप रोहिणी देवीके साथ पधारकर मेरा यह अर्घ्य स्वीकार करें।'

इस प्रकार विधिपूर्वक अर्घ्य देकर चन्द्रमाको प्रणाम करे। दूधसे भरे हुए अन्य सोलह कलशोंको वस्त्रसे आच्छादित करके शान्तिके लिये ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। तत्पश्चात् दूधमिश्रित जलसे अभिषेक करे; फिर वैभवके अनुसार दक्षिणा देकर ऋत्विजोंको सन्तुष्ट करे। उसके बाद ब्राह्मणको उसके कुटुम्बसहित भोजन करावे। द्विजदम्पतिकी वस्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक पूजा करे। तदनन्तर पर्याप्त दक्षिणा-दान करना चाहिये; फिर उपवासकी विधिसे बुद्धिमान् पुरुष शेष दिन व्यतीत करे। दूसरे दिन पुनः भगवान् विष्णुकी पूजा करके भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे और नियमका विसर्जन करे। जो इस प्रकार उत्तम चन्द्रसहस्रव्रतका पालन करता है, वह महापातकी हो, तो भी शुद्धचित्त होकर चन्द्रलोकमें जाता है।

---

* गते वर्षद्वये सार्धे पञ्चपक्षे दिनद्वये। दिवसस्याष्टमे भागे पतत्येकोऽधिमासकः ॥
(स्क० पु० वै० अ० मा० ३। ५६)

धर्महरिकी स्थापना और स्वर्णखनि तीर्थ, रघुका सर्वस्वदान तथा कौत्सकी याचनाको सफल करना

चन्द्रहरिके स्थानसे अग्निकोणमें भगवान् धर्महरिके नामसे विराजमान हैं, जो कलिके समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। प्राचीनकालमें वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्वज्ञ तथा अपने वर्णाश्रमोचित कर्ममें तत्पर धर्म नामक ब्राह्मण तीर्थयात्रा करनेकी इच्छासे अयोध्यापुरीमें आये और बड़ी श्रद्धाके साथ यहाँके प्रत्येक तीर्थमें घूमते रहे। अयोध्याका अनुपम माहात्म्य देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने बड़े हर्षके साथ यह उद्गार प्रकट किया, 'अहो! अयोध्याके समान दूसरी कोई पुरी नहीं दिखायी देती। जहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु निवास करते हैं, उसकी किससे उपमा हो सकती है। अहो! यहाँके सब तीर्थ भगवान् विष्णुका लोक प्रदान करनेवाले हैं।' ऐसा कहकर ब्राह्मणने आनन्दमग्न होकर बहुत नृत्य किया। अयोध्याका विशेष माहात्म्य देखकर जब धर्म नृत्य कर रहे थे, उस समय पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु उनपर कृपा करके प्रकट हुए। धर्मने भगवान्को प्रणाम करके आदरपूर्वक उनका स्तवन किया।

धर्म बोले—क्षीरसागरमें निवास करनेवाले आपको नमस्कार है। शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार है। भगवान् शङ्कर जिनके दिव्य चरणारविन्दोंका स्पर्श करते हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जिनके उत्तम चरण भक्तिभावसे पूजित हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। ब्रह्मा आदिके प्रियतम आप श्रीनारायणको नमस्कार है। शुभ अङ्ग तथा सुन्दर नेत्रोंवाले भगवान् लक्ष्मीपतिको बार-बार नमस्कार है। जिनके चरण कमलके समान सुन्दर हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन मधुसूदनको नमस्कार है। क्षीरसागरकी उत्ताल तरङ्गें जिनके श्रीअङ्गोंका स्पर्श करती रहती हैं, उन शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। योगनिद्राका आश्रय लेनेवाले भगवान्को नमस्कार है। गरुड़की पीठपर बैठनेवाले भगवान् गोविन्ददेवको बार-बार नमस्कार है। जिनके केश, नासिका और ललाट सब सुन्दर हैं, उन भगवान् चक्रपाणिको नमस्कार है। सुन्दर वस्त्र तथा मनोहर श्यामवर्णवाले भगवान् श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है। सुन्दर भुजाओंवाले आप श्रीहरिको नमस्कार है। मनोहर अंगा-वाले आपको नमस्कार है। सुन्दर नख, सुन्दर दिव्य वेष और सुन्दर शिखावाले आप भगवान् गदाधरको नमस्कार है। शान्तस्वरूप, वामनरूपधारी केशवको बार-बार नमस्कार है। जिन्हें धर्म प्रिय है, उन पीताम्बरधारी आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है।

धर्मके द्वारा स्तुति की जानेपर सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् लक्ष्मीपतिने प्रसन्न होकर कहा—'धर्म! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे बहुत प्रसन्न हूँ। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मज्ञ धर्म! जो तुम्हारे मनको प्रिय हो, ऐसा कोई वर माँगो। जो मनुष्य इस स्तोत्रद्वारा मेरी स्तुति करेगा, वह सब कामनाओंको प्राप्त कर लेगा।'

धर्म बोले—भगवन्! देवदेव जगत्पते! जगद्गुरो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मैं यहाँ आपकी स्थापना करूँगा।

'एवमस्तु' कहकर सर्वव्यापक भगवान् विष्णु धर्महरिके नामसे प्रसिद्ध हुए। भगवान् धर्महरिका स्मरण करनेमात्रसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। कितनी ही चिन्तासे व्याकुल क्यों न हो, यदि सरयूजीके जलमें स्नान करके मनुष्य भगवान् धर्महरिका दर्शन करता है, तो वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है; जहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु आदरपूर्वक निवास करते हैं; अतः मनुष्य इसकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकता। आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी एकादशी तिथिमें वहाँकी वार्षिक यात्रा विधिपूर्वक सम्पन्न करनी चाहिये। स्वर्गद्वारमें स्नान करके भगवान् धर्महरिका दर्शन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे शुद्ध हो भगवान् विष्णुके धाममें निवास करता है।

धर्महरिसे दक्षिण दिशामें सोनेकी उत्तम खान है, जहाँ कुबेरने राजा रघुके भयसे सोनेकी वर्षा की थी। पूर्वकालमें इक्ष्वाकुवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाले राजा रघु अपनी उदार भुजाओंके बलसे सम्पूर्ण भूमण्डलका शासन करते थे। उनके प्रतापसे संतप्त हुए शत्रुवर्गके लोग उनके उत्तम यशका वर्णन करते थे। प्रजाओंका न्यायपूर्वक पालन करनेवाले उस नीतिमान् राजाने अपने यशके प्रवाहसे दसों दिशाओंको उज्ज्वल प्रभासे आलोकित कर रक्खा था। उन्होंने दिग्विजययात्राके क्रमसे बहुत अधिक धनका संग्रह किया था। घर लौटकर उन्होंने यज्ञके लिये उत्सुक हो अपनी वंश-परम्पराके योग्य कर्म किया और निर्मल बुद्धिका परिचय दिया। वसिष्ठ मुनिसे आज्ञा लेकर राजा रघुने वामदेव, कश्यप तथा अन्य मुनिवरोंको, जो अनेक तीर्थोंमें निवास करते थे, एक विनयशील ब्राह्मणके द्वारा बुलवाया।

प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी उन सब मुनियोंके वहाँ उपस्थित होनेका समाचार पाकर शत्रुविजयी महायशस्वी रघु स्वयं ही राजभवनसे बाहर निकले और उन सबके सामने नतमस्तक होकर यज्ञकी सिद्धिके लिये यह धर्मयुक्त वचन बोले—'मुनिवरो ! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, इसके लिये आप मुझे आज्ञा प्रदान करें ।'

मुनि बोले—राजन् ! विश्वजित् नामक यज्ञ सब यज्ञोंमें उत्तम है । इस समय उसीका यत्नपूर्वक अनुष्ठान कीजिये ।

तब राजाने अनेक प्रकारकी सामग्रियोंसे परम मनोहर प्रतीत होनेवाला वह विश्वदिग्जय (विश्वजित्) नामक यज्ञ किया, जिसमें सर्वस्वकी दक्षिणा दे दी जाती है । नाना प्रकारके दानसे उन्होंने मुनियोंको सन्तोष और हर्ष प्रदान किया और ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक सर्वस्व दान कर दिया । वे सब ब्राह्मण जब राजाद्वारा पूजित होकर अपने-अपने घरोंको चले गये तथा प्रणाम आदिसे सत्कृत हुए मुनि भी अपने आश्रमको पधारे, तब वे सदाचारी राजा रघु विधिपूर्वक किये हुए उस यज्ञसे बड़ी शोभा पाने लगे । इसी समय विश्वामित्र मुनिके शिष्य एवं संयमी पुरुषोंमें श्रेष्ठ कौत्स गुरुकी दक्षिणाके लिये राजाको पवित्र करनेके लिये आये । उनको आया हुआ जान राजा रघु बड़े आदरसे उठे और विधिपूर्वक उनका पूजन किया । राजाने मिट्टीके पात्रोंद्वारा ही कौत्स मुनिका पूजन-कार्य सम्पन्न किया । तत्पश्चात् कौत्सने कहा—'राजन् ! आपका अभ्युदय हो, इस समय मैं अन्यत्र जाता हूँ । आपने अपना सर्वस्व दक्षिणामें दे डाला है । मैं गुरुजीको देनेके लिये धन माँगनेके लिये आया था, किंतु आपके पास धनका अभाव है; इसलिये आपसे याचना नहीं करता ।'

मुनिके ऐसा कहनेपर शत्रुविजयी रघुने क्षणभर कुछ विचार किया; फिर विनयसे हाथ जोड़कर कहा—'भगवन् ! मेरे महलमें एक दिन ठहरिये । तबतक मैं आपके धनके लिये विशेष प्रयत्न करता हूँ ।' उदारबुद्धिवाले राजा रघुने यह परम उदारतापूर्ण वचन कहकर धनाध्यक्ष कुबेरको जीतनेकी इच्छासे प्रस्थान किया । कुबेरजीने उन्हें आते देख सन्देश भेजकर उनके मनको संतुष्ट किया और अयोध्यामें ही सुवर्णकी अक्षय वर्षा की । जहाँ वह वर्षा हुई थी, वहाँ सोनेकी उत्तम खान बन गयी । कुबेरकी दी हुई वह सोनेकी खान राजाने मुनिको दिखलायी और उन्हें समर्पित कर दी । मुनीश्वर कौत्सने भी गुरुके लिये जितना आवश्यक था, उतना धन आदरपूर्वक ले लिया और शेष सारा धन राजाको ही निवेदन किया और कहा—'राजन् ! तुम्हें अपने कुलके गुणोंसे सम्पन्न सत्पुत्रकी प्राप्ति हो और यह जो सुवर्णकी खान है, यह मनोवाञ्छित फल देनेवाली हो । यहाँ सब पापोंका अपहरण करनेवाला उत्तम तीर्थ हो जाय । वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको यहाँकी वार्षिक यात्रा हो और उसमें मेरे कथनानुसार लोगोंको अनेक प्रकारके अभीष्ट फलकी प्राप्ति हो ।'

इस प्रकार राजाको वर देकर संतुष्ट चित्तवाले कौत्स मुनि अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये उत्कण्ठापूर्वक गुरुके आश्रमपर चले गये ।

सम्भेदतीर्थ, सीताकुण्ड, गुप्तहरि और चक्रहरि तीर्थकी महिमा

सूतजी कहते हैं—स्वर्णखनिसे दक्षिण दिशामें सिद्धसेवित 'सम्भेद' तीर्थ है, जो तिलोदकी और सरयूके सङ्गमसे विख्यात हुआ है । महाभाग ! उसमें स्नान करके मनुष्य पापरहित होते हैं । दस अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे जो फल होता है, वही धर्मात्मा पुरुष नियमपूर्वक उसमें स्नान करके प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य वहाँ वेदोंके पारगामी विद्वान् ब्राह्मणको सुवर्ण आदि देता है, वह उत्तम गतिको पाता है । भादोंके कृष्ण पक्षकी अमावास्याको वहाँकी यात्रा होती है । भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने दूसरे समुद्रकी भाँति उस नदीका निर्माण किया था । उसमें तिलकी तरह काले रङ्गका जल सदा शोभा पाता था । इसलिये वह पुण्य-सलिला नदी 'तिलोदकी' नामसे विख्यात हुई । पवित्र व्रत धारण करनेवाला मनुष्य सङ्गममें अन्यत्र भी यदि तिलोदकीमें स्नान करे तो वह सात जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है । धर्मकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्योंको यत्नपूर्वक वहाँ स्नान करना चाहिये । वहाँ किये हुए स्नान, दान, व्रत, होम सभी अक्षय होते हैं । उस सङ्गमसे पश्चिम दिशामें तटपर 'सीताकुण्ड' नामसे विख्यात एक तीर्थ है, जो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है । उसमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । सीताजीने स्वयं ही उस कुण्डका निर्माण किया है तथा श्रीरामचन्द्रजीने वरदान देकर उसे महान् फलोंकी निधि बना दिया है ।
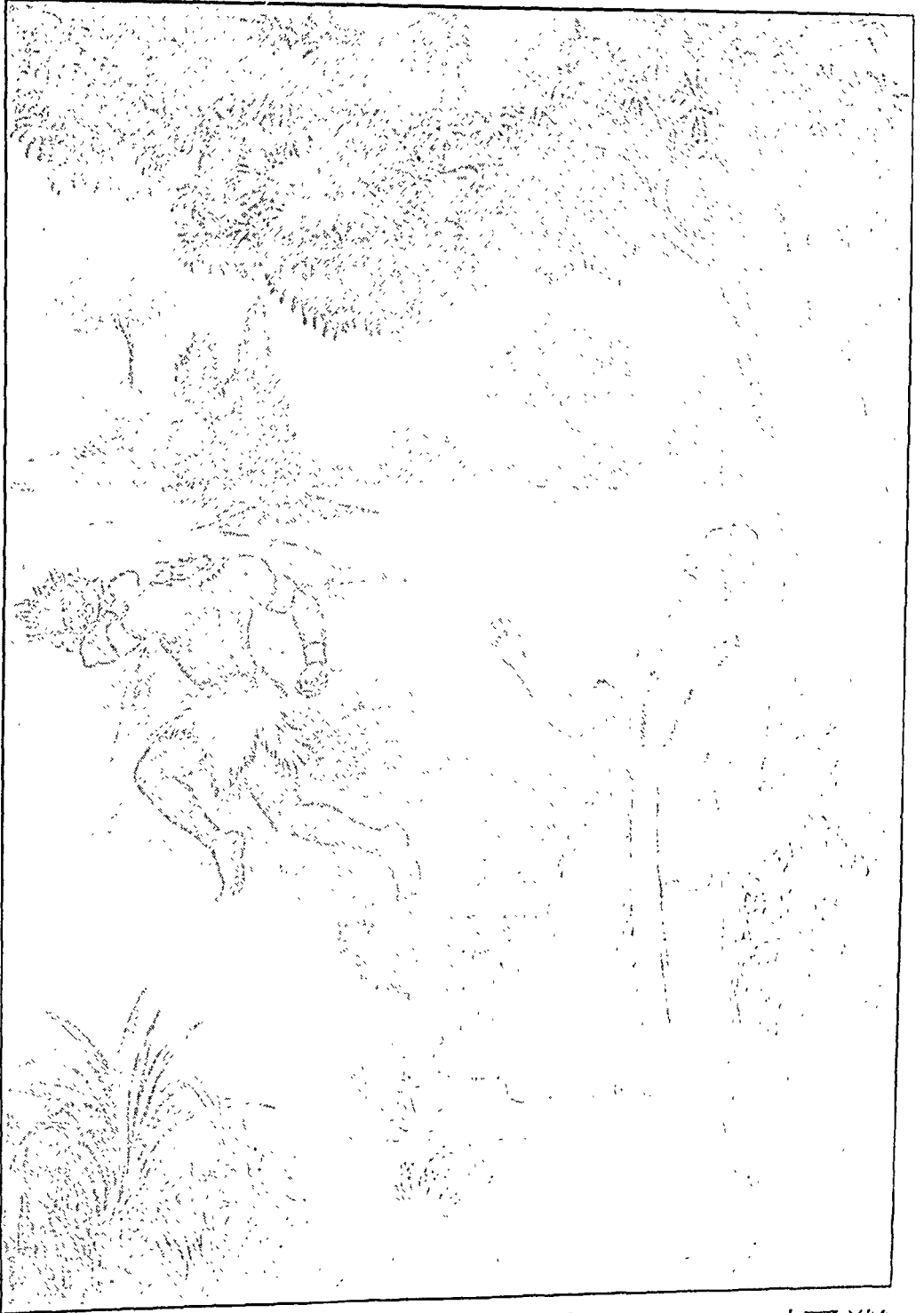
सुदर्शनचक्रके द्वारा गालवमुनिकी रक्षा

[पृष्ठ ४११

श्रीराम बोले—सौभाग्यवती सीते! इस तीर्थमें विधिपूर्वक किया हुआ स्नान, दान, जप, होम अथवा तप सब अक्षय हो। मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशीको यहाँ स्नानका विशेष पर्व होगा। उस समय इसमें स्नान करनेवाले मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश होगा।

प्रजाप्रेमी श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको इस प्रकार वरदान दिया था। तभीसे यह तीर्थ पृथ्वीपर प्रसिद्ध है। सीताकुण्ड मनुष्योंके लिये बड़ा अद्भुत तीर्थ है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य निश्चय ही भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको प्राप्त कर लेता है। उसमें स्नान, दान और तपस्या करके चन्दन, माला, धूप, दीप तथा अनेक भाँतिके वैभवविस्तारसे श्रीराम और सीताजीकी पूजा करके मनुष्य मुक्त हो जाता है। मार्गशीर्ष मासमें यहाँ स्नान करना चाहिये। इससे फिर गर्भमें नहीं आना पड़ता। अन्य समयमें भी यहाँ स्नान करके मनुष्य भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। भगवान् विष्णुहरिके पश्चिम दिशामें चक्रहरि नामसे प्रसिद्ध श्रीविष्णु निवास करते हैं, जो समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाले हैं। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष भी चक्रहरिकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते। वहाँसे पश्चिम हरिस्मृति नामसे प्रसिद्ध भगवान् विष्णुका परम पवित्र मन्दिर है, जो पारमार्थिक फल देनेवाला है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। चक्रहरि और हरिस्मृति इन दोनोंके दर्शनसे मनुष्य इस पृथ्वीपर जितने पाप करते हैं, उन सबका नाश हो जाता है।

पूर्वकालकी बात है, देवताओं और असुरोंमें बड़ा भयङ्कर संग्राम हुआ। वरदानके मदसे उन्मत्त हुए दैत्योंने उस युद्धमें देवताओंको परास्त कर दिया। देवता भागने लगे। तब भगवान् शङ्करने उनका अगुआ बनकर उन्हें रोका और ब्रह्माजीको आगे करके सब लोग क्षीरसागरपर गये। वहाँ भगवान् विष्णु क्षीरसमुद्रमें शेषनागकी शय्यापर शयन कर रहे थे। भगवती लक्ष्मी उनके पास बैठकर अपने हाथसे उनके चरणारविन्दोंकी सेवा करती थीं। नारद आदि श्रेष्ठ मुनि भगवान्‌के गुण-गौरवका उच्चस्वरसे गान कर रहे थे। गरुड़जी सामने खड़े होकर निरन्तर हाथ जोड़े उनकी स्तुति करते थे। क्षीरसागरके जलसे उठती हुई तरङ्गोंके कारण भगवान्‌के पीताम्बरमें जलके कुछ छींटे पड़े हुए थे। नक्षत्रसमुदायके समान प्रकाशमान उज्ज्वल हार भगवान्‌के वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनके कटिप्रदेश-में पीताम्बर शोभायमान था। मुखपर मुसकानकी छटा छा रही थी। भगवान् एक अद्भुत भावसे भावित थे। कानोंमें मोती जड़े हुए दिव्य एवं स्थूल कुण्डल पहने हुए थे। श्वेतद्वीपकी स्वच्छ रत्नमयी लता-सी भगवान्‌ने धारण कर रक्खी थी। मस्तकपर किरीट और हाथोंमें पद्मरागमणिके वलय सुशोभित थे। भगवान् शङ्करने विनीतभावसे सम्पूर्ण देवताओंके साथ उस समय भगवान्‌की शरण ली और एकाग्रचित्त होकर स्तवन किया।

भगवान् शिव बोले—जो संसारसमुद्रसे तारने और गरुड़जीको सुख देनेवाले हैं, घनीभूत मोहान्धकारका निवारण करनेके लिये चन्द्रस्वरूप हैं, उन भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है। जहाँ ज्ञानमयी मणिकी प्रज्वलित शिखा प्रकाशित होती है तथा जो चित्तमें भगवत्सङ्गरूपी सुधाकी वर्षा करनेवाली चन्द्रिकाके तुल्य है, मानसके उद्यानमें जो प्रवाहित होती है, उस भगवद्भक्तिरूपी मन्दाकिनीकी मैं शरण लेता हूँ। वह लीलापूर्वक उत्साहशक्तिको जाग्रत् करनेवाली तथा सम्पूर्ण जगत्‌में व्याप्त है। सात्त्विक भावोंकी पूर्वकोटि है। उसे ही वैष्णवी शक्ति कहते हैं। हवासे हिलते हुए कमलदलके पर्वके भीतर रहनेवाले पतनशील जन्तुओंकी भाँति पतनके गर्तमें गिरनेवाले प्राणियोंको स्थिरता देनेवाली एकमात्र श्रीहरिकी स्मृति ही है। हृदयकमलकी कलिकाको विकसित करनेवाली ज्ञानरूपी किरणमालाओंसे मण्डित सूर्यस्वरूप आप

भगवान्‌को नमस्कार है। योगियोंकी एकमात्र गति आप संयमशील श्रीहरिको नमस्कार है। तेज और अन्धकार दोनोंसे परे विराजमान आप परमेश्वरको नमस्कार है। आप यज्ञस्वरूप, हविष्यके उपभोक्ता तथा ऋक्, यजु एवं सामवेदस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। भगवती सरस्वतीके द्वारा गाये जानेवाले दिव्य सद्गुणोंसे विभूषित आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है। आप शान्तस्वरूप, धर्मके निधि, क्षेत्रज्ञ एवं अमृतात्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप साधकके योगकी प्रतिष्ठा तथा जीवके एकमात्र हेतु हैं, आपको नमस्कार है। आप घोरस्वरूप, मायाकी विधि तथा सहस्रों मस्तकवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप योगनिद्रास्वरूप होकर शयन करते और अपने नाभिकमलसे उत्पन्न संसारकी सृष्टि रचते हैं, आपको नमस्कार है। आप जलस्वरूप एवं संसारकी स्थितिके कारण हैं, आपको नमस्कार है। आपके कार्योंद्वारा आपकी शक्तिका अनुमान होता है। आप महाबली, सबके जीवन और परमात्मा हैं, आपको नमस्कार है। समस्त भूतोंके रक्षक और प्राण आप ही हैं, आप ही विश्व तथा उसके स्रष्टा ब्रह्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप नृसिंह-शरीर धारण करके दर्पयुक्त हो दैत्यका संहार करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप ही सबके पराक्रम हैं। आपका हृदय अनन्त है। आप सम्पूर्ण संसारके भावको ग्रहण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप संसारके कारणभूत अज्ञानरूपी घोर अन्धकारका नाश करनेवाले हैं। आपका धाम अचिन्त्य है, आपको नमस्कार है। आप गूढ़रूपसे स्थित तथा अत्यन्त उद्वेगकारक रुद्र हैं, आपको नमस्कार है। आप शान्त हैं, जहाँ समस्त ऊर्मियाँ शान्त हो जाती हैं ऐसे कैवल्यपदको देनेवाले हैं। सम्पूर्ण भावपदार्थोंसे परे तथा सर्वमय हैं, आपको नमस्कार है। जो नील कमलके समान श्याम हैं और चमकते हुए केसरके समान सुशोभित कौस्तुभमणि धारण करते हैं तथा नेत्रोंके लिये रसायनरूप हैं, ऐसे आप भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार स्तुति करनेपर प्रसन्नचित्त, वरदायक भगवान् गरुड़ध्वजने कृपायुक्त हो सम्पूर्ण देवताओंपर अपनी सुधा-वर्षिणी दृष्टिसे अमृतकी वर्षा की और विनीत देवताओंसे यह मधुर वचन कहा—'देवताओ! मैं ध्यानसे तुम्हारा सारा अभिप्राय जान गया हूँ। मैं इस समय अयोध्या नगरमें जाकर तुम्हारे तेजकी वृद्धि और दैत्योंके उपद्रवकी शान्तिके लिये गुप्त रहकर उत्तम तपका अनुष्ठान करूँगा। तुम-लोग भी शुद्धचित्त हो अयोध्यामें आकर दैत्योंके विनाशके तीव्र तपस्या करो।'

ऐसा कहकर भगवान् गरुड़वाहन अन्तर्धान हो ग उन्होंने अयोध्यामें आकर गुप्त रहकर देवताओंके ते वृद्धिके लिये शीघ्र उत्तम तपस्या प्रारम्भ की। इस वे गुप्तहरिके नामसे प्रसिद्ध हुए। यहाँ पहले आये भगवान् विष्णुके हाथसे सुदर्शन-चक्र छूटकर गिरा अतः चक्रहरिके नामसे भगवान्‌की प्रसिद्धि हुई। दोनोंके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है भगवान् श्रीहरिके प्रभावसे देवता प्रबल तेजस्वी हो गये उन्होंने युद्धमें दैत्योंको परास्त करके अपना स्थान प्र कर लिया और परम आनन्दयुक्त हो वे अतिशय शोभा पा लगे। तत्पश्चात् बृहस्पति आदि सब देवताओंने भगवा को प्रणाम किया और उनके दर्शनके लिये उत्कण्ठित सब-के-सब अयोध्यामें आये। वहाँ पुनः प्रणाम करके हाथ जोड़कर एकाग्रचित्तसे श्रीहरिका ध्यान करते हुए उन्हीं में तन्मय हो गये। तब भगवान् विष्णुने उनसे कहा—'देवताओ! मैं इस समय तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूर्ण करूँ?'

देवता बोले—जगत्पते! इस समय आपके द्वारा हमारा सब कार्य सिद्ध हो गया तथापि हमारी रक्षाके लिये आपको सदैव यहीं रहना चाहिये।

श्रीभगवान् बोले—देवताओ! यह कथा संसारमें प्रसिद्धिको प्राप्त होगी। समस्त प्राणियोंमें श्रेष्ठ जो पुरुष यहाँ उत्तम भक्तिसे पूजा, यज्ञ और जप आदिका अनुष्ठान करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। जो जितेन्द्रिय मानव अपनी शक्तिके अनुसार यहाँ दान करता है, वह अनुपम स्वर्गलोकको पाकर फिर कभी शोक नहीं करता। यहाँ मेरी प्रसन्नताके लिये शुद्धचित्तसे गोदान करना चाहिये। जो मेरी भक्तिमें तत्पर होकर यहाँ आत्मशुद्धिके लिये स्नान करते हैं, उनकी मुक्ति उनके हाथमें ही है। भगवान् चक्रहरिके स्थानपर मेरी प्रीतिके लिये प्रयत्नपूर्वक उत्तम दान और जप-होमादि करना चाहिये। श्रेष्ठ देवताओ! तुम भी यहाँ विधानसे यात्रा करो। इस गुप्तहरिके स्थान के निकट ही शुभ सङ्गम है, जहाँ गोप्रतारघाटसे तीन योजन पश्चिम घाघरा नदीसे सरयूका सङ्गम हुआ है। वहाँ विधि-पूर्वक स्नान करके समस्त मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाले भगवान् गुप्तहरिका दर्शन करना चाहिये।

ऐसा कहकर पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान

हो गये। देवता भी विधिपूर्वक यात्रा करके यत्नपूर्वक अयोध्यामें रहने लगे। तबसे यह स्थान पृथ्वीमें विख्यात हो गया। कार्तिककी पूर्णिमाको विशेषरूपसे यहाँकी वार्षिक यात्रा होती है। वहाँ सङ्गमस्नान करके भगवान् गुप्तहरिका दर्शन किया जाता है। तत्पश्चात् सरयू और घाघराके मिले हुए जलके तटपर गोप्रतारतीर्थमें स्नान करके सम्पूर्ण कामनाओं-को देनेवाले भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशीको चक्रहरिकी यात्रा करनी चाहिये। जो इस प्रकार यात्रा करता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें आनन्दका अनुभव करता है।

गोप्रतारतीर्थकी महिमा और श्रीरामके परमधामगमनकी कथा

सरयू और घाघराके सङ्गममें दस कोटिसहस्र तथा दस कोटिशत तीर्थ हैं। उस सङ्गमके जलमें स्नान करके एकाग्रचित्त हो देवताओं और पितरोंका तर्पण करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान दे। फिर वैष्णवमन्त्रसे हवन करके पवित्र होवे। अमावास्या, पूर्णिमा, दोनों द्वादशी तिथि, अयन और व्यतीपातयोग आनेपर सङ्गममें किया हुआ स्नान विष्णुलोक प्रदान करनेवाला है। विष्णुभक्त पुरुष भगवान् विष्णुकी पूजा करके उन्हींकी लीला-कथाका श्रवण करते हुए विष्णुप्रीतिकारक गीत, वाद्य, नृत्य तथा पुण्य-मयी कथा-वार्ताके द्वारा रात्रिमें जागरण करे। तत्पश्चात् प्रातःकाल विधिपूर्वक श्रद्धासे स्नान करके भगवान् विष्णुका पूजन करे और ब्राह्मणोंको यथाशक्ति सुवर्ण आदि दान करे। जो सङ्गमपर श्रद्धापूर्वक सुवर्ण, अन्न और वस्त्र देता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है। सङ्गममें स्नान करने-वाला मनुष्य सात पीढ़ी पूर्वकी तथा सात पीढ़ी भावी सन्तति इन सबको तार देता है। सङ्गमके समीप ही एक दूसरा गोप्रतार नामक तीर्थ है। वह भी बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। उसमें स्नान और दान करनेसे मनुष्य कभी शोकके वशीभूत नहीं होता है। जैसे काशीमें मणिकर्णिका, उज्जयिनीमें महाकाल-मन्दिर तथा नैमिषारण्य-में चक्रवापीतीर्थ सबसे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार अयोध्यामें गोप्रतार-तीर्थका महत्त्व सबसे अधिक है, जहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्र-जीकी आज्ञासे समस्त साकेतनिवासियोंको उनके दिव्य धामकी प्राप्ति हुई थी।

पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने आलस्यहीन हो देवताओंका कार्य पूरा करके अपने भाइयोंके साथ परम धाममें जानेका विचार किया। गुप्तचरोंके मुँहसे यह समाचार सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर, भालु, गोपुच्छ एवं राक्षस झुंड-के-झुंड वहाँ आये। वानर-गण देवताओं, गन्धर्वों तथा ऋषियोंके पुत्र थे। वे सब-के-सब श्रीरामचन्द्रजीके अन्तर्धान होनेका समाचार पाकर वहाँ आ पहुँचे। श्रीरामचन्द्रजीके समीप आकर सब वानर यूथपतियोंने कहा—'राजन्! हम सब लोग आपके साथ चलनेके लिये आये हैं। पुरुषोत्तम! यदि आप हमें छोड़कर चले जायँगे, तो हम सब लोग महान् दण्डसे मारे गये प्राणियोंकी-सी अवस्थामें पहुँच जायँगे।' उन वानर, भालु और राक्षसोंकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उसी क्षण विभीषणसे कहा—'विभीषण! जबतक भूतलपर प्रजा रहे, तबतक तुम भी यहीं रहकर लङ्काके महान् साम्राज्यका पालन करो। मेरा वचन अन्यथा न करो।' विभीषणसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीरामचन्द्र हनुमान्‌जीसे बोले—'वायुनन्दन! तुम चिरजीवी रहो। कपिश्रेष्ठ! जबतक लोग मेरी कथा कहें, तबतक तुम प्राणोंको धारण करो। मयंद और द्विविद—ये दोनों अमृतभोजी वानर हैं। ये दोनों तबतक इस पृथ्वीपर जीवित रहें, जबतक कि सम्पूर्ण लोकों-की सत्ता बनी रहे। ये सभी वानर यहाँ रहकर मेरे पुत्र-पौत्रोंकी रक्षा करते रहें।'

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने शेष वानरोंसे कहा—'तुम सब लोग मेरे साथ चलो।' तदनन्तर रात बीतनेपर जब प्रातःकाल हुआ, तब विशालवक्ष और कमलदलके समान नेत्रोंवाले महाबाहु श्रीराम अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे बोले—'भगवन्! प्रज्वलित अग्निहोत्रकी अग्नि आगे चले। वाजपेय यज्ञ और अतिरात्र यज्ञकी अग्नि भी आगे-आगे ले जायी जाय।' तब महातेजस्वी वसिष्ठजीने अपने मनमें सब बातोंका निश्चय करके विधिपूर्वक महाप्रस्थानकालोचित कर्म किया। तदनन्तर ब्रह्मचर्यपूर्वक रेशमी वस्त्र धारण किये भगवान् श्रीराम दोनों हाथोंमें कुश लेकर महाप्रस्थानको उद्यत हुए। वे नगरसे बाहर निकलकर शुभ या अशुभ कोई वचन नहीं बोले। भगवान् श्रीरामके वामपार्श्वमें हाथमें कमल लिये लक्ष्मीजी खड़ी हुईं और दाहिने पार्श्वमें विशाल नेत्रोंवाली लज्जा देवी उपस्थित

हुई । आगे मूर्तिमान् व्यवसाय (उद्योग एवं दृढ़निश्चय) विद्यमान था । धनुष, प्रत्यञ्चा और बाण आदि नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र पुरुषशरीर धारण करके भगवान्‌के पीछे-पीछे चले । ब्राह्मणरूपधारी वेद वामभागमें और गायत्री दक्षिण भागमें स्थित हुई । ॐकार, वषट्कार सभी श्रीरामचन्द्रजीके साथ चले । ऋषि, महात्मा और पर्वत सभी स्वर्गद्वारपर उपस्थित भगवान् श्रीरामके पीछे-पीछे चले । अन्तःपुरकी स्त्रियाँ वृद्ध, बालक, दासी और द्वाररक्षक सबको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके साथ प्रस्थित हुईं । रनिवासकी स्त्रियोंको साथ ले शत्रुघ्नसहित भरत भी चले । रघुकुलसे अनुराग रखनेवाले महात्मा ब्राह्मण भी स्त्री, पुत्र और अग्निहोत्र-सहित जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे चले । मन्त्री भी सेवक, पुत्र, बन्धु-बान्धव तथा अनुगामियोंसहित श्रीरामचन्द्रजीके पीछे गये । भगवान्‌के गुणोंसे सतत प्रसन्न रहनेवाली अयोध्याकी सारी प्रजा हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे घिरी हुई श्रीरामचन्द्रजीका अनुगमन करनेके लिये घरसे चल दी । उस समय वहाँ कोई दीन, भयभीत अथवा दुखी नहीं था, सभी हर्ष और आनन्दमें मग्न थे । अयोध्यामें उस समय कोई अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी भी ऐसा नहीं था, जो स्वर्गद्वारके समीप खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीके पीछे न गया हो । वहाँसे आधा योजन दक्षिण जाकर भगवान् पश्चिमकी ओर मुख करके चलने लगे । आगे जाकर रघुनाथजीने पुण्यसलिला सरयूका दर्शन किया । उस समय सब देवताओं तथा महात्मा ऋषियोंसे घिरे हुए लोकपितामह ब्रह्माजी श्रीरामचन्द्रजीके समीप आये । उनके साथ सौ कोटि दिव्य विमान भी थे । वे उस समय आकाशको सब ओरसे तेजोमय एवं प्रकाशित कर रहे थे । वहाँ परम पवित्र सुगन्धित एवं सुखदायिनी वायु चलने लगी । श्रीरामचन्द्रजीने अपने चरणोंसे सरयूजीके जलका स्पर्श किया ।

तदनन्तर ब्रह्माजी देवताओंके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करने लगे—देव ! आप समस्त लोकोंके पति हैं, आपके स्वरूपको कोई नहीं जानता । विशाललोचन ! आप अचिन्त्य एवं अविनाशी ब्रह्मरूप हैं । महावीर्य ! आप अपने जिस दिव्य स्वरूपको ग्रहण करना चाहें ग्रहण करें । ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीरामने अपने भाइयोंसहित दिव्य वैष्णवतेजमें सशरीर प्रवेश किया । तत्पश्चात् सुरश्रेष्ठ भगवान् विष्णुका सब देवताओंने पूजन किया । देवताओंका मनोरथ पूर्ण हुआ था; इसलिये वे सब बहुत प्रसन्न थे । उस समय महातेजस्वी भगवान् विष्णुने पितामह ब्रह्मासे कहा—'सुव्रत ! इस जनसमुदायको तुम्हें उत्तम लोक देना चाहिये ।' भगवान्‌का यह आदेश पाकर सर्वलोकेश्वर ब्रह्माने कहा—'वे समस्त मानव सान्तानिक लोकमें निवास करेंगे । स्वर्गद्वार तीर्थमें श्रीरामचन्द्रजीका चिन्तन करते हुए जो प्राणत्याग करता है, वह परम उत्तम सान्तानिक लोकको प्राप्त होता है । सान्तानिक लोक मेरे लोकसे भी ऊपर है । वानर आदिमेंसे जो जिस देवताके अंश थे, वे उसीमें मिलेंगे । सूर्यपुत्र सुग्रीव सूर्यमण्डलमें चले जायँगे । ऋषि, नाग और यक्ष सभी अपने-अपने कारणको प्राप्त होंगे ।'

देवेश्वर ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर गोप्रतारतीर्थमें उपस्थित जल सरयूको प्राप्त हुआ । तत्पश्चात् वहाँ सरयूजल परिपूर्ण हो गया । फिर तो सबने जलमें डुबकी लगायी और हर्षपूर्वक प्राणत्याग करके मनुष्य-शरीरको त्याग दिया तथा विमानोंपर बैठकर दिव्यलोकको प्रस्थान किया । पशु-पक्षी आदिकी योनिमें जो जीव थे, वे भी सरयूमें प्रवेश करके शरीर त्यागकर दिव्यरूपधारी हो गये । इसी प्रकार अन्य चराचर प्राणी भी उत्तम शरीर पाकर देवलोक (सान्तानिक) में गये । भगवान् श्रीराम देवताओंके साथ परमधामको गये । अतः सबको तारनेवाला वह तीर्थ 'गोप्रतार'के नामसे प्रसिद्ध हुआ । गोप्रतारतीर्थमें उत्तम मोक्ष प्राप्त होता है । गोप्रतारतीर्थमें निःसन्देह भगवान् विष्णु स्थित हैं । उसमें जो स्नान करता है, वह निश्चय ही योगियोंके लिये भी दुर्लभ परम धामको प्राप्त होता है । जितेन्द्रिय मनुष्योंको वहाँ विशेषरूपसे कार्तिककी पूर्णिमामें स्नान करना चाहिये । नियमपूर्वक व्रत पालन करनेवाले श्रद्धालु पुरुषोंको भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे वहाँ स्नानपूर्वक ब्राह्मणोंका विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये तथा श्रीहरिकी प्रीतिके लिये बड़ी भक्तिके साथ नाना प्रकारके अन्न, सुवर्ण और भाँति-भाँतिके वस्त्र दान करना चाहिये । इस प्रकार पुण्यात्मा पुरुष उत्तम विधिसे गोप्रतारतीर्थमें यत्नपूर्वक स्नान करके आदरपूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करनेपर समस्त पाप-तापसे रहित हो उन्हींके सायुज्यको प्राप्त होता है ।

क्षीरोदकतीर्थ, बृहस्पतिकुण्ड, रुक्मिणी आदि कुण्डोंका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—सीताकुण्डसे वायव्य कोणमें क्षीरोदक नामक तीर्थ है, जो सब दुःखोंका नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें राजा दशरथने वहीं पुत्रके लिये पुत्रेष्टि नामक यज्ञ किया था। यज्ञके अन्तमें वहाँ भगवान् अग्निदेव अपने हाथमें हविष्यसे भरा हुआ सोनेका पात्र लिये दृष्टिगोचर हुए थे। उस हविष्यमें परम उत्तम विष्णुतेज व्याप्त था। राजाने उसके चार भाग करके अपनी पत्नियोंको बाँट दिया। जहाँ उस क्षीर (खीर या हविष्य) की प्राप्ति हुई, वहीं क्षीरोदक नामवाला तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। जितेन्द्रिय पुरुष उस तीर्थमें आदरपूर्वक स्नान करके सम्पूर्ण भोगों और बहुज्ञ पुत्रोंको प्राप्त करता है। आश्विन शुक्ला एकादशीको व्रतका पालन करनेवाला पुरुष वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके ब्राह्मणको यथाशक्ति दान दे। इससे वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। उस क्षीरोदक स्थानसे नैर्ऋत्यकोणमें बृहस्पतिका कुण्ड प्रसिद्ध है। वह सब पापोंका नाशक तथा पवित्र जलकी तरङ्गोंसे सुशोभित है, जहाँ साक्षात् बृहस्पतिजीने निवास किया है। वह तीर्थ सघन पत्तोंकी छायासे सुशोभित एवं नाना प्रकारके फल देनेवाला है। पापियोंके लिये वह दुर्लभ है। भादोंके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिमें वहाँकी यात्रा फलदायिनी होती है। अन्य समयमें भी बृहस्पतिके दिन उसमें किया हुआ स्नान बहुत फलदायक है। जो मनुष्य वहाँ भगवान् विष्णु तथा बृहस्पतिका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो वैकुण्ठधाममें आनन्दका अनुभव करता है।

उसके दक्षिण भागमें परम उत्तम रुक्मिणीकुण्ड है, जिसे श्रीकृष्णकी प्रियतमा महारानी रुक्मिणी देवीने स्वयं निर्माण कराया था। उस समय भगवान् विष्णुने स्वयं ही उस कुण्डके जलमें निवास किया। पत्नीके स्नेहसे वर देकर भगवान्ने उस कुण्डके महत्त्वको और बढ़ा दिया है। मनुष्यको चाहिये कि वह मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर वहाँ स्नान, दान, वैष्णवमन्त्रसे होम, ब्राह्मणपूजन तथा भगवान् विष्णुका अर्चन करे। कार्तिक कृष्णा नवमीको वहाँकी वार्षिक यात्रा करनी चाहिये। इससे सब पापोंका नाश होता है। यात्रा करनेवाला मनुष्य रुक्मिणी और श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये अपनी शक्तिके अनुसार दान दे। वहाँ शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपतिका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—भगवान्के श्रीअङ्गोंमें पीताम्बर शोभा पा रहा है। वे वनमाला पहने हुए हैं और नारद आदि ऋषि उनकी स्तुति करते हैं। मस्तकपर मुकुट शोभा पा रहा है तथा वे इन्द्रनीलमणि आदि दिव्य रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित हैं। वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणि प्रकाशित हो रही है, जो समस्त कामनाओं एवं फलकी प्राप्ति करानेवाली है। भगवान्की अङ्गकान्ति अलसीके फूलकी भाँति श्याम है। उनके नेत्र कमलदलके समान परम सुन्दर हैं। इस प्रकार ध्यान करनेपर मनुष्य निःसन्देह सम्पूर्ण मनोरथोंको पा लेता है और इहलोकमें सुख भोगकर भगवान्के लोकमें आनन्दका अनुभव करता है।

रुक्मिणीकुण्डके वायव्य कोणमें 'धनयक्ष' नामसे प्रसिद्ध उत्तम तीर्थ है। पूर्वकालकी बात है विश्वामित्र मुनिने राजसूय यज्ञ करनेवाले राजा हरिश्चन्द्रसे (दानमें) सारा राज्य ले लिया। तत्पश्चात् वह सब राज्य और धन एक यक्षके संरक्षणमें दे दिया। किसी समय परम बुद्धिमान् विश्वामित्र मुनि उस यक्षपर प्रसन्न हुए और बोले—'यक्ष! यह तीर्थ 'धनयक्ष' के नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ नवों निधियोंका पूजन करनेसे मनुष्य इहलोकमें सुख और परलोकमें आनन्दका अनुभव करता है। महापद्म, पद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व—ये नौ निधियाँ हैं*। इन सबका इस कुण्डमें निवास होगा। यहाँ जलमें निधि-लक्ष्मीका पूजन करना चाहिये। माघ कृष्णा चतुर्दशीको यहाँकी वार्षिक यात्रा होनी चाहिये। उस समय स्नान और पितृतर्पण विशेषरूपसे करने चाहिये।'

धनयक्षतीर्थसे उत्तर दिशामें वशिष्ठकुण्ड नामक विख्यात तीर्थ है, जो सदा सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ तपोनिधि वशिष्ठ और निर्मल व्रतवाली अरुन्धतीजीका नित्य निवास है। उसमें आलस्य छोड़कर जो बुद्धिमान् पुरुष स्नान और विशेषरूपसे श्राद्ध करता है, उसे उत्तम पुण्यकी प्राप्ति होती है। वहाँ वशिष्ठ और वामदेवजीका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। पतिव्रता अरुन्धती देवी वहाँ विशेषरूपसे पूजनीय हैं। उस तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान और यथाशक्ति दान करना चाहिये। जो उसमें स्नान करता है, वह

* महापद्मस्तथा पद्मः शङ्खो मकरकच्छपौ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव॥
(स्क० पु० वै० अ० मा० ७। ५१)

वशिष्ठके समान होता है। भाद्रमासकी शुक्ला पञ्चमीको विधिपूर्वक मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए वहाँकी वार्षिक यात्रा करनी चाहिये और प्रयत्नपूर्वक श्रद्धासे भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे शुद्धचित्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

वशिष्ठकुण्डसे पश्चिम दिशामें सागरकुण्डके नामसे विख्यात एक तीर्थ है, जो सम्पूर्ण कामनाओं और मनोरथोंकी सिद्धि देनेवाला है। उसमें स्नान और दान करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। सागरसे नैर्ऋत्यकोणमें उत्तम योगिनीकुण्ड है, जहाँ जलमें चौंसठ योगिनियाँ निवास करती हैं। वे पुरुषोंका सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध करती हैं और स्त्रियोंको विशेषरूपसे उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। वे सब-की-सब समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली हैं। योगिनीकुण्डसे पूर्व परम उत्तम उर्वशीकुण्ड है, जिसमें स्नान करनेवाला पुरुष स्वर्गमें उर्वशीको प्राप्त करता है। यहाँ स्नान करके मनुष्योंको भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला विद्वान् मनुष्य सदैव विष्णुलोकमें निवास करता है। वह स्त्री हो या पुरुष, सब मनोरथोंको पाता है। उर्वशीकुण्डके दक्षिणभागमें उत्तम घोषार्ककुण्ड है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। घावसे युक्त, कोढ़ी, निर्धन अथवा दुःखसे घिरा हुआ जो कोई भी मनुष्य वहाँ विधिपूर्वक स्नान करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। विशेषतः रविवारको वहाँ आदरपूर्वक स्नान करना चाहिये। रविवारके साथ यदि सप्तमी तिथिका भी योग हो, तो वहाँका स्नान बहुत फलदायक होता है। घोष नामक एक राजाने किसी समय उस तीर्थमें स्नान और सन्ध्या करते हुए मुनियोंको देखा। तब उसने भी विधिपूर्वक आचमन करके स्नान किया। स्नान करते ही राजाका शरीर दिव्य हो गया। उनका मन आनन्दसे परिपूर्ण हो गया। तब मुनियोंसे उस तीर्थकी महिमा जानकर राजाने सूर्यदेवकी प्रसन्नताके लिये स्तुति की।

राजा बोले—देवदेवेश्वर! भगवान् सूर्य! आपका स्वरूप सच्चिदानन्दमय है, आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाले तथा जगत्को आनन्द देनेवाले सूर्यदेवको नमस्कार है। आप प्रभाके निकेतन तथा दिव्य रूपधारी हैं। तीनों वेद आपके ही स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। योगके ज्ञाता एवं सत्त्वरूप आप भगवान् विवस्वान्को नमस्कार है। आप सबसे परे हैं, परमेश्वर हैं और त्रिलोकीका अन्धकार नष्ट करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप अचिन्त्य है, आप प्रभा फैलानेवाले तेजसे सम्पन्न हैं, आपको सदा नमस्कार है। आप योगप्रिय, योगस्वरूप और योगज्ञ हैं, आपको सदैव नमस्कार है। आप ओङ्काररूप, वषट्कारस्वरूप और ज्ञानरूप हैं, आपको नमस्कार है। यज्ञ, यजमान, हविष्य तथा ऋत्विज सब कुछ आप हैं, आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण रोगोंके नाशक, आत्मस्वरूप तथा कमलोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप अत्यन्त कोमल और अतिशय तीक्ष्ण हैं, सम्पूर्ण देवताओंका पालन करनेवाले आपको नमस्कार है। आप यज्ञभोक्ता, भक्तरक्षक तथा प्रियस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप निरन्तर प्रकाश देनेवाले और समस्त लोकोंके हितकारी हैं, आपको नमस्कार है। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करनेवाला शरणागत भक्त हूँ। प्रभो! आज मुझपर प्रसन्न होइये।

इस प्रकार स्तुति करते हुए अपने भक्त राजा घोषपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये और भक्तका प्रिय करनेकी इच्छासे सहसा प्रकट होकर बोले—'राजेन्द्र! तुमने जो यह

स्तवन किया है, इसे जो मनुष्य पढ़ेंगे, उनपर प्रसन्न होकर मैं

उनके सब मनोरथोंको पूर्ण करूँगा। यह स्थान आजसे इस पृथ्वीपर तुम्हारे ही नामसे विख्यात होगा। जो यहाँ स्नान करेगा, वह अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार वरदान देकर भगवान् सूर्यदेव अन्तर्धान हो गये। राजाने भगवान् सूर्यके शरीरसे प्रकट हुई दिव्य सूर्यमूर्ति लेकर वहाँ उसको स्थापित किया और स्वयं ही उसकी पूजा की। अतः राजा घोषके नामपर उस तीर्थका नाम घोषार्क-कुण्ड हुआ।

अयोध्याक्षेत्रके अन्य विविध तीर्थोंका वर्णन तथा वशिष्ठके मुखसे विभीषण आदिका अयोध्या-माहात्म्य-श्रवण

घोषार्कतीर्थसे पश्चिम दिशामें रतिकुण्ड नामक प्रसिद्ध तीर्थ है, जो सब पापोंको हरनेवाला है। उससे पश्चिम कुसुमायुधकुण्ड है, जो समस्त मनोरथोंकी सिद्धिके लिये प्रसिद्ध है। जो पति-पत्नी इन दोनों कुण्डोंमें स्नान करते हैं, वे रति और कामदेवके समान सुन्दर होते हैं। कुसुमायुधकुण्डसे पश्चिम दिशामें मन्त्रेश्वरतीर्थ है। उसमें स्नान करके जो भगवान् मन्त्रेश्वरका दर्शन करता है, वह परम गतिको पाता है। उसके उत्तर कुमुद और कमलोंसे सुशोभित एक सुन्दर सरोवर है, जिसमें किये हुए स्नान और दान अनेक प्रकारके फल देनेवाले हैं। चैत्र शुक्ला चतुर्दशीको वहाँकी वार्षिक यात्रा उत्तम मानी गयी है। मन्त्रेश्वरकी महिमाका कोई भी भलीभाँति वर्णन नहीं कर सकता। सुगन्धित पुष्प, धूप, चन्दन आदि उपचारोंसे उनका प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। वे सम्पूर्ण कामनाओं और प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले हैं। उनके पूजनसे मुक्ति हो जाती है। वहीं पूर्व दिशामें महारत्ननामक तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें उत्तम है। उसमें स्नान, दान और ब्राह्मण-पूजन करनेसे समस्त कामनाओंकी सिद्धि होती है। भादों कृष्णा चतुर्दशीको वहाँकी वार्षिक यात्रा होती है। उससे नैर्ऋत्यकोणमें दुर्भर सरोवर है, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। महारत्न और दुर्भर दोनों तीर्थोंमें भक्तिभावसे स्नान करके नीलकण्ठ महादेवजीका गन्ध-पुष्प आदिके द्वारा भलीभाँति पूजन करना चाहिये। पार्वतीसहित भगवान् शिवका ध्यान करके मनुष्य सब कामनाओंको शीघ्र पाकर सदैव शिवलोकमें निवास करता है। भादों कृष्णा चतुर्दशीको जो मनुष्य श्रद्धासहित विधिपूर्वक शिवपूजा तथा ब्राह्मणपूजा विशेषरूपसे करता है, वह शिवलोकमें निवास करता है। भगवान् विष्णु और शिव उसके ऊपर बहुत प्रसन्न होते हैं, जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

दुर्भरस्थानसे ईशान कोणमें महाविद्या नामक महान् तीर्थ है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्योंके हाथमें सब सिद्धियाँ उपस्थित हो जाती हैं। महाविद्याके आगे सरोवरमें स्नान करके जो महाविद्याका श्रद्धा और भक्तिसे दर्शन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। वहीं सुप्रसिद्ध सिद्धपीठ है। वहाँ उत्तम भक्तिसे पूजा करनी चाहिये। जो पवित्र मनुष्य वहाँ श्रद्धासे शिव, शक्ति, गणपति तथा भगवान् विष्णुके मन्त्रको एकाग्रचित्त होकर जपता है, उसको सदा सिद्धि प्राप्त होती है। आश्विन शुक्ल पक्षके नवरात्रमें वहाँकी यात्रा करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। उसके समीप ही क्षीरकुण्डमें दुग्धेश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिव विराजमान हैं। उस क्षीरसङ्गम कुण्डका सीताजीने बड़ा सत्कार किया है, इसलिये सीताकुण्डके नामसे भी उसकी प्रसिद्धि हुई है। सीताकुण्डमें स्नान करके सीता, राम, लक्ष्मण और दुग्धेश्वरनाथका पूजन करके मनुष्य सब मनोरथोंको पा लेता है। ज्येष्ठ मासकी चतुर्दशीको वहाँकी वार्षिक यात्रा सम्पन्न होती है। वहाँ पूर्व दिशामें सुग्रीवद्वारा निर्मित एक उत्तम तीर्थ है, जो तपोनिधितीर्थके नामसे विख्यात है। उसमें स्नान, दान करके श्रीरामचन्द्रजीका यत्नपूर्वक पूजन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। उससे पश्चिम हनुमत्कुण्ड है और हनुमत्कुण्डके पश्चिम विभीषणकुण्ड है। उन दोनोंमें स्नान, दान और श्रीरामचन्द्रजीका पूजन करनेसे मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।

एक समय विभीषण आदिने मुनिवर वशिष्ठसे विनयपूर्वक पूछा—तपोनिधे! विद्वान् पुरुष अयोध्याका जो सर्वोत्तम माहात्म्य बतलाते हैं, उसका वर्णन कीजिये।

वशिष्ठजीने कहा—यह अयोध्या नामक उत्तम तीर्थ अत्यन्त गुप्त है। यह सदा सभी प्राणियोंके मोक्षका साधक है। इसमें सिद्ध और देवता भी वैष्णवव्रतका आश्रय लेकर नाना प्रकारके वेष धारण किये विष्णुलोककी अभिलाषासे नित्य निवास करते हैं। नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त एवं अनेकानेक विहङ्गमोंके कलरवसे युक्त इस उत्तम तीर्थमें

सिद्ध और देवता जितेन्द्रिय हो प्राणायामपूर्वक योगाभ्यास करते हैं। इस उत्तम क्षेत्रमें निवास करना भगवान् विष्णुको सदैव रुचिकर है। जिन्होंने अपने समस्त कर्म भगवान् विष्णुको समर्पित कर दिये हैं, वे विष्णुभक्त यहाँ मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ भगवान् विष्णुका निवास है, इसलिये यह अयोध्या नामक महाक्षेत्र अत्यन्त उत्तम है। जो मोक्ष अन्यत्र दुर्लभ माना गया है, वही यहाँ सब सिद्धों और महर्षियोंको प्राप्त होता है। जिसका चित्त विषयोंमें आसक्त है और जिसने धर्मका अनुराग त्याग दिया है, ऐसा मनुष्य भी यदि इस क्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त हो, तो वह पुनः संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता। सहस्रों जन्मोंतक योगाभ्यास करनेवाला योगी भी जिस मोक्षको नहीं पाता, उसीको यहाँ मृत्यु होनेसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। यह अयोध्या ही उत्तम स्थान है, यही परम पद है। यहाँ पुण्याभिलाषी पुरुषोंको विधिपूर्वक यात्रा करनी चाहिये। नियमपूर्वक स्नान और यथाशक्ति दान करना चाहिये। मनको वशमें करके पवित्र व्रतवाला पुरुष भलीभाँति यहाँकी यात्रा सम्पन्न करे। अयोध्यामें जहाँ कहीं भी मृत्युको प्राप्त होनेपर धीर पुरुष उत्तम मोक्षको पाता है।

वसिष्ठजीका कहा हुआ यह माहात्म्य सुनकर विभीषण आदि सब लोगोंका चित्त निर्मल हो गया।

गयाकूप आदि अनेक तीर्थोंका माहात्म्य तथा ग्रन्थका उपसंहार

वहाँसे आग्नेय कोणमें गयाकूप नामक तीर्थ प्रसिद्ध है, जो सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है। इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाला श्रेष्ठ द्विज उसमें स्नान करके यथाशक्ति दान दे और पितरोंका श्राद्ध करे तो वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। उस तीर्थमें श्राद्ध करनेपर नरकमें पड़े हुए पितर और पितामह विष्णुलोकमें चले जाते हैं। सोमवती अमावास्या हो उस समय वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे किया हुआ श्राद्ध अक्षय एवं अनन्त फल देनेवाला होता है। वहाँसे पूर्वभागमें पिशाचमोचन नामक सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है, जो उत्तम फल देनेवाला है। उसमें स्नान और दान करनेसे मनुष्य पिशाच नहीं होता। अतः अगहनकी शुक्ला चतुर्दशीको वहाँ विशेषरूपसे स्नान करना चाहिये। पिशाचमोचनके पास ही पूर्वभागमें मानस नामक तीर्थ है। वहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। मन, वाणी और शरीरमें जो कुछ पाप होता है वह सब मानसतीर्थमें स्नान करनेसे नष्ट हो जाता है। उससे दक्षिण दिशामें तमसा नामक नदी है, जिसमें किया हुआ स्नान और दान सब पापोंको हरनेवाला है। तमसाके सुन्दर तटपर पवित्रात्मा मुनियोंके अनेक स्थान हैं और माण्डव्य मुनिका भी पापनाशक आश्रम है। जहाँसे उत्तम तरङ्गोंवाली तमसा नदी प्रकट हुई है, वह वन अत्यन्त पवित्र है। उसके दर्शनसे मनुष्योंके सब पापोंका नाश हो जाता है। वह तीर्थ सब ओरसे मनोहर है। वहाँ माण्डव्य मुनिने बड़ी भारी तपस्या की, जिसके प्रभावसे वह तीर्थ परम पावन हुआ है। वहाँ पहले गौतम ऋषिका परम पवित्र आश्रम था। च्यवन और पराशर मुनिका भी पूर्वकालमें वहाँ स्थान रहा है। इसमें किये हुए स्नान, दान और श्राद्धसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। मार्गशीर्ष शुक्ल पक्षकी पूर्णिमामें वहाँका स्नान मनुष्योंके लिये विशेष फलकी प्राप्ति करानेवाला है। उसके उत्तर भागमें सुन्दर भरतकुण्ड है, जिसमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। पूर्वकालमें रघुकुलमें उत्पन्न भरतजी वहीं नन्दिग्राममें निवास करते थे। श्रीरामवनवासके बाद निर्मल अन्तःकरणवाले भरतजी इन्द्रियोंको संयममें रखकर श्रीरामचन्द्रजीका हृदयमें ध्यान करते हुए वहीं रहकर प्रजाका पालन करते थे। उस कुण्डमें स्नान करनेसे बड़ा भारी पुण्य होता है। उसके पश्चिम भागमें अति उत्तम जटाकुण्ड है, जहाँ वनसे लौटनेपर श्रीराम आदिने अपनी जटाएँ कटवायी थीं। उनके जटा छोड़नेसे ही उसका नाम जटाकुण्ड हो गया। वह सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ है। वहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। पूर्वकुण्डोंमें श्रीभरतजीका पूजन करना चाहिये। जटाकुण्डमें सीता, राम और लक्ष्मणजीका पूजन करना उचित है। चैत्र कृष्णा चतुर्दशीको वहाँकी वार्षिक यात्रा होती है। इस प्रकार पूजन करके पुण्यात्मा मनुष्य विष्णुलोकमें निवास करता है।

इसके उत्तरमें वीर मत्तगजेन्द्रका शुभ सूचक स्थान है। उनके सामने जो सरोवर है, उसमें स्नान करके जो निश्चितरूपसे वहाँ निवास करता है, वह पूर्ण सिद्धिको पाता है। अयोध्याकी रक्षा करनेवाले वीर मत्तगजेन्द्र समस्त कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले हैं। उनके पश्चिम भागमें परम पुण्यात्मा वीर

पिण्डारकका स्थान है। सरयूके जलमें स्नान करके वीर पिण्डारककी पूजा करे। वे पापियोंको मोहनेवाले और पुण्यात्माओंको सदा सद्बुद्धि प्रदान करनेवाले हैं। पिण्डारकके पश्चिम भागमें विघ्नेश्वर (गणेश) जीकी पूजा करे। उनके दर्शन करनेसे मनुष्योंको लेशमात्र विघ्नका भी सामना नहीं करना पड़ता।

विघ्नेशसे ईशान कोणमें श्रीरामजन्म-स्थान है। इसे 'जन्म-स्थान' कहते हैं। यह मोक्षादि फलोंकी सिद्धि करनेवाला है। विघ्नेशसे पूर्व, वशिष्ठसे उत्तर तथा लोमशसे पश्चिम भागमें जन्मस्थान तीर्थ माना गया है। उसका दर्शन करके मनुष्य गर्भवासपर विजय पा लेता है। रामनवमीके दिन व्रत करनेवाला मनुष्य स्नान और दानके प्रभावसे जन्म-मृत्युके बन्धनसे छूट जाता है। आश्रममें निवास करनेवाले तपस्वी पुरुषोंको जो फल प्राप्त होता है, सहस्रों राजसूय और प्रतिवर्ष अग्निहोत्र करनेसे जो फल मिलता है, जन्मस्थानमें नियममें स्थित पुरुषके दर्शनसे तथा माता, पिता और गुरुकी भक्ति करनेवाले सत्पुरुषोंके दर्शनसे मनुष्य जिस फलको पाता है, वही सब फल जन्मभूमिके दर्शनसे प्राप्त कर लेता है। सरयूका दर्शन करके भी मनुष्य उस फलको पा लेता है। एक निमेष या आधे निमेष भी किया हुआ श्रीरामचन्द्र-जीका ध्यान मनुष्योंके संसार-बन्धनके कारणभूत अज्ञानका निश्चय ही नाश करनेवाला है। जहाँ कहीं भी रहकर जो मनसे अयोध्याजीका स्मरण करता है, उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। सरयू नदी सदा मोक्ष देनेवाली है। यह जलरूपसे साक्षात् परब्रह्म है। यहाँ कर्मका भोग नहीं करना पड़ता। इसमें स्नान करनेसे मनुष्य श्रीरामरूप हो जाता है। पशु, पक्षी, मृग तथा अन्य जो पापयोनि प्राणी हैं, वे सभी मुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाते हैं, जैसा कि श्रीरामचन्द्रजीका वचन है। सत्यतीर्थ, क्षमातीर्थ, इन्द्रियनिग्रहतीर्थ, सर्वभूत-दयातीर्थ, सत्यवादितातीर्थ, ज्ञानतीर्थ और तपस्तीर्थ—ये सात मानसतीर्थ कहे गये हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दया करना-रूप जो तीर्थ है, उसमें मनकी विशेष शुद्धि होती है। केवल जलसे शरीरको पवित्र कर लेना ही स्नान नहीं कहलाता। जिस पुरुषका मन भलीभाँति शुद्ध है, उसीने वास्तवमें तीर्थ-स्नान किया है*। भूमिपर वर्तमान जो तीर्थ हैं, उनकी पवित्रताका कारण यह है। जैसे शरीरके कोई अङ्ग मध्यम और कोई उत्तम माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वीपर भी कुछ प्रदेश अत्यन्त पवित्र होते हैं। इसलिये भौम और मानस दोनों प्रकारके तीर्थोंमें निवास करना चाहिये। जो दोनोंमें स्नान करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। जलचर जीव जलमें ही जन्म लेते और जलमें ही मरते हैं, परंतु वे स्वर्गमें नहीं जाते; क्योंकि उनका मन अशुद्ध होता है और वे मलिन होते हैं। विषयोंमें निरन्तर राग होना मनका मल कहलाता है। उन्हीं विषयोंमें जब आसक्ति न रह जाय, तब उसे मनकी निर्मलता कहते हैं। यदि मनुष्य भावसे निर्मल है—उसके अन्तःकरणमें शुद्ध भाव है तो उसके लिये दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवा और वेदोंका अध्ययन—ये सभी तीर्थ हैं। इन्द्रियसमुदायको वशमें रखनेवाला पुरुष जहाँ निवास करता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर हैं। यह मानसतीर्थका लक्षण बतलाया गया, जिसमें स्नान करनेसे क्रियावान् पुरुषोंके सब कर्म सफल होते हैं।

बुद्धिमान् मनुष्य प्रातःकाल उठकर सङ्गममें स्नान करे, फिर भगवान् विष्णुहरिका दर्शन करके ब्रह्मकुण्डमें स्नान करे। तत्पश्चात् चक्रतीर्थमें स्नान करके मनुष्य भगवान् चक्रहरिका दर्शन करे। उसके बाद धर्महरिका दर्शन करके वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्रत्येक एकादशीको यह यात्रा शुभकारक होती है।

बुद्धिमान् पुरुष प्रातःकाल उठकर स्वर्गद्वारके जलमें गोता लगावे। फिर नित्य कर्म करके अयोध्यापुरीका दर्शन करे। तत्पश्चात् पुनः सरयूका दर्शन करके वीर मत्तगजेन्द्र,

* सत्यतीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थानां सत्यवादिता॥
ज्ञानतीर्थं तपस्तीर्थं कथितं तीर्थसप्तकम्।
सर्वभूतदयातीर्थे विशुद्धिर्मनसो भवेत्॥
न तोयपूतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते।
स स्नातो यस्य वै पुंसः सुविशुद्धं मनो मतम्॥
(स्क० पु० वै० अ० मा० १० । ४६—४८)

बन्दीदेवी, शीतलादेवी और बटुकभैरवका दर्शन करे। उनके आगे सरोवरमें स्नानकर महाविद्याका दर्शन करे। तत्पश्चात् पिण्डारकका दर्शन करे। अष्टमी और चतुर्दशीको यह यात्रा फलवती होती है। अङ्गारक चतुर्थीको पूर्वोक्त देवताओंके साथ-साथ समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये विघ्नेशका भी दर्शन करे।

पूर्ववत् प्रातःकाल उठकर बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मकुण्डके जलमें स्नान करे। फिर विष्णु और विष्णुहरिका दर्शन करके मनुष्यके मन, वाणी और शरीरकी शुद्धि होती है। उसके बाद चन्द्रेश्वर और महाविद्याका दर्शन करे। तत्पश्चात् सब कामनाओंकी सिद्धिके लिये अयोध्याका दर्शन करके जितेन्द्रिय पुरुष स्वर्गद्वारमें वस्त्रसहित स्नान करे। उससे मनुष्यके अनेक जन्मोंके उपार्जित नाना प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये वस्त्रसहित स्नान अवश्य करे। यह यात्रा सब पापोंका नाश करनेवाली बतायी गयी है। जो प्रतिदिन इस प्रकार शुभ फल देनेवाली यात्रा करता है, उसकी सौ कोटि कल्पोंमें भी पुनरावृत्ति नहीं होती। अयोध्यापुरी सर्वोत्तम स्थान है। यह भगवान् विष्णुके चक्रपर प्रतिष्ठित है।

सूतजी कहते हैं—जो मनुष्य पवित्रचित्त होकर अयोध्याके इस अनुपम माहात्म्यका पाठ करता है अथवा जो श्रद्धासे इसको सुनता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। अतः मनुष्योंको सदा यत्नपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये। ब्राह्मणों तथा भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये और अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणके लिये सुवर्ण आदि देना चाहिये। पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुरुष इस माहात्म्यको सुनकर पुत्र पाता है और धर्मार्थीको धर्मकी प्राप्ति होती है। जो श्रेष्ठ मनुष्य अति विस्तृत विधानके साथ वर्णित इस धर्मयुक्त आदिक्षेत्रके उत्तम माहात्म्यका भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह लक्ष्मीसे सनाथ होकर संसारमें सब उत्तम भोगोंको भोगनेके पश्चात् भगवान् विष्णुके लोकमें निवास करता है।

श्रीअयोध्या-माहात्म्य सम्पूर्ण।

वैष्णवखण्ड समाप्त

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः

संक्षिप्त श्रीस्कन्द-महापुराण

ब्राह्म-खण्ड

सेतु-माहात्म्य

सेतुतीर्थ (रामेश्वर-क्षेत्र) की महिमा

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये॥

'जिन्होंने श्वेत वस्त्र धारण कर रक्खा है, जिनका चन्द्रमाके समान गौर वर्ण है, चार भुजाएँ हैं और मुखपर प्रसन्नता छा रही है, ऐसे भगवान् विष्णुका सब विघ्नोंकी शान्तिके लिये ध्यान करना चाहिये।'

नैमिषारण्य तीर्थमें शौनक आदि ऋषि अष्टाङ्गयोगके साधनमें तत्पर हो एकमात्र ब्रह्मज्ञानके साधनमें संलग्न थे। वे सभी महात्मा संसार-बन्धनसे मुक्ति चाहनेवाले थे। उनमें ममताका सर्वथा अभाव था। वे ब्रह्मवादी, धर्मज्ञ, किसीके दोष न देखनेवाले, सत्यव्रती, इन्द्रियसंयमी, क्रोधको जीतनेवाले तथा सब प्राणियोंके प्रति दया रखनेवाले थे। शौनक आदि महर्षि इस परम पवित्र मोक्षदायक नैमिषारण्यमें अतिशय भक्तिके साथ सनातनदेव भगवान् विष्णुकी पूजा करते हुए तपस्यामें लगे रहते थे। एक समय उन महात्माओंने उत्तम सत्सङ्गका आयोजन किया। उसमें वे परम पुण्यमयी पापनाशक कथाएँ कहते और मुक्तिके उपायपर परस्पर प्रश्नोत्तर किया करते थे। उसी अवसरपर वहाँ व्यासजीके शिष्य महाविद्वान् पौराणिकोंमें श्रेष्ठ मुनिवर सूतजी आये। उन्हें देखकर शौनकादि महर्षियोंने अर्घ्य आदिके द्वारा उनका पूजन किया। जब वे सुखपूर्वक उत्तम आसनपर बैठे, तब महर्षियोंने उनसे पूछा—'सूतजी! जीवोंकी संसारसागरसे किस प्रकार मुक्ति होती है? भगवान् शिव अथवा विष्णुमें मनुष्योंकी भक्ति कैसे होती है? ये तथा अन्य सब बातें भी आप कृपा करके हमें बताइये।'

तब सूतजीने पहले अपने गुरु श्रीव्यासदेवजीको प्रणाम करके इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—'ब्राह्मणो! श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा बँधाये हुए सेतुसे जो परम पवित्र हो गया है, वह रामेश्वर नामक क्षेत्र सब तीर्थोंमें उत्तम है। उसके दर्शनमात्रसे संसारसागरसे मुक्ति हो जाती है। भगवान् विष्णु और शिवमें भक्ति तथा पुण्यकी वृद्धि होती है। सेतुका दर्शन करनेपर मनुष्य सब यज्ञोंका कर्ता माना गया है। उसने सब तीर्थोंमें स्नान और सब प्रकारकी तपस्याका अनुष्ठान कर लिया। सेतुमें स्नान करनेवाला पुरुष विष्णुधाममें जाकर वहीं मुक्त हो जाता है। सेतु, रामेश्वर-लिङ्ग और गन्धमादन-पर्वतका चिन्तन करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। द्विजवरो! जो सेतुकी बालुकाओंमें शयन करता है, उसकी धूलसे वेष्टित होता है, उसके शरीरमें बालूके जितने कण सटते हैं, उतनी ब्रह्महत्याओंका नाश हो जाता है। सेतुके मध्यवर्ती प्रदेशकी वायु जिसके सम्पूर्ण शरीरका स्पर्श करती है, उसके दस हजार सुरापानका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। पुत्र और पौत्रोंके द्वारा जिसकी हड्डी सेतुमें डाली गयी है, उसका दस हजार बार की हुई सुवर्णकी चोरीका पाप उसी क्षण नष्ट हो जाता है। जिस मनुष्यका स्मरण करके

सेतुतीर्थमें कोई स्नान करता है, उसका भी महापातकियोंके संसर्गसे प्राप्त हुआ दोष तत्क्षण नष्ट हो जाता है। मार्गको नष्ट करनेवाला, केवल अपने लिये भोजन बनानेवाला, संन्यासियों और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला, चाण्डालका अन्न खानेवाला और वेद बेचनेवाला—ये पाँच 'ब्रह्महत्यारे' कहे गये हैं। जो ब्राह्मणोंको बुलाकर यह आशा देता है कि 'तुम्हें धन आदि दूँगा' और फिर यह कह देता है कि 'मेरे पास नहीं है' वह भी ब्रह्महत्यारा कहा गया है। जो जिससे धर्मका उपदेश ग्रहण करता है, वह उसीसे द्वेष करे या उसकी अवहेलना करे तो वह भी ब्रह्महत्यारा कहा गया है। जो पानी पीनेके लिये जलाशयकी ओर जाती हुई गौओंके समूहको रोक देता है, उसको भी ब्रह्मघाती कहा गया है। सेतुतीर्थमें आकर वे सभी अपनी पापराशिसे मुक्त हो जाते हैं। ब्रह्महत्यारोंके समान जो दूसरे पापी हैं, वे भी सेतुतीर्थमें आकर अपने पापोंसे छुटकारा पा जाते हैं। जो उपासनाका परित्याग करता, देवताका अन्न खाता, शराब पीता, शराब पीनेवाली स्त्रीसे संसर्ग रखता, वेश्याका अन्न खाता और किसी समुदाय अथवा संस्थाका अन्न भोजन करता है तथा जो पतितका अन्न खानेमें तत्पर रहता है, ये सभी सुरापी (शराब पीनेवाले) कहे गये हैं। ये सब कर्मोंसे बहिष्कृत हैं। ऐसे लोग भी सेतुतीर्थमें स्नान करनेसे पापरहित हो मुक्त हो जाते हैं। शराब पीनेवालेके समान अन्य जो पापी हैं, वे भी सेतुमें गोता लगानेसे पापमुक्त हो जाते हैं। कन्द, मूल, फल, कस्तूरी, रेशमी वस्त्र, दूध, चन्दन, कपूर, सुपारी, शहद, घी, ताँबा, काँस तथा रुद्राक्षकी चोरी करनेवाले मनुष्योंको सुवर्ण चुरानेवाला समझना चाहिये। वे सेतुक्षेत्रमें आकर मुक्त हो जाते हैं। अन्य प्रकारके चोर भी वहाँ स्नान करनेसे पापमुक्त होते हैं। बहिन, पुत्रवधू, रजस्वला स्त्री, भाईकी स्त्री, मित्रकी स्त्री, मदिरा पीनेवाली स्त्री, परायी स्त्री, हीन जातिकी स्त्री तथा अपने ऊपर विश्वास रखनेवाली स्त्रीके पास जब आसक्त पुरुष जाता है, तब वह गुरु-शय्यागामी समझा जाने योग्य है। वह सब कर्मोंसे बहिष्कृत है। ये तथा और भी जो गुरुशय्यागामीके समान पापी हैं, वे सेतुतीर्थमें स्नान करके पापमुक्त हो जाते हैं। इन सबके साथ संसर्ग रखनेवाले जो पापी हैं, वे भी सेतुतीर्थके महास्नानसे पापरहित हो जाते हैं। सेतुतीर्थका स्नान अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाला तथा मोक्ष देनेवाला है। पापनाशक सेतुतीर्थमें निष्कामभावसे किया हुआ स्नान मोक्ष देनेवाला है। जो मनुष्य धन-सम्पत्तिके उद्देश्यसे सेतुतीर्थमें स्नान करता है, वह प्रचुर सम्पत्ति पाता है और यदि वह आत्मशुद्धिके लिये स्नान करता है तो आत्मशुद्धिको पाता है। यदि स्वर्गीय सुख भोगनेके लिये स्नान करता है, तो उसे ही प्राप्त करता है और यदि मोक्षदायक सेतुतीर्थमें मुक्तिके लिये स्नान करे, तो मनुष्य पुनरावृत्तिरहित मुक्तिको पाता है। जो अङ्गोंसहित चारों वेदोंके ज्ञानमें पारङ्गत होने, समस्त शास्त्रोंकी विद्वत्ता और सम्पूर्ण मन्त्रोंकी अभिज्ञता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे सर्वार्थसिद्धिदायक सेतुतीर्थमें स्नान करता है, वह उस मनोवाञ्छित सिद्धिको अवश्य प्राप्त होता है। श्रद्धालु मनुष्य हो या श्रद्धाहीन, यदि वह सेतुतीर्थमें स्नान करता है तो इहलोक और परलोकमें कभी दुःखका भागी नहीं होता। संसारमें कामधेनु, चिन्तामणि तथा कल्पवृक्ष जिस प्रकार मनुष्योंको अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करते हैं, वैसे ही सेतुस्नान मनुष्योंके सब मनोरथ पूर्ण करता है। जो मनुष्य सेतुतीर्थमें जानेवाले पुरुषको धन-धान्य अथवा वस्त्र आदि देकर उसमें प्रवृत्त कराता है, वह अश्वमेधादि यज्ञोंके उत्तम फलको पाता है। उसके ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश हो जाता है। जो मनुष्य 'मैं सेतुतीर्थमें जाऊँगा' ऐसा कहकर दूसरोंसे धन लेता है और लेकर लोभवश नहीं जाता, उसको ब्रह्मघाती कहते हैं। जो सम्पन्न होकर भी दरिद्रकी भाँति सेतुतीर्थमें जानेके लिये लोभवश धनकी याचना करता है, उसे विद्वानोंने चोर कहा है। जिस किसी उपायसे हो सके, मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक सेतुतीर्थकी यात्रा करे। जो वहाँतक जानेमें असमर्थ हो, वह ब्राह्मणको दक्षिणा देकर उससे वहाँकी यात्रा करवावे।

सेतुबन्धकी कथा तथा सेतुमें स्थित मुख्य-मुख्य तीर्थोंके नाम

ऋषियोंने पूछा—महाभाग सूतजी! अनायास ही सब कार्य करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने अगाध समुद्रमें किस प्रकार सेतु बाँधा? सेतुतीर्थमें एवं गन्धमादन पर्वतपर कितने तीर्थ हैं? ये सब हमें बताइये।

श्रीसूतजीने कहा—मुनिवरो! पिताकी आज्ञासे भगवान् श्रीराम सीताजी और लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यके अन्तर्गत पञ्चवटीमें एकाग्रचित्त होकर निवास करते थे। वहाँ रहते हुए महात्मा रघुनाथजीकी पत्नी सीताको मारीचद्वारा छल करके रावणने हर लिया। दशरथनन्दन श्रीराम उस वनमें अपनी पत्नी सीताकी खोज करते हुए किष्किन्धामें

पम्पासरोवरके तटपर गये। वहाँ उन्हें कोई वानर दिखायी दिया। उस वानरने निकट आकर श्रीरामचन्द्रजीसे पूछा—'आप कौन हैं?' तब उन्होंने अपना सब वृत्तान्त प्रारम्भसे ही उसको कह सुनाया। तत्पश्चात् श्रीरामने भी वानरसे पूछा—'तुम कौन हो?' तब उसने महात्मा राघवेन्द्रको अपना परिचय इस प्रकार दिया—'मैं सुग्रीवका मन्त्री हनुमान् नामक वानर हूँ। सुग्रीवके भेजनेसे मैं यहाँ आया हूँ। वे आप दोनोंसे मित्रता करना चाहते हैं। आपका कल्याण हो, आप दोनों शीघ्र ही सुग्रीवके समीप चलें।' 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीके साथ सुग्रीवके समीप आये। सुग्रीवने उनके साथ अग्निको साक्षी देकर मित्रता स्थापित की। श्रीरामचन्द्रजीने उनसे वालीके वधकी प्रतिज्ञा की और सुग्रीवने विदेहराजनन्दिनी सीताको पुनः खोज लानेके लिये प्रतिज्ञा की। इस प्रकार प्रतिज्ञापूर्वक परस्पर विश्वास करके वे दोनों नरराज और वानरराज प्रसन्नतापूर्वक ऋष्यमूक पर्वतपर रहने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको अपनी शक्तिका विश्वास दिलानेके लिये दुन्दुभि दानवके शरीरको शीघ्र ही पैरके अंगूठेसे मारकर अनेक योजन दूर फेंक दिया तथा एक ही बाणसे सात ताल बींध डाले। यह सब देखकर सुग्रीवके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन! मुझे इन्द्र आदि देवताओंसे भी भय नहीं है, क्योंकि आप-जैसे अत्यन्त पराक्रमी वीर मुझे मित्रके रूपमें प्राप्त हुए हैं। मैं लंकापति रावणको मारकर आपकी पत्नी सीताको यहाँ ले आऊँगा।'

तदनन्तर लक्ष्मण, सुग्रीव और महाबली श्रीरामचन्द्रजी वालीके द्वारा सुरक्षित किष्किन्धापुरीमें शीघ्रतापूर्वक गये। वहाँ वालीको युद्धके लिये बुलानेकी इच्छासे सुग्रीवने बड़ी भारी गर्जना की। अपने छोटे भाईकी वह गर्जना वाली नहीं सह सका। वह अन्तःपुरसे बाहर निकला और सुग्रीवसे भिड़ गया। वालीके मुक्केकी मारसे आहत हो सुग्रीव बहुत व्याकुल हो गये और शीघ्र ही वहाँ चले गये, जहाँ महाबली श्रीरामचन्द्रजी खड़े थे। तब महाबाहु श्रीरामने सुग्रीवके गलेमें पहचाननेके लिये चिह्नस्वरूप एक लता बाँध दी और पुनः युद्धके लिये भेजा। सुग्रीवने फिर गर्जना करके वालीको ललकारा तथा श्रीरामचन्द्रजीकी प्रेरणासे उसके साथ बाहुयुद्ध प्रारम्भ किया। इसी समय राघवेन्द्रने एक ही बाणसे वालीको मार डाला। उसके मारे जानेपर सुग्रीवने किष्किन्धाके राज्यपर अधिकार पाया। तत्पश्चात् वर्षा बीत जानेपर वानरराज सुग्रीव सीताको खोज लानेके लिये वानरोंकी विशाल सेना साथ लेकर राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मणके समीप आये। सीताकी खोजके लिये उन्होंने बहुतसे वानरोंको इधर-उधर भेजा। वायुपुत्र हनुमान्‌जीने लंकामें जाकर विदेहनन्दिनी सीताका पता लगाया और वहाँसे लौटकर सीताकी दी हुई चूड़ामणि श्रीरामचन्द्रजीको भेंट की। उसे पाकर श्रीरामचन्द्रजीको हर्ष तथा शोक दोनों हुआ।

तत्पश्चात् सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमान् तथा जाम्बवान् और नल आदि अन्य वानर वीरोंके साथ श्रीरघुनाथजीने अभिजित् मुहूर्तमें यात्रा की और अनेक प्रकारके देशोंको लाँघकर वे महेन्द्रपर्वतपर जा पहुँचे। वहाँ चक्रतीर्थमें जाकर उन सबने निवास किया। वहीं राक्षसराज रावणके भाई धर्मात्मा विभीषण आकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिले। महामना श्रीरामने स्वागतपूर्वक उन्हें ग्रहण किया। उस समय सुग्रीवके मनमें यह शंका हुई कि 'हो न हो, यह कोई गुप्तचर है।' परंतु राघवेन्द्रने विभीषणकी उत्तम चेष्टाओं और हितकारक चरित्रोंसे ही यह समझ लिया कि इसके मनमें कोई दुष्टता नहीं है। तभी उन्होंने विभीषणका स्वागत-सत्कार किया तथा उन्हें समस्त राक्षसोंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। श्रीरामने सूर्यनन्दन सुग्रीवको अपना श्रेष्ठ मन्त्री नियुक्त किया और कुछ विचार करते हुए सुग्रीव आदिसे कहा—'मित्रो! आपने इस समुद्रको लाँघनेके लिये कौन-सा उपाय सोचा है?'

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछनेपर सुग्रीव आदिने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! हम सब लोग नाना प्रकारकी नावोंसे समुद्रको पार करेंगे।' तब विभीषणने कहा—'राजा सगरके पुत्रोंने वरुणके निवासभूत इस समुद्रको खोदा है, अतः श्रीरामचन्द्रजीको समुद्रकी शरणमें जाना चाहिये। ये सगरके कुटुम्बी हैं, अतः समुद्र इनका कार्य अवश्य सिद्ध करेगा।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने वानरोंको समझाते हुए कहा—'श्रेष्ठ वानरो! हमारी सेनाके लिये बहुत-सी नौकाएँ चाहिये, सो यहाँ उपस्थित नहीं हैं। यदि व्यापारी बनियोंकी नावें ले ली जायँ, तो उनकी बड़ी हानि होगी। हम-जैसे लोग यह अनुचित कार्य कैसे कर सकेंगे। हमारी सेनाका विस्तार बहुत अधिक है। यदि नावपर बैठकर या तैरकर समुद्रमें जायँ, तो यह छिद्र देखकर कोई भी शत्रु

हमपर प्रहार कर सकता है। इसलिये तैरकर जाना या नावसे पार करना मुझे ठीक नहीं जँचता। विभीषणकी ही बात मुझे सुखदायक प्रतीत होती है। अतः मार्गकी सिद्धिके लिये मैं इस समुद्रकी उपासना करूँगा। यदि यह मार्ग नहीं दिखायेगा, तो अपने महान् अस्त्रोंसे इसे जलाकर राख कर दूँगा।'

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ समुद्रके जलका स्पर्श करके तटपर बिछाये हुए कुशके आसनपर बैठे। श्रीरामचन्द्रजी नीतिके ज्ञाता और धर्मपरायण थे; उन्होंने समुद्रसे मार्गकी प्राप्तिके लिये तीन राततक उसकी उपासना की तथा यथायोग्य सामग्रियोंसे उसका पूजन भी किया। तथापि उसने अपने आपको श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख प्रकट नहीं किया। इससे श्रीरामको समुद्रपर बड़ा क्रोध हुआ। उनकी आँखें लाल-लाल हो गयीं। उन्होंने पास ही बैठे हुए लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! आज मैं अपने बाणोंसे समुद्रनिवासी मगर आदि जल-जन्तुओंको छिन्न-भिन्न करते हुए सागरके जलको क्षणभरमें स्तब्ध कर दूँगा और शङ्ख, शुक्ति, मछली, मगर आदिके सहित इस जलनिधिको अमोघ बाणोंद्वारा सुखा डालूँगा। मुझे क्षमायुक्त देखकर यह असमर्थ समझने लगा। शान्तिपूर्ण ढंगसे प्रार्थना करनेपर यह अपने आपको मेरे सामने नहीं प्रकट करता है। लक्ष्मण! तुम शीघ्र मेरा धनुष और सर्पोंके समान मेरे बाण उठा लाओ, अब सागरको सुखा दूँगा। मेरे वानर सैनिक पैदल ही इसे पार करें।'

ऐसा कहकर भगवान् श्रीरामने धनुष हाथमें लिया। वे उस समय त्रिपुरविनाशक शिवजीकी भाँति दुर्धर्ष प्रतीत होने लगे। उन्होंने धनुषको खींचकर अपने बाणोंसे संसारको कम्पित करते हुए उन भयङ्कर बाणोंको उसी प्रकार छोड़ा, जैसे भगवान् शङ्करने त्रिपुरोंके ऊपर बाणका प्रहार किया था। वे तेजस्वी बाण दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए अभिमानी दानवोंसे भरे हुए समुद्रके जलमें धँस गये। तब तो समुद्र भयभीत होकर काँपने लगा और कहीं भी शरण न पाकर पातालसे उठकर हाथ जोड़े हुए मोक्षके कारणभूत भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें आया। उसने मनोहर शब्दोंमें राघवेन्द्रकी इस प्रकार स्तुति की।

समुद्र बोला—रघुकुलशिरोमणि सीतापते! मैं आपके चरणारविन्दोंको नमस्कार करता हूँ, जो अपनी सेवा करनेवाले पुरुषोंको सुख देनेवाले हैं। देववृन्दसे सेवित आपकी श्रीचरणरेणुको प्रणाम करता हूँ, जो गौतमपत्नी अहल्याको शापसे मुक्त करनेवाली है। राम! राम! आप देवताओंका कार्य करनेकी इच्छासे रघुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं और भक्तोंका अभीष्ट सिद्ध करनेवाले हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप आदि-अन्तरहित, मोक्षदायक, कल्याणस्वरूप तथा अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले नारायण हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। राम! महाबाहु श्रीराम! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। राजेन्द्र! आप अपने क्रोधको शान्त कीजिये। करुणालय! मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। रघुवंशशिरोमणे! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि—इन सबको विधाताने जिस स्वभावका बनाया है, वे उसी स्वभावके अनुसार बर्तते हैं। मेरा स्वभाव ही अगाधता है। यदि मैं अगाध न होऊँ, तो यह मेरे लिये विकारकी बात होगी, मैं यह सब आपसे सत्य कहता हूँ। राघवेन्द्र! लोभ, काम, भय अथवा रागसे भी मैं वंश-परम्परासे प्राप्त हुए अपने गुणका किसी प्रकार त्याग करनेमें समर्थ नहीं; अतः इस समय आपकी सेनाके पार उतारनेमें मैं सहायता करूँगा। सर्वथा सूख नहीं जाऊँगा। यदि सेनासहित पार जानेकी इच्छावाले आपकी आज्ञासे मैं सूख जाऊँ, तो दूसरे लोग भी मुझे धनुषके बलसे ऐसी ही आज्ञा देंगे। अतः आपकी सेनाके उतरनेके लिये मैं दूसरा उपाय बतलाता हूँ—भगवन्! आपकी सेनामें यहाँ नल नामक वानर मौजूद है; वह बड़े-बड़े कारीगरोंमें माननीय है। महाबली नल साक्षात् विश्वकर्माका पुत्र है। वह अपने हाथसे जो कुछ भी काठ, तृण अथवा पत्थर मेरे अंदर फेंकेगा, वह सब मैं पानीके ऊपर धारण करूँगा। वही आपके लिये सेतु (पुल) हो जायगा, उसीके द्वारा आप रावणपालित लङ्कामें सेनासहित जाइये।

यों कहकर समुद्र अन्तर्धान हो गया। तब श्रीरामचन्द्रजीने नलसे कहा—'महामते! तुम समुद्रमें पुल बनाओ; क्योंकि तुममें यह कार्य करनेकी शक्ति है।' उस समय नलने धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'भगवन्! मैं अगाध समुद्रमें सेतुका निर्माण करूँगा। मन्दराचल पर्वतपर विश्वकर्माने मेरी माताको वरदान दिया था कि तुम्हारा पुत्र मेरे समान शिल्पकर्ममें निपुण होगा। अतः समस्त श्रेष्ठ वानर आज ही सेतु बाँधना आरम्भ कर दें।' तब श्रीरामचन्द्रजीके भेजे हुए अतिशय बलवान् वानर पर्वत, गिरिशिखर, लता, तृण तथा वृक्षोंको उठा-उठाकर लाने लगे। [illegible]
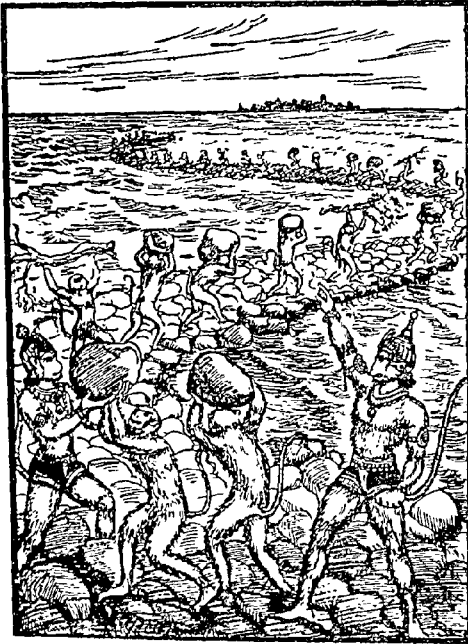
समान वेगवान् तथा विशालकाय वानर थे। नलने समुद्रके बीचमें बहुत बड़ा पुल तैयार किया; जो दस योजन चौड़ा और सौ योजन लंबा था। इस प्रकार सीतावल्लभ श्रीरामने विश्वकर्मापुत्र वानरराज नलके द्वारा इस सेतुका निर्माण कराया। उस सेतुपर पहुँचकर सम्पूर्ण पातकी मनुष्य सब प्रकारके पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्रजीने लङ्कामें जानेकी इच्छासे वानरोंद्वारा उस पवित्र पापनाशक सेतुका जहाँ प्रारम्भ कराया, वह स्थान आगे चलकर लोगोंमें दर्भशयनके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार समुद्रमें सेतुबन्धनकी कथा कही गयी। वहाँ अनेक पवित्र तीर्थ हैं, जिनमें चौबीस तीर्थ प्रधान हैं। वे सब सेतुपर ही स्थित हैं। पहला चक्रतीर्थ है, दूसरा वेतालवरदतीर्थ और तीसरा पापविनाशनतीर्थ है, जो सब लोकोंमें विख्यात है। उसके बाद सीतासरोवर नामक पुण्यतीर्थ है। तत्पश्चात् मङ्गलतीर्थ है। मङ्गलतीर्थके अनन्तर सब पापोंका नाश करनेवाली अमृतवापिका है। फिर ब्रह्मकुण्ड, हनुमत्कुण्ड, अगस्त्यतीर्थ, रामतीर्थ, लक्ष्मणतीर्थ, जयतीर्थ, लक्ष्मीतीर्थ, अग्नितीर्थ, चक्रतीर्थ, शिवतीर्थ, शङ्खतीर्थ, यामुनतीर्थ, गङ्गातीर्थ, गयातीर्थ, कोटितीर्थ, साध्यामृततीर्थ, मानसतीर्थ तथा धनुष्कोटितीर्थ है। विप्रवरो! ये सेतुके मध्यमें स्थित प्रधान-प्रधान तीर्थ बताये गये हैं, जो सब पापोंका अपहरण करनेवाले हैं। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गको पढ़ता और सुनता है, वह अनन्त विजय प्राप्त करता है तथा परलोकमें भी उसे पुनर्जन्मका क्लेश नहीं उठाना पड़ता।

चक्रतीर्थका माहात्म्य—गालवमुनि तथा धर्मकी तपस्याका वर्णन

ऋषि बोले—आपने पापनाशक सेतुपर स्थित जिन चौबीस तीर्थोंके नाम बताये हैं, उनमें सबसे पहले तीर्थका नाम चक्रतीर्थ कैसे हुआ?

श्रीसूतजीने कहा—विप्रवरो! चौबीस प्रधान तीर्थोंमें जो आदितीर्थ बताया गया है, वह सब लोकोंमें विख्यात है। उसकी चक्रतीर्थके नामसे प्रसिद्धि क्यों हुई, यह बात बता रहा हूँ, सुनो। जो स्थान सेतुका मूल कहा गया है, वही दर्भशयनतीर्थ है। वहींपर महापातकोंका नाश करनेवाला चक्रतीर्थ है। पूर्वकालमें वहाँपर गालव नामसे प्रसिद्ध एक वैष्णव महात्मा रहते थे। वे दक्षिण समुद्रके तटपर हालास्यसे थोड़ी दूरपर फुल्लग्रामके समीप क्षीरसरोवरके निकट धर्मपुष्करिणीके किनारे बड़ी भारी तपस्या करते थे। उनका स्वभाव दयालु था, वे सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे और उन्होंने आहारका सर्वथा त्याग कर दिया था। वे सब प्राणियोंको अपने ही समान देखते हुए विषयकी स्पृहासे रहित, सब प्राणियोंके हितैषी, मनको वशमें रखनेवाले तथा सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे दूर थे। कुछ वर्षोंतक तो वे सूखे पत्ते चबाकर रहे, फिर कुछ समयतक उन्होंने केवल जलका आहार किया। तत्पश्चात् कुछ वर्षोंतक वे वायु पीकर रहे। इस प्रकार उन महामुनिने बड़ी कठोर तपस्या की। कितने ही वर्षोंतक वे बिना खाये, बिना किसीकी ओर देखे, बिना श्वास लिये और बिना आश्रयके रहे। वर्षाऋतुमें आकाशसे गिरती हुई पानीकी धाराका कष्ट सहन करते, सर्दीकी रातमें जलके भीतर खड़े रहते और गरमीके समय पञ्चाग्नि सेवन करते हुए भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर रहते थे। मुखसे अष्टाक्षर मन्त्रका* जप और हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए वे महातेजस्वी गालव मुनि तपस्यामें संलग्न रहे। इस प्रकार कितने ही वर्ष बीतनेपर भगवान् लक्ष्मीपतिने उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। भगवान्‌ने अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा आदि धारण कर रक्खे थे, उनके नेत्र विकसित कमलदलके समान सुशोभित थे, उनका तेज कोटि

* 'ॐ नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र है।

सूर्यके समान था, वे गरुड़की पीठपर आरूढ़ थे, उनके सिरपर छत्र और पार्श्वभागमें डुलाये जाते हुए चवँर-की शोभा हो रही थी। वे हार, भुजबन्द, मुकुट और कड़े आदि आभूषणोंसे विभूषित थे, विष्वक्सेन तथा सुनन्द आदि पार्षद उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े थे। भगवान् अपनी मन्द मुसकानसे त्रिभुवनके मनको मोहित किये लेते थे तथा अपनी दिव्य कान्तिसे समस्त पदार्थों एवं दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। कण्ठमें धारण की हुई कौस्तुभमणिसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी।

उस समय उन पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुको देखकर महामुनि गालव बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़ी भक्तिसे भगवान् जगदीश्वरका स्तवन किया—'शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले देवाधिदेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है। नित्य शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है। भक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हव्य-कव्यस्वरूप आप यज्ञ-पुरुषको नमस्कार है। जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले आप ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप त्रिमूर्तिको नमस्कार है। आप परमेश्वरको नमस्कार है। सर्वव्यापी प्रभुको नमस्कार है। जगत्‌की रचना करनेवाले आप लक्ष्मी-पतिको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमारूपी नेत्रोंवाले आप भगवान्‌को नमस्कार है। ब्रह्मा आदि देवताओंसे वन्दित आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो नाम और जाति आदि भेदोंसे रहित तथा समस्त दोषोंसे वर्जित हैं, समस्त संसारका भय दूर करनेवाले उन दैत्यविनाशक विष्णुको नमस्कार है। जो वेदान्तवेद्य परमेश्वर हैं, वैकुण्ठधाममें जिनका निवास है, जो ब्रह्माजीके पिता हैं, भक्तजनोंके दुःखों-का तत्काल नाश करनेवाले हैं, उन अमित पराक्रमी भगवान् नारायणको नमस्कार है। शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले आप भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले आप भगवान् नारायणको बार-बार नमस्कार है।'

इस प्रकार महात्मा गालवकी की हुई स्तुति सुनकर भगवान्‌ने प्रसन्न हो उन्हें चारों हाथोंसे खींचकर छातीसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक कहा—'गालव! मैं तुम्हारी तपस्या और इस स्तुतिसे बहुत सन्तुष्ट हूँ तथा वर देनेके लिये आया हूँ।' गालवने कहा—'नारायण! रमानाथ! पीताम्बर! जगन्मय! जनार्दन! जगद्धाम! गोविन्द! नरकान्तक! मैं आपके दर्शनमात्रसे सर्वाधिक कृतार्थ हो गया। इससे अधिक दूसरा वर क्या हो सकता है। जिन्हें योगी नहीं देख पाते, कर्मठ लोग भी जिनका दर्शन नहीं कर पाते, उन्हीं परमात्माका आज मैं साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ। इससे अधिक दूसरा वर क्या हो सकता है। जगत्पते! जनार्दन! मैं इतनेसे ही कृतार्थ हो गया। जिनके नामोंका स्मरण करनेमात्रसे महा-पातकी भी मुक्तिको प्राप्त होते हैं, उन्हीं भगवान् विष्णुको मैं यहाँ प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। प्रभो! आपके युगल चरणारविन्दों-में मेरी अविचल भक्ति हो।'

भगवान् विष्णुने कहा—गालव! मुझमें तुम्हारी दृढ़ एवं निष्काम भक्ति हो। प्रारब्धके फलस्वरूप इस शरीरका अन्त होनेपर तुम्हें मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होगी। मुनिश्रेष्ठ! तुम इसी पवित्र आश्रमपर निवास करो। यह धर्मपुष्करिणी पुण्यमयी एवं पापनाशिनी है। इसके किनारे तप करनेवाला मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होता है। पूर्वकालमें धर्मराजने वहाँ आकर दक्षिण समुद्रके तटपर महादेवजीका चिन्तन करते हुए तपस्या की थी। इसीसे यह धर्म-पुष्करिणीके नामसे प्रसिद्ध है। धर्मराजकी तपस्यासे प्रसन्न हो शूलपाणि भगवान् महेश्वर अपनी प्रभासे दसों दिशाओं-को प्रकाशित करते हुए प्रकट हुए। तब धर्मने उनकी इस प्रकार स्तुति की—'मैं जगत्‌के स्वामी ॐकारस्वरूप ईश्वरको नमस्कार करता हूँ। समस्त देवता जिनके स्वरूप हैं, जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं, जिनके नेत्र भयङ्कर हैं, उन विश्वरूप ऊर्ध्वरेता भगवान् शङ्करको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सम्पूर्ण जगत्‌के आधार, अनन्त, अजन्मा और अविनाशी हैं, योगीश्वर जिनको सदा प्रणाम करते हैं, उन पुष्टिवर्द्धक भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। जो समस्त लोकोंके स्वामी हैं, उन भगवान् महादेवको नमस्कार है। जिनके कण्ठमें नील चिह्न है, जो समस्त पशुओं (जीवों) के पालन करनेवाले पति हैं, उन भगवान् महेश्वरको बार-बार नमस्कार है। समस्त पापोंका नाश करनेवाले भगवान् शङ्करको नमस्कार है। समस्त कामनाओंकी वर्षा करनेवाले महेश्वरको नमस्कार है। रुद्रदेवको नमस्कार है। सर्पोंको प्रश्रय देनेवाले शिवको नमस्कार है। उत्कृष्ट चित्तवाले प्रचेता (वरुण) रूप शम्भुको नमस्कार है। हाथोंमें पिनाक और त्रिशूल धारण करनेवाले आपको बार-बार नमस्कार है। चैतन्यरूप शिवको नमस्कार है। पुष्टिपालक महेश्वरको नमस्कार है। समस्त क्षेत्रों (शरीरों) के स्वामी भगवान् पञ्चानन शिवको नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तुति करनेपर लोककल्याणकारी

भगवान् शङ्करने कहा—महामते धर्म ! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे वर माँगो।

धर्मने कहा—पार्वतीपते ! मैं सदा आपका वाहन होऊँ।

शिवजीने कहा—धर्म ! तुम सदैव मनुष्योंसे पूजित हो, तुम मेरे वाहन बनो। तुम्हारा सेवन करनेवाले मनुष्योंकी मुझमें सदैव भक्ति बनी रहेगी और तुमने दक्षिण समुद्रके तटपर जो तीर्थ बनाया है, वह धर्मपुष्करिणीके नामसे प्रसिद्ध होगा।

इस प्रकार उस धर्मतीर्थके लिये वर देकर भगवान् शङ्कर वृषभरूपधारी धर्मपर आरूढ़ हो कैलास पर्वतपर चले गये। महर्षि गालव ! तुम भी इस धर्मपुष्करिणीके किनारे तपस्या करते हुए तबतक निवास करो, जबतक कि तुम्हारे शरीरका अन्त न हो जाय।

ऐसा कहकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। तब मुनिश्रेष्ठ गालव धर्मपुष्करिणीके तटपर भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर हो निवास करने लगे। किसी समय माघ मासमें शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास करके उन्होंने रात्रिमे जागरण किया और दूसरे दिन द्वादशीको धर्मपुष्करिणीके जलमें स्नान करके सन्ध्या-वन्दनपूर्वक नित्य कर्मोंका अनुष्ठान किया। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुकी पूजा सम्पन्न करके उन्होंने इस प्रकार स्तवन किया—

गालव बोले—सहस्रों मस्तक धारण करनेवाले भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, श्रीकृष्ण तथा कल्किरूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जो प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले और समस्त प्राणियोंके आधार हैं, उन आधारशून्य वासुदेव भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सर्वज्ञ, सबके कर्ता, सच्चिदानन्दस्वरूप, तर्कके अविषय एवं नामनिर्देशसे रहित हैं, उन भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार स्तुति करते हुए महायोगी गालव मुनि धर्मपुष्करिणीके तटपर ध्यानमग्न होकर बैठे। इसी समय कोई भयङ्कर राक्षस क्षुधासे पीड़ित हो गालव मुनिको खा जानेके लिये वहाँ आया। उसने गालव मुनिको बड़े वेगसे पकड़ लिया। तब गालवजीने शरणागतरक्षक, दयासागर, चक्रपाणि भगवान् नारायणको बार-बार पुकारते हुए कहा—'प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। परेश ! परमानन्द ! शरणागतपालक ! करुणासिन्धो ! मेरी रक्षा कीजिये। लक्ष्मीकान्त ! हरे ! विष्णो ! वैकुण्ठ ! गरुड़ध्वज ! मेरी रक्षा कीजिये। दामोदर ! जगन्नाथ ! हिरण्यकशिपुमर्दन ! प्रह्लादकी भाँति मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार स्तुति करते हुए अपने भक्त गालव मुनिके भयको जानकर चक्रपाणि भगवान् विष्णुने भक्तकी रक्षाके लिये अपने चक्रको प्रेरित किया। भगवान्का भेजा हुआ वह चक्र धर्मपुष्करिणीके तटपर बड़े वेगसे आया। सुदर्शनचक्रको आया देख राक्षस वहाँसे भागा। किंतु ज्वालामालाओंसे मण्डित उस चक्रने भागते हुए राक्षसका मस्तक सहसा धड़से अलग कर दिया !

तब गालवजीने सुदर्शन चक्रकी इस प्रकार स्तुति की—सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाका व्रत लेनेवाले चक्र ! तुम्हें नमस्कार है। भगवान् नारायणके करकमलोंको विभूषित करनेवाले तुम सुदर्शनको नमस्कार है। महान् गर्जना करनेवाले सुदर्शन ! तुम युद्धमें असुरोंका संहार करनेमें प्रवीण हो, भक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले तुम्हें नमस्कार है। मैं भयसे उद्विग्न हूँ, तुम समस्त कल्मषोंसे मेरी रक्षा करो। स्वामिन् ! प्रभो ! सुदर्शन ! तुम सदा मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले जगत्के हितके लिये इस तीर्थमें निवास करो।

महर्षि गालवके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णुके उस चक्रने अपने सौहार्दसे उन्हें प्रसन्न करते हुए-से कहा—गालवजी ! यह महापुण्यमय, परम उत्तम धर्मतीर्थ है। मैं इसमें सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये सदैव निवास करूँगा। तुम सदा भगवान् विष्णुके भक्त बने रहोगे। मेरे निवाससे यह धर्मपुष्करिणी अब चक्रतीर्थके नामसे प्रसिद्ध होगी। जो मनुष्य इस मुक्तिदायक चक्रतीर्थमें निवास करेंगे, उनके कुलमें पैदा हुए सभी पुरुष पापरहित होकर भगवान् विष्णुके परम धामको जायँगे। गालव ! जो लोग यहाँ पितरोंके लिये पिण्ड देते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और उनके पितर भी यहाँ तृप्त होते हैं।

यों कहकर भगवान् विष्णुका वह चक्र गालव मुनिके देखते-देखते सहसा उस पापनाशिनी धर्मपुष्करिणीमें समा गया। तबसे धर्मतीर्थकी चक्रतीर्थके नामसे प्रसिद्धि हुई। यह प्रसङ्ग मैंने तुम सब लोगोंको सुनाया। जो मनुष्य धर्मतीर्थ, उग्र समाधियोगमें स्थित गालव मुनि तथा सुदर्शनचक्रका एक बार स्मरण करता है, वह कभी पापका भागी नहीं होता।

सेतुबन्धन आरम्भ करनेकी बात तथा सेतुयात्राका क्रम एवं विधान

श्रीसूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो ! जहाँ जानकीवल्लभ रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने नौ पत्थरोंकी स्थापना करके पहले-पहल समुद्रमें सेतु बाँधा था, वहींपर देवीपत्तन नामक नगर है । उसीके एक किनारेपर चक्रतीर्थ है ।

भगवान् श्रीरामने शुभ मुहूर्तमें अच्छे दिनको देवीपत्तन-से कार्य प्रारम्भ किया । उन्होंने प्रारम्भमें गणेशजीकी पूजा करके महादेवजीकी आज्ञा ले अपने हाथसे प्रसन्नतापूर्वक नौ प्रस्तरोंकी स्थापना की । इस प्रकार उनके द्वारा सेतुबन्धनका कार्य प्रारम्भ होनेपर वानरलोग पर्वत, शाखायुक्त वृक्ष, शिलाखण्ड, काष्ठसमूह और तृणराशि एकत्र करके लाने लगे । नलने उन सबको लेकर महासागरमें सेतु निर्माण किया । उन्होंने पाँच ही दिनमें लङ्काके समीपतक पुल बाँध दिया । उसकी लंबाई सौ योजन और चौड़ाई दस योजन थी । इस प्रकार नलके द्वारा वह पापनाशक पुण्यमय सेतु तैयार किया गया । देवीपुरके निकट जो नौ पत्थर गड़े हैं, वे ही सेतुके मूल हैं । मनुष्य वहाँ अपने पापकी शुद्धिके लिये स्नान करे । फिर चक्रतीर्थमें स्नान करके सेतु-के स्वामी श्रीहरिका पूजन करे । देवीपत्तनसे लेकर जो सेतु बाँधा गया है, उसके कारण वह यथार्थरूपसे सेतुमूल कहलाता है । सेतुका पश्चिम किनारा दर्भशयनतीर्थ कहा गया है और पूर्व किनारा देवीपत्तन । ये दोनों ही सेतुके मूल हैं । दोनोंको ही परम पवित्र, पुण्यजनक एवं पापनाशक कहा गया है । जो मनुष्य जिस मार्गसे जिस (पूर्व या पश्चिम) सेतुमूलको जायँ, वे उसी मार्गसे उस मोक्षदायक सेतुमूलमें स्नान करके फिर चक्रतीर्थमें स्नान करें । तत्पश्चात् सङ्कल्पपूर्वक सेतुबन्धतीर्थको जायँ । प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामचन्द्र-जीका हृदयमें ध्यान करते हुए सबसे पहले सेतुको नमस्कार करें । सेतुवन्दनका मन्त्र इस प्रकार है—

रघुवीरपदन्यासपवित्रीकृतपांसवे ।
दशकण्ठशिरश्छेदहेतवे सेतवे नमः ॥
केतवे रामचन्द्रस्य मोक्षमार्गैकहेतवे ।
सीतायां मानसाम्भोजभानवे सेतवे नमः ॥

'श्रीरघुवीरके चरण रखनेसे जिसकी धूलि परम पवित्र गयी है, जो दशग्रीव रावणके शिरश्छेदका एकमात्र हेतु उस सेतुको नमस्कार है । जो मोक्षमार्गका प्रधान हेतु श्रीरामचन्द्रजीके सुयशको फहरानेवाला केतु (ध्वज) और सीताजीके हृदयकमलको विकसित करनेके लिये सूर्य के समान है, उस सेतुको नमस्कार है ।'

इस मन्त्रसे सेतुको साष्टाङ्ग प्रणाम करके परम शक्तिशा वेतालवरद नामक तीर्थको जायँ । जो मनुष्य चक्रतीर्थके दक्षि भागमें स्थित इस वेतालवरद नामक तीर्थमें कभी स्नान क हैं, वे जीवन्मुक्त होते हैं । वहाँ सङ्कल्पपूर्वक स्नान कर पितरोंको पिण्ड देना चाहिये । वेतालवरदमें स्नान करने पश्चात् मनुष्य धीरे-धीरे गन्धमादन पर्वतको जाय । वह पर समुद्रमें सेतुके रूपमें विद्यमान है । उस सेतुरूप गन्धमाद पर्वतकी इस प्रकार प्रार्थना करे—'परमपुण्यमय गन्धमाद पर्वत ! तुम्हें सब देवता नमस्कार करते हैं । विष्णु आ देवता भी तुम्हारा सेवन करते हैं । नगश्रेष्ठ ! उसी तुम्ह शिखरपर मैं पैरोंसे चलूँगा, मेरे चरणोंसे तुम्हारे ऊ आघात होगा । मुझ पापात्माके अपराधको कृपापूर्वक क्षम करो और तुम्हारे शिखरपर निवास करनेवाले भगवान् शङ्क का मुझे दर्शन कराओ ।' इस प्रकार प्रार्थना करके उस श्रे पर्वतपर धीरे-धीरे पैर रखते हुए चले । वहाँ समुद्रमें स्ना करके गन्धमादन पर्वतपर मनुष्य यदि सरसोंभर भी पिण्डदा करे, तो उससे प्रलयकालतक पितर तृप्त रहते हैं । तत्पश्चात् वहाँ सब तीर्थोंमें उत्तम, जो पापविनाशन नामक महातीर्थ है उसका दर्शन करनेके लिये जाय । वहाँ पहुँचकर शरीरके मलोंका नाश करनेवाले उस तीर्थमें स्नान करे । वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य वैकुण्ठधाममें जाता है ।

सीतासरोवर और मङ्गलतीर्थका माहात्म्य, राजा मनोजवकी कथा

श्रीसूतजी कहते हैं—सब पापोंका नाश करनेवाले पापनाशनतीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् मनुष्य यम-नियमका पालन करते हुए सीतासरोवरमें स्नान करनेके लिये जाय । श्रीरामचन्द्रजीको अपने सतीत्वका विश्वास दिलानेके लिये जब जनकनन्दिनी सीताने सम्पूर्ण देवताओंके समीप प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश किया और सब अङ्गोंसे सुशोभित एवं पवित्र रूपसे वे उस अग्निसे बाहर निकलीं, तब लोकरक्षाके लिये उन्होंने अपने नामसे एक उत्तम तीर्थ निर्माण किया तथा
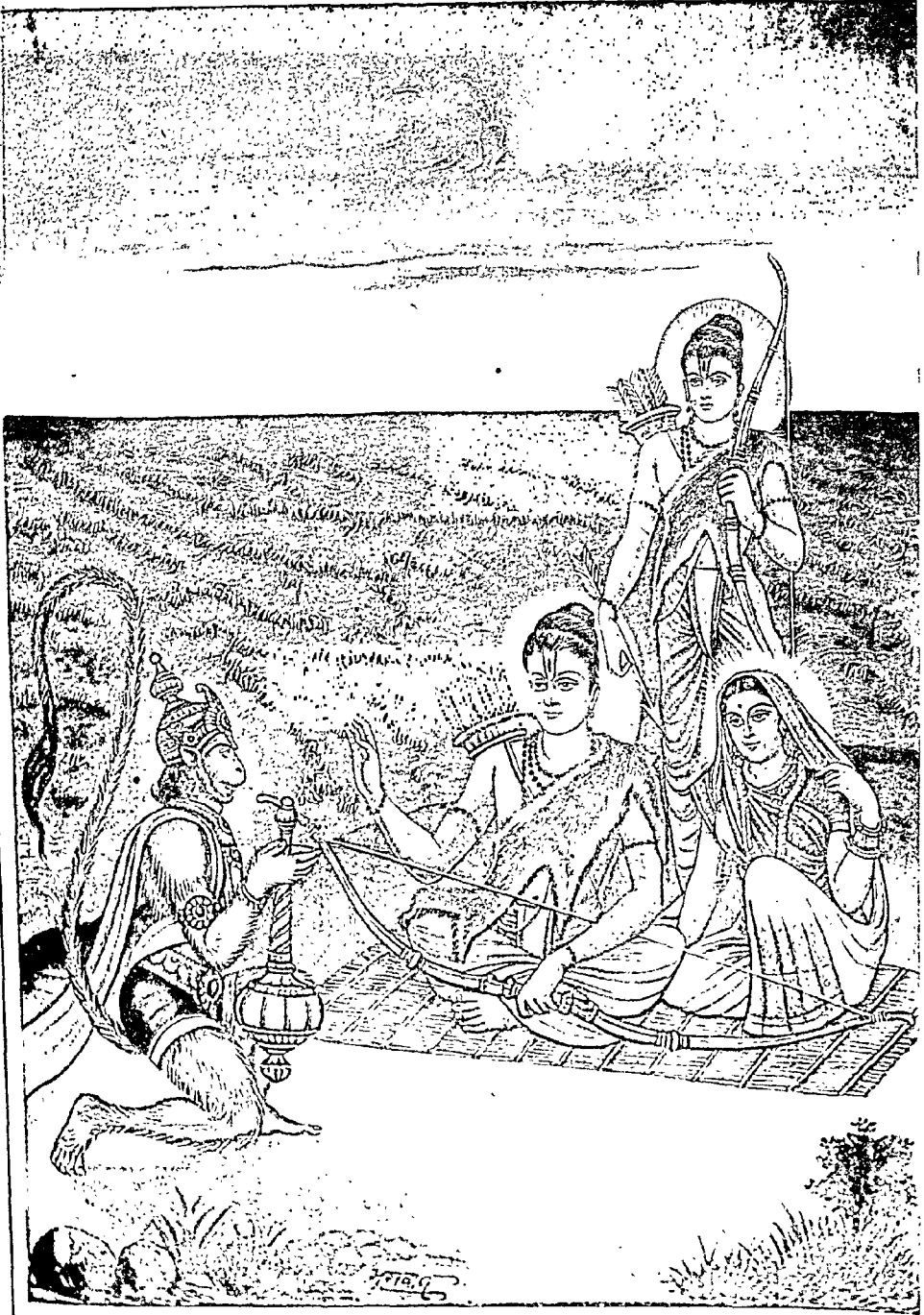
हनुमान्‌जीके द्वारा भगवान् श्रीराम और सीताका स्तवन [पृष्ठ ४४३
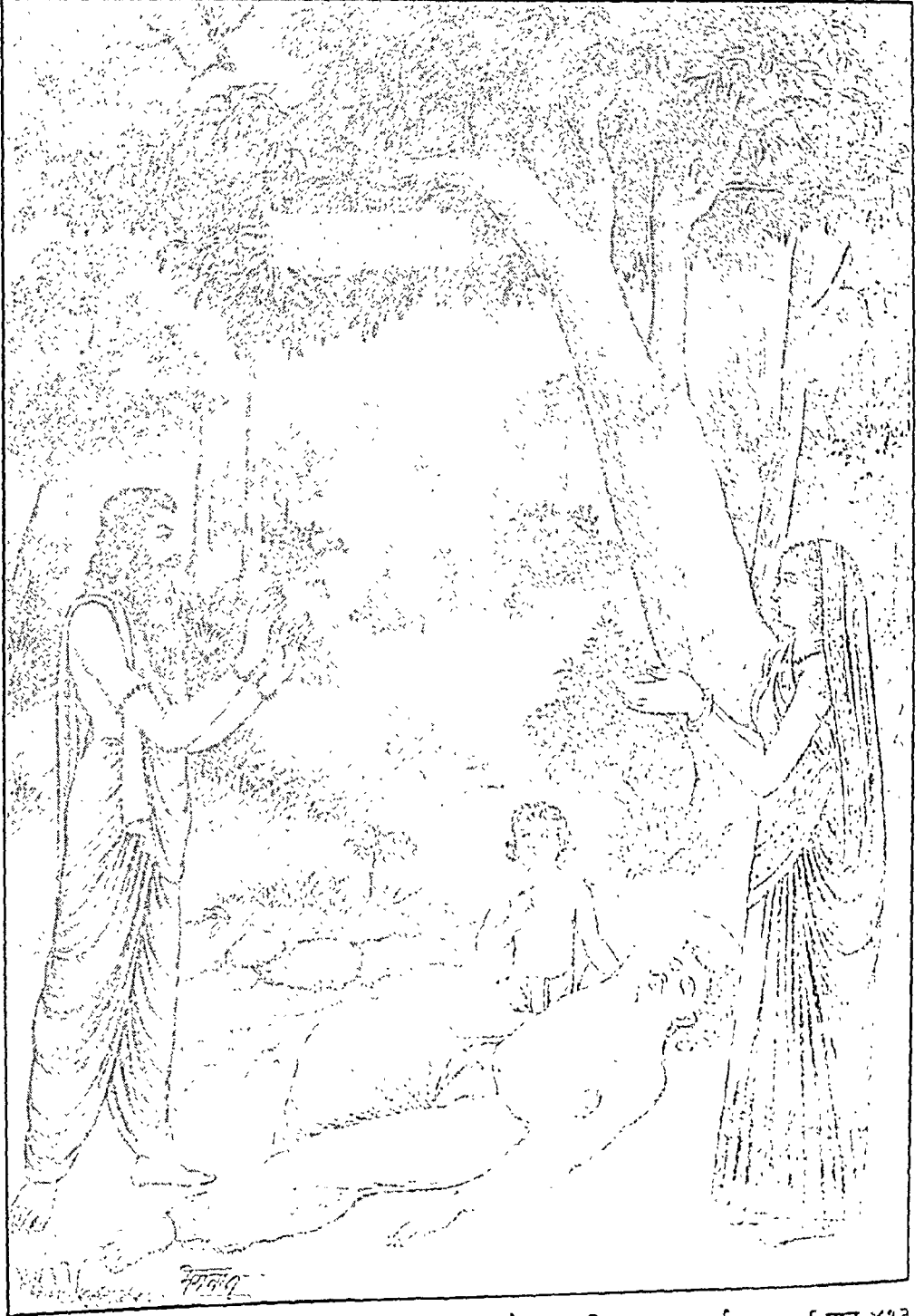
रानी सुमित्राके द्वारा अपने पति और पुत्रकी दशाका वर्णन [पृष्ठ ४१३

स्वयं भी उसमें स्नान किया । इसलिये उस तीर्थका नाम सीतासरोवर हुआ । उसमें जो मनुष्य स्नान करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाता है । विप्रवरो ! उस तीर्थमें अवगाहन करके अनेक प्रकारके दान देकर एवं बहुत दक्षिणा-वाले यज्ञोंका अनुष्ठान करके मनुष्य परमेश्वरके परम धामको जाता है ।

महापवित्र सीताकुण्डमें स्नान करके मनुष्य एकाग्र-चित्त हो मङ्गलतीर्थकी यात्रा करे । वहाँ भगवान् विष्णुकी प्यारी पत्नी लक्ष्मीजी सदा निवास करती हैं । पूर्वकालमें मनोजव नामसे प्रसिद्ध एक चन्द्रवंशी राजा हो गये हैं । उन्होंने प्रतिवर्ष यज्ञोंद्वारा देवताओंको, अन्नराशिसे ब्राह्मणोंको तथा श्राद्धसे पितरोंको तृप्त किया । वे निरन्तर वेदोंका स्वाध्याय किया करते थे । इस प्रकार राजा मनोजव धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते थे । उनके शासनकालमें उस राज्यमें एक भी शत्रु नहीं रह गया था, इससे राजाके मनमें अहङ्कार उत्पन्न होगया । जहाँ अहङ्कार होता है, वहाँ लोभ, मद, काम, क्रोध, हिंसा तथा मोहमें डालनेवाली असूया—ये सभी प्रकट हो जाते हैं । और जिस पुरुषमें ये उत्पन्न होते हैं, वह पुत्र-पौत्र तथा सम्पत्तियोंके साथ प्राणोंसे भी हाथ धो बैठता है । उस राजाके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं ब्राह्मणोंके गाँवोंमें कर लगाऊँगा । मनसे ऐसा निश्चय करके उसने वही किया । शिव और विष्णु आदि देवताओंके भी धन उसने ले लिये । अहङ्कारने उसकी विवेक-बुद्धिको नष्ट कर दिया था। इसलिये उसने ब्राह्मणोंके खेत छीन लिये थे । इस दुष्कर्म-का परिणाम यह हुआ कि एक बलवान् शत्रुने आकर उसके नगरको घेर लिया । रणदेशके राजा गोलभ ही उसके शत्रु बन बैठे । गोलभने चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आक्रमण किया । दुरात्मा मनोजवका गोलभके साथ छः महीनेतक युद्ध चलता रहा। अन्तमें गोलभकी जीत हुई । मनोजव पराजित होकर राज्यसे वञ्चित हो गया । उसने अपनी स्त्री और पुत्रके साथ वनका आश्रय लिया। गोलभ उस राज्यका पालन करते हुए दीर्घकालतक मनोजवपुरमें टिके रहे । इधर एक दिन मनोजवका बालक पुत्र क्षुधासे पीड़ित हो माता-पितासे खानेके लिये अन्न माँगने लगा—'पिताजी ! मुझे खानेको दो। मा ! मुझे भोजन दो, बहुत भूख लगी है ।' पुत्रका यह करुणाजनक वचन सुनकर माता-पिता शोकसे पीड़ित हो सहसा मूर्छित हो गये । कुछ चेत होनेपर राजाने अपनी स्त्रीसे कहा—'सुमित्रे ! मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरी क्या गति होगी ? मेरा यह पुत्र भूखसे पीड़ित होकर थोड़ी ही देरमें मर जायगा। हाय ! मैंने ब्राह्मणोंके खेत छीन लिये, विष्णु और शिव आदि देवताओंके धनका हरण कर लिया । इस प्रकार दुष्कर्मकी अधिकताके कारण ही गोलभने मुझे परास्त किया है। मेरे पास अन्नका एक दाना भी नहीं है। मैं निर्धन हूँ, दुखी हूँ और स्वयं भी भूखा-प्यासा हूँ। इस समय इस भूखे बालकको कैसे अन्न दूँगा ?'

इस प्रकार विलाप करता हुआ राजा मनोजव अत्यन्त खिन्न हो पृथ्वीपर गिर पड़ा और मूर्छित हो गया । सुमित्रा पतिको इस प्रकार गिरा हुआ देख उसे हृदयसे लगाकर विलाप करने लगी । उसी समय मुनिवर पराशरजी स्वेच्छासे घूमते हुए वहाँ आ गये । उन्हें देखकर पतिव्रता सुमित्राने पुत्रसहित उठकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया । पराशरजीने सुमित्राको आश्वासन देते हुए पूछा—'सुन्दरी ! तुम कौन हो ? यह कौन तुम्हारे आगे पड़ा हुआ है और यह बालक कौन है ?'

पतिव्रता सुमित्रा बोलीं—मुनिश्रेष्ठ ! ये मेरे पति हैं। हम दोनोंसे उत्पन्न यह चन्द्रकान्त हमारा पुत्र है। मेरे पतिदेव चन्द्रवंशी राजा मनोजव हैं। ये विक्रमाढ्यके पुत्र हैं। मैं इनकी पतिव्रता पत्नी सुमित्रा हूँ। गोलभने राजा मनोजवको युद्धमें परास्त किया है । ये राज्यसे भ्रष्ट हो अवलम्बशून्य होकर पत्नी और पुत्रके साथ इस भयङ्कर वनमें चले आये हैं। यहाँ मेरे भूखे पुत्रने हम दोनोंसे भोजन माँगा है। राजा अन्नहीन होनेके कारण पुत्रको क्षुधासे व्याकुल देख शोकसे मूर्छित हो गिर पड़े हैं।

रानीकी यह बात सुनकर दयालु पराशर मुनिने कहा—सुमित्रे ! तुमको किसी प्रकारका भय नहीं होना चाहिये। अब तुमलोगोंका अमङ्गल शीघ्र ही नष्ट हो जायगा। यों कहकर मन्त्र-जप करते हुए भगवान् शङ्करका ध्यान करके पराशरजी-ने अपने हाथसे राजाका स्पर्श किया। महामुनिके हाथका स्पर्श पाते ही राजा मनोजव मूर्च्छा त्यागकर सहसा उठ बैठे और पराशर मुनिको प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—'मुने ! आज आपके चरणकमलोंके सेवनसे मेरी मूर्च्छा शीघ्र ही दूर हो गयी और मेरे सब पातकोंका भी नाश हो गया। जो पुण्यात्मा नहीं है, उसको आपका दर्शन कदापि नहीं हो सकता। मुझे शत्रुओंने अपने नगरसे बाहर निकाल दिया है। आप अपनी कृपादृष्टिसे देखकर मेरी रक्षा कीजिये ।'

पराशरजी बोले—राजन् ! तुम्हें शत्रुपर विजय पानेके लिये मैं एक उपाय बतलाता हूँ । परम पुण्यमय गन्धमादन

पर्वतपर जहाँ श्रीरामचन्द्रजीका परम पुण्यमय सेतु है, वहाँ सब ऐश्वर्योंको देनेवाला मङ्गलतीर्थ विद्यमान है। उस सरोवरमें सब लोगोंका उपकार करनेके लिये रघुनाथजी लक्ष्मीस्वरूपा सीताजीके साथ सदैव स्थित रहते हैं। तुम पुत्र और स्त्री-सहित वहाँ जाकर भक्तिपूर्वक स्नान करो। उस तीर्थके प्रभावसे तुम्हें शीघ्र ही सब प्रकारके मङ्गलोंकी प्राप्ति होगी और युद्धमें शत्रुओंको जीतकर पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लोगे।

ऐसा कहकर राजा, रानी और बालक इन तीनोंके साथ पराशर मुनि मङ्गलतीर्थमें स्नानके उद्देश्यसे रामसेतुपर गये। वहाँ विधिपूर्वक सङ्कल्प लेकर मुनिश्रेष्ठ पराशरने स्वयं स्नान किया और राजा आदिसे भी विधिपूर्वक स्नान करवाया। राजा, रानी और राजकुमारने वहाँ तीन महीनेतक नियमपूर्वक स्नान किया। तत्पश्चात् मुनिने राजाको रामजीके एकाक्षर मन्त्रका, जो सब अनर्थोंका नाश करनेवाला है, उपदेश दिया। राजाने चालीस दिनोंतक विधिपूर्वक उस एकाक्षर मन्त्रका जप किया। इस प्रकार मन्त्र जपते हुए राजाके आगे एक सुदृढ़ धनुष प्रकट हुआ। दो अक्षय तरकश, सोनेकी मूठवाली दो तलवारें, एक ढाल, एक गदा, एक उत्तम मुशल, एक भयङ्कर शब्द करनेवाला शङ्ख, एक घोड़ोंसे जुता हुआ रथ, सारथि, पताका, अग्निके समान प्रकाशमान सुवर्णमय कवच, हार, केयूर, मुकुट और वलय आदि आभूषण, सहस्रों दिव्य वस्त्र और दिव्य माला—ये सब वस्तुएँ उस तीर्थसे प्रकट हुईं। यह सब देखकर राजाने मुनिसे निवेदन किया। तब मुनिने तीर्थका जल लेकर उसे मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसके द्वारा राजाका अभिषेक किया।

तदनन्तर राजा मनोजव कमर कसकर युद्धके लिये तैयार हुए। उन्होंने कवच, खड्ग, धनुष और बाण धारण किया। हार, केयूर, मुकुट और कङ्कण आदिसे विभूषित हो दिव्य वस्त्र धारणकर उस घोड़े जुते हुए रथपर बैठे। महामुनि पराशरने राजाको अङ्ग, रहस्य, प्रयोग और उपसंहारकी विधिके साथ ब्रह्मास्त्र आदिका उपदेश दिया। राजाने रथसे उतरकर मुनिको प्रणाम किया और आशीर्वाद ले उनकी आज्ञा पाकर तथा उनकी परिक्रमा करके वे पत्नी और पुत्रके साथ विजयके लिये उस रथपर आरूढ़ हुए। नगरमें पहुँचकर राजाने शङ्ख बजाया। शङ्खनाद सुनकर गोलभ सेनाके साथ युद्धके लिये तुरंत ही बाहर निकला और मनोजवके साथ तीन दिनोंतक युद्ध करता रहा। चौथे दिन मनोजवने युद्धमें ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करके सेना-सहित गोलभको नष्ट कर दिया। उसके बाद स्त्री और पुत्रसहित नगरमें आकर राजा समूची पृथ्वीका पालन करने लगा। तबसे उसने कभी अहङ्कार नहीं किया। असूया आदि दोषोंको त्याग दिया। अहिंसा, इन्द्रियसंयम और धर्ममें सदा तत्पर रहने लगा। इस प्रकार सहस्रों वर्षोंतक राजाने पृथ्वीका पालन किया। फिर विरक्त होकर अपने पुत्रको राज्य दे वह गन्धमादनपर्वतपर मङ्गलतीर्थ-पर चला गया। वहाँ हृदयमें भगवान् सदाशिवका ध्यान करते हुए तपस्यामें संलग्न हो गया। तदनन्तर थोड़े ही समयमें शरीर त्यागकर मनोजवने उस तीर्थके माहात्म्यसे शिवलोकको प्रस्थान किया। उसकी पत्नी सुमित्रा भी उसके शरीरका आलिङ्गन करके चितापर आरूढ़ हो गयी और पति-लोकको प्राप्त हुई।

इसलिये मङ्गलतीर्थ सर्वथा प्रयत्न करके सेवन करने योग्य है। यह तीर्थ अतिशय सुन्दर एवं कल्याणमय है। मनुष्योंको सदा भोग और मोक्ष देनेवाला है। पापराशिरूपी तिनकों और रूईके ढेरको जलानेके लिये अग्निके समान है। इसका मोक्षके लिये सब लोग सेवन करो।

एकान्तरामनाथ, ब्रह्मकुण्ड, हनुमत्कुण्ड और अगस्त्यतीर्थका माहात्म्य

श्रीसूतजी कहते हैं—मङ्गल नामक महातीर्थमें स्नान करके पापरहित हुआ मनुष्य 'एकान्तरामनाथ' नामक उत्तम क्षेत्रमें जाय। वहाँ समस्त लोगोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे जगदीश्वर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीता, लक्ष्मण तथा हनुमान् आदि वानरोंके साथ सदा निवास करते हैं। वहाँ 'अमृतवापिका' नामक एक पुण्यदायिनी पुष्करिणी है, जिसमें गोता लगानेवाले मनुष्योंको जरा और मृत्युका भय नहीं होता। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक उस अमृतवापीमें स्नान करता है, वह भगवान् शङ्करके प्रसादसे अमृतत्वको प्राप्त होता है। जो मनुष्य इस तीर्थमें सावधान होकर तीन वर्षोंतक स्नान करते हैं, वे मोक्षको प्राप्त होते हैं।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! उस क्षेत्रका नाम 'एकान्त-रामनाथ' कैसे हुआ?

श्रीसूतजी बोले—पूर्वकालमें दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र

जी सुग्रीव, विभीषण, लक्ष्मण और मन्त्रज्ञ हनुमान् इन सबके साथ वानरोंद्वारा बाँधे हुए सेतुपर समुद्रके बीचमें एकान्त प्रदेशमें मन-ही-मन सीताका चिन्तन करते हुए कुछ सलाह करने लगे। उस समय समुद्र अपनी उत्ताल तरङ्गोंके साथ जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। उसकी भयङ्कर ध्वनि बढ़ती ही चली जाती थी। इसलिये वे परस्परकी बातचीतको सुन नहीं पाते थे। तब श्रीरामचन्द्र-जीने समुद्रको बलपूर्वक काबूमें करके राक्षसोंको मारनेके विषयमें एकान्तमें उन सबके साथ परामर्श किया। इसीलिये उस क्षेत्रका नाम 'एकान्तरामनाथ' हो गया। उस स्थानपर आज भी समुद्रका जल निश्चल एवं शान्त दिखायी देता है। जो मनुष्य वहाँ जाकर अमृतवापीमें नियमपूर्वक स्नान करेंगे और श्रीराम आदिकी सेवामें तत्पर होंगे, वे सब मुक्तिको प्राप्त होंगे।

अमृतवापीमें स्नान और एकान्तरामनाथका सेवन करके जितेन्द्रिय मनुष्य ब्रह्मकुण्डमें स्नान करनेके लिये जाय। गन्धमादनपर्वतपर सेतुके मध्यभागमें वह महातीर्थ ब्रह्मकुण्ड विद्यमान है। ब्रह्मकुण्डका दर्शन सब पापराशि-का नाश करनेवाला है। वह लाखों ब्रह्महत्याओंका निवारण करनेवाला है। ब्रह्मकुण्डसे उत्पन्न हुए भस्मसे जो त्रिपुण्ड्र लगाते हैं, मोक्ष उनके हाथमें ही स्थित है। जो मनुष्य इस तीर्थमें आकर स्नान करते हैं, वे अवश्य ही महादेवजी-का सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं। जो एक बार ब्रह्मकुण्डमें स्नान कर लेता है, उसके लिये मोक्षधामके द्वारके कपाट खुल जाते हैं। यह उत्तम कुण्ड देवता, मनुष्य और मुनीश्वरोंसे वन्दित, सबके संसार-बन्धनका नाश करनेवाला, शुभकारक, सर्वपापहारक तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है।

महापुण्यमय ब्रह्मकुण्डमें स्नान करनेके पश्चात् एकाग्र-चित्त होकर मनुष्य हनुमत्कुण्डपर जाय। पूर्वकालमें समस्त राक्षसोंका वध हो जानेपर जब युद्ध समाप्त हो गया और श्रीरामचन्द्रजी आदि लङ्कासे लौटकर गन्धमादन पर्वतपर आ गये, तब पवनपुत्र हनुमान्‌जीने सब लोकोंका उपकार करनेके लिये अपने नामसे एक उत्तम तीर्थका निर्माण किया, जो सब तीर्थोंसे उत्तम है। उसमें स्नान करके मनुष्य सनातन शिवलोकको प्राप्त होते हैं। पूर्वकालमें धर्मसख नामसे प्रसिद्ध एक राजा राज्य करते थे। वे शत्रुविजयी, परम धार्मिक, प्रजापालनपरायण तथा नीतिमान् थे। उनके सौ पतिव्रता स्त्रियाँ थीं। किंतु उनसे कोई वंशकी वृद्धि करनेवाला पुत्र नहीं हुआ। तब राजाने ब्राह्मणोंसे कहा—'विप्रवरो! मैंने बहुत सोच-विचारकर सौ स्त्रियोंसे विवाह किया, उन सबके साथ रहते हुए मेरी वृद्धावस्था आ गयी। अतः आप बतावें, किस उपायसे मेरे बहुतसे पुत्र होंगे? मेरी सौ स्त्रियोंमेंसे प्रत्येकको एक-एक गुणवान् पुत्र हो जाय, वह यत्न सोचिये। छोटा-बड़ा अथवा दुष्कर ही कर्म क्यों न हो, यदि उससे यह कार्य सिद्ध होनेवाला हो, तो उसे मैं अवश्य करूँगा।'

राजाके इस प्रकार पूछनेपर सब ऋत्विज और पुरोहित एकत्र हो उनसे अपना निश्चय किया हुआ विचार प्रकट करते हुए बोले—'राजन्! कोई परम पवित्र गन्धमादन पर्वत है, जो दक्षिण समुद्रके बीच सेतुके रूपमें विद्यमान है। वहाँ लोकविख्यात हनुमत्कुण्ड है, जो बड़े भारी दुःखोंका नाश करनेवाला और स्वर्ग एवं मोक्षरूपी फल देनेवाला है। वह नरकोंके क्लेशका निवारण तथा दरिद्रताको दूर करनेवाला है। पुत्रहीन मनुष्योंको पुत्र और स्त्रीहीन पुरुषोंको स्त्री देने-वाला है। वहाँ संयमपूर्वक स्नान करके तुम एकाग्रचित्त हो उस तीर्थके तटपर पुत्रेष्टि यज्ञ करो। उससे तुम्हारी सौ स्त्रियोंमें प्रत्येकको एक-एक पुत्र प्राप्त हो सकता है।' यह सुन-कर राजा धर्मसख अपनी स्त्रियों, मन्त्रियों, सेवकों और पुरोहितजीको साथ ले यज्ञकी आवश्यक सामग्रीसहित दक्षिण-समुद्रके किनारे गन्धमादन पर्वतपर गये। वहाँ हनुमत्कुण्डमें जाकर उन्होंने सैनिकोंके साथ स्नान किया। इस प्रकार वे उसके किनारे एक मासतक ठहरकर प्रतिदिन स्नान करते रहे। तत्पश्चात् वसन्त आनेपर चैत्र मासमें पुरोहितसहित राजाने पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ किया। पुरोहित और ऋत्विजोंने विधि-पूर्वक सब कर्म सम्पन्न किये। सपत्नीक राजाका जब वह यज्ञ समाप्त हुआ, तब पुरोहितने हवनसे बचे हुए हविष्यको लेकर राजाकी सब स्त्रियोंको भोजन कराया। उसके बाद राजा धर्मसखने अपनी सौ पत्नियोंके साथ यज्ञान्तस्नान किया और ऋत्विजोंको बहुत-सी दक्षिणा दी। इस प्रकार यज्ञ पूरा करके मन्त्री, परिवार और पत्नियोंके साथ वे धर्मात्मा राजा प्रसन्नतापूर्वक अपनी राजधानीको लौट आये। कुछ समय-में जब दसवाँ मास व्यतीत हो गया, तब उन सौ स्त्रियोंने सौ गुणवान् पुत्रोंको जन्म दिया। ब्राह्मणो! जब वे सब पुत्र बढ़कर युवा हुए, तब राजाने उन्हें राज्य बाँटकर दे दिया और स्वयं अपनी स्त्रियोंके साथ गन्धमादन पर्वतपर हनुमत्कुण्डके किनारे जाकर तपस्या करने लगे। भगवान् शङ्करका ध्यान करते हुए तपस्यामें तत्पर हुए राजाको जब वहाँ बहुत

समय व्यतीत हो गया, तब एक दिन वे मृत्युको प्राप्त हुए। उनकी पत्नियोंने भी उन्हींका अनुसरण किया। राजाके ज्येष्ठ पुत्र सुचन्द्रने पिता-माताका दाहसंस्कार करके श्रद्धापूर्वक श्राद्धपर्यन्त सब कर्म किये। राजा पत्नियोंसहित वैकुण्ठलोकमें गये। सुचन्द्र आदि सब महातेजस्वी राजकुमार आपसमें ईर्ष्या-द्वेपका त्याग करके अपने-अपने राज्यका उपभोग करने लगे। अतः समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये मनुष्य हनुमान्‌जीके कुण्डमें स्नान करे।

हनुमत्कुण्डमें स्नान करनेके पश्चात् एकाग्रचित्त होकर अगस्त्यतीर्थमें जाय। साक्षात् अगस्त्यजीने इस तीर्थका निर्माण किया है। एक समयकी बात है, अगस्त्यजी दक्षिणके देशोंमें भ्रमण करते हुए गन्धमादन पर्वतपर गये। वहाँ गन्धमादनका माहात्म्य जानकर महर्षि अगस्त्यने अपने नामसे यह महापुण्यमय तीर्थ बनाया। वे आज भी अपनी धर्मपत्नी लोपामुद्राके साथ वहाँ निवास करते हैं। उसमें स्नान और जलपान करके मनुष्य पुनर्जन्मका भागी नहीं होता।

रामतीर्थ, लक्ष्मणतीर्थ और जटातीर्थकी महिमा

श्रीसूतजी कहते हैं—अगस्त्यतीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् सब पापोंसे मुक्त होनेके लिये परम पवित्र रामकुण्डको जाय। रघुनाथजीका वह पवित्र सरोवर पुण्यदायक तथा पापोंका अपहरण करनेवाला है। रामकुण्डके किनारे किया हुआ थोड़ी दक्षिणावाला यज्ञ भी पूर्ण फल देनेवाला होता है। इसी प्रकार स्वाध्याय और जप भी थोड़ा भी हो, तो वहाँ पूर्ण फलद होता है। रामकुण्डके किनारे मुट्ठीभर अन्न भी यदि वेदज्ञ ब्राह्मणको दिया जाय, तो वह अनन्तगुना फल देनेवाला होता है। विप्रवरो! मुनिवर अगस्त्यके शिष्य एक मुनि थे, जो अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते थे। उनका नाम सुतीक्ष्ण था। वे भगवान् श्रीरामके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए रामकुण्डके तटपर अत्यन्त दुष्कर तपस्या करने लगे। प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजीके षडक्षर मन्त्र* रूप मन्त्रराजका पाँच हजार जप करते थे। आलस्य छोड़कर रघुनाथसरोवरके जलमें स्नान करते, भिक्षाके अन्नका नियमपूर्वक आहार करते तथा क्रोधको काबूमें और इन्द्रियोंको वशमें रखते थे। इस प्रकार उनका बहुत समय व्यतीत हो गया। एक दिन सुतीक्ष्णजी सीतासहित श्रीरामका हृदयमें ध्यान करते हुए भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे।

सुतीक्ष्ण बोले—जानकीनाथ! आपको नमस्कार है। विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाका व्रत लेनेवाले श्रीराम! आपको नमस्कार है। कौसल्यानन्दन! आपको नमस्कार है। विश्वामित्रजीके परमप्रिय! आपको प्रणाम है। शिवधनुषको भङ्ग करनेवाले रघुवीर! आपको नमस्कार है। दशरथनन्दन विष्णो! आप परशुरामजीको जीतनेवाले हैं, आपको प्रणाम है। समुद्रके गर्वको हरनेवाले और उसमें सेतुनिर्माण करनेवाले आपको प्रणाम है।

इस प्रकार सुतीक्ष्णजी श्रीरामचन्द्रजीमें चित्त लगाकर प्रतिदिन उनकी स्तुति करते हुए समय बिताते थे। सदा श्रीरामके षडक्षर मन्त्रका जप, उनकी स्तुति और रामकुण्डमें स्नान आदि करते हुए उनकी श्रीरामचन्द्रजीमें अत्यन्त निर्मल एवं निश्चल भक्ति हो गयी। उन्हें आत्मसाक्षात्कार करानेवाला अद्वैत विज्ञान प्राप्त हुआ और बिना पढ़े हुए ही तीनों वेदोंका ज्ञान हो गया। बिना सुनी हुई बातको भी जान लेना, दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना, आकाशमें विचरण करना, समस्त कलाओंमें निपुण हो जाना, जो शास्त्र कभी नहीं सुने गये, उनका भी बिना गुरुके ही ज्ञान हो जाना, सब लोकोंमें बेरोक-टोक आना-जाना, इन्द्रियातीत विषयोंका भी साक्षात्कार होना, देवताओंसे वार्तालाप होना, चींटी आदि जन्तुओंकी भी बातें समझ लेना तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिवके लोकोंमें भी चला जाना आदि जो योगियोंको प्राप्त होनेवाली एवं अन्यान्य दुर्लभ सिद्धियाँ हैं, वे सभी श्रीरामतीर्थके सेवनसे सुतीक्ष्णजीको प्राप्त हो गयीं। उस तीर्थका ऐसा ही प्रभाव है। वह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। उसके द्वारा बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वह अपमृत्युनिवारक, भोग-मोक्षदायक तथा नरकसम्बन्धी क्लेशोंको दूर करनेवाला है। वह तीर्थ सदा श्रीरामचन्द्रजीकी भक्ति देनेवाला तथा संसारबन्धनका नाश करनेवाला है। रामतीर्थके तटपर समस्त लोकोंपर अनुग्रहकी इच्छासे महान् शिवलिङ्ग प्रकट हुआ है। उस तीर्थमें स्नान करके उक्त शिवलिङ्गका दर्शन करनेसे मनुष्योंको मोक्षतक प्राप्त हो जाता है, फिर अन्य विभूतियोंकी तो बात ही क्या है?

तारकब्रह्म श्रीरामचन्द्रजीके तीर्थमें स्नान करनेके अनन्तर चित्तको एकाग्र करके श्रीलक्ष्मणजीके तीर्थमें जाय। उसमें स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हुआ मनुष्य निर्मल भक्तिसे

* 'ॐ रामाय नमः' यह षडक्षर मन्त्र है।

प्राप्त होता है। लक्ष्मणतीर्थके तटपर जो उनके मन्त्रका जप करता है, वह सब शास्त्रोंका विद्वान् और चारों वेदोंका ज्ञाता होता है। उसके तटपर लक्ष्मणजीने महान् शिवलिङ्गकी स्थापना की है। जो उस तीर्थमें स्नान करके लक्ष्मणेश्वरका सेवन करता है, वह इस संसारमें दरिद्रता, रोग और संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है।

लक्ष्मणजीके महान् तीर्थमें स्नान करके अपने चित्तकी शुद्धिके लिये जटातीर्थमें जाना चाहिये। पूर्वकालमें साक्षात् भगवान् शङ्करने गन्धमादन पर्वतपर सबके उपकारके लिये इस अज्ञाननाशक तीर्थको प्रकट किया है। रावणके मारे जानेपर धर्मात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने जिस जलमें अपनी जटाको धोया था, वही जटातीर्थ कहलाता है। उसमें स्नान करनेवाले मनुष्योंके अन्तःकरणकी शुद्धि हो जाती है। उससे ज्ञान होता है और उस ज्ञानसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। वह अखण्ड सच्चिदानन्दस्वरूपसे स्थित होता है। पूर्वकालमें मुनिश्रेष्ठ व्यासजीको प्रणाम करके शुकदेवजीने पूछा—'तात! जिससे अन्तःकरणकी शुद्धि, अज्ञानका नाश, ज्ञानका उदय और अन्तमें सनातन मुक्ति प्राप्त हो, वह उपाय मुझे बतलाइये।'

व्यासजी बोले—बेटा शुकदेव! महापुण्यमय गन्धमादन पर्वतपर जो रामसेतु है, वहाँ सब पापोंका नाश करनेवाला जटातीर्थ है। वह अविद्याकी ग्रन्थिको भेदन करनेवाला, अन्तःकरणको शुद्ध बनानेवाला तथा मनुष्योंके जन्म-मृत्यु आदि भयका नाश करनेवाला है। वहाँ दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने अपनी जटा धोयी है और उस तीर्थको यह वरदान दिया है कि 'यज्ञ, ज्ञान, जप और उपवासके बिना ही केवल जटातीर्थमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्योंकी बुद्धि शुद्ध हो जायगी।'

शुक! वरुणनन्दन भृगुने पूर्वकालमें अपने पितासे जब बुद्धिको शुद्ध करनेवाले शुभ एवं पावन उपायके विषयमें प्रश्न किया, तब वरुणने उन्हें जटातीर्थमें स्नान करनेकी सलाह दी। पिताके कहनेसे भृगुजी जटातीर्थमें गये और वहाँ स्नान करनेसे उनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी। तत्पश्चात् वे अद्वैत बोध प्राप्त करके अखण्ड सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्णतम परमात्मरूपसे स्थित हुए। इसी प्रकार शिवजीके अंश दुर्वासा भी जटातीर्थमें स्नान करनेसे अन्तःशुद्धिको प्राप्त हो ब्रह्मानन्दमय हो गये। जो अपने अज्ञानका नाश चाहता है, वह सब पापोंका नाश करनेवाले पुण्यमय परम शुद्ध जटातीर्थमें स्नान करे। इसलिये तुम जटातीर्थमें जाओ और मनको शुद्ध करनेवाले उस पुण्यदायक तीर्थमें स्नान करो।

पिताकी बात मानकर शुकदेवजी महापुण्यमय रामसेतु-रूप गन्धमादन पर्वतपर गये और शुद्धिदायक जटातीर्थमें स्नान करनेकी इच्छासे सङ्कल्प करके उसमें स्नान किया। इससे अन्तःशुद्धिको पाकर अज्ञानका नाश हो जानेपर वे अपने परमानन्दस्वरूपको प्राप्त हो गये। दूसरे लोग भी, जो मनकी शुद्धि चाहते हैं, जटातीर्थमें भक्तिपूर्वक स्नान करें। वेदोंके प्रवचनसे, पुण्यसे, यज्ञ, दान, तप और व्रतसे तथा उपवास, जप और योगसे भी मनुष्योंके मनकी शुद्धि होती है, किंतु परमपावन जटातीर्थमें स्नान कर लेनेपर इन पूर्वोक्त साधनोंके बिना भी निश्चितरूपसे मनकी शुद्धि हो जाती है। इस प्रकार यह जटातीर्थका माहात्म्य बतलाया गया।

लक्ष्मीतीर्थ और अग्नितीर्थका माहात्म्य—पिशाचयोनिको प्राप्त हुए दुष्पण्यका उद्धार

श्रीसूतजी कहते हैं—सब पातकोंका नाश करनेवाले जटातीर्थमें स्नान करके विशुद्ध चित्तवाला पुरुष लक्ष्मीतीर्थको जाय। जो-जो कामना मनमें रखकर मनुष्य लक्ष्मीतीर्थमें स्नान करता है, वह उसे प्राप्त कर लेता है। लक्ष्मीतीर्थ बड़ी भारी दरिद्रताकी शान्ति करनेवाला, महान् धन-धान्यकी समृद्धि देनेवाला, बड़े-बड़े दुःखोंका नाश करनेवाला और

र् वैभवको बढ़ानेवाला है। वह स्वर्ग और मोक्ष ाला, महान् ऋणसे छुटकारा दिलानेवाला तथा श्रेष्ठ प्रदान करनेवाला है। ब्राह्मणो! इस प्रकार यह ीतीर्थका माहात्म्य बतलाया गया।

इस तीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् अग्नितीर्थको जाय। महापुण्यमय और महापातकोंका विनाशक है। पूर्वकालमें ाको उसकी सेनासहित मारकर तथा विभीषणको का राजा बनाकर दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी जब ' और लक्ष्मणके साथ सेतुमार्गसे गन्धमादन पर्वतपर , तब लक्ष्मीतीर्थके किनारे ठहरकर उन्होंने देवताओं, यों और पितरोंके समीप वहाँ अग्निदेवका आवाहन ।। तब लक्ष्मीतीर्थसे कुछ दूरपर अग्निदेव महासागरसे ' उठे और मानवरूपधारी श्रीरघुनाथजीको देखकर नकार बोले—'राम! राक्षसोंको भय देनेवाले महाबाहु म! आपने जो रावणका वध किया है, वह जानकीजीके त्य धर्मके बलसे ही सम्भव हुआ है। यह बात सत्य त्य है, सत्य है। ये साक्षात् जगन्माता लक्ष्मी हैं। इन्होंने के लिये मानव-शरीर धारण किया है। जब आप ारीरमें स्थित होते हैं, तब ये भी दिव्य देहसे आपकी सेवा ो हैं। आपने मानवशरीर धारण किया है, इसलिये ये मानवकन्याके रूपमें प्रकट हुई हैं। आप भगवान् ुके शरीरके अनुरूप ही ये भी शरीर धारण कर लेती जगत्स्वामिन्! देवाधिदेव जनार्दन! आप जब-जब ार धारण करते हैं, तब-तब ये आपकी सहायिका होती जब आप भृगुनन्दन परशुरामके रूपमें अवतीर्ण हुए तब ये धरणी नामसे प्रकट हुई थीं। इस समय आपके ये जनकनन्दिनी सीताके रूपमें प्रकट हुई हैं और ष्यमें जब आप श्रीकृष्ण अवतार लेंगे, तब ये रुक्मिणी ।। इसी प्रकार अन्यान्य अवतारोंमें भी ये आपकी येका होती हैं। अतः रघुनन्दन! आप मेरे कहनेसे इन्हें रपूर्वक ग्रहण करें।'

अग्निका यह वचन सुनकर देवताओं और महर्षियोंने थनन्दन श्रीराम तथा जनकनन्दिनी सीताकी बार-बार सा की। श्रीरामचन्द्रजीने अग्निके साक्षी देनेसे परम ल सती साध्वी सीताको ग्रहण किया। जिस स्थानपर देव प्रकट हुए, उसीको अग्नितीर्थ समझो। अग्निके प्रकट से ही उसका नाम अग्नितीर्थ हुआ। उस मोक्षदायक में भक्तिपूर्वक स्नान करके मनुष्य उपवासपूर्वक वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उन्हें वस्त्र और धन दे। ऐसा करनेसे वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

पूर्वकालकी बात है, पाटलिपुत्रमें पशुमान् नामक एक वैश्य रहते थे। वे सदा धर्ममें तत्पर और ब्राह्मणोंकी सेवामें संलग्न रहा करते थे। सदा कृषि और गोरक्षा करते हुए पशुमान् बाजारकी गलियोंमें धर्मतः सुवर्ण आदिका विक्रय किया करते थे। उनके तीन स्त्रियाँ थीं, जो सदा पतिकी सेवामें लगी रहती थीं। उन तीनों स्त्रियोंसे सुपण्य आदि आठ पुत्र उत्पन्न हुए। वे जब पाँच वर्षके हो गये तब उन्हें कर्तव्यकी शिक्षा दी जाने लगी। वे धीरे-धीरे खेती, गोरक्षा और व्यापारका काम भलीभाँति सीख गये। सुपण्य आदि सात पुत्र पिताकी बात सुनते और पशुमान् जो कहते उस कार्यको तत्काल पूरा करते थे। उन्होंने सोनेके कारबारमें भी अत्यन्त कुशलता प्राप्त कर ली।

किंतु वैश्यका आठवाँ पुत्र 'दुष्पण्य' बचपनसे ही खोटे मार्गपर चलने लगा। वह पिताकी बात नहीं सुनता था। दुष्पण्य बाल्यकालसे ही बालकोंको सताया करता था। पशुमान्ने उसे दुष्कर्मपरायण देखकर भी 'यह नादान है' ऐसा कहकर उसकी उपेक्षा कर दी। तदनन्तर वैश्यके आठों पुत्र युवावस्थाको प्राप्त हुए। आठवाँ पुत्र दुष्पण्य नगरके बालकोंको दोनों हाथोंमें पकड़ लेता और कुआँ, नदी या तालाबमें फेंक देता था। उसके इस दुश्चरित्रको कोई नहीं जानता था। जलमें उनका शव देखकर लोग उनका संस्कार करते थे। तब पुरवासियोंने आकर राजासे यह वृत्तान्त निवेदन किया। उनका वचन सुनकर राजाने ग्रामरक्षकोंको बुलाया और यह आज्ञा दी—'बालकोंकी मृत्युका क्या कारण है, इसका पता लगाओ।' ग्रामरक्षक बालकोंके मारे जानेके रहस्यका पता लगाने लगे। किंतु बहुत खोज करनेपर भी उन्हें उस बालघातकका पता नहीं लगा। वे डरते हुए राजाके पास गये और बोले—'महाराज! हम बहुत खोज करनेपर भी यह न जान सके कि कौन इस नगरमें रहकर निरन्तर बालकोंकी हत्या करता है।'

तदनन्तर किसी समय वह वैश्य बालक अन्य पाँच बालकोंके साथ कमल निकालकर ले आनेके बहाने सरोवरके निकट गया। वहाँ उसने उन बालकोंको जबरदस्ती पकड़कर पानीमें डुबो दिया। वे बालक चीखते-चिल्लाते रहे

तो भी उस क्रूरात्माने उन्हें कण्ठतक पानीमें ले जाकर डुबा दिया। उन सबको मरा हुआ जानकर दुष्पण्य शीघ्र अपने घरको चला गया। उन पाँचों बालकोंके पिता अपने पुत्रोंको नगरमें ढूँढ़ने लगे। वे पाँचों बालक अधिक छोटे नहीं थे। पानीमें डाल देनेपर भी वे मर न सके, धीरे-धीरे सरोवरके किनारे आ गये और वहीं घूमते रहे। इतनेमें ही अपने बन्धुओंद्वारा नाम ले-लेकर पुकारनेकी आवाज उन्हें दूरसे सुनायी दी। तब उन्होंने भी जोरसे बोलकर उत्तर दिया। बालकोंकी आवाज सुनकर उनके पिता सरोवरके तटपर गये। वहाँ उन्हें जीवित देखकर उन सबको बड़ा हर्ष हुआ। फिर पिता आदिने पूछा—'तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हुई?' तब बालकोंने दुष्पण्यके उस दुष्कर्मका वृत्तान्त अपने बन्धुओंको कह सुनाया। यह बात जानकर पुरवासियोंने राजाको इसकी सूचना दी। राजाने पशुमान्‌को बुलाकर कहा—'पशुमन्! यह नगर बहुतसे बालकोंसे भरा-पूरा रहा है, किंतु तुम्हारे दुरात्मा पुत्रने इसे प्रायः सूना कर दिया। अभी-अभी इन बालकोंको उसने जलमें डुबो दिया था, परंतु दैवयोगसे ये जीवित निकल आये हैं। बताओ, इस समय क्या करना चाहिये? मैं तुम्हींसे पूछता हूँ, क्योंकि तुम सदा धर्ममें तत्पर रहते हो।'

राजाके ऐसा कहनेपर धर्मज्ञ पशुमान्‌ने कहा— राजन्! जिसने सारे नगरको सूना कर दिया है, वह वधके ही योग्य है। इस विषयमें कुछ पूछनेकी बात ही नहीं है। यह अत्यन्त पापात्मा मेरा पुत्र नहीं, शत्रु ही है। जिसने इस नगरको बालकोंसे खाली कर दिया, उस दुष्टके उद्धारका मुझे कोई उपाय नहीं दिखायी देता। मैं सच कहता हूँ, इस दुष्टात्माको प्राणदण्ड दिया जाय। पशुमान्‌का यह वचन सुनकर समस्त पुरवासी पशुमान्‌की प्रशंसा करते हुए राजासे बोले—'महाराज! इस दुष्टको मारा न जाय अपितु चुपचाप नगरसे निकाल दिया जाय।' तब राजाने दुष्पण्यको बुलाकर कहा—'ओ दुष्टात्मन्! तू शीघ्र हमारे राज्यसे बाहर चला जा। यदि यहाँ रहेगा, तो मैं तेरा वध कर डालूँगा।' इस प्रकार डाँट बताकर राजाने दूतोंद्वारा उसे नगरसे निर्वासित कर दिया।

तदनन्तर दुष्पण्य भयभीत हो उस देशको छोड़कर मुनिमण्डलीसे युक्त वनमें चला गया। वहाँ जाकर भी उसने एक मुनिके बालकको जलमें डुबो दिया। कुछ बालक खेलनेके लिये गये हुए थे, उन्होंने उस बालकको मरा हुआ देख अत्यन्त दुखी हो उसके पितासे यह समाचार कहा। तब उग्रश्रवाने बालकोंसे अपने पुत्रके मारे जानेका समाचार सुनकर तपके प्रभावसे दुष्पण्यके चरित्रको जान लिया और उसे शाप देते हुए कहा—'अरे, तूने मेरे पुत्रको पानीमें फेंककर मार डाला है, इसलिये तेरी मृत्यु भी जलमें ही डूबनेसे होगी और मरनेके बाद तू दीर्घकालतक पिशाच बना रहेगा।' यह शाप सुनकर दुष्पण्यको बड़ा दुःख हुआ तथा वह उस वनको छोड़कर सिंह आदि क्रूर जन्तुओंसे युक्त दूसरे भयङ्कर वनमें चला गया। वहाँ बड़े जोरकी वर्षा और आँधी चलने लगी। दुष्पण्यने देखा एक मरे हुए हाथीका सूखा कङ्काल पड़ा है। उस समय आँधी और प्रचण्ड वर्षाके कष्टको न सह सकनेके कारण वह उस हाथीके पेटकी गुफामें घुस गया। फिर बड़ी भारी वर्षा हुई। जलका महान् प्रवाह हाथीके पेटमें भी भर गया। हाथीका शव उस महाप्रवाहमें बहते-बहते समुद्रमें चला गया। दुष्पण्य उस जलमें डूबकर क्षणभरमें प्राणहीन हो गया। मृत्युके बाद उसे पिशाचकी योनि मिली। भूख-प्याससे पीड़ित होकर वह भयानक रूपधारी पिशाच अनेक प्रकारके दुःख सहता हुआ गहन वनमें रहने लगा। एक वनसे दूसरे वनमें दौड़ता और कष्ट भोगता हुआ वह क्रमशः दण्डकारण्यमें आया। वहाँ उसने उच्चस्वरसे पुकार लगायी—'हे तपस्वी महात्माओ! आपलोग बड़े कृपालु और सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं। मैं दुःखसे अत्यन्त पीड़ित हूँ। अतः मुझे अपनी दयादृष्टिसे अनुगृहीत करें। पूर्वकालमें मैं पाटलिपुत्र नगरमें पशुमान्‌का पुत्र दुष्पण्य नामक वैश्य था। उस समय मैंने बहुतसे बालकोंकी हत्या की। अब मैं पिशाचयोनिको प्राप्त हुआ हूँ। भूख-प्यास सहन करनेकी मुझमें शक्ति नहीं रह गयी है। अतः आपलोग कृपा करके मेरी रक्षा करें। तपोधनो! जिस प्रकार मैं पिशाचयोनिसे छूट जाऊँ वैसा प्रयत्न कीजिये।'

पिशाचका यह वचन सुनकर तपस्वी मुनियोंने महर्षि अगस्त्यजीसे कहा—'भगवन्! इस पिशाचके उद्धारका कोई उपाय बतलावें।' तब अगस्त्यजीने अपने प्रिय शिष्य सुतीक्ष्णको बुलाकर कहा—'वत्स सुतीक्ष्ण! तुम शीघ्र गन्धमादन पर्वतपर चले जाओ। वहाँ सब पापोंका नाश करनेवाला महान् अग्नितीर्थ है। महामते! इस पिशाचके उद्धारके उद्देश्यसे तुम उस तीर्थमें स्नान करो।' अगस्त्यजीके ऐसा कहनेपर सुतीक्ष्णजी गन्धमादन पर्वतपर गये और

अग्नितीर्थमें जाकर पिशाचके लिये स्नानका संकल्प करके वहाँ उन्होंने तीन दिनतक नियमपूर्वक स्नान किया। फिर रामनाथ आदि तीर्थोंका सेवन और स्नान करके श्रेष्ठ ब्राह्मण सुतीक्ष्णजी अपने आश्रमपर लौट आये। उस तीर्थमें स्नानके प्रभावसे वह पिशाच शीघ्र ही दिव्य देहको प्राप्त हुआ और सुतीक्ष्ण, अगस्त्य तथा अन्य तपोधनोंको बार-बार प्रणाम करके उनकी आज्ञा ले प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गलोकको चला गया।

चक्रतीर्थ, शिवतीर्थ, शङ्खतीर्थ और यमुना, गङ्गा एवं गयातीर्थकी महिमा—राजा जानश्रुतिको रैक्कके उपदेशसे ब्रह्मभावकी प्राप्ति

अग्नितीर्थमें स्नान करके शुद्धात्मा पुरुष सब पातकोंका नाश करनेवाले चक्रतीर्थकी यात्रा करे। जिस-जिस कामनाके उद्देश्यसे मनुष्य चक्रतीर्थमें स्नान करता है, उस-उसको वह प्राप्त कर लेता है। पूर्वकालमें कठोर नियमोंका पालन करनेवाले 'अहिर्बुध्न्य' नामक तपस्वी महर्षि इस गन्धमादन तीर्थमें सुदर्शनचक्रकी उपासना करते थे। वहाँ तपस्या करते हुए मुनिको भयानक-रूपधारी राक्षस सताते और उनकी तपस्यामें विघ्न डाला करते थे। तब भक्तकी रक्षा करनेके लिये सुदर्शन चक्रने आकर बाधा देनेवाले उन समस्त राक्षसोंको लीलापूर्वक मार डाला। भक्तकी प्रार्थनासे वह चक्र उसी तीर्थमें रहने लगा। तभीसे उसका नाम चक्रतीर्थ हो गया। उस तीर्थमें स्नान करनेपर सुदर्शन चक्रके प्रसादसे राक्षस और पिशाच आदिकी पीड़ा कभी नहीं होती।

श्यामलापुरमें हरिहर नामक एक ब्राह्मण निवास करते थे। वे एक दिन वनमें गये। वहाँ एक वनवासी व्याध मनोरञ्जनके लिये लक्ष्य-भेदन कर रहा था। हरिहर बाबा उसके बाणोंके लक्ष्यमें आ गये और उनके दोनों पैर कट गये। तब मुनियोंकी प्रेरणासे वे गन्धमादन पर्वतपर पहुँचाये गये और वहाँ इस तीर्थमें स्नान करनेपर उनके दोनों पैर पुनः ज्यों-के-त्यों हो गये। तबसे यह पुण्यतीर्थ मुनितीर्थ कहलाता था। आगे चलकर चक्रके नामसे यह चक्रतीर्थ कहलाने लगा। जिनके हाथ, पैर या अन्य कोई अङ्ग कट गये हों, वे उस कटे हुए अङ्गकी पूर्तिके लिये सर्वमनोरथदायक इस चक्रतीर्थका सेवन करें। इस प्रकार यह चक्रतीर्थका प्रभाव बतलाया गया।

चक्रतीर्थमें स्नान करके मनुष्य शिवतीर्थको जाय, जहाँ स्नान करनेसे कोटि-कोटि महापातक नष्ट हो जाते हैं। महापातकोंके संसर्गसे होनेवाले पाप भी उसी क्षण दूर हो जाते हैं। शिवतीर्थ महान् दुःखों और नरकके क्लेशोंका निवारण करनेवाला है तथा स्वर्ग और मोक्षको देनेवाला है।

शिवतीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् अपने पापसमुदायकी शान्तिके लिये शङ्खतीर्थकी यात्रा करे, जिसमें स्नान करनेमात्रसे कृतघ्न पुरुष भी पापमुक्त हो जाता है। पूर्वकालमें गन्धमादन पर्वतपर शङ्ख नामक मुनि निवास करते थे। वे एकाग्रचित्त हो भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए तपस्यामें संलग्न रहते थे। उन्होंने वहाँ स्नान करनेके लिये उत्तम तीर्थका निर्माण किया। शङ्खसे निर्मित होनेके कारण उसे शङ्खतीर्थ कहते हैं। उसमें स्नान करनेसे माता-पिता और गुरुसे द्रोह करनेवाले पापी तथा अन्य कृतघ्न भी मुक्त हो जाते हैं। इस कारण कृतघ्न मनुष्योंको इस तीर्थका अवश्य सेवन करना चाहिये। जो माता-पिताका पालन नहीं करता और गुरु-दक्षिणा नहीं देता, वह कृतघ्नताको प्राप्त होता है। स्वयं ही चितामें जल मरना उसका प्रायश्चित्त है। परंतु इस शङ्खतीर्थमें स्नानमात्रसे ही उस कृतघ्नताका भी प्रायश्चित्त हो जाता है।

शङ्खतीर्थमें स्नान करके मनुष्य क्रमशः यमुना, गङ्गा और गया आदि तीर्थोंकी यात्रा करे। ये तीनों तीर्थ मनुष्योंके महापातकोंका नाश करनेवाले, परम पवित्र हैं और समस्त लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा समस्त विघ्नों तथा रोगोंका निवारण हो जाता है। ये तीर्थ अज्ञानका नाश और ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। पूर्वकालमें महाराज जानश्रुतिने इन्हीं तीर्थोंमें स्नान करके द्विजश्रेष्ठ रैक्कसे उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था।

महर्षि रैक्क पहले गन्धमादन पर्वतपर रहकर अत्यन्त दुष्कर तपस्या करते थे। वे जन्मसे ही पङ्गु थे। अतः गन्धमादन पर्वतपर जो-जो तीर्थ हैं, वे उन्हींकी यात्रा करते थे; क्योंकि वे सब समीपवर्ती थे। पैदल न चल सकनेके कारण वे गाड़ीसे ही उन तीर्थोंमें जाते थे। इसीलिये गाड़ीवाले रैक्कके नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। उन्होंने तपस्यासे अपना शरीर सुखा डाला था। उनके उस शरीरमें खाज हो गयी थी, जिसे वे दिन-रात खुजलाते रहते थे। फिर भी उन्होंने तपस्या नहीं छोड़ी। एक दिन उनके मनमें ऐसा विचार हुआ कि 'मैं यमुना, गङ्गा और गया—इन तीनों पवित्र तीर्थोंमें स्नान

करूँ; परंतु मैं तो जन्मसे ही पङ्गु हूँ, अतः मेरे लिये वहाँका स्नान दुर्लभ है। गाड़ीसे इतनी दूरकी यात्रा नहीं की जा सकती। तब इस समय मैं क्या करूँ?' इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए महाबुद्धिमान् रैक्कने तीनों तीर्थोंमें स्नान करनेके सम्बन्धमें अपने कर्तव्यका निश्चय किया। उन्होंने सोचा—'मेरा तपोबल दुर्धर्ष एवं असह्य है, उसीके द्वारा मैं यहाँ उक्त तीर्थोंका आवाहन करूँगा।' मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके वे पूर्वाभिमुख बैठे, मन-इन्द्रियोंको संयममें रखकर तीन बार आचमन किया और एक क्षणतक ध्यानमें लगे रहे। उनके मन्त्रके प्रभावसे महानदी यमुना, गङ्गा और पापनाशिनी गया—तीनों भूमि फोड़कर सहसा पातालसे प्रकट हुईं और मानव-शरीर धारणकर गाड़ीवाले रैक्कके समीप आ उन्हें प्रसन्न करती हुई प्रसन्नतापूर्वक बोलीं—'रैक्क! तुम्हारा कल्याण हो, इस ध्यानसे निवृत्त होओ। तुम्हारे मन्त्रसे आकृष्ट हो हम तीनों यहाँ उपस्थित हुई हैं।'

उनका यह वचन सुनकर महामुनि रैक्क ध्यानसे निवृत्त हुए और उन्हें अपने सामने उपस्थित देखा। तब उन्होंने उन तीनोंका पूजन करके कहा—'हे यमुने! हे देवि गङ्गे! और हे पापनाशिनी गये! तुम तीनों गन्धमादन पर्वतपर वहीं निवास करो, जहाँ भूमि फोड़कर यहाँ प्रकट हुई हो। वे स्थान तुम्हारे नामसे पवित्र तीर्थ हो जायँ।' तब वे तीनों देवियाँ 'तथास्तु' कहकर सहसा अन्तर्धान हो गयीं। तबसे ये तीनों तीर्थ भूतलमें मनुष्योंद्वारा उन्हींके नामसे पुकारे जाते हैं। जहाँ भूमि फोड़कर यमुना निकली, उसी स्थानको लोग 'यमुनातीर्थ' कहते हैं, जहाँ पृथ्वीके छिद्रसे सहसा गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ, वह स्थान लोकमें पापनाशक 'गङ्गातीर्थ'के नामसे विख्यात हुआ और जहाँ गयाका प्रादुर्भाव हुआ, वह भूमि-विवर 'गयातीर्थ' कहलाता है। इस प्रकार वे तीनों तीर्थ बड़े पवित्र हैं। जो मनुष्य इन उत्तम तीर्थोंमें स्नान करते हैं, उनके अज्ञानका नाश और ज्ञानका उदय होता है। रैक्क मुनि अपने मन्त्रद्वारा आकर्षित किये हुए उन तीनों तीर्थोंमें स्नान करते हुए समय व्यतीत करने लगे।

इसी समय महाराज जानश्रुति इस भूतलपर राज्य करते थे। वे राजर्षि पुत्रके पौत्र थे और एकमात्र धर्मके आचरणमें ही संलग्न रहते थे। याचकोंको श्रद्धापूर्वक अन्न आदि देते थे। अतः मुनिलोग उन्हें लोकमें 'श्रद्धादेय' कहते थे। भूखे याचकोंकी तृप्तिके लिये उस अन्न-धन-सम्पन्न राजाके यहाँ नाना प्रकारके व्यञ्जन पकाये जाते थे, इसलिये सब याचकोंने उनका नाम 'बहुवाक्य' रख दिया था। जनश्रुतके पुत्र महाबली जानश्रुतिको अतिथि बहुत प्रिय थे। इसलिये वे बहुत दान करनेके कारण 'बहुदायी'के नामसे प्रसिद्ध हुए। नगरोंमें, राज्यमें, गाँवों और जंगलोंमें, चौराहोंपर तथा सभी बड़े-बड़े मार्गोंमें उनकी ओरसे खाने-पीनेकी बहुत सामग्री प्रस्तुत रहती थी। अतिथियोंकी तृप्तिके लिये वे अन्न, पान, दाल, साग आदि उत्तम भोजनकी व्यवस्था रखते थे। उस पौत्रायण राजाके गुणोंसे महाभाग देवर्षि बहुत सन्तुष्ट हुए। उन सबके मनमें राजाके ऊपर कृपा करनेकी इच्छा हुई। एक दिन राजा जानश्रुति गरमीकी रातमें अपने महलके भीतर खिड़कीके पास सो रहे थे। उसी समय देवर्षिगण हंसका रूप धारण करके एक पंक्तिमें आकाशमार्गसे उड़ते हुए आये और राजाके ऊपर होकर जाने लगे। उस समय बड़े वेगसे उड़ते हुए एक हंसने आगे जानेवाले हंसको सम्बोधित करके राजाको सुनाते हुए उपहासपूर्वक कहा—'भल्लाक्ष! अरे ओ भल्लाक्ष! क्या आगे-आगे जाता हुआ तू अन्धोंकी नाईं देखता नहीं है कि आगे पूजनीय राजा जानश्रुति विराजमान हैं? यदि तू उन राजर्षिको लाँघकर ऊपर जायगा, तो उनका तेज इस समय तुझे जलाकर भस्म कर डालेगा।' ऐसा कहते हुए उस हंसको आगे जानेवाले हंसने उत्तर दिया—'अहो! तुम तो बड़े ज्ञानी हो, विद्वानोंके द्वारा भी प्रशंसनीय हो, तथापि इस तुच्छ मनुष्यकी इतनी प्रशंसा क्यों करते हो? यह धर्मोंके रहस्यको नहीं जानता, जैसा कि ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ गाड़ीवाले रैक्क मुनि जानते हैं। इस राजाका तेज उनके समान नहीं है। रैक्ककी पुण्यराशियोंकी इयत्ता (संख्या) नहीं हो सकती। पृथ्वीके धूलिकण गिने जा सकते हैं, आकाशके नक्षत्र भी गणनामें आ सकते हैं, परंतु रैक्क मुनिके महामेरु-सदृश पुण्यपुञ्जोंकी गणना नहीं की जा सकती। राजा जानश्रुतिमें तो वैसा धर्म ही नहीं है, फिर वह ज्ञान-वैभव कहाँसे हो सकता है। अतः इस तुच्छ मनुष्यकी चर्चा छोड़कर उसी गाड़ीवाले रैक्क मुनिकी प्रशंसा करो। उन्होंने जन्मसे पङ्गु होकर भी स्नान करनेकी इच्छासे मन्त्रद्वारा यमुना, गङ्गा और गयाको भी अपने आश्रमके समीप बुला लिया है।'

आगे जानेवाला हंस जब ऐसा कहकर चुप हो गया, तब वे हंसरूपधारी देवर्षि पुनः ब्रह्मलोकको चले गये। तदनन्तर पौत्रायण राजा जानश्रुति रैक्व मुनिकी उन्नतिकी चरम सीमा-पर पहुँचे हुए सुनकर बहुत उदास हो गये और बारंबार लंबी साँस खींचते हुए विचार करने लगे—'उस हंसने रैक्कको

ऊँचा बताते हुए मुझे तुच्छ कहा था। अहो! रैक्ककी कैसी महिमा है? अब मैं संसार तथा समूचे राज्यको छोड़कर गाड़ीवाले महात्मा रैक्ककी शरणमें जाता हूँ। वे कृपानिधान मुनि अपनी शरणमें आये हुए मुझे अपनाकर आत्मज्ञानका उपदेश देंगे।' रात्रि बीतनेपर महाराज जानश्रुतिने सारथीको बुलाकर कहा—'सूत! तुम तीव्रगामी रथपर आरूढ़ हो शीघ्र जाओ और महर्षियोंके आश्रमों, पवित्र वनों, एकान्त प्रदेशों, सत्पुरुषोंके निवासस्थानों, तीर्थों, नदी-तटों तथा अन्यान्य स्थानोंमें, जहाँ मुनीश्वर लोग रहते हैं, योगीश्वर रैक्वका पता लगाओ। वे जन्मसे पङ्गु हैं, गाड़ीपर बैठे रहते हैं, सब धर्मोंके एकमात्र आश्रय हैं और ब्रह्मज्ञानकी निधि हैं। मेरी प्रसन्नताके लिये उनका शीघ्र अन्वेषण करके पुनः मेरे पास लौट आओ।'

'बहुत अच्छा' कहकर सारथी वेगवान् रथपर बैठकर नगरसे बाहर निकला। उसने ब्रह्मज्ञानी रैक्क मुनिकी सर्वत्र खोज की। अनेकों स्थानोंमें ढूँढ़नेके पश्चात् वह क्रमशः महर्षियोंसे भरे हुए गन्धमादन पर्वतपर गया। वहाँ खोजते-खोजते उसने मुनीश्वर रैक्वको देखा, जो गाड़ीपर बैठकर अपनी खाज खुजला रहे थे। वे कलारहित अद्वैत ब्रह्मके चिन्तनमें संलग्न थे। गाड़ीसहित उस महामुनिको देखकर सारथीने पहचान लिया कि यही रैक्व हैं। तब उनके पास जाकर उसने प्रणाम किया और उनके समीप बैठकर विनयपूर्वक पूछा—'ब्रह्मन्! क्या आप ही गाड़ीवाले रैक्व नामसे विख्यात हैं?' मुनि बोले—'हाँ, मैं ही गाड़ीवाला रैक्व हूँ।' मुनिका यह वचन सुनकर सारथी गन्धमादन पर्वतसे लौटा और राजाके पास पहुँचकर उसने सब समाचार निवेदन किया। तब राजा जानश्रुति छः सौ गौएँ, धन और स्वर्णमुद्राओं-का भार और खच्चरियोंसे जुता हुआ रथ अपने साथ शीघ्रतापूर्वक रैक्व मुनिके समीप चले। वहाँ पहुँचकर रैक्वसे कहा—'भगवन्! मेरी दी हुई ये सब वस्तुएँ स्[illegible] कीजिये। इन सबको लेकर मेरे लिये अद्वैत ब्रह्म[illegible] उपदेश कीजिये।' तब गाड़ीवाले रैक्वने राजा जानश्[illegible] इस प्रकार उत्तर दिया—'राजन्! ये गौएँ, यह सोनेका और यह रथ सब तुम्हारे ही पास रहें, मैं तो बहुत क[illegible] जीवित रहनेवाला हूँ। इस धनके द्वारा मेरा कौन-सा लाभ हो[illegible]

रैक्वका यह वचन सुनकर जानश्रुतिने क[illegible] ब्रह्मन्! आपके द्वारा उपदेश किये जानेवाले ब्रह्मज्ञानका [illegible] नहीं है। आप ये गाय, धन और रथ ग्रहण करें या न [illegible] किंतु मुझे निष्कल अद्वैत ब्रह्मज्ञानका उपदेश अवश्य दें।

रैक्व बोले—जिसका संसारमें वैराग्य हो और [illegible] पुण्य-पापरूप प्रारब्धका विनाश हो जाय, वही ज्ञानके उप[illegible] का भागी है। यद्यपि तुम्हें संसारसे वैराग्य हो गया है त[illegible] अभी तुम्हारे पुण्य-पापोंका विनाश नहीं हुआ है। य[illegible] तीन पवित्र तीर्थ हैं, जो समस्त मनोवाञ्छित फ[illegible] देनेवाले हैं। उनके नाम हैं—यमुनातीर्थ, गङ्गातीर्थ [illegible] गयातीर्थ। इन तीनोंमें तुम शीघ्र स्नान करो। इससे तु[illegible] सब प्रारब्ध कर्मोंका क्षय हो जायगा और अन्तःकरण [illegible] होगा। तब मैं तुमको ज्ञानका उपदेश करूँगा।'

रैक्व मुनिके ऐसा कहनेपर राजाके नेत्र हर्षसे खिल उ[illegible] उन्होंने शीघ्रतापूर्वक तीनों तीर्थोंमें स्नान किया। उस स्न[illegible] मात्रसे उनका चित्त शुद्ध हो गया। तब वे अपने गुरु रै[illegible] मुनिके पास आये। रैक्वने जानश्रुतिको कृपापूर्वक ज्ञा[illegible] उपदेश दिया। उपदेश प्राप्त होनेपर राजा अबाधित अनु[illegible] से सम्पन्न हो योगी रैक्वके प्रसादसे ब्रह्मभावको प्राप्त हो गये[illegible]

कोटितीर्थकी महिमा—भगवान् श्रीकृष्णका अवतार, कंसवध तथा श्रीकृष्णका कोटितीर्थमें स्नान

श्रीसूतजी कहते हैं—यमुना, गङ्गा और गया तीर्थमें प्रसन्नतापूर्वक स्नान करके 'कोटितीर्थ' की यात्रा करे। वह महापुण्यमय तीर्थ सब लोकोंमें विख्यात है। दुःस्वप्न, महापातक और बड़े-बड़े विघ्नोंका नाश करनेवाला तथा मनुष्योंको परम शान्ति देनेवाला है। पूर्वकालमें दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने युद्धमें रावणको मारकर गन्धमादन पर्वतपर लोकानुग्रहके लिये एक शिवलिङ्गकी स्थापना की। उस लिङ्गका अभिषेक करनेके लिये वे शुद्ध जल ढूँढ़ने लगे। किंतु वैसा जल उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। तब रघुनाथजीने मन-ही-म[illegible] गङ्गाजीका स्मरण करते हुए धनुषकी कोटिसे शीघ्र [illegible] पृथ्वीको विदीर्ण किया। श्रीरामके धनुषकी वह कोटि रसात[illegible] तक पहुँच गयी। फिर उन्होंने धनुषको पृथ्वीसे ऊपर निकाला तब उसी मार्गसे पातालगङ्गा बाहर निकल आयी। उ[illegible] जलसे श्रीरामचन्द्रजीने शिवलिङ्गका अभिषेक किया [illegible] श्रीरामचन्द्रजीकी धनुषकी कोटिसे उस तीर्थका निर्मा[illegible] हुआ था, इसलिये वह तीनों लोकोंमें 'कोटितीर्थ' के नाम[illegible]

विख्यात हुआ। गन्धमादन पर्वतपर जो-जो तीर्थ हैं, उन सबमें पहले स्नान करके पापरहित हुआ मनुष्य अवशिष्ट पापोंसे छूटनेके लिये कोटितीर्थमें स्नान करे। अन्य तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी जो पापसमुदाय नहीं नष्ट होता, वह अनेक कोटि जन्मोंका उपार्जित तथा शरीरकी हड्डियोंमें स्थित पापपुञ्ज कोटितीर्थमें स्नान करनेसे पूर्णतः नष्ट हो जाता है। यदि कोई स्वेच्छानुसार कहीं जा रहा हो या तीर्थयात्रा करता हो और मार्गमें उसे कोई तीर्थ या देवालय मिल जाय, तो उसको देख या सुनकर भी जो मोहवश उसका सेवन नहीं करता, वह मनुष्य अधम है—ऐसा महर्षियोंका वचन है। इसलिये सेतुको जानेवाला पुरुष यदि वहाँके अन्य तीर्थोंमें स्नान नहीं करता, तो वह तीर्थोल्लङ्घनके दोषसे ब्राह्मणोंद्वारा बाहर कर देने योग्य है। अतः चक्रतीर्थ आदिमें अवश्य स्नान करना चाहिये। इन तीर्थोंमें स्नान करनेके पश्चात् शेष पापोंसे छुटकारा पानेके लिये मनुष्योंको कोटितीर्थमें स्नान करना चाहिये। पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजी उसमें स्नान करके उसी क्षण पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो वानरों तथा लक्ष्मण और सीताके साथ अयोध्याको चल दिये थे। अतः उन्हींकी भाँति कोटितीर्थमें स्नान करके शेष पापसे छूटा हुआ मनुष्य उसी क्षण वहाँ लौट आवे। यह श्रेष्ठ तीर्थ सब लोकोंमें प्रसिद्ध है। श्रीरामचन्द्रजीने भगवान् रामेश्वरका अभिषेक करनेके लिये उसका निर्माण किया था। साक्षात् भगवती गङ्गा उसमें निवास करती हैं तथा तारकब्रह्म श्रीरामने वहाँ स्नान किया है। उस कोटितीर्थकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है।

यदुवंशमें वसुदेव नामसे विख्यात एक क्षत्रिय थे, जो शूरसेनके पुत्र थे। उन्हीं दिनों भोजकुलमें देवककी एक पुत्री थी, जो देवकीके नामसे विख्यात थी। वसुदेवजी देवकीसे विवाह करके रथपर आरूढ़ हो अपने निवासस्थानको चले। उस समय उग्रसेनका पुत्र कंस वसुदेवका सारथि बनकर रथ हाँकने लगा। इतनेमें ही बहिन और बहनोईको ले जानेवाले कंसको सम्बोधित करके आकाशवाणीने कहा—'शत्रुदमन कंस! जिस देवकीको तुम लिये जा रहे हो, उसका कोई भय नहीं है।' यह सुनकर कंसने देवकीको मारनेका विचार छोड़ दिया और वसुदेव-देवकीके साथ अपने घरको लौटा। कंस बड़ा दुष्टात्मा था। उसने बहिन और बहनोई दोनोंके पैरोंमें बेड़ी डालकर कारागारमें कैद कर लिया। तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर देवकीने वसुदेवजीसे क्रमशः छः पुत्रोंको जन्म दिया। उन सबको वसुदेवने कंसको अर्पित कर दिया और कंसने उनका वध कर डाला। इस प्रकार देवकीके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले छः पुत्रोंके मारे जानेपर सातवें गर्भके रूपमें साक्षात् भगवान् शेषने देवकीके उदरमें प्रवेश किया। उस समय भगवान् विष्णुकी आज्ञासे मायादेवीने उस गर्भको रोहिणीके उदरमें स्थापित कर दिया। रोहिणी उन दिनों नन्दगोपके घरमें निवास करती थी। लोगोंमें यह बात फैल गयी कि देवकीका सातवाँ गर्भ गिर गया। तदनन्तर स्वयं भगवान् विष्णुने आठवाँ गर्भ होकर देवकीकी कुक्षिमें प्रवेश किया। दस महीने बीत जानेपर अविनाशी भगवान् श्रीहरि देवकीके उदरसे प्रकट हुए, जो कृष्ण नामसे विख्यात हुए। जन्मके समय वे शङ्ख, चक्र, गदा और खड्गसे सुशोभित चतुर्भुजरूपमें दृष्टिगोचर हुए। उनके मस्तकपर किरीट और गलेमें वनमाला शोभा पा रही थी। वे माता-पिताके शोकका नाश करनेवाले थे। सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरिको देखकर वसुदेवजीने उनका स्तवन किया।

वसुदेवजी बोले—प्रभो! आप ही सम्पूर्ण विश्वके रूपमें विराजमान हैं। आप ही इस विश्वके पालक हैं, इसकी उत्पत्तिके स्थान भी आप ही हैं, यह सम्पूर्ण विश्व आपमें ही स्थित है। भगवन्! आप ही प्रकृति, महत्तत्त्व, विराट्, स्वराट् और सम्राट् सब कुछ हैं। इस प्रकार आपका तेज सम्पूर्ण जगत्का कारणभूत है, आपके पराक्रमका कोई परिमाण नहीं है। आप साक्षात् नारायण हैं। आपको नमस्कार है। आप शार्ङ्ग धनुष, सुदर्शन चक्र, नन्दक खड्ग और कौमोदकी गदा धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। अत्यन्त मनोरम रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है।

आप मुझे ले जाकर यशोदाकी शय्यापर सुला दें और यशोदाकी पुत्रीको लाकर देवकीकी शय्यापर सुलावें।' भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर वसुदेवजीने वैसा ही किया। देवकीकी शय्यापर सुलाते ही वह मायामयी पुत्री रोने लगी। बालकके रोनेकी ध्वनि सुनकर कंस व्याकुलचित्त होकर आया और सूतिकाघरमें घुसकर उसने कन्याको ले लिया। उसके मनमें तनिक भी लज्जा और दया नहीं थी। उसने उस बालिकाको ले जाकर पत्थरपर पटक दिया। उसके हाथसे छूटते ही वह बालिका आठ बड़ी-बड़ी भुजाओंसे युक्त अस्त्र-शस्त्रोंसे सुशोभित महादेवीके रूपमें प्रकट हुई और कंसको पुकारकर अत्यन्त कुपित होकर बोली—'अरे पापात्मा कंस! ओ दुर्बुद्धे! रे मूर्ख! तेरे प्राणोंको हरनेवाला शत्रु कहीं-न-कहीं उत्पन्न हो गया है। अब तू अपनी मृत्युरूप उस शत्रुकी खोज करता रह।' ऐसा कहकर देवी, जो मनुष्योंसे पूजा पाकर उनका अभीष्ट सिद्ध करनेवाली है; दिव्य स्थानोंमें चली गयी। देवीका वचन सुनकर कंस अत्यन्त व्याकुल हो उठा। उसने अपना प्राणान्त करनेवाले शत्रुको पीड़ा देनेके लिये तथा दूसरे-दूसरे बालकोंको भी सतानेके लिये पूतना आदि बालग्रहोंको भिन्न-भिन्न स्थानोंमे भेजा। वे सभी बालग्रह नन्दके गोकुलमें गये और वहाँ श्रीकृष्णके हाथों मारे गये। तदनन्तर कुछ दिन और बीत जानेपर बलभद्र और श्रीकृष्ण गोकुलमें बढ़कर सयाने हो गये। उन्होंने अनेक प्रकारकी बालक्रीडाओंसे खेल किये। कुछ कालतक वे दोनों भाई बाँसुरी बजाते हुए बछड़े चराते रहे। कुछ वर्षोंतक गाय चराते रहे। उस समय वे वनमें गुंजा और तापिच्छके आभूषण धारण करते थे। इस प्रकार बलराम और श्रीकृष्ण दीर्घकालतक गोकुलमें नाना प्रकारकी लीलाएँ करते रहे।

एक समय कंसने बलराम और श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरजीको गोकुलमें भेजा। अक्रूरजी कंसकी आज्ञासे जाकर उन दोनों भाइयोंको गोकुलसे मथुरा बुला ले आये। मथुरापुरी सुवर्णमय द्वारसे शोभा पा रही थी। बलराम और श्रीकृष्णको लाकर अक्रूरजी पुरीमें गये और कंससे मिलकर उसे सब समाचार बताया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने घरमें प्रवेश किया। तदनन्तर दूसरे दिन वसुदेवके दोनों पुत्र अपने प्रिय मित्र गोपबालकोंके साथ मथुरापुरीमें आये। नगरकी युवतियाँ उनके रूप-गुणकी प्रशंसा करतीं और वे उसे सुनते हुए आगे बढ़ते जाते थे। तदनन्तर, श्रीकृष्णने बलरामके साथ धनुष-शालामें जाकर दृढ़ प्रत्यञ्चावाले बड़े भारी धनुषको देखा और सब रक्षकोंको दूर भगाकर लीलापूर्वक उस धनुषको हाथमें ले लिया। फिर जब प्रत्यञ्चा चढ़ानेके लिये उसे झुकाया, तब बीचसे टूटकर उसके दो टुकड़े हो गये। धनुष टूटनेका शब्द सुनकर वहाँ आये हुए बलवान् रक्षकोंको मारनेके लिये उन दोनों महाबली बन्धुओंने धनुषके दोनों टुकड़े उठा लिये और उन्हींसे सबको मार गिराया। तत्पश्चात् रङ्गशालाके द्वारपर खड़े हुए कुवलयापीड नामक हाथीको मारकर महान् बल और पराक्रमसे युक्त बलराम तथा श्रीकृष्णने उसके दोनों दाँत उखाड़ लिये और उन्हें हाथसे पकड़कर कन्धेपर रखे हुए क्षणभरमें वे रङ्गभूमिमें जा पहुँचे। वहाँ उन दोनोंने चाणूर, मुष्टिक, बल तथा दूसरे-दूसरे प्रमुख पहलवानोंको मारकर परम धामको पहुँचा दिया। फिर दोनों भाई शीघ्र ही उछलकर ऊँचे मञ्चपर चढ़ गये। वहाँ कंस एक ऊँचे आसनपर बैठा हुआ था। उसे तिनकेके समान समझकर वे उसके समीप इस प्रकार स्थित हुए, जैसे दो सिंह तुच्छ मृगके पास खड़े हों। तदनन्तर श्रीकृष्णने मञ्चपर बैठे हुए कंसके पैर पकड़कर उसे खींच लिया और बड़े वेगसे आकाशमें घुमाया। इतनेमें ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। तब प्राणरहित कंसको उन्होंने धरतीपर गिरा दिया। फिर बलरामजीने भी कंसके आठ भाइयोंको मुक्कोंसे ही मार गिराया। इस प्रकार कंसको मारकर श्रीकृष्णने अत्यन्त दुःख भोगनेवाले अपने माता-पिताको कारागारके बन्धनसे मुक्त किया और अन्य सब लोगोंको भी बलराम तथा श्रीकृष्णने आश्वासन दिया। श्रीकृष्णके द्वारा कंस मारा गया, यह समाचार सुनकर वसुदेवके अन्य बन्धु-बान्धव, जो पहले कंसके द्वारा पीड़ित होकर अन्यत्र चले गये थे, मथुरापुरीमें लौट आये। भगवान् श्रीकृष्णने मथुराके राज्यपर उग्रसेनको स्थापित किया।

तत्पश्चात् एक दिन भगवान् श्रीकृष्णने दर्शनके लिये अपने पास आये हुए नारदादि मुनियोंसे इस प्रकार पूछा—'ब्राह्मणो! मैंने अत्यन्त पापात्मा कंसका वध किया है, पर वह कंस मेरा मामा था। शास्त्रोंके ज्ञाता विद्वान् मामाके वधमें दोष बताते हैं; अतः उस दोषके निवारणके लिये आपलोग मुझे कोई प्रायश्चित्त बतलाइये।' यह सुनकर

नारदजीने अद्भुत पराक्रमी श्रीकृष्णसे मधुर वाणीमें भक्ति एवं प्रेमके साथ कहा—'यदुनन्दन ! आप नित्य, शुद्ध, बुद्ध एवं मुक्त सच्चिदानन्दस्वरूप सनातन परमात्मा हैं, आपके लिये पुण्य अथवा पाप नहीं है। तथापि गरुड़ध्वज ! आपको लोकशिक्षाके लिये विधिपूर्वक प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये। माधव ! गन्धमादन पर्वतपर जो परम पुण्यमय रामसेतु है, वहाँ पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा स्थापित किया हुआ रामेश्वर नामक शिवलिङ्ग है। उसके अभिषेकके लिये जलकी आवश्यकता होनेपर श्रीरघुनाथजीने धनुषकी कोटिसे पृथ्वीको भेदकर एक तीर्थ प्रकट किया था, जो कोटितीर्थके नामसे विख्यात है। वह धर्मके लिये हितकर और पापोंका नाश करनेवाला तीर्थ है। आप उसीमें स्नान करें। कोटितीर्थका स्नान ब्रह्महत्या आदिका भी निवारण करनेवाला है।'

नारदजीका यह वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण रामसेतु-पर गये और कुछ दिनोंमें कोटितीर्थमें स्नान एवं अनेक प्रकारके दान करके रामेश्वरकी सेवा-पूजा करनेके पश्चात् मथुरापुरीमें लौट आये। कोटितीर्थका ऐसा ही पुण्यमय प्रभाव है। ब्राह्मणो ! इस तीर्थमें स्नान करनेसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य देवता भी प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार यह कोटितीर्थका माहात्म्य बतलाया गया, जिसका श्रवण करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

सर्वतीर्थ तथा धनुष्कोटि तीर्थोंकी महिमा

श्रीसूतजी कहते हैं—तदनन्तर मनुष्य सर्वतीर्थकी यात्रा करे। पूर्वकालमें सुचरित नामसे प्रसिद्ध एक मुनि थे, जो सदा ही नियमोंमें संलग्न रहते थे। उनका जन्म भृगुवंशमें हुआ था। वे जन्मके ही अन्धे थे, फिर बुढ़ापेने आकर उनको और भी आतुर बना दिया। नेत्र न होनेके कारण वे तीर्थ-यात्रा करनेमें असमर्थ थे। उनके मनमें सभी तीर्थोंमें स्नान करनेकी इच्छा होती थी। वे महामुनि दक्षिण समुद्रके तटपर पुण्यमय गन्धमादन पर्वतपर गये और भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये अत्यन्त दुष्कर तपस्या करने लगे। वे तीनों समय इन्द्रियसंयमपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करते थे। तीनों समय स्नान और अतिथियोंका सत्कार उनकी दिनचर्याका अङ्ग बन गया था। वे भस्मद्वारा त्रिपुण्ड्र लगाते और जाबालोपनिषद्में बतायी हुई रीतिसे रुद्राक्षकी माला धारण करते थे। इस प्रकार ब्राह्मणने दस वर्षोंतक उग्र तपस्या की। इससे भगवान् चन्द्रशेखर बहुत प्रसन्न हुए और सुचरित मुनिके आगे प्रकट हुए। वे महान् वृषभ नन्दीश्वर आरूढ़ हो भूतसमुदायसे घिरे हुए थे। उनके

आधे शरीरमें भगवती गिरिराजनन्दिनी विद्यमान थीं। वे अपने दिव्य प्रकाशसे सम्पूर्ण दिशाओंको अन्धकारशून्य किये देते थे। उनका सब अङ्ग विभूतियोंसे उज्ज्वल दिखायी देता था। वे जटाभारसे शोभा पा रहे थे। भगवान् शिवने

अपने स्वरूपका दर्शन करानेके लिये उन्हें दो नेत्र प्रदान किये। तब सुचरितने परमेश्वर शिवका दर्शन करके प्रसन्नचित्त हो इस प्रकार स्तुति की।

सुचरित बोले—देव महेश्वर! आपकी जय हो। कल्याणकारी धूर्जटे! आपकी जय हो। ब्रह्मा आदि देवताओंके पूजनीय देव! आप त्रिपुरासुरके विनाशक तथा कालके भी काल हैं, आपकी जय हो। भगवती उमाके स्वामी महादेव! आपकी जय हो। कामदेवका विनाश करनेवाले निर्मल परमेश्वर! आपकी जय हो। शिव! आप संसाररोगका निवारण करनेवाले वैद्य, सम्पूर्ण भूतोंके रक्षक तथा अविनाशी देवता हैं, आपकी जय हो। त्रिलोचन! आपने भक्तोंकी रक्षाका व्रत ग्रहण किया है, आपको नमस्कार है। व्योमकेश! आपको नमस्कार है। करुणाविग्रह! आपकी जय हो। नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। आप संसारबन्धनसे छुड़ानेवाले हैं, आपकी जय हो। महेश्वर! परमानन्दस्वरूप! आपको नमस्कार है। गङ्गाधर! आपको नमस्कार है। विश्वेश्वर! सुखस्वरूप अविनाशी देव! आपको नमस्कार है। आप भगवान् वासुदेव हैं। शम्भो! आपको नमस्कार है। आप शर्व, उग्र, भर्ग एवं कैलाशपतिको नमस्कार है। करुणासिन्धो! अपनी कृपादृष्टिसे देखकर मेरी रक्षा कीजिये। भगवान् हर! मेरे चरित्रकी ओर न देखकर अपनी दयासे ही मेरा उद्धार कीजिये।

इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् उमानाथने सुचरित मुनिसे कहा—'मुने! तुम कोई मनोवाञ्छित वर माँगो।' तब मुनिने दयानिधान शिवजीसे कहा—'भगवन्! चन्द्रशेखर! वृद्धावस्थाके कारण मेरा शरीर बहुत ढीला हो गया है, इसलिये मैं कहीं भी जानेमें असमर्थ हूँ। तथापि सब तीर्थोंमें स्नान करनेकी मेरी इच्छा है। अतः सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे मनुष्य जिस फलको पाता है, उसकी प्राप्तिका साधन मुझे भी बताइये।'

महादेवजी बोले—श्रीरामचन्द्रजीके सेतुसे पवित्र हुए इस गन्धमादन पर्वतपर मैं सम्पूर्ण तीर्थोंका आवाहन करूँगा।

यों कहकर महादेवजीने मुनिकी प्रसन्नताके लिये वहाँ सब तीर्थोंका आवाहन किया और सुचरितसे इस प्रकार कहा—'मुने! यहाँ सब तीर्थोंका निवास होनेसे इसका नाम 'सर्वतीर्थ' होगा। यह सर्वतीर्थ बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला होगा। अतः शीघ्र मुक्ति पानेके लिये इस तीर्थमें स्नान करो। यह काम, मोह, भय, क्रोध, लोभ और रोग आदिका नाशक, तत्काल मोक्षकी प्राप्तिका साधन, जन्म मृत्यु आदि ग्राहसमूहोंसे भरे हुए संसारसमुद्रसे पार उतारनेवाला तथा कुम्भीपाक आदि समस्त नरकोंकी आग बुझा देनेवाला है।'

भगवान् शङ्करके ऐसा कहनेपर सुचरितने उनके समीप ही सर्वतीर्थमें स्नान किया। स्नान करके जब वे जलसे बाहर निकले, तब सब मनुष्योंने देखा, उनके शरीरमें वृद्धावस्थाकी झुर्रियाँ नहीं रह गयी हैं और वे अत्यन्त सुन्दर तरुण हो गये हैं।

तदनन्तर महादेवजीने कहा—सुचरित! तुम इस तीर्थके किनारे रहते हुए मुझ मुक्तिदाता शिवका स्मरण करते हुए सदा इसीमें स्नान करो, अन्य देशके तीर्थोंमें मत जाओ। अन्तमें इस तीर्थके माहात्म्यसे तुम मुझे अवश्य प्राप्त कर लोगे। दूसरे मनुष्य भी जो इस तीर्थमें स्नान करेंगे, वे मुझे प्राप्त कर लेंगे।

ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। उसके बाद सुचरित मुनि बहुत समयतक सर्वतीर्थके किनारे टिके रहे। वे मनको संयममें रखते हुए सदा उसी तीर्थमें स्नान करते थे। देहावसान होनेपर उन्होंने सब बन्धनोंसे मुक्त हो भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लिया। इस प्रकार यहाँ सर्वतीर्थके माहात्म्यका वर्णन किया गया। जो मनुष्य इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

अत्यन्त पावन सर्वतीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश करनेवाली धनुष्कोटिमें स्नान करनेके लिये जाय। उसके स्मरणमात्रसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो लोग धनुष्कोटिका दर्शन, उसमें स्नान अथवा उसकी चर्चा करते हैं, वे अट्ठाईस भेदोंवाले नरकमें कभी नहीं पड़ते। मनुष्योंको तुलापुरुषके दानसे जो फल मिलता है, वही धनुष्कोटिमें गोता लगानेसे भी मिल जाता है। एक सहस्र गोदान करनेसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वह धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे प्राप्त हो जाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारोंमेंसे मनुष्य जिस-जिस पुरुषार्थकी इच्छा करता है, उस-उसको धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे तत्क्षण प्राप्त कर लेता है। धनुष्कोटितीर्थ सब पातकोंका नाशक, अद्वैत ज्ञान देनेवाला, भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला, अभीष्ट मनोरथोंका दाता तथा अज्ञान दूर करनेवाला है। उसके होते भी मनुष्य उस तीर्थको छोड़कर अन्यत्र रमता रहता है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! उस तीर्थका नाम धनुष्तीर्थ कैसे हुआ?

सूतजी बोले—समस्त लोकोंके लिये कण्टकरूप रावण जब युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीके हाथों मारा गया और विभीषणको लङ्काके राज्यपर स्थापित कर दिया गया, तब सीता, लक्ष्मण तथा सुग्रीव आदि वानरोंके साथ श्रीरामचन्द्रजी गन्धमादन पर्वतपर आये। वहाँ आनेपर धर्मज्ञ विभीषणने महात्मा रघुनाथजीसे हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'भगवन्! आपके बनाये हुए इस सेतुके मार्गसे सभी बलाभिमानी राजा आकर मेरी लङ्कापुरीको पीड़ित करेंगे। अतः आप अपनी धनुषकी कोटिसे इस सेतुको तोड़ डालिये।' विभीषणके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने धनुषकी कोटिसे उस पुलको तोड़ डाला। इसीलिये उस तीर्थका नाम धनुष्कोटि हो गया। श्रीरामके धनुषकी कोटिसे की हुई रेखाका जो दर्शन करता है, उसकी मुक्ति हो जाती है। नर्मदाके तटपर किया हुआ तप बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है, गङ्गातटपर मृत्यु हो तो वह मोक्षरूप फल देनेवाली है और कुरुक्षेत्रमें दिया हुआ दान ब्रह्महत्या आदि पापोंको शुद्ध करनेवाला है; किंतु धनुष्कोटिमें तप, मृत्यु अथवा दान कोई भी हो तो वह महापातकोंका नाश, मोक्षकी प्राप्ति और मनोरथकी सिद्धि करानेवाला होता है। मनुष्य तभीतक पातकों और उपपातकोंसे पीड़ित होता है, जबतक कि उसे मोक्षदायक धनुष्कोटिका दर्शन नहीं होता। धनुष्कोटिका दर्शन करनेवाले पुरुषके हृदयकी अज्ञानमयी ग्रन्थि कट जाती है, उसके सब संशय नष्ट हो जाते हैं और समस्त पापकर्मोंका क्षय हो जाता है। पृथ्वीपर दस कोटि सहस्र (एक खर्व) तीर्थ हैं। उन सबका निवास इस धनुष्कोटिमें है। धनुष्कोटिमें तपस्या करके देवता और महर्षि बड़ी-बड़ी सिद्धियोंको प्राप्त हुए हैं। जो मनुष्य उसमें स्नान करके देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक यहाँ एक ब्राह्मणको भोजन कराता है, वह इहलोक और परलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—कोई भी धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे निन्दित योनिमें जन्म नहीं लेता। जो मानव मकर राशिमें सूर्यके स्थित होनेपर माघ मासमें धनुष्कोटिमें स्नान करता है, वह गङ्गा आदि सब तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त करता है। उसे अक्षय लोकोंकी तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है। स्त्री अथवा पुरुषके जन्मसे लेकर जितने पाप हैं, वे सब माघ मासमें धनुष्कोटितीर्थमें स्नान करनेसे नाशको प्राप्त होते हैं। जो क्रोधको जीतकर प्रतिदिन एक समय भोजन करते हुए माघ मासमें धनुष्कोटिमें नहाता है, वह ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। शिवरात्रिमें निराहार एवं जितेन्द्रिय रहकर रातमें जागरण करे और प्रत्येक पहरमें रामेश्वर महादेवकी विशेष विधिपूर्वक पूजा करे। फिर दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर धनुष्कोटिमें गोता लगाकर अन्य तीर्थोंमें भी नियमपूर्वक रहकर स्नान करे। पुनः नित्यकर्म करके भगवान् रामेश्वरकी आराधना करे, ब्राह्मणोंको यथाशक्ति अन्न भोजन करावे। उसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार भूमि, गौ, तिल, धान्य और धन दान करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। ऐसा करनेवाले पुरुषके ऊपर प्रसन्न हो भगवान् रामेश्वर उसके सब पाप छुड़ा देते और उसे भोग एवं मोक्ष प्रदान करते हैं। अतः मोक्ष चाहनेवाले पुरुषोंको माघ मासमें धनुष्कोटिमें अवश्य स्नान करना चाहिये। जो सूर्यनारायणके आधे उदयके समय धनुष्कोटिमें स्नान करता है, उसके वशमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों देवता हो जाते हैं। जो मनुष्य चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय इस तीर्थमें स्नान करता है, वह सायुज्य मोक्षको पाता है। मुनिवरो! तुम सब कुछ छोड़कर भोग और मोक्षरूप फल देनेवाले परम पवित्र धनुष्कोटिको जाओ। वहाँ जाकर पितरोंको पिण्डदान करो। क्योंकि वहाँ पिण्डदान करनेसे कल्पपर्यन्त पितरोंकी तृप्ति होती है। सेतुमूल, धनुष्कोटि तथा गन्धमादन पर्वत ये देवनिर्मित तीनों स्थान ऋणसे छुटकारा दिलानेवाले कहे गये हैं। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके धनुष्कोटिका सेवन करना चाहिये। द्रोणाचार्यका पुत्र अश्वत्थामा धनुष्कोटिमें आकर यहाँ नियमपूर्वक स्नान करके सोते हुए बालकोंको मारनेके भयङ्कर पापसे क्षणभरमें मुक्त हो गया।

अश्वत्थामाके द्वारा सोते हुए पाण्डव योद्धाओंका वध तथा धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे उसका उद्धार

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अश्वत्थामाने किस प्रकार सोते हुए मनुष्योंको मारनेका पाप किया और कैसे धनुष्कोटिमें स्नान करके वह पापमुक्त हो गया?

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! पहले पाण्डवोंका धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ राज्यके लिये युद्ध छिड़ा था। अनेक अक्षौहिणी सेनाओंसे युक्त उस महायुद्धमें लगातार दस दिनोंतक संग्राम करके शान्तनुनन्दन भीष्मजी मारे गये। पाँच दिन युद्ध करनेपर द्रोणाचार्य, दो दिनकी लड़ाईमें कर्ण और एक

दिन युद्ध करके राजा शल्य मार डाले गये । अठारहवें दिनके युद्धमें जब दुर्योधनसे सामना हुआ, तब भीमने गदा मारकर उसकी जाँघ तोड़ डाली । इससे वह श्रेष्ठ राजा दुर्योधन धराशायी हो गया । तदनन्तर युद्धकी समाप्ति हो गयी । सब राजा अपनी-अपनी छावनीपर लौट जानेकी जल्दी करने लगे । सबने प्रसन्नतापूर्वक शिविरको प्रस्थान किया । धृष्टद्युम्न, शिखण्डी आदि समस्त सृञ्जयवंशी क्षत्रिय तथा अन्य राजा लोग भी अपने-अपने शिविरको लौट गये । श्रीकृष्ण और सात्यकिके साथ पाण्डव भी अपने शिविरमें चले गये । उस समय श्रीकृष्णने पाण्डवोंसे कहा—'हमलोगोंको मङ्गलके लिये आजकी रातमें शिविरसे बाहर निवास करना चाहिये । तब श्रीकृष्ण और सात्यकिके साथ सब पाण्डव छावनीसे बाहर निकल गये । उन सबने ओघवती नदीके किनारे जाकर सुखपूर्वक वह रात्रि व्यतीत की ।

इधर कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा सूर्यास्त होनेसे पहले दुर्योधनके पास गये । दुर्योधन रणभूमिमें धूलि-धूसरित होकर पड़ा था । उसका सारा वदन रक्तसे नहा गया था और वह धरतीपर पड़ा-पड़ा छटपटाता था । उसे उस अवस्थामें देखकर अश्वत्थामा आदि तीनोंको बड़ा शोक हुआ । राजा दुर्योधन भी उन सुहृदोंको देखकर शोकमग्न हो गया । तब अश्वत्थामा क्रोधसे प्रचण्ड अग्निकी भाँति जल उठा और इस प्रकार बोला—'राजन् ! इन नीच शत्रुओंने छलसे मेरे पिताजीको रणभूमिमें गिरा दिया था, परंतु उसके कारण मुझे वैसा शोक नहीं हुआ, जितना कि आज तुम्हारे गिराये जानेपर हो रहा है । सुयोधन ! मैं अपने सत्कर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ, आज रातमें सृञ्जयोंसहित पाण्डवोंका श्रीकृष्णके देखते-देखते वध कर डालूँगा, मुझे आज्ञा दो ।'

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर राजा दुर्योधनने 'तथास्तु' कहकर उसे स्वीकृति दे दी और कृपाचार्यसे कहा—'आचार्य ! आप द्रोणपुत्रको कलशके जलसे सेनापतिके पदपर अभिषिक्त कीजिये ।' कृपाचार्यने ऐसा ही किया । सेनापतिके रूपमें अभिषिक्त होनेपर अश्वत्थामाने दुर्योधनको हृदयसे लगाया और कृपाचार्य तथा कृतवर्माके साथ तुरंत वहाँसे चल दिया । वे तीनों वीर दक्षिणकी ओर गये और सूर्यास्तसे पहले ही शिविरके समीप पहुँच गये । वहाँ पाण्डवोंकी भयङ्कर गर्जना सुनकर वे तीनों विजयाभिलाषी योद्धा भयसे भाग चले । एक स्थानपर उन्होंने घोड़ोंको पानी पिलाया । पास ही अनेक शाखाओंसे युक्त सघन वटका वृक्ष था । वहाँ जाकर तीनों रथसे उतर गये और घोड़ोंको वहीं छोड़कर आचमन एवं सन्ध्योपासना की । तदनन्तर, अन्धकारसे व्याप्त भयानक रात्रि सब ओर फैल गयी । कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा शोकसे पीड़ित हो वटके समीप बैठ गये । कृतवर्मा और कृपाचार्यको तो नींद आ गयी, किंतु क्रोधसे कलुषितचित्त होनेके कारण अश्वत्थामाको निद्रा नहीं आती थी । वह सर्पकी भाँति लंबी साँस खींचता रहा । उसने देखा, इस बरगदपर बहुत-से कौए रहते हैं और सब-के-सब भिन्न-भिन्न शाखाओंपर सुखपूर्वक सो गये हैं । इतनेमें ही वहाँ मास नामक पक्षी आया । वह बड़ा भयङ्कर था । मास बहुत शब्द करके उस वृक्षमें छिप गया और उछल-उछलकर सोये हुए कौओंको मारने लगा । थोड़ी ही देरमें कौओंके कटे हुए अङ्गोंसे उस वृक्षके सब ओरका भाग आच्छादित हो गया । इस प्रकार कौओंका अन्त करके वह उल्लू बहुत प्रसन्न हुआ ।

अश्वत्थामाने उल्लूकी वह सारी करतूत रातमें देखी । फिर उसने भी मनमें यह निश्चय किया कि मैं भी इसी प्रकार रात्रिमें सोते हुए शत्रुओंका संहार करूँगा । उसने उल्लूके उस कुकृत्यको अपने लिये उपदेश माना और सोचा, सीधे मार्गसे युद्ध करके मैं पाण्डवोंको जीत नहीं सकूँगा, अतः छलसे ही उन्हें मारना चाहिये । ऐसा विचार करके अश्वत्थामाने सोते हुए कृपाचार्य और कृतवर्माको जगाया और इस प्रकार कहा—'निर्दयी भीमने राजा दुर्योधनके सिरपर लात मारी है, अतः आज रातमें पाण्डवोंके शिविरमें जाकर हमलोग उन्हें सोतेमें ही अनेक अस्त्र-शस्त्रोंसे मार डालेंगे ।' यह सुनकर कृपाचार्यने कहा—'सोते हुओंको मारना इस लोकमें धर्म नहीं है । इस कुकर्मका कहीं भी आदर नहीं होता । इसी प्रकार जो लोग शस्त्र, रथ और घोड़ोंको त्याग चुके हैं, उनको भी मारना धर्म नहीं है । हमलोग धृतराष्ट्र, पतिव्रता गान्धारी तथा विदुरजीसे पूछ लें और वे लोग जैसा कहें, वैसा करें ।' तब अश्वत्थामा बोला—'मामाजी ! पाण्डवोंने छलसे युद्धमें मेरे पिताको मारा है, उसी प्रकार मैं भी रातमें सोते हुए पाण्डवोंका वध करूँगा ।'

ऐसा कहकर अश्वत्थामा घोड़े जुते हुए रथपर सवार हो क्रोधसे जलता हुआ पाण्डवोंकी ओर चल दिया । उसके पीछे-पीछे कृतवर्मा और कृपाचार्य भी गये । शिविरके द्वारपर पहुँचकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा खड़ा हो गया । उसने रातमें ही कृपानिधान महादेवजीकी आराधना करके उनसे एक

उज्ज्वल खड्ग प्राप्त किया। तत्पश्चात् कृतवर्मा और कृपाचार्य दोनोंको शिविरके द्वारपर ही खड़ा करके वह स्वयं भीतर घुस गया। उस समय द्रोणपुत्र अत्यन्त कुपित हो तेजसे प्रज्वलित-सा हो रहा था। धीरे-धीरे वह धृष्टद्युम्नके शिविरमें गया। वहाँ महायुद्धसे थके हुए धृष्टद्युम्न आदि वीर अपनी सेनाके साथ निश्चिन्त होकर सो रहे थे। अश्वत्थामाने उत्तम शय्यापर सोये हुए महाबली धृष्टद्युम्नको क्रोधपूर्वक लातसे मारा। उस आघातसे जगकर धृष्टद्युम्न शय्यासे उठने लगा। उसी समय द्रोणपुत्रने उसके बाल खींचकर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया और उसकी छातीपर चढ़कर धनुषकी डोरीसे उसके गलेको कसकर बाँध दिया। बेचारा विवश होकर चीखता और छटपटाता रहा, किंतु अश्वत्थामाने उसे पशुकी तरह गला दबाकर मार डाला। उसने सब सैनिकोंको भी सोतेमें ही मार डाला। युधामन्यु और महापराक्रमी उत्तमौजाको, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको तथा युद्धसे बचे हुए सोमक नामवाले क्षत्रिय वीरोंको भी उसने मौतके घाट उतार दिया। शिखण्डी आदि बहुत-से क्षत्रिय वीरोंको अश्वत्थामाने तलवारसे काट डाला। उसके भयसे भागकर जो लोग दरवाजेसे निकले, उन सब सैनिकोंको कृतवर्मा और कृपाचार्यने मृत्युका ग्रास बना दिया। इस प्रकार सारी सेनाके मारे जानेसे वह शिविर उसी प्रकार सूना हो गया, जैसे प्रलयकालमें तीनों लोक शून्य हो जाते हैं। तदनन्तर वे तीनों योद्धा पाण्डवोंसे भयभीत होकर शीघ्र गतिसे इधर-उधर निकल भागे।

अश्वत्थामा नर्मदाके मनोरम तटपर चला गया। वहाँ सहस्रों वेदवादी ऋषि परस्पर पुण्यकथाएँ कहते हुए उत्तम तपस्यामें संलग्न रहते थे। द्रोणाचार्यका पुत्र उन ऋषियोंके आश्रमोंमें गया। उसके प्रवेश करते ही ब्रह्मवादी मुनियोंने योगबलसे उसका दुश्चरित्र जान लिया और इस प्रकार कहा—'द्रोणपुत्र! तू सोते हुए मनुष्योंको मारनेवाला पापी अधम ब्राह्मण है। तेरे दर्शनसे भी हमलोग निश्चय ही पतित हो जायँगे। तुझसे वार्तालाप करनेपर दस हजार ब्रह्महत्याओंका पाप लगेगा। अतः नराधम! तू हमारे आश्रमोंसे दूर हो जा।'

उनके ऐसा कहनेपर अश्वत्थामा लज्जित हो उस मुनिसेवित आश्रमसे निकल गया। इसी प्रकार वह काशी आदि सभी पुण्यतीर्थोंमें गया परंतु वहाँके महात्मा ब्राह्मणोंसे निन्दित होकर लौट आया और अन्तमें प्रायश्चित्त करनेकी इच्छासे भगवान् वेदव्यासजीकी शरणमें गया। महामुनि व्यासजी बदरिकारण्यमें विराजमान थे। उनके पास जाकर उसने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। तब व्यासजीने उससे कहा—'द्रोणकुमार! तू शीघ्र मेरे आश्रमसे निकल जा। सोते हुओंको मारनेके पापसे तू महापातकी हो गया है। तेरे साथ बात करनेसे भी मुझे महान् पाप लगेगा।'

अश्वत्थामा बोला—भगवन्! सबसे निन्दित होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। यदि आप भी ऐसी बात कहते हैं तो दूसरा कौन मुझे शरण देनेवाला होगा? ब्रह्मन्! मुझपर कृपा कीजिये। क्योंकि साधुपुरुष दीनोंपर दया करनेवाले होते हैं। सोते हुए मनुष्योंको मारनेसे जो पाप हुआ है, उसकी शान्तिके लिये आप मुझे कोई प्रायश्चित्त बताइये। कारण कि आप सर्वज्ञ हैं।

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर व्यासजीने दीर्घकालतक सोच-विचारकर उससे कहा—इस पापकी शान्तिके लिये धर्मशास्त्रोंमें कोई प्रायश्चित्त नहीं है। तथापि मैं उस दोषके निवारणके लिये एक उपाय बतलाता हूँ। दक्षिण समुद्रके तटपर जो परम पवित्र रामसेतु है, वह मोक्ष देनेवाला है। वहीं धनुष्कोटि नामसे विख्यात एक महान् तीर्थ है, जो बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला और मनुष्योंको स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाला है। उसमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्या आदि पाप भी शुद्ध हो जाते हैं। वह पवित्रोंमें सबसे अधिक पवित्र तथा तीर्थोंमें सबसे उत्तम है। दुःस्वप्न और नरकके क्लेशोंका नाशक तथा पुण्यजनक है। उस धनुष्कोटितीर्थमें जाकर तुम एक महीनेतक निरन्तर स्नान करो तो सोते हुओंको मारनेके पापसे शुद्ध हो जाओगे।

महर्षि व्यासके इस प्रकार कहनेपर अश्वत्थामा रामसेतुपर जाकर पुण्यदायिनी धनुष्कोटिमें पहुँचा। वहाँ उसने सङ्कल्पपूर्वक एक मासतक निरन्तर स्नान किया। वह प्रतिदिन तीनों समय श्रीरामेश्वर शिवकी सेवामें रहता था। तदनन्तर तीसरे दिन जलमें स्नान करके उसने पञ्चाक्षर मन्त्रका जप और उपवास किया। फिर रातमें भगवान् रामेश्वरके समीप जागरण किया। दूसरे दिन पुनः सङ्कल्पपूर्वक धनुष्कोटिमें स्नान करके उसने श्रीरामेश्वरकी भक्तिपूर्वक सेवा-पूजा की। तदनन्तर आनन्दके आँसू बहाता हुआ वह शिवजीके आगे नृत्य करने लगा। उस समय भगवान् शङ्कर प्रसन्न होकर उसके सामने प्रकट हो गये। उनका दर्शन करके उसने भगवान् शिवका इस प्रकार स्तवन किया—'देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है।

करुणाकर शङ्कर ! विपत्तिरूपी समुद्रमें डूबे हुए प्राणियोंको पार लगानेके लिये आपके चरणारविन्द जहाजरूप हैं। मृत्युञ्जय ! त्रिलोचन ! आप अपनी कृपादृष्टिसे मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार स्तुति करनेपर महादेवजी प्रसन्न हो अश्वत्थामासे बोले—'द्रोणकुमार ! सोते हुओंको मारनेके कारण जो तुम्हें पाप लगा था, वह धनुष्कोटिमें नहानेसे दूर हो गया। अब तुम कोई वर माँगो।' अश्वत्थामा बोला—'महेश्वर ! आज आपके दर्शनमात्रसे मैं कृतार्थ हो गया। आपके चरणारविन्दोंमें मेरी अविचल भक्ति हो।' 'तथास्तु' कहकर देवदेव महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार पाप-रहित, शुद्ध एवं निर्मल हुए अश्वत्थामाको उस समयसे सभी महर्षियोंने ग्रहण किया।

धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे परावसुका पापसे उद्धार

सूतजी कहते हैं—पहलेकी बात है, बृहद्द्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक महाबली चक्रवर्ती राजा हो गये हैं। वे समुद्र-पर्यन्त समस्त पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। उन्होंने सत्रयागद्वारा इन्द्र आदि देवताओंका यजन किया। परम विद्वान् धर्मात्मा रैभ्यजी उनके पुरोहित थे। रैभ्यके दो पुत्र हुए, अर्वावसु और परावसु। वे दोनों छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके विद्वान् तथा श्रौत-स्मार्त कर्मोंके तत्त्वज्ञ थे। न्याय, मीमांसा, सांख्य, वेदान्त, वैशेषिक, योगशास्त्र और व्याकरणशास्त्रके मर्मज्ञ विद्वान् थे। मनु आदि धर्मशास्त्रोंके वे निष्णात पण्डित और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें चतुर थे। इन दोनों विद्वानोंको सत्रयागमें सहायता करनेके लिये राजा बृहद्द्युम्नने माँगा। पिताकी आज्ञा ले वे दोनों भाई बृहद्द्युम्नके सत्रमें गये। वे युगल अश्विनीकुमारोंकी भाँति परम सुन्दर दिखायी देते थे। रैभ्य मुनि जेठी पुत्रवधूके साथ स्वयं ही आश्रमपर रह गये थे।

उन दोनों बन्धुओंने वहाँ जाकर राजा बृहद्द्युम्नके यज्ञको बड़ी उत्तमतासे सम्पन्न कराया। जब वह यज्ञ होने लगा, तब राजाके बुलाये हुए सभी मुनि उस यज्ञको देखनेके लिये आये। उनको आया हुआ देख महाराज बृहद्द्युम्नने सबका आदरपूर्वक अर्घ्य आदिसे सत्कार किया। उसी समय आमन्त्रित हुए राजालोग आदरपूर्वक वह यज्ञोत्सव देखनेके लिये अनेक दिशाओंसे चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—इन चारों वर्णों तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—इन चारों आश्रमोंके लोग भी वहाँ जुटे हुए थे। श्रेष्ठ राजाने उन सबका यथायोग्य सत्कार किया और सबको भोजनके लिये अन्न, घी आदि पदार्थ दिये। वस्त्र, सुवर्ण, हार एवं नाना प्रकारके रत्न भी भेंट किये। इस प्रकार राजा बृहद्द्युम्नने यज्ञमें पधारे हुए सभी अतिथियोंका सत्कार किया।

रैभ्यके पुत्र अर्वावसु और परावसुने यज्ञ आदि कर्मोंको बिना किसी भूलके विधिपूर्वक कराया। उन दोनों भाइयोंकी निपुणता देखकर वशिष्ठ आदि सभी महर्षियोंने उनकी प्रशंसा की। परावसु कुछ कर्म कराकर तृतीय सवनके अन्तमें सायङ्कालके समय घरका काम-काज देखनेके लिये चले गये। उस समय रैभ्य मुनि काला मृगचर्म ओढ़कर वनमें विचर रहे थे। उन्हें देखकर परावसुके मनमें मृगकी आशंका हुई। रात्रिके निविड अन्धकारमें उनके नेत्र निद्रासे भारी हो रहे थे। उन्होंने पिताको देखकर यह समझा कि यह कोई वनवासी मृग है, मुझे मारनेके लिये आ रहा है। ऐसा सोचकर उस सघन वनमें अपने शरीरकी रक्षा चाहनेवाले परावसुने मृगके धोखेसे अपने पिताको ही मार डाला। निकट जाकर उसने अपने मरे हुए पिताको पहचाना; फिर तो वह शोकमें डूब गया। उसकी सारी इन्द्रियाँ व्यथासे व्याकुल हो उठीं। तत्पश्चात् परावसु पिताका दाहसंस्कार करके पुनः राजाके सत्रमें आ गये और अपने द्वारा जो पाप हो गया था, वह सब उन्होंने छोटे भाईको बताया। पिताको मरा हुआ सुन अर्वावसु शोकसे व्याकुल हो उठा। तब बड़े भाईने छोटेको यह आदेश दिया कि राजाका यह महान् यज्ञ आरम्भ हुआ है, तुम अभी बालक हो, तुममें इस यज्ञका भार सँभालनेकी शक्ति नहीं है। मैंने रातमें मृगकी आशङ्कासे पिताका ही वध कर डाला है, अतः उस ब्रह्महत्यासे मुक्त होनेके लिये प्रायश्चित्त भी करना चाहिये। तात ! छोटे भैया ! तुम्हीं मेरे लिये व्रत करो। मैं अकेला भी इस यज्ञका भार वहन करनेमें समर्थ हूँ।

बड़े भाईके ऐसा कहनेपर अर्वावसुने कहा—बड़े भैया ! आपकी जैसी आज्ञा हो वैसा ही होगा। ऐसा कहकर वह यज्ञसे निकल गया और बड़े भाईने सब कर्मोंको कराया। छोटे भाईने बारह वर्षोंतक बड़े भाईके लिये

ब्रह्महत्यानाशके लिये व्रत किया। तत्पश्चात् प्रसन्नतापूर्वक वह पुनः सत्रयज्ञमें आया। अपने भाईको आया देख ज्येष्ठने राजा बृहद्द्युम्नसे कहा—'राजन्! यह अर्वावसु ब्रह्महत्यारा है; इस समय आपके यज्ञमें आया है। नृपश्रेष्ठ! इसे शीघ्र ही इस यज्ञसे हटा दीजिये, अन्यथा सत्रयागके फलकी हानि होगी।' परावसुके ऐसा कहनेपर राजाने अपने सेवकोंद्वारा अर्वावसुको यज्ञसे निकाल दिया। वहाँके ब्राह्मण भी उसे धिक्कार दे रहे थे। अर्वावसु यह सब सहन करके चुपचाप वनको चला गया और वहाँ ऐसी तपस्या की, जो देवताओंके लिये भी दुष्कर थी। उसके तपसे भगवान् सूर्यनारायण प्रसन्न हो सामने प्रकट हुए और इस प्रकार बोले—'अर्वावसो! तुम तपस्या, ब्रह्मचर्य, आचार, शास्त्र-श्रवण तथा वेद-शास्त्र आदिकी शिक्षाकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ हो। परावसुने तुम्हें अपमानपूर्वक निकाला है तथापि क्षमायुक्त होकर तुम उसके प्रति क्रोध नहीं करते हो। तुम्हारे बड़े भाईने ही पिताको मारा है; तुमने नहीं; फिर भी तुमने भाईकी शुद्धिके लिये स्वयं ही ब्रह्महत्यानाशक व्रत किया है, इसलिये हम तुम्हें श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं।' ऐसा कहकर देवताओंने उसको ज्येष्ठ बना दिया। तत्पश्चात् इन्द्रादि देवताओंने सूर्यनारायणको आगे करके कहा—'अर्वावसो! तुम कोई वर माँगो।' उसने प्रार्थना की—'मेरे पिता जीवित हो जायँ और उन्हें अपने मारे जानेकी स्मृति न हो।' देवताओंने कहा—'ऐसा ही होगा। इसके सिवा हम तुम्हें दूसरा वर भी देना चाहते हैं, माँगो।'

अर्वावसु बोला—मेरे भाईकी दुष्टता दूर हो। अर्वावसुकी यह बात सुनकर देवताओंने कहा—'परावसुने अपने ब्राह्मणपिताकी हत्या की है, अतः उसे महान् पाप लगा है। दूसरेके किये हुए पापकी दूसरे द्वारा किये गये प्रायश्चित्तसे निवृत्ति नहीं होती, विशेषतः पाँच महापातकोंके सम्बन्धमें ऐसी ही बात है। इस कारण तुम्हारे भाई परावसुका अभी पापसे उद्धार नहीं हुआ है।' देवताओंकी यह बात सुनकर अर्वावसुने कहा—'आपका कहना ठीक है तथापि आपलोगोंके माहात्म्य और प्रसादसे पिता और ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले मेरे भाईका जिस प्रकार उद्धार हो, वह उपाय कृपापूर्वक आप बतावें।'

अर्वावसुका यह वचन सुनकर देवताओंने दीर्घकालतक विचार किया। फिर एक निश्चयपर पहुँचकर इस प्रकार कहा—'उस महापातकके निवारणका उपाय तुम्हें हम बता रहे हैं। दक्षिण समुद्रके तटपर जो परम पवित्र मोक्षदायक रामसेतु है, उसीपर धनुष्कोटि नामसे विख्यात एक परम उत्तम मुक्तिदायक तीर्थ है, जो ब्रह्महत्या, मदिरापान, सुवर्णकी चोरी, गुरुशय्यागमन तथा इन सबके संसर्गरूप महापातकोंका विनाश करनेवाला है। जो मनुष्य मनमें कोई कामना नहीं रखकर उसमें स्नान करता है, उसको वह तीर्थ मोक्षफल प्रदान करता है। वह दुःस्वप्नों तथा नरकके क्लेशोंका नाश करनेवाला एवं धन्य है। तुम्हारा ज्येष्ठ भाई परावसु यदि वहीं जाकर स्नान करे तो तत्काल ब्रह्महत्यासे मुक्त हो सकता है।' यों कहकर देवतालोग अपनी पुरीको चले गये।

तदनन्तर अर्वावसु अपने बड़े भाई परावसुको साथ ले श्रीरामचन्द्रजीके धनुष्कोटि नामक तीर्थमें गया। परावसुने पातकशुद्धिके लिये उस सेतुवर्ती तीर्थमें सङ्कल्प करके अपने भाईके साथ नियमपूर्वक स्नान किया। स्नान करके जब वे उठे, तब आकाशवाणीने कहा—'परावसो! तुम्हारी पितृहत्या और ब्रह्महत्या नष्ट हो गयी।' तब छोटे भाईके साथ परावसुने श्रीरामचन्द्रजीकी धनुष्कोटिको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और रामेश्वर महादेवको भक्तिभावसे मस्तक नवाकर दोनों भाई अपने पिताके आश्रमपर गये। वहाँ रैभ्य मुनि मरकर पुनः जीवित हो गये थे। उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको आया देख मन-ही-मन बड़े सन्तोषका अनुभव किया और पुत्रोंके साथ वे आश्रमपर सुखपूर्वक रहने लगे। श्रीरामचन्द्रजीकी धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे परावसुके पातकका नाश हो गया था। इसलिये सब मुनियोंने उन्हें स्वीकार किया।

धनुष्कोटिकी महिमा; सियार, वानर तथा दुराचार ब्राह्मणकी कथा और महालय श्राद्धकी आवश्यकता

सूतजी कहते हैं—अब मैं धनुष्कोटिकी प्रशंसामें सियार और वानरके संवादका वर्णन करता हूँ। प्राचीन कालमें एक स्थानपर सियार और वानर रहते थे। दोनोंको अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था। वे दोनों परस्पर मित्र थे। सियारका नाम रुद्रभूमिष्ठ था। एक समय वानरने शृगालको श्मशानभूमिमें देखकर पूर्वजन्मका स्मरण करते हुए

पूछा—'सियार ! तुमने पूर्वजन्ममें कौन-सा अत्यन्त भयङ्कर पाप किया था, जिससे तुम श्मशानभूमिमें घृणित एवं दुर्गन्ध-युक्त मुर्दोंको खा रहे हो ?' वानरके ऐसा पूछनेपर सियारने कहा—'वानर ! मैं पूर्वजन्ममें वेदोंका पारङ्गत विद्वान् और समस्त कर्मकलापोंका ज्ञाता ब्राह्मण था। मेरा नाम वेदशर्मा था। मैंने उस जन्ममें एक ब्राह्मणको देनेके लिये सङ्कल्प करके भी वह धन उसे नहीं दिया, उसीसे सियार हुआ और अब इस प्रकारके अत्यन्त घृणित पदार्थोंको खाता हूँ। जो दुरात्मा देनेकी प्रतिज्ञा करके भी कोई वस्तु नहीं देते हैं, वे अत्यन्त घृणित सियारकी योनिको प्राप्त होते हैं। वानर ! ब्राह्मणको देनेकी प्रतिज्ञा करके यदि वह वस्तु उसे न दी जाय, तो उसी क्षण उसके दस जन्मोंका पुण्य नष्ट हो जाता है। इसलिये समझदार मनुष्यको उचित है कि वह देनेकी प्रतिज्ञा करनेपर उस वस्तुको अवश्य दे डाले।'

ऐसा कहकर सियारने वानरसे पूछा—तुमने क्या पाप किया था, जो वानर हो गये ?

वानर बोला—पूर्वजन्ममें मैं भी ब्राह्मण था। मेरा नाम वेदनाथ था। मेरे पिता विश्वनाथ नामसे विख्यात थे और मेरी माताका नाम कमलालया था। सियार ! पूर्व-जन्ममें भी हमारी तुम्हारी मित्रता थी। तुम इस बातको नहीं जानते हो, परंतु पुण्यके गौरवसे मुझे उसका स्मरण है। पूर्वजन्ममें मैंने ब्राह्मणका साग चुरा लिया था, उसी पापसे मैं वानर हुआ हूँ। अतः ब्राह्मणका धन अपहरण नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणका धन लेनेसे नरक होता है और नरक भोगनेके बाद वानरकी योनि मिलती है। ब्राह्मणका धन अपहरण करनेसे बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है। विष तो केवल पीनेवालेको मारता है, किंतु ब्राह्मणका धन समूचे कुलको जला डालता है। ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेसे पापी मनुष्य कुम्भीपाक नामक नरकमें पकाया जाता है। पश्चात् शेष पापोंके फलस्वरूप वह वानर योनिको प्राप्त होता है। इसलिये ब्राह्मणके धनका अपहरण नहीं करना चाहिये। उनके साथ सदा क्षमाका ही व्यवहार करना चाहिये। बालक, दरिद्र, कृपण तथा वेद-शास्त्र आदिके ज्ञानसे शून्य ब्राह्मणोंका भी अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि क्रोधमें आनेपर वे अग्निके समान भस्म कर देनेवाले हो जाते हैं। सियार ! कितने ही समयसे ऐसा कष्ट भोगते हुए हम दोनोंको इस पापसे छुड़ानेवाला कौन होगा ?

सियार और वानर इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, इतनेमेंही दैवयोगसे अथवा पूर्वजन्मके किसी पुण्यवश वहाँ महातेजस्वी सिन्धुद्वीप नामक मुनि स्वेच्छानुसार घूमते हुए आ पहुँचे। वे रुद्राक्षकी मालासे विभूषित हो भगवान् शिवके नामोंका कीर्तन कर रहे थे। सियार और वानरने मुनिको देखकर प्रणाम किया तथा इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं, अपनी कृपादृष्टिसे हमारी ओर देखिये और हम दोनोंकी रक्षा कीजिये। हमारी वानर और सियारकी योनि जिस उपायसे छूट जाय, उसे बतानेकी कृपा कीजिये। साधुपुरुष सदा किसी प्रकारकी अपेक्षा न रखते हुए अपनी कृपादृष्टिसे अनाथों, दीनों, अज्ञानियों, बालकों तथा रोग-पीड़ित मनुष्योंकी रक्षा करते हैं।'

उन दोनोंके ऐसा कहनेपर महामुनि सिन्धुद्वीपने मन-ही-मन बहुत देरतक विचार किया और इस प्रकार कहा—'सियार और वानर ! तुम दोनोंके पापकी शान्तिके लिये मैं एक उपाय बताता हूँ। तुम दोनों दक्षिण समुद्रके तटपर श्रीरामचन्द्रजीके धनुष्कोटि तीर्थमें शीघ्र जाकर स्नान करो। ऐसा करनेसे पापसे मुक्त हो जाओगे।' सिन्धुद्वीपके इस वचनको सुनकर सियार और वानर बड़े प्रयाससे धनुष्कोटिमें गये और उसके जलमें स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर देवलोकमें चले गये। वहाँ उन्हें इन्द्र-का आधा आसन प्राप्त हुआ।

गोदावरीके तटपर दुराचार नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा पापी और निर्दयतापूर्ण कर्म करनेवाला था। ब्रह्महत्यारे, शराबी, सुवर्णकी चोरी करनेवाले तथा गुरुपत्नीगामी महापातकियोंके संसर्गसे दूषित होकर वह सदा वैसे ही लोगोंके साथ निवास करता था। महापातकियोंके संसर्गदोषसे उस ब्राह्मणकी ब्राह्मणता पूर्णतः नष्ट हो गयी थी। ब्राह्मणतासे हीन उस दुराचार ब्राह्मणको एक महा-भयङ्कर महाबलवान् वेतालने अपने अधीन कर लिया। वेतालके आवेशसे अत्यन्त पीड़ित एवं परवश होकर वह देश-देश और वन-वन घूमने लगा। घूमते-घूमते वह श्रीरामचन्द्र-जीके धनुष्कोटिमें चला गया। वहाँ वेतालने प्रेरित करके उसे धनुष्कोटिके जलमें नहलाया। स्नान करके वह ज्यों-ही जलसे निकला, वेतालने उसे छोड़ दिया। तब वह ब्राह्मण स्वस्थ होकर विचार करने लगा कि 'यह समुद्रके किनारे कौन-सा देश है ? गोदावरीके तटपर निवास करनेवाला मैं यहाँ कैसे आ गया ?' इसी चिन्तामें पड़ा हुआ वह धनुष्कोटि-निवासी योगिप्रवर महात्मा दत्तात्रेयके पास गया और उन्हें

प्रणाम करके बोला—'भगवन्! मैं नहीं जानता यह कौन-सा

देश है? मेरा घर तो गोदावरीके किनारे है, मैं यहाँ कैसे आ पहुँचा। यह सब बतानेकी कृपा करें।' उसकी यह बात सुनकर महायोगी दत्तात्रेयने थोड़ी देरतक ध्यान करके कहा—'पहले महापातकियोंके संसर्गसे तुम्हारी ब्राह्मणता नष्ट हो गयी थी, इसलिये तुम्हें किसी वेतालने पकड़ लिया। उसीके आवेशसे विवश होकर तुम यहाँ आये हो। वेतालने तुम्हें धनुष्कोटिके जलमें नहलाया है। धनुष्कोटिमें, स्नान करनेसे ही तुम्हारा महापातकियोंके संसर्गका दोष सर्वथा नष्ट हो गया। जिस वेतालने तुम्हें पकड़ रक्खा था, वह पूर्वजन्ममें ब्राह्मण था। उसने आश्विन मासके कृष्ण पक्षमें पार्वणकी विधिसे पितरोंका हर्षपूर्वक महालय श्राद्ध नहीं किया। अतः पितरोंके शाप देनेसे वह वेतालभावको प्राप्त हुआ। इस धनुष्कोटिके दर्शनसे वह वेताल भी वेताल-योनिसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकको प्राप्त हुआ है। जो मनुष्य आश्विन मासके कृष्ण पक्षमें अत्यन्त लोभवश पितरोंके उद्देश्यसे महालय श्राद्ध नहीं करते, वे वेताल होते हैं। जो आश्विन मासके कृष्ण पक्षमें महालय श्राद्धके अवसरपर अपनी शक्तिके अनुसार एक, दो या तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसकी कभी दुर्गति नहीं होती। भादों शुक्ल पक्षसे लेकर मार्गशीर्ष मासके अन्ततक तत्त्वदर्शी मुनियोंने महालय श्राद्धका समय बतलाया है। इसमें भी भादोंका शुक्ल पक्ष विशिष्ट है और उसकी अपेक्षा भी आश्विनका कृष्ण पक्ष अधिक उत्तम माना गया है। उस कृष्ण पक्षमें प्रतिपदा तिथिको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक महालय श्राद्ध करता है, उसके ऊपर सबको पवित्र करनेवाले भगवान् अग्निदेव प्रसन्न होते हैं। वह अग्निलोकको प्राप्त होता है। जो मनुष्य द्वितीया तिथिमें महालय श्राद्ध करता है, उसके ऊपर गिरिजापति भगवान् शङ्कर प्रसन्न होते हैं और वह कैलाशको प्राप्त होता है। जो तृतीया तिथिमें भक्तिपूर्वक महालय श्राद्ध करता है, उसपर ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों देवता अनुग्रह करते हैं। इसी प्रकार तृतीयासे लेकर चतुर्दशीतक महालय श्राद्धकी उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक महिमा है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक अमावास्या तिथिमें महालय श्राद्ध करता है, उसके पितरोंको अनन्तकालतक तृप्ति बनी रहती है। स्वर्गलोकमें देवताओंको अमृत पीनेसे जो तृप्ति प्राप्त होती है, वैसी ही अनन्त तृप्ति पितरोंको अमावास्यामें महालय श्राद्ध करनेसे होती है। अमावास्या तिथि भगवान् शङ्करको अत्यन्त प्रिय है। यह परम शान्त तिथि है। इसमें महालय श्राद्ध करके वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। अमावास्याको श्राद्ध करनेवाला पुरुष प्रत्यगात्मा और ब्रह्मकी एकताको जानकर सायुज्य मोक्षको प्राप्त होता है।

'भाद्रपद मास आनेपर देवस्वरूप पितर हर्षसे नाचने लगते हैं कि हमारे पुत्र हमलोगोंको तृप्तिके उद्देश्यसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करायेंगे। उस भोजनसे हमें अत्यन्त दारुण नरकका क्लेश नहीं भोगना पड़ेगा और जबतक चन्द्रमा तथा सूर्य बने रहेंगे, तबतक हमारा स्वर्गलोकमें निवास होगा। पितरोंको तृप्ति देनेवाले भाद्रपद मास एवं आश्विन मास प्राप्त होनेपर प्रतिदिन भक्तिपूर्वक एक-एक ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। इससे उसके पितृकुल और मातृकुलके पितर तृप्तिको प्राप्त होते हैं। आश्विन कृष्णा सप्तमीसे लेकर अमावास्यातक मनुष्य प्रतिदिन तीन-तीन ब्राह्मणोंको सत्कारपूर्वक भोजन करावे। द्वादशीसे लेकर अमावास्यातक तो अवश्य ही ऐसा करे। वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको इस प्रकार भोजन करावे, जिससे उन्हें पूर्णतः तृप्ति हो। उस ब्राह्मणकी तृप्तिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव तृप्त होते हैं। अग्निष्वात्त आदि पितर, इन्द्र आदि देवता और अधिक कहाँतक कहें, तीनों लोक भी तृप्त होते हैं। मनुष्य महालय पार्वणविधिसे श्राद्ध करे। महालय श्राद्धमें पितृकुलके पितरोंकी ही भाँति मातृकुलके मातामहादि पितरोंको भी प्रसन्नतापूर्वक भोजन कराना चाहिये। भोजनके पश्चात्

यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये । जैसे आगे चलनेवाले बैलोंके बिना गाड़ी रास्तेमें आगे नहीं बढ़ती, उसी प्रकार पितृयज्ञ भी बिना दक्षिणाके सफल नहीं होता । अतः कल्याणकी सिद्धिके लिये महालय श्राद्ध अवश्य करना चाहिये । यदि माता-पिताके क्षयाहके दिन एक-उद्दिष्ट श्राद्ध भूलसे न किया गया हो तो भी महालय श्राद्ध अवश्य करे। यदि अपने पास शक्ति न हो तो दूसरोंसे धनकी याचना करके भी पितरोंका महालय श्राद्ध करे । पहले ब्राह्मणोंसे याचना करनी चाहिये । यदि उनसे धन-धान्य आदिकी प्राप्ति न हो तो महालय श्राद्ध करनेकी इच्छासे उत्तम क्षत्रियोंके यहाँ याचना करे । यदि क्षत्रिय भी देनेवाले न हों तो वैश्योंसे माँगे । यदि लोकमें वैश्य भी दाता न हों तो पितरोंकी तृप्तिके लिये भाद्रपद मासमें गोग्रास अर्पण करे । यदि भादों या आश्विन मासमें सूतक आदिके द्वारा श्राद्धमें विघ्न उपस्थित हो जाय, तो सूतकका समय निवृत्त होनेपर अगहन मासके भीतर किसी दिन भी पार्वण श्राद्ध कर लेना चाहिये । विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह महालय श्राद्धके लिये नौ ब्राह्मणोंका वरण करे । एक ब्राह्मण पिताके लिये, एक पितामहके लिये और एक प्रपितामहके लिये वरण करे । इसी प्रकार मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहके लिये भी एक-एक ब्राह्मणका वरण करे । दो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका वरण विश्वेदेवोंके लिये करे और एक वेदवेत्ता ब्राह्मणका वरण भगवान् विष्णुके लिये करना चाहिये । अथवा पितृवर्गके लिये एक, मातामह वर्गके लिये एक, विश्वेदेवोंके लिये एक और भगवान् विष्णुके लिये एक। इस प्रकार चार ब्राह्मणोंका महालय श्राद्धके लिये वरण करे । वे ब्राह्मण वेदज्ञ एवं सुशील होने चाहिये । जो खोटे स्वभाववाले ब्राह्मणोंका वरण करता है, वह श्राद्धका घातक है । भाद्रपद शुक्ल पक्षमें अथवा विशेषतः आश्विन कृष्ण पक्षमें महालय श्राद्ध करना चाहिये । जो श्रद्धापूर्वक इस प्रकार महालय श्राद्ध करता है, वह सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल पा लेता है । महालय श्राद्ध नित्यकर्ममें गिना जाता है । अतः उसे न करनेपर बड़ा भारी पाप लगता है ।

'धर्मपुत्र युधिष्ठिर वनवासमें महालय श्राद्ध करनेसे ही दुःखके समुद्रसे पार हो धृतराष्ट्रपुत्रोंको मारकर युद्धमें विजयी हुए । मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ, अत्रि, भृगु, कुत्स, गौतम, अङ्गिरा, काश्यप, भरद्वाज, विश्वामित्र, अगस्त्य, पराशर, मृकण्ड तथा अन्यान्य मुनिवर विधिपूर्वक उत्तम महालय श्राद्धका अनुष्ठान करके ही अणिमा आदि आठों सिद्धियों, व्रतों और तपस्याओंके निवासस्थान बन गये । महालय श्राद्ध करनेसे ही उन्हें सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ । अतः अपना कल्याण एवं अभ्युदय चाहनेवाले पुरुषको महालय श्राद्ध अवश्य करना चाहिये । तुम्हारे भीतर जिस भूतने प्रवेश किया था, वह पूर्वजन्ममें ब्राह्मण था । उसका नाम वेदनिधि था । वह महात्मा भरद्वाजका पुत्र तथा कुशस्थली ग्रामका निवासी था । उसने विधिपूर्वक महालय श्राद्धको नहीं किया, इसलिये पितरोंके शापसे वह वेताल हो गया । दुराचार ! तुम भाद्रपद मास (आश्विन कृष्ण पक्ष) में पितरोंकी तृप्तिके लिये षड्रस भोजन तैयार करके ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराओ । ऐसा करनेसे तुम्हें कभी दरिद्रता नहीं होगी और तुम सदा सुखी रहोगे । आजसे तुम कभी महापातकियोंसे संसर्ग न रखना, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ । अब शीघ्रतापूर्वक अपने देशको चले जाओ।'

योगी दत्तात्रेय मुनिके इस प्रकार आज्ञा देनेपर दुराचार कृतार्थमनसे उन्हें प्रणाम करके अपने देशको चला गया और दत्तात्रेयजीके बताये हुए मार्गसे अपने वर्णाश्रमोचित कर्तव्यका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक रहने लगा । उसने महापातकियोंका संसर्ग त्याग दिया । श्रीरामचन्द्रजीके धनुष्कोटितीर्थमें स्नान करनेकी महिमासे दुराचार देहान्त होनेपर परम मोक्षको प्राप्त हुआ । ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने तुम्हें दुराचारके उद्धारकी पवित्र कथा कह सुनायी । इस प्रकार धनुष्कोटितीर्थ बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है ।

क्षीरकुण्डकी उत्पत्ति और महिमा—महर्षि मुद्गलको भगवान् विष्णुका दर्शन

श्रीसूतजी कहते हैं—नैमिषारण्यनिवासियो ! चक्रतीर्थसे लेकर धनुष्कोटिपर्यन्त चौबीस तीर्थोंका तुमसे वर्णन किया, अब और क्या सुनना चाहते हो ?

मुनि बोले—सूतजी ! हमलोग क्षीरकुण्डका माहात्म्य सुनना चाहते हैं, जिसके समीप पहले आपने चक्रतीर्थकी स्थिति बतलायी है ।

सूतजीने कहा—मुनिवरो ! परम पवित्र देवीपुरसे पश्चिम थोड़ी ही दूरपर फुल्लग्रामके नामसे प्रसिद्ध बड़ा भारी

स्थान है, जहाँसे प्रारम्भ करके श्रीरामचन्द्रजीने महासागरमें सेतु बाँधा है। वह फुल्लग्राम अतिशय पुण्यतम क्षेत्र है। वहाँपर महापातकोंका नाश करनेवाला क्षीरकुण्ड है, जो दर्शन, स्पर्श, —ान और कीर्तनसे भी मोक्ष देनेवाला है। प्राचीन कालमें क्षिण समुद्रके तटपर अतिशय पवित्र फुल्लग्राममें वेदोक्त मार्ग-(चलनेवाले मुद्गल नामक मुनि निवास करते थे। उन्होंने गवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाले एक उत्तम यज्ञका अनुष्ठान त्या। उस यज्ञसे सन्तुष्ट होकर प्रसन्नात्मा भगवान् विष्णु नके आगे प्रकट हुए। उनकी कान्ति श्याम मेघके समान ी। वे पीताम्बरसे सुशोभित थे। विनतानन्दन गरुड़की पीठ-र बैठे हुए थे। कौस्तुभमणि उनके वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ा ही थी। उनके चारों हाथ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे ोभायमान थे। उनका दर्शन करके मुद्गल मुनि भक्ति एवं प्रेमसे विह्वल हो गये। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने कानोंको सुख देनेवाले मधुर शब्दोंमें भगवान् विष्णुका तवन किया।

मुद्गल बोले—पहले संसारके सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके रूपमें, तत्पश्चात् उसका पालन करनेवाले विष्णुके रूपमें, तदनन्तर जगत्‌का संहार करनेवाले रुद्ररूपमें आप भगवान् नारायणको मेरा नमस्कार है। मत्स्य और कच्छपरूप धारण करनेवाले आप सच्चिदानन्दमय प्रभुको प्रणाम है। वराह और नृसिंहरूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। वामन और परशुरामरूपधारी आप भगवान्‌को प्रणाम है। राम और बलरामके रूपमें आपको नमस्कार है। श्रीकृष्ण, कल्कि तथा विज्ञानात्मा बुद्धके रूपमें आपको नमस्कार है। करुणासिन्धो! नारायण! जगत्पते! आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं निर्लज्ज, कृपण, क्रूर, चुगलखोर, दम्भी, दुर्बल, परायी स्त्री, पराये धन और पराये क्षेत्रके लिये सदा लोलुप रहनेवाला तथा मनसे सबके दोषोंपर ही दृष्टि रखनेवाला हूँ। हरे! कृपया मेरी रक्षा कीजिये।

महर्षि मुद्गलके इस प्रकार स्तुति करनेपर साक्षात् भगवान् विष्णु मेघके समान गम्भीर वाणीमें इस प्रकार बोले—मुद्गल! मैं तुम्हारे इस स्तोत्र और यज्ञसे बहुत प्रसन्न हूँ और प्रत्यक्षरूपसे हविष्यको भोग लगानेके लिये तुम्हारे यज्ञमें आया हूँ।

मुद्गलने कहा—हृषीकेश! मैं कृतार्थ हो गया। मेरी धर्मपत्नी भी धन्य-धन्य हो गयी। आज मेरा जन्म सफल हुआ। मेरी तपस्या सफल हुई; मेरा वंश, मेरे पुत्र, मेरा आश्रय और मेरा सब कुछ आज सफल हो गया। क्योंकि आप साक्षात् भगवान् विष्णु मेरी यज्ञशालामें हविष्य ग्रहण करनेके लिये पधारे हैं। योगपरायण योगी लोग अपने हृदयमें जिनकी खोज करते हैं, उन्हीं आप नारायणको मैं आज प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।

ऐसा कहकर भगवान् विष्णुके लिये आसन दे मुनिने चन्दन और पुष्प आदि उपचारोंसे भगवान्‌को अर्घ्य दे उनका पूजन किया और उनके लिये प्रसन्नतापूर्वक पुरोडाश आदि हविष्य अर्पण किया। विश्वभावन भगवान् विष्णुने महर्षि मुद्गलके द्वारा समर्पित उस हविष्यको स्वयं हाथसे लेकर भोजन किया। भगवान् विष्णुके द्वारा उस हविष्यके भोजन करनेपर अग्निसहित सम्पूर्ण देवता तृप्त हो गये। इतना ही नहीं, ऋत्विज, यजमान, वहाँके ब्राह्मण तथा जीवलोकमें जो कोई भी चराचर प्राणी थे, वे सब-के-सब तृप्त हो गये। सम्पूर्ण जगत् तृप्त हुआ। तदनन्तर भगवान् विष्णुने कहा—'सुव्रत! मैं प्रसन्न हूँ और वर देनेको उद्यत हूँ, अतः कोई वर माँगो।' भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर महर्षि बोले—'प्रभो! आपने प्रत्यक्षरूपसे दर्शन देकर मेरे यज्ञमें हविष्यको भोग लगाया है। इतनेसे ही मैं कृतार्थ हो गया। इससे अधिक और क्या वर हो सकता है। तथापि भगवन्! 'आपमें निश्चल एवं निष्कपट भक्ति सदा बनी रहे' यह मेरा प्रथम वर है। माधव! मैं प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल आपके स्वरूपभूत अग्निकी तृप्ति एवं आपकी प्रीतिके लिये गायके दूधसे हवन करना चाहता हूँ, मेरी यह इच्छा पूर्ण हो—यह मेरे लिये दूसरा वर है।' मुद्गलजीके ऐसा कहनेपर भगवान् नारायणने अमृतभोजी देवता विश्वकर्मा शिल्पीको बुलाकर उनके द्वारा एक सुन्दर सरोवरका निर्माण करवाया। विश्वकर्माने उसे चारों ओरसे चहारदिवारी आदि लगाकर सब प्रकारसे सुशोभित कर दिया। उसके बाद भगवान्‌ने सुरभिको बुलाकर कहा—'सुरभे! ये मेरे भक्त मुद्गलजी प्रतिदिन मेरी प्रसन्नताके लिये दूधसे हवन करना चाहते हैं। अतः तुम मेरे आदेशासे नित्य सवेरे और सन्ध्याके समय यहाँ आकर इस सरोवरको दूधसे भर दिया करो।' सुरभिने 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान्‌की आज्ञा स्वीकार की। फिर भगवान्‌ने मुद्गलजीसे कहा—'ब्रह्मन्! इस सरोवरमें सदा सुरभिका दूध वर्तमान रहेगा। तुम उसके द्वारा प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल मेरी प्रसन्नताके लिये अग्निमें होम करो। इससे मैं तुमपर प्रसन्न रहूँगा और मेरी प्रसन्नतासे तुम्हें सम्पूर्ण सिद्धि

प्राप्त होगी । यह 'क्षीरसरोवर' नामसे विख्यात तीर्थ होगा । इसमें स्नान करनेवाले मनुष्योंके पाँच महापातक तथा अन्यान्य पाप तत्काल नष्ट हो जायँगे । मुद्गल ! तुम देहावसान होनेपर सब बन्धनोंसे मुक्त हो मुझे प्राप्त होओगे ।'

यों कहकर भगवान् विष्णुने मुद्गलको हृदयसे लगा लिया । तत्पश्चात् महर्षि मुद्गलने भगवान्‌को प्रणाम किया और भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये । भगवान् विष्णुके चले जानेपर महर्षि मुद्गलने प्रतिदिन सुरभिके दूधसे श्रीहरिकी प्रसन्नताके लिये अग्निमें आहुति करते हुए मोक्षदायक फुल्लग्राममें अनेक सौ वर्षोंतक निवास किया । तदनन्तर देहान्त होनेपर उन्होंने भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लिया ।

कपितीर्थकी महिमा—उसमें स्नान करनेसे रम्भा और घृताचीका शापसे उद्धार

श्रीसूतजी कहते हैं—अब मैं 'कपितीर्थ' के माहात्म्यका वर्णन करता हूँ; जिसे पूर्वकालमें सब वानरोंने मिलकर गन्धमादन पर्वतपर निर्माण किया था । उस तीर्थको बनाकर वानरोंने उसमें हर्षपूर्वक स्नान किया और तीर्थके लिये इस प्रकार वर दिया—'जो मनुष्य भक्तिसे विनीतचित्त होकर इस तीर्थमें स्नान करेंगे, वे महापातकोंसे मुक्त होकर मोक्षके भागी होंगे । इस तीर्थमें गोता लगानेवाले पुरुषोंको नरकका भय नहीं होगा । इसमें स्नान करनेवाले लोगोंको दरिद्रता नहीं प्राप्त होगी । यमराजकी यातना भी नहीं भोगनी पड़ेगी ।' इस प्रकार इस तीर्थके लिये वरदान देकर कपीश्वरोंने दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके उनसे भी प्रार्थना की—'स्वामिन् ! आप भी इस तीर्थके लिये अद्भुत वरदान दें ।' वानरोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उनकी प्रीतिके लिये श्रीरामचन्द्रजीने हर्षपूर्वक उस तीर्थको वरदान दिया—'इस तीर्थमें गोता लगानेवालोंको गङ्गास्नानका फल मिलेगा, प्रयागस्नानका पुण्य प्राप्त होगा तथा सब तीर्थोंके फलकी प्राप्ति होगी । यह अति उत्तम तीर्थ कपियोंद्वारा बनाया गया है, इसलिये संसारमें 'कपितीर्थ' के नामसे इसकी प्रसिद्धि होगी ।' अतः मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इस तीर्थमें अवश्य स्नान करना चाहिये । प्राचीन कालकी बात है, कुशिकवंशमें विश्वामित्र नामक राजा हुए । एक समय महाराज विश्वामित्रने अपने राज्यका निरीक्षण करनेके लिये विशाल सेनाके साथ पृथ्वीपर घूमना आरम्भ किया । अनेक देशोंमें घूमकर वे वसिष्ठजीके आश्रमपर गये । महात्मा वसिष्ठने अपनी कामधेनुके प्रभावसे राजा विश्वामित्रका उत्तम आतिथ्य-सत्कार किया । कौशिक विश्वामित्रने कामधेनुका प्रभाव जानकर वसिष्ठजीसे वह सब मनोरथोंको देनेवाली गाय माँगी । वसिष्ठजीने उसे देना अस्वीकार कर दिया । तब वे बलपूर्वक उस गायको खींचकर ले चले । कामधेनुने म्लेच्छोंकी बहुत बड़ी सेना उत्पन्न की, जिससे विश्वामित्रको हार खानी पड़ी । तब उन्होंने महादेवजीकी आराधना करके उनसे अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये और वसिष्ठजीके आश्रमपर जाकर उन सबका प्रयोग करना प्रारम्भ किया । विश्वामित्रने सब अस्त्र चलाये, ब्रह्मास्त्रका भी प्रयोग किया; परंतु ब्रह्मनन्दन वसिष्ठजीने अपने तपोबलसे एकमात्र ब्रह्मदण्डके द्वारा विश्वामित्रके उन सब अस्त्रोंको नष्ट कर दिया । इस प्रकार पराजित होनेपर विश्वामित्रको बड़ी लज्जा हुई । अब वे स्वयं ब्राह्मणत्व-प्राप्तिके उद्देश्यसे तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये । उन्होंने उत्तर दिशामें जाकर हिमालय पर्वतपर कौशिकी नदीके पापनाशक पुण्यमय तटपर एक हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्या की । निराहार और जितेन्द्रिय रहकर नेत्र बंद करके श्वास और क्रोधको जीतकर वे निश्चल भावसे खड़े रहे । तब इन्द्र आदि देवताओंने रम्भासे कहा—'रम्भे ! तुम हिमालय पर्वतपर कौशिकी नदीके किनारे तपस्या करनेवाले महामुनि विश्वामित्रको अपने हाव-भावोंसे लुभाओ । जिस प्रकार उनकी तपस्यामें विघ्न पड़े, वैसा प्रयत्न करो ।'

इन्द्रके ऐसा कहनेपर रम्भा विश्वामित्रके आश्रमपर गयी और मुनिके नेत्रोंके सामने खड़ी हो सुन्दर रूप धारण करके अपनी मनोहर चेष्टाओंद्वारा उनके मनको लुभाने लगी । इतनेमें ही मनमें आनन्द बढ़ाती हुई कोयल भी कूक उठी । पिकीका मधुर कलरव सुनकर और रम्भाको वहाँ उपस्थित देखकर मुनिवर विश्वामित्रका हृदय संशयमें पड़ गया । उन्होंने समझ लिया कि 'यह सारी करतूत इन्द्रकी है ।' तब उन तपोधनने क्रोधमें आकर रम्भाको शाप दिया—'रम्भे ! मैं क्रोधको जीतनेकी इच्छा रखता हूँ और तू यहाँ विघ्न डालनेके लिये आकर मेरे क्रोधको बढ़ा रही है,

इसलिये तू दस लाख वर्षोंतक यहाँ शिला होकर पड़ी रह।'

विश्वामित्रके इस प्रकार शाप देनेपर रम्भा उनके आश्रमपर बहुत कालतक शिला होकर रही। धर्मात्मा विश्वामित्रने पुनः बड़ी भारी तपस्या करके वशिष्ठके वचनों-द्वारा अनुमोदित तथा दूसरे क्षत्रियोंके लिये दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया। फिर उसी पवित्र आश्रममें अगस्त्यजीके शिष्य श्वेत मुनिने मोक्षकी इच्छा रखकर बड़ा भारी तप किया। दीर्घकालतक तपस्यामें लगे हुए मुनिवर श्वेतके आश्रमपर एक दिन कोई राक्षसी आयी। उसका नाम ...रका था। उस भयानक राक्षसीने मूत्र, रक्त और ... आदिके द्वारा उनके आश्रमको गंदा कर दिया और ...क उपद्रवोंसे उन्हें सताना आरम्भ किया। तब श्वेतजीने ...त हो विश्वामित्रजीके शापसे शिलाभावको प्राप्त रम्भाको वायव्यास्त्रसे संयोजित करके उस राक्षसीके ऊपर फेंका। शिला वायव्यास्त्रसे प्रेरित हो राक्षसीके ऊपर टूट पड़ी। ...सी उस शिलाके भयसे भाग चली। भागते-भागते वह दक्षिण समुद्रके तटपर कपितीर्थके समीप जा पहुँची। भयसे वह राक्षसी अत्यन्त व्याकुल हो रही थी। वह शिला भी राक्षसीका पीछा करती हुई वहाँतक गयी और कपितीर्थमें गोता लगाती हुई राक्षसीके ऊपर गिर पड़ी। मस्तकपर शिलाके आघातसे राक्षसी वहीं मर गयी। इधर कपितीर्थमें स्नान करनेसे विश्वामित्रके शापको प्राप्त हुई वह शिला अपने शिलारूपको छोड़कर रम्भाके रूपमें परिणत हो गयी। तत्पश्चात् दिव्य वस्त्रोंसे सुशोभित हो वह दिव्य विमानपर चढ़ी और बारंबार कपितीर्थके माहात्म्यकी प्रशंसा करती हुई अमरावती पुरीको चली गयी। वह राक्षसी भी घृताची नामक अप्सरा थी, जो कपितीर्थमें स्नान करके अपने स्वरूपको प्राप्त हुई। इस प्रकार अगस्त्यशिष्य श्वेतजीके प्रसादसे रम्भा और घृताची कपितीर्थमें स्नान करके शिलाभाव और राक्षसीरूपको त्यागकर अपने-अपने स्वरूपको प्राप्त हो गयीं। इसलिये प्रयत्नपूर्वक कपितीर्थमें स्नान करना चाहिये।

रामेश्वर नामक महालिङ्गकी महिमा

श्रीसूतजी कहते हैं—जो मनुष्य भगवान् श्रीरामचन्द्र-के द्वारा स्थापित रामेश्वर शिवलिङ्गका एक बार दर्शन कर लेता ... वह भगवान् शङ्करके सायुज्यस्वरूप मोक्षको प्राप्त करता ...। सत्ययुगमें दस वर्षोंमें जो पुण्य किया जाता है, उसीको ...ताके मनुष्य एक वर्षमें सिद्ध करते हैं। वही द्वापरमें एक ...स और कलियुगमें एक दिनमें साध्य होता है। परंतु ...ो लोग भगवान् रामेश्वरका दर्शन करते हैं, उनको वही ...ण्य कोटिगुना होकर एक-एक पलमें प्राप्त होता है, इसमें ...न्देह नहीं है *। रामेश्वर नामक महालिङ्गमें सब तीर्थ, ...म्पूर्ण देवता, ऋषि-मुनि तथा पितर विद्यमान हैं। जो एक ...मय, दो समय, तीनों समय अथवा सर्वदा ही मोक्षदायक ...मेश्वर नामक महादेवजीका स्मरण या कीर्तन करते हैं, ...ो पापसमूहसे मुक्त हो जाते हैं और सच्चिदानन्दमय अद्वैत-रूप साम्बशिवको प्राप्त होते हैं। रामेश्वर नामक शिवलिङ्ग भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा पूजित हुआ है, उसके स्मरण करनेमात्रसे यमराजकी पीड़ा नहीं प्राप्त होती। जो मनुष्य रामेश्वर नामक महालिङ्गको नमस्कार और उसका पूजन करते हैं, उनका जन्म सफल है, वे कृतार्थ हो जाते हैं। जो मनुष्य रामेश्वर नामक महालिङ्गके प्रति भक्ति रखते हैं, उन लोगोंके प्रणाम, स्मरण और पूजनमें तत्पर रहनेवाले मानव भी कभी दुःख नहीं देखते। करोड़ों जन्मोंमें किये गये जो कोई भी पाप हैं, वे भगवान् रामेश्वरका दर्शन कर लेने-पर तत्काल नष्ट हो जाते हैं। रामेश्वर महालिङ्गका कीर्तन और पूजन करनेवाला मनुष्य अवश्य ही भगवान् रुद्रका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि क्षणभरमें काष्ठके ढेरको भस्म कर डालती है, वैसे ही भगवान् रामेश्वर-का दर्शन करनेवाले लोगोंके सब पाप तत्काल भस्म हो जाते हैं। रामेश्वर महालिङ्गकी भक्ति आठ प्रकारकी बतायी गयी है—(१) रामेश्वरके भक्तोंके प्रति स्नेह एवं दया-भाव रखना, (२) उन भक्तोंका पूजन करके उन्हें सन्तुष्ट करना, (३) स्वयं भगवान् रामेश्वरकी भक्तिपूर्वक पूजा करना, (४) उन्हींके लिये देहकी सारी चेष्टाओंका होना,

* दशवर्षैस्तु यत्पुण्यं क्रियते तु कृते युगे।
त्रेतायामेकवर्षेण तत्पुण्यं साध्यते नृभिः॥
द्वापरे तच्च मासेन तद्दिनेन कलौ युगे।
तत्फलं कोटिगुणितं निमिषे निमिषे नृणाम्॥
निस्सन्देहं भवेदेवं रामनाथविलोकिनाम्।
(स्क० पु० ब्रा० से० मा० ४३। ३-५)

(५) श्रीरामेश्वरकी माहात्म्य-कथा श्रवण करनेमें आदर-भाव रखना, (६) उनके प्रति प्रेमाधिक्यके कारण वाणीका गद्गद होना, नेत्रोंमें आँसू आना, शरीरमें रोमाञ्चका उदय होना आदि भावोंका स्फुरण, (७) श्रीरामेश्वर महालिङ्गका निरन्तर स्मरण करना तथा (८) उसीकी शरण लेकर जीवन-धारण करना। जिस-किसी म्लेच्छमें भी ऐसी आठ प्रकारकी भक्ति हो, वह भी मुक्तिक्षेत्रोंके मोक्षरूपी धनका अधिकारी बताया गया है। अनन्य भक्ति और ब्रह्मज्ञानके द्वारा मुक्ति निश्चित है। ऊर्ध्वरेता संन्यासियोंको वेदान्तशास्त्रके श्रवणसे जो मुक्ति प्राप्त होती है, वही सब वर्णों और सब आश्रमके लोगोंको दर्शनशास्त्रके श्रवणजनित ज्ञानके बिना ही केवल रामेश्वर महालिङ्गके दर्शनसे ही प्राप्त हो जाती है। योगयुक्त ऊर्ध्वरेता मुनियोंकी जो गति होती है, वही भगवान् रामेश्वर-का दर्शन करनेवाले समस्त प्राणियोंकी होती है। जो मनुष्य रामेश्वर शिवके क्षेत्रकी प्रसन्नतापूर्वक यात्रा करते हैं, उन्हें पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका पुण्य प्राप्त होता है। अम्बा-पार्वतीसहित परम दयालु रामेश्वर महालिङ्गरूप भगवान् शिवमें भक्ति होनी अत्यन्त दुर्लभ है, उनकी पूजाका शुभ अवसर भी दुर्लभ है तथा उनका स्तवन और स्मरण भी अत्यन्त दुर्लभ है। जिसकी बुद्धि निरन्तर रामेश्वर महालिङ्ग-का चिन्तन करती है, वही इस पृथ्वीपर धन्यातिधन्य पुरुष है। श्रीरामेश्वर महालिङ्गका दर्शन करनेवाले पुरुषके दर्शन-मात्रसे दूसरे प्राणियोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो प्रातःकाल उठकर तीन बार रामनाथ (रामेश्वर) शब्दका उच्चारण करता है, उसका पहले दिनका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। यदि प्राणत्यागके समय मनुष्य भगवान् रामेश्वर-का स्मरण करे, तो फिर उसका जन्म नहीं होता। 'रामनाथ! महादेव! करुणानिधे! सदा मेरी रक्षा कीजिये।' इस प्रकार जो सदा उच्चारण करता है, वह कलियुगसे पीड़ित नहीं होता *। 'रामनाथ! जगन्नाथ! धूर्जटे! नीललोहित!' जो इस प्रकार सदा बोलता है, उसे माया नहीं सताती। 'नीलकण्ठ! महादेव! रामेश्वर! सदाशिव!' सदा ऐसा बोलनेवाला प्राणी कभी कामसे कष्ट नहीं पाता। 'हे रामेश्वर! हे यमराजके शत्रु! हे कालकूट विषका भक्षण करनेवाले शिव!' प्रतिदिन इस प्रकार उच्चारण करनेवाला पुरुष कभी क्रोधसे पीड़ित नहीं होता। जो स्फटिक आदि भिन्न-भिन्न शिलाओंसे भगवान् रामेश्वरका मन्दिर बनाता है, वह श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् शिवके लोकको जाता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक त्रिशूलधारी भगवान् रामेश्वरके स्नानके समयमें रुद्राध्याय, चमक, पुरुषसूक्त, त्रिसुपर्ण, पञ्चशान्ति तथा पावमानी आदि ऋचाओं-को प्रेमपूर्वक जपता है, वह कभी नरकका कष्ट नहीं भोगता है। जो रामेश्वर महालिङ्गको गायके दूधसे स्नान कराता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके शिवलोकमें पूजित होता है। दहीसे स्नान करानेवाला पुरुष सब पापोंसे छूटकर भगवान् विष्णुके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। रामेश्वर शिवको नारियलके जलसे कराया हुआ स्नान ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाशक बताया गया है। वस्त्रसे छानकर शुद्ध किये हुए जलके द्वारा रामेश्वर महादेवको स्नान करानेवाला पुरुष वरुणलोकमें जाता है। पुष्पोंके सुगन्धसे वासित जलके द्वारा दयानिधान रामेश्वर महालिङ्गको स्नान करानेवाला मनुष्य शिवलोकमें पूजित होता है। 'रामसेतु धनुष्कोटिमें विराजमान भगवान् रामेश्वर!' ऐसा उच्चारण करके मनुष्य जहाँ कहीं भी स्नान करे, सेतु-स्नानका फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य रामेश्वर शिवके टूटे-फूटे हुए मन्दिरको बनाता या उसकी मरम्मत करता है, वह दस सहस्र ब्रह्महत्याओंको जला डालता है। जो मनुष्य भगवान् रामेश्वरके आगे प्रसन्नतापूर्वक दीपक अर्पण करता है, वह अविद्यामय अन्धकारका भेदन करके प्रकाशस्वरूप सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है। भगवान् रामेश्वरके उद्देश्यसे जो थोड़ा भी आदरपूर्वक दान किया जाता है, वह दाताको परलोकमें अनन्त फल देनेवाला होता है। महाक्षेत्र रामेश्वरमें श्रीरामनाथजीके समीप निवास करने-वाला मनुष्य पुनरावृत्तिरहित मोक्षको प्राप्त होता है। संसार-का लाड़-प्यार छोड़कर आपत्तिग्रस्त मनुष्योंकी पीड़ा दूर करनेवाले रामेश्वर महालिङ्गका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिये। भगवान् रामेश्वरका पूजन, वन्दन, स्मरण, श्रवण और दर्शन कर लेनेपर कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती। जो लाये हुए गङ्गाजलके द्वारा रामेश्वर नामक महालिङ्गको स्नान कराता है, वह भगवान् शिवके लिये भी आदरणीय हो जाता है। जबतक मृत्यु नहीं आती, जबतक वृद्धावस्थाका आक्रमण नहीं होता और जबतक सम्पूर्ण इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हो जातीं, तभीतक मोक्ष चाहनेवाले मनुष्योंको सदैव भगवान् रामेश्वरका वन्दन, पूजन, चिन्तन तथा स्मरण कर

---

* रामनाथ महादेव मां रक्ष करुणानिधे।
इति यः सततं ब्रूयात् कलिनासौ न बाध्यते॥
(स्क० पु० ब्रा० से० मा० ४३। ७१)

लेना चाहिये। परम दयालु भगवान् रामेश्वरका जो भक्तिपूर्वक सदा भजन करते हैं, वे इस भूतलपर सदा सुखी होते हैं और अन्तमें सनातन मोक्षको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार रामेश्वर महालिङ्गकी महिमाका वर्णन किया गया। जो इस प्रसङ्गको भक्तिपूर्वक पढ़ता और सुनता है, वह श्रीरामेश्वरकी सेवाके परम उत्तम फलको पाता है।

भगवान् श्रीरामके द्वारा राक्षसोंसहित रावणका वध और सेतुके क्षेत्रमें रामेश्वरलिङ्गकी स्थापना

ऋषि बोले—सब प्राणियोंका उपकार करनेवाले सूतजी! आपने इस पुराणकी कथा सुनाकर हमलोगोंपर बड़ा अनुग्रह किया। दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने जिस प्रकार शिवलिङ्गकी स्थापना की है, उसको हमलोग सुनना चाहते हैं।

सूतजीने कहा—वानरोंकी सेनाके साथ महेन्द्रगिरिपर आकर लक्ष्मणसहित महाबली श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रका दर्शन किया। तत्पश्चात् अपार समुद्रके ऊपर सेतु बाँधकर उसीके मार्गसे श्रीरघुनाथजी रावणपालित लङ्कापुरीको गये। वहाँ पहुँचनेपर सूर्यास्त हो गया। पूर्णिमाके प्रदोष-कालमें सेनासहित श्रीरामचन्द्रजी सुवेल पर्वतपर आरूढ़ हो गये। तदनन्तर रात्रिमें महलकी छतपर खड़े हुए लङ्कापति रावणको देखकर महाबली सूर्यपुत्र सुग्रीवने उसके मुकुटको धरतीपर गिरा दिया। मुकुट भङ्ग हो जानेसे राक्षस घरमें घुस गया। लङ्केश्वरके घरमें घुस जानेपर सुग्रीव, लक्ष्मण और सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीने पर्वतके किनारेसे उतरकर लङ्काके समीप अपनी सेनाको ठहराया। वहाँ ठहराये जाते हुए वानरोंपर रावणके विशालकाय सैनिकोंने अस्त्र-शस्त्र लेकर आक्रमण किया। वे सभी दुष्टात्मा राक्षस अदृश्य होकर आये थे। विभीषणने उन सबका अन्तर्धान-विद्यासे ही वध किया। बहुतसे बलवान् वानरोंद्वारा कितने ही राक्षस मारे गये। भयङ्कर पराक्रमी वानरोंने जिनका अङ्गभङ्ग कर दिया था, ऐसे मरनेसे बचे हुए राक्षस शीघ्र ही रावणपालित लङ्कापुरीमें भाग गये। उस सेनाके नष्ट हो जानेपर रावणके भेजे हुए इन्द्रजित्ने युद्धमें अत्यन्त भयङ्कर नागास्त्रोंद्वारा दोनों दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मणको बाँध लिया। तत्पश्चात् विनतानन्दन महात्मा गरुड़ने आकर उन दोनों भाइयोंको नागपाशसे मुक्त किया। तब विभीषणने आठ घण्टावाली विशाल शक्ति हाथमें लेकर उसे अभिमन्त्रित करके प्रहस्तके मस्तकपर चलाया। उस वज्रकी भाँति गिरती हुई शक्तिने राक्षसका मस्तक काट लिया, जिससे वह आँधीसे गिराये हुए वृक्षकी भाँति दिखायी देने लगा। राक्षस प्रहस्तको युद्धमें मारा गया देख धूम्राक्षने बड़े वेगसे वानरोंपर आक्रमण किया। वानर भाग चले। वानर-सेनाको भागते हुए देख पवनकुमार हनुमान्जीने धूम्राक्षको शीघ्र ही मार डाला। धूम्राक्षको मारा गया देख मरनेसे बचे हुए निशाचरोंने सब समाचार राजा रावणको बताया। तब रावणने कुम्भकर्णको सोतेसे जगाया और उसे युद्ध करनेके लिये भेजा। युद्धमें आये हुए कुम्भकर्णको लक्ष्मणजीने कुपित होकर ब्रह्मास्त्रसे मारा, जिससे वह प्राणहीन होकर धरतीपर गिर पड़ा। तब वहाँ दूषण नामक राक्षसके दो छोटे भाई वज्रवेग और प्रमाथी, जो युद्धमें रावणके समान ही बली थे, आये और हनुमान् एवं अंगदके हाथों मारे गये। विश्वकर्माके पुत्र नलने वज्रदंष्ट्रको तथा कुमुद नामक श्रेष्ठ वानरने अकम्पनको मारा। लक्ष्मणजीने अतिकाय और त्रिशिराका वध किया। सुग्रीवने देवान्तक तथा नरान्तकको मौतके घाट उतारा। हनुमान्जीने कुम्भकर्णके दोनों पुत्रोंको मार डाला। विभीषणने खरके पुत्र मकराक्षका वध किया।

तदनन्तर रावणने इन्द्रजित्को युद्धके लिये भेजा। इन्द्रजित्ने दोनों भाई राम और लक्ष्मणको मोहित किया। इतनेमें ही अंगदने उसके रथके घोड़ोंको मार डाला। वाहन-शून्य हो जानेपर वह आकाशमें स्थित हो गया। उसके प्रहारसे घायल हुए कुमुद, अंगद, सुग्रीव, नल और जाम्बवान् आदिके साथ प्रायः सभी वानर धरतीपर गिर पड़े। इस प्रकार सेनासहित श्रीराम और लक्ष्मणको युद्धमें घायल करके महाबली मेघनाद आकाशमें अदृश्य हो गया। तब विभीषणने इक्ष्वाकुकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजीसे बारंबार प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! कुबेरकी आज्ञासे एक गुह्यक आपकी सेवामें यह दिव्य जल लेकर उपस्थित हुआ है, महाराज! इसे कुबेर अन्तर्धान-विद्यासे अदृश्य हुए प्राणियोंको देखनेके लिये आपको अर्पित करते हैं। इसको आँखमें लगा लेनेसे आप आकाशमें अदृश्य हुए प्राणियोंको भी देख सकेंगे और जिसके लिये आप यह जल देंगे, वह भी उन प्राणियोंको देख सकेगा।' 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजीने

आदरपूर्वक उस जलको ग्रहण किया और उससे अपने नेत्रोंको धोया। तत्पश्चात् महाबली लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान्, अङ्गद, मैंद, द्विविद, नील तथा अन्य जो वानर थे, उन सबने श्रीरामचन्द्रजीके दिये हुए जलसे अपने-अपने नेत्र धो लिये। तब उन्होंने आकाशमें छिपे हुए वीरवर मेघनादको देखा। दृष्टि पड़ जानेपर सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने उसपर आक्रमण किया। तब लक्ष्मण और मेघनादमें अत्यन्त विचित्र तथा आश्चर्यजनक युद्ध हुआ। तीसरे दिन बड़े प्रयाससे महाबली लक्ष्मणके द्वारा मेघनाद युद्धमें मारा गया।

अपने प्रिय पुत्रके मारे जानेपर रावणको बड़ा क्रोध हुआ। वह बहुत-सी सेना साथ ले रथपर बैठकर नगरसे बाहर निकला। तब इन्द्रसारथि मातलि हरे घोड़े जुते हुए सूर्यके समान तेजस्वी रथके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें उपस्थित हुए। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामने इन्द्रके भेजे हुए उस रथपर सवार हो युद्धमें ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करके राक्षसराज रावणके सभी मस्तक काट डाले। रावणके मारे जानेपर देवताओं और ऋषियोंने दशरथनन्दन श्रीरामको आशीर्वाद दे उनकी जय-जयकार की और अत्यन्त सन्तुष्ट हो भगवान्‌का स्तवन किया। सिद्धों तथा विद्याधरोंने कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीपर फूलोंकी वर्षा की। तब श्रीरामचन्द्रजी उन देवताओं, वानर सैनिकों तथा सीता और लक्ष्मणके साथ लङ्कामें विभीषणको राजाके पदपर अभिषिक्त करके पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो गन्धमादन पर्वतपर आये। गन्धमादन पर्वतपर विदेहनन्दिनी सीताकी अग्निपरीक्षाद्वारा शुद्धि की गयी। तदनन्तर दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले मुनि अगस्त्यजीको आगे करके कमलनयन जानकीवल्लभ श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करनेके लिये आये और उनकी स्तुति करने लगे।

मुनि बोले—सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले आप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है। आपने इस संसारको रावणसे शून्य करनेके लिये अवतार लिया है, आपको नमस्कार है। ताड़काका संहार और विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेवाले आपको नमस्कार है। मारीचको जीतनेवाले, सुबाहुका प्राण हरण करनेवाले श्रीराम! आपको नमस्कार है। आपके चरणारविन्दोंकी धूलि अहल्याको मुक्ति देनेवाली है, आपने भगवान् शङ्करके धनुषको लीलापूर्वक भंग किया है, आपको नमस्कार है। मिथिलेशकुमारी सीताके पाणिग्रहणसम्बन्धी उत्सवसे सुशोभित होनेवाले आपको नमस्कार है। रेणुकानन्दन परशुरामजीको पराजित करनेवाले आपको नमस्कार है। कैकेयीके दो वरदानोंसे विवश हुए पिताके वचनको सत्य करनेके लिये सीता और लक्ष्मणके साथ वनकी यात्रा करनेवाले आपको नमस्कार है। भरतकी प्रार्थनापर उन्हें अपने चरणोंकी युगल पादुका समर्पित करनेवाले आपको नमस्कार है। शरभङ्ग मुनिको अपने परम धामकी प्राप्ति करानेवाले आपको नमस्कार है। विराध राक्षसका संहार करनेवाले तथा गृध्रराज जटायुको अपना सखा बनानेवाले आपको नमस्कार है। मायासे मृगका रूप धारण करके आये हुए महाक्रूर मारीचके शरीरको अपने बाणोंसे विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है। रावणसे हरी गयी सीताको छुड़ानेके लिये जिन्होंने युद्धमें अपने शरीरका त्याग कर दिया, उन जटायुको अपने हाथसे दाह-संस्कार करके कैवल्य मोक्ष प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है। कबन्धका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है। शबरीने आपके चरणारविन्दोंका पूजन किया है, आपने सुग्रीवके साथ मैत्री जोड़ी है तथा वाली नामक वानरका वध किया है, आपको नमस्कार है। वरुणालय समुद्रमें सेतुनिर्माण करनेवाले आपको नमस्कार है। समस्त राक्षसोंका संहार तथा रावणका प्राण हरण करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके चरणारविन्द संसारसागरसे पार उतारनेके लिये जहाज हैं, आपको नमस्कार है। भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप आप श्रीरघुनाथजीको नमस्कार है। जगत्‌के अभ्युदयके कारणभूत आप श्रीरामभद्रको नमस्कार है। राम आदि पवित्र नामोंका जप करनेवाले मनुष्योंके पाप हर लेनेवाले आपको नमस्कार है। आप सब लोकोंकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। करुणामूर्ति! आपको नमस्कार है। भक्तोंकी रक्षाके व्रतकी दीक्षा लेनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है। सीतासहित आपको नमस्कार है। विभीषणको सुख देनेवाले श्रीराम! आपने लङ्कापति रावणका वध करके सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा की है, आपको नमस्कार है। जगन्नाथ! हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। जानकीपते! हम सबका पालन कीजिये।

इस प्रकार स्तुति करके सब मुनि चुप हो गये।

सूतजी कहते हैं—मुनियोंद्वारा किये हुए श्रीरामचन्द्रजीके इस स्तोत्रका जो भक्तिपूर्वक तीनों समय पाठ करता है, वह भोग और मोक्षको प्राप्त करता है। इस स्तोत्रका पाठ करनेसे भूत-वेताल भाग जाते हैं, रोग दूर होते हैं और पापसमूहोंका नाश हो जाता है।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़ प्रणाम करके मुनियोंसे कहा—मुनिवरो! जो सदा आत्मलाभसे ही सन्तुष्ट,

सम्पूर्ण भूतोंके सुहृद्, अहङ्कारशून्य, शान्त और ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) हैं, उन साधु-महात्माओंको मैं भक्तियुक्त चित्तसे प्रणाम करता हूँ। मैं ब्राह्मणोंका हितकारी—ब्रह्मण्य-देव हूँ; इसलिये सदा ब्राह्मणोंका सेवन करता हूँ। इस समय आपलोगोंसे मैं कुछ पूछता हूँ, आप उसे विचारकर उत्तर दें। ब्राह्मणो! रावणके वधसे मुझे जो पाप लगा है, उसका प्रायश्चित्त क्या है? यह मुझे बताइये।

मुनि बोले—सत्यकी रक्षाका व्रत लेनेवाले जगन्नाथ! आप समस्त संसारकी रक्षाका भार वहन करनेवाले हैं। सम्पूर्ण जगत्‌के उपकारके लिये यहाँ शिवजीकी आराधना कीजिये। गन्धमादन पर्वतका यह शिखर अतिशय पुण्यमय तथा मोक्ष देनेवाला है। आप यहाँ लोकसंग्रहके लिये शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा कीजिये। इससे रावणके मारनेसे होनेवाला दोष भी दूर हो जायगा। प्रभो! गन्धमादन पर्वतपर आपके द्वारा जिस शिवलिङ्गकी स्थापना होगी, उसका दर्शन मनुष्योंको काशीविश्वनाथके दर्शनसे कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होगा। साथ ही वह शिवलिङ्ग संसारमें आपके ही नामसे ख्यातिलाभ करेगा। इसलिये रघुनाथजी! आप शिवलिङ्ग-स्थापनाके कार्यमें विलम्ब न करें।

मुनियोंके ये वचन सुनकर जगत्पति श्रीरामचन्द्रजीने लिङ्गस्थापनाके लिये पुण्यकाल निश्चित किया, जो दो ही मुहूर्तमें आनेवाला था। उसे निश्चित करके उन्होंने हनुमान्‌जीको शिवलिङ्ग ले आनेके लिये कैलास पर्वतपर भेजा। हनुमान्‌जी बड़े पराक्रमी थे, उन्होंने दो मुहूर्तका पुण्यकाल जानकर भी भुजाओंपर ताल ठोंकी। वे सब देवताओं तथा महात्मा ऋषियोंके देखते-देखते बड़े वेगसे ऊपरको उड़े और आकाशमार्गको लाँघते हुए कैलास पर्वतपर जा पहुँचे। वहाँ उन्हें लिङ्गरूपधारी महादेवजीका दर्शन नहीं हुआ। तब उन्होंने महादेवजीको प्रसन्न किया और उनकी कृपासे शिवलिङ्गको प्राप्त किया। इतनेमें ही वहाँ तत्त्वदर्शी मुनियोंने जब यह देखा कि हनुमान्‌जी अभी नहीं आये तथा स्थापनाका मुहूर्त अब बीतना ही चाहता है, तब उन्होंने परम बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी! अब तो पुण्यकाल बीत रहा है, अतः जानकीने जो लीलापूर्वक बालूका शिवलिङ्ग बनाया है, उसीको इस समय स्थापित कर दीजिये।' यह सुनकर श्रीरघुनाथजीने शीघ्रतापूर्वक श्रीजानकीजी तथा मुनियोंके सहित मङ्गलाचार आरम्भ किया और ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी दशमी तिथिको बुधवार और हस्त नक्षत्रके योगमें गद करण, आनन्द और व्यतीपात योग, कन्याराशिके चन्द्रमा तथा वृषराशिके सूर्यमें परम पुण्यमय उपयुक्त दस योगोंकी उपस्थितिमें गन्धमादन पर्वतपर सेतुकी सीमामें लिङ्गरूपधारी भगवान् शिवकी स्थापना की। उस समय लिङ्गमें पार्वती-सहित भगवान् शङ्कर प्रत्यक्ष प्रकट हो गये थे। उनके ललाट-पर चन्द्रमाकी कला और साक्षात् गङ्गा शोभा पा रही थीं। भगवान् साम्बशिवने सब लोगोंको शरण देनेवाले महात्मा रघुनाथजीको इस प्रकार वरदान दिया—'राघवेन्द्र! आपके द्वारा यहाँ स्थापित किये गये शिवलिङ्गका जो दर्शन करेंगे, वे महापातकोंसे युक्त होंगे, तो भी उनके पापोंका नाश हो जायगा। जैसे धनुष्कोटिमें गोता लगानेसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार इस 'रामेश्वर लिङ्ग'के दर्शनसे महापातक भी नष्ट हो जायँगे।'

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने भगवान् रामेश्वरके सामने नन्दिकेश्वरको स्थापित किया और अपने धनुषकी कोटिसे रामेश्वर शिवके अभिषेकके लिये धरती फोड़कर एक कूप तैयार किया। फिर उससे जल लेकर भगवान् शङ्करको स्नान कराया। वही पुण्यमय तीर्थ 'कोटितीर्थ' के नामसे विख्यात हुआ। मुनिवरो! कोटितीर्थकी महिमाका वर्णन पहले किया जा चुका है।

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा हनुमान्‌जीको ज्ञानोपदेश

श्रीसूतजी कहते हैं—इस प्रकार अनायास ही सब कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा उस शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा हो जानेपर पवनपुत्र हनुमान्‌जी एक उत्तम शिवलिङ्ग लेकर आ पहुँचे। आकर उन्होंने दशरथनन्दन वीरवर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया। फिर क्रमशः सीता, लक्ष्मण तथा सुग्रीवको भी मस्तक झुकाया। हनुमान्‌जीने देखा रघुनाथजी सीताजीके बनाये हुए बालुकामय शिवलिङ्गका मुनियोंके साथ पूजन कर रहे हैं। तब वे खिन्न होकर बोले—'भगवन्! कैलास पहुँचनेपर वहाँ मुझे भगवान् शङ्करका दर्शन नहीं हुआ। तब मैंने तपस्याद्वारा उन्हें प्रसन्न किया और उनकी कृपासे शिवलिङ्ग प्राप्त होनेपर मैं तुरंत यहाँ लौट आया हूँ। तबतक आपने दूसरे ही बालुकामय शिवलिङ्गकी स्थापना कर ली और अब मुनियों, देवताओं तथा गन्धर्वोंके साथ उसीकी पूजा करते हैं। मैं जो कैलास पर्वतसे इस शिवलिङ्गको लेकर आया

सो व्यर्थ ही हुआ। अब मैं इस शिवलिङ्गको क्या करूँ?'

श्रीरामचन्द्रजी बोले—कपे! इस संसारमें जो जन्म ले चुके हैं, जो जन्म लेनेवाले हैं और जो मर चुके हैं, उन सबके तथा अपने और पराये सब कार्योंको मैं भलीभाँति जानता हूँ। जीव अपने कर्मके अनुसार अकेला ही जन्म लेता और अकेला ही मरता है। अपने कर्मोंके अनुसार नरकमें भी वह अकेला ही जाता है। वानरश्रेष्ठ! तत्त्वज्ञानमें बाधा उपस्थित करनेवाले इस शोकको अपने मनमें क्यों स्थान देते हो। तत्त्वज्ञानमें ही सदा स्थित रहो। यह आत्मा स्वयंप्रकाश है, तुम सदा आत्माके इसी स्वरूपका चिन्तन करो। देह आदिमें ममता त्याग दो, सदा धर्मका आश्रय लो, साधु पुरुषोंका सेवन करो, सम्पूर्ण इन्द्रियोंका दमन करो, दूसरोंके दोषकी चर्चासे दूर रहो एवं शिव और विष्णु आदि देवताओंकी सदा पूजा करो। सर्वदा सत्य बोलो, शोक छोड़कर आत्मा और परमात्माकी एकताका अनुभव करो। इस संसारमें भ्रम भी यथार्थकी भाँति प्रतीत होता है, कहीं शोभनमें अशोभनका भ्रम होता है और कहीं अशोभनमें शोभनका। यह सब मोहके वैभवसे ही होता है। भ्रान्त मनुष्योंका विभिन्न विषयोंमें राग हो जाता है। राग और द्वेषके बलसे बँधकर वे धर्म और अधर्मके वशीभूत होते हैं तथा उन्हींके अनुसार देव, तिर्यक्, मनुष्य आदि योनियोंमें तथा नरकोंमें पड़ते हैं। चन्दन, अगर और कपूर आदि पदार्थ अत्यन्त शोभन हैं, परंतु जिसके स्पर्शसे ये भी मलरूप हो जाते हैं, वह शरीर सुखस्वरूप कैसे माना जा सकता है? जिसके सम्पर्कसे अत्यन्त सुन्दर भक्ष्य-भोज्य आदि सब उत्तम पदार्थ विष्ठारूपमें बदल जाते हैं, वह शरीर सुखरूप कैसे हो सकता है? जिसके सङ्गसे सुगन्धित एवं शीतल जल मूत्ररूप हो जाता है, उस शरीरको शोभन कैसे कहा जा सकता है? कपे! तुम्हीं बताओ, जिसके संसर्गमें आनेपर अत्यन्त सफेद एवं धुले हुए वस्त्र भी पसीने आदिके लगनेसे मैले हो जाते हैं, वह शरीर कैसे शोभन माना जा सकता है? वायुनन्दन! मुझसे परमार्थकी बात सुनो। यह संसार एक गड्ढेके समान है। इसमें कुछ भी सुख नहीं। यहाँ पहले तो जीवका जन्म होता है, तत्पश्चात् उसकी बाल्यावस्था रहती है, फिर वह जवान होता है। उसके बाद वह बुढ़ापा भोगता है। तदनन्तर मृत्युको प्राप्त होता है और मृत्युके बाद पुनः जन्मका कष्ट भोगता है। इस प्रकार अज्ञानके प्रभावसे ही मनुष्य दुःख पाता है और अज्ञानकी निवृत्ति हो जानेपर उसे उत्तम सुखकी प्राप्ति होती है। अज्ञानकी निवृत्ति ज्ञानसे ही होती है, कर्मसे नहीं। ज्ञान परब्रह्म परमात्माका नाम है। वेदान्तवाक्यके श्रवण और मननसे जो ज्ञान होता है, वह विरक्त पुरुषको ही होता है, दूसरेको नहीं। श्रेष्ठ अधिकारीको गुरुदेवकी कृपासे भी ज्ञान हो जाता है—यह सत्य है। मनुष्यके हृदयमें जो कामनाएँ हैं, वे सब-की-सब जब छूट जाती हैं, तब वह जीवन्मुक्त होकर इसी जीवनमें परब्रह्मका साक्षात्कार कर लेता है। क्रूर काल जागते, सोते, खाते और ठहरते समय सदा ही इस जीवको अपनी ओर खींचता रहता है। संग्रहका अन्त विनाश है, अधिक ऊँचे चढ़नेका अन्त नीचे गिरना है, संयोगका अन्त वियोग और जीवनका अन्त मरण है*। जैसे पके हुए फलोंको गिरनेके सिवा और कोई भय नहीं है, वैसे ही जन्म लेनेवाले मनुष्योंको मृत्युके सिवा और कोई भय नहीं है। जैसे सुदृढ़ खम्भोंवाला गृह सुदीर्घकालके बाद जीर्ण होनेपर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य जराजीर्ण होकर मृत्युके अधीन हो नष्ट हो जाता है। दिन और रात बीतते चले जा रहे हैं। इससे मनुष्योंकी आयु नष्ट होती है। इस दशामें तुम अपनी आत्माके लिये शोक करो। दूसरी किसी बातके लिये क्यों शोक करते हो? कपीश्वर! कोई खड़ा हो या दौड़ता हो, उसकी आयुका प्रतिक्षण नाश हो रहा है। मृत्यु साथ-साथ चलती है, साथ ही बैठती है और दूर देशमें साथ-साथ जाकर पुनः साथ ही लौट आती है†। शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं, सिरके बाल सफेद हो गये और वृद्धावस्था एवं दमा और खाँसीसे देह शिथिल होती जाती है। कपिश्रेष्ठ! जैसे समुद्रमें बहते हुए दो काठ एक-दूसरेसे मिलकर फिर विलग हो जाते हैं, उसी प्रकार कालयोगसे मनुष्योंका एक दूसरेके साथ संयोग और वियोग होता है। इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, भाई, क्षेत्र और धन—ये सब कभी कुछ कालके लिये एकत्र होते और फिर अन्यत्र चले जाते हैं। जैसे कोई पथिक राह चलते हुए किसी दूसरे पथिकसे कहता है कि 'ठहरिये मैं भी आपके साथ चलूँगा' और इस प्रकार दोनों कुछ कालतक साथ हो जाते हैं और फिर अलग-अलग चले जाते हैं, कपे! इसी प्रकार स्त्री और पुत्र

* सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥
(स्क० पु० ब्रा० से० मा० ४५। ४१)

† नश्यत्यायुः स्थितस्यापि धावतोऽपि कपीश्वर।
सदैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति।
चरित्वा दूरदेशं च सह मृत्युर्निवर्तते॥
(स्क० पु० ब्रा० से० मा० ४५। ४५-४६)

आदिका समागम नश्वर है। शरीरके उत्पन्न होनेके साथ ही निश्चय ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। इस अवश्यम्भावी मृत्युको टालनेका कोई उपाय नहीं है। वत्स! इस शरीरका अन्त हो जानेपर देहाभिमानी जीव अपने कर्मकी गतिके अनुसार दूसरा शरीर धारण कर लेता है। वानर! प्राणियोंका सदा एक स्थानपर निवास नहीं होता। अपने-अपने कर्मवश सभी जीव एक दूसरेसे विलग हो जाते हैं।

कपिश्रेष्ठ! जीवोंके शरीर जिस प्रकार उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं, उस प्रकार आत्माका जन्म और मरण नहीं होता। अञ्जनानन्दन! तुम शोकरहित अद्वैत ज्ञानमय सत्स्वरूप निर्मल परब्रह्म परमात्माका दिन-रात चिन्तन करो। ऐसी दृष्टि होनेपर तुम्हारा किया हुआ प्रत्येक कर्म मेरा किया हुआ है और मेरा किया हुआ प्रत्येक कर्म तुम्हारा किया हुआ है। इसलिये कपे! मैंने जो शिवलिङ्गकी स्थापना की है, वह तुमने ही की है—ऐसा समझना चाहिये। शिवलिङ्ग-स्थापनका पुण्यकाल बीता जा रहा था, इसलिये मैंने सीताजीके बनाये हुए बालुकामय शिवलिङ्गको यहाँ स्थापित किया है। अतः तुम कोप और दुःख न करो। आज शुभ दिन है। इसमें कैलाससे लाये हुए शिवलिङ्गको तुम्हीं स्थापित करो। यह लिङ्ग तीनों लोकोंमें तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा। पहले हनुमदीश्वरका दर्शन करके तब रामेश्वरका दर्शन होगा। कपे! तुमने ब्रह्मराक्षसोंके समुदायका वध किया है, इसलिये अपने नामसे शिवलिङ्गकी स्थापना करनेपर तुम उस पापसे छूट सकोगे। यह हनुमन्नामक शिवलिङ्ग साक्षात् भगवान् शिवका दिया हुआ है। इसका दर्शन करके जो रामेश्वर शिवका दर्शन करेगा, वह कृतकृत्य हो जायगा।

हनुमान्‌जीद्वारा भगवान् श्रीराम और सीताका स्तवन तथा अपने लाये हुए शिवलिङ्गका स्थापन

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर परम दयालु दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखकर हनुमान्‌जीने पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर श्रवण-सुखद स्तोत्रोंद्वारा भगवान् जानकीनाथका स्तवन किया।

हनुमान्‌जी बोले—सबकी उत्पत्तिके आदिकारण सर्वव्यापी श्रीहरिस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है। आदिदेव पुराणपुरुष भगवान् गदाधरको नमस्कार है। पुष्पकके आसनपर नित्य विराजमान होनेवाले महात्मा श्रीरघुनाथजीको नमस्कार है। प्रभो! हर्षमें भरे हुए वानरोंका समुदाय आपके युगल चरणारविन्दोंकी सेवा करता है, आपको नमस्कार है। राक्षसराज रावणको पीस डालनेवाले तथा सम्पूर्ण जगत्का अभीष्ट सिद्ध करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है। आपके सहस्रों मस्तक, सहस्रों चरण और सहस्रों नेत्र हैं, आप विशुद्ध विष्णुस्वरूप राघवेन्द्रको नमस्कार है। आप भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाले तथा सीताके प्राणवल्लभ हैं, आपको नमस्कार है। दैत्यराज हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलको विदीर्ण करनेवाले आप नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको उठानेवाले भगवान् वराह! आपको नमस्कार है। बलिके यज्ञको भङ्ग करनेवाले आप भगवान् त्रिविक्रमको नमस्कार है। वामनरूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। अपनी पीठपर महान् मन्दराचल धारण करनेवाले भगवान् कच्छपको नमस्कार है। तीनों वेदोंकी सुरक्षा करनेवाले मत्स्यरूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले परशुरामरूपी रामको नमस्कार है। राक्षसोंका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। राघवेन्द्रका रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। महादेवजीके महान् भयङ्कर महाधनुषको भङ्ग करनेवाले आपको नमस्कार है। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले क्रूर परशुरामको भी त्रास देनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! आप अहल्याका सन्ताप और महादेवजीका चाप हरनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाली ताड़काके शरीरका अन्त करनेवाले आपको नमस्कार है। पत्थरके समान कठोर और चौड़ी वालीकी छाती छेद डालनेवाले आपको नमस्कार है। आप मायामय मृगका नाश करनेवाले तथा अज्ञानको हर लेनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। दशरथजीके दुःखरूपी समुद्रको शोष लेनेके लिये आप मूर्तिमान् अगस्त्य हैं, आपको नमस्कार है। अनन्त उत्ताल तरङ्गोंसे उद्वेलित समुद्रका भी दर्प दलन करनेवाले आपको नमस्कार है। मिथिलेशनन्दिनी सीताके हृदयकमलको विकसित करनेवाले सूर्यरूप आप लोकसाक्षी श्रीहरिको नमस्कार है। हरे! आप राजाओंके भी राजा और जानकीजीके प्राणवल्लभ हैं, आपको नमस्कार है। कमल-नयन! आप ही तारक ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आप ही योगियोंके मनको रमानेवाले 'राम' हैं। राम होते हुए चन्द्रमाके समान आह्लाद प्रदान करनेके कारण 'रामचन्द्र' हैं। सबसे श्रेष्ठ और सुखस्वरूप हैं। आप विश्वामित्रजीके प्रिय हैं, खर नामक राक्षसका हृदय विदीर्ण

करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। भक्तोंको अभयदान देनेवाले देवदेवेश्वर! प्रसन्न होइये। करुणासिन्धु श्रीरामचन्द्र! आपको नमस्कार है, मेरी रक्षा कीजिये। वेदवाणीके भी अगोचर राघवेन्द्र! मेरी रक्षा कीजिये। श्रीराम! कृपा करके मुझे उबारिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। रघुवीर! मेरे महान् मोहको इस समय दूर कीजिये। रघुनन्दन! स्नान, आचमन, भोजन, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि सभी क्रियाओं और सब अवस्थाओंमें आप मेरी रक्षा कीजिये। तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो आपकी महिमाका वर्णन या स्तवन करनेमें समर्थ हो सकता है। रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीराम! आप ही अपनी महिमाको जानते हैं।

करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजीकी इस प्रकार स्तुति करके वायुपुत्र हनुमान्ने भक्तियुक्त चित्तसे सीताजीका भी स्तवन किया। 'जनकनन्दिनी! आपको नमस्कार करता हूँ। आप सब पापोंका नाश तथा दारिद्र्यका संहार करनेवाली हैं। भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाली भी आप ही हैं। राघवेन्द्र श्रीरामको आनन्द प्रदान करनेवाली विदेहराज जनककी लाड़िली श्रीकिशोरीजीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप पृथ्वीकी कन्या और विद्या हैं, कल्याणमयी प्रकृति भी आप ही हैं। रावणके ऐश्वर्यका संहार तथा भक्तोंके अभीष्टका दान करनेवाली सरस्वतीरूपा भगवती सीताको मैं नमस्कार करता हूँ। पतिव्रताओंमें अग्रगण्य आप श्रीजनकदुलारीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप सबपर अनुग्रह करनेवाली समृद्धि, पापरहित और श्रीविष्णुप्रिया लक्ष्मी हैं। आप ही आत्मविद्या, वेदत्रयी तथा पार्वतीस्वरूपा हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप ही क्षीरसागरकी कन्या और चन्द्रमाकी भगिनी कल्याणमयी महालक्ष्मी हैं, जो भक्तोंपर कृपाप्रसादका प्रसाद करनेके लिये सदा उत्सुक रहती हैं, आप सर्वाङ्गसुन्दरी सीताको मैं प्रणाम करता हूँ। आप धर्मका आश्रय और करुणामयी वेदमाता गायत्री हैं, आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आपका कमलवनमें निवास है, आप ही हाथमें कमल धारण करनेवाली तथा भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली लक्ष्मी हैं, चन्द्रमण्डलमें भी आपका निवास है, आप चन्द्रमुखी सीतादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। आप श्रीरघुनन्दनकी आह्लादमयी शक्ति हैं, कल्याणमयी सिद्धि हैं और कल्याणकारिणी सती हैं। श्रीरामचन्द्रजीकी परम प्रियतमा जगदम्बा जानकीको मैं प्रणाम करता हूँ। सर्वाङ्गसुन्दरी सीताका मैं अपने हृदयमें सदैव चिन्तन करता हूँ।'

श्रीसूतजी कहते हैं—द्विजवरो! इस प्रकार हनुमान्जी भक्तिपूर्वक श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करके आनन्दके आँसू बहाते हुए मौन हो गये। जो वायुपुत्र हनुमान्जीद्वारा वर्णित श्रीराम और सीताके इस पापनाशक स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, वह सदा मनोवाञ्छित महान् ऐश्वर्यका उपभोग करता है। अनेक क्षेत्र, धान्य, दूध देनेवाली गौएँ, आयु, विद्या, मनोरमा भार्या तथा श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है। इस स्तोत्रका एक बार भी पाठ करनेवाला मनुष्य इन सब वस्तुओंको निःसन्देह प्राप्त कर लेता है। इसके पाठसे मनुष्य नरकमें नहीं पड़ता है, उसके ब्रह्महत्या आदि बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। वह सब पापोंसे मुक्त हो देहावसान होनेपर मोक्ष पा लेता है।

तदनन्तर वायुपुत्र हनुमान्जीने श्रीरामेश्वरके उत्तर भागमें भगवान् रामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार अपने द्वारा लाये हुए शिवलिङ्गको स्थापित किया।

भगवान् रामेश्वरके प्रभावसे राजा शङ्करका ब्रह्महत्या और स्त्रीहत्याके पापसे उद्धार

श्रीसूतजी कहते हैं—मुनिवरो! प्राचीन कालमें पाण्ड्य देशमें शङ्कर नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। वे बड़े ब्राह्मणभक्त, सत्यप्रतिज्ञ, यज्ञनिष्ठ तथा धर्मात्मा थे। चारों वर्णों और आश्रमोंका धर्मपूर्वक पालन करते थे। वे भगवान् विष्णु और शिवके समानरूपसे उपासक थे। महात्मा ब्राह्मणोंको बड़े-बड़े दान देते थे। एक दिन बुद्धिमान् राजा शङ्कर शिकार खेलनेके लिये तपोवनमें गये और वहाँ दुर्गम एवं रमणीय प्रदेशों, पर्वतों तथा गुफाओंमें भ्रमण करने लगे। वनके एक भागमें व्याघ्रचर्मधारी, शान्त, जितेन्द्रिय एवं मनको वशमें रखनेवाले एक मुनि गुफाके भीतर निवास करते थे। राजाने दूरसे उन्हें देखकर व्याघ्र ही समझा और बड़े वेगसे झुकी हुई गाँठवाले बाणका प्रहार करके उन्हें मार डाला। राजाके उस बाणने पतिके पास बैठी हुई पतिव्रता मुनिपत्नीका भी वध कर डाला। माता और पिता दोनोंको मारा गया देख उनका पुत्र अत्यन्त दुःखसे पीड़ित होकर कातरभावसे वनमें रोने और विलाप करने लगा—'हा तात! हा माता! तुम दोनों मुझे छोड़कर कहाँ चले गये। पिताजी! अब मुझे वेद-शास्त्र कौन पढ़ायेगा? मा! कौन मुझे शिक्षाके साथ साथ भोजन देगी। हाय तात! आप तो परलोकगामी हो गये। अब

मुझे सदाचारकी शिक्षा कौन देगा ? हाय ! आज किस पापीने अपने बाणोंसे बिना किसी अपराधके आप दोनोंको मार डाला ! आप ही दोनों मेरे गुरु और मेरे प्राण थे, सदा तपस्यामें लगे रहते थे, तो भी न जाने किस पापीके हाथसे आप मारे गये ?'

इस प्रकार कहकर उन दोनों दम्पतिका पुत्र फूट-फूटकर रोने लगा । उसका प्रलाप सुनकर वनमें विचरनेवाले राजा शङ्कर तुरंत ही उस शब्दकी ओर लक्ष्य करके उस कन्दराके समीप जा पहुँचे । उस वनके रहनेवाले मुनि भी उस आश्रमपर एकत्रित हो गये । मुनियोंने बाणसे मरे हुए मुनि और उनकी पत्नीको देखा । पासमें धनुष धारण किये हुए राजा शङ्करपर भी दृष्टिपात किया तथा माता-पिताके लिये विलपते हुए उस मुनिकुमारको भी देखा । उसे देखकर वे अत्यन्त व्याकुल हो उठे और 'मत रोओ' ऐसा कहते हुए उस कातर बालकको धैर्य बँधाने लगे ।

मुनि बोले—बेटा ! धनी, दरिद्र, मूर्ख, पण्डित, मोटे अथवा पतले, सभी जीवोंके प्रति यमराजका समान बर्ताव होता है । कोई वनमें रहता हो, या नगर और गाँवमें; पर्वतपर रहता हो, या दूसरे किसी स्थानमें—सभी जन्तुओंको एक दिन मृत्युके वशमें जाना पड़ता है । वत्स ! गर्भमें रहनेवाले, जन्म ग्रहण कर चुकनेवाले, बालक, जवान और बूढ़े—सभी जीवोंको यमलोककी यात्रा करनी पड़ती है । ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी सबको समय आनेपर यह शरीर त्यागना पड़ता है । महामते ! द्विजपुत्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और वर्णसंकर सबको एक दिन यमलोक जाना पड़ता है । देवता, मुनि, यक्ष, गन्धर्व, नाग, राक्षस तथा अन्य सब प्राणी भी नाशको प्राप्त होते हैं । इसलिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये । अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप जो उपनिषत्प्रतिपादित ब्रह्म है, उसका जन्म-मरण और वृद्धिको प्राप्त होना नहीं बनता । यह नौ द्वारोंवाला शरीर मल-मूत्रका भाण्ड है, पीब और रक्तका घर है । पानीके बुलबुलेके समान यह क्षणभङ्गुर है एवं इसमें कीड़ोंका ढेर (कीटाणुओंका समुदाय) भरा है । काम, क्रोध, भय, द्रोह, मोह और मात्सर्यका एकमात्र कारण यह शरीर ही है । मल और मूत्रका यह एकमात्र भाजन है । ऐसे घृणित शरीरमें जो सुन्दर एवं श्रेष्ठ बुद्धि रखता है, वह मूर्ख है तथा वह खोटी बुद्धिवाला है । जैसे अनेक छेदवाले घड़ेमें पानी नहीं ठहरता, उसी प्रकार अनेक छेदोंवाले इस अपवित्र शरीरमें प्राणवायुकी स्थिति दीर्घकालतक कैसे हो सकती है ? अतः तुम अपने पिता और माताके लिये शोक न करो । वे दोनों अपने कर्मवश इस घरको छोड़कर कहीं चले गये । तुम अपने कर्मवश इस भूतलपर वर्तमान हो । जब तुम्हारे प्रारब्धकर्मका क्षय होगा, तब तुम भी मर जाओगे । तब उनके लिये शोक क्या करना है ? क्या मरनेवाला प्रेत मरे हुए प्रेतके लिये शोक करे ? तुम्हारे माता और पिता जब उत्पन्न हुए थे, उस समय तुम्हारा जन्म नहीं हुआ था । अतः तुमसे उनकी गति भिन्न है । यदि तुम्हारी और उनकी समान गति होती, तो तुम भी उन्हींके साथ चले जाते । जिस बाणसे वे मरे हैं, उसीसे तुम भी मर गये होते और वे मरकर जहाँ गये हैं, वहीं तुम भी पहुँच जाते । ऐसा नहीं हुआ इससे सिद्ध है कि तुम्हारी और उनकी समान गति नहीं है । अतः उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये । मरे हुए प्राणियोंके भाई-बन्धु जो इस भूतलपर आँसू बहाते हैं, उन आँसुओंको मरे हुए प्रेत परलोकमें पीते हैं* । अतः शोक छोड़कर एकाग्रचित्त हो धैर्य धारण करो और वैदिक रीतिसे माता-पिताका प्रेतकार्य करो । तुम्हारे पिता और माता बाणके आघातसे मरे हैं, अतः उस दोषकी शान्तिके लिये इनकी अस्थियाँ लेकर रामेश्वर शिवके क्षेत्रमें मुक्तिदायक रामसेतुमें स्थापित करो तथा सपिण्डीकरण आदि श्राद्ध भी वहीं करो । इससे उनके दुर्मृत्युजनित दोषकी शान्ति हो जायगी ।

मुनियोंके ऐसा कहनेपर शाकल्यपुत्र जाङ्गलने मातापिताके सब अन्त्येष्टि संस्कार किये । तत्पश्चात् दूसरे दिन उनकी अस्थियाँ लेकर वे हालास्य क्षेत्रमें गये । हालास्य क्षेत्रसे रामेश्वरक्षेत्रमें जाकर मुनियोंके बताये अनुसार वहाँ उन अस्थियोंको डाल दिया और वहीं रहकर एक वर्ष पूरा होनेतक सब श्राद्ध आदि कार्य सम्पन्न किये । वर्षभर निवास करनेके पश्चात् एक दिन जाङ्गल मुनिने रातको सपनेमें अपने माता-पिताको देखा । उन दोनोंने अपने-अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा आदि धारण कर रक्खे थे । दोनों ही पद्ममाला और तुलसीकी मालासे विभूषित हो गरुड़की पीठपर बैठे थे । उनके कानोंमें मकराकृति कुण्डल झिलमिला

* मृतानां बान्धवा ये तु मुञ्चन्त्यश्रूणि भूतले ।
पिबन्त्यश्रूणि तान्यद्धा मृताः प्रेताः परत्र वै ॥
(स्क० पु० ब्रा० से० मा० ४८ । ४२)

रहे थे, कौस्तुभमणि उनके वक्षःस्थलको अलङ्कृत कर रही थी और वे दोनों पीत वस्त्र धारण करके अतिशय शोभा पा रहे थे। मुनिपुत्रने इस प्रकारकी झाँकीमें माता-पिताका दर्शन करके मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नताका अनुभव किया। तदनन्तर जाङ्गल मुनि पुनः अपने आश्रमपर आकर सुखपूर्वक रहने लगे। उन्होंने माता-पिताके विषयमें सपनेमें देखा हुआ वृत्तान्त वहाँके सब ब्राह्मणोंको बड़ी प्रसन्नताके साथ सुनाया। सुनकर वे सब मुनि बड़े प्रसन्न हुए।

इधर जाङ्गलको अन्त्येष्टि संस्कारका आदेश देनेके पश्चात् राजा शङ्करकी ओर देखकर उन सभी महर्षियोंने उस समय बड़ा क्रोध किया। वे उन्हें कोसते हुए बोले—'महामूर्ख पाण्ड्यनरेश! तूने क्रूरतावश ब्राह्मणकी हत्या की है, तुझे स्त्रीहत्या और ब्रह्महत्याका पाप लगा है। अतः तू प्रज्वलित अग्निमें जलकर अपने शरीरका त्याग कर दे। अन्यथा सैकड़ों प्रायश्चित्त करनेपर भी तेरी शुद्धि न होगी। तेरे साथ वार्तालाप करनेमात्रसे दूसरोंको भारी पाप लगेगा।' मुनियोंके ऐसा कहनेपर राजा शङ्करने कहा—'महात्माओ! ऐसा ही हो। मैं ब्रह्महत्याकी शुद्धिके लिये आपके समीप प्रज्वलित अग्निमें अपने शरीरकी आहुति दे दूँगा। आपलोग मुझपर अनुग्रह करें, जिससे शरीर त्याग देनेपर मेरा यह पातक नष्ट हो जाय।' सब मुनियोंसे ऐसा कहकर पाण्ड्यनरेशने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—'सचिवगण! मैंने अनजानमें ब्रह्महत्या तथा क्रूरतापूर्ण स्त्रीहत्या कर डाली है, जो महानरक प्रदान करनेवाली है। इस पातककी शुद्धिके लिये मैं बड़ी-बड़ी लपटोंवाली प्रज्वलित अग्निमें मुनियोंकी आज्ञासे अपने शरीरको त्याग दूँगा। तुम जल्दी काष्ठ ले आओ और उसके द्वारा अग्निको प्रज्वलित करो। मेरे पुत्र सुरुचिको शीघ्र ही राज्यसिंहासनपर बिठा दो।'

राजाके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मन्त्रीलोग रोने लगे और बोले—पाण्ड्यनाथ! महाराज! आप तो शत्रुओंपर भी स्नेह रखनेवाले हैं। हम सबको आपने सदा पुत्रकी भाँति पाला है। हम आपके बिना देवपुरीके समान सुन्दर अपनी राजधानीमें प्रवेश नहीं करेंगे। हम भी आपके साथ महाकाष्ठोंद्वारा प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर जायँगे।

मन्त्रियोंका प्रलाप सुनकर पाण्ड्यनरेश शङ्करने उन्हें समझाते हुए कहा—मन्त्रियो! मुझ महापातकी राजाको लेकर क्या करोगे? अग्निमें प्रवेश करनेके लिये शीघ्र काष्ठ एकत्रित करो। उनके ऐसा कहनेपर मन्त्रीलोग शीघ्र काष्ठ ले आये। राजा शङ्करने देखा, काष्ठोंद्वारा अग्नि प्र चुकी है। तब उन्होंने स्नान और आचमन करके हो मुनियोंके समीप उस अग्निकी परिक्रमा की। मुनियोंकी भी परिक्रमा करके अग्नि और मुनि दोनों किया। उसके बाद भगवान् शङ्करका ध्यान क धैर्यपूर्वक ज्यों ही अग्निमें गिरनेको तैयार हुए, ऋषि-मुनियोंके सुनते-सुनते आकाशवाणी हुई—'रा तुम अभी अग्निमें प्रवेश न करो। महामते! तुम्हें कारण भय नहीं होना चाहिये। दक्षिण समुद्र गन्धमादन पर्वतपर महापातकोंका नाश करनेवाले पर रामसेतुमें श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा स्थापित जो रामे शिवलिङ्ग है, उसकी एक वर्षतक तीनों समय भक्ति करो। भगवान् रामेश्वरकी परिक्रमापूर्वक उन्हें नमस उनका महाभिषेक करो और प्रतिदिन नाना प्रकारका नैवे करो। चन्दन, अगर और कपूरके द्वारा श्रीरामलि करो। दो भार गायके घीसे भगवान्‌का अभिषेक प्रतिदिन दो भार गोदुग्धसे और एक द्रोण श शिवलिङ्गको नहलाओ। नित्यप्रति खीरसे भगवान लगाओ तथा रोज-रोज रातमें तिलके तेलसे दीप दीपदानद्वारा आराधना करो। महाराज! रामे इस प्रकार उपासना करनेसे तुम्हारी स्त्रीहत्या औ तत्काल नष्ट हो जायगी। तुम शीघ्र रामसेतुपर ज निरन्तर रामेश्वरका भजन करो। इस कार्यमें न करो।'

वह आकाशवाणी सुनकर सब ऋषि जल्दी जानेकी प्रेरणा देने लगे—महाराज! रामसेतुपर शीघ्र जाओ। हमने भगवान् रामेश्वरके माह जाननेके कारण ही आपको प्रज्वलित अग्निमें देह त्या सलाह दी थी। मुनीश्वरोंकी ऐसी आज्ञा पाकर महार चतुरङ्गिणी सेना तो नगरमें भेज दी और स्वयं हर्षयु महर्षियोंको नमस्कार करके कुछ इने-गिने सैनि बहुत धन लेकर भगवान् रामेश्वरकी सेवाके लिये पर्वतपर गये तथा वहाँ शुद्धिदायक रामसेतुपर उ वर्षतक निवास किया। राजा एक समय भोजन क क्रोध एवं इन्द्रियसमूहको वशमें रखते थे। वे त भक्तिपूर्वक भगवान् रामेश्वरकी सेवा करते हुए उन्हें दस भार धन भेंट करते थे। उन्होंने नित्यप्रति भगवान की महापूजा करवायी। प्रतिदिन धनुष्कोटिमें स्नान और प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोंको अन्नदान

आकाशवाणीने जैसा बताया था, उसके अनुसार सब पूजन किया। इस प्रकार एक वर्ष पूरा होनेपर राजा शङ्करने सन्तुष्ट-चित्त हो दयानिधान भगवान् रामेश्वरका इस प्रकार स्तवन किया—'मैं सबके ईश्वर रुद्रको नमस्कार करता हूँ। रामेश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् उमापतिको प्रणाम करता हूँ। देव! कृपया मेरी रक्षा कीजिये और मेरी ब्रह्महत्याको शीघ्र जला डालिये। त्रिपुरासुरका नाश करनेवाले महादेव! आप कालकूट विषको भक्षण करनेवाले हैं। दयासिन्धो! आप मेरी रक्षा करें और मुझे स्त्रीहत्यारूपी पापसे छुड़ावें। गङ्गाधर! विरूपाक्ष! रामनाथ! त्रिलोचन! प्रभो! आप अपनी कृपादृष्टिसे मेरा पालन कीजिये। विभो! मेरा पातक नष्ट कर दीजिये। कामारे! आप भक्तोंकी मनोवाञ्छित कामनाओंको देनेवाले हैं। रामेश्वर! मुझपर कृपाकटाक्ष कीजिये। धूर्जटे! मुझे शुद्ध बना लीजिये। मार्कण्डेयजीको भयसे बचानेवाले मृत्युञ्जय! आप अविनाशी शिव हैं, भगवती गिरिराजनन्दिनी आपके आधे अङ्गमें निवास करती हैं, आपको नमस्कार है। आप मुझे पापरहित कीजिये। रुद्राक्षकी मालासे विभूषित चन्द्रशेखर भगवान् शङ्कर! आप मुझे वैदिक सदाचारके योग्य बना दीजिये, आपको नमस्कार है। रामेश्वरदेवको नमस्कार है। आप मुझे शुद्धि देनेवाले हों। जो आनन्दस्वरूप और सच्चिदानन्दघन हैं, उन रामेश्वर शिव-को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ। मेरा पातक नष्ट हो जाय।'

इस प्रकार रामेश्वर महादेवकी भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए राजा शङ्करके मुखसे अत्यन्त भयानक ब्रह्महत्या निकली, जो नील वस्त्र धारण करनेवाली और अत्यन्त क्रूर थी। उसके सिरके बाल रक्तकी भाँति लाल थे। राजाके मुखसे निकली हुई उस बीभत्स ब्रह्महत्याको भगवान् शङ्करकी आज्ञासे भैरव-ने त्रिशूलसे मार डाला। तब भगवान् रामेश्वरने राजासे कहा—'पाण्ड्यनरेश! महाराज! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे प्रसन्न होकर तुम्हें वर देना चाहता हूँ, तुम कोई मनोवाञ्छित वर माँगो। स्त्रीहत्या और ब्रह्महत्यासे जो तुम्हें दोष लगा था, वह निकल गया। अब तुम शुद्ध हो, निष्पाप हो, पूर्ववत् अपने राज्यका पालन करो। राजन्! मेरी सेवा करनेवाले मनुष्य फिर संसारमें जन्म नहीं लेते। वे मेरे सायुज्य मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं। जो मानव इस स्तोत्रद्वारा भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करेंगे, उनके महापातकोंकी राशिको मैं अवश्य नष्ट कर दूँगा। अब तुम इच्छानुसार वर माँगो।'

राजा बोले—महेश्वर! मैं आपके दर्शनमात्रसे ही कृतार्थ हो गया हूँ। इस समय मुझे इससे बढ़कर माँगने योग्य कोई वस्तु नहीं प्रतीत होती। आपके दोनों चरणकमलोंमें मेरी अविचल भक्ति बनी रहे।

'तथास्तु' कहकर भगवान् रामेश्वरने राजापर अनुग्रह किया और वे पुनः उसी शिवलिङ्गमें अन्तर्धान हो गये। भगवान् रामेश्वरकी कृपा प्राप्त करके राजा भी कृतार्थ हो गये और उन्हें प्रणाम करके अपनी पुरीको चले गये। उन्होंने वनवासी मुनियोंको यह वृत्तान्त बतलाया। तब उन मुनियोंने प्रसन्नचित्त होकर राजाको पुनः उनके राज्यपर अभिषिक्त किया। तदनन्तर अन्तकाल आनेपर राजाने रामेश्वर शिवका ध्यान करते हुए देहका त्याग किया और भगवान् रामेश्वरके सायुज्य मोक्षको प्राप्त कर लिया।

राजा पुण्यनिधिके यहाँ महालक्ष्मीका पुत्रीके रूपमें निवास एवं सेतुमाधवकी महिमा

श्रीसूतजी कहते हैं—पूर्वकालमें चन्द्रवंशी राजा पुण्यनिधि मथुरा नामक पुरीका पालन करते थे। किसी समय राजा पुण्यनिधि मथुरामें अपने पुत्रका राज्याभिषेक करके अन्तःपुरकी रानियोंके साथ स्नानके लिये उत्सुक हो रामसेतु नामक तीर्थमें गये। उनके साथ उनकी चतुरङ्गिणी सेना भी थी। वहाँ धनुष्कोटिमें सङ्कल्पपूर्वक स्नान करके उन नृपश्रेष्ठने वहाँके अन्य तीर्थोंमें भी स्नान किया और भक्तिपूर्वक भगवान् रामेश्वरकी सेवा की। इस प्रकार उन्होंने बहुत कालतक उसी तीर्थमें सुखपूर्वक निवास किया। वहाँ रहते हुए राजा पुण्यनिधिने किसी समय भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला एक यज्ञ किया। यज्ञ पूर्ण होनेपर वे अपनी स्त्री तथा परिवार-के लोगोंके साथ अवभृथ स्नानके लिये श्रीरामचन्द्रजीकी धनुष्कोटिमें गये और वहाँ विधिपूर्वक स्नान किया।

इस प्रकार राजा पुण्यनिधि जब उस तीर्थमें निवास करते थे, उसी समय एक दिन राजाकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये भगवान् विष्णुने लक्ष्मीजीको भेजा। वे आठ वर्षकी सुन्दरी बालिका होकर गन्धमादन पर्वतपर गयीं। उस समय राजा पुण्यनिधि धनुष्कोटिमें स्नान करनेके लिये गये थे। वहाँ स्नान करके पुण्यकर्म करनेके पश्चात् राजाने अलौकिक रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित एक अष्टवर्षीया कन्या देखी। उसे देखकर पुण्यनिधिने पूछा—'बेटी! तुम कौन हो? यहाँ तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है?' राजाके इस प्रकार पूछनेपर

कन्याने कहा—'महाराज! मेरे न माता हैं, न पिता हैं और न कोई भाई-बन्धु हैं। मैं अनाथ हूँ। मैं आपकी पुत्री होकर रहना चाहती हूँ। आपको पिताके रूपमें देखती हुई सदा आपके घरमें निवास करूँगी। परन्तु मेरी एक शर्त है, 'जो मुझे हाथसे पकड़े अथवा हठपूर्वक खींचकर ले जाय, उसको यदि आप दण्ड दें, तभी मैं आपके घरमें आपकी पुत्री होकर चिरकालतक निवास करूँगी।' कन्याके ऐसा कहनेपर राजा पुण्यनिधि बोले—'शुभे! मैं तुम्हारी कही हुई सब बातें मानूँगा। मेरे भी कोई पुत्री नहीं है। एक ही वंशधर पुत्र है। भद्रे! जिसके प्रति तुम्हारा अनुराग होगा, उसे ही तुम्हें समर्पित करूँगा। बेटी! आओ मेरे घर चलो और मेरी पत्नीकी पुत्री होकर अन्तःपुरमें स्वेच्छानुसार निवास करो।'

'बहुत अच्छा' कहकर वह कन्या राजाके साथ उनके घर गयी। राजाने अपनी पत्नीके हाथमें उस कल्याणमयी कन्याको सौंप दिया। रानीका नाम विन्ध्यावली था। राजाने उनसे कहा—'देवि! यह हम दोनोंकी पुत्री है। इसकी दूसरे पुरुषोंसे सर्वथा रक्षा करो।' विन्ध्यावलीने राजाकी आज्ञा शिरोधार्य की और उस कन्याको हाथमें ले लिया। राजाके द्वारा कन्याका पुत्रकी भाँति पालन-पोषण होने लगा। वह लाड़-प्यार और सुखसे राजभवनमें रहने लगी। तदनन्तर जगदीश्वर भगवान् विष्णु अपनी लक्ष्मीको ढूँढ़नेके लिये वैकुण्ठसे निकले और रामसेतुपर गये। वहाँ सब ओर भ्रमण करते रहे। इसी समय फूल तोड़नेके कौतूहलसे वह कन्या सखियोंके सहित राजाके महोद्यानमें गयी और वृक्षोंसे फूल चुनने लगी। तब भगवान् विष्णु ब्राह्मणका रूप धारण करके वहीं आकर खड़े हो गये। ब्राह्मणको सहसा वहाँ आया देख वह कन्या ठिठककर खड़ी रह गयी। उस मधुरभाषिणी कन्याको देखकर उस द्विजने शीघ्रतापूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया। यह देख वह कन्या अपनी सखियोंके साथ उस उपवनमें चिल्लाने लगी। उसकी चिल्लाहट सुनकर राजा पुण्यनिधि वहाँ आ गये। वहाँ राजाने उस कन्या और उसकी सखियोंसे पूछा—'बेटी! तुम इस समय अपनी सखियोंके साथ क्यों चिल्ला उठी थी?'

कन्या बोली—पाण्ड्यनाथ! इस ब्राह्मणने हठपूर्वक मेरा हाथ पकड़ लिया था। तात! यहीं उस वृक्षके नीचे यह निर्भय होकर खड़ा है। राजा परम बुद्धिमान् और गुणोंके निधान थे। उन्होंने उस ब्राह्मणका यथार्थ बल न जानते हुए उसे हठात् पकड़ लिया और रामेश्वर मन्दिरमें ले जाकर वहाँ पैरोंमें बेड़ी डाल और हाथोंमें रस्सीसे बाँधकर पुनः उसे मण्डपमें ले आये। अपनी पुत्रीको आश्वासन देकर राजाने अन्तःपुरमें भेज दिया और स्वयं भी परम सुन्दर भवनमें जाकर शयन किया। सोते समय उन्होंने स्वप्नमें उस ब्राह्मणको देखा। वह शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे विभूषित था। उसके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणिका आभूषण शोभा पा रहा था। ब्राह्मणके रूपमें साक्षात् श्रीहरि विराजमान थे। उन्होंने अपने श्रीअङ्गोंमें पीताम्बर धारण किया था। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति कृष्ण मेघके समान श्याम थी, मुखपर मनोहर मुसकानकी मनोहर छटा छा रही थी और स्वच्छ दन्तपंक्ति चमक रही थी। कानोंमें मकराकृति कुण्डल शोभायमान थे। विष्वक्सेन आदि पार्षद उनकी सेवामें उपस्थित थे। भगवान् शेषशय्यापर लेटे हुए थे और नारद आदि देवर्षि उनकी स्तुति कर रहे थे। वहीं उन्होंने अपनी कन्याको भी देखा, जो विकसित कमलके आसनपर विराजमान थी। वह कन्या नहीं, साक्षात् लक्ष्मी थीं। उन्होंने अपने हाथमें कमल धारण कर रक्खा था और उनके मस्तकपर काले-काले घुँघराले बाल बड़ी शोभा पा रहे थे। इस प्रकार राजाने रात्रिमें अपनी कन्याको महालक्ष्मीके स्वरूपमें देखा। यह देखकर राजा सहसा उठ बैठे और कन्याके घरमें गये। वहाँ उन्होंने कन्याको उसी रूपमें देखा, जैसे स्वप्नमें उसका दर्शन हुआ था। प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर राजा पुण्यनिधि कन्याको साथ ले रामेश्वरमन्दिरमें पहुँचे और उस श्रेष्ठ मण्डपमें गये, जहाँ ब्राह्मणको रख छोड़ा था। वहाँ ब्राह्मण देवताको उन्होंने साक्षात् श्रीहरिके रूपमें देखा, ठीक उसी रूपमें, जैसा कि स्वप्नमें दर्शन हुआ था। वनमाला आदि चिह्नोंसे पहचाने जानेवाले भगवान् विष्णुको जानकर राजाने उनकी इस प्रकार स्तुति की—'कमलाकान्त! आपको नमस्कार है। गरुडध्वज! आप प्रसन्न होइये। शार्ङ्गपाणे! आपको नमस्कार है, आप मेरा अपराध क्षमा करें। आप निर्गुण, अप्रमेय तथा बुद्धिके साक्षी विष्णु हैं, आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करनेवाले परमात्मा श्रीनिवासको नमस्कार है। कृपामूर्ते! आपके लिये नमस्कार है। मधुसूदन! आप मेरा यह अपराध क्षमा करें।'

इस प्रकार महाविष्णुकी स्तुति करके राजा पुण्यनिधिने सम्पूर्ण जीवोंकी जननी श्रीलक्ष्मीजीका भी स्तवन किया—'सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करनेवाली देवि! आपको नमस्कार

ब्राह्मणके द्वारा राजकन्याका हाथ पकड़ा जाना

राजाके द्वारा ब्राह्मणको बन्दी बनाया जाना [पृष्ठ ४४८
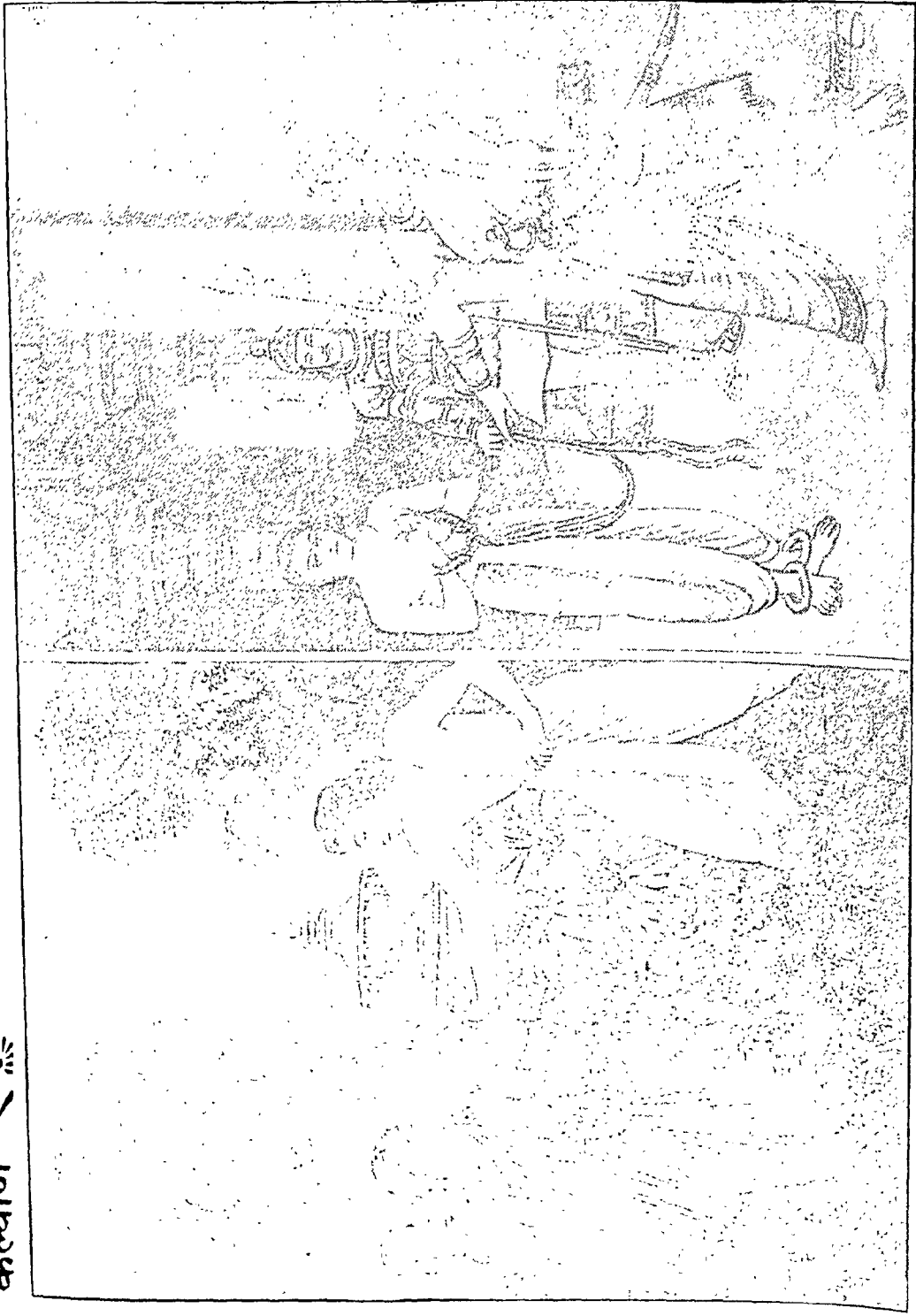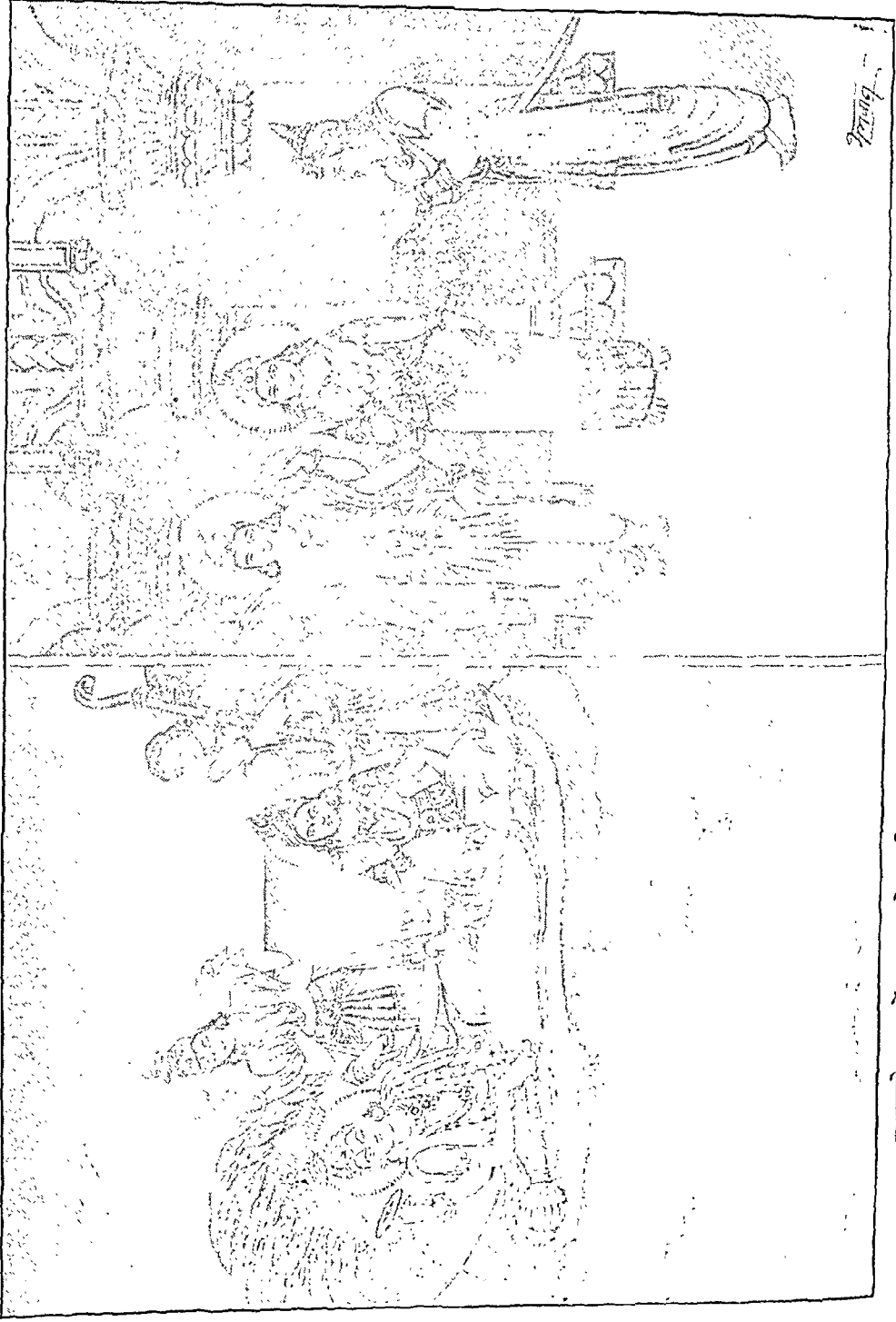
राजाको स्वप्नमें भगवान्के दर्शन

राजाके द्वारा लक्ष्मीनारायणका स्तवन

[पृष्ठ ५८९

है। आप भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। समुद्रसे प्रकट हुई हरिप्रिया महालक्ष्मी! आपको नमस्कार है। आप ही सिद्धि, पुष्टि, स्वधा, स्वाहा, सन्ध्या, प्रभा, धात्री, भूति, श्रद्धा, मेधा और सरस्वती हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। देवेश्वरि! आप ही यज्ञविद्या, महाविद्या, अतिशय शोभामयी गुह्यविद्या, आत्मविद्या तथा सब प्राणियोंको मुक्ति देनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। संसारकी रक्षा करनेवाली जगदम्बिके! आप अपनी दयादृष्टिसे मेरी रक्षा करें। महेश्वरि! आप ब्रह्माजीकी माता हैं, आपको नमस्कार है।

महालक्ष्मीकी इस प्रकार स्तुति करके राजाने पुनः भगवान् विष्णुसे इस प्रकार प्रार्थना की—विष्णो! मैंने अज्ञानवश आपके पैरोंमें बेड़ी डालकर जो इस समय आपके प्रति अपराध किया है, वह स्पष्ट ही द्रोह है, आप उसे क्षमा करें। मधुसूदन! आप सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं, पिताको पुत्रका अपराध क्षमा करना चाहिये। आपने अपराधी दैत्योंको अपना स्वरूपतक दे डाला है। भगवन्! मेरे भी इस अपराधको आप क्षमा करें। कृपानिधे! मारनेके लिये आयी हुई पूतनाको भी आपने अपने चरण-कमलोंमें स्थान दिया है, मेरी भी रक्षा कीजिये। लक्ष्मीकान्त! केशव! मुझपर अपनी कृपापूर्ण दृष्टि डालिये।

राजाके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् विष्णुने कहा—राजन्! मुझे बन्धनमें डालनेके कारण जो तुमको भय हो रहा है, उसे त्याग दो। तुमने इस तीर्थमें मेरी प्रसन्नताके लिये यज्ञ किया है। अतः तुम मेरे प्रिय भक्त हो।

भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेके पश्चात् लक्ष्मीने भी कहा—राजन्! तुमने अपने घरमें मेरी रक्षा की, इससे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारी भक्तिका शोधन करनेके लिये ही मैं और भगवान् दोनों यहाँ आये हैं। तुम्हारे मनःसंयमरूप योग और भक्तिभावसे हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है।

हम दोनोंकी कृपासे तुम्हें सदा सुखकी प्राप्ति होगी। हमारे चरणोंमें तुम्हारी अविचल भक्ति बनी रहेगी और देहावसान होनेपर तुम्हें पुनरावृत्तिरहित मेरा सायुज्य मोक्ष प्राप्त होगा। भगवान् विष्णुकी भक्तिसे युक्त तुम्हारी बुद्धि सदा धर्ममें लगी रहेगी।

परम उत्तम सेतुतीर्थमें निवास किया। देहावसान होनेपर राजाने मोक्ष प्राप्त कर लिया। उनकी पत्नी विन्ध्यावली भी उन्हींके साथ मृत्युको प्राप्त हुई। उस पतिव्रताने भी पतिके साथ उत्तम गति प्राप्त कर ली।

जो सेतुतीर्थमें भक्तिपूर्वक प्रतिदिन सेतुमाधवका दर्शन करते हैं, उनकी कभी पुनरावृत्ति नहीं होती। जो सेतुतीर्थकी रेणुका लेकर गङ्गाजीमें डालता है, वह मृत्युके पश्चात् भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें निवास करता है। जो गङ्गाजीका जल लाकर भगवान् रामेश्वरको स्नान कराता और उसके भारको सेतुतीर्थमें रखता है, वह निश्चय ही परब्रह्मको प्राप्त होता है। ब्राह्मणो! इस प्रकार तुमसे भगवान सेतुमाधवकी महिमाका वर्णन किया गया।

सेतुतीर्थकी यात्राका क्रम

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! अब मैं सेतुतीर्थकी यात्राका क्रम बतलाता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। श्रेष्ठ बुद्धिवाला पुरुष स्नान और आचमन करके विशुद्धचित्त हो नित्यकर्म पूरा कर ले। उसके बाद भगवान् रामेश्वर शिव तथा राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये वेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन करावे। फिर सब अङ्गोंमें भस्म धारण करके मस्तकमें त्रिपुण्ड्र अथवा गोपीचन्दनसे तिलक करे। रुद्राक्षकी माला धारण करके हाथमें पवित्री पहिन ले और पवित्रतापूर्वक यह संकल्प करे कि 'मैं सेतुतीर्थकी यात्रा करूँगा।' तत्पश्चात् भक्तिभावसे अष्टाक्षर मन्त्रका जप करते हुए मौनावलम्बनपूर्वक अपने घरसे निकले। अथवा शिवजीका पञ्चाक्षर नाम-मन्त्र जपता रहे। मनको वशमें रक्खे। प्रतिदिन एक बार हविष्यान्न भोजन करे। क्रोध और इन्द्रियोंको काबूमें रक्खे। जूता, खड़ाऊँ अथवा छाता न धारण करे। पान न खाये। तेल न लगावे। स्त्री-प्रसंग आदिसे बचकर रहे। शौच-सन्तोष आदि नियमोंके तथा सदाचारके पालनमें तत्पर रहे। समयपर सन्ध्योपासना करे। तीनों समय गायत्रीकी उपासना और श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करता रहे। मार्गमें सेतुतीर्थकी महिमाका प्रतिदिन आदरपूर्वक पाठ करे अथवा रामायण या किसी अन्य पुराणका पाठ करे। व्यर्थकी बातें छोड़कर सेतुतीर्थकी यात्रा करे। आत्मशुद्धिके लिये प्रतिग्रह न स्वीकार करे। सदाचारको न छोड़े। मार्गमें शिव-विष्णु आदिकी पूजा तथा बलिवैश्वदेवादि कर्म करता रहे। ब्रह्मयज्ञ आदि धर्म, अग्निहोत्र कर्म तथा शक्तिके अनुसार अतिथियोंको अन्न-पान आदिका दान करे। रास्तेमें भगवान् शिव और विष्णु आदिके नाम जपे तथा उनके स्तोत्रोंका पाठ करे। निषिद्ध कर्मोंको सर्वथा त्याग दे और सदा धर्मका ही आचरण करे। इस प्रकारके नियमोंका पालन करते हुए पहले सेतुमूल स्थानको जाय। वहाँ एकाग्रचित्त हो समुद्रका आवाहन करके उसे प्रणाम करे। तदनन्तर समुद्रके लिये अर्घ्य दे। अर्घ्यके पश्चात् भगवान्से आज्ञा लेकर समुद्रमें स्नान करे। मन-ही-मन भगवान्का चिन्तन करते हुए मुनि, देवता, वानर और पितरोंके लिये तर्पण करे।

समुद्रको प्रणाम करनेका मन्त्र

नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो ह्यपाम्पते।
नमो हिरण्यशृङ्गाय नदीनां पतये नमः॥

'विश्वमें गुप्तरूपसे व्यापक एवं जलोंके स्वामी श्रीविष्णु[1]देव! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हिरण्यमय शृङ्गसे सुशोभित नदीपति सागर! आपको नमस्कार है।'

अर्घ्यदानका मन्त्र

सर्वरत्नमयः श्रीमान् सर्वरत्नाकराकर।
सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'सब रत्नोंके आकर महासागर! तुम सर्वरत्नमय एवं श्रीसम्पन्न हो। तुम्हीं सब रत्नोंमें प्रधान हो। मेरा दिया हुआ यह अर्घ्य स्वीकार करो।'

भगवान्से आज्ञा लेनेका मन्त्र

अशेषजगदाधार शङ्खचक्रगदाधर।
देहि देव ममानुज्ञां युष्मत्तीर्थनिषेवणे॥

'सम्पूर्ण जगत्के आधार शङ्ख-चक्र-गदाधारी नारायण! अपने तीर्थका सेवन करनेके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।'

सेतुकी पूर्व दिशामें सुग्रीवका, दक्षिणमें नलका, पश्चिममें मयन्दका, उत्तरमें द्विविदका और मध्यमें श्रीराम, लक्ष्मण, यशस्विनी सीता, अङ्गद, वायुपुत्र हनुमान् तथा विभीषणका स्मरण करना चाहिये। 'हिरण्यशृङ्गम्' इत्यादि दो मन्त्रोंद्वारा नाभिमें भगवान् नारायणका स्मरण करे। स्नानादि कर्मोंमें भगवान् नारायणका चिन्तन करनेवाला पुरुष ब्रह्मलोकको

---

१. 'सरसामस्मि सागरः' इस भगवद्वचनके अनुसार समुद्र भगवान्की विभूति है। इसलिये उसे 'विष्णु' कहा गया है।

प्राप्त होता है। वह इस संसारमें फिर जन्म नहीं लेता; उसके समस्त पापोंका भी प्रायश्चित्त हो जाता है। प्रह्लाद, नारद, व्यास, अम्बरीष, शुक तथा अन्यान्य भगवद्भक्तोंका एकाग्रचित्त होकर चिन्तन करना चाहिये *।

समुद्रमें स्नान करनेका मन्त्र

वेदादिर्यो वेदवसिष्ठयोनिः सरित्पतिः सागररत्नयोनिः।
अग्निश्च ते योनिरिडा च देहो रेतोधा विष्णोरमृतस्य नाभिः॥
इदं तेऽन्याभिरसमानमद्भिर्याः काश्च सिन्धुं प्रविशन्त्यापः।
सर्पो जीर्णामिव त्वचं जहामि पापं शरीरात्सशिरस्कोऽभ्युपेत्य॥

'हे सागर! तुम वेदोंके आदि तथा वेद और वशिष्ठकी योनि हो, सरिताओंके स्वामी हो और सम्पूर्ण रत्नोंकी उत्पत्तिके स्थान हो। अग्नि तुम्हारा कारण तथा यज्ञ तुम्हारे शरीरका उपादान है। तुम भगवान् विष्णुके वीर्यको धारण करते हो। तुम अमृतकी नाभि हो। तुम्हारे जलसे तथा जो नदियाँ समुद्रमें प्रवेश करती हैं, उनसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य जलसे भी सिरसहित स्नान करके मैं अपने इस पापको शरीरसे उसी प्रकार त्याग देता हूँ, जैसे सर्प अपने पुराने केंचुलको त्याग देता है।'

इस प्रकार सेतुमें तीन बार स्नान करे। यदि मनुष्य देवीपत्तनसे प्रारम्भ करके सेतुकी यात्रा करे, तो नौ प्रस्तरोंके बीचसे मोक्षदायक सेतुमें अपनी पापराशिके निवारणके लिये समुद्र-स्नान करे और यदि दर्भशयनके मार्गसे मुक्तिदायक सेतुतीर्थमें जाय, तो वहाँ समुद्रमें ही स्नान करे।

स्नानके पश्चात् पिप्पलाद, कवि, कण्व, कृतान्त, जीवितेश्वर, मन्यु, कालरात्रि, विघ्ना, अहः, गणेश्वर, वशिष्ठ, वामदेव, पराशर, उमापति, वाल्मीकि, नारद, वालखिल्य मुनिगण, नल, नील, गवाक्ष, गवय, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, शरभ, ऋषभ, सुग्रीव, हनुमान्, वेगदर्शन, राम, लक्ष्मण, महाभागा यशस्विनी सीता तथा विभु—इन सबके लिये चतुर्थ्यन्त नामोंका नमःसहित उच्चारण करके तर्पण करना चाहिये। जैसे 'पिप्पलादाय नमः', 'कवये नमः' इत्यादि। देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंको विधिपूर्वक क्रमशः अक्षत, यव, तिलयुक्त जलसे उनके द्वितीयान्त नामोंका उच्चारण करके तर्पण करे। यथा 'ब्रह्माणं तर्पयामि, विष्णुं तर्पयामि' इत्यादि। मनुष्य प्रसन्नचित्त हो हाथमें पवित्री धारण करके जलमें खड़ा होकर तर्पण करे। इस प्रकार तर्पण और नमस्कार करके जलसे बाहर निकले। भीगे वस्त्रको खोलकर सूखा वस्त्र पहन ले; फिर आचमन करके हाथमें पवित्री लिये हुए विधिपूर्वक श्राद्ध करे। तिल और चावलोंसे पितरोंको पिण्ड दे।

तदनन्तर चक्रतीर्थमें जाकर वहाँ भी स्नान करे और सेतुके अधिपति भगवान् श्रीनारायणका दर्शन करे। जो पश्चिम मार्गसे जाता हो, वह वहाँके चक्रतीर्थमें स्नान करके दर्भशय्यापर सोनेवाले भगवान्का भक्तिपूर्वक दर्शन करे। उसके बाद कपितीर्थमें स्नान करके सीताकुण्डमें गोता लगावे। तत्पश्चात् उत्तम फलवाले ऋणमोचनतीर्थमें स्नान करके वहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करे। फिर लक्ष्मणतीर्थमें जाय और कण्ठसे ऊपर क्षौर कराकर अपने पापोंका चिन्तन करते हुए उसमें स्नान करे। इसके बाद रामतीर्थमें नहाकर देवालयमें जाय। पुनः पापविनाशन-तीर्थमें नहाकर गङ्गा, यमुना, सावित्री, सरस्वती, गायत्री एवं हनुमत्कुण्डमें स्नान करके ब्रह्मकुण्डमें जाकर विधि-पूर्वक स्नान करे। ब्रह्मकुण्डके बाद नागकुण्डमें जाकर स्नान करे, वह समस्त पापों और नरकके क्लेशोंका नाश करनेवाला है।

तदनन्तर अति उत्तम अगस्त्यतीर्थमें स्नान करे। वहाँसे अग्नितीर्थमें जाकर स्नान, तर्पण और विधिपूर्वक श्राद्ध करे। चक्र आदि तीर्थ सब पातकोंका अपहरण करनेवाले हैं। वे क्रमशः यहाँ बताये गये हैं। उसी क्रमसे अथवा अपनी रुचि-के अनुसार उन सब तीर्थोंमें नहाकर श्राद्ध आदि करे। तत्पश्चात् रामेश्वरमें पहुँचकर परमेश्वर भगवान् शिवकी सेवा करे। फिर सेतुमाधवमें आकर क्रमशः राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान् तथा अन्य कपिवरोंके तीर्थोंमें वहाँ जाकर नियम-पूर्वक स्नान करे। फिर भगवान् रामेश्वर तथा श्रीरामचन्द्रजी-को नमस्कार करके धनुष्कोटिमें नहानेके लिये जाय। वहाँ स्नान करके अपनी शक्तिके अनुसार धन-दान करे। उसके बाद कोटितीर्थमें आकर नियमपूर्वक स्नान करे और रामेश्वर नामक भगवान् शिवको प्रणाम करके अपने पास धन हो तो ब्राह्मणोंको सुवर्ण-दान करे। तिल, धान्य, गौ, क्षेत्र, वस्त्र, चावल आदि दान करे। धूप, दीप, नैवेद्य एवं पूजाके अन्य उपकरण भगवान् रामेश्वरको अर्पण करे। फिर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके आज्ञा ले सेतुमाधवके

---

* प्रह्लादं नारदं व्यासमम्बरीषं शुकं तथा।
अन्यांश्च भगवद्भक्तांश्चिन्तयेदेकमानसः॥
(स्क० पु० ब्रा० से० मा० ५१। २९-३०)

समीप जाय। उन्हें भी धूप, दीप आदि भेंट करके उनकी आज्ञा ले पूर्वोक्त नियमोंका पालन करते हुए अपने घर लौटे। घर आनेपर षड्रस भोजनके द्वारा ब्राह्मणोंको तृप्त करे। इससे भगवान् रामेश्वर प्रसन्न होकर उसे मनोवाञ्छित वस्तु देते हैं। उसके लिये नरकका भय नहीं रहता और उसकी दरिद्रताका नाश हो जाता है। उस पुरुषकी सन्तति बढ़ती है और शीघ्र ही संसारबन्धनका नाश करके वह सायुज्य मोक्षको प्राप्त होता है। जो यहाँकी यात्रा करनेमें असमर्थ हो, वह श्रुति-स्मृति तथा आगम ग्रन्थोंमें जो सेतु-माहात्म्यसूचक परम पुण्यमय ग्रन्थ हो, उसका पाठ करावे अथवा स्वयं भक्तिपूर्वक उसका पाठ करे। ऐसा करनेसे वह सेतुस्नानके पुण्य-फलको निःसन्देह प्राप्त कर लेता है। मनीषी पुरुषोंने यह सुविधा अन्धे और पङ्गु मनुष्योंके लिये ही बतायी है। विप्रवरो! इस प्रकार यहाँ सेतुतीर्थकी यात्राका क्रम बतलाया गया। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब दुःखोंसे मुक्त हो जाता है।

सेतुतीर्थका माहात्म्य तथा इस खण्डका उपसंहार

श्रीसूतजी कहते हैं—मुनिवरो! सेतुतीर्थमें किया हुआ जप, होम, तप और दान सब अक्षय कहा जाता है। धनुष्कोटिमें स्नान करके भक्तिपूर्वक श्रीरामेश्वर शिवका दर्शन करते हुए मनुष्य तीन दिन वहाँ निवास करे। वहाँ आदि षडक्षर (ॐ नमः शिवाय) इस मन्त्रका भक्तिपूर्वक एक हजार आठ बार जप करके मनुष्य भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। इस सेतुतीर्थकी महिमाका वर्णन करनेके उद्देश्यसे 'द्वौ समुद्रौ०' इत्यादि श्रुति सनातन कालसे विद्यमान है, जो माताके समान आदरणीय है। इसी प्रकार 'अदो यद्दारु०' यह दूसरी श्रुति भी उसी विषयमें है। 'विष्णोः कर्माणि पश्यत०' यह श्रुति भी सेतुतीर्थके वैभवका वर्णन करनेवाली है। 'तद्विष्णोः०' यह दूसरी श्रुति भी सेतुका माहात्म्य सूचित करती है। इन वैदिक श्रुतियोंके अतिरिक्त इतिहास, पुराण और स्मृतियाँ भी एक स्वरसे सेतुतीर्थकी महिमाका वर्णन करती हैं। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर सेतुतीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य तत्काल कोटि जन्मोंके पापका नाश कर देता है। विषुवयोग, उत्तरायण या दक्षिणायनके प्रारम्भ दिन, संक्रान्तिकाल, सोमवार तथा अमावास्या एवं पूर्णिमा तिथि—इन सभी अवसरोंपर सेतुतीर्थका दर्शन करनेमात्रसे सात जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है। सूर्यनारायणके मकर राशिमें स्थित होनेपर सूर्योदयकालमें तीन दिनतक धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे मनुष्य पापहीन हो जाता है। जो मनुष्य माघ मासमें पंद्रह दिनोंतक धनुष्कोटिमें स्नान करता है, वह वैकुण्ठधामको पाता है। माघ मासमें रामसेतु-तीर्थमें बीस दिनोंतक स्नान करनेवाला मनुष्य भगवान् शिवका सामीप्य प्राप्त करता और उन्हींके साथ आनन्दित होता है तथा तीस दिनोंतक वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। अतः माघ मासमें जब सूर्यका किञ्चिन्मात्र उदय हुआ हो, उस समय मनुष्य रामसेतुमें अवश्य स्नान करे। वह स्नान ब्रह्महत्यादि पातकोंका नाशक है। चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा अर्धोदय योगमें धनुष्कोटि तीर्थमें स्नान करना अत्यन्त आवश्यक है। पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने रावणका विनाश करनेके लिये इस तीर्थमें स्नान किया था और उक्त योगोंमें स्नानका नियम बताया था। उस समय सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर, नाग, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, पितृसमुदाय तथा ब्रह्मा आदि देव-समुदाय भी धनुष्कोटि तीर्थका सेवन करते हैं। जो मनुष्य पुण्यमय रामसेतुका स्मरण करके जहाँ कहीं भी पोखरे आदिके जलमें स्नान करता है, उसका किञ्चिन्मात्र भी पाप कभी शेष नहीं रहता। सेतुके मध्यमें विद्यमान तीर्थोंमें मुट्ठीभर अन्न देनेसे भी सब रोग और भ्रूणहत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं। धनुष्कोटिके दर्शनमात्रसे मनुष्य अपने समस्त कुलको तार देता है। श्रीरामचन्द्रजीके धनुषकी कोटिसे की हुई रेखामें स्नान करनेसे करोड़ों पातकोंका तत्काल नाश हो जाता है। जहाँ सीताजी अग्निमें समायी थीं, उस कुण्डमें स्नान करनेसे सैकड़ों भ्रूणहत्याएँ क्षणभरमें नष्ट हो जाती हैं। जैसे श्रीरामचन्द्रजी हैं, वैसा ही सेतुतीर्थ है। जैसे विष्णु भगवान् हैं, वैसे ही गङ्गा भी है। अतः 'हे गङ्गे! हे हरे! हे रामसेतुतीर्थ!' ऐसा उच्चारण करता हुआ जहाँ कहीं तीर्थसे बाहर भी स्नान करता है, उससे वह परम गतिको प्राप्त होता है। गन्धमादन पर्वतपर सेतुमें अर्धोदय योगकी वेलामें स्नान करके जो पितरोंके उद्देश्यसे सरसोंभर भी पिण्डदान देता है, उसके पितर जबतक सूर्य और चन्द्रमा स्थिर रहते हैं, तबतक तृप्त रहते हैं। सेतु, पद्मनाभ, गोकर्ण और पुरुषोत्तम-इन तीर्थोंमें समुद्रके जलमें किया जानेवाला स्नान सभी पापों

में अभीष्ट है। शुक्र, मङ्गल, शनैश्चरके दिन सन्तानकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य सेतुतीर्थके सिवा और कहीं क्षार-समुद्रमें स्नान न करे। जिसकी पत्नी गर्भिणी हो, वह भी सेतुके सिवा अन्य स्थानोंमें समुद्रमें स्नान न करे। सेतुका स्नान सदैव उत्तम है। दिन, तिथि और नक्षत्रके नियम सेतुसे भिन्न तीर्थोंके लिये ही हैं। सेतुमें, नदी और समुद्रके सङ्गममें, गङ्गा-सागर-सङ्गममें, गोकर्ण क्षेत्रमें और पुरुषोत्तमतीर्थमें भी सदैव समुद्र-स्नानका विधान है। इन तीर्थोंके अतिरिक्त और कहीं बिना पर्वके समुद्रके जलका स्पर्श नहीं करे। सीता और लक्ष्मणके साथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने यहाँ सब देवताओं, पितरों और मुनियोंके सुनते हुए यह प्रतिज्ञा की थी—'जो मनुष्य यहाँ मेरे द्वारा निर्मित सेतुमें स्नान करेंगे, वे यहाँ मेरे प्रसादसे फिर जन्म नहीं ग्रहण करेंगे। मेरे सेतुके दर्शन-मात्रसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं।' रामसेतुमें रक्षाके लिये भगवान् महाविष्णु सेतुमाधव नामसे प्रसिद्ध होकर निवास करते हैं। माघके महीनेमें जब सूर्यनारायण श्रवण नक्षत्रमें स्थित हों, तब रविवारके दिन सूर्यके अर्धोदय कालमें यदि नाग-करण रहित अमावास्या हो, साथ ही व्यतीपात योग भी हो, तो उस समय वह अर्धोदययोग पुण्यदायक माना गया है। उस योगमें सेतुतीर्थमें किया हुआ स्नान सायुज्य मुक्तिका कारण है। पूर्वोक्त योगोंमेंसे यदि एक-एक भी मिल जाय तो वह स्नान, दान, जप और पूजनसे मोक्षदायक होता है। फिर तिथि, वार, नक्षत्र, योग और संक्रान्ति—ये पाँचों मिल जायँ तब तो पुण्यके विषयमें कहना ही क्या है? नक्षत्रोंमें श्रवण, तिथियोंमें अमावास्या, योगोंमें व्यतीपात और दिनोंमें रविवार यहाँके लिये श्रेष्ठ हैं। मकरराशिमें सूर्यके स्थित होनेपर यदि पूर्वोक्त चारोंका योग हो तो उस समय जो मनुष्य सेतुतीर्थमें स्नान करता है, वह मानव फिर कभी माताके गर्भमें नहीं जाता, अपितु सायुज्य मोक्षको पा लेता है। इस प्रकार उक्त महोदयकारक काल पुण्यकाल बताया गया है। इन पुण्य समयोंमें सेतुतीर्थके भीतर दानका विधान है।

जिस ब्राह्मणमें सदाचार, तप, वेद, वेदान्त-श्रवण, शिव-विष्णु आदिकी पूजा तथा पुराणार्थ-प्रवचनकी शक्ति हो, वह दानका उत्तम पात्र बताया गया है। यदि सेतु-तीर्थमें सुपात्र ब्राह्मण मिल जाय तो उसीको दान देना चाहिये। फलको चाहनेवाले पुरुषोंके लिये उचित है कि वे अधम पात्रके लिये दान न दें।

एक समय राजा दिलीपने श्रीवसिष्ठजीसे पूछा—पुरोहितजी! दान किसको देने चाहिये? यह यथार्थ रूपसे बतलाइये।

वसिष्ठजी बोले—वैदिक आचारके पालनमें लगा हुआ ब्राह्मण समस्त दानपात्रोंमें सर्वोत्तम है। वेद-पुराणोंके मन्त्र, शिव-विष्णु आदिका पूजन, वर्णाश्रमधर्मोंका अनुष्ठान—ये सब जिसमें सदा विद्यमान हों तथा जो दरिद्र और कुटुम्बी हो, वह दानका श्रेष्ठ पात्र कहलाता है। उस सत्पात्रको दिया हुआ दान धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधक होता है। पुण्यतीर्थोंमें विशेषतः सत्पात्रको दिया हुआ दान हितकारक होता है। दुष्ट पात्रको दान देनेसे नाना प्रकारके दोष प्राप्त होते हैं, अतः सब प्रकारसे यत्न करके सत्पात्रको दान देना चाहिये। सत्पात्र तीर्थमें उपस्थित न हो तो किसी भी सत्पात्रको देनेका सङ्कल्प करके तीर्थमें जल छोड़ देना चाहिये। यदि वह सत्पात्र जीवित न हो तो सङ्कल्पित वस्तु उसके पुत्रको देनी चाहिये, परंतु तीर्थमें अधम पात्रको दान कदापि नहीं देना चाहिये।

श्रीसूतजी कहते हैं—वशिष्ठजीके ऐसा कहनेपर राजा दिलीपने तबसे सदा सत्पात्रको ही उत्तम दान दिया। अयोध्या, दण्डकारण्य, विरूपाक्ष, वेङ्कटाचल, शालग्राम, प्रयाग, काञ्ची, द्वारका, मदुरा, पद्मनाभ, काशी विश्वनाथपुरी, सब नदियाँ, समुद्र तथा भास्कर पर्वत—इन क्षेत्रोंमें मुण्डन और उपवास आवश्यक बताया गया है। जो मनुष्य मुण्डन और उपवास न करके अपने घरको चला जाता है, उसके साथ ही उसके पातक भी उसके घर लौट जाते हैं। गन्धमादन पर्वतपर जो चौबीस तीर्थ हैं, उनमेंसे लक्ष्मण-तीर्थमें मुनियोंने मुण्डन करानेका आदेश दिया है। लक्ष्मणतीर्थके तटपर केवल सिरके बाल बनवाने चाहिये। इस प्रकार सेतुमें सदा अर्धोदय योगमें स्नान करना चाहिये। सेतुमें अर्धोदयके समय अर्धोदय नामसे प्रसिद्ध निर्मल भगवान् जगन्नाथका पूजन करे। उससे श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं।

तत्पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर सूर्य और चन्द्रमाको अर्घ्य दे—

दिवाकर नमस्तेऽस्तु तेजोराशे जगत्पते।
अत्रिगोत्रसमुत्पन्न लक्ष्मीदेव्याः सहोदर॥
अर्घ्यं गृहाण भगवन् सुधाकुम्भ नमोऽस्तु ते।

'सम्पूर्ण जगत्के स्वामी तेजोराशि दिवाकर! आपको नमस्कार है। लक्ष्मीदेवीके सहोदर सुधा-कलशरूप भगवन् चन्द्रदेव! आप अत्रिगोत्रमें उत्पन्न हुए हैं, आपको नमस्कार है। यह अर्घ्य स्वीकार करें।'

व्यतीपात योगके लिये अर्घ्यदानका मन्त्र

व्यतीपात महायोगिन् महापातकनाशन ।
सहस्रबाहो सर्वात्मन् गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥

'महापातकोंका नाश करनेवाले महायोगी व्यतीपात ! सहस्रबाहो ! सर्वात्मन् ! आपको नमस्कार है। यह अर्घ्य ग्रहण करें ।'

तिथि, वार, नक्षत्रके स्वामीको अर्घ्यदान-मन्त्र

तिथिनक्षत्रवाराणामधीश परमेश्वर ।
मासरूप गृहाणार्घ्यं कालरूप नमोऽस्तु ते ॥

'तिथि, नक्षत्र और दिनोंके अधीश्वर ! मासरूप और कालरूप परमेश्वर ! आपको नमस्कार है। यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये ।'

इस प्रकार पृथक्-पृथक् मन्त्रोंसे अर्धोदय कालमें अर्घ्य देकर चौदह, बारह, आठ, सात, छः अथवा पाँच ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार अन्न-पान आदिसे पूजित करे । तत्पश्चात् भगवान् जगन्नाथ, चन्द्रमा, सूर्य, व्यतीपात एवं भगवान् विष्णुकी इस प्रकार प्रार्थना करे—'जगन्नाथ ! केशव ! श्रवण नक्षत्र, वामनावतारके समय आपके जन्म-समय जन्मनक्षत्र रहा है, इसमें मैंने याचकोंको जो कुछ दिया है, वह आपके लिये अक्षय हो । देवताओंको अमृत प्रदान करनेवाले रोहिणीवल्लभ कलाशेष नक्षत्राधिपते ! आपको नमस्कार है । दीनानाथ ! जगन्नाथ ! कालनाथ ! कृपानिधान सूर्यदेव ! आपके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी अविचल भक्ति हो । चन्द्रमा और सूर्यके पुत्र व्यतीपात ! आपको नमस्कार है । आपकी उपस्थितिमें मैंने जो दान आदि कर्म किया है, वह अक्षय हो । भगवान् वासुदेव ! जनार्दन ! आप याचकोंके लिये कल्पवृक्ष हैं । मास, ऋतु, अयन और काल, सबके स्वामी हैं । हरे ! मेरे पापोंको शान्त कीजिये ।'

इस प्रकार पूजन और प्रार्थना करके श्राद्ध आरम्भ करे । अपनी रुचिके अनुसार हिरण्यश्राद्ध[1], आमश्राद्ध[2], अथवा पाकश्राद्ध[3] करे । उसके बाद पार्वणश्राद्ध भी करे ।

१. श्राद्धमें प्रत्येक अवसरपर जो अन्न आदि सामग्री अपेक्षित होती है, उसकी पूर्ति तथा श्राद्ध-प्रतिष्ठाके लिये निष्क्रयरूपसे सुवर्ण दक्षिणामात्र दे देना हिरण्यश्राद्ध है ।

२. कच्चा अन्न सङ्कल्प करके श्राद्धमें दिया जाय तो वह आमश्राद्ध है ।

३. जिसमें पाक बनाकर उसका पिण्ड दिया जाय और ब्राह्मणोंको पकान्न भोजन कराया जाय, वह पाकश्राद्ध कहलाता है ।

स्नानकालमें 'सेतु' 'सेतु' इस नामका उच्चस्वरसे उच्च करनेपर मनुष्योंके करोड़ों पातक तत्काल नष्ट हो जाते और वे भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होते हैं । रामसे धनुष्कोटि, राम, सीता और लक्ष्मण, रामेश्वर, हनुमा सुग्रीव आदि वानर, विभीषण, नारद, विश्वामित्र, अगस्त्य वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि तथा कश्यप—इन सबका स्न कालमें चिन्तन करनेवाला रामभक्त या अन्य पुरुष दुःखोंसे छूट जाता और परम पदको प्राप्त होता है सत्यक्षेत्र, हरिक्षेत्र, कृष्णक्षेत्र, नैमिषक्षेत्र, शालग्रामती बदरिकाश्रम, हस्तिशैल (कालहस्ती), वृषाचल, शेषा चित्रकूट, लक्ष्मीक्षेत्र, कुरङ्गक्षेत्र, काञ्ची, कुम्भको मोहिनीपुर, इन्द्राचल, श्वेताचल, पुण्यमय महास्थल पद्मना फुल्लग्राम, घटिकाद्रि, सारक्षेत्र, हरिस्थल, श्रीनिवासक्षे भक्तनाथ-महास्थल, अलिन्द नामक महाक्षेत्र, शुकक्षे वारुणक्षेत्र, मथुरा, श्रीगोष्ठी, पुरुषोत्तम, श्रीरङ्ग पुण्डरीकाक्ष तथा अन्य वैष्णवस्थलोंमें स्नान करनेसे पाप नष्ट होते हैं, वे सब केवल सेतुतीर्थमें स्नान करने निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ।

जो प्रातःकाल जलाशयमें जाकर स्नान और आचम करके शुद्धचित्त हो प्रसन्न मनसे सन्ध्योपासनपूर्वक वेदमा गायत्रीकी उपासना नहीं करता अथवा जो पापसे दूषि अन्तःकरणवाले मनुष्य आलस्य छोड़कर सायं, प्रातः ए मध्याह्न-कालकी सन्ध्या नहीं करते, ब्रह्मयज्ञ, बलिवैश्वदेव औ दोपहरके समय अतिथिपूजासे मुँह मोड़ते हैं, इसी प्रकार जे सायंकालमें भी अतिथियोंका उनकी इच्छाके अनुरूप सत्का नहीं करते, उन सबके उन-उन कर्मोंके त्यागसे होनेवाले समस्त पाप धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे नष्ट हो जाते हैं । जो मनुष्य मध्याह्नकालमें संन्यासियोंको भिक्षा नहीं देते, जो कुत्सित बुद्धिवाले विप्र अपने पढ़े हुए तीनों वेदोंको भूल जाते अथवा वेद और वेदाङ्गोंका अध्ययन नहीं करते, प्रत्येक वर्षमें माता-पिताका श्राद्ध नहीं करते तथा जो लोभवश नैमित्तिक महालयश्राद्ध, नित्यश्राद्ध, अष्टकाश्राद्ध और अन्य नैमित्तिक श्राद्धोंसे जी चुराते हैं, उनके भी पातक धनुष्कोटिमें नहानेसे दूर हो जाते हैं । कोई दुराचारी रहा हो अथवा उत्तम आचरणवाला हो, यदि वह धनुष्कोटि तीर्थका सेवन करता है, तो उसके संसारबन्धनका नाश और पुनर्जन्मका अभाव हो जाता है । जो संसारसमुद्रसे पार होना चाहता हो, उसे शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजीके धनुष्कोटिमें जाना चाहिये ।

मुनीश्वरो! तुम भी मुक्तिकी सिद्धिके लिये श्रीरामचन्द्रजीकी धनुष्कोटिमें जाओ।

विप्रवरो! इस प्रकार तुमसे मैंने सेतुतीर्थके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस पवित्र माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह अग्निष्टोम आदि यज्ञोंका पूर्ण फल पाता है। जो इसका दो बार पाठ या श्रवण करता है, वह श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो भगवान् शिवके समीप जाता है। जो तीन बार एकाग्रचित्तसे इसका पाठ या श्रवण करता है, वह शिवजीको प्रसन्न करके उनका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। जो बार-बार इस उत्तम माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह गिरिजापति महादेवजीका सायुज्य प्राप्त करता है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस माहात्म्यका एक श्लोक, आधा श्लोक, एक चरण, एक पद—अथवा एक अक्षर भी पढ़ता है, उसका उस दिनका किया हुआ पाप उसी क्षण नष्ट हो जाता है। सेतुके मध्यमें विद्यमान अन्य तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल होता है, वह इस माहात्म्यके पढ़ने और सुननेसे प्राप्त हो जाता है। जिसके घरमें यह माहात्म्य हस्तलिखित पुस्तकके रूपमें विद्यमान है, वहाँ भूत, वेतालादिसे भय नहीं प्राप्त होता। शनैश्चर, मङ्गल आदि क्रूर ग्रहोंकी पीड़ा भी नहीं रहती। यह पवित्र एवं उत्तम माहात्म्य जिसके घरमें विद्यमान हो, उसके घरको रामसेतु तीर्थ जानना चाहिये। इस पुण्यदायक माहात्म्यको मठ अथवा देवालयमें पढ़ना चाहिये। नदी और सरोवरके किनारे अथवा पवित्र वनभूमि या श्रोत्रियोंके घरपर इसका पाठ करना चाहिये। विषुवयोगमें, अयनारम्भके दिन, पुण्यमय एकादशी तिथिको तथा अष्टमी और चतुर्दशीको इस माहात्म्यका विशेषरूपसे पाठ करना चाहिये। मनुष्य मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर ही इस माहात्म्यको पढ़े तथा श्रोता भी शौच-सन्तोषादि नियमोंसे युक्त होकर ही इस उत्तम प्रसङ्गको सुने। यह पवित्र माहात्म्य वेदार्थोंके समावेशसे विस्तारको प्राप्त हुआ है। यह सब पापोंका नाश करनेवाला है। स्मृतिकारोंको यह मान्य है और मुनिवर व्यासजीको भी अत्यन्त प्रिय है। अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको इसका श्रवण और पाठ करना चाहिये। सुनानेवाले आचार्यको भी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ बन सके, सुवर्ण आदि देना चाहिये; क्योंकि कथावाचकके पूजित होनेपर ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीनों देवता पूजित होते हैं और उनके पूजित होनेपर तीनों लोक पूजित हो जाते हैं। दशरथनन्दन श्रीरामके रूपमें भूतलपर अवतीर्ण हुए साक्षात् श्रीहरि सीता और लक्ष्मणके साथ कृपा करके इस महावाक्यके वक्ता और श्रोताओंको इहलोकमें भोग और परलोकमें मुक्ति प्रदान करते हैं।

नैमिषारण्यनिवासियो! तुमलोगोंने मुझसे इस वेदसम्मत गूढ़ माहात्म्यका भलीभाँति श्रवण किया। अब प्रतिदिन नियमपूर्वक रहकर आदरके साथ इस माहात्म्यको पढ़ो और अपने नियमपरायण शिष्योंको निरन्तर पढ़ाओ। ऐसा कहकर सूतजी रोमाञ्चित शरीर होकर अपने गुरु श्रीव्यासजीका मन-ही-मन स्मरण करते हुए आँसू बहाने और नृत्य करने लगे। इसी बीचमें महाविद्वान् पराशरनन्दन महामुनि व्यास शिष्यपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे वहाँ शीघ्र प्रकट हो गये। सत्यवतीनन्दन व्यासजीको वहाँ आया हुआ देख सूतजीने नैमिषारण्यवासी समस्त मुनियोंके साथ उनके चरणारविन्दोंमें दण्डकी भाँति गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और आनन्दके आँसू बहाने लगे। चरणोंमें पड़े हुए अपने प्यारे शिष्यको व्यासजीने दोनों हाथोंसे उठाया तथा आशीर्वादसे प्रसन्न करते हुए बारंबार हृदयसे लगाया। तत्पश्चात् मुनियोंके लाये हुए उत्तम आसनपर महातेजस्वी व्यासजी बैठे। उस समय उन्होंने शौनकादि मुनियोंसे कहा—'मुनिवरो! मैंने इस समय यह जान लिया था कि मेरे शिष्य सूतने तुमसे सेतु-तीर्थका उत्तम माहात्म्य कहा है, जो बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। यह माहात्म्य बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। सब पुराणोंमें यही मुझे अधिक प्रिय है। धर्मराज युधिष्ठिर मेरी आज्ञा मानकर अपने पुरोहित धौम्यसे प्रतिदिन यह माहात्म्य सुनते हैं। अतः तुम भी इस उत्तम सेतु-माहात्म्यको सदा पढ़ो, सुनो और अपने शिष्योंको पढ़ाओ।' व्यासजीका यह वचन सुनकर मुनियोंने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। तदनन्तर व्यासजी भी अपने शिष्य सूतजीको साथ ले मुनियोंसे पूछकर कैलास पर्वतको चले गये।

सेतु-माहात्म्य संपूर्ण।

धर्मारण्य-माहात्म्य

धर्मकी तपस्यासे धर्मारण्यक्षेत्रकी प्रसिद्धि और उसका माहात्म्य

तर्तुं संसृतिवारिधिं त्रिजगतां नौर्नाम यस्य प्रभो-
र्येनेदं सकलं विभाति सततं जातं स्थितं संसृतम्।
यश्चैतन्यघनप्रमाणविधुरो वेदान्तवेद्यो विभु-
स्तं वन्दे सहजप्रकाशममलं श्रीरामचन्द्रं परम् ॥
दाराः पुत्रा धनं वा परिजनसहितो बन्धुवर्गः प्रियो वा
माता भ्राता पिता वा श्वशुरकुलजना भृत्य ऐश्वर्यवित्ते।
विद्या रूपं विमलभवनं यौवनं यौवतं वा
सर्वं व्यर्थं मरणसमये धर्म एकः सहायः ॥

'जिन भगवान्का नाम तीनों लोकोंमें संसारसमुद्रसे पार होनेके लिये नौकारूप है, जिनसे उत्पन्न और पालित होकर यह सम्पूर्ण संसार सदैव शोभा पाता है, जो चैतन्यघन-स्वरूप एवं प्रमाणसे परे हैं, वेदान्तशास्त्रके द्वारा जाननेके योग्य और सर्वत्र व्यापक हैं, उन सहज प्रकाशरूप निर्मल परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ। स्त्री, पुत्र, धन, परिजन, भाई, बन्धु, प्रिय सुहृद्, माता, पिता, भ्राता, श्वशुर-कुलके लोग, भृत्यवर्ग, ऐश्वर्य, धन, विद्या, रूप, उज्ज्वल भवन, जवानी और युवतियोंका समुदाय—ये सभी मृत्युकालमें व्यर्थ सिद्ध होते हैं। उस समय एकमात्र धर्म ही सहायक होता है।'

एक समय सूतजीको आते हुए देख नैमिषारण्यवासी शौनक आदि महर्षियोंने बड़े हर्षसे जाकर उन्हें सब ओरसे घेर लिया। फिर जब वे सभी तपस्वी महात्मा बैठ गये, तब उनके बताये हुए आसनपर लोमहर्षणकुमार सूतजी भी विनयपूर्वक विराजमान हुए। तब उन ऋषियोंने सूतजीसे कहा—'मुने! आप पापोंका नाश करनेवाली कोई पुण्यमयी कथा कहिये।'

सूतजी बोले—मैं श्रीसरस्वतीजी, गणेशजीके तथा सम्पूर्ण देवताओंके युगल चरणारविन्दोंको नमस्कार करके और सबके नियन्ता धर्मस्वरूप परमेश्वरके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उन सबके प्रसादसे तीर्थोंके उत्तम फलका वर्णन करता हूँ। एक समयकी बात है, सत्यवतीनन्दन व्यासजी राजा युधिष्ठिरके दरबारमें आये। उनके आनेका समाचार सुनकर सबको बड़ा हर्ष हुआ। भीमसेन आदि सब भाई धर्मराज युधिष्ठिरके साथ उठकर खड़े हो गये। तदनन्तर युधिष्ठिरने सामने जाकर भाइयोंसहित उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके उन्हें सिंहासनपर बिठाकर उनका कुशल-मङ्गल पूछा। तब धर्मज्ञ व्यासजीने उनसे पवित्र एवं दिव्य कथा सुनायी। कथाके अन्तमें राजा युधिष्ठिरने मुनिश्रेष्ठ व्याससे इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! आपके प्रसादसे मैंने बहुत-सी उत्तम कथाएँ सुनी हैं। इस समय मैं धर्मारण्यके उत्तम माहात्म्यकी कथा सुनना चाहता हूँ।'

व्यासजीने कहा—नृपश्रेष्ठ! धर्मारण्य अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त तथा भाँति-भाँतिकी लताओं और गुल्मोंसे सुशोभित है। वह सदैव पुण्यदायक है तथा निरन्तर फलोंसे भरा रहता है। वहाँ किसीका किसीसे भी वैर नहीं होता। धर्मारण्य सर्वथा निर्भय स्थान है। वहाँ गौ और व्याघ्र, चूहे और बिलाव साथ-साथ क्रीडा करते हैं। मेढक साँपके साथ खेलता है, मनुष्य राक्षसोंके साथ विहार करते हैं। धर्मारण्य महानन्दमय, दिव्य एवं पावनसे भी पावन है। स्वर्गमें देवतालोग धर्मारण्यनिवासियोंकी प्रशंसा करते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—मुने! देवताओंने उस क्षेत्रका नाम धर्मारण्य कब रक्खा?

व्यासजी बोले—नृपश्रेष्ठ! एक समय धर्मराजने बड़ी कठिन तपस्या की। तपस्यामें लगे हुए धर्मराजको देखकर ब्रह्मा और इन्द्र आदि सब देवता कैलास पर्वतपर गये। वहाँ भगवान् शङ्कर भगवती उमादेवीके साथ पारिजात वृक्षकी छायामें बैठे थे। उनके पास पहुँचकर ब्रह्माजीने इस प्रकार स्तवन किया—'नीलकण्ठ! आपके अनन्तरूप हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। आपके इस स्वरूपका यथावत् ज्ञान किसीको नहीं है, आप कैवल्य एवं अमृतस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। देवता जिसका अन्त नहीं जानते, उन भगवान् शिवको नमस्कार है, नमस्कार है। वाणी जिनकी प्रशंसा (गुणगान) करनेमें असमर्थ है, उन चिदात्मा शिवको नमस्कार है। योगी समाधिमें निश्चल होकर अपने हृदयकमलके कोषमें जिनके ज्योतिर्मय स्वरूपका दर्शन करते हैं, उन श्रीब्रह्मको नमस्कार है। जो कालसे परे, कालस्वरूप, स्वेच्छासे पुरुषरूप धारण करनेवाले, त्रिगुणस्वरूप तथा प्रकृतिरूप हैं, उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है। प्रभो! आप भक्तजनोंके

कृपा करके स्वेच्छासे सगुण रूप धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। भगवन्! आपके मनसे चन्द्रमा और नेत्रोंसे सूर्यकी उत्पत्ति हुई है। देव! आप ही सब कुछ हैं, आपमें ही सबकी स्थिति है। इस लोकमें सब प्रकारकी स्तुतियोंके द्वारा स्तवन करने योग्य आप ही हैं। ईश्वर! आपके द्वारा यह सम्पूर्ण विश्वप्रपञ्च व्याप्त है, आपको पुनः-पुनः नमस्कार है।

इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके ब्रह्मा आदि देवता उनके आगे दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। तब भगवान् शङ्करने उनसे कहा—'देवताओ! तुम क्या चाहते हो?'

ब्रह्माजीने कहा—सबके दुःखोंका नाश करनेवाले महादेव! धर्मात्मा धर्मराजने बड़ी दुःसह तपस्या की है। न जाने वे देवताओंका कौन-सा उत्तम स्थान लेना चाहते हैं, यही सोचकर इन्द्र आदि सब देवता उनकी तपस्यासे थर्रा उठे हैं। देवेश! आप उन्हें तपस्यासे उठाइये।

महादेवजी बोले—देवताओ! मैं सच कहता हूँ, तुम्हें धर्मराजसे कोई भय नहीं है।

यह सुनकर सब देवता उठे और भगवान् शिवकी परिक्रमा एवं बारंबार नमस्कार करके अपने-अपने स्थानको चले गये। परंतु इन्द्रको नींद नहीं आयी, उनकी सुख-शान्ति खो गयी। वे मन-ही-मन सोचने लगे, 'मेरे लिये यह बड़ा भारी विघ्न उपस्थित हुआ। धर्मराजने मेरा इन्द्रपद हड़प लेनेके लिये ही यह अत्यन्त दुष्कर तप प्रारम्भ किया है।' ऐसा विचार करते हुए इन्द्रने देवताओंसे कहा—'मैंने बहुत क्लेश उठाकर जिसे प्राप्त किया है, उसीको धर्मराज क्या मुझसे छीन लेना चाहते हैं?' यह सुनकर बृहस्पतिजी बोले—'इनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये वहाँ उर्वशी आदि अप्सराओंको भेजा जाय।' तब इन्द्रने अप्सराओंसे कहा—'तुम सब लोग शीघ्र धर्मारण्यको जाओ और जहाँ धर्मराज दुष्कर तपस्यामें संलग्न हैं, वहाँ पहुँचकर उन्हें इस प्रकार लुभाओ, जिससे वे तपस्यासे भ्रष्ट हो जायँ।' इन्द्रका यह वचन सुनकर वर्द्धिनी नामक अप्सराने कहा—'पाकशासन! मैं देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये अपनी माया तथा रूपके बलसे पूरी चेष्टा करूँगी।' ऐसा कहकर वर्द्धिनी उस स्थानपर गयी, जहाँ धर्मराज तपस्या करते थे। वह अधिकाधिक वस्त्रों और आभूषणोंसे विभूषित हो कपोलपर रोलीकी बेंदी और नयनोंमें काजर लगा मनोहर रूप बनाकर उनके सामने गयी और सबके मनको लुभानेवाला नृत्य करने लगी। उस समय धर्मराजका मन सहसा क्षुब्ध-सा हो उठा। राजन्! भूतलमें नारीका योनिकुण्ड कुम्भीपाकके समान रचा गया है। वे रमणियाँ अपने नेत्ररूपी रज्जुसे दृढ़तापूर्वक बाँधकर मनस्वी पुरुषोंको नीचा दिखाती हैं। अज्ञानी पुरुषको अपने कुचरूपी महादण्डोंसे ताड़ित करके अचेत कर देती और शीघ्र ही उसे नरकमें गिरा देती हैं। तबतक ही मनकी स्थिरता, शास्त्रज्ञान तथा सत्य आदि गुण सुरक्षित रहते हैं, जबतक कि सचेत पुरुषोंके आगे बिछाये हुए जालकी भाँति रूप-यौवनके मदसे मतवाली युवती नहीं आती है। तभीतक तपस्याकी वृद्धि होती है, तभीतक दान, दया और इन्द्रियसंयम सूझते हैं तथा तभीतक स्वाध्याय, सदाचार, पवित्रता, धैर्य और व्रतकी रक्षा होती है, जबतक कि मनुष्य भयभीत हरिणीकी भाँति चञ्चल लोचनोंवाली चपला तरुणीको नेत्रोंसे नहीं देखता है।

वर्द्धिनीने धर्मराजसे पूछा—प्रभो! समस्त चराचर जगत् धर्ममें ही स्थित है। वही साक्षात् धर्मरूप होकर आप यह दुष्कर तप क्यों कर रहे हैं?

यमराजने कहा—भामिनि! मैं भगवान् महेश्वरके स्वरूपका दर्शन करना चाहता हूँ। इसीलिये कठिन तपस्या कर रहा हूँ।

वर्द्धिनी बोली—धर्म! इस तपस्याके ही कारण इन्द्र आपसे भयभीत हो गये हैं। उन्हींसे प्रेरित होकर मैं यहाँ आपकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये आयी हूँ।

वर्द्धिनीके इस सत्य भाषणसे सूर्यनन्दन यम बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने वर्द्धिनीसे इस प्रकार कहा—'मैं समस्त पापकर्मा दुष्टात्मा प्राणियोंके लिये यमराज हूँ और सभी जितेन्द्रिय मनुष्योंके लिये धर्मस्वरूप हूँ। वही मैं तुम्हें दुर्लभ वर देता हूँ। तुम कोई मनोवाञ्छित वर माँगो।'

वर्द्धिनी बोली—धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ! मुझे लोकोंके हितके लिये इन्द्रलोकमें स्थिरतापूर्वक निवास प्रदान कीजिये।

यमराजने कहा—'एवमस्तु'। अब तुम शीघ्रतापूर्वक कोई दूसरा वर और माँगो।

वर्द्धिनी बोली—महामते! इस महाक्षेत्रमें इसी स्थानपर मेरे नामसे एक प्रसिद्ध तीर्थ हो, जो सब पापोंका नाश करनेवाला हो। उसमें किया हुआ दान, होम, तप और स्वाध्याय अक्षय हो।

'तथास्तु' कहकर भगवान् धर्मराज चुप हो गये। तब वर्द्धिनीने उनकी तीन बार परिक्रमा करके मस्तक नवाकर स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। वहाँ जाकर वह देवराज इन्द्रसे इस प्रकार बोली—'देवेश! आप सूर्यनन्दन यमसे भय न कीजिये। वे यशके लिये तपस्या कर रहे हैं।' इतना कहकर वह इन्द्रको प्रणाम करके अपने स्थानको चली गयी। तदनन्तर धर्मराज विधिपूर्वक तपस्यामें स्थित हो गये। उनकी घोर तपस्या देखकर देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान् शङ्कर वृषभपर आरूढ़ हो अस्त्र-शस्त्र एवं सुन्दर कवच धारण करके उस स्थानको गये, जहाँ धर्मराज तपस्यामें स्थित थे। वहाँ पहुँचकर महादेवजी बोले—'धर्म! तुम्हारी इस तपस्यासे मेरा चित्त बहुत सन्तुष्ट है। तुम कोई वर माँगो, वर माँगो, वर माँगो।'

इस प्रकार सम्भाषण करते हुए भगवान् महेश्वरको देखकर धर्मराज बाँबीसे उठकर खड़े हो गये और दोनों हाथ जोड़कर शुद्ध वचनोंद्वारा उन्होंने लोकनाथ शिवका इस प्रकार स्तवन किया—'भगवन्! आप सबपर शासन करनेवाले ईश्वर हैं, आपको नमस्कार है। योगरूपी आप परमेश्वरको नमस्कार है। नीलकण्ठ! आपका स्वरूप तेजोमय है, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। ध्यान करनेवाले मनुष्य आपके स्वरूपका जिस प्रकार चिन्तन करते हैं, उसके अनुरूप ही विग्रह धारण करके आप प्रकट होते हैं, आपको नमस्कार है। केवल भक्तिभावसे प्राप्त होनेवाले आप प्रभुको नमस्कार है। ब्रह्माजीके रूपमें आपको नमस्कार है। विष्णुरूपधारी प्रभो! आपको नमस्कार है। आप ही स्थूल और सूक्ष्म जगत् हैं, आपको नमस्कार है। अणुरूपधारी आपको नमस्कार है। कामरूपमें प्रकट हुए अथवा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आप ही सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप नित्य, सौम्य, मृड (सुखस्वरूप) एवं श्रीहरि हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप ही सब ओरसे तपानेवाले सूर्य तथा शीतल किरणोंवाले चन्द्रमा हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सृष्टिस्वरूप! आपको नमस्कार है। लोकपाल! आपको नमस्कार है। आप रुद्र, भीम एवं शान्तस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आपके रूप अनन्त हैं, आप सम्पूर्ण विश्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। चन्द्रशेखर! आपके सब अङ्गोंमें भस्म लगा हुआ है, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आपके पाँच मुख एवं तीन नेत्र हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। सर्प आपके आभूषण हैं तथा आप दिशाओंको ही वस्त्रके रूपमें धारण करते हैं, आप अन्धकासुरका विनाश करनेवाले और दक्षके पापको हर लेनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। त्रिपुरारे! आपने कामदेवको भस्म किया है, आपको नमस्कार है। मेरे द्वारा कहे हुए इन चालीस नामोंका जो पाठ करे और पवित्र होकर तीनों काल इसको पढ़े अथवा सुने, वह सब पापोंसे छूटकर कैलाशधामको जाय।'

इस प्रकार धर्मराजने प्रणाम करके जब बड़ी भक्तिसे भगवान् शिवका स्तवन किया, तब शिवजीने कहा—'महाभाग! तुम्हारे मनमें जो कोई अभिलाषा हो, उसके अनुसार कोई वर माँगो।'

यमराजने कहा—देव! शङ्कर! यदि मुझे आप मनोवाञ्छित वर देते हैं तो इस महाक्षेत्रमें आप मेरे नामसे प्रसिद्ध होकर निवास कीजिये। यह स्थान धर्मारण्यके नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि प्राप्त करे।

महादेवजी बोले—धर्मराज! यह स्थान प्रत्येक युगमें सदा धर्मारण्यके नामसे विख्यात होगा। तुम्हारे मनमें और भी कोई इच्छा हो तो बताओ, उसे भी पूर्ण करूँगा।

धर्मराजने कहा—भगवन्! दो योजन विस्तारवाला यह उत्तम स्थान मेरे नामसे प्रसिद्ध तीर्थ हो। यह समस्त देहधारियोंके लिये पावन एवं सनातन मोक्षस्थान हो।

महादेवजी बोले—'एवमस्तु' एक अंशसे इस तीर्थमें मेरी भी स्थिति होगी। तुम्हारे इस निर्मल स्थानको मैं कभी नहीं छोड़ूँगा। यहाँ मेरे नामसे विश्वेश्वर नामक महालिङ्ग प्रकट होगा।

ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् वहाँ एक अद्भुत लिङ्ग प्रकट हुआ। धर्मके द्वारा स्थापित किया हुआ वह लिङ्ग धर्मेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसका स्मरण और पूजन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। धर्मराजने वहींपर एक धर्मवापीका निर्माण किया, जो बड़ी मनोरम है। उसमें स्नान और जलपान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य व्याधिदोषके नाश और क्लेशकी शान्तिके लिये उस धर्मवापीमें स्नान करके यमतर्पण करता है, उसको कोई उपद्रव नहीं होता। अँतरिया, तिजारी, चार दिनोंपर होनेवाला ज्वर, किसी नियत समयपर होनेवाला ज्वर तथा शीतज्वर आदि जितने भी रोग हैं, सभी उस मनुष्यको पीड़ा नहीं देते। जो मानव उस परम पुण्यमयी धर्मवापीमें स्नान करके शमीके पत्तेके बराबर भी पिण्डदान करता है, वह गर्भवासको नहीं प्राप्त होता है तथा महाभयङ्कर कुम्भीपाक, रौरव एवं अन्धतामिस्र आदि नरकसे भी छुटकारा पा जाता है। धर्मवापीमें तर्पण करनेसे बर्हिषद्, अग्निष्वात्त, आज्यप और सोमप नामवाले पितर उत्तम तृप्तिको प्राप्त होते हैं। जो मायासे मोहित होकर इस क्षेत्रमें अत्यन्त दूषित परस्त्रीगमन तथा सुवर्णकी चोरी आदि पाप करते हैं, वे सभी नरकमें पड़ते हैं। दूसरे क्षेत्रमें किया हुआ पाप धर्मारण्यमें नष्ट होता है; किंतु धर्मारण्यमें किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है। पुण्य, पाप या जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म होता है, वह सब सौ वर्षतक यहाँ नित्य बढ़ता रहता है। मनमें कामना रखनेवालोंके लिये यह पवित्र तीर्थ कामदायक है, योगियोंके लिये मुक्तिदायक है तथा सिद्धोंके लिये सदैव सिद्धिदायक बताया गया है।

सदाचार—शौच, स्नान, सन्ध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव आदिका महत्त्व

व्यासजी कहते हैं—धर्मारण्यमें शुद्ध कुलमें उत्पन्न हुए अठारह हजार ब्राह्मण रहते हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीके द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। वे सभी सदाचारी, पवित्र तथा ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। चार प्रकारके जीवोंमें प्राणधारी अति उत्तम हैं। प्राणधारियोंमें भी जो बुद्धिजीवी हैं, वे सभी श्रेष्ठ माने गये हैं। बुद्धिजीवी प्राणियोंमें भी मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्योंसे भी ब्राह्मण, उनसे भी विद्वान्, विद्वानोंसे भी पवित्र बुद्धिवाले, उनसे भी कर्मठ, कर्मठोंसे भी ब्रह्मपरायण पुरुष सबसे श्रेष्ठ है। युधिष्ठिर! ब्रह्मपरायण पुरुषोंसे श्रेष्ठ तीनों लोकोंमें कोई नहीं है। ब्रह्माजीने ब्राह्मणको सब प्राणियोंका स्वामी बनाया है। इसलिये संसारमें जो कुछ है, सबका योग्य अधिकारी ब्राह्मण ही है। सदाचारी ब्राह्मण ही सब कार्यों एवं अधिकारोंके योग्य होता है। जो आचारसे भ्रष्ट हो गया है, वह योग्य नहीं है। इसलिये ब्राह्मणको सदा आचारवान् होना चाहिये। राग और द्वेषसे रहित उत्तम बुद्धिवाले महापुरुष जिसका पालन करते हैं, उसीको विद्वानोंने धर्ममूलक सदाचार कहा है। जो अच्छे लक्षणोंसे हीन है, उस मनुष्यको भी चाहिये कि वह श्रद्धालु एवं अदोषदर्शी होकर भलीभाँति सदाचारका पालन करे; ऐसा करनेसे वह सौ वर्षोंतक (आयुभर) जीवित रह सकता है। अपने-अपने वर्णाश्रमोचित कर्मोंमें वेदों और स्मृतियोंद्वारा प्रतिपादित धर्ममूलक सदाचारका आलस्य छोड़कर सेवन करे। दुराचारी मनुष्य संसारमें निन्दनीय होता है। साथ ही वह अनेक प्रकारके रोगोंसे ग्रस्त हो अल्पायु तथा सदैव अतिशय दुःखका भागी होता है। जिस कर्मके करते समय अन्तरात्मामें सहज प्रसाद—निर्मलताका उदय होता है, उसी कर्मको करना चाहिये। इसके विपरीत कर्म कभी न करे। धर्मकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको यम-नियमोंके पालनके लिये ही विशेष यत्न करना चाहिये। सत्य, क्षमा, सरलता, ध्यान, क्रूरताका अभाव, हिंसाका सर्वथा त्याग, मन और इन्द्रियोंका संयम, सदा प्रसन्न रहना, मधुर बर्ताव करना और सबके प्रति कोमल भाव रखना—ये दस 'यम' कहे गये हैं। शौच, स्नान, तप, दान, मौन, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत, उपवास और उपस्थ-इन्द्रियका दमन—ये दस 'नियम' बताये गये हैं*। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मात्सर्य—इन छः वैरियोंको जीतकर मनुष्य सर्वत्र विजयी होता है। दूसरोंको कष्ट न देते हुए परलोकमें सहायता देनेवाले धर्मका धीरे-धीरे संग्रह करे। यदि धर्मकी भलीभाँति रक्षा की जाय तो वही परलोकमें सहायक होता है। पिता, माता, पुत्र, भाई, स्त्री और बन्धुजनोंसे भी बढ़कर मनुष्यका सहायक

* सत्यं क्षमाऽऽर्जवं ध्यानमानृशंस्यमहिंसनम्।
दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुतेति यमा दश॥
शौचं स्नानं तपो दानं मौनेज्याध्ययनं व्रतम्।
उपोषणोपस्थदण्डौ दशैते नियमाः स्मृताः॥
(स्क० पु० ब्रा० ध० मा० ५। १९-२१)

धर्म ही है। जीव अकेला ही जन्म लेता, अकेला मरता, अकेला पुण्य भोगता और अकेला ही पापका उपभोग करता है। मृत्यु हो जानेपर इस शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी भाँति त्यागकर भाई-बन्धु मुँह फेर लेते हैं। परलोकमें जाते हुए जीवके साथ केवल उसका धर्म ही जाता है*। अतः धर्मका संग्रह अवश्य करे। धर्म ही इस लोक और परलोकमें सहायक होता है। धर्मकी सहायता पाकर जीव नरकके दुस्तर अन्धकारसे पार हो जाता है। बुद्धिमान् पुरुष सदा उत्तम-उत्तम पुरुषोंके साथ सम्बन्ध जोड़े। अधम कोटिके मनुष्योंका सङ्ग छोड़कर अपने कुलको उन्नतिशील बनावे। सद्धर्मके पालनसे ब्राह्मण श्रेष्ठताको प्राप्त होता है। जो स्वाध्याय नहीं करता, सदाचारका उल्लङ्घन करता है, आलसी और दूषित अन्न खानेवाला है, ऐसे ब्राह्मणको यमराज कष्ट देते हैं। अतः ब्राह्मण प्रयत्नपूर्वक सदाचारका पालन करे।

रात्रिके अन्तमें आधे पहरका समय ब्राह्ममुहूर्त कहलाता है। उस समय उठकर विद्वान् पुरुष सर्वदा अपने हितका चिन्तन करे। फिर गणेश, शिव, पार्वती, श्रीरङ्ग (विष्णु), लक्ष्मी, ब्रह्मा, इन्द्रादि देवता, वसिष्ठ आदि मुनि, गङ्गा आदि नदी, श्रीशैल आदि पर्वत, क्षीरसागर आदि समुद्र, मानसरोवर आदि तड़ाग, कामधेनु आदि गौ तथा प्रह्लाद आदि भगवद्भक्त पुरुषोंका स्मरण करे। माताके चरण सब तीर्थोंसे भी अधिक उत्तम हैं, अतः उनका स्मरण करके पिता और गुरुका भी हृदयमें ध्यान करे। तत्पश्चात् आवश्यक कार्य (शौच आदि) करनेके लिये नैर्ऋत्य कोणकी ओर जाय। गाँवसे सौ धनुष दूर जाना चाहिये और नगरसे चार सौ धनुष। वहाँ तिनकेसे पृथ्वीको आच्छादित करके अपने मस्तकको भी कपड़ेसे अच्छी तरह ढक ले। यज्ञोपवीतको कानपर चढ़ाकर उत्तरकी ओर मुँह किये हुए मौनभावसे बैठकर मल-मूत्रका त्याग करे। उत्तराभिमुख बैठनेका नियम दिनमें और दोनों सन्ध्याओंके समय है। रात्रिमें शौच आदिके लिये दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके बैठना चाहिये। खड़े होकर मल-मूत्रका त्याग न करे। इस कार्यमें जल्दीबाजी भी न करे। ब्राह्मण, गौ, अग्नि तथा आती हुई वायुकी ओर मुँह करके भी शौचके लिये न बैठे। फालसे जोती हुई भूमिमें, सड़कपर और उठने-बैठनेके योग्य भूमिमें मल-मूत्रका त्याग न करे। मलोत्सर्गके समय चारों दिशाओंकी ओर न देखे। ग्रह और नक्षत्रोंकी ओर दृष्टि न डाले। ऊपर आकाशकी ओर न ताके। मलकी ओर भी दृष्टिपात न करे। मलत्यागके पश्चात् मनुष्य कंकड़ आदिसे रहित चिकनी मिट्टी ले। वह मिट्टी चूहोंकी खोदी हुई या शौचसे बची हुई या केश आदिसे मिली हुई नहीं होनी चाहिये। बायें हाथसे गुदामें एक बार मिट्टी लगाकर उसे जलसे धो डाले। इसी प्रकार पाँच बार मिट्टी लगाकर गुदाको धोये। एक-एक बार दोनों पैरोंमें मिट्टी लगाकर धोये और दोनों हाथोंको तीन-तीन बार मृत्तिका-लेपनपूर्वक धोये। गृहस्थ पुरुष इसी प्रकार शौचकी शुद्धि करे। जबतक मलका लेप और दुर्गन्ध मिट न जाय, तबतक उसे धोना ही चाहिये। ब्रह्मचर्य आदि तीन आश्रमोंमें क्रमशः दुगुने शौचका विधान है। दिनमें जो शौचका विधान है, उससे आधा रात्रिमें करना चाहिये। पराये गाँवमें उससे आधा और मार्गमें उससे भी आधे शौचका विधान है। रोगीके लिये उससे भी आधे शौचका नियम है। परंतु जब मनुष्य स्वस्थ हो जाय, तब शौचसम्बन्धी नियमोंके पूर्ण पालनमें कमी न करे। हाथ-पैरोंकी शुद्धिके पश्चात् मनुष्य पवित्र भूमिमें बैठकर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके जलसे कुल्ला करे। उस जलमें भूसी, कोयला, अस्थि एवं भस्मका संसर्ग नहीं रहना चाहिये। अत्यन्त शुद्ध एवं स्वच्छ जलसे आचमन करे। आचमनमें इतना जल पीये कि वह हृदयतक पहुँच सके। इस कार्यमें जल्दी नहीं करनी चाहिये। ब्राह्मण ब्रह्मतीर्थसे आचमन करे। आचमनके लिये जल लेते समय उसे भलीभाँति दृष्टि डालकर देख ले। वह पवित्र हो तभी उसका उपयोग करे। यदि दोनों पैरोंको न धोये तो आचमन करनेपर भी मनुष्य अशुद्ध ही माना जाता है। अपनी शुद्धिके लिये मनुष्य तीन बार जल पीकर आँख, कान आदि इन्द्रिय-छिद्रोंको स्पर्शद्वारा शुद्ध करे। अंगूठेके मूल भागसे अपने ओठोंको पोंछे, जलसे हृदयका स्पर्श करके समस्त अंगुलियोंसे मस्तकका स्पर्श करे। जलसहित अंगुलियोंके अग्रभागसे दोनों कन्धोंका स्पर्श करे। सड़क या गलीमें घूम आनेपर आचमन किया हुआ मनुष्य भी फिर आचमन करे। स्नान, भोजन और जलपान करनेपर, शुभ कर्मके प्रारम्भमें, सोकर उठनेपर, वस्त्र बदलने या नूतन वस्त्र धारण करनेपर, कोई अमाङ्गलिक

---

* जायते चैकलः प्राणी म्रियते च तथैकलः।
एकलः सुकृतं भुङ्क्ते भुङ्क्ते दुष्कृतमेकलः॥
देहे पञ्चत्वमापन्ने त्यक्त्वैकं काष्ठलोष्टवत्।
बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मो यान्तमनुव्रजेत्॥
(स्क० पु० ब्रा० ध० मा० ५। २४-२६)

वस्तु दीख जानेपर अथवा भूलसे किसी अपवित्र वस्तुको छू लेने या उसकी याद कर लेनेपर दो बार आचमन करनेसे मनुष्य शुद्ध होता है। तदनन्तर धर्मशास्त्रमें बताये हुए नियमोंके अनुसार दन्तधावन करे; क्योंकि आचमन करनेवाला मनुष्य भी यदि दन्तधावन न करे तो वह अपवित्र ही माना गया है। प्रतिपदा, अमावास्या, षष्ठी, नवमी तथा रविवारको काठकी दाँतन न करे। जिस दिन दाँतन निषिद्ध है, उस दिन मुखकी शुद्धिके लिये बारह बार कुल्ला करना चाहिये। कनिष्ठा अंगुलीके बराबर मोटी, बारह अंगुल लंबी, हरी, गीली लकड़ी, जिसका छिलका उतारा न गया हो तथा जिसमें छेद या रोग न हो, दाँतनके लिये उपयुक्त मानी गयी है। दन्तधावनके काष्ठका अग्रभाग एक अंगुलतक चबाना चाहिये फिर उसीके कूँचेसे दाँतोंको रगड़कर साफ करना और जलसे कुल्ला करना चाहिये। शरीरशुद्धिके लिये प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। यदि तीर्थ (तालाब या नदी) का जल मिल जाय तो विशेष उत्तम है। शरीरके नौ छिद्रोंसे दिन-रात मल निकलता रहता है, अतः वह सदा मलिन है। प्रातःकाल स्नान करनेसे इसकी शुद्धि होती है। प्रातःकालका स्नान प्राजापत्य व्रतके समान पापनाशक माना गया है। वह उत्साह, मेधा, सौभाग्य, रूप तथा सम्पदाको बढ़ानेवाला है। वह दरिद्रता, पाप, ग्लानि, अपवित्रता और दुःस्वप्नका नाश करनेवाला है तथा तुष्टि और पुष्टि प्रदान करनेवाला है।

नृपश्रेष्ठ! अब मैं प्रसङ्गवश स्नानकी विधिका वर्णन करता हूँ; क्योंकि विद्वानोंने विधिपूर्वक किये हुए स्नानका महत्त्व साधारण स्नानसे सौगुना अधिक बताया है। विशुद्ध कुश लेकर पवित्र स्थानपर रक्खे और आचमन करके स्नान करे। हाथमें कुश लेकर, शिखा बाँधकर जलके भीतर प्रवेश करे और अपनी शाखामें बतायी हुई विधिके अनुसार विधिपूर्वक स्नान करे। इस प्रकार स्नानकार्य समाप्त करके वस्त्र निचोड़कर दो नूतन वस्त्र धारण करे। फिर आचमन करके कुश हाथमें लिये हुए ही प्रातःकालकी सन्ध्या करे। अपने मनको दृढ़तापूर्वक संयममें रखकर प्राणायाम करनेवाला ब्राह्मण दिन और रातमें किये हुए पापोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है। यदि मनको संयममें रखकर दस या बारह बार प्राणायाम कर लिये जायँ तो ऐसा मानना चाहिये कि उस पुरुषने बड़ी भारी तपस्या कर ली। व्याहृति और प्रणवके साथ किये हुए सोलह प्राणायाम यदि प्रतिदिन होते रहें तो एक मासमें वे भ्रूणहत्या करनेवाले पापीको भी पवित्र कर देते हैं। जैसे पार्थिव धातुओंका मल आगमें तपानेसे जल जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियोंद्वारा किये हुए दोष प्राणायामसे भस्म हो जाते हैं। नृपश्रेष्ठ! प्रणव परब्रह्म है। प्राणायाम उत्तम तपस्या है और गायत्रीसे बढ़कर दूसरा कोई पवित्र करनेवाला मन्त्र नहीं है। मनुष्य मन, वाणी और क्रियाद्वारा रातमें जो पाप करता है, वह प्रातःसन्ध्याकी उपासना करते हुए प्राणायामोंके द्वारा शुद्ध कर देता है। इसी प्रकार मन, वाणी और क्रियाद्वारा दिनमें जो पाप करता है, उसे सायंकालकी सन्ध्योपासनामें प्राणायामोंके द्वारा नष्ट कर डालता है। सायंकालकी सन्ध्या करनेवाला पुरुष दिनमें किये हुए पापका नाश करता है। जो प्रातःकाल और सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता, वह समस्त ब्राह्मणोचित कर्मोंसे शूद्रकी भाँति बाहर कर देने योग्य है*।

प्राणायामके पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करे। फिर 'आपो हिष्ठा मयो भुवः' इत्यादि तीन ऋचाओंद्वारा मार्जन करे। पृथ्वीपर, मस्तकपर, आकाशमें, आकाशमें, पृथ्वीपर, मस्तकपर, मस्तकपर, आकाशमें तथा भूमिपर—इस तरह नौ बार नौ स्थानोंमें जल छिड़कना चाहिये। यहाँ भूमि या पृथ्वी शब्दसे दोनों चरण लिये गये हैं। आकाशका अर्थ हृदय माना गया है। सिर या मस्तक शब्द अपने प्रसिद्ध अर्थमें ही है। इस प्रकार इन्हीं अङ्गोंका मार्जन उक्त मन्त्रोंद्वारा बताया गया है। स्नान छः प्रकारके होते हैं—वारुण स्नान (जलसे किया हुआ स्नान), आग्नेय स्नान (अग्निकी लपटोंसे अपने अङ्गोंको तपाना या सर्वाङ्गसे धूप-सेवन करना), वायव्य स्नान (स्वच्छ वायुका सेवन), ऐन्द्र स्नान (वर्षाके जलसे नहाना), मन्त्र स्नान (मन्त्रोचारण और श्रवणसे अपनेको शुद्ध करना) तथा ब्राह्म स्नान (वेद-मन्त्रोंद्वारा मार्जन या अभिषेक)। इनमें पूर्वोक्त सभी स्नानोंकी

---

* एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति पावनं च नृपोत्तम॥
कर्मणा मनसा वाचा यद्रात्रौ कुरुते त्वघम्।
उत्तिष्ठन् पूर्वसन्ध्यायां प्राणायामैर्विशोधयेत्॥
यदह्ना कुरुते पापं मनोवाक्कायकर्मभिः।
आसीनः पश्चिमां सन्ध्यां प्राणायामैर्व्यपोहति॥
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्।
नोपतिष्ठेत्तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्॥
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः।
(स्क० पु० ब्रा० ध० मा० ५। ७३-७६)

अपेक्षा यह ब्राह्म स्नान (मार्जन) अधिक उत्तम है। जो ब्राह्म स्नानकी विधिसे स्नान करता है, वह बाहर और भीतर-से भी शुद्ध हो जाता है तथा सर्वत्र देवपूजा आदि कर्मोंमें सम्मिलित होनेकी योग्यता प्राप्त कर लेता है; क्योंकि इससे अन्तःशुद्धि एवं भावशुद्धि हो जाती है। केवल जल-स्नानसे ही कोई परम शुद्ध नहीं माना जाता। जो भावसे दूषित हैं, वे सैकड़ों बार स्नान करके भी शुद्ध नहीं होते। जिसका चित्त निर्मल है, उसीने सब तीर्थोंमें स्नान किया है, वही सब प्रकारके मलोंसे रहित है और उसीने सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान किया है।

चित्त जिस प्रकार निर्मल होता है, वह बतलाता हूँ, सुनो। यदि भगवान् विश्वनाथ प्रसन्न हो जायँ तो चित्त शुद्ध होता है। अतएव चित्तकी शुद्धिके लिये काशीपति विश्वनाथकी शरण लेनी चाहिये। जो ऐसा करता है, वह इस शरीरका त्याग करनेके बाद परब्रह्मको प्राप्त होता है। पूर्वोक्त मार्जन करनेके अनन्तर 'द्रुपदादिव मुमुचानः०' इत्यादि मन्त्रका जप करते हुए जलको अभिमन्त्रित करे और उस जलको सिरपर छिड़क ले। उसके बाद हाथमें जल लेकर विधिज्ञ पुरुष 'ऋतञ्च सत्यञ्च०' इत्यादि मन्त्रके द्वारा अघमर्षण करे। जो विद्वान् जलमें गोता लगाकर तीन बार अघमर्षण मन्त्रका जप करता है अथवा स्थलमें भी बैठकर हाथमें जल ले अघमर्षण मन्त्रका जप करता है, उसकी पापराशि उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार। अघमर्षणके पश्चात् प्रणव तथा महा-व्याहृतिके साथ गायत्री-मन्त्रका जप करते हुए खड़ा होकर सूर्यके लिये तीन अञ्जलि जल दे। वह जल वज्रके समान होकर उन्हें प्राप्त होता है और उसके द्वारा मन्देह नामक राक्षस शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, जो कि पर्वताकार शरीर धारण करके सूर्यके तेजको आच्छादित किया करते हैं। प्रातःकाल गायत्री-जप करते हुए तबतक खड़ा रहे, जबतक कि सूर्यका दर्शन न हो जाय। इसी प्रकार सायंकालमें बैठकर तबतक गायत्री-जप करना चाहिये, जबतक नक्षत्रोंका दर्शन न होने लगे। अपना हित चाहनेवाले द्विजको सन्ध्यो-पासनाके कालका लोप नहीं करना चाहिये। जब सूर्यका आधा उदय या आधा अस्त हुआ हो, उस समय उनके लिये अञ्जलिका वज्रोदक डालना चाहिये। विधिपूर्वक की हुई सन्ध्या भी समय बिताकर करनेसे निष्फल हो जाती है*। बायाँ हाथ जलमें डालकर द्विजोंद्वारा जो सन्ध्या की जाती है, वह वृषली (शूद्रा) जानने योग्य है। वह राक्षसगणोंको आनन्द देनेवाली मानी गयी है। सूर्यार्घ्य देनेके पश्चात् अपनी शाखामें बतायी हुई विधिके अनुसार सूर्यका उपस्थान करे। एक हजार अथवा एक सौ अथवा दस बार गायत्री-मन्त्रके जपद्वारा सूर्योपस्थान करना चाहिये। जो अधिक-से-अधिक एक हजार, मध्यम श्रेणीमें एक सौ अथवा कम-से-कम दस बार प्रतिदिन गायत्री-मन्त्रका जप करता है, वह पापोंसे लिप्त नहीं होता। लाल चन्दनमिश्रित जल, फूल और कुशोंके द्वारा वेदोक्त अथवा आगमोक्त मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये*। जिसने भगवान् सूर्यदेवका पूजन किया, उसने तीनों लोकोंकी पूजा कर ली। भगवान् सूर्य पूजित होनेपर पुत्र, पशु और धन देते हैं, रोग हर लेते हैं, पूरी आयु देते हैं और मनोवाञ्छित कामनाओंको पूर्ण करते हैं।

इस प्रकार सन्ध्योपासना पूर्ण होनेपर अपनी शाखामें कही हुई विधिके अनुसार चन्दन, अगरु, कपूर, सुगन्धित पुष्प एवं शुद्ध जलसे 'तृप्यन्तु' का उच्चारण करते हुए ब्रह्मा आदि देवताओं, मरीचि आदि मुनियों तथा अन्य ऋषि, देवता और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। निवीती होकर अर्थात् यज्ञोपवीतको गलेमें मालाकी भाँति करके सनकादि मनुष्योंका जौ मिले हुए जलसे तर्पण करे। यह तर्पण सीधे एवं उत्तराग्र कुशद्वारा प्राजापत्य तीर्थसे होना चाहिये। फिर प्राचीनावीती होकर अर्थात् जनेऊको दाहिने कंधेपर करके दुहरे मुड़े हुए कुशों एवं तिलमिश्रित जलसे पितृतीर्थसे कव्यवाट् अनल आदि दिव्य पितरोंका तर्पण करे। रविवार, शुक्ल पक्षकी त्रयोदशी, सप्तमी तिथि, रात्रि एवं दोनों सन्ध्याकालमें कल्याणकी इच्छा रखनेवाला ब्राह्मण कभी तिलसे तर्पण न करे। यदि करना ही पड़े तो सफेद तिलोंसे ही तर्पण करे। तत्पश्चात् चौदह यमोंके नामोंका उच्चारण करते हुए उनके लिये तर्पण करे। यमतर्पणके बाद अपना बायाँ घुटना जमीनपर रखकर मौन हो अपने गोत्रका उच्चारण करते हुए अपने पितरोंका पितृतीर्थसे प्रसन्नतापूर्वक तर्पण करे। तर्पणमें देवता एक-एक अञ्जलि, सनकादि दो-दो अञ्जलि तथा पितर तीन-तीन अञ्जलि जल चाहते हैं। पितृवर्गमें जो स्त्रियाँ हैं, वे एक-एक अञ्जलि

* विधिनापि कृता सन्ध्या कालातीताऽफला भवेत्।
(स्क० पु० ब्रा० ध० मा० ५। ९४)

* रक्तचन्दनमिश्राभिरद्भिश्च कुसुमैः कुशैः।
वेदोक्तैरागमोक्तैर्वा मन्त्रैरर्घ्यं प्रदापयेत्॥
(स्क० पु० ब्रा० ध० मा० ५। ९८-९९)

जलकी ही इच्छा रखती हैं। अंगुलियोंका अग्रभाग देवतीर्थ है; अंगुलियोंका मूलभाग ऋषितीर्थ है; अंगूठेके मूलमें ब्राह्मतीर्थ है और हाथके बीचमें प्रजापति तीर्थ है। अङ्गुष्ठ और तर्जनीके बीचके भागको पितृतीर्थ कहते हैं। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त जो भी देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर, पिता, माता, मातामह आदि हैं, वे सब तृप्त हों—ऐसा कहकर अथवा और भी जो वैदिक या पौराणिक मन्त्र हैं, उनका उच्चारण करके पितरोंका साङ्ग तर्पण करना चाहिये। वह पितरोंको सुख देनेवाला है।

तत्पश्चात् अग्निहोत्र करके वेदाभ्यास करना चाहिये। वेदाभ्यास पाँच प्रकारसे किया जाता है—(१) स्वीकार (गुरुसे ग्रहण), (२) अर्थ-विचार, (३) मन्त्र-पाठका अभ्यास, (४) तप (वेदानुसार आचरण) और (५) शिष्योंको पढ़ाना। प्राप्तकी रक्षा और अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये यह द्विजातियोंका प्रातःकालिक कृत्य बताया गया है। अथवा प्रातः-काल उठकर शौचादि आवश्यक कार्योंसे निवृत्त हो हाथ-पैरोंकी शुद्धि एवं आचमन करके दन्तधावन करे। सारे शरीरकी शुद्धि करके प्रातःसन्ध्या करे। वेदार्थोंका विचार करे। नाना प्रकारके शास्त्रोंको पढ़े और अपने हितमें लगे हुए पवित्र एवं बुद्धिमान् शिष्योंको पढ़ावे तथा योग-क्षेम आदिकी सिद्धिके लिये परमेश्वरकी शरण ले। तत्पश्चात् मध्याह्नकालके नियमोंकी सिद्धिके लिये पुनः पूर्वोक्त रीतिसे स्नान करे, स्नान करके मध्याह्न-सन्ध्या करे। देवताकी पूजा करके नैमित्तिक कृत्योंका पालन करे। अग्निको प्रज्वलित करके बलिवैश्वदेव करे। निष्पाव, कोदो, उड़द, मटर और चनाका वैश्वदेव-होममें त्याग करे। तेलका पका, बिना पका तथा नमक मिलाया हुआ सब अन्न छोड़ दे। अरहर, मसूर, गोलधान्यसे बना हुआ भोजन, दूसरोंके खानेसे बचा हुआ भोजन अथवा बासी अन्नको भी वैश्वदेव-होममें त्याग दे। हाथमें कुश धारण करके आचमन और प्राणायाम करे। फिर 'पृष्टो दिवि०' इत्यादि मन्त्रसे दो बार अग्निका पर्युक्षण करके कुशास्तरण करे। फिर वैदिक मन्त्रसे अग्नि-को अपने अभिमुख करके गन्ध, पुष्प तथा अक्षत आदिके द्वारा पूजा करे। फिर अपनी शाखामें बतायी हुई विधिके अनुसार विद्वान् पुरुष होम करे। राह चलनेवाला पथिक, जिसकी जीविका नष्ट हो गयी हो ऐसा पुरुष, विद्यार्थी, गुरुका पालन-पोषण करनेवाला पुरुष, संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये छः धर्मभिक्षुक माने गये हैं *। चाण्डाल और कुत्तेको भी दिया हुआ अन्न निष्फल नहीं होता। अतः अन्नकी याचना करनेके लिये कोई आवे तो उसके अपाय होनेका विचार नहीं करना चाहिये। कुत्ते, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कीड़ोंके लिये घरसे बाहर पृथ्वीपर अन्न डाल देना चाहिये। कौओंको अन्नका भाग देते हुए इस प्रकार कहना चाहिये—'पूर्व, पश्चिम, उत्तर, वायव्य और नैर्ऋत्य कोणमें रहनेवाले जो कौए हैं, वे सब भूमिपर मेरे द्वारा समर्पित किये हुए अन्नके ग्रासको ग्रहण करें।' इस प्रकार पञ्चभूतोंके लिये बलि अर्पण करके जितनी देरमें गाय दुही जाती है, उतनी देरतक किसी अतिथिके आनेकी राह देखे। यदि कोई आ जाय तो उसे भोजन देनेके लिये रसोईघरमें प्रवेश करे। काकबलि न करके नित्यश्राद्ध करे। नित्यश्राद्धमें अपनी शक्तिके अनुसार तीन, दो अथवा एक ब्राह्मणको भोजन करावे। पितृयज्ञके लिये जल निकालकर देवे। नित्यश्राद्ध विश्वेदेव तथा नियमोंसे रहित होता है। उसमें दक्षिणाकी भी आवश्यकता नहीं होती। यह नित्यश्राद्ध दाता और भोक्ता दोनोंको परम तृप्त करनेवाला है। इस प्रकार पितृ-यज्ञ करके स्वस्थबुद्धिसे आतुरभावका परित्याग करके पवित्र आसनपर बैठकर भोजन करे। उत्तम गन्धसे युक्त माला और दो शुद्ध वस्त्र धारण करके प्रसन्नचित्त हो पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके भोजन करना चाहिये। भोजनके पहले आचमन करके भोजनके बाद भी आचमन करना चाहिये। नीचे और ऊपरसे जलद्वारा आच्छादित होनेके कारण अन्न नग्न नहीं रहता। इस प्रकार आचमनकी विधिसे उत्तम बुद्धिवाला पुरुष भोजन करे। भोजन प्रारम्भ करनेसे पूर्व भूमिपर तीन ग्रास बलि अर्पण करे। फिर उसके ऊपर जल गिरा दे। तत्पश्चात् एक बार आचमन करके प्राणाग्निहोत्र करे। 'प्राणाय स्वाहा०' इत्यादि मन्त्रोंसे अपने उदरकुण्डकी अग्निमें अन्नकी पाँच आहुतियाँ डाले। उस समय हाथमें कुशकी पवित्री पहने रहे और चित्तको प्रसन्न रक्खे। जो अपने एक हाथमें कुश धारण किये हुए दूसरे हाथसे भोजन करता है, उसे केश और कीट आदिके स्पर्शसे उत्पन्न दोष नहीं लगता। अतः कुशधारणपूर्वक ही भोजन करे। भोजन

* अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषकः।
यतिश्च ब्रह्मचारी च षडेते धर्मभिक्षुकाः॥
(स्क० पु० ब्रा० ध० मा० ५। १२६)

करते समय मौन रहे। दाँतोंको परस्पर रगड़े नहीं। धोने योग्य जूठे हाथके अँगूठेके मूलसे जल गिराते हुए रौरव-नरकके पापमय आश्रयमें रहनेवाले और उच्छिष्ट जल चाहनेवाले नरकनिवासी जीवोंको अक्षय्योदक दे। मनमें यह भाव रक्खे कि यह जल उन जीवोंको प्राप्त हो। तदनन्तर आचमन करके पवित्र हो मेधावी पुरुष मुखशुद्धि करके पुराण-श्रवण आदिके द्वारा दिनका शेष भाग व्यतीत करें। तत्पश्चात् सायङ्कालमें पुनः सन्ध्योपासना करे। इस प्रकार यह नित्यकर्मका विधान संक्षेपसे बताया गया है। इसका पालन करनेवाला ब्राह्मण कभी दुखी नहीं होता।

वेदोंके स्वाध्याय, बलिवैश्वदेव, अतिथिसेवा, आठ प्रकारके विवाह, पञ्चयज्ञ तथा व्यावहारिक शिष्टाचारोंका कथन

व्यासजी कहते हैं—गृहस्थ-आश्रममें निवास करनेवाले साधुपुरुषोंके उपकारके लिये जिस प्रकार धर्मका अनुष्ठान किया जाता है, उसका मैं यथावत् रूपसे वर्णन करता हूँ। युधिष्ठिर! गृहस्थधर्मका आश्रय लेकर मनुष्य इस सम्पूर्ण जगत्का पोषण करता है। इसलिये वह मनोवाञ्छित लोकोंपर अधिकार प्राप्त करता है। देवता, पितर, मनुष्य, भूत-प्राणी, कृमि, कीट, पतंग, पक्षी और असुर—ये सभी गृहस्थके सहारे जीवननिर्वाह करते हैं और उसीसे उनकी तृप्ति होती है। युधिष्ठिर! ऋक्, साम और यजुः—इन तीन वेदरूप शरीरवाली एक धेनु है, जो सबकी आधारभूत है। उस वेदत्रयीरूपा धेनुमें ही सम्पूर्ण विश्व प्रतिष्ठित है। वही इस विश्वका कारण मानी गयी है। ऋग्वेद उसकी पीठ है, यजुर्वेद मध्यभाग है और सामवेद उसकी कुक्षि एवं स्तन हैं। इष्ट (यज्ञ-याग आदि) और आपूर्त (वापी, कूप, तड़ाग, उद्यानादि) ये दो उस धेनुके सींग हैं। वेदोंके जो उत्तम सूक्त हैं, वे ही इस गौके रोम हैं। शान्तिकर्म और पुष्टिकर्म उसके गोबर और मूत्र हैं। अक्षर ही उसके चरण हैं। पद, क्रम, जटा और घन पाठके द्वारा वह जगत्के लिये उपजीव्य होती है। स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार और हन्तकार ये उस धेनुके चार स्तन हैं। स्वाहाकाररूपी स्तनको देवता, स्वधाकारको पितर, वषट्कारको देवता, भूत, ऋषि, मुनि एवं सुरेश्वरगण तथा हन्तकाररूपी स्तनको मनुष्य सदा पान करते हैं। इस प्रकार यह त्रयीरूपा धेनु सम्पूर्ण जगत्को तृप्त करती है। जो पुरुष इन वेदोंका उच्छेद करनेवाला है, वह असंख्य पाप करनेवाला मानव अन्धतामिस्र नामक अन्धकारमय नरकमें डूबता है। जो इस गौको अपने देवतादि बछड़ोंसे उचित समयपर संयोग कराकर दुग्धपानका अवसर देता है, वह स्वर्गलोकको जाता है। इसलिये मनुष्यको प्रतिदिन अपने शरीरकी ही भाँति देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य एवं अन्य प्राणियोंका पोषण करना चाहिये। स्नान करके पवित्र हो ब्रह्मयज्ञके अन्तमें एकाग्रचित्तसे जलद्वारा देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। पुष्प, गन्ध और धूप आदिसे देवताओंकी पूजा करके अग्निहोत्रके द्वारा अग्निका तर्पण करे। उसके बाद बलिवैश्वदेव करे। राक्षसों और भूतोंके लिये आकाशमें बलि अर्पण करे और पितरोंके लिये दक्षिणाभिमुख होकर अन्न दे। तदनन्तर गृहस्थ पुरुष एकाग्रचित्त हो जल हाथमें लेकर उन सबकी आचमन-क्रियाके लिये उन्हीं-उन्हीं स्थानोंपर उन्हीं-उन्हीं देवताओंका नाम लेकर जल छोड़े। इस प्रकार घरमें बलि अर्पण करके गृहस्थ पुरुष पवित्र हो आचमन करे। तत्पश्चात् घरके दरवाजेकी ओर देखे और कुछ समयतक अतिथिके आगमनकी प्रतीक्षा करे। यदि कोई अतिथि आ जाय तो अर्घ्य और पाद्यके जलसे उसका सत्कार करे। खानेकी इच्छासे आये हुए थके-माँदे अकिञ्चन याचक ब्राह्मणको अतिथि कहा गया है। ऐसे अतिथिकी यथाशक्ति पूजा करके उसके आचरण और स्वाध्यायके विषयमें प्रश्न न करे। वह सुन्दर हो या असुन्दर, उसे साक्षात् प्रजापति समझे। वह नित्य स्थित नहीं रहता, इसीलिये अतिथि कहलाता है। ऐसे अतिथिको देकर जो भोजन करता है, वह अमृत भोजन करता है। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौटता है, वह उसे अपना पाप देकर बदलेमें उसका पुण्य ले जाता है *। अतः साग देकर अथवा केवल जल ही देकर अपनी

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥
(स्क० पु० ब्रा० ध० मा० ६। २३-२४)

शक्तिके अनुसार मनुष्य अतिथिका पूजन करे। तभी वह

उसके ऋणसे मुक्त होता है।

युधिष्ठिर बोले—मुने! आठ प्रकारके विवाह बतलाये जाते हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। इन विवाहोंकी विधि तथा इनमें करने योग्य कार्यका यथावत् वर्णन कीजिये।

व्यासजीने कहा—जहाँ वरको बुलाकर वस्त्र और आभूषणोंसे अलङ्कृत हुई अपनी कन्या दी जाती है, वह ब्राह्म-विवाह है। यज्ञमें वरण किये हुए ऋत्विजके लिये जो कन्यादान किया जाता है, वह दैव-विवाह है। वरसे एक गाय और एक बैल लेकर जो उसको कन्या दी जाती है, वह आर्ष-विवाह है। जहाँ वर और कन्याको यह कहकर कि तुम दोनों साथ-साथ रहकर

आसुर-विवाह कहते हैं।] यह आठवाँ जो पैशाच वि है, वह अत्यन्त पापिष्ठ है। ऐसे विवाहसे पापिष्ठ सन्ता ही उत्पत्ति होती है। अपने समान वर्णकी स्त्रियोंसे पाणिग्रहण करना चाहिये, यह विधि है। धर्मानुकूल विव धार्मिक एवं सौ वर्षोंतक जीवित रहनेवाले पुत्र पैदा हो तथा अधार्मिक विवाहसे धर्मरहित, मन्दभाग्य, धनहीन अल्पायु सन्तान उत्पन्न होती हैं। ऋतुकाल आनेपर साथ समागम करना गृहस्थके लिये श्रेष्ठ धर्म है। दि स्त्रीके साथ समागम पुरुषके लिये बड़ा भारी आयुका ना माना गया है। श्राद्धके दिन तथा सभी पर्वोंके दिन बुद्धि पुरुषोंको स्त्रीसम्भोग नहीं करना चाहिये। उन अवस मोहवश स्त्री-समागम करनेवाला पुरुष धर्मसे गिर जाता जो केवल ऋतुकालमें स्त्री-समागम करता और सदा ही स्त्रीमें अनुराग रखता है, वह गृहस्थ रहनेपर भी ब्रह्मचारी ही जानने योग्य है*। आर्ष-विवाहमें जो दे लेनेकी बात कही गयी है, वह उत्तम नहीं है। क्योंकि क का थोड़ा भी शुल्क लिया जाय, तो वह कन्या-विक्रय पापका कारण बनता है। कन्या-विक्रय करनेसे मनुष्य कल्पतक विष्ठा एवं कृमिभोजन नामक नरकमें निवास है। अतः कन्याके थोड़ेसे धनका भी मनुष्यको अपने जी उपयोग नहीं करना चाहिये। वाणिज्य, नीच पुरुषोंकी वेदाध्ययनका अभाव, निन्दित विवाह और क्रियालोप- कुलमें पतनके हेतु बनते हैं। गृहस्थ पुरुष वैवाहिक प्रतिदिन गृह्यकर्मका अनुष्ठान करे। प्रतिदिन पञ्च अनुष्ठान तथा पाकयज्ञ करे। गृहस्थ पुरुषसे प्रतिदिन प्रकारके हिंसापूर्ण कर्म बनते हैं। ओखली, चक्की, जलका घड़ा और झाड़ू—इनसे होनेवाली पाँच प्र हिंसाओंके निवारणके लिये पाँच यज्ञ बताये गये है गृहस्थके कल्याणकी अभिवृद्धि करनेवाले हैं। वेद-शा

जो इन सबको अन्न दिये बिना ही भोजन करता है, वह केवल अपना पेट भरनेवाला है [शास्त्रोंमें ऐसे मनुष्यको पापभोजी बताया गया है] । जो वैश्वदेवसे हीन और आतिथ्यसे वर्जित हैं, वे वेदोंके विद्वान् हों तो भी उन्हें शूद्र ही समझना चाहिये । जो अधम द्विज बलिवैश्वदेव न करके भोजन कर लेते हैं, वे इस लोकमें अन्नहीन होते हैं और मरनेपर कौवेकी योनिमें जाते हैं । वेदोक्त कर्मका ज्ञान प्राप्त करके नित्य आलस्य छोड़कर यदि उसका यथाशक्ति पालन करे, तो मनुष्य परम सद्गतिको प्राप्त होता है ।

उदय और अस्त होते हुए तथा मध्याह्नकालके को न देखे । सूर्यग्रहणके समय तथा उदयके पहले डस्थ (अण्डाकारमें स्थित) सूर्यपर दृष्टिपात न करे । में अपनी परछाहीं न देखे, कीचड़में न दौड़े, नंगी स्त्रीकी (न देखे और नंगा होकर जलमें न घुसे । देवमन्दिर, ग्रण, गौ, मधु, मिट्टीका ढेर, उत्तम जाति, अवस्थामें बड़े (विद्यामें बड़े मनुष्य, अश्वत्थ वृक्ष, चैत्य वृक्ष, गुरु, से भरे हुए घड़े, तैयार अन्न, दही और सरसों आदिको नेसे दाहिने करके जाना चाहिये । रजस्वला स्त्रीका सेवन हरे, स्त्रीके साथ बैठकर न खाय, एक वस्त्र धारण करके नन न करे और जिसपर आरामसे बैठ न सकें ऐसे आसनपर मन न करे । तेजकी इच्छा रखनेवाला श्रेष्ठ द्विज अपवित्र की ओर न देखे, देवताओं और पितरोंको तृप्त किये बिना (कदापि अन्न ग्रहण नहीं करे । गोशालामें, बाँबीमें तथा में कभी मूत्रत्याग न करे, जिस गड्ढेमें जीव रहते हों में भी पेशाब न करे, खड़ा होकर या चलते-चलते मूत्र- ग न करे, ब्राह्मण, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र और जनोंकी ओर देखते हुए मल-मूत्रका त्याग न करे । से आग न फूँके, वस्त्रहीन अवस्थामें स्त्रीकी ओर न ; अपने पैरोंको आगमें न तपावे तथा कोई अपवित्र । अग्निमें न डाले तथा किसी भी जीवकी हिंसा न करे । तों सन्ध्याओंके समय भोजन न करे । प्रातःकाल और कालकी गोधूलि वेलामें विद्वान् पुरुष शयन न । दूध पिलाती हुई गायको देखकर भी किसीसे न कहे । धनुष किसीको न दिखावे । कहीं शून्यस्थानमें अकेला सोवे । किसी सोये हुए मनुष्यको न जगावे, अकेला ता न चले और अञ्जलिसे जल न पीये । जिसकी मलाई र ली गयी हो, ऐसे दहीको दिनमें न खाय और रात्रिमें तो का सर्वथा निषेध है । रजस्वला स्त्रीसे बातचीत न करे, रात्रिमें भरपेट भोजन न करे । नाचने-गाने और बाजा बजानेका प्रेमी न हो । काँसेके बरतनमें पैर न धुलवे । जो अज्ञानी मनुष्य अपने घर श्राद्ध करके फिर दूसरे घर भोजन करता है, उसमें दाताको श्राद्धका फल नहीं मिलता और भोजन करनेवाला पापका भागी होता है । दूसरेके पहने हुए वस्त्र और जूते न पहने, फूटे हुए बरतनमें न खाय और आगसे जले हुए आसनपर न बैठे । जो दीर्घकालतक जीवित रहना चाहता हो, वह गाय-बैलोंकी पीठपर न चढ़े, चिताका धूम अपने अङ्गमें न लगने दे, (गिरनेकी आशङ्कावाले) नदीके तटपर न बैठे, उदयकालीन सूर्यकी किरणोंका स्पर्श न करे और दिनका सोना छोड़ दे । स्नान कर लेनेपर शरीरका मार्जन न करे, रास्तेमें शिखा खोलकर न चले, हाथ और सिरको न कँपाये । पैरसे आसन खींचकर न बैठे, हाथसे शरीरको न पोंछे अथवा स्नानकालमें पहने हुए वस्त्रसे भी न पोंछे । स्नानकालीन वस्त्रसे शरीर पोंछनेपर कुत्तेसे चाटे हुएके समान अशुद्ध हो जाता है । उस दशामें पुनः स्नान करनेसे ही शुद्धि होती है । दाँतसे कभी नख या रोएँको न काटे । यदि शुभकी इच्छा हो तो नखसे नखको न काटे । अपने घरमें भी कभी बिना दरवाजेके (दीवार फाँदकर) न जाय, धर्मघातीके साथ न बैठे, कभी नग्न होकर न सोवे और हाथमें भोजन रखकर न खाय । हाथ, पैर और मुख भीगे रखकर भोजन करनेवाला मनुष्य दीर्घजीवी होता है । भीगे हुए पैरोंवाला मनुष्य शयन न करे, जूँठे मुँह कहीं न जाय, शय्यापर बैठकर न खाय और न जल ही पीये । जूता पहने हुए न बैठे, खड़ा होकर पानी न पीये, आरोग्यकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य सब खट्टी वस्तुओंको त्याग दे । जूँठे हाथसे सिरका स्पर्श न करे, भूसी, अङ्गार, भस्म, केश और कपालके ऊपर खड़ा न हो । पतित मनुष्योंके साथ निवास करना पतनका ही कारण होता है । शूद्रके लिये ऊँचा आसन और मञ्च न दे । द्विजोंकी सेवा करना शूद्रोंके लिये परम धर्म माना गया है । दोनों हाथोंसे सिर खुजलाना शुभ नहीं है । शूद्रको कभी वैदिक मन्त्रका उपदेश नहीं करना चाहिये, उसे वेदोपदेश करनेवाला ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे गिर जाता है और शूद्र भी स्वधर्मसे भ्रष्ट हो जाता है । दोनों हाथोंसे किसीको पीटना, निन्दा करना, बाल नोचना, शास्त्रके विपरीत बर्ताव करना और लोभीसे दान लेना—यह सब करनेवाला ब्राह्मण इक्कीस नरकोंमें पड़ता है ।

असमयमें मेघकी गर्जना सुनायी दे, वर्षा ऋतुमें धूल

बरसानेवाली आँधी चले तथा रात्रिमें बालकोंके रोनेकी विशेष ध्वनि हो, तब अनध्याय बताया गया है। उल्कापात, भूकम्प और दिग्दाह (अग्निकाण्ड) होनेपर, अर्धरात्रिमें, दोनों सन्ध्याकालमें, शूद्रके समीप, राज्यके अपहरण होनेपर, सूतकमें, दस अष्टकाओंमें, चतुर्दशीको, श्राद्धके दिन, प्रतिपदा तिथिमें, पूर्णिमामें, अष्टमीमें, कुत्तेके रोनेपर, राज्यभङ्ग होनेपर, वेदोंके उपाकर्म और उत्सर्गके दिन, कल्पादि एवं युगादि तिथियोंमें, आरण्यकका अध्ययन पूरा होनेपर, बाण और सामकी ध्वनि सुनायी देनेपर अनध्याय होता है। इन अनध्यायोंमें कदापि स्वाध्याय नहीं करना चाहिये।

चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमाको सदा ब्रह्मचर्यका पालन करे। परायी स्त्रीसे सम्बन्ध रखना इस लोकमें आयुका विनाश करनेवाला है, अतः पर-स्त्री-संसर्ग दूरसे ही त्याग दे। शत्रुओंका सेवन भी दूरसे ही त्याग देना चाहिये। सत्य बोले, प्रिय बोले, अप्रिय सत्य कभी न बोले, प्रिय भी असत्य हो तो न बोले। यह धर्म वेद-शास्त्रोंद्वारा विहित है *। वाणी, मन और जिह्वाके वेगको रोके, गुप्ताङ्गोंमें जो रोएँ हैं, उनका त्याग करे; क्योंकि उनके स्पर्शसे मनुष्य अशुद्ध हो जाता है। पैरोंके धोवनका जल, मूत्र और पीनेसे बचा हुआ जूठा जल, थूक तथा कफ—इन सबको घरसे दूर फेंकना चाहिये। दिन-रात वैदिक मन्त्रके जपसे, शौच और सदाचारके सेवनसे तथा द्रोहरहित बुद्धिसे मनुष्य अपने पूर्वजन्मका स्मरण कर लेता है। बड़े-बूढ़े पुरुषोंको यत्नपूर्वक प्रणाम करे, उन्हें बैठनेके लिये अपना आसन दे, उनके सामने नतमस्तक होकर रहे और जब वे जाने लगें, तब उनके पीछे-पीछे जाय। वेद, ब्राह्मण, देवता, राजा, साधु, तपस्वी और पतिव्रता स्त्रियोंकी कभी निन्दा न करे। दूसरेके जलाशयमें स्नान करना हो, तो उसमेंसे पाँच ढेला मिट्टी निकाल करके स्नान करे। उत्तम देश और उत्तम कालमें किसी सुपात्रको पाकर उसे श्रद्धा और विधिके साथ जो धन दिया जाता है, वह अक्षय फल देनेवाला होता है।

भूमिदान करनेवाला मण्डलेश्वर होता है, अन्नदाता सर्वत्र सुखी होता है और जल देनेवाला सुन्दर रूप पाता है। भोजन देनेवाला हृष्ट-पुष्ट होता है। दीप देनेवाला निर्मल नेत्रसे युक्त होता है। गोदान देनेवाला सूर्यलोकका भागी होता है। सुवर्ण देनेवाला दीर्घायु और तिल देनेवाला उत्तम प्रजासे युक्त होता है। घर देनेवाला बहुत ऊँचे महलोंका मालिक होता है। वस्त्र देनेवाला चन्द्रलोकमें जाता है। घोड़ा देनेवाला दिव्य शरीरसे युक्त होता है। बैल देनेवाला लक्ष्मीवान् होता है। पालकी देनेवाला सुन्दर स्त्री पाता है। उत्तम पलंग देनेवालेको भी यही फल मिलता है। जो श्रद्धापूर्वक दान देता और श्रद्धापूर्वक ग्रहण करता है, वे दोनों स्वर्गलोकके अधिकारी होते हैं तथा अश्रद्धासे दोनोंका अधःपतन होता है। झूठ बोलनेसे यज्ञका फल नष्ट होता है। अपने तपको लेकर आश्चर्य प्रकट करनेसे तपस्या क्षीण होती है और दानके बिना कीर्तिका नाश होता है। गन्ध, पुष्प, कुश, गौ, दूध, दही, साग, मधु, जल, फल, मूल, ईंधन और अभय-दक्षिणा—ये वस्तुएँ निकृष्ट मनुष्यसे भी प्राप्त हों तो ग्रहण करनी चाहिये।

पतिव्रता स्त्रियोंके बर्ताव, धर्म और नियम तथा श्राद्ध और धर्मारण्यका महत्त्व

व्यासजी कहते हैं—जो मनुष्य धर्मवापीमें पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितर तबतक तृप्त रहते हैं, जबतक कि चौदह इन्द्र बीत नहीं जाते। यहाँ पितरोंकी भी पूजा करनी चाहिये। जो पूर्वज पितर स्वर्गमें गये हों, उन सबके लिये इस मोक्षदायिनी वापीके तटपर जाकर पिण्डदान करना चाहिये। त्रेतामें पाँच दिनोंतक और द्वापरमें तीन दिनोंतक श्राद्ध करनेसे जो फल मिलता है, वही कलियुगमें एकचित्त होकर जो एक पिण्डदान देता है, उसको भी मिल जाता है। कलियुग आनेपर संसारके मनुष्य लोलुप और पर-स्त्री-लम्पट हो जाते हैं एवं स्त्रियाँ अत्यन्त चपल हो जाती हैं। स्त्री, पुरुष और नपुंसक—ये सब दूसरोंसे द्रोह करनेवाले, परनिन्दापरायण तथा सदैव दूसरोंके छिद्र देखनेवाले होते हैं; दूसरोंको उद्वेगमें डालनेवाले, झगड़ालु और दो मित्रोंमें फूट पैदा करनेवाले होते हैं। वे सब भी इस धर्मारण्यमें आकर पवित्र हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनोंने अपने श्रीमुखसे धर्मारण्यकी ऐसी महिमा बतलायी है। महाभाग! इस प्रकार मैंने धर्मारण्यका वर्णन किया। जो इसका पठन करते हैं अथवा इस तीर्थका सेवन करते

* सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मो विधीयते॥

(स्क० पु० मा० ध० मा० ६। ८८)

हैं, वे मन, वाणी और शरीरसे शुद्ध होते हैं। जो परायी स्त्रियोंसे मुँह मोड़ लेते हैं, कहीं भी द्रोह न करके सर्वत्र समबुद्धि रखते हैं, शुद्धाचारी और माता-पिताके भक्त होते हैं, उनमें लोभ और चपलता नहीं होती। वे दानधर्ममें तत्पर, आस्तिक, धर्मज्ञ और स्वामिभक्तिपरायण होते हैं। जो स्त्री इस तीर्थका सेवन करती है, वह पतिव्रता और पतिसेवामें तत्पर रहनेवाली होती है। धर्मारण्यके सेवनसे सब मनुष्य अहिंसक, अतिथिपूजक और सदा स्वधर्मपरायण होते हैं।

शौनकजी बोले—सब धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ महाभाग सूतजी! पतिव्रता स्त्रियोंका कैसा लक्षण होता है, यह बतलाइये।

सूतजी बोले—(गुरुदेव व्यासजीने राजा युधिष्ठिरको यह बात इस प्रकार बतायी थी) जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री होती है, उसका जीवन सफल हो जाता है। उसके अङ्गोंकी छायाके तुल्य उसकी कथा भी पुण्यकारक होती है। पतिव्रता स्त्रियाँ अरुन्धती, सावित्री, अनुसूया, शाण्डिली, सती, लक्ष्मी, शतरूपा, सुनीति, संज्ञा और स्वाहाके समान होती हैं। पतिव्रताओंके धर्म मुनिवर व्यासजीने इस प्रकार बतलाये हैं—पतिव्रता स्त्री पतिके भोजन कर लेनेपर भोजन करती है, उनके खड़े रहनेपर स्वयं भी खड़ी रहती है, पतिके सो जानेपर सोती है और पहले ही जाग उठती है। स्वामी यदि दूसरे देशमें हों, तो वह अपने शरीरका शृङ्गार नहीं करती अथवा यदि किसी कार्यवश पति बाहर जायँ तो वह सब प्रकारके आभूषणोंको उतार देती है। पतिकी आयु बढ़े, इस उद्देश्यसे वह कभी पतिके नामका उच्चारण नहीं करती। वह दूसरे पुरुषका नाम भी कभी नहीं लेती। पति चाहे कितनी ही खरी-खोटी बात क्यों न कह डाले, वह उसे नहीं कोसती। जब स्वामी कहते हैं कि 'यह कार्य करो' तब वह शीघ्र उत्तर देती है, 'जो आज्ञा नाथ! मैंने अभी इस कामको पूरा किया। आप यह समझ लें कि कार्य पूरा हो गया।' पतिके बुलानेपर वह घरका काम-काज छोड़कर तुरंत उनके पास दौड़ी जाती है और पूछती है—'प्राणनाथ! किस लिये दासीको बुलाया है? मुझे सेवाका आदेश देकर अपने कृपाप्रसादकी भागिनी बनाइये।' वह घरके दरवाजेपर देरतक नहीं खड़ी होती। दरवाजेपर सोती-बैठती भी नहीं। जो वस्तु नहीं देने योग्य होती है, उसे वह स्वयं किसीको कभी नहीं देती। पतिव्रता स्त्रीको चाहिये कि स्वामीके लिये पूजनकी सामग्री बिना कहे ही जुटा दे। नित्य-नियमके लिये जल, कुश, पत्र, पुष्प, अक्षत आदि प्रस्तुत करे और पतिकी प्रतीक्षामें खड़ी होकर जिस समय जो वस्तु आवश्यक हो, वह सब शीघ्र बिना किसी उद्वेगके अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक प्रस्तुत करे। स्वामीके भोजनसे बचे हुए प्रसादस्वरूप अन्न और फल आदिको अत्यन्त प्रिय मानकर ग्रहण करे। सामाजिक उत्सवोंका दर्शन तो वह दूरसे ही त्याग दे। पतिकी आज्ञाके बिना वह तीर्थयात्राको और विवाहोत्सवोंको देखने आदिके लिये भी न जाय। पति सुखसे सोये हों, सुखसे बैठे हों या स्वेच्छानुसार किसी कार्य अथवा विचारमें रम रहे हों, तो कार्यमें विघ्न आनेपर भी उन्हें कभी न उठावे। रजस्वला होनेपर वह तीन राततक पतिको अपना मुँह न दिखावे। जबतक स्नान करके शुद्ध न हो जाय, तबतक अपनी आवाज भी पतिके कानोंमें न पड़ने दे। भलीभाँति स्नान कर लेनेपर सबसे पहले पतिके ही मुखका दर्शन करे, दूसरे किसीका नहीं। अथवा पतिदेव उपस्थित न हों तो मन-ही-मन उनका ध्यान करके सूर्यदेवका दर्शन करे। पतिकी आयु बढ़नेकी इच्छा रखनेवाली पतिव्रता स्त्री हल्दी, कुङ्कुम, सिन्दूर, कज्जल, चोली, पान, माङ्गलिक आभूषण, केशोंके शृङ्गार तथा हाथ और कान आदिके आभूषण अपने शरीरसे कभी अलग न करे। पतिसे विद्वेष रखनेवाली स्त्रीसे पतिव्रता नारी कभी बातचीत न करे। कभी अकेली न रहे और नंगी होकर न नहाये। ओखली, मूसल, झाड़ू, सिलवट, चक्की और चौकठ (देहली) पर सती स्त्री कभी न बैठे। पतिके सम्मुख धृष्टता न करे। जहाँ-जहाँ पतिकी रुचि हो, वहाँ-वहाँ उसे भी प्रेम रखना चाहिये। स्त्रियोंके लिये यही सबसे उत्तम व्रत, यही महान् धर्म और यही पूजा है कि वह पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन न करे। नपुंसक, दुर्दशाग्रस्त, रोगी, वृद्ध, सुस्थिर अथवा दुःस्थिर कैसा भी पति क्यों न हो, उस पतिका वह कभी उल्लङ्घन न करे। वह लोहेके बरतनमें भोजन न करे। यदि उसे तीर्थस्नानकी इच्छा हो, तो वह प्रतिदिन पतिका चरणोदक पीये। उसके लिये शङ्कर और भगवान् विष्णुसे भी बढ़कर उसका पति ही है। जो स्त्री पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके व्रत और उपवास आदिका नियम करती है, वह पतिकी आयु हर लेती है और मरनेपर नरकमें जाती है।*

जो नारी पतिके कोई बात कहनेपर क्रोधपूर्वक उसका उत्तर देती है, वह गाँवमें कुतिया और निर्जन वनमें सियारिन होती है। स्त्रियोंके लिये एकमात्र यही सर्वोत्तम नियम बताया

---

* व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लङ्घ्य या चरेत्।
आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति॥
(स्क० पु० ब्रा० ध० मा० ७।३१)

गया है कि वह प्रतिदिन अपने पतिके चरणोंकी पूजा करके ही भोजन करे और दृढ़ निश्चयपूर्वक इस नियमका पालन करे। पतिसे ऊँचे आसनपर न बैठे। दूसरेके घरमें न जाय और कड़वी बातें कभी मुँहसे न निकाले। गुरुजनोंके समीप जोरसे न बोले तथा न किसीको पुकारे ही। जो खोटी बुद्धिवाली स्त्री पतिका साथ छोड़कर एकान्तमें विचरती है, वह वृक्षके खोखलेमें सोनेवाली क्रूर उलूकी होती है। जो दूसरे पुरुषकी ओर कटाक्षसे देखती है, वह ऐंची आँखवाली हो जाती है। जो पतिको छोड़कर अकेली मिठाइयाँ उड़ाती है, वह गाँवकी विष्ठाभोजी सूकरी अथवा चमगादड़ होती है। जो हुङ्कार और त्वङ्कार करके (पतिके प्रति अनादरसूचक वचन कहकर) अप्रिय भाषण करती है, वह गूँगी होती है। जो सौतसे सदा ही ईर्ष्या रखती है, वह खोटे भाग्यवाली होती है। जो पतिकी आँख बचाकर किसी दूसरे पुरुषको निहारती है, वह कानी, विकृत मुखवाली अथवा कुरूपा होती है। पतिको बाहरसे आते देख जो तुरंत उठकर पानी और आसन देती है, पानका बीड़ा खिलाती है, पंखा करती, पाँव दबाती, प्रिय वचन बोलती और पसीना आदि दूर करके प्रियतमको सन्तुष्ट करती है, उसके द्वारा तीनों लोक तृप्त हो जाते हैं। पिता, भाई और पुत्र—ये सब परिमित—नपी-तुली वस्तुएँ प्रदान करते हैं, परंतु पति अपनी पत्नीको अपरिमित दान करता है। इसके दानकी कोई सीमा नहीं होती। ऐसे पतिका कौन ऐसी स्त्री है, जो पूजन न करे ? पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है। अतः स्त्री सब छोड़कर एकमात्र पतिकी पूजा करे।*

कन्याके विवाहकालमें ब्राह्मणलोग यह प्रतिज्ञा करवाते हैं कि तू पतिके जीवन और मरणमें भी उनकी सहचरी होकर रह। जो श्मशानमें जाते हुए स्वामीके शवके पीछे-पीछे घरसे (सती होनेके लिये) प्रसन्नतापूर्वक जाती है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। जैसे साँप पकड़नेवाला मनुष्य साँपको बलपूर्वक बिलसे बाहर निकाल लेता है, उसी प्रकार सती स्त्री अपने पतिको बलपूर्वक यमदूतोंके हाथसे छीनकर स्वर्गमें ले जाती है। पतिव्रता स्त्रीको देखकर यमदूत भाग जाते हैं, सूर्य भी उसके तेजसे सन्तप्त होते हैं और अग्निदेव भी उसके तेजकी आँचसे जलने लगते हैं। पतिव्रताका तेज देखकर सम्पूर्ण तेज काँप उठते हैं। अपने शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतने करोड़ अयुत वर्षोंतक वह पतिके साथ स्वर्गसुख भोगती है और विहार करती है। संसारमें वह माता धन्य है, वह पिता धन्य है और वह पति धन्य है, जिनके घरमें पतिव्रता स्त्री शोभा पाती है। केवल पतिव्रता नारीके पुण्यसे उसके पिता, माता और पति—इन तीनों कुलोंकी तीन-तीन पीढ़ियाँ स्वर्गीय सुख भोगती हैं। दुराचारिणी स्त्रियाँ अपना शील भङ्ग करनेके कारण पिता-माता और पति तीनों कुलोंको नरकमें गिराती हैं और स्वयं भी इहलोक तथा परलोकमें दुःख भोगती हैं। पतिव्रताका चरण जहाँ-जहाँ धरतीका स्पर्श करता है, वह-वह स्थान तीर्थभूमिकी भाँति मान्य है। वहाँ भूमिपर कोई भार नहीं रहता। वह स्थान परम पावन हो जाता है। सूर्य भी डरते-डरते अपनी किरणोंसे पतिव्रताका स्पर्श करते हैं। चन्द्रमा अपनेको पवित्र करनेके लिये ही उसका स्पर्श करते हैं। जल सदा पतिव्रता देवीके चरणस्पर्शकी अभिलाषा रखता है। वह जानता है कि पतिव्रता गायत्रीदेवीके द्वारा जो हमारे पापका नाश होता है, उसमें उस देवीका पातिव्रत्य ही कारण है। पातिव्रत्यके बलसे ही वह हमारे पापोंका नाश करती है। क्या घर-घरमें अपने रूप और लावण्यपर गर्व करनेवाली नारियाँ नहीं हैं ? परंतु पतिव्रता स्त्री भगवान् विश्वेश्वरकी भक्तिसे ही प्राप्त होती है। गृहस्थ आश्रमका मूल भार्या है। सुखका मूल कारण भार्या है, धर्मफलकी प्राप्ति तथा सन्तानवृद्धिका कारण भी भार्या ही है। भार्यासे इहलोक और परलोक दोनोंपर विजय प्राप्त होती है। घरमें भार्याके होनेसे देवताओं, पितरों और अतिथियोंकी तृप्ति होती है। वास्तवमें गृहस्थ उसीको समझना चाहिये, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री है। जैसे गङ्गामें स्नान करनेसे शरीर पवित्र होता है, उसी प्रकार पतिव्रताका दर्शन करके सम्पूर्ण गृह पवित्र हो जाता है।

यदि विधवा स्त्री पलंगपर सोती है, तो वह पतिको नरकमें गिरा देती है; अतः पतिके सुखकी इच्छासे विधवा स्त्रीको धरती-पर ही शयन करना चाहिये। विधवा स्त्रीको कभी अपने अङ्गोंमें उबटन नहीं लगाना चाहिये तथा उसे कभी सुगन्धित वस्तुका उपयोग भी नहीं करना चाहिये। प्रतिदिन तिल और कुशयुक्त जलसे पतिके लिये तर्पण करना चाहिये तथा पतिके पिता और पितामहके भी नाम-गोत्र आदिका उच्चारण

* मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥
भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत्॥
(स्क० पु० ब्रा० ध० मा० ७। ४७-४८)

करते हुए उनके लिये जलकी अञ्जलि देनी चाहिये। पति-बुद्धिसे भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। वह विष्णुरूप-धारी पति-परमेश्वरका ही ध्यान करे। संसारमें जो-जो वस्तु पतिको प्रिय रही हो, वह पतिको तृप्त करनेकी इच्छासे गुणवान् विद्वान्‌को देनी चाहिये। विधवा स्त्री वैशाख और कार्तिक मासमें विशेष नियमोंका पालन करे। स्नान, दान, तीर्थयात्रा और पुराणश्रवण बारंबार करती रहे।

मनुष्यको चाहिये कि वह धर्मकूपपर पितरोंके लिये विधिपूर्वक श्राद्ध करे। श्राद्धमें मनुष्य जो भूमिपर अन्न बिखेरते हैं, उससे पिशाच योनिको प्राप्त हुए पितर तृप्त होते हैं। जिनके स्नानवस्त्रसे पृथ्वीपर जल गिरता है, उनके उस जलसे स्थावरयोनिको प्राप्त हुए पितर तृप्त होते हैं। श्राद्ध-कर्ता मनुष्योंके हाथसे जो यवान्नकी कणिका पृथ्वीपर गिरती है, उससे देवभावको प्राप्त हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। तथा पिण्डोंके उठानेपर जो यवान्नकी कणिका गिरती है, उससे पातालमें गये हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। जो वर्ण और आश्रमके आचार एवं कर्मका लोप करनेवाले एवं संस्कारहीन होकर मरे हैं, वे श्राद्धमें सम्मार्जनके लिये जो जलका छींटा दिया जाता है, उससे तृप्त होते हैं। ब्राह्मण-लोग भोजन करके जब मुँह-हाथ धोते और आचमन करते हैं, उस समय जो जल गिरता है, उससे अन्यान्य पितरोंकी तृप्ति होती है। इसी प्रकार यजमानके हाथसे अथवा उन श्राद्ध-सम्बन्धी ब्राह्मणोंके हाथसे जो शुद्ध या स्पर्शरहित जल और अन्न गिराया जाता है, उससे उन पितरोंकी तृप्ति होती है, जो नरकमें पड़े हैं अथवा दूसरी किसी योनिमें चले गये हैं। मनुष्य अन्यायोपार्जित द्रव्यसे जो श्राद्ध करते हैं, उससे चाण्डाल आदि योनिके पितरोंकी तृप्ति होती है। वत्स! इस प्रकार श्राद्धसे अनेकानेक बान्धवोंकी तृप्ति होती है। यदि अन्नद्वारा श्राद्ध करनेकी शक्ति न हो तो केवल सागोंसे भी उसका अनुष्ठान हो सकता है। अतः मनुष्य भक्तिपूर्वक शाकसे भी श्राद्ध करे। श्राद्ध करनेवाले मनुष्यका कुल कभी दुःखमें नहीं पड़ता।

यदि धर्मारण्यमें सब पाप-ही-पाप किया गया तो निश्चय ही पाप भी बढ़ता है और उसे करनेवाला घोर नरकमें पकाया जाता है। जैसे पुण्य, वैसे पाप; धर्मारण्यमें किया हुआ सब शुभाशुभ कर्म अवश्य वृद्धिको प्राप्त होता है।

धर्मारण्यवासी ब्राह्मणोंके गोत्र तथा उनकी रक्षाके लिये कामधेनुद्वारा वैश्योंकी उत्पत्ति

युधिष्ठिरने पूछा—धर्मारण्यमें जिन श्रेष्ठ आचार-व्यवहारवाले ब्राह्मणोंने निवास किया, वे किस कुलमें उत्पन्न हुए थे?

व्यासजी बोले—नृपश्रेष्ठ! उन ऊर्ध्वरेता ऋषियों एवं महात्मा ब्राह्मणोंकी शाखा, प्रशाखा, पुत्र-पौत्र आदिकी संख्या बहुत हुई। मुख्य-मुख्य चौबीस गोत्रोंके नाम तुम्हें बतलाता हूँ—भारद्वाज, वत्स (प्रथम), कौशिक, कुश, शाण्डिल्य, काश्यप, गौतम, छान्दन, जातूकर्ण्य, वत्स (द्वितीय), वशिष्ठ, धारण, आत्रेय, भाण्डिल, लौकिक, कृष्णायन, उपमन्यु, गार्ग्य, मुद्गल, मौषक, पुण्यासन, पराशर, कौण्डिन्य तथा गाङ्गासन। इन गोत्रोंमें उत्पन्न ब्राह्मण वेदोंके पारङ्गत विद्वान्, नाना प्रकारके यज्ञानुष्ठानमें तत्पर, द्विजपूजन कर्ममें संलग्न, सत्कर्मपरायण तथा गुणवान् हुए। धर्मारण्यनिवासी सब ब्राह्मण सदाचारी, अत्यन्त दक्ष, वेद-शास्त्रपरायण, यज्ञकर्ता तथा सत्य और शौचाचारमें प्रवृत्त रहनेवाले हैं। राजा युधिष्ठिर! पहले वहाँके ब्राह्मणोंको यक्ष, राक्षस और पिशाच आदि व्याकुल किये रहते थे। तब उन ब्राह्मणोंने देवताओंसे कहा—'देवगण! यक्ष और राक्षस आदिसे हम सताये जाते हैं, अतः उनके भयसे हमलोग अब इस उत्तम स्थान-को त्याग देंगे।' यह सुनकर देवताओंने लोकहितकी कामना-से ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये प्रत्येक गोत्रमें एक-एक योगिनीकी स्थापना की। जिस गोत्रकी रक्षा और पालनमें जो शक्ति समर्थ हुई, वह उस गोत्रकी कुलदेवी मानी गयी। श्रीमाता, तारणीदेवी, गोत्रपा, आशापूरी, इच्छार्ति-नाशिनी, पिप्पली, विकारवशा, जगन्माता, महामाता, सिद्धा, भट्टारिका, कदम्बा, चिकरा, मीठा, सुपर्णा, वसुजा, महादेवी, मातङ्गी, वाणी, मुकुटेश्वरी, भद्री, महाशक्ति संहारी, महाबला और महादेवी चामुण्डा। ये गोत्रोंकी माताएँ हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने वहाँ रक्षाके लिये उन गोत्रमातृकाओंकी स्थापना की है। वहाँके स्वधर्मपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मण उन सब योगिनियोंकी पूजा करने लगे। उन्हीं योगिनियोंद्वारा वे अपने-अपने समयमें सुरक्षित हुए। सब ब्राह्मण स्वस्थ एवं पुत्र-पौत्रोंसे संयुक्त हो गये।

राजन्! सौ वर्ष बीतनेके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु और

शिव धर्मारण्यको देखनेके लिये प्रातःकाल सूर्योदयके समय उत्तम विमानपर बैठकर आये। उस समय ब्राह्मणलोग समिधा, पुष्प और कुशा लानेके लिये आश्रम छोड़कर सब दिशाओंमें चले गये थे। आश्रम सूना देखकर महादेवजीने भगवान्‌से कहा—'प्रभो! यहाँके ब्राह्मण बड़ा कष्ट पाते हैं, अतः इनकी सेवाके लिये कुछ सेवकोंकी व्यवस्था करूँ, ऐसा मेरा विचार हो रहा है।' भगवान् शङ्करका यह वचन सुनकर श्रीविष्णुने कहा—'ठीक है, ठीक है।' फिर वे ब्रह्माजीसे बोले—'ब्रह्मन्! आप यहाँके ब्राह्मणोंकी सेवाके लिये कोई उपाय कीजिये।' भगवान् विष्णुका यह आदेश सुनकर ब्रह्माजीने कामधेनुका स्मरण किया। स्मरण करनेसे कामधेनु उसी क्षण वहाँ आ गयी।

तब ब्रह्माजीने कामधेनुसे कहा—मातः! इन ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येकके लिये दो-दो शुद्ध हृदयवाले अनुचरोंकी व्यवस्था करो। 'बहुत अच्छा' कहकर उस महाधेनुने खुरसे पृथ्वीको खोदा और हुङ्कार किया। इससे छत्तीस हजार शिखा-सूत्रधारी मनुष्य प्रकट हुए। वे सभी महाबली वैश्य

थे। उन्होंने यज्ञोपवीत धारण कर रक्खा था। वे सब शास्त्रोंमें चतुर, ब्राह्मणभक्त, ब्राह्मणोंका हित चाहनेवाले, तपस्वी, उत्तम आचारवाले और धार्मिक थे। उस समय एक-एक ब्राह्मणके लिये दो-दो अनुचर दिये गये। राजन्! ब्राह्मणका पहले जो गोत्र बताया गया है, वही उनके अनुचरका भी हुआ। तदनन्तर ब्रह्माजीने उनके हितके लिये कहा—'तुम सब लोग इन ब्राह्मणोंका वचन मानो और इन्हें जिस-जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, उसे ला दिया करो। प्रतिदिन समिधा, कुशा और फूल आदि ले आओ। सदा इनकी आज्ञाके अनुसार चलो, कभी इनका अनादर न करो। जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, उपनयन आदि संस्कार तथा जो व्रत, दान, उपवास आदि कर्म प्राप्त हों, उन्हें इन ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार ही करना चाहिये। इनकी आज्ञा लिये बिना जो दर्शयाग, श्राद्धकार्य या और कोई कर्म करेगा, वह दरिद्रता, पुत्रशोक एवं कीर्तिनाशको प्राप्त होगा।' तब उन अनुचरोंने 'बहुत अच्छा' कहकर देवताओंकी आज्ञा स्वीकार की। तदनन्तर वे इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवता कामधेनुकी स्तुति करने लगे—'अनघे! तुम सब देवताओंकी माता और सब यज्ञोंका कारण हो। सब तीर्थोंमें तुम्हीं उत्तम तीर्थ हो। तुम्हें सदा नमस्कार है। तुम्हारे ललाटमें सूर्य, चन्द्रमा, अरुण तथा भगवान् शङ्कर विराजमान हैं। हुङ्कारमें सरस्वती वास करती हैं, गलेके कंबलमें नागोंका निवास है, खुरपृष्ठमें गन्धर्व और चारों वेद हैं तथा तुम्हारे मुखके अग्रभागमें समस्त चराचर तीर्थ हैं।' इस प्रकार भाँति-भाँतिके वचनोंसे प्रसन्न की हुई कामधेनु स्वर्गको चली गयी।

उन वैश्योंके विवाहके लिये भगवान् शङ्कर और यमने गन्धर्वोंकी कन्याओंको लाकर उनकी पत्नीके रूपमें स्थापित किया। 'विश्वावसु' नामसे प्रसिद्ध जो गन्धर्वोंके राजा हैं, उनके यहाँ साठ हजार कन्याएँ थीं। वे सभी रूप, यौवन और उदारतासे सम्पन्न थीं। उन्हींको वेदोक्त विधिसे देवताके समीप उन वैश्योंके लिये अर्पण किया। उस समय उन वैश्योंने गन्धर्वोंको, पूर्वज देवताओंको, सूर्य और चन्द्रमाको तथा यमराज और मृत्युको भी आज्यभाग दिया। विधिपूर्वक आज्यभाग अर्पण करनेके पश्चात् ही उन वैश्योंने उन कन्याओंका वरण (पाणिग्रहण) किया। तबसे लेकर आजतक गान्धर्व विवाह उपस्थित होनेपर देवता आज्यभाग ग्रहण करते हैं। जिन छत्तीस हजार धेनुकुमारोंकी चर्चा की गयी है, उनके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या लाखोंतक पहुँच गयी। वे सब ब्राह्मणोंके सेवक हुए। तत्पश्चात् देवताओंके चले जानेपर सब ब्राह्मण इस स्थानपर निवास करने लगे। राजन्! तबसे वहाँके ब्राह्मण निर्भय हो पुत्र-पौत्रोंके साथ रहते और वेदोंका पाठ करते हैं। वे वेदज्ञ विद्वान् कभी शास्त्रोंका अर्थ सुनाते, कभी

कोई भगवान् विष्णुका जप करते, कोई शिवजीके गुण गाते, कोई ब्रह्माजीके नाम लेते और कोई यमसूक्तका जप करते हैं। कितने ही याजक बनकर यज्ञ एवं अग्निहोत्रकी उपासना करते हैं। वे स्वाहाकार, स्वधाकार और वषट्कारके शब्दोंसे चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको परिपूर्ण करते रहते हैं। वहाँके वैश्य भी बड़े दक्ष होते हैं और सदा ब्राह्मणोंकी सेवाके लिये उत्कण्ठित रहते हैं। वे धर्मारण्यके दिव्य प्रदेशमें सुस्थिर होकर बसते हैं और ब्राह्मणोंके लिये अन्न, पान, समिधा, कुश तथा फल आदिका प्रबन्ध करते हैं। पुष्पोपहारका संग्रह करना, स्नान किये हुए वस्त्रको धोना, उपले आदि बनाना, झाड़ने-बुहारनेका काम करना तथा कूटना और पीसना आदि कार्य उन वैश्योंकी स्त्रियाँ करती थीं। ब्रह्मा, विष्णु और शिवके वचनसे सब लोग उन ब्राह्मणोंकी सेवा करते थे। तबसे सब ब्राह्मण स्वस्थ हो, हर्षपूर्वक दिन-रात ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिकी उपासना करने लगे।

लोलजिह्वाक्षका वध, गणेशजीकी उत्पत्ति और देवताओंद्वारा उनका स्तवन

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् कुछ काल बीतनेपर जब सत्ययुगकी समाप्ति हुई, तब त्रेताके प्रारम्भमें 'लोलजिह्वाक्ष' नामका एक राक्षस हुआ, जो समस्त राक्षसोंका राजा था। उसने ब्राह्मणोंसे सेवित उस परम पवित्र एवं सुन्दर धर्मारण्यमें द्वेषवश आग लगा दी। अपने नगरको जलते देख वे श्रेष्ठ ब्राह्मण भाग खड़े हुए। तब श्रीमाता आदि देवियाँ क्रोधमें भरकर उस राक्षसको फटकारती हुई उसपर प्रहार करने लगीं। राक्षसने उन देवियोंको देखकर भयङ्कर सिंहनाद किया। उस समय धर्मारण्यमें बड़ा भारी कोलाहल मच गया। उसे सुनकर इन्द्रने नलकूबरको भेजा। नलकूबर वहाँ गये और श्रीमाता तथा लोलजिह्वाक्षमें जो महान् युद्ध चल रहा था, उसको उन्होंने देखा। जैसा देखा, वैसा ही इन्द्रके आगे निवेदन किया। यह समाचार सुनकर भगवान् विष्णु सुदर्शन चक्र लेकर सत्यलोकसे पृथ्वीपर आये। धर्मारण्यमें पहुँचकर उन्होंने चक्र चलाया। तब लोलजिह्वाक्ष राक्षस मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और प्राण त्यागकर परम धामको चला गया। देवता और गन्धर्वोंने हर्षमें भरकर जगदीश्वर भगवान् विष्णुका स्तवन किया। उस नगरको उजड़ा हुआ देख भगवान् विष्णुने कहा—'ऋषियोंके आश्रममें निवास करनेवाले वे सब ब्राह्मण कहाँ हैं?' देवता और गन्धर्वोंने इधर-उधर भगे हुए ब्राह्मणोंको खोज निकाला तथा इस प्रकार कहा—'ब्राह्मणो! उस अधम राक्षसको भगवान् वासुदेवने अपने चक्रसे काट डाला है।' यह सुनकर ब्राह्मणोंके नेत्र हर्षसे खिल उठे और उन सबने अपने-अपने स्थानमें प्रवेश किया तथा भगवान् श्रीलक्ष्मीपतिसे कहा—'प्रभो! आपने सत्यलोकसे आकर ब्राह्मणोंके हितके लिये इस मन्दिररूपी नगरकी पुनः स्थापना की है। इसलिये संसारमें यह सत्यमन्दिरके नामसे विख्यात होगा। सत्ययुगमें यह धर्मारण्य था, त्रेतामें इसका नाम सत्यमन्दिर होगा।' भगवान् विष्णुने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। तदनन्तर वे सब ब्राह्मण अपने पुत्र-पौत्र, पत्नी और सेवकोंके साथ पूर्ववत् निवास करने लगे।

उस नगरके पूर्वभागमें धर्मेश्वर, दक्षिणमें गणेश, पश्चिममें सूर्यदेव और उत्तरमें साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माजीका स्थान है।

युधिष्ठिरजीने पूछा—महाभाग! गणेशजीको किसने स्थापित किया?

व्यासजी बोले—महाराज! पूर्वकालमें सब देवताओंने धर्मारण्यमें दुर्गाजीके पुत्र गणेशजीको स्थापित किया था। अब मैं गणेशजीकी उत्पत्तिका कारण बतलाता हूँ। एक समय पार्वतीजीने अपने अङ्गोंमें उबटन लगाया और उससे जो मैल निकली, उसे हाथपर रखकर उसकी एक सुन्दर-स्वरूप प्रतिमा बना दी। फिर उसमें उन्होंने जीवका भी सञ्चार कर दिया। तब वह बालक उनके आगे उठकर खड़ा हो गया और मातासे बोला—'आज्ञा दीजिये, मैं कौन-सा कार्य करूँ?'

पार्वतीजीने कहा—मैं जबतक स्नान करूँ, तबतक तुम मेरे द्वारपर खड़े रहो। महादेवीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर गणेशजी हथियार ले द्वारपर खड़े हो गये। इसी समय महादेवजी आये और उन्होंने घरके भीतर प्रवेश करनेका विचार किया। किंतु द्वारपर खड़े हुए बालकने उन्हें भीतर नहीं जाने दिया। इससे महादेवजी कुपित हो उठे और दोनों पिता-पुत्रमें परस्पर युद्ध होने लगा। महादेवजीने त्रिशूलसे उस बालकका मस्तक काट डाला। अपने पुत्रको मरकर गिरा हुआ देख पार्वतीजी फूट-फूट-

कर रोने लगीं। पार्वतीजीको दुखी देखकर भगवान् शङ्करको बड़ी चिन्ता हुई। इतनेमें ही उनकी दृष्टि वहाँ आये हुए गजासुरपर पड़ी। उस महादैत्यको देखकर भगवान् शङ्करने उसे मार डाला और उसका मस्तक लेकर पार्वतीके बनाये हुए बालकके धड़से जोड़ दिया। तब वह बालक उठकर खड़ा हो गया। शिवजीने उसका नाम गजानन रक्खा। फिर सब देवताओं और मुनियोंने मिलकर गणेशजीका स्तवन किया।

देवता बोले—भगवन्! आपको नमस्कार है। आप देवताओंके ईश्वर तथा गणोंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। गजानन! आप महादेवजीके भी अधिदेवता हैं, आपको नमस्कार है। गणाध्यक्ष! आप भक्तिप्रिय देवता हैं, आपको नमस्कार है।

इन शुभ स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करनेपर गणोंके स्वामी गणेशजी अत्यन्त प्रसन्न होकर इस प्रकार बोले—देवताओ! मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूँ, तुम कोई मनोवाञ्छित वस्तु माँगो, मैं तुम्हें देता हूँ।

देवता बोले—महाभाग! आप यहीं रहकर हमारा कार्य-साधन करें। धर्मारण्यमें रहनेवाले ब्राह्मण, वैश्यजन, धार्मिक पुरुष तथा वर्णाश्रमसे भिन्न मनुष्योंका भी आप सदा संरक्षण करें। आपके प्रसादसे यहाँके ब्राह्मण और महाबली वैश्य सदा धन और सुखसे सम्पन्न हों। जबतक सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी रहे, तबतक आप यहीं रहकर सबकी रक्षा करते रहें।

गणेशजीने 'एवमस्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। तब देवताओंने हर्षमें भरकर गणेशजीका पूजन किया। संसारके दूसरे लोगोंने भी विघ्ननिवारणके लिये उनकी पूजा की। इसीलिये गणेशजी विवाह, उत्सव और यज्ञमें पहले पूजित होते हैं। धर्मारण्यमें रहनेवाले लोगोंपर वे सर्वदा प्रसन्न रहते हैं।

संज्ञाकी तपस्या, अश्विनीकुमारोंका जन्म तथा वकुलादित्यकी स्थापना

व्यासजी कहते हैं—महाभाग युधिष्ठिर! भगवान् शङ्करके पश्चिम भागमें कश्यपनन्दन भगवान् सूर्यकी स्थापना की गयी है। वह स्थान रविक्षेत्र कहलाता है। वहीं रूप और यौवनसे सम्पन्न नासत्य नामसे प्रसिद्ध महादिव्य दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए, जो देवलोकके वैद्योंके रूपमें प्रसिद्ध हैं। विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा अंशुमाली भगवान् सूर्यको व्याही गयी थी। संज्ञाके यमराज और यमुना—ये दो सन्तान उत्पन्न हुईं। यमुना महानदीके रूपमें प्रसिद्ध हुईं। संज्ञाको भगवान् सूर्यका तेज सहन नहीं होता था। अतः उसने अपनी छायाका ही आवाहन करके उससे कहा—'तुम मेरी ही भाँति भगवान् सूर्यकी सेवामें उपस्थित रहो। मेरे पुत्रोंसे और मेरे पतिदेव सूर्यदेवसे सदा उत्तम वर्ताव करना।' ऐसा कहकर संज्ञादेवी पिताके घर चली गयी। वहाँ उसने अपने पिता विश्वकर्माका दर्शन किया और विश्वकर्माने भी बड़े आदरसे उन्हें रक्खा। कुछ समय-तक वे पिताके घरमें ही टिकी रहीं। तब उनके धर्मज्ञ पिता विश्वकर्माने अपनी पुत्रीसे प्रेमपूर्वक कहा—'बेटी! यहाँ तुम्हारे रहनेसे धर्मका लोप हो रहा है, क्योंकि अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ स्त्रियोंका अधिक कालतक रहना उनके लिये यशस्कर नहीं होता। स्त्री पतिके घरमें रहे, तभी उसकी शोभा है। इसलिये तुम पतिके घर जाओ।' पिताके ऐसा कहनेपर संज्ञाने 'बहुत अच्छा' कहकर उनका आदर किया और वहाँसे निकलकर उत्तर कुरुको प्रस्थान किया। वे सूर्यके तेजसे भयभीत थीं, अतः घोड़ीका रूप धारण करके वहाँ तपस्या करने लगीं। इधर भगवान् सूर्यने अपनी दूसरी पत्नीको संज्ञा ही समझकर उसके गर्भसे दो पुत्र और एक सुन्दर कन्याको जन्म दिया। छाया अपनी सन्तानों-के प्रति जैसा प्रेमपूर्ण वर्ताव करती थी, वैसा संज्ञाकी कन्या एवं पुत्रोंके साथ नहीं करती थी। लाड़-प्यार तथा भोजन आदिमें वह प्रतिदिन भेदभाव करती थी। यमुनाने तो उसके इस वर्तावको सह लिया किंतु यमराजसे नहीं सहा गया। उन्होंने पिताके समीप जाकर प्रणामपूर्वक कहा—'तात! यह मेरी माता नहीं है।' यह सुनकर भगवान् सूर्यने छाया—संज्ञाको बुलाकर पूछा—'देवी! संज्ञा कहाँ चली गयीं?' उनके बार-बार पूछनेपर भी जब उसने नहीं बताया, तब वे क्रोधमें आकर शाप देनेको उद्यत हो गये। इससे भयभीत हो उसने सब वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों बता दिया। यथार्थ बात ज्ञात होनेपर सूर्यदेव विश्वकर्माके घर गये और विश्वकर्मासे उन्होंने संज्ञाके विषयमें पूछा। वे बोले—'देव! संज्ञा आपके भेजनेसे मेरे घर आयी अवश्य थी, किंतु मैंने उसे

पुनः वहीं भेज दिया।' यह सुनकर भगवान् सूर्यने समाधिमें स्थित होकर देखा कि संज्ञा घोड़ीका रूप धारण करके उत्तर कुरुमें तपस्या कर रही हैं। उन्होंने ध्यानके द्वारा यह भी समझ लिया कि तेजसे असह्य होनेके कारण वह मेरी ओर देखनेमें समर्थ न हो सकी। आज पचास वर्ष व्यतीत हो गये। उसने पृथ्वीपर जाकर तपस्या की है। तब भगवान् सूर्य शीघ्रतापूर्वक संज्ञाके पास गये। उस समय वे धर्मारण्यपुरमें आकर तपस्यामें संलग्न थीं। भगवान् सूर्यको आया हुआ देख सूर्यपत्नी संज्ञा पुनः घोड़ीके रूपमें स्थित हो गयीं। तब भगवान् सूर्य भी अश्व हो गये। फिर उन दोनोंका मिलन हुआ। इससे वे दोनों अश्विनीकुमार जुड़वें प्रकट हुए। उनके दाहिने खुरसे पृथ्वी विदीर्ण हो जानेके कारण वहाँ एक कुण्ड बन गया और उसमें जल प्रकट हो गया। इसी प्रकार पिछले चरणोंसे भी एक दूसरा कुण्ड बन गया। उसमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसका शरीर कोढ़ आदि रोगोंसे पीड़ित नहीं होता। राजन्! इस प्रकार तुमसे अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त बतलाया। देवताओंने वहाँ भगवान् सूर्यको वकुलवनके स्वामीके रूपमें स्थापित किया। साथ ही वहाँ संज्ञारानी और दोनों अश्विनीकुमारोंकी भी स्थापना की गयी। जो मनुष्य इन्द्रियोंको संयममें रखकर श्रद्धापूर्वक सूर्यकुण्डमें स्नान करता है, वह महानरकमें पड़े हुए पितरोंका भी उद्धार कर देता है। जो श्रद्धापूर्वक देवताओं और पितरोंका तर्पण करके उस कुण्डका जल पीता है, उसका पुण्य कोटिगुना होता है। रविवारयुक्त सप्तमीमें तथा चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय जो सूर्यकुण्डमें स्नान करते हैं, वे फिर गर्भमें नहीं जाते। संक्रान्ति, व्यतीपात और वैधृति योगमें, पर्वके अवसरपर, शुक्ल और कृष्ण पक्षकी पूर्णिमा, अमावास्या एवं चतुर्दशीको जो सूर्यकु में स्नान करता है, उसे कोटि यज्ञोंका फल प्राप्त होता जो मनुष्य एकचित्त होकर वकुलादित्यका पूजन क है, वह जबतक सूर्यदेव तपते हैं तबतक परम धाममें नि करता है। उसे कभी सर्पका भय नहीं होता। भूत प्रेत आदिकी बाधा भी नहीं प्राप्त होती। जो मनुष्य ग्रस्त हो, वह सूर्यकुण्डमें छः महीनेतक स्नान करनेसे रोगोंसे मुक्त हो जाता है। युधिष्ठिर! जो मनुष्य इस धर्मा क्षेत्रमें कन्यादान करता है, वह उस विवाहयज्ञसे पवित्र होकर ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। इस क्षेत्रमें गो शय्यादान, मूँगा, घोड़ा, दासी, भैंस, तिल एवं सु दान करना चाहिये। रविवारयुक्त सप्तमी तिथिमें वकुलादित्यका स्मरण करता है, उसे ज्वर आदि रोगों, श तथा व्याधियोंसे भय नहीं प्राप्त होता।

युधिष्ठिरजीने पूछा—मुने! वहाँ भगवान् र वकुलार्क अथवा वकुलादित्य नाम कैसे पड़ा?

व्यासजी बोले—राजेन्द्र! जब संज्ञारानीने भ सूर्यकी प्राप्ति तथा उनके तेजकी शान्तिके लिये एकचित्त होकर वकुल वृक्षके नीचे तपस्या की, उस समय उस वृक्षके नीचे आकर भगवान् सूर्य बहुत शान्त हो गये। तभी रानीने दो परम मनोहर दिव्यरूपधारी पुत्र उत्पन्न किये। इसीसे भगवान् सूर्यका नाम वकुलार्क हुआ। जो वहाँ स्नान करता है, उसे कोई व्याधि पीड़ा नहीं देती तथा वह धर्म, अर्थ एवं कामको प्राप्त करता है। वहाँ छः महीनेमें मनुष्यको सिद्धि प्राप्त होती है और वह अन्तमें मोक्ष पाता है।

इन्द्रेश्वरकी स्थापना और उनकी महिमा, देवमज्जनक तड़ागका माहात्म्य तथा लोहासुरके अत्याचारसे धर्मारण्यकी जनताका पलायन

व्यासजी कहते हैं—भारत! धर्मारण्यपुरसे उत्तर दिशामें देवराज इन्द्रने भगवान् शङ्करको प्रसन्न करनेके लिये तीन सौ वर्षोंतक अत्यन्त दुष्कर तप किया। वृत्रासुरके वधसे जो पाप लगा था, उसको दूर करनेके लिये ही इन्द्र जितेन्द्रिय एवं एकाग्रचित्त होकर भगवान् शङ्करकी आराधनामें लगे थे। उस समय भगवान् चन्द्रशेखर उनकी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हुए और उनके समीप आकर बोले—'देवराज! तुम जो कुछ माँगते हो, उसे मैं दूँगा।'

इन्द्रने कहा—देवेश्वर! कृपासिन्धु महेश्वर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो वृत्रासुरके मरनेसे जो पाप लगा है, उसका नाश कीजिये।

भगवान् शिवने कहा—देवराज! धर्मारण्यमें

ब्रह्महत्या किसीको पीड़ा नहीं दे सकती । गोहत्या, द्विजहत्या, बालहत्या और स्त्रीहत्या भी मेरे, ब्रह्माजीके, भगवान् विष्णुके तथा यमराजके वचनसे कभी यहाँ प्रवेश नहीं करती । अतः तुम इस तीर्थमें प्रवेश करके स्नान करो ।

इन्द्रने कहा—दयासिन्धो ! महेश्वर ! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तो मेरे नामसे यहाँ स्थापित हों ।

तब महादेवजीने 'तथास्तु' कहकर इन्द्रकी प्रार्थना स्वीकार की और लोगोंके हितकी इच्छासे सबके पापोंकी शुद्धिके लिये धर्मारण्यमें इन्द्रेश्वर नामसे वे विराजमान हुए । जो मनुष्य सदा भक्तिपूर्वक पुष्प और धूप आदिसे भगवान् इन्द्रेश्वरका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । विशेषतः माघ मासमें अष्टमी और चतुर्दशी तिथिको सब पापोंकी शुद्धिके लिये भगवान् शिवकी पूजा करनेवाला पुरुष शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है । जो चतुर्दशी तिथिमें साङ्ग रुद्र-जप करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त हो परम पदको प्राप्त होता है । जो कुष्ठ आदि महारोगोंसे ग्रस्त होते हैं, वे स्नानमात्रसे शुद्ध हो दिव्य देह धारण कर लेते हैं । जो स्नान करके देवाधिदेव इन्द्रेश्वरका पूजन करता है, वह ज्वरके बन्धनसे छूट जाता है । जो वन्ध्या, दुर्भाग्यवती, काकवन्ध्या, जिसकी सन्तान मर जाती हो, वह, मृतवत्सा तथा महादुष्टा नारी कुण्डमें भगवान् शिवके आगे स्नान करके एकचित्तसे उनकी पूजा करती है, वह स्नानमात्रसे ही शुद्ध हो जाती है ।

इस प्रकार इन्द्रको बहुतसे वरदान देकर पिनाकधारी भगवान् शङ्कर देवता और असुरोंसे सेवित हो अपने धामको चले गये । तत्पश्चात् महातेजस्वी इन्द्र भी अपनी पुरीको गये । इन्द्रपुत्र जयन्तने भी वहाँ उत्तम शिवलिङ्गकी स्थापना की है । उस लिङ्गमें स्थित भगवान् शिव जयन्तके द्वारा अपनी स्तुति सुनकर सदा उनपर सन्तुष्ट रहते हैं ।

राजन्! वहाँ 'धराक्षेत्र' नामक तीर्थ है, जिसमें 'देवमज्जनक' नामक उत्तम तड़ाग शोभा पाता है । आश्विन कृष्णा चतुर्दशीके दिन उसमें स्नान और जलपान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । विधिपूर्वक उपवास करके देवेश्वर भगवान् शिवकी पूजा करनेसे शाकिनी, डाकिनी, वेताल, पितर, ग्रह और नक्षत्र पीड़ा नहीं देते । वहाँ साङ्ग रुद्र-जप करनेसे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है और अनेक प्रकारके रोग नष्ट हो जाते हैं । यह देवमज्जनक तड़ागका शुभ माहात्म्य बतलाया गया । इस प्रसंगके स्मरण और कीर्तनसे कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं । जो इस माहात्म्यको सुनता है, वह सब प्रकारके सुखसे सम्पन्न होता है ।

त्रेतायुगकी बात है । 'लोहासुर' नामक एक मदोन्मत्त राक्षस ब्राह्मणका वेष धारण करके सदा धर्मारण्य क्षेत्रमें आता और वहाँके धर्मज्ञ ब्राह्मणोंको सताया करता था । वह उस क्षेत्रके शूद्रों और वैश्योंको डंडोंसे पीटता था । यज्ञ आदिको विध्वंस करता और होमकी सामग्री खा जाता था । वहाँकी वेदी और बावली आदिको देखकर वह मोहवश उन सबको अपवित्र कर दिया करता था । उस स्थानमें जो-जो पुण्यभूमि थी, उसे लोहासुरने मल-मूत्र डालकर गंदा कर दिया । उसके डरसे व्याकुल हो सब ब्राह्मण परिवारसहित सब दिशाओंमें भाग गये । वैश्य भी भयभीत होकर ब्राह्मणोंके ही पीछे चले गये । महान् भयसे व्याकुल हो दूर जाकर सब शूद्रों और ब्राह्मणोंके साथ मिलकर वैश्योंने कुछ विचार किया और सब एक मत होकर परम पवित्र 'मुक्तारण्य' नामक निर्जन वनमें चले गये । वहाँ थोड़ी ही दूरपर उन्होंने निवास बनाया और उस गाँवको 'वजिङ्' नामसे बसाया । वह गाँव संसारमें 'शम्भुग्राम'के नामसे विख्यात हुआ । तदनन्तर भयसे भागे हुए कुछ वैश्योंने थोड़ी दूर जाकर 'मण्डल' नामसे एक गाँव बसाया । कुछ वैश्य ब्राह्मणोंके यूथसे अलग होकर किसी दूसरे मार्गमें जा पहुँचे और धर्मारण्यसे थोड़ी ही दूर जाकर इस चिन्तामें पड़े कि हमलोग कहाँ चले आये । वहाँ उन्होंने 'अडालञ्ज' नामसे प्रसिद्ध ग्राम बसाया । जिस गाँवका आदिनिवासी वैश्य जिस नामसे प्रसिद्ध था, उसी नामसे उस गाँवकी प्रसिद्धि हुई । सब वैश्य और ब्राह्मण भयसे व्याकुल हो मोहको प्राप्त हुए । इसलिये उन्होंने अपनी निवास-भूमिका नाम 'मोहमयी' रक्खा । इस प्रकार सब लोग धर्मारण्यसे दसों दिशाओंकी ओर पलायन कर गये । ब्राह्मण और वैश्य कोई भी धर्मारण्यमें नहीं ठहर सके । उस समय सब तीर्थोंका भूषणरूप परम दुर्लभ धर्मारण्य क्षेत्र उजाड़ हो गया । लोहासुरने उसकी बड़ी दुर्दशा कर डाली । वह दानव उस स्थानके तीर्थोंका नाश और ब्राह्मणोंका निष्कासन करके बहुत प्रसन्न हो अपने घरको चला गया ।

सरस्वती नदी, द्वारकातीर्थ एवं गोवत्स आदि तीर्थोंकी महिमा

सूतजी बोले—अब मैं धर्मारण्यतीर्थके उत्तम माहात्म्यकी दूसरी कथा कहता हूँ। धर्मारण्यमें सत्यलोकसे जिस प्रकार सरस्वतीजी लायी गयीं, वह प्रसंग सुनिये। एक समय प्रभातकालीन सूर्यके समान तेजस्वी तथा सब शास्त्रोंमें प्रवीण महामुनिसेवित महर्षि मार्कण्डेयजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके सब ऋषियोंने कहा—'भगवन्! आपने ब्रह्माजीकी पुत्री जिस सरस्वती नदीको उतारा है, वह दर्शनसे प्राणियोंके पापोंका नाश करनेवाली और पुण्य देनेवाली है, उसके माहात्म्यका वर्णन कीजिये।'

मार्कण्डेयजी बोले—ब्राह्मणो! मैंने शरणार्थियोंको शरण देनेवाली सरस्वती देवीको भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी पुण्यमयी द्वादशी तिथिको धर्मारण्यके अन्तर्गत द्वारावती तीर्थमें उतारा था। द्वारावतीतीर्थ मुनियों और गन्धर्वोंसे सेवित है। उक्त तिथिको उस तीर्थमें पिण्डदान आदि करना चाहिये। उसमें पितरोंको दिया हुआ अक्षय होता है और श्राद्धकर्ता भी उसके पुण्यफलको प्राप्त होता है। यह महत्त्वपूर्ण उपाख्यान पापोंका नाशक एवं पुण्यदायक है। पवित्र वस्तुओंमें पवित्र और महापातकोंका निवारण करनेवाला है। सरस्वतीजीका जल समस्त मङ्गलोंके लिये मङ्गलकारक और परम पवित्र है। प्रभास तीर्थके मध्यमें सरस्वतीका जो पुण्यमय जल है, वह क्या ऊपरके लोकोंमें सुलभ है? सरस्वतीका जल मनुष्योंकी ब्रह्महत्याको भी दूर करता है। सरस्वतीमें स्नान और देवता-पितरोंका तर्पण करके पश्चात् पिण्ड देनेवाले मनुष्य फिर कभी माताका दूध पीनेवाले शिशु नहीं होते। जैसे कामधेनु गौएँ मनोवाञ्छित फल देनेवाली होती हैं, उसी प्रकार सरस्वती नदी भी स्वर्ग और मोक्षकी एकमात्र हेतु है।

व्यासजी कहते हैं—मार्कण्डेयजीने सरस्वती देवीको यहाँ लाकर वैकुण्ठका दरवाजा खोल दिया है। जो फलकी आकाङ्क्षासे यहाँ शरीर-त्याग करते हैं, वे उस फलको पाते हैं और अन्तमें भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं। अधिक कहनेसे क्या लाभ; मनुष्योंको सदैव विष्णुलोक प्राप्त करनेकी इच्छासे द्वारकामें ही शरीर-त्याग करना चाहिये। द्वारकामें मृत्युको प्राप्त हुए मनुष्य सब पापोंसे छूटकर भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं। उस तीर्थमें स्नान करके जो मनुष्य भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुधामको जाता है। वह सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ है, जहाँ साक्षात् श्रीहरि निवास करते और उस तीर्थमें रहनेवाले मनुष्यके सब पापोंको हर लेते हैं। द्वारकातीर्थ मोक्ष चाहनेवाले मनुष्योंको मुक्ति देनेवाला, धनार्थियोंको धन देनेवाला तथा आयु, सुख एवं सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य वहाँ एकादशीमें उपवास करके श्राद्ध करता है, वह नरकोंसे सब पितरोंका उद्धार कर देता है।

वहाँ द्वारकाके समीप मार्कण्डेयजीसे उपलक्षित एक गोवत्स नामक तीर्थ है, जो पृथ्वीमें सर्वत्र विख्यात है। उस तीर्थमें जगत्पति उमाकान्त भगवान् शिव गायके बछड़ेके रूपमें अवतीर्ण हो स्वयम्भू लिङ्गरूपसे विराज रहे हैं। पूर्वकालमें बलाहक नामके एक शत्रुविजयी राजा थे, जो महान् बलवान् और भगवान् शिवके परम भक्त थे। एक दिन जब वे शिकार खेलनेमें लगे थे, उनके किसी पैदल सैनिकने मृगोंके झुण्डमें एक गायके बछड़ेको स्थित देखकर राजासे कहा—'नृपश्रेष्ठ! मैंने मृगोंके समुदायमें एक गायका बछड़ा देखा है, जो उन्हींमें हिला-मिला है। उसकी मा उसके साथ नहीं है।' राजाने उस नौकरसे कहा—'तू मुझे उस बछड़ेको दिखा।' तब उस पैदल सेवकने वनमें जाकर राजाको वह बछड़ा दिखाया। उस समय पैदल सैनिकोंके भयसे मृगोंका वह झुण्ड पीलु वृक्षकी झाड़ीकी ओर भागा। तब गायका बछड़ा भी उसी ओर चला। राजा उसे पकड़नेके लिये झाड़ीमें घुस गये और ज्यों-ही उसे पकड़ने लगे त्यों-ही वह उज्ज्वल शिवलिङ्गके रूपमें परिणत हो गया। यह देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे—'यह क्या बात है।' तबतक उस शिवलिङ्गके मध्य भागमें उन्होंने गायके बछड़ेको स्थित देखा। अब उनके मनमें यह निश्चय हो गया कि 'अवश्य ही गायके बछड़ेके रूपमें साक्षात् भगवान् महेश्वर विराजमान हैं।' तदनन्तर उन्हें ले जानेके लिये उद्यत हो राजाने उस शिवलिङ्गको उखाड़नेका प्रयत्न किया, किंतु वे उस देवलिङ्गको किसी प्रकार उठा न सके। तब राजाके साथ सब देवताओंने भगवान् शङ्करसे प्रार्थना की।

देवता बोले—भगवन्! सर्वदेवेश्वर! प्रभो! आपको सब लोकोंका हित-साधन करनेकी इच्छासे यहाँ लिङ्गरूपसे स्थित होना चाहिये।

श्रीमहादेवजीने कहा—देवताओ ! मैं यहाँ सदा ही लिङ्गरूपसे स्थित रहूँगा । भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षमें अमावास्याके दिन मेरा प्राकट्य हुआ है, इसलिये उस दिन विधिपूर्वक स्नान करके जो लोग इस शिवलिङ्गका पूजन करेंगे, उन्हें भय नहीं होगा । यहाँ पिण्डदान करनेसे पूर्वजोंको सदाके लिये उत्तम लोककी प्राप्ति होगी । घोर रौरव, कुम्भीपाक तथा अन्य अनेक नरकोंमें गिरे हुए अथवा पशु-पक्षियोंकी योनिमें पड़े हुए जो पितर हैं, उन्हें यहाँ एक बार पिण्डदान करनेसे अक्षय गतिकी प्राप्ति होती है ।

तदनन्तर राजा बलाहकने सब देवताओंके समीप उस शिवलिङ्गको स्थापित किया और लोकहितकी कामनासे अनेक प्रकारके दान दिये । जबतक वे उस लिङ्गकी पूजा करते रहे, तभीतक साक्षात् भगवान् शिव भी वहाँ आ गये ।

शिवजीने कहा—जो मनुष्य आजकी रातमें श्रद्धा और भक्तिसे इस देवेश्वर शिवकी पूजा करेंगे, उन्हें अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होगी । जो गीताशास्त्रका पाठ करते हुए जागरण करेंगे, वे मनुष्य अपनी एक सौ एक पीढ़ियोंका उद्धार कर देंगे ।

यह देवाधिदेव भगवान् शिवका अद्भुत लिङ्ग है । जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका माहात्म्य सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । गोवत्स नामसे विख्यात शिवलिङ्ग मनुष्योंको परम पुण्य प्रदान करनेवाला है । वह अनेक जन्मोंके पापोंका नाश कर देता है, ऐसा मार्कण्डेयजीका वचन है । जिनका चित्त पापसे दूषित है, उनके पापयुक्त शरीरकी शुद्धिके लिये उस तीर्थमें स्नान करना आवश्यक है । गोवत्स-तीर्थमें एक बार किया हुआ स्नान भी मनुष्योंको रुद्रलोक प्रदान करनेवाला है । वहाँ विशेषतः भाद्रपद मासमें पक्षके अन्तमें कूपके तटपर तर्पण और श्राद्ध करनेसे कलियुगमें पितरोंको अधिक तृप्ति होती है । गयामें इक्कीस बार तर्पण करनेपर पितरोंको जो परम तृप्ति होती है, वह गङ्गकूपमें एक बार तर्पण करनेसे ही हो जाती है । गोवत्स महादेवके समीप ही गङ्गकूप विद्यमान है । वहाँ तिल और जलसे भी तर्पण करनेपर पितर सद्गतिको प्राप्त होते हैं, नरकोंसे छूट जाते हैं । उस तीर्थमें मुनीश्वरगण गोदानकी प्रशंसा करते हैं । वहाँ दो पीलुके वृक्ष स्थित हैं । वहीं मुनिसेवित गोवत्स-तीर्थ है, जो स्नानसे स्वर्ग देनेवाला, आचमनसे पापकी शुद्धि करनेवाला, कीर्तनसे पुण्य उत्पन्न करनेवाला और सेवनसे मोक्ष देनेवाला है ।

गोवत्स तीर्थसे नैर्ऋत्य कोणमें 'लोहयष्टि' दीख पड़ती है । वहाँ स्वयम्भू लिङ्गके रूपमें साक्षात् भगवान् शङ्कर विराजमान हैं । भाद्रपद (आश्विन) की अमावास्याके दिन लोहयष्टिमें श्राद्ध करनेपर पितर प्रेतयोनिसे मुक्त हो स्वर्गमें क्रीड़ा करते हैं । पितरलोग यह कहते हैं 'क्या हमारे कुलमें भी ऐसा कोई पुरुष उत्पन्न होगा, जो श्राद्धपक्षमें आश्विनकी अमावास्याके दिन लोहयष्टि तीर्थमें हमारे लिये तिल, जल, पिण्डदान अथवा केवल जल ही प्रदान करेगा ?' मुनि कहते हैं—'यदि पितर अधिक प्रिय हों, तो भाद्रपद (आश्विन) की अमावास्या तिथिको उनके लिये अवश्य श्राद्ध करना चाहिये ।' जो सरस्वतीके जलमें स्नान करके दूधसे और श्वेत तिलोंसे पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितर अवश्य तृप्त होते हैं । लोहयष्टि तीर्थमें भक्ति-भावसे तर्पण करनेपर मनुष्य स्वयं भी तृप्तिको प्राप्त होता है । जल देनेवाला तृप्ति और अन्न देनेवाला अक्षय सुख पाता है । फल देनेवाला पितृभक्त पुत्र और अभय देनेवाला आरोग्य लाभ करता है । न्यायोपार्जित धनमेंसे जो थोड़ा भी दान दिया जाय, तो वह महान् फल देनेवाला होता है । उस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य भगवान् शिवका पार्षद होता है ।

संक्षेपसे श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—पूर्वकालमें त्रेतायुग आनेपर भगवान् विष्णुका अंश सूर्यवंशमें रघुवंशशिरोमणि कमल-नयन श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें अवतीर्ण हुआ । श्रीराम और लक्ष्मण अभी काकपक्षधारी बालक थे, तभी पिताकी आज्ञासे वे विश्वामित्रके अनुगामी हो गये । राजा दशरथने यज्ञकी रक्षाके लिये उन अपने दोनों कुमारोंको विश्वामित्रजीकी सेवामें सौंप दिया था । वे दोनों वीर धनुष और बाण धारण करके पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये चले । रास्तेमें जाते हुए उन दोनों भाइयोंके समक्ष ताड़का नामवाली राक्षसी विघ्न डालनेके लिये आ खड़ी हुई । तब विश्वामित्र मुनिकी आज्ञासे श्रीरामचन्द्रजीने ताड़काको मार डाला । विश्वामित्रजीने श्रीरामचन्द्रजीको धनुर्वेद विद्याका उपदेश भी दिया । रघुनाथजीके चरणोंके स्पर्शसे शिलारूपधारिणी अहल्या, जो इन्द्रके साथ संयोग होनेके कारण शापवश प्रस्तर हो गयी थी,

पुनः गौतम-वधूके रूपमें प्रकट हो गयी। विश्वामित्रजीका यज्ञ आरम्भ होनेपर रघुनाथजीने मारीचको मार भगाया और सुबाहुको अपने उत्तम बाणोंसे मौतके घाट उतार दिया। उन्होंने राजा जनकके घरमें रक्खे हुए महादेवजीके धनुषको तोड़ डाला और अयोनिजा सीताके साथ विवाह किया। जब वे अयोध्याको लौटने लगे, तब रास्तेमें परशुरामजी मिले। उन्हें जीतकर श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ घर आये। तत्पश्चात् सत्ताईसवें वर्षकी आयुमें जब श्रीरामचन्द्रजीको युवराज पद दिया जाने लगा, तब कैकेयीने राजासे दो वर माँगे। उनमेंसे एक वरके द्वारा यह माँगा कि 'श्रीराम जटा धारण करके चौदह वर्षोंके लिये वनमें चले जायँ और दूसरे वरसे यह माँग लिया कि भरत युवराज-पदके अधिकारी हों।' कैकेयी भोली-भाली थी। उसने मन्थराके बहकानेसे ऐसा वर माँगा। राजा दशरथने जानकी और लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीको वनवास दे दिया। श्रीरामचन्द्रजी तीन राततक केवल जल पीकर रहे। चौथे दिन फलाहार किया और पाँचवें दिन चित्रकूटमें पहुँचकर उन्होंने पर्णकुटी बनायी। उस समय राजा दशरथ श्रीरामचन्द्रजीका नाम लेते हुए स्वर्गको सिधारे। उन्होंने ऋषिके शापको सफल बनाकर स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। उसके बाद भरत और शत्रुघ्न चित्रकूटमें आये। भरतने पिताके स्वर्गगामी होनेका समाचार बतलाकर श्रीरामचन्द्रजीको घर लौट चलनेके लिये समझाया। जब वे लौटनेको राजी न हुए, तब उनकी चरणपादुका लेकर भरत और शत्रुघ्न नन्दिग्रामको लौट आये। वहाँ दोनों भाई राज्यकी रक्षा करते हुए श्रीरामकी चरणपादुकाके पूजनमें तत्पर रहे।

श्रीरामचन्द्रजी महात्मा अत्रिसे मिलकर दण्डकारण्यमें आये और राक्षसोंका वध आरम्भ किया। सबसे पहले विराध मारा गया। उसके बाद साढ़े बारह वर्षोंतक श्रीरामचन्द्रजी पञ्चवटीमें टिके रहे। वहाँ उन्होंने लक्ष्मणजीके द्वारा 'शूर्पणखा' नामक राक्षसीको कुरूप करा दिया। जानकीके साथ वनमें विचरते हुए श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमके समीप भयङ्कर राक्षस रावण आया। वह सीताका अपहरण करनेके लिये आया था। माघ मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथिको वृन्द मुहूर्तमें जब राम और लक्ष्मण दोनों आश्रमसे बाहर चले गये थे, दशमुख रावणने सीताको अकेली पाकर हर लिया। रावण पहले मारीचके आश्रमपर गया था। मारीच मृगरूपमें आकर लक्ष्मणसहित श्रीरामको दूर हटा ले गया था। तब श्रीरामचन्द्रजीने मृगरूपधारी मारीचको मार डाला और पुनः लौटकर जब वे आश्रमपर आये, तब सीतासे रहित एवं सूना देखा।

उधर सीता रावणके द्वारा हरी जानेपर कुररीकी भ विलाप करने लगी—'हा राम! हा राम! मुझे राक्षस ह लिये जाता है, आप आकर मुझे बचाइये, मेरी कीजिये।' जैसे भूखा बाज चीत्कार करती हुई चिड़ि उठा ले जाता है, वैसे ही राक्षस रावण जनकनि सीताको हरकर लिये जा रहा था। यह समाचार सु पक्षिराज जटायुने राक्षसराज रावणसे युद्ध किया। अन्तमें राव उन्हें घायल करके गिरा दिया। माघ कृष्णा नवमीको राव घरमें निवास करनेवाली सीताकी खोज करते हुए दोनों राम और लक्ष्मण जटायुसे मिले। उसके मुखसे राक्षस हरी गयी सीताका समाचार पाकर श्रीरामने भक्तिप पक्षिराजका दाहादि संस्कार किया। फिर आगे-आगे श्री और उनके पीछे लक्ष्मण चले। पम्पासरोवरके नि पहुँचकर उन्होंने शबरीपर अनुग्रह किया। फिर पम्पासरो के जलका आचमन करके श्रीरामजी हनुमान्‌जीसे मिले तदनन्तर रघुनाथजीने हनुमान् एवं सुग्रीवसे मैत्री की सुग्रीवके पास आकर उन्होंने वाली नामक वानरको मा तत्पश्चात् श्रीरामदेवने अपनी प्राणवल्लभा सीताकी खो लिये हनुमान् आदि प्रमुख वानरोंको भेजा। हनुमा श्रीरामकी अँगूठी लेकर गये। दसवें महीनेमें सम्पा हनुमान्‌जीको सीताका पता बतलाया। सम्पातीके कह हनुमान्‌जी सौ योजन समुद्र लाँघकर लंकामें पहुँचे : रातभर सब ओर सीताकी खोज करते रहे। रात्रि सा होते-होते हनुमान्‌जीको सीताका दर्शन हुआ। द्वादशी हनुमान्‌जी अशोक वृक्षपर बैठे रहे। उसी रातमें उन जानकीजीके विश्वासके लिये उत्तम कथा कही। तदन त्रयोदशीको अक्षकुमार आदिके साथ युद्ध हुआ। त्रयोद को ही मेघनादने ब्रह्मास्त्रसे हनुमान्‌को बाँध लिया। ब्रह्मा से बँधे होनेपर भी वायुपुत्र हनुमान्‌जीने राक्षस रावणको कितने ही रूखे एवं कठोर वचन सुनाये। राक्षसोंने उनकी पूँछमें आग लगा दी। उसी आ हनुमान्‌जीने समस्त लंकाको जला डाला और वे पूर्णिमा पुनः महेन्द्र पर्वतपर लौट आये। मार्गशीर्ष प्रतिपद पाँच दिनतक रास्तेमें रहकर वे मधुवनमें आये 3 षष्ठीको मधुवनका विध्वंस किया। फिर सप्तमी श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें पहुँचकर पहचान देते हुए

समाचार निवेदन किया। सीताजीकी मणि देकर श्रीरामसे उन्होंने सब बातें बतायीं। फिर अष्टमीको उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र-में, जब विजयसंज्ञक मुहूर्त व्यतीत हो रहा था, ठीक दोपहरके समयमें श्रीरामचन्द्रजीने प्रस्थान किया। रामने दक्षिण दिशामें जानेकी प्रतिज्ञा करते हुए कहा—'मैं समुद्रको लाँघकर भी राक्षसराज रावणका वध करूँगा। दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान करते समय श्रीरामचन्द्रजीके साथी वानरराज सुग्रीव हुए। सात दिनोंमें समुद्रके तटपर सेनाकी छावनी पड़ी। पौष शुक्ला प्रतिपदासे लेकर तृतीयातक सेनासहित श्रीरामचन्द्रजी-की उपस्थिति सागरके तटपर हुई। चतुर्थीको विभीषण आकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिले। पञ्चमीको समुद्र पार करनेके विषयमें परस्पर विचार किया गया। उसके बाद चार दिनतक श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके किनारे उपवास व्रत किया। चौथे दिन समुद्रसे वर प्राप्त हुआ। साथ ही समुद्रने समुद्र-पार करनेका उपाय बताया। दशमीसे सेतु बाँधनेका कार्य प्रारम्भ हुआ और त्रयोदशीको पूरा हो गया। चतुर्दशीको सुबेल पर्वतपर पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीने सेनाका पड़ाव डाला। पूर्णिमासे लेकर द्वितीयातक तीन दिनोंमें सारी सेना समुद्र पार करके लङ्का पहुँच गयी। तत्पश्चात् शुभलक्षण श्रीरामने सीताको प्राप्त करनेके लिये शूरवीर वानरोंकी सेनाके साथ लङ्कापुरीको चारों ओरसे घेर लिया। तृतीयासे लेकर दशमीतक आठ दिनोंतक सेना टिकी रही। एकादशीके दिन शुक और सारण इन दो मन्त्रियोंका आगमन हुआ। पौष कृष्णा द्वादशीको सेनाकी गणना की गयी। कपिश्रेष्ठ सुग्रीवने अपनी सेनाके बलाबलका वर्णन किया। त्रयोदशीसे लेकर अमावास्यातक तीन दिन लङ्कामें रावणने अपनी सेनाका सङ्गठन, उसकी गणना एवं सैनिकोंमें युद्धके लिये उत्साह भरनेका कार्य किया। माघ शुक्ला प्रतिपदाको अङ्गदजी दूत बनकर रावणके दरबारमें गये। द्वितीयाके दिन सीताजीको मायासे उनके पतिके कटे हुए मस्तक आदिका दर्शन कराया गया। उस दिनसे सात दिनोंतक अर्थात् अष्टमी तिथितक राक्षसों और वानरोंमें घमासान युद्ध हुआ। माघ शुक्ला नवमीकी रातमें मेघनादने युद्ध करके राम और लक्ष्मणको नागपाशमें बाँध लिया। इससे सब कपीश्वर व्याकुल और हताश हो गये। तब वायुके उपदेशसे श्रीरघुनाथजीने गरुड़का स्मरण किया। दशमीको गरुड़जी नागपाशसे छुड़ानेके लिये आये। फिर माघ शुक्ला एकादशीसे लेकर दो दिनतक युद्ध बंद रहा। द्वादशीको हनुमान्‌जीने धूम्राक्षका और त्रयोदशीको उन्होंने ही अकम्पनका वध किया। रावणने श्रीरामको मायामयी सीताका दर्शन कराकर समस्त सैनिकोंको भयभीत कर दिया। माघ शुक्ला चतुर्दशीसे लेकर कृष्ण पक्षकी प्रतिपदातक तीन दिनमें नीलने प्रहस्तका वध किया। माघ कृष्णा द्वितीयासे लेकर चतुर्थीतक तीन दिनोंमें श्रीरामचन्द्रजीने तुमुल युद्ध करके रावणको रणस्थलसे मार भगाया। पञ्चमीसे अष्टमीतक रावणद्वारा जगाया हुआ कुम्भकर्ण चार दिनतक केवल भोजन ही करता रहा। नवमीसे चार दिनतक कुम्भकर्णने युद्ध किया और बहुतसे वानरोंको खा डाला। अन्तमें वह श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे मारा गया। अमावास्याके दिन लङ्कामें उसके लिये शोक मनाया गया। फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदासे लेकर चतुर्थीतक चार दिनोंमें नरान्तक आदि पाँच राक्षस मारे गये। पञ्चमीसे सप्तमीतक तीन दिनोंमें अतिकायका वध हुआ। अष्टमीसे द्वादशीतक पाँच दिनोंमें निकुम्भ और कुम्भ मारे गये। फिर चार दिनोंमें मकराक्षका वध किया गया। फाल्गुन कृष्णा द्वितीयाके दिन मेघनाद पराजित हुआ। तीजसे लेकर सप्तमीतक पाँच दिन दवा आदि लानेकी व्यग्रताके कारण युद्ध बंद रहा। अष्टमीको दुर्बुद्धि रावणने शोकके आवेगसे मायामयी मैथिलीका वध किया। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने सेनाके द्वारा इसका पूर्णतः निश्चय किया। फिर त्रयोदशीसे पाँच दिनोंमें लक्ष्मणजीने विख्यात बल और पराक्रमवाले मेघनादको युद्धमें मार डाला। चतुर्दशीको रावणने युद्ध बंद करके यज्ञकी दीक्षा ली। फिर अमावास्याके दिन वह युद्धके लिये निकला। चैत्र शुक्ला प्रतिपदासे लेकर पाँच दिनतक रावण लगातार युद्ध करता रहा। इस युद्धमें बहुतसे राक्षसोंका संहार हुआ। फिर तीन दिनोंतक रावणके रथ घोड़े आदि मारे गये। चैत्र शुक्ला नवमीको लक्ष्मणजीको शक्ति लगी। तब श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधमें भरकर दशमुख रावणको खदेड़ दिया। फिर विभीषणकी सलाहसे हनुमान्‌जी लक्ष्मणके लिये ओषधि लानेको द्रोणाचल पर्वतपर गये और वहाँसे विशल्या (सञ्जीवनी बूटी) ले आकर उन्होंने लक्ष्मणको पिलायी। दशमीके दिन युद्ध बंद रहा। रातमें राक्षसोंने युद्ध आरम्भ किया। एकादशीके दिन श्रीरामचन्द्रजीके पास मातलि नामक सारथिके साथ इन्द्रका रथ आ पहुँचा। चैत्र शुक्ला द्वादशीसे लेकर कृष्णा चतुर्दशीतक अठारह दिनोंमें श्रीरामचन्द्रजीने द्वन्द्वयुद्ध करके रावणको मार डाला।

अमावास्याके दिन रावण आदि राक्षसोंके दाह-संस्कार हुए। इस प्रकार घोर संग्राम होनेपर श्रीरामचन्द्रजीको विजय प्राप्त हुई। माघ शुक्ला द्वितीयासे लेकर चैत्र कृष्णा चतुर्दशीतक सत्तासी दिनके संग्राममें केवल पंद्रह दिन युद्ध बंद रहा। शेष बहत्तर दिन युद्ध चालू रहा। वैशाख शुक्ला प्रतिपदाको श्रीरामचन्द्रजी रणभूमिमें ही रहे। द्वितीयाके दिन उन्होंने विभीषणका लङ्काके राज्यपर अभिषेक किया। तृतीयाको सीताकी शुद्धि हुई, देवताओंसे वरदान प्राप्त हुआ। उसी दिन दशरथजीका आगमन हुआ और उनके द्वारा भी सीताजीकी पवित्रताके विषयमें अनुमोदन प्राप्त हुआ।

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंद्वारा कष्टमें डाली हुई परम पवित्र जानकीको बड़े प्रेमसे ग्रहण करके वहाँसे लौटे। वैशाखकी चतुर्थीको श्रीरामचन्द्रजी पुष्पक विमानपर बैठे और आकाशमार्गसे अयोध्यापुरीकी ओर चल दिये। चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर वैशाख शुक्ला पञ्चमीको श्रीरामचन्द्रजी अपने दल-बलके साथ भरद्वाज आश्रमपर आकर रहे। फिर षष्ठीको पुष्पक विमानसे वे नन्दिग्राममें आये। सप्तमीमें अयोध्याके राज्यपर रघुनाथजीका अभिषेक हुआ। चौदह महीने दस दिनतक सीताको रामसे अलग रावणके घरमें रहना पड़ा था। बयालीसवें वर्षमें श्रीरामचन्द्रजीने राज्यकार्य प्रारम्भ किया। उस समय सीताजीकी आयु पैंतीस वर्षकी थी। चौदह वर्षके बाद ही श्रीरामने अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया था। उस समय रावण-का दर्प दलन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने अपने भाइयोंके साथ ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया। राज्यका पालन करनेके पश्चात् वे सबके साथ परम धाममें गये। रामराज्यमें सब लोग बहुत प्रसन्न रहते थे। सभी धन-धान्यसे सम्पन्न तथा पुत्र-पौत्रोंसे भरे-पूरे थे। बादल इच्छाके अनुसार पानी बरसाते थे, अन्नकी उपज कई-गुनी अधिक होती थी, गौएँ घड़ाभर दूध देती थीं और वृक्षोंमें सदैव फल लगे रहते थे। श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें किसीको आधि-व्याधि नहीं सताती थी, सभी स्त्रियाँ पतिव्रता होती थीं, पुरुष पिता-माताकी भक्ति करनेवाले होते थे, ब्राह्मण सदा वेदपाठमें लगे रहते, क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी सेवा करते और वैश्यलोग ब्राह्मणों एवं गौओंमें सदा भक्ति रखते थे। उस समय वर्णसंकरता और कर्मसंकरताका नाम नहीं सुना जाता था। कोई भी स्त्री वन्ध्या, दुर्भाग्यवती, काकवन्ध्या, मृतवत्सा अथवा विधवा नहीं थी। सधवा स्त्रीको कभी विलाप नहीं करना पड़ता था। कोई भी माता-पिता और गुरुकी अवहेलना नहीं करते थे। प्रत्येक मनुष्य पुण्य करता और बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञा नहीं टालता था। कोई दूसरेकी भूमिपर अधिकार नहीं जमाते थे। सभी परायी स्त्रियोंसे विमुख रहते थे। कोई मनुष्य परनिन्दक, दरिद्र, रोगी, चोर, जुआरी, शराबी और पापी नहीं था। सुवर्ण चुरानेवाला, गुरुपत्नीगमन करनेवाला, ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या और बालहत्या करनेवाला तथा झूठ बोलने-वाला एक भी मनुष्य नहीं था। कोई किसीकी जीविका नष्ट नहीं करता और झूठी गवाही नहीं देता था। शठ, कृतघ्न और मलिन मनुष्य कहीं देखनेको भी नहीं मिलता था। ब्राह्मण वेदोंके पारङ्गत विद्वान् होते थे और सदा सर्वत्र उनकी पूजा होती थी। अत्यन्त विख्यात रामराज्यमें कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो व्रतका पालन करनेवाला एवं ईश्वरका भक्त न हो। राज्य करते हुए श्रीरामचन्द्रजीके पास उनके पुरोहित महाभाग वशिष्ठ मुनि अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करके आये। श्रीरामचन्द्रजीने अभ्युत्थान, अर्घ्य, पाद्य और मधुपर्क आदिके द्वारा मुनियों-सहित गुरु वशिष्ठका पूजन किया। तत्पश्चात् मुनिवर वशिष्ठने श्रीरामचन्द्रजीसे उनके राज्य, अश्व, हाथी, खजाना, देश, उत्तम बन्धु तथा सेवकोंके विषयमें कुशल-समाचार पूछा। श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'गुरुदेव! आपके प्रसादसे मेरे लिये सर्वत्र कुशल है।' तदनन्तर श्रीरामने मुनिवर वशिष्ठजीसे उनकी पत्नी और पुत्रके कुशल-मङ्गलका समाचार पूछा। तब वशिष्ठजीने भूमण्डलमें जिन-जिन क्षेत्रों, तीर्थों और देवालयोंका सेवन किया था, उन सबकी चर्चा करते हुए सर्वत्र अपना कुशल-मङ्गल बतलाया। इससे कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी बड़े विस्मित होकर वशिष्ठजीसे उत्तमोत्तम तीर्थका माहात्म्य पूछने लगे।

वशिष्ठजीके द्वारा भिन्न-भिन्न तीर्थोंकी महिमाका वर्णन, श्रीरामकी धर्मारण्ययात्रा, वहाँके भगे हुए ब्राह्मणोंको पुनः लाकर बसाना और सत्यमन्दिरकी स्थापना करना

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—भगवन्! आपने जिन-जिन तीर्थोंका सेवन किया है, उनमें सबसे उत्तम तीर्थ कौन है, यह मुझे बताइये। सीताका अपहरण होनेपर मैंने बहुत-से ब्रह्मराक्षसोंका वध किया है। उस पापकी शुद्धिके लिये आप

मुझे किसी ऐसे तीर्थका परिचय दीजिये, जो उत्तम-से-उत्तम हो।

वशिष्ठजी बोले—गङ्गा, नर्मदा, तापी, यमुना, सरस्वती, गण्डकी, गोमती और पूर्णा—ये सभी नदियाँ परम पावन हैं। इन सबमें नर्मदा और त्रिपथगामिनी गङ्गा श्रेष्ठ हैं। रघुनन्दन! श्रीगङ्गाजी दर्शनमात्रसे ही सब पापोंको जला देती हैं। कलियुगमें नर्मदाका दर्शन करनेसे सौ जन्मोंके, समीप जानेसे तीन सौ जन्मोंके और जलमें स्नान करनेसे एक हजार जन्मोंके पापोंका वह नाश कर देती हैं। नर्मदाके तटपर जाकर साग और मूल-फलसे भी एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे कोटि ब्राह्मणोंको भोजन देनेका फल होता है। जो सौ योजन दूरसे भी गङ्गा-गङ्गाका उच्चारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है*। फाल्गुन (चैत्र) मासके अन्तमें अमावास्या तिथिको तथा भाद्रपद (आश्विन) कृष्ण पक्षमें गङ्गाजीके तटपर जाकर जो मनुष्य स्नान, पितरोंका तर्पण और पिण्डदान करता है, वह अक्षय फलका भागी होता है। तापी नदीका स्मरण करनेपर महापातकियोंके भी सात गोत्रोंका उद्धार हो जाता है। यमुनामें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है और महापातकोंसे युक्त होनेपर भी परम गतिको प्राप्त होता है। कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्रका योग होनेपर जो सरस्वती नदीमें स्नान करता है, वह गरुड़की पीठपर बैठकर उत्तम देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनता हुआ वैकुण्ठधामको जाता है। जो कार्तिक मासमें प्राची सरस्वतीके जलमें स्नान करके भगवान् प्राचीमाधवकी स्तुति करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जो गण्डकी (नारायणी) नदीके पुण्यतीर्थमें स्नान करता और शालग्रामशिलाकी पूजा करता है, उसका फिर जन्म नहीं होता है। जो द्वारकावासी श्रीकृष्णके समीप गोमतीके जलकी लहरोंमें स्नान करता है, वह चतुर्भुजरूप धारण करके वैकुण्ठधाममें आनन्दका अनुभव करता है। चर्मण्वती (चम्बल) नदीको नमस्कार करके जो उसके जलका स्पर्श करता है, वह पहले और पीछेकी दस-दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। दोनोंका संगम देखकर अथवा समुद्रकी ध्वनि सुनकर ब्रह्महत्यासे युक्त मनुष्य भी पवित्र हो परम गतिको प्राप्त होता है। जो मनुष्य माघ मासमें प्रयागमें गोता लगाता है, वह इहलोकमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुधामको प्राप्त होता है। जो मनुष्य प्रभासक्षेत्रमें तीन राततक ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक निवास करते हैं, वे यमलोक एवं कुम्भीपाक आदिका दर्शन नहीं करते। जो मनुष्य नैमिषारण्यमें निवास करता है, वह देवत्वको प्राप्त होता है। श्रीराम! जो मनुष्य कुरुक्षेत्रमें चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर स्नान करके सुवर्णदान करता है, उसका इस लोकमें पुनर्जन्म नहीं होता। जो मनुष्य इस पृथ्वीपर कपिला गौको स्पर्श करके दान देता है, वह कामधेनु गौओंके निवासभूत ऋषिलोकको जाता है। जो वैशाख मासमें उज्जयिनीपुरीमें क्षिप्राके जलमें स्नान करता है, वह अपने सहस्रों पूर्वजोंको घोर रौरव नरकसे छुटकारा दिला देता है। जो मनुष्य तीन दिनोंतक सिन्धुनदी अथवा समुद्रमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त हो कैलासमें आनन्द भोगता है। कोटितीर्थमें स्नान करके कोटीश्वर शिवका दर्शन करनेवाला मनुष्य कहीं भी ब्रह्महत्या आदि पापोंमें लिप्त नहीं होता। महान् अपवित्र स्थानमें जानेवाले अज्ञानी जीव भी यदि भगवान्के चरणोंसे प्रकट हुई गङ्गाका जल पी लें तो उनका सब पाप नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य सूर्योदयकालमें वेदवती नदीमें स्नान करता है, वह सब रोगोंसे मुक्त हो उत्तम सुखका भागी होता है। रघुनन्दन! प्रायः सभी तीर्थ स्नान, जलपान तथा गोता लगानेसे अनायास ही मनुष्योंके सब पापोंका नाश कर देते हैं। सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ धर्मारण्य

* गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥
(स्क० पु० ब्रा० ध० मा० ३१।७)

बतलाया जाता है; क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने पूर्वकालमें सबसे पहले इसी तीर्थको स्थापित किया था। सब वनों और तीर्थोंमें विशेषतः धर्मारण्यसे बढ़कर भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। स्वर्गके देवता भी धर्मारण्यनिवासी मनुष्योंकी सराहना करते हैं।

रघुनन्दन! द्वारका, काशी, त्रिशूलधारी शिव तथा भैरव—ये सब जैसे मुक्तिदायक हैं, उसी प्रकार धर्मारण्य भी मोक्ष देनेवाला उत्तम तीर्थ है। यह सुनकर महाधनुर्धर श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सीतादेवी और अपने भाइयोंके साथ तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान किया। उनके पीछे कपीश्वर हनुमान्‌जी, माता कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी, लक्ष्मण, भरत, सेनासहित शत्रुघ्न, अयोध्याके अन्यान्य निवासी तथा प्रजावर्गके लोग भी गये। तीर्थयात्राकी विधिका पालन करनेके लिये घरसे चले हुए राजा श्रीरामने अपने कुलके आचार्य महर्षि वशिष्ठसे कहा—'मुने! यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि आदिमें यह धर्मारण्य क्षेत्र हुआ या द्वारका हुई। धर्मारण्य क्षेत्रकी उत्पत्ति कितने कालसे हुई है, यह बताइये।'

वशिष्ठजी बोले—महाराज! मैं नहीं जानता कि यह क्षेत्र कितने दिनोंसे प्रकट है। दीर्घजीवी लोमश और जाम्बवान् इसका कारण जानते होंगे। शरीरमें जो अनेक जन्म-जन्मान्तरोंका किया हुआ पाप सञ्चित है, उन सभी पापोंका उत्तम प्रायश्चित्त यह धर्मारण्य क्षेत्र माना गया है।

वशिष्ठजीका यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने वहाँ जानेका विचार करके यात्रा-विधिका पालन किया। फिर वशिष्ठजीको आगे करके महामाण्डलिक राजाओं (सामन्तों) के साथ पुरश्चरणविधि पूर्ण कर उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया। आगे जाकर फिर वे पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ गये। गाँव-से-गाँव, देश-से-देश और वन-से-वनको लाँघते हुए आगे बढ़ते चले गये। सेना, सामान, हजारों हाथी, घोड़े, करोड़ों रथ आदि वाहनों और असंख्य शिविकाओंके साथ श्रीरघुनाथजी यात्रा कर रहे थे। वे हाथीपर बैठकर नाना प्रकारसे मैत्रीभाव प्रदर्शित करनेवाले विभिन्न देशोंको देखते हुए जा रहे थे। उनके ऊपर श्वेत छत्र तना हुआ था और उनके पार्श्वभागमें सुन्दर चँवर डुलाया जा रहा था।

दसवें दिन श्रीरामचन्द्रजी परम उत्तम धर्मारण्य क्षेत्रके निकट पहुँच गये। धर्मारण्यके समीप ही 'माण्डलिकपुर' को देखकर श्रीरामने अपनी सेनाके साथ रातमें वहीं निवास किया। उन्होंने सुना, धर्मारण्य क्षेत्र इस समय निर्जन एवं उजाड़ होकर बड़ा भयानक प्रतीत होता है। वहाँ बाघ और सिंह भरे हुए हैं। यक्ष और राक्षस निवास करते हैं। धर्मारण्य अब केवल जंगल रह गया है। जनताके मुखसे ये सारी बातें सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'तुमलोग चिन्ता न करो।' उन्होंने वहाँके व्यवसायकुशल, शूरवीर, महान् बली एवं पराक्रमी तथा समर्थ वैश्योंको बुलाकर कहा—'तुमलोग मेरी यह सोनेकी पालकी शीघ्र ले चलो, जिससे मैं अभी धर्मारण्यमें पहुँच जाऊँ। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।' इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीसे प्रेरित होकर उन सभी वैश्योंने 'तथास्तु' कहकर पालकी उठायी और उन्हें धर्मारण्यमें पहुँचा दिया। सेनासहित श्रीरामने जब उस क्षेत्रमें प्रवेश किया तब प्रत्येक वाहनकी गति मन्द हो गयी। बाजोंकी आवाज भी कम हो गयी, हाथी मन्द गतिसे चलने लगे, घोड़ोंकी भी यही दशा हुई। यह सब देखकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने विनयपूर्वक मुनिश्रेष्ठ गुरु वशिष्ठसे पूछा—'मुनीश्वर! यह क्या बात है? सब वाहनोंकी गति मन्द हो गयी, यह तो एक विचित्र बात है?' तब तीनों कालोंकी बात जाननेवाले मुनि वशिष्ठने कहा—'राम! यह धर्मक्षेत्र आ गया। इस पुरातन तीर्थमें पैदल यात्रा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे पीछे सेनाको सुख मिलेगा।' तब श्रीरामचन्द्रजी सेनाके साथ पैदल चलने लगे। जाते-जाते वे 'मधुवासनक' नामवाले परम पावन ग्राममें पहुँचे। वहाँ गुरु वशिष्ठकी बतायी हुई पद्धतिसे भाँति-भाँतिके उपहारों-द्वारा प्रतिष्ठाविधिके साथ मातृकाओंका पूजन किया। तदनन्तर श्रीरामने सुवर्णा नदीके दक्षिण तटपर हरिक्षेत्रका निरीक्षण किया और यज्ञके योग्य बहुतसे स्थलोंको देखा। उस समय रघुनाथजीने धर्मस्थानका निरीक्षण करके अपने आपको कृतार्थ माना और सुवर्णाके उत्तर तटपर सैनिकोंको उतारकर स्वयं उस क्षेत्रमें भ्रमण करने लगे। वहाँके सभी तीर्थों और देवमन्दिरोंमें जा-जाकर श्रीरामने सभी शास्त्रोक्त कर्म विधिपूर्वक सम्पन्न किये। उन्होंने बड़ी श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक पितरोंका श्राद्ध किया। स्थानसे वायव्य कोणमें सुवर्णाके दोनों तटोंपर श्रीरामेश्वर और कामेश्वरका स्थापन किया। इन सब विधियोंका पालन करके वे अपनी पत्नी सीताके साथ रात्रिमें उस नदीके तटपर

ही सोये। जब आधी रात हुई, तब सबके सो जानेपर भी धर्मवत्सल श्रीराम अकेले जागते रहे। उस समय उन्हें किसी स्त्रीके रोनेका शब्द सुनायी दिया। वह करुणाजनक बातें कहकर उस रातमें कुररीकी भाँति विलाप कर रही थी। श्रीरामने उसी क्षण गुप्तचर भेजकर उस स्त्रीका निरीक्षण कराया। करुणाजनक स्वरसे क्रन्दन करती हुई उस व्याकुल नारीको देखकर श्रीरामके दूतोंने पूछा—'सुन्दरी! तुम कौन हो? देवी हो या दानवी? किसने तुम्हें भय पहुँचाया है? किसने तुम्हारा धन लूट लिया है, जिससे व्याकुल हो बार-बार तुम कठोर शब्दोंका उच्चारण करती हुई रो रही हो? सच-सच बताओ, राजा श्रीराम तुम्हारा समाचार पूछते हैं?' उस स्त्रीने उत्तर दिया—'दूतो! अपने स्वामीको ही मेरे पास भेज दो, जिससे मैं अपने मानसिक दुःखको उनसे कहूँ और शान्ति पाऊँ।' 'बहुत अच्छा' कहकर दूत लौट गये और उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर सब बातें कह सुनायीं।

दूत बोले—भगवन्! उस स्त्रीने कहा है कि श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे दुःखका निवारण कर सकते हैं; अतः तुम्हारा कल्याण हो, तुम उन्हींको भेज दो।

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी तुरंत वहाँ गये और दुःखसे सन्तप्त हुई उस अबलाको देखकर वे स्वयं भी दुखी हो गये। उस समय उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर पूछा—'शुभे! तुम कौन हो? किसकी पत्नी हो? किसने तुम्हें दुखी करके इस निर्जन वनमें निकाल दिया है? किसने तुम्हारा धन लूटा है? ये सब बातें मेरे सामने कहो।'

उनके इस प्रकार पूछनेपर उस स्त्रीने मधुर वाणीमें प्रेमपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीका स्तवन किया—परमात्मन्! आप सनातन परमेश्वर एवं सबका दुःख हरनेवाले हैं। जिसके लिये आपका अवतार हुआ था, वह कार्य आपने पूरा कर लिया। रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, खर, दूषण, त्रिशिरा, मारीच और अक्षकुमार आदि असंख्य भयानक राक्षसोंको आपने समराङ्गणमें परास्त किया है। लोकेश! मैं आपकी उत्तम कीर्तिका वर्णन क्या कर सकती हूँ, जब साक्षात् ब्रह्माजी आपकी नाभिसे प्रकट कमलसे उत्पन्न हुए हैं और जैसे वटके बीजमें महान् वटवृक्षकी स्थिति मानी गयी है, उसी प्रकार उन्होंने इस सम्पूर्ण विश्वको आपके उदरमें विराजमान देखा है। श्रीराम! संसारमें राजा दशरथ तथा आपकी माता कौशल्या धन्य हैं, जिनकी कुक्षिसे आप प्रकट हुए हैं। वह कुल धन्य है, जिसमें आप स्वयं आये हैं। वह अयोध्या नगरी धन्य है, जिसे आपकी जन्मभूमि होनेका गौरव मिला है। वे लोग धन्य हैं, जो आपकी शरणमें रहते हैं। वे महर्षि वाल्मीकि धन्य हैं, जिन्होंने मुख्य-मुख्य ब्राह्मणोंके लिये अपनी बुद्धिसे भावी रामायणकी रचना की। आपके द्वारा यह रघुकुल अत्यन्त पवित्र हो गया है। लोकमें जो साधारण राजा होता है, उसे भी सब लोग भगवान् विष्णुका अंश समझते हैं। परंतु आप तो अपने रमणीय गुणोंसे सुशोभित स्वयं ही साक्षात् विष्णु हैं। लोकहितका कोई भी कार्य, जिसे करनेका विचार करके आपने यहाँ अवतार लिया है, करते समय आपके मार्गमें कभी कोई विघ्न-बाधा न आवे। इस प्रकार स्तुति करके उसने श्रीरामजीसे कहा—'रघुनन्दन! आप-जैसे स्वामीके रहते हुए जो मैं दीर्घकालसे सूनी हो रही हूँ, यह आपका ही दोष है। मुझे धर्मारण्य क्षेत्रकी अधिदेवता समझिये। आज बारह वर्ष हो गये, मैं यहीं दुःखमें डूबी रहती हूँ। महामते! आजसे आप यहाँकी निर्जनता दूर कीजिये। इस तीर्थमें निवास करनेवाले ब्राह्मण लोहासुरके भयसे सब दिशाओंमें भाग गये हैं, उन्हींके साथ सब वैश्य भी दुखी होकर भिन्न-भिन्न स्थानोंमें चले गये। यद्यपि देवताओंने यहाँ आक्रमण करके उस महामायावी दुर्जय एवं दुर्धर्ष दैत्यको मार डाला है तथापि उसके भयसे अत्यन्त शङ्कित रहनेवाले

मनुष्य अबतक यहाँ लौटकर नहीं आ रहे हैं। बारह वर्ष बीत गये, यहाँका प्रत्येक घर अनाथकी भाँति सूनसान पड़ा है। जिस बावलीमें स्नान और दानके लिये उद्यत मनुष्योंकी भीड़ लगती थी, उसीमें अब सूअर कूदते हैं। जहाँ ब्राह्मणलोग निरन्तर सामवेदका गान करते थे, वहाँ अब सियारिनोंके अत्यन्त भयङ्कर शब्द सुनायी देते हैं। जहाँ घर-घरमें अग्निहोत्रका धूम दृष्टिगोचर होता था, वहीं अत्यन्त भयङ्कर दावानल धूएँके साथ दिखायी देता है। जिस सभामण्डपमें मन्त्रजप करनेवाले ब्राह्मण बैठा करते थे, वहीं अब गवय, रीछ और स्याही आदि जीव बैठते हैं। यहाँ जो ऊँची-ऊँची यज्ञकी चौकोर वेदियाँ बनी थीं, वे अब बाँबीकी मिट्टीके ढेरसे घिरी दिखायी देती हैं। नृपश्रेष्ठ श्रीराम! अब मेरा निवास-स्थान इस दशाको पहुँच गया है। यहाँसे जो ब्राह्मण चले गये, इसका मुझे बहुत दुःख है। नरेश्वर! मुझे इस संकटपूर्ण अवस्थासे उबारिये।'

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—आपके ब्राह्मण चारों दिशाओंमें चले गये हैं। मैं न तो उनकी संख्या जानता हूँ और न उनके नाम-गोत्रसे ही मेरा परिचय है। अतः उनकी जाति और गोत्रके विषयमें आप यथार्थ रूपसे बताइये, जिससे उन सबको यहाँ ले आकर मैं अपने-अपने स्थानपर बसाऊँ।

श्रीमाता बोली—नरेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु और शिवने जिन्हें यहाँ स्थापित किया था, वे वेदोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण अठारह हजारकी संख्यामें यहाँ रहते थे। तीनों वेदोंकी विद्यामें उनकी बड़ी ख्याति है। वे प्रतिष्ठित ब्राह्मण चौसठ गोत्रोंके हैं। उनके साथ छत्तीस हजार वैश्य थे, जो धर्मपरायण, सदाचारी और ब्राह्मणोंकी सेवामें संलग्न रहनेवाले थे। जहाँ संज्ञारानीके साथ राजा बकुलादित्य नामसे विख्यात भगवान् सूर्य विराजते हैं; जहाँ दोनों अश्विनीकुमार हैं, जहाँ व्ययकी पूर्ति करनेवाले साक्षात् कुबेर हैं, वही यह धर्मारण्य क्षेत्र है, जिसकी अधिष्ठातृदेवी मैं मानी गयी हूँ। मैं यहाँकी भट्टारिका (स्वामिनी) हूँ।

श्रीसूतजी कहते हैं—उस स्थानके जो आचार और वहाँ रहनेवालोंके जो कुलाचार थे, उन सब प्राचीन वृत्तान्तोंको श्रीमाताने श्रीरामचन्द्रजीके आगे निवेदन किया। उसकी बात सुनकर रघुनाथजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—'आपने मुझसे सत्य-सत्य बातें बतायी हैं। अतः मैं इसी नामसे यहाँ नगर बसाऊँगा। यह नगर तीनों लोकोंमें उत्तम सत्यमन्दिरके नामसे विख्यात होगा।' यों कहकर श्रीरामचन्द्रजीने अपने एक लाख सेवकोंको ब्राह्मणोंको बुला लानेके लिये भेजा और कहा—'जिस देश, प्रदेश, नदी, तट, वन अथवा ग्राममें जहाँ-जहाँ धर्मारण्य-निवासी ब्राह्मण गये हों, वहाँ-वहाँसे अर्घ्य-पाद्य आदिके द्वारा उनकी पूजा करके उन्हें तुमलोग शीघ्र यहाँ बुला लाओ। मैं तभी यहाँ भोजन करूँगा, जब उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके दर्शन कर लूँगा।'

भगवान्का यह आदेश सुनकर उनके आज्ञापालक दूत सब दिशाओंमें चले गये। उन्होंने सब ब्राह्मणोंको खोज निकाला और उन्हें पाकर सब-के-सब बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने शास्त्रोक्त विधानसे अर्घ्य-पाद्य आदिके द्वारा उन सबका पूजन किया, स्तुति की और विनययुक्त बर्ताव करते हुए श्रीरामचन्द्रजीका अनुरोध सुनाकर उन सबको धर्मारण्य चलनेके लिये आमन्त्रित किया। तदनन्तर वे सभी वेद-शास्त्रपरायण ब्राह्मण सेवकोंके साथ वहाँ जानेको उद्यत हुए और बड़े आदरपूर्वक श्रीरामके समीप आये। उन्हें देखकर दशरथनन्दन महाराज रामके अङ्गोंमें हर्षसे रोमाञ्च हो आया और उन्होंने अपनेको कृतार्थ-सा माना। वे बड़े वेगसे उठकर पैदल ही उनकी अगवानीके लिये गये और धरतीपर घुटने टेककर आनन्दके आँसू बहाते हुए दोनों हाथ जोड़कर बोले—'ब्राह्मणो! मैं ब्राह्मणके ही प्रसादसे लक्ष्मीपति हूँ, ब्राह्मणके ही प्रसादसे धरणीधर हूँ, ब्राह्मणके ही प्रसादसे जगतीपति हूँ और ब्राह्मणके ही प्रसादसे मेरा राम नाम है*।' श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर वे ब्राह्मण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने जय-जयकार एवं आशीर्वादसे उनका सम्मान करते हुए कहा—'रघुनन्दन! आप दीर्घायु हों।' श्रीरामने उन्हें पुनः प्रणाम करके पाद्य, अर्घ्य और आसन आदिके द्वारा उनका सत्कार किया और दण्डवत् प्रणाम करके स्तुति की। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर उनके चरणोंकी वन्दना की। फिर विचित्र प्रकारके आसन और गौएँ आभूषण समर्पित किये। अँगूठी, यज्ञोपवीत और कानोंके

* विप्रप्रसादात्कमलावरोऽहं
विप्रप्रसादाद्धरणीधरोऽहम्।
विप्रप्रसादाज्जगतीपतिश्च
विप्रप्रसादान्मम राम नाम॥
(स्क० पु० मा० ध० मा० ३२।८०)

भगवान् रामचन्द्रका दान

[पृष्ठ ४८४
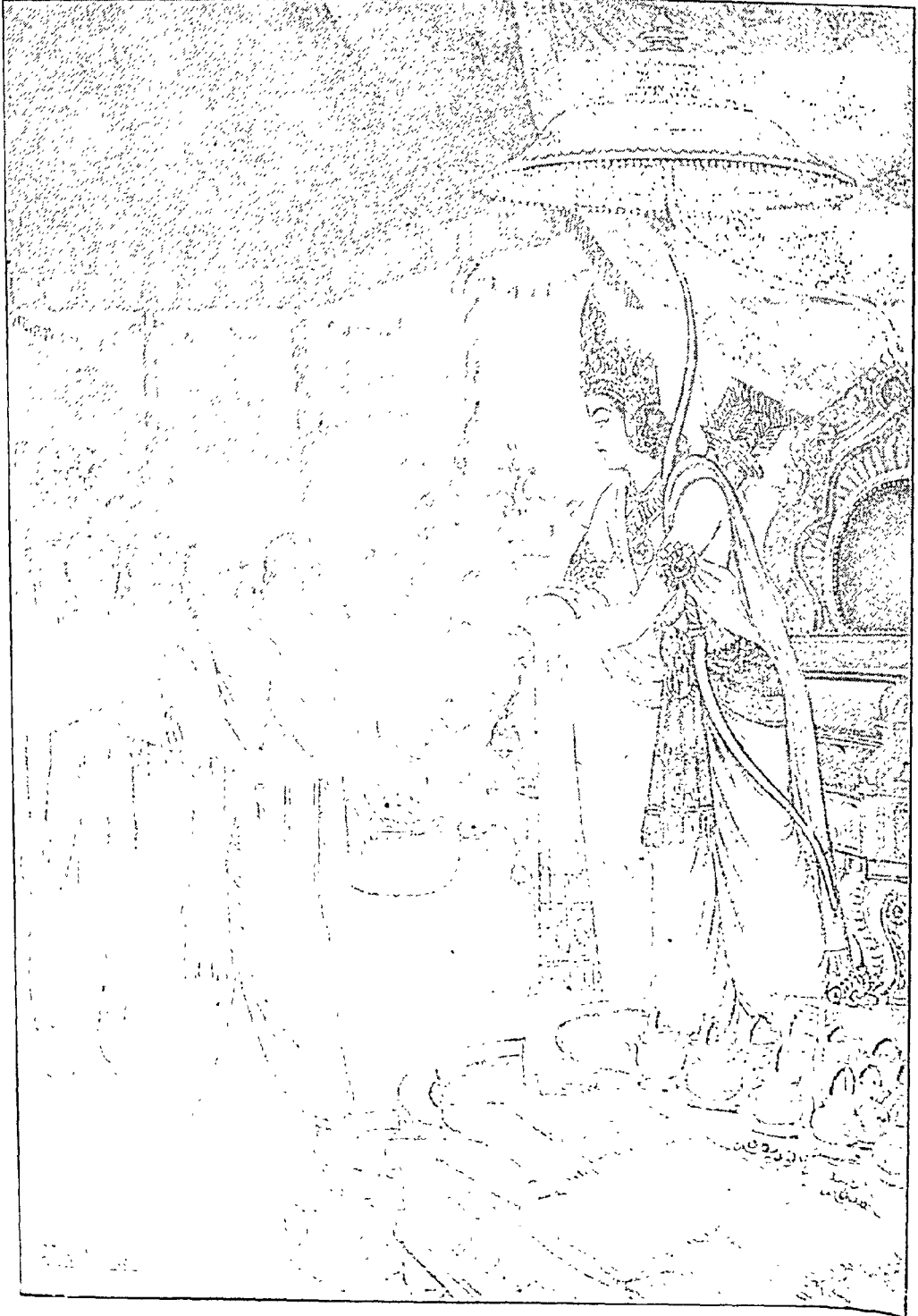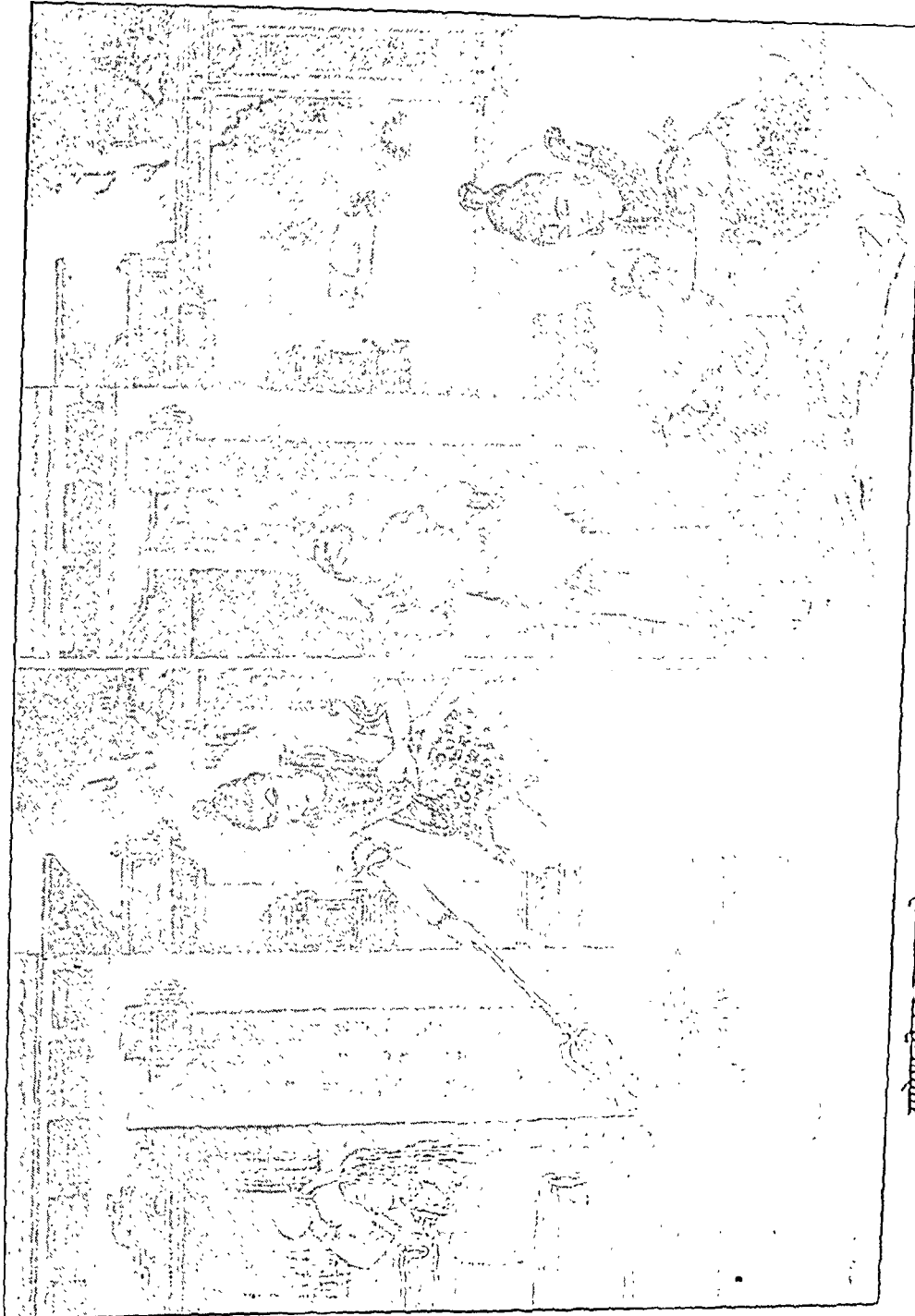
गणेशजीका मस्तक छेदन

गणेशजीको गजमस्तक-दान

कुण्डल दिये। इतना ही नहीं, उन्होंने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके लिये अनेक रंगकी सौ-सौ गायें भी दीं, जो बछड़ेवाली थीं और जिनके थन घड़ेके समान थे। उनकी पीठपर वस्त्र ओढ़ाया गया था, गलेमें घंटे बँधे थे, सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये थे। उनका पृष्ठभाग ताम्रपत्रसे विभूषित था और दूध दूहनेके लिये प्रत्येक गायके साथ एक-एक काँसेका पात्र था।

तत्पश्चात् श्रीराम बोले—ब्राह्मणो! मैं श्रीमाताकी आज्ञासे इस तीर्थका जीर्णोद्धार करूँगा। आपलोग इस कार्यके लिये मुझे आज्ञा दें और मेरा दान ग्रहण करें। सत्पात्रको ही दान देना चाहिये। अपात्रको कुछ नहीं दिया जाता; क्योंकि सुपात्र नौकाकी भाँति सदा पार उतारता है और अपात्र लोहपिण्डके समान केवल डुबानेवाला होता है। द्विजो! केवल जातिमात्रसे ब्राह्मणता नहीं आती है, उसके साथ-साथ ब्राह्मणोचित कर्म भी होना चाहिये। संसारमें क्रिया बलवती होती है। कर्महीन ब्राह्मणोंको दान देनेसे कहाँसे फल प्राप्त होगा? इस कारण सत्यवादी ब्राह्मण ही परम पूजनीय माने गये हैं। अब यज्ञकार्य प्रारम्भ होनेवाला है, इसमें आपलोग सदा कृपा करें।

तब वे सब ब्राह्मण आपसमें मिलकर विचार करने लगे। उनमेंसे कुछ ब्राह्मणोंने श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहा—'रघुनन्दन! हम सब शिलोञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाले हैं। पूर्ण सन्तोषका आश्रय लेकर धर्मानुष्ठानमें लगे रहते हैं। अतः हमें दान लेनेसे कोई प्रयोजन नहीं है। राजाका प्रतिग्रह बड़ा भयङ्कर होता है, अतः हम भयदायक प्रतिग्रह नहीं लेना चाहते।' उन ब्राह्मणोंमेंसे कुछ एकाहित व्रतवाले थे। वे दिनमें एक बार भोजन करते थे। कुछ अमृत-वृत्तिसे रहते थे—बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसीपर सन्तोष करते थे। कुछ कुम्भीधान्य संज्ञावाले ब्राह्मण थे, वे एक घड़ेसे अधिक धान्यका संग्रह नहीं करते थे। कुछ ब्राह्मण यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन और दान तथा प्रतिग्रह—इन छः कर्मोंमें तत्पर रहते थे। वे सभी ब्राह्मण ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन मूर्तियोंके स्थापित किये हुए थे। सबके स्वभाव और गुण पृथक्-पृथक् थे। कुछ ब्राह्मण इस प्रकार बोले—'हमलोग ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों स्वरूपोंकी आज्ञा लिये बिना कैसे प्रतिग्रह स्वीकार कर सकते हैं। जबतक ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने नहीं कहा, तबतक हमने किसीका ताम्बूल भी स्वीकार नहीं किया है।'

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने महात्मा वशिष्ठजीसे परामर्श किया और गुरुके साथ ही उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवताओंका स्मरण किया। स्मरण करते ही सब देवता वहाँ आ पहुँचे। उनके विमानोंकी पंक्ति कोटि-कोटि सूर्योंके समान प्रकाशित हो रही थी। श्रीरामने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन सबका यथायोग्य पूजन किया और वह सब वृत्तान्त निवेदन करते हुए कहा—'मैं इस क्षेत्रकी अधिदेवीके कहनेसे यहाँ धर्मारण्य हरिक्षेत्रमें धर्म-कूपके समीप जीर्णोद्धार करना चाहता हूँ।' तदनन्तर वे सब ब्राह्मण तीनों मूर्तियोंको प्रणाम करके हर्षमें भर गये। उनका मनोरथ सफल हो गया। उन्होंने अर्घ्य-पाद्य आदिकी विधिसे श्रद्धापूर्वक उनका पूजन किया। वे तीनों देवता ब्रह्मा, विष्णु और शिव क्षणभर विश्राम करके विनयसे हाथ जोड़े हुए महाशक्तिशाली श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'सूर्यवंशविभूषण राम! तुमने देवद्रोही रावण आदि राक्षसोंका जो संहार किया है, इससे हमलोग बहुत प्रसन्न हैं। तुम इस महा-स्थानका उद्धार करो और महान् सुयश प्राप्त करो।'

उन देवताओंकी आज्ञा पाकर दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र-जी बहुत प्रसन्न हुए और ब्रह्मा आदि देवताओंके समीप जीर्णोद्धारका कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने पहले महान् पर्वतके समान सुन्दर एवं विशाल वेदी बनवायी और उसके ऊपर अनेकानेक सुन्दर ब्राह्मशाला, गृहशाला तथा ब्रह्मशालाका निर्माण कराया। उन शालाओंमें यथास्थान खजाना और गृहोपयोगी आवश्यक वस्तुओंका संग्रह किया गया। कोटि-कोटि स्वर्णमुद्राओं तथा रस और वस्त्र आदिसे वे शालाएँ भर गयीं। उनमें धन-धान्य-समृद्धि एवं सब प्रकारके धातुओंका भी संग्रह किया गया था। यह सब करके श्रीरामने ब्राह्मणोंको दान दिया। उन्होंने एक-एक ब्राह्मणके लिये दस-दस दूध देनेवाली गौएँ दीं। उन्होंने वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके लिये चार हजार चार गाँव दिये। ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन देवताओंने उन्हें स्थापित किया था, इसीलिये संसारमें त्रैविद्य नामसे उनकी ख्याति हुई। इस प्रकार ब्राह्मणोंको वह परम अद्भुत दान दिया। मण्डलोंमें जो उत्तम शूद्र वैश्यवृत्तिसे जीविका चला रहे थे, उनकी संख्या सवा लाख थी। वे सब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका पालन करनेवाले थे और माण्डलिक कहलाते थे। उन सबको श्रीरामने ब्राह्मणोंकी सेवामें नियुक्त किया। श्रीरामचन्द्रजीने दो चँवर और खड्ग दिये। प्रतिष्ठा-विधिके साथ अपने कुलके स्वामी भगवान् सूर्यको स्थापित किया।

चार वेदोंसे युक्त ब्रह्माजीकी स्थापना की, महाशक्ति श्रीमाता एवं श्रीहरिको भी स्थापित किया। विघ्नोंका निवारण करनेके लिये दक्षिण द्वारपर उन्होंने गणेशजी तथा अन्य देवताओंकी स्थापना की। वीरवर श्रीरघुनाथजीने सात मंजिलके मन्दिर बनवाये और यह नियम किया कि 'जो कोई भी यहाँ शुभ एवं माङ्गलिक कार्य करे, पुत्र होनेपर जातकर्म, अन्नप्राशन तथा मुण्डन आदि कर्म करे, यज्ञकर्मोंमें लक्ष होम और कोटि होम करे, वास्तुपूजा एवं ग्रहशान्ति करे तथा ऐसे महोत्सवोंके अवसरपर मनुष्य जो कुछ भी द्रव्य, अन्न, वस्त्र, धेनु, सुवर्ण, रजत आदिका दान ब्राह्मणों, शूद्रों, दीनों, अनाथों और अन्धोंके लिये देवे, उस समय पहले कार्यकी निर्विघ्नतापूर्वक सिद्धि होनेके लिये भगवान् बकुलादित्य और श्रीमाताका भाग निकाल दे। जो मनुष्य मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करके विपरीत आचरण करेगा, उसके उस कर्ममें विघ्न उपस्थित होगा।'

ऐसा कहकर श्रीरामने प्रसन्नचित्तसे देवताओंकी बावलियों, सुन्दर चहारदिवारियों, दुर्गके उपकरणों, विस्तृत सड़कों और गलियों, कुण्ड, सरोवर, तलैया, धर्मवापी तथा अन्यान्य देवनिर्मित कूपोंका पुनर्निर्माण कराया। इस प्रकार मनोरम धर्मारण्यमें इन सब वस्तुओंका विस्तारपूर्वक निर्माण कराकर श्रीरघुनाथजीने उन्हें त्रयीविद्याके मुख्य-मुख्य विद्वानोंको सौंप दिया। श्रीरामचन्द्रजीका शासन वहाँ ताम्रपत्रपर लिखकर रख लिया गया है। जो उसको लोप करेगा, उसके पूर्वज नरकमें पड़ेंगे और आगे उसके कुलमें संतति नहीं होगी। तत्पश्चात् श्रीरामने पवनपुत्र हनुमान्‌जीको बुलाकर कहा—'महावीर वायुकुमार! तुम्हारी भी पूजा होगी। तुम इस क्षेत्रकी रक्षाके लिये यहाँ निवास करो।' हनुमान्‌जीने प्रणाम करके प्रभुकी आज्ञाको शिरोधार्य किया। इस प्रकार उस तीर्थका जीर्णोद्धार किया। श्रीमाताका पूजन करके वे अन्य तीर्थोंमें जानेको उद्यत हुए। ब्रह्मा आदि देवता भी श्रीरामको आशीर्वाद दे अपने-अपने लोकको चले गये।

रामनामकी महिमा, कलियुगका प्रभाव तथा धर्मारण्यक्षेत्रके माहात्म्यश्रवणका फल

व्यासजी कहते हैं—जो लोग 'राम-राम-राम' इस मन्त्रका उच्चारण करते हैं, खाते, पीते, सोते, चलते और बैठते समय सुखमें या दुःखमें राममन्त्रका जप करते हैं, उन्हें दुःख, दुर्भाग्य, आधि-व्याधिका भय नहीं रहता। उनकी आयु, सम्पत्ति और बल प्रतिदिन बढ़ते रहते हैं। रामका नाम लेनेसे मनुष्य भयङ्कर पापसे छूट जाता है। वह नरकमें नहीं पड़ता और अक्षयगतिको प्राप्त होता है।

इस प्रकार श्रीरामजीने तीर्थोद्धारका सब कार्य पूरा कर ब्राह्मणोंकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया और गाय, घोड़े, भैंस तथा रथ आदि बहुतसे दान देकर वे सेनासहित लौट आये। क्रमशः अयोध्या नगरीमें आकर उन्होंने दीर्घकालतक राज्य किया।

युधिष्ठिरने पूछा—मुने! कलियुग प्राप्त होनेपर संसारमें कैसा भय होता है?

व्यासजी बोले—राजन्! कलियुगमें लोग असत्यवादी और साधुपुरुषोंकी निन्दा करनेवाले होंगे। वे सभी लुटेरोंके कर्म करनेवाले तथा पितृभक्तिसे दूर होंगे। अपने ही गोत्रकी स्त्रियोंसे रमण करनेवाले और चपलताके ही चिन्तनमें तत्पर होंगे। सब एक-दूसरेके विरोधी, ब्राह्मणद्वेषी तथा शरणागतोंका वध करनेवाले होंगे। कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण वेदभ्रष्ट, अहङ्कारी, वैश्योचित आचार (कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य) में तत्पर और सन्ध्याकर्मका लोप करनेवाले होंगे। शान्तिकालमें शूरताकी डींग मारनेवाले और भय प्राप्त होनेपर अत्यन्त दीन होंगे। श्राद्ध और तर्पणसे दूर रहेंगे। असुरोंके समान आचारवाले तथा विष्णुभक्तिसे रहित होंगे। दूसरोंके धन हड़पनेकी इच्छावाले और सूदखोर होंगे। ब्राह्मण विना नहाये भोजन कर लेंगे। क्षत्रिय युद्धका नाम सुनकर दूर भागेंगे। कलिमें सब लोग दुष्टवृत्तिवाले तथा मलिन होंगे। मदिरा पीयेंगे और जो यज्ञके अधिकारी नहीं हैं, ऐसे लोगोंसे भी यज्ञ करावेंगे। स्त्रियाँ पतिसे द्वेष करनेवाली तथा पुत्र पितासे वैर रखनेवाले होंगे। कलियुगके क्षुद्र मनुष्य भाईसे शत्रुता करेंगे। ब्राह्मण धनसंग्रहमें तत्पर होकर गायका दूध, दही और घी बेचेंगे। कलिकालमें गौएँ प्रायः दूध नहीं देती हैं,

वृक्षोंमें कभी फल नहीं लगते हैं। लोग कन्या बेचनेवाले होंगे। गाय और बकरीको भी बेचेंगे। विष-विक्रय तथा रस-विक्रय करेंगे। कलियुगके ब्राह्मण वेद बेचनेवाले होंगे। स्त्रियाँ ग्यारह वर्षकी आयुमें ही गर्भ धारण करेंगी। प्रायः लोग एकादशीके उपवाससे रहित होंगे। तीर्थसेवनमें ब्राह्मणोंकी प्रवृत्ति नहीं होगी। ब्राह्मण अधिक खानेवाले और अधिक सोनेवाले होंगे। सब लोग कुटिलवृत्तिसे जीविका चलानेवाले तथा वेदोंकी निन्दामें तत्पर होंगे। संन्यासियोंकी निन्दा करेंगे और परस्पर एक दूसरेको छलनेवाले होंगे। कलियुगमें छूआछूतके दोषको नहीं मानेंगे। क्षत्रियलोग राज्यसे वञ्चित होंगे और म्लेच्छ राजा होगा। प्रायः सब विश्वासघाती, गुरुद्रोही, मित्रद्रोही तथा शिश्नोदर-परायण होंगे। महाराज! कलियुग आनेपर चारों वर्णके लोग एक हो जायँगे, यह मेरा वचन अन्यथा नहीं होगा। कलियुग प्राप्त होनेपर सब ब्राह्मण स्थानसे भ्रष्ट होंगे। वे बलवान् पक्षको ग्रहण करेंगे और पक्षपाती होंगे तथा वेदभ्रष्ट होंगे।

प्राचीन कालमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने धर्मारण्य तीर्थको स्थापित किया था। सत्ययुगमें इस तीर्थका नाम धर्मारण्य, त्रेतामें सत्यमन्दिर, द्वापरमें वेदभवन और कलियुगमें मोहेरक हुआ *। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक सब पापोंका नाश करनेवाले धर्मारण्य-माहात्म्यको सुनता है, वह मन, वाणी और शरीरसे होनेवाले त्रिविध पातकका नाश कर देता है। एक बार इसके सुनने अथवा कीर्तन करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है। स्त्री हो या पुरुष, जो भक्तिपूर्वक इसे सुनता है, वह कभी नरकका दर्शन नहीं करता है। श्रेष्ठ पुरुष पवित्रचित्त होकर इस पुराणकी पुस्तकको किसी उत्तम स्थानपर स्थापित करके रेशमी वस्त्र तथा गन्ध, माल्य आदिसे इसकी पृथक्-पृथक् पूजा करे। कथा समाप्त होनेपर वाचककी भी पूजा करे। विचित्र वस्त्र दे। गन्ध, माला और चन्दन आदिके द्वारा देवताके समान पूजा करके वाचकको दूध देनेवाली गौका दान करे।

धर्मारण्य-माहात्म्य सम्पूर्ण।
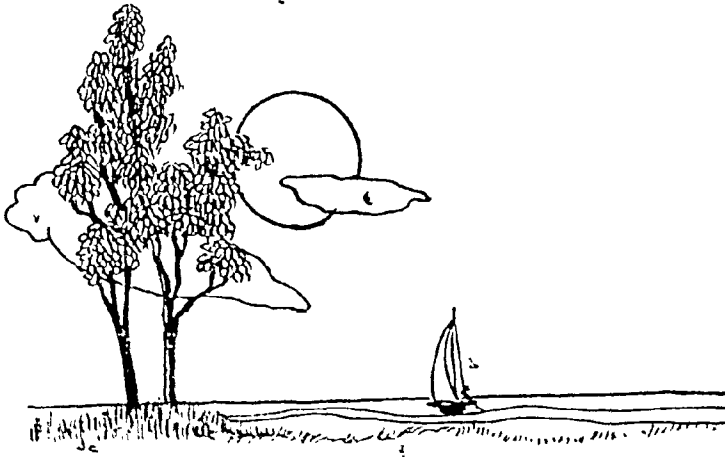
* धर्मारण्यं कृतयुगे त्रेतायां सत्यमन्दिरम्। द्वापरे वेदभवनं कलौ मोहेरकं स्मृतम्॥

(स्क० पु० ब्रा० ध० मा० ४०।१७)

चातुर्मास्य-माहात्म्य

चातुर्मास्य व्रतका माहात्म्य, संयम-नियम, दयाधर्म तथा चौमासेमें अन्न आदि दानोंकी महिमा

नारदजी बोले—देवाधिदेव ! इस समय मैं शुभकारक चातुर्मास्य व्रतको सुनना चाहता हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—देवर्षे ! ये भगवान् विष्णु ही सबको मोक्ष देनेवाले तथा संसारसागरसे पार उतारनेवाले हैं। इनके स्मरणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। संसारमें मनुष्य-जन्म दुर्लभ है। उसमें भी उत्तम कुलमें जन्म पाना और दुर्लभ है। कुलीन होनेपर भी दयालु स्वभावका होना और कठिन है। यह सब होनेपर भी कल्याणमय सत्सङ्ग प्राप्त होना और भी दुर्लभ है। जहाँ सत्सङ्ग नहीं, विष्णुभक्ति नहीं और व्रत नहीं हैं, वहाँ कल्याणकी प्राप्ति दुर्लभ है। विशेषतः चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुका व्रत करनेवाला मनुष्य उत्तम माना गया है। सब तीर्थ, दान, पुण्य और देवस्थान चातुर्मास्य आनेपर भगवान् विष्णुकी शरण लेकर स्थित होते हैं। जो चातुर्मास्यमें श्रीहरिको प्रणाम करता है, उसीका जीवन शुभ है। संसारमें मनुष्यका जन्म और भगवान् विष्णुकी भक्ति दोनों ही दुर्लभ हैं। जो मनुष्य चातुर्मास्यमें नदीस्नान करता है, वह सिद्धिको प्राप्त होता है। जो झरना, तड़ाग और बावलीमें स्नान करता है, उसके सहस्रों पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। पुष्कर, प्रयाग अथवा और किसी महातीर्थके जलमें जो चातुर्मास्यमें स्नान करता है, उसके पुण्यकी संख्या नहीं है। नर्मदा, भास्करक्षेत्र, प्राची सरस्वती तथा समुद्र-सङ्गममें एक दिन भी जो चातुर्मास्यमें स्नान करता है, उसमें पापका लेशमात्र भी नहीं रह जाता। जो नर्मदामें एकाग्रचित्त होकर तीन दिन भी चौमासेका स्नान करता है, उसके पापके सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं। जो गोदावरी नदीमें सूर्योदयके समय चौमासेमें पंद्रह दिनतक स्नान करता है, वह कर्मजनित शरीरका परित्याग करके भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। जो मनुष्य तिलमिश्रित एवं आँवलामिश्रित जलसे अथवा बिल्वपत्रके जलसे चातुर्मास्यमें स्नान करता है, उसमें दोषका लेशमात्र भी नहीं रह जाता। देवाधिदेव भगवान् विष्णुके चरणोंके अङ्गुष्ठसे प्रवाहित होनेवाली गङ्गाजी सदा ही पापनाशिनी कही गयी हैं। चातुर्मास्यमें उनका यह माहात्म्य विशेषरूपसे प्रकट होता है। भगवान् विष्णु स्मरण करनेपर सहस्रों पाप भस्म कर डालते हैं, इसलिये उनका चरणोदक मस्तकपर चौमासेमें धारण किया जाय, तो वह कल्याणकारी होता है। चातुर्मास्यमें भगवान् नारायण जलमें शयन करते हैं, अतः उसमें भगवान् विष्णुके तेजका अंश व्याप्त रहता है। उस समय उसमें किया हुआ स्नान सब तीर्थोंसे अधिक फल देनेवाला होता है। नारद ! बिना स्नानके जो पुण्यकार्यमय शुभकर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है, उसे राक्षस ग्रहण कर लेते हैं। स्नानसे मनुष्य सत्यको पाता है। स्नान सनातन धर्म है, धर्मसे मोक्षरूप फल पाकर मनुष्य फिर दुखी नहीं होता *। रातको और सन्ध्याकालमें बिना ग्रहणके स्नान न करे, गर्म जलसे भी स्नान नहीं करना चाहिये। सूर्यके दर्शनसे सब कर्मोंमें शुद्धि कही गयी है। चातुर्मास्यमें विशेषरूपसे जलकी शुद्धि होती है।

---

* स्नानेन सत्यमाप्नोति स्नानं धर्मः सनातनः।
धर्मान्मोक्षफलं प्राप्य पुनर्नैवावसीदति॥
(स्क० पु० ब्रा० चा० मा० १।३५)

शरीर असमर्थ हो तो भस्मस्नानसे उसकी शुद्धि होती है। मन्त्रस्नानसे, भगवान् विष्णुके चरणोदकसे अथवा भगवान् नारायणके आगे क्षेत्र, तीर्थ और नदी आदिमें जो स्नान करता है, उसका चित्त शुद्ध हो जाता है। चातुर्मास्यमें यह महत्त्व और बढ़ जाता है।

चातुर्मास्यमें भगवान्के शयन करनेपर प्रतिदिन स्नानके अन्तमें श्रद्धायुक्त चित्तसे पितरोंका तर्पण करना चाहिये। इससे महान् फलकी प्राप्ति होती है। नदियोंके सङ्गममें स्नानके पश्चात् पितरों और देवताओंका तर्पण करके जप, होम आदि कर्म करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है। पहले भगवान् गोविन्दका स्मरण करके पीछे शुभकर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। ये भगवान् गोविन्द ही देवता, पितर और मनुष्य आदिको तृप्ति देनेवाले हैं। चातुर्मास्य सब गुणोंसे उत्कृष्ट समय है। उसमें धर्मयुक्त श्रद्धा एवं स्मृतिसे पवित्र समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। सत्सङ्ग, ब्राह्मणभक्ति, गुरु, देवता और अग्निका तर्पण, गोदान, वेदपाठ, सत्कर्म, सत्य-भाषण, गोभक्ति और दानमें प्रीति—ये सब सदा धर्मके साधन हैं*। भगवान् विष्णुके शयन करनेपर उक्त धर्मोंका साधन एवं नियम भी महान् फल देनेवाला होता है। दो घड़ी भी भगवान् विष्णुका ध्यान एवं उन निरञ्जन परमेश्वरके सेवनसे सौ जन्मोंका पाप भस्म हो जाता है। यदि मनुष्य चौमासेमें भक्तिपूर्वक योगके अभ्यासमें तत्पर न हुआ, तो निःसन्देह उसके हाथसे अमृत गिर गया। बुद्धिमान् मनुष्यको सदैव मनको संयममें रखनेका प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि मनके भलीभाँति वशमें होनेसे ही पूर्णतः ज्ञानकी प्राप्ति होती है। यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है। अतः क्षमाके द्वारा मनको वशमें करना चाहिये। एकमात्र सत्य ही परम धर्म है, एक सत्य ही परम तप है, केवल सत्य ही परम ज्ञान है और सत्यमें ही धर्मकी प्रतिष्ठा है। अहिंसा धर्मका मूल है, इसलिये उस अहिंसाको मन, वाणी और क्रियाके द्वारा आचरणमें लाना चाहिये†। पराये धनका अपहरण और चोरी आदि पाप-कर्म सदा सब मनुष्योंके लिये वर्जित हैं। चातुर्मास्यमें इनसे विशेषरूपसे बचना चाहिये। ब्राह्मण तथा देवताकी सम्पत्तिका विशेषरूपसे त्याग करना चाहिये। न करने योग्य कर्मोंका आचरण विद्वान् पुरुषोंके लिये सदैव त्याज्य है। नारद! जो सम्पूर्ण कार्योंमें निष्कामभावसे प्रवृत्त होता है, जिसमें अहंबुद्धिका अभाव है, जो बुद्धिके नेत्रोंसे ही देखता है, ऐसा पुरुष ही महाज्ञानी और योगी है। मनुष्योंके शरीरमें यह अहंकार विष है। अतः वह सदैव त्याग देने योग्य है। मनुष्य कामनाके त्यागद्वारा क्रोध और लोभको जीते। ऐसे मनुष्यके सहस्रों पाप उसके शरीरसे निकलकर सहस्रों टुकड़ोंमें नष्ट हो जाते हैं। शान्तिके द्वारा मोह और मनको जीतकर विचारके द्वारा शान्तिभावको अपनाना चाहिये। सन्तोषसे भी शान्तिका उदय होता है। जो अपनी कोमलता एवं सरलताके द्वारा ईर्ष्याभावको दबा देता है, वह मुनीश्वर है। चातुर्मास्यमें जीवदया विशेष धर्म है। प्राणियोंसे द्रोह करना कभी भी धर्म नहीं माना गया है। अतः सदा सब मासोंमें भूतद्रोहका परित्याग करना चाहिये। मनीषी पुरुष इस भूतद्रोहको सहस्रों पापोंका मूल बताते हैं। इसलिये मनुष्योंको सर्वथा प्रयत्न करके प्राणियोंके प्रति दया करनी चाहिये। सब प्राणियोंके हृदयमें सदा भगवान् विष्णु विराज रहे हैं। जो उन प्राणियोंसे द्रोह करनेवाला है, उसके द्वारा भगवान्का ही तिरस्कार होता है। जिस धर्ममें दया नहीं है, वह दूषित माना गया है। दयाके बिना न विज्ञान होता है, न धर्म होता है और न ज्ञान ही होता है। अतः सब प्राणियोंके प्रति आत्मभाव रखकर सबके ऊपर दया करना सनातन धर्म है, जो सब पुरुषोंके द्वारा सदा सेवन करने योग्य है।

सब धर्मोंमें दानधर्मकी विद्वान् लोग सदा प्रशंसा करते हैं। वेदमें अन्नको ब्रह्म कहा गया है, अन्नमें ही प्राणोंकी प्रतिष्ठा है। अतः मनुष्य सदा अन्न एवं जलका दान करे। जल देनेवाला तृप्तिको और अन्न-दान करनेवाला मनुष्य अक्षय सुखको पाता है। अन्न और जलके समान दूसरा कोई दान न हुआ है, न होगा। मणि, रत्न, मूँगा, चाँदी, सोना और वस्त्र तथा अन्य वस्तुओंके दानोंमें भी अन्नदान ही सबसे बढ़कर है*। चातुर्मास्यमें अन्न और जलका दान, गोदान,

प्रतिदिन वेदपाठ और अग्निमें हवन—ये सब महान् फल देनेवाले हैं। यदि भगवान् विष्णुके साथ समागमके लिये वैकुण्ठधाममें जानेकी इच्छा हो, तो सब पापोंके नाशके लिये चौमासेमें अन्नदान करना चाहिये। अन्नदान करनेसे सब प्राणी प्रसन्न होते हैं। देवता भी अन्नदाताकी स्पृहा रखते हैं। गुरु और ब्राह्मणोंको भोजन कराना, घृतदान करना तथा सत्कर्मोंमें संलग्न रहना—ये सब बातें चातुर्मास्यकालमें जिसमें मौजूद हैं, वह साधारण मनुष्य नहीं है। सद्धर्म, सत्कथा, सत्पुरुषोंकी सेवा, संतोंका दर्शन, भगवान् विष्णुका पूजन और दानमें अनुराग—ये सब बातें चौमासेमें दुर्लभ बतायी गयी हैं*। जो मनुष्य चौमासेमें पितरोंके उद्देश्यसे अन्नदान करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर पितरोंके लोकमें जाता है। उसके अन्नदानसे तृप्त हुए देवतालोग उसे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करते हैं। चींटी भी उसके घरसे भोजन लेकर जाती है। अन्नदान सबसे उत्तम है, उसका न रातमें निषेध है, न दिनमें। चौमासेमें वह विशेषरूपसे पापोंका नाश करनेवाला है। शत्रुओंको भी अन्न देना मना नहीं है। चौमासेमें दूध, दही एवं मट्ठाका दान महान् फल देनेवाला होता है। जन्मकालमें जिससे यह शरीर पुष्ट हुआ है, उस अन्न एवं दुग्धका दान उत्तम है। साग देने[वाला] मनुष्य न कभी नरकमें जाता है और न यमलोकका द[र्शन] करता है। वस्त्र देनेवाला प्रलयकालतक चन्द्रलोकमें नि[वास] करता है। जो चातुर्मास्यमें चन्दन, अगुरु और धूपका [दान] करता है, वह मनुष्य पुत्र-पौत्रोंसहित विष्णुरूप होता [है।] भगवान् विष्णुके शयनकालमें जो मनुष्य वेदवेत्ता ब्राह्मण[को] फल दान करता है, वह यमलोकको नहीं देखता। चौमासेमें भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये विद्यादान, गोद[ान] और भूमिदान करता है, वह अपने पूर्वजोंका उद्धार क[र] देता है। जो जिस देवताके उद्देश्यसे चौमासेमें गुड़, नमक, तेल, शहद, तिक्त पदार्थ, तिल और अन्न देता है, व[ह] उसीके लोकमें जाता है। विशेषतः चातुर्मास्यमें मनुष्य[को] अग्निमें आहुति देनी चाहिये, ब्राह्मणको दान देना चाहि[ये] और गौओंकी भलीभाँति सेवा-पूजा करनी चाहिये। भविष्य[में] दान देनेकी प्रतिज्ञा न करके शीघ्र ही दे डालना चाहिये। मनुष्य जो कुछ देनेकी इच्छा करे, वह अवश्य दे डाले। जिसको देनेका निश्चय किया हो उसे ही दे, दूसरेको न दे। दी हुई वस्तु उससे वापस न ले। जो श्रीहरिके शयनकालमें ब्राह्मणोंके लिये सब प्रकारका दान देता है, वह पूर्वजोंसहित अपनेको पापोंसे मुक्त कर लेता है।

चातुर्मास्यमें इष्टवस्तुके परित्याग तथा नियम-पालनका महत्त्व

ब्रह्माजी कहते हैं—मनुष्य सदा प्रिय वस्तुकी इच्छा करता है। अतः जो चातुर्मास्यमें भगवान् नारायणकी प्रीतिके लिये अपने प्रिय भोगोंका पूर्ण प्रयत्नपूर्वक त्याग करता है, उसकी त्यागी हुई वे वस्तुएँ उसे अक्षयरूपमें प्राप्त होती हैं। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक प्रिय वस्तुका त्याग करता है, वह अनन्त फलका भागी होता है। धातुपात्रोंका त्याग करके पलाशके पत्तेमें भोजन करनेवाला मनुष्य ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। गृहस्थ मनुष्य ताँबेके पात्रमें कदापि भोजन न करे। चौमासेमें तो ताँबेके पात्रमें भोजन विशेषरूपसे त्याज्य है। मदारके पत्तेमें भोजन करनेवाला मनुष्य अनुपम फलको पाता है। चातुर्मास्यमें विशेषतः वटके पत्रमें भोजन करना चाहिये। चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये गृहस्थ-आश्रमका परित्याग करके बाह्य आश्रमका सेवन करनेवाले मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता। मिर्च छोड़नेसे राजा होता है, रेशमी वस्त्रोंके त्यागसे अक्षय सुख मिलता है, उड़द और चना छोड़ देनेसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति नहीं होती। चातुर्मास्यमें विशेषतः काले रंगका वस्त्र त्याग देना चाहिये। नीले वस्त्रको देख लेनेसे जो दोष लगता है, उसकी शुद्धि भगवान् सूर्यनारायणके दर्शनसे होती है। कुसुम्भ रंगके परित्याग करनेसे मनुष्य यमराजको नहीं देखता। केशरके त्यागसे वह राजाका प्रिय होता है। फूलोंको छोड़नेसे मनुष्य ज्ञानी होता है, शय्याका परित्याग करनेसे महान् सुखकी प्राप्ति होती है। असत्यभाषणके त्यागसे मोक्षका दरवाजा खुल जाता है। चातुर्मास्यमें पर-निन्दाका विशेषरूपसे परित्याग करे। पर-निन्दा महान्

वारिदस्तृप्तिमायाति सुखमक्षय्यमन्नदः। वार्यन्नयोः समं दानं न भूतं न भविष्यति॥
मणिरत्नप्रवालानां रूप्यहाटकवाससाम्। अन्येषामपि दानानामन्नदानं विशिष्यते॥
(स्क० पु० ब्रा० चा० मा० १। २—४)

* सद्धर्मः सत्कथा चैव सत्सेवा दर्शनं सताम्। विष्णुपूजा रतिर्दाने चातुर्मास्यसुदुर्लभा॥
(स्क० पु० ब्रा० चा० मा० १। ११)

पाप है, पर-निन्दा महान् भय है, पर-निन्दा महान् दुःख है और पर-निन्दासे बढ़कर दूसरा कोई पातक नहीं है * । पर-निन्दाको सुननेवाला भी पापी होता है। चौमासेमें केशोंका सँवारना (हजामत) त्याग दे, तो वह तीनों तापोंसे रहित होता है। जो भगवान्‌के शयन करनेपर विशेषतः नख और रोम धारण किये रहता है, उसे प्रतिदिन गङ्गास्नानका फल मिलता है। मनुष्यको सब उपायोंद्वारा योगियोंके ध्येय भगवान् विष्णुको ही प्रसन्न करना चाहिये। समस्त वर्णों एवं श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वारा भी भगवान् श्रीहरिका ही चिन्तन करना चाहिये। भगवान् विष्णुके नामसे मनुष्य घोर बन्धनसे मुक्त हो जाता है। चातुर्मास्यमें उनका विशेषरूपसे स्मरण करना उचित है।

कर्ककी संक्रान्तिके दिन भगवान् विष्णुका भक्तिपूर्वक पूजन करके प्रशस्त एवं शुभ जामुनके फलोंसे अर्घ्य देना चाहिये। अर्घ्य देते समय इस भावका चिन्तन करे—'छः महीनेके भीतर जहाँ कहीं भी मेरी मृत्यु हो जाय तो मानो मैंने स्वयं ही अपने-आपको भगवान् वासुदेवके चरणोंमें ही समर्पित कर दिया।' सर्वथा प्रयत्न करके भगवान् जनार्दनका सेवन करना चाहिये। जो मनुष्य भगवान् विष्णुकी कथा, पूजा, ध्यान और नमस्कार सब कुछ उन्हीं श्रीहरिकी प्रसन्नताके लिये करता है, वह मोक्षका भागी होता है †। सत्यस्वरूप सनातन विष्णु वर्णाश्रम-धर्मके स्वरूप हैं। जन्म-मृत्यु आदिके कष्टका उन्हींके द्वारा नाश होता है। अतः चातुर्मास्यमें विशेष-रूपसे व्रतद्वारा श्रीहरिको ही ग्रहण करना चाहिये। तपोनिधि भगवान् नारायणके शयन करनेपर अपने इस शरीरको तपस्या-द्वारा शुद्ध करना चाहिये। भगवान् विष्णुकी भक्तिसे युक्त जो व्रत है, उसे विष्णुव्रत जानो। धर्ममें संलग्न होना तप है। व्रतोंमें सबसे उत्तम व्रत है—ब्रह्मचर्यका पालन। ब्रह्मचर्य तपस्याका सार है और ब्रह्मचर्य महान् फल देनेवाला है। इसलिये समस्त कर्मोंमें ब्रह्मचर्यको बढ़ावे। ब्रह्मचर्यके प्रभावसे उग्र तपस्या होती है। ब्रह्मचर्यसे बढ़कर धर्मका उत्तम साधन दूसरा नहीं है। विशेषतः चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुके शयन करनेपर यह महान् व्रत संसारमें अधिक गुणकारक है—ऐसा जानो। जो इस वैष्णवधर्मका पालन करता है, वह कभी कर्मोंसे लिप्त नहीं होता। भगवान्‌के शयन करनेपर जो यह प्रतिज्ञा करके कि—'हे भगवन्! मैं आपकी प्रसन्नताके लिये अमुक सत्कर्म करूँगा।' उसका पालन करता है, तो उसीको व्रत कहते हैं। वह व्रत अधिक गुणोंवाला होता है। अग्निहोत्र, ब्राह्मणभक्ति, धर्मविषयक श्रद्धा, उत्तम बुद्धि, सत्सङ्ग, विष्णुपूजा, सत्यभाषण, हृदयमें दया, सरलता एवं कोमलता, मधुर वाणी, उत्तम चरित्रमें अनुराग, वेदपाठ, चोरीका त्याग, अहिंसा, लज्जा, क्षमा, मन और इन्द्रियोंका संयम, लोभ, क्रोध और मोहका अभाव, इन्द्रियसंयममें प्रेम, वैदिक कर्मोंका उत्तम ज्ञान तथा श्रीकृष्णको अपने चित्तका समर्पण—ये नियम जिस पुरुषमें स्थिर हैं, वह जीवन्मुक्त कहा गया है। वह पातकोंसे कभी लिप्त नहीं होता। एक बारका किया हुआ व्रत भी सदैव महान् फल देनेवाला होता है। चातुर्मास्यमें ब्रह्मचर्य आदिका सेवन अधिक फलद होता है। चातुर्मास्य-व्रतका अनुष्ठान सभी वर्णके लोगोंके लिये महान् फलदायक है। व्रतके सेवनमें लगे हुए मनुष्योंद्वारा सर्वत्र भगवान् विष्णुका दर्शन होता है। चातुर्मास्य आनेपर व्रतका यत्नपूर्वक पालन करे। विष्णु, ब्राह्मण और अग्निस्वरूप तीर्थका सेवन करे। चारों वेदमय स्वरूपवाले अजन्मा विराट् पुरुषको भजे, जिनके प्रसादसे मनुष्य मोक्षरूपी महान् वृक्षके ऊपर चढ़ जाता है और कभी सन्तापको नहीं प्राप्त होता।

चातुर्मास्यमें विशेष-विशेष तप और भगवान्‌की षोडशोपचार पूजाका क्रम

ब्रह्माजी कहते हैं—षोडशोपचारसे सदैव भगवान् विष्णुकी पूजा करना तप है और भगवान्‌के शयन करनेपर वही महातप कहा गया है। इसी प्रकार सदा पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान भी तप है; परंतु चातुर्मास्यमें श्रीहरिको निवेदन करनेपर वही महातप हो जाता है। ऋतुकालमें स्त्रीके साथ सम्बन्ध करना गृहस्थके लिये सदा ही तप माना गया है, किंतु वही चातुर्मास्यमें श्रीहरिकी प्रीतिके लिये किया जाय तो महातप है। सदा सत्य बोलना तप है। यह भूतलपर निवास करनेवाले प्राणियोंके लिये दुर्लभ तप कहा गया है। देवेश्वर श्रीहरिके शयन करनेपर यह सत्यभाषणरूपी तपस्या करनेवाला

* परनिन्दा महापापं परनिन्दा महाभयम्। परनिन्दा महद्दुःखं न तस्याः पातकं परम्॥

(स्क० पु० ब्रा० चा० मा० ४। २५)

† विष्णोः कथा विष्णुपूजा ध्यानं विष्णोर्नतिस्तथा। सर्वमेव हरिप्रीत्या यः करोति स मुक्तिभाक्॥

(स्क० पु० ब्रा० चा० मा० ५। ७-८)

मनुष्य अनन्त फलका भागी होता है। अहिंसा आदि गुणोंका पालन करना सदा ही तप है; किंतु चातुर्मास्यमें वैरभावका परित्याग करके उसका पालन किया जाय तो वह महातप कहा गया है। पञ्चायतन पूजा महातप है। मनुष्य चातुर्मास्यमें श्रीहरिकी प्रीतिके लिये इस महातपका विशेषरूपसे अनुष्ठान करे। सभी पर्वोंके अवसरपर सदा दान देना चाहिये, यह तप है; परंतु चातुर्मास्यमें विशेषरूपसे उसका पालन करनेपर वह दान अनन्त होता है।

चौमासेमें दो प्रकारका शौच ग्रहण करना चाहिये। एक बाह्य शौच और दूसरा आन्तरिक शौच। जलसे नहाना-धोना बाह्य शौच कहलाता है और श्रद्धासे अन्तःकरणको शुद्ध करना आन्तरिक शौच है। इन्द्रियोंका निग्रह करना चाहिये। यह तपस्याका उत्तम लक्षण है। किंतु चातुर्मास्यमें इन्द्रियोंकी चञ्चलता दूर हो तो वह महातप कहा गया है। इन्द्रियरूपी घोड़ोंको काबूमें रखकर मनुष्य सदा सुख पाता है। वे इन्द्रियरूपी अश्व जब कुमार्गसे चलने लगते हैं, तब जीवको नरकमें गिराते हैं। यह काम महान् शत्रु है। इस एकको ही दृढ़तापूर्वक जीते। जिन महात्माओंने कामको जीत लिया है, उन्होंने सम्पूर्ण जगत्पर विजय पा ली है। काम और सङ्कल्पपर विजय पा लेना ही तपस्याका मूल है। वही सबसे उत्तम ज्ञान है जिसके द्वारा कामको जीत लिया जाय। लोभ सदा त्याग देनेयोग्य है; क्योंकि लोभमें पापकी स्थिति है। लोभको जीत लेना ही तप है। चातुर्मास्यमें इसका विशेष महत्त्व है। मोहका अर्थ है अविवेक। वह सदा त्याग देनेयोग्य है। जो मोहसे रहित है, वही ज्ञानी है। मनुष्योंके शरीरमें रहनेवाला मद ही महान् शत्रु है। यों तो सदा ही, किंतु चातुर्मास्यमें विशेषरूपसे उसका निग्रह करना चाहिये। मान बड़ा भयङ्कर शत्रु है। वह सब प्राणियोंके भीतर निवास करता है। उसे क्षमाद्वारा जीतना चाहिये। चातुर्मास्यमें उसे जीतना अधिक गुणकारी होता है। मात्सर्य (ईर्ष्या) भी महान् पातकका कारण है। अतः विद्वान् पुरुष चातुर्मास्यमें उसको जीते। जिसने उसे जीत लिया, उसने तीनों लोक जीत लिये। अहंकारके वशीभूत हुए अजितेन्द्रिय मुनि धर्ममार्गको छोड़कर कुमार्गके कर्म करने लगते हैं। अतः अहङ्कारका परित्याग करके मनुष्य सदैव सुख पाता है। विशेषतः चातुर्मास्यमें अहङ्कारके त्यागका महान् फल है। यह तपस्याका मूल है। जो मनुष्य विष्णुके शयनकालमें प्रतिदिन एक समय भोजन करता है, उसे द्वादशाह यज्ञका फल मिलता है। जो मनुष्य चातुर्मास्यमें प्रतिमास नित्य चान्द्रायणव्रत करता है, उसके पुण्यका वर्णन नहीं किया जा सकता। जो भगवान् विष्णुके शयनकालमें कृच्छ्र व्रतका सेवन करता है, वह पापराशिका नाश करके वैकुण्ठमें भगवान्‌का पार्षद होता है। जो चातुर्मास्यमें केवल दूध पीकर रहता है, उसके सहस्रों पाप तत्काल विलीन हो जाते हैं। यदि धीर पुरुष चौमासेमें नित्य परिमित अन्नका भोजन करता है, तो वह सब पातकोंका नाश करके वैकुण्ठधाम पाता है। चौमासेमें एक अन्न भोजन करनेवाला मनुष्य रोगी नहीं होता। जो क्षार लवणका सेवन करनेवाला नहीं है, उसमें पापका अभाव हो जाता है। चौमासेमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये फलाहार करनेवाला मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो कन्द-मूलका आहार करता है, वह अपने साथ पूर्वजोंका भी घोर नरकसे उद्धार करके भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो प्रतिदिन चौमासेमें केवल जल पीकर रहता है, उसे रोज-रोज अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य चौमासेमें श्रीहरिकी प्रीतिके लिये शीत और वर्षा सहन करता है, उसपर प्रसन्न होकर भगवान् जगन्नाथ उसे अपने-आपको दे डालते हैं। जो मन-ही-मन भगवान् नारायणका चिन्तन करके इस परम पवित्र और पापकी शुद्धिके हेतुभूत पुराणको सुनता अथवा पढ़ता है, वह मरकर मोक्षको प्राप्त होता है।

नारदजीने पूछा—प्रजापते! सोलह उपचारोंसे किस प्रकार भगवान्‌की पूजा की जाती है?

ब्रह्माजीने कहा—वेदों और शास्त्रोंके विधानके अनुसार भगवान् विष्णुकी भक्ति दृढ़ करनी चाहिये। यह सब जो कुछ दिखायी देता है, सबका मूल वेद है और वेद सनातन भगवान् विष्णुका स्वरूप है। वेदोंके आधार हैं ब्राह्मण तथा ब्राह्मणोंके देवता अग्नि हैं। अग्निमें आहुति डालनेवाला ब्राह्मण यज्ञमें सदा भगवान् श्रीहरिका यजन करता हुआ तथा श्रीविष्णुकी पूजामें निरन्तर संलग्न रहता हुआ सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करता है। भगवान् नारायणका स्मरण और ध्यान क्लेश, दुःख आदिका नाश करनेवाला है। चातुर्मास्यमें भगवान् श्रीहरि जलमें विशेषरूपसे व्याप्त रहते हैं। जलसे अन्न पैदा होता है, जिससे जगत्‌की तृप्ति होती है। वह अन्न भगवान् विष्णुके शरीरके अंशसे उत्पन्न होता है। अन्नको 'ब्रह्म' कहते हैं। वह अन्न आवाहनपूर्वक भगवान् विष्णुको समर्पण करके मनुष्य पुनर्जन्म, वृद्धता और

क्लेशके संस्कारोंद्वारा तिरस्कृत नहीं होता। 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इत्यादि जो सोलह ऋचाओंवाला यजुर्वेदका महासूक्त है, वह सर्वोत्कृष्ट नारायणमय है। उसके पाठमात्रसे भी ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। ब्राह्मणको उचित है कि वह पहले स्मृतियोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार अपने शरीरमें उक्त सोलह सूक्तोंका न्यास करे। तत्पश्चात् भगवान्‌की प्रतिमा अथवा शालग्रामशिलामें विशेषरूपसे न्यास करे। फिर क्रमशः आवाहन आदि करे। वैकुण्ठधाममें विराजमान, कौस्तुभ-मणिसे सुशोभित, कोटि-कोटि सूर्यके समान तेजस्वी, दण्ड-धारी, शिखासूत्रसे सुशोभित पीताम्बरधारी रूपसे भगवान् विष्णुका आवाहन करके ध्यान करे। सब पापोंके समूहका नाश करनेवाले श्रीविष्णुको इस रूपमें अपने ध्यानमें स्थिर करके उन्हें पूजाके लिये अपने आगे आवाहन करे। पुरुष-सूक्तकी प्रथम ऋचा 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इत्यादि मन्त्रके आदिमें ॐकार जोड़कर उसका उच्चारण करे और उसीके द्वारा भगवान्‌का आवाहन करे। इसी प्रकार दूसरी ऋचा 'पुरुष एवेदम्' इत्यादिसे पार्षदोंसहित श्रीहरिको आसन समर्पित करे। वे सभी आसन सुवर्णमय हैं, ऐसा मन-ही-मन चिन्तन करे। भक्तियोगसे चिन्तन करनेपर वह परिपूर्ण होता है। फिर तीसरी ऋचासे पाद्य समर्पण करे और उसमें गङ्गाजीका स्मरण करे। उसके बाद सरिताओं तथा सातों समुद्रोंके जलसे जगदीश भगवान् विष्णुको अर्घ्य दे। सरिताओं और सागरोंका चिन्तनमात्र करना चाहिये। चौथी ऋचासे अर्घ्यदान करना उचित है। इसके बाद श्रीहरिको अमृतसे आचमन कराये। तीन आचमनसे ब्राह्मणकी शुद्धि बतायी गयी है। आचमनका जल स्वच्छ एवं फेन और बुद्बुदसे रहित होना चाहिये। ब्राह्मण इतने जलसे आचमन करे कि वह उसके हृदयतक पहुँच जाय, क्षत्रिय कण्ठतक जाने लायक जलसे आचमन करे और वैश्य तालुतक पहुँचने लायक जलसे आचमन करे। स्त्री और शूद्र एक बार जलका हुआ जल भी अक्षय फल देनेवाला होता है। छठी ऋचासे स्नान कराकर पुनः आचमन कराना चाहिये।

सातवीं ऋचासे भगवान् विष्णुके लिये वस्त्र देना चाहिये। आठवींसे यज्ञोपवीत समर्पित करे, नवीं ऋचासे यज्ञमूर्ति श्रीहरिके श्रीअङ्गोंपर उत्तम चन्दनका लेप करना चाहिये। जिसने सुन्दर यक्षकर्दमके द्वारा जगद्गुरु भगवान् विष्णुके अङ्गोंमें लेप किया है, उसने अपने सुयशसे इस संसारको आच्छादित एवं तृप्त किया है। चन्दन देनेवाला मनुष्य संसारमें अपने तेजसे भगवान् सूर्यके समान होकर देवभावको प्राप्त होता और ब्रह्मादि देवताओंके लोकमें आनन्दका अनुभव करता है। जो मनुष्य चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुको चन्दनके आलेपसे सुन्दर रूपमें देखते हैं, वे कभी यमपुरीमें नहीं जाते। दसवीं ऋचासे भक्तिपूर्वक पुष्प चढ़ाकर भगवान्‌की पूजा करे। पुष्पोंसे पूजित हुए भगवान् विष्णुको यदि दूसरे लोग भी प्रणाम करते हैं, तो उन्हें भी अक्षय लोक प्राप्त होते हैं। ग्यारहवीं ऋचासे श्रीहरिको धूप-दान करना चाहिये—'उत्तम गन्धसे युक्त दिव्य वनस्पतिका रस तथा अतिशय सुगन्धित यह धूप सम्पूर्ण देवताओंके सूँघने योग्य है, भगवन्! आप इसे ग्रहण करें।' इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान्‌को अगुरुका धूप निवेदन करे। चातुर्मास्यमें इसका महान् फल है। कपूर, चन्दनदल, मिश्री, मधु और जटामासीसे युक्त धूप श्रीहरिके शयनकालमें निवेदन करना चाहिये। देवता सूँघनेसे ही प्रसन्न होते हैं। अतः धूप उनकी घ्राणेन्द्रियको तृप्त करनेका शुभ साधन है। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको बारहवीं ऋचासे दीपदान करना चाहिये। जो चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुके आगे दीपदान करता है, उसकी पापराशि पलभरमें जलकर भस्म हो जाती है।

सोलहवीं ऋचाद्वारा भगवान् विष्णुके साथ अपनी एकताका चिन्तन करे—'मैं ही सदा विष्णु हूँ' इस प्रकार अपने मनमें भावना करनेवाला ब्राह्मण जीवन्मुक्त हो जाता है। चौमासेमें ब्राह्मणको विशेषरूपसे योगयुक्त होना चाहिये। इस प्रकार यहाँ मोक्षमार्ग प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुकी भक्ति बतायी गयी।

ब्रह्माजीके द्वारा मानसी और शारीरिक सृष्टिका प्रादुर्भाव, चारों वर्णोंके धर्म तथा शूद्र जातियोंके भेदोंका वर्णन

नारदजीने पूछा—पितामह ! अठारह प्रकारकी प्रजाएँ कौन-कौन-सी हैं ? उनकी जीवनवृत्ति और धर्म क्या है ? यह सब बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—अपने कालके परिमाणसे जब जगदीश्वर भगवान् श्रीहरि योगनिद्रासे जाग्रत् हुए, तब उस समय उनकी नाभिसे प्रकट हुए कमलकोषसे मेरा जन्म हुआ। तदनन्तर उस कमलकी नालसे भगवान्‌के उदरमें प्रवेश करके जब मैंने देखा, तब वहाँ मुझे कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके दर्शन हुए; परंतु फिर जब बाहर आया, तब सृष्टिके पदार्थ और उसके हेतुओंको भूल गया। तब आकाशवाणी हुई—'महामते! तपस्या करो।' यह भगवदीय आदेश पाकर मैंने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की। फिर मनके द्वारा पहले मानसी सृष्टिका चिन्तन किया। उससे मरीचि आदि मुनीश्वर ब्राह्मण प्रकट हुए। नारद ! उन्हींमें सबसे छोटे होकर तुम उत्पन्न हुए। तुम ज्ञानी एवं वेदान्तके पारङ्गत पण्डित हुए। वे सब मुनि कर्मनिष्ठ हो सदा सृष्टि-विस्तारके लिये उद्योग करने लगे। परंतु तुम अनन्यभावसे भगवान् विष्णुके भक्त हुए। एकान्ततः ब्रह्मचिन्तनपरायण, ममता और अहङ्कारसे शून्य हुए। तुम भी मेरे मानस पुत्र ही हो। मानसी सृष्टिके पश्चात् मैंने देहजा सृष्टिकी रचना की। मेरे मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, दोनों ऊरुओंसे वैश्य और चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुए। अनुलोम और विलोम क्रमसे शूद्रसे नीचे-नीचे सब मेरे चरणतलोंसे ही प्रकट हुए हैं। वे सब प्रकृतियाँ (प्रजाजन) मेरे शरीरके अवयव-विशेषसे उत्पन्न हैं। नारद ! मैं तुमसे उनके नाम बताता हूँ, सुनो—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन ही द्विज हैं। वेद, तपस्या, पठन, यज्ञ करना और दान देना—ये सब इनके कर्म हैं। द्विजोंको पढ़ाने और थोड़ा-सा प्रतिग्रह लेनेसे ब्राह्मणोंकी जीविका चलती है। यद्यपि ब्राह्मण तपस्याके प्रभावसे दान ग्रहण करनेमें समर्थ है, तथापि वह प्रतिग्रह न स्वीकार करे; क्योंकि उसे अपने तपोबलकी रक्षा सदा करनी चाहिये। वेदपाठ, विष्णु-पूजन, ब्रह्मध्यान, लोभका अभाव, क्रोध न होना, ममताशून्यता, क्षमासारता, आर्यता (श्रेष्ठ आचारका पालन), सत्कर्मपरायणता, दानरूपी कर्म तथा सत्यभाषण आदि सद्गुणोंसे जो सदा विभूषित होता है, वह ब्राह्मण कहलाता है। क्षत्रियको तपस्या, यज्ञ, दान, वेदपाठ और ब्राह्मणभक्ति—ये सब कर्म करने चाहिये। शस्त्रोंसे इनकी जीविका चलती है। स्त्री, बालक, गौ, ब्राह्मण और भूमिकी रक्षाके लिये, स्वामीपर आये हुए संकटको टालनेके लिये, शरणमें आये हुएकी रक्षाके लिये तथा पीड़ितोंकी आर्त पुकार सुनकर उन सबका संकट दूर करनेके लिये जो सदा तत्पर रहते हैं, वे ही क्षत्रिय हैं। वैश्य धन बढ़ानेवाला, पशुओंका पालक, कृषिकर्म करनेवाला, रस आदिका विक्रेता तथा देवताओं और ब्राह्मणोंका पूजक है। वह सूद लेकर धनकी उत्पत्ति करे, यज्ञ आदि कर्मोंका अनुष्ठान करता रहे, दान और स्वाध्याय भी करे। ये सब वैश्यके कर्म बताये गये हैं। शूद्र भी प्रातःकाल उठकर भगवान्‌का चरण-वन्दन करके विष्णुभक्तिमय श्लोकोंका पाठ करते हुए भगवान् विष्णुके स्वरूपको प्राप्त होता है। जो वर्षमें आनेवाले सभी व्रतोंका तिथि तथा वारके अधिदेवताकी प्रसन्नताके लिये पालन करता है और सब जीवोंको अन्नदान करता है, वह शूद्र गृहस्थ श्रेष्ठ माना गया है। यह वेदमन्त्रोंके उच्चारणके बिना ही इस लोकमें सब कर्म करते हुए मुक्त होता है। चातुर्मास्यका व्रत करनेवाला शूद्र भी श्रीहरिके स्वरूपको प्राप्त होता है। महामुने! सभी वर्णों, आश्रमों और जातियोंके लिये भगवान् विष्णुकी भक्ति सबसे उत्तम मानी गयी है। जो पवित्र चित्तवाला मनुष्य इस परम पवित्र पुराणको पढ़ता अथवा सुनता है, वह पूर्वजन्मोपार्जित समस्त पापोंका नाश करके श्रीविष्णुकी आराधनामें तत्पर हो विष्णुलोकको प्राप्त होता है।
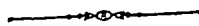
पैजवन शूद्र और महर्षि गालवका संवाद तथा शालग्राम-शिलाके पूजनका महत्त्व

ब्रह्माजी कहते हैं—महामते! प्राचीन त्रेतायुगमें पैजवन नामसे प्रसिद्ध एक शूद्र था, जो धर्ममें तत्पर और विष्णु तथा ब्राह्मणोंका पूजक था। वह न्यायपूर्वक धनका उपार्जन करता और सदा शान्तभावसे रहता था। सभी लोग उससे प्रेम करते थे। वह सत्यवादी और विवेकशील था। उसकी स्त्री समान कुलमें उत्पन्न, धर्मपूर्वक विवाहित तथा शुभ आचरणवाली पतिव्रता थी। वह भी सदा देवताओं और ब्राह्मणोंके हितमें तत्पर रहती थी। महात्मा पैजवनको पूर्वपुण्यके प्रभावसे धनकी प्राप्ति हुई थी। वह सदा स्वजनोंके द्वारा स्वदेश और परदेशमें व्यापार किया करता था। अपने और दूसरेके धनसे भी वह व्यापार करता-कराता था। इस प्रकार धर्मपर दृष्टि रखनेवाले उस पैजवनको नाना प्रकारका प्रचुर धन प्राप्त हुआ। उसके दो पुत्र हुए। वे दोनों ही पिताकी सेवा-शुश्रूषामें लगे रहनेवाले थे। धन आदिका अहङ्कार तो उन्हें छूतक नहीं गया था। वे अपने धर्मयुक्त आचरणसे शोभा पाते थे और पिता-माताकी सेवाके अतिरिक्त दूसरी किसी वस्तुका आदर नहीं करते थे। उनकी स्त्रियाँ भी अपने सास-श्वशुरकी सेवामें अनिवार्यरूपसे लगी रहती थीं। पैजवनका घर धन-धान्यसे भरा रहता था। वह स्वयं भी सदा धर्मपरायण हो देवताओं और अतिथियोंके पूजनमें तत्पर रहता था। उसके घरपर आया हुआ कोई भी अतिथि विमुख नहीं लौटता था। वह शीतकालमें धन और उष्ण-कालमें अन्न एवं जलका दान करता था। वर्षाकालमें वस्त्र तथा अन्न बाँटा करता था। भगवान् शिव और विष्णुके व्रतमें स्थित होकर उचित समयमें वह बावली, कूप, तड़ाग, प्याऊ तथा देवमन्दिर बनवाता था। चातुर्मास्यमें वह विशेषरूपसे भगवान् विष्णुके भजनमें लगा रहता था।

एक दिन ब्रह्मज्ञानपरायण शान्त तपस्वी परम जितेन्द्रिय गालव मुनि पैजवन शूद्रके घरमें आये। वह अभ्युत्थान और आसन आदि उपचारोंसे मुनिकी पूजा करके मधुर वाणीमें बोला—'आज मेरा जन्म सफल हो गया, जीवन अति उत्तम हो गया, आज मेरा धर्माचरण भी सार्थक हुआ। मुने! आपने यहाँ पधारकर कुलसहित मुझे उन्नत कर दिया। आपकी दृष्टिसे मेरे सारे पाप जलकर भस्म हो गये, मुझ गृहस्थके सम्पूर्ण गृहको आज आपने पवित्र कर दिया।'

उस शूद्रकी भक्तिसे गालव मुनि बहुत प्रसन्न हुए। उनकी सारी थकावट दूर हो गयी। वे हाथ जोड़कर र हुए शूद्रसे बोले—'सौम्य! तुम कुशलसे तो हो न? तुम्ह मन धर्ममें लगता है न? क्योंकि भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र अ सब लोग सदा स्वार्थसे ही सम्बन्ध रखते हैं। तुम गोविन सदा भक्ति रखते हो न? दानमें तो तुम्हारी रुचि है क्या धर्म, अर्थ और कामसम्बन्धी कार्योंमें तुम्हारा मन उत्स के साथ संलग्न होता है? भगवान् विष्णुका चरणोदक प्र दिन सिरपर धारण करते हो न? भगवान् विष्णुका भज श्रीविष्णुकी कथा, श्रीविष्णुका स्तोत्र, श्रीविष्णुका नमस्क श्रीविष्णुका ध्यान और भगवान् विष्णुका पूजन—यह भगवान्‌के शयनकाल (चातुर्मास्य) में किया जाय तो म देनेवाला होता है।'

ऐसा कहते हुए मुनिको प्रणाम करके शूद्रने फि कहा—मुने! आपकी कृपादृष्टिसे ही मुझे इस आश्रमका पूरा- फल मिल गया। तथापि मैं आपकी उपदेशयुक्त वाणी सु चाहता हूँ। आपके आगमनका क्या प्रयोजन है, यह कृ करके बतावें?

तब गालवजीने उस धर्मात्मा एवं सत्यवा शूद्रसे कहा—इधर तीर्थयात्रामें लगे हुए मुझे कई म व्यतीत हो गये, अब चातुर्मास्य आ गया है। अतः अ आश्रमको जाऊँगा। भगवान् नारायणकी प्रसन्नताके लि आषाढ़ शुक्ला एकादशीको अपने घरपर चातुर्मास्यका नि ग्रहण करूँगा।

पैजवन बोला—द्विजश्रेष्ठ! मेरे ऊपर अनुग्रह क कोई ज्ञानकी बात मुझे भी बताइये। वेदमें मेरा अधिक नहीं है। वेदसारके जपका भी मुझे अधिकार नहीं है। अ विशेषतः चातुर्मास्यमें पालन करने योग्य यदि कोई मो साधक उपाय हो तो उसे बताइये।

गालवजीने कहा—जो मनुष्य शालग्राममें स्थि भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं, भक्ति उनसे दूर नहीं है जिसका मन भगवान् शालग्रामके चिन्तनमें लगा हुआ उसके द्वारा जो कुछ भी शुभ कर्म किया जाता है, वह अ होता है। चातुर्मास्यमें इसका विशेष माहात्म्य है। ज शालग्राम-शिला और द्वारकाकी शिला दोनोंका सङ्गम वहाँ मनुष्यके लिये मुक्ति दुर्लभ नहीं है। जिस भूमिमें सैक पापोंसे युक्त मनुष्योंद्वारा भी शालग्रामकी शिला पूजी ज

है, वहाँ यह शिला पाँच कोसतकके प्रदेशको पवित्र करती है। यह शालग्राम-शिला तेजोमय पिण्ड है, साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है। इसके दर्शनमात्रसे भी तत्काल सब पापोंका नाश हो जाता है। महाशूद्र! शालग्राम-शिलाकी उपस्थितिसे सब तीर्थ और देवमन्दिर पवित्र हो जाते हैं तथा समस्त नदियाँ तीर्थत्वको प्राप्त होती हैं। शालग्राम-शिलाकी सन्निधिमात्रसे सर्वत्र सम्पूर्ण क्रियाएँ शोभन होती हैं। जिसके घरमें शुभ शालग्राम-शिलाका कोमल तुलसीदलोंद्वारा पूजन होता है, वहाँ यमराज अपना मुँह नहीं दिखाते। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा सच्छूद्रोंको भी शालग्राम-शिलाके पूजनका अधिकार है।

सच्छूद्रने पूछा—ब्रह्मन्! आप वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। सुना जाता है कि स्त्री और शूद्र आदिके लिये शालग्राम-शिलाके पूजनका निषेध है। अतः मेरे-जैसा मनुष्य किस प्रकार शालग्रामका पूजन करे?
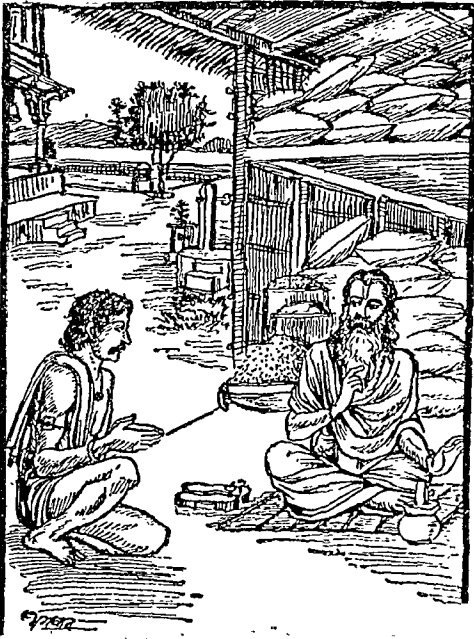
गालवजीने कहा—मानद! शूद्रोंमें केवल असत् शूद्रके लिये शालग्राम-शिलाका निषेध है। स्त्रियोंमें भी पतिव्रता स्त्रियोंके लिये उसका निषेध नहीं किया गया है। जो शालग्राम-शिलाके ऊपर चढ़ायी हुई माला अपने मस्तकपर धारण करते हैं, उनके सहस्रों पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जो शालग्राम-शिलाके आगे दीपदान करते हैं, उनका कभी यमपुरमें निवास नहीं होता। जो शालग्राममें व्याप्त भगवान् विष्णुकी मनोहर पुष्पोंद्वारा पूजा करते हैं तथा जो भगवान् विष्णुके शयनकाल (चातुर्मास्य)में शालग्राम-शिलाको पञ्चामृतसे स्नान कराते हैं, वे मनुष्य संसारबन्धनमें कभी नहीं पड़ते। मुक्तिके आदिकारण निर्मल शालग्रामगत श्रीहरिको अपने हृदयमें स्थापित करके जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक उनका चिन्तन करता है, वह मोक्षका भागी होता है। जो सब समयमें, विशेषतः चातुर्मास्यकालमें, भगवान् शालग्रामके ऊपर तुलसीदलकी माला चढ़ाता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। तुलसीदेवी भगवान् विष्णुको सदा प्रिय हैं। शालग्राम महाविष्णुके स्वरूप हैं और तुलसीदेवी साक्षात् लक्ष्मी हैं। इसलिये चन्दनचर्चित सुगन्धित जलसे तुलसीमञ्जरीसहित शालग्राम-शिलारूप श्रीहरिको नहलाकर जो तुलसीकी मञ्जरियोंसे उनका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाता है। उत्तम पुष्पोंसे पूजित भगवान् शालग्रामका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर श्रीहरिमें तन्मयताको प्राप्त होता है। शालग्राम-शिलाके चौबीस भेद हैं, उनका वर्णन सुनो। पहले केशव हैं, उनकी पूजा करनी चाहिये। दूसरे मधुसूदन, तीसरे संकर्षण, चौथे दामोदर, पाँचवें वासुदेव, छठें प्रद्युम्न, सातवें विष्णु, आठवें माधव, नवें अनन्तमूर्ति, दसवें पुरुषोत्तम, ग्यारहवें अधोक्षज, बारहवें जनार्दन, तेरहवें गोविन्द, चौदहवें त्रिविक्रम, पंद्रहवें श्रीधर, सोलहवें हृषीकेश, सत्रहवें नृसिंह, अठारहवें विश्वयोनि, उन्नीसवें वामन, बीसवें नारायण, इक्कीसवें पुण्डरीकाक्ष, बाईसवें उपेन्द्र, तेईसवें हरि और चौबीसवें श्रीकृष्ण कहे गये हैं। ये चौबीस मूर्तियाँ चौबीस एकादशियोंसे सम्बन्ध रखती हैं। सालभरमें चौबीस एकादशियाँ और ये चौबीस मूर्तियाँ पूजी जाती हैं। इनकी नित्य पूजा करनेवाला मनुष्य भक्तिमान् होता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस प्रसंगको सुनता और पढ़ता है, उसके ऊपर भूतधारिणी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं।

सतीका देह-त्याग, पार्वतीविवाह, भगवान् शिवका हरिहररूपमें प्राकट्य और शालग्राम-शिलाका महत्त्व

गालवजी कहते हैं—भगवान् विष्णु जिस प्रकार शालग्राम-शिलाके स्वरूपको प्राप्त हुए हैं और भगवान् शिव भी जिस प्रकार लिङ्गाकारमें स्थित हुए हैं, वह सब प्रसङ्ग मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें ब्रह्माजीके अंगूठेसे प्रजापति दक्ष उत्पन्न हुए थे। दक्षके सती नामकी एक पुत्री हुई, जो उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न और बड़ी साध्वी थी। विधिके ज्ञाता भगवान् शङ्करने सतीके साथ वेदोक्त विधिसे विवाह किया। दक्ष प्रजापतिका चित्त मोहवश मूढ़ताको प्राप्त हो गया था। उन्होंने एक महान् यज्ञका आयोजन किया और उसमें भगवान् शङ्करके प्रति द्वेष-भावका परिचय दिया। पिताके उस महान् द्वेषसे सतीदेवी कुपित हो उठीं और यज्ञ-वेदीमें आकर प्राणायाममें तत्पर हो उन्होंने अग्निमयी धारणाके द्वारा अपना शरीर त्याग दिया। उनके शरीरमें जो पैतृक अंश था, उसका परित्याग करके अपने भागके साथ सतीदेवीने मन-ही-मन शीतल हिमालयका चिन्तन किया। मृत्युकालमें अपने कर्मके अधीन हुआ मन जहाँ-जहाँ जाता है, वहीं-वहीं उसका अवतार होता है। अतः अग्निमें जली हुई सतीदेवी शीतल हिमालयका चिन्तन करनेके कारण हिमालयकी पुत्री हुई। वहाँ पर्वतकन्या होकर उन्होंने शिवभक्तिमें तत्पर हो बड़ी उग्र तपस्या की। तदनन्तर सहस्रों वर्षोंके पश्चात् भूतभावन भगवान् महेश्वर ब्राह्मणका वेष धारण कर उस स्थानपर आये और पार्वतीके कर्म एवं स्वभावकी परीक्षा लेकर उन्हें तपस्यासे विशुद्ध जाना। तत्पश्चात् दिव्यशरीर धारण करके भगवान् शिवने पार्वतीका हाथ पकड़ लिया और कहा—'देवि! तुमने तपस्यासे मुझे जीत लिया है, बोलो तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?' तब पार्वतीने महेश्वरसे कहा—'आप मुझे अङ्गीकार करनेमें मेरे पिताको निमित्त बनाइये।' उनके इस प्रकार कहनेपर भगवान् शङ्करने सप्तर्षियोंको हिमालयके पास भेजा। सप्तर्षियोंने हिमालयके पास जाकर लग्नका समय बतलाया और महादेवजीसे सब समाचार कहकर वे अपने स्थानको चले गये। तदनन्तर लग्नके दिन इन्द्र आदि सब देवता ब्रह्मा, विष्णु और अग्निको आगे करके आये और 'वर' वेषमें भगवान् शङ्करका दर्शन करके बड़े प्रसन्न हुए। हिमवान्ने दूल्हा-वेषमें भगवान् शङ्करका दर्शन करके अपनेको कृतार्थ माना और प्रसन्नतापूर्वक मधुपर्क आदि शुभ उपचारोंसे उनका पूजन किया। तत्पश्चात् वेदोक्त विधिसे उस गुणवती कन्याको हिमवान्ने भगवान् शिवको सौंप दिया। उसके बाद भगवान् शिवने अग्निकी परिक्रमा की और जब उनसे गोत्र आदि पूछा गया, तब वे लज्जित-से हो गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजीके कथनानुसार विवाहकी शेष विधि पूरी की गयी। जो यज्ञमें चरु ग्रहण करते समय अपने पाँच मुख प्रकाशित करनेवाले हैं, वे ही भगवान् महेश्वर गिरिराजनन्दिनीके लिये सुन्दर रूप और वेष-भूषासे सम्पन्न 'वर' बने हुए विराजमान थे। पार्वतीने भगवान् शङ्करको ही अपना प्राणवल्लभ स्वीकार किया। विवाहके पश्चात् दहेज देकर हिमालयने शिवजीको विदा किया। वहाँसे भगवान् शिव मन्दराचल पर्वतपर आये। वहाँ विश्वकर्माने उनके लिये क्षणभरमें मणिमय भवनका निर्माण किया। वह मन्दिर देवाधिदेव भगवान् शिवकी इच्छाके अनुसार बढ़नेवाला था। उस सुन्दर भवनमें पार्वतीके साथ निवास करते हुए भगवान् शङ्करकी दृष्टिमें वायुरूपधारी कामदेव आया। कामदेवने शिवजीको देखकर इस प्रकार स्तवन किया—'वृषभध्वज! आपको नमस्कार है। आप सर्वस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप गणोंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। हे नाथ! मेरी रक्षा कीजिये। प्रभो! आपके इस चराचर जगत्में कोई ऐसी वस्तु नहीं दिखायी देती, जो आपसे रहित हो। आप ही रक्षक, आप ही सृष्टि करनेवाले तथा आप ही समस्त संसारका संहार करनेवाले हैं। महादेव! मुझपर कृपा कीजिये और मुझे देह-दान दीजिये।'

भगवान् शिव बोले—कामदेव! मैंने पूर्व कालमें तुम्हें पार्वतीके आगे भस्म किया है। अब पुनः उन्हींके समीप शरीरधारी हो जाओ।

भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर कामदेवने अपना शरीर धारण किया और विनयसे नम्र हो उसने पार्वतीके दोनों चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय उसके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी। पार्वती और परमेश्वरका प्रसाद पाकर महामोह एवं बलसे सम्पन्न महातेजस्वी कामदेव तीनों लोकोंमें विचरण करने लगा।

प्राचीन कालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर भयङ्कर रूप धारण करनेवाले मदोन्मत्त दानवोंने देवताओंको मार।

देवता भयभीत होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये। बृहस्पति आदि सभी देवताओंने जगत्पिता ब्रह्माको नमस्कार करके उनका स्तवन किया। फिर सब-के-सब हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब ब्रह्माजीने उनसे पूछा—'देवताओ! किसलिये मेरे पास आये हो?'

देवता बोले—तात! अद्भुत पराक्रम करनेवाले दैत्योंने युद्धमें हमें परास्त कर दिया। अतः हम सब लोग आपकी शरणमें आये हैं। देवेश्वर! अपनी शरणमें आये हुए हमलोगोंकी आप रक्षा कीजिये।

देवताओंकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—एक समय शिवभक्तोंका भगवान् विष्णुके भक्तोंके साथ एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे बड़ा विवाद हुआ। तब भगवान् शङ्करने अपने भक्तोंके देखते-देखते एक परम अद्भुत रूप धारण किया। वह उनका हरिहर-स्वरूप था। वे आधे शरीरसे शिव और आधे शरीरसे विष्णु हो गये। एक ओर भगवान् विष्णुके चिह्न और दूसरी ओर भगवान् शिवके चिह्न प्रकट हुए। एक ओर गरुड़ और दूसरी ओर नन्दी वृषभ उपस्थित थे। एक ओर मेघके समान श्याम वर्ण था तो दूसरी ओर कर्पूरके समान गौर वर्ण। दोनोंमें एकताका स्पष्टीकरण हुआ। इसी प्रकार सम्पूर्ण विश्वमें एक ही भगवान् व्यापक हैं। अतः विश्व भगवान्से भिन्न नहीं है। इस तरह भगवान्की एकताका बोध हुआ। श्रुतियों और स्मृतियोंके अर्थको बाधित करनेवाली भेदबुद्धि नष्ट हो गयी। पाखण्डी और युक्तिवादी सब आश्चर्यचकित हो गये। सबने अपने-अपने मतका आग्रह छोड़कर मोक्षमार्गकी शरण ली। मन्दराचल पर्वतपर वह हरिहर-मूर्ति आज भी विद्यमान है, जिसकी प्रमथ आदि गण सदा स्तुति करते रहते हैं। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली वह मूर्ति सम्पूर्ण विश्वका बीज एवं अनन्त है। शिव और विष्णुकी उस संयुक्त मूर्तिका स्मरण करनेपर वह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली है। वह परम सत्य एवं योगी पुरुषोंके द्वारा चिन्तन करने योग्य है। मुक्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्य उस मूर्तिका ध्यान करके परम पदको प्राप्त होते हैं। चातुर्मास्यमें विशेषरूपसे उसका ध्यान करके मनुष्य फिर मानवलोकमें जन्म नहीं लेता। उस हरिहर-मूर्तिके समीप जो लोग जाते हैं, उनका वे भगवान् कल्याण करते हैं।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् वे अग्नि आदि देवता मन्दराचल पर्वतपर गये और भगवान् महेश्वरको खोजते हुए वहीं भ्रमण करने लगे। तदनन्तर चातुर्मास्य पूर्ण होनेपर हरिहर-स्वरूपधारी भगवान् शि[व] उनके ऊपर प्रसन्न हो प्रत्यक्ष दर्शन देकर बोले—'देवेश्वरो! अब तुमलोग जाओ और अपने-अपने अधिकारोंका उपभो[ग] करो। मैंने उन दानवोंको जिनसे तुम्हें भय था, मार डाला है।' तब प्रसन्नचित्त एवं बाधारहित देवता कोटि-कोटि विमानोंके द्वारा अपने-अपने अधिकारोंको प्राप्त हुए।

एक समय सब देवताओं तथा भगवान् विष्णु और शिवके द्वारा भी पार्वतीजीकी इच्छाके प्रतिकूल कोई कार्य हो गया। इससे उन्होंने देवताओंको मर्त्यलोकमें प्रस्तर प्रतिमा होनेका शाप दिया। उसी समय उन्होंने भगवान् विष्णुसे कहा—'आप भी मर्त्यलोकमें शिलारूप होंगे और शिवजीको भी ब्राह्मणोंके शापसे लिङ्गाकार प्रस्तररूप प्राप्त होगा।' तब भगवान् विष्णुने पार्वतीजीको प्रणाम करके कहा—'महाव्रते! महादेवि! आप सदैव महादेवजीकी प्रिया हैं।

सम्पूर्ण भूतोंकी जननि! आपको नमस्कार है। आप कल्याणमयी हैं, आपको नमस्कार है।' तब पार्वतीजीने प्रसन्न होकर कहा—'जनार्दन! आप शिलारूपमें रहकर भी योगीश्वरोंको मोक्ष देनेवाले होंगे। विशेषतः चातुर्मास्यमें सब भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाले होंगे। [ब्रह्माजी]की प्यारी पुत्री जो गण्डकी नामवाली नदी है, वह महान्[...]

राशिसे भरी हुई और परम पुण्यदायिनी है। उसीके अत्यन्त निर्मल नीरमें आपका निवास होगा। पुराणोंके ज्ञाता आपको चौबीस स्वरूपोंमें देखेंगे। आपके मुखमें सुवर्ण होगा और शालग्राम आपकी संज्ञा होगी। गोलाकार तेजोमय शरीर अपूर्व शोभासे युक्त होगा। उस शालग्राम स्वरूपमें आप सम्पूर्ण सामर्थ्यसे युक्त होकर योगियोंको भी मोक्ष देनेवाले होंगे। शालग्राम-शिलामें व्याप्त हुए आपका जो मनुष्य पूजन करेंगे, उन भक्तोंको आप मनोवाञ्छित सिद्धि प्रदान करेंगे।'

गालवजी कहते हैं—महाशूद्र! भगवान् विष्णु जिस प्रकार शालग्राम-शिलामय स्वरूपको प्राप्त हुए, वह सब प्रसंग मैंने तुम्हें बता दिया।

शालग्राम-पूजन, द्वादशाक्षर मन्त्र एवं रामनामकी महिमा

गालवजी कहते हैं—गण्डकी नदीमें भगवान् विष्णु शालग्रामरूपसे प्रकट होते हैं और नर्मदा नदीमें भगवान् शिव नर्मदेश्वर रूपसे उत्पन्न होते हैं। ये दोनों स्वयं प्रकट हैं, कृत्रिम नहीं। शालग्राम-शिलामें व्याप्त भगवान् विष्णु चौबीस भेदोंसे उपलब्ध होते हैं; किंतु भगवान् सदाशिव सदा एक रूपमें ही नर्मदासे प्रकट होते हैं। जहाँ गण्डकीके निर्मल जलमें शालग्राम-शिला उपलब्ध होती है, वहाँ स्नान और जलपान करके मनुष्य ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। गण्डकीसे प्रकट होनेवाली शालग्राम-शिलाका पूजन करके मनुष्य शुद्धात्मा योगीश्वर होता है। भगवान् विष्णु पूजन, पठन, ध्यान और स्मरण करनेपर समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। फिर शालग्राम-शिलामें उनकी पूजा की जाय, तो उसके महत्त्वके विषयमें क्या कहना है; क्योंकि शालग्राममें साक्षात् श्रीहरि विराजमान होते हैं। चातुर्मास्यमें शालग्रामगत भगवान् विष्णुको नैवेद्य, फल और जल अर्पण करना विशेषरूपसे शुभ होता है। चातुर्मास्यमें शालग्राम-शिला सबको पवित्र करती है। जहाँ शालग्रामस्वरूप भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है, वहाँ पाँच कोसतकके भूभागको वे भगवान् पवित्र कर देते हैं। वहाँ कोई अशुभ नहीं होता। जहाँ लक्ष्मीपति भगवान् शालग्रामका पूजन होता है, वहाँ वह पूजन ही सबसे बड़ा सौभाग्य है, वही महान् तप है और वही उत्तम मोक्ष है। जहाँ दक्षिणावर्त शङ्ख, लक्ष्मीनारायणस्वरूप शालग्राम-शिला, तुलसी-का वृक्ष, कृष्णसार मृग और द्वारकाकी शिला (गोमती चक्र) हो, वहाँ लक्ष्मी, विजय, विष्णु और मुक्ति—इन चारों-की उपस्थिति होती है। भगवान् लक्ष्मीनारायण (शालग्राम) की पूजा करनेवाले मनुष्यको भगवान् अति पुण्य प्रदान करते हैं, जिससे वह उसी क्षण मुक्त हो जाता है। भगवान् विष्णुका ध्यान पापोंका नाश करनेवाला है। तुलसीकी मञ्जरियोंसे पूजित हुए भगवान् शालग्राम पुनर्जन्मका नाश करनेवाले हैं। सब प्रकारसे यत्न करके उन्हीं जगदीश्वर विष्णुका सेवन करना चाहिये। वे सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त होकर स्थित हैं।

एक समय पार्वतीजीने शिवजीसे कहा—महेश्वर! आपके हाथमें यह रुद्राक्षकी माला सदा मौजूद रहती है। देव! आप किस मन्त्रका जप करते हैं, यह सन्देह मेरे मनमें उठा करता है; क्योंकि आप ही सबके स्वामी हैं। आपसे बढ़कर दूसरे किसीको मैं नहीं जानती। फिर भी आप बड़ी भक्तिसे सदा किसी मन्त्रका जप करते हुए दिखायी देते हैं। देवेश! आपसे भी श्रेष्ठ और कौन है, जिसका आप मन-ही-मन चिन्तन किया करते हैं।

भगवान् शिव बोले—प्रिये! भगवान् विष्णुके सहस्र नामोंमें जो सारभूत नाम है, मैं उसीका नित्य निरन्तर चिन्तन करता हूँ। मैं रामनाम जपता हूँ और उसीके अङ्ककी इस मालाद्वारा गणना करता हूँ। श्रीरामका अवतार बहुत ही श्रेष्ठ है। द्वादश अक्षरोंसे युक्त जो सनातन ब्रह्मरूप प्रणव है, वह अ, ऊ, म—इन तीन अक्षरोंसे सम्बद्ध है, तीन ग्रामोंसे युक्त है। उस बिन्दुयुक्त प्रणव-मन्त्रका मैं सदैव मालाद्वारा जप करता हूँ। यह सम्पूर्ण वेदोंका सारभूत है। यह नित्य, अक्षर, निर्मल, अमृत, शान्त, तद्रूप, अमृततुल्य, कलातीत, सम्पूर्ण जगत्का आधार, मध्य और कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंका बीज है। इसको जानकर मनुष्य शीघ्र ही घोर संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। ॐकारसहित जो द्वादशाक्षर बीज है, उसका जप करनेवाले मनुष्यके लिये वह कोटि-कोटि पापोंका दाह करनेवाला दावानल बन जाता है। द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का चिन्तन ही सबसे उत्तम ज्ञान है, जो शुभ और अशुभ दोनोंका विनाश करनेवाला है। द्वादशाक्षर मन्त्र करोड़ों जन्मोंमें कहीं किसीको उपलब्ध होता है। चातुर्मास्यमें उसका स्मरण विशेषरूपसे ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाला तथा मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाला है। इस अक्षर-

से प्रकट हुए मन्त्रका जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा आश्रय लेता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जो भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर हो उनके बारह मास सम्बन्धी पापहारी नामोंका शालग्राम-शिलामें न्यास करता है, उसे प्रतिदिन द्वादशाह यज्ञका फल प्राप्त होता है। द्वादशाक्षर मन्त्रके माहात्म्यका सहस्रों जिह्वाओंद्वारा भी वर्णन नहीं किया जा सकता। संसारमें इसका जप, ध्यान और स्तवन करनेपर यह महामन्त्र सभी मासोंमें पाप-नाश करनेवाला होता है; किंतु चातुर्मास्यमें तो इसका यह माहात्म्य विशेषरूपसे बढ़ जाता है। इस मन्त्रके चिन्तनमात्रसे ही मनुष्योंको मनचाही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसके जपसे सनातन मोक्ष प्राप्त होता है। शान्तिपरायण जप एवं ध्यानसे मनुष्य निश्चय ही मोक्षको प्राप्त होता है। शूद्रों और स्त्रियोंके लिये प्रणवरहित जपका विधान है। पूर्वोक्त अठारह शूद्र जातिवाले मनुष्योंको जप-तप करनेकी आवश्यकता नहीं है। वे ब्राह्मण-भक्ति, दान और विष्णु भगवान्के चिन्तनसे सिद्ध हो जाते हैं। उनके लिये रामनाम मन्त्र ही । यही उन्हें कोटि मन्त्रोंसे अधिक फल देनेवाला होता है। 'राम' इस दो अक्षरके नामका जप सब पापोंका नाश करनेवाला है। मनुष्य चलते, खड़े होते और सोते समय भी श्रीरामनामका कीर्तन करनेसे इहलोकमें सुख पाता है और अन्तमें भगवान् विष्णुका पार्षद होता है। 'राम' यह दो अक्षरोंका मन्त्र कोटिशत मन्त्रोंसे भी बढ़कर है। यह सभी संकर जातियोंके पापका नाशक बतलाया गया है। चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर तो यह राममन्त्र अनन्त फल देनेवाला होता है। इस भूतलपर रामनामसे बढ़कर कोई पाठ नहीं है। जो रामनामकी शरण ले चुके हैं, उन्हें कभी यमलोककी यातना नहीं भोगनी पड़ती। जो-जो विघ्नकारक दोष हैं, सब रामनामका उच्चारण करनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं। जो परमात्मा समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणियोंमें अन्तर्यामी आत्मारूपसे रम रहा है, उसे 'राम' कहते हैं। 'राम' यह मन्त्रराज भय तथा व्याधियोंका नाश करनेवाला है। यह युद्धमें विजय देनेवाला तथा समस्त कार्यों एवं मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। रामनामको सम्पूर्ण तीर्थोंका फल कहा गया है। वह ब्राह्मणोंके लिये भी मनोवाञ्छित फल देनेवाला है। रामचन्द्र, राम-राम इत्यादि रूपसे उच्चारण किया जानेवाला यह दो अक्षरोंका मन्त्रराज भूतलपर सब कार्य सिद्ध करनेवाला है। देवता भी रामनामके गुण गाते हैं। इसलिये पार्वती! तुम भी सदा रामनामका जप करो। जो रामनामका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। रामनामसे ही सहस्र नामोंका पुण्य होता है। विशेषतः चातुर्मास्यमें उसका पुण्य दसगुना बढ़ जाता है। रामनामके उच्चारणसे हीनजातिमें उत्पन्न हुए लोगोंका महान् पाप भी भस्म हो जाता है। ये भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण जगत्को अपने तेजसे व्याप्त करके स्थित हैं और सब मनुष्योंमें अन्तरात्मारूपसे रहकर उनके पूर्वजन्मोपार्जित स्थूल एवं सूक्ष्म पापोंको क्षणभरमें भस्म करके उन्हें पवित्र कर देते हैं।

भगवान् शिवका नर्मदेश्वर शिवलिङ्गरूप होना तथा गालव-शूद्र-संवादका उपसंहार

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! द्विजोंके लिये ॐकारसहित द्वादशाक्षर मन्त्रका विधान है तथा स्त्रियों और शूद्रोंके लिये ॐकाररहित नमस्कारपूर्वक (नमो भगवते वासुदेवाय) द्वादशाक्षर मन्त्रका जप बताया गया है*। संकर-जातियोंके लिये रामनामका षडक्षरमन्त्र (ॐ रामाय नमः) है। वह भी प्रणवसे रहित ही होना चाहिये, ऐसा पुराणों और स्मृतियोंका निर्णय है। यही क्रम सब वर्णोंके लिये है और संकरजातियोंके लिये भी सदा ऐसा ही क्रम है। पार्वती! प्रणव-जपमें तुम्हारा अधिकार नहीं है। अतः तुम्हें सदा 'नमो भगवते वासुदेवाय' इसी मन्त्रका जप करना चाहिये*। यह प्रणव सब देवताओंका आदि कहा गया है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव सभी अपनी प्रिय पत्नियोंके साथ प्रणवमें निवास करते हैं। सब प्राणी और समस्त तीर्थ उसमें विभागपूर्वक स्थित हैं। प्रणव सर्वतीर्थमय तथा कैवल्य ब्रह्ममय है। शुभानने! जब तुम चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये तप करोगी, तब प्रणवसहित द्वादशाक्षरके जप करनेके योग्य होओगी। जब तपस्याकी वृद्धि होती है, तब भगवान्

* द्विजातीनां सहोङ्कारः सहितो द्वादशाक्षरः।
स्त्रीशूद्राणां नमस्कारपूर्वकः समुदाहृतः॥
(स्क० पु० मा० चा० मा० २५। २)

* ईश्वर उवाच—
प्रणवस्याधिकारो न तवास्ति वरवर्णिनि।
नमो भगवते वासुदेवायेति जपः सदा॥
(स्क० पु० मा० चा० मा० २५। ६)

विष्णुमें भक्ति होती है। प्रतिदिन भगवान् विष्णुका स्मरण करना चाहिये। इससे जिह्वा पवित्र होती है। जैसे दीपक प्रज्वलित होनेपर बड़े भारी अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् विष्णुकी कथा सुननेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः पार्वती ! तुम भगवान् विष्णुके शयनकालमें द्वादशाक्षर मन्त्रराजका विशुद्धचित्त होकर जप करो। वे ही भगवान् सन्तुष्ट होकर तुम्हें द्वादशाक्षरसहित अखण्ड ब्रह्मस्वरूपका उत्तम ज्ञान प्रदान करेंगे। तुम ब्रह्माजीके कोटि कल्पोंतक द्वादशाक्षरमन्त्रका जप करती रहो। जो प्रणव-सहित मन्त्रराजका ध्यान करता है, उसका कभी नाश नहीं होता।

महादेवजीके ऐसा कहनेपर पार्वतीजी चौमासा आनेपर हिमालयके शिखरपर तपस्या करनेके लिये गयीं। वे तीन वस्त्रोंसे युक्त हो ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करती हुई प्रातः, मध्याह्न और सायं तीनों समय भगवान्‌के हरिहर-स्वरूपका ध्यान करने लगीं। उनके साथ उनकी सखियाँ भी थीं। विशाल नेत्रोंवाली पार्वतीने अपने पिता हिमालयके मनोहर शिखरपर क्षमा आदि गुणोंसे सुशोभित हो तपस्या की।

पार्वतीजीके तपस्यामें संलग्न होनेपर भगवान् शङ्कर सब ओर पृथ्वीपर विचरण करने लगे। एक दिन उन्होंने जल-की उत्ताल तरङ्ग-मालाओंसे सुशोभित यमुनाजीको देखकर उसमें स्नान करनेका विचार किया। वे ज्यों-ही जलमें घुसे कि उनके शरीरकी अग्निके तेजसे वह जल काला हो गया। यमुना भी दिव्यरूप धारण करके अपने श्यामस्वरूपसे प्रकट हुई और भगवान् शङ्करकी स्तुति एवं नमस्कार करके बोलीं—'देवेश्वर ! मुझपर प्रसन्न होइये, मैं आपके अधीन हूँ।'

महादेवजीने कहा—जो मनुष्य इस पुण्यतीर्थमें स्नान करेगा, उसके सहस्रों पाप क्षणभरमें नष्ट हो जायँगे। यह पवित्र तीर्थ संसारमें 'हरतीर्थ' के नामसे विख्यात होगा। ऐसा कहकर भगवान् शिव यमुनाको प्रणाम करके अन्तर्धान हो गये। उन्होंने यमुनाके किनारे मनोहर रूप धारण करके हाथमें वाद्य ले लिया और ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करके सिरपर जटा बढ़ाये मुनियोंके घरोंमें स्वेच्छानुसार घूम-घूमकर अङ्गोंकी चपल चेष्टाका प्रदर्शन प्रारम्भ किया। वे कहीं गीत गाते और कहीं अपनी मौजसे नाचने लगते थे। स्त्रियोंके बीचमें आकर कभी क्रोध करते और कभी हँसने लगते थे। इस प्रकार उन्हें सब ओर घूमते देखकर मुनिलोगोंने क्रोध किया और यह शाप दिया कि 'तुम लिङ्गरूप हो जाओ।' शाप होनेपर भगवान् शिव अन्यत्र बहुत दूर चले गये। उनका वह लिङ्गरूप अमरकण्टक पर्वतके रूपमें अभिव्यक्त हुआ और वहाँसे नर्मदा नामक नदी प्रकट हुई। नर्मदामें नहाकर, उसका जल पीकर तथा उसके जलसे पितरोंका तर्पण करके मनुष्य इस पृथ्वीपर दुर्लभ कामनाओंको भी प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य नर्मदामें स्थित शिवलिङ्गोंका पूजन करेंगे, वे शिवस्वरूप हो जायँगे। विशेषतः चातुर्मास्यमें शिवलिङ्गकी पूजा महान् फल देनेवाली है। चातुर्मास्यमें रुद्रमन्त्रका जप, शिवकी पूजा और शिवमें अनुराग विशेष फलद है। जो पञ्चामृतसे भगवान् शिवको स्नान कराते हैं, उन्हें गर्भकी वेदना नहीं सहन करनी पड़ती। जो शिवलिङ्गके मस्तकपर मधुसे अभिषेक करेंगे, उनके सहस्रों दुःख तत्काल नष्ट हो जायँगे। जो चातुर्मास्यमें शिवजीके आगे दीपदान करते हैं, वे शिवलोकके भागी होते हैं। जो जलधारासे युक्त नर्मदेश्वर महालिङ्गका चातुर्मास्यमें विधि-पूर्वक पूजन करता है, वह शिवस्वरूप हो जाता है।

गालवजी कहते हैं—यह सब श्रीविष्णुके शालग्राम होनेकी और महेश्वर शिवके लिङ्गरूप होनेकी कथा सुनायी गयी। अतः जो लिङ्गरूपी शिव और शालग्रामगत श्रीविष्णु-का भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं, उन्हें दुःखमयी यातना नहीं भोगनी पड़ती। चौमासेमें शिव और विष्णुका विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये। दोनोंमें भेदभाव न रखते हुए यदि उनकी पूजा की जाय तो वे स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने-वाले होते हैं। जो भक्तिपूर्वक हरि और हरकी पूजा करते हैं, उन्हें भगवान् श्रीहरि मोक्ष प्रदान करते हैं। विवेक आदि गुणोंसे युक्त शूद्र उत्तम गतिको प्राप्त होता है। हे महाशूद्र ! तुम्हें बिना मन्त्रके भगवान् विष्णु और गिरिजापति महादेवजीका षोडशोपचारसे पूजन करना चाहिये। उनकी पूजा बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाली है।

ऐसा कहकर देवजनसे पूजित हो महर्षि गालव शीघ्र ही अपने आश्रमको चले गये। जो मनुष्य इस प्रसङ्गको सुनता और पढ़कर दूसरोंको भी सुनाता है, उसके पुण्यका कभी अन्त नहीं होता।

महादेवजीके द्वारा पार्वतीके प्रति ध्यानयोग एवं ज्ञानयोगका निरूपण

पार्वतीजी बोलीं—देवेश्वर! आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मैं ध्यानयोगको पाकर ज्ञानयोगकी प्राप्ति कर सकूँ।

महादेवजीने कहा—प्रिये! पहले जिस द्वादशाक्षर नामक मन्त्रराजका वर्णन किया गया है, उसीका तुम्हें जप करना चाहिये। वह वेदका सनातन सार तत्त्व है। प्रणव (ॐकार) सब वेदोंका आदि है। वह समस्त ब्रह्माण्डोंका याजक है तथा समस्त कार्योंमें प्रथम उच्चारण करने योग्य तथा सब सिद्धियोंका दाता है। उसका शुक्ल वर्ण है, मधुच्छन्दा ब्रह्मा ऋषि हैं, परमात्मा देवता हैं, गायत्री छन्द है तथा समस्त कर्मोंमें उसका विनियोग किया जाता है। देवि! जो प्रतिदिन सम्पूर्ण बीजाक्षरमय द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करता है, वह पापोंसे लिप्त नहीं होता। यह द्वादश लिङ्गमय अक्षरोंसे युक्त द्वादशाक्षर मन्त्र कूर्मचक्रमें स्थित है। विनियोगसहित प्रत्येक वर्णके ध्यान, ऋषि, बीज, छन्द और देवता आदिके चिन्तनपूर्वक ध्यान, जप और पूजन करनेपर भक्तोंका कर्मजनित बन्धनोंसे मोक्ष हो जाता है। ध्यानयोगसे समस्त पापोंका नाश होता है। जप और ध्यान ही योगका स्वरूप है। शब्दब्रह्म (ॐकार एवं वेद) से प्रकट हुआ द्वादशाक्षर मन्त्र वेदके समान है। ध्यानसे मनुष्य सब कुछ पाता है। ध्यानसे वह शुद्धताको प्राप्त होता है, ध्यानसे परब्रह्मका बोध होता है तथा सगुण स्वरूपमें चित्तवृत्तिकी एकाग्रतारूप योग भी ध्यानसे ही सम्भव होता है *। ध्यानयोग दो प्रकारका होता है। एक सालम्ब (सविशेष) और दूसरा निरालम्ब (निर्विशेष)। सगुण साकार विग्रह नारायणका दर्शन सालम्ब ध्यान है। दूसरा जो निरालम्ब ध्यान है, वह ज्ञानयोगके द्वारा बताया गया है। वह सबका आलम्ब है। रूपरहित, अप्रमेय तथा सर्वस्वरूप जो सनातन तेज है, जिसका प्रकाश कोटि-कोटि विद्युतोंके समान है, जो सदा उदयशील एवं पूर्णतम है, जो निष्कल, सकल एवं निरञ्जनमय है, आकाशके समान सर्वव्यापक है, सुखस्वरूप एवं तुरीयातीत है, जिसकी कहीं उपमा नहीं है, वही परमेश्वरका निराकारस्वरूप निरालम्ब ध्यानयोगके द्वारा चिन्तन करने योग्य है। वह द्वन्द्वोंसे रहित एवं साक्षीमात्र है। शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल है। अपने तेजसे उपमारहित और अगाध है। उसीको तुम अङ्गीकार करो।

भगवान् नारायणका सूर्य मस्तक है, पृथ्वीलोक हृदय है तथा रसातल चरण है। वे मूर्तामूर्त स्वरूपसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें स्थित हैं। भगवान् विष्णु ही ब्रह्मरूपसे ज्ञानयोगके आश्रय हैं। वे ही समस्त प्राणियोंकी सृष्टि और पालन करते हैं तथा वे ही सबका संहार करते हैं। वे सर्वदेवमय हैं। सनातन कालसे ही भगवान् विष्णु बारह मासोंके अधिपति हैं। इसलिये सम्पूर्ण मासों, समस्त दिनों और सब प्रहरोंमें श्रीहरिका स्मरण करनेवाला पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

यह कथा जिस किसी (अनधिकारी) के सामने नहीं कहनी चाहिये। जो नित्य भक्त, जितेन्द्रिय तथा शम (मनोनिग्रह) आदि गुणोंसे युक्त हो, उससे यह कथा कहनी चाहिये। भगवान् विष्णुका भक्त शूद्र हो या ब्राह्मण, उसे भी यह कथा सुनाने योग्य है। पार्वती! मेरी भक्तिसे तुम शीघ्र योगसिद्धि प्राप्त करो और ज्ञानसे प्राप्त होने योग्य सर्वोत्कृष्ट भगवान् नारायणके स्वरूपको समझो। योगका अभ्यास सदा करना चाहिये। विशेषतः चातुर्मास्यमें योगकी साधना करनेवाला पुरुष अपने सब पापोंका नाश करता है। जो योगी दो घड़ी भी अपने कानोंको बंद करके अपने मनको ब्रह्मरन्ध्रमें स्थापित करता है, वह पापोंसे मुक्त हो जाता है। जिसके घरमें एक भी योगी पुरुष एक ग्रास अन्न भी भोजन कर लेता है, वह अपने सहित तीन पीढ़ियोंका अवश्य उद्धार कर देता है। यदि ब्राह्मण योगी हो तो वह दर्शनसे भी अवश्य सब प्राणियोंकी पापराशिका संहार कर देता है। यदि ब्रह्मपरायण उत्तम कर्मवाला श्रेष्ठ शूद्र योगका अभ्यास करता है, सद्गुरुमें भक्ति रखता है और नियमित आहार करते हुए जो योगी परब्रह्मकी समाधिमें स्थित होता है, वह भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त करता है। भगवान् श्रीहरिकी प्रीतिसे मनुष्य उनके स्वरूपमें लीन हो जाता है। पार्वती! यह योग ज्ञानकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। सनकादि आचार्यों तथा मुक्तिकी इच्छावाले देवेश्वरोंने भी इसका सेवन किया है। सर्वप्रथम योगियोंके जो सदा ज्ञानकी सम्पत्ति होती है, उस ज्ञानसम्पत्तिसे गृहीत होकर मनुष्य योगी होता है। तदनन्तर योगीके आगे अणिमा आदि सिद्धियाँ उपस्थित

---

* ध्यानेन सर्वमाप्नोति ध्यानेनाप्नोति शुद्धताम्।
ध्यानेन परमं ब्रह्म मूर्तौ योगस्तु ध्यानजः॥
(स्क० पु० मा० चा० मा० ३०। २८-२९)

होती हैं, परंतु श्रेष्ठ योगी उनमें मन नहीं लगाता। योगसे सम्पूर्ण दानों और यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। योगसे सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति होती है। कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो योगसे प्राप्त न होती हो। योगसे हृदयकी गाँठ नहीं रहने पाती। योगसे ममतारूपी शत्रु नहीं पैदा होता। योगसिद्ध पुरुषका मन कोई भी लुभा नहीं सकता। भगवान् विष्णु स्वयं ही इस चराचर जगत्में व्याप्त हैं। योगेश्वरोंके परम उपास्य उन भगवान्को अपने ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित जानकर मनुष्य इस मायामय जगत्का मोह उसी प्रकार छोड़ देता है, जैसे सर्प अपनी केंचुलको त्याग देता है।

ज्ञानयोग और उसके साधन, स्कन्दस्वामीका सेनापतित्व और कौमारव्रत

महादेवजी कहते हैं—जब शरीरमें ममता नहीं रहती, जब चित्त अत्यन्त निर्मल होता है और जब श्रीहरिमें भक्तियोग दृढ़ होता है, तब कर्मसे बन्धन नहीं होता। जब कर्म करते हुए ही मनुष्योंका मन सदा शान्त रहे, तब योगमयी सिद्धि प्राप्त होती है। भगवान् विष्णुको कर्मोंके स्वामी जानो। उनमें सब कर्मोंका समर्पण करके मनुष्य संसार-बन्धनसे छूट जाता है। यही उत्तम ज्ञान है, यही उत्तम तप है और यही उत्तम श्रेय है कि भगवान् श्रीकृष्णको सर्वकर्म समर्पण कर दिया जाय। यही निर्मल योग है। इसीको निर्गुण कहा गया है। संसारमें वही ज्ञानवान्, वही योगियोंमें अग्रगण्य और वही महायज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला है, जो श्रीहरिके चरणोंमें भक्ति रखता है। निरञ्जन भगवान् विष्णुको जान लेनेपर जिसने मनोमय, कर्ममय और वाणीमय दण्डको धारण किया है—यानी इन तीनोंको वशमें कर लिया है, वही त्रिदण्डी जानने योग्य है। अज्ञानी सदा बन्धनात्मक कर्मद्वारा बाँधा जाता है। द्विजोंको श्रुतियों और स्मृतियोंके अनुशीलनसे मोक्षका मार्ग प्राप्त होता है। यह मोक्ष मानो एक नगर है, जिसके चार दरवाजे हैं। उन दरवाजोंपर शम आदि चार द्वारपाल सदा विद्यमान रहते हैं। वे ही मोक्ष-नगरमें प्रवेश करानेवाले हैं। अतः मनुष्योंको पहले उन्हीं चारोंका सेवन करना चाहिये। उनके नाम इस प्रकार हैं—शम, सद्विचार, सन्तोष और

नहीं पाता। जो माया आदिके आवरणोंसे रहित तथा मिथ्या वस्तुसे विरक्त है और कुसङ्गसे दूर रहता है, वह योगसिद्ध पुरुष है। बुद्धि दो प्रकारकी होती है। एक त्याज्य और दूसरी ग्राह्य। संसारविषयक बुद्धि त्याग देने योग्य है और परब्रह्मके चिन्तनमें लगनेवाली कल्याणमयी बुद्धि ग्रहण करने योग्य है। पार्वती! श्रीविष्णुका जो साकार और निराकार स्वरूप है, उसमें प्रतिष्ठित होनेवाले इस अक्षर, अव्यक्त, अमृत एवं सम्पूर्ण तत्त्वको बताया गया। इस प्रकार जानकर योगीपुरुष संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। मनुष्य सद्गुरुके उपदेशसे इस ज्ञानको पाता है। जब उसके ऊपर गुरु प्रसन्नचित्त होते हैं, तब मानो सम्पूर्ण विश्व प्रसन्न हो जाता है। जिसने गुरुको सन्तुष्ट किया, उसने समस्त देवताओं और पितरोंको सन्तुष्ट कर लिया। गुरुका उपदेश, भगवत्प्रतिमाका पूजन, उत्तम विचार, शममें मनका तत्पर होना और ज्ञान-पूर्वक कर्मका अनुष्ठान करना—यह सब मोक्षसिद्धिका लक्षण है। द्वादशाक्षरमन्त्र सब पापोंका नाश करनेवाला है। यह दुष्टोंका दमन करनेवाला और परब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाला है। देवि! द्वादशाक्षररूपधारी निर्मल परब्रह्मके स्वरूपको मैंने तुमसे प्रकाशित किया है। जो मनुष्य इस द्वादशाक्षर मन्त्ररूप भगवत्स्वरूपको, जो योगियोंके ध्यान करने योग्य तथा भक्तिसे ग्राह्य है, चातुर्मास्यमें श्रद्धापूर्वक चिन्तन करता है, भगवान्

बाणोंकी बौछारसे उसकी सेनाको शीघ्र ही तितर-बितर कर डाला। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे कार्तिकेयजीने शक्तिका प्रहार करके सारथिसहित तारकासुरको क्षणभरमें भस्म कर दिया। शेष दैत्य तारकासुरको मरा हुआ देख पातालमें भाग गये। तब देवताओंने कुमारके पराक्रमकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। विजय प्राप्त करके शिव आदि सब देवताओंने स्वामी कार्तिकेयको देवताओंके सेनापति पदपर अभिषिक्त किया। इस प्रकार तारकासुरको मारकर सातवें दिन बालक कार्तिकेयने मन्दराचलपर जा अपने माता-पिताको प्रसन्न किया। परमानन्दमें निमग्न हो स्कन्दने सब वृत्तान्त स्वयं ही माता-पितासे कहा। उस समय भगवान् शङ्करने पुत्रका विवाह कर देनेका विचार किया और कार्तिकेयसे कहा—'वत्स ! तुम्हारे विवाहका समय प्राप्त है, तुम पत्नी प्राप्त करके उसके साथ धर्माचरण करो।' पिताकी यह बात सुनकर स्वामी कार्तिकेयने कहा—'भगवन् ! संसारके दृश्य और अदृश्य पदार्थोंमेंसे मैं किसका ग्रहण और किसका त्याग करूँ। जगत्‌में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब मेरे लिये माता पार्वतीके समान हैं और जितने भी पुरुष हैं, उन सबको मैं आपके रूपमें देखता हूँ। आप मेरे गुरु हैं, अतः मुझे नरकमें डूबनेसे बचाइये। मैंने आपके प्रसादसे यह विवेक प्राप्त किया है। भयङ्कर संसार-सागरमें मैं फिर न गिर जाऊँ, इसकी चेष्टा रक्खें। जैसे दीपक हाथमें लेकर किसी वस्तुको खोजनेवाला पुरुष उस वस्तुको देख लेनेपर उसके लिये स्वीकार किये जानेवाले अन्य सब साधनोंको त्याग देता है, उसी प्रकार योगी ज्ञान प्राप्त कर लेनेपर संसारको त्याग देता है। सर्वज्ञ परमेश्वर ! सर्वव्यापी ब्रह्मको जानकर जिसके सब कर्म निवृत्त हो जाते हैं, उसको विद्वान् पुरुष योगी कहते हैं। महेश्वर ! मानवोंके लिये ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है। ज्ञानीजन प्राप्त किये हुए ज्ञानको किसी प्रकार भी खोना नहीं चाहते। यह ज्ञान आपके प्रभावसे ही प्राप्त होने योग्य है। मैं संसारबन्धनसे छूटनेकी इच्छा रखता हूँ। अतः मुझसे इस प्रकार विवाह आदि करनेकी बात नहीं कहनी चाहिये।'

जब देवी पार्वतीने विवाहके लिये बार-बार आग्रह किया, तब कार्तिकेयजी पिता-माताको प्रणाम करके क्रौञ्च पर्वतपर चले गये और वहाँ परम पवित्र आश्रममें बैठकर बड़ी भारी तपस्या करने लगे। उन्होंने द्वादशाक्षर बीजरूप परब्रह्मका जप

किया और पहले ध्यानसे सब इन्द्रियोंको वशमें करके एक मासतक मनको योगमें लगाकर ज्ञानयोग प्राप्त कर लिया। जब उनके सामने अणिमा आदि सिद्धियाँ आयीं, तब वे उनसे क्रोधपूर्वक बोले—'अरी ! यदि अपनी दुष्टताके कारण तुम-लोग मेरे पास भी चली आयीं, तो मेरे-जैसे शान्तपुरुषोंका कभी पराभव न कर सकोगी।'

यह चातुर्मास्यका माहात्म्य सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो भगवान् शिव अथवा विष्णुको अपने हृदयमें स्थापित करके अभेद-बुद्धिसे उनके अद्वितीय स्वरूपका चिन्तन करता है, उसके लिये शत्रु भी अत्यन्त प्रिय हो जाता है।

चातुर्मास्य-माहात्म्य सम्पूर्ण।

ब्रह्मोत्तर-खण्ड

शिवके षडक्षर एवं पञ्चाक्षर मन्त्रका माहात्म्य; राजा दाशार्ह तथा रानी कलावतीकी कथा

ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञानचक्षुषे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥

'ज्योतिमात्र जिनका स्वरूप है, निर्मल ज्ञान ही जिनका नेत्र है, जो लिङ्गस्वरूप ब्रह्म हैं, उन परम शान्त कल्याणमय भगवान् शिवको नमस्कार है।'

ऋषि बोले—सूतजी ! आपने संक्षेपसे भगवान् विष्णुके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया, जो समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला और परम पवित्र है। हमने भी उसे ध्यानपूर्वक सुना है। अब हमलोग त्रिपुरविनाशक शिवजीके माहात्म्य और उनके मन्त्रोंकी महिमाको सुनना चाहते हैं।

सूतजीने कहा—मुनियो ! मरणधर्मा मनुष्योंके लिये इतना ही सबसे उत्तम एवं सनातन श्रेय है कि भगवान् महेश्वरकी कथामें अकारण भक्तिभावका उदय हो*। समस्त पुण्यों, श्रेयके सम्पूर्ण साधनों और समस्त यज्ञोंमें जपयज्ञको ही सर्वोत्तम माना गया है†। जैसे सब देवताओंमें त्रिपुरारि भगवान् शङ्कर श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब मन्त्रोंमें शिवका षडक्षर मन्त्र श्रेष्ठ है। उसीको प्रणवसे रहित होनेपर पञ्चाक्षर मन्त्र भी कहते हैं। वह जप करनेवाले पुरुषोंको मोक्ष देनेवाला है। सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले सब श्रेष्ठ मुनि इस मन्त्रका सम्यग् रूपसे सेवन करते हैं। शिवजीके शुभ पञ्चाक्षर मन्त्रमें सर्वज्ञ, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् शिव सदा रमते रहते हैं। यह मन्त्रराज सम्पूर्ण उपनिषदोंका आत्मा है। इसके जपसे सब मुनियोंने निरामय परब्रह्मका साक्षात्कार किया है। 'नमः शिवाय' मन्त्रमें 'नमः' पदके अर्थभूत नमस्कारके द्वारा जीवभाव परमात्मा शिवमें मिलकर तद्रूप हो जाता है। अतः वह मन्त्र साक्षात् परब्रह्मस्वरूप है। संसार-बन्धनमें बँधे हुए देहधारियोंके हितकी कामनासे स्वयं भगवान् शिवने 'ॐ नमः शिवाय' इस आदिमन्त्रका प्रतिपादन किया है। जिसके हृदयमें 'ॐ नमः शिवाय' यह मन्त्र निवास करता है, उसके लिये बहुत-से मन्त्र, तीर्थ, तप और यज्ञोंकी क्या आवश्यकता है* ? देहधारी मनुष्य तभीतक दुःखोंसे भरे हुए इस भयङ्कर संसारमें भटकते हैं, जबतक कि वे एक बार भी इस षडक्षर मन्त्रका उच्चारण नहीं करते। यह षडक्षर मन्त्र सम्पूर्ण ज्ञानोंकी निधि है। यह मोक्षमार्गको प्रकाशित करनेवाला दीपक है। अविद्याके समुद्रको सोखनेवाला वडवानल है और महापातकोंके जंगलको जला डालनेवाला दावानल है। अतः यह पञ्चाक्षर मन्त्र सब कुछ देनेवाला माना गया है। इसे मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले स्त्री-समुदाय, शूद्र और वर्णसंकर धारण कर सकते हैं। इस मन्त्रके लिये दीक्षा, होम, संस्कार, तर्पण, समय-शुद्धि तथा गुरुमुखसे उपदेश आदिकी आवश्यकता नहीं है। यह मन्त्र सदा पवित्र है†। 'शिव' यह दो अक्षरका मन्त्र ही बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेमें समर्थ है और उसमें 'नमः' पद जोड़ दिया गया, तब तो वह मोक्ष देनेवाला हो जाता है। जो गुरु निर्मल, शान्त साधु, स्वल्पभाषी, काम-क्रोधसे रहित, सदाचारी और जितेन्द्रिय हों, उनके द्वारा दयापूर्वक दिया हुआ मन्त्र शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है। प्रयाग, पुष्कर, केदार सेतुबन्ध, गोकर्ण और नैमिषारण्य—ये सब क्षेत्र मनुष्योंको शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं।

मथुरापुरीमें दाशार्ह नामसे विख्यात एक राजा हो गये हैं, जो यदुकुलमें श्रेष्ठ, बुद्धिमान्, अत्यन्त उत्साही और महान् बलवान् थे। वे शास्त्रोंके ज्ञाता, नीतियुक्त वचन बोलनेवाले, शूरवीर, धैर्यवान् तथा परम कान्तिमान् थे। अनेक शास्त्रोंके तात्पर्यको जाननेमें राजाने कुशलता प्रा

---

* एतावदेव मर्त्यानां परं श्रेयः सनातनम् ।
यदीश्वरकथायां वै जाता भक्तिरहैतुकी ॥
(स्क० पु० मा० ब्रह्मो० १ । ५)

† सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि ।
सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः ॥
(स्क० पु० मा० ब्रह्मो० १ । ७)

* किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः ।
यस्यो नमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः ॥
(स्क० पु० मा० ब्रह्मो० १ । १६)

† तस्मात् सर्वप्रदो मन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः ।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥
नास्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम् ।
न कालो नोपदेशश्च सदा शुचिरयं मनुः ॥
(स्क० पु० मा० ब्रह्मो० १ । २०, २१)

की थी। वे उदार, रूपवान्, तरुण तथा शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थे। उन्होंने काशिराजकी पुत्री कलावतीके साथ विवाह किया था। ब्याह करके घर आनेपर रात्रिमें पलंङ्गपर बैठी हुई उस स्त्रीको राजाने अपने पास बुलाया। पतिके बुलानेपर भी वह उनके समीप नहीं आयी। तब राजा उसे बलपूर्वक अपनी शय्यापर ले आनेके लिये उठे। यह देख रानीने कहा—'महाराज! मैं कारणका ज्ञान रखनेवाली तथा व्रतमें तत्पर हूँ। मेरा स्पर्श न कीजिये। आप तो धर्म-अधर्मको जानते हैं। अतः मेरे ऊपर बलप्रयोग न कीजिये। पति-पत्नीमें प्रेमपूर्वक जो समागम होता है, वही एक दूसरेकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। बलपूर्वक स्त्रियोंका सम्भोग करनेसे पुरुषोंको क्या प्रसन्नता होती है और कौन-सा सुख मिलता है? जो प्रेम न करती हो, रोगिणी हो, गर्भवती अथवा किसी व्रतका पालन करनेवाली हो, रजस्वला और रतिकी इच्छा न रखनेवाली हो, ऐसी स्त्रीके साथ पुरुषको बलपूर्वक समागमकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये।'

रानीके इस प्रकार कहनेपर भी राजा दाशार्हने उसकी बात नहीं मानी। रानीका शरीर तपाये हुए लोहेके पिण्डके समान तप रहा था। उसका स्पर्श करते ही सहसा राजाका अङ्ग-अङ्ग जलने लगा। उन्होंने भयसे विह्वल होकर अपने शरीरको जलानेवाली रानीको छोड़ दिया।

राजा बोले—प्रिये! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है कि पल्लवके समान कोमल यह तुम्हारा शरीर अग्निके समान तप्त कैसे हो गया।

रानीने उत्तर दिया—राजन्! बचपनमें मुनिवर दुर्वासाने मुझपर दया करके शिवजीके पञ्चाक्षर मन्त्रका उपदेश किया था। उस मन्त्रके प्रभावसे मेरा शरीर निष्पाप हो गया है। पापी पुरुष इसका स्पर्श नहीं कर सकते। महाराज! आपने स्वभावसे ही मदिरा पीनेवाली कुलटा और वेश्याओंका सेवन किया है। आप पवित्र मन्त्रका जप और भगवान् शङ्करकी आराधना भी नहीं करते। फिर मेरा स्पर्श कैसे कर सकते हैं?

राजा बोले—सुन्दरी! तुम मुझे भी भगवान् शङ्करके शुभ पञ्चाक्षर मन्त्रका उपदेश करो।

रानीने कहा—आप मेरे गुरु हैं, मैं आपको उपदेश नहीं कर सकती। आप मन्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ गुरु गर्गाचार्यके समीप जाइये।

इस प्रकार बातचीत करते हुए दोनों पति-पत्नी गर्ग मुनिके समीप गये और उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् राजाने विनीतभावसे एकान्तमें कहा—'गुरुदेव! आपका हृदय दयासे भरा हुआ है, आप मुझे भगवान् शिवके पञ्चाक्षर मन्त्रका उपदेश देकर कृतार्थ कीजिये।' राजाके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर विप्रवर गर्गाचार्य दोनों दम्पतिको यमुनाजीके महापुण्यमय उत्तम तटपर ले गये। वहाँ गुरुजी एक पवित्र वृक्षके मूल भागमें बैठ गये। राजाने उपवासपूर्वक उस पुण्य तीर्थके निर्मल जलमें स्नान किया। तब उन्होंने राजाको पूर्वाभिमुख बिठाकर भगवान् शिवके चरणारविन्दोंमें नमस्कार किया और राजाके मस्तकपर हाथ रखकर उन्हें शिवस्वरूप पञ्चाक्षर मन्त्रका उपदेश दिया। उस मन्त्रको धारण करते ही गुरुजीके हस्तकमलका स्पर्श होनेसे राजा दाशार्हके शरीरसे करोड़ों पाप कौओंका रूप धारण करके बाहर निकल गये।

तब गुरु गर्गाचार्यने कहा—राजन्! भगवान् शिवका पञ्चाक्षर मन्त्र जब तुम्हारे हृदयमें पहुँचा, तभी तुम्हारे कोटि-कोटि पाप कौओंके रूपमें बाहर निकल गये हैं। सहस्रों कोटि जन्मोंमें जो पापराशि सञ्चित की गयी है, वह शिवके पञ्चाक्षर मन्त्रको धारण करते ही क्षणभरमें भस्म हो जाती है। राजन्! इस समय तुम्हारे करोड़ों पातक जल गये। अब तुम पवित्रचित्त होकर अपनी इस रानीके साथ सुखपूर्वक विहार करो। ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ गर्गजी उन दोनों दम्पतिके साथ घरको लौटे। तदनन्तर गुरुजीसे आज्ञा ले राजा और रानी प्रसन्नतापूर्वक महलमें चले गये। यह पञ्चाक्षर मन्त्र सम्पूर्ण वेद, उपनिषद्, पुराण और शास्त्रोंका आभूषण है, सब पापोंका नाश करनेवाला है। इस प्रकार मैंने पञ्चाक्षर मन्त्रका महान् प्रभाव संक्षेपसे बताया है।

शिवरात्रिको शिवपूजनका महत्त्व, राजा मित्रसहका वशिष्ठके शापसे राक्षस होकर ब्राह्मणकी हत्या करना और गौतमजीका उन्हें गोकर्णक्षेत्रकी महिमा सुनाना

सूतजी कहते हैं—माघ (फाल्गुन) मासमें कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीका उपवास अत्यन्त दुर्लभ है। उसमें भी शिवरात्रिमें जागरण करना तो मैं मनुष्योंके लिये और दुर्लभ मानता हूँ। उससे भी अत्यन्त दुर्लभ है शिवलिङ्गका दर्शन। तथा परमेश्वर शिवके पूजनको तो मैं और भी दुर्लभतर मानता हूँ। सौ करोड़ जन्मोंमें उत्पन्न हुई पुण्यराशिके प्रभावसे कभी

गवान् शङ्करकी बिल्वपत्रसे पूजा करनेका अवसर प्राप्त होता । दस हजार वर्षोंतक जिसने गङ्गाजीके जलमें स्नान किया , उसको जो फल मिलता है, वही फल मनुष्य एक बार ल्वपत्रसे भगवान् शङ्करकी पूजा करके प्राप्त कर लेता है। त्येक युगमें जो-जो पुण्य इस संसारमें लुप्त हुए हैं, वे सभी ाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी (शिवरात्रि) में पूर्णतः विद्यमान हते हैं। लोकमें ब्रह्मा आदि देवता और वशिष्ठ आदि मुनि स फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। स शिवरात्रिको यदि किसीने उपवास किया तो उसे सौ यज्ञोंसे धिक पुण्य होता है। जिसने एक बिल्वपत्रसे शिवलिङ्गका ूजन किया है, उसके पुण्यकी समता तीनों लोकोंमें कौन र सकता है ?

इस विषयमें एक परम सुन्दर पुण्य-कथा कही जाती है। इक्ष्वाकुवंशमें 'मित्रसह' नामसे प्रसिद्ध एक परम धर्मात्मा राजा हो गये हैं। वे समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ, सब अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता, शास्त्रज्ञ, वेदोंके पारङ्गत विद्वान्, शूरवीर, अत्यन्त बली, उत्साही, नित्य उद्योगी और दयाके निधान थे। राजाको शिकार खेलनेका व्यसन था। एक दिन उन्होंने अपनी बहुत बड़ी सेना साथ लेकर भयङ्कर वनमें प्रवेश किया और वहाँ बहुतसे व्याघ्र, जंगली सूअर तथा सिंहोंको अपने बाणोंसे बींध डाला। राजा मित्रसह रथपर सवार हो कवचसे सुरक्षित होकर वनमें विचर रहे थे। उसी समय उन्होंने अग्निके समान आकृतिवाले एक निशाचरको मारा। उसका छोटा भाई दूरसे यह देखकर शोकमग्न हो गया और वहीं कहीं छिप गया। भाईको मारा गया देख उसने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'यह राजा बड़ा दुर्धर्ष वीर है, इसे छलसे ही जीतना चाहिये।' ऐसा निश्चय करके वह पापात्मा राक्षस मनुष्यके समान आकृति बनाकर राजाके समीप आया। राजाने सेवा करनेके लिये विनीतभावसे आये हुए उस पुरुषको देखकर अज्ञानवश उसे रसोईघरका अध्यक्ष बना दिया। तत्पश्चात् राजा लौटकर अपनी पुरीको आये। महाराज मित्रसहकी पत्नी मदयन्ती नामसे प्रसिद्ध थी। वह नलकी स्त्री दमयन्तीके समान बड़ी पतिव्रता थी। एक दिन राजा मित्रसहने श्राद्धके दिन मुनिवर वशिष्ठको निमन्त्रित करके अपने घरपर बुलाया। उस समय रसोइयेके रूपमें राक्षसने सागमें मनुष्यका मांस मिला दिया और वही वशिष्ठजीके आगे परोस दिया। उसे देखकर वशिष्ठजी बोले—'राजन्! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है। तू इतना दुष्ट और छली है कि मेरे आगे मनुष्यका मांस रख दिया। इस पापके कारण तू राक्षस हो जायगा।' जब मुनिको यह मालूम हुआ कि यह सारी करतूत राक्षसकी है, तब उन्होंने उस शापको बारह वर्षोंकी अवधिमें सीमित कर दिया। तब राजा भी कुपित होकर बोले—'यह मेरी करतूत नहीं थी और न मैं इस विषयमें कुछ जानता ही था, तो भी आपने मुझे अकारण शाप दे दिया। इसलिये गुरु होनेपर भी आपको मैं भी शाप देता हूँ।' ऐसा कहकर राजा अञ्जलिमें जल ले गुरुको शाप देनेके लिये उद्यत हुए। यह देख रानी मदयन्तीने पतिके चरणोंमें गिरकर उन्हें ऐसा करनेसे रोका। रानीके वचनका मान रखनेके लिये राजा शाप देनेसे निवृत्त हो गये और उस अञ्जलिके जलको उन्होंने अपने दोनों पैरोंपर डाल दिया। इससे राजाके दोनों पैर कल्मषयुक्त (मलिन) हो गये। तबसे राजाका नाम कल्माषपाद हो गया।

गुरुके शापसे राजा वनमें विचरनेवाले राक्षस हुए। एक दिन वनमें कहीं किशोर अवस्थावाले नवविवाहित मुनि-दम्पति रमण कर रहे थे। उस समय उस नर-भक्षी राक्षसने तरुण मुनिकुमारको खानेके लिये पकड़ लिया। ठीक उसी तरह, जैसे छोटे-से मृगशिशुको कोई व्याघ्र पकड़ लेता है। राक्षसके वशमें पड़े हुए अपने पतिको देखकर उसकी प्यारी स्त्री करुणापूर्वक बोली—'सूर्यवंशयशोधर महाराज! आप ऐसा पाप न कीजिये। आप राक्षस नहीं, अयोध्याके सम्राट् हैं, रानी मदयन्तीके पति हैं। प्रभो! ये मेरे स्वामी मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रियतम हैं, इन्हें न खाइये। शरणमें आये हुए दीन, दुखी मनुष्योंको आप ही सहारा देनेवाले हैं। इन महात्मा पतिके बिना मेरा यह शरीर मेरे लिये महान् भार है। इस मलिन पापमय पाञ्च-भौतिक शरीरसे क्या सुख होगा? ये मुनिकुमार देखनेको बालक हैं; किंतु वेदोंके विद्वान्, शान्त, तपस्वी और अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। इन्हें प्राणदान देकर आपको सम्पूर्ण जगत्के रक्षा करनेका पुण्य होगा। महाराज! मैं ब्राह्मणकी स्त्री हूँ, अभी बालिका हूँ, मुझपर कृपा कीजिये। आप-जैसे साधु पुरुष अनाथों, दीनों और पीड़ितोंपर कृपा करनेवाले होते हैं।'

इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भी उस निर्दयी, नर-भक्षी राक्षसने उस ब्राह्मणकुमारकी गर्दन मरोड़ डाली और उन्हें उदरस्थ कर लिया। तब वह पतिव्रता ब्राह्मणी अत्यन्त शोकसे ग्रस्त हो विलाप करने लगी। उसने पतिकी हड्डियोंको

और बिल्वपत्र इन सबका सुयोग दुर्लभ है। अहो! माया कैसी प्रबल है कि जिससे मूढ़ हुए मनुष्य भगवान् शिवकी इस महातिथिको उपवासतक नहीं करते। शिवरात्रिका उपवास, जागरण, भगवान् शङ्करके समीप निवास तथा गोकर्ण क्षेत्रका वास इन सबका सुयोग होना मनुष्योंके लिये शिवलोकमें जानेकी सीढ़ी है। राजन्! मैं भी इस समय गोकर्ण तीर्थसे लौटकर आया हूँ। शिवरात्रिको उपवास करके भगवान् शिवका महोत्सव देखकर लौटा हूँ। शिवरात्रिपर वहाँका महान् उत्सव देखनेके लिये सब देशोंसे चारों वर्णोंके लोग आये थे। स्त्री, बालक, वृद्ध तथा चारों आश्रमोंके निवासी वहाँ आकर देवेश्वर शिवका दर्शन करके कृतकृत्यताको प्राप्त हुए। लौटते समय मार्गमें एक अद्भुत आश्चर्यकी बात देखकर मैं परमानन्दमें निमग्न हो कृतार्थ हो गया हूँ।

गोकर्ण क्षेत्रमें शिवरात्रिके शिव-पूजनके माहात्म्यसे एक चाण्डालीका परमधाम-गमन

राजाने पूछा—ब्रह्मन्! आपने मार्गमें कहाँ कौन-सी आश्चर्यकी बात देखी है, वह मुझे भी बताइये।

गौतमजीने कहा—राजन्! गोकर्णसे आते समय एक स्थानपर दोपहरके समय मुझे एक स्वच्छ सरोवर दिखायी दिया। वहाँ जल पीकर मैंने रास्तेकी थकावट दूर की और घनी एवं शीतल छायावाले बरगदके नीचे विश्राम किया। उसी समय थोड़ी ही दूरपर मैंने एक अन्धी, बूढ़ी एवं दुबली-पतली चाण्डालीको देखा। उसका मुँह सूख गया था। उसने कुछ भी भोजन नहीं किया था और वह अनेक प्रकारके रोगोंसे पीड़ित थी। उसके सब अङ्गोंमें कोढ़का घाव हो गया था तथा उसमें बहुतसे कीड़े पड़ गये थे। उसकी कमरमें पीब और रक्तसे सना हुआ एक फटा-पुराना वस्त्र लिपटा हुआ था। उसे उस दशामें देखकर मुझे बड़ी दया आयी और उसके मृत्युकालकी प्रतीक्षा करता हुआ मैं क्षणभर वहीं बैठा रहा। इतने-हीमें भगवान् शङ्करके पार्षदोंद्वारा लाया जाता हुआ

शिवजीके दूत बोले—मुने! यह सामने जो बूढ़ी चाण्डाली मर रही है, इसीको ले जानेके लिये भगवान् शिवने हमें आदेश दिया है।

यह सुनकर मैंने पूछा—अहो! यह महापापात्मा घोर चाण्डाली इस दिव्य विमानपर बैठनेकी अधिकारिणी कैसे हो सकती है? यह तो जन्मसे लेकर जीवनभर प्रायः अपवित्रतामें ही डूबी रही है। पापमग्ना एवं पापका अनुगमन करनेवाली है। इस दुराचारिणीको आपलोग शिवलोकमें क्यों ले जाना चाहते हैं? इसने कभी शिवजीका पञ्चाक्षर मन्त्र नहीं जपा, शिवजीका पूजन नहीं किया और न कभी भगवान् शङ्करका ध्यान ही किया है? सत्सङ्गसे सदा दूर रहनेवाली इस अत्यन्त क्रोधी स्वभाववाली स्त्रीको आपलोग भगवान् शिवके लोकमें कैसे ले जाना चाहते हैं। अहो! ईश्वरकी इस लीलाका रहस्य देहधारियोंकी समझमें आना कठिन है, जिसमें पापात्मा प्राणी भी दया करके परम पदमें पहुँचाये जाते हैं।

निन्दित चाण्डाली हुई। इसने सदाचारका मार्ग त्यागकर पूर्वजन्ममें व्यभिचारके मार्गको अपनाया था, उसी अकथनीय पापसे इस जन्ममें यह दुराचारिणी और दुर्भाग्यवती हुई। विधवा होकर भी इसने दूसरे पतिका आलिङ्गन किया, उसी महान् पापके कारण इसके शरीरमें कोढ़के बहुत-से घाव हो गये हैं। इसने कामवेदनासे व्याकुल होकर स्वेच्छानुसार शूद्रसे रमण किया, उस पापके कारण इसे महारक्त पीब और कीड़ोंसे पीड़ित होना पड़ा है। इसने कभी उत्तम व्रतोंका पालन नहीं किया, यज्ञपूजा नहीं की, कुआँ आदि खुदवाने या बगीचे लगानेका काम नहीं किया, उसी पापसे यह सब प्रकारके भोग-साधनोंसे रहित होकर दुःख पा रही है। पूर्व-जन्ममें इस मूढ़ स्त्रीने मदिरा-पान किया था, उसी पापसे यह महायक्ष्माकी पीड़ा और हृदय-शूलसे तड़प रही है। मुनिश्रेष्ठ! विवेकी महात्मा यहींपर सब मनुष्योंमें उनके सम्पूर्ण पाप-चिह्न देखते हैं। यहाँ जो बहुतसे रोगोंद्वारा पीड़ित और पुत्र तथा धनसे हीन हैं, जो दुष्ट लक्षणोंसे क्लेश पानेवाले और लाज छोड़कर भीख माँगनेवाले हैं, वस्त्र, अन्न, पान, शय्या, भूषण और अभ्यङ्ग आदिसे वञ्चित, कुरूप, विद्याहीन, विकल अङ्गोंवाले (लूले-लँगड़े आदि), कुत्सित भोजन करनेवाले, दुर्भाग्यवान्, निन्दित तथा दूसरोंके सेवक हैं,—ये सभी पूर्व-जन्ममें बड़े भारी पापी रहे हैं। इस प्रकार यत्नपूर्वक विचार करके और संसारके मनुष्योंकी दशा देखकर विद्वान् पुरुष कभी पाप नहीं करता। यदि करे तो वह आत्मघाती है। जीवका यह मनुष्य-शरीर अनेक प्रकारके सत्कर्मोंका एकमात्र साधन है। इसके द्वारा सदा शुभ कर्मोंका ही सेवन करे। पापकर्मोंको सर्वथा एवं सर्वदा त्याग दे। सुखकी इच्छा रखनेवालेको पुण्य करना चाहिये। मनुष्यका यह शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। इसे पाकर जो कोई भी अपना हित चाहनेवाला मानव एकमात्र भगवान् शिवकी शरण लेता है, एकचित्त होकर उन्हींका ध्यान करता है, वह समस्त पातकोंसे तर जाता है। पहले इस दुराचारिणी स्त्रीके मुखसे असावधानीमें शिवजीका नाम उच्चारित हुआ है। श्रीगोकर्ण क्षेत्रमें शिवरात्रिको उपवास करके रातमें इसने जागरण किया और शिवजीके मस्तकपर बिल्वपत्र चढ़ाया है। उसी-का जो उत्तम फल है, उसे यह आज भोगने जा रही है। यह सब तुम अपनी आँखों देखते हो।

गौतमजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कहकर उन शिवदूतोंने उस चाण्डालकी योनिसे जीवको खींचकर उसे

दिव्य तेजसे सम्पन्न कर दिया। उस नारीको दिव्य शरीरकी प्राप्ति हुई और वह तेजकी राशिसे उद्भासित हो उठी। तत्पश्चात् शिवके दूतोंने प्रसन्न होकर उसे विमानपर बैठाया। वह परम उदाररूप और लावण्यसे सुशोभित तथा दिव्य वस्त्र धारण करने-वाली हो गयी। उसकी देहसे सब ओर दिव्य सुगन्ध और दिव्य प्रकाश फैल रहे थे। वह विमानपर बैठी हुई शिवजीके चरणारविन्दोंका स्मरण कर रही थी। उसे वे पार्षद भगवान् महादेवजीके समीप ले गये। उस समय सब लोकपाल आश्चर्यचकित होकर यह सब देख रहे थे। राजन्! गिरिजा-पति भगवान् शङ्करके प्रति लेशमात्र भक्तिका यह अत्यन्त आश्चर्यजनक माहात्म्य मैंने तुम्हें बताया है, जो समस्त पाप-राशिका विनाश करनेवाला है।

राजाने पूछा—भगवन्! परमेश्वर शिवका उत्तम लोक कैसा है। यदि आपकी मुझपर दया है तो मुझे शिवलोकका लक्षण बतलाइये।

गौतमजी बोले—ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंके लोकोंमें भी जो अत्यन्त दुर्लभ आनन्द है, वह जिस दिव्य धाममें नित्य-निरन्तर विद्यमान रहता है, वही परमेश्वर शिवका लोक है। जहाँ सब लोकोंको लाँघकर जाना होता है, जिसमें दिव्य प्रकाश स्थित है तथा जहाँ अविद्यामय अन्धकारका कहीं लेश-मात्र भी संयोग नहीं है, वही परमेश्वर शिवका लोक है। जहाँ काम, क्रोध, लोभ और मद आदि विकार निवास नहीं करते तथा जहाँ जन्म आदि अवस्थाएँ नहीं प्राप्त होतीं, वह परमेश्वर

शिवका लोक है। सम्पूर्ण वेदोंका जो एकमात्र प्रधान क्षेत्र कहा जाता है, जिससे अधिक उत्तम वैभव कहीं नहीं है, वह परमेश्वर शिवका धाम है। वहाँ जानेके लिये योगीजन सदा आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और ध्यान आदि साधनोंसे युक्त योगमार्गका सहारा लेकर प्रयत्न करते रहते हैं। जो लोग भगवान् शिवकी भक्तिसे परिपूर्ण हैं, वे ही उस दिव्य धाममें जाते हैं। जो भगवान् शङ्करकी कथा सुनने और कहनेमें हर्षका अनुभव करते हैं, केवल शान्तिमें जिनकी स्थिति है, जो सब प्राणियोंके अकारण सुहृद् और मोहरहित हैं, वे संसारचक्रको लाँघकर भगवान् शङ्करके आनन्दमय धामको पाकर सुखी होते हैं। राजेन्द्र! इसी प्रकार तुम भी गोकर्ण क्षेत्रमें भगवान् शङ्करके स्थानपर जाकर उनके दर्शनसे समस्त पापराशिका निवारण करो और कृतकृत्य हो जाओ। वहाँ सब समयमें स्नान करके महाबल शिवकी पूजा करो और शिवचतुर्दशीको एकाग्रतापूर्वक उपवास करके रात्रिमें जागरण तथा बिल्वपत्रद्वारा भगवान् शङ्करका पूजन करो। इससे तुम सब पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको प्राप्त करोगे। ऐसा कहकर मुनिवर गौतम प्रसन्नतापूर्वक मिथिलापुरीको चले गये तथा राजा मित्रसह गोकर्ण क्षेत्रमें आये। वहाँ महाबल नामसे प्रसिद्ध महादेवजीका दर्शन और पूजन करनेसे उनकी समस्त पापराशि धुल गयी। उन्होंने भगवान् शिवके परमधामको प्राप्त कर लिया। जो मनुष्य भगवान् शिवकी इस मनोहर कथाको प्रतिदिन भक्तिपूर्वक सुनता अथवा सुनाता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है।

शिव-पूजाकी महिमाके विषयमें परम शिवभक्त राजा चन्द्रसेन और भक्त श्रीकर गोपकी अद्भुत कथा

सूतजी कहते हैं—भगवान् शिव गुरु हैं, शिव देवता हैं, शिव ही प्राणियोंके बन्धु हैं, शिव ही आत्मा और शिव ही जीव हैं। शिवसे भिन्न दूसरा कुछ नहीं है*। भगवान् शिवके उद्देश्यसे जो कुछ भी दान, जप और होम किया जाता है, उसका फल अनन्त बताया गया है। यह समस्त शास्त्रोंका निर्णय है। जो एकमात्र भगवान् शिवका भजन करता है, वह सब बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। जो प्रीति अपने पुत्र, स्त्री और धनमें की जाती है, वही यदि भगवान् शिवकी पूजामें की जाय तो वह उद्धार कर देती है। इसलिये कितने ही महात्मा पुरुष भगवान् शिवकी पूजाके लिये सम्पूर्ण विषयरूपी मदिराको छोड़ देते हैं। वही जिह्वा सफल है, जो भगवान् शिवकी स्तुति करती है। वही मन सार्थक है, जो शिवके ध्यानमें संलग्न होता है। वे ही कान सफल हैं, जो उनकी कथा सुननेके लिये उत्सुक रहते हैं और वे ही दोनों हाथ सार्थक हैं, जो शिवजीकी पूजा करते हैं। वे नेत्र धन्य हैं, जो महादेवजीकी पूजाका दर्शन करते हैं। वह मस्तक धन्य है, जो शिवके सामने झुक जाता है। वे पैर धन्य हैं, जो भक्तिपूर्वक शिवके क्षेत्रोंमें सदा भ्रमण करते हैं। जिसकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भगवान् शिवके कार्योंमें लगी रहती हैं, वह संसारसागरके पार हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जिसकी भक्तिसे युक्त मनुष्य चाण्डाल, पुल्कस, नारी, पुरुष अथवा नपुंसक कोई भी क्यों न हो तत्काल संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है*। जिसके हृदयमें भगवान् शिवकी लेशमात्र भी भक्ति है, वह समस्त देहधारियोंके लिये वन्दनीय है।

उज्जयिनीमें चन्द्रसेन नामक एक राजा थे। वे उसी नगरमें निवास करनेवाले भगवान् महाकालका पूजन करते थे। शिवके पार्षदोंमें अग्रगण्य तथा अमङ्गलोंको जीतनेवाले विश्ववन्दित मणिभद्रजी राजा चन्द्रसेनके सखा हो गये थे। उन्होंने राजापर प्रसन्न होकर एक समय उन्हें दिव्य चिन्तामणि प्रदान की, जो कौस्तुभमणि तथा सूर्यके समान देदीप्यमान थी। वह देखने, सुनने अथवा ध्यान करनेपर भी मनुष्योंको मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करती थी। राजा उस चिन्तामणिको कण्ठमें धारण करके जब सिंहासनपर बैठते थे, तब देवताओंमें सूर्यनारायणकी भाँति उनकी शोभा होती थी। राजा

---

* सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम्।
तौ कर्णौ तत्कथालोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ॥
ते नेत्रे पश्यतः पूजां तच्छिरः प्रणतं शिवे।
तौ पादौ यौ शिवक्षेत्रं भक्त्या पर्यटतः सदा॥
यस्येन्द्रियाणि सर्वाणि वर्तन्ते शिवकर्मसु।

चन्द्रसेनके विषयमें यह सब बात सुनकर समस्त राजाओंके मनमें उस मणिके प्रति लोभकी मात्रा बढ़ गयी और वे क्षुब्ध रहने लगे। एक बार उन सबने बहुत-सी सेना साथ लेकर क्रोधपूर्वक पृथ्वीको कम्पित करते हुए आक्रमण किया और उज्जयिनीके चारों द्वारोंको घेर लिया। अपनी पुरीको घिरी हुई देख राजा चन्द्रसेन भगवान् महाकालकी शरणमें गये और मनको सन्देहरहित करके दृढ़ निश्चयके साथ उपवास-पूर्वक दिन-रात अनन्यभावसे भगवान् गौरीपतिकी आराधना करने लगे। उन्हीं दिनों उस नगरमें कोई ग्वालिन रहती थी, जिसके एकमात्र पुत्र था। वह विधवा थी और उज्जयिनीमें बहुत दिनोंसे रहती थी। वह अपने पाँच वर्षके बालकको लिये हुए महाकालके मन्दिरमें गयी और राजा चन्द्रसेनद्वारा की हुई गिरिजापतिकी महापूजाका दर्शन किया। शिवपूजनका वह आश्चर्यमय उत्सव देखकर उसने भगवान्‌को प्रणाम किया और पुनः अपने निवासस्थानपर लौट आयी। ग्वालिनके उस बालकने भी वह सारी पूजा देखी थी। अतः घर आनेपर उसने कौतूहलवश शिवजीकी पूजा प्रारम्भ की, जो संसारसे वैराग्य प्रदान करनेवाली है। एक सुन्दर पत्थर लाकर उसे घरसे थोड़ी ही दूरपर एकान्त स्थानमें रख दिया और उसीको शिवलिङ्ग माना। फिर अपने हाथसे मिलने लायक जो कोई भी फूल दिखायी दिये, उन सबका संग्रह करके उस बालकने जलसे शिवलिङ्गको स्नान कराया और भक्तिपूर्वक पूजन किया। तत्पश्चात् कृत्रिम अलङ्कार, चन्दन, धूप, दीप और अक्षत आदि उपचारोंसे अर्चना करके मनःकल्पित दिव्य वस्तुओंसे भगवान्‌को नैवेद्य निवेदन किया। सुन्दर-सुन्दर पत्रों और फूलोंसे बार-बार पूजा करके भाँति-भाँतिसे नृत्य किया और बारंबार भगवान्‌के चरणोंमें सीस झुकाया। इस प्रकार अनन्यचित्त होकर शिवकी आराधनामें लगे हुए अपने पुत्रको ग्वालिनने बड़े प्यारसे भोजनके लिये बुलाया। उसका मन तो पूजामें लगा हुआ था, माताके बहुत बुलानेपर भी उसे भोजन करनेकी इच्छा न हुई। तब उसकी मा स्वयं उसके पास गयी और उसे शिवके आगे आँख बंद करके ध्यान लगाये बैठा देख हाथ पकड़कर खींचने लगी। इतनेपर भी जब वह न उठा, तब उसने क्रोधमें आकर उसे खूब पीटा। खींचने और मारने-पीटनेपर भी जब उसका पुत्र नहीं आया, तब उसने वह शिवलिङ्ग उठाकर दूर फेंक दिया और उसपर चढ़ायी हुई सारी पूजा-सामग्री नष्ट कर दी। यह देख बालक 'हाय-हाय' करके रो उठा। रोषमें भरी हुई ग्वालिन अपने बेटेको डाँट-डपटकर पुनः घरमें चली गयी। भगवान् शिवकी [पूजा]को माताके द्वारा नष्ट की हुई देखकर वह बालक '[महा]देव! महादेव!' की पुकार करते हुए सहसा मूर्च्छित [होकर] गिर पड़ा। उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित हो [रही] थी। दो घड़ी बाद जब उसे चेत हुआ, तब उसने [आँखें] खोलीं और देखा—उसका वही निवासस्थान परम [सुन्दर] शिवालय हो गया था। मणियोंके खम्भे उसकी शोभा [बढ़ा] रहे थे। उसके द्वार, किवाड़ तथा सदर फाटक सब [सुवर्ण]मय हो गये थे। वहाँकी भूमि बहुमूल्य नीलमणि तथा [हीरे]की वेदिकाओंसे सुशोभित थी। यह सब देखकर वह [बालक] उठा और हर्षसे परमानन्दके समुद्रमें निमग्न-सा हो [गया]। उसने समझ लिया कि यह सब शिवजीकी पूजाका माहात्म्य [है,] उसीके प्रभावसे यह दिव्य विभूति प्रकट हुई है। तत्[पश्चात्] उस बालकने अपनी माताके अपराधकी शान्तिके [लिये] पृथ्वीपर मस्तक रखकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और इस [प्रकार] कहा—'देव! उमापते! मेरी माताका अपराध [क्षमा] कीजिये। वह मूढ़ है, आपके प्रभावको नहीं जानती। [हे] शङ्कर! आप उसपर प्रसन्न होइये, यदि मुझमें आपकी भ[क्तिसे] उत्पन्न हुआ कुछ भी पुण्य है, तो उससे मेरी माता अ[आपकी] दया प्राप्त करे।'

इस प्रकार भगवान् शङ्करको बार-बार प्रसन्न करके उ[नके] चरणोंमें मस्तक झुकाकर सूर्यास्तके समय वह बालक शिवा[लय]से बाहर निकला और उसने अपने शिविरको देखा। वह [इन्द्र]नगरके समान शोभा पा रहा था। वहाँ सब कुछ तत्[काल] सुवर्णमय होकर विचित्र वैभवसे प्रकाशित होने लगा। भ[वनके] भीतर प्रवेश करके बालकने देखा, उसकी मा बहु[मूल्य] रत्नमय पलंगपर बिछी हुई श्वेत रंगकी शय्यापर निर्भय [होकर] सो रही है और उसीको याद करती है। उसने मा[ताको] जगाया। ग्वालिन बड़े वेगसे उठी और आनेको, उ[सने] पुत्रको तथा अपने घरको भी अपूर्व रूपमें देखकर आन[न्दसे] विह्वल हो गयी। पुत्रके मुखसे गिरिजापति शङ्करका यह प्रसाद सुनकर ग्वालिनने राजाको सूचना दी, जो निर[न्तर] भगवान् शिवके भजनमें लगे रहते थे। राजा अपना नि[यम] पूरा करके रातमें सहसा वहाँ आये और ग्वालिनके पु[त्रका] यह प्रभाव, जो शङ्करजीके सन्तोषसे प्रकट हुआ था, दे[खा]। सुवर्णमय शिव-मन्दिर, रत्नमय शिवलिङ्ग तथा सुन्दर म[णिमय] माणिक्योंसे जगमगाता हुआ ग्वालिनका महल देखा[कर] चन्द्रसेन पुरोहित और मन्त्रियोंके साथ दो घड़ीतक आ[नन्द]...

चकित हो परमानन्दमें डूबे रहे। तत्पश्चात् उन्होंने नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहाते हुए ग्वालिनके उस बालकको हृदयसे लगा लिया। भगवान् शिवके इस अद्भुत माहात्म्यकी चर्चा समस्त पुरवासियोंमें बड़े वेगसे फैली और यही कहते-सुनते वह रात मानो क्षणभरमें व्यतीत हो गयी।

युद्धके लिये आये हुए और नगरको चारों ओरसे घेर-कर खड़े हुए राजाओंने भी प्रातःकाल दूतोंके मुखसे यह परम अद्भुत समाचार सुना। सुनते ही उनके मनसे वैरभाव निकल गया। उन्होंने सहसा हथियार डाल दिये और चकित होकर महाराज चन्द्रसेनकी आज्ञासे नगरमें प्रवेश किया। उस रमणीय नगरीमें प्रवेश करके भगवान् महाकाल-को प्रणाम करनेके पश्चात् सब राजा उस ग्वालिनके घरपर आये। वहाँ राजा चन्द्रसेनने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। वे बहुमूल्य आसनोंपर बैठे और प्रीतिपूर्वक विस्मित एवं आनन्दित हुए। गोप-बालकपर कृपा करनेके लिये स्वतः प्रकट हुए शिवालय और शिवलिङ्गका दर्शन करके सब राजाओंने भगवान् शिवको अपनी उत्तम बुद्धि समर्पित की, उनमें भक्तिपूर्वक मन लगाया।

इसी समय सब देवताओंसे पूजित परम तेजस्वी वानर-राज हनुमान्‌जी वहाँ प्रकट हुए। उनके आते ही सब राजाओंने बड़े वेगसे उठकर भक्तिभावसे विनीत हो उन्हें नमस्कार किया। तब हनुमान्‌जीने कहा—'राजाओ! भगवान् शिवकी पूजाके सिवा देहधारियोंके लिये दूसरी कोई गति नहीं है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि इस गोप-बालकने शनिवारको प्रदोषव्रतके दिन बिना मन्त्रके भी शिवका पूजन करके उन्हें पा लिया। शनिवारको प्रदोषव्रत समस्त देहधारियोंके लिये दुर्लभ है। कृष्ण पक्ष आनेपर तो वह और भी दुर्लभ है। गोपवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाला यह बालक संसारमें सबसे अधिक पुण्यात्मा है। इसकी वंश-परम्परामें आठवीं पीढ़ीमें महायशस्वी नन्द उत्पन्न होंगे, जिनके यहाँ साक्षात् भगवान् नारायण उनके पुत्ररूपसे प्रकट हो श्रीकृष्णके नामसे प्रसिद्ध होंगे। आजसे यह गोपालनन्दन संसारमें 'श्रीकर' नामसे विख्यात होगा।'

अञ्जनिनन्दन हनुमान्‌जी ऐसा कहकर उस गोपबालक-को शिवोपासनाके आचार-व्यवहारका उपदेश दे वहीं अन्तर्धान हो गये। वे सब राजा हर्षमें भरकर महाराज चन्द्रसेनकी आज्ञा ले जैसे आये थे वैसे ही लौट गये। महा-तेजस्वी श्रीकर भी हनुमान्‌जीका उपदेश पाकर धर्मज्ञ ब्राह्मणोंके साथ शङ्करजीकी आराधना करने लगा। समयानुसार भक्त श्रीकर गोप तथा राजा चन्द्रसेन दोनोंने भक्तिपूर्वक शिवकी आराधना करके परम पद प्राप्त किया। यह परम पवित्र उपाख्यान कहा गया। यह गोपनीय रहस्य है, सुयश एवं पुण्यसमृद्धिको बढ़ानेवाला है तथा गौरीपति भगवान् शिवके चरणारविन्दोंमें भक्तिभावकी वृद्धि और पापराशिका निवारण करनेवाला है।

प्रदोषमें शिवपूजनकी अवहेलनासे दोषकी प्राप्तिके प्रसंगमें विदर्भराज और उसके पुत्रकी कथा

सूतजी कहते हैं—त्रयोदशी तिथिमें सायंकाल प्रदोष कहा गया है। प्रदोषके समय महादेवजी कैलासपर्वतके रजत-भवनमें नृत्य करते हैं और देवता उनके गुणोंका स्तवन करते हैं। अतः धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी इच्छा रखने-वाले पुरुषोंको प्रदोषमें नियमपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा, होम, कथा और गुणगान करने चाहिये। दरिद्रताके तिमिरसे अन्धे और भवसागरमें डूबे हुए संसारभयसे भीरु मनुष्योंके लिये यह प्रदोषव्रत पार लगानेवाली नौका है। भगवान् शिवकी पूजा करनेसे मनुष्य दरिद्रता, मृत्यु-दुःख और पर्वतके समान भारी ऋण-भारको शीघ्र ही दूर करके सम्पत्तियोंसे पूजित होता है।

विदर्भ देशमें सत्यरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जो सब धर्मोंमें तत्पर, धीर, सुशील और सत्यप्रतिज्ञ थे। धर्म-पूर्वक पृथ्वीका पालन करते हुए उनका बहुत-सा समय सुख-पूर्वक बीत गया। तदनन्तर शाल्व देशके राजाओंने विदर्भ-नगरपर आक्रमण करके उसे चारों ओरसे घेर लिया। अपनी पुरीको शत्रुओंसे घिरी हुई देख विदर्भराज विशाल सेना साथ लेकर युद्धके लिये आये। बलोन्मत्त शाल्वदेशीय क्षत्रियोंके साथ राजाका अत्यन्त भयङ्कर युद्ध हुआ। शाल्वोंकी बहुत बड़ी सेना मारी गयी; परंतु अन्तमें विदर्भराज भी उनके हाथसे मारे गये। मन्त्रियोंसहित उस महारथी वीर राजाके मारे जानेपर मरनेसे बचे हुए सैनिक भाग खड़े हुए। उस समय विदर्भराज सत्यरथकी एक पतिव्रता स्त्री अत्यन्त शोक-ग्रस्त हो रातके समय राजभवनसे निकलकर पश्चिम दिशाकी ओर चली गयी। वह गर्भवती थी। सवेरा होनेपर धीरे-धीरे मार्गसे जाती हुई उस साध्वी रानीने बहुत दूरका रास्ता तै

कर लेनेके पश्चात् एक स्वच्छ तालाब देखा और वह उसके किनारे शोभा पानेवाले एक छायादार वृक्षके नीचे बैठ गयी। भाग्यवश उसी निर्जन स्थानमें वृक्षके ही नीचे पतिव्रता रानीने उत्तम गुणोंसे युक्त शुभ मुहूर्तमें एक पुत्रको जन्म दिया। तत्पश्चात् अत्यन्त प्याससे व्याकुल हो वह सुन्दर अङ्गोंवाली रानी जलाशयमें उतरी। इतनेमें ही एक बड़े भारी ग्राहने आकर उसे अपना ग्रास बना लिया। वह बालक पैदा होते ही माता-पितासे हीन हो गया और भूख-प्याससे पीड़ित हो उस सरोवरके किनारे जोर-जोरसे रोने लगा। वह नवजात शिशु जब इस प्रकार क्रन्दन कर रहा था, उसी समय भाग्यवश वहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मणी आ पहुँची। वह भी अपने एक वर्षके बालकको गोदमें लिये हुए आयी थी। ब्राह्मणी निर्धन और

विधवा थी। घर-घर भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करती थी। उसका नाम उमा था। उसी सती-साध्वी ब्राह्मणीने उस राजकुमारको देखा। उसे अनाथकी भाँति क्रन्दन करते देखकर उसने मन-ही-मन विचार किया—'अहो! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात दिखायी देती है कि यह नवजात शिशु, जिसकी नाल भी अभीतक नहीं कटी है, पड़ा हुआ है। इसकी माता कहाँ चली गयी। न इसका पिता है न और कोई बन्धु-बान्धव है। यह दीन अनाथ बालक बिना बिस्तरके भूमिपर सो रहा है। यह चाण्डालका पुत्र है या शूद्रका, वैश्यका बालक है या ब्राह्मणका अथवा यह क्षत्रियका शिशु है। इसका निश्चय कैसे किया जाय? मैं इस शिशुको उठाकर अपने सगे पुत्रकी तरह अवश्य पालन कर सकती हूँ; परंतु यह किस कुलका है, यह न जाननेके कारण इसे छूनेका साहस नहीं होता।' वह पतिव्रता ब्राह्मणी जब इस प्रकार कह रही थी, उसी समय कोई संन्यासी महात्मा वहाँ आ गये। वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो साक्षात् शङ्कर हों। उन श्रेष्ठ भिक्षुने उस स्त्रीसे कहा—'ब्राह्मणी! खेद न करो, हृदयकी संशयवृत्ति दूरकर इस बालककी रक्षा करो। इससे तुम्हें शीघ्र ही परम कल्याणकी प्राप्ति होगी।' इतना कहकर वे दयालु भिक्षु तुरंत वहाँसे चले गये। उनके जानेके बाद ब्राह्मणीने विश्वासपूर्वक उस बालकको लेकर अपने घरकी ओर प्रस्थान किया। उस राजकुमारका ब्राह्मणीने अपने बेटेके समान ही पालन-पोषण किया। एकचक्रा नामक नगरमें उस ब्राह्मणीका घर था। वह भिक्षाके अन्नसे ही अपने पुत्र और राजकुमारको भी पालने लगी। ब्राह्मणोंने ब्राह्मणीके तथा राजाके भी पुत्रका संस्कार कर दिया। वे दोनों सर्वत्र सम्मानित होकर दिन-दिन बढ़ने लगे। समय आनेपर उनका उपनयन-संस्कार हुआ। अब वे दोनों बालक एक साथ रहकर नियमोंका पालन करने लगे। दोनों माताके साथ प्रतिदिन भिक्षाके लिये जाते थे। एक दिन वह ब्राह्मणी उन दोनों बालकोंके साथ भीख माँगती हुई दैवयोगसे देव-मन्दिरमें गयी। वहाँ बड़े-बूढ़े ऋषि-मुनि रहा करते थे। उन दोनों बालकोंको देखकर परम बुद्धिमान् शाण्डिल्य नामक मुनिने कहा—'अहो! दैवका बल बड़ा विचित्र है। कर्मोंका उल्लङ्घन करना किसी भी जीवके लिये अत्यन्त कठिन है। देखो न, यह बालक दूसरी माताकी शरण लेकर भिक्षासे जीवननिर्वाह करता है। इस ब्राह्मणीको ही श्रेष्ठ माताके रूपमें पाकर ब्राह्मण बालकके साथ ब्राह्मणभावको प्राप्त हो गया है।' शाण्डिल्य मुनिका यह वचन सुनकर ब्राह्मणीको बड़ा विस्मय हुआ। उसने भरी सभामें मुनिको प्रणाम करके पूछा—'ब्रह्मन्! एक संन्यासीके कहनेसे मैं इस बालकको अपने घर ले आयी हूँ। यद्यपि अभीतक इसके कुलका पता नहीं लगा, तथापि मैं पुत्रकी भाँति इसका पालन-पोषण करती हूँ। आप ज्ञानके नेत्रोंसे देखते हैं, अतः आपसे मैं यह जानना चाहती हूँ कि यह बालक किस कुलमें उत्पन्न हुआ है और इसके माता-पिता कौन हैं?'

मुनि बोले—यह विदर्भदेशके राजाका पुत्र है। इतना कहकर मुनिने उस बालकके पिताके युद्धमें मारे

जानेका तथा उसकी माताके ग्राहद्वारा ग्रस्त होनेका सब समाचार पूर्णरूपसे बतलाया। यह सुनकर ब्राह्मणीको और भी आश्चर्य हुआ। अतः उसने फिर प्रश्न किया—'महामुने! वे राजा सम्पूर्ण भोगोंको छोड़कर युद्धमें क्यों मरे और इस बालकको दरिद्रता कैसे प्राप्त हुई? अब दरिद्रताको पूर्णतः नष्ट करके यह पुनः राज्य कैसे प्राप्त करेगा? मेरा यह पुत्र भी भिक्षान्नसे ही जीवन-निर्वाह करता है। अतः इसकी दरिद्रताके निवारणका भी क्या उपाय है, यह बतानेकी कृपा करें?'

शाण्डिल्यने कहा—इस राजकुमारके पिता विदर्भराज पूर्वजन्ममें पाण्ड्य देशके श्रेष्ठ राजा थे। वे सब धर्मोंके ज्ञाता थे और सम्पूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। एक दिन प्रदोषकालमें राजा भगवान् शङ्करका पूजन कर रहे थे और बड़ी भक्तिसे त्रिलोकीनाथ महादेवजीकी आराधनामें संलग्न थे। उसी समय नगरमें सब ओर बड़ा भारी कोलाहल मचा। उस उत्कट शब्दको सुनकर राजाने बीचमें ही भगवान् शङ्करकी पूजा छोड़ दी और नगरमें क्षोभ फैलनेकी आशङ्कासे राजभवनसे बाहर निकल गये। इसी समय राजाका महाबली मन्त्री शत्रुको पकड़कर उनके समीप ले आया। वह शत्रु पाण्ड्यराजका ही सामन्त था। उसे देखकर राजाने क्रोधपूर्वक उसका मस्तक कटवा दिया। शिवपूजा छोड़कर नियमको समाप्त किये बिना ही राजाने रातमें भोजन भी कर लिया। इसी प्रकार राजकुमार भी प्रदोषकालमें शिवजीकी पूजा किये बिना ही भोजन करके सो गया। वही राजा दूसरे जन्ममें विदर्भराज हुआ था। शिवजीकी पूजामें विघ्न होनेके कारण शत्रुओंने उसको सुख-भोगके बीचमें ही मार डाला। पूर्वजन्ममें जो उसका पुत्र था, वही इस जन्ममें भी हुआ है। शिवजीकी पूजाका उल्लङ्घन करनेके कारण यह दरिद्रताको प्राप्त हुआ है। इसकी माताने पूर्वजन्ममें छलसे अपनी सौतको मार डाला था। उस महान् पापके कारण ही वह इस जन्ममें ग्राहके द्वारा मारी गयी। मैं सत्य कहता हूँ, परलोकमें हितकी बात कहता हूँ, शास्त्रोंका सार एवं उपनिषदोंका हृदय कहता हूँ, इस भयङ्कर असार संसारको प्राप्त हुए जीवके लिये ईश्वरके चरणारविन्दोंकी सेवा ही सार वस्तु है। जो प्रदोषकालमें अनन्यचित्त होकर परमेश्वरके चरणारविन्दोंकी पूजा करते हैं, वे इसी संसारमें सदा बढ़नेवाले धन-धान्य, स्त्री-पुत्र, सौभाग्य और सम्पत्तिके द्वारा सबसे बढ़कर होते हैं। ब्राह्मणी! यह तुम्हारा पुत्र पूर्वजन्ममें उत्तम ब्राह्मण था। इसने सारी आयु केवल दान लेनेमें बितायी है। यज्ञ आदि सत्कर्म नहीं किये हैं। इसीलिये यह दरिद्रताको प्राप्त हुआ है। उस दोषका निवारण करनेके लिये अब यह भगवान् शङ्करकी शरणमें जाय।

प्रदोषव्रतकी विधि, इसके पालनसे द्विजकुमार और राजकुमारकी दरिद्रताका निवारण तथा राज्यकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—मुनिके इस प्रकार कहनेपर साध्वी ब्राह्मणीने उन्हें प्रणाम करके शिवपूजनकी विधिका क्रम पूछा।

शाण्डिल्य बोले—दोनों पक्षोंकी त्रयोदशीको मनुष्य जब निराहार रहे, तब सूर्यास्तसे तीन घड़ी पहले स्नान करे। फिर श्वेत वस्त्र धारण करके धीर पुरुष सन्ध्या और जप आदि नित्यकर्मकी विधि पूरी करके मौन हो शास्त्रविधिका पालन करते हुए भगवान् शिवकी पूजा प्रारम्भ करे। भगवद्विग्रहके आगेकी भूमिको नये निकाले हुए शुद्ध जलसे भलीभाँति लीप-पोतकर सुन्दर मण्डल बनावे। धौत-वस्त्र आदिके द्वारा उस मण्डलको सब ओरसे घेर दे। ऊपरसे चँदोवा आदि लगाकर फल-फूल और नवीन अङ्कुरोंसे उसको सजावे। मण्डलके मध्यकी भूमिमें पाँच रंगोंसे युक्त विचित्र कमल अङ्कित करके उसीपर सुस्थिर एवं उत्तम आसन बिछाकर बैठे और हृदयमें भक्तिभावसे युक्त हो पूजाकी सब सामग्री एकत्र करे। फिर पवित्र भावसे शास्त्रोक्त मन्त्रद्वारा देवपीठको आमन्त्रित करे। तत्पश्चात् क्रमशः आत्मशुद्धि और भूतशुद्धि आदि करके तीन प्राणायाम करे। उसके बाद विन्दुयुक्त बीजाक्षरोंके द्वारा विधिपूर्वक मातृकान्यास करे। तदनन्तर परा देवताका ध्यान करके मातृकान्यासकी विधि पूरी करे। फिर परम शिवका ध्यान करके पीठके वाम भागमें गुरुको प्रणाम करे, दक्षिण भागमें गणेशजीको मस्तक झुकावे, दोनों अंशों (कन्धों) और ऊरुओं (जाँघों) में धर्म आदि (धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य) का न्यास करे। नाभि तथा पार्श्वभागोंमें अधर्म (अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य) आदिका न्यास करे। तत्पश्चात् हृदयमें अनन्त आदिका न्यास करके देवपीठपर मन्त्रका न्यास करे। आधारशक्तिसे लेकर ज्ञानात्मातकका क्रमशः न्यास करके हृदयमें एक कमलकी भलीभाँति भावना करे। वह कमल

नौ शक्तियोंसे युक्त एवं परम सुन्दर हो। उसी कमलकी कर्णिकामें कोटि-कोटि चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान उमापति भगवान् शिवका ध्यान करे। भगवान्के तीन नेत्र हैं। मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट शोभा पाता है। जटाजूट कुछ-कुछ पीला हो गया है। उसपर रत्नजटित किरीट सुशोभित है। उनके कण्ठमें नील चिह्न है और अङ्ग-अङ्गसे उदारता सूचित होती है। सर्पोंके हारसे उनकी बड़ी शोभा हो रही है। उनके एक हाथमें वरद और दूसरेमें अभयकी मुद्रा है। वे फरसा धारण करते हैं। उन्होंने नागोंका कङ्कण, केयूर, अङ्गद तथा मुद्रिका धारण कर रक्खी है। वे व्याघ्र-चर्म पहने हुए रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। उनके वाम भागमें गिरिराजनन्दिनी उमादेवीका चिन्तन करे। इस प्रकार महादेवजी तथा गिरिजादेवीका ध्यान करके क्रमशः गन्ध आदिसे उनकी मानसिक पूजा करे। पाँच वैदिक मन्त्रोंसे गन्ध आदि द्वारा पूर्वोक्त पाँच स्थानोंमें अथवा हृदयमें पूजा करे। फिर मूलमन्त्रसे तीन बार हृदयमें ही पुष्पाञ्जलि दे। उसके बाद बाह्यपीठ (सिंहासन) पर महादेवजीका पुनः पूजन प्रारम्भ करे। पूजाके आरम्भमें एकाग्रचित्त होकर संकल्प पढ़े। तदनन्तर हाथ जोड़कर मन-ही-मन भगवान् शिवका ध्यान एवं आवाहन करे—'हे भगवान् शङ्कर! आप ऋण, पातक, दुर्भाग्य और दरिद्रता आदिकी निवृत्तिके लिये तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेके लिये मुझपर प्रसन्न होइये। मैं दुःख और शोककी आगमें जल रहा हूँ, संसारभयसे पीड़ित हूँ, अनेक प्रकारके रोगोंसे व्याकुल और दीन हूँ। वृषवाहन! मेरी रक्षा कीजिये। देवदेवेश्वर! सबको निर्भय कर देनेवाले महादेवजी! आप यहाँ पधारिये और मेरी की हुई इस पूजाको पार्वतीजीके साथ ग्रहण कीजिये।' इस प्रकार संकल्प और आवाहन करके पूजा आरम्भ करनी चाहिये। तत्पश्चात् मनुष्य एकाग्रचित्त हो रुद्रसूक्तका पाठ करते हुए वहाँ स्थापित किये हुए शङ्खके जलसे और पञ्चामृतसे महादेवजीका अभिषेक करके भाँति-भाँतिके मन्त्रोंसे आसन आदि उपचारोंको समर्पित करे। भावनाद्वारा दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित स्वर्णसिंहासनकी कल्पना करे और उसीपर भगवान्को विराजमान करके अष्टगुणयुक्त अर्घ्य और पाद्य निवेदन करे। फिर शुद्ध जलसे आचमन कराकर मधुपर्क दे। उसके बाद पुनः आचमनके लिये जल देकर मन्त्रोच्चारण-पूर्वक स्नान करावे। फिर यज्ञोपवीत, वस्त्र और आभूषण अर्पण करे। परम पवित्र अष्टाङ्गयुक्त चन्दन चढ़ावे। बिल्व, मदार, लाल कमल, धतूर, कनेर, सनईका चमेली, कुश, अपामार्ग, तुलसी, जूही, न भटकटइया और करवीरके फूलोंमेंसे जितने जायँ, उन सबको शिवोपासक भगवान् शिवपर चढ़ इनके अतिरिक्त भी नाना प्रकारके सुगन्धित पुष्प नि करे। तत्पश्चात् लाल चन्दनसे उत्पन्न धूप और निर्मल समर्पित करे। उसके बाद हाथ धोकर घी, नमकीन साग, मिठाई, पूआ, शक्कर तथा गुड़के बने हुए प एवं खीरका नैवेद्य भोग लगावे। मधु, दही और जल अर्पण करे। उस खीरका ही मन्त्रद्वारा प्रज्वलित की अग्निमें हवन करे। यह होम शास्त्रोक्तविधिसे आचा कथनानुसार सम्पन्न करना चाहिये। भगवान् शङ्करको नै देकर मुखशुद्धिके लिये उत्तम ताम्बूल अर्पण करे। ध् आरती, सुन्दर छत्र, उत्तम दर्पणको वैदिक-तान्त्रिक मन द्वारा विधिपूर्वक समर्पित करे। यदि यह सब करनेकी अप शक्ति न हो, अधिक धनका अभाव हो, तो अपने पास जित धन हो, उसीके अनुसार भगवान्की पूजा करे। गौरीप भगवान् शङ्कर भक्तिपूर्वक भेंट किये हुए पुष्पमात्रसे सन्तुष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर स्तोत्रोंद्वारा स्तुति कर भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम करे। फिर परिक्रमा कर पूजा समर्पित करनेके पश्चात् विधिपूर्वक श्रीगिरिजापति प्रार्थना करे।

'देव! जगन्नाथ! आपकी जय हो। सनातन शङ्कर आपकी जय हो। सम्पूर्ण देवताओंके अधीश्वर! आपकी ज हो। सर्वदेवपूजित! आपकी जय हो। सर्वगुणातीत! आप जय हो। सबको वर देनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। नित्य आधाररहित, अविनाशी विश्वम्भर! आपकी जय हो, जय हो सम्पूर्ण विश्वके लिये एकमात्र जानने योग्य महेश्वर! आपकी जय हो। नागराज वासुकिको आभूषणके रूपमें धारण करने वाले प्रभो! आपकी जय हो। गौरीपते! आपकी जय हो। चन्द्रार्धशेखर शम्भो! आपकी जय हो। कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी शिव! आपकी जय हो। अनन्त गुणोंके आधार! आपकी जय हो। भयङ्कर नेत्रोंवाले रुद्र! आपकी जय हो। अचिन्त्य! निरञ्जन! आपकी जय हो। नाथ! दयासिन्धो! आपकी जय हो। भक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। दुस्तर संसारसागरसे पार उतारनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। महादेव! मैं संसारके दुःखोंसे पीड़ित एवं खिन्न हूँ, मुझपर प्रसन्न होइये। सर्वेश्वर!

समस्त पापोंके भयका अपहरण करके मेरी रक्षा कीजिये । मैं महान् दारिद्र्यके समुद्रमें डूबा हुआ हूँ । बड़े-बड़े पापोंने मुझे आक्रान्त कर लिया है । मैं महान् शोकसे नष्ट और बड़े-बड़े रोगोंसे व्याकुल हूँ । सब ओरसे ऋणके भारसे लदा हुआ हूँ । पापकर्मोंकी आगमें जल रहा हूँ और ग्रहोंसे पीड़ित हो रहा हूँ । शङ्कर ! मुझपर प्रसन्न होइये* ।'

निर्धन मनुष्य इस प्रकार पूजाके अन्तमें भगवान् गिरिजापतिकी प्रार्थना करे । धनाढ्य अथवा राजाको इस प्रकार भगवान् शङ्करकी प्रार्थना करनी चाहिये—'हे शङ्करजी ! आपके प्रसादसे मेरे सदा आनन्द रहे । मेरे राज्यमें लुटेरे न रहें, सब लोग निरापद होकर रहें । पृथ्वीपर अकाल, महामारी आदिके सन्ताप शान्त हो जायँ । सबकी खेती धन-धान्यसे समृद्ध हो । सम्पूर्ण दिशाओंमें सुखका साम्राज्य छा जाय ।' इस प्रकार प्रदोषव्रतके दिन गिरिजापति भगवान् शङ्करकी आराधना करे, ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे । इस प्रकार मैंने सब पापोंका नाश, सब प्रकारकी दरिद्रताका निवारण तथा समस्त मनोवाञ्छित वस्तुओंका दान करनेवाली शिवपूजाका वर्णन किया । यह शिवकी पूजा शिवजीके द्रव्यका हरण करनेके पापको छोड़कर शेष सभी महापातकों और उपपातकोंके महान् समुदायका नाश करती है । यदि ये दोनों बालक इसी प्रकार भगवान् शङ्करका पूजन प्रत्येक प्रदोषके दिन करते रहें, तो वर्षभरके भीतर ही इन्हें उत्तम सिद्धिकी प्राप्ति होगी ।

शाण्डिल्य मुनिका यह वचन सुनकर उस ब्राह्मणीने दोनों बालकोंके साथ मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'भगवन् ! आज मैं आपके दर्शनमात्रसे कृतार्थ हो गयी । ये दोनों बालक आजसे आपकी शरणमें हैं । ब्रह्मन् ! यह मेरा पुत्र है और इसका नाम शुचिव्रत है और यह राजकुमार है, जिसका नाम मैंने धर्मगुप्त रख दिया है । ये दोनों बालक और मैं सभी आपके चरणोंके दास हैं । इस घोर दारिद्र्यसागरमें गिरे हुए हम सबका आप उद्धार कीजिये ।'

इस प्रकार शरणमें आयी हुई ब्राह्मणीको अमृतके समान मधुर वचनोंद्वारा आश्वासन देकर मुनिने उसके दोनों बालकोंको भगवान् शङ्करके आराधनकी मन्त्र-विद्याका उपदेश दिया । तत्पश्चात् दोनों बालक और ब्राह्मणी मुनिकी आज्ञा ले वहाँसे चले गये । मुनिवरके उपदेशानुसार दोनों बालक प्रत्येक प्रदोषव्रतके दिन पार्वतीवल्लभ शिवकी आराधना करने लगे । इस प्रकार शिवपूजा करते हुए द्विजकुमार और राजकुमारके चार महीने सुखपूर्वक बीत गये । एक दिन द्विजकुमार राजकुमारको साथ लिये बिना ही नदीके तटपर स्नान करनेके लिये गया और वहाँ मौजसे देरतक इधर-उधर घूमता रहा । वहाँ झरनेके जलके आघातसे खाईकी भूमि कट जानेसे उसमें गड़ा हुआ एक बड़ा भारी खजानेका कलश चमक रहा था, जिसपर ब्राह्मणकुमारकी दृष्टि पड़ी । उसे देखकर वह सहसा हर्ष और कौतूहलमें भरकर उसके समीप गया और उसे देवताके प्रसादसे प्राप्त हुआ मानकर सिरपर लेकर घरको चल दिया तथा घरके भीतर उस घड़ेको रखकर मातासे कहा—'मा ! यह भगवान् शङ्करका प्रसाद तो देखो, उन्होंने दया करके घड़ेके रूपमें यह खजाना दिखला दिया ।' तब उस पतिव्रता ब्राह्मणीने राजकुमारको भी बुलाकर कहा—'पुत्रो ! इस खजानाके घड़ेको तुम दोनों आपसमें बराबर-बराबर बाँट लो ।' माताकी बातको सुनकर ब्राह्मणके पुत्रको प्रसन्नता हुई । किंतु राज-पुत्रने उससे कहा—'मा ! यह तुम्हारे ही पुत्रके पुण्यसे प्राप्त हुआ है, अतः मैं इस खजानेको बाँटकर लेना नहीं चाहता हूँ । अपने पुण्यसे प्राप्त हुए खजानेका ये स्वयं ही उपभोग करें । वे ही भगवान् शङ्कर मुझपर भी कृपा करेंगे ।' इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा करते हुए उन दोनों कुमारोंका उसी घरमें एक वर्ष व्यतीत

---

* जय देव जगन्नाथ जय शङ्कर शाश्वत ।
जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित ॥
जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद ।
जय नित्य निराधार जय विश्वम्भराव्यय ॥
जय विश्वैकवेद्येश जय नागेन्द्रभूषण ।
जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर ॥
जय कोट्यर्कसंकाश जयानन्तगुणाश्रय ।
जय रुद्र विरूपाक्ष जयाचिन्त्य निरञ्जन ॥
जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभञ्जन ।
जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारण प्रभो ॥
प्रसीद मे महादेव संसारार्तस्य खिद्यतः ।
सर्वपापभयं हृत्वा रक्ष मां परमेश्वर ॥
महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतस्य च ।
महाशोकविनष्टस्य महारोगातुरस्य च ॥
ऋणभारपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः ।
ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य प्रसीद मम शङ्कर ॥
(स्क० पु० ब्रा० ब्रह्मो० ७ । ५९—६६)

हो गया । एक दिन राजकुमार उस ब्राह्मणकुमारके साथ वसन्तऋतुमें वनमें भ्रमण करनेके लिये गया । कुछ दूर जानेपर उन्होंने सैकड़ों गन्धर्वकन्याओंको परस्पर क्रीडा करते हुए देखा । उन्हें देखकर ब्राह्मण-कुमारने दूरसे ही राजकुमारसे कहा—'यहाँसे आगे जाना उचित नहीं है; क्योंकि उधर स्त्रियाँ विहार कर रही हैं। स्वच्छ अन्तःकरणवाले विद्वान् पुरुष स्त्रियोंका सामीप्य त्याग देते हैं। ये रमणियाँ छल करनेवाली तथा वाणीद्वारा अनुनय-विनय करनेमें कुशल हैं। ये पुरुषोंको अपनी दृष्टिमात्रसे मोहित कर लेती हैं। इसलिये अपने धर्ममें तत्पर ब्रह्मचारी भी स्त्रियोंके समीप जाकर उनके साथ वार्तालाप न करे।' सा कहकर ब्राह्मणकुमार लौट पड़ा और दूर जाकर ड़ा हो गया। किंतु राजकुमार अकेला ही निर्भय होकर त्र्योंकी उस क्रीडास्थलीकी ओर चला गया। उन गन्धर्व-न्याओंमेंसे एकने राजकुमारको आते देख मन-ही-मन कुछ चार किया और सखियोंसे कहा—'सहेलियो! यहाँसे थोड़ी ी दूरपर एक उत्तम वन है, जहाँ विचित्र चम्पा, अशोक, नाग और बकुल आदि वृक्ष खिले हुए हैं। वहाँ जाकर म सब लोग फूल तोड़ो। तबतक मैं यहीं बैठी हूँ। म फूलोंका संग्रह करके पुनः यहाँ आ जाना।' उसके स प्रकार आदेश देनेपर सखियाँ वनके भीतर चली गयीं और वह गन्धर्वकन्या राजकुमारपर दृष्टि लगाये वहीं खड़ी ही। उसे देखकर राजकुमार कामदेवके बाणोंसे पीड़ित ो गया। गन्धर्वकन्याने अपने पास आये हुए राजकुमार-को बैठनेके लिये कोमल पल्लवोंका आसन दिया और पूछा—कमलनयन! तुम कौन हो? किस देशसे यहाँ आये हो और किसके पुत्र हो?' इस प्रकार पूछनेपर राजकुमारने अपना पूरा परिचय बतलाया—'मैं विदर्भराजका पुत्र हूँ। मेरे पिता-माता बचपनमें ही मर गये हैं। शत्रुओंने मेरे राज्यपर अधिकार जमा लिया है और मैं दूसरेके राज्यमें गुजारा करता हूँ।'

ये सारी बातें बताकर राजकुमारने उस गन्धर्व-कन्यासे पूछा—सुन्दरी! तुम कौन हो? यहाँ तुम्हारा क्या कार्य है और तुम किसकी पुत्री हो? उनके इस प्रकार पूछनेपर कन्याने कहा—'महाराजकुमार! एक द्रविक नामक गन्धर्व हैं, जो समस्त गन्धर्वकुलके अगुआ माने जाते हैं। मैं उन्हींकी पुत्री हूँ और मेरा नाम अंशुमती है। सब सखियों-को छोड़कर मैं यहाँ अकेली हूँ। मैं तुम्हारी अभिलाषा जानती हूँ। तुम्हारा मन मुझमें आसक्त हो गया है। इसी प्रकार दैवने मेरे मनमें भी तुम्हारे लिये उत्कण्ठा भर दी है। अब हम दोनोंका स्नेह कभी भङ्ग नहीं होना चाहिये।' ऐसा कहकर गन्धर्वकुमारीने शीघ्र ही अपने गलेसे मोतीका हार निकालकर प्रेमपूर्वक राजकुमारको भेंट किया। उस अद्भुत हारको देखकर राजकुमारने पूछा—'भीरु! मैं एक बात कहता हूँ। मैं राज्यहीन और निर्धन हूँ। तुम मेरी प्रिया कैसे होना चाहती हो? मूर्ख स्त्रीकी भाँति पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके अपनी इच्छाके अनुसार आचरण क्यों करती हो?' यह सुनकर गन्धर्वकन्याने कहा—'प्रियतम! आपका कहना ठीक है। मैं पिताकी आज्ञाके विरुद्ध नहीं करूँगी। आप इस समय घरको पधारें और परसों प्रातः-काल पुनः यहीं दर्शन दें। आपसे कुछ हमारा कार्य है।' इतना कहकर वह गन्धर्वकन्या अपनी सखियोंके आ जानेसे उनके साथ चली गयी और राजकुमार भी हर्षपूर्वक ब्राह्मण-कुमारके समीप लौट आया। उसने द्विजपुत्रसे सब बातें बतायीं और उसके साथ घरको प्रस्थान किया। वहाँ पतिव्रता ब्राह्मणीको भी यह शुभ समाचार सुनाकर राजकुमारने प्रसन्न किया तथा पूर्वनिश्चित समय आनेपर वह पुनः द्विजपुत्रके साथ वनमें गया।

नियत स्थानपर पहुँचकर राजकुमारने देखा—गन्धर्वराज और उनकी कन्या दोनों उपस्थित हैं। गन्धर्वराजने वहाँ आये हुए दोनों कुमारोंका अभिनन्दन किया और सुन्दर आसनपर बिठाकर राजपुत्रसे कहा—'विदर्भराजकुमार! मैं कल कैलाश पर्वतपर गया था। वहाँ मैंने पार्वतीजीके साथ महादेवजीके दर्शन किये। देवेश्वर भगवान् शिव करुणा-रूपी अमृतके सागर हैं। उन्होंने मुझे बुलाकर सब देवताओं-के समीप इस प्रकार कहा—'पृथ्वीतलपर धर्मगुप्त नामसे प्रसिद्ध एक राजकुमार है, जो इस समय अकिञ्चन है। उसका राज्य छिन गया है, शत्रुओंने उसके देशको अपने अधिकार-में कर लिया है। अब वह बालक अपने गुरुकी आज्ञासे सदा मेरी आराधनामें संलग्न रहता है। उसीके प्रभावसे आज उसके समस्त पितर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो गये हैं। गन्धर्वश्रेष्ठ! तुम भी उस राजकुमारकी सहायता करो। अब वह शत्रुओंको मारकर अपने राज्यसिंहासनपर आसीन हो जायगा।' महादेवजीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैं अपने घरको आया। यहाँ इस मेरी कन्याने भी तुम्हारे लिये बहुत प्रार्थना की। यह सब परमदयालु भगवान् शिवकी

प्रेरणासे ही हो रहा है, ऐसा समझकर मैं इस कन्याको साथ लेकर आया हूँ । अतः अपनी पुत्री अंशुमतीको मैं तुम्हें पत्नीरूपमें देता हूँ और भगवान् शिवजीकी आज्ञासे शत्रुओंको मारकर तुम्हें तुम्हारे राज्यपर बिठाऊँगा । अपने उस नगरमें तुम अपनी इस धर्मपत्नीके साथ दस हजार वर्षोंतक मनोवाञ्छित सुख भोगकर अन्तमें भगवान् शिवके लोकमें जाओगे और वहाँ भी मेरी यह कन्या तुम्हारी ही सेवामें प्रस्तुत रहेगी ।'

इस प्रकार कहकर गन्धर्वराजने उसी वनमें राजकुमारके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया और दहेजमें परम उज्ज्वल रत्नभार भेट किये । चन्द्रमाके समान चमकीली चूड़ामणि तथा दमकते हुए मोतियोंके मनोहर हार दिये । दिव्य आभूषण, वस्त्र, सुवर्णके बने हुए बहुत-से सामान, दस हजार हाथी, एक लाख नीले घोड़े और हजारों सोनेके बड़े-बड़े रथ प्रदान किये । अन्तमें एक दिव्य रथ, इन्द्रके धनुषके समान विशाल धनुष, सहस्रों अस्त्र-शस्त्र, अक्षय बाणोंसे भरे हुए दो तरकस, अभेद्य सुवर्णमय कवच तथा शत्रुओंका संहार करनेवाली शक्ति समर्पित की । अपनी पुत्रीकी सेवाके लिये गन्धर्वराजने प्रसन्नचित्त होकर पाँच हजार दासियाँ दीं । इतना ही नहीं, राजकुमारकी सहायताके लिये उन्होंने अत्यन्त उग्र गन्धर्वोंकी चतुरङ्गिणी सेना भी भेट की । इस प्रकार परम उत्तम सम्पत्तिको पाकर राजकुमार अपनी मनोवाञ्छित पत्नीके साथ बहुत प्रसन्न हुए । पुत्रीका विवाह कराकर गन्धर्वराज स्वर्गलोकमें चले गये । धर्मगुप्त विवाहके अनन्तर गन्धर्वोंकी सेनाके साथ अपने नगरको गये और वहाँ उन्होंने शत्रुसेनाका संहार करके राजधानीमें प्रवेश किया । तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणों और मन्त्रियोंने मिलकर राजकुमारका अभिषेक किया और वे रत्नमय सिंहासनपर आरूढ़ होकर अकण्टक राज्यका उपभोग करने लगे । जिस ब्राह्मण-पत्नीने उनका अपने पुत्रकी भाँति पालन किया था, वही उनकी माता हुई । वह द्विजकुमार ही भाई हुआ तथा गन्धर्वराजपुत्री अंशुमती महारानीके पदपर प्रतिष्ठित हुई । भगवान् शङ्करकी आराधना करके धर्मगुप्त विदर्भ देशके राजा हो गये । इसी प्रकार दूसरे लोग भी प्रदोष-व्रतके दिन गिरिजापतिकी आराधना करके मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं और देहावसान होनेपर परम गतिको प्राप्त होते हैं ।

सूतजी कहते हैं—जो प्रदोषव्रतके परम अद्भुत पुण्यमय माहात्म्यको उस व्रतके दिन शिवपूजनके पश्चात् एकाग्रचित्त होकर सुनता अथवा पढ़ता है, उसे सौ जन्मोंतक कभी दरिद्रता नहीं होती और अन्तमें वह ज्ञानके ऐश्वर्यसे युक्त हो भगवान् शङ्करके परमधामको प्राप्त होता है ।

सोमवार-व्रतके प्रभावसे सीमन्तिनीको पुनः परम सौभाग्यकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—जो नित्य, आनन्दमय, शान्त, निर्विकल्प, निरामय, अनादि, अनन्त शिव-तत्त्वको जानते हैं, वे परम पदको प्राप्त होते हैं । जो धीर पुरुष कामभोगोंसे विरक्त हो भगवान् शङ्करमें हेतुरहित पराभक्ति करते हैं, उनका मोक्ष हो जाता है, वे संसारबन्धनमें नहीं पड़ते । जो मायामय संसारमें चिरकालतक सुखपूर्वक विहार करके देहावसान होनेपर मोक्ष चाहते हैं, उनके लिये यह धर्म बताया गया है कि संसारमें भगवान् शिवकी पूजा सदा ही स्वर्ग और मोक्षका हेतु है । यदि प्रदोष आदिके गुणोंसे युक्त सोमवारके दिन यह पूजा की जाय तो उसका विशेष माहात्म्य है । जो केवल सोमवारको भी भगवान् शङ्करकी पूजा करते हैं, उनके लिये इहलोक और परलोकमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है । सोमवारको उपवास करके पवित्र हो इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए वैदिक अथवा लौकिक मन्त्रोंसे विधिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये । ब्रह्मचारी, गृहस्थ, कन्या, सुहागिन स्त्री अथवा विधवा कोई भी क्यों न हो, भगवान् शिवकी पूजा करके मनोवाञ्छित वर पाता है । इस विषयमें मैं एक कथा कहूँगा, जिसको सुनकर मनुष्य मोक्ष पाते हैं और उनके मनमें भगवान् शिवकी भक्ति होती है ।

आर्यावर्तमें चित्रवर्मा नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे । वे दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये यमराजके समान समझे जाते थे । वे धर्ममर्यादाओंके रक्षक, कुमार्गगामी पुरुषोंको दण्ड देकर राहपर लानेवाले, समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले और शरणार्थियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ थे । भगवान् शिव और विष्णुमें उनकी बड़ी भक्ति थी । राजा चित्रवर्माने अनेक परम पराक्रमी पुत्रोंको पाकर अन्तमें एक सुन्दर मुखवाली कन्या प्राप्त की । एक दिन राजाने जातकके लक्षण जाननेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाकर कन्याकी जन्मकुण्डलीके

अनुसार भावी फल पूछे। तब उन ब्राह्मणोंमेंसे एक बहुज्ञ विद्वान्ने कहा—'महाराज! यह आपकी कन्या सीमन्तिनी नामसे प्रसिद्ध होगी। यह भगवती उमाकी भाँति माङ्गल्यमयी, दमयन्तीकी भाँति परम सुन्दरी, सरस्वतीके समान सब कलाओंको जाननेवाली तथा लक्ष्मीकी भाँति अत्यन्त सद्गुणोंसे सुशोभित होगी। यह दस हजार वर्षोंतक अपने स्वामीके साथ आनन्द भोगेगी और आठ पुत्रोंको जन्म देकर उत्तम सुखका उपभोग करेगी।' तत्पश्चात् एक दूसरे ब्राह्मणने कहा—'यह कन्या चौदहवें वर्षमें विधवा हो जायगी।' यह वज्राघातके

समान दारुण वचन सुनकर राजा दो घड़ीतक चिन्तामें डूबे रहे। तदनन्तर सब ब्राह्मणोंको विदा करके राजाने 'सब कुछ भाग्यके अनुसार ही होता है' ऐसा समझकर चिन्ता छोड़ दी। सीमन्तिनी धीरे-धीरे सयानी हुई। अपनी सखीके मुखसे भावी वैधव्यकी बात सुनकर उसे बड़ा खेद हुआ। उसने चिन्तामग्न होकर याज्ञवल्क्य मुनिकी पत्नी मैत्रेयीसे पूछा—'माताजी! मैं आपके चरणोंकी शरणमें आयी हूँ। मुझे सौभाग्य बढ़ानेवाले सत्कर्मका उपदेश दीजिये।' इस प्रकार शरणमें आयी हुई राजकन्यासे पतिव्रता मैत्रेयीने कहा—'सुन्दरी! तू शिवसहित पार्वतीजीकी शरणमें जा और सोमवारको एकाग्रचित्त हो स्नान और उपवासपूर्वक स्वच्छ वस्त्र धारण करके शिव और पार्वतीका पूजन कर। सोमवारके दिन शिव और पार्वतीकी आराधना करती रह। इससे बड़ी भारी आपत्ति पड़नेपर भी तू उससे मुक्त हो जायगी। घोर-से-घोर एवं भयङ्कर महाक्लेशमें पड़कर भी शिव-पूजा न छोड़ना। उसके प्रभावसे महान् भयसे पार हो जाओगी।' इस प्रकार सीमन्तिनीको आश्वासन देकर पतिव्रता मैत्रेयी आश्रमको चली गयीं। राजकुमारीने उनके कथनानुसार भगवान् शिवका पूजन प्रारम्भ किया।

निषध देशमें नलकी पत्नी दमयन्तीके गर्भसे इन्द्रसेन नामक पुत्र हुआ था। राजा इन्द्रसेनके पुत्र चन्द्राङ्गद हुए। नृपश्रेष्ठ चित्रवर्माने राजकुमार चन्द्राङ्गदको बुलाकर गुरुजनोंकी आज्ञासे उन्हींके साथ अपनी पुत्री सीमन्तिनीका विवाह कर दिया। उस विवाहमें बड़ा उत्सव हुआ था। विवाहके पश्चात् चन्द्राङ्गद कुछ कालतक ससुरालमें ही रहे। एक दिन राजकुमार यमुनाके पार जानेके लिये कुछ मित्रोंके साथ नावपर सवार हुए। भाग्यवश नाव यमुनाके भवँरमें मल्लाहोंसहित डूब गयी। यमुनाके दोनों तटोंपर बड़ा भारी हाहाकार मच गया। इस दुर्घटनाको देखनेवाले समस्त सैनिकोंके विलापसे सारा आकाशमण्डल गूँज उठा। डूबनेवालोंमेंसे कुछ तो मर गये और कुछ ग्राहोंके पेटमें चले गये तथा राजकुमार आदि कुछ लोग उस महाजलमें अदृश्य हो गये। यह समाचार सुनकर राजा चित्रवर्मा बड़े व्याकुल हुए और यमुनाके किनारे आकर मूर्छित होकर गिर पड़े। सीमन्तिनीने भी जब यह समाचार सुना तब वह अचेत होकर धरतीपर गिर पड़ी। राजा इन्द्रसेन भी अपने पुत्रके डूबनेका समाचार पाकर रानियोंसहित बहुत दुखी हुए और सुध-बुध खोकर गिर पड़े। तदनन्तर बड़े-बूढ़ोंके समझानेपर राजा चित्रवर्मा धीरे-धीरे नगरमें आये और उन्होंने अपनी पुत्रीको धीरज बँधाया।

राजा चित्रवर्माने जलमें डूबे हुए अपने दामादका और्ध्वदैहिक कृत्य वहाँ आये हुए उनके बन्धु-बान्धवोंसे करवाया। पतिव्रता सीमन्तिनीने चितामें बैठकर पतिलोकमें जानेका विचार किया। किंतु उसके पिताने स्नेहवश रोक दिया। तब वह विधवा-जीवन व्यतीत करने लगी। मुनिपत्नी मैत्रेयीने जिस शुभ सोमवार व्रतका उपदेश दिया था, उसे सदाचारपरायणा सीमन्तिनीने विधवा होनेपर भी नहीं छोड़ा। इस प्रकार चौदहवें वर्षकी आयुमें अत्यन्त दारुण दुःख पाकर वह भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करने लगी। शिवकी आराधना करते-करते उसके तीन वर्ष व्यतीत हो गये। उधर पुत्रशोकमें उन्मत्त हुए राजा इन्द्रसेनको बलपूर्वक दबाकर उनके भाइयोंने राज्य गन्

छीन लिया और उन्हें पत्नीसहित पकड़कर कारागृहमें डाल दिया ।

इन्द्रसेनके पुत्र चन्द्राङ्गद यमुनाके जलमें डूबनेपर नीचे-नीचे गहराईमें उतरने लगे । बहुत नीचे जानेपर उन्होंने नागवधुओंको जलक्रीडामें निमग्न देखा । राजकुमारको देखकर वे भी विस्मित हुईं और उन्हें पाताललोकमें ले गयीं। वहाँ चन्द्राङ्गदने तक्षक नागके परम अद्भुत रमणीय नगरमें प्रवेश किया और इन्द्रभवनके समान मनोहर एक सुन्दर महल देखा, जो बड़े-बड़े रत्नोंकी प्रकाशमान किरणोंसे उद्दीप्त हो रहा था। भगवान् सूर्यके समान तेजस्वी तक्षक नागको सभाभवनमें विराजमान देख परम बुद्धिमान् राजकुमारने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तक्षकके तेजसे उनके नेत्र चौंधिया गये । नागराजने भी मनोरम राजकुमारको देखकर उन नागिनोंसे पूछा—'यह कौन है और कहाँसे आया है ?' उन्होंने उत्तर दिया—'हमने इसे यमुनाजलमें देखा है और इसके कुल तथा नामका परिचय न होनेके कारण आपके पास ले आयी हैं ।' तब तक्षकने राजकुमारसे पूछा—'तुम किसके पुत्र हो, कौन हो, कौन-सा तुम्हारा देश है और यहाँपर तुम्हारा कैसे आगमन हुआ है ?'

राजपुत्रने कहा—भूमण्डलमें निषध नामसे प्रसिद्ध एक देश है। उसके स्वामी राजा नल महायशस्वी हो गये हैं। वे पुण्यश्लोक माने जाते हैं। उनके पुत्र इन्द्रसेन हुए और इन्द्रसेनका पुत्र मैं हुआ । मेरा नाम 'चन्द्राङ्गद' है। मैं अभी नूतन विवाह करके ससुरालमें ही टिका था और यमुनाजीके जलमें विहार करता हुआ दैवकी प्रेरणासे डूब गया। ये नागपत्नियाँ मुझे आपके पास ले आयी हैं। जन्मान्तरके उपार्जित पुण्योंके प्रभावसे यहाँ मैंने आपके चरणारविन्दोंका दर्शन किया है । आज मैं धन्य हूँ, मेरे माता-पिता कृतार्थ हो गये; क्योंकि आपने दया करके मेरी ओर देखा और मुझसे वार्तालाप किया है ।

इस प्रकार अत्यन्त मनोहर उदारतापूर्ण वचन सुनकर तक्षकने कहा—राजकुमार ! तुम भय न करो, धैर्य रक्खो और बताओ, तुम सम्पूर्ण देवताओंमें किसकी पूजा करते हो ?

राजकुमारने कहा—जो सम्पूर्ण देवोंमें महादेव कहे जाते हैं, उन्हीं विश्वात्मा उमापति भगवान् शिवकी मैं पूजा करता हूँ । जो विधाताके भी विधाता, कारणके भी कारण और तेजोंमें सर्वोत्कृष्ट तेज हैं, वे भगवान् शिव मेरी परम गति हैं । जो अत्यन्त निकट होकर भी पापसे दूषित चित्तवाले पुरुषोंके लिये बहुत दूर हैं तथा जिनके तेजकी कोई सीमा नहीं है, जो अग्नि, भूमि, वायु, जल और आकाशमें भी स्थित हैं, वे विश्वात्मा भगवान् सदाशिव हम सबके लिये परम पूजनीय हैं । जो सम्पूर्ण भूतोंके साक्षी, सबकी आत्मामें स्थित रहनेवाले परमेश्वर तथा निरञ्जन हैं, सम्पूर्ण संसार जिनकी इच्छाके अधीन है, मैं उन भगवान् शिवकी पूजा करता हूँ । ज्ञानी पुरुष जिन्हें एक, आदि और पुराणपुरुष कहते हैं, गुणोंके भेदसे जिनमें भिन्नताकी प्रतीति होती है, जिन्हें कोई तो क्षेत्रज्ञ, कोई तुरीय और कोई कूटस्थ कहते हैं, वे भगवान् शिव मेरे परम आश्रय हैं। जो चैतन्यमय अचिन्त्य तत्त्व हैं, जिनके तेजका कहीं अन्त नहीं है, श्रुतिके नेति-नेति वचनोंसे तद्भिन्न समस्त वस्तुओंका बाध करके जिनके स्वरूपका निश्चय किया जाता है तथा आत्मज्ञानी पुरुषोंके भी मन और वाणीकी वृत्तियाँ जिनका स्पर्श नहीं कर पातीं, वे ही ये भगवान् शिव मेरे परम पूज्य हैं। जिनका प्रसाद पाकर साधुपुरुष अत्यन्त उज्ज्वल इन्द्रपदकी भी अभिलाषा नहीं रखते तथा कर्मोंकी अर्गला (आगल) और कालचक्रको लाँघकर निर्भय होकर विचरते हैं, वे भगवान् शिव मेरी गति हैं। जिनकी स्मृति चाण्डालकी योनिमें जन्म पानेवाले मनुष्योंके भी समस्त पापरूपी रोगोंका नाश करती है तथा जिनका सम्पूर्ण रूप श्रुतियोंके लिये भी ढूँढ़ने योग्य है, उन्हीं भगवान् शिवके उद्देश्यसे मैं सदैव पूजा करता हूँ । देवनदी गङ्गा जिनके मस्तकपर स्थान पाकर सुशोभित होती हैं, भगवती जगदम्बिका जिनके अर्धाङ्गमें निवास करती हैं, अहा हा ! तक्षक और वासुकि दोनों नागराज जिनके कानोंके कुण्डल हैं, वे चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिव मेरे परम आश्रय हैं । जिनके चरणकमल वेदोंके शीर्षस्थानीय उपनिषदोंमें गौरवान्वित होते हैं, वेदान्तकी श्रुति भी जिनके चरणारविन्दोंका गुणगान करती है, जिनका दिव्य स्वरूप सदा योगियोंके हृदयमें प्रकाशित होता है तथा जिनकी सगुण मूर्ति सम्पूर्ण तत्त्वोंका प्रकाश करनेवाली है, गुणमयी सृष्टिपर विजय पानेवाले वे भगवान् शङ्कर मेरे द्वारा पूजित होते हैं ।

राजकुमारकी यह बात सुनकर तक्षकका चित्त प्रसन्न हो गया । उनके हृदयमें महादेवजीके प्रति नूतन भक्तिभावका उदय हो आया और वे उनसे इस प्रकार बोले—'राजेन्द्रनन्दन !

तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ; क्योंकि तुम बालक होकर भी सर्वोत्कृष्ट परात्पर शिवतत्त्वको जानते हो। देखो, यह रत्नमय लोक है। ये मनोहर नेत्रोंवाली युवतियाँ हैं। ये मनोवाञ्छित कामना पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष हैं तथा ये अमृतरूपी जलसे भरी हुई बावलियाँ हैं। यहाँ मृत्युका दारुण भय नहीं है। बुढ़ापा और रोगसे यहाँ किसीको पीड़ा नहीं होती। तुम इच्छानुसार यहीं विहरो और यथायोग्य सुखभोगोंका उपभोग करो।' नागराजके ऐसा कहनेपर राजकुमार हाथ जोड़कर बोले—'नागराज! मैंने समयपर विवाह किया है। मेरी पत्नी उत्तम व्रतका पालन करनेवाली और शिवपूजा-परायणा है और मैं अपने माता-पिताका इकलौता पुत्र हूँ। वे सब लोग इस समय मुझे मरा हुआ मानकर महान् शोकसे घिर गये होंगे। अतः मुझे किसी प्रकार भी यहाँ अधिक समयतक नहीं ठहरना चाहिये। आप कृपा करके मुझे उसी मनुष्यलोकमें पुनः पहुँचा दें।'

नागराज तक्षकने कहा—राजकुमार! तुम जब-जब मेरी याद करोगे, तब-तब तुम्हारे सामने प्रकट हो जाऊँगा। ऐसा कहकर उन्होंने राजकुमारको एक सुन्दर अश्व भेट किया, जो इच्छाके अनुसार चलनेवाला था। अनेक प्रकारके द्वीपों, समुद्रों और लोकोंमें उसकी अप्रतिहत गति थी। इसके सिवा उन्हें रत्नमय आभूषण, दिव्य वस्त्र एवं दिव्य अलङ्कार भेट किये। उनकी सहायताके लिये सारी व्यवस्था करनेके पश्चात् तक्षकने 'जाओ' कहकर प्रेमपूर्वक उन्हें विदा किया। चन्द्राङ्गद उस घोड़ेपर सवार हो निकले और थोड़ी ही देरमें यमुनाके जलसे बाहर आकर उस दिव्य अश्वपर चढ़े हुए ही नदीके रमणीय तटपर घूमने लगे। इसी समय पतिव्रता सीमन्तिनी अपनी सखियोंसे घिरी हुई वहाँ स्नान करनेके लिये आयी। उसने यमुनाके तटपर मनुष्यरूपधारी नागकुमारके साथ भ्रमण करते हुए राजकुमार चन्द्राङ्गदको देखा। दिव्य अश्वपर आरूढ़ हुए अपूर्व आकारवाले उन राजकुमारको देखकर वह उन्हींकी ओर दृष्टि लगाये खड़ी हो गयी। उसे देखकर चन्द्राङ्गदने भी मन-ही-मन विचार किया—जान पड़ता है इसे मैंने पहले कभी देखा है। तत्पश्चात् वे घोड़ेसे उतरकर नदीके किनारे आ बैठे और उस सुन्दरीको बुलाकर समीप बैठाकर पूछा—'तुम कौन हो, किसकी स्त्री और किसकी कन्या हो?' सीमन्तिनी लज्जावश स्वयं कुछ बोल न सकी। तब उसकी सखीने सब बातें बतायीं—'इसका नाम सीमन्तिनी है। यह निषधराज इन्द्रसेनकी पुत्र-वधू, युवराज चन्द्राङ्गदकी रानी तथा महाराज चित्रवर्माकी पुत्री है। दुर्भाग्यवश इसके पति इस महाजलमें डूब गये। इससे वैधव्यका दुःख प्राप्त करके यह बाला शोकसे सूखती जा रही है। अत्यन्त प्रबल शोकमें ही इसने तीन वर्ष व्यतीत किये हैं। आज सोमवार है, इसलिये यहाँ यमुनाजीमें स्नान करनेके लिये आयी है। इसके श्वशुरका राज्य भी शत्रुओंने छीन लिया है। बलपूर्वक उसपर अधिकार जमा लिया है और वे महाराज अपनी पत्नीके साथ उनकी कैदमें पड़े हैं। यह सब होनेपर भी यह निर्मल अन्तःकरणवाली सदाचारपरायणा राजकुमारी प्रति सोमवारको अत्यन्त भक्तिभावके साथ पार्वतीसहित महादेवजीकी पूजा करती है।'

उत्तम व्रतका पालन करनेवाली सीमन्तिनीने अपनी सखीके मुखसे सब बातें कहलवाकर स्वयं भी राजकुमारसे पूछा—आप कौन हैं? आपके पार्श्ववर्ती ये दोनों पुरुष कौन हैं? आपने मेरे वृत्तान्तको एक स्नेहीकी भाँति क्यों पूछा है? महाबाहो! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पहले कभी मैंने आपको देखा है। आप मुझे स्वजनकी भाँति प्रतीत होते हैं।

इतना कहकर राजकुमारी सीमन्तिनी नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहाती हुई बहुत देरतक फूट-फूटकर रोती रही और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। अपनी प्रियतमाके शोकका कारण सुनकर चन्द्राङ्गद भी शोकसे व्याकुल हो दो घड़ीतक चुपचाप बैठे रहे। तदनन्तर सीमन्तिनी उठकर राजकुमारकी ओर बारंबार निहारने लगी। उसने पहले देखे हुए अङ्गचिह्नों, स्वर आदि लक्षणों, अवस्थाके प्रमाण तथा रूप-रंग आदिकी परीक्षा करके यह निश्चय किया कि 'अवश्य यही मेरे पति हैं; क्योंकि मेरा हृदय प्रेमसे अधीर होकर इन्हींमें अनुरक्त हुआ है। परंतु क्या मुझ अभागिनीको अपने मरे हुए पतिका दर्शन हो सकता है? यह स्वप्न है या भ्रम अथवा मुनिपत्नी मैत्रेयीने जो मुझे यह कहा था कि तुम भारी-से-भारी विपत्तिमें पड़नेपर भी इस व्रतका पालन करती रहना, उसीका तो यह फल नहीं है। एक श्रेष्ठ ब्राह्मणने मेरा दस हजार वर्षोंका सौभाग्य बतलाया था। उन ब्राह्मण देवताका यह वचन अवश्य सत्य होगा। यह ईश्वरके बिना कौन जान

सकता है ? इधर प्रतिदिन मुझे मङ्गलसूचक शुभ शकुन दिखायी देते हैं। पार्वती देवीके प्राणनाथ भगवान् शिवके प्रसन्न होनेपर देहधारियोंके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ हो सकती है।' इस प्रकार भाँति-भाँतिसे विचार करके उसका सन्देह दूर हो गया। तब लज्जासे उसने अपना मुख नीचेकी ओर कर लिया। उस समय राजकुमारने कहा—'भद्रे! मैं तुम्हारे पतिके शोकसन्तप्त माता-पितासे यह समाचार बतलानेके लिये जा रहा हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे पति तुमसे शीघ्र ही मिलेंगे।'

यों कहकर राजकुमार घोड़ेपर सवार हुए और अपने दोनों सहायकोंके साथ शीघ्र ही अपने राज्यमें जा पहुँचे। वहाँ नगरोद्यानके समीप स्थित होकर उन्होंने नागराजके पुत्रको राजसिंहासनपर अधिकार जमाये बैठे हुए बन्धुओंके समीप भेजा। नागकुमारने शीघ्र जाकर उन सबसे कहा—'तुम सब लोग महाराज इन्द्रसेनको अविलम्ब कारागृहसे मुक्त करो और सिंहासन छोड़कर हट जाओ। महाराजके पुत्र चन्द्राङ्गद पाताललोकसे लौटकर यहाँ आये हैं। तुम आनाकानी न करो, नहीं तो चन्द्राङ्गदके बाण तुम्हारे प्राण हर लेंगे। वे यमुनाजीके जलमें डूबकर नागराज तक्षकके घर जा पहुँचे थे। वहाँसे उनकी सहायता पाकर पुनः इस लोकमें लौटे हैं।'

नागकुमारकी कही हुई ये सारी बातें सुनकर शत्रुओंने भी 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और महाराज इन्द्रसेनको उनके खोये हुए पुत्रके पुनः लौट आनेका समाचार बताकर उनका सिंहासन उन्हें लौटा दिया। महाराजको प्रसन्न करके भी वे लोग भयभीत बने रहे।

मेरा पुत्र आ रहा है, यह बात सुनकर राजा प्रेमके आँसू बहाते हुए आनन्दमें डूब गये। यही दशा महारानीकी भी थी। तदनन्तर सब नागरिक, वृद्ध मन्त्री और पुरोहित आगे जाकर चन्द्राङ्गदसे मिले और उन्हें हृदयसे लगाकर महाराजके समीप ले आये। अपने भवनमें प्रवेश करके अश्रुवर्षा करते हुए राजकुमारने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। चरणोंमें पड़े हुए पुत्रको उठाकर राजाने अश्रुसिक्त हृदयसे लगा लिया। फिर क्रमशः सब माताओंको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद ले राजकुमार पुरवासियोंसे मिले और उन्होंने सबको यथायोग्य सम्मान दिया। पुनः सबके साथ राजसभामें बैठकर अपना सब वृत्तान्त पितासे निवेदन किया और नागराज तक्षकसे मित्रता होनेकी भी बात बतलायी। राजकुमारका चरित्र देख और सुनकर राजा इन्द्रसेन हर्षसे विह्वल हो गये। उन्होंने अपने मनमें यही माना कि मेरी पुत्रवधूने भगवान् महेश्वरकी आराधना करके इस अनुपम सौभाग्यका अर्जन किया है। निषध-राजने यह मङ्गलमयी वार्ता दूतोंके द्वारा महाराज चित्रवर्माको भी कहला दी। यह अमृतमयी वार्ता सुनकर महाराज चित्रवर्मा आनन्दसे विह्वल हो गये और बड़े वेगसे उठकर उन्होंने सन्देशवाहकोंको उपहारमें बहुत धन दिया। फिर अपनी पुत्रीको बुलाकर उन्होंने उससे वैधव्यके चिह्नोंका परित्याग करवाया और उसे नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित किया। तत्पश्चात् समूचे राष्ट्रके गाँव और नगर आदिमें बड़ा भारी उत्सव हुआ और सब लोगोंने राजकुमारी सीमन्तिनीके सदाचारकी बड़ी प्रशंसा की। चित्रवर्माने इन्द्रसेनके पुत्र चन्द्राङ्गदको बुलाकर सीमन्तिनीको उनके साथ विदा कर दिया। चन्द्राङ्गदने तक्षकके घरसे लाये हुए रत्न आदि आभूषणोंके द्वारा, जो मानवमात्रके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं, अपनी पत्नीको अलङ्कृत किया। तपे हुए सुवर्णके समान सुशोभित चालीस कोसतक जानेवाली सुगन्धसे युक्त दिव्य अङ्गरागसे सीमन्तिनीकी बड़ी शोभा हो रही थी। कमलके केसरके समान रंगवाले कल्पवृक्षके पुष्पोंसे बनी हुई और कभी न कुम्हलानेवाली माला भी सती सीमन्तिनीकी शोभा बढ़ा रही थी। इस प्रकार शुभ मुहूर्तमें अपनी पत्नीको साथ लेकर श्वशुरकी आज्ञासे चन्द्राङ्गद पुनः अपनी नगरीमें आये। महाराज इन्द्रसेनने अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बिठाकर तपस्याद्वारा भगवान् शिवकी आराधना करके योगी पुरुषोंको उपलब्ध होनेवाली उत्तम गति प्राप्त की। राजा चन्द्राङ्गदने अपनी धर्मपत्नी सीमन्तिनी-के साथ दस हजार वर्षोंतक नाना प्रकारके विषयोंका उपभोग किया। उन्होंने आठ पुत्रों और एक कन्याको जन्म दिया। सीमन्तिनी प्रतिदिन भगवान् महेश्वरकी पूजा करती हुई अपने स्वामीके साथ सुखपूर्वक रहने लगी। उसने सोमवारव्रतके प्रभावसे अपना खोया हुआ सौभाग्य प्राप्त कर लिया।

त्यागी हुई रानी और राजकुमारकी वैश्य एवं शिवयोगीद्वारा रक्षा तथा शिवयोगीका राजपुत्रको धर्मका उपदेश करना

सूतजी कहते हैं—एक समय दशार्णदेशके राजा वज्रबाहुकी पत्नी सुमति अपने नवजात शिशुके साथ असाध्य रोगकी शिकार हो गयी थी; इसलिये दुष्टबुद्धि राजाने उसे वनमें त्याग दिया। वहाँ अनेक प्रकारके कष्ट भोगती हुई वह यत्नपूर्वक आगे बढ़ने लगी। बहुत दूर जानेपर उसने वैश्योंका एक नगर देखा, जिसमें बहुतसे स्त्री-पुरुष निवास करते थे। उस नगरका रक्षक एक बहुत बड़ा महाजन वैश्य था, जो पद्माकरके नामसे प्रसिद्ध था। वह दूसरे कुबेरके समान धनवान् था। उस वैश्यराजके घरमें सेवा-टहलका कार्य करनेवाली कोई दासी उधर ही आ रही थी। वह दूरसे ही राजपत्नीको देखकर उनके समीप आयी। उसने रानीको देखते ही उसका सारा हाल जान लिया। वह पुत्र-सहित अत्यन्त कष्ट भोग रही थी। दासीने अपने स्वामीको उस स्त्रीका दर्शन कराया। वैश्यराजने रोगी पुत्रके साथ स्वयं भी रोगसे पीड़ित हुई राजपत्नीको एकान्तमें बुलाकर उसका सब वृत्तान्त पूछा और सब बात जान लेनेपर अपने घरके पास ही एकान्त गृहमें उसे ठहराया। अन्न, वस्त्र, जल और शय्या आदिका प्रबन्ध करके वैश्यने माताके समान उसका आदर किया। उस घरमें सुरक्षित होकर निवास करती हुई राजपत्नीके व्रण और यक्ष्मा आदि रोगोंकी शान्ति नहीं हुई। कुछ ही दिनोंमें रानीका पुत्र घावसे पीड़ित होकर वैद्योंकी चिकित्साशक्तिसे परे जा पहुँचा और मृत्युको प्राप्त हो गया। पुत्रके मरनेपर रानी महान् शोकसे ग्रस्त हो मूर्च्छित हो गयी और टूटी हुई लताके समान धरतीपर गिर पड़ी। फिर सचेत होनेपर वैश्योंकी स्त्रियोंने उसे बहुत समझाया तथापि वह अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगी—'हा पुत्र! बन्धु-बान्धवोंसे त्यागी हुई अपनी इस दीन एवं अनाथ माताको छोड़कर तुम कहाँ चले गये?' जब वह इस प्रकार विलाप कर रही थी, उसी समय ऋषभ नामसे प्रसिद्ध शिवयोगी वहाँ आ पहुँचे। वैश्यराजने अर्घ्य देकर उनका सत्कार किया। तत्पश्चात् वे शोकग्रस्त राजपत्नीके समीप जाकर इस प्रकार बोले—'बेटी! तुम इतनी क्यों रो रही हो? संसारमें किसका जन्म हुआ और कौन मृत्युको प्राप्त हुआ। ये शरीर आदि जलके फेनके समान क्षणभङ्गुर हैं। कभी इनकी प्रतीतिका भ्रम होता है, कभी ये शान्त हो जाते हैं और कभी पुनः इनकी स्थिति होती है। अतः फेनके समान इस शरीरकी मृत्यु होनेपर विद्वान् पुरुष शोक नहीं करते। सत्त्व आदि तीनों गुण मायासे उत्पन्न होते हैं। उन्हीं तीनों गुणोंसे शरीरकी उत्पत्ति हुई है। अतः सबके शरीर त्रिगुणमय ही हैं। सत्त्वगुणकी अधिकता होनेसे जीव देवयोनिको प्राप्त होता है, रजोगुणसे मानवयोनिमें जन्म लेता है और तमोगुणकी अधिकतासे अपनी वासनाके अनुसार वह पशु-पक्षी आदि योनिमें उत्पन्न होता है। वर्तमान संसारमें जीव अपने कर्मोंके बन्धनसे बँधकर बार-बार ऐसी सुख-दुःखमयी अवस्थाको प्राप्त होता है, जिसका अनुमान करना अत्यन्त कठिन है। जिनकी आयु एक कल्पतककी मानी गयी है, ऐसे देवताओंकी स्थितिमें भी उलट-फेर होता रहता है। फिर जो अनेक प्रकारके रोगोंसे ग्रस्त हैं, ऐसे मानव-देहधारी प्राणियोंकी तो बात ही क्या है? कोई कालको ही इस शरीरकी उत्पत्तिमें कारण बताते हैं, कोई कर्मको और कोई गुणोंको हेतु मानते हैं। वस्तुतः काल, कर्म और गुण तीनोंसे ही शरीरका आधान हुआ है। यह पाञ्चभौतिक शरीर उत्पन्न हो या मरे, इसे देखकर विद्वान् पुरुष हर्ष और शोक नहीं करते। जीव अव्यक्तसे उत्पन्न होता और अव्यक्तमें ही लीन होता है, केवल मध्यकालमें जलके बुलबुलेकी भाँति व्यक्त-सा प्रतीत होता है। जीव जब गर्भमें आता है, उसी समय उसकी मृत्यु निश्चित हो जाती है। वह दैववश जन्म लेकर जीवित रहता है अथवा जन्म लेते ही सहसा उसकी मृत्यु हो जाती है। कितने ही जीव गर्भमें ही नष्ट हो जाते हैं, कुछ जन्म लेनेपर तत्काल मर जाते हैं, कुछ जवान होनेपर मृत्युको प्राप्त होते हैं और कुछ बुढ़ापेमें परलोकगामी होते हैं। पहलेका कर्म जैसा होता है, वैसा ही शरीर जीवको प्राप्त होता है तथा वह कर्मोंके अनुसार ही सुख-दुःख भोगता है। विधाताके द्वारा ललाटमें लिखी हुई आयु, सुख, दुःख, विद्या और धनको लिये हुए जीव जन्म लेता है। कर्मोंका उल्लङ्घन करना असम्भव है। कालका भी अतिक्रमण करना किसीके लिये सम्भव नहीं है। जगत्‌के समस्त पदार्थ अनित्य हैं। इसलिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। स्वप्नके पदार्थोंमें नियमपूर्वक स्थिरता कहाँ

है ? इन्द्रजालमें सच्चाई कहाँ है ? शरद् ऋतुके बादलोंमें चिरस्थायिता कहाँ है और प्राणियोंके शरीरमें नित्यता कहाँ है ?* अबतक तुम्हारे सौ कोटि अयुत (दस हजार) जन्म व्यतीत हो चुके हैं। अब तुम्हीं बताओ, तुम किसकी-किसकी पुत्री हो, किसकी-किसकी माता हो और किसकी-किसकी पत्नी हो ? यह शरीर पाँच भूतोंका बना हुआ है। यह त्वचा, रक्त और मांससे बँधा हुआ है। मेदा, मज्जा और हड्डियोंका समूह है तथा मल-मूत्र और कफका भाजन है। मोहमें पड़ी हुई नारी ! यह जो तुम्हारे पास दूसरा शरीर (तुम्हारे पुत्रका शव) पड़ा हुआ है, इस अपने पुत्रको भी अपने शरीरसे निकला हुआ मल समझकर तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। कोई पण्डित भी अपनी तपस्या, विद्या, बुद्धि, मन्त्र, ओषधि तथा रसायनसे मृत्युका उल्लङ्घन नहीं कर सकता †। सुमुखि ! आज एक जीवकी मृत्यु होती है, तो कल दूसरेकी। अतः इस अनित्य शरीरके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। मृत्यु सदा समीप ही रहती है। फिर बताओ, देहधारियोंको क्या सुख है ? अतः यदि तुम जन्म, बुढ़ापा और मृत्युको जीतना चाहती हो तो मृत्युको जीतनेवाले सबके ईश्वर भगवान् उमापतिकी शरणमें जाओ। तभीतक मृत्युका घोर भय है तथा जन्म और जरावस्थाका भय है, जबतक कि जीव भगवान् शिवके चरणारविन्दोंकी शरणमें नहीं जाता। अत्यन्त भयंकर संसारमें नाना प्रकारके दुःखोंका अनुभव करके मनुष्यका मन जब उसकी ओरसे विरक्त हो जाता है, उस समय उसे भगवान् महेश्वरका ध्यान करना चाहिये। जो मनसे भगवान् शिवके ध्यानरूपी रसामृतका पान करता है, उस पुरुषको फिर संसारकी विषयरूपी मदिराको पीनेकी तृष्णा नहीं होती। जब सब प्रकारकी आसक्तियोंसे छूटा हुआ मन वैराग्यके अधीन हो भगवान् शिवके चरणोंके चिन्तनमें मग्न हो जाता है, तब मनुष्यका इस संसारमें फिर जन्म नहीं होता है। भद्रे ! यह मन भगवान् शिवके ध्यानका एक-मात्र साधन है, इसे शोक और मोहमें न डुबाओ। शिवजीका भजन करो।'

इस प्रकार शिवयोगीने अनुनयपूर्वक जब रानीको समझाया तब उसने उन्हींको गुरु मानकर उनके चरण-कमलोंमें प्रणाम करके कहा—भगवन् ! जिसका एकमात्र पुत्र मर गया हो, जिसे प्रिय बन्धुओंने त्याग दिया हो तथा जो महान् रोगसे अत्यन्त पीड़ित रहती हो, ऐसी मुझ अभागिनीके लिये मृत्युके सिवा दूसरी कौन गति है ? इसलिये मैं इस शिशुके साथ ही प्राण त्याग देना चाहती हूँ। मृत्युके समय जो आपका दर्शन हो गया, मैं इतनेसे ही कृतार्थ हूँ।

रानीकी यह बात सुनकर दयानिधान शिवयोगी मरे हुए बालकके पास आये और शिवमन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्म लेकर उसके मुँहमें डाल दिया। विभूतिके पड़ते ही वह मरा हुआ बालक प्राणयुक्त हो गया। प्राण लौट आनेपर बालकने आँखें खोल दीं। उसकी इन्द्रियोंमें पूर्ववत् शक्ति आ गयी और वह दूध पीनेकी इच्छासे रोने लगा। तब नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाती हुई रानीने झपटकर बालकको गोदमें उठा लिया और उसे छातीसे चिपकाकर वह अपूर्व आनन्दमें डूब गयी। तत्पश्चात् शिवयोगीने माता और बालकके विषैले घावोंसे युक्त शरीरमें भी भस्मका स्पर्श कराया। इससे उन दोनोंके शरीर दिव्य हो गये। उन्होंने देवताओंके समान कान्तिमान् स्वरूप धारण कर लिया। तत्पश्चात् ऋषभने रानीसे कहा—'बेटी ! तुम दीर्घकालतक जीवित रहो। जबतक इस संसारमें जीवित रहोगी, तबतक वृद्धावस्था तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकेगी। साध्वी ! तुम्हारा यह पुत्र लोकमें भद्रायु नामसे विख्यात होगा और अपना राज्य प्राप्त कर लेगा। तबतक तुम इन्हीं वैश्यराजके घरमें निवास करो, जबतक कि तुम्हारा पुत्र पूर्ण विद्वान् न हो जाय।'

इस प्रकार ऋषभ योगीने भस्मकी शक्तिसे मरे हुए राजकुमारको जीवित करके अपने अभीष्ट स्थानको प्रस्थान किया। भद्रायु उन्हीं वैश्यराजके घरमें क्रमशः बढ़ने लगा। वैश्यके भी 'सुनय' नामक एक पुत्र था, जो राजकुमारका सखा हुआ। राजकुमार और वैश्यकुमार दोनों परस्पर बड़ा स्नेह रखते थे। वैश्यराजने विद्वान् ब्राह्मणोंके द्वारा राजकुमार और अपने पुत्रका भी संस्कार विस्तारपूर्वक करवाया। समयपर उपनयन-संस्कार हो जानेके पश्चात् दोनों बालकोंने गुरुसेवामें तत्पर हो विनयपूर्वक सम्पूर्ण विद्याओंका संग्रह किया। तदनन्तर जब राजकुमारका सोलहवाँ वर्ष लगा, तब वे ही ऋषभ योगी पुनः वैश्यराजके घर आये। रानी और राजकुमारने बड़े हर्षके साथ उनको बार-बार प्रणाम करके

* क्व स्वप्ने नियतं स्थैर्यमिन्द्रजाले क्व सत्यता।
क्व नित्यता शरन्मेघे क्व शश्वत्त्वं कलेवरे॥
(स्क० पु० ब्रा० ब्रह्मो० १० । ६४)

† तपसा विद्यया बुद्ध्या मन्त्रौषधिरसायनैः।
मतियाति परं मृत्युं न कश्चिदपि पण्डितः॥
(स्क० पु० ब्रा० ब्रह्मो० १० । ७०)

उनकी यथायोग्य पूजा की । उन दोनोंसे पूजित होनेपर योगीश्वर शिवयोगीने कहा—'बेटा ! तुम कुशलसे तो हो न ? तुम्हारी माताको भी कोई कष्ट तो नहीं है ? क्या तुमने सब विद्याओंका अध्ययन कर लिया ? गुरुजनोंकी सेवामें सदा संलग्न रहते हो न ? वत्स ! क्या मुझ प्राणदाता गुरुका कभी स्मरण करते हो ?'

योगीश्वर ऋषभके ऐसा कहते समय विनयशीला रानीने अपने पुत्रको उनके चरणोंमें डाल दिया और कहा—गुरुदेव ! यह आपका ही पुत्र है। आप ही इसके प्राणदाता पिता हैं। आप दया करके अपने इस शिष्यको अनुगृहीत करें और इसे सत्पुरुषोंके उत्तम मार्ग—शुभ कर्मका उपदेश दें । रानीके द्वारा इस प्रकार प्रसन्न कराये जानेपर परम बुद्धिमान् शिवयोगीने राजकुमारको सन्मार्गका उपदेश दिया ।

ऋषभ बोले—वेद, स्मृति और पुराणोंमें जिसका उपदेश किया गया है, वही सनातन धर्म है । सब लोगोंको चाहिये कि अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार सदा शास्त्रोक्त धर्मका सेवन करें । वत्स ! तुम सदा सत्पुरुषोंके मार्गपर चलो । उत्तम आचारका ही पालन करो । देवताओंकी आज्ञाका कभी उल्लङ्घन न करो, देवताओंकी अवहेलना भी न करो । गौ, देवता, गुरु और ब्राह्मणके प्रति सदा भक्तिभाव रक्खो । अतिथिके रूपमें चाण्डाल भी अपने घर आ जाय, तो सदा उसका सत्कार करो । अपने प्राणोंपर सङ्कट आ जाय तो भी सत्यका परित्याग न करो । महाबाहो ! पराये धनकी, परायी स्त्रीकी, देवता तथा ब्राह्मणकी वस्तुओंकी और अत्यन्त दुर्लभ पदार्थोंकी भी तृष्णा त्याग दो । महामते ! सदा उत्तम कथा, उत्तम आचार, उत्तम व्रत, सत्पुरुषोंके आगमन तथा धर्म आदिके संग्रहकी ही अभिलाषा करो । स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, गोपूजा, देवपूजा और अतिथिपूजामें कभी आलस्यको समीप न आने दो । क्रोध, द्वेष, भय, शठता, चुगली, अनुचित आग्रह, कुटिलता, दम्भ और उद्वेगका यत्नपूर्वक त्याग करो । अकारण वैर, व्यर्थकी बकवाद और दूसरोंकी निन्दा छोड़ दो । मृगया, द्यूतक्रीडा, मद्यपान, स्त्री और स्त्रीलम्पट पुरुष—इन सबके सङ्गका परित्याग करो । अधिक भोजन, अधिक परिश्रम, अधिक बातचीत और अधिक खेल-कूद तथा क्रीडा-विलासको सदाके लिये छोड़ दो। अधिक विद्या, अधिक श्रद्धा, अधिक पुण्य, अधिक स्मरण, अधिक उत्साह, अधिक प्रसिद्धि और अधिक धैर्य जैसे भी प्राप्त हो, उसके लिये सदा चेष्टा करो। अपनी ही पत्नीके प्रति सकाम बनो । अपने शत्रुओंपर ही क्रोध करो । पुण्यराशिके संग्रहके लिये ही लोभ करो । पापाचारियोंके प्रति ही असूया (दोषदृष्टि) करो । पाखण्डियोंके प्रति द्वेष तथा साधुपुरुषोंके प्रति राग रक्खो । बुरी सलाहको समझानेमें और ग्रहण करनेमें मूर्ख बने रहो । चुगुलोंकी बातें अनसुनी करनेके लिये बहरे हो जाओ । धूर्त, अत्यन्त क्रोधी, शठ, क्रूर, छली, चञ्चल, दुष्ट, पतित, नास्तिक और कुटिल मनुष्यको दूरसे ही त्याग दो । अपनी प्रशंसा न करो। दूसरोंकी चेष्टाओं और इशारोंको समझो । धन और कुटुम्बमें अधिक आसक्ति न रक्खो। पतिव्रता पत्नी, माता, श्वशुर, साधु पुरुष और गुरुके वचनोंमें सदा विश्वास करो । अपनी रक्षामें तत्पर होकर सदा सावधान रहो। उत्तम व्रतका पालन करो । अपने सेवकोंपर भी कभी पूर्ण विश्वास न करो । महामते ! जो तुम्हारा विश्वासपात्र रहा हो ऐसा कोई पुरुष यदि चोरीमें भी पकड़ा जाय, तो उसे प्राणदण्ड न दो । पापरहित मनुष्योंपर सन्देह न करो । सत्यसे विचलित न होओ । अनाथ, दीन, वृद्ध, स्त्री, बालक और निरपराध मनुष्यकी धनसे, बुद्धिसे, शक्तिसे, बलसे तथा अपने प्राणोंद्वारा भी रक्षा करो । वध करने योग्य शत्रु भी यदि शरणमें आ जाय तो उसे न मारो । माता-पिता और गुरुके कोपसे बचो । धनका व्यय, पुत्रों तथा ब्राह्मणोंका अपराध सहन करो । जिस प्रकार ब्राह्मण प्रसन्न हों, वैसा उनका हित करो । क्योंकि श्रेष्ठ द्विज सङ्कटमें पड़े हुए राजाका

उस सङ्कटसे उद्धार करते हैं। आयु, यश, बल, सुख, धन, पुण्य और प्रजाजनोंकी उन्नति—यह सब जिस सत्कर्मसे सम्भव हो, उसका सदा सेवन करना चाहिये। देश, काल, शक्ति, कर्तव्य, अकर्तव्यका भलीभाँति विचार करके सदा यत्नपूर्वक कर्म करो। स्वयं किसीको बाधा न पहुँचाओ। दूसरोंकी बाधाका निवारण करो। उत्तम नीति और शक्तिसे चोरों तथा दुष्टोंका दमन करो। स्नान, जप, होम, देवपूजा तथा श्राद्धकर्ममें उतावली न करो। नींद लेने और भोजनमें शीघ्रता करो। उदारतायुक्त, शठतासे रहित, सत्य, मनुष्योंके मनको प्रिय लगनेवाली तथा थोड़ेसे अक्षर और अधिक अर्थवाली बात बोलो। कहीं भी भय न करो। शत्रुओं और विपत्तियोंमें पड़कर भी निडर बने रहो। ब्राह्मणकुल, गुरुकी आज्ञा तथा पापाचरणसे डरो। कुटुम्बीजनों, भाई-बन्धुओं, ब्राह्मणों, पत्नियों, पुत्रों तथा भोजनकी पङ्क्तियोंमें समतापूर्ण बर्ताव करो। सत्पुरुषोंके हितकारक उपदेशों, पुण्य कथाओं, विद्यागोष्ठियों तथा धर्मचर्चाओंसे कभी मुँह न मोड़ो। जलके निकट, सर्वत्र विख्यात, ब्राह्मणोंके निवाससे युक्त, परम पवित्र तथा कल्याणमय प्रशस्त स्थानमें सदा निवास करो। जहाँ कुलटाएँ और वेश्याएँ रहती हों, जहाँ कामलम्पट पुरुषोंका निवास हो, ऐसे नीच जनसेवित दूषित स्थानमें तुम कभी निवास न करो। त्रिभुवनके स्वामी एकमात्र भगवान् शिवकी शरण लेकर भी तुम सभी देवताओंकी यथासमय उपासना करते रहो और उनके दिनों (तत्सम्बन्धी तिथियों) का भी समादर करो। वत्स ! तुम सदा पवित्र, सदा दक्ष, सदा शान्त, सदा स्थिर, सदा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—इन छहों शत्रुओंको जीतनेवाले तथा सदा एकान्तवासी बनो। वेदवेत्ता ब्राह्मण, नियमोंसे प्रकाशित होनेवाले शान्त संन्यासी, पुण्य वृक्ष, पुण्य नदी, पुण्य तीर्थ, महासरोवर, धेनु, वृषभ, पतिव्रता स्त्री तथा अपने घरके देवताओंको उनके पास जाते ही सहसा नमस्कार करो।

ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर भलीभाँति आचमन करके तुम पहले अपने गुरुजीको प्रणाम करो। तत्पश्चात् उमापति भगवान् शिवका ध्यान करके लक्ष्मीपति नारायण, ब्रह्मा, गणेश, स्कन्द, कात्यायनी देवी, महालक्ष्मी, सरस्वती, इन्द्र आदि लोकपाल तथा पुण्यश्लोक (पवित्र यशवाले) महर्षियोंका चिन्तन करो। उसके बाद उदयकालमें सदा भगवान् सूर्यको प्रणाम करो। गन्ध, पुष्प, ताम्बूल, शाक और पके फल आदि भक्ष्य-भोज्य प्रिय एवं नूतन पदार्थ पहले भगवान् शिवको अर्पण करके फिर प्रसादरूपसे उसका उपभोग करो। जो कुछ दान, सत्कर्म, जप, स्नान, होम, चिन्तन तथा तप तुम्हारे द्वारा किया जाय, वह सब भगवान् शिवको समर्पित कर दो। खाते, पाठ करते, सोते, घूमते, देखते, सुनते, बोलते और ग्रहण करते समय सदा भगवान् शिवका ही चिन्तन करो। प्रतिदिन मन्त्रराज पञ्चाक्षरका जप और ध्यान करते हुए सदा भगवान् सदाशिवके चरणोंमें अपने मनको रमाते रहो। वत्स ! यह संक्षेपमे तुम्हारे लिये धर्मका उपदेश किया गया है।

शिवयोगीसे शिव-कवचका उपदेश और दिव्य खड्ग एवं शङ्ख पाकर भद्रायुका शत्रुओंको जीतना तथा निषधराजकी पुत्रीसे उसका विवाह

ऋषभ शिवयोगी कहते हैं—हे भद्रायु ! पवित्र स्थानमें यथायोग्य आसन बिछाकर बैठे। इन्द्रियोंको अपने वशमें करके प्राणायामपूर्वक अविनाशी भगवान् शिवका चिन्तन करे। परमानन्दमय भगवान् महेश्वर हृदय-कमलके भीतरकी कर्णिकामें विराजमान हैं। उन्होंने अपने तेजसे आकाशमण्डलको व्याप्त कर रक्खा है। वे इन्द्रियातीत, सूक्ष्म, अनन्त एवं सबके आदि कारण हैं। इस प्रकार ध्यानके द्वारा समस्त कर्मबन्धनका नाश करके चिरकालतक चिदानन्दमय भगवान् सदाशिवमें अपने चित्तको लगाये रहे। फिर षडक्षरन्यासके द्वारा अपने मनको एकाग्र करके मनुष्य (निम्नलिखित) शिवकवचके द्वारा अपनी रक्षा करे।

"सर्वदेवमय महादेवजी गहरे संसार-कूपमें गिरे हुए मुझ असहायकी रक्षा करें। उनका दिव्य नाम मेरे समस्त हृदयस्थित पापोंका नाश करे। सम्पूर्ण विश्व जिनकी मूर्ति है, जो ज्योतिर्मय आनन्दघनस्वरूप चिदात्मा हैं, वे भगवान् शिव मेरी सर्वत्र रक्षा करें। जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं, महान् शक्तिसे सम्पन्न हैं, वे 'ईश्वर' महादेवजी सम्पूर्ण भयोंसे मेरी रक्षा करें। जिन्होंने पृथ्वीके रूपमें इस विश्वको धारण कर रक्खा है, वे अष्टमूर्ति 'गिरीश' पृथ्वीसे मेरी रक्षा करें। जो जलके रूपमें जीवोंको जीवन-दान दे रहे हैं, वे जलसे मेरी रक्षा करें। जो विशद लीलाविहारी 'शिव' कल्पके अन्तमें समस्त भुवनोंको विदग्ध करके आनन्दसे नृत्य करते हैं, वे

कालरुद्र भगवान् दावानलसे, आँधी-तूफानोंसे और समस्त तापोंसे मेरी रक्षा करें। प्रदीप्त विद्युत् एवं स्वर्णके सदृश जिनकी कान्ति है, विद्या, वर, अभय (मुद्रा) और कुठार जिनके करकमलोंमें सुशोभित हैं, जो चतुर्मुख और त्रिलोचन हैं, वे 'सत्पुरुष' भगवान् पूर्व दिशामें निरन्तर मेरी रक्षा करें। जो कुठार, वेद, अङ्कुश, पाश, शूल, कपाल, नगाड़ा और रुद्राक्षकी मालाको धारण किये हुए हैं, जो चतुर्मुख हैं, वे नीलरुचि, त्रिनेत्र 'अघोर' भगवान् दक्षिण दिशामें मेरी रक्षा करें। कुन्द, चन्द्रमा, शङ्ख और स्फटिकके समान जिनकी उज्ज्वल कान्ति है, वेद, रुद्राक्ष-माला, वर और अभय (मुद्रा) से जो सुशोभित हैं, वे महाप्रभावशाली चतुरानन, त्रिलोचन 'सद्योधिजात' भगवान् पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करें। जिनके हाथोंमें वर, अभय (मुद्रा), रुद्राक्षमाला और टाँकी विराजमान है, कमल-किञ्जल्कके सदृश जिनका वर्ण है, वे चतुर्मुख त्रिनेत्र 'वामदेव' भगवान् उत्तर दिशामें मेरी रक्षा करें। जिनके करकमलोंमें वेद, अभय, वर, अङ्कुश, टाँकी, पाश, कपाल, नगाड़ा, रुद्राक्षमाला और शूल सुशोभित हैं, जो सितद्युति हैं, वे परम प्रकाशरूप पञ्चमुख 'ईशान' भगवान् मेरी ऊपरसे रक्षा करें। भगवान् 'चन्द्रमौलि' मेरे सिरकी, 'भालनेत्र' मेरे भालकी, 'भगनेत्रहारी' मेरे नेत्रोंकी, 'विश्वनाथ' मेरी नासिकाकी, 'श्रुतिगीतकीर्ति' कानोंकी, 'पञ्चमुख' मुखकी, 'वेदजिह्व' जीभकी, 'गिरीश' गलेकी, 'नीलकण्ठ' दोनों हाथोंकी, 'धर्मबाहु' कन्धोंकी, 'दक्षयज्ञ-विध्वंसी' वक्षःस्थलकी, 'गिरीन्द्रधन्वा' पेटकी, 'कामदेवके नाशक' मध्यदेशकी, 'गणेशजीके पिता' नाभिकी, 'धूर्जटि' कटिकी, 'कुबेरमित्र' दोनों पिण्डलियोंकी, 'जगदीश्वर' दोनों घुटनोंकी, 'पुङ्गवकेतु' दोनों जाँघोंकी और 'सुरवन्द्यचरण' मेरे पैरोंकी सदैव रक्षा करें। 'महेश्वर' दिनके पहले प्रहरमें मेरी रक्षा करें। 'वामदेव' मध्यके प्रहरमें, 'त्र्यम्बक' तीसरे प्रहरमें और 'वृषभध्वज' दिनके अन्तवाले प्रहरमें मेरी रक्षा करें। 'शशिशेखर' रात्रिके आरम्भमें, 'गङ्गाधर' अर्धरात्रिमें, 'गौरीपति' रात्रिके अन्तमें और 'मृत्युञ्जय' सर्वकालमें मेरी रक्षा करें। 'शङ्कर' अन्तःस्थित अवस्थामें मेरी रक्षा करें। 'स्थाणु' बहिःस्थित रक्षा करें। 'पशुपति' बीचमें रक्षा करें और 'सदाशिव' सब ओर मेरी रक्षा करें। 'भुवनैकनाथ' खड़े होनेके समय, 'प्रमथनाथ' चलते समय, 'वेदान्तवेद्य' बैठे रहते समय और 'अविनाशी शिव' सोते समय मेरी रक्षा करें। 'नीलकण्ठ' रास्तेमें मेरी रक्षा करें। 'त्रिपुरारी' शैलादि दुर्गोंमें और उदार शक्ति 'मृगव्याध' वनवासादि महान् प्रवासोंमें मेरी रक्षा करें। जिनका प्रबल क्रोध कल्पोंका अन्त करनेमें अत्यन्त पटु है, जिनके प्रचण्ड अट्टहाससे ब्रह्माण्ड काँप उठता है, वे 'वीरभद्रजी' समुद्रके सदृश भयानक शत्रुसेनाके दुर्निवार महान् भयसे मेरी रक्षा करें। भगवान् 'मृड' मुझपर आततायीरूपसे आक्रमण करनेवालोंकी हजारों, दस हजारों, लाखों और करोड़ों पैदलों, घोड़ों, हाथियों और रथोंसे युक्त अति भीषण सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाओंका अपनी घोर कुठार-धारसे छेदन करें। भगवान् 'त्रिपुरान्तक'का प्रलयाग्निके समान ज्वालाओंसे युक्त जलता हुआ त्रिशूल मेरे दस्युदलका विनाश कर दे और उनका पिनाक धनुष शार्दूल, सिंह, रीछ और भेड़िया आदि हिंस्र जन्तुओंको सन्त्रस्त करे। वे जगदीश्वर मेरे बुरे स्वप्न, बुरे शकुन, बुरी गति, मनकी दुष्ट भावना, दुर्भिक्ष, दुर्व्यसन, दुःसह अपयश, उत्पात, सन्ताप, विषभय, दुष्ट ग्रहोंके दुःख तथा समस्त रोगोंका नाश करें।

"सम्पूर्ण तत्त्व जिनके स्वरूप हैं, जो सम्पूर्ण तत्त्वोंमें विचरण करनेवाले, समस्त लोकोंके एकमात्र कर्ता और सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र भरण-पोषण करनेवाले हैं, जो अखिल विश्वके एक ही संहारकारी, सब लोकोंके एकमात्र गुरु, समस्त संसारके एक ही साक्षी, सम्पूर्ण वेदोंके गूढ़ तत्त्व, सबको वर देनेवाले, समस्त पापों और पीड़ाओंका नाश करनेवाले, सारे संसारको अभय देनेवाले, सब लोगोंके एकमात्र कल्याणकारी, चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले, अपने सनातन प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले, निर्गुण, उपमारहित, निराकार, निराभास, निरामय, निष्प्रपञ्च, निष्कलङ्क, निर्द्वन्द्व, निःसङ्ग, निर्मल, गतिशून्य, नित्यरूप, नित्यवैभवसे सम्पन्न, अनुपम ऐश्वर्यसे सुशोभित, आधारशून्य, नित्य, शुद्ध-बुद्ध, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दघन, अद्वितीय तथा परम शान्त, प्रकाशमय, तेजस्स्वरूप हैं, उन भगवान् सदाशिवको नमस्कार है। हे महारुद्र ! महारौद्र, भद्रावतार, दुःखदावाग्नि-विदारण, महाभैरव, कालभैरव, कल्पान्तभैरव, कपालमालाधारी ! हे खट्वाङ्ग, खड्ग, ढाल, पाश, अङ्कुश, डमरु, शूल, धनुष, बाण, गदा, शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर, मुशल, मुद्गर, पट्टिश, परशु, परिघ, भुशुण्डि, शतघ्नी और चक्र आदि आयुधोंके द्वारा भयङ्कर हजार हाथोंवाले ! हे मुखदंष्ट्राकराल, विकट अट्टहास-विस्फारितब्रह्माण्डमण्डल, नागेन्द्रकुण्डल, नागेन्द्रहार, नागेन्द्रचर्मधर, मृत्युञ्जय, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, विरूपाक्ष,

विश्वेश्वर, विश्वरूप, वृषवाहन, विधुभूषण और विश्वतोमुख ! आपकी जय हो, जय हो। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। मेरे महामृत्यु-भयको जला दीजिये, जला दीजिये। अपमृत्युका नाश कीजिये, नाश कीजिये। (बाहरी और भीतरी) रोग-भयको जड़से मिटा दीजिये, जड़से मिटा दीजिये। सर्प-विष-भयको शान्त कीजिये, शान्त कीजिये। चोर-भयको मार डालिये, मार डालिये। मेरे (काम-क्रोध-लोभादि भीतरी तथा इन्द्रियोंके और शरीरके द्वारा होनेवाले पाप-कर्मरूपी बाहरी) शत्रुओंको उच्चाटन कीजिये, उच्चाटन कीजिये। शूलके द्वारा विदारण कीजिये, विदारण कीजिये। कुठारके द्वारा काट डालिये, काट डालिये। खड्गके द्वारा छेद डालिये, छेद डालिये। खट्वाङ्गके द्वारा नाश कीजिये, नाश कीजिये। मुशलके द्वारा पीस डालिये, पीस डालिये और बाणोंके द्वारा बींध डालिये, बींध डालिये। आप मेरी हिंसा करनेवाले राक्षसोंको भय दिखाइये, भय दिखाइये। भूतोंका विदारण कीजिये, विदारण कीजिये। कूष्माण्ड, बेताल, मारियों और ब्रह्मराक्षसोंको सन्त्रस्त कीजिये, सन्त्रस्त कीजिये। मुझको अभय कीजिये, अभय कीजिये। मुझ डरे हुएको आश्वासन दीजिये, आश्वासन दीजिये। नरक-भयसे मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। मुझे जीवन-दान दीजिये, जीवन-दान दीजिये। क्षुधा-तृष्णासे मुझको आप्यायित कीजिये, आप्यायित कीजिये। आपकी जय हो, जय हो। मुझ दुःखातुरको आनन्दित कीजिये, आनन्दित कीजिये। शिवकवचसे मुझे आच्छादित कीजिये, आच्छादित कीजिये। त्र्यम्बक ! सदाशिव ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।"

इस प्रकार मैंने तुम्हें वरदायक शिव-कवचका उपदेश किया है। यह सब बाधाओंको शान्त करनेवाला तथा समस्त प्राणियोंके लिये गोपनीय वस्तु है। जो मनुष्य इस उत्तम शिव-कवचको सदा धारण करता है, उसे भगवान् शङ्करकी कृपासे कहीं भी भय नहीं प्राप्त होता। जिसकी आयु क्षीण हो गयी है, जो मरणासन्न है अथवा महान् रोगसे मृत-प्राय हो रहा है, वह भी इस कवचको धारण करनेसे तत्काल सुखी होता है और दीर्घ आयु पाता है। वत्स ! मेरे दिये हुए इस उत्तम शिव-कवचको तुम श्रद्धापूर्वक धारण करो, इससे तुम शीघ्र ही कल्याणके भागी होओगे।

ऐसा कहकर ऋषभ योगीने उस राजकुमारको बड़ी भारी आवाज करनेवाला एक शङ्ख तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला एक खड्ग दिया। फिर भस्मको अभिमन्त्रित करके राजकुमारके सब अङ्गोंमें लगाया और उसे बारह हजार हाथियोंका बल प्रदान किया। तदनन्तर योगीने कहा—'इस तलवारकी धार बड़ी पैनी है। तुम जिसको एक बार इसे दिखा दोगे, उस शत्रुकी तत्काल मृत्यु हो जायगी; तथा तुम्हारे जो शत्रु इस शङ्खकी ध्वनि सुनेंगे, वे मूर्च्छित होकर गिर जायँगे, अचेत होकर हथियार डाल देंगे। ये खड्ग और शङ्ख दोनों ही दिव्य हैं। इनके प्रभावसे और भगवान् शिवके कवचकी महिमासे बारह हजार हाथियोंके समान महान् बलसे तथा भस्मधारणजनित शक्तिसे तुम शत्रु-सेनापर अवश्य विजय प्राप्त करोगे। पिताके सिंहासनको पाकर इस पृथ्वीकी रक्षा करोगे।' इस प्रकार मातासहित भद्रायुको भलीभाँति उपदेश करके उन दोनोंसे पूजित हो योगीबाबा इच्छानुसार चले गये।

इधर मगध देशके राजाने राजा वज्रबाहुको युद्धमें हराकर उनकी राजधानीको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, उनकी स्त्रियों और गोधन आदिको हर लिया और वज्रबाहुको भी बलपूर्वक बाँधकर रथपर बैठाकर वे शत्रुलोग अपने नगरको ले गये। इस प्रकार राष्ट्रके विनाशका भयङ्कर कोलाहल होनेपर बलवान् राजकुमार भद्रायुने भी यह समाचार सुना कि शत्रुओंने मेरे पिताको बाँध लिया, मेरी माताओंको भी हर लिया और दशार्णदेशका राज्य नष्ट कर दिया है। यह सुनकर राजकुमार भद्रायु सिंहकी भाँति गर्जना करने लगा। उसने शङ्ख और खड्ग ले लिये, कवच पहना और घोड़ेपर सवार हो वह शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे बड़े वेगसे उस स्थानपर आया, जहाँ मागधसेना भरी हुई थी। राजकुमार शीघ्र ही शत्रुओंकी सेनामें घुस गया और धनुषको कानतक खींचकर बाणोंकी वर्षा करने लगा। राजपुत्रके बाणोंकी मार खाकर शत्रु भी उसपर टूट पड़े और बड़े वेगसे भयङ्कर बाणोंद्वारा उसे घायल करने लगे। युद्धोन्मत्त शत्रुओंके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे आहत होकर भी धीर वीर राजकुमार रणभूमिमें विचलित नहीं हुआ। वह शिव-कवचसे पूर्णतः सुरक्षित था। मागध-सैनिकोंकी अस्त्र-वर्षाका सामना करते हुए ही वीरवर भद्रायुने शत्रुसेनामें प्रवेश करके बहुतसे रथों, हाथियों और पैदल सैनिकोंको शीघ्रतापूर्वक मार गिराया। रणभूमिमें ही एक रथीको सारथिसहित मारकर राजकुमारने उस रथपर अधिकार कर लिया और अपने मित्र वैश्यकुमारको सारथि बनाकर युद्धमें विचरण प्रारम्भ किया। ऐसा जान पड़ता था, मानो मृगोंके झुंडमें कोई सिंह भ्रमण कर रहा है। तब शत्रुसेनाके सभी बलवान् सेनापति अपना धनुष

गये हैं। अतः आप इन्हें और इनकी पतिव्रता माताको साथ लेकर अपने नगरको जाइये। इससे आप उत्तम कल्याणके भागी होंगे।'

ये सब बातें बताकर राजा चन्द्राङ्गद अपने रनिवासमें ठहरी हुई राजाकी ज्येष्ठ पत्नीको वहाँ ले आये। वे वस्त्र-आभूषणोंसे विभूषित थीं। उन्होंने वज्रबाहुको रानीसे मिलाया। यह सब वृत्तान्त सुनकर और देखकर राजा वज्रबाहु बहुत लज्जित हुए और मूर्खतावश उनके द्वारा जो अनुचित कर्म हो गया था, उसकी वे स्वयं ही निन्दा करने लगे। पत्नी और पुत्रके दर्शनसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। उनके सब अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया और उन्होंने दोनोंको हृदयसे लगा लिया। इस प्रकार निषधराजसे पूजित और प्रशंसित होकर राजा वज्रबाहुने अपनी बड़ी रानीको, राजकुमार भद्रायुको और पुत्रवधू कीर्तिमालिनीको भी साथ ले परिवारसहित अपनी राजधानीको प्रस्थान किया। वहाँ जाकर भद्रायुने समस्त पुरवासियोंको आनन्दित किया। समय आनेपर उसके पिता जब स्वर्गवासी हो गये, तब युवावस्थामें अद्भुत पराक्रमी भद्रायुने ही सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन किया और ब्रह्मर्षियोंके समीप मगधराज हेमरथसे मित्रता जोड़कर उन्हें अपने बन्धनसे मुक्त किया।

भद्रायु तथा कीर्तिमालिनीके भक्तिभावकी परीक्षा लेकर भगवान् शिवका उन्हें वरदान देना

सूतजी कहते हैं—राजसिंहासन प्राप्त कर लेनेपर वीर राजा भद्रायुने किसी समय अपनी धर्मपत्नीके साथ रमणीय वनमें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने देखा, कुछ ही दूरपर एक ब्राह्मण पति-पत्नी चिल्लाते हुए भागे जाते हैं और कोई बाघ उनका पीछा कर रहा है। वे दोनों पति-पत्नी कह रहे थे—'महाराज! हा राजन्! हे करुणानिधे! हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' यह पुकार सुनकर राजाने अपना धनुष उठाया। इतनेमें ही वह व्याघ्र आ पहुँचा। उसने ब्राह्मणीको पकड़ लिया। वह 'हा नाथ! हा नाथ! हा प्राणवल्लभ! हा शम्भो! हा जगदीश्वर!' आदि कहकर विलाप करने लगी। व्याघ्र बड़ा भयानक था। उसने ज्यों-ही ब्राह्मणीको पकड़ा, त्यों-ही राजा भद्रायुने अपने तीखे बाणोंसे उसके मर्ममें आघात किया। किंतु वह महाबली व्याघ्र उन बाणोंसे

तनिक भी व्यथित न हो, ब्राह्मणीको बलपूर्वक खींचकर दूर निकल गया। अपनी पत्नीको व्याघ्रके पञ्जेमें पड़ी हुई देख ब्राह्मणको बड़ा दुःख हुआ। वह विलाप करने लगा—'हा प्रिये! हा कान्ते! हा पतिव्रते! मुझे यहाँ अकेला छोड़कर तुम परलोकमें कैसे चली गयी? तुमको छोड़कर मैं कैसे जीवित रह सकता हूँ। राजन्! तुम्हारे वे बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र कहाँ हैं, जिनकी बड़ी प्रशंसा सुनी जाती थी? वह महान् धनुष अब क्या हो गया? तुम्हारा बारह हजार हाथियोंसे भी अधिक बल कहाँ है? तुम्हारे शङ्ख, खड्ग तथा मन्त्रास्त्रविद्यासे क्या लाभ हुआ? दूसरोंको क्षीण होनेसे बचाना क्षत्रियका परम धर्म है। धर्मज्ञ राजा अपना धन और प्राण देकर भी शरणमें आये हुए दीन-दुखियोंकी रक्षा करते हैं। जो पीड़ितोंकी प्राणरक्षा नहीं कर सकते, ऐसे लोगोंके जीवनकी अपेक्षा तो उनकी मृत्यु ही श्रेष्ठ है।'

इस प्रकार ब्राह्मणका विलाप और उसके मुखसे अपने पराक्रमकी निन्दा सुनकर राजाने शोकसे मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'अहो! आज भाग्यके उलट-फेरसे मेरा पराक्रम नष्ट हो गया। मेरे धर्मका भी नाश हो गया। अतः अब मेरी सम्पदा, राज्य और आयुका भी निश्चय ही नाश हो जायगा।' यों विचारकर राजा भद्रायु ब्राह्मणके चरणोंमें गिर पड़े और उसे धीरज बँधाते हुए बोले—'ब्रह्मन्! मेरा पराक्रम नष्ट हो गया है। मुझ क्षत्रियाधमपर आप कृपा कीजिये। महामते! शोक छोड़ दीजिये। मैं आपको मनोवाञ्छित पदार्थ दूँगा। यह राज्य, यह रानी और मेरा यह शरीर सब कुछ आपके अधीन है। बोलिये आप क्या चाहते हैं?'

ब्राह्मण बोले—राजन्! अन्धेको दर्पणसे क्या काम? जो भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करता हो, वह बहुतसे घर

लेकर क्या करेगा। जो मूर्ख है, उसे पुस्तकसे क्या काम तथा जिसके पास स्त्री नहीं है, वह धन लेकर क्या करेगा ? मेरी पत्नी चली गयी, मैंने कभी काम-सुखका उपभोग नहीं किया। अतः कामभोगके लिये आप अपनी इस बड़ी रानीको मुझे दे दीजिये।

राजाने कहा—ब्रह्मन्! क्या यही तुम्हारा धर्म है ? क्या तुम्हें गुरुने यही उपदेश किया है ? क्या तुम नहीं जानते कि परायी स्त्रीका स्पर्श स्वर्ग एवं सुयशकी हानि करनेवाला है ? परस्त्रीके उपभोगसे जो पाप कमाया जाता है, उसे सैकड़ों प्रायश्चित्तोंद्वारा भी धोया नहीं जा सकता।

ब्राह्मण बोले—राजन्! मैं अपनी तपस्यासे भयङ्कर ब्रह्महत्या और मदिरापान-जैसे पापका भी नाश कर डालूँगा। फिर परस्त्रीसङ्गम किस गिनतीमें है। अतः आप अपनी इस भार्याको मुझे अवश्य दे दीजिये। अन्यथा आप निश्चय ही नरकमें पड़ेंगे।

ब्राह्मणकी इस बातपर राजाने मन-ही-मन विचार किया कि ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षा न करनेसे महापाप होगा। अतः इससे बचनेके लिये पत्नीको दे डालना ही श्रेष्ठ है। इस श्रेष्ठ ब्राह्मणको अपनी पत्नी देकर मैं पापसे मुक्त हो शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके राजाने आग जलायी और ब्राह्मणको बुलाकर उसके प्रति अपनी पत्नीको दे दिया। तत्पश्चात् स्नान करके पवित्र हो देवताओंको प्रणाम करके उन्होंने अग्निकी दो बार परिक्रमा की और एकाग्रचित्त होकर भगवान् शिवका ध्यान किया। इस प्रकार राजाको अग्निमें गिरनेके लिये उद्यत देख जगत्पति भगवान् विश्वनाथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये। उनके पाँच मुँह थे। मस्तकपर चन्द्रकला आभूषणका काम दे रही थी। कुछ-कुछ पीले रंगकी जटा लटकी हुई थी। वे कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी थे। हाथोंमें त्रिशूल, खट्वाङ्ग, कुठार, ढाल, मृग, अभय, वरद और पिनाक धारण किये, बैलकी पीठपर बैठे हुए भगवान् नीलकण्ठको राजाने अपने आगे प्रत्यक्ष देखा। उनके दर्शनजनित आनन्दसे युक्त हो राजा भद्रायुने हाथ जोड़कर स्तवन किया।

राजा बोले—जिनका दूसरा कोई स्वामी नहीं है, जो अविकारी, प्रधान गुणोंसे युक्त और महान् हैं तथा स्वयं कारण-रहित होकर कारणोंके भी कारण हैं, उन सच्चिदानन्दमय प्रशान्तस्वरूप देव परमशिवको मैं नमस्कार करता हूँ। आप सम्पूर्ण विश्वके साक्षी, इस जगत्के कर्ता, महान् तेजोमय तथा सबके हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे स्थित हैं। इसीलिये विद्वान् पुरुष सदा आपकी खोज करते हैं और योगीजन अपनी चित्तवृत्तियोंको रोककर अनेक प्रकारके योग-साधनोंद्वारा आपकी आराधना करते हैं। जो लोग एकात्मताकी भावना करते हैं, उनके लिये आप एक हैं और जिनकी बुद्धिमें नानात्वकी प्रतीति होती है, उनके लिये आप ही अनेक रूपोंमें व्यक्त हुए हैं। आपका पद (स्वरूप) इन्द्रियोंसे परे, सबका साक्षी, आविर्भाव और तिरोभावकी लीलासे युक्त तथा मनकी पहुँचसे दूर है। आप मन और वाणीके लिये दुर्लभ हैं। आपमें मोहका सर्वथा अभाव है। आप परमात्मरूप हैं। मेरी वाणी केवल सत्त्वादि गुणोंमें स्थित और प्रकृतिमें विलीन होनेवाली है। अतः वह आपके दिव्य विग्रहकी स्तुति करनेमें कैसे समर्थ हो सकती है ? तथापि शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले आपके चरण-कमलोंका जो लोग भक्तिपूर्वक आश्रय लेते हैं, वे आपको प्राप्त होते हैं। अतः भयङ्कर भवरूपी दावानलसे पीड़ित हो मैं संसारभयकी शान्तिके लिये नित्य आपका भजन करता हूँ। देवताओंके भी देवता, कल्याण-निकेतन, भगवान् महादेवको नमस्कार है। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले त्रिमूर्तिरूप आपको नमस्कार है। विश्वके आदिरूप और संसारके प्रथम साक्षी आपको नमस्कार है। सत्तामात्र तत्त्व आपका स्वरूप है, आपको नमस्कार है। आप ज्ञानानन्दघन हैं, आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें निवास करनेवाले हैं। आपकी आत्मशक्ति सब क्षेत्रोंसे भिन्न है। आप ही अशक्त हैं और आप ही अतिशय शक्तिमान्के रूपमें आभासित होते हैं। आप भूमा परमेश्वरको नमस्कार है। आप नित्य, निराभास, सत्यज्ञानमय विशुद्ध अन्तरात्मा हैं, सबसे दूर और समस्त कर्मोंसे मुक्त हैं। आपको प्रणाम है। आप वेदान्तद्वारा जाननेयोग्य तथा वेदके मूल-भागमें निवास करनेवाले हैं, आपको प्रणाम है। आपकी चेष्टाएँ (लीलाएँ) विवेकयुक्त एवं पवित्र होती हैं। आप त्रिगुणमयी वृत्तियोंसे सर्वथा दूर हैं, आपको नमस्कार है। आपका पराक्रम कल्याणमय है, आप कल्याणमय फल देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप अनन्त, महान्, शान्त एवं शिवरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप अघोर (सौम्य), अत्यन्त घोर और घोर पापराशिका विदारण करनेवाले हैं। संसारबन्धनके बीजोंको भून डालनेवाले सर्वश्रेष्ठ गुरु भगवान् भर्गको नमस्कार है। मोहरहित एवं निर्मल आत्मगुणोंवाले आपको नमस्कार है। जगदीश्वर! सनातन देव शङ्कर! विरूपाक्ष रुद्र! अविनाशी मृत्युञ्जय! मेरी रक्षा

कीजिये। हे कल्याणमय चन्द्रशेखर! शान्तमूर्ति गौरीपते! सूर्य, चन्द्र एवं अग्निमय नेत्रोंवाले गङ्गाधर! अन्धकासुरका नाश करनेवाले पुण्यकीर्ति भूतनाथ! और कैलाश पर्वतपर निवास करनेवाले महादेव! आपको बारंबार नमस्कार है।

राजाके इस प्रकार स्तुति करनेपर माता पार्वतीके साथ प्रसन्न हुए करुणानिधान महेश्वरने कहा—राजन्! तुमने किसी अन्यका चिन्तन न करके जो सदा-सर्वदा मेरा पूजन किया है, तुम्हारी इस भक्तिके कारण और तुम्हारे द्वारा की हुई इस पवित्र स्तुतिको सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुम्हारे भक्तिभावकी परीक्षाके लिये मैं स्वयं ब्राह्मण बनकर आया था। जिसे व्याघ्रने ग्रस लिया था, वह ब्राह्मणी और कोई नहीं, ये गिरिराजनन्दिनी उमादेवी ही थीं। तुम्हारे बाण मारनेसे भी जिसके शरीरको चोट नहीं पहुँची, वह व्याघ्र माया-निर्मित था। तुम्हारे धैर्यको देखनेके लिये ही मैंने तुम्हारी पत्नीको माँगा था। इस कीर्तिमालिनीकी और तुम्हारी भक्तिसे मैं सन्तुष्ट हूँ। तुम कोई दुर्लभ वर माँगो, मैं उसे दूँगा।

राजा बोले—देव! आप साक्षात् परमेश्वर हैं। आपने सांसारिक तापसे घिरे हुए मुझ अधमको जो प्रत्यक्ष दर्शन दिया है, यही मेरे लिये महान् वर है। देव! आप वर-दाताओंमें श्रेष्ठ हैं। आपसे मैं दूसरा कोई वर नहीं माँगता। मेरी यही इच्छा है कि मैं, मेरी रानी, मेरे माता-पिता, पद्माकर वैश्य और उसके पुत्र सुनय—इन सबको आप अपना पार्श्ववर्ती सेवक बना लीजिये।

तत्पश्चात् रानी कीर्तिमालिनीने प्रणाम करके अपनी भक्तिसे भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया और यह उत्तम वर माँगा—'महादेव! मेरे पिता चन्द्राङ्गद और माता सीमन्तिनी—इन दोनोंको भी आपके समीप निवास प्राप्त हो।' भक्तवत्सल भगवान् गौरीपतिने प्रसन्न होकर 'एवमस्तु' कहा और उन दोनों पति-पत्नीको इच्छानुसार वर देकर वे क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये। इधर राजाने भगवान् शङ्करका प्रसाद प्राप्त करके रानी कीर्तिमालिनीके साथ प्रिय विषयोंका उपभोग किया और दस हजार वर्षोंतक राज्य करनेके पश्चात् अपने पुत्रोंको राज्य देकर उन्होंने शिवजीके परम पदको प्राप्त किया। राजा और रानी दोनों ही भक्तिपूर्वक महादेवजीकी पूजा करके भगवान् शिवके धामको प्राप्त हुए। यह परम पवित्र, पापनाशक एवं अत्यन्त गोपनीय भगवान् शिवका विचित्र गुणानुवाद जो विद्वानोंको सुनाता है अथवा स्वयं भी शुद्धचित्त होकर पढ़ता है, वह इस लोकमें भोग-ऐश्वर्यको प्राप्तकर अन्तमें भगवान् शिवको प्राप्त होता है।

भस्मकी महिमासे ब्रह्मराक्षसका उद्धार

सूतजी कहते हैं—वामदेव नामसे प्रसिद्ध एक महातपस्वी शिवयोगी हुए हैं, जो सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित, निर्गुण, शान्त, असङ्ग, समदर्शी, आत्माराम, क्रोधको जीतनेवाले तथा गृह और गृहिणीसे हीन थे। सबके ऊपर दया करनेमें संलग्न रहनेवाले वे महात्मा एक दिन स्वेच्छानुसार घूमते-फिरते बड़े भयङ्कर क्रौञ्चारण्यमें जा पहुँचे। उस निर्जन वनमें कोई भूख-प्याससे व्याकुल अत्यन्त भयानक ब्रह्मराक्षस रहता था। वामदेवजीको देखकर उन्हें खा जानेके लिये वह राक्षस बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़ा। उसे आते देख योगीश्वर वामदेव तनिक भी विचलित नहीं हुए। उस घोर ब्रह्मराक्षसने वेगसे दौड़कर उन्हें पकड़ लिया। पर वामदेवके अङ्गोंका स्पर्श होते ही उसकी सारी पापराशि तत्काल नष्ट हो गयी और उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। जैसे चिन्तामणि (स्पर्शमणि) का स्पर्श करके लोहा भी सुवर्ण हो जाता है, जैसे जम्बू नदीमें पड़ी हुई मिट्टी भी सोना हो जाती है, जैसे मानस-सरोवरमें आकर कौए भी हंस हो जाते हैं और जिस प्रकार एक बार भी अमृत पी लेनेपर मनुष्य अजर-अमर देवता हो जाता है, उसी प्रकार महात्मा पुरुष अपने दर्शन तथा स्पर्श आदिसे पापियोंको भी तत्काल पवित्र कर देते हैं। अतः सत्सङ्ग दुर्लभ है*। जो राक्षस पहले भूख-प्याससे विकल हो घोररूप धारण करके वनमें भटकता फिरता था, वही साधुके सम्पर्कसे पूर्णानन्दमय हो गया। उसने योगीके युगलचरणारविन्दोंमें प्रणाम करके कहा—'महायोगिन्! मुझपर प्रसन्न होइये। करुणानिधे! प्रसन्न होइये। कहाँ सब प्राणियोंको भय देनेवाला मुझ-जैसा पापात्मा और कहाँ आप-जैसे दयालु महात्माका दर्शन!'

* यथा चिन्तामणिं स्पृष्ट्वा लोहं काञ्चनतां व्रजेत्।
यथा जम्बूनदीं प्राप्य मृत्तिका स्वर्णतां व्रजेत्॥
यथा मानसमभ्येत्य वायसा यान्ति हंसताम्।
यथामृतं सकृत्पीत्वा नरो देवत्वमाप्नुयात्॥
तथैव हि महात्मानो दर्शनस्पर्शनादिभिः।
सद्यः पुनन्त्यघोपेतान्सत्सङ्गो दुर्लभः कृतः॥
(स्क० पु० ब्रा० ब्रह्मो० १५। १२—१४)

वामदेवजी बोले—भयानक राक्षसका रूप धारण करके र वनमें विचरनेवाले तुम कौन हो और यहाँ किस लिये ते हो ?

राक्षसने कहा—इससे पचीसवें जन्म पूर्व मैं पवन-द्रका रक्षक था। उस समय मेरा नाम दुर्जय था। मैं बड़ा पी और स्वेच्छाचारी था। प्रतिदिन नयी-नयी स्त्रीका भोग करनेकी इच्छा रखता था। नित्य एक-एक स्त्रीको गकर छोड़ देता और उसे घरके भीतर रखकर अन्य यांका अपहरण करवाता था। मेरे द्वारा भोगी हुई वे याँ घरके भीतर बंद रहकर दिन-रात शोकमें डूबी रहती । मेरे राज्यमें जितने ब्राह्मण थे, वे सब स्त्रियोंसहित भाग । मैं सधवा, विधवा, कुमारी तथा रजस्वला सभी तरह-स्त्रियोंका हरण करके उनके साथ कुकर्म करता था। इस ार दूषित विषयभोगोंमें आसक्त, मत्त एवं मदिरापानमें रत नेके कारण मुझे जवानीमें ही यक्ष्मा आदि बड़े-बड़े रोगोंने लिया। मन्त्रियों और सेवकोंने भी मुझे त्याग दिया। तमें अपने ही कुकर्मके कारण मैं मर गया।* जो मनुष्य से भ्रष्ट हो जाता है, उसकी आयु नष्ट होती है, अयश ता है, भाग्य क्षीण होता है। वह अत्यन्त दुर्गतिमें पड़ता तथा उसके पूर्वज पितर स्वर्गसे निश्चय ही गिर जाते । मृत्युके पश्चात् यमराजके दूत मुझे यमलोक ले गये। मैं भयङ्कर नरककुण्डमें डाल दिया गया। उस कुण्डके र यमदूतोंसे पीड़ित होकर मुझे तीस हजार वर्षोंतक ा पड़ा। तदनन्तर बचे हुए पापके फलसे मैं निर्जन में भूख-प्याससे विकल पिशाच हुआ। पिशाचयोनिमें मैंने सौ दिव्य वर्ष व्यतीत किये। फिर दूसरे जन्ममें व्याघ्र, तीसरेमें अजगर, चौथेमें भेड़िया, पाँचवेंमें सूअर, छठेमें गिरगिट, सातवेंमें कुत्ता, आठवेंमें सियार, नवेंमें गवय (नीलगाय), दसवेंमें मृग, ग्यारहवें जन्ममें वानर, बारहवेंमें गीध, तेरहवेंमें नेवला, चौदहवेंमें कौआ, पंद्रहवेंमें रीछ, सोलहवेंमें वनमुर्गा, सत्रहवेंमें गदहा, अठारहवेंमें बिलाव, उन्नीसवेंमें मेढक, बीसवेंमें कछुआ, इक्कीसवेंमें मछली, बाईसवेंमें चूहा, तेईसवेंमें उल्लू, चौबीसवेंमें जंगली हाथी और पचीसवें जन्ममें मैं ब्रह्मराक्षस हुआ। इस समय आपके शरीरके स्पर्शमात्रसे मेरी पूर्वजन्मोंकी स्मृति जाग उठी है। आपके सङ्गसे मेरे मनमें वैराग्य एवं प्रसन्नता हुई है। महामते ! ऐसा प्रभाव आपको कैसे प्राप्त हुआ ?

वामदेवजी बोले—यह मेरे शरीरमें लगे हुए भस्मका महान् प्रभाव है। भगवान् शङ्करके सिवा दूसरा कौन है, जो भस्मकी शक्तिको जानता हो। महादेवजीका जैसा माहात्म्य है, वैसा ही भस्मका भी है। भस्मके संसर्गसे तुम्हारी बुद्धि भी निर्मल हो गयी। अतः तुम भी श्रद्धासे पवित्र त्रिपुण्ड्र धारण करो।

महातपस्वी शिवयोगी वामदेवने इस प्रकार भस्मका माहात्म्य बतलाकर भस्मको अभिमन्त्रित करके उसे घोर ब्रह्मराक्षसको दिया। उससे ब्रह्मराक्षसने अपने ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण किया और उसके प्रभावसे वह तत्काल ब्रह्मराक्षसशरीरका त्याग करके दिव्य स्वरूपसे सुशोभित होने लगा। उसने भक्तिपूर्वक गुरु वामदेवकी परिक्रमा की और दिव्य विमानपर बैठकर पुण्यलोकको प्रस्थान किया। महायोगी वामदेव साक्षात् शिवकी ही भाँति पुनः संसारमें भ्रमण करने लगे।

भस्मकी महिमा, शबरकी चिताभस्मद्वारा की हुई पूजासे शिवजीकी प्रसन्नता और उसकी जली हुई पत्नीका पुनः जीवित होना

सूतजी कहते हैं—श्रद्धा ही सम्पूर्ण धर्मोंके लिये न्त हितकर है। श्रद्धासे ही मनुष्योंको दोनों लोकोंमें द्ध प्राप्त होती है। श्रद्धासे भजन करनेवाले पुरुषको रकी मूर्ति भी फल देनेवाली होती है। श्रद्धा-भक्तिसे करनेपर अज्ञानी गुरु भी सिद्धिदायक हो जाता है। श्रद्धासे जप किया हुआ मन्त्र अव्यवस्थित होनेपर भी फल-दाता होता है। श्रद्धासे पूजा करनेपर देवता नीच पुरुषको भी फल देनेवाले होते हैं। अश्रद्धासे की हुई पूजा, दान, यज्ञ, तप और व्रत सभी निष्फल होते हैं, जैसे बाँझ वृक्षका फूल व्यर्थ होता है। जो सर्वत्र संशययुक्त, श्रद्धाहीन और

* आयुर्विनश्यत्ययशो विवर्धते भाग्यं क्षयं यात्यतिदुर्गतिं व्रजेत्।
स्वर्गोच्च्यवन्ते पितरः पुरातना धर्मव्यपेतस्य नरस्य निश्चितम्॥
(स्क० पु० मा० ब्रह्मो० १५। १५)

अत्यन्त चपल होता है, वह परमार्थसे भ्रष्ट होकर संसार-बन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता। मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषधि तथा गुरुमें जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी सिद्धि प्राप्त होती है *।

इस विषयमें एक अत्यन्त अद्भुत उपाख्यान बतलाया जाता है, जिसके श्रवणसे सब मनुष्योंकी अश्रद्धा तत्काल दूर हो जाती है। पूर्वकालमें पाञ्चाल देशके राजाके सिंहकेतु नामसे विख्यात एक पुत्र था, जो समस्त उत्तम गुणोंसे युक्त और सदा क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाला था। एक दिन महाबली सिंहकेतु कुछ सेवकोंको साथ लेकर शिकार खेलनेके लिये वनमें गया। राजकुमारका कोई सेवक, जो शबर (भील) कुलमें उत्पन्न हुआ था, शिकारकी खोजमें इधर-उधर घूम रहा था। उसने एक टूटा-फूटा, गिरा-पड़ा पुराना देवालय देखा। उसमें चबूतरेपर एक शिवलिङ्ग पड़ा था, जो पीठ (जलेरी) से टूटकर अलग हो गया था। वह शिवलिङ्ग सीधा और सूक्ष्म था। शबरने उसे मूर्तिमान् सौभाग्यकी भाँति देखा। पूर्वकर्मसे प्रेरित होकर उसने उस शिवलिङ्गको शीघ्रतापूर्वक उठा लिया और बुद्धिमान् राजपुत्रको दिखाया—'प्रभो ! देखिये, यह कैसा सुन्दर शिवलिङ्ग है। मैंने इसे यहीं देखा है। मैं आदरपूर्वक इसकी पूजा करूँगा। आप मुझे पूजाकी विधि बता दें, जिससे मन्त्र न जाननेवाले मुझ-जैसे पुरुषोंके द्वारा भी की हुई पूजासे भगवान् शिव प्रसन्न हों।'

निषादके इस प्रकार पूछनेपर परिहासकुशल राजकुमारने हँसकर कहा—शिवलिङ्गको शुद्ध आसनपर स्थापित करके सदा सङ्कल्पपूर्वक नूतन जलसे अभिषेक करे। शुभ गन्ध, अक्षत, वनके नये-नये पत्र, पुष्प तथा धूप-दीप आदिके द्वारा पूजन करे। चिताका भस्म चढ़ावे और अपने भोजन करने योग्य अन्नके द्वारा भगवान्को नैवेद्य लगावे। पुनः धूप-दीप आदि उपचारोंको अर्पित करे। यथायोग्य नृत्य, वाद्य और गीत आदिकी भी व्यवस्था करे। फिर नमस्कार करके विधिपूर्वक भगवान्का प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। यह मैंने तुम्हें शिवपूजनकी साधारण विधि बतलायी है।

अपने स्वामीके इस प्रकार उपदेश देनेपर चण्डक नामवाले शबरने उसे सादर शिरोधार्य किया और अपने घर आकर लिङ्गमूर्ति महेश्वरका प्रतिदिन पूजन प्रारम्भ किया। वह प्रतिदिन चिता-भस्मका उपहार भेट करता था। अपने लिये जो-जो वस्तु प्रिय थी, वह सब गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि पहले भगवान् शिवको निवेदन करता। उसके बाद वह भगवत्प्रसादको स्वयं ग्रहण करता था। इस प्रकार वह पत्नीके साथ भक्तिपूर्वक महेश्वरकी पूजामें संलग्न रहा। इस आराधनामें उसके कई वर्ष बीत गये। एक दिन वह शबर जब शिवपूजाके लिये बैठा, तब देखता है कि पात्रमें चिताका भस्म तनिक भी शेष नहीं है। तब वह तुरंत उठकर दूर-दूरतक चिता-भस्म ढूँढ़ता हुआ घूम आया, किंतु कहीं भी उसे चिताभस्म नहीं मिला। अन्तमें वह थककर घर लौट आया और अपनी पत्नीको बुलाकर उसने कहा—'प्रिये ! चिता-भस्म तो मुझे नहीं मिला। बताओ, अब क्या करूँ ? आज मुझ पापीके शिव-पूजनमें विघ्न पड़ गया। पूजाके बिना मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता।'

पतिको इस प्रकार व्याकुल देख शबरकी स्त्रीने कहा—नाथ ! डरिये मत, मैं एक उपाय बताती हूँ। यह अपना घर बहुत दिनोंका पुराना हो गया है। मैं इसमें आग लगाकर उस अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगी। इससे आपके लिये बहुत-सा चिता-भस्म तैयार हो जायगा।

शबर बोला—प्रिये ! यह मानव-शरीर ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका सबसे श्रेष्ठ साधन है। इस नवयौवन-सम्पन्न सुखोचित शरीरको क्यों त्याग रही हो ?

शबरकी स्त्रीने कहा—जीवनकी सफलता इसीमें है कि दूसरोंके हितके लिये अपने प्राणोंका त्याग किया जाय। फिर साक्षात् शिवके लिये जो स्वयं प्राणत्याग करे, उसके लिये तो कहना ही क्या है ? मैंने कौन-सी घोर तपस्या की

---

* श्रद्धैव सर्वधर्मस्य चातीव हितकारिणी।
श्रद्धयैव नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः॥
श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी।
मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति सिद्धिदः॥
श्रद्धया पठितो मन्त्रस्त्वबद्धोऽपि फलप्रदः।
श्रद्धया पूजितो देवो नीचस्यापि फलप्रदः॥
अश्रद्धया कृता पूजा दानं यज्ञस्तपो मतम्।
सर्वं निष्फलतां याति पुष्पं वन्ध्यतरोरिव॥
सर्वत्र संशयाविष्टः श्रद्धाहीनोऽतिचंचलः।
परमार्थात्परिभ्रष्टः संसृतेर्न हि मुच्यते॥
मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी॥
(स्क० पु० ब्रा० ब्रह्मो० १७। ३–८)

है, जिससे भगवान् शिवकी प्रीतिके लिये प्रज्वलित अग्निमें अपने शरीरका त्याग करती हूँ ।

अपनी पत्नीकी इस प्रकार स्थिरबुद्धि और शिवभक्ति देखकर दृढ़ सङ्कल्पवाले शबरने 'तथास्तु' कहकर उसकी सराहना की । शबरीने स्वामीकी आज्ञा पाकर स्नानसे पवित्र हो अलङ्कार धारण किया और अपने घरमें आग लगाकर अग्निदेवकी भक्तिपूर्वक परिक्रमा करके अपने पतिदेव गुरुको नमस्कार और हृदयमें भगवान् सदाशिवका ध्यान करके अग्निमें प्रवेश करनेके लिये उद्यत हो हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तवन किया—'हे देव ! मेरी इन्द्रियाँ आपकी पूजाके लिये पुष्प हों, यह शरीर धूप एवं अगुरु हों, हृदय दीपक हो, प्राण हविष्यका काम दें और कर्मेन्द्रियाँ आपके लिये अक्षत होवें । इस समय यह जीव आपकी पूजाके फलको प्राप्त हो । मैं धनाधिपति कुबेरका पद नहीं चाहती, अविचल स्वर्गभूमिकी भी इच्छा नहीं रखती तथा ब्रह्माजीके पदकी भी अभिलाषा नहीं करती । बस, यही चाहती हूँ कि यदि फिर इस संसारमें मेरा जन्म हो, तो मैं प्रत्येक जन्ममें आपके चरणारविन्दोंके सुन्दर मकरन्दका पान करनेवाली भ्रमरी होऊँ । मेरे देवता ! भले ही मेरे सैकड़ों जन्म हों, परंतु अज्ञानकी हेतुभूत माया मेरे चित्तमें प्रवेश न करे । किंचित् आधे क्षणके लिये भी मेरा हृदय आपके चरण-कमलोंसे अलग न हो । महेश्वर ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है* ।'

* पुष्पाणि सन्तु तव देव ममेन्द्रियाणि
धूपोऽगुरुर्वपुरिदं हृदयं प्रदीपः ।
प्राणा हवींषि करणानि तवाक्षताश्च
पूजाफलं व्रजतु साम्प्रतमेष जीवः ॥
वाञ्छामि नाहमपि सर्वधनाधिपत्यं
न स्वर्गभूमिमचलां न पदं विधातुः ।
भूयो भवामि यदि जन्मनि जन्मनि त्वां
त्वत्पादपङ्कजलसन्मकरन्दभृङ्गी ॥
जन्मानि सन्तु मम देव शताधिकानि
माया न मे विशतु चित्तममोघहेतुः ।
किञ्चित्क्षणार्धमपि ते चरणारविन्दा-
न्नापैतु मे हृदयमीश नमो नमस्ते ॥
(स्क० पु० ब्रा० ब्रह्मो० १७ । ४२-४५)

इस प्रकार देवेश्वर भगवान् शिवको प्रसन्न करके दृढ़ निश्चयवाली शबरी प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर गयी और क्षणभरमें जलकर भस्म हो गयी । फिर शबरने उस भस्मको लेकर जले हुए घरके समीप ही भगवान् शिवका पूजन किया । पूजनके अन्तमें उसने प्रसाद लेनेको नित्य आनेवाली अपनी प्रियतमाका स्मरण किया । स्मरण करते ही वह पहलेकी भाँति हाथ जोड़कर सामने खड़ी दिखायी दी । पत्नीको देखकर तथा जलकर भस्म हुए घरको भी पूर्ववत् स्थित पाकर शबर आश्चर्यचकित हो सोचने लगा—'अहो ! अग्नि तो अपने तेजसे वस्तुको जलाती है, सूर्य केवल किरणोंसे तपाते हैं, राजा अपने दण्डके द्वारा अपराधीको दग्ध करता है और ब्राह्मण मनसे जला डालता है । मेरी पत्नी तो प्रत्यक्ष अग्निमें जल गयी थी । यह जीवित कैसे हो गयी ? पता नहीं यह स्वप्न है अथवा भ्रममें डालनेवाली माया ।' इस प्रकार विचार करते हुए शबरने अपनी स्त्रीसे पूछा—'प्रिये ! तुम तो अग्निमें भस्म हो गयी थी, यहाँ कैसे आ गयी और यह जला हुआ घर फिर पहलेके ही समान खड़ा कैसे हो गया ?'

शबरीने कहा—जब मैं घरमें आग लगाकर उसके भीतर प्रविष्ट हुई, तबसे अपने-आपकी मुझे कोई सुध न रही । न तो मैंने आग देखी है और न लेशमात्र भी तापका अनुभव किया है । जान पड़ता था, मानो मैं जलमें घुसी हूँ । मैं आधे क्षणतक गाढ़ निद्रामें सोयी-सी रही और अब क्षणभरमें जाग उठी हूँ । उठते ही मैंने देखा अपना घर जला हुआ नहीं है, पूर्ववत् सुस्थिर है । इस समय भगवान्की पूजाके अन्तमें प्रसाद लेनेके लिये आपके पास आयी हूँ ।

इस प्रकार वे दोनों दम्पति प्रेमपूर्वक आपसमें वार्तालाप कर रहे थे, इतनेमें ही उनके आगे परम अद्भुत दिव्य विमान प्रकट हुआ । उसपर भगवान् शङ्करके चार सेवक आगेकी ओर बैठे थे । उन्होंने दोनों निषाद-दम्पतिका हाथ पकड़कर उन्हें विमानपर बिठा लिया । शबर और शबरीको अपने शरीरका त्याग भी नहीं करना पड़ा । शिवदूतोंके हाथोंका स्पर्श प्राप्त होते ही निषाद-दम्पतिके वे ही शरीर तत्काल उन्हींके समान दिव्य हो गये । इसलिये समस्त पुण्यकर्मोंमें श्रद्धा ही करनी चाहिये, क्योंकि शबरने नीच होकर भी श्रद्धाके बलसे योगियोंकी गति प्राप्त की । सब वर्णके लोगोंसे उत्तम जन्म पानेसे क्या लाभ ? सम्पूर्ण

शास्त्रोंका विचार करनेवाली विद्यासे भी यदि श्रद्धा न हो, तो क्या लाभ है ? जिसके चित्तमें सदा भगवान् शिवकी भक्ति बनी रहती है, उससे बढ़कर तीनों लोकोंमें कौन पुरुष धन्य है ।

उमामहेश्वरव्रतकी महिमा, इसके पालनसे शारदाको शिवलोककी प्राप्ति तथा सत्कथा-श्रवणका माहात्म्य और ब्राह्मखण्डकी समाप्ति

सूतजी कहते हैं—आनर्तदेशमें वेदरथ नामक एक ब्राह्मण थे । उनका जन्म उत्तम कुलमें हुआ था । वे स्त्री-पुत्रसे सम्पन्न और विद्वान् थे । ब्राह्मणके एक कन्या हुई, जिसका नाम शारदा रक्खा गया । वह रूप और शुभ लक्षणोंसे सुशोभित कन्या जब बारह वर्षकी हुई, तब उसे पद्मनाभ नामक एक प्रौढ़ ब्राह्मणने माँगा । पद्मनाभजीकी पत्नी मर गयी थी । वे बड़े धनी, शान्त और राजाके मित्र थे । पिताने उनकी याचना भङ्ग होनेके भयसे अपनी कन्या उन्हें दे दी । दोपहरमें विवाह करके पद्मनाभजी ससुरालमें सायंकाल होनेपर सन्ध्योपासना करनेके लिये एक सरोवरके तटपर गये । वहाँ विधिपूर्वक सन्ध्योपासन करके जब लौटने लगे, तब अन्धकारपूर्ण मार्गमें एक साँपने उन्हें काट लिया । इससे उनकी मृत्यु हो गयी । विवाह करनेके पश्चात् सहसा उनकी मृत्यु होनेपर भाई-बन्धु रोने और विलाप करने लगे । सास-श्वशुर और वह कन्या सभी शोकमें डूब गये । भाई-बन्धु मृतकका दाह-संस्कार करके अपने-अपने घर लौट गये । विधवा शारदा पिताके ही घरमें रह गयी ।

एक दिन 'नैध्रुव' नामवाले कोई अन्धे मुनि अपने शिष्यका हाथ पकड़े हुए शारदाके घरपर आये । मुनि बहुत वृद्ध हो गये थे । जिस समय वे घरपर पधारे, शारदाके भाई कहीं बाहर चले गये थे । अतः शारदा ही उनके समीप आयी और इस प्रकार बोली—'महाभाग ! आपका स्वागत है, इस पीढ़ेपर बैठिये । आप मुनिनाथको मेरा नमस्कार है । आज्ञा दीजिये मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ ?' यों कहकर शारदाने बड़े भक्ति-भावसे मुनिके पैर धुलवाये और पङ्खेसे हवा करके उन्हें सन्तुष्ट किया । थके-माँदे मुनिको पीढ़ेपर बिठाकर उन्हें विधिपूर्वक स्नान कराया और जब वे देवपूजा करके सुखपूर्वक आसनपर बैठे, तब उन्हें आदरपूर्वक उत्तम अन्न भोजन कराया । भोजन करके तृप्त हो जब वे मुनि आनन्दसे परिपूर्ण हुए, तब अन्ध-मुनिने उस कन्याके लिये उत्तम आशीर्वाद दिया—'भद्रे ! तुम पतिके साथ विहार करके सर्वगुणसम्पन्न श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करो और संसारमें बड़ी भारी कीर्ति पाकर देवताओंके प्रसादकी अधिकारिणी बनो ।'

अन्धमुनिके द्वारा कहे हुए इस वचनको सुनकर शारदा बहुत विस्मित हुई और हाथ जोड़कर बोली—ब्रह्मन् ! आपका वचन सदा सत्य होता है, कभी झूठ नहीं होता । परंतु यह मुझ अभागिनीके लिये कैसे सफल होगा ? मैं विधवा हूँ, आपके इन आशीर्वादोंकी पात्र कैसे हो सकूँगी ।

मुनि बोले—शुभे ! मुझ अन्धेने तुझे न देख सकनेके कारण तुम्हारे लिये जो कुछ कहा है, उसे मैं अवश्य सिद्ध करूँगा । तुम मेरी आज्ञाका पालन करो । यदि तुम उमा-महेश्वर नामक व्रत करोगी, तो उसके प्रभावसे शीघ्र ही कल्याणभागिनी होओगी ।

शारदाने कहा—ब्रह्मन् ! आपके बताये हुए दुष्कर व्रतका भी मैं यत्नपूर्वक पालन करूँगी । मुझे वह व्रत और उसका विधान विस्तारपूर्वक बताइये ।

मुनि बोले—चैत्र अथवा मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षमें शुभ दिनको इस व्रतका प्रारम्भ करना चाहिये । अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या अथवा पूर्णिमाको विधिपूर्वक सङ्कल्प करके प्रातःकाल स्नान करे, देवताओं और पितरोंका तर्पण करके अपने घर आकर एक सुन्दर मण्डप बनावे, जो चँदोवे आदिसे अलङ्कृत हो । उसे फल, फूल, पल्लव और बन्दनवारों-से सजावे । बीचमें पाँच प्रकारके रंगोंसे कमलका चिह्न अङ्कित करे । उसके मध्यभागमें धान्य अथवा चावलोंकी राशि करके उसके ऊपर कुश रक्खे और उस कुशाके ऊपर जलपूर्ण कलश स्थापित करके उसके ऊपर रँगा हुआ वस्त्र रक्खे । वस्त्रके ऊपर सोनेकी दो प्रतिमाएँ (जो शिव-पार्वती-की प्रतीक हैं) स्थापित करे । तत्पश्चात् भक्तिभावसे अपनी शक्तिके अनुसार विस्तारपूर्वक उनकी पूजा करे । पञ्चामृतसे स्नान कराकर फिर शुद्ध जलसे नहलावे । एकादश रुद्रमन्त्र-का जप करके एक सौ आठ बार 'नमः शिवाय' इस पञ्चाक्षर-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे । फिर सिंहासनपर उन प्रतिमाओंको

पधराकर पूजा करे। बुद्धिमान् पुरुष स्वयं धुले हुए श्वेत वस्त्र धारण करके शुद्ध आसनपर बैठे। पीठको अभिमन्त्रित करके प्राणायाम करे। भगवान् शिवके आगे हाथ जोड़कर यों सङ्कल्प पढ़े—'मेरे सैकड़ों जन्मोंमें जो भयङ्कर पाप सञ्चित हुए हैं, उन सबका विनाश करनेके लिये मैं शिवकी पूजा प्रारम्भ करता हूँ। सौभाग्य, विजय, आरोग्य, धर्म और ऐश्वर्यकी वृद्धि तथा स्वर्ग एवं मोक्षकी सिद्धिके लिये मैं शिवजीकी पूजा करूँगा'—इस प्रकार सङ्कल्प बोलकर मनुष्य एकाग्रतापूर्वक यथायोग्य अङ्गन्यास करके शिव और पार्वतीका ध्यान करे। अपने हृदय-कमलकी कर्णिकामें जगत्के माता-पिता शिव-पार्वतीका ध्यान करके तत्सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करे। जपके पश्चात् बाह्य-पूजन प्रारम्भ करे। दोनों सुवर्ण-प्रतिमाओंमें शिव-पार्वतीका आवाहन करके उनके लिये आसन आदि दे। फिर निम्नाङ्कित मन्त्रसे मन्त्रज्ञ पुरुष उन्हें अर्घ्य दे—

नमस्ते पार्वतीनाथ त्रैलोक्यवरदर्षभ।
त्र्यम्बकेश महादेव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते देवदेवेशि प्रपन्नभयहारिणि।
अम्बिके वरदे देवि गृहाणार्घ्यं शिवप्रिये॥

'तीनों लोकोंको वर देनेवाले देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ पार्वतीनाथ! आपको नमस्कार है। त्र्यम्बकेश्वर महादेव! आपको नमस्कार है, यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये। शरणागतोंका भय दूर करनेवाली देवदेवेश्वरी जगदम्बिके! वरदायिनी देवि! शिवप्रिये! आप यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'

इस प्रकार तीन बार कहकर मनुष्य एकाग्रचित्त हो उन्हें अर्घ्य दे। फिर विधिपूर्वक गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप और दीप आदि उपचारोंको चढ़ावे। खीरके साथ घीमें तैयार किया हुआ नैवेद्य अर्पण करे। तत्पश्चात् मूलमन्त्रद्वारा एक सौ आठ बार हविष्यकी आहुति दे। फिर नैवेद्य हटाकर धूप, आरती करके ताम्बूल अर्पण करे और मनको एकाग्र करके नमस्कार करे। इस प्रकार उपचारसे पूजा करके ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन करावे। इसी प्रकार सायंकालकी पूजा करके ब्राह्मणकी अनुमति ले रातमें मौनभावसे दूधमें तैयार किया हुआ हविष्य भोजन करे। इस प्रकार विद्वान् पुरुष एक वर्षतक दोनों पक्षोंमें इस व्रतका पालन करता है। वर्ष पूरा होनेपर व्रतका उद्यापन करे। शतरुद्रियका पाठ करते हुए दोनों प्रतिमाओंको जलसे स्नान करावे। आगमोक्त मन्त्रोंसे शिव-पार्वतीकी भलीभाँति पूजा करे। अन्तमें वस्त्र, सुवर्ण और प्रतिमासहित कलश सदाचारी आच[ार्यको] देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उनका भी यथाशक्ति स्व[ागत-]सत्कार करके उन्हें गौ, सुवर्ण और वस्त्र आदिकी दा[न] दे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर अपने इष्टमित्रों [और] बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। इस प्रका[र जो] भक्तिपूर्वक इस त्रिभुवनप्रसिद्ध व्रतका पालन करता है, [वह] अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके मनोवाञ्छित भोग[ोंका] उपभोग करता है। इन्द्र आदि लोकपालोंके दिव्य लो[कोंमें] रमण करता है और अन्तमें भगवान् शिवको ही [प्राप्त] होता है। शुभे! मेरे बताये हुए इस महाव्रतका तुम श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करो। इससे अत्यन्त दुर्लभ मनोर[थ] भी प्राप्त कर लोगी।

मुनीश्वर नैध्रुवके इस प्रकार आदेश देनेपर श[ा...] विश्वासपूर्वक उनके वचनोंको ग्रहण किया। तत्[पश्चात्] उसके पिता, माता और भाई बाहरसे घरमें आ[ये।] उन्होंने देखा मुनि भोजन करके सुखपूर्वक बैठे हैं। सबने सहसा आकर उन महात्माके चरणोंमें प्र[णाम] किया और स्वयं भी उनका पूजन किया। 'साध्वी शार[दाने] उस श्रेष्ठ मुनिका पूजन किया है और मुनिने उसे अनु[ग्रह-]पूर्वक व्रतका उपदेश दिया है'—यह सब सुनकर उसके [सब] बन्धुओंको बड़ा हर्ष हुआ। वे सब हाथ जोड़कर बोले 'मुने! आज आपके आगमनमात्रसे हम सब लोग धन्य

गये। हमारा समस्त कुल पवित्र हो गया और यह घर भी सार्थक हो गया। आप हमारे घरके पास ही निवास करें और जो यह घरका मठ है, यह स्नान, पूजाके लिये बहुत उपयोगी है अतः इसीमें रहिये।' इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उन मुनिश्रेष्ठने 'बहुत अच्छा' कहकर ब्राह्मणके उत्तम मठमें निवास किया।

इस प्रकार मुनिके समीप नियममें मन लगाकर उस महाव्रतका पालन करती हुई शारदाका एक वर्ष पूरा हो गया। वर्ष व्यतीत होनेपर उसने पिताके घरमें ही ब्राह्मण-भोजनपूर्वक भलीभाँति व्रतका उद्यापन किया। उन ब्राह्मणोंको यथायोग्य दक्षिणा देकर प्रणामपूर्वक विदा किया। माता-पिताने उसके इस कार्यकी बड़ी प्रशंसा की। शारदा उस दिन भी उपवास करके नियम-पालनपूर्वक महात्मा नैध्रुवके बताये हुए उत्तम मन्त्रका जप करती रही। तदनन्तर प्रदोप-काल आनेपर उसने भगवान् शङ्करका पूजन किया और घरके पासवाले मठमें भगवान् शिवका ध्यान करती हुई साध्वी शारदा रातभर भगवान् शिवके समीप जागती रही। शारदाकी भक्ति और मुनिकी तपस्या एवं समाधिसे सन्तुष्ट होकर जगन्माता पार्वती उनके सामने प्रकट हुईं। उनके प्रकट होते ही अन्धे मुनिको दो नेत्र प्राप्त हो गये। अपने सम्मुख प्रकट हुई जगन्माता पार्वतीका दर्शन करके वे मुनि और वह ब्राह्मण-कन्या दोनों उनके चरणोंमें गिर पड़े। तब उन दोनोंको उठाकर पार्वतीदेवीने बड़े प्रेमसे कहा—'मुनि-श्रेष्ठ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। पापरहित पुत्री शारदा! तुम्हारे ऊपर भी मैं प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम्हारी रुचिके अनुसार कौन-सा देवदुर्लभ वर प्रदान करूँ?'

मुनि बोले—देवि! यह 'शारदा' नामकी कन्या विधवा हो गयी है। मैंने अन्ध होनेके कारण इस बातको न जानकर इसकी सेवासे सन्तुष्ट हो यह आशीर्वाद दिया है कि 'तुम अपने पतिके साथ चिरकालतक विहार करके उत्तम पुत्र प्राप्त करो।' जगदम्बा! आप मेरे इस वचनको सत्य करें, आपको नमस्कार है।

श्रीपार्वतीदेवीने कहा—ब्रह्मन्! यह शारदा पूर्वजन्ममें एक द्राविड़ ब्राह्मणकी द्वितीय पत्नी थी। उस समय इसका नाम भामिनी था। भामिनी अपने पतिकी बड़ी प्यारी थी। अपनी रूपमाधुरीसे परम मनोहर दिखायी देनेवाली भामिनीने रूपवशीकरण आदि छलपूर्ण उपायोंसे पतिको अपने वशमें कर लिया। वह मोहग्रस्त ब्राह्मण अपनी छोटी पत्नीमें ही आसक्त होनेके कारण अपनी ज्येष्ठ एवं पतिव्रता पत्नीके पास कभी नहीं गया। पति-समागमसे वञ्चित होनेसे वह स्त्री पुत्रहीन रह गयी। इससे वह मन-ही-मन सदा सन्तप्त रहती थी और उसी दशामें समयानुसार उसकी मृत्यु हो गयी। भामिनीके घरके पास एक तरुण ब्राह्मण रहता था। वह इस सुन्दरीको देखकर मोहित हो गया था। एक दिन उसने कामसे आतुर होकर इसका हाथ पकड़ लिया। उस समय इसने क्रोधसे लाल आँखें करके उसे दूर भगा दिया। वह दिन-रात इसीका चिन्तन करते-करते मृत्युको प्राप्त हुआ।

इसने स्वामीको मोहित करके जो उन्हें ज्येष्ठ पत्नीसे विमुख किया था, उसी पापसे यह इस जन्ममें विधवा हुई। जो स्त्रियाँ संसारमें पति-पत्नीमें वियोग कराती हैं, उन्हें इक्कीस जन्मोंतक बाल्यावस्थामें विधवा होना पड़ता है। और वह काममोहित ब्राह्मण जो परायी स्त्रीके विरहसे पीड़ित होकर मृत्युको प्राप्त हुआ था, उसने भी पाप ही किया था। अतः इस जन्ममें वह इसका पाणिग्रहणमात्र करके मृत्युको प्राप्त हुआ है। पूर्वजन्ममें जो इसका पति था, वह इस समय पाण्ड्यदेशमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें उत्पन्न हुआ है। उसके पास धन, सम्पत्ति, स्त्री तथा सुखभोगकी सामग्री सब कुछ है। यह शारदा अपने उसी पतिके साथ प्रत्येक रात्रिमें स्वप्नावस्थामें समागम करके जागरण कालकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ रतिसुखका अनुभव करे। स्वप्नावस्थामें पति-समागमसे यह कुछ ही समयमें वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् पुत्र प्राप्त कर लेगी। वे ब्राह्मणदेवता भी स्वप्नमें अपने साथ चिरसमागमसे इसके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रको सदैव देखा करेंगे। महामुने! पूर्वजन्ममें इसने मेरी आराधना की है और इसीको वर देनेके लिये मैं प्रकट हुई हूँ।

तदनन्तर महादेवी पार्वतीने शारदासे आदरपूर्वक कहा—बेटी! तुम मेरी उत्तम बात सुनो। जब कभी भी किसी देशमें अपने स्वप्नमें देखे हुए पूर्वपतिको देखना, तब समझ लेना कि यही मेरे पुरातन पति हैं। वे ब्राह्मण भी तुम्हें देखकर पहचान लेंगे। उस समय तुम दोनोंमें वार्तालाप होगा। ऐसा अवसर आनेपर तुम अपने विद्वान् पुत्रको उन्हीं ब्राह्मणकी सेवामें समर्पित कर देना। उमा-महेश्वर-व्रतका जो श्रेष्ठ फल है, उसके अर्धभागको इस प्रकार उन्हींके हाथोंमें सौंप देना और तबसे उन्हींके अधीन होकर रहना। तुम दोनोंको स्वप्न-मिलनके सिवा कभी शारीरिक सङ्ग नहीं करना चाहिये। समय आनेपर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण

जब मृत्युको प्राप्त होंगे, तब उन्हींके साथ चिताकी अग्निमें प्रवेश करके तुम मेरे धामको प्राप्त होओगी।

ऐसा कहकर जगन्माता पार्वती अन्तर्धान हो गयीं। वह कन्या करुणामयी पार्वतीका वरदान पाकर बहुत प्रसन्न हुई। रात्रि व्यतीत होनेपर नूतन नेत्र पाये हुए धर्मज्ञ मुनिने उसके माता-पितासे एकान्तमें सब बात बतायी। तत्पश्चात् वे चले गये। इस प्रकार कुछ दिन बीतनेपर शारदाने स्वप्नमें पतिका समागम प्राप्त किया। पार्वतीदेवीके वरदानसे उसके गर्भ रह गया। उस विधवाको गर्भवती हुई सुनकर सब लोग व्यभिचारिणी कहकर उसे धिक्कार देने लगे। उसके मरे हुए पतिके जातिभाइयोंने जब यह असह्य बात सुनी, तब वे सब लोग शारदाके पिताके घर आये। गाँवके बड़े-बूढ़े पण्डित भी आये। सबने कुलके वृद्ध पुरुषोंके साथ बैठकर गोष्ठी की। लज्जासे नतमुख हुई गर्भवती शारदाको बुलाकर कुछ लोग बड़े क्रोधमें भरकर उसे डाँटने लगे। कुछ लोगोंने उसकी ओरसे मुँह फेर लिया। कुछ निर्दयी बूढ़ोंने अपना निर्णय इस प्रकार व्यक्त किया—'यह पापबुद्धिवाली कन्या दोनों कुलोंका नाश करनेवाली है, इसके केश मुँड़वाकर नाक और कान काट दिये जायँ और इसे कुल और जातिसे बहिष्कृत करके गाँवसे बाहर निकाल दिया जाय।' यह सुनकर सब लोग ऐसा ही करनेको तैयार हो गये। इसी समय सबको आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'इस कन्याने न तो कोई पाप किया है, न कुलमें कलङ्क लगाया है और न इसके पातिव्रत्यका भंग ही हुआ है। यह सदाचारपरायणा स्त्री है। इसके बाद जो लोग भी इसे कुलटा या व्यभिचारिणी कहेंगे, उन पापमोहित मनुष्योंकी जिह्वा तत्काल विदीर्ण हो जायगी।'

इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर उसके माता-पिता आदि सब लोगोंको बड़ा हर्ष हुआ। कुछ अविश्वासी मनुष्य बोल उठे—'यह आकाशवाणी झूठी है।' इतना कहते ही उनकी जिह्वा दो टूक हो गयी। फिर तो सब जाति-भाई, बन्धु-बान्धव, स्त्रियाँ और बड़े-बूढ़े 'साधु! साधु' कहकर शारदाकी प्रशंसा करने लगे। कुलकी स्त्रियाँ प्रसन्न हो गयीं। दूसरे लोग कहने लगे—'देवता झूठ नहीं बोलते। परंतु यह समझमें नहीं आता कि इसने कैसे गर्भ धारण किया?' इस प्रकार संशयमें पड़े हुए लोगोंको देखकर लोक-तत्त्वको जाननेवाले एक वृद्ध पुरुषने कहा—'यह जो कुछ देखने और सुननेमें आता है, वह सम्पूर्ण विश्व मायामय है। इस क्षणभङ्गुर संसारमें अकथनीय और असम्भव बातें भी मायासे होती रहती हैं। माया ईश्वरके अधीन है। अतः उस ईश्वरकी लीलाका रहस्य कौन जानता है? सत्यवती मछलीके पेटसे पैदा हुई और महिषासुर भैंसके गर्भसे उत्पन्न हुआ है। वसुदेवजीसे रोहिणीके गर्भसे पुत्रका जन्म हुआ। मुनिके शापसे साम्बके पेटसे मूसल पैदा हुआ और मुनियोंके मन्त्रबलसे राजा युवनाश्वके भी गर्भ रह गया था। इसी प्रकार यह कल्याणमयी सती शारदा भी अपने महान् व्रतके प्रभावसे गर्भवती हुई है, यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है। इस विषयमें स्त्रियाँ ही इसे एकान्तमें ले जाकर सच्ची बात पूछें।'

इस निश्चयके अनुसार स्त्रियोंने उसे एकान्तमें ले जाकर इस विषयमें पूछा। शारदाने उन स्त्रियोंसे अपना अत्यन्त अद्भुत वृत्तान्त पूर्णरूपसे कह सुनाया। यथार्थ बातका पता लगनेपर सब लोग उस सतीका आदर करके प्रसन्नचित्त हो अपने-अपने घरको गये। तदनन्तर शुभ समय आनेपर शुद्ध अन्तःकरणवाली शारदाने बालसूर्यके समान तेजस्वी बालकको जन्म दिया। वह कुमार बाल्यावस्थामें ही बहुत अधिक विद्या प्राप्त करके परम बुद्धिमान् हो गया। तत्पश्चात् गुरुने समयपर उसका उपनयन-संस्कार किया। वह लोकमनोहर बालक लोकमें शारदेय नामसे विख्यात हुआ। उसने आठवें वर्षकी आयुमें ऋग्वेद, नवें वर्षमें यजुर्वेद और दसवें वर्षमें सामवेदको लीलापूर्वक पढ़ डाला। तदनन्तर त्रिलोकपूजित शिवपर्व प्राप्त होनेपर सब देशके निवासी मनुष्य गोकर्णतीर्थमें जाने लगे। सती शारदा भी अपने पुत्रके साथ गोकर्णतीर्थमें गयी। वहाँ उसने अपने पूर्वजन्मके पतिको, जिनका स्वप्नमें सदा ही दर्शन किया था, आया हुआ देखा। वे ब्राह्मण बन्धुओंसे घिरे हुए थे। उन्हें देखकर शारदा प्रेममग्न हो गयी और उन्हींकी ओर दृष्टि लगाये खड़ी रही। ब्राह्मण भी रूप और लक्षणोंसे पहचानी हुई तथा स्वप्नमें सदा भोगी जानेवाली उस स्त्रीको और स्वप्नमें ही अपनेसे उत्पन्न हुए उस कुमारको भी देखकर आश्चर्यचकित हो उसके समीप आये और इस प्रकार बोले—'कल्याणी! तुम कौन हो, किसकी स्त्री हो, कौन तुम्हारा देश है और किसकी पुत्री हो?'

उनके द्वारा इस प्रकार पूछी जानेपर उस स्त्रीने बाल्यावस्थामें अपने विधवा होनेका सब वृत्तान्त कहा। तब ब्राह्मणने पुनः प्रश्न किया—'देवि! यह किसका पुत्र है? चन्द्रमाके समान सुन्दर इस बालकको तुमने कैसे गर्भमें धारण किया है?'

शारदा बोली—स्वामी ! यह सब विद्याओंमें विशारद मेरा ही पुत्र है। मेरे ही नामपर इसको लोग 'शारदेय' कहते हैं।

उसकी यह बात सुनकर श्रेष्ठ ब्राह्मण हँसकर बोले—देवि ! तुम्हारा पति तो पाणिग्रहणमात्र करके मर गया। फिर इस पुत्रका जन्म कैसे हुआ, इसका कारण बताओ।

शारदा बोली—महामते ! परिहाससे कोई लाभ नहीं ! आप मुझे जानते हैं और मैं आपको जानती हूँ। इस विषयमें हम दोनोंके मन ही प्रमाण है।

ऐसा कहकर उसने देवीके दिये हुए वरदान आदिकी बातें बतायीं और अपने व्रतके आधे भाग व्रतधारी कुमार शारदेयको उन्हें सौंप दिया। वे ब्राह्मण देवता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कुमारको हृदयसे लगा लिया और शारदाके माता-पिताकी आज्ञा लेकर शारदा तथा उस बालकको अपने घर बुला ले गये। ब्राह्मणके घरमें शारदाने कई मास व्यतीत किये। जब उनकी मृत्यु हो गयी, तब उन्हींके साथ चिताकी अग्निमें प्रवेश करके उसने उनका अनुसरण किया। फिर भी दोनों दिव्य-दम्पति होकर दिव्य विमानपर बैठे और भगवान् शिवके लोकमें चले गये। इस प्रकार मैंने यह पवित्र उपाख्यान सुनाया, जो पढ़ने और सुननेवालोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

प्रतिदिन भगवत्सम्बन्धी उत्तम कथाके श्रवणसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है। पुण्यक्षेत्रमें निवास करनेसे चित्त शुद्ध होता है। उत्तम कथाके सुननेसे मनुष्य जिस प्रकार उत्तम गतिको पाता है, उस प्रकार अन्य उत्तम व्रतोंसे नहीं। अन्य व्रतोंसे उसकी बुद्धि वैसी उत्तम नहीं होती। जैसे बार-बार शोधन करनेपर दर्पण निर्मल होता है, वैसे ही सत्कथाश्रवणसे चित्त अधिकाधिक शुद्ध होता है। चित्त शुद्ध होनेपर मनुष्योंके द्वारा शिवजीका ध्यान सिद्ध होता है। ध्यानसे पुण्यात्मा पुरुष मन, वाणी और शरीर-द्वारा सञ्चित समस्त पापराशिको धोकर भगवान् शिवके परम पदको प्राप्त होते हैं। अतः जिन्होंने अपना पुण्य भगवान् शिवके चरणोंमें समर्पित कर दिया है, उन लोगोंके लिये भगवान् शिवकी उत्तम कथाका श्रवण-कीर्तन ही सर्वोत्तम साधन है; क्योंकि कथासे ध्यान सिद्ध होता है और ध्यानसे कैवल्यकी प्राप्ति होती है।

मुनिवरो ! आप सब लोग बड़े सौभाग्यशाली हैं। आपका ही जीवन सफल है; क्योंकि आपलोग सदा भगवान् शिवके उत्तम कथामृत-रसका सेवन करते हैं। इस जीव-जगत्में वस्तुतः उन्हींका जन्म सफल है, जिनका मन सदा भगवान् विश्वनाथका ध्यान करता है, वाणी उनके गुण गाती है और दोनों कान उन्हींकी कथा सुनते हैं। ऐसे ही लोग इस संसार-सागरको पार करते हैं। नाना प्रकारके गुणविभेद जिनके स्वरूपका कभी स्पर्श नहीं करते, जो अपनी महिमासे जगत्के बाहर और भीतर समान रूपसे व्याप्त हैं, जो अपने ही प्रकाशमें विहार करते हैं और जो मन-वाणीकी वृत्तियोंसे बहुत दूर हैं, मैं उन अनन्तानन्दघन-स्वरूप परम शिवकी शरण लेता हूँ।

ब्रह्मोत्तर-खण्ड सम्पूर्ण।

ब्राह्म-खण्ड समाप्त

ॐ
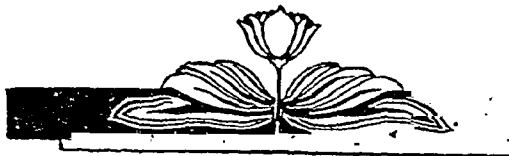
श्रीपरमात्मने नमः

श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः

संक्षिप्त श्रीस्कन्दमहापुराण

काशी-खण्ड

पूर्वार्ध

मेरुगिरिसे स्पर्धा करके विन्ध्याचलका सूर्यके मार्गको रोकना और ब्रह्माजीके आदेशसे देवताओंका काशीमें अगस्त्य मुनिके समीप जाना

तं मन्महे महेशानं महेशानप्रियार्भकम् ।
गणेशानं करिगणेशानाननमनामयम् ॥

'जिनका मुख गजराजके मुखके समान है, जो महादेवजीकी प्रिया पार्वतीजीके लाड़ले पुत्र हैं, सबके महान् शासक हैं तथा रोग-शोकसे सर्वथा रहित हैं, उन श्रीगणेशजीका हम चिन्तन करते हैं।'

भूमिष्ठापि न यात्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरधःस्थापि या
या बद्धा भुवि मुक्तिदा स्युरमृतं यस्यां मृता जन्तवः ।
या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनी तीरे सुरैः सेव्यते
सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी पायादपायाज्जगत् ॥

'जो पृथ्वीपर स्थित होकर भी यहाँ पृथ्वीसे सम्बन्ध नहीं रखती, जो पदमें स्वर्गसे ऊँची होनेपर भी नीचेके लोकमें स्थापित की गयी है, जो इस पाञ्चभौतिक जगत्में आबद्ध (प्रविष्ट) होनेपर भी सबको मोक्ष देनेवाली है, जिसमें मरे हुए सभी जीव अमृतमय ब्रह्म हो जाते हैं, जो सदा तीनों लोकोंमें पवित्र नदी श्रीगङ्गाजीके तटपर सुशोभित है और देवता भी जिसका सेवन करते हैं, वह त्रिपुरारि महादेवजीकी राजधानी काशीपुरी सम्पूर्ण जगत्को विनाशसे बचावे।'

श्रीव्यासदेवजी कहते हैं—एक समय देवर्षि नारद नर्मदाके जलमें स्नान और श्रीओङ्कारनाथजीका भलीभाँति पूजन करके जब आगे गये, तब उन्हें वह विन्ध्यपर्वत दिखायी दिया, जो संसार-तापका संहार करनेवाली नर्मदा नदीके जलसे सुशोभित होता है। आकाशको अपने तेजसे प्रकाशित करनेवाले नारदजीको दूरसे आते देख गिरिराज विन्ध्यने उनकी अगवानी की। ब्रह्मकुमारके तेजसे उसका आन्तरिक अन्धकार दूर हो गया था। वह ब्रह्मतेजसे प्रभावित हो नारदजीके प्रति आदरका भाव रखकर उनका उत्तम सत्कार करनेको उद्यत हुआ। ऊपरसे कठोर होनेपर भी विन्ध्यगिरिने कोमलता धारण की। स्थावर-जङ्गम दोनों रूपोंमें उसकी कोमलता देखकर नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने घर-पर आते हुए बड़े या छोटेको देखकर जो छोटा बनकर नम्रता धारण करता है, वही बड़ा है। आयुमें बड़ा होनेसे कोई बड़ा नहीं होता। विन्ध्यगिरिने पृथ्वीपर मस्तक रखकर महामुनि नारदजीको प्रणाम किया और नारदजी दोनों हाथोंसे उसे उठाकर आशीर्वादसे प्रसन्न करके उसके दिये हुए आसनपर बैठे। विन्ध्यने दही, शहद, घी, जलसे भीगे अक्षत, दूर्वा, तिल, कुश और पुष्प—इन आठ अङ्गोंसे युक्त अर्घ्य देकर मुनिका पूजन किया। फिर पैर दबाने आदि सेवाके द्वारा उसने थके हुए मुनिकी थकावट दूर की। जब मुनि विश्राम कर चुके, तब विन्ध्यगिरिने विनीतभावसे कहा—'मुने! आज आपके चरणोंकी धूलि पड़नेसे मेरे भीतरका रजोगुण तत्काल दूर हो गया और आपके अङ्गोंके तेजसे मेरे भीतरका तमोगुण भी सहसा नष्ट हो गया। देवर्षे! आज ही मेरे लिये सुदिन

है; पूर्वजन्मोंके किये हुए मेरे चिरसञ्चित पुण्य आज ही फलीभूत हुए हैं।'

विन्ध्यगिरिकी यह बात सुनकर नारदजी कुछ लंबी साँस खींचकर रह गये। तब सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्यने कहा— 'सब अर्थोंके ज्ञाता विप्रवर ! मुझे अपने उच्छ्वासका कारण बताइये।' नारदजीने मन-ही-मन सोचा—बढ़ते हुए अभिमानका संसर्ग किसीके लिये बड़प्पनका कारण नहीं है। अतः आज विन्ध्यगिरिका बल देखना चाहिये। यों सोचकर मुनि बोले— 'पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरुगिरि तुम्हारा अपमान करता है, इसीलिये मैंने लंबी साँस खींची है और यह बात तुमसे बता दी है। तुम्हारा कल्याण हो।' ऐसा कहकर नारद मुनि आकाशमार्गसे चले गये। मुनिके जाते ही विन्ध्याचल अत्यन्त उद्विग्न-चित्त हो बड़ी चिन्तामें पड़ गया और मन-ही-मन कहने लगा—'जिसने शास्त्रका एक अंश भी नहीं पढ़ा है, उसके जीवनको धिक्कार है। जो उद्योगहीन है, उसके जीनेको भी धिक्कार है और जिसका मनोरथ पूर्ण नहीं होता, उसके जीनेको भी धिक्कार है। पुरानी बातोंको जाननेवाले विद्वान् पुरुषोंने यह ठीक ही कहा है कि चिन्ताका स्वरूप बड़ा भयङ्कर है। चिन्ता न तो औषधोंसे शान्त होती है और न दूसरे किसी उपायसे। चिन्तारूपी ज्वर मनुष्योंकी भूख, नींद और बल हर लेता है। रूप, उत्साह, बुद्धि, सम्पत्ति और जीवनको भी नष्ट कर देता है। ज्वर छः दिन व्यतीत होनेपर जीर्णज्वर कहलाता है, किंतु तीव्र चिन्ताज्वर प्रतिदिन नूतनताको प्राप्त होता है *। इसे दूर करनेमें धन्वन्तरि भी धन्यवादके पात्र नहीं हो पाते। इसमें चरक भी विचरण नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, नासत्य (दोनों अश्विनीकुमार) भी इसमें सत्य नहीं हो पाते। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कैसे मेरुपर्वतको परास्त करूँ। यहाँ उचित और अनुचितके विचारका कोई उपयोग नहीं है, अथवा इन व्यर्थकी चिन्ताओंसे क्या लाभ ? मैं विश्वकी उत्पत्ति करनेवाले भगवान् विश्वनाथकी ही शरणमें चलूँ। वे ही मुझे बुद्धि प्रदान करेंगे। ग्रह, नक्षत्र और तारागणोंके साथ भगवान् सूर्य मेरुको अधिक बलवान् मानकर प्रतिदिन उसकी प्रदक्षिणा करते हैं।'

ये ही सब बातें सोचकर विन्ध्यगिरि ऊँचाईकी ओर बढ़ने लगा, मानो वह अपने शिखरोंसे अनन्त आकाशका अन्त कर देना चाहता हो। गिरिराज विन्ध्य सूर्यका मार्ग रोककर ही कुछ स्वस्थ-सा हुआ।

तदनन्तर अन्धकारका नाश करनेवाले भगवान् सूर्य उदयाचल पर्वतपर उदित हुए और क्रमशः दक्षिण दिशाकी ओर चले। किंतु जब उनके घोड़े आगे न बढ़ सके, तब अनूरु (अरुण) नामक सारथिने सूचित किया—'भानुदेव ! अभिमानसे ऊँचे उठा हुआ यह विन्ध्यपर्वत आकाशका मार्ग रोककर खड़ा है। आप जो मेरुगिरिकी प्रदक्षिणा किया करते हैं, उसके कारण यह गिरिराज मेरुसे लाग-डाँट रखता है।' अनूरुकी बात सुनकर भगवान् सूर्यने मन-ही-मन सोचा— 'अहो ! आकाशका मार्ग भी रोका जाता है। यह बड़े विस्मयकी बात है।' जो आधे पलमें दो हजार दो सौ दो योजन चलते हैं, वे सूर्य भी दैववश एक ही जगह अधिक समयतक रुके रह गये। इस प्रकार दीर्घकालतक प्रचण्डरश्मि सूर्यके ठहर जानेसे पूर्व और उत्तर दिशामें रहनेवाले जीव उनकी किरणोंके तापसे सन्तप्त हो बहुत व्याकुल हो गये। दक्षिण और पश्चिमके लोग लेटे हुए ही ग्रह तथा नक्षत्रोंसहित आकाशको देखने लगे। वे सोचते थे 'सूर्यका दर्शन नहीं हुआ, इसलिये यह दिन नहीं है और रात भी नहीं है; क्योंकि चन्द्रमा अस्त हो गये। आकाशके तारे भी लुप्त होते जाते हैं। अतः यह कौन-सा समय है, इसका पता नहीं चलता।' पृथ्वीपर स्वाहा (देवयज्ञ), स्वधा (पितृयज्ञ) और वषट्कार (ब्रह्मयज्ञ आदि) का सर्वथा अभाव हो गया। पञ्चयज्ञ कर्मका लोप हो जानेसे तीनों लोक काँप उठे। चित्रगुप्त आदि सब लोग सूर्यसे ही कालका ज्ञान रखते हैं। एकमात्र भगवान् सूर्य ही जगत्‌के सृष्टि, पालन और संहारके हेतु हैं। सूर्यदेवकी गति रुक जानेसे तीनों लोक स्तब्ध हो उठे। जो जहाँ था, वहीं चित्रलिखित-सा रह गया। एक ओर तो रातके अन्धेरेसे और दूसरी ओर सूर्यकी गरमीसे बहुतसे जीवोंकी मृत्यु हो गयी। समस्त चेतन जगत् भयसे इधर-उधर भागने लगा। यह अवस्था देख सब देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये और नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा उनके गुणगान करने लगे।

देवता बोले—सत्यस्वरूप हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीको

---

* चिन्ताज्वरो मनुष्याणां क्षुधां निद्रां बलं हरेत्।
रूपमुत्साहबुद्धिं श्रीं जीवितं च न संशयः॥
ज्वरो व्यतीते षडहे जीर्णज्वर इहोच्यते।
असौ चिन्ताज्वरस्तीव्रः प्रत्यहं नवतां भजेत्॥
(स्क० पु० का० पू० १। ६९-७०)

नमस्कार है। जिनका स्वरूप किसीको ज्ञात नहीं है, जो कैवल्य एवं अमृतरूप हैं, जिन्हें इन्द्रियाँ और उनके अधिष्ठाता देवता भी नहीं जानते, जहाँ मनकी भी पहुँच नहीं है और जहाँ वाणीका भी प्रसार नहीं हो पाता, उन सच्चिदानन्दमय परमात्माको नमस्कार है। योगीजन अविचलभावसे समाधिमें स्थित हो ध्यानके द्वारा अपने हृदयाकाशमें जिनके ज्योतिर्मय स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं, उन श्रीब्रह्माजीको नमस्कार है। जो कालसे परे होकर भी कालस्वरूप हैं, स्वेच्छा (अथवा अपने भक्तोंकी इच्छा) से पुरुषरूप धारण करते हैं, सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण जिनके स्वरूप हैं तथा गुणोंकी साम्यावस्थारूप प्रकृति भी जिनका ही रूप है, उन ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप परमेश्वरको नमस्कार है। प्रभो! वेद आपके निःश्वास हैं, सम्पूर्ण विश्व आपके एक अंशमें स्थित है, द्युलोक आपके मस्तकसे प्रकट हुआ है, आपकी नाभिसे अन्तरिक्ष लोकका आविर्भाव हुआ है और वनस्पति आपके लोम हैं। भगवन्! चन्द्रमा आपके मनसे और सूर्य आपके नेत्रसे उत्पन्न हुए हैं। देव! आप ही सब कुछ हैं, आपमें ही सबकी स्थिति है, आप परमेश्वरसे यह सम्पूर्ण जगत् भलीभाँति व्याप्त है, आपको बारंबार नमस्कार है।

इस प्रकार ब्रह्माजीकी स्तुति करके सब देवता दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ गये। तब ब्रह्माजीने उनसे इस प्रकार कहा—'देवताओ! मैं तुम्हारी स्तुतिसे सन्तुष्ट हूँ, उठो और इच्छानुसार वर माँगो।' देवतालोग जब प्रणाम करके खड़े हुए, तब ब्रह्माजीने उनसे पुनः इस प्रकार कहा—'विन्ध्याचल मेरु पर्वतसे डाह करता है, इसीलिये उसने सूर्यका मार्ग रोक रक्खा है। इसी संकटको टालनेके लिये तुमलोग मेरे पास आये हो। अतः इसके लिये मैं तुम्हें एक उत्तम उपाय बतलाता हूँ। मित्रावरुणके पुत्र महर्षि अगस्त्य बड़े भारी तपस्वी हैं। सबको मुक्ति देनेवाले अविमुक्त नामक महाक्षेत्र (काशी) में, जहाँ तारकमन्त्रका उपदेश देनेके लिये साक्षात् विश्वनाथजी सदा विद्यमान रहते हैं, वे अगस्त्य मुनि भगवान् विश्वनाथमें मन लगाकर बड़ी भारी तपस्या कर रहे हैं। वहाँ जाकर उन्हींसे इस कार्यके लिये याचना करो। वे तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध करेंगे।'

ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर सब देवता आपसमें कहने लगे—'अहो! हम परम धन्य हैं, क्योंकि इसी कार्यके प्रसङ्गसे हमें मङ्गलमयी काशी और कल्याणमय काशीपतिका भी दर्शन प्राप्त होगा। हमने ब्रह्माजीके मुखसे जो काशीकी चर्चा सुनी है, उसके श्रवणजनित पुण्यसे आज काशीमें पहुँचेंगे।' ऐसा कहते हुए सब देवता प्रसन्नमुख हो काशीपुरीमें आये।

महर्षियोंसहित देवताओंने काशीपुरीमें पहुँचकर पहले मणिकर्णिका तीर्थमें विधिपूर्वक वस्त्रसहित स्नान और सन्ध्योपासन आदि पुण्यकर्म किया। तत्पश्चात् विश्वनाथजीका दर्शन, नमस्कार और स्तवन करके वे परोपकारके लिये उस स्थानपर गये, जहाँ अगस्त्य मुनि रहते थे। वे मुनि अपने नामसे शिवलिङ्गकी स्थापना करके उसके सामने कुण्ड निर्माण कराकर वहाँ शतरुद्रिय सूक्तका स्थिरचित्तसे जप करते थे। उनको दूरसे ही देखकर देवता परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'अहो! इस आश्रमके चारों ओर हिंसक जीव भी सात्त्विक दिखायी देते हैं। अपने स्वाभाविक वैरको भी त्यागकर प्रेमपूर्वक रहते हैं।' किंतु जो मनुष्य पापसे मोहित होकर मांस पकाता है, वह उस पशुके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक नरकमें निवास करता है। जो दूषित बुद्धिवाले मनुष्य पराये प्राणोंसे अपने प्राणोंका पोषण करते हैं, वे एक कल्पतक नरक भोगकर इस संसारमें जन्म लेते और उन्हीं प्राणियोंके खाद्य बनते हैं। भूखसे प्राण निकलकर कण्ठतक आ गये हों तो भी मांस नहीं खाना चाहिये*। ये हिंसक जीव भी मनुष्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, जो अगस्त्यजीकी सेवासे ऐसी स्थितिको प्राप्त हो गये हैं कि हिंसाकी ओर इनका मन जाता ही नहीं। कहाँ मांस-भक्षण और कहाँ भगवान् शिवकी भक्ति। जो मद्य और मांसमें आसक्त हैं, उनसे भगवान् शङ्कर बहुत

---

* यः स्वार्थं मांसपचनं कुरुते पापमोहितः।
यावन्त्यस्य तु रोमाणि तावत्स नरके वसेत्॥
परप्राणैस्तु ये प्राणान् स्वान् पुष्णन्ति हि दुर्धियः।
आकल्पं नरकान् भुक्त्वा ते भुज्यन्तेऽत्र तैः पुनः॥
जातु मांसं न भोक्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि॥
(स्क० पु० का० पू० ३। ५१-५३)

दूर रहते हैं। भगवान् शिवके प्रसादके बिना भ्रमका कहीं नाश नहीं होता। इस प्रकार आश्रमके पास विचरनेवाले पशु-पक्षियोंको भी मुनियोंके समान बर्ताव करते देख देवताओंने यह समझा कि यह इस पुण्यक्षेत्रका प्रभाव है; क्योंकि भगवान् विश्वनाथ इस क्षेत्रमें रहनेवाले पशु-पक्षियोंको भी मृत्युकालमें तारक मन्त्रका उपदेश देकर मुक्त करेंगे। इस तरह आश्चर्यमें पड़े हुए देवता ज्यों-ही मुनिके आश्रमपर पहुँचे त्यों-ही वहाँके पक्षिसमूहको देखकर अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुए। पढ़ती हुई मैना तोतेको सार तत्त्वका उपदेश देती हुई कह रही थी—'हे शुक! इस अपार संसार-सागरसे पार उतारनेवाले केवल भगवान् शिव हैं।' कोयल कोमल वाणीमें अपनी कूक सुनाती हुई कहती थी—'काशी-निवासी प्राणियोंको कलियुग और यमराज अपना ग्रास नहीं बनाता।' वहाँके पशुओं और पक्षियोंकी ऐसी चेष्टा देखकर देवता आपसमें कहने लगे—ये काशी-निवासी पशु-पक्षी और मृग धन्य हैं, जिनकी इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होगी। देवता ऐसे भाग्यशाली नहीं हैं; क्योंकि उनका पुनर्जन्मसे पिण्ड नहीं छूटता।

ऐसा कहते हुए देवताओंने मुनिकी पर्णकुटी देखी, जो होम एवं धूपकी सुगन्धसे सुवासित तथा बहुत-से ब्रह्मचारी विद्यार्थियोंसे सुशोभित थी। पतिव्रताशिरोमणि लोपामुद्राके

चरण-चिह्नोंसे चिह्नित पर्णकुटीके आँगनको देखकर सब देवताओंने नमस्कार किया। महर्षि अगस्त्य समाधिसे उठकर कुशासनपर बैठे थे। उनका दर्शन करके इन्द्रादि देवता प्रसन्नमुख हो उच्चस्वरसे बोले—'जय हो, जय हो।' मुनि उठकर खड़े हो गये और उन सबको यथायोग्य आसनपर बैठाया। आशीर्वादसे उनका अभिनन्दन किया और वहाँ आनेका कारण पूछा।

बृहस्पतिजीके मुखसे लोपामुद्राके पातिव्रतधर्मका वर्णन

अगस्त्यजीका वचन सुनकर सब देवता बृहस्पतिजीके मुखकी ओर देखने लगे। तब बृहस्पतिजीने कहा—'महाभाग अगस्त्यजी! आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं और महात्मा पुरुषोंके लिये भी माननीय हैं। आपमें तपस्याकी सम्पत्ति है, आपमें स्थिर ब्रह्मतेज है, आपमें पुण्यकी उत्कृष्ट शोभा है, आपमें उदारता है और आपमें विवेकशील मन है। आपकी सहधर्मिणी ये कल्याणमयी लोपामुद्रा बड़ी पतिव्रता हैं, आपके शरीरकी छायाके तुल्य हैं। इनकी चर्चा भी पुण्य देनेवाली है। मुने! ये आपके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करती, आपके खड़े होनेपर स्वयं भी खड़ी रहती, आपके सो जानेपर सोती और आपसे पहले जाग उठती हैं। ये कभी अपने-आपको आपके सामने अलङ्कारहीन अवस्थामें नहीं उपस्थित करतीं। जब आप किसी कार्यसे कहीं परदेशमें जाते हैं, तब ये एक भी अलङ्कार नहीं धारण करतीं। आपकी आयु बढ़े—इस उद्देश्यसे ये कभी आपका नाम नहीं उच्चारण करती हैं। दूसरे पुरुषका नाम भी ये कभी अपनी जीभपर नहीं लातीं। ये कड़वी बात सह लेती हैं, किंतु स्वयं बदलेमें कोई कटु वचन मुँहसे नहीं निकालतीं। आपके द्वारा ताड़ना पाकर भी प्रसन्न ही होती हैं। जब आप इनसे कहते हैं—'प्रिये! अमुक कार्य करो' तब ये उत्तर देती हैं—'स्वामिन्! अभी किया। आप समझ लें वह काम पूरा हो गया।' आपके बुलानेपर ये घरके आवश्यक काम छोड़कर भी तुरंत चली आती हैं और कहती हैं—'प्राणनाथ! दासीको किसलिये बुलाया है। आज्ञा देकर मुझे अपने प्रसादकी भागिनी बनाइये।' ये दरवाजेपर देरतक नहीं खड़ी होतीं, द्वारपर बैठती और सोती भी नहीं हैं। आपकी आज्ञाके बिना कोई वस्तु किसीको नहीं देतीं, आप न कहें तब भी ये स्वयं ही आपके

लिये पूजाका सब सामान जुटा देती हैं। नियमके लिये जल, कुशा, पत्र-पुष्प और अक्षत आदि प्रस्तुत करती हैं। सेवाके लिये अवसर देखती रहती हैं और जिस समय जो वस्तु आवश्यक अथवा उचित है, वह सब बिना किसी उद्वेगके अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उपस्थित करती हैं। पतिके भोजन करनेके बाद बचा हुआ अन्न और फल आदि खाती और पतिकी दी हुई प्रत्येक वस्तुको महाप्रसाद कहकर शिरोधार्य करती हैं। देवता, पितर और अतिथियोंको तथा सेवकों, गौओं और याचकोंको भी उनका भाग अर्पण किये बिना ये कभी भोजन नहीं करतीं। वस्त्र, आभूषण आदि सामग्रियोंको स्वच्छ एवं सुरक्षित रखती हैं। ये गृहकार्यमें कुशल हैं, सदा प्रसन्न रहती हैं, फजूल खर्च नहीं करतीं, एवं आपकी आज्ञा लिये बिना ये कोई उपवास और व्रत आदि नहीं करती हैं। जनसमूहके द्वारा मनाये जानेवाले उत्सवोंका दर्शन दूरसे ही त्याग देती हैं। तीर्थयात्रा आदि तथा विवाहोत्सव-दर्शन आदि कार्योंके लिये भी ये कभी नहीं जातीं। पति सुखसे सोये हों, आरामसे बैठे हों अथवा अपनी मौजसे कहीं रम रहे हों, तो उस समय कोई अन्तरङ्ग कार्य आ जानेपर भी उन्हें कभी नहीं उठातीं। रजस्वला होनेपर ये तीन राततक अपना मुँह पतिको नहीं दिखातीं। जबतक स्नान करके शुद्ध न हो जायँ, तबतक अपनी बात भी पतिके कानोंमें नहीं पड़ने देतीं। भलीभाँति स्नान कर लेनेपर पहले पतिका ही मुँह देखती हैं और किसीका नहीं। अथवा यदि पतिदेव उपस्थित न हों तो मन-ही-मन उनका ध्यान करके सूर्यदेवका दर्शन करती हैं। पतिकी आयुवृद्धि चाहती हुई पतिव्रता स्त्री अपने शरीरसे हल्दी, रोली, सिन्दूर, काजल, चोली, पान, शुभ माङ्गलिक आभूषण कभी दूर न करे। केशोंका सँवारना, वेणी गूँथना तथा हाथ और कान आदिके आभूषणोंको धारण करना कभी बंद न करे। अपने स्वामीसे द्वेष रखनेवाली स्त्रीसे ये कभी बाततक नहीं करती हैं। ये कहीं भी अकेली नहीं रहतीं और न कभी नंगी होकर स्नान ही करती हैं। सती स्त्रीको ओखली, मूसल, झाड़ू, सिलौट, चक्की और चौकठपर कभी नहीं बैठना चाहिये। पतिव्रता स्त्री कभी धृष्टताका परिचय न दे। जहाँ-जहाँ पतिकी रुचि हो, वहीं सती स्त्री सदा प्रेम रक्खे। यही स्त्रियोंका उत्तम व्रत, यही उनका परम धर्म और यही एकमात्र देवपूजा है कि वे पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन न करें। पति नपुंसक, दुर्दशाग्रस्त, रोगी, बूढ़ा, अच्छी स्थितिवाला अथवा बुरी परिस्थितिमें पड़ा हुआ हो, तो भी पतिका कभी त्याग न करे। पतिके हर्षमें हर्ष माने और पतिके मुखपर विषादकी छाया देखकर स्वयं भी विषादग्रस्त हो। पुण्यात्मा सती सम्पत्ति और विपत्तिमें भी पतिके साथ एकरूप होकर रहे। पतिको चिन्ता और परिश्रममें न डाले। तीर्थस्नानकी इच्छा रखनेवाली स्त्री अपने पतिका चरणोदक पीये; क्योंकि उसके लिये केवल पति ही भगवान् शिव और विष्णुसे बढ़कर है। जो पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके व्रत और उपवास आदिके नियम पालती है, वह अपने पतिकी आयु हर लेती है और मरनेपर नरकमें गिरती है। जो स्वयं प्रसन्न रहकर पतिको प्रसन्न रखती है, उसने तीनों लोकोंको प्रसन्न कर लिया है। पिता थोड़ा सुख देता है, भाई थोड़ा सुख देता है और पुत्र भी थोड़ा ही सुख देता है, अपरिमित सुख देनेवाला तो पति ही है। अतः उसकी सदा पूजा करनी चाहिये। पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है। इसलिये स्त्री सबको छोड़कर केवल पतिकी पूजा करे।

इतना कहकर बृहस्पतिजी लोपामुद्रासे बोले— पतिके चरणारविन्दोंपर दृष्टि रखनेवाली महामाता लोपामुद्रे! हमने काशीमें आकर जो गङ्गा-स्नान किया है, उसीका यह फल है कि हमें आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। लोपामुद्राकी इस प्रकार स्तुति करके देवगुरुने अगस्त्य मुनिसे कहा— 'महर्षे! आप प्रणव हैं और ये लोपामुद्रा श्रुति हैं। आप मूर्तिमान् तप हैं और ये क्षमा हैं। आप फल हैं और ये सत्क्रिया हैं। महामुने! इन्हें पाकर आप धन्य हैं। ये देवी पातिव्रतका मूर्तिमान् तेज हैं और आप साक्षात् सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मतेज हैं। इसपर भी आपमें यह तपस्याका तेज और बढ़ा हुआ है। भला आपके लिये कौन-सा कार्य असाध्य है। यद्यपि कुछ भी आपसे अविदित नहीं है तथापि देवतालोग जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हैं, वह मैं बतलाता हूँ। मुने! ध्यान देकर सुनें। विन्ध्य नामसे प्रसिद्ध पर्वत मेरु गिरिसे डाह रखनेके कारण बढ़कर इतना ऊँचा हो गया है कि उसने सूर्यदेवका मार्ग रोक लिया है, उसकी इस वृद्धिको आप रोकिये।'

देवगुरुका यह वचन सुनकर महामुनि अगस्त्यने क्षणभरके लिये चित्तको एकाग्र किया और 'बहुत अच्छा, आपलोगोंका कार्य सिद्ध करूँगा।' ऐसा कहकर देवताओंको विदा किया। तत्पश्चात् वे पुनः कुछ चिन्तन करते हुए ध्यानमग्न हो गये।

अगस्त्यजीका काशीपुरीसे प्रस्थान, विन्ध्यपर्वतको लघुरूपमें रहनेका आदेश और महालक्ष्मीकी स्तुति

वेदव्यासजी कहते हैं—सूत ! तदनन्तर ध्यानद्वारा भगवान् विश्वनाथजीका दर्शन करके मुनीश्वर अगस्त्य पुण्यमयी लोपामुद्रासे इस प्रकार बोले—'प्रिये ! काशीको लक्ष्य करके तत्त्वदर्शी मुनियोंने यह कहा है कि मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको कभी अविमुक्त क्षेत्र (काशीतीर्थ) का त्याग नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह सदा सुलभ नहीं है । कहाँ विश्वाधार परमात्माको प्रकाशित करनेवाली काशीपुरी और कहाँ सब ओरसे अत्यन्त दुःख देनेवाला दूसरा कार्य । ऐसी काशीको शीघ्र कालके गालमें जानेवाला मनुष्य क्यों छोड़े । जो पाप एवं अविद्याका नाश करती है, देवताओंके लिये भी जो दुर्लभ है, गङ्गाजीके स्वच्छ जलसे जिसकी शोभा हो रही है, जो भव-बन्धनका नाश करनेवाली है, भगवान् शिव और अन्नपूर्णा जिसे कभी नहीं छोड़ते तथा जो मोक्षरूप मोतीको प्रकट करनेके लिये एकमात्र सीपी है, ऐसी मुक्तिमयी काशीपुरीको जीवन्मुक्त पुरुष कदापि नहीं छोड़ते । जो लहरें लेती हुई गङ्गाजीके जलसे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती है, जो प्रलयकालमें भी महादेवजीके त्रिशूलके अग्रभागपर स्थापित रहती है, ऐसी काशीको छोड़कर लोग अपने मनको जो अन्यत्र ले जाते हैं, यह उनकी कैसी जड़ता है ! ब्राह्मणोंके आशीर्वाद और भगवान् विश्वनाथकी कृपासे ही काशी सुलभ होती है । काशी अपनी शरणमें आये हुए जीवोंकी रक्षा करनेवाली है । यहाँ मृत्युकालमें भगवान् शङ्कर सब जीवोंके कानमें तारक मन्त्रका उपदेश देते हैं, जिससे वे सब ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं । वेदवादी विद्वान् कहते हैं कि काशीपुरीमें भगवान् शिव तारक मन्त्रके उपदेशसे वहाँ रहनेवाले सब जीवोंको निश्चय ही मुक्त कर देते हैं ।'

तदनन्तर अगस्त्य मुनि कालभैरवजीके पास गये और प्रणाम करके बोले—भगवन् ! आप काशीपुरीके स्वामी हैं, अतः मैं आपसे आज्ञा लेने आया हूँ । कालराज ! मुझ निरपराधपर किस कारण आपकी यह अपराधदृष्टि हो गयी ? क्यों आप मुझे काशीसे अन्यत्र जानेका अवसर देते हैं ? यक्षराज ! आप क्यों मुझे काशीसे बाहर भेजते हैं ?—इस प्रकार विरहीकी भाँति विलाप करके 'हा काशी ! हा काशी'की रट लगाते हुए अगस्त्यमुनि अपनी धर्मपत्नी लोपामुद्राके साथ चले और आधे पलमें उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ विन्ध्यपर्वत ऊँचे आकाशको रोककर खड़ा था । मुनिने अपने सामने ही खड़े हुए विन्ध्याचलपर दृष्टिपात किया । पर्वत भी पत्नीसहित अगस्त्य मुनिको अपने आगे खड़े देखकर काँप गया । वे तपस्या और क्रोधसे तथा काशीके विरहसे प्रकट हुई त्रिविध अग्नियोंसे प्रलयङ्कर अनलकी भाँति अत्यन्त प्रज्वलित-से जान पड़ते थे । उनपर दृष्टि पड़ते ही विन्ध्यपर्वत इतना छोटा हो गया मानो धरतीमें समा जाना चाहता हो । छोटा रूप धारण करके वह बोला—'भगवन् ! मैं आपका सेवक हूँ, मेरे योग्य सेवाके लिये आज्ञा देकर मुझपर कृपा करें ।'

अगस्त्यजी बोले—विन्ध्य ! तुम साधुपुरुष हो, बुद्धिमान् हो और मुझे अच्छी तरह जानते हो । देखो, जबतक यहाँ पुनः लौटकर मेरा आना न हो, तबतक तुम अत्यन्त लघु रूपमें ही रहो । यों कहकर मुनिने अपने पदार्पणसे दक्षिण दिशाको सनाथ किया । मुनिवर अगस्त्यके चले जानेपर विन्ध्यपर्वतने मन-ही-मन विचार किया—आज अगस्त्य मुनिने जो मुझे शाप नहीं दिया है, इससे मैं समझता हूँ कि मेरा पुनः नया जन्म हुआ है । उस समय कालका ज्ञान रखनेवाले अरुण सारथिने अपने घोड़ोंको आगे बढ़ाया । पहलेकी भाँति सूर्यदेवके सञ्चारणसे सम्पूर्ण जगत् पूर्णतः स्वस्थ हुआ । आज, कल अथवा परसोंतक मुनि अवश्य आवेंगे मानो इसी चिन्ताके महाभारसे दबा हुआ विन्ध्यगिरि ज्यों-का-त्यों स्थित है, परंतु आजतक न तो अगस्त्य मुनि आये और न पर्वत बढ़ा ।

मुनिवर अगस्त्यजी गोदावरीके रमणीय तटपर विचरते हुए भी काशी-विरहजनित महान् सन्तापको नहीं छोड़ सके । वे पत्नीसहित विचरते हुए कोलापुरनिवासिनी महालक्ष्मीजीके समीप गये और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे—'कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली मातः कमले ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ । आप भगवान् विष्णुके हृदयकमलमें निवास करनेवाली तथा सम्पूर्ण विश्वकी जननी हैं । कमलके कोमल गर्भके सदृश गौर वर्णवाली क्षीरसागरकी पुत्री महालक्ष्मी ! आप अपनी शरणमें आये हुए प्रणतजनोंका पालन करनेवाली हैं । आप सदा मुझपर प्रसन्न हों । मदनकी एकमात्र जननी रुक्मिणीरूपधारिणी लक्ष्मी ! आप भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें 'श्री'नामसे प्रसिद्ध हैं । चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली देवि ! आप ही चन्द्रमामें चाँदनी हैं, सूर्यमें प्रभा हैं और तीनों लोकोंमें आप ही प्रभासित

होती हैं। प्रणतजनोंको आश्रय देनेवाली माता लक्ष्मी ! आप सदा मुझपर प्रसन्न हों। आप ही अग्निमें दाहिका शक्ति हैं। ब्रह्माजी आपकी ही सहायतासे विविध प्रकारके जगत्की रचना करते हैं। सम्पूर्ण विश्वका भरण-पोषण करनेवाले भगवान् विष्णु भी आपके ही भरोसे सबका पालन करते हैं। [श]रणमें आकर चरणमें मस्तक झुकानेवाले पुरुषोंकी निरन्तर [र]क्षा करनेवाली माता महालक्ष्मी ! आप मुझपर प्रसन्न हों। [नि]र्मल स्वरूपवाली देवि ! जिनको आपने त्याग दिया है, [उ]न्हींका भगवान् रुद्र संहार करते हैं। वास्तवमें आप [ह]ी जगत्का पालन, संहार और सृष्टि करनेवाली हैं। आप [ह]ी कार्य-कारणरूप जगत् हैं। निर्मलस्वरूपा लक्ष्मी ! आपको [प्रा]प्त करके ही भगवान् श्रीहरि सबके पूज्य बन गये। मा ! [आ]प प्रणतजनोंका सदैव पालन करनेवाली हैं, मुझपर [प्र]सन्न हों। शुभे ! जिस पुरुषपर आपका करुणापूर्ण कटाक्ष[प]ात होता है, संसारमें एकमात्र वही शूरवीर, गुणवान्, विद्वान्, [ध]न्य, मान्य, कुलीन, शीलवान्, अनेक कलाओंका ज्ञाता और [प]रम पवित्र माना जाता है। देवि ! आप जिस किसी पुरुष, [ह]ाथी, घोड़ा, नपुंसक, तिनका, सरोवर, देवमन्दिर, गृह, [अ]न्न, रत्न, पशु-पक्षी, शय्या और भूमिमें क्षणभर भी निवास [क]रती हैं, समस्त संसारमें केवल वही शोभासम्पन्न होता है, [दू]सरा नहीं। हे श्रीविष्णुपत्नि ! हे कमले ! हे कमलालये ! [हे] माता लक्ष्मी ! आपने जिसका स्पर्श किया है, वह [प]वित्र हो जाता है और आपने जिसे त्याग दिया है, वही सब [इ]स जगत्में अपवित्र है। जहाँ आपका नाम है, वहीं उत्तम [म]ङ्गल है। जो लक्ष्मी, श्री, कमला, कमलालया, पद्मा, रमा, [न]लिनयुग्मकरा (दोनों हाथोंमें कमल धारण करनेवाली), [मा], क्षीरोदजा, अमृतकुम्भकरा (हाथोंमें अमृतका कलश [ध]ारण करनेवाली), इरा और विष्णुप्रिया—इन नामोंका सदा [ज]प करते हैं उनके लिये कहाँ दुःख है।'*

इस प्रकार हरिप्रिया भगवती महालक्ष्मीकी स्तुति करके पत्नीसहित अगस्त्य मुनिने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर उन्हें साष्टाङ्ग-प्रणाम किया।

लक्ष्मीजीने कहा—मित्रावरुणनन्दन अगस्त्य ! उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो। उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली पतिव्रते लोपामुद्रे ! तुम भी उठो। मैं इस स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम मनोवाञ्छित वर माँगो।

यों कहकर विष्णुप्रिया श्रीलक्ष्मीजीने मुनिपत्नी लोपामुद्राको

---

* अगस्तिरुवाच—

मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि
श्रीविष्णुहृत्कमलवासिनि विश्वमातः।
क्षीरोदजे कमलकोमलगर्भगौरि
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥
त्वं श्रीरुपेन्द्रसदने मदनैकमात-
र्ज्योत्स्नासि चन्द्रमसि चन्द्रमनोहरास्ये।
सूर्ये प्रभासि च जगत्त्रितये प्रभासि
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥
त्वं जातवेदसि सदा दहनात्मशक्ति-
र्वेधास्त्वया जगदिदं विविधं विदध्यात्।
विश्वम्भरोऽपि विभृयादखिलं भवत्या
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥
त्वत्त्यक्तमेतदमले हरते हरोऽपि
त्वं पासि हंसि विदधासि परावरासि।
ईड्यो बभूव हरिरप्यमले त्वदाप्त्या
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥
शूरः स एव स गुणी स बुधः स धन्यो
मान्यः स एव कुलशीलकलाकलापैः।
एकः शुचिः स हि पुमान् सकलेऽपि लोके
यत्रापतेत्तव शुभे करुणाकटाक्षः ॥
यस्मिन्वसेः क्षणमहो पुरुषे गजेऽश्वे
स्त्रैणे तृणे सरसि देवकुले गृहेऽन्ने।
रत्ने पतत्रिणि पशौ शयने धरायां
सश्रीकमेव सकले तदिहास्ति नान्यत् ॥
त्वत्स्पृष्टमेव सकलं शुचितां लभेत
त्वत्त्यक्तमेव सकलं त्वशुचीह लक्ष्मि।
त्वन्नाम यत्र च सुमङ्गलमेव तत्र
श्रीविष्णुपत्नि कमले कमलालयेऽपि ॥
लक्ष्मीं श्रियं च कमलां कमलालयां च
पद्मां रमां नलिनयुग्मकरां च मां च।
क्षीरोदजाममृतकुम्भकरामिरां च
विष्णुप्रियामिति सदा जपतां क्व दुःखम् ॥
(स्क० पु० का० पू० ५। ८०—८७)

हृदयसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक अनेक प्रकारके सौभाग्य-सूचक आभूषणोंसे उन्हें विभूषित किया। तत्पश्चात् वे पुनः बोलीं—'मुने! मैं तुम्हारे आन्तरिक तापका कारण जानती हूँ।' यह सुनकर महाभाग मुनिवर अगस्त्यजीने लक्ष्मीदेवीको प्रणाम करके भक्तिसे भरा हुआ वचन कहा—'देवि! यदि मैं वर देनेयोग्य होऊँ तो आप मेरे लिये यही वर प्रदान करें कि मुझे पुनः काशीकी प्राप्ति हो। मेरे द्वारा की हुई आपकी इस स्तुतिका जो सदा भक्तिपूर्वक पाठ करें, उन्हें कभी सन्ताप और दरिद्रता न हो।'

लक्ष्मीजीने कहा—मुने! 'एवमस्तु'। तुमने जो कुछ कहा है, वह सब पूरा होगा। इस स्तोत्रका पाठ मेरे सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला होगा। मुनीश्वर! आनेवाले उन्तीसवें द्वापरमें तुम व्यास होओगे। उस समय काशीमें आकर वेदों-पुराणोंका विस्तार करके सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश देकर तुम मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त करोगे। इस समय मैं तुम्हारे हितकी एक बात बतलाती हूँ, उसका पालन करो। यहाँसे कुछ ही दूरीपर जाकर अपने सामने खड़े हुए स्वामिकार्तिकेयका दर्शन करो। ब्रह्मन्! वे तुम्हें काशीका यथार्थ रहस्य बतलायेंगे।

इस प्रकार वरदान पाकर महालक्ष्मीको प्रणाम करके मुनिवर अगस्त्य उस स्थानपर गये, जहाँ श्रीकार्तिकेयजी विराजमान हैं।

मुक्तिदायक तीर्थोंका वर्णन तथा मानसतीर्थ एवं काशीकी श्रेष्ठता

श्रीव्यासजी कहते हैं—सूत! जिन सत्पुरुषोंके हृदयमें परोपकारकी भावना जाग्रत् रहती है, उनकी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और उन्हें पग-पगपर सम्पत्ति प्राप्त होती है। उपकारके द्वारा जैसे पुण्य-फलकी प्राप्ति होती है, तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी वैसी शुद्धि नहीं होती, बहुतेरे दान देनेसे भी वह फल नहीं मिलता और कठोर तपस्याओंसे भी उस पुण्यकी प्राप्ति नहीं होती। परोपकारसे जो धर्म होता है तथा दान आदि सत्कर्मोंसे जिस धर्मकी प्राप्ति होती है, उन दोनोंको ब्रह्माजीने तौला था। उस समय परोपकारजनित धर्मका ही पलड़ा भारी रहा। सम्पूर्ण वाङ्मय (शास्त्र) का मन्थन करके यही निर्णय किया गया है कि उपकारसे बढ़कर कोई धर्म नहीं और अपकारसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। परोपकारजनित पुण्यके प्रभावसे ही साक्षात् महालक्ष्मीका दर्शन करके मुनिवर अगस्त्य कृतार्थ हो गये। वहाँसे आगे बढ़नेपर मुनिने श्रीपर्वतको देखा, जहाँ साक्षात् त्रिपुरारि महादेवजी निवास करते हैं। उसे देखकर मुनिके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—'प्रिये! देखो। यह जो परम शोभायमान श्रीशैलका शिखर दिखायी देता है, इसके दर्शनसे मनुष्योंका इस संसारमें पुनर्जन्म कभी नहीं होता। इसका विस्तार चौरासी योजनका है। यह सम्पूर्ण पर्वत शिवमय है, अतः इसकी परिक्रमा करनी चाहिये।'

लोपामुद्रा बोलीं—यदि प्राणनाथकी आज्ञा हो तो मैं कुछ निवेदन करना चाहती हूँ; क्योंकि पतिकी आज्ञाके बिना जो स्त्री बोलती है, वह अपने धर्मसे गिर जाती है।

अगस्त्यजीने कहा—देवि! तुम क्या कहना चाहती हो, कहो। तुम्हारे-जैसी साध्वी स्त्रियोंका वचन पतिके लिये खेदजनक नहीं होता।

तदनन्तर मुनिको प्रणाम करके देवी लोपामुद्राने विनयपूर्वक पूछा—महर्षे! श्रीशैलका दर्शन करके मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता है, यदि यह बात सत्य है, तो आप काशीकी अभिलाषा क्यों करते हैं।

अगस्त्यजी बोले—वरारोहे! सुनो। तत्त्वका विचार करनेवाले ज्ञानी मुनियोंने बार-बार यह निर्णय किया है कि

मुक्तिके अनेक स्थान हैं। पहला तीर्थराज प्रयाग है, जो सर्वत्र विख्यात है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। इसके सिवा नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, गङ्गाद्वार (हरिद्वार), अवन्ती, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, अमरावती, सरस्वती और समुद्रका संगम, गङ्गासागर-संगम, काञ्चीपुरी, त्र्यम्बक तीर्थ, सप्त गोदावरीतट, कालञ्जरतीर्थ, प्रभास क्षेत्र, बदरिकाश्रम, महालय, ॐकारक्षेत्र (अमरकण्टक), पुरुषोत्तमक्षेत्र (जगन्नाथपुरी), गोकर्णतीर्थ, भृगुकच्छ, भृगुतुङ्ग, पुष्कर, श्रीपर्वत और धारातीर्थ आदि बहुतसे तीर्थ मुक्तिदायक हैं। सत्य, दया आदि जो मानसिक-तीर्थ हैं, वे भी मोक्ष देनेवाले हैं। गया क्षेत्र भी पितरोंके लिये मोक्षदायक बताया गया है। वहाँ श्राद्ध करनेसे मनुष्य अपने पितरों, पितामहोंके ऋणसे मुक्त होते हैं।

लोपामुद्राने पूछा—महामते! आपने जिन्हें मानस-तीर्थ कहा है, वे कौन-कौनसे हैं? बतानेकी कृपा करें।

अगस्त्यजीने कहा—शुभे! सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियोंको वशमें रखना भी तीर्थ है, सब प्राणियोंपर दया करना तीर्थ है और सरलता भी तीर्थ है। दान, दम (मनका संयम) तथा सन्तोष—ये भी तीर्थ कहे गये हैं। ब्रह्मचर्यका पालन उत्तम तीर्थ है। प्रिय वचन बोलना भी तीर्थ ही है। ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है और तपस्याको भी तीर्थ कहा गया है। तीर्थोंमें भी सबसे बड़ा तीर्थ है अन्तःकरणकी आत्यन्तिक शुद्धि। पानीमें शरीरको डुबो लेना ही स्नान नहीं कहलाता। जिसने दम तीर्थमें स्नान किया है, मन और इन्द्रियोंको संयममें रक्खा है, उसीने वास्तविक स्नान किया है। जिसने मनकी मैल धो डाली है, वही शुद्ध है। जो लोभी, चुगलखोर, क्रूर, पाखण्डी और विषयासक्त है, वह सब तीर्थोंमें स्नान करके भी पापी और मलिन ही रह जाता है। केवल शरीरके मलका त्याग करनेसे ही मनुष्य निर्मल नहीं होता। मानसिक मलका परित्याग करनेपर ही वह भीतरसे अत्यन्त निर्मल होता है। जलमें निवास करनेवाले जीव जलमें ही जन्म लेते और मरते हैं। किंतु उनका मानसिक मल नहीं धुलता। इसलिये वे स्वर्गको नहीं जाते। विषयोंके प्रति अत्यन्त राग होना मानसिक मल कहलाता है और उन्हीं विषयोंमें विराग होना निर्मलता कही गयी है। यदि अपने भीतरका मन दूषित है तो मनुष्य तीर्थस्नानसे शुद्ध नहीं होता। जैसे मदिरासे भरे हुए घड़ेको ऊपरसे जलद्वारा सैकड़ों बार धोया जाय, तो भी वह पवित्र नहीं होता, उसी प्रकार दूषित अन्तःकरणवाला मनुष्य भी तीर्थस्नानसे शुद्ध नहीं होता। भीतरका भाव शुद्ध न हो तो दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन, शास्त्रोंका श्रवण एवं स्वाध्याय—ये सभी अतीर्थ हो जाते हैं। जिसने अपने इन्द्रियसमुदायको वशमें कर लिया है, वह मनुष्य जहाँ निवास करता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ हैं। ध्यानसे पवित्र तथा ज्ञानरूपी जलसे भरे हुए राग-द्वेषमय मलको दूर करनेवाले मानसतीर्थमें जो पुरुष स्नान करता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है*। देवि! यह तुम्हें मानसतीर्थका लक्षण बताया गया। अब पृथ्वीपर जो तीर्थ हैं, उनकी पवित्रताका क्या हेतु है, यह सुनो। जैसे शरीरके कुछ अङ्ग अत्यन्त पवित्र माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वीके कुछ भाग अत्यन्त पुण्यमय हैं। पृथ्वीके अद्भुत प्रभाव, जलके विलक्षण तेज तथा मुनियोंके निवासस्थान होनेसे तीर्थ पुण्यस्वरूप माने जाते हैं। अतः जो प्रतिदिन भूमण्डलके तीर्थों और मानसतीर्थोंमें भी स्नान करता है, वह परम-गतिको प्राप्त होता है। जिसके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और कीर्ति सभी संयममें हैं, वह तीर्थके पूर्ण फलका भागी होता है। जो प्रतिग्रह नहीं लेता और जिस किसी भी वस्तुसे सन्तुष्ट रहता है तथा जिसमें अहङ्कारका सर्वथा अभाव है, वह तीर्थफलका भागी होता है। जो दम्भी नहीं है, नये-नये कार्योंका प्रारम्भ नहीं करता, थोड़ा खाता है, इन्द्रियोंको काबूमें रखता है और सब प्रकारकी आसक्तियोंसे दूर रहता है, वह तीर्थफलका भागी होता है। जो क्रोधी नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलनेवाला और दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाला है, जो सब प्राणियोंके प्रति अपने ही समान बर्ताव करता है, वह तीर्थफलका भागी होता है। जो तीर्थोंका सेवन करनेवाला, धीर, श्रद्धालु और एकाग्रचित्त है, वह पहलेका पापाचारी हो, तो भी शुद्ध हो जाता है। फिर जो पुण्यकर्म करनेवाला है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। तीर्थसेवी मनुष्य कभी पशुयोनिमें जन्म नहीं लेता। कुदेशमें उसका जन्म नहीं होता और वह कभी दुःखका भागी नहीं होता। वह स्वर्ग भोगता और मोक्षका उपाय प्राप्त कर लेता है। अश्रद्धालु, पापात्मा, नास्तिक, संशयात्मा और केवल तर्कका सहारा लेनेवाला—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थसेवनका फल नहीं पाते।

---

* ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥
(स्क० पु० का० पू० ६।४१)

तीर्थयात्राकी इच्छा करनेवाला मनुष्य पहले अपने घरमें उपवास करके श्रीगणेशजीका यथाशक्ति पूजन करे। तत्पश्चात् पितरों, ब्राह्मणों और साधुपुरुषोंकी भी शक्तिके अनुसार पूजा करके व्रतका पारण करे। फिर प्रसन्नतापूर्वक संयम-नियमका पालन करते हुए तीर्थमें जाय। वहाँ पहुँचकर पितरोंका भलीभाँति पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष तीर्थके यथार्थ फलका भागी होता है। तीर्थमें ब्राह्मणके पूर्ण गोत्र और विद्याकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये। यदि वह अन्नकी इच्छा रखनेवाला हो, तब तो उसे अवश्य भोजन कराना चाहिये। तीर्थमें सत्तू, चरु, खीर, पिण्याक (तिलके चूर्ण) और गुड़से पिण्डदान करना चाहिये। तीर्थमें अर्घ्य और आवाहनके बिना श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्धके योग्य समय हो अथवा न हो, तीर्थमें पहुँचनेपर श्राद्ध और तर्पण अविलम्ब करना चाहिये। श्राद्धमें किसी प्रकार विघ्न नहीं आने देना चाहिये। अन्य कार्यके प्रसङ्गसे तीर्थमें जानेपर भी वहाँ अवश्य स्नान करे। ऐसा करनेसे वह स्नानजनित फलको पाता है, तीर्थयात्रासम्बन्धी फलको नहीं। पापाचारी मनुष्योंके पापका तीर्थमें स्नान करनेसे नाश होता है। श्रद्धालु मनुष्योंको तीर्थ यथार्थ फल देनेवाला होता है। जो दूसरेके लिये तीर्थयात्रा करता है, वह तीर्थजनित पुण्यके सोलहवें अंशको पाता है। कुशका एक पुतला बनाकर उसे तीर्थके जलमें नहलावे। जिस पुरुषके उद्देश्यसे उस पुतलेको नहलाया जाता है, वह तीर्थ-स्नानजनित पुण्यके आठवें अंशको प्राप्त कर लेता है। तीर्थमें जाकर उपवास तथा सिरका मुण्डन कराना चाहिये; क्योंकि मुण्डन करानेसे सिरपर चढ़े हुए पाप दूर हो जाते हैं। जिस दिन तीर्थमें पहुँचना हो उसके पहले दिन उपवास करना चाहिये और तीर्थमें पहुँचनेके दिन पितरोंके लिये श्राद्ध एवं दान करना चाहिये। काशी, काञ्ची, माया (लक्ष्मणझूलेसे कनखलतक), अयोध्या, द्वारका, मथुरा और अवन्ती—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं।* श्रीशैल नामक पर्वतका सम्पूर्ण प्रदेश मोक्ष देनेवाला है। केदारतीर्थका महत्त्व उससे भी अधिक है। श्रीशैल और केदारसे भी उत्तम मोक्षदायक तीर्थ प्रयाग है तथा तीर्थश्रेष्ठ प्रयागसे भी बढ़कर अविमुक्त क्षेत्र है। अविमुक्त क्षेत्र (काशी) में जैसा मोक्ष प्राप्त होता है, वैसा कहीं नहीं।

शिवशर्माका सात पुरियोंकी यात्रा करना और हरद्वारमें उसका परमधाम-गमन

अगस्त्यजी कहते हैं—मथुरामें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। उनके पुत्रका नाम शिवशर्मा था। शिवशर्मा बड़े तेजस्वी और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता थे। जब जवानी बीत गयी और कानोंके समीप बाल सफेद हो गये, तब बुढ़ापाको आया हुआ देख द्विजश्रेष्ठ शिवशर्माको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'मेरा सारा समय पढ़ने और धनोपार्जन करनेमें चला गया। मैंने कर्मोंकी जड़ उखाड़नेमें समर्थ भगवान् महेश्वरकी आराधना कभी नहीं की। सम्पूर्ण पापोंका हरण करनेवाले श्रीहरिको भी मैंने कभी सन्तुष्ट नहीं किया। ये वेद, शास्त्र, धन, स्त्री, पुत्र, खेत और महल आदि परलोकमें जाते समय मेरे साथ नहीं जायँगे।' इस प्रकार विचार करके शिवशर्माने यह निश्चय किया कि जबतक मेरा यह शरीर स्वस्थ है, जबतक मेरी इन्द्रियोंमें विकलता नहीं आयी है, तबतक मैं अपने कल्याणके लिये तीर्थयात्रा करूँगा। यह विचार कर शुभ तिथि, शुभ दिन और शुभ लग्नमें शिवशर्माने एक रात उपवास करके प्रातःकाल पितरोंका श्राद्ध किया और श्रीगणेशजी तथा ब्राह्मणोंको नमस्कार करके व्रतका पारण करनेके पश्चात् तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान किया। मार्गमें ब्राह्मणने सोचा—'मैं पहले किस तीर्थमें जाऊँ। इस पृथ्वीपर अनेक तीर्थ हैं। आयु क्षणभङ्गुर है और मन चञ्चल है। अतः मैं सबसे पहले सप्तपुरियोंकी यात्रा करूँ; क्योंकि वहाँ सभी तीर्थ विद्यमान हैं।' इस निश्चयके अनुसार वे अयोध्यापुरीमें गये, सरयूमें स्नान किया और वहाँके भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें पिण्डदान और तर्पण करके पितरोंको सन्तुष्ट किया। पाँच रात अयोध्यामें निवास करके वे प्रसन्नतापूर्वक तीर्थराज प्रयागको गये, जहाँ श्याम और श्वेत सलिलवाली सरिताओंमें श्रेष्ठ देवदुर्लभ यमुना तथा गङ्गाजी विराज रही हैं। जिनका शरीर प्रयागतीर्थके जलसे भीगता है, उन यज्ञकर्ताओंका इस संसारमें पुनरागमन नहीं होता। वहाँ शूलटङ्क महादेवजी निवास करते हैं; वहीं अक्षयवट है, जिसकी जड़ सात पाताललोकोंतक फैली हुई है। प्रलयकालमें उसीपर आरूढ़ होकर मार्कण्डेयजीने निवास किया था।

* काशी काञ्ची च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि। मथुरावन्तिका चैताः सप्त पुर्योऽत्र मोक्षदाः॥

(स्क० पु० का० पू० ६। ६८)

अक्षयवटको वटवृक्षरूपधारी साक्षात् ब्रह्मा जानना चाहिये। उसके समीप ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर मनुष्य अक्षय पुण्यका भागी होता है। वहाँ लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु वैकुण्ठधामसे आकर श्रीमाधवस्वरूपसे निवास करते हैं और मनुष्योंको अपने परम धाममें पहुँचाते हैं। श्याम और श्वेत जलवाली दो नदियाँ वैदिक मन्त्रोंद्वारा वर्णित हुई हैं। उन सितासित सरिताओं—यमुना और गङ्गामें गोता लगानेवाले पुरुष अमृतत्वको प्राप्त होते हैं। माघ मासमें अरुणोदयके समय प्रयागतीर्थमें स्नान करनेके लिये शिवलोक, ब्रह्मलोक, पार्वतीलोक, कुमारलोक, वैकुण्ठलोक और सत्यलोकसे भी वहाँके निवासी आते हैं। तपोलोक, जनलोक, महर्लोक तथा स्वर्गलोकके निवासी भी आते हैं। भुवर्लोक, भूलोक तथा सम्पूर्ण नागलोकसे भी वहाँके रहनेवाले प्राणी पधारते हैं। हिमवान् आदि श्रेष्ठ पर्वत और कल्पवृक्ष आदि तरुवर भी माघमें प्रयाग-स्नान करनेके लिये आते हैं। प्रयाग निश्चय ही इच्छानुसार फल देनेवाला तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला तीर्थ है। 'ज्ञानी पुरुष भगवान् विष्णुके उस सच्चिदानन्दमय पदको सदा देखते हैं', वेदकी श्रुतियोंद्वारा जिसके विषयमें बारंबार यह बात कही जाती है, वह प्रयागतीर्थ ही है। देवि! तीर्थराज प्रयाग सब तीर्थोंद्वारा सेवित है, उसके गुणोंका वर्णन करनेमें यहाँ कौन समर्थ है। उत्तमबुद्धिवाले शिवशर्मा प्रयागके गुणोंको जानकर माघभर वहीं रहे। उसके बाद वे काशीपुरीमें चले आये। वहाँ प्रवेश करते ही उन्हें पुरीकी द्वारदेहलीपर भगवान् गणेशजीका दर्शन हुआ। शिवशर्माने भक्तिपूर्वक गणेशजीके ऊपर घी मिलाये हुए सिन्दूरका लेप किया और उन्हें पाँच मोदकोंका नैवेद्य लगाकर क्षेत्रके भीतर प्रवेश किया। वहाँ मणिकर्णिकातीर्थमें जाकर उन्होंने देखा कि स्वर्गीय नदी गङ्गाजी दक्षिणसे उत्तरकी ओर प्रवाहित हो रही हैं। पापहीन पुण्यात्मा मनुष्य उन्हें तटपर घेरे हुए हैं। उत्तरवाहिनी गङ्गाका दर्शन करके शिवशर्माने वस्त्रसहित निर्मल जलमें गोता लगाया; इससे उनकी बुद्धि तत्काल शुद्ध हो गयी। वे कर्मकाण्डके ज्ञाता थे; अतः स्नान करके उन्होंने विधिपूर्वक देवताओं, ऋषियों, दिव्य मनुष्यों, दिव्य पितरों, (चतुर्दश यमों) तथा अपने पितरोंका तर्पण किया। फिर शीघ्र ही काशीके पञ्चतीर्थोंका सेवन करके अपने वैभवके अनुसार भगवान् विश्वनाथका पूजन किया। शिवशर्मा भगवान् शिवकी उस पुरीको बारंबार देखकर बहुत विस्मित हुए और सोचने लगे—इस काशीकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता। काशीमें यह मणिकर्णिका तीर्थ संसारी जीवोंके लिये साक्षात् चिन्तामणिके समान है। यहाँ साधुपुरुषोंके कानोंमें मृत्युके समय भगवान् शिव तारक मन्त्रका उपदेश देते हैं। इसीलिये उसका नाम मणिकर्णिका है। यहाँ निवास करनेवाले जरायुज, (मनुष्य आदि), अण्डज (पक्षी आदि), उद्भिज्ज (वृक्ष आदि) और स्वेदज (मक्खी आदि) सभी जीव मोक्षके भागी होते हैं। इस प्रकार विचार करते हुए शिवशर्मा बार-बार उस पवित्र एवं विचित्र क्षेत्रको नेत्रोंसे निहारते रहे; परंतु उन्हें तृप्ति नहीं होती थी। वे मन-ही-मन कहने लगे—'मैं उत्तम मोक्ष प्रदान करनेमें कुशल काशीपुरीको सातों पुरियोंमें श्रेष्ठ समझता हूँ। तथापि काशी और अयोध्याके अतिरिक्त अन्य पुरियोंका मैंने अभीतक दर्शन नहीं किया है; इसलिये उनका भी प्रभाव जानकर मैं पुनः यहाँ आऊँगा।'

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये! अनेकानेक शास्त्रीय प्रमाणोंसे उस क्षेत्रके श्रेष्ठ गुणोंको जानकर भी तीर्थयात्रा-परायण शिवशर्मा ब्राह्मण काशीपुरीसे बाहर निकले, यह कितने आश्चर्यकी बात है! वे एक देशसे दूसरे देशमें भ्रमण करते हुए महाकालपुरी (उज्जयिनी या अवन्ती) में पहुँचे, जहाँ कभी कलिकालका प्रभाव नहीं पड़ता। वह पुरी पापसे अवन—रक्षा करती है, इसलिये उसे 'अवन्ती' कहते हैं। कलियुगमें उसका नाम 'उज्जयिनी' होता है। भगवान् शिवका एक ही स्वरूप पातालमें 'हाटकेश्वर', भूतलपर 'महाकाल' तथा स्वर्गलोकमें 'तारकेश्वर' नामसे तीन रूपोंमें अभिव्यक्त होकर तीनों लोकोंको व्याप्त करके स्थित है। जो 'महाकाल, महाकाल, महाकाल' इस प्रकार सदा स्मरण करता है, उसका स्मरण भगवान् श्रीहरि और महादेवजी निरन्तर करते रहते हैं।

भूतनाथ भगवान् महाकालकी आराधना करके शिवशर्मा काञ्चीपुरीमें गये, जो तीनों लोकोंसे भी अधिक कमनीय है, जहाँ साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपति निवास करते हैं। कान्तिमान् पुरुषोंसे सेवित कान्तिमती काञ्चीनगरीका दर्शन कर, वहाँके आवश्यक तीर्थकृत्योंका पालन करके वे द्वारकापुरीकी ओर गये। वहाँ सब ओर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चतुर्विध पुरुषार्थोंके द्वार हैं; इसीलिये तत्त्वज्ञ विद्वानोंने उसे 'द्वारवती' कहा है। यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं—'जिसके ललाटमें गोपीचन्दनका तिलक लगा हो, उसे प्रज्वलित अग्निकी भाँति समझकर प्रयत्न-

तिथि, वार, संक्रान्ति आदि पर्वका ज्ञान नहीं रखते। केवल एक बात जानते हैं। ये कुलपूज्य पुरोहित ब्राह्मणको गोदान देते और उसकी आज्ञाका पालन करते हैं। उसी पुण्यसे गुह्यकलोग समृद्धिशाली होते और यहाँ देवताओंकी भाँति निर्भय होकर स्वर्गीय सुख भोगते हैं।

तदनन्तर आगेके लोकको देखकर शिवशर्माने पूछा—ये कौन लोग हैं और इस लोकका क्या नाम है?

दोनों गण बोले—यह गन्धर्वलोक है, ये लोग उत्तम व्रतका पालन करनेवाले गन्धर्व हैं। ये देवताओंके गायक हैं। मनुष्योंमें जो स्तुति-पाठ करनेवाले चारण हैं, जो सङ्गीतकी कलाको जानते हैं और अपने अति मनोहर गीतसे राजाओंको सन्तुष्ट करते हैं, वे राजाओंके प्रसादसे प्राप्त हुए उत्तम वस्त्र, धन, द्रव्य और सुगन्धित कर्पूर आदि अनेक पदार्थोंको जब ब्राह्मणोंके लिये दान देते हैं, तब उसी पुण्यसे उनको यह गन्धर्वलोक प्राप्त होता है। यह गुह्यकलोककी अपेक्षा श्रेष्ठ है। तुम्बुरु और नारद—ये दोनों गन्धर्व देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ हैं। नाद साक्षात् भगवान् शिवका स्वरूप है। वे दोनों उस नाद-तत्त्वके ज्ञाता हैं। यदि किसीने कहीं भगवान् विष्णु और शिवके समीप गीत गाया है, तो उसका फल मोक्ष है अथवा उन दोनोंके सामीप्यकी प्राप्तिको उसका फल बताया गया है। अतः सङ्गीतमालाके द्वारा भगवान् विष्णुकी सदा पूजा करनी चाहिये।

तत्पश्चात् शिवशर्मा क्षणभरमें दूसरे मनोहर लोकमें जा पहुँचे और उन्होंने पूछा—इस नगरका क्या नाम है?'

दोनों गणोंने कहा—यह विद्याधरोंका लोक है। अनेक प्रकारकी विद्याओंमें विशारद ये विद्याधरलोग विद्यार्थियोंको अन्न और ओषधि दान करते रहे हैं। विद्याके गर्वसे रहित हो इन्होंने छात्रोंको नाना प्रकारकी कलाएँ सिखलायी हैं। शिष्यको पुत्रके समान देखा तथा भोजन और वस्त्र आदिसे उसका सत्कार किया है। ये धर्मपूर्वक अपनी सुन्दरी कन्याओंको वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित करके उनका विवाह करते रहे हैं और प्रतिदिन फलकी इच्छासे इन्होंने इष्टदेवोंकी पूजा की है। उन्हीं पुण्योंसे ये विद्याधरलोग यहाँ निवास करते हैं।

शिवशर्मा और विष्णुपार्षदोंमें इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि धर्मराज वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार बोले—शिवशर्मन्! तुम्हें साधुवाद है। तुमने वह कार्य किया, जो ब्राह्मणकुलके लिये सर्वथा उचित है। पहले वेदोंका अभ्यास किया, गुरुजनोंको अपनी सेवासे सन्तुष्ट किया, धर्मशास्त्र और पुराणोंमें प्रतिपादित धर्मको जाना और उसका आदर किया तथा इस क्षणभङ्गुर शरीरको मोक्षदायिनी सात पुरियोंके नहलाया। इसीलिये बुद्धिमान् पुरुष विद्वत्ताका आदर हैं; क्योंकि विद्वान् लोग दिनका एक क्षण भी व्यर्थ बीतने देते। आयु शीघ्र बीत जानेवाली है, लोक इ डूबा हुआ है, अतः श्रेष्ठ धर्मात्मा पुरुषोंको तुम्हारी ही सदा धर्ममें मन लगाना चाहिये। देखो, यह सत्क ही फल है कि तुम्हारे और मेरे लिये भी वन्दनीय ये भगव पार्षद आज तुम्हारे सखा हो गये हैं। आज मैं धन्य हूँ यहाँ मुझे भगवान्‌के युगल पार्षदोंका दर्शन हुआ।

तत्पश्चात् उन दोनों गणोंके कहनेपर यमराज अ पुरीको लौट गये। उसके बाद शिवशर्माने उन दोनों पार्ष कहा—'ये साक्षात् धर्मराज थे, इनकी आकृति तो बड़ी सौम्य है। यह संयमनी पुरी भी अतिशय शुभ लक्षणोंसे स है, जिसका नाम सुनकर भी पापी जीव अत्यन्त भयभीत उठते हैं। मर्त्यलोकमें मनुष्य यमराजके स्वरूपका अ प्रकारसे वर्णन करते हैं, परंतु मैंने यहाँ इन्हें और ही प्रक देखा है। इसका क्या कारण है, यह आपलोग बतलावें।'

दोनों गण बोले—सौम्य! सुनो, तुम-जैसे पुण्या पुरुषोंको ही ये अत्यन्त सौम्य दिखायी देते हैं; क्यों धर्मराज स्वभावसे ही धर्ममूर्ति हैं। ये ही पापियोंके लि विकराल स्वरूप धारण कर लेते हैं। इनकी पीली-पी आँखें क्रोधसे लाल हो उठती हैं, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंसे इन मुख विकराल हो उठता है तथा बिजलीकी-सी लपलपाती हु जिह्वासे ये और भी भयङ्कर दिखायी देते हैं। इनके के ऊपरकी ओर उठे होते हैं, शरीरका रंग अत्यन्त काला जाता है और इनकी आवाज प्रलयकालीन मेघोंकी गम्भीर गर्जन के समान होती है। हाथमें कालदण्ड उठाये टेढ़ी भौंहों कुटिल मुख किये यमराज अपने दूतोंको आज्ञा देते हैं— 'इस पापात्माको यहाँ लाओ, नीचे गिरा दो, अच्छी तर बाँध दो और कठोर दण्ड दो। इस दुराचारीके मस्तकप लोहेके मुद्गरोंसे जोर-जोरसे मारो। दोनों पैर पकड़कर इ पत्थरकी चट्टानोंपर दे मारो। अपने पैरोंसे इसका गल दबाकर इसकी दोनों आँखें निकाल लो। परायी स्त्रीकी ओर फैलनेवाले इस पापात्माके हाथ काट डालो। परायी स्त्रीके शरीरमें नखक्षत करनेवाले इस दुरात्माके शरीरमें सब ओरसे रोम-रोममें सूई चुभो दो। पर-स्त्रीका मुख चूमने और सूँघनेवाले इस दुष्टके मुँहमें थूक दो। दूसरोंकी निन्दा करनेवाले इस पापीके मुँहमें तीखी कील ठोंक दो। इस कुलकलङ्किनी कुलटाको तपाये हुए लोहेके बने उपपतिके शरीरसे सटा दो। जो अजितेन्द्रिय पुरुष अपने ही ग्रहण किये हुए नियमोंका त्याग करता है, उस

दुष्टात्माको भ्रमरदंश नामक नरकमें बार-बार गिराओ ।' इत्यादि बातें कहते हुए यमराजका शब्द दुराचारी पुरुषोंको दूरसे ही सुनायी देता है । पापात्माओंको यमराज अत्यन्त भयङ्कर दिखायी देते हैं ।

जो राजा इस जगत्में अपने औरस पुत्रोंकी भाँति प्रजाका पालन करते और धर्मके अनुसार दण्ड देते हैं, वे यमराजकी सभाके सदस्य होते हैं । जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सदा अपने धर्ममें तत्पर रहते हैं तथा दूसरे भी जो संयमी जीवन व्यतीत करनेवाले हैं, वे सब लोग संयमनीपुरीमें धर्मसभाके सदस्य होकर निवास करते हैं । उशीनर (शिवि), सुधन्वा, वृषपर्वा, जयद्रथ, रजि, सहस्रजित्, कुक्षि, दृढधन्वा, रिपुञ्जय, युवनाश्व, दन्तवक्र, शत्रुओंका भी मङ्गल चाहनेवाले नाभाग, करन्धम, धर्मसेन, परमर्द तथा परान्तक—ये और दूसरे भी बहुत-से नीतिज्ञ राजा, जो धर्म और अधर्मका विचार करनेमें कुशल हैं, धर्मराजकी सुधर्मा सभामें बैठते हैं ।

यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं—मेरे सेवको ! जो मनुष्य गोविन्द, माधव, मुकुन्द, हरे, मुरारे, शम्भु, शिव, ईश, चन्द्रशेखर, शूलपाणि, दामोदर, अच्युत, जनार्दन और वासुदेव इत्यादि नामोंका सदा उच्चारण करते रहते हैं, उनको दूरसे ही त्याग देना । दूतो ! जो लोग सदा गङ्गाधर, अन्धकरिपु, हर, नीलकण्ठ, वैकुण्ठ, कैटभरिपु, कमठ, पद्मपाणि, भूतेश, खण्डपरशु, मृड, चण्डिकेश आदि नामोंका जप करते हैं, वे तुम्हारे लिये सर्वथा त्याज्य हैं । मेरे दूतो ! विष्णु, नृसिंह, मधुसूदन, चक्रपाणि, गौरीपति, गिरीश, शङ्कर, चन्द्रचूड, नारायण, असुरविनाशन, शार्ङ्गपाणि इत्यादि नामोंका सदा जो लोग कीर्तन करते रहते हैं, उन्हें भी दूरसे ही त्याग देना उचित है* ।

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये लोपामुद्रे ! इस प्रकार पापरहित मनोरम कथाका श्रवण करते हुए शिवशर्माने प्रसन्नमुख होकर अपने सामने अप्सराओंकी पुरी देखी ।

शिवशर्माका सूर्यलोकमें पहुँचकर सूर्यदेवकी महिमा श्रवण करना

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर विमानपर बैठे हुए शिवशर्मा सूर्यलोकमें जा पहुँचे । उन्होंने सूर्यदेवको हाथ जोड़कर प्रणाम किया । भगवान् सूर्य अपने भ्रूभङ्गमात्रसे उनके प्रणामको स्वीकार करके क्षणभरमें आकाशमार्गमें बहुत दूर निकल गये । तब शिवशर्माने भगवत्पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् सूर्यका लोक कैसे प्राप्त होता है ?'

भगवान् विष्णुके पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन् ! सुनो । जो समस्त प्राणियोंके एकमात्र नियन्ता, परम कारण, नाम और गोत्रसे रहित तथा रूप आदिसे शून्य हैं, जिनकी भौंहोंके विलासमात्रसे जगत्की सृष्टि और प्रलय होते हैं, वे सर्वात्मा वेद-पुरुष ऐसा कहते हैं कि जो आदित्य-मण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष सूर्यदेव हैं, वही मैं हूँ । जो गायत्री-मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त करके तीनों कालमें ठीक समयपर सन्ध्योपासना, सूर्योपस्थान तथा गायत्री-मन्त्रका जप नहीं करता, वह एक सप्ताहमें स्वधर्मसे भ्रष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं । प्रातःकाल सन्ध्योपासना करके गायत्री-मन्त्रका जप करते हुए तबतक खड़ा रहे, जबतक कि सूर्यदेवका आधा उदय न हो जाय । सायंकालमें मौनभावसे आसनपर बैठे हुए ही तबतक जप करता रहे, जबतक ताराओंका उदय न हो जाय । मध्याह्न-सन्ध्यामें सूर्यकी ओर मुख करके जप करना चाहिये । समयपर ही अन्न आदि ओषधियोंमें फल लगते हैं, समयपर ही वृक्षोंमें फूल खिलते हैं और समयपर ही मेघगण

* गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे ।
दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥ (स्क० पु० का० पू० ८ । ९१)

पानी बरसाते हैं। इसलिये सन्ध्याके लिये उचित कालका उल्लङ्घन न करे*। जिसने समयपर भगवान् सूर्यको गायत्री मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलकी तीन अञ्जलियाँ प्रदान कीं, उसने क्या तीनों लोकोंका दान नहीं कर दिया ? ठीक समयसे उपासना करनेपर भगवान् सूर्य मनुष्यको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु, मित्र, पुत्र, स्त्री, भाँति-भाँतिके क्षेत्र, आठ प्रकारके भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष क्या-क्या नहीं देते। सब मन्त्रोंमें प्रणवसहित गायत्री दुर्लभ है। तीनों वेदोंमें गायत्रीसे बढ़कर कोई मन्त्र नहीं बताया गया है। गायत्रीके समान मन्त्र, काशीके सदृश पुरी तथा भगवान् विश्वनाथके तुल्य शिवमूर्ति कहीं नहीं है। गायत्री वेदोंकी माता और ब्राह्मणोंकी जननी है। वह अपना गान करनेवाले उपासकका त्राण करती है, इसलिये 'गायत्री' कहलाती है†। गायत्री मन्त्र और भगवान् सूर्य इन दोनोंमें वाच्य-वाचक-सम्बन्ध है। साक्षात् भगवान् सूर्य वाच्य (अर्थरूप) हैं और मन्त्रोंमें श्रेष्ठ गायत्री वाचक है। गायत्रीके प्रभावसे ही जितेन्द्रिय विश्वामित्र क्षत्रिय होनेपर भी राजर्षि पदका परित्याग करके ब्रह्मर्षिपदको प्राप्त हुए। गायत्री ही परम विष्णु है, गायत्री ही परम शिव है, गायत्री ही परम ब्रह्मा है और गायत्री ही तीनों वेद है।‡ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि आलस्य छोड़कर सूर्यदेवतासम्बन्धी वैदिक सूक्तोंद्वारा सदैव भगवान् सूर्यका उपस्थान करते और उन्हें मस्तक झुकाते हैं, वे साक्षात् सूर्यके ही समान हैं। सूर्यग्रहणके समय जो कुछ स्नान, दान, जप, होम तथा श्राद्ध आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया जाता है, वह सब भगवान् सूर्यके सामीप्यकी प्राप्तिमें सहायक होता है। १ हंस, २ भानु, ३ सहस्रांशु, ४ तपन, ५ तापन, ६ रवि, ७ विकर्तन, ८ विवस्वान्, ९ विश्वकर्मा, १० विभावसु, ११ विश्वरूप, १२ विश्वकर्ता, १३ मार्तण्ड, १४ मिहिर, १५ अंशुमा[न्] १६ आदित्य, १७ उष्णगु, १८ सूर्य, १९ अर्यम[ा] २० ब्रध्न, २१ दिवाकर, २२ द्वादशात्मा, २३ सप्तह[य] २४ भास्कर, २५ अहस्कर, २६ खग, २७ सूर, २८ प्रभाव[कर] २९ श्रीमान्, ३० लोकचक्षु, ३१ ग्रहेश्वर, ३२ त्रिलोकेश[,] ३३ लोकसाक्षी, ३४ तमारि, ३५ शाश्वत, ३६ शुचि ३७ गभस्तिहस्त, ३८ तीव्रांशु, ३९ तरणि, ४० सुमहोरणि ४१ द्युमणि, ४२ हरिदश्व, ४३ अर्क, ४४ भानुमान ४५ भयनाशन, ४६ छन्दोश्व, ४७ वेदवेद्य, ४८ भास्वान ४९ पूषा, ५० वृषाकपि, ५१ एकचक्ररथ, ५२ मित्र ५३ मन्देहारि, ५४ तमिस्रघ्न, ५५ दैत्यहा, ५६ पापहर्ता ५७ धर्म, ५८ धर्मप्रकाशक, ५९ हेलिक, ६० चित्रभानु ६१ कलिघ्न, ६२ तार्क्ष्यवाहन, ६३ दिक्पति, ६४ पद्मिनीनाथ ६५ कुशेशयकर, ६६ हरि, ६७ घर्मरश्मि, ६८ दुर्निरीक्ष्य

गङ्गाधरान्धकरिपो हर नीलकण्ठ वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्जपाणे।
भूतेश खण्डपरशो मृड चण्डिकेश त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति॥
विष्णो नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे गौरीपते गिरिश शङ्कर चन्द्रचूड।
नारायणासुरनिबर्हणशार्ङ्गपाणे त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति॥
(स्क० पु० का० पू० ८। १००—१०१

* उपलभ्य च सावित्रीं नोपतिष्ठेत यः पराम्। काले त्रिकालं सप्ताहात्स पतेन्नात्र संशयः॥
तावत्प्रातर्जपंस्तिष्ठेद्यावदर्धोदयो रवेः। आसनस्थो जपेन्मौनी प्रत्यगा तारकोदयात्॥
सादित्यां मध्यमां सन्ध्यां जपेदादित्यसम्मुखः। काललोपो न कर्तव्यस्ततः कालं प्रतीक्षयेत्॥
काले फलन्त्योषधयः काले पुष्पन्ति पादपाः। वर्षन्ति तोयदाः काले तस्मात्कालं न लङ्घयेत्॥
(स्क० पु० का० पू० ९। ४१—४४)

† दुर्लभा सर्वमन्त्रेषु गायत्री प्रणवान्विता। न गायत्र्याधिकं किञ्चित्त्रयीषु परिगीयते॥
न गायत्रीसमो मन्त्रो न काशीसदृशी पुरी। न विश्वेशसमं लिङ्गं सत्यं सत्यं पुनः पुनः॥
गायत्री वेदजननी गायत्री ब्राह्मणप्रसूः। गातारं त्रायते यस्माद्गायत्री तेन गीयते॥
(स्क० पु० का० पू० ९। ५१—५३)

‡ गायत्र्येव परो विष्णुर्गायत्र्येव परः शिवः। गायत्र्येव परो ब्रह्मा गायत्र्येव त्रयी ततः॥
(स्क० पु० का० पू० ९। ५७)

६९ चण्डांशु और ७० कश्यपात्मज*—सूर्यदेवके इन परम पवित्र नामोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें 'नमः' शब्द जोड़कर प्रत्येक नामको चतुर्थ्यन्त करके उसका उच्चारण करते हुए भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये। यथा—ॐ हंसाय नमः, ॐ भानवे नमः इत्यादि। अर्घ्यकी विधि इस प्रकार है—दोनों हाथोंमें निर्मल ताम्रपात्र लेकर उसे जलसे भर ले। उसमें कनेर आदिके पुष्प, रक्त चन्दन, दूर्वादल और अक्षत डाल दे। तत्पश्चात् पृथ्वीपर दोनों घुटने टेककर सूर्यकी ओर

* इन सत्तर नामोंका संक्षेपसे अर्थ-बोध कराया जाता है—

१ हन्ति गच्छति जानाति सर्वम् इति वा हंसः।

जो सर्वत्र जाता है अथवा सबको जानता है, वह हंस है, इस व्युत्पत्तिके अनुसार सर्वव्यापी सर्वज्ञ परमात्माका नाम ही हंस है। 'हंस' या 'सोऽहम्' यह अजपा-मन्त्र भी है।

२ भातीति भानुः, भाः नुदति प्रेरयति इति वा भानुः।

जो विभासित हो अथवा अपनी प्रभाका प्रसार करे, वह भानु है। ३ सहस्र (असंख्य) किरणोंवाले। ४ तपनेवाले। ५ तपानेवाले। ६ लोकान् अवति रक्षति इति रविः; जो सम्पूर्ण लोकोंका अवन—रक्षण करे, वह रवि है। अवधातुके पूर्वमें 'रुट्' का आगम होता है, जिससे 'रवि' शब्दकी सिद्धि होती है। जैसा कि अन्यत्र बताया गया है—

'अवेति रक्षणे धातुः प्रत्ययेऽस्य रुडागमः।
अवति त्रीनिमाँल्लोकांस्तेनासौ रविरुच्यते॥' इति॥

७ विश्वकर्माके द्वारा भगवान् सूर्यके तेजका विशेषरूपसे कर्तन—संक्षिप्तीकरण किया गया है, इसलिये उनका नाम विकर्तन है। ८ जिनका वसु अर्थात् तेज सबसे विशिष्ट है, उन्हें विवस्वान् कहते हैं। ९ सम्पूर्ण विश्व जिनका कर्म है अथवा जिनसे सम्पूर्ण विश्वकी कर्ममें प्रवृत्ति होती है, उन भगवान् सूर्यका नाम विश्वकर्मा है। १० अग्निस्वरूप होनेसे सूर्यदेवका नाम विभावसु है अथवा जिनके वसु—किरण अनेक प्रकारसे विभासित हैं, वे विभावसु कहलाते हैं। ११ सम्पूर्ण विश्वमें जिनका तेजोमय स्वरूप व्याप्त है अथवा यह विश्व जिनका ही स्वरूप है, वे भगवान् सूर्य विश्वरूप कहे गये हैं। १२ सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले। १३ मृत्तिकामय अर्थात् अचेतन अण्टमें वैराजरूपसे प्रविष्ट होनेके

२९ कान्तिमान्। ३० सम्पूर्ण जगत्के नेत्रोंमें प्रकाश देनेवाले। ३१ ग्रहोंके स्वामी। ३२ तीनों लोकोंके स्वामी। ३३ अन्तर्यामी-रूपसे सम्पूर्ण जगत्के साक्षी। ३४ अन्धकारके शत्रु। ३५ नित्य। ३६ पवित्र। ३७ किरणरूपी हाथोंवाले। ३८ तीक्ष्ण किरणवाले। ३९ संसार-समुद्रसे तारनेवाले नौकारूप। ४० अत्यन्त महान् तेजकी उत्पत्तिके स्थान। ४१ आकाशमें मणिके समान प्रकाशित होनेवाले। ४२ हरे रंगके घोड़ेवाले। ४३ अतिशयेन इयति गच्छति इत्यर्कः; जो अत्यन्त तीव्र वेगसे गमन करे, वह अर्क है। ४४ प्रकाशमान किरणोंवाले। ४५ भयका निवारण करनेवाले। ४६ गायत्री आदि सात छन्द ही सूर्यदेवके सात अश्व हैं, इसलिये उनका नाम छन्दोश्व है। ४७ वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य। ४८ प्रकाशवान्। ४९ वृष्टिः आदि द्वारेण सर्वं जगत् पुष्णाति इति पूषा; वर्षा आदिके द्वारा समस्त जगत्का पोषण करते हैं, इसलिये उनका नाम पूषा है। ५० वर्षति पुण्यफलम् आकम्पयति पापम् इति वृषाकपिः; पुण्यफलकी वर्षा करते और पापको आकम्पित (नष्ट) करते हैं, इसलिये सूर्यदेव वृषाकपि कहलाते हैं। ५१ सूर्यका रथ एक पहियेवाला है, इसलिये वे एक-चक्ररथ हैं। ५२ स्वभावतः सबके सुहृद् होनेसे उनका नाम मित्र है। ५३ आलस्यके प्रतीक मन्देह नामक राक्षसोंका शत्रु होनेके कारण भगवान् सूर्यको मन्देहारि कहते हैं। ५४ अन्धकारनाशक।

देख-देखकर एक-एक नामका पूर्वोक्त रूपसे उच्चारण करते हुए अर्घ्यपात्रको अपने मस्तकके पास लाकर परम पूजनीय सूर्यदेवको ध्यानपूर्वक अर्घ्य दे। सूर्योदय और सूर्यास्तके समय महामन्त्र-रहस्यरूप इन सत्तर नामोंके द्वारा प्रत्येक नाममय मन्त्रके साथ सूर्यदेवको नमस्कार करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य न कभी दरिद्र होता है और न कभी दुःखका ही भागी होता है। वह पूर्वजन्मोपार्जित भयंकर रोगोंसे भी मुक्त हो जाता है और समयपर मृत्युको प्राप्त होकर भगवान् सूर्यके लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

इस पुण्यकथाको सुनते हुए शिवशर्माने क्षणभरमें देवराज इन्द्रके लोकमें पहुँचकर उनकी महापुरीका दर्शन किया।

इन्द्रलोक तथा अग्निलोकका वर्णन, विश्वानर मुनिके द्वारा की हुई आराधनासे प्रसन्न होकर शिवजीका उन्हें वरदान देना

शिवशर्माने पूछा—यह उत्तम पुरी किसकी है?

दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—महाभाग! यह देवराज इन्द्रकी पुरी है। विश्वकर्माजीने बड़ी भारी तपस्याके बलसे इस पुरीका निर्माण किया है। इस अमरावतीमें कपड़ा बुननेवाले और आभूषण बनानेवाले नहीं रहते; क्योंकि यहाँ कल्पवृक्ष ही सबको रुचिके अनुसार वस्त्र और आभूषण देता है। यहाँ रसोई बनानेके कार्यमें कुशल रसोइये भी नहीं हैं, एकमात्र कामधेनु ही यहाँ सम्पूर्ण रसोंको प्रस्तुत करती है। यहीं सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्र हैं। ये ही स्वर्गलोकके अधिपति हैं। इन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया है, इसलिये ये इन्द्रदेव शतमन्यु कहलाते हैं। अग्नि आदि सात लोकपाल इनकी उपासना करते हैं। जो कोई भी जितेन्द्रिय पुरुष पृथ्वीपर निर्विघ्नतापूर्वक सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान पूरा कर लेता है, वह इन्द्रपुरीमें जाकर इन्द्र-पदवीको पाता है। जिन्होंने सौ यज्ञ पूरे नहीं किये हैं, वे यज्ञकर्ता राजा भी इस लोकमें निवास करते हैं। जो ब्राह्मण ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं, वे भी इस लोकमें निवास करते हैं। जो तुलापुरुषदान आदि सोलह महादानोंका अनुष्ठान करते हैं, वे शुद्ध चित्तवाले पुण्यात्मा पुरुष अमरावतीपुरीको प्राप्त करते हैं। जो संग्राममें कभी पीठ नहीं दिखाते, कायरोंकी-सी बात नहीं करते, धीरतापूर्वक पराक्रम दिखाते हुए वीरशय्यापर वीरगतिको प्राप्त होते हैं, वे राजा भी यहाँ निवास करते हैं। यज्ञविद्यामें कुशल यज्ञकर्ता मनुष्य भी यहाँ निवास करते हैं। इस प्रकार देवराज इन्द्रके नगरकी स्थिति संक्षेपसे बतायी गयी है। अब तुम इस ज्योतिर्मयी अग्निपुरीकी ओर देखो। जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाले पुरुष अग्निदेवके उपासक हैं, वे इस लोकमें निवास करते हैं। अग्निहोत्रपरायण ब्राह्मण, अग्निसेवी ब्रह्मचारी तथा पञ्चाग्निव्रतका पालन करनेवाले तपस्वी अग्निलोकमें अग्निके समान तेजस्वी होकर रहते हैं। जो सर्दीके समय शीतका कष्ट दूर करनेके लिये सूखे काठ दान करते तथा मन्दाग्नि रोगवाले मनुष्यके जठराग्निकी वृद्धिके लिये वैश्वानर चूर्ण आदि औषध प्रदान करते हैं, वे चिरकालतक अग्निलोकमें निवास करते हैं। जो यज्ञके लिये उपयोगी सामग्री अथवा धन अपनी शक्तिके अनुसार देते हैं, वे अर्चिष्मती पुरीमें स्थान पाते हैं। द्विजातियोंके लिये एकमात्र अग्निदेवता ही परम कल्याणकारी हैं—गुरु, देवता, व्रत और तीर्थ सब अग्नि ही हैं। सभी अपवित्र वस्तुएँ अग्निके संसर्गमें आनेपर क्षणभरमें पवित्र हो जाती हैं, अतएव उनका नाम पावक है। अग्निदेव त्रिभुवनके स्वामी परमेश्वरके नेत्र हैं। जब संसार घोर अन्धकारसे आच्छादित हो जाता है उस समय उनके सिवा दूसरा कौन प्रकाशक होता है।

पूर्वकालकी बात है, नर्मदा नदीके रमणीय तटपर नर्मपुरमें एक विश्वानर नामक मुनि थे, जो भगवान् शिवके भक्त और बड़े पुण्यात्मा थे। एक समय भगवान् शिवका ध्यान करके वे मन-ही-मन विचार करने लगे कि चारों आश्रमोंमें कौन-सा आश्रम सत्पुरुषोंके लिये विशेष कल्याणकारक है, जिसका भलीभाँति पालन करनेपर इहलोक और परलोकमें भी सुख होता है। यह साधन श्रेष्ठ है, यह उससे भी श्रेष्ठ है और यह सुगम है, इस प्रकार सबकी आलोचना करके उन्होंने गृहस्थ-आश्रमकी प्रशंसा की। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी—इन सबका आधार गृहस्थ-आश्रम ही है। देवता, मनुष्य, पितर तथा पशु-पक्षी आदि भी प्रतिदिन गृहस्थसे ही अपनी जीविका चलाते हैं, इसलिये गृहस्थाश्रमी पुरुष ही सर्वश्रेष्ठ है। जो गृहस्थ स्नान, होम अथवा दान किये बिना ही भोजन कर लेता है, वह देवता आदिका ऋणी होकर नरकमें पड़ता है। जो हठसे, लोकभयसे अथवा स्वार्थसे ब्रह्मचर्य-व्रतको धारण करता है,

किंतु मन-ही-मन विषयभोगोंका चिन्तन करता रहता है, उसका धारण किया हुआ व्रत भी नहींके समान हो जाता है। परायी स्त्रीका परित्याग करने, अपनी ही स्त्रीसे सन्तुष्ट रहने तथा ऋतुकालके समय पत्नी-समागम करनेवाले गृहस्थ-को ब्रह्मचारी ही कहा गया है। जिसने राग-द्वेषको त्याग दिया है, जो काम-क्रोधसे दूर रहता है, वह अग्नि और स्त्रीके साथ रहनेवाला गृहस्थ वानप्रस्थसे भी बढ़कर है। जो वैराग्यसे घर छोड़कर निकले, किंतु हृदयमें घरका सदा चिन्तन करता रहे, वह दोनों ओरसे भ्रष्ट होता है। उसको न तो गृहस्थ कहा जा सकता है और न वानप्रस्थ ही। जो गृहस्थ ब्राह्मण बिना माँगे प्राप्त हुई जीविकासे जीवन-निर्वाह करता और जिस किसी वस्तुसे भी सन्तुष्ट रहता है, वह संन्यासीसे भी बढ़कर है। जो संन्यासी जहाँ कहीं भी कोई दुर्लभ वस्तु भी माँग बैठता है और भोजनसे सन्तुष्ट नहीं होता, वह संन्यास-धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है।

इस प्रकार गुण-अवगुणका विचार करके विश्वानर ब्राह्मणने अपने योग्य उत्तम कुलकी कन्याके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। वे अग्निसेवामें तत्पर रहते, पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान करते, सदा यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन और दान-प्रतिग्रह—इन छः कर्मोंमें संलग्न रहते तथा देवता, पितर एवं अतिथियोंसे प्रेम रखते थे। मनको संयममें रखने-वाले विश्वानर मुनि धर्म, अर्थ और कामका तदनुकूल समयमें संग्रह करते थे। दोनों दम्पति एक दूसरेके अनुकूल चलते थे; अतः उनमें परस्पर कोई संकोच नहीं था। वे ब्राह्मण कर्मकाण्डके ज्ञाता थे, अतः पूर्वाह्णकालमें देवयज्ञ, मध्याह्नमें मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सेवा) तथा अपराह्णमें पितृयज्ञ करते थे। इस तरह बहुत समय बीत जानेपर उन ब्राह्मणदेवताकी पतिव्रता पत्नी शुचिष्मती एक दिन अपने पतिसे इस प्रकार बोली—'प्राणनाथ! स्त्रियोंके योग्य जितने भोग हैं, वे सब आपके प्रसादसे मेरे द्वारा पूर्णरूपसे भोगे गये हैं। अब आप मुझे भगवान् शङ्करके सदृश पुत्र प्रदान करें।'

आश्वासन देकर मुनि तपस्याके लिये चल दिये। उन्होंने काशीमें जाकर मणिकर्णिकाका दर्शन किया और सौ जन्मोंमें उपार्जित त्रिविध पाप-तापोंका परित्याग कर दिया। विश्वेश्वर आदि सम्पूर्ण शिवलिङ्गोंका दर्शन करके सभी कुण्डों, बावड़ियों, कुओं और तालाबोंमें स्नान किया। सम्पूर्ण गणेश-विग्रहोंको नमस्कार करके समस्त गौरी-विग्रहोंके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् पापोंका भक्षण करनेवाले कालराज भैरवका भलीभाँति पूजन करके आदिकेशव, आदिश्रीविष्णु-विग्रहोंको सन्तुष्ट किया। फिर लोलार्क आदि सूर्य-विग्रहोंको बार-बार नमस्कार करके सब तीर्थोंमें पिण्डदान किया। सहस्रोंकी संख्यामें भोजन कराकर संन्यासियों और ब्राह्मणोंको तृप्त किया।

तदनन्तर वे बार-बार यह सोचने लगे कि कौन-सा शिवलिङ्ग शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाला है। क्षणभर सोच-विचार करनेके बाद वे इस निर्णयपर पहुँचे कि जहाँ सिद्धि-रूपिणी विकटा देवी प्रकट हुई हैं और जहाँ सिद्धिविनायकजी सब विघ्नोंका निवारण करके समस्त सिद्धियाँ प्रदान करते हैं, वह सिद्धिक्षेत्र ही अविमुक्त क्षेत्रमें सबसे प्रधान स्थान है। वहाँ वीरेश्वर नामसे प्रसिद्ध शिवलिङ्ग अत्यन्त गुह्यतम माना गया है। काशीमें ऐसी भूमि नहीं है, जहाँ कोई शिवलिङ्ग न हो। परंतु वीरेश्वर लिङ्गके समान शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष देनेवाला दूसरा लिङ्ग नहीं है। शिव भक्तोंमें श्रेष्ठ चन्द्रमौलि तथा भरद्वाजजी पूर्वकालमें वीरेश्वरकी आराधना करके उनकी महिमाका गान करते हुए उन्हींमें लीन हो गये। नागराज शङ्खचूडने भी प्रतिदिन रातमें अपने फनोंकी मणियोंसे बार-बार आरती उतारते हुए छः महीनेमें सिद्धि प्राप्त कर ली। यहाँ वसुदत्त और रत्नदत्त नामक वैश्योंने एक वर्षतक श्रीवीरेश्वरकी आराधना करके सत्यवतीके समान पुत्री प्राप्त की थी। अतः मैं भी यहाँ तीनों काल वीरेश्वरकी आराधना करके अपनी स्त्रीकी रुचिके अनुसार शीघ्र ही पुत्र प्राप्त करूँगा।

तदनन्तर, एक मासतक दूध पीकर, एक मासतक साग और फल खाकर, एक महीनेतक मुट्ठीभर तिल चबाकर और एक महीनेतक केवल जल पीकर जीवन-निर्वाह किया। तत्पश्चात् एक मासतक वे केवल पञ्चगव्य पीकर रहे, एक मासतक चान्द्रायण व्रतमें लगे रहे, एक मासतक कुशाके अग्रभागपर जितना जल आता है, उतना ही पीकर तप करते रहे और एक मासतक उन्होंने केवल वायुका आहार किया। इसके बाद तेरहवें मासमें गङ्गाजीके जलमें स्नान करके वे प्रातःकाल ज्यों-ही भगवान् वीरेश्वरके समीप गये, त्यों-ही उस लिङ्गके मध्यभागमें उन्हें एक विभूतिभूषित अष्टवर्षीय सुन्दर बालक दिखायी दिया। उसके नेत्र कानोंके समीपतक फैले हुए थे। ओठ बहुत ही लाल थे। मस्तकपर पीले रंगकी जटाका मनोहर मुकुट शोभा पा रहा था। वह बालक नंगा था और उसके मुखपर हास्यकी छटा छा रही थी। उसने बालकोचित वेष-भूषा धारण कर रक्खी थी। वह मनोहर बालक वैदिक सूक्तोंका पाठ करता और खेल-खेलमें ही हँसता था।

उसे देखकर विश्वानरके शरीरमें आनन्दातिरेकसे रोमाञ्च हो आया और वे गद्गदकण्ठसे बोल उठे—'नमस्कार है, नमस्कार है।' तत्पश्चात् उन्होंने इस प्रकार स्तवन किया—'यहाँ सब कुछ एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही है। यह बात सत्य है, सत्य है। इस विश्वमें भेद या नानात्व कुछ भी नहीं है। इसलिये एक अद्वितीयरूप आप महेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। शम्भो! आप रूपरहित अथवा एकरूप होकर भी जगत्के नाना स्वरूपोंमें अनेककी भाँति प्रतीत होते हैं। ठीक उसी तरह, जैसे जलके भिन्न-भिन्न पात्रोंमें एक ही सूर्य अनेकवत् दृष्टिगोचर होता है। अतः आपके सिवा और किसी स्वामीकी मैं शरण नहीं लेता। जैसे रज्जुका ज्ञान हो जानेपर सर्पका भ्रम मिट जाता है, सीपीका बोध होते ही चाँदीकी प्रतीति नष्ट हो जाती है तथा मृगमरीचिकाका निश्चय होनेपर उसमें प्रतीत होनेवाला जलप्रवाह असत्य सिद्ध हो जाता है, उसी प्रकार जिनका ज्ञान होनेपर सब ओर प्रतीत होनेवाला यह सम्पूर्ण प्रपञ्च उन्हींमें विलीन हो जाता है, उन महेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। शम्भो! जैसे जलमें शीतलता, अग्निमें दाहकत सूर्यमें ताप, चन्द्रमामें आह्लाद, पुष्पमें सुगन्ध तथा दूधमें घ स्थित है, उसी प्रकार सम्पूर्ण विश्वमें आप व्याप्त हैं, इसलि मैं आपकी ही शरण लेता हूँ। आप बिना कानके ही शब्दक सुनते हैं, नासिकाके बिना ही सूँघते हैं, पैरोंके बिना ही दूर चले आते हैं, नेत्रोंके बिना ही देखते और रसनाके बिना ह रसका अनुभव करते हैं, आपको यथार्थरूपसे कौन जानत है? अतः मैं आपकी ही शरण लेता हूँ। ईश! वेद भ आपके साक्षात् स्वरूपको नहीं जानता, बड़े-बड़े योगीश्व तथा इन्द्र आदि देवता भी आपको यथार्थरूपसे नहीं जानते परंतु आपका भक्त आपकी ही कृपासे आपको जानता है अतः मैं आपकी ही शरण लेता हूँ। आप ही वृद्ध हैं, आ ही तरुण हैं और आप ही बालक हैं। कौन-सा ऐसा तत्त्व है, जो आप नहीं हैं, सब कुछ आप ही हैं, अतः मैं आपके चरणोंमें मस्तक नवाता हूँ।'

इस प्रकार स्तुति करके विप्रवर विश्वानर अतिशय आनन्दमग्न हो दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ गये। इतनेमें ह बालकरूपधारी शिव बोल उठे—'भूदेव! तुम कोई व माँगो। तुमने अपनी धर्मपत्नी शुचिष्मतीके विषयमें अपने मनमें जो अभिलाषा की है, वह थोड़े ही समयमें पूर्ण होगी महामते! मैं स्वयं ही शुचिष्मतीके गर्भमें आकर तुम्हार पुत्र होऊँगा। उस समय सब देवताओंका परम प्रिय मैं गृहपति (अग्नि) के नामसे विख्यात होऊँगा। तुमने जो इस अभिलाषाष्टक नामक पवित्र स्तोत्रका पाठ किया है, इ स्तोत्रको तीनों समय मेरे समीप यदि पढ़ा जाय तो यह सम्पू कामनाओंको देनेवाला होगा। इस स्तोत्रका पाठ पुत्र, पौ और धन देनेवाला होगा, सब प्रकारकी शान्ति करनेवाल और सम्पूर्ण आपत्तियोंका नाशक होगा। इतना ही नहीं, य स्वर्ग, मोक्ष तथा सम्पत्ति देनेवाला भी होगा। एक वर्षतक पाठ करनेपर यह स्तोत्र पुत्रदान करनेवाला होगा, इसमें संशय नहीं है।' ऐसा कहकर बालरूपधारी महादेवजी अन्तर्धान हो गये और विप्रवर विश्वानर भी अपने घ लौट गये।

विश्वानरके पुत्र गृहपतिका भगवान् शिवकी आराधनासे अग्नि एवं दिक्पालका पद प्राप्त करना

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर विश्वानरद्वारा विधिपूर्वक गर्भाधान-संस्कार सम्पन्न होनेपर उनकी स्त्री शुचिष्मती गर्भवती हुई। तत्पश्चात् विद्वान् विश्वानरने गृह्यसूत्रोक्त विधिसे बालककी पुरुषोचित शक्ति बढ़ानेके उद्देश्यसे गर्भिणीका पुंसवन-संस्कार किया। यह संस्का गर्भस्थ बालकके गर्भमें चलने-फिरनेसे पहले ही सम्पन्न किय

गया। तदनन्तर आठवें मासमें सीमन्तोन्नयन संस्कार किया, जो गर्भस्थ बालकके अवयवोंको पुष्ट करनेवाला है। उसके बाद सुखपूर्वक पुत्रका जन्म हो जाय, इसके लिये भी विद्वान् ब्राह्मणने सोष्यन्ती नामक वैदिक कर्म सम्पन्न किया। यह सब होनेके पश्चात् शुभ ग्रह एवं नक्षत्रोंके योगमें शुचिष्मतीके गर्भसे एक चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाला पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सब प्रकारके अरिष्टोंका नाश करनेवाला था। वह अपने अङ्गोंकी प्रभासे सूतिकागृहको प्रकाशित कर रहा था। स्वयं ब्रह्माजीने आकर उस बालकका जातकर्म-संस्कार किया और यह बताया कि इस बालकका नाम गृहपति होगा। विष्णु और महादेवजीके साथ बालकके लिये उचित रक्षा-विधान करके सबके प्रपितामह ब्रह्माजी हंसपर आरूढ़ हो चले गये। चौथे महीनेमें बालकका घरसे बाहर निष्क्रमण हुआ। छठे महीनेमें उसका अन्नप्राशन-संस्कार किया गया और वर्ष पूरा होनेपर चूड़ाकरण। तदनन्तर श्रवण नक्षत्रमें कर्णवेध संस्कार करके ब्रह्मतेजकी वृद्धिके लिये पाँचवें वर्षमें उपनयन-संस्कारपूर्वक उसे यज्ञोपवीत दे दिया गया। उसके बाद श्रावणीमें उपाकर्म करके विद्वान् विश्वानरने उसे वेद पढ़ाना प्रारम्भ किया। तीन ही वर्षमें उस बालकने अङ्ग, पद और क्रमके साथ विधिपूर्वक सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कर लिया। विनय आदि सद्गुणोंको प्रकट करनेवाले उस शक्तिमान् विप्रकुमारने गुरुमुखको साक्षीमात्र बनाकर समस्त विद्याएँ ग्रहण कर लीं।

चाहिये। यही अत्यन्त उग्र तपस्या है, यही सबसे श्रेष्ठ व्रत है और यही सर्वोत्तम धर्म है कि पिता-माताको सन्तुष्ट किया जाय *। विश्वानरकुमार! मेरे पास आओ, मेरी गोदमें बैठो और अपना दाहिना हाथ दिखाओ। तुम्हारे लक्षण कैसे हैं, यह मैं देखूँगा।'

देवर्षि नारदके ऐसा कहनेपर बालक गृहपति पिता-माताकी आज्ञा ले नारदजीको प्रणाम करके भक्तिसे विनीत हो उनके समीप आ बैठा। उसे अच्छी तरह देखनेके बाद नारदजीने कहा—'विप्रवर! तुम्हारा यह पुत्र समूची पृथ्वीका पालन करनेवाला होगा और दिक्पाल पदवी धारण करेगा। इसके पास महान् ऐश्वर्य होगा। इसमें राजा होनेके लक्षण हैं। यह अत्यन्त सुलक्षण बालक है; किंतु सर्वगुण-सम्पन्न, समस्त शुभ लक्षणोंसे लक्षित तथा सम्पूर्ण निर्मल कलाओंसे युक्त होनेपर भी इसे दुर्दैव चन्द्रमाकी भाँति नीचे गिरा सकता है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके तुम्हें अपने इस शिशुकी रक्षा करनी चाहिये। बारहवें वर्षकी अवस्थामें इसको बिजलीकी अग्निसे भय है।' ऐसा कहकर बुद्धिमान् नारदजी जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। नारदजीके चले जानेपर माता-पिताको शोकसे घिरा हुआ देख गृहपतिने मुसकराते हुए कहा—'माता और पिताजी! आपलोगोंको इतना भय क्यों हो रहा है? आप दोनोंके चरणोंकी धूलिसे मेरे शरीरकी रक्षा हो रही है। मुझे काल भी अपना ग्रास नहीं बना सकता, फिर बेचारी बिजली तो बहुत छोटी वस्तु है। [illegible]

अपहरण कर लिया था, उस महाभिमानी जालन्धरको जिन्होंने अपने चरणोंके अङ्गुष्ठकी रेखासे प्रकट हुए चक्रके द्वारा मार डाला था, जो ब्रह्मा आदि देवताओंके एकमात्र उत्पादक हैं और अपनी महिमासे कभी च्युत नहीं होते, उन सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाके लिये चिन्तामणिस्वरूप भगवान् शिवकी शरणमें जाओ।'

माता-पिताकी ऐसी आज्ञा पाकर बालक गृहपति उनके चरणोंमें प्रणाम करके काशीमें गया। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके उसने तीनों लोकोंके प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् विश्वनाथका दर्शन एवं उन्हें प्रणाम किया। विश्वनाथजीका दर्शन करके गृहपतिके हृदयमें बड़ा सन्तोष हुआ। उसने मन-ही-मन कहा—'यह दिव्य शिवस्वरूप वास्तवमें परमानन्द-कन्द है। इस मोक्षदायक मूर्तिमें सम्पूर्ण विश्वका और विश्वके बीजभूत कर्मोंका लय होता है, इसलिये यह 'विश्वनाथ' है। मेरे भाग्यका उदय हुआ था, इसीलिये महर्षि नारदने उस दिन आकर वैसी बात कही थी। इसीसे आज मैं विश्वनाथजी-का दर्शन करके कृतकृत्य हो रहा हूँ।' इस प्रकार आनन्द-सुधारससे पारण-सा करके गृहपतिने अत्यन्त कठोर नियम ग्रहण किये। वह प्रतिदिन गङ्गाके अमृतमय जलसे भरे हुए एक सौ आठ कलशोंके वस्त्रद्वारा छाने हुए जलसे भगवान् शिवको स्नान कराता और उन्हें नीलकमलकी माला समर्पित करता था। वह माला एक हजार आठ पुष्पोंकी बनी हुई होती थी। गृहपति पंद्रह-पंद्रह दिनपर कन्द-मूल-फल भोजन करता था। इस तरह उसने छः मास व्यतीत किये। फिर छः महीनोंतक उसने एक-एक पक्षपर सूखे पत्ते चबाये। छः महीनोंतक उसने जलकी एक-एक बूँदका ही आहार किया और छः महीनोंतक केवल वायुभक्षण किया। इस प्रकार तपस्या करते हुए उस बालकके दो वर्ष व्यतीत हो गये। जन्मसे बारहवें वर्षमें वज्रधारी इन्द्र उसके समीप आये और बोले—'तुम कोई मनोवाञ्छित वर माँगो, मैं उसे दूँगा।'

बालक बोला—इन्द्र! मैं आपको जानता हूँ, किंतु आपसे वर नहीं माँगूँगा। मुझे वर देनेवाले तो भगवान् शङ्कर हैं।

इन्द्रने कहा—बालक! मैं देवताओंका भी देवता हूँ। मुझसे भिन्न दूसरा कोई कल्याणकारी शङ्कर नहीं है। तुम मूर्खता छोड़कर मुझसे वर माँगो

ब्राह्मणबालक बोला—पाकशासन! मैं भगवान् शिवके अतिरिक्त दूसरे किसी देवतासे याचना नहीं कर सकता।

उसकी यह बात सुनकर इन्द्रके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने भयानक वज्र उठाकर उस बालकको भयभीत किया। विद्युत्की सैकड़ों ज्वालाओंसे व्याप्त वज्रको देखकर ब्राह्मणबालकको देवर्षि नारदके वचनका स्मरण हो आया और वह भयसे व्याकुल होकर मूर्छित हो गया। इसी समय अज्ञानान्धकारको दूर करनेवाले गौरीपति भगवान् शङ्कर वहाँ प्रकट हो गये और अपने स्पर्शसे उस बालकमें नवजीवनका सञ्चार-सा करते हुए बोले—'वत्स! तुम्हारा कल्याण हो, उठो, उठो।' उसने रातमें सोये हुएकी भाँति बंद नेत्रकमलोंको खोलकर और उठकर देखा, आगे भगवान् शिव विराजमान हैं। उनका तेज सैकड़ों सूर्योंसे भी

अधिक प्रकाशमान है, मस्तकपर जटाजूट उनकी शोभा बढ़ा रहा है, त्रिशूल और आजगव धनुष (पिनाक) ये दोनों आयुध उनके हाथोंमें सुशोभित हैं। कर्पूरके समान गौर अङ्ग उद्भासित हो रहा है। गुरुजनों और शास्त्रके वचनसे उक्त लक्षणोंद्वारा महादेवजीको पहचानकर गृहपतिके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। वह एक क्षणतक ठगा हुआ-सा खड़ा रहा। स्तुति, नमस्कार अथवा कुछ निवेदन करनेमें भी समर्थ न हुआ। तब भगवान् शङ्कर मुसकराते हुए बोले—'वत्स गृहपते! तुम भयभीत न होओ। इन्द्र-वज्र अथवा काल भी मेरे भक्तका अनिष्ट करनेमें

समर्थ नहीं है । मैंने ही इन्द्रका रूप धरकर तुम्हें डराया था । भद्र ! मैं तुम्हें वर देता हूँ, तुम अग्निपदवीके भागी बनो । तुम सम्पूर्ण देवताओंके मुख होओगे । अग्ने ! तुम समस्त प्राणियोंके भीतर विचरण करो । इन्द्र (पूर्व) और धर्मराज (दक्षिण) के मध्यमें तुम दिक्पाल बनकर रहो और अपना राज्य ग्रहण करो । तुमने जो यह शिवजीकी मूर्ति स्थापित की है, तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगी । अग्नीश्वर नामसे विख्यात वह सब तेजोंको बढ़ानेवाली होगी । सब समृद्धियोंको देनेवाले अग्नीश्वरकी पूजा करके दैववश काशीसे अन्यत्र मरनेवाला पुरुष भी अग्निलोकमें प्रतिष्ठित होगा ।' ऐसा कहकर गृहपति अग्निको दिक्पाल पदपर अभिषिक्त करके भगवान् शङ्कर उसी शिवमूर्तिमें समा गये ।

नैर्ऋत्यलोक तथा वरुणलोकका वर्णन

शिवशर्मा बोले—नारायणस्वरूप भगवत्पार्षदो ! अब आपलोग नैर्ऋत्य आदि लोकोंका क्रमशः वर्णन करें ।

दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—महाभाग ! संयमनीपुरीसे आगे जो निर्ऋति नामक दिक्पालकी पुण्यमयी पुरी है, उसका वर्णन सुनो । उसमें पुण्यजन निवास करते हैं । यद्यपि इसमें राक्षसोंका ही वास है, तथापि वे राक्षस कभी भी दूसरोंसे द्रोह नहीं रखते । वे जातिमात्रसे राक्षस हैं, आचार-व्यवहारसे तो ये पुण्यजन हैं—पुण्यात्मा पुरुष हैं । ये सदा तीर्थ-स्नानपरायण हो प्रतिदिन देवपूजामें तत्पर रहते हैं । अपने नाम-गोत्रका उच्चारण करके ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हैं । दम (मनोनिग्रह), दान, दया, क्षमा, शौच, इन्द्रियनिग्रह, अस्तेय (चोरी न करना), सत्य और अहिंसा—ये सभी प्राणियोंके लिये धर्ममें सहायक हैं । जो मनुष्य जहाँ कहीं भी जन्म लेकर सदा आवश्यक कार्योंके लिये उद्यमशील बने रहते हैं, वे सब प्रकारकी भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न हो इस नैर्ऋत्यलोकमें निवास करते हैं । काशी छोड़कर अन्य उत्तम तीर्थोंमें मरे हुए म्लेच्छकोटिके लोग यदि आत्मघाती न हों, तो वे इस लोकमें भोगसम्पन्न होकर निवास करते हैं । जो कोई अन्त्यज भी दयाधर्मका अनुसरण करनेवाले और परोपकारपरायण होते हैं, वे इस लोकमें

वरोहियोंको विश्राम देता, भूखोंको भोजन देकर उनकी भूख मिटाता और नंगे पाँववाले मनुष्योंको जूता देता था । जिनके पास वस्त्र नहीं होता, उन्हें कोमल मृगचर्म देता और दुर्गम मार्ग एवं निर्जन प्रान्तरमें वह पथिकोंके पीछे-पीछे जाकर उन्हें अभीष्ट स्थानपर पहुँचा आता था । उनके देनेपर भी उनसे कभी धन नहीं लेना चाहता और सबको अभयदान करता था । पिङ्गाक्षके रहनेसे विन्ध्याचलका वह भयानक वन नगर-सा हो गया था । उसके डरसे कोई भी राह चलनेवालोंकी रोक-टोक नहीं करता था ।

पिङ्गाक्षके घरके समीप ही एक दूसरे गाँवमें उसका चाचा निवास करता था । एक दिन उसने गेरुए वस्त्र धारण करनेवाले तीर्थयात्रियोंके समूहका बड़ा भारी कोलाहल सुना । उन यात्रियोंके पास बहुत धन था । वह नीच व्याध उस धनके लोभसे उन्हें मार डालनेको उद्यत हो गया और आगे जाकर बहुत छिपे हुए उसने उस मार्गको घेर लिया । उस समय पिङ्गाक्ष भी शिकार खेलनेके लिये उस जंगलमें गया था और रातमें उसी मार्गके समीप टिका हुआ था । यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विश्वनाथसे सुरक्षित होकर कुशलपूर्वक रहता है । अतः विद्वान् पुरुष कभी किसी भी जीवका अनिष्टचिन्तन न करे । होगा वही जो विधाताने

ओरसे आवाज आयी—'योद्धाओ ! सबको मार डालो, नीचे गिरा दो और नंगे करके तलाशी लो ।' दूसरी ओरसे करुणाभरी पुकार सुनायी पड़ी—'सिपाहियो ! मत मारो, रक्षा करो; हम तीर्थयात्री हैं। हमारे पास जो कुछ है, उसे बिना परिश्रमके लूट लो और ले जाओ। हम अनाथ बटोही हैं, भगवान् विश्वनाथके उपासक हैं और उन्हींसे सनाथ हैं। पिङ्गाक्षके विश्वाससे हम सदा इस मार्गपर निर्भय होकर आया-जाया करते हैं, किंतु आज वह भी यहाँसे बहुत दूर है।'

तीर्थयात्रियोंकी यह बात सुनकर पिङ्गाक्ष दूरसे ही 'मत डरो, मत डरो' की रट लगाता हुआ सहसा वहाँ आ पहुँचा और बोला—'यह कौन दुराचारी है, जो मुझ पिङ्गाक्षके जीते-जी मेरे प्राणोंके समान प्यारे पथिकोंको लूटना चाहता है।' उसका यह वचन सुनकर उसके पापी पितृव्य ताराक्षने क्रोधपूर्वक अपने सेवकोंको आज्ञा दी—'पहले इसीको मार डालो, उसके बाद इन साधु यात्रियोंको लूटना।' यह सुनकर वे सभी दुराचारी भील मिलकर अकेले पिङ्गाक्षके साथ युद्ध करने लगे। किसी-किसी तरह उन सबका सामना करता हुआ पिङ्गाक्ष यात्रियोंको अपने घरके समीपतक ले गया। इसी बीचमें विरोधियोंके बाणोंसे उसके धनुष-बाण और कवच सभी कट गये। वे यात्री भी निर्भय होकर उसकी बस्तीमें पहुँच गये और उसने दूसरोंकी रक्षाके लिये लड़ते-लड़ते प्राण त्याग दिये। मरते समय उसके मनमें यह अभिलाषा थी कि यदि मैं समर्थ होता तो इन सबको मार गिराता। अन्तकालमें जैसी मति होती है, उसके अनुरूप ही गति होती है। अतः वह नैर्ऋत्यलोकमें राक्षसोंका राजा एवं दिक्पाल हुआ। इस प्रकार हम दोनोंने तुम्हें निर्ऋतिके स्वरूपका परिचय दिया है।

नैर्ऋत्यपुरीसे उत्तर दिशामें वह वरुणदेवका अद्भुत लोक है। जो लोग न्यायोपार्जित धनसे कुआँ-बावली और तालाब बनवाते हैं, वे वरुणलोकमें वरुणके ही समान कान्तिमान् होकर सम्मानपूर्वक निवास करते हैं। जो निर्जल प्रदेशमें जल देते, दूसरोंके सन्ताप दूर करते और याचकोंको विचित्र छाता एवं कमण्डलु देते हैं, जो नाना प्रकारकी खान-पानकी सामग्रियोंसे युक्त पौंसला बनवाते, सुगन्धित जलसे भरे हुए धर्मघट दान करते, जो पीपलके वृक्षको सींचते और मार्गमें वृक्ष लगाते हैं, यात्रियोंके ठहरनेके लिये धर्मशालाएँ बनवाते, थके-माँदे पथिकोंका कष्ट दूर करते, गरमीमें मोरपंख आदिके बने हुए पंखे बाँटते और यात्रियोंका पसीना दूर करते हैं तथा जो पुण्यात्मा मानव दुराचारी मनुष्योंद्वारा गलेमें फाँसी लगाये हुए जीवोंको बन्धनसे मुक्त करते हैं, वे निर्भय होकर वरुण देवताके इस लोकमें निवास करते हैं। ये वरुणदेव ही सम्पूर्ण जलाशयों तथा जलजन्तुओंके एकमात्र स्वामी और सब कर्मोंके साक्षी हैं। इस प्रकार यह वरुणलोकका स्वरूप बताया गया है। इस प्रसङ्गको सुनकर मनुष्य कहीं भी दुर्मृत्युके कष्टसे पीड़ित नहीं होता है।

वायु, कुबेर, ईशान और चन्द्रमाके लोकोंकी स्थितिका वर्णन

भगवान्‌के दोनों पार्षद कहते हैं—ब्रह्मन् ! वरुणकी पुरीसे उत्तर भागमें इस पुण्यमयी पुरीको देखो। यह वायुदेवकी गन्धवती नामवाली नगरी है। इसमें सम्पूर्ण जगत्‌के प्राणस्वरूप प्रभञ्जन (वायु) नामक दिक्पाल निवास करते हैं। इन्होंने महादेवजीकी आराधना करके दिक्पालका पद प्राप्त किया है। पहलेकी बात है। कश्यपजीके पुत्र पूतात्माने महादेवजीकी राजधानी काशीपुरीमें दस लाख वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। उन्होंने वहाँ पवनेश्वर नामक परम पवित्र महान् शिवजीके स्वरूपकी स्थापना की, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्यका अन्तःकरण परम पवित्र हो जाता है और वह पापकी केंचुल त्यागकर वायुदेवके पवित्र नगरमें निवास करता है। तदनन्तर पूतात्माकी घोर तपस्यासे प्रसन्न हो तपका फल देनेवाले ज्योतिस्वरूप भगवान् महेश्वर उस मूर्तिसे प्रकट हुए और बोले—'सुव्रत ! उठो, उठो। मनोवाञ्छित वर माँगो।'

पूतात्मा बोला—देवाधिदेव महादेव ! आप देवताओंको अभयदान देनेवाले हैं। प्रभो ! वेद भी नेति-नेति कहते हुए आपके सम्बन्धमें यह नहीं जानते कि आपका स्वरूप कैसा है ! फिर मेरे-जैसा मनुष्य आपकी स्तुति करनेमें कैसे समर्थ हो सकता है ! योगी भी आपके तत्त्वको वास्तवमें नहीं उपलब्ध कर पाते। आप एक होकर भी शिव और शक्तिके भेदसे दो स्वरूपोंमें अभिव्यक्त हुए हैं। आप ज्ञानस्वरूप भगवान् हैं और आपकी इच्छा ही शक्तिस्वरूपा है। शिव और शक्तिरूप आप दोनोंके द्वारा लीलापूर्वक क्रियाशक्ति उत्पन्न की गयी है, जिसके द्वारा इस सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि

की गयी है। आप ज्ञानशक्ति महेश्वर हैं और उमादेवी इच्छाशक्ति मानी गयी हैं। यह सम्पूर्ण जगत् क्रियाशक्तिमय है और आप इसके कारण हैं। नाथ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।

पूतात्माके ऐसा कहनेपर सर्वशक्तिमान् देवेश्वर शिवने उन्हें अपना स्वरूप प्रदान किया और दिक्पालके पदपर प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् इस प्रकार कहा—'तुम सब तत्त्वोंके ज्ञाता और सबकी आयुरूप होओगे। जो मनुष्य तुम्हारे द्वारा स्थापित की हुई मेरी इस दिव्य मूर्तिका यहाँ दर्शन करेंगे, वे तुम्हारे लोकमें सब भोगोंसे सम्पन्न हो सुखके भागी होंगे।' इस प्रकार वरदान देकर महादेवजी उस मूर्तिमें विलीन हो गये।

ब्रह्मन्! गन्धवतीपुरीके स्वरूपका निरूपण किया गया। उसके पूर्वभागमें शोभामयी कुबेरकी अलकापुरी है। इसके स्वामी कुबेर अपने भक्तिभावके प्रभावसे भगवान् शिवके सखा हो गये हैं। शिवकी पूजाके बलसे वे पद्म आदि नव-निधियोंके दाता और भोक्ता हैं।

अलकापुरीके पूर्वभागमें भगवान् शङ्करकी ईशानपुरी है, जो महान् अभ्युदयसे सदा सुशोभित है। उसके भीतर भगवान् शङ्करके तपस्वी भक्त निवास करते हैं। जो भगवान् शिवके चिन्तनमें संलग्न रहते, शिवसम्बन्धी व्रतोंका पालन करते, अपने समस्त कर्म भगवान् शिवको अर्पित कर देते और सदा शिवकी पूजामें तत्पर रहते तथा जो स्वर्गभोगकी अभिलाषा लेकर भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये तप करते हैं, वे सब मानव रुद्ररूप धारण करके इस परम रमणीय रुद्रपुरीमें निवास करते हैं। इस पुरीमें अजैकपात् और अहिर्बुध्न्य आदि ग्यारह रुद्र अधिपतिरूपसे हाथमें त्रिशूल लिये विराजमान रहते हैं। ये देवद्रोहियोंसे आठ पुरियोंकी रक्षा करते और शिवभक्तोंको सदैव वर देते हैं। इन्होंने भी काशीपुरीमें जाकर शुभदायक ईशानेश्वरकी स्थापना करके

दोनों पार्षदोंने कहा—महाभाग! यह चन्द्रमाका लोक है, जिसकी अमृतकी वर्षा करनेवाली किरणोंसे यह सम्पूर्ण जगत् परिपुष्ट होता है। चन्द्रमाके पिता महर्षि अत्रि हैं, जो पूर्वकालमें प्रजासर्गकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्माजीके मनसे प्रकट हुए थे। हमने सुना है, मुनिवर अत्रिने प्राचीन कालमें तीन हजार दिव्य वर्षोंतक लोकोत्तर तपस्या की है। उन्हींके पुत्र चन्द्रमा हैं। स्वयं ब्रह्माजीने उनका पालन-पोषण किया है। तेज प्राप्त करके भगवान् चन्द्रमाने बहुत वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। परम पावन अविमुक्त क्षेत्र (काशीधाम) में जाकर अपने नामसे उन्होंने चन्द्रेश्वर नामक मूर्तिकी स्थापना की। इससे वे पिनाकधारी देवाधिदेव श्रीविश्वनाथजी-की कृपासे बीज, ओषधि, जल और ब्राह्मणोंके राजा हुए। वहाँ उन्होंने अमृतोद नामसे प्रसिद्ध कूपका निर्माण कराया, जिसके जलको पीने और जिसमें स्नान करनेसे मनुष्य अज्ञानसे मुक्त हो जाता है। देवदेव महादेवने प्रसन्न होकर जगत्को जीवन प्रदान करनेवाली चन्द्रमाकी एक उत्तम कलाको लेकर अपने मस्तकपर धारण किया। तत्पश्चात् दक्षके शापसे मासकी समाप्तिपर अमावास्या तिथिको क्षीण होनेपर भी केवल उसी कलाके द्वारा पुनः वे वृद्धि एवं पुष्टिको प्राप्त होते हैं।

जब सोमवारको अमावास्या तिथि हो, तब सज्जन पुरुषोंको आदरपूर्वक चतुर्दशी तिथिमें उपवास करना चाहिये। नित्यकर्म करके त्रयोदशी तिथिमें शनिप्रदोषयोगमें चन्द्रेश्वरलिङ्गका पूजन करके त्रयोदशीमें नक्त व्रत करे और उसीमें नियम ग्रहण करके चतुर्दशीको उपवास एवं रात्रि-जागरण करे। प्रातःकाल सोमवती अमावास्याके योगमें चन्द्रोदतीर्थके जलसे स्नान करे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक सन्ध्योपासना करके तर्पण आदि कर्म करे। फिर चन्द्रोदतीर्थके समीप ही शास्त्रोक्त विधिके अनुसार श्राद्ध करे। आवाहन और अर्घ्यदान कर्मके बिना ही यत्नपूर्वक पिण्डदान दे। वसु, रुद्र और आदित्य-स्वरूप पिता, पितामह और प्रपितामहको क्रमशः पिण्ड देकर

चाहिये। यह यात्रा इस क्षेत्रके निवासमें आनेवाले विघ्नका निवारण करनेवाली है। काशीसे अन्यत्र निवास करनेवाला पुरुष भी यदि यहाँ आकर चन्द्रेश्वरकी भलीभाँति पूजा कर ले तो वह पापराशिका भेदन करके चन्द्रलोकको प्राप्त होगा। सोमवारका व्रत करनेवाले और सोमयागमें सोमरस पीनेवाले मनुष्य चन्द्रमाके समान प्रकाशमान विमानद्वारा जाकर सोमलोकमें ही निवास करते हैं।

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये! भगवान्‌के दोनों दिव्य पार्षद उस दिव्य मार्गमें शिवशर्माको यह कल्याणकारिणी कथा सुनाते हुए परम उज्ज्वल नक्षत्रलोकमें जा पहुँचे।

बुधलोक और शुक्रलोककी स्थिति, बुध और शुक्रके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति और वरदान-प्राप्ति

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर शिवशर्माको बुधका लोक दृष्टिगोचर हुआ। तब उन्होंने पूछा—'भगवत्पार्षदो! यह अनुपम लोक किसका है?'

भगवान्‌के पार्षदोंने कहा—शिवशर्मन्! यह चन्द्रमाके पुत्र बुधका लोक है। बुध अपने पिता चन्द्रदेवकी आज्ञा लेकर काशीपुरीमें गये। वहाँ उन्होंने अपने नामसे बुधेश्वरको स्थापित किया और हृदयमें भगवान् शिवका ध्यान करते हुए दस हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। तब सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी विश्वभावन भगवान् विश्वनाथ बुधेश्वर नामसे प्रकट हुए। उनका स्वरूप ज्योतिर्मय था। वे प्रसन्नचित्त होकर बोले—'बुध! तुम वर माँगो।'

बुध बोले—पूतात्मा वायुरूप! आपको नमस्कार है (अथवा पवित्र अन्तःकरणवाले आप परमेश्वरको नमस्कार है)। ज्योतिःस्वरूप महेश्वर! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्व आपका ही स्वरूप है, आपको नमस्कार है। आप रूपसे अतीत, निराकार हैं, आपको नमस्कार है। सबकी पीड़ाओंका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। शरणागतोंके लिये कल्याणरूप आपको नमस्कार है। आप सबके ज्ञाता और सर्वस्रष्टा हैं, आपको नमस्कार है। आप परम दयालु हैं, आपको नमस्कार है। भक्तिभावसे आप प्राप्त होने योग्य हैं, आपको नमस्कार है। आप तपस्याओंका फल देनेवाले और तपःस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। शम्भो! शिव! शिवाकान्त! शान्त! श्रीकण्ठ! शूलपाणे! चन्द्रशेखर! सर्वेश! शङ्कर! ईश्वर! धूर्जटे! पिनाकपाणे! गिरीश! शितिकण्ठ! सदाशिव! महादेव! आपको नमस्कार है। देवदेव! आपको नमस्कार है। स्तुतिप्रिय महेश्वर! मैं स्तुति करना नहीं जानता। आपके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी निश्चल भक्ति हो।

उनकी स्तुतिसे प्रसन्न हो भगवान् महेश्वर बोले—महाभाग! तुम्हारा स्थान नक्षत्रलोकसे ऊपर होगा और तुम समस्त ग्रहोंमें अधिक सम्मान प्राप्त करोगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित की हुई यह मेरी मूर्ति सबको बुद्धि देनेवाली, दुर्बुद्धि हरनेवाली और तुम्हारे लोकमें निवास देनेवाली है। ऐसा कहकर भगवान् शङ्कर वहीं अन्तर्धान हो गये। महादेवजीका प्रसाद प्राप्त करके बुध पुनः स्वर्गलोकमें लौट आये।

काशीमें बुधेश्वरकी पूजासे उत्तम बुद्धि पाकर मनुष्य अगाध संसारसागरमें प्रवेश करते हुए डूब नहीं सकता और अन्तमें वह बुधलोकमें निवास करता है। चन्द्रेश्वरके पूर्वभागमें बुधेश्वरका दर्शन करके मनुष्य मृत्युकालमें भी कभी बुद्धिसे हीन नहीं होता।

महामते शिवशर्मन्! बुधलोकसे ऊपर यह परम अद्भुत शुक्रलोक है। यहाँ दानवों और दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य निवास करते हैं, जिन्होंने सहस्र वर्षोंतक तपस्या करके महादेवजीसे *मृत्युसञ्जीवनी नामवाली महाविद्या प्राप्त की थी।* इस दुर्लभ विद्याको देवगुरु बृहस्पति भी नहीं जानते। भृगुवंशी शुक्रने अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज—इन चार प्रकारके प्राणियोंको मुक्ति प्रदान करनेवाली काशीपुरीमें जाकर एक शिवमूर्तिको स्थापित किया और बिल्वपत्र आदि सहस्रों प्रकारके पत्तों और पुष्पोंसे उसका भलीभाँति पूजन किया। चन्दन और यक्षकर्दमसे लेपन किया। सुगन्धित उबटन लगाया, नृत्य और गीतसे भी भगवान्‌को रिझाया तथा भाँति-भाँतिकी भेंट-सामग्री समर्पित करके सहस्रनाम आदि स्तोत्रोंसे भगवान् शङ्करका स्तवन किया। इस प्रकार पाँच हजार वर्षोंतक शुक्राचार्यने भगवान् शिवकी भलीभाँति आराधना की। तत्पश्चात् इन्द्रियोंसहित चित्तके चाञ्चल्य (विक्षेप) रूपी महान् मलको ध्यानरूपी जलसे धोकर अपने निर्मल किये हुए चित्तरत्नको उन्होंने पिनाकपाणि भगवान् शिवकी सेवामें समर्पित कर दिया। तब भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो सहस्रों सूर्योंसे भी अधिक तेजस्वी रूप धारण कर उस मूर्तिसे प्रकट हुए और बोले—'भृगुनन्दन! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो।'

भगवान् शङ्करका वचन सुनकर शुक्राचार्यने दोनों हाथ

जोड़ जय-जयकार करते हुए उनका इस प्रकार स्तवन किया। 'सूर्यस्वरूप जगदीश्वर! आप अपनी प्रभासे निशाचरोंको प्रिय लगनेवाले अन्धकारको तिरस्कृत करके उसे सर्वथा विलुप्त कर देते और तीनों लोकोंके हितके लिये आकाशमें देदीप्यमान होते हैं, अतः आपको नमस्कार है। हे चन्द्रस्वरूप शिव! आप अमृतमयी किरणोंसे परिपूर्ण हैं, समस्त अन्धकारको दूर भगानेवाले और परम सुन्दर हैं। आप संसारमें निरन्तर असीम एवं महान् प्रकाश फैलाकर कुमुद पुष्पोंको प्रमोद देते तथा संसारके प्राणियोंके लिये आनन्दका समुद्र उड़ेल देते हैं। इतना ही नहीं, आप समुद्रको भी आनन्दसे परिपूर्ण करते हैं, अतः आपको नमस्कार है। हे वायुरूप परमेश्वर! आप नम्रता एवं विनयसे रहित चराचर जगत्को भग्न करनेवाले हैं, सब जीवोंको अपनी प्राणशक्ति देकर बढ़ानेवाले हैं, वायु-भक्षी सर्पोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं, सर्वव्यापी! आप सदा

और आध्यात्मिक जगत् कभी जीवित रह सकता है! कदापि नहीं। आपको किया हुआ नमस्कार प्रतिक्षण शान्ति देनेवाला होता है। जलस्वरूप परमेश्वर! आप सम्पूर्ण जगत्में परम पवित्र हैं, आपका उत्तम चरित्र परम विचित्र है। हे विश्वनाथ! आप इस विचित्र जगत्को जलपान और स्नानकी सुविधा देकर निश्चय ही बाहर-भीतरसे पवित्र एवं निर्मल कर देते हैं, अतः आपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे आकाशस्वरूप महादेव! हे ईश्वर! आपके द्वारा बाहर और भीतरसे अवकाश मिलनेके कारण यह सम्पूर्ण विश्व नित्य विकसित होता रहता है। सदा सबपर दया रखनेवाले प्रभो! आपसे ही यह जगत् जीवन धारण करता है और आपमें ही स्वभावतः इसका लय होता है, अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे पृथ्वीरूप परमेश्वर! हे विभो! हे विश्वनाथ! हे अज्ञाना-न्धकारका नाश करनेवाले शिव! इस सम्पूर्ण विश्वको यहाँ आपके सिवा दूसरा कौन धारण करता है! गिरिराज-नन्दिनी उमा और नागराज वासुकि आपके आभूषण हैं, आप परात्पर हैं। शान्ति, क्षमा आदि गुणोंसे विभूषित देवताओंमें आपसे बढ़कर दूसरा कोई स्तवन करने योग्य नहीं है। अथवा शम, दम आदि साधनोंसे सम्पन्न संत-महात्माओंके द्वारा स्तवन करने योग्य आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे आत्मस्वरूप शिव! हे अज्ञानका अपहरण करनेवाले हर!

दोनों हाथोंसे पकड़कर उठाया और इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन् ! मेरे द्वारा तपोबलसे प्रकट की हुई जो मेरी मृतसञ्जीवनी नामक निर्मल विद्या है, उस मन्त्ररूपा विद्याका ज्ञान आज मैं तुम्हें कराऊँगा। उस विद्याके लिये तुम्हारी यता है। तुम जिस-जिस व्यक्तिके लिये इस विद्याका करोगे, वह-वह निश्चय ही जीवित हो उठेगा। आशमें तुम्हारा तेज सब नक्षत्रोंसे भी अधिक प्रकाशित ा। तुम ग्रहोंमें श्रेष्ठ माने जाओगे। तुम्हारे उदय पर ही विवाह आदि शुभ एवं धार्मिक कार्य सफल । तुम्हारे द्वारा स्थापित किये हुए इस शुक्रेश्वरका मनुष्य पूजन करेंगे, उन्हें सिद्धि प्राप्त होगी। जो एक तक प्रति शुक्रवारको केवल रात्रिमें भोजन करनेका नियम लेंगे और तुम्हारे दिनमें शुक्रकूपमें स्नान करके तर्पण आदि कर्म करनेके पश्चात् शुक्रेश्वरकी पूजा करेंगे, वे मनुष्य अधिक वीर्यवान्, पुत्रवान्, सौभाग्यशाली एवं सुखी होंगे।' यह वरदान देकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये।

जो शुक्रेश्वरके भक्त होते हैं, वे शुक्रलोकमें निवास करते हैं। शुक्रेश्वर विश्वनाथके दक्षिण भागमें है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य शुक्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। महामते! इस प्रकार तुम्हें शुक्रलोककी स्थिति बतायी गयी।

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये! इस प्रकार शुक्रलोककी कथा सुनते हुए शिवशर्माने अपने समीप मङ्गललोकको देखा।

मङ्गल, बृहस्पति और शनिके लोकोंकी स्थिति

शिवशर्माने पूछा—यह किसका लोक है ?

भगवत्पार्षदोंने कहा—शिवशर्मन्! यह मङ्गलका लोक है। मङ्गलकी उत्पत्ति पृथ्वीसे हुई है, पृथ्वीने ही उनका स्नेहपूर्वक पालन-पोषण किया है। जगत्का हित करनेवाली असी और वरणा नामक दो ायमान नदियाँ उत्तरवाहिनी गङ्गासे मिली हैं, जहाँ को प्राप्त हुए देहधारी जीव भगवान् विश्वनाथका महान् ग्रह प्राप्त करके अमृतमय ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं, उस ीपुरीमें जाकर मङ्गलने अपने नामसे अङ्गारकेश्वरको पित किया और वहाँ वे तबतक तपस्या करते रहे जबकि उनके शरीरसे प्रज्वलित अङ्गारके समान तेज निकला। अङ्गारके समान तेज प्रकट होनेसे वे सब ोंमें अङ्गारक नामसे विख्यात हुए। तदनन्तर उनसे ष्ट हुए महादेवजीने उन्हें महान् ग्रहका पद प्रदान किया। मनुष्य अङ्गारकचतुर्थीको उत्तरवाहिनी गङ्गाके जलमें करके अङ्गारकेश्वरकी पूजा और उन्हें नमस्कार करेंगे, कभी कहीं भी ग्रहजनित पीड़ा नहीं होगी।

अगस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार सुन्दर एवं मयी कथा कहते हुए भगवत्पार्षदोंको देवगुरु बृहस्पतिकी दृष्टिगोचर हुई।

शिवशर्माने पूछा—यह किसकी पुरी है ?

भगवत्पार्षदोंने कहा—सखे! प्रजापति अङ्गिराके देवपूज्य बृहस्पति हुए। वे अपनी बुद्धिसे देवताओं और विद्वानोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। शान्त और जितेन्द्रिय हैं, उन्होंने क्रोधको जीत लिया है। उनकी वाणी मधुर और अन्तःकरण निर्मल है। वे वेदों और वेदार्थोंके तत्त्वज्ञ, समस्त कलाओंमें कुशल, निर्मल, समस्त शास्त्रोंमें पारङ्गत तथा नीतिविद्याके विशेषज्ञ हैं। वे हितका उपदेश करनेवाले, हितकारक, रूपवान्, सुशील, गुणवान्, देश-कालको जाननेवाले, समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और गुरुजनोंके प्रति भक्ति रखनेवाले हैं। उन्होंने काशीमें तपस्वीजनोंकी वृत्तिका आश्रय लेकर और शिवजीकी मूर्तिकी स्थापना करके बड़ी भारी तपस्या की। तब भगवान् शिव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले—'बृहस्पते! वर माँगो।' भगवान् शङ्करको अपने सामने उपस्थित देख बृहस्पतिजी हर्षमें भर गये और इस प्रकार स्तुति करने लगे—'चन्द्रमाके समान गौर कान्तिवाले, शान्तस्वरूप शङ्कर! आपकी जय हो। आप रुचिके अनुकूल मनोहर पदार्थों एवं चारों पुरुषार्थोंको देनेवाले हैं। सर्वस्वरूप, सब कुछ देनेवाले तथा नित्य शुद्ध हैं। पवित्र भक्तोंद्वारा शुद्धभावसे दी हुई महती उपहार-सामग्रीको ग्रहण करते हैं। भक्तजनोंपर आयी हुई घोर सन्ताप-परम्पराका आप नाश करनेवाले हैं। आपने सबके हृदयाकाशको व्याप्त कर रक्खा है। प्रणतजनोंको आप मनोवाञ्छित वर देनेवाले हैं। शरणागत भक्तोंके पापरूपी महान् वनको जलानेके लिये दावानलस्वरूप हैं। अपने शरीरसे भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करते रहते हैं। आपका श्रीअङ्ग परम सुन्दर है। आप कामदेवके बाणोंको

सुख देनेवाले हैं । धैर्यनिधे ! आपकी जय हो । आप मृत्यु आदि विकारोंसे सर्वथा रहित हैं तथा अपने चरणोंमें प्रणाम करनेवाले भक्तजनोंको भी मृत्यु आदि विकारोंसे रहित कर देते हैं । पुण्यात्मा पुरुषोंका मनोरथ पूर्ण करते और सर्पोंको आभूषणरूपमें धारण करते हैं । आपका वामाङ्ग भाग गिरिराजनन्दिनी उमासे व्याप्त है । आपने अपने सर्व-व्यापी स्वरूपसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रक्खा है । तीनों लोक आपके ही स्वरूप हैं, फिर भी आप इन सभी रूपोंसे परे हैं । आपकी दृष्टि बड़ी सुन्दर है । आप अपने नेत्रोंके खोलने-मीचनेसे जगत्की सृष्टि और प्रलय करनेवाले हैं । आपने ही अग्निदेवको प्रकट किया है । जगत्को उत्पन्न करनेवाले भूतनाथ ! एकमात्र आप ही प्रमथगणोंके पालक और स्वामी हैं । अपनी शरणमें आये हुए पतितजनोंपर भी आप अपना वरद हस्त फैलाते रहते हैं । आप सम्पूर्ण भूतलमें फैले हुए आवरणका निवारण करनेवाले तथा प्रणवनाद-रूपी सुधाधौलिगृहमें निवास करनेवाले हैं । आपने चन्द्रमाको अपने ललाटमें धारण कर रक्खा है । गिरिराजकुमारी पार्वती-के द्वारा सर्वथा सन्तुष्ट रहनेवाले शिव ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । शिव ! देव ! गिरीश ! महेश ! विभो ! आप वैभव प्रदान करनेवाले और कैलास पर्वतपर सोनेवाले हैं । पार्वती-वल्लभ ! आप सबको सुख देनेवाले हैं । चन्द्रधर ! आप भक्तिका विघात करनेवाले दुष्टोंको कठोर दण्ड देनेवाले हैं । तीनों लोकोंको सुखी बनाइये । सबकी पीड़ा हरनेवाले महादेव ! मैं कालसे भी नहीं डरता । अमोघमते ! आप शीघ्र मेरी पापराशिका विनाश कीजिये । शिवके चरणारविन्दोंमें नमस्कार करनेके सिवा दूसरी किसी विचारधाराको मैं जीवोंके लिये कल्याणकारी नहीं मानता, अतः आपके चरणोंमें ही मस्तक झुकाता हूँ । इस सम्पूर्ण विशाल जगत्में भगवान् शिवको सन्तुष्ट करना ही सब पापोंका नाशक तथा परम गुणकारी है । हे ईश ! आप त्रिगुणमय प्रपञ्चसे अतीत, नागराज वासुकिका महान् कंगन धारण करनेवाले तथा प्रलयकालमें सबका विनाश करनेवाले हैं, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।'

इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके बृहस्पतिजी मौन हो गये । इस स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर महादेवजीने कहा—'ब्रह्मन् ! तुमने बृहत् तप किया है, इसलिये बृहत् अर्थात् बड़े-बड़े देवताओंके पति (पालक) बने रहो । तुम ग्रहों-में बृहस्पति नामसे पूजित होओ । तीन वर्षोंतक तीनों समय इस स्तोत्रका पाठ करनेसे जिस पुरुषके प्रति सरस्वती उदित हों, उसकी वाणी संस्कृत होगी * । इस स्तोत्रके पाठसे किसीकी दुराचारमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती । तुम्हारे द्वारा स्थापित की हुई इस मूर्तिकी पूजा करके इस स्तोत्रका पाठ करनेवाला पुरुष मनोवाञ्छित फल प्राप्त करेगा । तुम्हारे द्वारा स्थापित यह मूर्ति काशीमें बृहस्पतीश्वरके नामसे विख्यात होगी । बृहस्पतिवार और पुष्य नक्षत्रके योगमें इसकी पूजा करके मनुष्य जो कार्य प्रारम्भ करेंगे, उसमें उन्हें सिद्धि प्राप्त होगी । चन्द्रेश्वरके दक्षिण और वीरेश्वरसे नैर्ऋत्यकोणमें स्थित बृहस्पतीश्वरका पूजन करके मनुष्य बृहस्पतिलोकमें सम्मानित होगा ।'

अगस्त्यजी कहते हैं—लोपामुद्रे ! बृहस्पतिलोकके ऊपर जाकर शिवशर्माने शनिका लोक देखा और उसके विषयमें प्रश्न किया । तब दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—'ब्रह्मन् ! यह सूर्यके पुत्र शनिकी पुरी है । भगवान् सूर्यसे सवर्णाके गर्भसे शनैश्चरकी उत्पत्ति हुई । शनैश्चरने देववन्दित काशीपुरीमें जाकर शिवलिङ्ग स्थापित किया और उसके समीप बड़ी भारी तपस्या करके शिवपूजनके प्रभावसे इस शनिलोकको तथा ग्रहकी पदवीको प्राप्त किया । काशीमें परम सुन्दर शनैश्चरेश्वरका दर्शन करके शनिवारको उनकी पूजा करनेसे शनैश्चरकी बाधा नहीं होती है । विश्वनाथ-जीसे दक्षिण और शुक्रेश्वरसे उत्तर भागमें शनैश्चरेश्वरकी पूजा करके मनुष्य इस शनिलोकमें आनन्दका भागी होता है ।'

सप्तर्षिलोक और ध्रुवलोककी स्थिति, ध्रुवकी तपस्या और वरदान-प्राप्ति

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर शिवशर्माने सप्तर्षि-मण्डलको अपने नेत्रोंसे देखा और पूछा—'यह अनुपम तेजोमय शुभ लोक किसका है ?'

दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन् ! इस लोकमें सदा निर्मल अन्तःकरणवाले सप्तर्षि निवास करते हैं । ब्रह्माजीके द्वारा सृष्टिकार्यमें नियुक्त होकर वे यहीं रहते हैं । मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अङ्गिरा और महाभाग वसिष्ठ—ये ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं । पुराणोंमें

* अस्य स्तोत्रस्य पठनादपि यामुद्दिश्य नरम् । तस्य स्यात्संस्कृता वाणी त्रिभिर्वर्षैस्त्रिकालतः ॥

(स्क० पु० का० पू० १७ । ४६)

ये सात ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं। सम्भूति, अनसूया, क्षमा, प्रीति, सन्नति, स्मृति और अरुन्धती—ये क्रमशः इन सात ऋषियोंकी पत्नियाँ हैं, जो लोकमाता कही गयी हैं। इन सप्तर्षियोंने काशीक्षेत्रमें जाकर अपने-अपने नामसे एक-एक शिव-मूर्ति स्थापित की और शिवमें बड़ी भक्ति रखकर अत्यन्त कठोर तपस्या प्रारम्भ की। इनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर भगवान् शङ्करने इन्हें प्रजापतिका पद दिया। जो लोग प्रयत्नपूर्वक काशीमें अत्रीश्वर आदि शिव-मूर्तियोंका दर्शन करते हैं, वे उज्ज्वल तेजसे सम्पन्न हो इस प्राजापत्य-लोकमें निवास करते हैं। अत्रीश्वर लिङ्ग गोकर्णेश्वरकुण्डके पश्चिम तटपर प्रतिष्ठित है। कर्कोटककुण्डके ईशानकोणमें मरीचिकुण्ड है। वहीं मरीचीश्वर-संज्ञक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। पुलहेश्वर और पुलस्त्येश्वर लिङ्ग स्वर्गद्वारके पश्चिम भागमें हैं। आङ्गिरसेश्वर लिङ्ग हरिकेश वनमें स्थित है। वशिष्ठेश्वर लिङ्ग वरणा नदीके रमणीय तटपर है। क्रत्वीश्वर लिङ्ग भी वहीं है। शुभकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंद्वारा काशीतीर्थमें सेवित होनेपर ये सातों लिङ्ग इहलोक और परलोकमें मनोवाञ्छित फल देते हैं। इस सप्तर्षिलोकमें महापुण्यमयी पतिव्रता एवं परम सुन्दरी वशिष्ठपत्नी अरुन्धती रहती हैं, जिनके स्मरण करनेमात्रसे मनुष्य गङ्गास्नानका फल पाता है। भगवान् नारायण अरुन्धतीके पातिव्रत्यसे सन्तुष्ट होकर लक्ष्मीजीके सामने प्रसन्नतापूर्वक उनकी चर्चा किया करते हैं और कहते हैं—'कमले! पतिव्रताओंमें अरुन्धती-का अन्तःकरण जैसा शुद्ध है, वैसा कहीं किसीका भी नहीं है। वैसा रूप, वैसा शील-स्वभाव, वैसी कुलीनता, वह कला-कौशल, वह पतिसेवापरायणता, वह माधुर्य, वह गम्भीरता और वह गुरुजनोंको सन्तुष्ट रखनेका भाव जैसा अरुन्धती देवीमें है, वैसा अन्य स्त्रियोंमें कहीं नहीं है। जो वार्तालापके प्रसङ्गमें अरुन्धतीका नाम भी लेती हैं, वे युवतियाँ संसारमें धन्य हैं, सौभाग्यवती हैं और शुद्ध चित्तवाली हैं।

तदनन्तर शिवशर्माके समक्ष ध्रुवलोक प्राप्त हुआ। उसे देखकर उन्होंने पूछा—'भगवत्पार्षदो! यह कौन लोक है?'

भगवत्पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! स्वायम्भुव मनुके एक पुत्रका नाम उत्तानपाद था। राजा उत्तानपादके दो पुत्र हुए। रानी सुरुचिके गर्भसे उत्तमका जन्म हुआ था, जो ज्येष्ठ था और सुनीतिके गर्भसे ध्रुव नामक पुत्र हुआ था, जो कनिष्ठ था। एक दिन राजा उत्तानपाद जब राजसभामें बैठे हुए थे, उस समय सुनीतिने अपने पुत्रको वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके राजाकी सेवामें भेजा। विनयशील ध्रुवने धायके बालकोंके साथ वहाँ जाकर महाराज उत्तानपादके चरणोंमें प्रणाम किया और ऊँचे सिंहासनपर बैठे हुए पिताकी गोदमें उत्तम भैयाको बैठा देख बालोचित चपलताके कारण उसने भी पिताकी गोदमें चढ़नेकी चेष्टा की। सुरुचिने ध्रुवको पिताकी गोदमें चढ़नेके लिये उत्सुक देख फटकारते हुए कहा—'ओ अभागिनीके पुत्र! क्या तू महाराजकी गोदमें बैठना चाहता है? इस सिंहासनपर बैठनेके योग्य पुण्य तूने नहीं किया है। यदि तेरा कुछ पुण्य होता तो तू एक अभागिनी स्त्रीके पेटसे कैसे पैदा होता? मेरे परम सुन्दर उत्तमको देख ले। वह सौभाग्यवतीकी अच्छी कोखसे पैदा हुआ है। इसीलिये वह पृथ्वीपतिके अङ्कमें सम्मानपूर्वक बैठा हुआ है।'

राजसभाके बीचमें सुरुचिके द्वारा इस प्रकार अपमानित होनेपर ध्रुवने गिरते हुए आँसुओंको रोक लिया और धैर्य धारण करके कुछ भी उत्तर नहीं दिया। राजाने भी उचित-अनुचित कुछ नहीं कहा। वे रानी सुरुचिके वशीभूत थे। कुमार ध्रुव राजाको प्रणाम करके बालकोंके साथ अपने घर लौट गया। सुनीतिने बालकके मुखकी कान्ति देखकर ही ताड़ लिया कि ध्रुवका अपमान हुआ है। उन्होंने बार-बार अपने पुत्रका मस्तक सूँघा और सान्त्वना देकर हृदयसे लगा लिया। एकान्तमें माता सुनीतिको देखकर बालक ध्रुव फूट-फूटकर रोने लगा। माताके नेत्रोंसे भी आँसू बहने

लगे। सुनीतिने समझा-बुझाकर आँचलसे ध्रुवका मुँह पोंछा और कहा—'बेटा! तुम्हारे रोनेका क्या कारण है, बताओ। महाराजके रहते हुए किसने तुम्हारा अपमान किया है?' माताके आग्रहपूर्वक पूछनेपर ध्रुवने कहा—'मा! मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ। तुम और सुरुचि दोनों ही महाराजकी पत्नी हो, तो भी राजाको केवल सुरुचि क्यों प्यारी है और क्यों तुमपर उनका प्रेम नहीं है? मैं और उत्तम दोनों समानरूपसे राजकुमार हैं, फिर सुरुचिका पुत्र उत्तम क्यों उत्तम है और क्यों मैं अधम हूँ? राजसिंहासन क्यों उत्तमके ही योग्य है और क्यों मेरे योग्य नहीं है?'

ध्रुवका यह वचन सुनकर सुनीतिने लंबी साँस खींचकर कहा—वत्स! सुरुचिने जो कुछ कहा है, सब सत्य है। वह महाराजकी पटरानी है, इसलिये सब रानियोंमें अधिक प्रिय है। तात! उसने दूसरे जन्ममें बड़ा भारी पुण्य किया है। उसी पुण्यकी वृद्धिसे सुरुचिके प्रति राजा अच्छी रुचि रखते हैं। जो मेरी-जैसी अभागिनी स्त्रियाँ हैं, उनमें राजाकी वैसी प्रीति नहीं है। उत्तमने भी महान् पुण्यराशिका उपार्जन किया है, इसीलिये उसने उस पुण्यात्मा स्त्रीकी उत्तम कोखमें निवास किया है और यही कारण है कि वह राजसिंहासनपर बैठनेका अधिकारी माना गया है। महामते! थोड़ा तपस्या करनेके कारण मैं और तुम राजाके समीप पहुँचकर भी राजलक्ष्मीके पात्र नहीं हो सके। बेटा! अपना पूर्वजन्मका कर्म ही मान और अपमानमें कारण होता है, अतः तुम इसके लिये शोक न करो।

ध्रुव बोला—मा! यदि मैं मनुके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, राजा उत्तानपादका पुत्र हूँ और तुम्हारी कोखसे पैदा हुआ हूँ तो मेरी बात सुनो। यदि तपस्या ही सब सम्पत्तियोंका कारण है, तो आजतक जो स्थान दूसरोंके लिये दुर्लभ रहा है, उसे भी मैंने प्राप्त कर लिया, ऐसा समझो। मा! तुम केवल मुझे तपस्याके लिये जानेकी आज्ञा दे दो और अपने आशीर्वादसे मेरा उत्साह बढ़ाओ।

तब सुनीतिने कहा—राजकुमार! तुम्हारी आयु अभी कम है, अतः मैं तुम्हें वनमें जानेकी आज्ञा देनेमें असमर्थ हूँ। तथापि इस समय आज्ञा देती हूँ। तपस्याके लिये तुम्हारे जानेपर मेरे कठोर प्राण किसी तरह कण्ठमें अटके रहेंगे।

इस प्रकार माताकी आज्ञा पाकर ध्रुवने उनके चरण-कमलोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और वह वहाँसे चल दिया। माताने मार्गमें पुत्रकी रक्षाके लिये शतशः आशीर्वाद दिये। वह तरुणोंके समान पराक्रमी बालक अपने महलसे निकलकर वनमें गया। उस समय अनुकूल वायु चलकर उसे मार्ग दिखा रही थी। वनमें ध्रुवने सप्तर्षियोंको देखा। भोले-भाले असहाय जीवोंका भाग्य सहायक होता है। कहाँ राजकुमार और कहाँ वह घोर जंगल; परंतु जहाँ जिसकी शुभ या अशुभ भवितव्यता होती है, वहाँ उस मनुष्यको वह अपनी रस्सी-में बाँधकर खींच लेती है। मनुष्य अपने बुद्धिविभवसे कुछ और करनेकी चेष्टा करता है, किंतु भावीकी सहायतासे विधाता कुछ और ही कर डालता है। सप्तर्षियोंका दर्शन करके ध्रुव बहुत प्रसन्न हुआ और उनके पास जा हाथ जोड़े हुए प्रणाम करके ललित वाणीमें बोला—'मुनिवरो! आप मुझे राजा उत्तानपादका पुत्र ध्रुव जानें। मैं माता सुनीतिकी कोखसे पैदा हुआ हूँ।' वे सप्तर्षिगण स्वभावसे ही मधुर आकृतिवाले, अतिशय नीतिकुशल, मृदुल, गम्भीरभाषी उस तेजस्वी बालकको देखकर इस प्रकार बोले—'बालक! तू अपने खेदका कारण बता।' उनके सहज स्नेहसे सने हुए वचन सुनकर ध्रुवने कहा—'मुनीश्वरो! मेरी माताने मुझे महाराजकी सेवामें भेजा था। जब मैं वहाँ जाकर उनकी गोदीमें बैठनेको उत्सुक हुआ तब विमाता सुरुचिने मेरा बहुत तिरस्कार किया। उसने अपने पुत्र उत्तमको तो उत्तम बताया और मुझको तथा मेरी माताको धिक्कार देकर अपनी प्रशंसा की। यही मेरे खेदका कारण है।'

बालक ध्रुवकी यह बात सुनकर सप्तर्षि आपसमें एक-दूसरेकी ओर देखकर उसके क्षत्रियस्वभावकी चर्चा करने लगे—'अहो! देखो तो सही इस छोटे-से बालकमें भी अपमान सहन करनेकी शक्ति नहीं।'

ऋषि बोले—वत्स! हमसे तुम्हारा क्या काम है? तुम्हारा कौन-सा मनोरथ है?

ध्रुवने कहा—मुनियो! मेरे सर्वोत्तम बन्धु जो उत्तम हैं, वे पिताजीके दिये श्रेष्ठ राजसिंहासनपर बैठें। मैं आपके द्वारा इतनी ही सहायता चाहता हूँ कि मैं बालक होनेके कारण प्रायः कुछ साधन-भजन नहीं जानता, अतः मेरे लिये आप उसीका उपदेश करें। मैं पिताके दिये हुए सिंहासनको नहीं चाहता, मैं तो अपनी भुजाओंके बलसे उपार्जित उस उत्तम वस्तुको पाना चाहता हूँ, जो मेरे पिताके लिये भी आशातीत हो। जो पिताकी सम्पत्ति भोगनेवाले हैं, वे प्रायः यशके धनी नहीं होते। श्रेष्ठ मनुष्य तो उन्हें जानना चाहिये, जो पितासे भी अधिक उन्नति करके दिखा दें।

इस प्रकार उसके नीतिसे युक्त वचन सुनकर मरीचि आदि मुनियोंने उससे इस प्रकार कहा—

मरीचि बोले—प्रिय वत्स ! मैं झूठ नहीं कहता, तुम जिस स्थानको पानेकी बात करते हो, उसे, जिसने भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंकी आराधना नहीं की है, वह पुरुष कैसे पा सकता है ?

अत्रिने कहा—जिसने भगवान् गोविन्दके चरण-कमलोंकी धूलिके रसका आस्वादन नहीं किया है, वह आशातीत समृद्धिशाली पदको नहीं पा सकता ।

अङ्गिरा बोले—जो भगवान् लक्ष्मीपतिके कान्तिमान् चरणकमलोंका भलीभाँति चिन्तन करता है, उसके लिये सम्पूर्ण सम्पदाओंका स्थान दूर नहीं है ।

पुलस्त्यने कहा—ध्रुव ! जिनके स्मरणमात्रसे महा-पातकोंकी परम्पराका सर्वथा नाश हो जाता है, वे भगवान् विष्णु ही सब कुछ देनेवाले हैं ।

पुलह बोले—जिनको प्रकृति और पुरुषसे परे परब्रह्म कहते हैं तथा जिनकी मायासे सम्पूर्ण जगत्‌का विस्तार किया गया है, वे भगवान् विष्णु ही सब कुछ देंगे ।

क्रतुने कहा—जो यज्ञपुरुष हैं, सर्वत्र व्यापक हैं, पूर्ण वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य तथा समस्त जगत्‌के अन्तरात्मा हैं, वे भगवान् जनार्दन यदि सन्तुष्ट हो जायँ तो क्या नहीं दे सकते हैं ?

वसिष्ठ बोले—राजकुमार ! जिनके भ्रूभङ्गमात्रसे अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ आज्ञाके अनुसार कार्य करनेको प्रस्तुत रहती हैं, उन भगवान् हृषीकेशकी आराधना करनेपर मोक्ष भी दूर नहीं है ।

ध्रुवने कहा—मुनीश्वरो ! आपने भगवान् विष्णुकी आराधनाके विषयमें जो विचार व्यक्त किया है, वह सत्य है। परंतु भगवान् विष्णुकी आराधना कैसे की जाती है, उसकी विधि क्या है, इसका उपदेश करें ।

मुनि बोले—खड़े होते, चलते, सोते, जागते, लेटे अथवा बैठे हुए सब समय भगवान् नारायणके नामका जप करना चाहिये । चार भुजाधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए वासुदेवस्वरूप द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) द्वारा जप करके कौन सिद्धिको नहीं प्राप्त हुआ है *? अलसीके फूलकी भाँति श्याम कान्तिवाले पीतवस्त्रधारी सर्वात्मा अच्युतका एक क्षण भी ध्यान करनेवाला कौन ऐसा पुरुष है, जो इस भूतलपर सिद्धिको नहीं पाता ? भगवान् वासुदेवका जप करनेवाला मनुष्य स्त्री, पुत्र, मित्र, राज्य, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) सब कुछ निःसन्देह प्राप्त कर लेता है । वासुदेवके मन्त्र-जपमें लगे हुए पापी मनुष्योंको भी विघ्न तथा भयङ्कर यमदूत नहीं छू सकते । महासमृद्धिशाली और विष्णुभक्त तुम्हारे दादा मनुने भी राज्यकी कामनासे इस महा-मन्त्रका जप किया था । तुम भी इसी मन्त्रसे भगवान् वासुदेवकी आराधनामें लग जाओ । इससे तुम शीघ्र ही मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त कर लोगे ।

ऐसा कहकर वे सब महात्मा मुनीश्वर वहीं अन्तर्धान हो गये । इधर ध्रुव भी भगवान् वासुदेवके चिन्तनमें मन लगाकर तपस्याके लिये चल दिये । जंगलसे निकलकर वे यमुनाके किनारे मनोहर मधुवनमें गये । वह भगवान् श्रीहरि-का परम पवित्र आदिस्थान है, जहाँ पहुँचकर पापी जीव भी निष्पाप हो जाता है । वहाँ जाकर ध्रुवने वासुदेव नामक निरामय परब्रह्मका जप प्रारम्भ किया । उनके नेत्र ध्यानमें निश्चल रहते थे और वे सम्पूर्ण विश्वको वासुदेवमय देखते थे । सम्पूर्ण दिशाओंमें श्रीहरि हैं, वे ही पातालमें अनन्तरूपसे रहते हैं, आकाशमें भी वे ही अनन्तरूपसे व्याप्त हैं । यद्यपि वे एक हैं तथापि अनन्त रूपभेदके कारण अनन्तताको प्राप्त हुए हैं । जो सदा देवताओंमें वास करें अथवा देवताओंके वासस्थान हों या व्यापकशक्तिसे सर्वत्र देदीप्यमान हों, वे भगवान् वासुदेव कहलाते हैं । 'विष्लृ व्याप्तौ' धातु है । इसका प्रयोग व्याप्ति अर्थमें होता है । (इसीसे 'विष्णु' शब्द बनता है) भगवान् विष्णुके सर्वव्यापी नाम एवं स्वरूपमें ही यह धातु पूर्णतः सार्थक होती है । जो परमेश्वर सम्पूर्ण हृषीक अर्थात् इन्द्रियोंके स्वामी होनेसे 'हृषीकेश' कहलाते हैं, वे ही सर्वत्र स्थित हैं । जिनके भक्त भी महाप्रलयमें अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होते, वे भगवान् सम्पूर्ण लोकोंमें 'अच्युत' कहलाते हैं । जो एकमात्र अविनाशी एवं सर्वत्र व्यापक हैं, जो पालन-पोषण करने और स्वरूपकी प्राप्ति करानेके द्वारा इस समस्त

* तिष्ठता गच्छता वापि स्वपता जाग्रता तथा ।
शयानेनोपविष्टेन जप्यो नारायणः सदा ॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेन च ।
ध्यायंश्चतुर्भुजं विष्णुं जप्त्वा सिद्धिं न को गतः ॥
(स्क० पु० का० पू० १९ । १७-१८)

गये। इधर भगवान् विष्णु उस अनन्यशरण बालकको स्थिरचित्त देखकर गरुड़पर आरूढ़ हो उसके पास गये और इस प्रकार बोले—'महाभाग ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो।' यह अमृतके समान वचन सुनकर ध्रुवने आँखें खोल दीं और देखा—इन्द्रनीलमणिके समान श्याम तेजका पुञ्ज सामने प्रकाशित हो रहा है। पीताम्बर-धारी, मेघके समान श्याम गरुड़वाहन भगवान् विष्णुको ध्रुवने देखा। देखते ही ध्रुव दण्डकी भाँति उनके चरणोंमें पड़ गये और सब ओर लोटने लगे। फिर जैसे दुखी बालक दीर्घकालके बाद पिताको देखकर रोता है, उसी प्रकार वे फूट-फूटकर रोने लगे। उस समय भगवान्के कमल-समान नेत्रोंमें करुणापूर्ण अश्रुजल भर आया और उन्होंने अपने हाथसे ध्रुवको उठाया तथा उनके धूलिधूसरित अङ्गोंको प्रेमपूर्वक सहलाया। देवाधिदेव श्रीहरिके स्पर्शमात्रसे ध्रुवके मुखसे संस्कृतमयी शुभ वाणी प्रकट हुई और उन्होंने इस प्रकार स्तवन किया—

ध्रुव बोले—सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेवाले हिरण्यगर्भ-स्वरूप आपको नमस्कार है। आप उत्तम ज्ञान प्रदान करने-वाले हैं, आपको नमस्कार है। समस्त भूतोंका संहार करने-वाले हरस्वरूप ! आपको नमस्कार है। पञ्चमहाभूतस्वरूप तथा समस्त भूत-प्राणियोंके स्वामी आपको नमस्कार है। सर्वशक्तिमान् अथवा जगत्के उत्पादक, पालनकर्ता आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है। विषयोंकी तृष्णा हर लेनेवाले सच्चिदानन्द श्रीकृष्णस्वरूप आपको नमस्कार है। कूर्म और वाराह आदि अवतारोंके रूप आप समस्त विश्वका महान् भार सहन करते हैं, आपको नमस्कार है। लक्ष्मीजीके स्वामी एवं सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। पृथ्वीको अपने दाढ़ोंपर उठानेवाले आप वाराहरूपधारी परमात्माको नमस्कार है। वेदान्तोंद्वारा आप ही जानने योग्य हैं, आपको नमस्कार है। आप अपने वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप सत्त्वादि गुणस्वरूप तथा सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आपकी नाभिसे ब्रह्माण्डरूपी कमल प्रकट हुआ है, आपको नमस्कार है। आप पाञ्चजन्य नामक शङ्ख धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। वासुदेव ! आपको नमस्कार है। देवकीनन्दन ! आपको नमस्कार है। दामोदर ! हृषीकेश ! गोविन्द ! अच्युत ! माधव ! उपेन्द्र ! मधुसूदन ! और अधोक्षज ! आपको नमस्कार है। आपका कहीं अन्त नहीं है, इसलिये अनन्त कहलाते हैं। आपको नमस्कार है। आप अनन्त नामक शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। रुक्मिणीके पति ! आपको नमस्कार है। मुकुन्द ! परमानन्द ! नन्दगोपके प्रिय ! आपको नमस्कार है। पुण्डरीकाक्ष ! आपको नमस्कार है। गोपालरूप धारण करके वंशी बजानेवाले ! आपको नमस्कार है। गोपीवल्लभ ! गोवर्द्धनधारी ! आपको नमस्कार है। आपमें योगीजन रमण करते हैं, इसलिये आप राम हैं, रघुकुलके स्वामी होनेसे रघुनाथ हैं तथा रघुवंशमें अवतार ग्रहण करनेके कारण आप राघव कहलाते हैं। आपको बार-बार नमस्कार है। विभीषणको आश्रय देनेवाले आपको नमस्कार है। आप अजन्मा एवं जयस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। क्षण, निमेष आदि जितने कालभेद हैं, वे सब आपके ही स्वरूप हैं। आप अनेक रूप धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप शार्ङ्ग नामक धनुष, कौमोदकी गदा और सुदर्शन चक्र धारण करने-वाले हैं, आपको नमस्कार है। आप गौओं और ब्राह्मणोंके हितकारी हैं, आपको नमस्कार है। धर्मस्वरूप आपको नमस्कार है। सत्त्वगुण धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके सहस्रों मस्तक हैं, आप परम पुरुष परमेश्वर हैं, आपको नमस्कार है। आपके सहस्रों नेत्र, सहस्रों चरण, सहस्रों किरणें और सहस्रों मूर्तियाँ हैं, आपको नमस्कार है। श्रीकान्त ! यज्ञपुरुष ! आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य है और वेद आपको बहुत प्रिय है, आपको नमस्कार है। वेदस्वरूप, वेदोंके वक्ता और सदाचारके पथपर चलनेवाले आपको नमस्कार है। आप वैकुण्ठधामस्वरूप तथा वैकुण्ठधामके निवासी हैं, आपको नमस्कार है। विस्तृत यशवाले आप भगवान् गरुड़वाहनको नमस्कार है। विष्वक्सेन ! आपको नमस्कार है। जगन्मय जनार्दन ! आपको नमस्कार है। आप अपने तीन पगोंसे त्रिलोकीको माप लेनेवाले, सत्यस्वरूप तथा सत्यप्रिय हैं, आपको नमस्कार है। केशव ! आपको नमस्कार है। आप मायाशक्तिसे सम्पन्न हैं और वेदोंके गायक हैं अथवा ब्रह्म नामसे आपकी महिमाका गान किया जाता है, आपको नमस्कार है। आप तपःस्वरूप और तपस्याका फल देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप ही स्तवन करनेयोग्य देवता हैं, स्तुति भी आपका ही स्वरूप है तथा आप अपने भक्त-जनोंकी स्तुतिमें तत्पर रहते हैं, आपको नमस्कार है। आप श्रुतिरूप हैं और श्रुतियोंमें प्रतिपादित सदाचार आपको विशेष

ध्रुवकी सफल साधना

[पृष्ठ ५७४

ब्रह्माजीका प्राकट्य

[पृष्ठ ४९४

प्रिय है, आपको नमस्कार है। अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज्ज सभी जीव आपके स्वरूप हैं; उन सभी रूपोंमें आपको नमस्कार है। आप देवताओंमें इन्द्र, ग्रहोंमें सूर्य, लोकोंमें सत्यलोक, समुद्रोंमें क्षीरसागर, नदियोंमें गङ्गा, सरोवरोंमें मानस, पर्वतमें हिमवान्, धेनुओंमें कामधेनु, धातुओंमें सुवर्ण, पत्थरोंमें स्फटिक, फूलोंमें नीलकमल, वृक्षोंमें तुलसी, सम्पूर्ण पूजनीय शिलाओंमें शालग्राम शिला, मुक्तिदायक क्षेत्रोंमें काशी, तीर्थोंमें प्रयाग, रंगोंमें श्वेत रंग, मनुष्योंमें ब्राह्मण, पक्षियोंमें गरुड़, कर्मेन्द्रियोंमें वाणी, वेदोंमें उपनिषद्, मन्त्रोंमें प्रणव, अक्षरोंमें अकार, यज्ञकर्ताओंमें सोमरूपधारी, प्रतापियोंमें अग्नि, क्षमाशीलोंमें क्षमा (पृथ्वी), दाताओंमें मेघ, पवित्रोंमें परम पवित्र, सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंमें धनुष, वेगवानोंमें वायु, इन्द्रियोंमें मन, भयशून्य अङ्गोंमें हाथ, व्यापक वस्तुओंमें आकाश, आत्माओंमें परमात्मा, सम्पूर्ण नित्यकर्मोंमें सन्ध्योपासना, यज्ञोंमें अश्वमेध यज्ञ, दानोंमें अभयदान, लाभोंमें पुत्रलाभ, ऋतुओंमें वसन्त, युगोंमें प्रथम (सत्ययुग), तिथियोंमें अमावास्या, नक्षत्रोंमें पुष्य, सब पर्वोंमें संक्रान्ति, योगोंमें व्यतीपात, तृणोंमें कुश और सब पुरुषार्थोंमें मोक्ष हैं। अजन्मा प्रभो! सम्पूर्ण बुद्धियोंमें आप धर्मबुद्धि हैं, सब वृक्षोंमें पीपल हैं, लताओंमें सोमलता हैं, समस्त पवित्र साधनोंमें प्राणायाम हैं तथा सम्पूर्ण शिवलिङ्गोंमें आप सब कुछ देनेवाले साक्षात् विश्वनाथ हैं। मित्रोंमें पत्नी और सब बन्धुओंमें धर्म आप ही हैं। नारायण! इस चराचर जगत्में आपसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है। आप ही माता, आप ही पिता, आप ही सुहृद्, आप ही महान् वैभव, आप ही सौख्य-सम्पत्ति तथा आप ही आयु और जीवनके स्वामी हैं। वही कथा है, जहाँ आपके नामकी महिमा बतायी जाती है। वही मन है, जो आपको समर्पित होता है। वही कर्म है, जो आपकी प्रसन्नताके लिये किया जाता है और वही तपस्या है, जिससे आपकी स्मृति होती है। धनियोंका वही धन शुद्ध है, जो आपके लिये व्यय किया जाता हो। विष्णो! वही काल सफल है, जिसमें आपकी पूजा होती है। यह जीवन तभीतक कल्याणकारी है, जबतक हृदयमें आपका चिन्तन होता रहता है। आपका चरणोदक पीनेसे सब रोग शान्त हो जाते हैं। गोविन्द! आपके वासुदेव नामका कीर्तन करनेसे अनेक जन्मोंद्वारा उपार्जित महान् पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। अहो! मनुष्योंमें कैसा अद्भुत महान् मोह है, कैसा प्रमाद है कि वे भगवान् वासुदेवकी अवहेलना करके दूसरोंको रिझानेके लिये परिश्रम करते हैं। भगवान्के नामोंका जो कीर्तन किया जाता है, वही परम मङ्गल है, वही धनका उपार्जन है और वही जीवनका फल है। भगवान् अधोक्षज (विष्णु) से भिन्न कोई धर्म नहीं है, नारायणसे परे कोई अर्थ नहीं है, केशवसे भिन्न कोई काम नहीं है और श्रीहरिके बिना मोक्ष नहीं है। भगवान् वासुदेवका स्मरण और ध्यान न हो तो यही सबसे बड़ी हानि है, यही महान् उपद्रव है और यही बड़ा भारी दुर्भाग्य है। अहो! भगवान् विष्णुकी आराधना मनुष्योंके लिये क्या-क्या नहीं करती। पुत्र, मित्र, स्त्री, धन, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष सब कुछ तो वही देती है। श्रीहरिकी आराधना पापको हर लेती है, रोगोंका नाश करती है और मानसिक चिन्ताओंको मिटा देती है। इतना ही नहीं, वह धर्मको बढ़ाती और शीघ्र ही मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करती है। यदि पापी भी प्रसङ्ग-वश भी भगवान्के युगल चरणोंका निर्द्वन्द्व ध्यान करता है, तो वह उसके लिये परम हितकी बात है। पापियोंके जो महापाप और सामान्य पाप हैं, उन सबको भगवान्के ध्यान-पूर्वक किया हुआ नामोच्चारण अविलम्ब हर लेता है। जैसे आगकी चिनगारी भूलसे भी छू जाय, तो वह जला ही देती है, उसी प्रकार होठोंसे श्रीहरिनामका स्पर्श होते ही वह समस्त पापोंको हर लेता है*। जो अपने चित्तको शान्त करके उसे क्षणभर भी कमलाकान्तके चिन्तनमें लगाता है, तो उसके यहाँ लक्ष्मी निश्चल होकर रहती है। भगवान् विष्णुका चरणामृत पान करना ही सबसे बड़ा धर्म है, यही सर्वोत्तम तप है और यही सर्वोत्कृष्ट तीर्थ है। यज्ञपुरुष! जो आपको भोग लगाये हुए नैवेद्यका प्रसाद भक्तिपूर्वक ग्रहण करता है, उस परम बुद्धिमान् मनुष्यने मानो निश्चय ही यज्ञका पुरोडाश प्राप्त कर लिया। जो मनुष्य भगवान् विष्णु-का चरणोदक शङ्खमें रखकर उससे अपने सिर आदि अङ्गोंका अभिषेक करता है, वही अवभृथ-स्नान करता है और वही गङ्गाजीके जलमें गोता लगाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा इतर जातिका मनुष्य, कोई भी क्यों न हो, यदि वह भगवान् विष्णुकी भक्तिसे युक्त है तो उसे सर्वश्रेष्ठ जानना चाहिये। जो प्रतिदिन द्वारकाके गोमतीचक्रके साथ शालग्राम-की बारह शिलाओंका पूजन करता है, वह वैकुण्ठधाममें

---

* प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत्।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम दहेदघम्॥
(स्क० पु० का० पू० २१।५७)

प्रतिष्ठित होता है। जिसके घरमें प्रतिदिन तुलसीकी पूजा होती है, उसके घरमें कभी यमराजके दूत नहीं जाते। जिसके मुखमें भगवन्नामके अक्षर हों, ललाटमें गोपीचन्दनका तिलक हो और जिसका वक्षःस्थल तुलसीकी मालासे सुशोभित हो, उसे यमराजके दूत छू नहीं सकते। गोपीचन्दन, तुलसी, शङ्ख, शालग्राम शिला और गोमतीचक्र—ये पाँच वस्तुएँ जिसके घरमें विद्यमान हैं, उसे पापका भय कैसे हो सकता है। जो मुहूर्त, जो क्षण, जो काष्ठा और जो निमेष भगवान् विष्णुका स्मरण किये बिना बीत जाते हैं, उन्हींमें मनुष्य यमके द्वारा लूटा जाता है। कहाँ तो आगकी जलती हुई चिनगारियोंके समान हरि-नामके दो अक्षर और कहाँ रूईकी ढेरीके समान पातकोंकी बड़ी भारी राशि। मैं तो गोविन्द, परमानन्द, मुकुन्द एवं मधुसूदन आदि नामोंवाले भगवान् विष्णुको छोड़कर दूसरेको नहीं जानता, नहीं भजता और नहीं स्मरण करता हूँ। श्रीहरिके बिना मैं दूसरेको न तो नमस्कार करता हूँ, न उसकी स्तुति करता हूँ, न नेत्रोंसे उसे देखता हूँ, न शरीरसे उसका स्पर्श करता हूँ, न उसके पास जाता हूँ और न उसकी महिमाके गीत ही गाता हूँ। मैं जलमें, स्थलमें, पातालमें, अग्निमें, वायुमें, पर्वतमें, विद्याधरमें, असुर और देवताओंमें, किन्नरमें, वानरमें, नरमें, तिनकेमें, स्त्रियोंके समुदायमें, पत्थरमें, वृक्ष, झाड़ी और लताओंमें, सर्वत्र श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित वक्षवाले श्यामसुन्दर श्रीहरिको ही देखता हूँ। प्रभो! आप सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे निवास करते हैं। आप ही सबके साक्षात् साक्षी हैं। अपने बाहर और भीतर आप सर्वव्यापी परमेश्वरको छोड़कर मैं दूसरेको नहीं जानता।

शिवशर्मन्! ऐसा कहकर भक्त ध्रुव चुप हो गये। तब भगवान् विष्णुने प्रसन्नतापूर्ण दृष्टिसे देखते हुए कहा—'वत्स ध्रुव! मैंने तुम्हारे मनोरथको अच्छी तरह जान लिया है।

देखो, सब प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षासे उत्पन्न होता है, उस वर्षाके कारण हैं सूर्यदेव, परंतु तुम सूर्यके भी आधार हो जाओ। आकाशमें भ्रमण करनेवाले समस्त ग्रह-नक्षत्र आदिका जो ज्योतिर्मण्डल है, उसके तुम आधार होओगे। इस दिव्य पदपर तुम पूरे कल्पभर शासन करोगे। तुम्हारी माता सुनीति भी तुम्हारे समीप आ पहुँचेगी। जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो तुम्हारे द्वारा किये हुए इस उत्तम स्तोत्रका तीनों समय पाठ करेगा, उसकी पापराशि नष्ट हो जायगी और लक्ष्मी उसका घर नहीं छोड़ेगी; उसका मातासे वियोग नहीं होगा और भाई-बन्धुओंके साथ कभी कलह नहीं होगा।'

भगवान्‌के दोनों पार्षद कहते हैं—ब्रह्मन्! ध्रुवसे ऐसा कहकर भगवान् गरुड़ध्वज वहाँसे चले गये।

महर्लोक, जनलोक और तपोलोककी स्थिति; ब्रह्माजीके द्वारा सत्यलोकका महत्त्व-कथन और भारतवर्ष एवं वहाँके तीर्थोंकी महत्ता बताते हुए प्रयाग और काशीकी महिमाका प्रतिपादन

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर वायुके समान वेगशाली वह विमान स्वर्गलोकसे ऊपर अत्यन्त अद्भुत महर्लोकमें जा पहुँचा। तब ब्राह्मणने पूछा—'यह मनोहर लोक कौन-सा है?'

दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! यह महर्लोक है, जो स्वर्गलोकसे भी अद्भुत है। जिन्होंने तपस्यासे अपनी पापराशि धो डाली है, वे कल्पान्तजीवी तपस्वी यहाँ निवास करते हैं। भगवान् विष्णुका निरन्तर स्मरण करनेसे उनकी समस्त पापराशि नष्ट हो जाती है।

इस प्रकार वे दोनों पार्षद कह ही रहे थे कि आधे क्षणमें वह विमान उन सबको लेकर जनलोकमें जा पहुँचा। यहाँ ब्रह्माजीके मानसपुत्र निर्मल योगीश्वर एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी

सनक, सनन्दन आदि निवास करते हैं। अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले अन्यान्य योगी भी सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे मुक्त हो अत्यन्त निर्मल होकर जनलोकमें निवास करते हैं। मनके समान वेगसे चलनेवाले उस विमानने जनलोकसे ऊपर जाकर शीघ्र ही तपोलोकको दृष्टिगोचर कराया, जहाँ वैराज नामवाले देवता निवास करते हैं। जिनका मन भगवान् वासुदेवमें लगा होता है, जो अपने समस्त कर्म वासुदेवको समर्पित कर देते हैं तथा तपस्याद्वारा भगवान् गोविन्दको सन्तुष्ट करके जो सब प्रकारकी इच्छाओंका त्याग कर चुके हैं, ऐसे जितेन्द्रिय महात्मा तपोलोकमें जाकर निवास करते हैं। जो तपस्याओंसे अपने शरीरको क्लेश देकर तपरूपी धनका संग्रह कर चुके हैं, वे ब्रह्माजीके समान आयुवाले होकर निर्भयतापूर्वक निवास करते हैं।

पुण्यात्मा शिवशर्मा जबतक भगवत्पार्षदोंके मुखसे इस प्रकार तपोलोककी महिमा सुनते रहे, तबतक उनके नेत्रोंके सामने परम प्रकाशमय सत्यलोक आ पहुँचा। वहाँ जाते ही वे दोनों पार्षद उनके साथ तुरंत ही विमानसे उतर पड़े और उन सबने समस्त लोकोंके स्रष्टा ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणाम किया।

ब्रह्माजी बोले—भगवत्पार्षदो! ये बुद्धिमान् ब्राह्मण शिवशर्मा वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् हैं। स्मृतियों और धर्मशास्त्रोंमें बताये हुए सदाचारके पालनमें परम प्रवीण हैं तथा पापकर्मोंसे सदा विमुख रहे हैं। परम बुद्धिमान् द्विज शिवशर्मन्! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। वत्स! तुमने उत्तम तीर्थमें प्राणत्याग करके बहुत ही अच्छा किया। तुमने यह जो कुछ देखा है, वह सब शीघ्र नष्ट होनेवाला है। मेरे प्रत्येक दिनके अन्तमें प्रलय होता है और मैं दिनके प्रारम्भमें बार-बार सृष्टि करता हूँ। जब स्वर्गादि लोकोंकी यह अवस्था है, तब मरणशील मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। परंतु चार प्रकारके जीव (स्वेदज, उद्भिज, जरायुज तथा अण्डज) समुदायमेंसे मनुष्योंमें ही एक ऐसा गुण है कि वे कर्मभूमि भारतमें मनसहित चञ्चल इन्द्रियोंको जीतकर, गुणोंके शत्रु लोभका त्याग करके, धर्मकी परम्परा तथा धनराशिका नाश करनेवाले कामको विचारके द्वारा मनसे बाहर निकालकर, धैर्यसे क्रोधरूपी शत्रुको जीतकर और मदका परित्याग, अहङ्कारका निवारण तथा मोहका नाश करके, धर्मकी सीढ़ीपर चढ़कर, अनायास ही इस सत्यलोकमें आ जाते हैं। आर्यावर्तके समान देश, काशीके समान पुरी तथा विश्वनाथजीके समान लिङ्ग इस ब्रह्माण्डमण्डलमें कहीं भी नहीं है। समुद्रके बीचमें अनेक द्वीप हैं, किंतु इस पृथ्वीपर जम्बूद्वीपके समान दूसरा कोई द्वीप नहीं है। जम्बूद्वीपमें भी नौ वर्ष हैं, जिनमें भारतवर्ष सबसे श्रेष्ठ है। इसे कर्मभूमि कहा गया है। यह देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। किंपुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, वे देवभोग्य हैं; उनमें देवतालोग स्वर्गसे आकर रमण करते हैं। यह भारतवर्ष नौ हजार योजन विस्तृत है। इस भारतवर्षमें भी हिमवान् और विन्ध्यगिरिके बीचका भाग अत्यन्त पुण्यदायक है। इसमें भी गङ्गा और यमुनाके बीचका भाग पृथ्वीकी अन्तर्वेदी है। यहाँके क्षेत्रोंमें कुरुक्षेत्र सबसे बढ़कर है। उससे भी उत्तम नैमिषारण्यक्षेत्र है, जो स्वर्गका श्रेष्ठ साधन है। इस समस्त भूमण्डलमें नैमिषारण्यसे तथा अन्य सब तीर्थोंसे भी बढ़कर तीर्थराज प्रयाग है। वह स्वर्ग, मोक्ष तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। इसीलिये प्रयाग महान् क्षेत्र है और उसे सब तीर्थोंका राजा माना गया है। मैंने पूर्वकालमें सब यज्ञोंको एक ओर तराजूपर रक्खा और दूसरी ओर तीर्थोंमें श्रेष्ठ प्रयागको रक्खा, किंतु उसीका पलड़ा भारी रहा। दक्षिणा आदिसे पुष्ट समस्त यागोंकी अपेक्षा इस क्षेत्रको प्रधान देखकर विष्णु और शिव आदिने उसका नाम प्रयाग रख दिया। उसके नाममात्रका तीनों कालमें स्मरण करनेसे मनुष्यके शरीरमें कभी कहीं पाप नहीं ठहरता है। असंख्य जन्मान्तरोंमें जिस पापराशिका संग्रह किया गया है, व्रत, दान, जप और तपसे भी जिसको दूर करना अत्यन्त कठिन है, वह पापराशि भी जब कोई तीर्थराज प्रयागमें जानेके लिये उद्यत होता है, तब आँधीके मारे हुए वृक्षकी भाँति शरीरके भीतर थरथर काँपने लगती है। तत्पश्चात् प्रयाग जानेका दृढ़ संकल्प लेकर जो आधा रास्ता तय कर लेता है, उस पुरुषके शरीरसे वह पापराशि पग-पगपर निकलनेकी इच्छा करती है। यदि भाग्यवश उस महात्माको तीर्थराज प्रयागका दर्शन हो जाता है, तब तो उसके पाप उसी प्रकार शीघ्र भाग जाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार। सात धातुओंके बने हुए मानवशरीरमें जो-जो पाप हैं, वे केशोंमें आकर ठहरते हैं। अतः केशोंका मुण्डन करा देनेपर वे भी निकल जाते हैं। इस प्रकार निष्पाप होकर, गङ्गा-यमुनाके श्वेत-श्याम सलिलके संगममें स्नान करना चाहिये। उस स्नानसे मनुष्य महान् पुण्यराशि, मनोवाञ्छित पुण्यमय भोग तथा स्वर्गको भी पाता है और जो निष्काम भावसे स्नान करता है, वह मोक्ष पाता है। ब्रह्मन्! मैं सत्यलोक और प्रयागमें कोई अन्तर नहीं

समझता, क्योंकि वहाँ रहकर जो शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे मेरे लोकके निवासी होते हैं। जिस भाग्यवान् मनुष्यकी हड्डियाँ भी प्रयागमें पड़ जाती हैं, उसे किसी जन्ममें लेशमात्र भी दुःख नहीं प्राप्त होता। ब्रह्महत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त करनेकी इच्छावाले पुरुषको ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर विधिपूर्वक प्रयागतीर्थका सेवन करना चाहिये।

तीर्थराज प्रयागसे भी श्रेष्ठ तीर्थ है काशी। वह सम्पूर्ण भुवनोंमें सबसे उत्तम है। काशीमें देहावसान होनेसे अनायास मुक्ति होती है। इसमें संशय नहीं कि काशीक्षेत्र प्रयागसे भी अधिक रमणीय है, जहाँ साक्षात् भगवान् विश्वनाथ निवास करते हैं। विश्वनाथजीके निवासस्थान अविमुक्त नामक महाक्षेत्रसे अधिक रमणीय तीर्थ इस ब्रह्माण्डमें कहीं नहीं है। अविमुक्त क्षेत्र ब्रह्माण्डके भीतर रहकर भी ब्रह्माण्डमें नहीं है। इसकी लंबाई पाँच कोस है। प्रलयकालमें एकार्णवका जल जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे इस क्षेत्रको शिवजी ऊपर उठाते जाते हैं। काशीक्षेत्र महादेवजीके त्रिशूलकी नोकपर स्थित है। यह न तो आकाशमें स्थित है और न भूमिपर ही। किंतु मूढबुद्धि मनुष्य इसे इस रूपमें नहीं देख पाते। यहाँ सदा सत्ययुग रहता है, सदा महापर्व लगा रहता है। विश्वनाथजीके निवासस्थानमें ग्रहोंके अस्त-उदयजनित दोषकी प्राप्ति नहीं होती। वहाँ सदा उत्तरायण है, सदा महान् अभ्युदय है और सदैव मङ्गल है, जहाँ कि भगवान् विश्वनाथकी स्थिति है। विप्रवर! चौदहों भुवनोंकी सृष्टि मैंने ही की है, परंतु इस काशीपुरीके निर्माता साक्षात् भगवान् विश्वनाथ हैं, मैं नहीं। काशीमें देहत्याग करनेवालोंका नियन्त्रण स्वयं भगवान् विश्वनाथ करते हैं। जिन्होंने वहाँ रहकर भी पाप किये हैं, उनको दण्ड देनेवाले कालभैरव हैं। वहाँ कभी किसीको पाप नहीं करना चाहिये, क्योंकि वहाँ पाप करनेवालोंको दारुण रुद्रयातना भोगनी पड़ती है, जो नरकसे भी अधिक दुःसह है। जो मनुष्य दूसरोंकी निन्दा और परस्त्रीकी अभिलाषा करते हैं, उन्हें काशीका सेवन नहीं करना चाहिये; क्योंकि कहाँ काशी और कहाँ वह नरक। जो वहाँ सदा प्रतिग्रह लेकर धन संग्रह करनेकी अभिलाषा रखते हैं अथवा कपटपूर्वक दूसरोंका धन हड़प लेना चाहते हैं, ऐसे लोगोंको भी काशीका सेवन नहीं करना चाहिये। काशीमें रहनेवाले पुरुषको दूसरोंको पीड़ा देनेवाला कर्म सदाके लिये त्याग देना चाहिये। यदि वहाँ भी वही करना हो, तो दुष्ट चित्तवाले पुरुषोंका काशीमें निवास करना किस कामका है। जो दूसरोंसे द्रोहकी बात सोचते, दूसरोंसे डाह रखते और सदा दूसरोंको सताया करते हैं, उनके लिये काशीपुरी सिद्धिदायक नहीं। इस पृथ्वीपर ज्ञानके बिना कहीं मोक्ष नहीं होता। वह ज्ञान न तो चान्द्रायण आदि व्रतोंसे प्राप्त होता है और न उत्तम देश, कालमें सत्पात्रोंको विधि एवं श्रद्धापूर्वक दिये हुए तुलापुरुष आदि मुख्य-मुख्य दानोंसे ही मिलता है। अहिंसा-ब्रह्मचर्य आदि यमों, शौच-सन्तोषादि नियमों, पूजन आदि सत्कर्मों तथा शरीरको सुखानेवाली कठोर तपस्याओंसे भी उसकी प्राप्ति नहीं होती। गुरुओंद्वारा दिये हुए महामन्त्रोंके जपसे, स्वाध्यायसे, शास्त्रोक्त विधिसे, अग्निहोत्र करनेसे, गुरुओंकी सेवासे, श्राद्धसे, देवपूजासे तथा अनेकों तीर्थोंकी यात्रा करनेसे भी उस ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि योगके बिना ज्ञान नहीं होता। गुरुके उपदेश किये हुए मार्गसे निरन्तर अभ्यासपूर्वक तत्त्वार्थका विचार करना ही योग है। उस योगमें भी अनेक प्रकारके विघ्न आया करते हैं, अतः एक ही जन्ममें प्रायः ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती; परंतु इस काशीपुरीमें जप, तप और योगके बिना भी एक ही जन्ममें कल्याणकी प्राप्ति हो जाती है। द्विजश्रेष्ठ! तुमने शुद्ध बुद्धिसे काशीतीर्थमें जो कल्याणकारी पुण्यका उपार्जन किया है, उसका भारी फल महान् है। भगवत्पार्षदोंके सामने ही इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी मौन हो गये और महामना शिवशर्मा भी बहुत प्रसन्न हुए।

वैकुण्ठ और कैलासकी स्थिति तथा शिव और विष्णुकी अभिन्नता एवं महत्ताका निरूपण

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान्‌के पार्षद ब्रह्माजीको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक चले और अपने विमानपर बैठकर वैकुण्ठधामके समीप जा पहुँचे। सत्यलोकसे जाते समय शिवशर्माने पुनः पूछा—'भगवत्पार्षदो! अब हमलोग कितनी दूर आये हैं और अभी कितनी दूर और चलना है।'

भगवत्पार्षद बोले—ब्रह्मन्! सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंका प्रकाश जहाँतक जाता है, समुद्र, पर्वत और वनसहित उतनी ही पृथ्वी मानी गयी है। उसके ऊपर आकाश है। पृथ्वीसे एक लाख योजन ऊपर सूर्यकी स्थिति है। पृथ्वीपर समुद्र, द्वीप, पर्वत और वनसहित जो कोई भी वस्तु है, वह सब भूलोकके नामसे विख्यात है। भूलोकसे लेकर सूर्य-

लोकतक भुवर्लोक कहलाता है। सूर्यसे ध्रुवलोकतक स्वर्गलोक कहलाता है। पृथ्वीसे एक करोड़ योजनकी ऊँचाईपर महर्लोक है, दो करोड़ योजन ऊँचे जनलोक है, चार करोड़ योजनकी ऊँचाईपर तपोलोक और पृथ्वीसे आठ करोड़ योजन ऊँचे सत्यलोक बताया गया है। सत्यलोकसे भी ऊपर वैकुण्ठ-धाम है, जो पृथ्वीसे सोलह करोड़ योजन ऊपर स्थित है, जहाँ सबको अभयदान करनेवाले साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपति निवास करते हैं *। वैकुण्ठकी अपेक्षा सोलहगुनी ऊँचाईपर शिवजीका निवासस्थान कैलासधाम अवस्थित है (अर्थात् वह पृथ्वीसे २ अरब ५६ करोड़ योजनकी दूरीपर स्थित है), जहाँ गिरिराजनन्दिनी उमा, गणेशजी, कार्तिकेयजी तथा नन्दी आदिके साथ कल्याणस्वरूप भगवान् विश्वनाथ विराजमान हैं। लीलास्वरूप धारण करनेवाले उन भगवान्‌का यह सब दृश्यप्रपञ्च खेलमात्र है। वे सम्पूर्ण विश्वके स्वामीरूपसे विख्यात हैं और यह समस्त जगत् उनकी आज्ञाका पालक है। श्रुतियोंमें साकार, निराकार, सर्वव्यापी, नित्य, सत्य एवं द्वैतरहित कहकर जिस परब्रह्मका प्रतिपादन किया गया है, वे ही भगवान् शिव हैं। वे समस्त कारणोंसे परे एवं परात्पर हैं। उन्हींके विषयमें श्रुतियाँ कहती हैं कि ब्रह्मका स्वरूप परमानन्दमय है। उन भगवान् शिवको वेद भी नहीं जानते, वाणी मनके साथ उनतक न पहुँचकर लौट आती है। वे अपनेद्वारा आप ही जानने योग्य हैं, परम ज्योतिःस्वरूप हैं और सबके हृदयमें अन्तर्यामीस्वरूपसे स्थित हैं। योगी पुरुष समाधिमें उनका साक्षात्कार करते हैं। वे वाणीद्वारा अनिर्वचनीय हैं। मायासे अनेक रूप धारण करके वास्तवमें रूपरहित हैं। वे अनन्त हैं, अन्तकस्वरूप हैं। सर्वज्ञ एवं कर्मशून्य हैं। उनका ऐश्वर्यमय स्वरूप इस प्रकार है—वे अर्धचन्द्रका मुकुट धारण करते हैं। उनका कण्ठ तमालके समान श्यामवर्ण है। ललाटमें ज्योतिर्मय नेत्र प्रकाशित होता है। उनके शरीरका वामार्ध भाग नारीके रूपमें सुशोभित होता है। वे अपने हाथोंमें शेषनागका भुजबंद पहनते हैं। गङ्गाजीकी तरङ्गोंके संसर्गसे उनकी जटाका तटप्रान्त सदा धुलता रहता है। उनका अङ्ग विभूतिसमूहसे उज्ज्वल प्रतीत होता है। भगवान् रुद्रके पर और अपर (सगुण-निर्गुण अथवा कार्य-कारण) दो रूप हैं, जो सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हैं। वे निराकार होकर भी साकार हैं। भगवान् शिव ही भोग और मोक्षके कारण हैं। जैसे शिव हैं वैसे विष्णु हैं, जैसे विष्णु हैं वैसे शिव हैं। शिव और विष्णुमें तनिक भी अन्तर नहीं है †। भगवान् विष्णु शार्ङ्ग धनुष एवं कौमोदकी गदा धारण करके सम्पूर्ण त्रिलोकीका शासन करते हैं और साधुपुरुषोंकी रक्षाके लिये दानवोंका विनाश करते हैं। शिवशर्मन्! अब तुम भगवान् विष्णुके लोकमें निवास करो।

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये लोपामुद्रे! इस प्रकार शिवशर्मा ब्राह्मण मोक्षपदको प्राप्त हुए। जो इस पुण्यमय उपाख्यानको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो उत्तम ज्ञानको प्राप्त होता है।

अगस्त्यजीका श्रीशैलपर कार्तिकेयजीकी सेवामें जाना और उनके मुखसे काशीकी महिमा श्रवण करना

व्यासजी कहते हैं—सूत! इस प्रकार काशीकी महिमा सुनाते हुए अगस्त्यजीने अपनी पत्नीके साथ श्रीपर्वतकी परिक्रमा करनेके पश्चात् कार्तिकेयजीके सुन्दर एवं विशाल वनको देखा। वहाँ लोहित नामका पर्वत है। उस पर्वतके समीप मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने अपनी पत्नीके साथ छः मुखोंवाले साक्षात् कार्तिकेयजीका दर्शन किया और पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर वैदिक सूक्तों तथा अपने बनाये हुए स्तोत्रद्वारा उनकी स्तुति की। स्तुतिके पश्चात् 'नमो नमः' कहते हुए कार्तिकेयजीकी दो-तीन बार परिक्रमा करके उनके द्वारा बैठनेकी आज्ञा मिलनेपर वे उनके सामने बैठे।

तब कार्तिकेयजीने कहा—देवताओंके मुख्य सहायक

* दिव्य वैकुण्ठधाम ब्रह्माण्डके अन्तर्गत नहीं, वह सबसे परे शुद्ध सच्चिदानन्दघनस्वरूप है। भगवान् और उनके परम धाममें कोई अन्तर नहीं है। वह सर्वत्र व्यापक होकर भी त्रिपाद्विभूति परमव्योममें अभिव्यक्त है। भागवतमें उसे मूर्तिमान् कैवल्य बताया गया है—'कैवल्यमिव मूर्तिमत्'। यहाँ जिस वैकुण्ठलोककी चर्चा की गयी है, वह ब्रह्मलोककी ही भाँति कोई अवान्तर लोक है।

† यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः। अन्तरं शिवविष्ण्वोश्च मनागपि न विद्यते॥

(स्क० पु० का० पू० २३। ४१)

मुनिवर अगस्त्यजी ! कुशल तो है न ? आप यहाँ आये हैं, यह मुझे मालूम हो गया था। विन्ध्याचल पर्वत ऊँचा उठ गया था, इसका भी मुझे पता है। वास्तवमें कुशल तो अविमुक्त नामक महाक्षेत्रमें ही है, जो भगवान् त्रिलोचन-द्वारा सुरक्षित है और जहाँ साक्षात् भगवान् शिव मरे हुए प्राणियों-को मोक्षदान करते हैं। भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोकमें अथवा पातालमें या महर्लोक आदि ऊपरके लोकोंमें भी मैंने वैसा उत्तम क्षेत्र कहीं नहीं देखा है। मुने ! यद्यपि मैं अकेला ही सर्वत्र विचरता रहता हूँ तथापि काशीक्षेत्रकी प्राप्तिके लिये यहाँ तपस्या करता हूँ। किंतु आजतक मेरा मनोरथ सफल नहीं हुआ। पुण्य, दान, जप, तप तथा नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा काशीक्षेत्र मिलनेवाला नहीं है। उसकी प्राप्ति तो केवल श्रीमहादेवजीके अनुग्रहसे होती है। अत्यन्त दुर्लभ काशीपुरीका निवास केवल ईश्वरके अनुग्रहसे ही सुलभ है। शरीर प्रतिदिन बूढ़ा होता जाता है, इन्द्रियाँ जराजर्जर हो रही हैं और आयुरूपी मृगको मृत्युरूपी शिकारी अपना निशाना बनाना ही चाहता है। ऐसी दशामें सम्पत्तिको विपत्ति जानकर और आयुको विद्युत्के समान चपल मानकर मनुष्य काशीपुरीका भलीभाँति सेवन करे। जबतक जीवनका अन्त न हो जाय, तबतक काशी न छोड़े। अहो ! बुढ़ापा निकट आ गया है, रोग अत्यन्त पीड़ा दे रहे हैं तथापि नाना प्रकारकी चेष्टाओंमें लगा हुआ देहधारी जीव काशीका सेवन करना नहीं चाहता ! अर्थोपार्जनका उपाय किये बिना भी धन प्राप्त हो सकता है, यह एक निश्चित बात है। अतः धनकी चिन्ता छोड़कर एकमात्र धर्मकी शरण ले। धर्मसे स्वर्ग भी सुलभ है, परंतु एक काशीपुरी अत्यन्त दुर्लभ है। पाशुपतयोग मोक्षका साधन है। प्रयागमें गङ्गा-यमुनाके सङ्गमका सेवन भी मुक्तिप्रद है तथा उससे भी बढ़कर अविमुक्त क्षेत्र है, जो अनायास मोक्ष देनेवाला है। प्रतिदिन अविच्छिन्नरूपसे वेदोंका पाठ, मन्त्रोंका जप, अग्निहोत्र, दान, अनेक प्रकारके यज्ञ, देवताओंकी उपासना, त्रिरात्र अथवा पञ्चरात्र आदि आगमोक्त विधिसे आराधना, सांख्य, योग और श्रीविष्णुकी आराधना—ये सभी श्रेष्ठ कर्म मोक्षके साधन बताये गये हैं। अयोध्या, मथुरा आदि पुरियाँ भी मरे हुए जीवोंको मोक्ष देनेवाली बतायी गयी हैं। ये सभी कैवल्य मोक्षके साधन हैं, इसमें सन्देह नहीं। अन्य तीर्थ काशीकी प्राप्ति कराते हैं और काशीको प्राप्त होकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। इसीलिये वह पवित्र क्षेत्र इस ब्रह्माण्डमण्डलमें भगवान् विश्वनाथको सदा प्रिय है। सुव्रत ! मैं तो काशीसे आनेवाली वायुका भी स्पर्श चाहता हूँ। तुम तो साक्षात् काशीमें रहकर आये हो। जो जितेन्द्रिय होकर तीन रात भी काशीमें निवास करते हैं, उनकी चरण-धूलिका स्पर्श अवश्य ही पवित्र कर देता है। तुम तो वहाँके निवासी ही थे, अतः तुम्हारे लिये क्या कहना है।

यों कहकर कार्तिकेयजीने अगस्त्य मुनिके सब अङ्गोंका स्पर्श किया और ऐसा करके उन्होंने अमृतके सरोवरमें स्नान करनेका सुख पाया। तत्पश्चात् 'जय विश्वनाथ' ऐसा कहकर उन्होंने अपने दोनों नेत्र बंद कर लिये और एक क्षणतक भगवान् शिवके अनिर्वचनीय स्वरूपका ध्यान किया। ध्यानसे निवृत्त होनेपर उनसे अगस्त्यजीने पूछा—'स्वामिन् ! आप मुझसे काशीकी महिमा कहिये। वह क्षेत्र मुझे बहुत प्रिय है।'

स्कन्द बोले—अगस्त्यजी ! काशीक्षेत्र इस लोकमें अत्यन्त गोपनीय बताया गया है। वहाँ सब प्रकारकी सिद्धि सन्निकट है; क्योंकि उसमें साक्षात् परमेश्वर सदा निवास करते हैं। काशीक्षेत्र आकाशमें स्थित है। वह इस भूलोकसे संलग्न नहीं है, किंतु इस बातको केवल योगीजन देख पाते हैं, अयोगी नहीं। जो पलभर भी अविमुक्त क्षेत्रके प्रति अतिशय भक्ति-भाव धारण करता है, उसने मानो ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक बड़ी भारी तपस्या कर ली। उसके द्वारा शिव-सम्बन्धी सम्पूर्ण दिव्य व्रतोंका पालन हो जाता है। जो एक वर्षतक काशीमें क्रोधको जीतकर इन्द्रियसंयमपूर्वक रहता है, दूसरेके धनसे अपने शरीरका पोषण न करके पराये अन्नका परित्याग करता है, परनिन्दासे बचता है और प्रतिदिन कुछ-न-कुछ दान करता रहता है, उसने पूर्वजन्ममें सहस्रों वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की है, ऐसा मानना चाहिये। जो काशी-क्षेत्रके माहात्म्यको जाननेवाला मनुष्य जीवनभर काशीवास करता है, वह जन्म-मृत्युका भय छोड़कर परम गतिको प्राप्त होता है। जो मृत्युपर्यन्त काशीका परित्याग नहीं करता, उसकी केवल ब्रह्महत्या ही नहीं दूर होती, अविद्या भी दूर हो जाती है। जो अनन्यचित्त होकर काशीक्षेत्रको नहीं छोड़ता, वह जरा-मृत्यु तथा गर्भवासके अत्यन्त दुःसह दुःखको त्याग देता है। जो बुद्धिमान् मानव इस पृथ्वीपर फिर जन्म लेना नहीं चाहता, वह देवताओं तथा ऋषियोंद्वारा सेवित काशीक्षेत्रका कभी त्याग न करे। अन्तकालमें वातसे पीड़ित हुए मनुष्यके मर्मस्थान जब विदीर्ण होने लगते हैं,

उस समय वह अपनी सुध-बुध खो बैठता है। इसी समय साक्षात् भगवान् विश्वनाथ प्राणत्यागकालमें उपस्थित हो उस मुमूर्षु जीवको तारक मन्त्रका उपदेश देते हैं, जिससे वह शिवस्वरूप हो जाता है। अतः अतिशय पापोंसे भरे हुए इस मानव-शरीरको अनित्य जानकर मनुष्य संसारभयका नाश करनेवाले काशीक्षेत्रका सेवन करे। जो विघ्नोंसे आहत होनेपर भी काशीक्षेत्रका त्याग नहीं करता, वह मोक्ष-सम्पत्तिको पाकर ऐसी स्थितिमें पहुँच जाता है, जहाँ दुःखका सर्वथा अभाव है। अतः कौन ऐसा बुद्धिमान् पुरुष है, जो बड़े-बड़े पापपुञ्जका नाश तथा पुण्योंकी वृद्धि करनेवाली और अन्तमें भोग एवं मोक्ष देनेवाली काशीपुरीका सेवन न करेगा? अविमुक्त क्षेत्रके माहात्म्यका मैं केवल छः मुखोंसे किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ, जब कि शेषनाग सहस्र मुखोंसे भी उसका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं।

काशीकी उत्पत्ति-कथा, काशी और मणिकर्णिकाका माहात्म्य

अगस्त्यजीने पूछा—भगवन्! यह अविमुक्त क्षेत्र इस भूतलपर कबसे प्रसिद्ध हुआ और किस प्रकार यह मोक्ष देनेवाला हुआ?

स्कन्द बोले—मुने! मेरे पिता महादेवजीने माता पार्वतीको इसी प्रश्नका उत्तर इस प्रकार दिया था—'महाप्रलयकालमें समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो गये थे। सर्वत्र अन्धकार छा रहा था। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, दिन, रात आदि कुछ भी नहीं था। केवल वह सत्स्वरूप ब्रह्म ही शेष था, जिसका श्रुति 'एकमेवाद्वितीयम्' कहकर वर्णन करती है। वह मन और वाणीका विषय नहीं है। उसका न कोई नाम है, न रूप। वह सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्दस्वरूप एवं परम प्रकाशमय है। वहाँ किसी भी प्रमाणकी पहुँच नहीं है। वह आधाररहित, निर्विकार एवं निराकार है। निर्गुण, योगिगम्य, सर्वव्यापी, एकमात्र कारण, निर्विकल्प, कर्मोंके आरम्भोंसे रहित, मायासे परे और उपद्रवशून्य है। जिस परमात्माके लिये इस प्रकार विशेषण दिये जाते हैं, वह कल्पान्तमें अकेला ही था। कल्पके आदिमें उसके मनमें यह संकल्प हुआ कि 'मैं एकसे दो हो जाऊँ।' अतः यद्यपि वह निराकार है तो भी उसने अपनी लीलाशक्तिसे साकाररूप धारण किया। परमेश्वरके सङ्कल्पसे प्रकट हुई वह द्वितीय मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणोंसे युक्त, सर्वज्ञानमयी, शुभ, सर्वव्यापक, सर्वस्वरूप, सबकी साक्षी, सबको उत्पन्न करनेवाली और सबके लिये एकमात्र वन्दनीय थी। प्रिये! उस निराकार परब्रह्मकी वह मूर्ति मैं ही हूँ। प्राचीन और अर्वाचीन विद्वान् मुझे ईश्वर कहते हैं। तदनन्तर साकाररूपमें प्रकट होकर भी मैं अकेला ही स्वेच्छानुसार विहार करता रहा। फिर अपने शरीरसे कभी अलग न होनेवाली तुम प्रकृतिको मैंने अपने ही विग्रहसे प्रकट किया। तुम्हीं प्रधान, प्रकृति और गुणवती माया हो। तुम्हें बुद्धितत्त्वकी जननी तथा निर्विकार बताया जाता है। फिर एक ही समय मुझ कालस्वरूप आदिपुरुषने तुम शक्तिके साथ उस काशी-क्षेत्रको भी प्रकट किया।

स्कन्द कहते हैं—मुने! वह शक्ति प्रकृति कही गयी है और ईश्वरको परम पुरुष कहा गया है। वे दोनों परमानन्दस्वरूपसे उस परमानन्दमय काशीक्षेत्रमें रमण करने लगे। उस क्षेत्रका परिमाण पाँच कोसका बताया गया है। मुने! प्रलयकालमें भी उन दोनों (शिव-पार्वती) ने उस क्षेत्रका कभी त्याग नहीं किया है, इसलिये उसे 'अविमुक्त' क्षेत्र कहते हैं। जब यह भूमण्डल नहीं रहता और जब जलकी भी सत्ता नहीं रह जाती, उस समय अपने विहारके लिये जगदीश्वर शिवने इस क्षेत्रका निर्माण किया है। कुम्भज! काशीक्षेत्रके इस रहस्यको कोई नहीं जानता। यह काशीक्षेत्र भगवान् शिवके आनन्दका हेतु है, इसलिये उन्होंने पहले इसका नाम 'आनन्दवन' रक्खा था। उस आनन्दकाननमें इधर-उधर जो सम्पूर्ण शिवलिङ्ग हैं, उन्हें आनन्दकन्दके बीजोंके अङ्कुरकी भाँति जानना चाहिये। तदनन्तर भगवान् शिवने सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बाके साथ अपने बायें अङ्गमें अमृतकी वर्षा करनेवाली दृष्टि डाली। तब उससे एक त्रिभुवनसुन्दर पुरुष प्रकट हुआ, जो परम शान्त, सत्त्वगुणसे पूर्ण, समुद्रसे भी अधिक गम्भीर और क्षमावान् था। उसके अङ्गोंकी कान्ति इन्द्रनीलमणिके समान श्याम थी। नेत्र विकसित कमलदलके समान सुन्दर थे। उसने सुवर्णरंगके दो सुन्दर पीताम्बरोंसे अपने शरीरको आच्छादित कर रक्खा था। वह सुन्दर एवं प्रचण्ड युगल बाहुदण्डोंसे सुशोभित था। उसके नाभिकमलसे बड़ी उत्तम सुगन्ध फैल रही थी। वह

अकेला ही सम्पूर्ण गुणोंका आश्रय और अकेला ही समस्त कलाओंकी निधि था। वह एक ही सब पुरुषोंसे उत्तम था, इसलिये 'पुरुषोत्तम' कहलाया। तत्पश्चात् महामहिमासे विभूषित उस महान् पुरुषको देखकर महादेवजीने कहा—'अच्युत! तुम महाविष्णु हो, तुम्हारे निःश्वाससे वेद प्रकट होंगे और उनसे तुम सब कुछ जानोगे।' उनसे ऐसा कहकर भगवान् शिव शिवाके साथ पुनः आनन्दकाननमें प्रवेश कर गये।

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने क्षणभर ध्यानमें तत्पर हो तपस्यामें ही मन लगाया। उन्होंने अपने चक्रसे एक सुन्दर

पुष्करिणी खोदकर उसे अपने शरीरके पसीनेके जलसे भर दिया। फिर उसीके किनारे घोर तपस्या की। तब शिवजी पार्वतीजीके साथ वहाँ प्रकट हुए और बोले—'महाविष्णो! वर माँगो।'

श्रीविष्णु बोले—देवदेव महेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मैं सदा भवानीसहित आपका दर्शन करना चाहता हूँ।

भगवान् शिव बोले—'एवमस्तु'। जनार्दन! इस स्थानपर मेरी मणिजटित कर्णिका (मणिमय कुण्डल) गिर पड़ी है, इसलिये इस तीर्थका नाम मणिकर्णिका हो।

श्रीविष्णुने कहा—प्रभो! यहाँ मुक्तामय कुण्डल गिरनेसे यह उत्तम तीर्थ मुक्तिका प्रधान क्षेत्र हो। यहाँ शिवस्वरूप अनिर्वचनीय ज्योति प्रकाशित होती है, इसलिये इसका दूसरा नाम 'काशी' प्रसिद्ध हो। चार प्रकारके जीव समुदायमें ब्रह्मासे लेकर कीटतक जितने भी जीव हैं, वे सः काशीमें मरनेपर मोक्षको प्राप्त हों तथा इस मणिकर्णिका नामक श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान, सन्ध्या, जप, होम, वेदाध्ययन, तर्पण, पिण्डदान, गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, अश्व, दीप, अन्न, वस्त्र, आभूषण और कन्या—इन सबका दान, अनेक यज्ञ, व्रतोद्यापन, वृषोत्सर्ग और शिवलिङ्ग आदिकी स्थापना—इत्यादि शुभकर्मोंको जो बुद्धिमान् मनुष्य करे, उसके उस कर्मका फल मोक्ष हो। जो है, जो होगा और जो हो चुका है, उस सबसे यह क्षेत्र अधिक एवं शुभोदयकारी हो। काशीका नाम लेनेवाले लोगोंके भी पापका सदा ही क्षय हो।

श्रीमहादेवजी बोले—महाबाहु विष्णु! तुम नाना प्रकारकी यथायोग्य सृष्टि करो और जो पापके मार्गपर चलनेवाले दुष्टात्मा हैं, उनका संहार करनेमें कारण बनो। यह पाँच-पाँच कोसका लंबा-चौड़ा क्षेत्र काशीधाम मुझे बहुत प्रिय है। यहाँ केवल मेरी आज्ञा चल सकती है, यमराज आदि दूसरोंकी नहीं। अविमुक्त क्षेत्रमें निवास करनेवाले पापी जीवोंका भी मैं ही शासक हूँ, दूसरा नहीं। काशीसे सौ योजन दूर रहकर भी जो इस क्षेत्रका मन-ही-मन स्मरण करता है, वह पापोंसे पीड़ित नहीं होता। काशीमें पहुँचकर मनुष्य उसके पुण्यसे मोक्षपदका भागी होता है। जो मन-इन्द्रियोंको वशमें रखकर काशीमें बहुत समयतक निवास करके भी दैवयोगसे अन्यत्र मृत्युको प्राप्त होता है, वह भी स्वर्गीय सुख भोगकर अन्तमें काशीको प्राप्त हो मोक्षसम्पत्तिको पा लेता है। जो भगवान् विश्वनाथकी प्रसन्नताके लिये काशीमें न्यायपूर्वक धन देता है, अथवा निधन (मृत्यु)को प्राप्त होता है, वह धन्य है और वही धर्मका ज्ञाता है। पाँच कोसका लंबा-चौड़ा सम्पूर्ण अविमुक्त क्षेत्र विश्वनाथ नामसे प्रसिद्ध एक ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप है, ऐसा जानना चाहिये। जैसे आकाशके एक देशमें स्थित होनेपर भी सर्वगत सूर्यमण्डल सबको दिखायी देता है, उसी प्रकार विश्वनाथ केवल काशीमें स्थित होकर भी सर्वव्यापी होनेके कारण सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। जो क्षेत्रकी महिमाको नहीं जानता, जिसमें श्रद्धाका सर्वथा अभाव है, वह भी यदि समयानुसार काशीमें प्रवेश कर गया, तो निष्पाप हो जाता है और यदि वहाँ उसकी मृत्यु हो गयी तो वह भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है। काशीमें पाप करके भी मनुष्य यदि काशीमें ही मर जाय, तो पहले रुद्रपिशाच होकर

वह पुनः मुक्तिको प्राप्त कर लेगा। इस शरीरको नाशवान् जानकर और गर्भवासके समय होनेवाली वेदनाको याद करके धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यको भी त्यागकर निरन्तर काशीपुरीका सेवन करना चाहिये। अभी मैं नौजवान हूँ, अभी मेरी मृत्यु बहुत दूर है, ऐसी बात चित्तमें कभी नहीं लानी चाहिये। वृद्धावस्थाको प्राप्त होनेके पहले ही पुरानी झोंपड़ीकी तरह अपने तुच्छ गृहको त्याग कर शीघ्र शङ्करजीकी पुरी काशीकी यात्रा करनी चाहिये।

श्रीगङ्गाजीकी महिमा

श्रीमहादेवजी कहते हैं—विष्णो! सूर्यवंशके महातेजस्वी परम धार्मिक राजा भगीरथ अपने पितामहोंका उद्धार करनेकी इच्छासे तपस्याके लिये पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्‌को गये। हरे! ब्राह्मणकी शापाग्निसे दग्ध होकर बड़ी भारी दुर्गतिमें पड़े हुए जीवोंको गङ्गाके सिवा दूसरा कौन स्वर्गलोकमें पहुँचा सकता है, क्योंकि वह शुद्ध, विद्यास्वरूपा, इच्छा, ज्ञान एवं क्रियारूप तीन शक्तियोंवाली, दयामयी, आनन्दामृतरूपा तथा शुद्ध धर्मस्वरूपिणी हैं। जगद्धात्री परब्रह्मस्वरूपिणी गङ्गाको मैं अखिल विश्वकी रक्षा करनेके लिये लीलापूर्वक अपने मस्तकपर धारण करता हूँ। विष्णो! जो गङ्गाजीका सेवन करता है, उसने सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया, सब यज्ञोंकी दीक्षा ले ली और सम्पूर्ण व्रतोंका अनुष्ठान पूरा कर लिया। कलियुगमें कलुषित चित्तवाले, पराये धनका लोभ रखनेवाले तथा विधिहीन कर्म करनेवाले मनुष्योंके लिये गङ्गाजीके बिना दूसरी कोई गति नहीं है। जो दूर रहकर भी गङ्गाजीके माहात्म्यको जानता है और भगवान् गोविन्दमें भक्ति रखता है, वह अयोग्य हो तो भी गङ्गा उसपर प्रसन्न होती हैं। अज्ञान, राग और लोभ आदिसे मोहित चित्तवाले पुरुषोंकी धर्म और गङ्गामें विशेष श्रद्धा नहीं होती। गङ्गाके गर्भमें मेरा तेजस्वरूप अग्नि है, वह मेरे वीर्यसे सुरक्षित है। अतएव सब दोषोंको जलानेवाली तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली है। जैसे वज्रका मारा हुआ पर्वत सैकड़ों टुकड़ोंमें बिखर जाता है, उसी प्रकार पापोंका समूह गङ्गाके स्मरणमात्रसे शतधा नष्ट हो जाता है। जो चलते, खड़े होते, जप और ध्यान करते, खाते-पीते, जागते-सोते तथा बात करते समय भी सदा गङ्गाजीका स्मरण करता रहता है, वह संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है*। जो पितरोंके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक गुड़, घी और तिलके साथ मधुयुक्त खीर गङ्गामें डालते हैं, उसके पितर सौ वर्षतक तृप्त बने रहते हैं और वे सन्तुष्ट होकर अपनी सन्तानोंको नाना प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्रदान करते हैं। जैसे बिना इच्छाके भी स्पर्श करनेपर आग जला ही देती है, उसी प्रकार अनिच्छासे भी अपने जलमें स्नान करनेपर गङ्गा मनुष्यके पापोंको भस्म कर देती हैं*। जो गङ्गा-स्नानके लिये उद्यत होकर चलता है और मार्गमें ही मर जाता है, वह भी निःसन्देह गङ्गा-स्नानका फल पाता है। जो लोग खोटी बुद्धिवाले, दुराचारी, कोरा तर्क करनेवाले और अधिक सन्देह रखनेवाले मोहित मनुष्य हैं, वे गङ्गाको अन्य साधारण नदियोंके समान ही देखते हैं। जैसे क्रोधसे तपका, कामसे बुद्धिका, अन्यायसे लक्ष्मीका, अभिमानसे विद्याका तथा पाखण्ड, कुटिलता और छल-कपटसे धर्मका नाश होता है, उसी प्रकार गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे मन्त्रोंमें ॐकार, धर्मोंमें अहिंसा और कमनीय वस्तुओंमें लक्ष्मी श्रेष्ठ हैं तथा जिस प्रकार विद्याओंमें आत्मविद्या और स्त्रियोंमें गौरीदेवी उत्तम हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थोंमें गङ्गातीर्थ विशेष माना गया है। हरे! जो परम बुद्धिमान् मनुष्य तुममें और मुझमें भेद-भाव नहीं करता, वही शिवभक्त जानने योग्य है। अनेक रूपवाले पितर सदा यह गाथा गाते हैं कि 'क्या हमारे कुलमें भी कोई गङ्गा नहानेवाला होगा, जो विधि और श्रद्धाके साथ गङ्गा-स्नान कर देवताओं तथा ऋषियोंका भलीभाँति तर्पण करके दीनों, अनाथों और दुखियोंको तृप्त करते हुए हमारे निमित्त जलाञ्जलि देगा? हमारे कुलमें कोई ऐसा पुरुष उत्पन्न हो, जो भगवान् शिव और विष्णुमें समान दृष्टि रखते हुए उनके लिये मन्दिर बनवावे और भक्तिपूर्वक उस मन्दिरमें झाड़ू देने आदिका कार्य करे।' जो गङ्गाका सेवन करता है, वही मुनि है और वही पण्डित है। वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

---

* गच्छंस्तिष्ठन् जपन् ध्यायन् भुञ्जन् जाग्रत् स्वपन् वदन्।
यः स्मरेत् सततं गङ्गां स हि मुच्येत बन्धनात्॥
(स्क० पु० का० पू० २७। २७)

* अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहनो हि यथा दहेत्।
अनिच्छयापि संस्नाता गङ्गा पापं तथा दहेत्॥
(स्क० पु० का० पू० २७। ४९)

चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि करके कृतार्थ जानने योग्य है। गङ्गा-स्नान करनेके लिये तिथि, नक्षत्र और पूर्व आदि दिशाका विचार नहीं करना चाहिये; क्योंकि गङ्गामें स्नान करनेमात्रसे समस्त सञ्चित पापका नाश हो जाता है। जो प्रतिदिन आदरसे गङ्गाजीका माहात्म्य सुनते हैं, उन्हें गङ्गा-स्नानका फल होता है। जो पितरोंके उद्देश्यसे गङ्गाजलके द्वारा शिवलिङ्गको स्नान कराते हैं, उनके पितर यदि बड़े भारी नरकमें पड़े हों तो भी तृप्त हो जाते हैं। जो एक बार भी ताँबेके पात्रमें रक्खे हुए अष्टद्रव्ययुक्त गङ्गाजलसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते हैं, वे अपने पितरोंके साथ सूर्यलोकमें जाकर प्रतिष्ठित होते हैं। जल, दूध, कुशका अग्रभाग, घी, मधु, गायका दही, लाल कनेर तथा लाल चन्दन—इन आठ अङ्गोंसे युक्त अष्टाङ्ग अर्घ्य बताया गया है, जो सूर्यदेवको अधिक सन्तुष्ट करनेवाला है*। चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें, व्यतीपात योगमें, विषुव-योगमें † तथा दोनों अयनोंमें (मकर और कर्ककी संक्रान्तिके दिन) किया हुआ गङ्गा-स्नान लाखगुना पुण्य देनेवाला होता है। यदि सोमवारको चन्द्रग्रहण तथा रविवारको सूर्यग्रहण हो तो वह चूड़ामणि नामक पर्व कहलाता है। उसमें किया हुआ गङ्गा-स्नान असंख्य पुण्यदायक है। ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षमें हस्त नक्षत्रयुक्त दशमी तिथिको, स्त्री हो या पुरुष भक्तिभावसे गङ्गाजीके तटपर रात्रिमें जागरण करे और दस प्रकारके दस-दस सुगन्धित पुष्प, फल, नैवेद्य, दस दीप और दशाङ्ग धूपके द्वारा बुद्धिमान् पुरुष श्रद्धा और विधिके साथ दस बार गङ्गाजीकी पूजा करे। गङ्गाजीके जलमें घृतसहित तिलोंकी दस अञ्जलि डाले। फिर गुड़ और सत्तूके दस पिण्ड बनाकर उन्हें भी गङ्गाजीमें डाले। यह सब कार्य मन्त्रद्वारा होना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै स्वाहा।' यह बीस अक्षरका मन्त्र है। गङ्गाजीके लिये पूजा, दान, जप, होम सब इसी मन्त्रसे करने योग्य है। इस प्रकार मन्त्रोच्चारणके साथ धूप, दीप आदि समर्पण करते हुए पूजा करके मुझ शिवका, तुम विष्णु, ब्रह्माका, सूर्यका, हिमवान् पर्वतका और राजा भगीरथ भलीभाँति पूजन करे। दस ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक दस तिल दे। इस प्रकार विधानसे पूजा सम्पन्न करके दिन उपवास करनेवाला पुरुष निम्नाङ्कित दस पापोंसे मुक्त हो जा है। बिना दी हुई वस्तुको लेना, निषिद्ध हिंसा, परस्त्री-संगम-यह तीन प्रकारका दैहिक पाप माना गया है। कठोर वच मुँहसे निकालना, झूठ बोलना, सब ओर चुगली करना और अंट-संट बातें बकना—ये वाणीसे होनेवाले चार प्रकार पाप हैं। दूसरेके धनको लेनेका विचार करना, मनसे दूस का बुरा सोचना और असत्य वस्तुओंमें आग्रह रखना-ये तीन प्रकारके मानसिक पाप कहे गये हैं*। पूर्वो प्रकारसे दान-पूजा और व्रत करनेवाला पुरुष दस जन्मों उपार्जित इन दस प्रकारके पापोंसे निःसन्देह छूट जाता है।

तदनन्तर गङ्गाजीके सम्मुख श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्र पढ़े—'ॐ शिवस्वरूपा श्रीगङ्गाजीको नमस्कार है। कल्याण दायिनी गङ्गाको नमस्कार है। देवि गङ्गे ! आप विष्णुरूपिणी हैं, आपको नमस्कार है। ब्रह्मस्वरूपा ! आपको नमस्कार है रुद्ररूपिणी ! आपको नमस्कार है। शङ्करप्रिया ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। देवस्वरूपिणी ! आपको नमस्का है। ओषधिरूपा ! आपको नमस्कार है। आप सबके सम्पूर्ण रोगोंकी श्रेष्ठ वैद्या हैं, आपको नमस्कार है। स्थावर और जङ्गम प्राणियोंसे प्रकट होनेवाले विषका आप नाश करनेवाली हैं। आपको नमस्कार है। संसाररूपी विषका नाश करनेवाली जीवनरूपा आपको नमस्कार है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों प्रकारके क्लेशोंका संहार करनेवाली आपको नमस्कार है। प्राणोंकी स्वामिनी आपको नमस्कार है, नमस्कार है। शान्तिका विस्तार करनेवाली शुद्धस्वरूपा आपको नमस्कार है। सबको शुद्ध करनेवाली तथा पापोंकी शत्रुस्वरूपा आपको नमस्कार है। भोग, मोक्ष तथा कल्याण-प्रदान करनेवाली आपको बार-बार नमस्कार है। भोग और उपभोग देनेवाली भोगवती नामसे प्रसिद्ध आप पातालगङ्गाको

---

* आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं मधु गवां दधि।
रक्तानि करवीराणि रक्तचन्दनमित्यपि॥
अष्टाङ्गार्घ्योऽयमुद्दिष्टस्त्वतीव रवितोषणः॥
(स्क० पु० का० पू० २७। ९८-९९)

† ज्योतिषके अनुसार वह समय जब कि सूर्य विषुवरेखापर पहुँचता है और दिन-रात दोनों बराबर होते हैं, विषुवयोग कहलाता है। ऐसा समय वर्षमें दो बार आता है। एक तो सौर चैत्र मासकी नवमी तिथिको और दूसरा सौर आश्विनकी नवमी तिथिको।

* अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम्॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चैव सर्वशः।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम्॥
(स्क० पु० का० पू० २७। १५२-१५४)

मस्कार है। मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्ध तथा स्वर्ग प्रदान करनेवाली आप आकाशगङ्गाको बार-बार नमस्कार है। आप भूतल, आकाश और पाताल—तीन मार्गोंसे जानेवाली और तीनों लोकोंकी आभूषणस्वरूपा हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर-सङ्गम—इन तीन विशुद्ध तीर्थस्थानोंमें विराजमान आपको नमस्कार है। क्षमावती आपको नमस्कार है। गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्निरूप त्रिविध अग्नियोंमें स्थित रहनेवाली तेजोमयी आपको बार-बार नमस्कार है। आप ही अलकनन्दा हैं, आपको नमस्कार है। शिवलिङ्ग धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। सुधाधारामयी आपको नमस्कार है। जगत्‌में मुख्य सरितारूप आपको नमस्कार है। रेवती-नक्षत्ररूपा आपको नमस्कार है। बृहती नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। लोकोंको धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्वके लिये मित्ररूपा आपको नमस्कार है। सबको समृद्धि देकर आनन्दित करनेवाली आपको बारंबार नमस्कार है। आप पृथ्वीरूपा हैं, आपको नमस्कार है। आपका जल कल्याणमय है और आप उत्तम धर्मस्वरूपा हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। बड़े-छोटे सैकड़ों प्राणियोंसे सेवित आपको नमस्कार है। सबको तारनेवाली आपको नमस्कार है, नमस्कार है। संसार-बन्धनका उच्छेद करनेवाली अद्वैतरूपा आपको नमस्कार है। आप परम शान्त, सर्वश्रेष्ठ तथा मनोवाञ्छित वर देनेवाली हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप प्रलयकालमें उग्ररूपा हैं, अन्य समयमें सदा सुखका भोग करानेवाली हैं तथा उत्तम जीवन प्रदान करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मज्ञान देनेवाली तथा पापोंका नाश करनेवाली हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाली जगन्माता आपको नमस्कार है। आप समस्त विपत्तियोंकी शत्रुभूता तथा सबके लिये मङ्गलस्वरूपा हैं, आपके लिये बार-बार नमस्कार है। शरणागतों, दीनों तथा पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली और सबकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि नारायणि! आपको नमस्कार है। आप पाप-ताप अथवा अविद्यारूपी मलसे निर्लिप्त, दुर्गम दुःखका नाश करनेवाली तथा दक्ष हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप पर और अपर सबसे परे हैं। मोक्षदायिनी गङ्गे! आपको नमस्कार है। गङ्गे! आप मेरे आगे हों, गङ्गे! आप मेरे पीछे रहें, गङ्गे! आप मेरे उभयपार्श्वमें स्थित हों तथा गङ्गे! मेरी आपमें ही स्थिति हो। आकाशगामिनी कल्याणमयी गङ्गे! आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र आप हैं। गङ्गे! आप ही मूल-प्रकृति हैं, आप ही परम पुरुष हैं तथा आप ही परमात्मा शिव हैं; शिवे! आपको नमस्कार है *। जो श्रद्धापूर्वक इस

---

* ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः।
नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः।
सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्छ्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते।
स्थास्नुजङ्गमसंभूतविषहन्त्र्यै नमोऽस्तु ते॥
संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमोऽस्तु ते।
तापत्रितयसंहन्त्र्यै प्राणेश्यै ते नमो नमः॥
शान्तिसन्तानकारिण्यै नमस्ते शुद्धमूर्तये।
सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापारिमूर्तये॥
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः।
भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तु ते॥
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यभूषायै त्रिपथायै नमो नमः॥
नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै क्षमावत्यै नमो नमः।
त्रिहुताशनसंस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः॥
नन्दायै लिङ्गधारिण्यै सुधाधारात्मने नमः।
नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमो नमः॥
बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यै नमोऽस्तु ते।
नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमो नमः॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमो नमः।
परापरशताढ्यायै तारायै ते नमो नमः॥
पाशजालनिकृन्तिन्यै अभिन्नायै नमोऽस्तु ते।
शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमो नमः॥
उग्रायै सुखजग्ध्यै च सञ्जीविन्यै नमोऽस्तु ते।
ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः॥
प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते।
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः।
परापरपरायै च गङ्गे निर्वाणदायिनि॥
गङ्गे ममाग्रतो भूया गङ्गे मे तिष्ठ पृष्ठतः।
गङ्गे मे पार्श्वयोरेधि गङ्गे त्वय्यस्तु मे स्थितिः॥
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गाङ्गते शिवे।
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि।
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे॥
(स्क० पु० का० पू० २७। १६७—१८)

स्तोत्रको पढ़ता और सुनता है, वह मन, वाणी और शरीर-द्वारा होनेवाले पूर्वोक्त दस प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। यह स्तोत्र जिसके घरमें लिखकर रक्खा हुआ हो, उसे कभी अग्नि, चोर और सर्प आदिका भय नहीं होता। ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षमें हस्त नक्षत्रसहित दशमी तिथिका यदि बुधवारसे योग हो, तो उस दिन गङ्गाजीके जलमें खड़ा होकर जो दस बार इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह दरिद्र हो या असमर्थ, वह भी उसी फलको प्राप्त होता है, जो पूर्वोक्त विधिसे यत्नपूर्वक गङ्गाजीकी पूजा करनेपर उपलब्ध होनेवाला बताया गया है। विष्णो! जैसे मैं हूँ, वैसे तुम हो, जैसे तुम हो, वैसी उमादेवी हैं और जैसी उमादेवी हैं, वैसी गङ्गा हैं। इन चारों रूपोंमें भेद नहीं है।

गङ्गाजीकी महिमा

भगवान् शिव कहते हैं—जो तीनों लोकोंमें प्रवाहित होनेवाली गङ्गाजीके तटपर जाकर एक बार भी पिण्डदान करता है, वह तिलमिश्रित जलके द्वारा अपने पितरोंका भव-सागरसे उद्धार कर देता है। सम्पूर्ण देवता और पितर गङ्गाजीमें सदा वर्तमान रहते हैं, इसलिये वहाँ उनका आवाहन और विसर्जन नहीं होता। पिताके कुलमें अथवा माताके कुलमें तथा गुरु, श्वशुर और भाई-बन्धुओंके कुलमें जो अपने सम्बन्धी मरे हों अथवा जो अन्य बन्धु-बान्धव मृत्युको प्राप्त हुए हों; जो दाँत निकलनेके पहले अथवा गर्भमें ही पीड़ित होकर मरे हों; जो अग्नि, बिजली और चोरके द्वारा मरे हों; जो व्याघ्र अथवा अन्य दाढ़ोंवाले हिंसक जीवोंसे मारे गये हों; जो फाँसी लगाकर या ऊपरसे नीचे गिरकर मरे हों; जिन्होंने आत्मघात किया हो अथवा जो अपना शरीर बेचनेवाले, चोर, यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाले, रस-विक्रयी, पापरोगी, घरोंमें आग लगानेवाले, जहर देनेवाले अथवा गोहत्यारे रहे हों और अपने कुलमें ही उनका जन्म हुआ रहा हो; उनको भी यदि एक बार मनुष्य विधिपूर्वक गङ्गा-जलसे तर्पण करे, तो वे भी स्वर्गलोकमें पहुँच जाते हैं और यदि पहलेसे स्वर्गमें हों, तो मोक्षको प्राप्त होते हैं। तीनों लोकोंमें जो कोई भी मनोवाञ्छित फल देनेवाले हैं, वे सब काशीमें उत्तरवाहिनी गङ्गाका सेवन करते हैं। केवल गङ्गा भी मुक्ति देनेमें समर्थ हैं, ऐसा निर्णय हो चुका है। किंतु अविमुक्त क्षेत्रमें मेरे निवासस्थानके गौरवसे वे विशेषरूपसे मुक्तिदायिनी होती हैं। पापोंसे चञ्चल चित्तवाले तथा संसार-रूपी रोगसे ग्रस्त रहनेवाले मन्दबुद्धि मनुष्योंके लिये गङ्गाजी ही सर्वश्रेष्ठ हैं। जो गङ्गाजीके तटपर टूटे-फूटे घाटोंका संस्कार करते हैं अथवा वहाँके गिरे-पड़े देवमन्दिरोंका जीर्णोद्धार करते हैं, वे मेरे लोकमें चिरकालतक अक्षय सुख भोगते हैं। मनुष्योंकी हड्डी जबतक गङ्गाजीके जलमें स्थित रहती है, उतने हजार वर्षोंतक वे स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होते हैं।

स्कन्दजी कहते हैं—मुनिवर अगस्त्य! वस्तुशक्तिका यह विचार अद्भुत एवं अनिर्वचनीय है। गङ्गाजी द्रवके रूपमें भगवान् सदाशिवकी कोई परा शक्ति हैं। करुणारूपी अमृतरससे भरे हुए देवाधिदेव भगवान् शङ्करने समस्त संसारका उद्धार करनेके लिये ही गङ्गाजीको प्रवृत्त किया है। मुने! गङ्गाधर शिवने दयावश श्रुतियोंके अक्षरोंको निचोड़कर उस ब्रह्मद्रवसे ही गङ्गाका निर्माण किया है। जो गङ्गाजीके तटकी मिट्टीको अपने मस्तकपर लगाता है, उसका अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है। गङ्गा अपने नामका कीर्तन करनेसे पुण्यकी वृद्धि और पापका नाश करती है। दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा उसमें स्नान करनेसे क्रमशः दसगुना फल होता है, ऐसा जानना चाहिये। ऋषियोंद्वारा सेवित, भगवान् विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न, अति प्राचीन तथा परम पुण्यमयी धारासे युक्त भगवती गङ्गाकी जो लोग मनसे शरण लेते हैं, वे ब्रह्मधामको प्राप्त होते हैं। जो माताकी भाँति इस संसारके जीवोंको पुत्र मानकर सदा उन्हें स्वर्गलोकको पहुँचाती है और सम्पूर्ण उत्तम गुणोंसे सम्पन्न है, उत्तम ब्रह्मलोककी इच्छा रखनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषोंको सदा ही उस गङ्गाकी उपासना करनी चाहिये। जैसे ब्रह्मलोक सब लोकोंमें उत्तम है, उसी प्रकार गङ्गा समस्त सरिताओं और सरोवरोंसे श्रेष्ठ है। गङ्गाके जलमें स्नान करनेवाले पुरुषका समस्त पातक तत्काल नष्ट हो जाता है और उसे उसी क्षण महान् श्रेयकी प्राप्ति हो जाती है। गङ्गामें पुत्र-पौत्र आदि यदि अपने पितरोंके लिये श्रद्धापूर्वक जल देते हैं, तो उस जलसे वे पितर तीन वर्षोंतक पूर्णतया तृप्त रहते हैं।

गङ्गासहस्रनामस्तोत्र *

अगस्त्यजी बोले—गङ्गामें स्नान किये बिना मनुष्योंका व्यर्थ ही बीतता है। क्या कोई दूसरा उपाय भी है, से गङ्गास्नानका फल प्राप्त हो सके ?

स्कन्दने कहा—अगस्त्यजी ! जान पड़ता है, यही ाकर देवाधिदेव भगवान् शङ्करने अपने मस्तकपर गङ्गाजी- धारण कर रक्खा है। एक परम गोपनीय उपाय है, ासे देवनदी गङ्गामें स्नान करनेका पूरा फल प्राप्त होता वह उपाय उसीको बतलाना चाहिये, जो भगवान् शिव (विष्णुका भक्त, शान्त, श्रद्धालु, आस्तिक तथा गर्भवाससे नेकी इच्छा रखनेवाला हो। दूसरे किसीके सामने कहीं उसकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। वह परम रहस्यमय ान महापातकोंका नाश करनेवाला है। वह उपाय है— वती गङ्गाका सहस्रनामस्तोत्र। वह सम्पूर्ण उत्तम त्रोंमें श्रेष्ठ है, जपने योग्य मन्त्रोंमें सर्वोत्तम है और वेदोंके निषद्-भागके समान मनन करने योग्य है। साधकको मौन ाकर प्रयत्नपूर्वक इसका जप करना चाहिये। यदि पवित्र ान हो तो वहाँ स्वयं भी पवित्रभावसे बैठकर सुस्पष्ट क्षरोंमें इसका पाठ करना चाहिये।

स्कन्दजी कहते हैं—ॐ नमो गङ्गादेव्यै। **ॐकाररूपिणी**—प्रणवरूपा, सच्चिदानन्दस्वरूपा अथवा ा-विष्णु-शिवरूपिणी, २ **अजरा**—वृद्धावस्थासे रहित, **अतुला**—तुलनारहित, ४ **अनन्ता**—जिसका कभी कहीं अन्त न हो, ऐसी, ५ **अमृतस्रवा**—अमृतमय जलका ात बहानेवाली, ६ **अत्युदारा**—अतिशय उदार, किसीको शरणमें लेने अथवा सद्गति देनेमें संकोच न करनेवाली, **अभया**—भयरहित, जिसका आश्रय लेनेसे संसार-भयका ावारण हो जाता है, ऐसी, ८ **अशोका**—शोकसे रहित अथवा ासे शोकका निवारण होता है, ऐसी, ९ **अलकनन्दा**— ालकावासियोंको आनन्द देनेवाली अथवा केशोंमें जिसके ल्का स्पर्श होनेसे आनन्द प्राप्त होता है, ऐसी, १० **अमृता**— धारूपिणी अथवा मुक्ति देनेके कारण अमृतस्वरूपा, ११ **अमला**—निर्मल जलवाली अथवा संसाररूपी मलका निवारण करनेवाली।†

१२ **अनाथवत्सला**—अनाथोंपर दया करनेवाली, १३ **अमोघा**—जिनकी सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाती, ऐसी, १४ **अपांयोनिः**—जलकी उत्पत्तिका स्थान, १५ **अमृतप्रदा**— मोक्ष प्रदान करनेवाली, १६ **अव्यक्तलक्षणा**—अव्यक्त-ब्रह्मस्वरूपा अथवा अव्याकृत प्रकृतिरूपा, १७ **अक्षोभ्या**— किसीके द्वारा भी क्षुब्ध न की जा सकनेवाली, १८ **अनवच्छिन्ना**—अपने दिव्य एवं व्यापक स्वरूपके कारण त्रिविध परिच्छेदसे शून्य, १९ **अपरा**—जिसके लिये कोई भी पराया नहीं है अथवा जिससे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है, ऐसी, २० **अजिता**— किसीसे भी परास्त न होनेवाली।‡

२१ **अनाथनाथा**—अनाथोंको भी शरण देनेवाली, २२ **अभीष्टार्थसिद्धिदा**—भक्तजनोंके अभीष्ट अर्थकी सिद्धि करनेवाली, २३ **अनङ्गवर्द्धिनी**—कामनाकी पूर्ति या मनोवाञ्छित भोगोंकी वृद्धि करनेवाली अथवा कामभावका नाश या निराकार ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाली, २४ **अणिमादिगुणा**— अणिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करना जिसका स्वाभाविक गुण है, ऐसी, २५ **आधारा**—'अ' अर्थात् विष्णु आधार हैं जिसके, ऐसी, २६ **अग्रगण्या**—श्रेष्ठता और पवित्रतामें सबसे प्रथम गणना करने योग्य, २७ **अलीकहारिणी**—अलीक अर्थात् अज्ञानका हरण करनेवाली।§

२८ **अचिन्त्यशक्तिः**—जिनकी शक्ति चिन्तनका विषय नहीं है, ऐसी, २९ **अनघा**—निष्पाप, ३० **अद्भुतरूपा**— आश्चर्यमय स्वरूपवाली, ३१ **अघहारिणी**—अपने कीर्तन, दर्शन, स्पर्श और जलस्नानसे सबके पापोंको हर लेनेवाली, ३२ **अद्रिराजसुता**—गिरिराज हिमालयकी पुत्री, ३३ **अष्टाङ्गयोगसिद्धिप्रदा**—अष्टाङ्गयोगसे प्राप्त होनेवाली सिद्धि (मुक्ति) को देनेवाली, ३४ **अच्युता**—अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाली अथवा विष्णुस्वरूपा।×

३५ **अक्षुण्णशक्तिः**—जिसकी शक्ति कभी खण्डित या

---

* स्कन्दपुराण काशीखण्ड पूर्वार्ध अध्याय २९ श्लोक १७ से ६८ तक।

† ॐकाररूपिण्यजरातुलानन्तामृतस्रवा । अत्युदाराभयाशोकालकनन्दामृतामला ॥

‡ अनाथवत्सलामोघापांयोनिरमृतप्रदा । अव्यक्तलक्षणाक्षोभ्यानवच्छिन्नापराजिता ॥

§ अनाथनाथाभीष्टार्थसिद्धिदानङ्गवर्द्धिनी । अणिमादिगुणाऽऽधाराग्रगण्यालीकहारिणी ॥

× अचिन्त्यशक्तिरनघाद्भुतरूपाघहारिणी । अद्रिराजसुताष्टाङ्गयोगसिद्धिप्रदाच्युता ॥

कुण्ठित नहीं होती, वह, **३६ असुदा**—अपने जीवनरूपी जलसे प्राणदान करनेवाली, **३७ अनन्ततीर्था**—सर्वतीर्थमयी होनेके कारण असंख्य तीर्थोंसे युक्त, **३८ अमृतोदका**—अमृतके समान मधुर अथवा मोक्षदायक जलवाली, **३९ अनन्तमहिमा**—जिसकी महिमाका कहीं अन्त नहीं है, ऐसी, **४० अपारा**—सीमारहित, **४१ अनन्तसौख्यप्रदा**—मोक्ष या भगवत्प्राप्तिका अक्षय सुख प्रदान करनेवाली, **४२ अन्नदा**—भोग प्रदान करनेवाली ।*

४३ अशेषदेवतामूर्तिः—सम्पूर्ण देवस्वरूपा, **४४ अघोरा**—शान्तस्वरूपा, **४५ अमृतरूपिणी**—मोक्षस्वरूपा, **४६ अविद्याजालशमनी**—अविद्यारूपी आवरणका नाश करनेवाली, **४७ अप्रतर्क्यगतिप्रदा**—जहाँ मन और वाणीकी पहुँच नहीं है, ऐसी मोक्षरूप गति प्रदान करनेवाली ।†

४८ अशेषविघ्नसंहर्त्री—समस्त विघ्नोंका संहार करनेवाली, **४९ अशेषगुणगुम्फिता**—सम्पूर्ण सद्गुणोंसे ग्रथित, **५० अज्ञानतिमिरज्योतिः**—अज्ञानमय अन्धकारका नाश करनेवाली ज्योतिःस्वरूपा, **५१ अनुग्रहपरायणा**—भक्तोंपर अनुग्रह करनेमें तत्पर ।‡

५२ अभिरामा—सब ओरसे मनोरम, **५३ अनवद्याङ्गी**—निर्दोष स्वरूपवाली, **५४ अनन्तसारा**—जिसके सार अर्थात् शक्तिका अन्त नहीं है, ऐसी, **५५ अकलङ्किनी**—कलङ्कसे रहित, **५६ आरोग्यदा**—अपने अमृतमय जलसे आरोग्य प्रदान करनेवाली, **५७ आनन्दवल्ली**—दिव्य आनन्दकी प्राप्ति करानेवाली कल्पलताके समान, **५८ आपन्नार्तिविनाशिनी**—शरणमें आये हुए जीवोंकी पीड़ा (संसार-बन्धन) का नाश करनेवाली ।§

५९ आश्चर्यमूर्तिः—आश्चर्यमय स्वरूपवाली, **६० आयुष्या**—आयु प्रदान करनेवाली, **६१ आढ्या**—दिव्य वैभवसे सम्पन्न, **६२ आद्या**—सबकी कारणभूता आदिशक्ति, **६३ आप्रा**—सब ओरसे परिपूर्ण, **६४ आर्यसेविता**—श्रेष्ठ पुरुषों (देवता और ऋषि आदि) के द्वारा सेवित, **६५ आप्यायिनी**—सबको तृप्त करनेवाली, **६६ आप्तविद्या**—ब्रह्मविद्यास्वरूपा अथवा सम्पूर्ण विद्याओंको जाननेवाली, **६७ आख्या**—सदा और सर्वत्र प्रसिद्ध, **६८ आनन्दा**—सुखस्वरूपा, **६९ आश्वासदायिनी**—नरक आदिके भयसे डरे हुए प्राणियोंको सान्त्वना प्रदान करनेवाली ।*

७० आलस्यघ्नी—आलस्यका नाश करनेवाली, **७१ आपदां हन्त्री**—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक आपत्तियोंका नाश करनेवाली, **७२ आनन्दामृतवर्षिणी**—ब्रह्मानन्दमय अमृतकी वर्षा करनेवाली, **७३ इरावती**—इरावती नामवाली नदी अथवा इरा अर्थात् लक्ष्मीसे युक्त, **७४ इष्टदात्री**—भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाली, **७५ इष्टा**—आराध्यदेवी अथवा सबके द्वारा पूजित, **७६ इष्टापूर्तफलप्रदा**—इष्ट—यज्ञ, होम आदि और आपूर्त—कूप, तड़ाग, वापी-निर्माण आदि, इन सबके पुण्यफलको देनेवाली ।†

७७ इतिहासश्रुतीड्यार्था—इतिहास और वेद दोनोंके द्वारा जिसके पुरुषार्थकी स्तुति की जाती है, ऐसी, **७८ इहामुत्रशुभप्रदा**—इहलोक और परलोकमें कल्याण प्रदान करनेवाली, **७९ इज्याशीलसमिज्येष्ठा**—यज्ञ आदि करनेवाले कर्मनिष्ठ तथा समस्वरूप ब्रह्मका विचार करनेवाले ज्ञानी, दोनोंमें श्रेष्ठ अथवा इन दोनोंके लिये श्रेष्ठ मानकर पूजनीय, **८० इन्द्रादिपरिवन्दिता**—इन्द्र आदि देवताओंद्वारा वन्दित ।‡

८१ इलालङ्कारमाला—पृथ्वीको विभूषित करनेवाली पुष्पमालाके सदृश, **८२ इद्धा**—दीप्तिमती अथवा प्रकाशस्वरूपा, **८३ इन्दिरा**—लक्ष्मीस्वरूपा, **८४ रम्यमन्दिरा**—भगवच्चरणारविन्द, ब्रह्माकमण्डलु तथा भगवान् शङ्करका मस्तक—ये सब रमणीय आश्रय हैं जिसके, ऐसी, **८५ इदिन्दिरादिसंसेव्या**—निरन्तर लक्ष्मी आदि देवियोंके सेवन करने योग्य, **८६ ईश्वरी**—ऐश्वर्यसम्पन्न, **८७ ईश्वरवल्लभा**—शङ्करप्रिया ।§

* अक्षुण्णशक्तिरसुदानन्ततीर्थामृतोदका ।
अनन्तमहिमापारानन्तसौख्यप्रदान्नदा ॥

† अशेषदेवतामूर्तिरघोरामृतरूपिणी ।
अविद्याजालशमनी ह्यप्रतर्क्यगतिप्रदा ॥

‡ अशेषविघ्नसंहर्त्री त्वशेषगुणगुम्फिता ।
अज्ञानतिमिरज्योतिरनुग्रहपरायणा ॥

§ अभिरामानवद्याङ्ग्यनन्तसाराकलङ्किनी ।
आरोग्यदाऽऽनन्दवल्ली त्वापन्नार्तिविनाशिनी ॥

* आश्चर्यमूर्तिरायुष्या ह्याढ्याऽऽद्याऽऽप्राऽऽर्यसेविता ।
आप्यायिन्याप्तविद्याऽऽख्या त्वानन्दाऽऽश्वासदायिनी ॥

† आलस्यघ्न्यापदां हन्त्री ह्यानन्दामृतवर्षिणी ।
इरावतीष्टदात्रीष्टा त्विष्टापूर्तफलप्रदा ॥

‡ इतिहासश्रुतीड्यार्था त्विहामुत्रशुभप्रदा ।
इज्याशीलसमिज्येष्ठा त्विन्द्रादिपरिवन्दिता ॥

§ इलालङ्कारमालेद्धा त्विन्दिरा रम्यमन्दिरा ।
इदिन्दिरादिसंसेव्या त्वीश्वरीश्वरवल्लभा ॥

८८ **ईतिभीतिहरा**–अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी पड़ना, चूहे लगना, तोते आदि पक्षियोंकी अधिकता और दूसरे राजाकी चढ़ाई—इन छः प्रकारके उपद्रवोंका भय दूर करनेवाली, ८९ **ईड्या**–स्तवन करने योग्य, ९० **ईडनीयचरित्रभृत्**–स्तुत्य चरित्र धारण करनेवाली, ९१ **उत्कृष्टशक्तिः**–उत्तम शक्तिसे युक्त, ९२ **उत्कृष्टा**–श्रेष्ठ, ९३ **उडुपमण्डलचारिणी**–चन्द्रमण्डलमें विचरनेवाली ।*

९४ **उदिताम्बरमार्गा**–जिसके द्वारा आकाशमें मार्गका उदय होता है अथवा जो ऊर्ध्वलोकमें जानेके लिये प्रकाशित मार्गके समान है, ऐसी, ९५ **उस्रा**–उज्ज्वल किरणके समान प्रकाशमान, ९६ **उरगलोकविहारिणी**–पाताललोकमें प्रवाहित होनेवाली, ९७ **उक्षा**–भूतलको सींचनेवाली, ९८ **उर्वरा**–भूमिको उर्वरा (उपजाऊ) बनानेमें हेतु, ९९ **उत्पला**–कमलस्वरूपा, १०० **उत्कुम्भा**–जिसमें भरे जानेवाले कलश उत्कृष्ट हो जाते हैं, वह, १०१ **उपेन्द्रचरणद्रवा**–भगवान् वामनके चरण पखारनेसे प्रकट चरणोदकस्वरूपा ।†

१०२ **उदन्वत्पूर्तिहेतुः**–समुद्रको पूर्ण करनेमें कारणभूत, १०३ **उदारा**–उत्तम गति प्रदान करनेमें उदार, १०४ **उत्साहप्रवर्द्धिनी**–अपने आश्रितोंका उत्साह बढ़ानेवाली, १०५ **उद्वेगघ्नी**–घबराहट अथवा भयको मिटानेवाली, १०६ **उष्णशमनी**–गर्मीको शान्त करनेवाली, १०७ **उष्णरश्मिसुताप्रिया**–सूर्यकन्या यमुनाकी प्रिय सखी ।‡

१०८ **उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी**–ब्रह्मशक्ति, विष्णुशक्ति तथा रुद्रशक्तिके रूपमें उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली, १०९ **उपरिचारिणी**–पृथ्वी अथवा स्वर्गलोकके ऊपर विचरनेवाली, ११० **ऊर्जं वहन्ती**–बलवर्द्धक जलको प्रवाहित करनेवाली, १११ **ऊर्जधरा**–बल अथवा प्राणशक्तिको धारण करनेवाली, ११२ **ऊर्जावती**–बल अथवा प्राणशक्तिका आश्रय, ११३ **ऊर्मिमालिनी**–तरङ्गमालाओंसे युक्त ।§

११४ **ऊर्ध्वरेतःप्रिया**–ऊर्ध्वरेता महात्माओंको प्रिय लगनेवाली, ११५ **ऊर्ध्वाध्वा**–जिसका मार्ग ऊपर विष्णुलोककी ओर गया है, ऐसी, ११६ **ऊर्मिला**–लहरोंको धारण करनेवाली अथवा भक्तोंके शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा, पिपासा—इन छः ऊर्मियोंको ग्रहण करनेवाली, ११७ **ऊर्ध्वगतिप्रदा**–अपने सम्पर्कमें आये हुए मुमूर्षुओंको ऊर्ध्वगति (स्वर्ग एवं मोक्ष) प्रदान करनेवाली, ११८ **ऋषिवृन्दस्तुता**–महर्षियोंके समुदायसे प्रशंसित, ११९ **ऋद्धिः**–समृद्धिस्वरूपा, १२० **ऋणत्रयविनाशिनी**–देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋणका नाश करनेवाली ।*

१२१ **ऋतम्भरा**–ऋत अर्थात् सत्य एवं ब्रह्मका आश्रय लेनेवाली बुद्धिस्वरूपा, १२२ **ऋद्धिदात्री**–समृद्धि देनेवाली, १२३ **ऋक्स्वरूपा**–ऋग्वेदरूपिणी, १२४ **ऋजुप्रिया**–सरल स्वभाववाले साधु महात्माओंको प्रिय लगनेवाली, १२५ **ऋक्षमार्गवहा**–नक्षत्रलोकके मार्गसे बहनेवाली, १२६ **ऋक्षार्चिः**–ताराओंके सदृश उज्ज्वल कान्तिवाली, १२७ **ऋजुमार्गप्रदर्शिनी**–धर्म एवं मोक्षका सरल मार्ग दिखानेवाली ।†

१२८ **एधिताखिलधर्मार्था**–सम्पूर्ण धर्म और अर्थको बढ़ानेवाली, १२९ **एका**–अपने ढंगकी अकेली, १३० **एकामृतदायिनी**–एकमात्र अमृतस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाली, १३१ **एधनीयस्वभावा**–जिसके दया, उदारता आदि स्वाभाविक गुण निरन्तर बढ़ने योग्य हों, ऐसी १३२ **एज्या**–पूजनीया, १३३ **एजिताशेषपातका**–सम्पूर्ण पातकोंको कम्पित करनेवाली ।‡

१३४ **ऐश्वर्यदा**–अणिमा, महिमा आदि ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली, १३५ **ऐश्वर्यरूपा**–भगवद्विभूतिस्वरूपा, १३६ **ऐतिह्यम्**–इतिहासस्वरूप, १३७ **ऐन्दवीद्युतिः**–चन्द्रमाकी कान्तिरूपा, १३८ **ओजस्विनी**–शक्तिमती, १३९ **ओषधीक्षेत्रम्**–अन्न पैदा करनेका क्षेत्र, १४० **ओजोदा**–बल एवं तेज प्रदान करनेवाली, १४१ **ओदनदायिनी**–धानकी

---

* ईतिभीतिहरेड्या च त्वीडनीयचरित्रभृत् ।
उत्कृष्टशक्तिरुत्कृष्टोडुपमण्डलचारिणी ॥

† उदिताम्बरमार्गोस्रोरगलोकविहारिणी ।
उक्षोर्वरोत्पलोत्कुम्भा उपेन्द्रचरणद्रवा ॥

‡ उदन्वत्पूर्तिहेतुश्चोदारोत्साहप्रवर्द्धिनी ।
उद्वेगघ्न्युष्णशमनी ह्युष्णरश्मिसुताप्रिया ॥

§ उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिण्युपरिचारिणी ।
ऊर्जं वहन्त्यूर्जधरोर्जावती चोर्मिमालिनी ॥

* ऊर्ध्वरेतःप्रियोर्ध्वाध्वा ह्यूर्मिलोर्ध्वगतिप्रदा ।
ऋषिवृन्दस्तुतर्द्धिश्च ऋणत्रयविनाशिनी ॥

† ऋतम्भरर्द्धिदात्री च ऋक्स्वरूपा ऋजुप्रिया ।
ऋक्षमार्गवहर्क्षार्चिर्ऋजुमार्गप्रदर्शिनी ॥

‡ एधिताखिलधर्मार्था त्वेकैकामृतदायिनी ।
एधनीयस्वभावैज्या त्वेजिताशेषपातका ॥

पैदावार बढ़ाकर भात देनेवाली, अथवा अन्नदायिनी अन्नपूर्णारूपा।*

१४२ ओष्ठामृता–जिसका जल ओष्ठके भीतर आनेपर अमृतके समान प्रतीत होता है अथवा जिसके ओष्ठमें अमृत हो, वह, **१४३ औन्नत्यदात्री**–आध्यात्मिक, लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति प्रदान करनेवाली, **१४४ भवरोगिणाम् औषधम्**–संसार-रोगसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये ओषधिरूपा, **१४५ औदार्यचञ्चुरा**–उदारतामें कुशल, **१४६ औपेन्द्री**–उपेन्द्र अर्थात् वामनरूपधारी विष्णुकी पत्नी लक्ष्मीस्वरूपा अथवा विष्णुकी चरणोदकस्वरूपा, **१४७ औग्री**–रुद्रकी शक्ति, **१४८ औमेयरूपिणी**–उमाके सदृश रूपवाली। †

१४९ अम्बराध्ववहा–आकाशमार्गपर बहनेवाली, **१५० अम्बष्ठा**–अ अर्थात् विष्णुकी शरण लेनेवाले वैष्णवोंको अम्ब कहते हैं; उनमें स्थित होनेवाली, **१५१ अम्बरमाला**–आकाशमें पुष्पहारके समान शोभा पानेवाली, **१५२ अम्बुजेक्षणा**–कमलरूप अथवा कमलसदृश नेत्रोंवाली, **१५३ अम्बिका**–जगदम्बास्वरूपा, **१५४ अम्बुमहायोनिः**–जलकी उत्पत्तिका मूल कारण, **१५५ अन्धोदा**–अन्न देनेवाली, **१५६ अन्धकहारिणी**–अन्धकासुरका नाश करनेवाले शिवकी शक्ति अथवा अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाली। ‡

१५७ अंशुमाला–तेजका समुदाय, **१५८ अंशुमती**–तेजोमयी, **१५९ अङ्गीकृतषडानना**–छः मुखोंवाले स्कन्दको पुत्ररूपमें स्वीकार करनेवाली, **१६० अन्धतामिस्रहन्त्री**–अन्धतामिस्र आदि नरकोंका निवारण करनेवाली, **१६१ अन्धुः**–कूपमात्रमें स्वयं प्रकट होनेवाली, **१६२ अञ्जना**–आध्यात्मिक दृष्टिको शुद्ध करनेके लिये दिव्य अञ्जनरूपा अथवा हनुमान्‌जीको जन्म देनेवाली अञ्जनास्वरूपा, **१६३ अञ्जनावती**–ईशानकोणकी रक्षा करनेवाली हस्तिनी, अञ्जनावतीसे अभिन्न। §

१६४ कल्याणकारिणी–सबका कल्याण करनेवाली, **१६५ काम्या**–कमनीया, **१६६ कमलोत्पलगन्धिनी**–कमल और उत्पलकी सुगन्धसे सुवासित, **१६७ कुमुद्वती**–कुमुद पुष्पोंसे युक्त, **१६८ कमलिनी**–कमल पुष्पोंसे अलङ्कृत, **१६९ कान्तिः**–दीप्तिमयी, **१७० कल्पितदायिनी**–मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाली।*

१७१ काञ्चनाक्षी–सुवर्णके समान उद्दीप्त नेत्रोंवाली, **१७२ कामधेनुः**–भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेमें कामधेनुके समान अथवा कामधेनुस्वरूपा, **१७३ कीर्तिकृत्**–अपने सुयशका विस्तार करनेवाली, **१७४ क्लेशनाशिनी**–अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेशरूप पाँच क्लेशोंका नाश करनेवाली, **१७५ क्रतुश्रेष्ठा**–यज्ञोंसे श्रेष्ठ—अश्वमेध आदि यज्ञोंसे अधिक फल देनेवाली, **१७६ क्रतुफला**–जिसमें स्नान करनेसे यज्ञोंका फल प्राप्त होता है, ऐसी, **१७७ कर्मबन्धविभेदिनी**–शुभाशुभकर्मजनित बन्धनका नाश करनेवाली। †

१७८ कमलाक्षी–कमलके समान या कमलरूप नेत्रोंवाली, **१७९ क्लमहरा**–सांसारिक क्लेशको हर लेनेवाली, **१८० कृशानुतपनद्युतिः**–आधिदैविक स्वरूपमें अग्नि और सूर्यके समान कान्तिवाली, **१८१ करुणार्द्रा**–करुणारससे भीगी हुई, **१८२ कल्याणी**–मङ्गलस्वरूपा, **१८३ कलिकल्मषनाशिनी**–कलिकालमें होनेवाले पापोंका नाश करनेवाली। ‡

१८४ कामरूपा–इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली, **१८५ क्रियाशक्तिः**–क्रियाशक्ति, **१८६ कमलोत्पलमालिनी**–कमल और उत्पलोंकी माला धारण करनेवाली, **१८७ कूटस्था**–ब्रह्मस्वरूपा, **१८८ करुणा**–दयामयी, **१८९ कान्ता**–कान्तिमती, **१९० कूर्मयाना**–कच्छपरूप वाहनवाली, **१९१ कलावती**–चौंसठ कलाओंको जाननेवाली। §

---

* ऐश्वर्यदैश्वर्यरूपा ह्यैतिह्यं ह्यैन्दवीद्युतिः।
ओजस्विन्योषधीक्षेत्रमोजोदौदनदायिनी॥

† ओष्ठामृतौन्नत्यदात्री त्वौषधं भवरोगिणाम्।
औदार्यचञ्चुरौपेन्द्री त्वौग्री ह्यौमेयरूपिणी॥

‡ अम्बराध्ववहाम्बष्ठाम्बरमालाम्बुजेक्षणा।
अम्बिकाम्बुमहायोनिरन्धोदान्धकहारिणी॥

§ अंशुमाला ह्यंशुमती त्वङ्गीकृतषडानना।
अन्धतामिस्रहन्त्र्यन्धुरञ्जना ह्यञ्जनावती॥

* कल्याणकारिणी काम्या कमलोत्पलगन्धिनी।
कुमुद्वती कमलिनी कान्तिः कल्पितदायिनी॥

† काञ्चनाक्षी कामधेनुः कीर्तिकृत्क्लेशनाशिनी।
क्रतुश्रेष्ठा क्रतुफला कर्मबन्धविभेदिनी॥

‡ कमलाक्षी क्लमहरा कृशानुतपनद्युतिः।
करुणार्द्रा च कल्याणी कलिकल्मषनाशिनी॥

§ कामरूपा क्रियाशक्तिः कमलोत्पलमालिनी।
कूटस्था करुणा कान्ता कूर्मयाना कलावती॥

१९२ **कमला**–लक्ष्मीस्वरूपा, १९३ **कल्पलतिका**–कल्पलताके समान सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, १९४ **काली**–कालिकास्वरूपा, १९५ **कलुषवैरिणी**–पापोंका नाश करनेवाली, १९६ **कमनीयजला**–कमनीय अर्थात् स्वच्छ जलवाली, १९७ **कम्रा**–मनोहर स्वरूपवाली, १९८ **कपर्दिसुकपर्दगा**–भगवान् शङ्करके सुन्दर जटाजूटमें वास करनेवाली ।*

१९९ **कालकूटप्रशमनी**–भगवान् शङ्करके पीये हुए कालकूट नामक विषकी ज्वालाको शान्त करनेवाली, २०० **कदम्बकुसुमप्रिया**–कदम्बके पुष्पोंमें रुचि रखने वाली, २०१ **कालिन्दी**–कलिन्दकन्या यमुनास्वरूपा, २०२ **केलिललिता**–क्रीडासे मनोहर प्रतीत होनेवाली, २०३ **कलकल्लोलमालिका**–मनोहर लहरोंकी श्रेणियोंसे सुशोभित ।†

२०४ **क्रान्तलोकत्रया**–स्वर्ग, भूतल और पाताल तीनों लोकोंको अपनी धारासे आक्रान्त करनेवाली, २०५ **कण्डूः**–अविद्या और उसके कार्यको खण्डित करनेवाली, २०६ **कण्डूतनयवत्सला**–कण्डू शब्द मृकण्डुका वाचक है, उनके पुत्र मार्कण्डेयजीपर वात्सल्य स्नेह रखनेवाली, २०७ **खड्गिनी**–देवीरूपसे खड्ग धारण करनेवाली, २०८ **खड्गधाराभा**–तलवारकी धारके समान उज्ज्वल कान्तिवाली, २०९ **खगा**–आकाशमें प्रवाहित होनेवाली, २१० **खण्डेन्दुधारिणी**–अर्धचन्द्र धारण करनेवाली ।‡

२११ **खेखेलगामिनी**–आकाशमें लीलापूर्वक चलनेवाली, २१२ **खस्था**–आकाश अथवा ब्रह्ममें स्थित, २१३ **खण्डेन्दुतिलकप्रिया**–चन्द्रभाल शिवकी प्रिया अथवा अर्धचन्द्राकार तिलकसे प्रसन्न होनेवाली, २१४ **खेचरी**–आकाशमें विचरण करनेवाली, २१५ **खेचरीवन्द्या**–आकाशमें विहार करनेवाली सिद्धाङ्गनाओंकी वन्दनीया, २१६ **ख्यातिः**–प्रतिष्ठास्वरूपा, २१७ **ख्यातिप्रदायिनी**–प्रतिष्ठा देनेवाली ।§

२१८ **खण्डितप्रणताघौघा**–शरणागतोंकी पापराशिका खण्डन करनेवाली, २१९ **खलबुद्धिविनाशिनी**–खलोंकी बुद्धि अथवा खलतापूर्ण बुद्धिका विनाश करनेवाली, २२० **खातैनःकन्दसन्दोहा**–पापरूपी कन्दसमुदायको उखाड़ फेंकनेवाली, २२१ **खड्गखट्वाङ्गखेटिनी**–खड्ग (तलवार), खट्वाङ्ग (खाटके पायेके आकारवाले शस्त्र) और खेट धारण करनेवाली ।*

२२२ **खरसन्तापशमनी**–तीखे तापको शान्त करनेवाली, २२३ **पीयूषपाथसां खनिः**–अमृतके समान मधुर जलकी खान, २२४ **गङ्गा**–'स्वर्गाद् गां गतवतीति गङ्गा'—स्वर्गसे भूतलपर गमन करनेके कारण गङ्गा नामसे प्रसिद्ध, अथवा कलकल गान करनेवाली या ब्रह्मद्रवरूपा सच्चिदानन्दमयी देवी, २२५ **गन्धवती**–पृथ्वीस्वरूपा अथवा उत्तम गन्धसे युक्त, २२६ **गौरी**–गौर वर्णवाली अथवा पार्वतीस्वरूपा, २२७ **गन्धर्वनगरप्रिया**–गन्धर्व-नगरके निवासियोंको प्रिय लगनेवाली ।†

२२८ **गम्भीराङ्गी**–गहराईसे युक्त अथवा गहनस्वरूपवाली, २२९ **गुणमयी**–त्रिगुणात्मिका प्रकृतिरूपा अथवा सर्वज्ञता आदि गुणोंसे युक्त, २३० **गतातङ्का**–भयरहित अथवा अपने पास आनेवालोंके संसार-भयको निवृत्त करनेवाली, २३१ **गतिप्रिया**–निरन्तर गमन जिसे प्रिय है अथवा जो गति अर्थात् ज्ञानको प्रिय मानती है, ऐसी, २३२ **गणनाथाम्बिका**–गणेशजीकी माता, २३३ **गीता**–भगवद्गीतास्वरूपा, २३४ **गद्यपद्यपरिष्टुता**–गद्य-पद्यमय स्तोत्रोंसे जिसकी स्तुति की जाती है, वह ।‡

२३५ **गान्धारी**–पृथ्वीको धारण करनेवाली वाराहशक्तिस्वरूपा, अथवा धृतराष्ट्रपत्नीस्वरूपा, २३६ **गर्भशमनी**–मुक्ति प्रदान करके गर्भवासके कष्टको दूर करनेवाली, २३७ **गतिभ्रष्टगतिप्रदा**–गतिभ्रष्टों—पतितोंको भी सद्गति प्रदान करनेवाली, २३८ **गोमती**–द्वारका अथवा नैमिषारण्यमें स्थित गोमतीनदीस्वरूपा, २३९ **गुह्यविद्या**–ब्रह्मविद्या, २४० **गौः**–पृथ्वीस्वरूपा अथवा कामधेनुरूपिणी,

---

* कमला कल्पलतिका काली कलुषवैरिणी ।
कमनीयजला कम्रा कपर्दिसुकपर्दगा ॥

† कालकूटप्रशमनी कदम्बकुसुमप्रिया ।
कालिन्दी केलिललिता कलकल्लोलमालिका ॥

‡ क्रान्तलोकत्रया कण्डूः कण्डूतनयवत्सला ।
खड्गिनी खड्गधाराभा खगा खण्डेन्दुधारिणी ॥

§ खेखेलगामिनी खस्था खण्डेन्दुतिलकप्रिया ।
खेचरी खेचरीवन्द्या ख्यातिः ख्यातिप्रदायिनी ॥

* खण्डितप्रणताघौघा खलबुद्धिविनाशिनी ।
खातैनःकन्दसन्दोहा खड्गखट्वाङ्गखेटिनी ॥

† खरसन्तापशमनी खनिः पीयूषपाथसाम् ।
गङ्गा गन्धवती गौरी गन्धर्वनगरप्रिया ॥

‡ गम्भीराङ्गी गुणमयी गतातङ्का गतिप्रिया ।
गणनाथाम्बिका गीता गद्यपद्यपरिष्टुता ॥

२४१ गोप्त्री—सद्गति प्रदान करके सबकी रक्षा करनेवाली, **२४२ गगनगामिनी**—आकाशगामिनी।*

२४३ गोत्रप्रवर्द्धिनी—पर्वतोंसे निर्झर आदिका जल पाकर बढ़नेवाली अथवा अपने भक्तोंका गोत्र (वंश) बढ़ानेवाली, **२४४ गुण्या**—उत्तम गुणोंसे युक्त, **२४५ गुणातीता**—तीनों गुणोंसे परे, **२४६ गुणाग्रणीः**—सद्गुणोंके कारण अग्रगण्य, **२४७ गुहाम्बिका**—स्कन्दकी माता, **२४८ गिरिसुता**—हिमवान्की पुत्री, **२४९ गोविन्दाङ्घ्रिसमुद्भवा**—श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई।†

२५० गुणनीयचरित्रा—गुणन—प्रशंसा या गणना करनेयोग्य उत्तम चरित्रवाली, **२५१ गायत्री**—अपना गुणगान करनेवालेकी रक्षा करनेवाली अथवा गायत्रीदेवीस्वरूपा, **२५२ गिरिशप्रिया**—भगवान् शिवकी वल्लभा, **२५३ गूढरूपा**—छिपे हुए दिव्य स्वरूपवाली, **२५४ गुणवती**—शान्ति आदि उत्तम गुणोंसे युक्त, **२५५ गुर्वी**—गौरवमयी, **२५६ गौरववर्द्धिनी**—महत्त्व बढ़ानेवाली अथवा स्वयं ही गौरवसे बढ़नेवाली।‡

२५७ ग्रहपीडाहरा—अनिष्ट स्थानोंमें स्थित ग्रहोंकी पीड़ा दूर करनेवाली, **२५८ गुन्द्रा**—'गु' अर्थात् अविद्याका द्रावण—नाश करनेवाली, **२५९ गरघ्नी**—विषका प्रभाव दूर करनेवाली, **२६० गानवत्सला**—संगीतप्रिया, **२६१ घर्महन्त्री**—घामका कष्ट निवारण करनेवाली, **२६२ घृतवती**—घीके समान गुणकारक जलवाली, **२६३ घृततुष्टिप्रदायिनी**—अपने जलसे ही घीके समान सन्तोष देनेवाली।§

२६४ घण्टारवप्रिया—घण्टानादसे प्रसन्न होनेवाली, **२६५ घोराघौघविध्वंसकारिणी**—भयङ्कर पापराशिका विनाश करनेवाली, **२६६ घ्राणतुष्टिकरी**—घ्राणेन्द्रियको सन्तुष्ट करनेवाली, **२६७ घोषा**—अपने प्रवाह और तरङ्गोंसे कल-कल शब्द करनेवाली, **२६८ घनानन्दा**—घनीभूत आनन्दकी राशि अथवा आकाशगङ्गामें स्थित जलसे मेघों आनन्द देनेवाली, **२६९ घनप्रिया**—आकाशगङ्गारू मेघोंको प्रिय लगनेवाली।*

२७० घातुका—पाप एवं अज्ञानका नाश करनेवाल **२७१ घूर्णितजला**—भँवरयुक्त जलवाली, **२७२ घृष्टपातक सन्ततिः**—पातक-परम्पराको नष्ट कर देनेवाल **२७३ घटकोटिप्रपीतापा**—जिसके करोड़ों घड़े जल नि पीये जाते हैं, वह, **२७४ घटिताशेषमङ्गला**—पूर्ण मङ्ग कारिणी।†

२७५ घृणावती—दयालु, **२७६ घृणनिधिः**—दय सागर, **२७७ घस्मरा**—सब कुछ भक्षण करनेवाली **२७८ घूकनादिनी**—तटपर उलूक और बक आदि पक्षियोंके शब्दसे युक्त, **२७९ घुसृणापिञ्जरतनुः**—कुङ्कुम, केशर आदिसे चर्चित होनेके कारण किञ्चित् पीले अङ्गोंवाली, **२८० घर्घरा**—घाघरानदीस्वरूपा, **२८१ घर्घरस्वना**—घर्घर ध्वनिसे युक्त।‡

२८२ चन्द्रिका—चन्द्रप्रभास्वरूपा, **२८३ चन्द्रकान्ताम्बुः**—चन्द्रमाके समान श्वेत जलवाली अथवा चन्द्रकान्तमणिके समान निर्मल जलवाली, **२८४ चञ्चदापा**—चञ्चल जलवाली, **२८५ चलद्युतिः**—विद्युत्स्वरूपा, **२८६ चिन्मयी**—ज्ञानस्वरूपा, **२८७ चितिरूपा**—चैतन्यस्वभावा, **२८८ चन्द्रायुतशतानना**—दस सहस्र चन्द्रमाओंके समान मनोरम मुखवाली।§

२८९ चाम्पेयलोचना—चम्पाके फूलोंके समान सुन्दर नेत्रोंवाली, **२९० चारुः**—मनोहारिणी, **२९१ चार्वङ्गी**—परम सुन्दर अङ्गोंवाली, **२९२ चारुगामिनी**—मनोहर चालसे चलनेवाली, **२९३ चार्या**—शरण लेनेयोग्य, **२९४ चारित्रनिलया**—सदाचारका आश्रय, **२९५ चित्रकृत्**—अद्भुत कार्य करनेवाली, **२९६ चित्ररूपिणी**—विचित्र रूपवाली।×

* गान्धारी गर्भशमनी गतिभ्रष्टगतिप्रदा।
गोमती गुह्यविद्या गौर्गोप्त्री गगनगामिनी॥

† गोत्रप्रवर्द्धिनी गुण्या गुणातीता गुणाग्रणीः।
गुहाम्बिका गिरिसुता गोविन्दाङ्घ्रिसमुद्भवा॥

‡ गुणनीयचरित्रा च गायत्री गिरिशप्रिया।
गूढरूपा गुणवती गुर्वी गौरववर्द्धिनी॥

§ ग्रहपीडाहरा गुन्द्रा गरघ्नी गानवत्सला।
घर्महन्त्री घृतवती घृततुष्टिप्रदायिनी॥

* घण्टारवप्रिया घोराघौघविध्वंसकारिणी।
घ्राणतुष्टिकरी घोषा घनानन्दा घनप्रिया॥

† घातुका घूर्णितजला घृष्टपातकसन्ततिः।
घटकोटिप्रपीतापा घटिताशेषमङ्गला॥

‡ घृणावती घृणनिधिर्घस्मरा घूकनादिनी।
घुसृणापिञ्जरतनुर्घर्घरा घर्घरस्वना॥

§ चन्द्रिका चन्द्रकान्ताम्बुश्चञ्चदापा चलद्युतिः।
चिन्मयी चितिरूपा च चन्द्रायुतशतानना॥

× चाम्पेयलोचना चारुश्चार्वङ्गी चारुगामिनी।
चार्या चारित्रनिलया चित्रकृच्चित्ररूपिणी॥

२९७ **चम्पूः**—गद्य-पद्यमय काव्यस्वरूपा अथवा चम्पा-पुष्पके समान रंगवाली, २९८ **चन्दनशुच्यम्बुः**—चन्दनके समान पवित्र एवं सुगन्धित जलवाली, २९९ **चर्चनीया**—पूजन अथवा कीर्तन करने योग्य, ३०० **चिरस्थिरा**—चिरन्तन कालतक स्थिर रहनेवाली, ३०१ **चारुचम्पकमालाढ्या**—मनोहर चम्पा पुष्पोंकी मालासे सुशोभित, ३०२ **चमिताशेषदुष्कृता**—समस्त पापोंको पी जानेवाली।*

३०३ **चिदाकाशवहा**—चिदाकाशरूप ब्रह्मको प्राप्त होनेवाली, ३०४ **चिन्त्या**—चिन्तन करने योग्य, ३०५ **चञ्चत्**—देदीप्यमान, ३०६ **चामरवीजिता**—डुलाये जाते हुए चँवरसे सेवित, ३०७ **चोरिताशेषवृजिना**—समस्त पापोंको हर लेनेवाली, ३०८ **चरिताशेषमण्डला**—ब्रह्मलोक आदि सब मण्डलों (स्थानों) में विचरनेवाली।†

३०९ **छेदिताखिलपापौघा**—समस्त पापराशिका उच्छेद करनेवाली, ३१० **छद्मघ्नी**—कपट, अज्ञान अथवा छद्म नामक विशेष रोगका नाश करनेवाली, ३११ **छलहारिणी**—छलको हर लेनेवाली, ३१२ **छन्नत्रिविष्टपतला**—स्वर्गलोकको व्याप्त करनेवाली, ३१३ **छोटिताशेषबन्धना**—समस्त बन्धनोंको दूर करनेवाली। ‡

३१४ **छुरितामृतधारौघा**—अमृतमय जलकी धारा बहानेवाली, ३१५ **छिन्नैनाः**—पापोंका उच्छेद करनेवाली, ३१६ **छन्दगामिनी**—स्वच्छन्द चलनेवाली, ३१७ **छत्रीकृतमरालौघा**—हंसोंके समूहको श्वेतछत्रके समान धारण करनेवाली, ३१८ **छटीकृतनिजामृता**—अपने स्वरूपभूत जलको विशेष शोभाके रूपमें धारण करनेवाली।§

३१९ **जाह्नवी**—जह्नुकी पुत्री, ३२० **ज्या**—पापरूपी मृगको भयभीत करनेके लिये धनुषकी प्रत्यञ्चाके समान, ३२१ **जगन्माता**—विश्वजननी, ३२२ **जप्या**—जप करने योग्य नामवाली, ३२३ **जङ्गालवीचिका**—उत्ताल तरङ्गोंवाली, ३२४ **जया**—विजयिनी अथवा पार्वतीकी सखी जया, ३२५ **जनार्दनप्रीता**—भगवान् विष्णुसे प्रीति करनेवाली, ३२६ **जुष्णीया**—देवता, ऋषि और मनुष्योंके द्वारा सेवन करने योग्य, ३२७ **जगद्धिता**—जगत्का कल्याण करनेवाली।*

३२८ **जीवनम्**—जीवनहेतु, ३२९ **जीवनप्राणा**—जीवन-रूप जलसे जगत्को प्राणशक्तिसे युक्त करनेवाली अथवा जीवन-प्राणस्वरूपा, ३३० **जगत्**—विश्वरूपा अथवा सर्वत्र व्यापक, ३३१ **ज्येष्ठा**—आद्याशक्ति, ३३२ **जगन्मयी**—जगत्स्वरूपा, ३३३ **जीवजीवातुलतिका**—प्राणियोंके लिये सजीवन औषधरूपा, ३३४ **जन्मिजन्मनिबर्हिणी**—जन्मधारी प्राणियोंके जन्म-मरणका क्लेश दूर करनेवाली।†

३३५ **जाड्यविध्वंसनकरी**—जड़ता—अज्ञानका विनाश करनेवाली, ३३६ **जगद्योनिः**—जगत्की कारणभूता प्रकृति-स्वरूपा, ३३७ **जलाविला**—वर्षाके जलसे कुछ मलिन-सी, ३३८ **जगदानन्दजननी**—जगत्के लिये आनन्ददायिनी। ३३९ **जलजा**—कमलका उत्पत्ति-स्थान, ३४० **जलजेक्षणा**—कमलसदृश अथवा कमलस्वरूप नेत्रोंवाली। ‡

३४१ **जनलोचनपीयूषा**—जीवमात्रके नेत्रोंमें अमृतके समान सुखद प्रतीत होनेवाली, ३४२ **जटातटविहारिणी**—भगवान् शङ्करके जटा-प्रदेशमें विहार करनेवाली, ३४३ **जयन्ती**—विजयशीला, ३४४ **जञ्जपूकघ्नी**—पापोंका नाश करनेवाली, ३४५ **जनितज्ञानविग्रहा**—जिसने अपने ज्ञानमय शरीरको प्रकट किया है, वह। §

३४६ **झल्लरीवाद्यकुशला**—अपने जलप्रवाहके द्वारा झल्लरीनामक वाद्यविशेषकी ध्वनि प्रकट करनेमें कुशल अथवा झल्लरी बजानेमें निपुण, ३४७ **झलज्झालजलावृता**—झलझल ध्वनि करनेवाले जलसे आच्छादित, ३४८ **झिण्टीशवन्द्या**—भगवान् शिवके द्वारा वन्दनीया, ३४९ **झाङ्कारकारिणी**—झङ्कार शब्द करनेवाली, ३५० **झर्झरावती**—झरझर शब्दसे युक्त। ×

* चम्पूश्चन्दनशुच्यम्बुश्चर्चनीया चिरस्थिरा।
चारुचम्पकमालाढ्या चमिताशेषदुष्कृता॥

† चिदाकाशवहा चिन्त्या चञ्चच्चामरवीजिता।
चोरिताशेषवृजिना चरिताशेषमण्डला॥

‡ छेदिताखिलपापौघा छद्मघ्नी छलहारिणी।
छन्नत्रिविष्टपतला छोटिताशेषबन्धना॥

§ छुरितामृतधारौघा छिन्नैनाश्छन्दगामिनी।
छत्रीकृतमरालौघा छटीकृतनिजामृता॥

* जाह्नवी ज्या जगन्माता जप्या जङ्गालवीचिका।
जया जनार्दनप्रीता जुषणीया जगद्धिता॥

† जीवनं जीवनप्राणा जगज्ज्येष्ठा जगन्मयी।
जीवजीवातुलतिका जन्मिजन्मनिबर्हिणी॥

‡ जाड्यविध्वंसनकरी जगद्योनिर्जलाविला।
जगदानन्दजननी जलजा जलजेक्षणा॥

§ जनलोचनपीयूषा जटातटविहारिणी।
जयन्ती जञ्जपूकघ्नी जनितज्ञानविग्रहा॥

× झल्लरीवाद्यकुशला झलज्झालजलावृता।
झिण्टीशवन्द्या झाङ्कारकारिणी झर्झरावती॥

३५१ टीकिताशेषपाताला—भोगावती गङ्गाके रूपमें समस्त पाताललोकमें प्रवाहित होनेवाली, **३५२ टङ्किकैनोऽद्रिपाटने**—पापरूपी पर्वतको विदीर्ण करनेमें टङ्क (शस्त्रविशेष) के समान, **३५३ टङ्कारनृत्यत्कल्लोला**—जिसकी चञ्चल लहरें टङ्कार-शब्दके साथ नृत्य-सी करती हैं, वह, **३५४ टीकनीयमहातटा**—जिसका विशाल तटप्रान्त सबके सेवन करने योग्य है, वह । *

३५५ डम्बरप्रवहा—बड़े वेगसे बहनेवाली, **३५६ डीनराजहंसकुलाकुला**—उड़ते हुए राजहंसोंके समुदायसे व्याप्त, **३५७ डमड्डमरुहस्ता**—हाथमें डिमडिम शब्द करनेवाला डमरू लिये रहनेवाली, **३५८ डामरोक्तमहाण्डका**—डामरकल्पमें प्रतिपादित विराट् स्वरूपवाली । †

३५९ ढौकिताशेषनिर्वाणा—अपने भक्तोंको सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि तथा सायुज्यरूप सभी प्रकारके मोक्षकी प्राप्ति करानेवाली, **३६० ढक्कानादचलज्जला**—डंकेकी आवाजके समान ध्वनि-सी करनेवाले प्रवाहशील चञ्चल जलवाली, **३६१ ढुण्ढिविघ्नेशजननी**—ढुण्ढिराज गणेशकी माता, **३६२ ढणड्ढुणितपातका**—ढन् ढन् शब्दके साथ पातकोंको धक्के देकर ढकेलनेवाली । ‡

३६३ तर्पणी—सबको तृप्त करनेवाली अथवा जिसके जलसे सभी तर्पण करते हैं, वह, **३६४ तीर्थतीर्था**—तीर्थोंके लिये भी तीर्थरूपा, **३६५ त्रिपथा**—स्वर्ग, भूतल और पाताल —तीन मार्गोंसे बहनेवाली, **३६६ त्रिदशेश्वरी**—देवताओंकी स्वामिनी, **३६७ त्रिलोकगोप्त्री**—तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाली, **३६८ तोयेशी**—जल अथवा उसकी अधिष्ठात्री देवियोंकी भी स्वामिनी, **३६९ त्रैलोक्यपरिवन्दिता**—त्रिभुवनविशेषवन्दिता । §

३७० तापत्रितयसंहर्त्री—आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंका संहार करनेवाली, **३७१ तेजोबलविवर्धिनी**—तेज और बल बढ़ानेवाली, **३७२ त्रिलक्ष्या**—जिसका स्वरूप तीनों लोकोंमें लक्षित होता है, वह, **३७३ तारणी**—सबको तारनेवाली, **३७४ तारा**—तारनेवाली, प्रणवरूपा अथवा नक्षत्ररूपा, **३७५ तारापतिकरार्चिता**—चन्द्रमाकी किरणोंद्वारा पूजित अथवा चन्द्रमाद्वारा अपने हाथों पूजित ।*

३७६ त्रैलोक्यपावनी पुण्या—तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली नदियोंमें सबसे अधिक पुण्यमयी, **३७७ तुष्टिदा**—सुख एवं सन्तोष देनेवाली, **३७८ तुष्टिरूपिणी**—सन्तोषवृत्तिरूपा, **३७९ तृष्णाच्छेत्री**—तृष्णाका उच्छेद करनेवाली, **३८० तीर्थमाता**—तीर्थोंकी माता, **३८१ त्रिविक्रमपदोद्भवा**—भगवान् वामनके चरण पखारनेसे प्रकट हुई ।†

३८२ तपोमयी—इन्द्रिय और मनकी एकाग्रतारूपा, **३८३ तपोरूपा**—कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रत एवं तपस्यास्वरूपा, **३८४ तपःस्तोमफलप्रदा**—तपःसमुदायका फल देनेवाली, **३८५ त्रैलोक्यव्यापिनी**—तीनों लोकोंमें व्यापक, **३८६ तृप्तिः**—तृप्तिस्वरूपा, **३८७ तृप्तिकृत्**—सन्तुष्ट करनेवाली, **३८८ तत्त्वरूपिणी**—चौबीस तत्त्वरूपा अथवा परमार्थरूपिणी ।‡

३८९ त्रैलोक्यसुन्दरी—तीनों लोकोंमें सर्वाधिक सौन्दर्यवाली, **३९० तुर्या**—जाग्रत् आदि तीन अवस्थाओंसे परे, **३९१ तुर्यातीतफलप्रदा**—तुरीयातीत ब्रह्मपदको देनेवाली, **३९२ त्रैलोक्यलक्ष्मीः**—त्रिभुवनकी सम्पत्ति, **३९३ त्रिपदी**—तीनों लोकोंमें जिसका स्थान है, वह, **३९४ तथ्या**—तीनों कालोंसे अबाधित, परमार्थरूपा, **३९५ तिमिरचन्द्रिका**—अज्ञानरूपी अन्धकारको चाँदनीकी भाँति दूर करनेवाली ।§

३९६ तेजोगर्भा—भगवान् शङ्करका तेजोमय वीर्य जिसके गर्भमें स्थित था, वह, **३९७ तपःसारा**—तपस्याकी सारभूता, **३९८ त्रिपुरारिशिरोगृहा**—भगवान् शङ्करके

---

* टीकिताशेषपाताला टङ्किकैनोऽद्रिपाटने ।
टङ्कारनृत्यत्कल्लोला टीकनीयमहातटा ॥

† डम्बरप्रवहा डीनराजहंसकुलाकुला ।
डमड्डमरुहस्ता च डामरोक्तमहाण्डका ॥

‡ ढौकिताशेषनिर्वाणा ढक्कानादचलज्जला ।
ढुण्ढिविघ्नेशजननी ढणड्ढुणितपातका ॥

§ तर्पणी तीर्थतीर्था च त्रिपथा त्रिदशेश्वरी ।
त्रिलोकगोप्त्री तोयेशी त्रैलोक्यपरिवन्दिता ॥

* तापत्रितयसंहर्त्री तेजोबलविवर्धिनी ।
त्रिलक्ष्या तारणी तारा तारापतिकरार्चिता ॥

† त्रैलोक्यपावनी पुण्या तुष्टिदा तुष्टिरूपिणी ।
तृष्णाच्छेत्री तीर्थमाता त्रिविक्रमपदोद्भवा ॥

‡ तपोमयी तपोरूपा तपःस्तोमफलप्रदा ।
त्रैलोक्यव्यापिनी तृप्तिस्तृप्तिकृत्तत्त्वरूपिणी ॥

§ त्रैलोक्यसुन्दरी तुर्या तुर्यातीतफलप्रदा ।
त्रैलोक्यलक्ष्मीस्त्रिपदी तथ्या तिमिरचन्द्रिका ॥

मस्तकरूपी गृहमें निवास करनेवाली, **३९९ त्रयीस्वरूपिणी**–तीनों वेद जिसके स्वरूप हैं, वह, **४०० तन्वी**–प्रपञ्चका विस्तार करनेवाली अथवा सुन्दरी, कृशाङ्गी, **४०१ तपनाङ्गजभीतिनुत्**–सूर्यपुत्र यमका भय दूर करनेवाली।*

४०२ तरिः–संसार-सागरसे पार होनेके लिये नौका, **४०३ तरणिजामित्रम्**–सूर्यपुत्र यमके अधिकारमें बाधा डालनेके कारण उनके लिये अमित्ररूपा अथवा सूर्यकन्या यमुनाकी सखी, **४०४ तर्पिताशेषपूर्वजा**–राजा भगीरथके अथवा समस्त जनसमुदायके सम्पूर्ण पूर्वजोंको तृप्त करनेवाली, **४०५ तुलाविरहिता**–तुलनारहित, **४०६ तीव्रपापतूलतनूनपात्**–भयङ्कर पापरूपी रूईके ढेरको जलानेके लिये अग्निके समान।†

४०७ दारिद्र्यदमनी–दुर्गति एवं दरिद्रताका दमन करनेवाली, **४०८ दक्षा**–जगत्का उद्धार करनेमें कुशल, **४०९ दुष्प्रेक्षा**–भक्तिभावके बिना जिसका दर्शन पाना अत्यन्त कठिन है, वह, **४१० दिव्यमण्डना**–अलौकिक आभूषणोंसे विभूषित, **४११ दीक्षावती**–लोकहित एवं जीवोंके उद्धारकी दीक्षासे युक्त, **४१२ दुरावाप्या**–दुर्लभा, **४१३ द्राक्षामधुरवारिभृत्**–मुनक्काके समान मधुर जल धारण करनेवाली।‡

४१४ दर्शितानेककुतुका–अपने जलकल्लोलोंके द्वारा अनेक प्रकारके कौतुक दिखानेवाली, **४१५ दुष्टदुर्जयदुःखहृत्**–दोषयुक्त दुर्जय दुःखोंको हर लेनेवाली, **४१६ दैन्यहृत्**–दीनताको दूर करनेवाली, **४१७ दुरितघ्नी**–पापोंका नाश करनेवाली, **४१८ दानवारिपदाब्जजा**–श्रीविष्णुके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई।§

४१९ दन्दशूकविषघ्नी–सर्पोंके विषका नाश करनेवाली, **४२० दारिताघौघसन्ततिः**–पापराशिकी परम्पराको विदीर्ण करनेवाली, **४२१ द्रुता**–वेगसे बहनेवाली, **४२२ देवद्रुमच्छन्ना**–सन्तान, कल्पवृक्ष, मन्दार, पारिजात तथा हरिचन्दन—इन पाँच देववृक्षोंसे आच्छादित, **४२३ दुर्वाराघविघातिनी**–जिन्हें दूर करना कठिन है, ऐसे पातकोंका भी नाश करनेवाली।*

४२४ दमग्राह्या–मन और इन्द्रियोंके संयमसे प्राप्त होनेवाली, **४२५ देवमाता**–अदितिस्वरूपा, **४२६ देवलोकप्रदर्शिनी**–अपने उपासकोंको ब्रह्मलोक आदि दिव्यलोकोंकी प्राप्ति करानेवाली, **४२७ देवदेवप्रिया**–देवाधिदेव शिवकी प्रिया, **४२८ देवी**–द्युतिमती, प्रकाशस्वरूपा, **४२९ दिक्पालपददायिनी**–इन्द्र आदि दिक्पालोंके पदकी प्राप्ति करानेवाली।†

४३० दीर्घायुःकारिणी–आयु बड़ी करनेवाली, **४३१ दीर्घा**–विशाल, अनन्त, **४३२ दोग्ध्री**–धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाली, **४३३ दूषणवर्जिता**–दोषरहित, **४३४ दुग्धाम्बुवाहिनी**–दूधके समान स्वच्छ, स्वादिष्ट एवं गुणकारी जल बहानेवाली, **४३५ दोह्या**–इच्छानुसार दोहन करनेयोग्य—कामधेनुरूपा, **४३६ दिव्या**–अलौकिक स्वरूपवाली, **४३७ दिव्यगतिप्रदा**–दिव्य गति प्रदान करनेवाली।‡

४३८ द्युनदी–स्वर्गलोककी गङ्गा, **४३९ दीनशरणम्**–दीनों—महापातकियोंको भी शरण देकर उनका उद्धार करनेवाली, **४४० देहिदेहनिवारिणी**–देहधारियोंके देहका निवारण करनेवाली (उन्हें मुक्ति देकर जन्म-मृत्युसे रहित करनेवाली), **४४१ द्राघीयसी**–अतिशय विशाल, **४४२ दाघहन्त्री**–दाहकी शान्ति करनेवाली, **४४३ दितपातकसन्ततिः**–पाप-परम्पराका खण्डन करनेवाली।§

४४४ दूरदेशान्तरचरी–दूर देशमें विचरनेवाली, **४४५ दुर्गमा**–दुर्लभा, **४४६ देववल्लभा**–देवताओंकी इष्टदेवी अथवा देव अर्थात् विष्णु एवं शिवकी प्रिया, **४४७ दुर्वृत्तघ्नी**–दुष्टों अथवा पापोंका नाश करनेवाली, **४४८ दुर्विगाह्या**–जिसमें स्नान करनेका अवसर बहुत

---

* तेजोगर्भा तपःसारा त्रिपुरारिशिरोगृहा।
त्रयीस्वरूपिणी तन्वी तपनाङ्गजभीतिनुत्॥

† तरिस्तरणिजामित्रं तर्पिताशेषपूर्वजा।
तुलाविरहिता तीव्रपापतूलतनूनपात्॥

‡ दारिद्र्यदमनी दक्षा दुष्प्रेक्षा दिव्यमण्डना।
दीक्षावती दुरावाप्या द्राक्षामधुरवारिभृत्॥

§ दर्शितानेककुतुका दुष्टदुर्जयदुःखहृत्।
दैन्यहृद् दुरितघ्नी च दानवारिपदाब्जजा॥

* दन्दशूकविषघ्नी च दारिताघौघसन्ततिः।
द्रुता देवद्रुमच्छन्ना दुर्वाराघविघातिनी॥

† दमग्राह्या देवमाता देवलोकप्रदर्शिनी।
देवदेवप्रिया देवी दिक्पालपददायिनी॥

‡ दीर्घायुःकारिणी दीर्घा दोग्ध्री दूषणवर्जिता।
दुग्धाम्बुवाहिनी दोह्या दिव्या दिव्यगतिप्रदा॥

§ द्युनदी दीनशरणं देहिदेहनिवारिणी।
द्राघीयसी दाघहन्त्री दितपातकसन्ततिः॥

दुर्लभ है, ऐसी, ४४९ **दयाधारा**—करुणाकी भण्डार, ४५० **दयावती**—दयालु-स्वभावा ।*

४५१ **दुरासदा**—दुर्लभ अथवा दुर्बोध, ४५२ **दानशीला**—स्वभावतःचारों पुरुषार्थोंको देनेवाली, ४५३ **द्राविणी**—बड़े वेगसे प्रवाहित होनेवाली अथवा पाप-पुञ्जको भगानेवाली, ४५४ **द्रुहिणस्तुता**—ब्रह्माजीके द्वारा प्रशंसित, ४५५ **दैत्यदानवसंशुद्धिकर्त्री**—दैत्यों और दानवोंको भी भलीभाँति शुद्ध करनेवाली, ४५६ **दुर्बुद्धिहारिणी**—खोटी बुद्धिका निवारण करनेवाली ।†

४५७ **दानसारा**—दान जिसका सार तत्त्व है, वह, ४५८ **दयासारा**—जिसमें स्वभावतः दया भरी है, वह, ४५९ **द्यावाभूमिविगाहिनी**—आकाश और भूमिमें समान रूपसे विचरण करनेवाली, ४६० **दृष्टादृष्टफलप्राप्तिः**—लौकिक और पारलौकिक फलकी प्राप्तिमें हेतु, ४६१ **देवतावृन्दवन्दिता**—देवसमुदायके द्वारा नमस्कृत ।‡

४६२ **दीर्घव्रता**—लोकोपकारका महान् व्रत धारण करनेवाली, ४६३ **दीर्घदृष्टिः**—जिसकी दृष्टि अर्थात् बुद्धि दीर्घ—दूरतककी बात सोच लेनेवाली हो, वह अथवा अपरिच्छिन्न ज्ञानस्वरूपा, ४६४ **दीप्ततोया**—प्रकाशमान जलवाली, ४६५ **दुरालभा**—दुर्लभा, ४६६ **दण्डयित्री**—पापोंको दण्ड देनेवाली, ४६७ **दण्डनीतिः**—दण्डनीति नामवाली विद्यास्वरूपा, ४६८ **दुष्टदण्डधरार्चिता**—दुष्टोंको दण्ड देनेवाले यमराजके द्वारा पूजित ।§

४६९ **दुरोदरघ्नी**—जुवा आदि बुरे आचरणोंको नाश करनेवाली, ४७० **दावार्चिः**—पापरूपी वनके लिये दावानलकी ज्वालाके समान, ४७१ **द्रवत्**—सर्वव्यापक तत्त्व, ४७२ **द्रव्यैकशेवधिः**—सम्पूर्ण द्रव्योंकी एकमात्र निधि, ४७३ **दीनसन्तापशमनी**—दीनों—संसारदुःखसे दुखी जीवोंके आध्यात्मिक आदि तापोंका निवारण करनेवाली, ४७४ **दात्री**—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली, ४७५ **दवथुवैरिणी**—संसार-भयसे होनेवाले सन्तापको दूर करनेवाली ।*

४७६ **दरीविदारणपरा**—पर्वतोंकी गुफाओंको विदीर्ण करनेवाली, ४७७ **दान्ता**—इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाली, ४७८ **दान्तजनप्रिया**—जितेन्द्रिय पुरुष जिसे प्रिय हों, ऐसी, ४७९ **दारिताद्रितटा**—पर्वतोंके पार्श्वभागको विदीर्ण करके बहनेवाली, ४८० **दुर्गा**—दुर्ग दैत्यका वध करनेवाली देवी, ४८१ **दुर्गारण्यप्रचारिणी**—दुर्गम वनमें विचरनेवाली ।†

४८२ **धर्मद्रवा**—धर्मस्वरूप है द्रव (जल) जिसका, ऐसी, ४८३ **धर्मधुरा**—धर्मका आधार अथवा उत्कृष्ट धर्मस्वरूपा, ४८४ **धेनुः**—कामधेनुस्वरूपा, ४८५ **धीरा**—धैर्यशालिनी अथवा विदुषी, ४८६ **धृतिः**—धारणाशक्ति, ४८७ **ध्रुवा**—नित्या, ४८८ **धेनुदानफलस्पर्शा**—जिसके जलका स्पर्श गोदानका फल देनेवाला है, वह, ४८९ **धर्मकामार्थमोक्षदा**—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली ।‡

४९० **धर्मोर्मिवाहिनी**—धर्मरूपी लहरोंको धारण करनेवाली, ४९१ **धुर्या**—श्रेष्ठा, ४९२ **धात्री**—धारण-पोषण करनेवाली अथवा माता, ४९३ **धात्रीविभूषणम्**—पृथ्वीका अलङ्कार, ४९४ **धर्मिणी**—पुण्यवती, ४९५ **धर्मशीला**—स्वभावतः धर्मका आचरण करनेवाली, ४९६ **धन्विकोटिकृतावना**—कोटि-कोटि धनुर्धर वीरोंने जिसका रक्षण किया है, वह ।§

४९७ **ध्यातृपापहरा**—ध्यान करनेवाले पुरुषके सब पापोंको हर लेनेवाली, ४९८ **ध्येया**—ध्यान करनेयोग्य, ४९९ **धावनी**—धोनेवाली, पवित्र करनेवाली, ५०० **धूतकल्मषा**—पापोंको धो डालनेवाली, ५०१ **धर्मधारा**—धर्मको धारण करनेवाली, ५०२ **धर्मसारा**—सब धर्मोंकी

---

* दूरदेशान्तरचरी दुर्गमा देववल्लभा ।
दुर्वृत्तघ्नी दुर्विगाह्या दयाधारा दयावती ॥

† दुरासदा दानशीला द्राविणी द्रुहिणस्तुता ।
दैत्यदानवसंशुद्धिकर्त्री दुर्बुद्धिहारिणी ॥

‡ दानसारा दयासारा द्यावाभूमिविगाहिनी ।
दृष्टादृष्टफलप्राप्तिर्देवतावृन्दवन्दिता ॥

§ दीर्घव्रता दीर्घदृष्टिर्दीप्ततोया दुरालभा ।
दण्डयित्री दण्डनीतिर्दुष्टदण्डधरार्चिता ॥

* दुरोदरघ्नी दावार्चिर्द्रवद्द्रव्यैकशेवधिः ।
दीनसन्तापशमनी दात्री दवथुवैरिणी ॥

† दरीविदारणपरा दान्ता दान्तजनप्रिया ।
दारिताद्रितटा दुर्गा दुर्गारण्यप्रचारिणी ॥

‡ धर्मद्रवा धर्मधुरा धेनुर्धीरा धृतिर्ध्रुवा ।
धेनुदानफलस्पर्शा धर्मकामार्थमोक्षदा ॥

§ धर्मोर्मिवाहिनी धुर्या धात्री धात्रीविभूषणम् ।
धर्मिणी धर्मशीला च धन्विकोटिकृतावना ॥

गारभूता, ५०३ **धनदा**–धन देनेवाली, ५०४ **धनवर्द्धिनी**–धन बढ़ानेवाली ।*

५०५ **धर्माधर्मगुणच्छेत्री**–धर्माधर्मके बन्धनको काटनेवाली ब्रह्मविद्यास्वरूपा, ५०६ **धत्तूरकुसुमप्रिया**–धतूरके फूलमें रुचि रखनेवाली, ५०७ **धर्मेशी**–धर्मकी स्वामिनी, ५०८ **धर्मशास्त्रज्ञा**–धर्मशास्त्रको जाननेवाली, ५०९ **धनधान्यसमृद्धिकृत्**–धन और धान्यको बढ़ानेवाली।†

५१० **धर्मलभ्या**–धर्मसे प्राप्त होने योग्य, ५११ **धर्मजला**–धर्मस्वरूप जलवाली, ५१२ **धर्मप्रसवधर्मिणी**–धर्मकी जननी तथा धर्मनिष्ठ, ५१३ **ध्यानगम्यस्वरूपा**–जिसका स्वरूप ध्यानके द्वारा चिन्तन करने योग्य है, वह, ५१४ **धरणी**–धारण करनेवाली, पृथ्वीरूपा, ५१५ **धातृपूजिता**–ब्रह्माजीके द्वारा पूजित ।‡

५१६ **धूः**–पापोंको कम्पित करनेवाली, ५१७ **धूर्जटिजटासंस्था**–भगवान् शङ्करकी जटामें वास करनेवाली, ५१८ **धन्या**–कृतार्थस्वरूपा, ५१९ **धीः**–बुद्धिस्वरूपा, ५२० **धारणावती**–धारणाशक्तिसे सम्पन्न, मेधास्वरूपा, ५२१ **नन्दा**–नन्दा नामवाली गङ्गा अथवा जगत्को आनन्द देनेवाली, ५२२ **निर्वाणजननी**–परम शान्ति अथवा मोक्ष देनेवाली, ५२३ **नन्दिनी**–दूसरोंको प्रसन्न करनेवाली अथवा वशिष्ठकी धेनु, ५२४ **नुन्नपातका**–पातकोंको दूर करनेवाली ।§

५२५ **निषिद्धविघ्ननिचया**–विघ्नसमुदायका निवारण करनेवाली, ५२६ **निजानन्दप्रकाशिनी**–अपने स्वरूपभूत आनन्दको प्रकाशित करनेवाली, ५२७ **नभोऽङ्गणचरी**–आकाशके आँगनमें विचरनेवाली, ५२८ **नूतिः**–स्तुतिस्वरूपा, ५२९ **नम्या**–वन्दनीया, ५३० **नारायणी**–नारायणशक्तिस्वरूपा अथवा नारायणी (गण्डकी) नदीस्वरूपा, ५३१ **नुता**–ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवताओंके द्वारा अभिनन्दिता ।*

५३२ **निर्मला**–संसाररूपी मलसे रहित, ५३३ **निर्मलाख्याना**–जिसकी माहात्म्यकथा अत्यन्त निर्मल है, ऐसी, ५३४ **नाशिनी तापसम्पदाम्**–सन्तापकी परम्पराका नाश करनेवाली, ५३५ **नियता**–नियमपूर्वक रहनेवाली अथवा एकरूपा, ५३६ **नित्यसुखदा**–सदा सुख देनेवाली, ५३७ **नानाश्चर्यमहानिधिः**–अनेक प्रकारके आश्चर्योंका भण्डार ।†

५३८ **नदी**–अव्यक्त शब्द करनेवाली सरिता, ५३९ **नदसरोमाता**–नदों और सरोवरोंकी जननी, ५४० **नायिका**–जीवोंको संसार-समुद्रसे पार ले जानेवाली अथवा सब नदियोंकी स्वामिनी, ५४१ **नाकदीर्घिका**–स्वर्गलोककी बावली, ५४२ **नष्टोद्धरणधीरा**–संसार-सागरमें गिरकर नष्ट होनेवाले जीवोंका उद्धार करनेमें दक्ष, ५४३ **नन्दना**–समृद्धि देनेवाली, ५४४ **नन्ददायिनी**–आनन्द देनेवाली ।‡

५४५ **निर्णिक्ताशेषभुवना**–समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली, ५४६ **निःसङ्गा**–आसक्तिरहित, ५४७ **निरुपद्रवा**–विघ्नरहित, ५४८ **निरालम्बा**–आधाररहित, अपनी ही महिमामें प्रतिष्ठित, ५४९ **निष्प्रपञ्चा**–प्रपञ्चसे परे स्थित, ५५० **निर्णाशितमहामला**–अज्ञानरूपी महामलका पूर्णतया नाश करनेवाली ।§

५५१ **निर्मलज्ञानजननी**–विशुद्ध ज्ञानको प्रकट करनेवाली, ५५२ **निःशेषप्राणितापहृत्**–समस्त प्राणियोंका सन्ताप हर लेनेवाली, ५५३ **नित्योत्सवा**–नित्य उत्सवयुक्त, ५५४ **नित्यतृप्ता**–अपने स्वरूपभूत आनन्दसे सदा सन्तुष्ट, ५५५ **नमस्कार्या**–नमस्कार करनेयोग्य, ५५६ **निरञ्जना**–अज्ञानरहित ।×

---

* ध्यातृपापहरा ध्येया धावनी धूतकल्मषा ।
धर्मधारा धर्मसारा धनदा धनवर्द्धिनी ॥

† धर्माधर्मगुणच्छेत्री धत्तूरकुसुमप्रिया ।
धर्मेशी धर्मशास्त्रज्ञा धनधान्यसमृद्धिकृत् ॥

‡ धर्मलभ्या धर्मजला धर्मप्रसवधर्मिणी ।
ध्यानगम्यस्वरूपा च धरणी धातृपूजिता ॥

§ धूर्धूर्जटिजटासंस्था धन्या धीर्धारणावती ।
नन्दा निर्वाणजननी नन्दिनी नुन्नपातका ॥

* निषिद्धविघ्ननिचया निजानन्दप्रकाशिनी ।
नभोऽङ्गणचरी नूतिर्नम्या नारायणी नुता ॥

† निर्मला निर्मलाख्याना नाशिनी तापसम्पदाम् ।
नियता नित्यसुखदा नानाश्चर्यमहानिधिः ॥

‡ नदी नदसरोमाता नायिका नाकदीर्घिका ।
नष्टोद्धरणधीरा च नन्दना नन्ददायिनी ॥

§ निर्णिक्ताशेषभुवना निःसङ्गा निरुपद्रवा ।
निरालम्बा निष्प्रपञ्चा निर्णाशितमहामला ॥

× निर्मलज्ञानजननी निःशेषप्राणितापहृत् ।
नित्योत्सवा नित्यतृप्ता नमस्कार्या निरञ्जना ॥

५५७ **निष्ठावती**—श्रद्धा एवं नियम-निष्ठासे युक्त, ५५८ **निरातङ्का**—भयरहित, ५५९ **निर्लेपा**—पाप आदिसे अलिप्त, शुद्धस्वरूपा, ५६० **निश्चलात्मिका**—स्थिर बुद्धि-वाली, ५६१ **निरवद्या**—निर्दोष, ५६२ **निरीहा**—चेष्टारहित, ५६३ **नीललोहितमूर्द्धगा**—भगवान् शिवके मस्तकपर विराजमान।*

५६४ **नन्दिभृङ्गिगणस्तुत्या**—नन्दी, भृङ्गी आदि शिवगणोंसे स्तुति की जाने योग्य, ५६५ **नागा**—नागस्वरूपा, ५६६ **नन्दा**—समृद्धिदायिनी, ५६७ **नगात्मजा**—गिरिराज हिमवान्की पुत्री, ५६८ **निष्प्रत्यूहा**—विघ्न-बाधाओंसे रहित, ५६९ **नाकनदी**—स्वर्गलोककी नदी, ५७० **निरयार्णवदीर्घनौः**—नरक-समुद्रसे पार होनेके लिये विशाल नौकास्वरूप।†

५७१ **पुण्यप्रदा**—पुण्य देनेवाली, ५७२ **पुण्यगर्भा**—अपने भीतर पुण्य धारण करनेवाली, ५७३ **पुण्या**—पुण्य-स्वरूपा, ५७४ **पुण्यतरङ्गिणी**—पवित्र लहरोंवाली, ५७५ **पृथुः**—विशाल एवं परिपूर्ण, ५७६ **पृथुफला**—महान् फलवाली, ५७७ **पूर्णा**—सर्वत्र व्यापक, अविच्छिन्न धारासे युक्त, ५७८ **प्रणतार्तिप्रभञ्जनी**—शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करनेवाली।‡

५७९ **प्राणदा**—प्राणदान करनेवाली, ५८० **प्राणिजननी**—जीवोंको जन्म देनेवाली, ५८१ **प्राणेशी**—प्राणोंकी अधीश्वरी, ५८२ **प्राणरूपिणी**—प्राणस्वरूपा, ५८३ **पद्मालया**—कमलोंमें वास करनेवाली लक्ष्मीस्वरूपा, ५८४ **पराशक्तिः**—सर्वोत्कृष्ट शक्ति, ५८५ **पुरजित्परमप्रिया**—त्रिपुरारि शिवकी अतिशय वल्लभा।§

५८६ **परा**—सर्वश्रेष्ठ, ५८७ **परफलप्राप्तिः**—सर्वोत्तम फल मोक्षकी प्राप्ति करानेवाली, ५८८ **पावनी**—सबको पवित्र करनेवाली, ५८९ **पयस्विनी**—उत्तम जलवाली, ५९० **परानन्दा**—परमानन्दस्वरूपा, ५९१ **प्रकृष्टार्था**—श्रेष्ठ पुरुषार्थ-स्वरूपा, ५९२ **प्रतिष्ठा**—सबकी आधारभूता, ५९३ **पालिनी**—पालन करनेवाली, ५९४ **परा**—परमात्मस्वरूपा।*

५९५ **पुराणपठिता**—पुराणोंमें जिसकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है, वह, ५९६ **प्रीता**—सबको प्रिय लगनेवाली, ५९७ **प्रणवाक्षररूपिणी**—ॐकारस्वरूपा, ५९८ **पार्वती**—पर्वतराजकन्या, ५९९ **प्रेमसम्पन्ना**—प्रेमसे परिपूर्ण, ६०० **पशुपाशविमोचनी**—जीवोंके अज्ञानमय बन्धनको दूर करनेवाली।†

६०१ **परमात्मस्वरूपा**—परब्रह्मरूपिणी, ६०२ **परब्रह्मप्रकाशिनी**—परब्रह्मको प्रकाशित करनेवाली, ६०३ **परमानन्दनिष्पन्दा**—अपने स्वरूपभूत परमानन्दमें निमग्न होनेके कारण निश्चल, ६०४ **प्रायश्चित्तस्वरूपिणी**—समस्त पापोंके लिये एकमात्र प्रायश्चित्तस्वरूपा।‡

६०५ **पानीयरूपनिर्वाणा**—जिसमें जलरूपसे मोक्षका ही निवास है, वह, ६०६ **परित्राणपरायणा**—शरणागतोंकी रक्षामें तत्पर, ६०७ **पापेन्धनदवज्वाला**—पापरूपी ईन्धनको जलानेके लिये दावाग्निकी लपट, ६०८ **पापारिः**—पापोंकी शत्रु, ६०९ **पापनामनुत्**—पापोंका नामतक मिटा देनेवाली।§

६१० **परमैश्वर्यजननी**—अणिमा आदि महान् ऐश्वर्योंको जन्म देनेवाली, ६११ **प्रज्ञा**—उत्तम ज्ञानस्वरूपा, ६१२ **प्राज्ञा**—विदुषी, ६१३ **परापरा**—कारणकार्यस्वरूपा, ६१४ **प्रत्यक्षलक्ष्मीः**—साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा, ६१५ **पद्माक्षी**—कमलके समान अथवा कमलस्वरूप नेत्रोंवाली, ६१६ **परव्योमामृतस्रवा**—परब्रह्मस्वरूप अमृतमय जलको बहानेवाली।×

६१७ **प्रसन्नरूपा**—आनन्दमय स्वरूपवाली, ६१८ **प्रणिधिः**—सर्वाधार, ६१९ **पूता**—परम पवित्र,

---

* निष्ठावती निरातङ्का निर्लेपा निश्चलात्मिका।
निरवद्या निरीहा च नीललोहितमूर्द्धगा॥

† नन्दिभृङ्गिगणस्तुत्या नागा नन्दा नगात्मजा।
निष्प्रत्यूहा नाकनदी निरयार्णवदीर्घनौः॥

‡ पुण्यप्रदा पुण्यगर्भा पुण्या पुण्यतरङ्गिणी।
पृथुः पृथुफला पूर्णा प्रणतार्तिप्रभञ्जनी॥

§ प्राणदा प्राणिजननी प्राणेशी प्राणरूपिणी।
पद्मालया पराशक्तिः पुरजित्परमप्रिया॥

* परा परफलप्राप्तिः पावनी च पयस्विनी।
परानन्दा प्रकृष्टार्था प्रतिष्ठा पालिनी परा॥

† पुराणपठिता प्रीता प्रणवाक्षररूपिणी।
पार्वती प्रेमसम्पन्ना पशुपाशविमोचनी॥

‡ परमात्मस्वरूपा च परब्रह्मप्रकाशिनी।
परमानन्दनिष्पन्दा प्रायश्चित्तस्वरूपिणी॥

§ पानीयरूपनिर्वाणा परित्राणपरायणा।
पापेन्धनदवज्वाला पापारिः पापनामनुत्॥

× परमैश्वर्यजननी प्रज्ञा प्राज्ञा परापरा।
प्रत्यक्षलक्ष्मीः पद्माक्षी परव्योमामृतस्रवा॥

६२० **प्रत्यक्षदेवता**—सबके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हुई सच्चिदानन्दमयी देवी, ६२१ **पिनाकिपरमप्रीता**—पिनाकधारी भगवान् शिवकी परम प्रियतमा, ६२२ **परमेष्ठिकमण्डलुः**—ब्रह्माजीके कमण्डलुमें वास करनेवाली ।*

६२३ **पद्मनाभपदार्घ्येण प्रसूता**—भगवान् विष्णुके चरण पखारनेसे प्रकट हुई, ६२४ **पद्ममालिनी**—कमल पुष्पोंकी माला धारण करनेवाली, ६२५ **परर्द्धिदा**—उत्तम समृद्धि देनेवाली, ६२६ **पुष्टिकरी**—पोषण करनेवाली, ६२७ **पथ्या**—संसाररूपी रोगकी निवृत्तिके लिये हितकर आहारस्वरूपा, ६२८ **पूर्तिः**—पूर्णता, ६२९ **प्रभावती**—प्रकाशवती ।†

६३० **पुनाना**—पवित्र करनेवाली, ६३१ **पीतगर्भघ्नी**—पीतगर्भ अर्थात् राक्षसोंका नाश करनेवाली, ६३२ **पापपर्वतनाशिनी**—पापरूपी पर्वतका नाश करनेवाली, ६३३ **फलिनी**—देने योग्य फलसे युक्त, ६३४ **फलहस्ता**—भक्तोंको देनेके लिये सब प्रकारके फल हाथमें धारण करनेवाली, ६३५ **फुल्लाम्बुजविलोचना**—विकसित कमलके समान नेत्रोंवाली ।‡

६३६ **फालितैनोमहाक्षेत्रा**—पापोंके महाक्षेत्रको नष्ट करनेवाली, ६३७ **फणिलोकविभूषणम्**—भोगवती गङ्गाके रूपमें नागलोकको विभूषित करनेवाली, ६३८ **फेनच्छलप्रणुन्नैनाः**—फेन छाँटनेके व्याजसे पापराशिको नाश करनेवाली, ६३९ **फुल्लकैरवगन्धिनी**—खिले हुए कुमुदपुष्पोंकी गन्धसे युक्त ।§

६४० **फेनिलाच्छाम्बुधाराभा**—फेनयुक्त स्वच्छ जलकी धारासे उद्भासित होनेवाली, ६४१ **फुडुच्चाटितपातका**—'फुट्' इस शब्दके साथ पातकोंको उखाड़ फेंकनेवाली, ६४२ **फाणितस्वादुसलिला**—सीराके समान स्वादिष्ट जलवाली, ६४३ **फाण्टपथ्यजलाविला**—मट्ठाके समान पथ्य (हितकर) जलसे भरी हुई ।*

६४४ **विश्वमाता**—समस्त संसारकी माता, ६४५ **विश्वेशी**—जगदीश्वरी, ६४६ **विश्वा**—सर्वस्वरूपा, ६४७ **विश्वेश्वरप्रिया**—विश्वनाथवल्लभा, ६४८ **ब्रह्मण्या**—ब्राह्मणहितकारिणी, ६४९ **ब्रह्मकृत्**—ब्रह्मा आदि देवताओंको उत्पन्न करनेवाली जगदीश्वरी, ६५० **ब्राह्मी**—ब्रह्मशक्ति, ६५१ **ब्रह्मिष्ठा**—ब्रह्मनिष्ठ, ६५२ **विमलोदका**—निर्मल-जलवाली ।†

६५३ **विभावरी**—रात्रिस्वरूपा, ६५४ **विरजा**—रजोगुणरहिता, ६५५ **विक्रान्तानेकविष्टपा**—अनेक भुवनोंमें व्याप्त, ६५६ **विश्वमित्रम्**—सम्पूर्ण जगत्की सुहृद्, ६५७ **विष्णुपदी**—भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई, ६५८ **वैष्णवी**—विष्णुशक्ति, ६५९ **वैष्णवप्रिया**—विष्णु-भक्तोंको प्रिय ।‡

६६० **विरूपाक्षप्रियकरी**—भगवान् शङ्करका प्रियकार्य करनेवाली, ६६१ **विभूतिः**—अणिमा आदि अष्टविध ऐश्वर्यरूपा, ६६२ **विश्वतोमुखी**—सब ओर मुखवाली, ६६३ **विपाशा**—बन्धनरहित, अथवा विपाशा (व्यास) नामक नदी, ६६४ **वैबुधी**—देवाधिदेव विष्णुकी शक्ति अथवा देवलोकमें प्रकट, ६६५ **वेद्या**—जानने योग्य, ६६६ **वेदाक्षररसस्रवा**—वेदके अक्षरोंसे प्रतिपादित ब्रह्मानन्द-रसका स्रोत बहानेवाली, ब्रह्मद्रवरूपा ।§

६६७ **विद्या**—ब्रह्मविद्यास्वरूपा, ६६८ **वेगवती**—बड़े वेगसे बहनेवाली, ६६९ **वन्द्या**—वन्दनीया, ६७० **बृंहणी**—बृहत्स्वरूपा अथवा विस्तार करनेवाली, ६७१ **ब्रह्मवादिनी**—ब्रह्मका उपदेश करनेवाली, ६७२ **वरदा**—वर देनेवाली, ६७३ **विप्रकृष्टा**—सर्वोत्तम, ६७४ **वरिष्ठा**—

---

* प्रसन्नरूपा प्रणिधिः पूता प्रत्यक्षदेवता ।
पिनाकिपरमप्रीता परमेष्ठिकमण्डलुः ॥

† पद्मनाभपदार्घ्येण प्रसूता पद्ममालिनी ।
परर्द्धिदा पुष्टिकरी पथ्या पूर्तिः प्रभावती ॥

‡ पुनाना पीतगर्भघ्नी पापपर्वतनाशिनी ।
फलिनी फलहस्ता च फुल्लाम्बुजविलोचना ॥

§ फालितैनोमहाक्षेत्रा फणिलोकविभूषणम् ।
फेनच्छलप्रणुन्नैनाः फुल्लकैरवगन्धिनी ॥

* फेनिलाच्छाम्बुधाराभा फुडुच्चाटितपातका ।
फाणितस्वादुसलिला फाण्टपथ्यजलाविला ॥

† विश्वमाता च विश्वेशी विश्वा विश्वेश्वरप्रिया ।
ब्रह्मण्या ब्रह्मकृद्ब्राह्मी ब्रह्मिष्ठा विमलोदका ॥

‡ विभावरी च विरजा विक्रान्तानेकविष्टपा ।
विश्वमित्रं विष्णुपदी वैष्णवी वैष्णवप्रिया ॥

§ विरूपाक्षप्रियकरी विभूतिर्विश्वतोमुखी ।
विपाशा वैबुधी वेद्या वेदाक्षररसस्रवा ॥

श्रेष्ठा, ६७५ **विशोधनी**–विशेषरूपसे शुद्ध (पवित्र) करनेवाली ।*

६७६ **विद्याधरी**–सम्पूर्ण विद्याओंको धारण करनेवाली, ६७७ **विशोका**–शोकरहित, ६७८ **वयोवृन्दनिषेविता**–पक्षियोंके समुदायसे निषेवित, ६७९ **बहूदका**–बहुत जलवाली, ६८० **बलवती**–बलसे युक्त, ६८१ **व्योमस्था**–स्वर्गगङ्गारूपसे आकाशमें स्थित, ६८२ **विबुधप्रिया**–देवताओंकी प्रियनदी ।†

६८३ **वाणी**–सरस्वतीस्वरूपा, ६८४ **वेदवती**–वैदिक ज्ञानसे सम्पन्न अथवा वेदवती नामवाली सती साध्वी स्वरूपा, ६८५ **वित्ता**–ज्ञानस्वरूपा, ६८६ **ब्रह्मविद्यातरङ्गिणी**–ब्रह्मविद्यारूपी तरङ्गोंसे युक्त, ६८७ **ब्रह्माण्डकोटिव्याप्ताम्बुः**–करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त जलवाली, ६८८ **ब्रह्महत्यापहारिणी**–ब्रह्महत्याका अपहरण करनेवाली ।‡

६८९ **ब्रह्मेशविष्णुरूपा**–ब्रह्मा, शिव और विष्णु-स्वरूपा, ६९० **बुद्धिः**–बुद्धिस्वरूपा, ६९१ **विभववर्द्धिनी**–धन बढ़ानेवाली, ६९२ **विलासिसुखदा**–विलासियोंको सुख देनेवाली, ६९३ **वश्या**–भगवदिच्छाके अधीन रहनेवाली, ६९४ **व्यापिनी**–सर्वत्र व्यापक, ६९५ **वृषारणिः**–धर्मोत्पत्तिकी कारणरूपा ।§

६९६ **वृषाङ्कमौलिनिलया**–भगवान् शङ्करके मस्तकपर निवास करनेवाली, ६९७ **विपन्नार्तिप्रभञ्जनी**–विपत्तिमें पड़े हुए भक्तजनोंकी पीड़ा अथवा अपने जलमें मृत्युको प्राप्त हुए पुरुषोंकी दुर्गति एवं कष्टका निवारण करनेवाली, ६९८ **विनीता**–विनयशीला, ६९९ **विनता**–विशेषतः नम्र, ७०० **ब्रध्नतनया**–सूर्यपुत्री यमुनास्वरूपा, ७०१ **विनयान्विता**–विनययुक्त ।×

७०२ **विपञ्ची**–वीणास्वरूपा अथवा वीणाकी-सी मधुर ध्वनि करनेवाली, ७०३ **वाद्यकुशला**–सभी प्रकारके वाद्योंको बजानेमें चतुर, ७०४ **वेणुश्रुतिविचक्षणा**–वेणुगीत सुनने और समझनेमें कुशल, ७०५ **वर्चस्करी**–तेज उत्पन्न करनेवाली, ७०६ **बलकरी**–सामर्थ्य प्रदान करनेवाली, ७०७ **बलोन्मूलितकल्मषा**–बलपूर्वक पापोंका उच्छेद करनेवाली ।*

७०८ **विपाप्मा**–पापरहित, ७०९ **विगतातङ्का**–भयरहित, ७१० **विकल्पपरिवर्जिता**–भेददृष्टिसे रहित, ७११ **वृष्टिकर्त्री**–सूर्यरूपसे वर्षा करनेवाली, ७१२ **वृष्टिजला**–वर्षाके कारणभूत जलवाली, ७१३ **विधिः**–ब्रह्मारूपसे सृष्टि करनेवाली, ७१४ **विच्छिन्नबन्धना**–अपने आश्रितोंके संसारबन्धनका नाश करनेवाली ।†

७१५ **व्रतरूपा**–कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रतस्वरूपा अथवा भक्तोंके व्रत (सङ्कल्प) के अनुसार स्वरूप धारण करनेवाली, ७१६ **वित्तरूपा**–वैभवरूपिणी, ७१७ **बहुविघ्नविनाशकृत्**–बहुतसे विघ्नोंका विनाश करनेवाली, ७१८ **वसुधारा**–वसु (धन) धारण करनेवाली, आठ वसुओंको मातारूपसे गर्भमें धारण करनेवाली अथवा 'वसुधारा' स्वरूपा, ७१९ **वसुमती**–रत्नगर्भा वसुधारूपा, ७२० **विचित्राङ्गी**–अद्भुत शरीरवाली, ७२१ **विभावसुः**–अग्नि अथवा सूर्यकी भाँति प्रकाशित होनेवाली ।‡

७२२ **विजया**–विजयशालिनी, ७२३ **विश्वबीजम्**–जगत्‌की कारणस्वरूपा, ७२४ **वामदेवी**–वामदेव शिवकी शक्ति, मनोहारिणी देवी, ७२५ **वरप्रदा**–वर देनेवाली, ७२६ **वृषाश्रिता**–धर्मके आश्रित, ७२७ **विषघ्नी**–विषका प्रभाव नष्ट करनेवाली, ७२८ **विज्ञानोर्म्यंशुमालिनी**–विज्ञानमयी तरङ्गों और किरणोंसे युक्त ।§

७२९ **भव्या**–कल्याणमयी, ७३० **भोगवती**–भोगवती नामसे प्रसिद्ध पातालगङ्गा, ७३१ **भद्रा**–मङ्गलमयी,

---

* विद्या वेगवती वन्द्या बृंहणी ब्रह्मवादिनी ।
वरदा विप्रकृष्टा च वरिष्ठा च विशोधनी ॥

† विद्याधरी विशोका च वयोवृन्दनिषेविता ।
बहूदका बलवती व्योमस्था विबुधप्रिया ॥

‡ वाणी वेदवती वित्ता ब्रह्मविद्यातरङ्गिणी ।
ब्रह्माण्डकोटिव्याप्ताम्बुर्ब्रह्महत्यापहारिणी ॥

§ ब्रह्मेशविष्णुरूपा च बुद्धिर्विभववर्द्धिनी ।
विलासिसुखदा वश्या व्यापिनी च वृषारणिः ॥

× वृषाङ्कमौलिनिलया विपन्नार्तिप्रभञ्जनी ।
विनीता विनता ब्रध्नतनया विनयान्विता ॥

* विपञ्ची वाद्यकुशला वेणुश्रुतिविचक्षणा ।
वर्चस्करी बलकरी बलोन्मूलितकल्मषा ॥

† विपाप्मा विगतातङ्का विकल्पपरिवर्जिता ।
वृष्टिकर्त्री वृष्टिजला विधिर्विच्छिन्नबन्धना ॥

‡ व्रतरूपा वित्तरूपा बहुविघ्नविनाशकृत् ।
वसुधारा वसुमती विचित्राङ्गी विभावसुः ॥

§ विजया विश्वबीजं च वामदेवी वरप्रदा ।
वृषाश्रिता विषघ्नी च विज्ञानोर्म्यंशुमालिनी ॥

७३२ भवानी–शिवपत्नी, **७३३ भूतभाविनी**–समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और पालन करनेवाली, **७३४ भूतधात्री**–चार प्रकारके जीवोंका धारण-पोषण करनेवाली, **७३५ भयहरा**–संसार-भयका निवारण करनेवाली, **७३६ भक्तदारिद्र्यघातिनी**–भक्तोंकी दरिद्रताका नाश करनेवाली।*

७३७ भुक्तिमुक्तिप्रदा–भोग और मोक्ष देनेवाली, **७३८ भेशी**–नक्षत्रोंकी अधीश्वरी, **७३९ भक्तस्वर्गापवर्गदा**–भक्तोंको स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली, **७४० भागीरथी**–राजा भगीरथके द्वारा लायी हुई, **७४१ भानुमती**–प्रकाशवती, **७४२ भाग्यम्**–नियतिरूपा, **७४३ भोगवती**–विविध प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न, **७४४ भृतिः**–भरण-पोषणका साधन।†

७४५ भवप्रिया–भगवान् शङ्करकी प्रिया, **७४६ भवद्वेष्ट्री**–संसार-बन्धनका नाश करनेवाली, **७४७ भूतिदा**–ऐश्वर्य देनेवाली, **७४८ भूतिभूषणा**–विभूतिसे विभूषित, **७४९ भाललोचनभावज्ञा**–भगवान् शिवके भावको जाननेवाली, **७५० भूतभव्यभवत्प्रभुः**–भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालकी स्वामिनी।‡

७५१ भ्रान्तिज्ञानप्रशमनी–भ्रमात्मक ज्ञानका निवारण करनेवाली, **७५२ भिन्नब्रह्माण्डमण्डपा**–ब्रह्माण्डरूपी मण्डपका भेदन करनेवाली, **७५३ भूरिदा**–बहुत देनेवाली, **७५४ भक्तसुलभा**–भक्तोंको सुगमतापूर्वक प्राप्त होनेवाली, **७५५ भाग्यवद्दृष्टिगोचरी**–भाग्यवानोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली।§

७५६ भजितोपप्लवकुला–भक्तजनोंके उपद्रवोंका नाश करनेवाली, **७५७ भक्ष्यभोज्यसुखप्रदा**–भक्ष्य-भोज्यका सुख देनेवाली, **७५८ भिक्षणीया**–अभ्युदय और निःश्रेयसकी इच्छावाले पुरुषोंद्वारा याचना करने योग्य, **७५९ भिक्षुमाता**–भिक्षुओं—परमहंसजनोंको माताके समान सुख देनेवाली, **७६० भावी**–सबको उत्पन्न करनेवाली, **७६१ भावस्वरूपिणी**–पदार्थरूपा।*

७६२ मन्दाकिनी–स्वर्गङ्गा, **७६३ महानन्दा**–परमानन्दस्वरूपा, **७६४ माता**–सम्पूर्ण विश्वके पापरूपी मलको पुत्रवत्सला माताकी भाँति दूर करनेवाली, **७६५ मुक्तितरङ्गिणी**–मोक्षरूप तरङ्गोंसे सुशोभित, **७६६ महोदया**–महान् अभ्युदयरूप, **७६७ मधुमती**–अमृतमय जलसे युक्त, **७६८ महापुण्या**–महापुण्यस्वरूपा, **७६९ मुदाकरी**–हर्षोल्लासकी निधि।†

७७० मुनिस्तुता–मुनियोंके द्वारा प्रशंसित एवं पूजित, **७७१ मोहहन्त्री**–अज्ञानका नाश करनेवाली, **७७२ महातीर्था**–महान् तीर्थस्वरूपा, **७७३ मधुस्रवा**–मीठे जलका स्रोत बहानेवाली, **७७४ माधवी**–विष्णुप्रिया, **७७५ मानिनी**–सबके द्वारा सम्मान प्राप्त करनेवाली, **७७६ मान्या**–माननीया, पूजनीया, **७७७ मनोरथपथातिगा**–मनकी पहुँचसे परे विराजमान।‡

७७८ मोक्षदा–मोक्ष देनेवाली, **७७९ मतिदा**–उत्तम बुद्धि देनेवाली, **७८० मुख्या**–श्रेष्ठा, **७८१ महाभाग्यजनाश्रिता**–बड़भागी मनुष्योंद्वारा सेवित, **७८२ महावेगवती**–बड़े वेगसे बहनेवाली, **७८३ मेध्या**–पवित्रा, **७८४ महा**–उत्सवरूपा, **७८५ महिमभूषणा**–अपनी महिमासे विभूषित।§

७८६ महाप्रभावा–महान् प्रभावसे युक्त, **७८७ महती**–विशाल, **७८८ मीनचञ्चललोचना**–मीनके समान अथवा मीनस्वरूप चञ्चल नेत्रोंवाली, **७८९ महाकारुण्यसम्पूर्णा**–अत्यन्त कृपासे भरी हुई, **७९० महर्द्धिः**–बड़ी भारी समृद्धि देनेवाली अथवा महती समृद्धिरूपा, **७९१ महोत्पला**–बड़े-बड़े कमलोंको उत्पन्न करनेवाली।×

---

* भव्या भोगवती भद्रा भवानी भूतभाविनी।
भूतधात्री भयहरा भक्तदारिद्र्यघातिनी॥

† भुक्तिमुक्तिप्रदा भेशी भक्तस्वर्गापवर्गदा।
भागीरथी भानुमती भाग्यं भोगवती भृतिः॥

‡ भवप्रिया भवद्वेष्ट्री भूतिदा भूतिभूषणा।
भाललोचनभावज्ञा भूतभव्यभवत्प्रभुः॥

§ भ्रान्तिज्ञानप्रशमनी भिन्नब्रह्माण्डमण्डपा।
भूरिदा भक्तसुलभा भाग्यवद्दृष्टिगोचरी॥

* भजितोपप्लवकुला भक्ष्यभोज्यसुखप्रदा।
भिक्षणीया भिक्षुमाता भावी भावस्वरूपिणी॥

† मन्दाकिनी महानन्दा माता मुक्तितरङ्गिणी।
महोदया मधुमती महापुण्या मुदाकरी॥

‡ मुनिस्तुता मोहहन्त्री महातीर्था मधुस्रवा।
माधवी मानिनी मान्या मनोरथपथातिगा॥

§ मोक्षदा मतिदा मुख्या महाभाग्यजनाश्रिता।
महावेगवती मेध्या महा महिमभूषणा॥

× महाप्रभावा महती मीनचञ्चललोचना।
महाकारुण्यसम्पूर्णा महर्द्धिश्च महोत्पला॥

७९२ **मूर्तिमत्**–मूर्तिमान् तेज, ७९३ **मुक्तिरमणी**–मुक्तिरूपा, रमण करने योग्य, ७९४ **मणिमाणिक्यभूषणा**–मणि-माणिक्यमय आभूषणोंवाली, ७९५ **मुक्ताकलापनेपथ्या**–मोतियोंकी मालासे शृङ्गार करनेवाली, ७९६ **मनोनयननन्दिनी**–मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाली।*

७९७ **महापातकराशिघ्नी**–महापातकोंकी राशिका नाश करनेवाली, ७९८ **महादेवार्धहारिणी**–महादेवजीके आधे शरीरपर अधिकार करनेवाली गौरीस्वरूपा, ७९९ **महोर्मिमालिनी**–ऊँची तरङ्गमालाओंसे युक्त, ८०० **मुक्ता**–मुक्तस्वरूपा, ८०१ **महादेवी**–महादेवी, ८०२ **मनोन्मनी**–मनको उन्मन (उत्तम ज्ञानसे युक्त) करनेवाली।†

८०३ **महापुण्योदयप्राप्या**–महान् पुण्यका उदय होनेपर प्राप्त होनेवाली, ८०४ **मायातिमिरचन्द्रिका**–मायामय अन्धकारका नाश करनेके लिये चन्द्रप्रभारूप, ८०५ **महाविद्या**–ब्रह्मविद्यास्वरूपा, ८०६ **महामाया**–महामाया, ८०७ **महामेधा**–महान् बुद्धिमती, ८०८ **महौषधम्**–उत्तम ओषधिरूपा।‡

८०९ **मालाधरी**–माला धारण करनेवाली, ८१० **महोपाया**–मुक्तिकी प्राप्तिका महासाधन, ८११ **महोरगविभूषणा**–महान् सर्प जिसके आभूषण हैं, वह, ८१२ **महामोहप्रशमनी**–महान् मोहको शान्त करनेवाली, ८१३ **महामङ्गलमङ्गलम्**–महान् मङ्गलोंके लिये भी मङ्गलरूप।§

८१४ **मार्तण्डमण्डलचरी**–आकाशगङ्गारूपसे सूर्यलोकमें विचरनेवाली, ८१५ **महालक्ष्मीः**–महालक्ष्मीस्वरूपा, ८१६ **मदोज्झिता**–मदसे रहित, ८१७ **यशस्विनी**–उत्तम यशसे युक्त, ८१८ **यशोदा**–सुयश देनेवाली, ८१९ **योग्या**–सब प्रकारसे सुयोग्य, ८२० **युक्तात्मसेविता**–जितात्मा पुरुषोंद्वारा सेवित।×

८२१ **योगसिद्धिप्रदा**–योगसिद्धि देनेवाली, ८२२ **याच्या**–प्रार्थनीया, ८२३ **यज्ञेशपरिपूरिता**–यज्ञेश्वर विष्णुसे व्याप्त, ८२४ **यज्ञेशी**–यज्ञकी अधिष्ठात्री देवी, ८२५ **यज्ञफलदा**–स्मरण करनेपर यज्ञोंका फल देनेवाली, ८२६ **यजनीया**–पूजनीया, ८२७ **यशस्करी**–यश देनेवाली।*

८२८ **यमिसेव्या**–संयमी पुरुषोंद्वारा सेवन करनेयोग्य, ८२९ **योगयोनिः**–योगकी उत्पत्तिका स्थान, ८३० **योगिनी**–योगको जाननेवाली, ८३१ **युक्तबुद्धिदा**–योगयुक्त बुद्धि देनेवाली, ८३२ **योगज्ञानप्रदा**–योग और ज्ञान देनेवाली, ८३३ **युक्ता**–मन और इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाली, ८३४ **यमाद्यष्टाङ्गयोगयुक्**–यम, नियम आदि आठ अङ्गोंवाले योगसे युक्त।†

८३५ **यन्त्रिताघौघसंचारा**–पापराशियोंके सञ्चारको नियन्त्रित करनेवाली, ८३६ **यमलोकनिवारिणी**–यमलोकका निवारण करनेवाली, ८३७ **यातायातप्रशमनी**–आवागमन अथवा जन्म-मृत्युका कष्ट दूर करनेवाली, ८३८ **यातनानामकृन्तनी**–यातनाका नाम-निशान मिटानेवाली।‡

८३९ **यामिनीशहिमाच्छोदा**–चन्द्रमा और बर्फके समान स्वच्छ एवं शीतल जलवाली, ८४० **युगधर्मविवर्जिता**–कलियुगधर्म—हिंसा और असत्य आदिसे सर्वथा रहित, ८४१ **रेवती**–रेवती नामक नक्षत्रस्वरूपा, ८४२ **रतिकृत्**–भगवान्‌के प्रति अनुराग रखनेवाली, ८४३ **रम्या**–रमणीया, ८४४ **रत्नगर्भा**–अपने भीतर रत्न धारण करनेवाली, ८४५ **रमा**–लक्ष्मीरूपा, ८४६ **रतिः**–अनुरागरूपा।§

८४७ **रत्नाकरप्रेमपात्रम्**–रत्नाकर–समुद्रकी प्रीतिपात्र, ८४८ **रसज्ञा**–रसको जाननेवाली, ८४९ **रसरूपिणी**–रसस्वरूपा, ८५० **रत्नप्रासादगर्भा**–जिसके भीतर रत्नमय देवालय शोभा पा रहे हैं, ऐसी, ८५१ **रमणीयतरङ्गिणी**–रमणीय लहरोंसे युक्त।×

---

* मूर्तिमन्मुक्तिरमणी मणिमाणिक्यभूषणा ।
मुक्ताकलापनेपथ्या मनोनयननन्दिनी ॥

† महापातकराशिघ्नी महादेवार्धहारिणी ।
महोर्मिमालिनी मुक्ता महादेवी मनोन्मनी ॥

‡ महापुण्योदयप्राप्या मायातिमिरचन्द्रिका ।
महाविद्या महामाया महामेधा महौषधम् ॥

§ मालाधरी महोपाया महोरगविभूषणा ।
महामोहप्रशमनी महामङ्गलमङ्गलम् ॥

× मार्तण्डमण्डलचरी महालक्ष्मीर्मदोज्झिता ।
यशस्विनी यशोदा च योग्या युक्तात्मसेविता ॥

* योगसिद्धिप्रदा याच्या यज्ञेशपरिपूरिता ।
यज्ञेशी यज्ञफलदा यजनीया यशस्करी ॥

† यमिसेव्या योगयोनिर्योगिनी युक्तबुद्धिदा ।
योगज्ञानप्रदा युक्ता यमाद्यष्टाङ्गयोगयुक् ॥

‡ यन्त्रिताघौघसंचारा यमलोकनिवारिणी ।
यातायातप्रशमनी यातनानामकृन्तनी ।

§ यामिनीशहिमाच्छोदा युगधर्मविवर्जिता ।
रेवती रतिकृद् रम्या रत्नगर्भा रमा रतिः ॥

× रत्नाकरप्रेमपात्रं रसज्ञा रसरूपिणी ।
रत्नप्रासादगर्भा च रमणीयतरङ्गिणी ॥

८५२ **रत्नार्चिः**–रत्नोंके समान कान्तिमती, ८५३ **रुद्ररमणी**–भगवान् रुद्रकी जटामें रमण करनेवाली, ८५४ **रागद्वेषविनाशिनी**–राग और द्वेषका नाश करनेवाली, ८५५ **रमा**–नेत्र और मनको रमानेवाली, ८५६ **रामा**–मनोहर स्त्री अथवा योगियोंके मनको रमानेवाली, ८५७ **रम्यरूपा**–रमणीय रूपवाली, ८५८ **रोगिजीवानुरूपिणी**–संसार-रोगसे ग्रस्त पुरुषोंके लिये संजीवन ओषधिरूपा।*

८५९ **रुचिकृत्**–प्रकाश करनेवाली, ८६० **रोचनी**–अपने दर्शनकी रुचि उत्पन्न करनेवाली, ८६१ **रम्या**–रमाकी हितकारिणी, ८६२ **रुचिरा**–मनोहर रूपवाली, ८६३ **रोगहारिणी**–संसाररूपी रोगका नाश करनेवाली, ८६४ **राजहंसा**–शोभायमान हंसोंसे युक्त, ८६५ **रत्नवती**–अनेक प्रकारके रत्नोंसे संयुक्त, ८६६ **राजत्कल्लोलराजिका**–शोभाशाली तरङ्गमालाओंसे युक्त।†

८६७ **रामणीयकरेखा**–जिसकी जलधारा रमणीयताकी रेखा है, वह, ८६८ **रुजारिः**–रोगोंकी शत्रुभूता, ८६९ **रोगशोषिणी**–रोगोंपर रोष प्रकट करनेवाली, ८७० **राका**–पूर्णमासीस्वरूपा, ८७१ **रङ्कार्तिशमनी**–दीन-दुखियोंकी दैन्यवेदना शान्त करनेवाली, ८७२ **रम्या**–रमणीया, ८७३ **रोलम्बराविणी**–भ्रमरोंके गुंजारके समान जलकी कलकल ध्वनि करनेवाली।‡

८७४ **रागिणी**–भगवान्‌के प्रति अनुराग रखनेवाली, ८७५ **रञ्जितशिवा**–अपनी सन्निधिसे भगवान् शिवको प्रसन्न करनेवाली, ८७६ **रूपलावण्यशेवधिः**–सौन्दर्य और कान्तिकी निधि, ८७७ **लोकप्रसूः**–लोकमाता, ८७८ **लोकवन्द्या**–सम्पूर्ण विश्वके लिये वन्दनीया, ८७९ **लोलत्कल्लोलमालिनी**–चञ्चल लहरोंकी श्रेणियोंसे सुशोभित।§

८८० **लीलावती**–सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहारकी लीला करनेवाली, ८८१ **लोकभूमिः**–सम्पूर्ण भुवनोंकी आधार, ८८२ **लोकलोचनचन्द्रिका**–लोगोंके नेत्रोंमें चाँदनीकी भाँति आह्लाद उत्पन्न करनेवाली, ८८३ **लेखस्रवन्ती**–देवनदी, ८८४ **लटभा**–भगवत्प्रेमके लिये लोलुप-सी प्रतीत होनेवाली, ८८५ **लघुवेगा**–शीतकालमें लघुवेगवाली, ८८६ **लघुत्वहृत्**–भक्तोंकी लघुता दूर करनेवाली।*

८८७ **लास्यत्तरङ्गहस्ता**–नृत्य-सा करती हुई चञ्चल लहरें जिसके लिये मानो हाथ हैं, वह, ८८८ **ललिता**–मनोहर रूपवाली, ८८९ **लयभङ्गिगा**–लय—नृत्य, गति और वाद्यकी समताकी भंगी (अंदाज) से चलनेवाली, ८९० **लोकबन्धुः**–सम्पूर्ण जगत्‌का बन्धुकी भाँति हित चाहनेवाली, ८९१ **लोकधात्री**–माताकी भाँति विश्वका पालन-पोषण करनेवाली, ८९२ **लोकोत्तरगुणोर्जिता**–अलौकिक गुणोंसे बढ़ी-चढ़ी।†

८९३ **लोकत्रयहिता**–तीनों लोकोंका हित करनेवाली, ८९४ **लोका**–लोकस्वरूपा, ८९५ **लक्ष्मीः**–लक्ष्मीस्वरूपा, ८९६ **लक्षणलक्षिता**–शुभ लक्षणोंसे उपलक्षिता, ८९७ **लीला**–भगवत्क्रीडास्वरूपा, ८९८ **लक्षितनिर्वाणा**–मोक्षका साक्षात्कार करानेवाली, ८९९ **लावण्यामृतवर्षिणी**–लावण्यमय अमृतकी वर्षा करनेवाली।‡

९०० **वैश्वानरी**–वैश्वानर-अग्निस्वरूपा, ९०१ **वासवेड्या**–इन्द्रके द्वारा स्तवन करनेयोग्य, ९०२ **वन्ध्यत्वपरिहारिणी**–वन्ध्यापनका निवारण करनेवाली, ९०३ **वासुदेवाङ्घ्रिरेणुघ्नी**–भगवान् विष्णुके चरणोंकी धूलिको धो लेनेवाली, ९०४ **वज्रिवज्रनिवारिणी**–इन्द्रके वज्रका निवारण करनेवाली।§

९०५ **शुभावती**–मङ्गलमयी, ९०६ **शुभफला**–शुभ फल देनेवाली, ९०७ **शान्तिः**–शान्तिस्वरूपा, ९०८ **शान्तनुवल्लभा**–राजा शान्तनुकी प्रिय पत्नी, ९०९ **शूलिनी**–त्रिशूल धारण करनेवाली, ९१० **शैशववया**–

---

* रत्नार्ची रुद्ररमणी रागद्वेषविनाशिनी।
रमा रामा रम्यरूपा रोगिजीवानुरूपिणी॥

† रुचिकृद् रोचनी रम्या रुचिरा रोगहारिणी।
राजहंसा रत्नवती राजत्कल्लोलराजिका॥

‡ रामणीयकरेखा च रुजारी रोगरोषिणी।
राका रङ्कार्तिशमनी रम्या रोलम्बराविणी॥

§ रागिणी रञ्जितशिवा रूपलावण्यशेवधिः।
लोकप्रसूर्लोकवन्द्या लोलत्कल्लोलमालिनी॥

* लीलावती लोकभूमिर्लोकलोचनचन्द्रिका।
लेखस्रवन्ती लटभा लघुवेगा लघुत्वहृत्॥

† लास्यत्तरङ्गहस्ता च ललिता लयभङ्गिगा।
लोकबन्धुर्लोकधात्री लोकोत्तरगुणोर्जिता॥

‡ लोकत्रयहिता लोका लक्ष्मीर्लक्षणलक्षिता।
लीला लक्षितनिर्वाणा लावण्यामृतवर्षिणी॥

§ वैश्वानरी वासवेड्या वन्ध्यत्वपरिहारिणी।
वासुदेवाङ्घ्रिरेणुघ्नी वज्रिवज्रनिवारिणी॥

बाल्यावस्थासे युक्त, ९११ **शीतलामृतवाहिनी**–शीतल जलकी धारा बहानेवाली ।*

९१२ **शोभावती**–शोभायमान, ९१३ **शीलवती**–सुशीला, ९१४ **शोषिताशेषकिल्बिषा**–सम्पूर्ण पापोंका शोषण (नाश) करनेवाली, ९१५ **शरण्या**–शरण लेने योग्य, ९१६ **शिवदा**–कल्याणदायिनी, ९१७ **शिष्टा**–श्रेष्ठा, ९१८ **शरजन्मप्रसूः**–कार्तिकेयकी जननी, ९१९ **शिवा**–कल्याणस्वरूपा ।†

९२० **शक्तिः**–आह्लादिनी शक्तिस्वरूपा, ९२१ **शशाङ्कविमला**–चन्द्रमाके समान उज्ज्वल वर्णवाली, ९२२ **शमनस्वसृसम्मता**–यमराजकी बहिन यमुनाकी प्रिय सखी, ९२३ **शमा**–अज्ञानका नाश करनेवाली अथवा शमस्वरूपा, ९२४ **शमनमार्गघ्नी**–यमलोकके मार्गका निवारण करनेवाली, ९२५ **शितिकण्ठमहाप्रिया**–नीलकण्ठ महादेवजीकी अत्यन्त वल्लभा ।‡

९२६ **शुचिः**–पवित्रा, ९२७ **शुचिकरी**–पवित्र करनेवाली, ९२८ **शेषा**–प्रलयके समय भी शेष रहनेवाली—सच्चिदानन्द ब्रह्मरूपा, ९२९ **शेषशायिपदोद्भवा**–शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई, ९३० **श्रीनिवासश्रुतिः**–भगवान् विष्णुसे जिनका प्रादुर्भाव सुना जाता है, वह, ९३१ **श्रद्धा**–आस्तिक्य बुद्धिरूपा, ९३२ **श्रीमती**–शोभायुक्त, ९३३ **श्रीः**–लक्ष्मीस्वरूपा, ९३४ **शुभव्रता**–शुभव्रतवाली ।§

९३५ **शुद्धविद्या**–ब्रह्मविद्यास्वरूपा, ९३६ **शुभावर्ता**–उत्तम भँवरवाली, ९३७ **श्रुतानन्दा**–श्रवणमात्रसे आनन्द देनेवाली, ९३८ **श्रुतिस्तुतिः**–श्रुतियों (वैदिक मन्त्रों) द्वारा जिसकी स्तुति की जाती है, वह, ९३९ **शिवेतरघ्नी**–अमङ्गलकारी पापोंका नाश करनेवाली, ९४० **शबरी**–किरातरूपधारी भगवान् महेश्वरकी प्रिया, ९४१ **शाम्बरीरूपधारिणी**–मायामय रूप धारण करनेवाली ।*

९४२ **श्मशानशोधनी**–काशीकी महाश्मशानभूमिको शुद्ध करनेवाली, ९४३ **शान्ता**–शान्तस्वरूपा, ९४४ **शश्वत्**–सनातनी, ९४५ **शतधृतिस्तुता**–ब्रह्माजीके द्वारा अभिवन्दित, ९४६ **शालिनी**–शोभायमान, ९४७ **शालिशोभाढ्या**–धानके हरे-भरे पौधोंकी शोभासे सम्पन्न, ९४८ **शिखिवाहनगर्भभृत्**–कार्तिकेयको गर्भमें धारण करनेवाली ।†

९४९ **शंसनीयचरित्रा**–स्तवन करनेयोग्य दिव्य चरित्रोंवाली, ९५० **शातिताशेषपातका**–समस्त पातकोंका नाश करनेवाली, ९५१ **षड्गुणैश्वर्यसम्पन्ना**–ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य—इन छः प्रकारके ऐश्वर्योंसे सम्पन्न, ९५२ **षडङ्गश्रुतिरूपिणी**–शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्यौतिष तथा कल्प—ये वेदके छः अङ्ग तथा वेद जिसके स्वरूप हैं, वह ।‡

९५३ **षण्ढताहारिसलिला**–नपुंसकता एवं निर्वीर्यता आदि दोष दूर करनेमें समर्थ जलवाली, ९५४ **स्त्यायन्नदनदीशता**–जिसमें सैकड़ों नद और नदियाँ कल-कल नादके साथ आकर मिलती हैं, वह, ९५५ **सरिद्वरा**–नदियोंमें श्रेष्ठ, ९५६ **सुरसा**–उत्तम रससे युक्त, ९५७ **सुप्रभा**–सुन्दर प्रभावाली, ९५८ **सुरदीर्घिका**–देवताओंकी बावली ।§

९५९ **स्वःसिन्धुः**–स्वर्गलोककी नदी, ९६० **सर्वदुःखघ्नी**–सबके दुःखोंका नाश करनेवाली, ९६१ **सर्वव्याधिमहौषधम्**–समस्त रोगोंकी एकमात्र महौषधि, ९६२ **सेव्या**–सेवन करने योग्य, ९६३ **सिद्धिः**–अणिमा आदि अष्टसिद्धिस्वरूपा, ९६४ **सती**–पतिव्रता, ९६५ **सूक्तिः**–शुभ उक्तिरूपा

---

* शुभावती शुभफला शान्तिः शान्तनुवल्लभा ।
शूलिनी शैशववया शीतलामृतवाहिनी ॥

† शोभावती शीलवती शोषिताशेषकिल्बिषा ।
शरण्या शिवदा शिष्टा शरजन्मप्रसूः शिवा ॥

‡ शक्तिः शशाङ्कविमला शमनस्वसृसम्मता ।
शमा शमनमार्गघ्नी शितिकण्ठमहाप्रिया ॥

§ शुचिः शुचिकरी शेषा शेषशायिपदोद्भवा ।
श्रीनिवासश्रुतिः श्रद्धा श्रीमती श्रीः शुभव्रता ॥

* शुद्धविद्या शुभावर्ता श्रुतानन्दा श्रुतिस्तुतिः ।
शिवेतरघ्नी शबरी शाम्बरीरूपधारिणी ॥

† श्मशानशोधनी शान्ता शश्वच्छतधृतिस्तुता ।
शालिनी शालिशोभाढ्या शिखिवाहनगर्भभृत् ॥

‡ शंसनीयचरित्रा च शातिताशेषपातका ।
षड्गुणैश्वर्यसम्पन्ना षडङ्गश्रुतिरूपिणी ॥

§ षण्ढताहारिसलिला स्त्यायन्नदनदीशता ।
सरिद्वरा च सुरसा सुप्रभा सुरदीर्घिका ॥

अथवा वैदिक-सूक्तस्वरूपा, ९६६ **स्कन्दसूः**—कार्तिकेय-जननी, ९६७ **सरस्वती**—वाणीकी अधिष्ठात्री देवी।*

९६८ **सम्पत्तरङ्गिणी**—सम्पत्तिरूप लहरोंवाली, ९६९ **स्तुत्या**—स्तवन करने योग्य, ९७० **स्थाणुमौलिकृतालया**—भगवान् शङ्करके मस्तकको अपना निवासस्थान बनानेवाली, ९७१ **स्थैर्यदा**—स्थिरता प्रदान करनेवाली, ९७२ **सुभगा**—उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त, ९७३ **सौख्या**—सुख देनेवाली, ९७४ **स्त्रीषु सौभाग्यदायिनी**—स्त्रियोंको सौभाग्य प्रदान करनेवाली।†

९७५ **स्वर्गनिःश्रेणिका**—स्वर्गलोकमें जानेके लिये सीढ़ी, ९७६ **सूक्ष्मा**—इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे स्थित, सूक्ष्मस्वरूपा, ९७७ **स्वधा**—पितृतृप्तिस्वरूपा, ९७८ **स्वाहा**—हव्यस्वरूपा, ९७९ **सुधाजला**—अमृतके समान मधुर जलवाली, ९८० **समुद्ररूपिणी**—समुद्ररूपा, ९८१ **स्वर्ग्या**—स्वर्गलोककी प्राप्तिमें सहायक, ९८२ **सर्वपातकवैरिणी**—समस्त पापोंकी शत्रु।‡

९८३ **स्मृताघहारिणी**—स्मरण करनेपर समस्त पापोंका संहार करनेवाली, ९८४ **सीता**—सीता नामवाली गङ्गा, जनकनन्दिनीस्वरूपा, ९८५ **संसाराब्धितरण्डिका**—संसार-सागरसे पार उतारनेके लिये नौकारूप, ९८६ **सौभाग्यसुन्दरी**—अतिशय सौभाग्यसे परम सुन्दर प्रतीत होनेवाली, ९८७ **सन्ध्या**—सन्ध्याकालमें उपास्य गायत्रीरूपा, ९८८ **सर्वसारसमन्विता**—समस्त शक्तियोंसे संयुक्त।§

९८९ **हरप्रिया**—भगवान् शिवकी वल्लभा, ९९० **हृषीकेशी**—इन्द्रियोंकी स्वामिनी अथवा हृषीकेश भगवान् विष्णुकी पत्नी, ९९१ **हंसरूपा**—शुद्धस्वरूपा, हंसरूपधारिणी, ९९२ **हिरण्मयी**—स्वर्णमयी, ज्ञानस्वरूपा, ९९३ **हृताघसंघा**—पापराशियोंका विनाश करनेवाली, ९९४ **हितकृत्**—हित-साधन करनेवाली, ९९५ **हेला**—एक प्रकारकी शृङ्गार-जनित चेष्टा, ९९६ **हेलाघगर्वहृत्**—लीलापूर्वक पापका घमण्ड चूर करनेवाली।×

९९७ **क्षेमदा**—कल्याणदायिनी, ९९८ **क्षालिताघौघा**—पापराशिको धो डालनेवाली, ९९९ **क्षुद्रविद्राविणी**—दुष्टोंको मार भगानेवाली, **१००० क्षमा**—सहनशीला, पृथ्वी-स्वरूपा। अगस्त्यजी! इस प्रकार गङ्गाजीके सहस्र नामोंका कीर्तन करके मनुष्य गङ्गास्नानका उत्तम फल पा लेता है।+

यह गङ्गासहस्रनाम सब पापोंका नाश और सम्पूर्ण विघ्नोंका निवारण करनेवाला है। समस्त स्तोत्रोंके जपसे इसका जप श्रेष्ठ है। यह सबको पवित्र करनेवाली वस्तुओंको भी पवित्र करनेवाला है। श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करनेपर यह मनोवाञ्छित फल देनेवाला है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाला है। मुने! इसका एक बार पाठ करनेसे भी एक यज्ञका फल प्राप्त होता है। गङ्गासहस्रनाम आयु तथा आरोग्य देनेवाला और सम्पूर्ण उपद्रवोंका नाश करनेवाला है। यह मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है। जो इस स्तुतिका पाठ करता है, उसे सदाचारी जानना चाहिये। वह सदा पवित्र है तथा उसने सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा सम्पन्न कर ली है। उसके तृप्त होनेसे साक्षात् गङ्गाजी तृप्त हो जाती हैं। अतः सर्वथा प्रयत्न करके गङ्गाजीके भक्तका पूजन करे। जो गङ्गाजीके इस स्तोत्रराजका श्रवण और पाठ करता है या दम्भ और लोभसे रहित होकर उनके भक्तोंको सुनाता है, वह मानसिक, वाचिक और शारीरिक तीनों प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा पितरोंका प्रिय होता है। जिसके घरमें गङ्गाजीका यह स्तोत्र लिखकर इसकी पूजा की जाती है, वहाँ पापका कोई भय नहीं है। वह घर सदा पवित्र है।

---

* स्वःसिन्धुः सर्वदुःखघ्नी सर्वव्याधिमहौषधम्। सेव्या सिद्धिः सती सूक्तिः स्कन्दसूश्च सरस्वती॥

† सम्पत्तरङ्गिणी स्तुत्या स्थाणुमौलिकृतालया। स्थैर्यदा सुभगा सौख्या स्त्रीषु सौभाग्यदायिनी॥

‡ स्वर्गनिःश्रेणिका सूक्ष्मा स्वधा स्वाहा सुधाजला। समुद्ररूपिणी स्वर्ग्या सर्वपातकवैरिणी॥

§ स्मृताघहारिणी सीता संसाराब्धितरण्डिका। सौभाग्यसुन्दरी सन्ध्या सर्वसारसमन्विता॥

× हरप्रिया हृषीकेशी हंसरूपा हिरण्मयी। हृताघसंघा हितकृद्धेला हेलाघगर्वहृत्॥

\+ क्षेमदा क्षालिताघौघा क्षुद्रविद्राविणी क्षमा। इति नाम सहस्रं हि गङ्गायाः कलशोद्भव॥
कीर्तयित्वा नरः सम्यग्गङ्गास्नानफलं लभेत्।

शिवकी कृपाके बिना काशीवासकी दुर्लभता तथा काशीकी महिमा

स्कन्दजी कहते हैं—महाभाग अगस्त्यजी ! सुनिये। सुप्रसिद्ध राजा भगीरथ श्रीमहादेवजीकी आराधना करके गङ्गाजीको बड़ी तपस्यासे भूमिपर ले आये। फिर वहाँसे तीनों लोकोंके हितके लिये गङ्गाको उस स्थानपर लाये, जहाँ मणिकर्णिका तीर्थ है, भगवान् शङ्करका आनन्दवन है और श्रीहरिका चक्रपुष्करिणी नामक तीर्थ है। वह परब्रह्म परमात्माका सर्वोत्तम क्षेत्र है, जो लीलासे ही समस्त जीवोंको मोक्ष अर्पण करता है। दिलीपनन्दन भगीरथ स्वयं आगे-आगे चलते हुए गङ्गाजीको उस पुरीमें ले आये, जो मोक्षको प्रकाशित करनेसे 'काशीपुरी' के नामसे विख्यात है। उस महाक्षेत्रको भगवान् शङ्करने कभी नहीं छोड़ा है, इसलिये वह 'अविमुक्त' कहलाता है। मुने ! काशीका महत्त्व पहलेसे ही अधिक था, फिर गङ्गाजीके जलके समागमसे जो उसकी महिमा बढ़ी, उसके विषयमें क्या कहना है। वहाँका चक्रपुष्करिणी तीर्थ पहलेसे ही कल्याणका निकेतन था, फिर भगवान् शङ्करके मणिमय कर्णभूषणके गिरनेसे वह और भी श्रेष्ठ हो गया। भगवान् शिवके निवासस्थान अविमुक्तक्षेत्र अथवा आनन्द-काननमें पहलेसे ही मुक्ति सिद्ध है, फिर गङ्गाजीका सम्पर्क होनेसे उस तीर्थकी महिमामें और उत्कर्ष आ गया। जबसे मणिकर्णिकामें गङ्गाजी आकर मिल गयीं, तबसे वह क्षेत्र देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो गया। काशीमें निवास करनेवाला तथा वहीं मृत्युको प्राप्त हुआ पुरुष मुक्त हो जाता है। वेदान्तद्वारा जाननेयोग्य परब्रह्म परमात्माके निदिध्यासन, सांख्य और योगके बिना ही काशीमें मरा हुआ पुरुष मुक्त हो जाता है। कालसे काशीमें शरीरका परित्याग करके मरा हुआ पुरुष तारकमन्त्रका उपदेश पाकर अमर हो जाता है। काशीमें शरीरका त्याग करना ही दान है, वही तपस्या है और वही मोक्षका सुख देनेवाला योग है। देवताओंने वहाँ पापियोंकी खोटी बुद्धिका खण्डन करनेवाली महान् असि (खड्ग) रूपा 'असी', दुष्टोंके प्रवेशका अवधूनन (नाश) करनेवाली 'धुनी' (नदी) तथा विघ्ननिवारण करनेवाली 'वरणा' (नदी) का निर्माण किया है। काशीके दक्षिण भागमें 'असी' और उत्तरभागमें 'वरणा' को उस क्षेत्रके मोक्षरूपी गड़े हुए धनकी रक्षाके लिये स्थापित करके देवतालोग बहुत सन्तुष्ट हुए। तत्पश्चात् स्वयं भगवान् शङ्करने काशीके पश्चिम क्षेत्रकी रक्षाके लिये 'देहली-विनायक' को नियुक्त किया।

इस विषयमें मैं एक प्राचीन इतिहास बतलाता हूँ। दक्षिण समुद्रके तटपर सेतुबन्धतीर्थके समीप कोई धनञ्जय नामवाला वैश्य रहता था। वह अपनी माताका बड़ा भक्त था। पुण्यके मार्गसे ही वह धन पैदा करता और उससे याचकोंको सन्तुष्ट करता था। धनञ्जय यशोदानन्दन श्रीकृष्णका उपासक था। वह समस्त सद्गुणोंका भण्डार था, तो भी गुणियोंकी मण्डलीमें अपने गुणी स्वरूपको छिपाये रखनेकी चेष्टा करता था। यद्यपि व्यापारसे ही उसकी जीविका चलती थी, तो भी वह सत्यप्रिय था। ब्राह्मण आदि उच्च वर्णोंके लोग उसके गुणोंका बखान करते थे। इस प्रकार उत्तम वृत्ति और बर्तावसे रहते हुए उस वैश्यकी माता, जो वृद्धावस्थासे अत्यन्त आतुर तथा रोगग्रस्त हो रही थी, मृत्युको प्राप्त हो गयी।

पूर्वकालमें जब वह जवान थी, तो उसने अपने पतिको धोखा देकर परपुरुषसमागम किया था। जो स्त्री चार दिनोंकी जवानी पाकर मोहवश अपने स्वामीको धोखा देती है, वह अक्षय नरकमें पड़ती है। स्त्रियोंके सतीत्वका नाश होनेसे उसका धर्मपरायण पति भी बड़े दुःखसे प्राप्त किये हुए स्वर्गलोकसे गिर जाता है। इसलिये स्त्रीको शीलकी रक्षा करनी चाहिये। खोटी बुद्धिवाली व्यभिचारिणी स्त्री एक कल्पतक नरकके विष्ठाकुण्डमें पड़ी रहती है। इसके बाद गाँवमें सूकरी होती है। इसलिये स्त्रीको उचित है कि वह पुण्यके एकमात्र साधन अपने शरीरको विशेष यत्न करके सुखतुल्य प्रतीत होनेवाले परपुरुषके दुःखद स्पर्शसे बचावे। सती नारीने अपने स्वामीके अधीन किये हुए इसी शरीरके द्वारा आदेश देकर क्या उगते हुए सूर्यको नहीं रोक दिया था ? अत्रिमुनिकी पत्नी पतिव्रता अनसूयाने पतिभक्तिके ही प्रभावसे क्या ब्रह्मा, विष्णु और शिवको अपने गर्भमें नहीं धारण किया था ? नारी अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे इस लोकमें महान् सुयश, वैकुण्ठधाममें अक्षय निवास तथा भगवती लक्ष्मीजीकी सखीका पद प्राप्त कर लेती है।

धनञ्जयकी माता अपने पति और सनातन धर्मका परित्याग करके दुराचारका आश्रय ले स्वेच्छाचारिणी हो गयी थी। इसलिये मृत्युके बाद वह नरकमें गयी। उसका पुत्र धनञ्जय पूर्वजन्मकी तपस्याका उदय होनेसे किसी शिव-

योगीका साथ पाकर धर्माचरणमें तत्पर हुआ। वह माताका भक्त तो था ही, उसकी हड्डियाँ लेकर उन्हें पञ्चगव्य और पञ्चामृतसे स्नान कराया और यक्षकर्दमका लेप करके फूलोंसे उनका पूजन किया। तत्पश्चात् उन्हें नैनसुख वस्त्रसे लपेटकर ऊपरसे रेशमी वस्त्र लपेटा। फिर चिकने सूती वस्त्रसे आवृत करके मजीठ (गेरुवा) के रंगमें रँगे हुए गेरुवे वस्त्रद्वारा उस पोटलीको आच्छादित किया। तदनन्तर नेपाली कम्बलसे ढककर उसपर शुद्ध मिट्टीका लेप कर दिया। तत्पश्चात् उसे ताँबेके सम्पुटमें रखकर वह गङ्गाजीके मार्गपर प्रस्थित हुआ। धनञ्जय नीच जातिका स्पर्श न करके पवित्रतापूर्वक रहता और वेदी या पवित्र भूमिपर सोता था। इस प्रकार उस गठरीको लाता हुआ वह रास्तेमें ज्वरसे ग्रस्त हो गया। तब उसने उचित मजदूरी देकर कोई कहार निश्चित किया और किसी तरह काशीपुरीमें आ पहुँचा। वहाँ वह कहारको रक्षाके लिये बिठाकर कुछ खाने-पीनेकी वस्तु लेनेको बाजारमें गया। कहार अवसर पाकर उस भारमेंसे ताँबेका सम्पुट लेकर अपने घरकी ओर चल दिया। धनञ्जयने विश्रामस्थानपर लौटकर देखा, तो सब सामग्रियोंमें वह ताँबेका सम्पुट नहीं दिखायी दिया। तब वह 'हाय-हाय' करता हुआ उसे ढूँढ़नेको चला और धीरे-धीरे उस कहारके घर जा पहुँचा। इधर वह कहार भी किसी वनमें पहुँचकर जब ताँबेके सम्पुटमें देखता है, तब उसे हड्डियाँ दिखायी देती हैं। यह देख उन्हें वहीं छोड़कर वह उदासभावसे घरको लौट गया। इसके बाद धनञ्जय उस कहारके घर पहुँचा और उसकी स्त्रीसे पूछने लगा—'सच बताओ, तुम्हारा पति कहाँ गया है? उसने मेरी माताकी हड्डियाँ ले ली हैं, उन्हें दिला दो। हड्डियोंको शीघ्र दिखाओ, मैं तुम्हें अधिक धन दूँगा।' तब उसकी स्त्रीने पतिसे सब बातें कहीं। कहार लज्जासे मस्तक झुकाये सब वृत्तान्त बताकर धनञ्जयको अपने साथ वनमें ले गया। परंतु दैवयोगसे वह उस स्थानको भूल गया और दिशा भूल जानेके कारण वनमें इधर-उधर भटकने लगा। एक वनसे दूसरे वनमें घूमते-घूमते वह थक गया और धनञ्जयको वहीं छोड़कर अपने घर लौट गया। दो-तीन दिन वहाँ घूम-घामकर धनञ्जय भी काशीपुरीमें लौट आया। उसका मुख बहुत उदास हो गया था। धनञ्जय गया और प्रयागतीर्थका सेवन करके पुनः अपने देशको लौट गया। अगस्त्यजी! भगवान् विश्वनाथकी आज्ञाके बिना उस स्त्रीकी हड्डियाँ काशीमें प्रवेश पाकर भी तत्काल बाहर हो गयीं। इसी प्रकार किसी पुण्यसे काशीमें पहुँचकर भी पापी मनुष्य उस क्षेत्रका फल नहीं पाता। वह तत्काल वहाँसे बाहर हो जाता है। अतः भगवान् विश्वनाथकी आज्ञा ही काशीमें रहनेका कारण होती है। महामुने! असी और वरणा—ये दो नदियाँ उस क्षेत्रकी रक्षाके लिये नियुक्त की गयी हैं। इसीलिये वह पुरी 'वाराणसी' के नामसे प्रसिद्ध हुई। काशीपुरी कहती है 'अरे जीव! तू बहुतेरे श्रेष्ठ तीर्थोंमें गोता लगा चुका, किंतु अबतक तुझे कभी शान्ति नहीं मिली। अब यहाँ मृत्युको प्राप्त होकर तू मेरे बलसे अमरत्व धारण करके शिवरूप हो जा।' अहा हा! क्या जीवको गर्भवासका कष्ट भूल गया? यमराजके दूतोंके हाथसे बाँधा जाना और पीड़ित होना क्या याद नहीं रहा? क्या कारण है कि भगवान् शङ्करकी कृपासे मिलने योग्य काशीपुरीको पाकर भी मूर्ख मनुष्य हाथमें आयी हुई मुक्तिको त्यागकर अन्यत्र जाता है।

अगस्त्यजी! अविमुक्त क्षेत्रको भगवान् रुद्रका निवासस्थान बताया गया है। यहाँके सभी जीव रुद्रस्वरूप हैं। इसलिये काशीमें रहनेवाले चारों वर्णों तथा वर्णेतर मनुष्योंका भी ईश्वरबुद्धिसे श्रद्धापूर्वक सत्कार करके मनुष्य भगवान् शिवकी पूजाके फलका भागी होता है। प्रलयकालमें पृथ्वी जलमें विलीन हो जाती है, जल अग्निके मुखरूपी भयानक कन्दरामें समा जाता है। अग्नि वायुमें और वायु आकाशमें लीन हो जाती है। आकाश अहङ्कारमें लयको प्राप्त होता है। षोडश विकारोंके साथ अहङ्कार भी समष्टि बुद्धि नामक महत्तत्त्वमें लीन होता है। फिर महत्तत्त्व भी प्रकृतिके भीतर विलीन हो जाता है। वह त्रिगुणमयी प्रकृति उस निर्गुण पुरुषका आलिङ्गन करके स्थित होती है। वह परम पुरुष ही देह और गेहका स्वामी तथा सबको जीवन देनेवाला है। यह प्राकृत प्रलय कहलाता है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव बने रहते हैं। कालस्वरूप परमात्मा उस प्रकृतिस्थ पुरुषको लीलापूर्वक अपनेसे अभिन्न कर लेते हैं। वे परम पुरुष परमेश्वर ही महाविष्णु कहलाते हैं। उन्हींको महादेव कहते हैं। वे ही आदि, मध्य और अन्तसे रहित शिव हैं। वे ही लक्ष्मीपति तथा वे ही पार्वतीपति हैं। प्रलयकालमें भगवान् शङ्कर काशीपुरीको अपने त्रिशूलके अग्रभागपर रखकर स्वयं इसकी रक्षा करते हैं। अतः काशी कलि और कालसे वर्जित है। इसीको वाराणसी, रुद्रावास, महाश्मशान तथा आनन्दवन कहा गया है। अगस्त्यजी! देवाधिदेव भगवान् शङ्करने माता

पार्वतीदेवीके आगे जो कुछ कहा था, उसे ज्यों-का-त्यों मैंने सुना और वह सब तुमसे कहा। जो महापातकोंका नाश करनेवाले इस पुण्यमय प्रसङ्गको पढ़ता और सुनता है, वह शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

काशीपुरीकी श्रेष्ठता, हरिकेश यक्षको शिवाराधनाके द्वारा दण्डपाणि-पदकी प्राप्ति और दण्डपाण्यष्टक स्तोत्र

स्कन्दजी कहते हैं—काशीमें भिक्षुकोंको आँवलेके फलके बराबर भी दी हुई भिक्षा सुमेरु पर्वतके समान भारी पुण्य देनेवाली होती है। जो काशीमें भूखे कुटुम्बीको वर्षभर खानेके लिये अन्न देता है और इस प्रकार वह जितने वर्षोंके लिये देता है, उतने ही युगोंतक स्वर्गमें पूजित होता है। जो काशीमें जीविकाके साधनसे रहित ब्राह्मणको एक वर्षतक भोजन देता है, वह श्रेष्ठ पुरुष कभी भूख-प्यासका कष्ट नहीं भोगता। काशीमें निवास करनेवाले पुरुषोंको जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वही पूरा-का-पूरा फल काशीवास करानेवालेको भी प्राप्त होता है। जिसका नाम लेनेसे भी ब्रह्महत्या आदि पाप मनुष्यको त्याग देते हैं, उस काशीपुरीकी यहाँ किससे उपमा दी जा सकती है। इस पुरीकी पूजा और प्रदक्षिणा करनी चाहिये। जो दूर देशमें होनेपर भी अविमुक्त नामक महाक्षेत्र (काशी) का स्मरण करते हुए प्राणत्याग करता है, उसका भी संसारमें पुनर्जन्म नहीं होता। जैसे योगी अपने योगबलसे मुक्त होते हैं, उसी प्रकार जीव यहाँ मृत्यु होनेमात्रसे मुक्त हो जाते हैं। यह काशीपुरी परम पद है, यह परम आनन्द है और यही परम ज्ञान है। अतः मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इसका सेवन करना चाहिये। यहाँ भगवान् भैरव कपालमोचनतीर्थको आगे करके भक्तजनोंकी पाप-परम्पराका भक्षण करते हुए वहीं निवास करते हैं। भैरवजी काशीवासियोंके कलि और कालको अपना ग्रास बना लेते हैं। इसीलिये उनकी 'कालभैरव' संज्ञा हुई है।

अगस्त्यजीने कहा—कार्तिकेयजी! अब आप मुझे हरिकेशकी उत्पत्तिका वृत्तान्त सुनाइये।

कार्तिकेयजी बोले—मुने! प्राचीन कालमें गन्धमादन-पर्वतपर 'रत्नभद्र' नामसे विख्यात एक परम धर्मात्मा यक्ष रहता था, जो लाखों पुण्यकर्मोंसे सुशोभित था। उसके 'पूर्णभद्र' नामक एक पुत्र हुआ। तदनन्तर अन्तिम अवस्थामें शरीर त्याग करके रत्नभद्र परम शान्त भगवान् शिवके धाममें जा पहुँचा। पिताकी मृत्यु हो जानेके बाद पूर्णभद्रने वैभव तथा भोगसामग्रीका अधिकारी होकर समस्त लौकिक मनोरथोंको प्राप्त किया। केवल एक ही वस्तु उसे नहीं मिली, जिसको 'पुत्र' कहते हैं, जो गृहस्थाश्रमका शृङ्गार, पितरोंका महान् हितकारी और सांसारिक तापसे सन्तप्त अङ्गोंको अमृतके फुहारोंकी तरह शीतल एवं सुखद प्रतीत होनेवाला है। पूर्णभद्र अपने सुन्दर गृहको सन्तान-सुखसे शून्य देखकर बहुत दुखी हुआ। अगस्त्यजी! एक दिन उस यक्षने अपनी धर्मपत्नी श्रेष्ठ यक्षिणी कनककुण्डलाको समीप बुलाकर कहा—'प्रिये! यह महल पुत्रके बिना सूना दिखायी देता है। अतः सुखद नहीं जान पड़ता। क्या करूँ, किस उपायसे पुत्रका मुँह देखूँ? यदि इसका कोई उपाय हो तो बताओ।' अपने प्रियतम पतिको इस प्रकार विलाप करते देख पतिव्रता कनककुण्डला मन-ही-मन लंबी साँस खींचकर बोली—'प्राणनाथ! आप तो ज्ञानी हैं, आप इतना खेद क्यों करते हैं। उद्योगी पुरुषोंको इस चराचर जगत्में कौन-सी वस्तु दुर्लभ है। जो अत्यन्त कायर हैं, वे ही लोग प्रारब्ध (भाग्य) को कारण बताया करते हैं। पूर्वजन्ममें अपना किया हुआ कर्म ही तो प्रारब्ध है। अतः वह पुरुषार्थसे भिन्न नहीं है। इसलिये पुरुषार्थका सहारा लेकर प्रतिकूल प्रारब्धको शान्त करनेके लिये समस्त कारणोंके भी कारणरूप भगवान् महेश्वरकी शरणमें जाना चाहिये। उन्होंने ही ब्रह्माजीको सृष्टि-रचनाका अधिकार दिया है। उन्हींकी कृपासे इन्द्र आदि देवता लोकपालके पदपर प्रतिष्ठित हुए हैं। महर्षि शिलाद भी सन्तानहीन थे; किंतु भगवान् शिवकी कृपासे उन्होंने मृत्युपर विजय पानेवाला पुत्र प्राप्त कर लिया। श्वेतकेतु कालपाशसे मुक्त हुए तथा अन्धकासुर भी शिवकी कृपासे उनके गणोंका अधिनायक होकर भृङ्गी नामसे विख्यात हुआ। जिस वस्तुको हम मनसे सोच भी नहीं सकते, जिसका वाणीके द्वारा वर्णन भी नहीं हो सकता, उस मोक्षपदको भी सेवासे प्रसन्न किये हुए भगवान् शिव क्षणभरमें दे सकते हैं। आर्यपुत्र! यदि आप सबका हित चाहनेवाले प्रिय पुत्रको प्राप्त करना चाहते हैं, तो भगवान् शिवकी शरणमें जाइये।'

धर्मपत्नीका यह वचन सुनकर पूर्णभद्रने महादेवजीकी

आराधना की। वह संगीत-कलाका ज्ञाता था। उसने अपनी सङ्गीत-विद्यासे कुछ ही दिनोंमें भगवान् शङ्करको रिझा लिया और उनकी कृपासे उसका मनोरथ पूर्ण हो गया। पूर्णभद्रने अपनी पत्नीके गर्भसे एक श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त किया और उसका नाम हरिकेश रक्खा। बालकका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर था। वह शुक्ल पक्षके शशीकी भाँति प्रतिक्षण वृद्धिको प्राप्त होने लगा। बालक हरिकेश जब आठ वर्षका हुआ तभीसे प्रतिदिन एकमात्र भगवान् शिवमें उसकी मान्यता बढ़ने लगी। वह धूलसे खेलनेमें संलग्न होकर भी धूलकी ही शिवमूर्ति बनाता और कोमल घाससे कौतूहलपूर्वक उनकी पूजा करता था। हरिकेश अपने सभी मित्रोंको भगवान् शिवके नामसे ही पुकारता था। चन्द्रशेखर, मृत्युञ्जय, त्रिलोचन, शम्भो, पिनाकिन्, शङ्कर, श्रीकण्ठ, नीलकण्ठ, ईश, पार्वतीपते, भाललोचन, शूलपाणे, महेश्वर, गङ्गाजीके जलसे भीगे जटाजूटवाले शिव आदि नामोंकी मालाका जप किया करता था और अपनी आयुके मित्र बालकोंको बड़े लाड़-प्यारसे इन्हीं नामोंद्वारा सम्बोधित करता था। उसके दोनों कान भगवान् शिवके नामोंके अतिरिक्त और कोई नाम सुनते ही नहीं थे। भगवान् भूतनाथके मन्दिरके आँगनके अतिरिक्त दूसरे किसी स्थानमें उसके पैर जाते ही नहीं थे। शिवके श्रीविग्रहके अतिरिक्त दूसरे किसी रूपका दर्शन करनेमें उसके नेत्र तत्पर नहीं होते थे। उसकी रसना सदा भगवान् शिवके नामाक्षरमय अमृतका पान करती रहती थी। उसकी नासिका महादेवजीके चरणारविन्दोंकी सुगन्धके अतिरिक्त दूसरी कोई गन्ध नहीं ग्रहण करना चाहती थी। उसके हाथ केवल शिवजीकी सेवा करनेको ही उत्सुक रहते थे और वह मनसे उनके सिवा दूसरी किसी वस्तुका चिन्तन नहीं करता था। पीने योग्य पदार्थोंको हरिकेश शुद्धभावसे भगवान् शङ्करको निवेदन करके ही पीता था। भोजन भी वही करता था, जो भगवान् शिवको निवेदित होकर प्रसाद बन जाता था। सर्वत्र सब अवस्थाओंमें उसे भगवान् शिवके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं दिखायी देती थी। चलते, गाते, सोते, खड़े होते, लेटते, खाते और पीते हुए भी वह सब ओर भगवान् शङ्करको ही देखता था। दूसरे किसी भावका चिन्तन नहीं करता था। रातमें सो जानेपर भी वह स्वप्नमें बार-बार यही कहता कि 'हे भगवान् महेश्वर! आप कहाँ चले जा रहे हैं? क्षणभर और ठहरिये।' इतना कहते-कहते वह सोतेसे जाग उठता था। हरिकेशकी ऐसी दशा देखकर उसके पिता पूर्णभद्र उसे शिक्षा देते थे—'वत्स! अब तुम घरके काम-काजमें लगो। यह सब धन-दौलत तुम्हारी ही है। पहले सब प्रकारकी विद्याओंका अभ्यास करो, फिर उत्तम-उत्तम भोग भोगो। तत्पश्चात् वृद्धावस्थामें पहुँचकर भक्तियोगका अनुष्ठान करना।' जब पिता बार-बार ऐसी शिक्षा देने लगे, तब हरिकेश उसे स्वीकार न करके एक दिन चुपचाप घरसे बाहर निकल गया। बाहर जानेपर उसे दिग्भ्रम हो गया। तब वह भगवान् शङ्करको पुकारते हुए मन-ही-मन कहने लगा—'शम्भो! अब मैं कहाँ जाऊँ? कहाँ रहनेसे मेरा कल्याण होगा। मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है, मैंने पहलेसे सुन रक्खा है कि जिनकी कहीं भी गति नहीं है, उनकी गति काशीपुरी ही है।'

ऐसा विचार करके हरिकेश काशीपुरीको चला गया। उस आनन्दवनमें पहुँचकर उसने तपस्याकी शरण ली। एक दिन उस वनमें विचरते हुए भगवान् शङ्कर पार्वतीदेवीसे इस प्रकार बोले—'देवि! जैसे तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, उसी प्रकार यह आनन्दवन भी मुझे अत्यन्त प्रिय लगता है। यहाँ मेरे अनुग्रहसे मृत्युको प्राप्त हुए जीव अमृतस्वरूपको प्राप्त हो गये हैं। संसारमें उनका पुनर्जन्म नहीं होता। जो संसारी जीव काशीमें प्राणत्याग करते हैं, उनके कर्मोंके संस्कार मेरी आज्ञासे चिताकी आगमें ही भस्म हो जाते हैं। जीव ब्रह्मज्ञानसे मुक्त होते हैं अथवा ब्रह्मज्ञानमय क्षेत्र प्रयागमें शरीर त्याग करनेसे मुक्त होते हैं। उसी ब्रह्मज्ञानका तारकमन्त्रके रूपमें मैं काशीमें मरनेवाले प्राणियोंके लिये उपदेश करता हूँ, जिससे वे तत्काल मुक्त हो जाते हैं। कलियुगमें जिनका अन्तःकरण मलिन हो गया है तथा जिनकी इन्द्रियाँ स्वभावसे ही चञ्चल हैं, उन्हें ब्रह्मज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? अतः उनके लिये मैं काशीपुरीमें तारक ब्रह्मका उपदेश देता हूँ। कलियुगमें मुझ विश्वनाथ देवका, काशीपुरीका, भागीरथी गङ्गाका और दानका विशेष महत्त्व है। काशीमें उत्तरवाहिनी गङ्गा और मेरा विश्वेश्वर नामक लिङ्ग—ये दोनों मनुष्योंको मुक्ति देनेवाले हैं। कलिमें दानजनित पुण्यके बलसे इनकी प्राप्ति हो सकती है। योगियोंके हृदयाकाशमें, कैलासमें तथा मन्दराचल पर्वतपर भी निवास करनेकी मेरी वैसी रुचि नहीं है, जैसी कि काशीपुरीमें निवास करनेकी मेरी रुचि रहती है।'

इस प्रकार बातचीत करते हुए महादेवजीने हरिकेशको देखा, जो आनन्दवनके मध्यभागमें अशोक वृक्षके नीचे उसकी जड़के समीप बैठकर तपस्या कर रहा था। उसका

शरीर तनिक भी हिलता-डुलता नहीं था। वह ऐसा जान पड़ता था मानो सूखी नस-नाड़ियोंसे बँधा हुआ कोई हड्डियोंका ढेर हो। उसे इस रूपमें देखकर पार्वतीदेवीने महादेवजीसे निवेदन किया—'नाथ! यह आपका तपस्वी भक्त है,

इसे वरदान देकर प्रसन्न कीजिये। इसका चित्त एकमात्र आपमें ही लगा हुआ है, इसका जीवन भी आपके ही अधीन है। यह आपकी ही प्रसन्नताके लिये सब कर्म करता और आपहीकी शरणमें रहता है। कठोर तपस्यासे इसका सारा अङ्ग सूख गया है। अतः इस यक्षको वरदान देकर आप इसपर अनुग्रह करें। तब भगवान् शिवने दयार्द्रचित्त होकर समाधिमें आँख बंद करके बैठे हुए हरिकेशका अपने हाथसे स्पर्श किया। स्पर्श पाकर यक्षने आँखें खोल दीं और भगवान् त्रिलोचनको सामने देखकर हर्षगद्गद वाणीमें कहा—'ईश! आपकी जय हो। शम्भो! गिरिजापते! शङ्कर! त्रिशूलपाणे! चन्द्रार्धशेखर! कृपालो! आपके कर-कमलोंका स्पर्श पाकर मेरा यह शरीर अमृतस्वरूप हो गया।' भगवान् महेश्वरने उस भक्तकी कही हुई यह कोमल वाणी सुनकर प्रसन्नतापूर्वक उसे अनेकानेक वरदान दिये और इस प्रकार कहा—'यक्ष! अब तुम मेरे इस प्रिय क्षेत्र काशीधामके दण्डनायक होओ। इस समय तुम्हारा नाम दण्डपाणि होगा। तुम मेरी आज्ञासे मेरे समस्त उत्कट गणोंका शासन करो। ये दो सम्भ्रम और उद्भ्रम नामवाले गण सदा तुम्हारे अनुगामी होकर रहेंगे। तुम काशीनिवासी प्राणियोंके एकमात्र अन्नदाता, प्राणदाता, ज्ञानदाता और मेरे मुखसे निकले हुए तारकमन्त्रके उपदेशसे मोक्षदाता होकर यहाँ अविचल निवास प्राप्त करोगे। पापी मनुष्योंको नाना प्रकारके विघ्नसमूहोंसे पीड़ा देकर उनके मनमें उद्वेग पैदा करके उन्हें काशीपुरीसे बाहर निकाल दोगे और भक्तजनोंको दूरसे भी क्षणभरमें यहाँ ले आकर उन्हें उत्तम मोक्ष दिलानेवाले होओगे। यक्षराज! यह उत्तम क्षेत्र आजसे तुम्हारे अधीन कर दिया गया। अब यहाँ तुम्हारी आराधना किये बिना कौन पुरुष मोक्षका भागी हो सकता है। मेरा भक्त यहाँ आकर पहले तुम्हारी पूजा करेगा, तब मेरी करेगा। जो ज्ञानोद तीर्थमें स्नान, तर्पण आदि करके तुझ दण्डपाणि गणेशका पूजन करेगा, वही यहाँ पुण्यवान् होकर लोकमें मेरी असीम दयासे कृतार्थताका अनुभव करेगा। दण्डपाणे! तुम यहाँ दक्षिण दिशामें मेरे नेत्रोंके समक्ष निवास करो और पापी मनुष्योंको दण्ड तथा अपने भक्तोंको अभय दान देते रहो।'

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार दण्डपाणिको वरदान देकर भगवान् शिव वृषभराज नन्दीपर आरूढ़ हो आनन्दवनके भीतर अपने निवासस्थानको चले गये। तभीसे यक्षराज हरिकेश दण्डनायकके पदपर अभिषिक्त हो काशीपुरीका भलीभाँति शासन करते हैं। मैं भी उनके प्रति दोषदृष्टि रखनेके कारण ही यहाँ (काशीसे बाहर) रहनेको विवश हुआ हूँ, क्योंकि मैंने काशीमें रहकर भी कभी उनका आदर नहीं किया। मुने! ऐसे जितेन्द्रिय होकर भी तुमने जो उस क्षेत्रका त्याग किया है, इसमें भी दण्डपाणिकी ही अप्रसन्नता कारण है, ऐसा मुझे सन्देह होता है। यक्ष हरिकेश! कल्याणमय मोक्षकी प्राप्तिके लिये मुझे निर्विघ्न काशीवास प्रदान करो। महामते दण्डपाणे! यक्ष पूर्णभद्र धन्य हैं, माता कनककुण्डला भी धन्य है, जिनके उदरसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। यक्षपते! तुम्हारी जय हो। पीले नेत्रोंवाले धीरशिरोमणे! तुम्हारी जय हो, पीले रंगकी जटा धारण करनेवाले देव! तुम्हारी जय हो। दण्डरूप महान् आयुध धारण करनेवाले वीर! तुम्हारी जय हो। अविमुक्त नामक महाक्षेत्रके सूत्रधार तीव्र तपस्वी दण्डनायक भयङ्करमुख! विश्वनाथप्रिय! तुम्हारी जय हो। सौम्य स्वभाववाले भक्तोंके लिये तुम सौम्य मुख हो और दूसरोंको भय पहुँचानेवाले पापियोंके लिये भयङ्कर हो। काशी क्षेत्रमें पापपूर्ण विचार रखनेवाले मनुष्योंके लिये काल हो। भगवान् महाकालके परम प्रिय

सबके प्राणदाता यक्षराज ! तुम्हारी जय हो । तुम्हीं काशीवास, काशीनिवासियोंको आनन्द तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हो, तुम्हारी जय हो । तुम्हारा शरीर बड़े-बड़े रत्नोंकी जगमगाती हुई ज्योतिसे प्रकाशमान है । तुम अभक्तोंको महान् सम्भ्रम और उद्भ्रम देनेवाले हो और भक्तोंके सम्भ्रम तथा उद्भ्रमका निवारण करनेवाले हो । प्राणियोंके अन्तकालीन श्रृङ्गार करनेमें परम चतुर तथा ज्ञानकी निधि प्रदान करनेवाले दण्डपाणे ! तुम्हारी जय हो । गौरीचरणारविन्दोंके भ्रमर तथा मोक्षका साक्षात्कार करानेमें कुशल यक्षराज ! तुम्हारी जय हो।' मुने ! इस परम पुण्यमय यक्षराजाष्टक नामक स्तोत्रका मैं प्रतिदिन तीनों समय जप करता हूँ । यह काशीकी प्राप्ति करानेवाला है । जो बुद्धिमान् श्रद्धापूर्वक दण्डपाण्यष्टकका पाठ करता है, वह कभी विघ्नोंसे तिरस्कृत नहीं होता और काशीनिवासका फल पाता है ।

ईशानके द्वारा ज्ञानोद (ज्ञानवापी) तीर्थका प्राकट्य, ज्ञानवापीकी महिमाके प्रसङ्गमें सुशीला (कलावती) की कथा, काशीके विविध तीर्थोंका वर्णन

अगस्त्यजी बोले—स्कन्द ! अब आप ज्ञानोद तीर्थका माहात्म्य बतलाइये, क्योंकि स्वर्गवासी भी इस ज्ञानवापीकी प्रशंसा करते हैं ।

कार्तिकेयजीने कहा—अगस्त्य ! यह काशी तीर्थ महानिद्रामें सोये (मृत्युको प्राप्त) हुए जीवोंको ज्ञान एवं मोक्ष देनेवाला है, संसारसागरके भँवरमें गिरे हुए प्राणियोंके लिये नौकास्वरूप है, आवागमनसे खिन्न जीवोंके लिये विश्रामस्थान है तथा अनेक जन्मोंके बँटे हुए कर्म-सूत्रको काटनेवाला छुरा है । इतना ही नहीं, यह क्षेत्र सच्चिदानन्दमय परमेश्वरका धाम और परब्रह्म रसकी प्राप्ति करानेवाला है । यह सुखका विस्तार करनेवाला तथा मोक्षके साधनमें सिद्धि देनेवाला है । एक समय इस तीर्थमें ईशान-कोणके अधिपति ईशान नामक रुद्र स्वेच्छासे विचरते हुए आये । यहाँ आकर उन्होंने भगवान् शिवके विशाल ज्योतिर्मय लिङ्गका दर्शन किया, जो सब ओरसे प्रकाशपुञ्ज-द्वारा व्याप्त था । देवता, ऋषि, सिद्ध और योगियोंके समुदाय निरन्तर उसकी आराधनामें संलग्न रहते थे । उसे देखकर ईशानके मनमें यह इच्छा हुई कि 'मैं शीतल जलसे भरे हुए कलशोंद्वारा इस महालिङ्गको स्नान कराऊँ ।' तब उन्होंने विश्वेश्वर लिङ्गसे दक्षिण थोड़ी ही दूरपर त्रिशूलसे वेगपूर्वक एक कुण्ड खोदा । उस समय उस कुण्डसे पृथ्वीका आवरणरूप जल, जो पृथ्वीमें दबा हुआ था, प्रकट हो गया । ईशानने उस जलसे उस ज्योतिर्मय लिङ्गको स्नान कराया । वह जल अत्यन्त शीतल, ज्ञान-स्वरूप एवं पापपुञ्जका नाश करनेवाला था; संत-महात्माओंके हृदयकी भाँति स्वच्छ, भगवान् शिवके नामकी भाँति पवित्र, अमृतके समान स्वादिष्ट, पापहीन और अगाध था । ईशानने अज्ञानतापसे सन्तप्त प्राणियोंके प्राणोंकी एकमात्र रक्षा करनेवाले उस जलसे सहस्र धारावाले कलशोंद्वारा सहस्र बार विश्वनाथजीको स्नान कराया । तदनन्तर विश्वात्मा भगवान् शिव प्रसन्न होकर इस प्रकार बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ईशान ! मैं तुम्हारे इस महान् कर्मसे बहुत प्रसन्न हूँ । अतः तुम कोई वर माँगो ।'

ईशान बोले—देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ, तो यह अनुपम तीर्थ आपके नामसे प्रसिद्ध हो ।

विश्वनाथजी बोले—त्रिलोकीमें जितने तीर्थ हैं, उन सबसे यह शिवतीर्थ परम श्रेष्ठ होगा । शिव ज्ञानको कहते हैं, वही ज्ञान मेरी महिमाके उदयसे इस कुण्डमें द्रवीभूत होकर प्रकट हुआ है । अतः यह तीर्थ तीनों लोकोंमें ज्ञानोद (ज्ञानवापी) के नामसे प्रसिद्ध होगा । इसके जलके स्पर्श-मात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । ज्ञानोद तीर्थके स्पर्शसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है । इसके जलके स्पर्श और आचमनसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है । फल्गुतीर्थ (गया) में स्नान और पितरोंका तर्पण करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसे यहाँ ज्ञानवापीके समीप श्राद्ध करनेसे प्राप्त कर लेता है । जिस दिन गुरुवार, पुष्य नक्षत्र, कृष्णपक्षकी अष्टमी और व्यतीपातका योग हो, उस समय यहाँ श्राद्ध करनेसे गयाकी अपेक्षा कोटिगुना अधिक फल होता है । पुष्करतीर्थमें पितरोंका तर्पण करके मनुष्य जिस फलको पाता है, ज्ञानवापीतीर्थमें तिल और जलके द्वारा तर्पण करनेसे उससे कोटिगुना अधिक फल मिलता है । विशेषतः सोमवारको ईशानतीर्थमें स्नान करके जो देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण कर

अपनी शक्तिके अनुसार दान देता है; फिर विशेष पूजन-सामग्री जुटाकर मेरे श्रीलिङ्गकी विस्तारपूर्वक पूजा करके वहाँ भी यथाशक्ति दान करता है, वह मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। ज्ञानवापी तीर्थके समीप सन्ध्योपासना करके द्विज काल-लोकजनित पापका क्षणभरमें नाश कर देता है और ज्ञानवान् हो जाता है। यही शिवतीर्थ कहा गया है और इसीको मङ्गलमय ज्ञानतीर्थ, तारकतीर्थ और मोक्षतीर्थ भी कहते हैं। ज्ञानोदतीर्थके स्मरण करनेमात्रसे भी पापराशिका निश्चय ही नाश हो जाता है और उसके दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपानसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होती है। जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष ज्ञानवापीके जलसे मेरे श्रीलिङ्गको स्नान कराता है, उसे सब तीर्थोंके जलसे स्नान करानेका फल प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है।

इस प्रकार वरदान देकर भगवान् शङ्कर वहीं अन्तर्धान हो गये और उन त्रिशूलधारी ईशानने अपनेको कृतार्थ माना। अगस्त्यजी! प्राचीन कालकी बात है। काशीमें हरिस्वामीके नामसे विख्यात एक ब्राह्मण रहते थे। उनके एक कन्या थी, जो इस पृथ्वीपर अनुपम सुन्दरी थी। शील और सदाचारमें भी वह इस भूतलपर सबसे श्रेष्ठ थी। सम्पूर्ण कलाओंमें उस कन्याने निपुणता प्राप्त कर ली थी। ज्ञानोदतीर्थकी सेवासे वह सुशीला कुमारी सम्पूर्ण जगत्को बाहर और भीतरसे शिवमय देखती थी। एक दिन जब वह अपने घरके आँगनमें सोयी हुई थी, उसके रूप-वैभवसे मोहित होकर किसी विद्याधरने उसे हर लिया। वह रातमें आकाशमार्गसे उस कन्याको लेकर मलय पर्वतपर जाना चाहता था। इतनेमें ही भयानक आकारवाला विद्युन्माली राक्षस वहाँ आ गया और इस प्रकार बोला—'विद्याधरकुमार! अब तू मेरी दृष्टिके समक्ष आ गया। आज इस मानवकन्याके साथ तुझे यमलोक भेजे देता हूँ।' ऐसा कहकर राक्षसने विद्याधरको त्रिशूलसे मारा। विद्याधर-कुमार भी बड़ा बलवान् था। उसने वज्रपातके समान मुक्केसे उस राक्षसको मारा। उसके मुष्टिकाघातसे चूर-चूर होकर वह राक्षस पृथ्वीपर गिर पड़ा। इधर त्रिशूलसे घायल हुआ विद्याधर भी उस संग्राममें प्राण त्यागकर वीरगतिको प्राप्त हुआ। सुशीलाने उस विद्याधरको ही पति मानकर शोकाग्निसे सन्तप्त हो अपने शरीरको भस्म कर दिया। विद्याधरकुमारने मृत्युकालमें अपनी प्रियतमाका स्मरण करते हुए ही प्राणोंका त्याग किया था, अतः राजा मलयकेतुके यहाँ उसने नूतन जन्म ग्रहण किया। उधर सुशीला भी विद्याधर-कुमारका स्मरण करती हुई प्राण त्यागकर 'कर्नाटक' में उत्पन्न हुई। उसके पिताने अपनी उस कन्या कलावती-को समयानुसार मलयकेतुके पुत्रके साथ ब्याह दिया। पूर्वजन्मकी वासनासे वह सती इस जन्ममें भी शिवमूर्तिकी पूजामें तत्पर हुई। मलयकेतुके पुत्र-का नाम माल्यकेतु था। उसे पतिरूपमें पाकर पतिव्रता कलावती दिव्य भोग एवं वैभवकी अधिकारिणी हुई। उसने तीन सन्तानोंको जन्म दिया। एक दिन कोई उत्तरभारतका चित्रकार राजा माल्यकेतुके यहाँ गया। उसने राजाको एक विचित्र चित्रपट दिखाया। वह चित्रपट लेकर राजाने उसे कलावतीको दे दिया। उस चित्रपटको देखते ही कलावतीके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वह एकान्तस्थानमें बैठकर अपने प्राणाराध्य देवता भगवान् विश्वनाथको बार-बार देखती हुई अपनी सुध-बुध भूल गयी। थोड़ी देरमें सावधान होकर उसने देखा कि इस चित्रपटमें लोलार्ककुण्डके समीप उससे और आगे परम सुन्दर असी और गङ्गाका सङ्गम है और उत्तरमें भगवान् केशवके चरणोंके समीप यह 'वरणा' नामवाली श्रेष्ठ नदी बहती है। इधर ये उत्तरवाहिनी गङ्गा हैं, जिनमें स्नान करनेके लिये स्वर्गवासी देवता भी सदा लालायित रहते हैं। यह परम शोभायमान मणिकर्णिका तीर्थ है, जो साधुपुरुषोंके मोक्षका साधन है। जहाँ मृत्यु होना मङ्गल माना गया है, जहाँ जीना सफल होता है और जहाँ स्वर्ग तिनकेके समान समझा जाता है, वही यह श्रीमणिकर्णिका-तीर्थ है। यही वह कुलस्तम्भ है, जहाँ भगवान् श्रीकालभैरव इस तीर्थमें पाप करनेवाले प्राणियोंको तीव्र यातनाका अनुभव कराते हुए दण्ड देते हैं। यह पवित्र कपालमोचन तीर्थ है, जहाँ भैरवके हाथसे कपाल गिरा था। यह तीनों ऋणोंसे छुड़ानेवाला विशुद्धिकारक ऋणमोचन तीर्थ है। यह अद्भुत ॐकारेश्वरका स्थान है, जहाँ 'ॐकार' नामसे प्रसिद्ध परब्रह्म परमात्मा नित्य प्रकाशमान हैं। अ, उ, म्, नाद और विन्दु—इन पाँच स्वरूपोंवाले प्रणवरूप परब्रह्म जहाँ सदैव प्रकाशित होते हैं। यह परम सुन्दर 'मत्स्योदरी'तीर्थ तथा ये परम दयालु भगवान् त्रिलोचनदेव हैं। इधर ये कामेश्वरदेव हैं। यहाँ भक्तोंके मनोरथकी सिद्धिके लिये स्वयं भगवान् शङ्कर लीन हुए हैं। इस कारण उनकी 'स्वर्लीन' संज्ञा हो गयी है। काशीमें इस क्षेत्रके अभिमानी देवता जो महादेवजी हैं, इन्हें पुराणोंमें भगवान् विश्वनाथ कहा जाता है। यह

उन्हींका अद्भुत मन्दिर है और वे स्कन्देश्वर महादेव हैं, इनका श्रद्धापूर्वक दर्शन करनेसे मनुष्य आजन्म ब्रह्मचर्यका फल प्राप्त करता है। इधर ये सब सिद्धियोंके देनेवाले विनायकेश्वर हैं, जिनकी सेवासे मनुष्योंके सम्पूर्ण विघ्न नष्ट हो जाते हैं। यह साक्षात् काशीदेवी हैं, जिनके दर्शनमात्रसे मनुष्योंका पुनर्गर्भवास नहीं होता। यह पार्वतीश्वरका महान् मन्दिर है, जहाँ मोक्षदाता भगवान् महेश्वर गौरीदेवीके साथ नित्य निवास करते हैं। ये महापातकोंका नाश करनेवाले भृङ्गीश्वर हैं तथा ये चार वेदोंको धारण करनेवाले चतुर्वेदेश्वर हैं, जिनके दर्शनसे ब्राह्मण वेदाध्ययनका फल पाता है। इधर यज्ञोंद्वारा स्थापित यज्ञेश्वर नामक शिवलिङ्ग है, जिसकी पूजासे मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञोंका महान् फल पाता है। यह पुराणेश्वर-लिङ्ग है, जिसके दर्शनसे मनुष्य अठारह विद्याओंका ज्ञाता होता है। यह धर्मशास्त्रेश्वर महादेव हैं, जिनके दर्शनसे धर्म-शास्त्रोंके अध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है। यह सब प्रकारकी जड़ताका विनाश करनेवाला सारस्वतलिङ्ग है और इधर यह सप्ततीर्थेश्वरलिङ्ग है, जो सबको तत्काल शुद्धि देनेवाला है। यह शैलेश्वरलिङ्गका परम अद्भुत मण्डप है। इधर यह सप्त-सागरेश्वर नामक मनोहर लिङ्ग है, जिसके दर्शनसे मनुष्य सात समुद्रोंमें स्नान करनेका फल पाता है। वे भगवान् मन्त्रेश्वर हैं तथा यह त्रिपुरेश्वर शिवके आगेवाला महान् कुण्ड है। इसे पूर्वकालमें त्रिपुरवासियोंने खोदा था। यह सहस्रबाहुसे पूजित बाणेश्वरलिङ्ग है। यह प्रह्लादकेशवके सम्मुख पूर्व दिशामें वैरोचनेश्वरलिङ्ग है। उधर बलिकेशव, नारदकेशव और आदिकेशव हैं। आदिकेशवके पूर्वमें आदित्यकेशव हैं। तत्पश्चात् वे भीष्मकेशव हैं। इधर ये दत्तात्रेयेश्वर हैं। दत्तात्रेयेश्वरके पूर्व आदि गदाधर हैं। फिर भृगुकेशव और ये वामनकेशव हैं। ये दोनों नर-नारायण हैं। उधर यज्ञ-वाराहकेशव हैं। फिर विदार नारसिंह और गोपीगोविन्द हैं। इधर यह लक्ष्मीनृसिंहका रत्नमय प्रासाद है। ये खर्व-विनायक हैं, जो मनुष्योंको महासिद्धि देनेवाले हैं। फिर शेषमाधव हैं, जिनके भक्त प्रलयकालकी आगमें नहीं जलते। ये शङ्खमाधव हैं, जो शङ्खासुरको मारकर यहाँ विराजमान हैं। यह सारस्वत स्रोत है, जहाँ महानदी गङ्गाके साथ सरस्वती-का सङ्गम हुआ है। यहाँ गोता लगानेवाले मनुष्य पुनः इस पृथ्वीपर जन्म नहीं लेते। ये साक्षात् लक्ष्मीपति बिन्दुमाधव हैं, जिन्हें श्रद्धापूर्वक नमस्कार करनेवाला मनुष्य पुनः गर्भ-गृहमें निवास नहीं करता, दरिद्रताको नहीं प्राप्त होता तथा रोगोंसे भी पीड़ित नहीं होता। जो नाद-बिन्दु-स्वरूपधारी एकमात्र प्रणवरूप परमात्मा है, जिसे निराकार परब्रह्म कहते हैं, वही ये भगवान् बिन्दुमाधव हैं। यह पञ्चब्रह्मात्मक पञ्चनद (पञ्चगङ्गा) तीर्थ है, इधर ये मङ्गला गौरी हैं। अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाले मयूखादित्य नामक सूर्य हैं, उधर वे दिव्य ज्योति प्रदान करनेवाले गभस्तीश्वर नामक महाशिव हैं। ये तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध किरणेश्वर हैं। इधर यह पातकोंको धो डालनेवाला 'धौतपापेश्वर' नामक शिवलिङ्ग है। ये निर्वाणनृसिंह हैं, उधर ये मणिप्रदीप नाग हैं, यह कपिलेश्वरलिङ्ग है; इनके दर्शनसे नरोंकी तो बात ही क्या है, वानर भी मुक्त हो जाते हैं। यह प्रियव्रतेश्वर नामक लिङ्ग प्रकाशित हो रहा है। इधर यह कलिकालकी पीड़ा दूर करने-वाले श्रीकालराजका श्रेष्ठ मन्दिर है। यह परम सुन्दर मन्दाकिनी है, जो तपस्या करनेके लिये यहाँ आयी है। यह काशीवासका सुख पाकर अब भी स्वर्गलोकमें नहीं जाना चाहती है। यहाँ विधिपूर्वक पितरोंका श्राद्ध और तर्पण करके पापी मनुष्य भी नरकका दर्शन नहीं करता। यह रत्नेश्वर नामक शिवलिङ्ग है। रत्नेश्वरके प्रसादसे किसने मोक्षरूपी रत्न नहीं पाया है। भगवान् कृत्तिवासेश्वर सब लिङ्गोंमें प्रधान हैं। ये भगवती दुर्गा हैं और यह उत्तम पितृलिङ्ग है। यह चित्रघण्टेश्वरीदेवी हैं और यह घण्टाकर्ण सरोवर है। यह ललिता गौरी और यह अद्भुत रूपवाली विशालाक्षी हैं। ये आशाविनायक हैं और यह परम अद्भुत धर्मकूप है, जहाँ पिण्डदान करके मनुष्य अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा सकता है। ये विश्वभुजादेवी हैं और वे बन्दी देवी हैं। यह त्रिलोकवन्दित दशाश्वमेधतीर्थ है। यह सब तीर्थोंमें उत्तम है और इसे प्रयागतीर्थ बताया गया है। यह अगोकतीर्थ है और ये गङ्गाकेशव हैं। यह श्रेष्ठ मोक्षद्वारतीर्थ है और इसको स्वर्गद्वारतीर्थ भी कहते हैं।

ज्ञानवापीकी महिमा और उसके सेवनसे माल्यकेतु और कलावतीको तारक ब्रह्मकी प्राप्ति

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! कलावतीने पुनः उस चित्रपटमें स्वर्गद्वारके आगे श्रीमणिकर्णिकातीर्थको देखा, जहाँ संसाररूपी सर्पसे डसे हुए जीवोंके दाहिने कानमें भगवान् शिव अपने दाहिने हाथसे स्पर्श करते हुए तारक ब्रह्मका उपदेश देते हैं। बार-बार चित्रपटको निहारती हुई उसने भगवान् विश्वनाथके दक्षिण भागमें ज्ञानवापीको देखा।

पुराणमें महादेवजीको जिन आठ मूर्तियोंसे युक्त बताया जाता है, उनमेंसे उनकी जलमयी मूर्ति यह ज्ञानवापी ही है, जो ज्ञान प्रदान करनेवाली है। ज्ञानवापीका दर्शन करके कलावती-के शरीरमें रोमाञ्च हो आया। शरीर कुछ कम्पित होने लगा और माथेमें पसीना आ गया। उसके दोनों नेत्र आनन्दके आँसुओंसे भर आये। देह जडवत् हो गयी। मुँहका रंग फीका हो गया और वह चित्रपट उसके हाथसे छूटकर गिर पड़ा। वह क्षणभरके लिये अपने-आपको भूल गयी। तदनन्तर कलावतीकी दासियाँ इधर-उधरसे दौड़ती हुई आयीं और आपसमें पूछने लगीं—'क्या हुआ ? क्या हुआ ? यह क्या हो गया ?' फिर वे शान्तिदायक उपचारोंसे धैर्य-पूर्वक उसकी सेवामें जुट गयीं। उसे इस अवस्थामें देखकर बुद्धिशरीरिणी नामवाली एक सखी बोली—'मैं इसके सन्तापको शान्त करनेके लिये एक उत्तम ओषधि जानती हूँ। यह इस चित्रपटको देखकर तत्काल विकलताको प्राप्त हुई है, अतः फिर उसीका स्पर्श करनेसे सन्तापरहित होगी।' बुद्धिशरीरिणीके कहनेसे दासियोंने कलावतीके आगे उस चित्रपटको रखकर कहा—'रानीजी ! इस चित्रपटको देखिये, जिसमें आपको आनन्द देनेवाले कोई इष्टदेव विराज रहे हैं।' चित्रपटका स्पर्श प्राप्त होते ही कलावती मूर्छा त्यागकर सहसा उठ बैठी। फिर उसने ज्ञानदायिनी ज्ञानवापीको देखा। चित्रपटमें अङ्कित उस ज्ञानवापीका स्पर्श करके ही उसने जन्मान्तरका वैसा ही ज्ञान प्राप्त कर लिया जैसा कि पूर्वजन्ममें था। तब उसने प्रसन्न होकर अपनी दासियोंसे पूर्वजन्मका वृत्तान्त कह सुनाया।

कलावती बोली—पूर्वजन्ममें मैं ब्राह्मणकी कन्या थी और काशीमें विश्वनाथ-मन्दिरके समीप ज्ञानवापीके तटपर प्रसन्नतापूर्वक खेला करती थी। मेरे पिताका नाम हरिस्वामी, माताका नाम प्रियंवदा और मेरा नाम सुशीला था। इस समय ज्ञानवापीको देखनेसे क्षणभरमें मुझे यह पूर्वजन्मका ज्ञान हो आया है।

कलावतीकी यह बात सुनकर बुद्धिशरीरिणी तथा वे सब दासियाँ हर्षमें भरकर बोलीं—अहो! जिस तीर्थका ऐसा प्रभाव है, उसका दर्शन हमें कैसे प्राप्त हो सकता है। कलावती रानी ! आपको नमस्कार है। आप हमारी मनोकामना पूर्ण करें। राजासे प्रार्थना करके हमको भी वहाँ ले चलें। जो चित्रपटमें प्राप्त होनेपर भी आपको ज्ञान देनेवाली हुई है, वह अवश्य ही नामसे 'ज्ञानवापी' कहलाने योग्य है।' कलावतीने उन सबकी प्रार्थना स्वीकार करके महाराजसे कहा—'प्राणनाथ ! आप-जैसे पतिको पाकर मेरे सब मनोरथ

पूर्ण हो गये। आर्यपुत्र ! अब एक ही मनोरथ शेष है, जिसके लिये मैं प्रार्थना करती हूँ।

राजाने कहा—प्रिये! मैं ऐसी कोई वस्तु नहीं देखता, जो तुम्हारे लिये देने योग्य न हो। अतः शीघ्र कहो। तुम किससे माँगती हो, किस वस्तुको माँगती हो और कौन माँगनेवाला है ? हम दोनोंका आपसका बर्ताव दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंकी भाँति नहीं है। राज्य, कोष, सेना और दुर्ग तथा अन्य भी जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब तुम्हारी हैं, मेरा कुछ भी नहीं है। मैं नाममात्रके लिये ही इनका स्वामी हूँ।

कलावती बोली—नाथ ! मुझे शीघ्र काशीपुरीमें पहुँचाइये।

राजा मलयकेतुने कहा—प्रिये ! यदि तुमने काशी जानेका ही निश्चय कर लिया, तो अब मुझे भी यहाँ रहनेकी क्या आवश्यकता। अतः हम-तुम दोनोंको काशी चलना चाहिये।

इस प्रकार अपनी प्यारी पत्नी कलावतीको आश्वासन देकर राजा मलयकेतुने पुरवासियोंको बुलाकर मन्त्रि किया

और पुत्रको राजसिंहासनपर बिठाकर कुछ रत्न-धन साथ ले काशीपुरीको प्रस्थान किया। विश्वनाथजीकी नगरीका दर्शन करके राजाने अपनेको कृतार्थ माना और संसार-सागरसे पार गया हुआ समझा। पहले जन्मकी वासनासे रानी कलावतीने उस पुरीकी समस्त गलियों और मार्गोंको स्वयं पहचान लिया। उन्होंने मणिकर्णिकामें स्नान करके बहुत धन दान किया और विश्वनाथजीकी पूजा करके परिक्रमा करनेके पश्चात् मुक्तिमण्डपमें प्रवेश किया। वहाँ धर्मकथा सुनकर धन-दान किया। फिर राजाने सायंकालकी महापूजा की और रातमें जागरण किया। तदनन्तर प्रातःकाल उठकर शौच और स्नानसे निवृत्त हो रानीके बताये हुए मार्गसे वे ज्ञानवापीपर गये। वहाँ हर्षमें भरे हुए राजाने कलावतीके साथ स्नान किया और श्रद्धापूर्वक पिण्डदान देकर पितरोंको तृप्त किया। वहाँ सुपात्र ब्राह्मणोंको सुवर्ण और रजत दान किये। फिर दीनों, अन्धों, दरिद्रों और अनाथोंको धनसे सन्तुष्ट करके नरेशने पारणा की तथा रत्नमयी सीढ़ियाँ लगवाकर ज्ञानवापीका संस्कार कराया। रानी कलावतीने अपने पतिके साथ ज्ञानवापी-तीर्थके प्रति भक्ति-भाव बढ़ाया और आयुके शेष दिन तपस्या-पूर्वक व्यतीत किये।

एक दिन प्रातःकाल वे दोनों दम्पति ज्ञानवापीमें स्नान करके बैठे हुए थे। इसी समय किसी जटाधारी व्यक्तिने आकर उनके हाथमें विभूति दी और इस प्रकार कहा—'उठो, आज एक ही क्षणमें तुम दोनोंको यहाँ तारक मन्त्रका उपदेश प्राप्त होगा।' उस जटाधारी तपस्वीके इतना कहते ही आकाशसे एक तेजस्वी विमान उतर आया और सब लोगोंके देखते-देखते भगवान् शिव उस विमानसे उतरे। उतरकर उन्होंने उन दोनों पति-पत्नीके कानोंमें स्वयं ही ज्ञानका उपदेश किया। उपदेशके अनन्तर अनिर्वचनीय परम ज्योतिःस्वरूप वह श्रेष्ठ विमान आकाशमार्गको प्रकाशित करता हुआ तत्काल ऊपरको चला गया और महादेवजी भी अपने परम धाममें चले गये।

स्कन्दजी कहते हैं—तभीसे ज्ञानवापीतीर्थका महत्त्व इस संसारमें सबसे अधिक हो गया। ज्ञानवापी भगवान् शिवकी प्रत्यक्ष मूर्ति एवं ज्ञान उत्पन्न करनेवाली है।

संक्षेपसे सदाचार और उसके महत्त्वका वर्णन

अगस्त्यजी बोले—भगवन्! अविमुक्त नामक महा-क्षेत्र परमुक्तिका कारण है। वह सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें सबसे श्रेष्ठ और मङ्गलोंमें भी परम मङ्गलरूप है। जहाँ गङ्गा, विश्वनाथ और काशी—ये तीनों जागरूक हैं, वहाँ मोक्षरूपी सम्पत्ति मिलती है। इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है। स्कन्दजी! किस-किस धर्मका आचरण करनेवाले पुरुषको काशीवासकी प्राप्ति होती है, यह बताइये। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि सदाचारके बिना किसीके भी मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकते। आचार परम धर्म है, आचार उत्तम तप है, आचारसे आयु बढ़ती है और आचारसे समस्त पापोंका क्षय हो जाता है *। इसलिये आप पहले आचारका ही वर्णन करें।

स्कन्द बोले—मुने! मैं सत्पुरुषोंके लिये हितकर सदाचारका वर्णन करता हूँ, सुनो। इस लोकमें सब प्रकार-के प्राणियोंमें सबसे बढ़कर मनुष्य हैं। मनुष्योंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं और ब्राह्मणोंसे भी श्रेष्ठ विद्वान् हैं। विद्वानोंमें भी वे सबसे श्रेष्ठ हैं, जिनकी बुद्धि परम पवित्र एवं वशमें की हुई है। उनसे भी श्रेष्ठ वे लोग हैं जो पवित्र बुद्धिद्वारा किये हुए निश्चयके अनुसार कर्म करते हैं। उनसे भी श्रेष्ठ वे हैं, जो सदा ब्रह्मचिन्तनमें तत्पर रहते हैं।

ब्रह्माजीने ब्राह्मणको सम्पूर्ण जीवोंका स्वामी बनाया है। इसलिये इस जगत्में जो कुछ भी स्थित है, उस सब वस्तुको प्राप्त करनेका योग्य अधिकारी ब्राह्मण ही है। उनमें भी जो सदाचारी है, वही सब कर्मोंके योग्य है, आचारभ्रष्ट नहीं। इसलिये ब्राह्मणको सदा आचारवान् होना चाहिये। मुने! राग-द्वेषसे रहित विद्वान् ब्राह्मण जिस आचारका पालन करते हैं, उसीको ज्ञानी पुरुष धर्ममूलक सदाचार मानते हैं। जो उत्तम लक्षणोंसे हीन होनेपर भी उत्तम आचारके पालनमें तत्पर, श्रद्धालु और दूसरोंके दोष न देखनेवाला है, वह मनुष्य सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। अपने-अपने वर्णाश्रमोचित कर्मोंके विषयमें श्रुतियों और स्मृतियोंद्वारा जो धर्ममूलक सदाचार बतलाया गया है, उसका आलस्य छोड़कर पालन करना चाहिये। दुराचारी पुरुष इस संसारमें निन्दनीय होता है, उसे नाना प्रकारके

---

* आचारः परमो धर्म आचारः परमं तपः।
आचाराद्वर्धते ह्यायुराचारात् पापसंक्षयः॥
(स्क० पु० का० पू० ३५।१५)

रोग सताते हैं और वह सदा अत्यन्त दुःखका भागी एवं अल्पायु होता है। जिस कर्मको करते समय अन्तरात्मा प्रसन्न होता हो (जिसमें भय, आशङ्का एवं लज्जा आदिका अनुभव न होता हो), उसी कर्मको करना चाहिये, उससे विपरीत कर्मको नहीं। सत्य, क्षमा, आर्जव (सरलता एवं कोमलता), ध्यान, क्रूरताका अभाव, अहिंसा, दम (मन और इन्द्रियोंका संयम), प्रसन्नता, मधुरता और मृदुता—ये दस प्रकारके यम बताये गये हैं। शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), स्नान, तप, दान, मौन, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत, उपवास और उपस्थ-इन्द्रियको वशमें रखना—ये दस नियम कहे गये हैं। काम, क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य और लोभ—इन छः शत्रुओंको जीत लेनेपर मनुष्य सर्वत्र विजयी होता है। दूसरेको कष्ट न देते हुए धीरे-धीरे धर्मका संग्रह करना चाहिये। क्योंकि वही परलोकमें सहायक होता है। परलोकमें केवल धर्म ही सहायक होता है। पिता, माता, पुत्र, भाई, पत्नी, बन्धु-बान्धव और घरका साज-सामान—ये सब वहाँ सहायता नहीं करते। जीव अकेला जन्म लेता और अकेला ही मरता है। पुण्य और पापका भोग भी वह अकेला ही करता है। मृत्युको प्राप्त हुए शरीरको लकड़ी और ढेलेकी भाँति पृथ्वीपर फेंककर भाई-बन्धु मुँह फेर चल देते हैं। परलोकमें जाते हुए जीवके साथ तो केवल उसका धर्म जाता है। अतः पुण्यात्मा पुरुष परलोकमें सहायता करनेवाले धर्मका संग्रह अवश्य करे। धर्मको सहायक पाकर जीव नरकके दुस्तर अन्धकारसे भलीभाँति पार हो जाता है। उत्तम बुद्धिवाला पुरुष सदा श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करे और नीच पुरुषोंका सङ्ग त्यागकर अपने कुलको उन्नतिकी ओर ले जाय। जो स्वाध्याय नहीं करता, सदाचारका उल्लङ्घन करता है तथा आलसी एवं दूषित अन्न खानेवाला है, ऐसे ब्राह्मणको यमराज पीड़ा देते हैं। इसलिये द्विज सदा यत्नपूर्वक सदाचारका पालन करे। व्याहृति और प्रणवके साथ प्रतिदिन किये जानेवाले सोलह प्राणायाम एक ही मासमें भ्रूणहत्यारेको भी पवित्र कर देते हैं। जैसे सोने, चाँदी आदि धातुओंके मल आगमें तपानेसे जल जाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियोंद्वारा किये हुए दोष प्राणायामसे नष्ट हो जाते हैं। प्रणव, सातों व्याहृतियाँ और त्रिपदा गायत्री—ये सब मिलकर एक प्राणायाम-मन्त्र हैं, जो इनके जपमें संलग्न है, उसको कहीं भी भय नहीं है। ॐकार परब्रह्म है, प्राणायाम परम तपस्या है और गायत्री-मन्त्रसे बढ़कर परम पावन वस्तु दूसरी कोई नहीं है। केवल गायत्री-मन्त्रका जप करनेवाला जितेन्द्रिय ब्राह्मण भी श्रेष्ठ है।

इस लोकमें जिसका चित्त निर्मल (शुद्ध) है, वह स[र्व] तीर्थोंमें स्नान कर चुका। वही सब प्रकारके मलसे रहित [है] और उसीने सैकड़ों यज्ञोंद्वारा देवाराधन किया है। मुने वह चित्त जिस प्रकार निर्मल होता है, वह उपाय सुनो जब भगवान् विश्वनाथ प्रसन्न हों तभी चित्त शुद्ध होत[ा] है। अतः चित्तशुद्धिके लिये भगवान् काशीनाथकी शरण लेनी चाहिये। उनकी शरण लेनेसे निश्चय ही मनके मल नष्ट हो जाते हैं और मानसिक मलका नाश होनेपर भगवान विश्वनाथकी कृपासे इस शरीरका त्याग करके मनुष्य परब्रह्मको प्राप्त होता है। मनुष्योंको भगवान् विश्वनाथकी कृपा होनेमें वेदों और स्मृतियोंद्वारा बताये हुए सदाचारको ही प्रधान हेतु माना गया है। इसलिये उसका पालन अवश्य करे। विधिपूर्वक सन्ध्योपासन और तर्पण करनेके पश्चात् नित्यहोम करके वेदोंका स्वाध्याय करे।

प्रतिदिन प्रातःकाल दो घड़ी रात रहते उठकर मलोत्सर्ग आदि आवश्यक कार्य करनेके पश्चात् अङ्गोंकी शुद्धि तथा आचमन (कुल्ला) करे। फिर दन्तधावन करे। स्नानके द्वारा समस्त शरीरको शुद्ध करके प्रातःकालकी सन्ध्या करे। वेदोंके अर्थका विचार तथा अनेक प्रकारके शास्त्रोंका अनुशीलन करे। पवित्र, हितकारी तथा बुद्धिमान् शिष्योंको पढ़ावे और योग-क्षेम आदिकी सिद्धिके लिये परमेश्वरकी शरण ले। तदनन्तर मध्याह्नकालके नित्यकर्मका अनुष्ठान करनेके लिये पूर्वोक्त रूपसे पुनः स्नान करे। स्नानके पश्चात् मध्याह्नकालकी सन्ध्या करे। तत्पश्चात् चूल्हेकी आगको प्रज्वलित करके बलिवैश्वदेव करे। निष्पाव, कोदो, उड़द, केराव, चना, तेलमें पकायी हुई वस्तुएँ तथा सब प्रकारके नमकीन भोजन वैश्वदेवमें त्याज्य हैं। अरहर, मसूर, मरट, वरट, भोजनसे बची हुई वस्तु अथवा बासी अन्न—इन सबको वैश्वदेवकर्ममें त्याग देना चाहिये। राही, जीविकाहीन, विद्यार्थी, गुरुका पोषण करनेवाला, संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये छः धर्मभिक्षुक कहे गये हैं। राहीको 'अतिथि' जानना चाहिये और वेदोंके पारङ्गत विद्वान्को 'अनूचान' कहते हैं। ये दोनों ब्रह्मलोकप्राप्तिकी इच्छावाले सद्गृहस्थोंके लिये सदैव सम्माननीय हैं। सायंकालकी सन्ध्योपासना एवं गायत्री-जप करके घरपर आये हुए अतिथिका मधुर वचन, रहनेके लिये स्थान, आसन और अन्न-जल आदिके द्वारा भलीभाँति सत्कार करे। इस प्रकार रात्रिका प्रथम प्रहर व्यतीत करके शयन करे। रातमें अधिक तृप्तिपूर्वक भोजन नहीं करना चाहिये (भूखसे कुछ कम ही खाना चाहिये)।

निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। अतः मोक्षके उद्देश्यसे ही बुद्धिमानोंका सदाचारके लिये प्रयत्न होता है।

गृहस्थ-आश्रममें जिस प्रकार सदाचारका पालन होता है, वैसा दूसरे आश्रममें नहीं। इसलिये विद्याध्ययन पूर्ण करके अन्तमें गृहस्थ-आश्रमकी शरण लेनी चाहिये। यदि पत्नी अपने अधीन रहनेवाली हो तो गृहस्थ-आश्रमसे बढ़कर दूसरा कोई आश्रम नहीं है। पति और पत्नीकी अनुकूलता धर्म, अर्थ तथा कामकी प्राप्ति करानेवाली होती है। यदि स्त्री अपने अनुकूल रहनेवाली हो तो स्वर्गको लेकर भी क्या करना है और यदि पत्नी अपनेसे विपरीत चलनेवाली हो तब तो उसके सामने नरक भी किस गिनतीमें है? कार्यकुशल, पुत्रवती, पतिव्रता, मीठे वचन बोलनेवाली और अपने अधीन रहनेवाली—इन गुणोंसे युक्त पत्नी वस्तुतः स्त्रीके रूपमें साक्षात् लक्ष्मी है*। विद्याध्ययन समाप्त होनेपर ब्रह्मचारी गुरुकी आज्ञासे ब्रह्मचर्य-व्रतका उद्यापन करके स्नातक होकर अपने ही वर्णकी शुभ-लक्षणा स्त्रीके साथ विवाह कर ले। वह स्त्री अपने पिताके गोत्रकी न हो और माताकी सपिण्ड न हो। विवाह-सम्बन्धमें ऐसे कुलका परित्याग कर दे, जिसमें मृगीरोग, राजयक्ष्मा-रोग और कोढ़का रोग होता हो। जिस कुलमें किसी प्रकारका कलङ्क लगा हो, उसको भी त्याग दे। जिससे केवल कन्या ही होनेकी सम्भावना हो, ऐसी स्त्रीसे विवाह न करे। जिसके कोई रोग न हो, जिसके भाई हों, जो अपनेसे कुछ छोटी हो, जिसका मुख सौम्य हो और जो मीठे वचन बोलनेवाली हो, ऐसी स्त्रीके साथ द्विजको विवाह करना चाहिये। पर्वत, भालू, वृक्ष, नदी, सर्प, पक्षी, नाग और दास आदिका बोध करानेवाले नामोंसे युक्त स्त्रीके साथ विवाह न करे। जिसका नाम सौम्य हो, उसीसे विवाह करे। जिसके कोई अङ्ग अधिक या कम हों, जो बहुत बड़ी अथवा अत्यन्त दुबली हो, बिना रोमकी अथवा अधिक रोमवाली हो तथा जिसके केश रूखे एवं मोटे (चिपके हुए) हों, ऐसी स्त्रीके साथ भी विवाह न करे। मोहवश नीच कुलकी कन्यासे तो कभी विवाह न करे; क्योंकि हीन कुलकी कन्याके साथ विवाह करनेसे अपनी सन्तान भी हीनताको प्राप्त होती है। पहले कन्याके लक्षणोंकी परीक्षा करके तदनन्तर उसके साथ विवाह करे। उत्तम लक्षणोंवाली तथा सदाचारका पालन करनेवाली पत्नी पतिकी आयु बढ़ाती है। अगस्त्यजी! इस प्रकार मैंने आपसे ब्रह्मचारियोंके सदाचारका वर्णन किया है।

सम्बन्ध नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण आदि वर्णोंके लोग क्रमशः सन, रेशम और ऊनके वस्त्र धारण करें। ब्राह्मणकी मेखला मूँजकी, क्षत्रियकी मेखला मुर नामक तृणकी तथा वैश्यकी मेखला सनके तन्तुओंकी बनानी चाहिये। प्रत्येक मेखला तीन तारकी एवं चिकनी होनी चाहिये। ब्राह्मणादिके यज्ञोपवीत क्रमशः कपास, सन और ऊनके होने चाहिये। ब्राह्मणका दण्ड बेल और पलासका, क्षत्रियका दण्ड बरगद और खैरका तथा वैश्यका दण्ड पीलू और गूलरका होना चाहिये। पहले-पहल माता, मौसी, बहन और बुआ आदिसे भिक्षा माँगनी चाहिये तथा जो याचना करनेपर अस्वीकार न करें, ऐसी स्त्रियोंसे भी वह भिक्षा माँग सकता है। जबतक वेद पढ़े और वैदिक व्रतोंका पालन करता रहे, तबतक ब्रह्मचारी ही रहे। अध्ययन पूरा होनेके पश्चात् स्नातक होकर गृहस्थ होवे। जो गृहस्थ-आश्रमको स्वीकार करके पुनः ब्रह्मचर्याश्रमके नियमोंको ग्रहण करता है, वह सब आश्रमोंसे वर्जित हो जाता है। वह न तो वानप्रस्थ हो सकता है, न तो संन्यासी ही। आश्रमभ्रष्ट पुरुष जो जप, होम, व्रत, दान, स्वाध्याय और पितृतर्पण आदि कर्म करता है, वह उसका फल नहीं पाता। वेदपाठके आरम्भमें और अन्तमें सदा ॐकारका उच्चारण करे। ॐकारसे हीन वेदपाठ न तो सफल होता है और न सिद्धिदायक ही होता है। जो वेदोंका ज्ञाता ब्राह्मण दोनों सन्ध्याओंके समय ॐकार और व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्रका जप करता है, वह वेद-पाठके पुण्यसे युक्त होता है।

विधिपूर्वक किये हुए यज्ञसे जपयज्ञ दसगुना उत्तम बताया गया है। उपांशु जप (सूक्ष्म स्वरसे उच्चारण किया हुआ जप) उससे सौगुना फल देनेवाला है। उपांशु जपकी अपेक्षा भी सहस्रगुना महत्त्व मानस-जपका माना गया है *। द्विजको अपनी शक्तिके अनुसार तीन, दो या एक वेदका अध्ययन करके सदा उसके अभ्यासमें लगे रहना चाहिये। वेदाभ्यास ब्राह्मणके लिये सर्वश्रेष्ठ तपस्या है। जो ब्राह्मण शिष्यका उपनयन-संस्कार करके उसे कल्प और रहस्यसहित वेद पढ़ाता है, उसे विद्वान् पुरुष आचार्य मानते हैं। जो जीविकाके लिये वेदके किसी एक भागको अथवा वेदाङ्गोंका ही अध्ययन कराता है, उसे विद्वान् पुरुष उपाध्याय कहते हैं। जो विधिपूर्वक गर्भाधान आदि संस्कार कराता है तथा अन्नसे पालन करता है, वह गुरु कहा गया है। जो जिसके द्वारा वरण किये जानेपर उसके यहाँ अग्न्याधानपूर्वक किये जानेवाले आहवनीय आदि कर्म, पाकयज्ञ तथा अग्निष्टोम आदि याग सम्पन्न करता है, वह उस यजमानका ऋत्विक् कहलाता है। उपाध्यायकी अपेक्षा दसगुना गौरव आचार्यका है, आचार्यसे सौगुना महत्त्व पिताका है और पितासे भी सहस्रगुना गौरव धारण करनेके कारण माता बड़ी है *। ब्राह्मणोंमें वही बड़ा माना जाता है, जो ज्ञानमें बड़ा हो, क्षत्रियोंमें बलसे, वैश्योंमें धन-धान्यसे और शूद्रोंमें जन्मसे ज्येष्ठताका व्यवहार होता है। जैसे काठका हाथी और चमड़ेका मृग है, वैसे ही बिना पढ़ा हुआ ब्राह्मण है। ये तीनों केवल नाम धारण करनेवाले हैं। जहाँ गुरुकी निन्दा हो और जहाँ गुरुपर झूठे लाञ्छन लगाये जाते हों, वहाँ अपने कानोंको मूँद लेना चाहिये अथवा उठकर अन्यत्र चले जाना चाहिये। गुरुकी सती एवं युवती पत्नीके दोनों चरणोंका स्पर्श करके कभी प्रणाम न करे, दूरसे ही नमस्कार करे। माता, पुत्री अथवा बहिनके साथ भी एकान्तमें नहीं रहना चाहिये, क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं। वे विद्वानोंको भी मोहमें डाल देती हैं †। जैसे प्रयत्नपूर्वक कुआँ खोदनेवाला पुरुष पृथ्वीसे जल प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गुरुकी पूर्णतः सेवा करनेसे शिष्य विद्याको पा लेता है। पुत्रके जन्म और लालन-पालनमें पिता-माता जो क्लेश सहन करते हैं, उसका बदला सौ वर्षोंमें भी नहीं चुकाया जा सकता। इसलिये माता-पिता और गुरुका भी सदैव प्रिय करे। इन तीनोंके सन्तुष्ट हो जानेपर पूर्ण तपस्याका फल प्राप्त होता है। इन तीनोंकी सेवा श्रेष्ठ तपस्या कहलाती है। माताकी सेवासे भूलोक, पिताकी सेवासे भुवर्लोक और गुरुकी सेवासे पुण्यात्मा पुरुष स्वर्गलोकको जीत लेता है। भगवान् विश्वनाथकी कृपासे मनुष्य अखण्ड ब्रह्मचर्यसे युक्त होता है। विश्वनाथजीकी उत्तम दया ही काशीकी प्राप्ति करानेवाली है। काशीकी प्राप्तिसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे मनुष्य

* विधिक्रतोर्दशगुणो जपक्रतुरुदीरितः।
उपांशुस्तच्छतगुणः सहस्रो मानसस्ततः॥
(स्क० पु० का० पू० ३६। ४९)

* उपाध्यायाद्दशाचार्य आचार्यात्तु शतं पिता।
सहस्रं तु पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते॥
(स्क० पु० का० पू० ३६। ५०)

† न मात्रा न दुहित्रा वा न स्वस्रैकान्तशीलता।
बलवतीन्द्रियाण्यत्र मोहयन्त्यपि कोविदान्॥
(स्क० पु० का० पू० ३६। ६९)

निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। अतः मोक्षके उद्देश्यसे ही बुद्धिमानोंका सदाचारके लिये प्रयत्न होता है।

गृहस्थ-आश्रममें जिस प्रकार सदाचारका पालन होता है, वैसा दूसरे आश्रममें नहीं। इसलिये विद्याध्ययन पूर्ण करके अन्तमें गृहस्थ-आश्रमकी शरण लेनी चाहिये। यदि पत्नी अपने अधीन रहनेवाली हो तो गृहस्थ-आश्रमसे बढ़कर दूसरा कोई आश्रम नहीं है। पति और पत्नीकी अनुकूलता धर्म, अर्थ तथा कामकी प्राप्ति करानेवाली होती है। यदि स्त्री अपने अनुकूल रहनेवाली हो तो स्वर्गको लेकर भी क्या करना है और यदि पत्नी अपनेसे विपरीत चलनेवाली हो तब तो उसके सामने नरक भी किस गिनतीमें है? कार्यकुशल, पुत्रवती, पतिव्रता, मीठे वचन बोलनेवाली और अपने अधीन रहनेवाली—इन गुणोंसे युक्त पत्नी वस्तुतः स्त्रीके रूपमें साक्षात् लक्ष्मी है*। विद्याध्ययन समाप्त होनेपर ब्रह्मचारी गुरुकी आज्ञासे ब्रह्मचर्य-व्रतका उद्यापन करके स्नातक होकर अपने ही वर्णकी शुभ-लक्षणा स्त्रीके साथ विवाह कर ले। वह स्त्री अपने पिताके गोत्रकी न हो और माताकी सपिण्ड न हो। विवाह-सम्बन्धमें ऐसे कुलका परित्याग कर दे, जिसमें मृगीरोग, राजयक्ष्मा-रोग और कोढ़का रोग होता हो। जिस कुलमें किसी प्रकारका कलङ्क लगा हो, उसको भी त्याग दे। जिससे केवल कन्या ही होनेकी सम्भावना हो, ऐसी स्त्रीसे विवाह न करे। जिसके कोई रोग न हो, जिसके भाई हों, जो अपनेसे कुछ छोटी हो, जिसका मुख सौम्य हो और जो मीठे वचन बोलनेवाली हो, ऐसी स्त्रीके साथ द्विजको विवाह करना चाहिये। पर्वत, भालू, वृक्ष, नदी, सर्प, पक्षी, नाग और दास आदिका बोध करानेवाले नामोंसे युक्त स्त्रीके साथ विवाह न करे। जिसका नाम सौम्य हो, उसीसे विवाह करे। जिसके कोई अङ्ग अधिक या कम हों, जो बहुत बड़ी अथवा अत्यन्त दुबली हो, बिना रोमकी अथवा अधिक रोमवाली हो तथा जिसके केश रूखे एवं मोटे (चिपके हुए) हों, ऐसी स्त्रीके साथ भी विवाह न करे। मोहवश नीच कुलकी कन्यासे तो कभी विवाह न करे; क्योंकि हीन कुलकी कन्याके साथ विवाह करनेसे अपनी सन्तान भी हीनताको प्राप्त होती है। पहले कन्याके लक्षणोंकी परीक्षा करके तदनन्तर उसके साथ विवाह करे। उत्तम लक्षणोंवाली तथा सदाचारका पालन करनेवाली पत्नी पतिकी आयु बढ़ाती है। अगस्त्यजी! इस प्रकार मैंने आपसे ब्रह्मचारियोंके सदाचारका वर्णन किया है।

गृहस्थ-आश्रमके धर्म, पञ्चयज्ञकी महिमा, काशीवासकी महत्ता तथा राजा दिवोदासको पृथ्वीके राज्यकी प्राप्ति

स्कन्दजी कहते हैं—यदि स्त्री शुभलक्षणा हो तो गृहस्थ पुरुष सदा सुख भोगता है। अतः सुखकी वृद्धिके लिये पहले स्त्रीके लक्षणोंकी ही परीक्षा करे। शरीर, आवर्त, गन्ध, छाया (कान्ति), सत्त्व, स्वर, गति और वर्ण—विद्वानोंद्वारा स्त्रीके लक्षणोंकी परीक्षाके लिये यह आठ प्रकारका आधार बताया गया है। (सामुद्रिक शास्त्रीय) उत्तम लक्षणोंसे युक्त होनेपर भी जिसने अपना शील (सतीत्व) दूषित कर लिया हो, वह कुलक्षणा स्त्रियोंकी शिरोमणि है तथा जो बाह्य शुभ लक्षणोंसे युक्त न होनेपर भी सती-साध्वी है, उसे समस्त शुभ लक्षणोंका आधार मानना चाहिये। भगवान् विश्वनाथकी कृपासे ही गृहस्थके घरमें शुभलक्षणा, सदाचारिणी, पतिके अधीन रहनेवाली और पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है। जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम तीर्थोंमें अपने शरीरको क्षीण किया अथवा छोड़ा है, वे ही इस जगत्में शुभलक्षणा स्त्री होती हैं। जिन स्त्रियोंने जगन्माता पार्वतीजीका पूजन किया है, वे ही सदाचारिणी होती हैं। जिनका पति उनके गुणोंसे रीझकर उनके अनुकूल बना रहता है तथा जो उत्तम शील-स्वभाववाली हैं, ऐसी मृग-नयनी स्त्रियोंके लिये यहीं स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) सुलभ है। वह उनके उत्तम लक्षणोंका ही फल है। स्त्रियाँ अपने अच्छे लक्षणों और विशुद्ध आचरणोंसे अल्पायु पतिको भी दीर्घायु एवं आनन्दका भागी बना देती हैं। अतः सुलक्षणा स्त्रीसे विवाह करना चाहिये।

गृहस्थ-आश्रममें रहनेवाले पुरुषके द्वारा प्रतिदिन पाँच प्रकारकी हिंसाएँ होती हैं। ओखली, चक्की, चूल्हा, जलका घड़ा और झाड़ू—ये पाँचों हिंसाके स्थान हैं। ऐसी हिंसाओंका निराकरण करनेके लिये पाँच यज्ञ बताये गये हैं, जो गृहस्थके कल्याणकी वृद्धि करनेवाले हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ। वेद और शास्त्रोंके पठन-पाठनका नाम ब्रह्मयज्ञ

---

* दक्षा प्रजावती साध्वी प्रियवाक्च वशंवदा। गुणैरेभिः संयुक्ता सा श्रीः स्त्रीरूपधारिणी॥

(स्क० पु० का० पू० ३६। ८७)

है। तर्पणको पितृयज्ञ कहते हैं। होम देवयज्ञ, बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ और अतिथि-सत्कार मनुष्ययज्ञ है। जिसके घरसे आदर न पाकर अतिथि निराश लौट जाता है, वह जन्म-भरके सञ्चित पुण्यसे तत्काल हाथ धो बैठता है *। अतः आये हुए अतिथिकी प्रसन्नताके लिये सान्त्वना-पूर्ण मधुर वचन, सोनेके लिये स्थान, आसन और जल आदि वस्तुएँ तो सदा देनी ही चाहिये। सायंकालमें सूर्यास्तके समय आये हुए अतिथिका यत्नपूर्वक सत्कार करना चाहिये। सत्कार न पाकर यदि वह अन्यत्र चला जाता है, तो अधिक पाप प्रदान करता है। जो अतिथिको भोजन करानेसे बचे हुए अन्नको स्वयं ग्रहण करता है, वह इस लोकमें दीर्घायु और धनवान् होता है। अतिथिको हटाकर स्वयं भोजन करनेवाला गृहस्थ पापका भागी होता है। वैश्वदेवकर्मके अन्तमें और सूर्यास्तके समय जो आता है, वही अतिथि है। जो पहलेका आया हो अथवा कहींका देखा हुआ (परिचित) हो, वह अतिथि नहीं है। छोटे बालक, (वृद्ध,) स्ववासिनी (पिताके घरमें रहनेवाली स्त्री), गर्भवती और अत्यन्त रोगी स्त्री-पुरुषोंको अतिथिसे पहले भी भोजन कराया जा सकता है। इसमें विचार नहीं करना चाहिये। देवता, पितर और मनुष्योंको देकर खानेवाला गृहस्थ अमृतभोजन करता है। जो केवल अपना पेट पालनेवाला है और अपने ही लिये रसोई बनाता है, वह मनुष्य पापमय भोजन करता है †। शूद्रको कभी वैदिक मन्त्रका श्रवण नहीं कराना चाहिये। उसे वेद-मन्त्रका श्रवण करानेपर ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे और शूद्र अपने धर्मसे गिर जाता है। ब्राह्मण आदि वर्णोंकी सेवा ही शूद्रोंका परम धर्म माना गया है। सदा मङ्गलमय वचन ही बोले, सबके मङ्गलका ही चिन्तन करे, कल्याणमय महापुरुषोंका ही सङ्ग करे, अमङ्गलकारी दुष्टोंका साथ कभी न करे ‡। बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह रूप, धन और कुलसे हीन मनुष्योंपर कभी आक्षेप न करे। मन, वाणी और जिह्वाके वेगको रोके। घूस, जुवा, दूतीपन और पीड़ित मनुष्यके धनको दूरसे ही त्याग दे। इस प्रकार देव ऋषि और पितरोंके ऋणसे उऋण होकर घरका सारा का भार पुत्रको सौंप दे और स्वयं घरपर तटस्थ होकर रहे। घर रहकर भी ज्ञानका अभ्यास करे अथवा काशीकी शरण ले क्योंकि सम्यग्ज्ञानसे मुक्ति प्राप्त होती है अथवा विश्वनाथपु काशीमें मुक्ति मिलती है। आज, कल, परसों अथवा सौ व बाद मृत्यु निश्चित है, शरीर शीघ्र जानेवाला है, अतः य वह काशीमें मृत्युको प्राप्त हो, तो मनुष्य अमृत (मुक्त) जाता है। सदाचारी पुरुषको ही सदाके लिये काशी सुल होती है। अतः विद्वान् पुरुष मनसे भी सदाचारका उल्लङ्घन करे। बड़ा भारी उपद्रव आनेपर भी जो काशीसे विलग होने दे, वही महायोग है। अन्य जितने योग हैं, वे स उपयोग हैं। भगवान् विश्वनाथको जो नियमपूर्वक शु हृदयसे पत्र, पुष्प, फल और जल अर्पण किया जाता है, व यहाँ महादान ही है। भगवान् विश्वनाथके दक्षिण भाग बैठकर हृदयमें उनका चिन्तन करते हुए जो क्षणभरके लि नेत्र बंद किया जाता है, यही उत्तम महायोग है।

एक समयकी बात है। प्रजापति ब्रह्माजीने राजर्षियों श्रेष्ठ राजा रिपुञ्जयको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। रिपुञ्जय अविमुक्त नामक महाक्षेत्रमें मन, इन्द्रियोंको वशमें करके तपस्या कर र थे। उनका जन्म राजा मनुके वंशमें हुआ था। वे वीर तो ही, मूर्तिमान् क्षत्रियधर्मकी भाँति प्रकट हुए थे। उनके समी जाकर ब्रह्माजीने कहा—'महामते! तुम समुद्र, पर्वत औ

* अनर्चितोऽतिथिर्गेहाद् भग्नाशो यस्य गच्छति।
आजन्मसञ्चितात्पुण्यात् क्षणात् स हि बहिर्भवेत्॥
(स्क० पु० का० पू० ३८। २९)

† कुमाराश्च स्ववासिन्यो गर्भिण्योऽतिरुजान्विताः।
अतिथेरादितोऽप्येते भोज्या नात्र विचारणा॥
पितृदेवमनुष्येभ्यो दत्त्वाश्नात्यमृतं गृही।
स्वार्थं पचन्नघं भुङ्क्ते केवलं स्वोदरंभरिः॥
(स्क० पु० का० पू० ३८। ३६-३७)

‡ भद्रमेव वदेन्नित्यं भद्रमेव विचिन्तयेत्।
भद्रैरेवेह संसर्गो नाभद्रैश्च कदाचन॥
(स्क० पु० का० पू० ३८। ८४)

वनोंसहित समूची पृथ्वीका पालन करो। नागराज वासुकि तुम्हें पत्नी बनानेके लिये नागकन्या अनङ्गमोहिनीको देंगे। देवता भी प्रतिक्षण तुम्हारे प्रजापालनसे सन्तुष्ट होकर तुम्हें स्वर्गीय रत्न और पुष्प प्रदान करते रहेंगे। इसलिये 'दिवो दास्यन्ति' इस व्युत्पत्तिके अनुसार तुम्हारा नाम 'दिवोदास' होगा। राजन्! मेरे प्रभावसे तुम्हें दिव्य सामर्थ्यकी प्राप्ति होगी।'

ब्रह्माजीकी बात सुनकर राजाओंमें श्रेष्ठ रिपुञ्जयने नकी अनेक प्रकारसे स्तुति की और इस प्रकार हा—पितामह! मनुष्योंसे भरे हुए इस भूतलपर क्या दूसरे जालोग नहीं हैं? मुझे ही ऐसी आज्ञा क्यों मिल रही है?

ब्रह्माजीने कहा—राजन्! तुम राज करोगे तो इन्द्रदेव पर वर्षा करेंगे। दूसरा कोई पापनिष्ठ राजा राज्य करेगा, वर्षा नहीं करेंगे।

जा बोले—महामान्य पितामह! आप स्वयं ही तीनों रक्षा करनेमें समर्थ हैं, तो भी आप मुझे जो यह यश है, यह आपका मेरे ऊपर महान् प्रसाद है। अतः मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ। परन्तु मुझे भी कुछ आपसे निवेदन करना है। यदि मेरे लिये मेरी इस प्रार्थनाको आप स्वीकार कर लेंगे, तो मैं भूतलका अकण्टक राज्य करूँगा।

ब्रह्माजीने कहा—राजन्! तुम्हारे मनमें जो बात है, उसे शीघ्र कहो।

राजा बोले—पितामह! यदि मैं पृथ्वीका अधिपति होऊँ, तो देवलोकके निवासी देवगण अपने ही लोकमें ठहरें, भूलोकमें न आवें। जब देवता देवलोकमें रहेंगे और मैं इस पृथ्वीपर निवास करूँगा, तब यहाँ अकण्टक राज्य होनेसे प्रजावर्गको सुखकी प्राप्ति होगी।

'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजीने जब उनकी प्रार्थना स्वीकार की, तब राजा दिवोदासने डंका बजाकर राज्यमें यह घोषणा करवा दी कि 'देवतालोग स्वर्गको चले जायँ और नागगण भी यहाँ कभी न आयें, जिससे मनुष्य स्वस्थ एवं सुखी रहें। पृथ्वीपर मेरे राज्य-शासनकालमें देवता स्वर्गमें सुखी रहें और मनुष्य पृथ्वीपर स्वस्थ रहें।'

गृहस्थोचित शिष्टाचार और धर्म

कन्दजी कहते हैं—महामते कुम्भज! अपनेको प्रदान करनेवाले इस अविमुक्त क्षेत्र (काशी) की जिस प्रकार सम्भव है, उसे मैं बतलाता हूँ। पुण्य- मनोवाञ्छित वस्तुकी प्राप्ति होती है और वह पुण्य मार्गके सेवनसे उपलब्ध होता है। जो वैदिक मार्गका करता है, उसके स्पर्शमात्रसे अवसर पाकर मनुष्यपर रनेकी इच्छा रखनेवाले कलि और काल दोनों नष्ट हो हैं। निषिद्ध कर्मोंके सेवन और विहित कर्मोंके छिद्र देखकर कलि और काल ब्राह्मणको नष्ट कर देते प्याज, लहसुन, लसोड़ेका फल (लहेसुवा), गाजर, दस भीतर ब्यायी हुई गौका दूध और धरतीका फूल—इन सबको देना चाहिये। वृक्ष काटनेसे निकलनेवाले गोंद, देवता- को निवेदन किये बिना खीर, पूआ और पूड़ी तथा बिना की गायका दूध—ये सब त्याग देने चाहिये। एक खुरके का दूध त्याज्य है। ऊँटनी और भेड़का दूध भी नहीं करना चाहिये। रातमें दही नहीं खाना चाहिये। ीका सर्वथा त्याग करना चाहिये। आयु तथा स्वर्गकी इच्छा नेवालेको यत्नपूर्वक मांसका त्याग करना चाहिये। बासी सभी त्याग देने योग्य है, परंतु घीका बना हुआ बासी भी ग्राह्य है। जो अज्ञानी अपने शरीरकी पुष्टिके लिये जीवोंकी हत्या करता है, उस दुराचारीको न तो इस कमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही। जो मांस खाता जो जीवोंको मारनेकी अनुमति देता है, जो मांस पकाता है, जो उसको खरीदता और जो बेचता है, जो अपने हाथसे मारता है, जो बाँटता-परोसता है तथा जो आज्ञा देकर जीवहिंसा कराता है—ये आठ प्रकारके मनुष्य हिंसक माने गये हैं।* जो सौ वर्षोंतक प्रत्येक वर्षमें अश्वमेध यज्ञद्वारा यजन करता है तथा जो मांस-भक्षण नहीं करता है, इन दोनोंकी परस्पर तुलना की जाय, तो मांसका त्याग करनेवाला ही श्रेष्ठ सिद्ध होता है†। सुखकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह जैसे अपने आपको सुखी देखना चाहता है, उसी प्रकार दूसरेको भी देखे। अपने और दूसरेमें बराबर ही सुख-दुःख होते हैं। दूसरे किसी जीवको जो सुख या दुःख दिया जाता है, वह सब पीछे चलकर अपने- पर ही संघटित होता है। क्लेश उठाये बिना धन नहीं मिलता और धनके बिना कार्य कैसे हो सकते हैं। जो कर्म नहीं कर सकता, उसके द्वारा धर्मका अनुष्ठान कैसे सम्भव होगा और जो धर्महीन है, उसे सुख कहाँसे मिलेगा। सुखकी

* यो जन्तूनात्मपुष्ट्यर्थं हिनस्ति ज्ञानदुर्बलः।
दुराचारस्य तस्येह नामुत्रापि सुखं क्वचित्॥
भोक्तानुमन्ता संस्कर्ता क्रयिविक्रयिहिंसकाः।
उपहर्ता घातयिता हिंसकाश्चाष्टधा स्मृताः॥
(स्क० पु० का० पू० ४०। २१-२२)

† प्रत्यब्दमश्वमेधेन शतं वर्षाणि यो यजेत्।
अमांसभक्षको यश्च तयोरन्यो विशिष्यते॥
(स्क० पु० का० पू० ४०। २३)

अभिलाषा सभी रखते हैं। परंतु सुख धर्मसे ही प्राप्त होता है। अतः चारों वर्णोंके मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने धर्मका पालन करना चाहिये। न्यायोपार्जित द्रव्यसे पारलौकिक कर्म करना चाहिये और उसीसे उत्तम देश, काल और पात्रमें विधि एवं श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। जो अपने धनद्वारा माता-पितासे हीन बालकोंका यज्ञोपवीत और व्याह आदि संस्कार करवाता है, उसे अक्षय कल्याणकी प्राप्ति होती है। गायको पेन्हानेमें बछड़ेका मुख पवित्र है और फल गिरानेमें पक्षीकी चोंच पवित्र मानी गयी है। बकरे और घोड़ेका मुख पवित्र है। गौएँ पीठकी ओरसे शुद्ध मानी गयी हैं तथा ब्राह्मणों- के चरण पवित्र हैं। यदि किसीने स्त्रीसे बलात्कारपूर्वक भोग कर लिया हो अथवा वह चोरके हाथमें पड़ गयी हो तो भी अपनी प्रिय पत्नीका परित्याग नहीं करना चाहिये। उसके त्यागका विधान नहीं है *। खटाईसे ताँबेके पात्रकी शुद्धि होती है, राखसे काँसेका बर्तन शुद्ध होता है, पत्नी रजोधर्मसे शुद्ध होती है और नदी प्रवाहसे पवित्र होती है। जो मनसे भी यहाँ पर-पुरुषका चिन्तन नहीं करती, वह स्वर्गलोकमें पार्वतीजीके साथ सुख भोगती है और इस लोकमें भी सुयश- की भागिनी होती है।†

पिता, पितामह, भ्राता, कुलका कोई भी पुरुष तथा माता—ये क्रमशः कन्यादानके अधिकारी हैं। इनमें पहले- पहलेके न रहनेपर दूसरा-दूसरा कन्यादान कर सकते हैं। कुलमें कोई भी कन्यादाता न हो तो कन्या स्वयं ही किसी योग्य पतिको वरण कर सकती है। अनिच्छापूर्वक बलात्कार हो जानेसे ऋतुकालमें स्त्रीकी शुद्धि हो जाती है। स्त्रियोंके सत्कारका अवसर आनेपर तथा उत्सवोंमें उन्हें वस्त्र-आभूषण और उत्तम अन्न आदि देकर सदा सम्मानित करना चाहिये। जहाँ भूषण, वस्त्र और अन्न आदिसे पूजित होकर स्त्रियाँ प्रसन्न रहती हैं, वहाँ सब देवता सुखपूर्वक निवास करते हैं और वहाँ किये हुए समस्त सत्कर्म सफल होते हैं। जिस घरमें पतिसे पत्नी और पत्नीसे पति सन्तुष्ट रहते हैं, वहाँ पग- पगपर कल्याणकी प्राप्ति होती है *। अहुत, हुत, प्रहुत, प्राशित तथा ब्राह्महुत—ये पाँच यज्ञ शुभ बताये गये हैं। इनमें जपको अहुत यज्ञ कहते हैं, होमका नाम हुत है, बलिवैश्वदेवको प्रहुत यज्ञ कहते हैं, पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्ध आदि करना प्राशित यज्ञ है और ब्राह्मणोंका सत्कार करके उनको भोजन कराना ब्राह्महुत यज्ञ कहलाता है। इन पाँचों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला ब्राह्मण कभी दुखी नहीं होता और इनके न करनेसे वह पाँच प्रकारकी हिंसाका भागी होता है।

ब्राह्मणके साथ समागम होनेपर उससे कुशल पूछे, क्षत्रियसे अनामय (स्वास्थ्य) पूछे, वैश्यसे सुख और शूद्रसे सन्तोष पूछे। जो अपने द्वारा पोषण करने योग्य कुटुम्बी और सेवक आदि हैं, उनका पालन-पोषण लौकिक और पारलौकिक दोनों फलोंका देनेवाला है और यदि उनका पालन नहीं किया जाय तो पाप होता है। अतः प्रयत्नपूर्वक उनके भरण-पोषणमें तत्पर रहना चाहिये। माता, पिता, गुरु, पत्नी, सन्तान, शरणागत व्यक्ति, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि—ये नौ पोष्यवर्गके अन्तर्गत हैं। जो पुरुष इस लोकमें अनेक व्यक्तियोंकी जीविका चलाता है, उसीका जीवन सफल है। जो केवल अपना ही पेट भरता है, वह जीते-जी मृतकके तुल्य जानने योग्य है। जो देवता, पितर आदि सबको उनका यथा- योग्य भाग अर्पण करता है, दयावान्, सुशील, क्षमाशील और देवता एवं अतिथियोंका भक्त है, वह गृहस्थ धार्मिक माना गया है। रातके मध्यमें जो दूसरे और तीसरे प्रहर हैं, उनमें ही जो सोता और यज्ञशेष अन्नका भोजन करता है, वह ब्राह्मण कभी दुखी नहीं होता। अभ्यागतके आनेपर गृहस्थको सदा ये नौ बातें करनी चाहिये, जो अमृतके समान मङ्गलकारक हैं—सौम्य वचन, सौम्य दृष्टि, सौम्य मन, सौम्य मुख, उठकर स्वागत करना, 'आइये-बैठिये' ऐसा कहना, स्नेहपूर्वक वार्तालाप करना, अतिथिके समीप बैठकर उसकी सेवा करना और जब वह जाने लगे तो उसके पीछे-पीछे पहुँचानेके लिये कुछ दूरतक जाना। ये नौ बातें गृहस्थकी उन्नति करनेवाली हैं। इसके सिवा जिनके करनेमें बहुत कम खर्च हैं, ऐसी नौ बातें और हैं, जो अवश्य करने योग्य हैं—अभ्यागतको आसन देना, उसके पैर धोना, उसे

---

* बलात्कारोपभुक्ता वा चौरहस्तगतापि वा।
न त्याज्या दयिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते॥
(स्क० पु० का० पू० ४० । ४७)

† मनसापि हि या नेह चिन्तयेत् पुरुषान्तरम्।
सोमया सह सौख्यानि भुङ्क्ते चात्रापि कीर्तिभाक्॥
(स्क० पु० का० पू० ४० । ४०)

* यत्र तुष्यति भर्त्रा स्त्री स्त्रिया भर्ता च तुष्यति।
तत्र वेश्मनि कल्याणं सम्पद्येत पदे पदे॥
(स्क० पु० का० पू० ४० । ६०)

और परलोकमें भी बढ़ता है। श्रेष्ठ द्विज स्नान करके जलद्वारा जो पितरोंका तर्पण करता है, उसीसे पितृयज्ञका सारा फल पा लेता है। जो यज्ञकर्ममें संलग्न हैं, किसी यज्ञ या मन्त्रकी दीक्षा ले चुके हैं अथवा जो संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा कर्म करनेवाले ऋत्विज् हैं, उनको सूतक नहीं लगता। श्मशान वृक्ष, चिता, यूप और शिवनिर्माल्य भोजन करनेवाले तथा वेद बेचनेवालेका स्पर्श कर लेनेपर वस्त्रसहित जलमें प्रवेश करके स्नान करे। अग्निशाला, गोशाला, देवता और ब्राह्मणके समीप तथा स्वाध्याय, भोजन और जलपानके समय खड़ाऊँ और जूते उतार देने चाहिये। धर्मशास्त्ररूपी रथपर चढ़े हुए और वेदरूपी खड्ग धारण करनेवाले ब्राह्मण खिलवाड़में भी जो कुछ कह दें, वह सब परम धर्म माना गया है। नीलमें रँगा हुआ वस्त्र दूरसे ही त्याग देना चाहिये। नीलके पालन, विक्रय और उसकी वृत्तिसे जीविका चलानेमात्रसे ब्राह्मण अपवित्र हो जाता है और तीन कृच्छ्र व्रत करनेपर उसकी शुद्धि होती है। जो नीलका रँगा हुआ वस्त्र पहनता है, उसके स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण और पञ्च महायज्ञ—ये सभी व्यर्थ हो जाते हैं। ब्राह्मण जब अपने अङ्गोंपर नीलका रँगा वस्त्र धारण कर लेता है, तब वह उस वस्त्रके ताने-बानेमें जितने सूत लगे हैं, उतने नरकोंमें निश्चय ही निवास करता है*। एक दिन-रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे उसकी शुद्धि होती है। नीलके रँगे वस्त्र धारण करके जो रसोई बनायी जाती है, उस अन्नको जो खाता है, वह मानो विष्ठा भोजन करता है। वह अन्न देनेवाला यजमान नरकमें जाता है।†

बलिवैश्वदेव, होम, देवपूजा, जप तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंद्वारा संस्कृत होनेसे ब्राह्मणका अन्न अमृत कहा गया है। व्यवहारके अनुरूप, न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए जिस अन्नका उपार्जन किया जाता है, वह क्षत्रियका अन्न दूधके समान है। यदि वैश्य सीता-यज्ञकी विधिके अनुसार एक पहरतक जोते जानेवाले बैलोंसे अन्न उत्पन्न करके देता है, तो उसके द्वारा संस्कृत अन्न वास्तवमें अन्न कहा गया है। श्रेष्ठ मनुष्य छोटी-छोटी बातके लिये शपथ न करे। व्यर्थ शपथ करनेवाला मनुष्य इहलोक और परलोकमें भी नष्ट होता है। विद्वान् पुरुष यमराजको यमराज नहीं कहते, अपना मन ही यमराज कहलाता है। जिसने अपने मनको वशमें कर लिया है, उसका यमराज क्या कर लेगा? क्षमावाले पुरुषोंके लिये एक ही दोष है कि संसारके लोग उस क्षमाशील मनुष्यको असमर्थ (दुर्बल) मानते हैं। जो सदा एकान्तमें रहनेवाला, देवताकी आराधनामें तत्पर, सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी प्रीतिसे दूर रहनेवाला तथा स्वाध्याययोगमें मनको लगाये रखनेवाला है और जो कभी भी किसी जीवकी हिंसा नहीं करता, ऐसे पुरुषको निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति होती है‡। परंतु काशीमें इन गुणोंके बिना भी सहज ही मुक्ति हो जाती है। वहाँ भगवान् विश्वनाथकी सेवा ही योग है, काशीवास ही तपस्या है, उत्तरवाहिनी गङ्गामें स्नान ही व्रत, दान, यम और नियमका पालन है।

जो न्यायसे धनका उपार्जन करता है, तत्त्वज्ञानमें स्थित है, अतिथियोंको प्यार करनेवाला है तथा श्राद्धकर्ता और सत्यवादी है, वह गृहस्थ होकर भी इस जगत्‌में मुक्त हो जाता है। गृहस्थ पुरुष दीनों, अन्धों, दरिद्रों एवं याचकोंको विशेषरूपसे अन्न-दान करके गृह-कर्मोंका अनुष्ठान करता रहे, तो वह कल्याणका भागी होता है। इस प्रकार सदाचारका पालन करनेवाले पुरुषोंपर काशीनाथ भगवान् विश्वनाथ प्रसन्न होते हैं और उनके प्रसादसे मोक्षदायिनी काशीपुरीकी प्राप्ति होती है।

---

* स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्। वृथा तस्य महायज्ञा नीलीवासो बिभर्ति यः॥
नीलीरक्तं यदा वस्त्रं विप्रः स्वाङ्गेषु धारयेत्। तन्तुसन्ततिसंख्याके नरके स वसेद् ध्रुवम्॥
(स्क० पु० का० पू० ४० । ४४-४५)

† नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपकल्पयेत्। भोक्ता विष्ठासमं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत्॥
(स्क० पु० का० पू० ४० । ४७)

‡ एकान्तशीलस्य सदैव तस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य।
स्वाध्याययोगे गतमानसस्य मोक्षो ध्रुवं नित्यमहिंसकस्य॥
(स्क० पु० का० पू० ४० । ६१)

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमके धर्मका वर्णन, योगमार्गका निरूपण

स्कन्दजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार गृहस्थ आश्रममें धर्मपालनपूर्वक निवास करके जब सिरके बाल पक जायँ और मुँहपर झुर्रियाँ पड़ जायँ, तब दूसरे आश्रमसे तीसरे आश्रम (वानप्रस्थ) में प्रवेश करे एवं ग्रामीण विषय-भोगोंका त्याग करके पत्नीको पुत्रोंके संरक्षणमें सौंपकर या पत्नीको भी साथ ही लेकर वनमें जाय। मृगचर्म एवं पुराने वस्त्र धारण करे, मुनियोंके अन्नसे निर्वाह करते हुए प्रतिदिन अग्निमें आहुति दे, सिरपर जटा धारण करे। मूँछ-दाढ़ी न कटावे, नख और लोम धारण किये रहे तथा नित्य सायंकाल और प्रातःकाल स्नान करे। शाक और मूल-फल आदिसे जीवननिर्वाह करते हुए भी कभी पञ्चयज्ञोंका त्याग न करे। जल, मूल और फलकी भिक्षासे भिक्षुकों एवं अतिथियोंका सत्कार करे। किसीसे दान न ले। स्वयं ही दूसरोंको दान दे एवं मन और इन्द्रियोंको संयममें रक्खे। सद्ग्रन्थोंके स्वाध्यायमें तत्पर रहे। वैतानिक अग्निहोत्रका विधिपूर्वक हवन करे। स्वयं लाये हुए मुनिजनोचित अन्नद्वारा देवताओंके लिये यज्ञभाग अर्पित करे। लसौड़ा, लसोहा, सहजन, धरतीका फूल, मांस और मधु—इन सबको कभी काममें न ले। आश्विन मासमें पहलेके सञ्चित किये हुए मुनि-अन्न (तिन्नीके चावल) को भी त्याग दे। गाँवोंमें पैदा होनेवाले फल-मूल तथा हलसे जोतकर पैदा किये गये अन्नका कभी भोजन न करे। दाँतसे ही ओखलीका काम ले। दाँतोंसे ही चबाकर खाय अथवा पत्थरपर कूट ले। संग्रह उतना ही करे, जो तत्काल खा-पीकर साफ हो जाय अथवा एक मासके लिये भोजनका संग्रह कर सकता है, अथवा तीन मास, छः मास या अधिक-से-अधिक बारह मासतकके लिये अन्न और फल-मूल आदिका संग्रह करे। प्रतिदिन एक बार केवल रातमें ही भोजन करे अथवा एक दिनका अन्तर देकर भोजन करे अथवा दो दिनका अन्तर देकर तीसरे दिनकी सन्ध्याको भोजन करे या चान्द्रायणव्रत करता रहे अथवा पंद्रह दिन या एक मासपर भोजन किया करे अथवा वानप्रस्थ पुरुष सदा फल-मूलका ही भोजन करते हुए तपस्यासे अपने शरीरको सुखावे और प्रतिदिन देवताओं तथा पितरोंको तृप्त करे। ऐसा सम्भव न हो तो अग्निदेवको अपने आत्मामें ही भावनाद्वारा स्थापित करके अपने लिये कोई भी आश्रम न बनाकर विचरता रहे और प्राणयात्राके लिये वनवासी तपस्वियोंसे भिक्षा माँग ले अथवा गाँवमेंसे ही भिक्षा माँगकर लावे और वनमें ही रहकर प्रतिदिन आठ ग्रास भोजन करे। इस प्रकार वानप्रस्थ-आश्रममें स्थित हुआ ब्राह्मण ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। आयुका तीसरा भाग वानप्रस्थ-आश्रममें व्यतीत करके आयुके चौथे भागमें सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके संन्यास ले ले। यज्ञके द्वारा देवऋण, अध्ययनके द्वारा ऋषिऋण और तर्पण आदिके द्वारा पितृऋणको उतारे बिना पुत्रकी उत्पत्ति किये बिना तथा यज्ञोंका अनुष्ठान किये बिना संन्यास नहीं लेना चाहिये। इस लोकमें किसी भी प्राणीको जिससे थोड़ा भी भय न होता हो, उसे सब प्राणी यहाँ सदा अभय प्रदान करते हैं। अग्नि और गृहसे रहित हो सदा अकेला ही विचरता रहे। मोक्षकी सिद्धिके लिये दूसरेकी सहायतासे रहित अकेला रहे। केवल अन्नकी भिक्षाके लिये गाँवमें जाना चाहिये। संन्यासी न तो जीनेकी इच्छा करे न तो मरनेकी ही। जैसे सेवक अपने स्वामीके आदेशकी प्रतीक्षा करता है, वैसे ही संन्यासी मृत्युकालकी प्रतीक्षा करता है। जो कहीं भी ममता नहीं रखता और सर्वत्र समताके भावसे युक्त रहता है, वृक्षके नीचे ही जो सो लेता है, वही मुमुक्षु इस लोकमें प्रशंसित होता है। प्रतिदिन ध्यान लगाना, बाहर और भीतरसे पवित्र रहना, भिक्षा लाना और नित्य एकान्तमें रहना—ये ही चार कर्म संन्यासीके हैं। इनसे भिन्न कोई पाँचवाँ कर्म नहीं है *। वर्षाके चार महीनोंमें संन्यासी कहीं विचरण न करे; क्योंकि उस समय यात्रा करनेसे नूतन बीजके अङ्कुरों और जीव-जन्तुओंकी हिंसा होती है। संन्यासी जीव-जन्तुओंको बचाते हुए चले, वस्त्रसे छानकर जल पीये, उद्वेगरहित वचन बोले, कभी किसीके साथ क्रोधपूर्ण बर्ताव न करे, अपने आत्माके साथ विचरे, किसीसे कोई अपेक्षा न रक्खे, अपने लिये कोई घर अथवा आश्रय न बनावे, सदा अध्यात्म-चिन्तनमें तत्पर रहे, केश और नख आदिका संस्कार न करे, मन और इन्द्रियोंको वशमें रक्खे, भगवाँ रंगका वस्त्र पहने, दण्ड धारण करे, भिक्षाके अन्नका भोजन करे और अपनी प्रसिद्धि न होने दे। तुम्बी, काठ, मिट्टी अथवा बाँसका पात्र संन्यासीके लिये उत्तम है। इनसे भिन्न किसी

* ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकान्तशीलता।
एतेश्चत्वारि कर्माणि पञ्चमं नोपपद्यते ॥
(स्क० पु० का० पू० ४१। २०)

पाँचवीं वस्तुका पात्र नहीं होना चाहिये। संन्यासीको कभी तैजसपात्र (पीतल, काँसी आदिका बर्तन) नहीं ग्रहण करना चाहिये। 'यति यदि प्रतिदिन कौड़ी-कौड़ीभर भी जहाँ-तहाँसे धन संग्रह करे तो उसे एक सहस्र गौओंके वधका पाप लगता है' यह सनातन श्रुति है। यदि एक दिन भी वह हृदयमें स्नेहभावसे (आसक्तिपूर्वक) किसी स्त्रीको देख ले तो उसे दो करोड़ ब्रह्मकल्पोंतक कुम्भीपाक नरकमें निवास करना पड़ता है, इसमें संशय नहीं *। वह केवल एक समय भिक्षाके लिये विचरण करे, उसमें भी विस्तार न करे। ब रसोईघरमें धुँआ निकलना बंद हो जाय, मूसलसे टनेकी आवाज न होती हो, चूल्हेकी आग बुझ गयी हो ौर घरके सब लोग खा-पी चुके हों, तब संन्यासी गृहस्थके र भिक्षाके लिये जाय। भिक्षाके विषयमें उसे सदा इसी यमका पालन करना चाहिये। जो थोड़ा खाता, एकान्तमें ता, विषयोंके लिये लोलुप नहीं रहता तथा राग-द्वेषसे मुक्त ता है, वही संन्यासी मोक्ष प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। सके घर अथवा आश्रममें कोई संन्यासी दो घड़ी भी श्राम कर ले, वह कृतार्थ हो जाता है। गृहस्थने मृत्यु-न्ति जो पापसञ्चय किया है, ५८ सब पाप संन्यासी एक त उसके घरमें विश्राम करके ही भस्म कर डालता है।

बुढ़ापा सबको दबा लेता है, जिससे असह्य दुःख होता। रोगकी पीड़ा भी सहनी पड़ती है। एक दिन इस शरीरको ाग देना पड़ता है। पुनः गर्भमें आकर जीव अत्यन्त यङ्कर क्लेश भोगता है। अनेक प्रकारकी योनियोंमें वह वास करनेको विवश होता है। उसे कभी प्रियजनोंके वियोगका र कभी अप्रिय जनोंके संयोगका कष्ट प्राप्त होता है। धर्मसे दुःखकी उत्पत्ति होती है, फिर नरकमें निवास ता है और नाना प्रकारकी नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। कर्मदोषके कारण मनुष्योंकी अनेक प्रकारकी गति होती है। यह शरीर अनित्य है और परमात्मा नित्य हैं। इन सब बातोंको देखकर और इसपर भलीभाँति विचार करके, मनुष्य जहाँ कहीं भी जिस आश्रममें भी रहे, मोक्षके लिये प्रयत्न करता रहे। जो बिना पात्रके केवल हाथोंमें ही भिक्षा लेते हैं, वे करपात्री कहलाते हैं। उन्हें अन्य यतियोंकी अपेक्षा प्रतिदिन सौगुना पुण्य होता है। इस प्रकार विद्वान् पुरुष क्रमशः चारों आश्रमोंका सेवन करके द्वन्द्वोंसे रहित एवं असङ्ग होकर ब्रह्मभावको प्राप्त होनेका अधिकारी हो जाता है। खोटी बुद्धिवाले मनुष्योंका वशमें नहीं किया हुआ मन उन्हें बन्धनमें डालनेका कारण होता है और उत्तम बुद्धिवाले पुरुषोंद्वारा वशमें किया हुआ वही मन रोग-शोकसे रहित मोक्षपद दे सकता है। श्रुति, स्मृति, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, भाष्य तथा अन्य जो कुछ भी वाङ्मय है, उसका तथा वेदोंके अनुवचनका ज्ञान प्राप्त करना और ब्रह्मचर्य, तपस्या, दम (इन्द्रियसंयम), श्रद्धा, उपवास तथा स्वाधीनता आदि साधन—ये सभी आत्मज्ञानके हेतु हैं। समस्त आश्रमवर्तियोंके द्वारा एकमात्र आत्मा ही जानने योग्य, श्रवण करने योग्य, मनन करने योग्य तथा यत्नपूर्वक साक्षात्कार करने योग्य है। आत्मज्ञानसे मुक्ति होती है, किंतु वह आत्मज्ञान योगके बिना नहीं होता और योग दीर्घकालतक अभ्यास करनेसे ही सिद्ध होता है। न केवल वनकी शरण लेनेसे, न नाना प्रकारके ग्रन्थोंका चिन्तन करनेसे, न दानसे, न व्रतसे, न तपस्यासे, न यज्ञोंसे, न पद्मासन लगानेसे, न नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये रखनेसे, न शौचसे, न मौनसे और न मन्त्राराधनसे ही योग सिद्ध होता है। उत्साहपूर्वक लगे रहनेसे, निरन्तर अभ्यास करनेसे, दृढ़ निश्चयसे तथा बार-बार उसकी ओरसे अरुचि न होनेसे योगकी सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं। जो सदा अपने आत्मामें ही क्रीडा करता है, आत्मामें ही रत रहता और आत्मामें ही पूर्णतः तृप्तिका अनुभव करता है, उसके लिये योगसिद्धि दूर नहीं है। जो इस जगत्‌में आत्माके सिवा दूसरी किसी वस्तुको नहीं देखता, वह आत्माराम योगीश्वर यहीं परब्रह्मस्वरूप हो जाता है *। आत्मा और मनके संयोगको ही विद्वान्

---

* वराटके संगृह्णीते यत्र तत्र दिने दिने।
गोसहस्रवधं पापं श्रुतिरेषा सनातनी॥
हृदि सस्नेहभावेन चेद् [1] दृश्येत्स्त्रियमेकदा।
कोटिद्वयं ब्रह्मकल्पं कुम्भीपाकी न संशयः॥
(स्क० पु० का० पू० ४१। २५—२७)

१. 'चेत् रक्षेत्' ऐसा पदच्छेद करनेपर ऐसा अर्थ होगा कि, दि संन्यासी कामभावसे एक बार भी अपने हृदयमें किसी स्त्री-रक्खे—उसका चिन्तन करे तो दो करोड़ ब्रह्मकल्पतक उसे कुम्भीपाकमें रहना पड़ता है।'

* अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यो न पश्यति।
आत्मारामः स योगीन्द्रो ब्रह्मीभूतो भवेदिह॥
(स्क० पु० का० पू० ४१। ४०)

पुरुष 'योग' कहते हैं। किन्हीं-किन्हींके मतमें प्राण और अपान वायुका सम्यक् मिलन ही 'योग' है। अज्ञानियोंकी दृष्टिमें विषय और इन्द्रियोंका संयोग ही योग है। परंतु जिनका चित्त विषयोंमें आसक्त है, उनसे ज्ञान और मोक्ष बहुत दूर हैं; क्योंकि जिसका रोकना अत्यन्त कठिन है, वह मनकी वृत्ति जबतक निवृत्त नहीं होती, तबतक योगकी चर्चा कैसे निकटवर्तिनी हो सकती है। जो अपने मनको वृत्तियोंसे शून्य करके उसे क्षेत्रज्ञ परमात्मामें लगाकर एकीभूत कर देता है और स्वयं मनकी आसक्तिसे मुक्त हो जाता है, वह योगयुक्त कहलाता है। समस्त बहिर्मुख इन्द्रियोंको अन्तर्मुख करके उन्हें मनमें स्थापित करे। फिर इन्द्रियसमुदायसहित मनको क्षेत्रज्ञ आत्मामें लगावे। सब भावविकारोंसे रहित क्षेत्रज्ञको परमानन्दस्वरूप ब्रह्ममें एकीभूत करे। यही ध्यान है और यही योग है। शेष जितनी बातें हैं, सब ग्रन्थकी विस्तारमात्र हैं। जो नित्य योगके अभ्यासमें लगा हुआ है, उसके लिये परब्रह्म परमात्मा स्वसंवेद्य (स्वानुभवैकगम्य) होता है। वह सनातन परब्रह्म सूक्ष्म होनेके कारण वाणीद्वारा अथवा किसी सङ्केतके द्वारा भी नहीं बताया जा सकता।

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योगके छः अङ्ग हैं *। साधनके लिये जिससे स्थिरता एवं सुखपूर्वक बैठा जाय, वह आसन है। योगीके लिये सिद्धासन[1] शीघ्र योग-सिद्धि देनेवाला है। इसके अभ्याससे शरीर प्रतिदिन दृढतर होता जाता है। योगवेत्ता पुरुष अपने दाहिने पैरको बायीं जाँघपर रखकर बायें पैरको दाहिनी जाँघपर रक्खे तो उसे पद्मासन कहते हैं। इसे दृढतापूर्वक बाँधनेकी कलाको जाननेवाला पुरुष अपने दोनों हाथोंको पीठके पीछेसे लाकर दोनों पैरोंके अँगूठोंको पकड़ ले। इस पद्मासनके अभ्याससे मनुष्यका शरीर सुदृढ़ होता है। अथवा जिस स्वस्तिक आसनसे बैठनेमें साधकको सुख मालूम होता हो, उसीसे बैठकर योगवेत्ता पुरुष योगका अभ्यास करे।

जो स्थान सब प्रकारकी बाधाओंसे रहित, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको सुख देनेवाला तथा मनको प्रसन्नता देनेवाला हो, जहाँ पुष्पहार एवं धूप आदिकी सुगन्ध छा रही हो, ऐसे स्थानमें बैठकर योगाभ्यास करे। साधक न तो अधिक भोजन करके, न भूखसे पीड़ित रहकर, न मल-मूत्रके वेगको रोककर कष्ट सहते हुए, न राहके थके होनेपर और न चिन्तासे व्याकुल होनेपर ही योगका अभ्यास करे। जितने समयमें एक ह्रस्व अक्षरका उच्चारण होता है, उतने समयको 'एक मात्रा' कहते हैं, ऐसी बारह मात्राओंका प्राणायाम निकृष्ट श्रेणीका माना गया है। इससे दूनी चौबीस मात्राओंका प्राणायाम मध्यम कहा गया है और पहलेसे तीन गुनी अर्थात् छत्तीस मात्राओंका प्राणायाम उत्तम बताया गया है। ये तीनों क्रमशः स्वेद, कम्प और विषाद उत्पन्न करनेवाले हैं। इनमेंसे प्रथम अर्थात् बारह मात्रावाले प्राणायामके द्वारा स्वेद (पसीने) को जीते, द्वितीय अर्थात् चौबीस मात्रावाले प्राणायामके द्वारा कम्पको जीते और तृतीय—छत्तीस मात्रावाले प्राणायामके द्वारा विषादपर विजय पावे। इससे योगीका प्राणायाम सिद्ध हो जाता है। क्रमशः सेवन करनेसे सिद्ध हुआ प्राण जहाँ योगीकी इच्छा होती है, वहाँ उसे ले जाता है। प्राणवायुको यदि हठपूर्वक रोका जाता है, तो वह रोमकूपोंके मार्गसे निकल जाती है, देहको विदीर्ण करती है और कोढ़ आदि रोग पैदा कर देती है। अतः जैसे जंगलके हाथीको क्रमशः विश्वास दिलाकर उसे वशमें किया जाता है, उसी प्रकार प्राणवायुको धीरे-धीरे रोकनेका प्रयत्न करना चाहिये। योगीके द्वारा क्रमयोगसे हृदयमें स्थापित किया हुआ यह प्राण धीरे-धीरे अनुकूल हो जाता है। छत्तीस अंगुलका हंस (प्राणवायु) दक्षिण—वाममार्ग (इडा-पिङ्गला नामवाली दो नाड़ियों) से बाहर निकलता है। प्रयाण करनेके कारण उसे 'प्राण' कहते हैं। जब समस्त नाड़ी-चक्र शान्त होकर शुद्ध हो जाता है, तभी योगी पुरुष अपने प्राणोंको रोकनेमें समर्थ होता है। दृढतापूर्वक आसनपर बैठकर योगी यथाशक्ति चन्द्रनाड़ी—इडाके मार्गसे (नासिकाके वाम छिद्रद्वारा) प्राणवायुको भीतर भरे। तत्पश्चात् सूर्यमार्ग—पिङ्गला नाड़ी (नासिकाके दाहिने छिद्र) से उसे बाहर निकाले। यह पूरक और रेचक नामवाला प्राणायाम कहलाता है। योगी पुरुष कुम्भक नामक प्राणायामके द्वारा चन्द्रबीजसे युक्त झरती हुई सुधा-

* आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट्॥
(स्क० पु० का० पू० ४१।५९)

१. मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रियके बीचमें बायें पैरका तलुआ तथा शिश्नके ऊपर दाहिना पैर और छातीके ऊपर चिबुक (ठोढ़ी) रखकर दोनों भौंहोंके मध्यभागको देखना सिद्धासन कहलाता है।

धाराके प्रवाहका ध्यान करते हुए तत्काल सुखका अनुभव करता है। तदनन्तर योगी सूर्यनाड़ी अर्थात् नासिकाके दक्षिण छिद्रके द्वारा प्राणवायुको खींचकर उदरगुफाको भरे और कुछ देरतक प्राणवायुको रोकनेके पश्चात् चन्द्रनाड़ी अर्थात् नासिकाके वाम छिद्रसे वायुको धीरे-धीरे बाहर निकाल दे। उस समय प्रज्वलित अग्निपुञ्जके समान भगवान् सूर्यका हृदयमें ध्यान करता रहे। इस दक्षिण प्राणायामके द्वारा योगिराज परम कल्याण-का भागी होता है। इस प्रकार तीन महीनेके अभ्याससे वाम, दक्षिण दोनों प्रकारके प्राणायामका सेवन करके जब समस्त नाड़ियोंको सिद्ध कर लिया जाता है, तब उस योगीको 'सिद्ध-ण' कहते हैं। नाड़ीकी शुद्धि होनेसे योगी अपनी इच्छाके ुसार वायुको धारण करता है। पेटकी अग्निको उद्दीप्त ता है। उसे अनाहत नाद सुनायी पड़ने लगता है अथवा तत्त्वका साक्षात्कार होने लगता है और उसका शरीर ेग बना रहता है। शरीरमें स्थित वायुका नाम प्राण है। रोकनेको ही आयाम कहते हैं। जब प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्रमें वती है, तब घण्टा आदि वाद्योंका महानाद सुन पड़ता । फिर योगसिद्धि दूर नहीं रहती। नियमित प्राणायामसे स्त रोगोंका नाश हो जाता है और उसके अनियमित ामसे सब रोगोंकी उत्पत्ति होती है। प्राणवायुके व्यतिक्रम-हिचकी, श्वास (दमा), कास (खाँसी), सिरदर्द, शूल तथा नेत्रपीड़ा आदि बहुतसे दोष प्रकट होते हैं। : थोड़ी-थोड़ी वायुका त्याग करे और थोड़ी-ही-थोड़ी को खींचकर अपने भीतर भरे तथा नियमित वायुको ही नेका प्रयत्न करे। ऐसा करनेसे योगवेत्ता पुरुषको सिद्धि होती है। सब ओर विषयोंमें स्वच्छन्द विचरती हुई ्योंको किसी-न-किसी युक्तिसे विषयोंकी ओरसे समेटना ाहार' कहलाता है। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको सब से समेट लेता है, उसी प्रकार जो प्रत्याहारकी विधिसे ी सब इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे समेट लेता है, वह पाप-हो जाता है। नाभिप्रदेशमें सूर्य और तालुस्थानमें मा निवास करते हैं। चन्द्रमा नीचेको मुख करके ्की वर्षा करते हैं और सूर्य ऊपरकी ओर मुँह करके उस रसको अपना ग्रास बना लेते हैं। अतः ऐसा उपाय चाहिये, जिससे वह अमृत प्राप्त हो सके। ऊपर नाभि और नीचे तालु हो जाय; ऊपर सूर्य हों और नीचे ा हो जायँ। ऐसे साधनको 'विपरीतकरणी मुद्रा' कहते हैं। यह अभ्याससे ही सिद्ध होती है। प्राणायामकी वि जाननेवाला योगी कौवेकी चोंचके समान किये हुए मुखसे शीतल-शीतल प्राणधारक वायुका पान करे, तो जरा-मृत्युसे रहित हो जाता है। जो अपनी जिह्वाको ता छिद्रमें रखकर ऊर्ध्वमुख हो अमृतपान करता है, वह मासके भीतर ही जरा-मृत्युसे रहित देवभावको प्राप्त हो ज है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जो योगी ऊपरकी जिह्वा किये स्थिरतापूर्वक अमृतपान करता है, वह पं दिनमें मृत्युको जीत लेता है। जिह्वाके अग्रभागसे उ मूलभागमें स्थित प्रकाशमान छिद्रको दबाकर जो अमृतम देवीका ध्यान करता है, वह छः महीनेमें कवि हो जाता है जिस योगीका शरीर अमृतसे परिपूर्ण हो जाता है, वह दो तीन वर्षोंमें ऊर्ध्वरेता हो जाता है—उसके वीर्यकी गति ऊप की ओर हो जाती है, जो अणिमा आदि आठों सिद्धियों उदयकी सूचक है। जिस योगीका शरीर सदा अमृतकल परिपूर्ण रहता है, उसे यदि तक्षकनाग भी डँस ले, तो उसप उसके विषका प्रभाव नहीं पड़ता। आसन, प्राणायाम औ प्रत्याहारसे सम्पन्न होकर धारणाका अभ्यास करे। मनक स्थिर करके अपने हृदयमें पृथक्-पृथक् पञ्चमहाभूतोंको जे धारण करना है, उसीको 'धारणा' कहते हैं।

'ध्यै चिन्तायाम्' इस धातुसूत्रके अनुसार ध्यै धातुका प्रयोग चिन्ता अर्थमें होता है। तत्त्वोंमें चित्तकी एकाग्रताको ही 'चिन्ता' कहते हैं। यह चिन्ता ही ध्यान है। ध्यान दो प्रकारका बताया गया है—सगुण और निर्गुण। रूप-रंग आदिके भेद-सहित जो चिन्तन किया जाता है, वह सगुण ध्यान है और केवल तत्त्वका विचार निर्गुण ध्यान माना गया है। मन्त्रसहित ध्यानको सगुण और मन्त्ररहित ध्यानको निर्गुण समझना चाहिये। सुखद आसनपर बैठकर भीतर नि[illegible]को और बाहर नेत्रको स्थिर करके शरीरको समभावसे रखना—यह ध्यानकी मुद्रा है, जो अत्यन्त सिद्धि देनेवाली है। अश्वमेध और राजसूय यज्ञसे भी वह पुण्य नहीं मिलता, जिसे स्थिर आसनवाला योगी पुरुष एक बार ध्यान करके पा लेता है। जबतक श्रवण आदि इन्द्रियोंमें शब्द आदि तन्मात्राओंकी स्थिति बनी रहती है—उनकी स्फूर्ति [illegible] रहती है, तबतक ध्यानकी अवस्था मानी गयी है। [illegible] संयोग [illegible] ही समाधि है। पाँच दण्डतक चित्तका एकाग्र [illegible] न [illegible] साठ दण्डतक चित्त एकाग्र हो तो उस ध्या[illegible] यदि बारह दिनोंतक मन ध्येय वस्तुमें एकाग्र [illegible] समाधि कहते

हैं। जैसे जल और नमकका मेल होनेपर उनमें एकता हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा और मनकी एकता समाधि कहलाती है। जब प्राणजनित चञ्चलता क्षीण हो जाती है और मन ध्येय वस्तुमें विलीन हो जाता है, उस समय जो समरसताका अनुभव होता है, उसीको यहाँ समाधि कहते हैं। जीवात्मा और परमात्माकी जो समता होती है और जहाँ सब प्रकारके सङ्कल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं, उस स्थितिका नाम समाधि है। समाधिमें स्थित हुआ योगीश्वर न अपनेको जानता है न दूसरेको, उसे न सर्दीका अनुभव होता है, न गरमीका तथा उसे न तो सांसारिक सुखका बोध होता है और न दुःखका ही। समाधियुक्त योगीको न तो काल अपना ग्रास बना सकता है, न वह कर्मोंसे लिप्त होता है और न अस्त्र-शस्त्रोंसे उसके शरीरको खण्डित ही किया जा सकता है। जिसका आहार-विहार नियमित है, जिसकी कर्मविषयक चेष्टा भी नियमित है और जिसका सोना-जागना भी नियमित-रूपसे ही होता है, वह योगी तत्त्वका साक्षात्कार करता है*। ब्रह्मवेत्ता पुरुष विज्ञानमय आनन्दस्वरूप ब्रह्मको ही तत्त्व मानते हैं। जिसका कोई दृष्टान्त नहीं है तथा जो मन और वाणीका अगोचर है, उस आलम्बशून्य, निर्भय एवं नीरोग परब्रह्म परमात्मामें योगी पुरुष षडङ्गयोगकी विधिसे लीन होता है। जैसे घीमें छोड़ा हुआ घी घृत ही होता है और दूधमें मिलाया हुआ दूध दूध ही होता है, उसी प्रकार योगी ब्रह्ममें तन्मयताको प्राप्त होता है। योगी विभूति आदि जलहीन वस्तुओंसे शरीर-मर्दन करे। गरम जल और नमकको त्याग दे और सदा दूधका ही आहार करे। ब्रह्मचर्यका पालन करे, क्रोध और लोभको जीते तथा किसी-से भी द्वेष न करे। इस प्रकार एक वर्षतक निरन्तर अभ्यास करनेसे मनुष्य योगी कहलाता है। जो महामुद्रा, खेचरी मुद्रा, उड्डीयान बन्ध, जलन्धर बन्ध और मूल बन्धको जानता है, वह योगी योगसिद्धिका भागी होता है। पूरक, कुम्भक और रेचक नामक प्राणायामसे नाड़ीसमूहको शुद्ध करना और चन्द्र और सूर्य नाड़ी—इडा और पिङ्गलाको जोड़ना तथा विकारके हेतुभूत रसोंको भलीभाँति सुखाना—इसको 'महामुद्रा' कहते हैं। बायें पैरसे जननेन्द्रियको दबाकर अपनी ठोढ़ीको वक्षःस्थलपर रक्खे और दोनों हाथोंसे फैले हुए दाहिने पैरको देरतक पकड़े रहे। फिर प्राणवायुसे अपने उदरको पूर्ण करके धीरे-धीरे उसे देरतक बाहर निकाले। यह महामुद्रा बतायी गयी है, जो बड़े-बड़े पापोंकी राशिका विनाश करनेवाली है। इस प्रकार इडा नाड़ीद्वारा प्राणायामका अभ्यास करके फिर पिङ्गला नाड़ीमें उसका अभ्यास करे। जब पूरक आदिकी संख्या समान हो जाय, तब मुद्राका विसर्जन करे। इसका अभ्यास हो जानेपर योगीके लिये पथ्य और अपथ्य-का विचार नहीं रह जाता है। उसके लिये सभी विकारोत्पादक रस नीरस हो जाते हैं। भयानक विष भी पीये हुए अमृतकी भाँति पच जाता है। जो महामुद्राका अभ्यास कर लेता है, उसके क्षय, कोढ़, बवासीर, वायुगोला और अजीर्ण आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यदि उलटकर गयी हुई जिह्वा कपालके छिद्रमें प्रविष्ट हो और दृष्टि दोनों भौंहोंके बीचमें स्थिर रहे तो खेचरी मुद्रा होती है। जो खेचरी मुद्राको जानता है, वह बाणसमूहसे पीड़ित नहीं होता और न कर्मोंसे ही लिप्त होता है। उसको काल भी बाधा नहीं दे सकता। इसमें चित्त आकाशमें विचरता है और जिह्वा भी आकाशगत होकर चरती है। इससे इस मुद्राका नाम खेचरी है। सिद्ध पुरुषोंने इसका सेवन किया है। शरीरमें जबतक बिन्दु स्थित है, तबतक मृत्युका भय कहाँसे होगा और जबतक खेचरी मुद्रा बँधी हुई है, तबतक बिन्दु बाहर नहीं जाता।

महापक्षी (महाप्राण) दिन-रात उड़ता रहता है। उसी-को इस मुद्राद्वारा बाँधा जाता है। इसलिये इसका नाम उड्डीयान बन्ध है। नाभिके ऊपर और उदरमें पश्चिमतान धारण करे। यह उड्डीयान बन्ध कहलाता है। इसके सिद्ध हो जानेपर मनुष्य मृत्युका भी भय त्याग देता है। जो नाड़ियों-के समूहको, जिसके द्वारा कि शरीरान्तर्गत छिद्रोंका जल नीचेकी ओर प्रवाहित होता है, बाँधता है, वह जालन्धर बन्ध कहलाता है, जो कण्ठमें होनेवाले दुःखसमुदायका नाश करनेवाला है। कण्ठको संकुचित करके किये जानेवाले इस जालन्धर बन्धके सिद्ध होनेपर ललाट और तालुवर्ती चन्द्रमण्डलमें स्थित अमृत उदरकी अग्निमें नहीं गिरता

१. दोनों हाथोंके अग्रभागसे झुके हुए दोनों पैरोंके तलुओंको पकड़कर पैरोंको आगेकी ओर फैलावे। उस समय उन दोनों पैरोंका

और वायुका भी प्रकोप नहीं होता। दोनों एड़ियोंसे लिङ्गको दबाकर और अपानवायुको ऊपरकी ओर खींचकर गुदाको संकुचित करे। इसे मूल बन्ध कहते हैं। मूल बन्धका सतत अभ्यास करनेसे अपान और प्राणवायुकी एकता होती है, मल-मूत्रका नाश होता है और वृद्ध पुरुष भी तरुण हो जाता है। प्राण और अपानवायुके वशमें होकर चञ्चल हुआ जीव इडा और पिङ्गला नाड़ीके द्वारा नीचे-ऊपर दौड़ता रहता है। वह कहीं स्थिर नहीं हो पाता। जैसे रस्सीमें बँधा हुआ पक्षी कहीं उड़कर जाय तो भी उसे पुनः अपने समीप खींच लिया जाता है, उसी प्रकार तीनों गुणोंमें बँधा हुआ जीव प्राणायामके द्वारा खींचा जाता है। अपान प्राणको और प्राण अपानको अपनी ओर खींचता है। ये दोनों ऊपर स्थित हैं। योगवेत्ता पुरुष इन्हें परस्पर संयुक्त कर देता है। श्वास हकारकी ध्वनिके साथ बाहर निकलता है और सकार-की ध्वनिके साथ पुनः भीतर प्रवेश करता है। इस प्रकार जीव सदा 'हंस-हंस' इस मन्त्रका जप करता रहता है। दिन-रातमें इक्कीस हजार छः सौ बार श्वासका आना-जाना होता है। अतः जीव उतनी ही बार 'हंस' मन्त्रका जप नित्यप्रति किया करता है। यह अजपा नामवाली गायत्री है, जो योगियों-को मोक्ष देनेवाली है। इसके संकल्पमात्रसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

योगीके योगमार्गमें अनेक प्रकारके विघ्न आते हैं, जो उसकी साधनामें हानि पहुँचानेवाले हैं। उसे दूरकी बातें सुनायी देती हैं, दूरका दृश्य अपने आगे प्रत्यक्ष दिखायी देता है, आधे पलमें सैकड़ों योजन जानेकी शक्ति आ जाती है, बिना पढ़े ही अथवा बिना स्मरण किये ही सब शास्त्र कण्ठस्थ हो जाते हैं, धारणाशक्ति बहुत बढ़ जाती है और महान् भार भी हल्का प्रतीत होता है। वह क्षणमें दुबला, क्षणमें मोटा, क्षणमें छोटा और क्षणमें बड़ा हो जाता है। वह योगी दूसरेके शरीरमें प्रवेश कर जाता है, पशु-पक्षियोंकी बातें समझ लेता है, अपने शरीरमें दिव्य गन्ध धारण करता है और मुखसे दिव्य वचन बोलने लगता है। दिव्यलोककी कन्याएँ उससे प्रार्थना करती हैं और वह दिव्य देह धारण कर लेता है। ये सब विघ्न निकटवर्तिनी योगसिद्धिके सूचक हैं। यदि इन विघ्नोंसे योगीका मन चञ्चल नहीं हुआ, तो उससे आगेकी भूमिकामें पहुँचकर वह ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ परम पदको प्राप्त कर लेता है। अगस्त्यजी! जिसे पाकर मनुष्य पुनः इस संसारमें नहीं लौटता और जिसकी प्राप्ति होनेपर शोकसे सदाके लिये छुटकारा मिल जाता है, उस पद-को योगी षडङ्गयोगकी साधनासे पा लेता है, परंतु इन्द्रियोंकी वृत्ति चञ्चल होनेसे और कलियुगमें पापके बढ़नेसे थोड़ी आयुवाले मनुष्योंको यहाँ योगका महान् अभ्युदय कहाँ प्राप्त हो सकता है? इसीलिये करुणासागर भगवान् विश्वनाथ जीवोंको महोदय पद प्रदान करनेके लिये काशीपुरीमें विराजमान हैं। जीव काशीमें जिस प्रकार सुखसे कैवल्य प्राप्त कर लेते हैं, उस प्रकार अन्य किसी स्थानमें योग, युक्ति आदि उपायोंके द्वारा भी नहीं पा सकते हैं, क्योंकि काशीपुरीसे अपने शरीरका संयोग करा देना ही उत्तम योग बताया गया है। इस संसारमें दूसरे किसी योगके द्वारा मनुष्यकी शीघ्र मुक्ति नहीं होती है।

मृत्युसूचक चिह्नोंका वर्णन

अगस्त्यजीने पूछा—स्कन्दजी! मृत्यु निकट आ गयी है, यह बात कैसे जानी जाय?

कार्तिकेयजीने कहा—मुने! मृत्यु निकट आनेपर जो चिह्न प्रकट होते हैं, उन्हें सुनो। जिसकी दाहिनी नासिकामें एक दिन-रात अखण्डरूपसे वायु चलती रहती है, उसकी आयु तीन वर्षमें समाप्त हो जाती है और जिसका दक्षिण श्वास लगातार दो दिन या तीन दिनतक निरन्तर चलता रहता है, उसके जीवनकी अवधि इस संसारमें केवल एक वर्ष-की बतायी जाती है। यदि दोनों नासिकाछिद्र दस दिनतक निरन्तर ऊर्ध्व श्वासके साथ चलते रहें, तो मनुष्य तीन दिनतक जीवित रह सकता है। यदि श्वासवायु नासिकाके दोनों छिद्रोंको छोड़कर मुखसे बहने लगे, तो दो दिनके पहले ही उसका यमलोकके मार्गपर प्रस्थान हो जायगा, यह सूचित कर देना चाहिये। जिस कालमें मृत्यु अकस्मात् निकट आ जाती है, मृत्युके भयसे डरनेवाले पुरुषको उस कालका प्रयत्न-पूर्वक विचार करना चाहिये। जब सूर्य सप्तम राशिपर हों और चन्द्रमा जन्मनक्षत्रपर आ गये हों, तब यदि दाहिनी नासिकासे श्वास चलने लगे, तो उस समय सूर्यदेवता-से अधिष्ठित काल प्राप्त होता है। उसपर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। जो अकस्मात् किसी काले-पीले पुरुषको देखता है,

फिर उसी क्षण उसके रूपको अदृश्य पाता है, वह केवल दो वर्ष और जीवित रह सकता है। जिसके मल-मूत्र और वीर्य अथवा मल-मूत्र एवं छींक एक साथ ही गिरते हैं, उसकी आयु केवल एक वर्ष और शेष है, ऐसा मानना चाहिये। जो इन्द्रनीलमणिके समान रंगवाले नागोंके झुंडको आकाशमें इधर-उधर फैला हुआ देखता है, वह छः महीने भी जीवित नहीं रहता। जिसकी मृत्यु निकट है, वह अरुन्धती और ध्रुवको भी नहीं देख पाता। जो अकस्मात् नीले-पीले आदि रंगोंको तथा कड़वे, खट्टे आदि रसोंको विपरीतरूपमें देखने और अनुभव करने लगता है, वह छः महीनेमें मृत्युका भागी होता है। वीर्य, नख और नेत्रोंका कोना—ये सब यदि नीले या काले रंगके हो जायँ, तो मनुष्य छठे मासमें यमपुरीकी यात्रा करता है। भलीभाँति स्नान करनेके बाद भी जिनका हृदय शीघ्र ही सूख जाता है तथा हाथ और पैर भी जल्दी ही सूख जाते हैं, उसका जीवन केवल तीन मासतक चलता है। जो मनुष्य जल, घी और दर्पण आदिमें अपने प्रतिबिम्बका मस्तक नहीं देखता, वह एक मासतक जीवित रहता है। बुद्धि भ्रष्ट हो जाय, वाणी स्पष्ट न निकले, रातमें इन्द्रधनुष-का दर्शन हो, दो चन्द्रमा और दो सूर्य दिखायी दें, तो ये सब मृत्युसूचक चिह्न हैं। इन सब चिह्नोंमेंसे यदि एक चिह्न-को भी मनुष्य देखता है, तो मृत्यु केवल एक मासतक उसकी प्रतीक्षा करती है। हाथसे कान बंद कर लेनेपर जब किसी प्रकारकी आवाज न सुनायी दे तथा मोटा शरीर थोड़े ही दिनोंमें दुबला-पतला और दुबला-पतला शरीर मोटा हो जाय तो एक मासमें मृत्यु हो जाती है। जिसे स्वप्नमें भूत, प्रेत, पिशाच, असुर, कौए, कुत्ते, गीध, सियार, गधे और सूअर इधर-उधर ले जाते और खाते हैं, वह वर्षके अन्तमें प्राण त्यागकर यमराजका दर्शन करता है। जो स्वप्नकालमें गन्ध, पुष्प और लाल वस्त्रोंसे अपने शरीरको विभूषित देखता है, वह उस दिनसे केवल आठ मासतक जीवित रहता है। जो सपनेमें धूलकी राशि, बिमौट (दीमकका घर) अथवा यूपदण्डपर चढ़ता है, वह छठे महीनेमें मृत्युको प्राप्त होता है। जो स्वप्नमें अपनेको तेल लगाये, मूड़ मुड़ाये और गदहे-पर चढ़े दक्षिण दिशाकी ओर ले जाये जाते हुए देखता है अथवा अपने पूर्वजोंको इस रूपमें देखता है, उसकी मृत्यु छः महीनेमें हो जाती है। जो मनुष्य स्वप्नमें अपने मस्तक या शरीरपर तृण और सूखे काठ देखता है, वह छठे मासमें जीवित नहीं रहता। जो स्वप्नमें लोहेका डंडा और काला वस्त्र धारण करनेवाले किसी काले रंगके पुरुषको अपने आगे खड़ा देखता है, वह तीन माससे अधिक नहीं जीवित रहता। स्वप्नमें काले रंगकी कुमारी कन्या जिस पुरुषको अपने बाहुपाशमें कस ले, वह एक ही महीनेमें यमपुरीका दर्शन करेगा। जो मनुष्य स्वप्नमें वानरकी सवारीपर चढ़कर पूर्व दिशाकी ओर जाता है, वह पाँच ही दिनमें संयमनी-पुरीको देखता है। यदि कृपण मनुष्य सहसा उदार हो जाय या उदार मनुष्य सहसा कृपण हो जाय, इस प्रकार यदि प्रकृतिमें सहसा विकार आ जाय, तो वह मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है। ये तथा और भी बहुतसे मृत्युसूचक चिह्न हैं, जिन्हें जानकर मनुष्य योगका अभ्यास करे अथवा काशीपुरीकी शरण ले।

मुने! मैं गर्भवासको रोकनेवाले भगवान् काशीपति शिवकी शरण लेनेके सिवा दूसरा कोई ऐसा उपाय नहीं जानता, जो कालको भी वञ्चित करनेमें समर्थ हो। जिसने भगवान् विश्वनाथके निवासस्थान काशीपुरीको प्राप्त किया, उत्तरवाहिनी गङ्गाका जल पी लिया और श्रीविश्वेश्वर लिङ्गका स्पर्श कर लिया, ऐसा कौन पुरुष वन्दनीय नहीं होता। काल कुपित होकर काशीनिवासी मनुष्योंका क्या बिगाड़ लेगा। जबतक बुढ़ापेका आक्रमण नहीं होता और जबतक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हो जातीं, तभीतक बुद्धिमान् पुरुष समस्त तुच्छ प्रपञ्चका त्याग करके काशीपुरीकी शरण ले। अगस्त्यजी! मृत्युसूचक दूसरे चिह्न तो दूर रहें, सबमें पहला लक्षण तो बुढ़ापा ही है, परंतु आश्चर्य है कि उसके आनेपर भी लोगों-को भय नहीं होता। वृद्धावस्थाने जिसका आलिङ्गन कर लिया है, उस मनुष्यको भाई-बन्धु नहीं मानते। उसके पुत्र भी उसकी आज्ञाका पालन नहीं करते और पत्नी भी उससे प्रेम करना छोड़ देती है। काशीमें निवास करनेसे जिस प्रकार कालको शीघ्रतापूर्वक जीत लिया जाता है, उस प्रकार उस कालको तपस्या और योगकी युक्तियोंद्वारा नहीं जीता जा सकता।

महाराज दिवोदासके धर्मपूर्ण राज्यका वर्णन

अगस्त्यजीने पूछा—भगवन्! भगवान् शङ्करने राजा दिवोदाससे किस प्रकार काशीपुरीका परित्याग करवाया!

कार्तिकेयजी बोले—गिरिराज मन्दरकी तपस्यासे सन्तुष्ट हुए भगवान् शिव ब्रह्माजीके वचनोंके गौरवसे मन्दरा-चलको चले गये। उनके चले जानेपर उन्हींके साथ सम्पूर्ण देवता भी वहीं चले गये। भगवान् विष्णु भी भूमण्डलके

वैष्णव तीर्थोंका परित्याग करके जहाँ देवाधिदेव उमानाथ भगवान् शिव विराजमान थे, उसी मन्दराचलपर चले गये। पृथ्वीसे देवसमुदायके चले जानेपर प्रतापी राजा दिवोदासने यहाँ निर्द्वन्द्व राज्य किया। उन्होंने काशीपुरीमें सुदृढ़ राजधानी बनाकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए सबको उन्नतिशील बनाया। हाथियोंसे भी अधिक बलवान् महाराज दिवोदासका अपराध कभी नागलोग भी नहीं करते थे। दानव भी मानवकी आकृति धारण करके उनकी सेवा करते थे। गुह्यक लोग सब ओर मनुष्योंमें राजाके गुप्तचर बनकर रहते थे। उनके सभाभवनके आँगनमें बैठे हुए विद्वानों एवं मन्त्रियोंको किसीने कभी शास्त्रोंद्वारा पराजित नहीं किया तथा रणाङ्गणमें डटे हुए उनके योद्धाओंको कभी किसीने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा परास्त नहीं किया। उनके राज्यमें कभी ऐसे लोग नहीं देखे गये, जो पदभ्रष्ट तथा दूसरोंके द्वेष-भाजन हों। उस समय सब प्रजा अपने-अपने पदपर प्रतिष्ठित एवं सुखी थी। राजा दिवोदासके राज्यमें सभी गाँव ईति[1]-भीतिसे रहित थे। कोई गाँव ऐसा नहीं था, जिसकी रक्षाके लिये राजकर्मचारी उपस्थित न हों। घर-घरमें लोग कुबेरके समान धन दान करनेवाले थे।

इस प्रकार काशीमें राज्य करते हुए दिवोदासके अस्सी हजार वर्ष एक दिनके समान व्यतीत हो गये। अपने औरस पुत्रोंकी भाँति प्रजाका पालन करते रहनेवाले राजा रिपुञ्जय (दिवोदास) के द्वारा थोड़ेसे भी अधर्मका संग्रह नहीं हुआ। वे राजनीति-सम्बन्धी छः गुणों[2]के ज्ञाता थे। उनका चित्त अपनी त्रिविध[3] शक्तियोंसे सदा उत्साहित रहता था। वे नीतिनिपुण पुरुषोंके समस्त उपायोंका ज्ञान रखनेवाले थे इसलिये उनके छिद्रों (दोषों) को देवता भी नहीं जानते थे। दिवोदासके राष्ट्रमण्डलमें सभी पुरुष एकपत्नी-व्रती थे। स्त्रियोंमें कोई भी ऐसी नहीं थी, जो पतिव्रता न हो। एक भी ब्राह्मण ऐसा नहीं था, जिसने वेद-शास्त्रोंका अध्ययन न किया हो। कोई भी क्षत्रिय ऐसा न था, जो शूरवीर न हो। एक भी वैश्य ऐसा नहीं दिखायी देता था, जो अर्थोपार्जनके कर्ममें कुशल न हो। शूद्र अनन्य भावसे द्विजातियोंकी सेवामें लगे रहते थे। उनके राज्यमें अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेवाले ब्रह्मचारी थे, जो सदा गुरुकुलके अधीन रहकर वेदविद्याके अध्ययनमें तत्पर थे। गृहस्थ लोग अतिथिसत्काररूपी धर्ममें कुशल, धर्मशास्त्रोंके मर्मज्ञ तथा सर्वदा शुभ आचरणोंमें संलग्न रहनेवाले थे। तीसरे आश्रमको स्वीकार करनेवाले वानप्रस्थी वनमें उपलब्ध होनेवाली जीविकाके प्रति ही आदर रखते थे। ग्रामीण वार्ताओंके प्रति उनके मनमें कोई उत्सुकता न थी और वे वैदिकमार्गमें चलनेवाले थे। उनके राज्यमें रहनेवाले संन्यासी सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित, जीवन्मुक्त, संग्रहशून्य, मन, वाणी और कर्मरूपी दण्डसे युक्त तथा सर्वथा निःस्पृह थे। दूसरे अनुलोम[1] और विलोम[2] कर्मसे उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंने भी अपनी पूर्वपरम्परासे प्रचलित धर्ममार्गका किञ्चिन्मात्र भी परित्याग नहीं किया था। राजा दिवोदासके राज्यमें कोई भी सन्तानहीन, निर्धन, वृद्धोंकी सेवा न करनेवाला तथा अकाल मृत्युसे मरनेवाला नहीं था। चञ्चल, वाचाल, वञ्चक, हिंसक, पाखण्डी, भाँड़, रँडुवे और मदिरा बेचनेवाले भी नहीं थे। सर्वत्र मन्त्रोंका घोष सुनायी देता था। पद-पदपर शास्त्रचर्चा सुनायी देती थी। सब ओर शुभ वार्तालाप होते और आनन्दसे मङ्गलगीत गाये जाते थे। मांसभक्षी, ऋण लेनेवाले और चोर भी उनके राज्यमें नहीं थे। पुत्र पिताके चरणोंकी पूजा, देवाराधना, उपवास, व्रत, तीर्थ और देवोपासनाको परम धर्म समझकर करते थे। नारियाँ अपने पतिके चरणोंकी पूजा, उनके वचनोंको सुनना और स्वामीकी आज्ञाका पालन करना अपना श्रेष्ठ धर्म समझती थीं। सब लोग अपने बड़े भाईकी

---

१. अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहोंका उपद्रव, टिड्डी गिरना, तोते आदि पक्षियोंद्वारा खेतीको हानि पहुँचना और अपने देशपर किसी शत्रु राजाका आक्रमण होना—ये छः प्रकारकी ईतियाँ हैं।

२. सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—ये छः गुण हैं। इनमें अवसर और आवश्यकताके अनुसार शत्रुसे मेल करना या रखना सन्धि, उससे लड़ाई छेड़ना विग्रह, स्वयं आक्रमण करना यान, योग्य समयकी प्रतीक्षामें बैठे रहना आसन, दुरंगी नीति बर्तना द्वैधीभाव और अपनेसे बलवान् राजाकी शरण लेना समाश्रय कहलाता है।

३. प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति—ये तीन प्रकारकी शक्तियाँ हैं। कोष और दण्ड आदिके सम्बन्धकी शक्ति प्रभुशक्ति, सन्धि-विग्रह आदिके सम्बन्धकी शक्ति मन्त्रशक्ति और पराक्रम प्रकट करने तथा विजय प्राप्त करनेकी शक्ति उत्साहशक्ति कहलाती है।

१. उच्च वर्णके पुरुष तथा नीच वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ मनुष्य अनुलोम कहा जाता है।

२. नीच वर्णके पुरुष और उच्च वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ मनुष्य विलोम कहा जाता है।

सदा पूजा करते थे। सेवक प्रसन्नतापूर्वक अपने स्वामीके चरणकमलोंकी पूजा करते थे। छोटी जातिके लोग ऊँची जातिके लोगोंके गुण और गौरवकी प्रशंसा करते थे। काशीपुरीके रहनेवाले सब मनुष्य तीनों समय वहाँके देवताओंकी बार-बार सेवा-पूजा करते थे। सब विद्वान् सब स्थानोंपर अपनी मनोवाञ्छित वस्तु पाकर सम्मानित होते थे। विद्वान् लोग तपस्वी महात्माओंकी, तपस्वी महात्मा जितेन्द्रिय पुरुषोंकी, जितेन्द्रिय महापुरुष ज्ञानियोंकी और ज्ञानीलोग शिवयोगियोंकी पूजा करते थे। ब्राह्मणोंके मुखरूपी अग्निमें दिन-रात विधिपूर्वक उत्तम रूपसे तैयार की हुई मन्त्रपूत एवं बहुमूल्य हविका हवन किया जाता था। दिवोदासके राज्यमें जहाँ-तहाँ सब ओर पग-पगपर शुद्ध द्रव्यराशिके द्वारा बावली, कुआँ और पोखरा खुदवानेवाले तथा बगीचे लगानेवाले धर्मात्मा पुरुष बहुत बड़ी संख्यामें थे। वहाँ सब जातिके लोग अनिन्द्य (उत्तम) सेवाकार्यसे सम्पन्न हो हृष्ट-पुष्ट दिखायी देते थे। इस प्रकार सर्वत्र शुद्ध एवं पवित्र बर्ताव करनेवाले उस भूपालके छिद्र ढूँढ़नेके लिये देवताओंने बहुत चेष्टा की, किंतु उन्हें थोड़ा-सा भी छिद्र नहीं प्राप्त हो सका।

भगवान् शिवके आदेशसे सूर्यका काशीमें गमन और निवास तथा लोलार्कतीर्थका माहात्म्य

स्कन्दजी कहते हैं—अगस्त्य! इन्द्रादि देवताओंने दिवोदासके राज्य-शासनको असफल बनानेके लिये अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित किये, किंतु धर्मात्मा राजा दिवोदासने अपने तपोबलसे उन सब विघ्नोंपर विजय पायी। तदनन्तर मन्दराचलसे महादेवजीने चौसठ योगिनियोंको राजाका छिद्र देखनेके लिये काशीमें भेजा। वे योगिनियाँ बारह महीनोंतक काशीमें रहकर निरन्तर चेष्टा करते रहनेपर भी राजाका कोई छिद्र (दोष) न पा सकीं। अतएव उनके ऊपर अपना कोई प्रभाव न डाल सकीं। जब वे लौटकर वापस नहीं गयीं, तब भगवान् शिवने सूर्यदेवको बुलाकर कहा—'सप्ताश्ववाहन! तुम उस मङ्गलमयी काशीपुरीको शीघ्रतापूर्वक जाओ, जहाँ धर्मात्मा राजा दिवोदास विद्यमान हैं। राजाके धर्मविरोधसे जिस प्रकार वह क्षेत्र उजाड़ हो जाय, वैसा करो। परंतु उस राजाका अनादर न करना, क्योंकि धर्मके मार्गमें लगे हुए सत्पुरुषका जो अपमान किया जाता है, वह अपने ही ऊपर पड़ता है और वैसा करनेसे महान् पाप भी होता है। यदि तुम्हारे बुद्धिविकाससे राजा धर्मसे च्युत हो जायँ, तब अपनी दुःसह किरणोंसे तुम्हें उस नगरको उजाड़ देना चाहिये। राजा दिवोदासमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और अहङ्कारका सर्वथा अभाव है, इसलिये उन्हें काल भी नहीं जीत सकता। सूर्य! जबतक धर्ममें स्थिर बुद्धि है और धर्ममें मन स्थिरतापूर्वक लगा हुआ है, तबतक विपत्तिमें भी मनुष्योंके मार्गमें विघ्नका उदय कैसे हो सकता है। दिवाकर! इस संसारमें जितने जीव हैं, उन सबकी चेष्टाओंको तुम जानते हो, इसीलिये लोकचक्षु कहलाते हो। मेरे बताये हुए कार्यकी सिद्धिके लिये जाओ।'

भगवान् शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके सूर्यदेव काशीपुरीमें गये। वहाँ बाहर-भीतर विचरते हुए उन्होंने राजामें थोड़ा-सा भी धर्मका व्यतिक्रम नहीं देखा। वे अनेक रूप धारण करके एक वर्षतक काशीमें रहे। वे कभी अतिथि बनकर राजाके पास जाते और उनसे कुछ दुर्लभ वस्तु माँग बैठते थे; परंतु राजा दिवोदासके राज्यमें उन्हें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं दिखायी दी। सूर्य कभी याचक बनते, कभी बहुत बड़े दानी होकर जाते, कभी दीनताको प्राप्त होते और कभी ज्योतिषी बन जाते थे। कभी प्रत्यक्षवादी बनकर इस लोकमें प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाली वस्तुओंकी ही सत्यताका प्रतिपादन करते थे। कभी जटाधारी बनते, कभी दिगम्बर हो जाते और कभी विष उतारनेकी विद्यामें प्रवीण सँपेरा बन जाते थे। कभी-कभी उन्होंने नाना प्रकारके दृष्टान्तों और कथानकोंद्वारा अनेक प्रकारके व्रतका उपदेश करके वहाँकी पतिव्रता स्त्रियोंको बहकानेकी भी चेष्टा की। कभी तो वे ब्राह्मण बनते, कभी ब्रह्मज्ञानी, कहीं वेदाभ्यासी, कहीं क्षत्रिय, कहीं वैश्य और अन्त्यज, कहीं ब्रह्मचारी, कहीं गृहस्थ, कहीं वानप्रस्थ, कहीं संन्यासी—इस प्रकार अनेकानेक रूप धारण करके वे लोगोंको भ्रममें डालते थे। कहीं-कहीं तो वे सम्पूर्ण विद्याओंमें पारङ्गत एवं सर्वज्ञ बनकर उपस्थित होते थे। इस प्रकार काशीमें विचरते हुए सूर्यने कभी किसी मनुष्यमें भी कोई छिद्र नहीं पाया।

इस क्षणभङ्गुर शरीरके रहते हुए जिसने धर्मकी रक्षा की है, उसने तीनों लोकोंकी रक्षा कर ली। उसे अर्थ और कामकी भलीभाँति रक्षा करनेसे क्या प्रयोजन है? यदि वास्तवमें मनुष्योंको सुखकारी प्रतीत होनेवाला काम भी रक्षा करनेके योग्य होता तो कामवैरी भगवान् शिव उसे क्षणभर भस्म करके अनङ्ग (अङ्गहीन) क्यों बना देते? शि

आदि राजाओं तथा दधीचि आदि समस्त ब्राह्मणोंने अपने शरीरका त्याग करके भी धर्मकी रक्षा की है।

दुर्लभ काशीपुरीको पाकर कौन सचेत पुरुष उसे छोड़ सकता है। इस संसारमें प्रत्येक जन्ममें पुत्र, मित्र, स्त्री, खेत और धन मिल सकते हैं, केवल काशीपुरी नहीं मिलती। जबतक काशी-सेवनसे उत्पन्न पुण्यमय तेजका उदय नहीं होता, तभीतक जुगुनूके समान अन्यान्य तेज प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार काशीके प्रभावको जाननेवाले तथा अन्धकारको दूर करनेवाले लोकचक्षु सूर्यदेव अपनेको बारह स्वरूपोंमें व्यक्त करके काशीपुरीमें स्थित हो गये। इनमें पहले लोलार्क हैं, दूसरे उत्तरार्क, तीसरे साम्बादित्य, चौथे द्रौपदादित्य, पाँचवें मयूखादित्य, छठे खखोल्कादित्य, सातवें अरुणादित्य, आठवें वृद्धादित्य, नवें केशवादित्य, दसवें विमलादित्य, ग्यारहवें गङ्गादित्य तथा बारहवें यमादित्य—ये बारहों काशीपुरीमें स्थित हैं। अगस्त्य! जिनका तमोगुण अधिक बढ़ा हुआ है, ऐसे दुष्टोंसे ये सदा इस क्षेत्रकी रक्षा करते हैं। अर्क अर्थात् भगवान् सूर्यका मन काशीके दर्शनके लिये लोल (चञ्चल) हो उठा था, इसलिये काशीमें उनकी लोलार्क नामसे ख्याति हुई। दक्षिण दिशामें असीसङ्गमके समीप लोलार्ककी स्थिति है, वे सदा काशीवासी मनुष्योंके योग-क्षेमकी सिद्धि करते हैं। मार्गशीर्ष मासकी सप्तमी या षष्ठी तिथिको रविवारका योग होनेपर वहाँकी वार्षिक यात्रा करके मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। मनुष्य असीसङ्गममें स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण एवं विधिपूर्वक श्राद्ध करे, तो वह पितरोंके ऋणसे छूट जाता है। जो मनुष्य रविवारको लोलार्कका दर्शन करके उनका चरणामृत लेता है, उसे कोई दुःख नहीं होता और खुजली, दाद तथा फोड़ा-फुंसीका कष्ट भी नहीं भोगना पड़ता। जो श्रेष्ठ मनुष्य लोलार्कके इस माहात्म्य-को सुनता है, वह इस दुःखसागर संसारमें कहीं भी दुखी नहीं होता।

उत्तरार्क सूर्यकी महिमा, सुलक्षणाकी तपस्या और उसपर शिव-पार्वतीकी कृपा

स्कन्दजी कहते हैं—काशीपुरीकी उत्तर दिशामें उत्तम अर्ककुण्ड है, जहाँ भगवान् सूर्य उत्तरार्क नामसे निवास करते हैं। मुने! वहाँ जो इतिहास घटित हो चुका है, उसको सुनो। काशीपुरीमें प्रियव्रत नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण थे, जो आत्रेयकुलमें उत्पन्न, सदाचारी तथा अतिथिजनोंके प्रेमी थे। उनकी पत्नी अत्यन्त सुन्दरी तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। वह घरके काम-काजमें बड़ी चतुर तथा पतिकी सेवामें तत्पर रहनेवाली थी। ब्राह्मणने अपनी पत्नीसे एक उत्तम लक्षणोंवाली कन्याको जन्म दिया। वह कन्या मूल नक्षत्रके प्रथम चरणमें उत्पन्न हुई थी। उस समय बृहस्पति केन्द्रमें थे। ब्राह्मणकी वह कन्या पिता-माताके घरमें दिन-दिन बढ़ने लगी। वह बड़ी रूपवती, विनयशील, सदाचारपरायणा तथा माता-पिताका प्रिय करनेवाली थी। घरकी सामग्रियोंको माँज-धोकर साफ-सुथरा रखनेमें अत्यन्त निपुण थी। वह अपने पिताके घरमें जैसे-जैसे बढ़ने लगी, वैसे-ही-वैसे उसके पिताके मनमें यह चिन्ता भी बढ़ने लगी कि—'मेरी यह परम सुन्दरी उत्तम लक्षणोंवाली श्रेष्ठ कन्या किसको देने योग्य है। इसके योग्य उत्तम वर मुझे कहाँ मिलेगा, जो कुल, अवस्था, शील, स्वभाव, शास्त्राध्ययन, रूप और धनसे भी सम्पन्न हो। किसके साथ व्याह होनेपर इसे सुख मिलेगा।' इस प्रकार चिन्ता नामक ज्वरसे ग्रस्त हो प्रियव्रत ब्राह्मण गृह आदि सब वस्तुओंका त्याग करके मृत्युको प्राप्त हो गये। पिताके मरनेपर उस कन्याकी पतिव्रता माता भी कन्याको अकेली छोड़कर पतिके पीछे चली गयी। पतिव्रतका पालन करनेवाली सहधर्मिणीका यह धर्म ही है कि वह पतिके जीते-जी तथा मरनेपर भी पतिके ही साथ रहे। पुत्र, पिता, माता और बन्धु-बान्धव इनमेंसे कोई भी (पतिके सदृश) स्त्रीकी रक्षा नहीं करते। स्त्री अपने पतिके चरणोंकी जो सेवा करती है, वह सेवा ही सर्वत्र उसकी रक्षा करती है। माता-पिताके मरनेपर वह सुलक्षणा नामवाली कन्या दुःखसे व्याकुल हो उठी। उसने उनके और्ध्वदैहिक संस्कार करके दशाह आदि क्रियाएँ सम्पन्न कीं और अनाथ एवं दीन होकर वह बड़ी भारी चिन्ता करने लगी—'अहो! मैं पिता-मातासे हीन असहाय अबला इस संसारसागरके उस पार, जहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है, कैसे जा सकूँगी; क्योंकि स्त्रीभाव सबके द्वारा तिरस्कृत होनेवाला है। मेरे माता-पिताने मुझे किसी वरको अर्पण नहीं किया। ऐसी दशामें मैं स्वेच्छासे दूसरे किसी वरका वरण कैसे करूँ। यदि मैंने किसीका वरण कर भी लिया, तो भी यदि वह कुलीन, गुणवान्, सुशील और अपने अनुकूल रहनेवाला न मिला, तो उसका वरण करनेसे भी क्या लाभ होगा।'

इस प्रकार चिन्ता करती हुई रूप, उदारता और गुणोंसे युक्त उस ब्राह्मणकन्याने अनेकों युवकोंद्वारा प्रतिदिन बार-बार प्रार्थना की जानेपर भी किसीको अपने हृदयमें स्थान नहीं दिया। पिता-माताकी मृत्यु और उनके अद्भुत वात्सल्य-का विचार करके वह बार-बार अपनी और इस नश्वर संसारकी निन्दा करने लगी—'अहो! जिन्होंने मुझे जन्म दिया और बड़े लाड़-प्यारसे पाला, वे मेरे माता-पिता कहाँ चले गये? देहधारी जीवकी इस अनित्यताको धिक्कार है। जैसे मेरे ही आगे मेरे माता-पिताका शरीर चला गया, उसी प्रकार मेरा भी शरीर चला जायगा।' ऐसा विचार करके उस बालिकाने अपने मन और इन्द्रियोंको काबूमें किया और स्थिरचित्त हो दृढ़तापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करती हुई वह उत्तरार्कदेवके समीप कठोर तपस्या करने लगी। उसकी तपस्याके समय प्रतिदिन एक छोटी-सी बकरी उसके आगे आकर अविचल भावसे खड़ी हो जाती। फिर सन्ध्याके समय वह कुछ घास तथा पत्ते आदि चरकर और उत्तरार्क कुण्डका जल पीकर अपने स्वामीके घरको लौट जाती थी। इस प्रकार पाँच-छः वर्ष व्यतीत होनेपर एक दिन भगवान् शिव पार्वती-देवीके साथ लीलापूर्वक विचरते हुए वहाँ आये। उत्तरार्क-देवके समीप तपस्या करती हुई सुलक्षणाको उन्होंने ठूँठ पेड़की भाँति अविचल और तपस्यासे अत्यन्त दुर्बल देखा। तब दयामयी पार्वतीदेवीने भगवान् शङ्करसे निवेदन किया—'देव! यह सुन्दरी कन्या बन्धु-बान्धवोंसे हीन है, इसे वर देकर अनुगृहीत कीजिये।' पार्वतीजीका यह वचन सुनकर दयासागर भगवान् शिवने नेत्र बंदकर समाधिमें स्थित हुई उस कन्यासे वर देनेके लिये उद्यत होकर बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली सुलक्षणे! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो।'

महादेवजीकी यह अमृतवर्षिणी वाणी सुनकर सुलक्षणाने जब नेत्र खोले, तब देखा, सामने वरदान देनेके लिये उद्यत भगवान् त्रिलोचन खड़े हैं और उनके वामाङ्ग भागमें देवी उमा विराजमान हैं। उन दोनोंका दर्शन करके सुलक्षणाने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। इतनेमें ही उसे अपने आगे खड़ी हुई वह बकरी दिखायी दी। तब वह सोचने लगी—'इस जीवलोकमें अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये कौन मनुष्य जीवन नहीं धारण करता है? परंतु जो परोपकारके लिये जीवन धारण करता है, उसीका जीवनधारण सफल है।' मन-ही-मन ऐसा विचारकर उसने भगवान् शिवसे कहा—'कृपानिधान! यदि आप मुझे वर देना उचित समझते हैं, तो पहले इस बेचारी बकरीपर अनुग्रह कीजिये।' सुलक्षणाकी

यह परोपकारसे सुशोभित वाणी सुनकर शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए और पार्वती-देवीसे इस प्रकार बोले—'गिरिराजनन्दिनी! देखो, साधु पुरुषोंकी ऐसी ही परोपकारयुक्त बुद्धि होती है। सम्पूर्ण लोकोंमें वे ही धन्य हैं और वे ही सम्पूर्ण धर्मोंके आश्रय हैं, जो सर्वथा परोपकारके लिये यत्न करते हैं। सब वस्तुओंका संग्रह भी कहीं दीर्घकालतक नहीं ठहरता। एकमात्र परोपकार ही चिरस्थायी होता है। यह सुलक्षणा परम धन्य और अनुग्रह करने योग्य है। देवि! तुम्हीं बताओ, इस सुलक्षणाको और इस बकरीको भी कौन-सा वरदान देना चाहिये?'

पार्वतीदेवीने कहा—भगवन्! यह शुभ आचरणों-वाली सुलक्षणा कल्याणके लिये उद्योग करनेवाली है; यह मेरी सखी होकर रहे। यह बालब्रह्मचारिणी है, इससे मुझे अत्यन्त प्रिय होगी। मेरी इच्छा है कि यह दिव्य शरीर धारण करके सदैव मेरे समीप निवास करे। यह बकरी भी यहीं काशीनरेशकी कन्या होवे और काशीमें उत्तम भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परम मोक्षको प्राप्त हो। इसने शीतसे भयभीत न होकर पौष मासके रविवारको सूर्योदयसे पहले इस कुण्डमें स्नान किया है, इसलिये इस अर्क कुण्डका नाम आजसे 'बर्करी कुण्ड' हो जाय। यहाँ सब मनुष्योंके द्वारा इस बकरीकी प्रतिमा पूजनीय होगी। कार्यसिद्धिकी इच्छा रखनेवाले

मनुष्योंको पौष मासके रविवारके दिन उत्तरार्कदेवकी वार्षिक यात्रा करनी चाहिये।

इस प्रकार पार्वतीजीके कहे हुए सब वचनको सिद्ध क सर्वव्यापी भगवान् विश्वनाथने अपने मन्दिरमें प्रवेश किय

साम्बादित्य, द्रौपदादित्य और मयूखादित्यकी माहात्म्य-कथा

स्कन्दजी कहते हैं—मुने ! द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णके एक लाख अस्सी पुत्र थे। वे सभी सूर्यके समान तेजस्वी, अत्यन्त सुन्दर, महाबलवान्, शस्त्र-विद्या और शास्त्रोंके अतिशय ज्ञाता तथा अत्यन्त सुलक्षण थे। उन सबमें साम्ब सबसे अधिक गुणवान् थे। उन्होंने काशीमें आकर सूर्यदेवकी आराधना की और एक कुण्ड बनवाया। जो मनुष्य रविवारको साम्ब कुण्डमें स्नान करके साम्बादित्यकी पूजा करता है, वह रोगोंसे पीडित नहीं होता है। माघके शुक्लपक्षकी सप्तमीको यदि रविवार हो तो वह सूर्यग्रहणके समान कल्याणकारी महापर्व बताया गया है। उस दिन अरुणोदय कालमें साम्ब कुण्डमें स्नान करके जो साम्बादित्यकी पूजा करता है, वह बड़े-बड़े रोगोंसे मुक्त हो अक्षय धर्मको प्राप्त होता है। चैत्र मासके रविवारको साम्बादित्यकी वार्षिक यात्रा होती है। उस दिन साम्ब कुण्डमें विधिपूर्वक स्नान करके जो अशोक पुष्पोंसे साम्बादित्यकी पूजा करता है, वह कभी शोकग्रस्त नहीं होता। भगवान् विश्वनाथसे पश्चिम दिशामें महात्मा साम्बने यहाँ शुभ देनेवाली सूर्यमूर्तिकी भलीभाँति आराधना की थी। महामते ! साम्बादित्यका पूजन और नमस्कार करके जो आठ बार उनकी परिक्रमा करता है, वह पापरहित हो काशीवासका फल पाता है।

अब मैं द्रौपदादित्यका परिचय दूँगा। द्रौपदादित्य भक्तोंको सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। अतः उनका भलीभाँति सेवन करना चाहिये। एक समयकी बात है, पाँचों पाण्डव अपने शत्रुओंद्वारा उपस्थित की हुई बड़ी भारी विपत्तिमें पड़कर बनवासी हो गये। पाञ्चाल देशके राजा द्रुपदकी कन्या द्रौपदी उनकी धर्मपत्नी थी। उसने अपने पतियोंके दुःखसे सन्तप्त होकर भगवान् सूर्यकी आराधना की। इससे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने द्रौपदीको करछुल और ढक्कनके साथ एक अक्षय स्थालीपात्र (बटलोई) दिया और इस प्रकार कहा—'महाभागे ! इस स्थालीसे जितने भी अन्नकी इच्छा रखनेवाले लोग आयेंगे, वे सभी तृप्तिको प्राप्त होंगे। ऐसा तभीतक होगा, जबतक तुम भोजन नहीं कर लोगी। तुम्हारे भोजन कर लेनेपर यह खाली हो जायगी। यह रसीले व्यञ्जनों-की निधि है और इच्छानुसार भोजन देनेवाली है। जो मनुष्य भगवान् विश्वनाथके दक्षिण भागमें तुम्हारे सम्मुख स्थित मुझ द्रौपदादित्यकी आराधना करेगा, उसकी भूखकी पीड़ा हो जायगी। धर्मप्रिय द्रौपदी ! काशीमें तुम्हारे दर्शनसे और भूख-प्यासका भय नहीं रहेगा।' इस प्रकार वर दे सूर्यदेव भगवान् शङ्करकी आराधनामें लग गये। जो म द्रौपदीके द्वारा आराधित भगवान् सूर्यकी कथाको भ पूर्वक सुनेगा, उसका पाप नष्ट हो जायगा।

स्कन्दजी कहते हैं—मुने ! मैंने द्रौपदादित्य महिमा संक्षेपसे कही। अब मयूखादित्यका माहात्म्य सुन पूर्वकालमें त्रिभुवनविख्यात पञ्चगङ्गा तीर्थमें भगवान् सू अत्यन्त उग्र तपस्या की। गभस्तीश्वर नामक महालिङ्ग भक्तोंको मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गला नामक गौरीदेवी स्थापना करके उनकी आराधना करते हुए भगवान् तीव्र तपके तेजसे अत्यन्त जाज्वल्यमान हो उठे। उस स पृथ्वी और आकाशके बीचका समस्त प्रदेश त्रिलोकीको द करनेमें समर्थ सूर्यकिरणोंद्वारा अत्यन्त सन्तप्त हो उठ जैसे कदम्बफलके ऊपर सब ओरसे पुष्प ही दिखायी देते फल नहीं। उसी प्रकार ऊपर, नीचे और अगल-बगलमें ओर केवल सूर्यकी किरणें ही दिखायी देती थीं, सूर्य नहीं। तेज और तपस्याकी राशिभूत सूर्यकी तपोम ज्वालाओंके तीव्र भयसे तीनों लोकोंके समस्त चराचर प्रा काँप उठे। सब मन-ही-मन सोचने लगे—अहो ! सूर्य सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं। यदि वही हमें जलाने लगे, कौन हमारा रक्षक होगा। सूर्य समस्त संसारके नेत्र हैं। ये सब ओर प्रकाश फैलाते हैं और प्रतिदिन प्रातःकाल मृतप्र जगत्को नूतन जीवन देकर जाग्रत् करते हैं। ये ही अन्धका मय अन्धकूपमें पड़े हुए समस्त प्राणियोंका चारों ओर अ किरणरूप हाथ फैलाकर उद्धार करते हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण विश्वको व्याकुल देख विश्वात्म भगवान् विश्वनाथ सूर्यदेवको वर देनेके लिये गये। वे समाधि स्थित होकर अपने-आपको भी भूल गये थे। अत्यन्त निश्च भावसे बैठे हुए अंशुमाली सूर्यको देखकर भगवान् शङ्कर कहा—'आकाशमें प्रकाशित होनेवाले सूर्य ! अब तपस्या आवश्यकता नहीं है, वह पूरी हो गयी। अब कोई वर माँगो

इस प्रकार स्तुति करके सूर्यने महादेवजी और पार्वतीजी-की परिक्रमा की। तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर उन्होंने शिवके वामाङ्ग भागमें विराजमान गौरीदेवीका इस प्रकार स्तवन किया *।

सूर्य बोले—देवि ! आपको प्रणाम करनेमें प्रवीण जो भक्त पुरुष अपने ललाटको आपके चरणारविन्दोंकी धूलिसे उज्ज्वल करता है, जन्मान्तरमें भी चन्द्रमाकी मनोहर लेखा उसके भाल-प्रदेशको अत्यन्त उज्ज्वल बना देती है। अर्थात् वह पुरुष भगवान् शङ्करका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। श्रीमती मङ्गलागौरी ! आप सम्पूर्ण मङ्गलोंकी जन्मभूमि हैं। श्रीमङ्गले ! आप सम्पूर्ण पापराशिरूपी रूईको दग्ध करनेके ही माननीय हैं। देवि ! आप सहज प्रकाशस्वरूपा हैं काशीपुरीमें आप सदा निवास करती हैं और प्रणत जनों लिये मोक्ष-लक्ष्मीरूपा हैं। जो लोग निरन्तर आपका स्मर करते हैं, वे मोक्षरूपी धनकी रक्षा करनेमें कुशल एवं उ पानेके सुयोग्य पात्र हैं। उनकी बुद्धि परम शुद्ध है। आप उन बड़भागी भक्तोंको कामारि भगवान् शिव भी सदा स्मर करते हैं। मातः ! जिसके हृदयमें आपके अत्यन्त निर्म युगलचरणारविन्द सतत विराजमान हैं, यह सम्पूर्ण वि उसके हाथमें ही है। मङ्गलगौरि ! जो प्रतिदिन आप नामका जप करता है, उसके घरको अणिमा आदि आ सिद्धियाँ कभी नहीं छोडती हैं। देवि ! आप ही प्रणवस्वरू

इस प्रकार भगवान् शिवके आधे शरीरकी शोभास्वरूपा मङ्गलादेवीका इस मङ्गलाष्टक नामक महास्तोत्रसे स्तवन करके सूर्यदेवने महादेवजी तथा मङ्गलागौरीको बारंबार प्रणाम किया और उन दोनोंके सामने चुपचाप पड़ रहे ।

तब महादेवजीने कहा—सूर्यदेव ! उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो । महामते ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । मित्र ! तुम तो सदा मेरे नेत्रमें ही स्थित हो, जिससे मैं समस्त चराचर जगत्‌को देखता हूँ । तुम मेरी आठ मूर्तियोंमेंसे एक हो । आजसे तुम सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण तेजोंका समुदाय तथा सबके सम्पूर्ण कर्मोंके ज्ञाता होओ । अपने सब भक्तोंके समस्त दुःखोंको दूर करो । तुमने मेरे चौसठ नामोंके द्वारा जो यह अष्टकस्तोत्र सुनाया है, इसके द्वारा मेरी स्तुति करके मनुष्य मेरी भक्ति प्राप्त कर लेगा । यह मङ्गलागौरीका अष्टकस्तोत्र मङ्गलाष्टक नामसे विख्यात होगा । इसके द्वारा मङ्गलागौरीकी स्तुति करके मनुष्य मङ्गल प्राप्त करेगा । ये नामचतुःषष्ठ्यष्टक तथा मङ्गलाष्टक नामक दोनों स्तोत्र श्रेष्ठ, पुण्यमय तथा सब पातकोंके नाशक हैं । जो काशीसे दूरदेशमें रहता है, वह भी यदि प्रतिदिन तीनों समय इन दोनों स्तोत्रोंका जप करे, तो वह श्रेष्ठ एवं शुद्धचित्त होकर दुर्लभ काशीको प्राप्त करेगा । ये दोनों स्तोत्र काशीमें मोक्षसम्पत्ति प्रदान करते हैं । अतः मोक्षकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक अनेक स्तोत्रोंका परित्याग करके भी इन दोनों स्तोत्रोंका पाठ एवं जप करना चाहिये । तुम्हारे द्वारा स्थापित यह गभस्तीश्वरलिङ्ग भक्तिभावसे सेवित होनेपर सब सिद्धियों-का दाता होगा । तुमने भक्तिभावसे चम्पा और कमलके समान कान्तिवाली गभस्तिमालाओं (किरणों) से जो इस ईश्वरलिङ्गका पूजन किया है, उससे इसका नाम गभस्तीश्वर लिङ्ग होगा । पञ्चगङ्गामें स्नान करके गभस्तीश्वरका पूजन करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे रहित होकर कभी भी माताके गर्भमें जन्म धारण नहीं करेगा । जो स्त्री या पुरुष चैत्र शुक्ला तृतीयाको उपवास करके वस्त्र, आभूषण आदि महान् उपचारोंसे इन महादेवी मङ्गलागौरीकी पूजा करेगा और प्रातःकाल व्रत पूर्ण करके पारण करेगा, वह कभी दुर्भाग्य एवं दरिद्रताको नहीं प्राप्त होगा । उसके सारे पाप नष्ट हो जायँगे और वह पुण्यकी राशि प्राप्त करेगा । वन्ध्या भी इस मङ्गलागौरीव्रतको करके बालकको जन्म देती है । यहाँ तपस्या करते हुए तुम्हारे मयूखसमूह (किरणपुञ्ज) ही देखे गये हैं, शरीर नहीं दिखायी दिया है । अतः अदितिनन्दन ! तुम्हारा नाम मयूखादित्य होगा । तुम्हारी पूजा करनेसे मनुष्योंको कोई रोग-व्याधि नहीं होगी । रविवारको तुम्हारे दर्शनसे दरिद्रताका नाश होगा ।

इस प्रकार मयूखादित्यको बहुतसे वर देकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और सूर्यदेवने वहीं निवास किया ।

गरुडेश्वर लिङ्ग तथा खखोल्कादित्यकी प्रादुर्भाव-कथा, काशीमें गरुड और विनताकी तपस्या और वरदान-प्राप्ति

स्कन्दजी कहते हैं—अगस्त्य ! त्रिलोचन स्थानके उत्तरभागमें खखोल्क नामक आदित्यकी स्थिति बतायी गयी है । वे सब रोगोंका नाश करनेवाले हैं । पूर्वकालमें कद्रू और विनता—ये दोनों बहनें परस्पर खेल रही थीं । ये

ये त्वां स्मरन्ति सततं सहजप्रकाशां काशीपुरीस्थितिमतीं नतमोक्षलक्ष्मीम् ।
तान् संस्मरेत्स्मरहरो धृतशुद्धबुद्धीन् निर्वाणरक्षणविचक्षणपात्रभूतान् ॥
मातस्त्वदङ्घ्रियुगलं विमलं हृदिस्थं यस्यास्ति तस्य भुवनं सकलं करस्थम् ।
यो नाम ते जपति मङ्गलगौरि नित्यं सिद्ध्यष्टकं न परिमुञ्चति तस्य गेहम् ॥
त्वं देवि वेदजननी प्रणवस्वरूपा गायत्र्यसि त्वमसि वै द्विजकामधेनुः ।
त्वं व्याहृतित्रयमिहाखिलकर्मसिद्ध्यै स्वाहा स्वधासि सुमनःपितृतृप्तिहेतुः ॥
गौरि त्वमेव शशिमौलिनि वेधसि त्वं सावित्र्यसि त्वमसि चक्रिणि चारुलक्ष्मीः ।
काश्यां त्वमस्यमलरूपिणि मोक्षलक्ष्मीस्त्वं मे शरण्यमिह मङ्गलगौरि मातः ॥

(स्क० पु० का० पू० ४९ । ५५-६२)

दक्ष प्रजापतिकी कन्याएँ और मरीचिनन्दन कश्यपकी धर्मपत्नियाँ थीं। उस खेलमें कद्रूने अपनी बहनसे कहा—'विनते! सूर्यके रथमें जो उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा सुना जाता है, उसका रूप कैसा है, जानती हो तो कहो। हम दोनों शर्त रखकर इसका निर्णय करें, जो जिससे पराजित हो, वह उसकी दासी हो। हमारी इस प्रतिज्ञामें ये सब सखियाँ साक्षी हैं।' इस प्रकार आपसमें शर्त बदकर कद्रूने सूर्यके घोड़ेको चितकबरा बताया और विनताने श्वेत कहा। विनताके चले जानेपर कद्रूने अपने पुत्रोंको बुलाकर कहा—'तुम मेरे वचनसे शीघ्र ही उच्चैःश्रवा घोड़ेके समीप जाओ और उसे श्याम रंगसे युक्त चितकबरा कर दो।' कद्रूके बुद्धिमान् पुत्रोंने उच्चैःश्रवाके पास जाकर उसके शरीरको जगह-जगहसे काले केशके समान चितकबरा कर दिया। कद्रू और विनता दोनोंने सूर्यके रथमें घोड़ेको कुछ-कुछ काले रंगसे युक्त अर्थात् चितकबरा देखा। तब विनताने कहा—'बहन! तुम्हारी ही बात सत्य निकली, अतः तुमने मुझे जीत लिया।' तबसे विनता कद्रूकी दासी हो गयी। तदनन्तर विनताके पुत्र गरुड़ने नागोंको अमृत देकर अपनी माताको दासीभावसे मुक्त किया। दासीपनसे छुटकारा मिलनेपर विनताने गरुड़से कहा—'बेटा! मैं दास्यजनित दुष्कृतको दूर करनेके लिये काशीपुरी जाऊँगी, वहाँ साक्षात् भगवान् विश्वनाथ चन्द्रमाका आभूषण धारण किये तारकमन्त्ररूपी नौकाके द्वारा दुस्तर संसारसागरसे सबको पार लगा देते हैं। जिनपर भगवान् विश्वनाथकी कृपा होती है और जिनके समस्त कर्मबन्धन टूट जाते हैं, उन्हीं मनुष्योंकी बुद्धि काशीपुरीमें निवास करनेकी होती है। समस्त पाप धुल जानेके कारण जिनका मन काशीपुरीमें निवास करनेके लिये उत्सुक होता है, वे ही इस संसारमें वस्तुतः मनुष्य हैं। दूसरे लोग तो मनुष्यके रूपमें पशु ही हैं।'

माताकी यह बात सुनकर गरुड़ने नमस्कार करके कहा—मैं भी भगवान् शिवसे सम्मानित काशीपुरीका दर्शन करनेके लिये चलूँगा। तत्पश्चात् माताकी आज्ञा पाकर पक्षिराज गरुड़ उन्हींके साथ क्षणभरमें मोक्षभूमि वाराणसीपुरीमें आ पहुँचे। वहाँ इन दोनोंने बड़ी भारी तपस्या की। अविचल इन्द्रियोंवाले पक्षिराज गरुड़ने शिवलिङ्गकी स्थापना की और विनताने खखोल्क नामक 'आदित्य' को स्थापित किया। थोड़े ही दिनोंमें उन दोनोंकी तीव्र तपस्यासे काशीमें भगवान् शङ्कर और सूर्यदेव दोनों प्रसन्न हो गये। गरुड़द्वारा स्थापित शिवलिङ्गसे उमानाथ भगवान् शिव प्रकट हुए और उन्होंने गरुड़को बहुतसे अत्यन्त दुर्लभ वरदान दिये—'पक्षिराज! मेरे यथार्थ रहस्यको, जिसे देवता भी नहीं जान सके हैं, तुम जान लोगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह लिङ्ग गरुडेश्वरके नामसे विख्यात होगा। इसका दर्शन, स्पर्श और पूजन मनुष्योंको परम ज्ञान देनेवाला होगा। हम ही वह विष्णु हैं और वह विष्णु ही हम हैं, हम दोनोंमें तुम्हारी भेददृष्टि नहीं होनी चाहिये। तुम भगवान् विष्णुके श्रेष्ठ वाहन होकर स्वयं भी पूजनीय हो जाओगे।' अपने भक्त गरुड़को इस प्रकार वरदान देकर भगवान् शङ्कर वहीं अन्तर्धान हो गये और गरुड़जी भी भगवान् विष्णुके वाहन होकर भूमण्डलमें सबके लिये पूजनीय हो गये।

तदनन्तर एक दिन तपस्यामें संलग्न हुई विनताको देखकर शिवके ही दूसरे स्वरूप 'खखोल्कादित्य' नामक सूर्यदेव प्रकट हुए और उन्होंने विनताको शिवज्ञानसे युक्त पापनाशक वरदान दिया। वरदान देकर वे काशीमें ही रह गये और विनतादित्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार काशीके विघ्नस्वरूप अन्धकारका नाश करनेवाले ख[illegible]ल्क नामक आदित्य वहाँ निवास करते हैं। उनके दर[illegible]त्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। काशीमें [illegible] (पिलपिला) तीर्थमें भगवान् खखोल्कादित्यका दर्शन[illegible]से मनुष्य क्षणभरमें नीरोग हो जाता है और मनो[illegible] वस्तुको प्राप्त करता है।

काशीखण्ड पूर्वार्ध सम्पूर्ण।

१. एक बार गरुड़की माता विनता सर्पोंकी माता कद्रूको पीठपर चढ़ाकर सूर्य-मण्डलके समीप ले गयी। कद्रू गरमीको सहन न कर सकनेके कारण मूर्छित-सी होने लगी और घबराहटमें बोल उठी—'खखोल्का निपतेत्।' वह कहना चाहती थी, 'सखि उल्का निपतेत्'—'सखी! उल्का गिरेगी' परंतु निकल गया—'खखोल्का' तबसे सूर्यकी 'खखोल्क' संज्ञा हो गयी।

काशीखण्ड (उत्तरार्ध)

अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गङ्गादित्य तथा यमादित्यकी महिमाका वर्णन

स्कन्दजी कहते हैं—महामते ! विनतानन्दन अरुणने काशीमें तपस्या करके भगवान् सूर्यकी आराधना की । इससे प्रसन्न होकर आदित्यने अरुणको अनेक वर दिये और उन्हींके नामपर अरुणादित्य नामसे विख्यात हुए ।

सूर्यदेव बोले—विनतानन्दन ! तुम जगत्के हितके लिये घोर अन्धकारका नाश करते हुए सदा मेरे रथपर आगे सारथिके स्थानपर बैठा करो । जो यहाँ अरुणादित्य नामसे प्रसिद्ध मेरा निरन्तर पूजन करेंगे, उन्हें दुःख, दरिद्रता और पापकी प्राप्ति नहीं होगी । वे न तो रोगोंसे पीड़ित होंगे और न उन्हें कोई उपद्रव ही सतावेंगे ।

ऐसा कहकर भगवान् सूर्य उन्हें रथपर बिठाकर अपने साथ ले गये । तबसे लेकर आज भी प्रातःकाल सूर्यके रथपर अरुणका उदय होता है । जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन सूर्यसहित अरुणको नमस्कार करता है, उसे दुःखका भय कहाँसे हो सकता है । जो श्रेष्ठ मनुष्य अरुणादित्यका माहात्म्य सुनेगा, उसे किसी प्रकारके पापकी प्राप्ति नहीं होगी ।

अगस्त्य ! अब वृद्धादित्यका माहात्म्य सुनो । प्राचीन कालमें काशीपुरीमें महातपस्वी वृद्ध हारीतने भगवान् सूर्यकी आराधना की । विशालाक्षीदेवीके दक्षिण भागमें सूर्यदेवकी शुभ लक्षणोंसे युक्त शुभदायिनी मूर्ति स्थापित करके दृढ़भक्तिके साथ उन्होंने सूर्यदेवका आराधन किया । इससे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने वृद्धतपस्वी हारीतसे कहा—'माँगो, तुम्हें कौन-सा वर अभीष्ट है, जो दिया जाय ?'

मुनिने कहा—मुझको पुनः युवावस्था प्रदान कीजिये । युवावस्था प्राप्त होनेपर मैं उत्तम तपस्या करूँगा; क्योंकि तपस्या ही श्रेष्ठ धर्म है, तपस्या ही श्रेष्ठ धन है, तपस्या ही श्रेष्ठ काम है और तपस्या ही श्रेष्ठ मोक्ष है । जितेन्द्रिय पुरुष दीर्घकालतक तपस्या करनेके लिये ही चिरस्थायी आयु चाहते हैं । दान करनेके लिये ही धन चाहते हैं, पुत्र प्राप्त करनेके लिये ही स्त्री चाहते हैं और मोक्षके लिये ही उत्तम ज्ञान चाहते हैं । तब सूर्यदेवने तत्काल ही वृद्धहारीतका बुढ़ापा दूर करके उन्हें स्वर्गादिकारी देह और पुण्यकी साधनभूता युवावस्था प्रदान की । इस प्रकार महामुनि वृद्धहारीतने काशीमें सूर्यदेवसे युवावस्था प्राप्त करके उग्र तपस्या की । वृद्धसे पूजित होनेके कारण वहाँ भगवान् सूर्य वृद्धादित्यके नामसे प्रसिद्ध हैं । कुम्भज ! बुढ़ापा, दुर्गति तथा रोगका नाश करनेवाले वृद्धादित्यकी काशीमें आराधना करके बहुतोंने सिद्धि प्राप्त की है । काशीमें रविवारके दिन वृद्धादित्यको नमस्कार करके मनुष्य मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त कर लेता है, उसकी कभी भी दुर्गति नहीं होती ।

मुने ! इसके बाद मैं तुम्हें केशवादित्यका उत्तम माहात्म्य सुनाता हूँ, सुनो । जिस प्रकार भगवान् केशवके समीप पहुँचकर सूर्यदेवने ज्ञान प्राप्त किया था, वह प्रसङ्ग इस प्रकार है । एक दिन आकाशमें विचरण करते हुए सूर्यदेवने काशीमें भगवान् केशवको विश्वनाथजीकी पूजा करते देखा । तब वे कौतूहलवश दूसरे रूपसे आकाशसे उतर आये और भगवान् केशवके समीप बैठे । उस समय वे मौन होकर अविचल भावसे स्थित हो महान् आश्चर्यमें डूबे हुए अवसरकी प्रतीक्षा करते रहे । जब भगवान् विष्णुने पूजा समाप्त की, तब सूर्यदेवने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया । श्रीहरिने सूर्यदेवको अपने समीप बैठा लिया । तत्पश्चात् नमस्कार करके सूर्यदेवने कहा—'जगत्पते ! आप सम्पूर्ण विश्वके पालक तथा समस्त जगत्के अन्तरात्मा हैं । जगत्पूज्य माधव ! क्या इस काशीपुरीमें आपके लिये भी कोई पूजनीय है ? यह समस्त संसार आपसे ही प्रकट होता और आपमें ही लयको प्राप्त होता है । आप ही सम्पूर्ण विश्वके पालक हैं । नाथ ! समस्त संसारका सन्ताप दूर करनेवाले आप यह किसकी पूजा कर रहे हैं ? आपके इस आश्चर्ययुक्त कार्यको देखकर ही मैं आपके समीप आया हूँ ।'

सहस्रों किरणोंसे सुशोभित श्रीसूर्यदेवका यह वचन सुनकर भगवान् विष्णुने हाथके सङ्केतसे उन्हें मना किया कि 'जोरसे न बोलो ।' तत्पश्चात् श्रीसूर्यको समझाते हुए कहा—'इस काशीपुरीमें समस्त कारणोंके कारणभूत एकमात्र देवदेव, नीलकण्ठ, उमानाथ महादेवजी ही पूजनीय हैं

जन्म-मृत्यु और जराका नाश करनेवाले एकमात्र मृत्युञ्जय ही पूज्य देवता हैं। राजा श्वेत भगवान् मृत्युञ्जयकी पूजा करके स्वयं भी मृत्युञ्जय हो गये थे। कालके भी काल महाकालकी आराधना करके भृङ्गीने भी कालपर विजय पायी। मृत्युञ्जयकी पूजा करनेवाले शिलादपुत्र नन्दीको भी मृत्युने छोड़ दिया है। जिन्होंने लीलापूर्वक एक ही बाणके प्रहारसे त्रिपुरासुरपर विजय पायी, उन भगवान् भूतनाथकी आराधना करके कौन पुरुष पूजनीय नहीं हो सकता। वे भगवान् शिव तीनों लोकोंपर विजय पानेवाले सबके सार तत्त्व हैं; उनकी उत्तम आराधना कौन नहीं करेगा। जिनके नेत्रोंकी पलकके संकोचमात्रसे सम्पूर्ण जगत्का संकोच (प्रलय) हो जाता है और जिनके नेत्रोंके खुलनेसे ही समस्त संसारकी सृष्टि होती है, वे भगवान् शिव किसके परम पूजनीय नहीं हैं। यहाँ भगवान् शिवके शिवविग्रहकी पूजा करके मनुष्य शीघ्र ही चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त कर लेता है। काशीमें शिवलिङ्गकी आराधना करके मनुष्य क्षणभरमें सौ जन्मोंके सञ्चित पाप-समूहको भी त्याग देता है। सूर्य! तुम भी अपने महान् तेजको बढ़ानेवाली परम शोभा-सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये भगवान् महेश्वरके श्रीविग्रहकी पूजा करो।'

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर श्रीसूर्यदेव स्फटिक मणिका शिवलिङ्ग बनाकर आज भी इसकी पूजा करते हैं। वे भगवान् केशवको गुरु मानकर उनके उत्तर भागमें आज भी स्थित हैं। इसीलिये वे केशवादित्यके नामसे विख्यात हैं। वे काशीमें अपने भक्तोंके अज्ञानमय अन्धकारको दूर करते हैं और पूजित होनेसे मनोवाञ्छित फल देते हैं। श्रेष्ठ मनुष्य काशीमें केशवादित्यकी आराधना करके उस परम ज्ञानको पा लेता है, जिससे मोक्षकी प्राप्ति होती है। वहाँ पादोदकतीर्थमें स्नान, सन्ध्या और तर्पण आदि करके जो केशवादित्यका दर्शन करता है, वह जन्मभरके पातकोंसे छूट जाता है। अगस्त्य! यदि माघ मासकी रथसप्तमी (अचला सप्तमी) को रविवारका योग प्राप्त हो तो आदि-केशवके समीप पादोदकतीर्थमें प्रातःकाल स्नान करके केशवादित्यकी पूजा करनेसे मनुष्य सात जन्मोंके पातकोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है। सप्तमीकी अधिष्ठात्री देवीसे यह प्रार्थना करे—'मैंने पहलेके सात जन्मोंमें जन्मभर जो-जो पातक किये हैं, उन सबको तथा मेरे रोग और शोकको भी माघ मासकी सप्तमी नष्ट कर दे। हे माघकी सप्तमी! इस जन्मके किये हुए, दूसरे जन्मोंके किये हुए, मनसे, वाणीसे और शरीरसे किये हुए, जानकर या अनजानमें किये हुए—इन सात प्रकारके पापोंको, जो सात रोगोंसे युक्त हैं, तुम आजके स्नानसे हर लो।' इस प्रकार तीन मन्त्रोंका जप (मन्त्रार्थकी भावना) करके मनुष्य पादोदकतीर्थमें स्नान करे। तत्पश्चात् श्रीकेशवादित्यका दर्शन करके वह क्षणभरमें पापमुक्त हो जाता है। केशवादित्यके माहात्म्यका श्रद्धापूर्वक श्रवण करनेवाला मनुष्य पापसे लिप्त नहीं होता और भगवान् शिवकी भक्ति पा लेता है।

मुने! इसके पश्चात् अब विमलादित्यका उत्तम माहात्म्य सुनो। काशीके परम सुन्दर हरिकेश-वनमें भगवान् विमलादित्य विराजमान हैं। प्राचीन कालकी बात है, उस देशमें कोई विमल नामक क्षत्रिय था। यद्यपि वह निर्मल मार्ग (सदाचार) में ही स्थित था, तो भी पूर्वजन्मके किसी कर्मके योगसे उसको कोढ़का रोग हो गया। उसने स्त्री, गृह और धन सबका परित्याग करके काशीमें आकर सूर्यदेवकी आराधना की। वह विधिपूर्वक अर्घ्य देता और सूर्यदेवता-सम्बन्धी स्तोत्रोंका जप करता था। इस प्रकार आराधना करनेवाले विमलपर प्रसन्न हो भगवान् सूर्य उसे वर देनेको उद्यत हुए और बोले—'विमल! तुम्हारा यह

कुष्ठरोग दूर हो जाय, इसके सिवा तुम कोई और भी वर माँगो।' तब विमलने प्रणाम करके कहा—'भगवन्! आप सम्पूर्ण जगत्के नेत्र हैं। जो लोग आपमें भक्ति रखते हैं,

उनके कुलमें कभी कोई कोढ़ी न हो। इतना ही नहीं, उन्हें अन्य प्रकारके रोग भी न हों और उनके घरमें कभी दरिद्रता न रहे। आपके भक्तजनोंके मनमें कभी किसी प्रकारका सन्ताप न हो।'

भगवान् सूर्यने कहा—महाप्राज्ञ! ऐसा ही होगा, इसके सिवा दूसरा भी उत्तम वर तुम्हें दिया जाता है, सुनो। तुमने काशीमें मेरी जिस मूर्तिका पूजन किया है, उसका सान्निध्य मैं कभी नहीं छोड़ूँगा, यह प्रतिमा तुम्हारे ही नामसे विख्यात होगी। इसका नाम विमलादित्य होगा। यह प्रतिमा सदा भक्तोंको वर देनेवाली तथा सब रोगोंका नाश और समस्त पापोंका संहार करनेवाली होगी।

ऐसा वरदान दे भगवान् सूर्य वहीं अन्तर्धान हो गये। विमल भी निर्मल-शरीर होकर अपने घर चला गया। इस प्रकार काशीमें विमलादित्य सबका कल्याण प्रदान करनेवाले हैं। उनके दर्शनमात्रसे कोढ़का रोग नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य विमलादित्यकी इस माहात्म्य-कथाको सुनता है, वह निर्मल शुद्धिको प्राप्त होता है और उसके मनकी मैल धुल जाती है।

भगवान् विश्वनाथके दक्षिण भागमें गङ्गादित्य हैं, उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य यहाँ शुद्धिको प्राप्त होता है। जब राजा भगीरथको आगे करके गङ्गाजी काशीपुरीमें आयीं, उस समय भगवान् सूर्य गङ्गाजीकी स्तुति करनेके लिये वहीं स्थित हुए। इस समय भी वे गङ्गाजीको अपने सम्मुख करके दिन-रात उनकी स्तुति करते रहते हैं और प्रसन्नचित्त हो गङ्गाजी-के भक्तोंको वरदान देते हैं। श्रेष्ठ मनुष्य काशीमें गङ्गादित्यकी आराधना करके कभी दुर्गतिको नहीं पाता और न रोगका ही भागी होता है।

महाभाग! अब यमादित्यके प्रकट होनेकी कथा सुनो। यमेशसे पश्चिम और वीरेशसे पूर्वकी दिशामें यमादित्यकी स्थिति है, उनका दर्शन कर लेनेपर मनुष्य कभी यमलोकको नहीं देखता। पूर्वकालमें यमने यमतीर्थमें बड़ी भारी निर्मल तपस्या करके भक्तोंके सिद्धिदाता यमेश और यमादित्यको स्थापित किया है। कुम्भज! वहाँ साक्षात् यमने आदित्यकी स्थापना की है, इसलिये वे 'यमादित्य' कहलाते हैं। यमादित्य जीवोंकी यमयातनाको हर लेते हैं। जो यमतीर्थमें स्नान करके यमके द्वारा स्थापित यमेश्वर और यमादित्यको नमस्कार करता है, वह कभी यमलोकको नहीं देखता। चतुर्दशी तिथि, भरणी नक्षत्र और मङ्गलवारका योग होनेपर यमतीर्थमें स्नान, तर्पण और पिण्डदान करके मनुष्य पितरोंके ऋणसे मुक्त हो जाता है। नरकनिवासी पितर सदा यह अभिलाषा करते हैं कि 'मङ्गल, भरणी और चतुर्दशीका उत्तम योग आनेपर क्या कोई हमारे कुलका परम बुद्धिमान् मनुष्य ऐसा होगा, जो काशीपुरीके भीतर यमतीर्थमें स्नान करके हमारी मुक्तिके लिये तिलसहित तर्पण करेगा।' यमतीर्थमें पितरोंका श्राद्ध, यमेश्वरका दर्शन-पूजन तथा यमादित्यको नमस्कार करके मनुष्य पितरोंके ऋणसे मुक्त हो जाता है।

मुने! इस प्रकार तुम्हें काशीके बारह आदित्योंका परिचय दिया गया, जो पापोंका नाश करनेवाले हैं। इन सबकी उत्पत्ति या प्राकट्यकी कथा सुनकर मनुष्य कभी नरकमें नहीं पड़ता।

ब्रह्माजीका दिवोदासकी सहायतासे काशीमें यज्ञ करना और दशाश्वमेधतीर्थकी महिमा

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! जब अंशुमाली सूर्य त्रिभुवनमोहिनी काशीपुरीको चले गये, तब मन्दराचल पर्वतपर विराजमान भगवान् शिव पुनः इस प्रकार विचार करने लगे—'अहो! अभीतक वहाँसे लौटकर न तो योगिनियाँ आयीं और न अबतक सूर्यदेव ही आये। काशीका समाचार भी मेरे लिये अत्यन्त दुर्लभ हो गया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। अब काशीकी वार्ता जाननेके लिये किसको वहाँसे भेजूँ! वहाँकी बातोंको ठीक-ठीक जाननेमें ब्रह्माजी ही समर्थ हैं।' यह विचारकर ब्रह्माजीको बुलाकर महादेवजीने कहा—'कमलोद्भव! मैंने काशीका समाचार जाननेके लिये पहले तो योगिनियोंको भेजा था, फिर सूर्यदेवको भी प्रस्थापित किया था, किंतु अभीतक वे वहाँसे लौट नहीं रहे हैं। अतः अब आप जाइये, आपका मार्ग कल्याणमय एवं उसका भविष्य मङ्गलमय हो।'

भगवान् शिवकी यह आज्ञा शिरोधार्य करके ब्रह्माजी काशीपुरीको गये। काशीका दर्शन करके ब्रह्माजीका मन हर्षोल्लाससे भर गया। वे वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके राजा दिवोदाससे मिले और हाथमें जल और अक्षत लेकर राजाके लिये स्वस्तिवाचन किया। राजाने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। राजा दिवोदासने अभ्युत्थान और आसन आदिके द्वारा मुनिका यथावत् सत्कार किया और उनके शुभागमनका कारण पूछा।

तब ब्राह्मणने कहा—राजन्! मैं बहुत समय पहलेका पुराना हूँ, दीर्घकालसे यहाँ रहता हूँ। तुम मुझे नहीं जानते, परंतु मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। तुम्हारा पहला नाम रिपुञ्जय है। मैंने सैकड़ों ऐसे राजा देखे हैं, जो छहों शत्रुओंको[1] जीत चुके थे। सुशील, सत्त्वसम्पन्न, वेद-शास्त्रोंके पारङ्गत विद्वान्, राजनीतिकुशल, दया और उदारतामें निपुण, सत्यव्रतपरायण, पृथ्वीके समान क्षमाशील तथा समुद्रसे भी अधिक गम्भीर थे। परंतु राजर्षे! तुम्हारे भीतर जो परम पवित्र दो-तीन सद्गुण हैं, वे उन राजाओंमें प्रायः मुझे देखनेको नहीं मिले हैं। तुम प्रजाजनोंको अपने कुटुम्बके लोगोंकी भाँति मानते हो। ब्राह्मण तुम्हारे देवता हैं और तुम बड़े-बड़े तपस्वी लोगोंके तपमें सहायक होते हो। ये बातें जैसी तुम्हारे भीतर हैं, वैसी औरोंमें नहीं देखी जातीं। अतः अन्य राजा तुम्हारे समान नहीं हैं। दिवोदास! तुम अपने सद्गुणोंके कारण धन्य हो, मान्य हो तथा सत्पुरुषोंके द्वारा भी आदरणीय हो। तुम्हारे डरसे देवता भी कुमार्गमें जानेका साहस नहीं करते। हम धन आदिकी कामनाओंसे रहित ब्राह्मण हैं, हमें किसीकी स्तुति-प्रशंसासे क्या प्रयोजन है। किंतु क्या करें, तुम्हारे सद्गुण ही हम-जैसे लोगोंको भी स्तुतिमें लगा देते हैं। राजन्! मैं इस समय यहाँ यज्ञ करना चाहता हूँ और इस कार्यमें तुम्हें सहायक बनाना चाहता हूँ। तुम्हारी यह राजधानी कर्मभूमिमें सबसे अधिक उत्तम है। न्याय और सन्मार्गपर चलनेवाले पुरुषोंद्वारा जो धन सञ्चय किया गया हो, उसका काशीमें सद्धर्मके कार्यमें उपयोग करना चाहिये; अन्यथा वह धन क्लेशका ही कारण होता है। भूपाल! सबको ज्ञान प्रदान करनेवाले त्रिनेत्रधारी शिवको छोड़कर दूसरा कोई भी काशीकी उत्तम महिमाको यथार्थ रूपसे नहीं जानता। मैं समझता हूँ, तुम परम धन्य हो, जो कि सैकड़ों जन्मोंके पुण्यसे काशीपुरीका पालन कर रहे हो। 'काशी तीनों लोकोंका सार है, काशी तीनों वेदोंका सार है, काशी त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और कामसे परे सब पुरुषार्थोंका सारभूत मोक्ष है।' ऐसा महर्षियोंने निर्णय किया है। भगवान् विश्वनाथके अनुग्रहसे ही तुम्हारे द्वारा इस पुरीका पालन हो रहा है।

इतना कहकर जब ब्राह्मण देवता चुप हो गये राजाने इस प्रकार उत्तर दिया—विप्रवर! मैंने आपक[illegible] हुई सब बातें हृदयमें धारण कर ली हैं। आप यज्ञ करनेके [illegible] हैं, अतः आपकी सहायताके कार्यमें मैं आपका दा[illegible] आप मेरे कोषागारसे समस्त यज्ञ-सामग्रियोंको ले जायँ एकाग्रचित्त होकर यज्ञ करें। ब्रह्मन्! मैं जो राज्य [illegible] हूँ, उसमें थोड़ा-सा भी मेरा स्वार्थ नहीं है। मैं तो पुत्र, कलत्र तथा शरीरद्वारा भी परोपकारके लिये [illegible] करता हूँ। मनीषी महर्षियोंने राजाओंके लिये प्रजा[illegible] यथावत् पालन ही एकमात्र महान् धर्म बताया है। द्विजो[illegible] मैं ब्राह्मणोंके मुखमें जो हवन करता हूँ, उसे यज्ञकर्मसे बढ़कर मानता हूँ। यह मेरे लिये बड़े आनन्दकी बात है [illegible] आप मेरे घर कुछ माँगनेके लिये आये हैं।

धर्मात्मा राजा दिवोदासका यह वचन सुनकर ब्र[illegible] अपने मनमें बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने यज्ञ-सामग्रि[illegible] संग्रह किया और राजर्षि दिवोदासकी सहायता पाकर का[illegible] दस अश्वमेध नामक महायज्ञोंद्वारा भगवान्का यजन कि[illegible] तभीसे वहाँ वाराणसीपुरीमें मङ्गलदायक दशाश्वमेध नामक [illegible] प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण जगत्में विख्यात है। कुम्भ[illegible] पहले उस तीर्थका नाम 'रुद्रसरोवर' था, पीछेसे वह दशाश्व[illegible] के नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद भगीरथके साथ स्व[illegible] लोककी नदी भागीरथी गङ्गाका वहाँ आगमन हुआ, इससे [illegible] तीर्थ अत्यन्त पुण्यजनक हो गया। ब्रह्माजी वहाँ दशाश्वमेधे[illegible] लिङ्गकी स्थापना करके स्थित हो गये। धर्मानुरागी रा[illegible] दिवोदासमें कोई भी छिद्र उन्हें नहीं मिला, अतः वे महादे[illegible] जीके सम्मुख जाकर क्या कहते। उस क्षेत्रके प्रभावको जान[illegible] भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हुए ब्रह्मेश्वरकी स्थाप[illegible] करके ब्रह्माजी भी काशीपुरीमें ही रह गये।

अगस्त्य! सब तीर्थोंमें उत्तम दशाश्वमेध है। व[illegible] जाकर जो कुछ भी पुण्यकर्म किया जाता है, वह अक्षय कहा ग[illegible] है। स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजा, सन्ध्योपासन[illegible] तर्पण, श्राद्ध तथा पितरोंकी पूजा आदि सभी सत्कर्म व[illegible]

---

१. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—ये छः शत्रु हैं। बिना जीते हुए पाँच ज्ञानेन्द्रियोंसहित मनको भी छः शत्रुओंके समान माना गया है।

सफल एवं अक्षय होते हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य दशाश्वमेधतीर्थमें एक बार स्नान करके दशाश्वमेधेश्वरका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा तिथिको दशाश्वमेधतीर्थमें स्नान करके मनुष्य जन्मभरके पातकोंसे मुक्त हो जाता है। ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीयाको रुद्रसरोवरमें स्नान करनेसे मनुष्यके दो जन्मोंके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार शुक्लपक्षकी दशमीतक प्रत्येक तिथिमें क्रमशः स्नान करनेवाला मनुष्य प्रत्येक जन्मके पापको त्याग देता है। दस जन्मोंका पाप हर लेनेवाली गङ्गादशहरा तिथिको दशाश्वमेधतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष यम-यातनाको कभी नहीं देखता। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक गङ्गादशहराके दिन दशाश्वमेधतीर्थमें स्नान करके दशाश्वमेधेश्वर नामक उत्तम लिङ्गका पूजन करता है, उसको गर्भदशा छू भी नहीं सकती। ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षमें वहाँकी वार्षिक यात्रा करके पंद्रह दिनोंतक रुद्रसरोवरमें स्नान करनेवाला पुरुष कभी विघ्नोंसे तिरस्कृत नहीं होता।

महाराज दिवोदासने यज्ञ पूर्ण करनेवाले वृद्ध ब्राह्मण-रूपधारी ब्रह्माजीके लिये वहाँ एक ब्रह्मशाला बनवा दी। उसीमें वेद-मन्त्रोंके उच्चारणकी ध्वनिसे आकाशको गुँजाते हुए ब्रह्माजीने निवास किया।

पिशाचमोचनतीर्थकी महिमा

स्कन्दजी कहते हैं—अगस्त्य! भगवान् शिवके अत्यन्त प्रिय कपर्दी नामक गणाधीशने पित्रीश्वरलिङ्गके उत्तरभागमें एक शिवलिङ्ग स्थापित किया और उसके आगे 'विमलोदक' नामसे प्रसिद्ध एक कुण्ड भी खुदवाया, जिसके जलका स्पर्श करनेमात्रसे मनुष्य निर्मल हो जाता है। प्राचीन त्रेतायुगकी बात है। शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकि नामक एक मुनि थे, जो काशीमें प्रतिदिन कपर्दीश्वरकी पूजा करते हुए तपस्या करते थे। एक दिन हेमन्तके मार्गशीर्ष मासमें तपस्वी वाल्मीकिने मध्याह्नके समय विमलोदक नामवाले महातीर्थमें स्नान करके सिरसे लेकर पैरतक भस्म लगाया। फिर कपर्दीश्वरके दक्षिणभागमें बैठकर मध्याह्नकालोचित नित्य-कर्म प्रारम्भ किया। मस्तकपर भस्म रमाये हुए उन्होंने आध्यात्मिक सन्ध्याका चिन्तन किया और पञ्चाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) का जप करते हुए जटाजूटधारी भगवान् शिवका ध्यान किया। तत्पश्चात् संहार-क्रम (वामावर्त) से परिक्रमा करके तीन बार उच्चस्वरसे 'हुडुम्' 'हुडुम्' 'हुडुम्' का उच्चारण किया। तदनन्तर प्रणवको ही सामने रखकर उसका षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद—इन स्वरोंके भेदसे गान किया। गान करके आनन्द-पूर्वक हस्तसञ्चालन करते हुए नृत्य भी किया। अङ्ग-सञ्चालनद्वारा मनोहर ढंगसे मण्डलयुक्त नृत्य करके वे महा-

तपस्वी कुछ क्षणोंतक उस सरोवरके ही तटपर बैठे रहे। इसी समय उन्होंने अत्यन्त विकराल आकृतिवाले एक भयानक पिशाचको देखा। उसकी आँखें कुछ-कुछ पीली थीं। उस प्रेतको देखकर बूढ़े तपस्वीने धैर्यपूर्वक पूछा—'तू कौन है ?' तपस्वीका यह प्रेमपूर्वक वचन सुनकर पिशाचने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! गोदावरी नदीके तटपर प्रतिष्ठान नामक एक देश है। वहाँ मैं तीर्थोंमें दान लेनेकी रुचि रखनेवाला

एक ब्राह्मण था। उसी कर्मके फलस्वरूप मैं ऐसी दुर्गतिको प्राप्त हुआ हूँ। जल और वृक्षसे रहित महाभयङ्कर मरुस्थलमें निवास करते हुए मुझे बहुत समय बीत गया है। वहाँ मैं भूख-प्याससे पीड़ित होकर सर्दी और गरमीका कष्ट भोगता रहा हूँ। मरुभूमिमें दीर्घकाल व्यतीत होनेके पश्चात् एक दिन मैंने किसी ब्राह्मणके पुत्रको देखा। उसने धोतीकी लाँग नहीं ध रक्खी थी। वह अपवित्र और सन्ध्याकर्मसे हीन था। हे देखकर उसीके द्वारा कुछ भोग मिलनेकी आशासे मैं सके शरीरमें समा गया। मुने! वह ब्राह्मण धनके लोभसे सी वणिक्के साथ इस पुण्यमयी पुरीमें आ गया। मुनिश्रेष्ठ! । पुरीके भीतर उसके प्रवेश करते ही मैं और उसके पाप गभरमें एक ही साथ शरीरसे बाहर निकल गये। दयालो! त समय सहसा शिव नामकी ध्वनि कानमें पड़नेसे मेरा पाप छ क्षीण हो गया है, इसलिये मैं काशीके अन्तर्गृहकी सीमामें वेश कर पाया हूँ। अब आपका दर्शन हो जानेसे मैं अपनेको ड़ा भाग्यवान् समझता हूँ। आप कृपा करके मुझे इस यङ्कर योनिसे निकालिये। मेरा उद्धार कीजिये।'

प्रेतका यह वचन सुनकर उन दयालु तपस्वीने इस प्रकार चार किया—'अपना पेट तो पशु, पक्षी, मृग आदि सभी व भर लेते हैं। संसारमें वही धन्य है, जो सदा दूसरोंका कार करनेके लिये उद्यत रहता है। अतः आज मैं अपनी त्यासे मेरी शरणमें आये हुए इस पापातुर प्रेतका अवश्य द्वार करूँगा।' इस प्रकार मन-ही-मन निश्चय करके उन धुशिरोमणि तपस्वीने पिशाचसे कहा—'अरे ओ पिशाच! इस विमलोद नामक सरोवरमें स्नान कर ले। इस तीर्थके भावसे तथा भगवान् कपर्दीश्वरके दर्शनसे तेरी पिशाचता ाज क्षणभरमें नष्ट हो जायगी।'

यह सुनकर प्रेतने नमस्कारपूर्वक कहा—मुनि-ङ! पानी तो मैं पीनेके लिये भी नहीं पाता, स्नान करनेकी तो त ही क्या है? मेरे लिये तो यहाँके जलका स्पर्श भी र्लभ है।

तपस्वीने कहा—तू यह विभूति ले और अपने ललाटमें धारण कर, फिर तुझे कहीं कोई भी बाधा नहीं है। पापीका भी विभूतिसे उज्ज्वल ललाट देखकर यमराजके दूत पाशुपतास्त्रसे भयभीत होकर भाग जाते हैं।

ऐसा कहकर मुनिने भस्म ले प्रेतके हाथमें दे दिया और उसने भी आदरपूर्वक लेकर उसे ललाटमें लगा लिया। पिशाचको विभूति धारण किये देख जलके देवताओंने उसे जलमें स्नान करनेसे नहीं रोका। स्नान और जलपान करके वह ज्यों-ही जलाशयसे बाहर निकला त्यों-ही उसकी पिशाचता दूर हो गयी और उसने दिव्य शरीर धारण कर लिया। उसी समय दिव्य विमानपर बैठकर वह आकाशमार्गको प्राप्त हुआ। जाते समय उसने तपस्वीको नमस्कार करके उच्चस्वरसे कहा—'भगवन्! आपने मुझे इस अत्यन्त निन्दित पिशाच-योनिसे मुक्त किया है, इसलिये आजसे इस तीर्थका नाम (पिशाचमोचन) तीर्थ होगा। यहाँ स्नान करनेसे यह तीर्थ दूसरोंके भी पिशाचभावको हर लेगा। जो मनुष्य इस परम पुण्यमय तीर्थमें स्नान और सन्ध्या-तर्पण करके यहाँ पिण्डदान करेंगे, उनके पिता-पितामह यदि दैववश पिशाच-योनिको प्राप्त हुए हों तो उस योनिका परित्याग करके परम गतिको प्राप्त होंगे। आज मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी तिथि है, आजके दिन यहाँ स्नान आदि करना चाहिये। आजका स्नान पिशाच-योनिसे सर्वथा मुक्त करनेवाला है। जो लोग इस तिथिपर यहाँकी वार्षिक यात्रा करेंगे, वे तीर्थमें दान लेनेके पापसे मुक्त हो जायँगे।'

यों कहकर उस दिव्य पुरुषने बार-बार तपोधनको नमस्कार किया और दिव्य गति प्राप्त कर ली। तपस्वी वाल्मीकि भी उस महान् आश्चर्यको देखकर कपर्दीश्वरकी आराधनामें लगे रहे और समयानुसार मोक्ष प्राप्त कर लिया। महामुने! तबसे लेकर यह सब पापोंका अपहरण करनेवाला पिशाचमोचन तीर्थ काशीमें अत्यन्त प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ।

गणेशजीका काशीमें जाना और लोकप्रिय होना, गणेशजीका स्तवन

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर भगवान् शिवकी ज्ञा लेकर उनके काशीमें आनेके उपायका विचार करते ए गणेशजी मन्दराचल पर्वतसे चले और ब्राह्मणका स्वरूप ण करके काशीपुरीमें जा पहुँचे। वे बूढ़े ज्योतिषी बनकर प्रत्येक घरके भीतर जाते और नगरनिवासियोंको प्रसन्न करते थे। रनिवासमें प्रवेश करके अपनी दिव्य दृष्टिसे देखी हुई वस्तुको बता-बताकर स्त्रियोंके विश्वासपात्र हो गये। एक दिन अवसर पाकर महाराज दिवोदासकी रानी लीलावतीने

महाराजसे उनके सम्बन्धमें निवेदन किया—'राजन् ! एक बड़े विद्वान् एवं सुवक्ता वृद्ध ब्राह्मण आये हैं, जो अपने गुणोंके कारण बहुत बढ़े-चढ़े हैं। वे वेदोंकी मूर्तिमान् निधि हैं, आपको भी उनका दर्शन करना चाहिये।' राजाने प्रातःकाल उन वृद्ध ब्राह्मणको बुलवाया और भक्तिपूर्वक उत्तम वस्त्र आदि देकर उनका यथावत् सत्कार किया। तदनन्तर एकान्तमें राजाने अपने हृदयमें स्थित प्रश्नको उनसे इस प्रकार पूछा—'ब्रह्मन् ! निश्चय ही आप एक श्रेष्ठ द्विज प्रतीत होते हैं। आपकी बुद्धि जिस प्रकार तत्त्वज्ञानसे सम्पन्न है, वैसी दूसरेकी नहीं है, ऐसी मेरी समझ है। इस समय मेरा मन सब कर्मोंसे विरक्त-सा हो रहा है; अतः आप भलीभाँति विचार करके मेरे शुभ भविष्यका वर्णन करें।'

ब्राह्मणने कहा—राजन् ! आजके अठारहवें दिन कोई उत्तर दिशाका ब्राह्मण आकर निश्चय ही तुम्हें उपदेश करेगा। तुम्हें बिना विचारे उसके प्रत्येक वचनको मानना और उसका पालन करना चाहिये। महामते ! ऐसा करनेसे तुम्हारा सब मनोरथ सिद्ध होगा।

ऐसा कहकर राजाकी अनुमति ले वे श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने आश्रमको चले गये। इस प्रकार विघ्नविजयी गणेशजीने समस्त काशीपुरीको अपने वशमें कर लिया और ऐसा करके उन्होंने अपनेको कृतकृत्य-सा माना। जब दिवोदास काशीके राजा नहीं थे, उस समय गणेशजीके जो-जो स्थान थे, उन-उन स्थानोंको गणेशजीने अनेक रूप धारण करके पुनः सुशोभित किया।

(गणेशजीकी पूजाके पश्चात् इस प्रकार उनकी स्तुति करे—) भक्तोंके विघ्नका निवारण करनेवाले ! आपकी जय हो। विघ्नरहित ! विघ्नशमन ! आपकी जय हो। सम्पूर्ण गणोंके अधीश्वर ! आपकी जय हो। समस्त गणोंके अग्रगण्य ! आपकी जय हो। गणोंसे अभिवन्दित चरणारविन्दवाले देव ! आपकी जय हो। असंख्य सद्गुणोंसे विभूषित गणेश ! आपकी जय हो। सर्वव्यापी सर्वेश्वर तथा समस्त बुद्धियोंके एकमात्र निधान ! आपकी जय हो। सम्पूर्ण मायाप्रपञ्चके ज्ञाता तथा सब कर्मोंमें सबसे प्रथम पूजित देव ! आपकी जय हो। सब मङ्गलोंके लिये भी मङ्गलस्वरूप तथा सर्वमङ्गलकारी गणाधीश ! आपकी जय हो। अमङ्गलकी शान्ति करनेवाले तथा मङ्गलके हेतुभूत देव ! आपकी जय हो। सृष्टिकर्ताओंके वन्दनीय ! आपकी जय हो। सिद्धिदायक ! आपकी जय हो। सम्पूर्ण सिद्धियोंके एकमात्र निवासस्थान ! आपकी जय हो। महाऋद्धि-सिद्धिके सूचक ! आपकी जय हो। समस्त गुणोंका निर्माण करनेवाले, गुणोंसे परे तथा गुणोंद्वारा अग्रगण्य गणेश ! आपकी जय हो। गुणवर्णित ! सर्वबलाधीश्वर तथा इन्द्रको बल प्रदान करनेवाले गणाध्यक्ष ! आपकी जय हो। अनन्त महिमाके आधार तथा पर्वतोंको विदीर्ण करनेवाले गणेश ! आपकी जय हो। करुणामय ! दिव्यमूर्ते ! जो आपको नमस्कार करते हैं, वे भूमण्डलमें सम्पूर्ण पापोंके भाजन होकर भी अन्तमें मोक्षके भागी होते हैं। आप सदैव उनके बड़े-बड़े विघ्नों और उपद्रवोंका निवारण करते हैं तथा उन्हें उनकी रुचिके अनुसार स्वर्ग एवं मोक्ष भी देते हैं। विघ्नराज ! जो लोग इस पृथ्वीपर क्षणभर भी आपके कृपाकटाक्षके द्वारा देखे जाते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और उन श्रेष्ठ पुरुषोंपर भगवती लक्ष्मी अपनी कृपादृष्टि करती हैं। प्रणतजनोंके विघ्नका विनाश करनेमें चतुर तथा पार्वतीजीके हृदयकमलको विकसित करनेमें सूर्यस्वरूप गणेश ! जो लोग आपकी स्तुति करते हैं, वे इस संसारमें प्रसिद्ध होते हैं। यह कोई अद्भुत बात नहीं है। जो सदा आपके युगल चरणोंकी सेवा करते हैं, वे पुत्र, पौत्र, धन, धान्य और समृद्धिके भागी होते हैं। बहुत-से भृत्य (दास-दासी आदि) उनके चरण-कमलोंकी सेवामें रहते हैं तथा वे राजाओंके उपभोगमें आने योग्य निर्मल लक्ष्मीकी प्राप्ति करते हैं। हे परमकारण ! आप कारणोंके भी कारण हैं, वेदके विद्वानोंद्वारा सदा एकमात्र आप ही जानने योग्य हैं। आप ही वेदवाणीमें अनुसन्धान करने योग्य अनिर्वचनीय तत्त्व हैं, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके दिव्य स्वरूपका एक अंश है तथा आप वाणीके अविषय हैं। ढुण्ढिराज विनायक ! आप समस्त पुरुषार्थोंको ढूँढ़ चुके हैं, इसलिये आपका नाम 'ढुण्ढि' है। आपको सन्तुष्ट किये बिना कौन देहधारी प्राणी इस काशीमें प्रवेश पा सकता है ?

इस पृथ्वीपर न हुआ है और न होगा। तुममें जो मुमुक्षा (मुक्तिकी इच्छा) जाग्रत् हुई है, वह उचित ही है। तुम्हारे इस राज्यमें अधर्मका प्रवेश भी नहीं हुआ है। धर्मज्ञ ! तुम्हारे द्वारा धर्ममें लगायी गयी प्रजाने जो धर्मका अनुष्ठान किया है, उससे सम्पूर्ण देवता तृप्त हुए हैं। मेरे हृदयमें तुम्हारा एक ही दोष प्रतीत होता है कि तुमने भगवान् विश्वनाथको काशीसे दूर कर दिया है। मेरी समझमें तुम्हारा सबसे महान् अपराध यही है। इस पापकी शान्तिके लिये मैं तुम्हें बहुत उत्तम उपाय बतलाता हूँ। जिसने भगवान् शिवमें भक्ति रखकर यहाँ काशीमें एक शिवलिङ्गकी ी स्थापना की है, उसने अपनेसहित सम्पूर्ण जगत्की तिष्ठाका पुण्य प्राप्त किया है। इसलिये तुम सर्वथा प्रयत्न-पूर्वक शिवलिङ्गकी स्थापना करो, इससे कृतार्थ हो जाओगे। दिवोदास ! तुम्हारे समीप होनेसे हमलोग भी धन्य-धन्य हो ाये हैं। इस मर्त्यलोकमें जो तुम्हारा नाम लेते हैं, वे भी रम धन्य हैं। राजन् ! तुम्हारा मनोरथरूप महान् वृक्ष आज लित हुआ है, तुम इसी शरीरसे परम पदको प्राप्त होओगे। भगवान् शिवके लिङ्गमय विग्रहकी स्थापना कर लेनेपर आजसे ातवें दिन एक दिव्य विमान तुम्हें शिवधाममें ले जानेके ये आयेगा। यह काशीपुरीके भलीभाँति सेवनका फल है।'

यह सब सुनकर प्रतापी राजा दिवोदास बहुत प्रसन्न ए। उन्होंने ब्राह्मणके चरणोंमें बारंबार प्रणाम किया और सन्न होकर कहा—'भगवन् ! आपने मुझे संसार-सागरसे पार तार दिया।' तत्पश्चात् ब्राह्मणवेषधारी विष्णुने भी राजासे छकर काशीपुरीका भलीभाँति निरीक्षण करके परम पवित्र ञ्चनद कुण्ड (पञ्चगङ्गा) को देखा और वहाँ विधिपूर्वक ान करके वहीं निवास किया। फिर भगवान् शङ्करके भागमनकी शीघ्र प्रतीक्षा करते हुए माधवने राजा दिवोदास- ; वृत्तान्तको जाननेवाले गरुड़जीको वहाँ भेजा।

उधर राजा दिवोदासने भी अपने गुरु विप्रवर ण्यकीर्तिकी महिमाका बखान करते हुए समस्त प्रजाओं, न्त्रियों तथा मण्डलेश्वरोंको बुलाया। खजाना, घोड़े और ाथी आदिकी देख-रेखके लिये नियुक्त सब अध्यक्षोंको, अपने ाँच सौ पुत्रोंको, ज्येष्ठ पुत्र समरञ्जयको, पुरोहित, प्रतीहार, ऋत्विज्, ज्योतिषी, ब्राह्मण, सामन्त, राजकुमार, रसोइये, चिकित्सक तथा नाना कार्योंके लिये आये हुए विदेशी मनुष्यों- ो भी एकत्र किया। इन सबको हाथ जोड़कर प्रसन्नचित्त राजाने ब्राह्मणकी कही हुई सब बातें कह सुनायीं और ५. भी बताया कि 'सात दिनतक और मुझे इस लोकमें रहना है। सब लोग विषादवश मुझयि हुए मुखसे यह ... वृत्तान्त सुन रहे थे। राजाने स्वयं ही कुमार समरञ्जयको राजमहलमें ले जाकर उन्हें राजाके पदपर अभिषिक्त किया। फिर नगर और राज्यके लोगोंको भी दान आदिसे प्रसन्न करके पुण्यात्मा राजाने गङ्गाके पश्चिम तटपर एक विशाल मन्दिर बनवाया। संग्राममें शत्रुओंको जीतकर उन्होंने जितनी सम्पत्ति संग्रह की थी, वह सब लगाकर राजाने शिवमन्दिरका निर्माण कराया। राजाकी सम्पूर्ण सम्पत्ति वहाँ लगा दी गयी थी, इसलिये वह शुभ भूमि 'भूपालश्री' नामसे विख्यात हुई। राजा रिपुञ्जयने दिवोदासेश्वर लिङ्गकी स्थापना करके अपने-आपको कृतार्थ माना। तदनन्तर एक दिन वि उस शिवलिङ्गकी पूजा और वन्दना करके ज्यों-ही करना प्रारम्भ किया त्यों-ही आकाशसे एक दिव्य उतरा, जो हाथमें शूल और खट्वाङ्ग धारण क शिव-पार्षदोंसे घिरा हुआ था। तत्पश्चात् उन पार्षदोंने

दिव्य माला, दिव्य गन्ध, दिव्य वस्त्र और दिव्य आभू अलङ्कृत किया और उन्हें शिवधाममें पहुँचा दिया। तबसे तीर्थ 'भूपालश्री' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ श्राद्ध करके अपनी शक्तिके अनुसार दान देकर जो दिवोदासे दर्शन और भक्तिपूर्वक पूजन करता है तथा राजा

स्कन्दजीने कहा—एक समय काशीमें सूर्यदेवने बड़ी भारी तपस्या की। उस तीर्थमें तपस्या करते हुए मयूखादित्य नामक सूर्यकी किरणोंसे बहुत पसीना प्रकट हुआ। वह महास्वेदकी धारा किरणा नामसे प्रसिद्ध पुण्यमयी नदी बन गयी। फिर वह धूतपापा नदीसे मिली। धूतपापासे मिली हुई किरणा स्नानमात्रसे महापापरूपी घोर अन्धकारका नाश कर देती है। तदनन्तर दिलीपनन्दन भगीरथके साथ भागीरथी गङ्गा यमुना और सरस्वतीके साथ वहाँ आयीं। इस प्रकार उस तीर्थमें किरणा, धूतपापा, पुण्यसलिला सरस्वती, गङ्गा और यमुना—ये पाँच नदियाँ मिली हुई बतायी गयी हैं। इसीलिये वह त्रिभुवनविख्यात तीर्थ पञ्चनद (पञ्चगङ्गा) के नामसे प्रसिद्ध है। उसमें डुबकी लगानेवाला मनुष्य पाञ्चभौतिक शरीर नहीं ग्रहण करता। पाँच नदियोंका यह सङ्गम समस्त पापराशिको विदीर्ण करनेवाला है। इसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य ब्रह्माण्डमण्डलका भेदन करके ऊर्ध्वलोकको चला जाता है। काशीमें पग-पगपर अनेक बड़े-बड़े तीर्थ हैं, किंतु वे पञ्चनदतीर्थके करोड़वें अंशके समान भी नहीं हैं। पूरे माघभर प्रयाग

पञ्चनदतीर्थमें स्थित हुए भगवान् लक्ष्मीपतिने गरुड़को शिवजीके आगे सब वृत्तान्त निवेदन करनेके लिये भेजकर वहाँ एक दुर्बल शरीरवाले तपस्वीको देखा। उस तपस्वी मुनिने निकट आकर भगवान्‌का दर्शन किया। भगवान् लक्ष्मीपति गलेमें धारण की हुई वनमालासे सुशोभित थे। उनके पास ही भगवती लक्ष्मी विराजित थीं। चारों हाथोंमें क्रमशः शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र चमक रहे थे। वक्षःस्थल कौस्तुभमणिकी प्रभासे उद्भासित हो रहा था। उन्होंने अपने श्रीअङ्गमें दिव्य रेशमी पीताम्बर धारण कर रक्खा था। उनकी अङ्ग-कान्ति सुन्दर नील कमलके समान श्याम थी। आकृति अत्यन्त स्निग्ध एवं मधुर प्रतीत होती थी। नाभिकुण्डमें कमल शोभा पा रहा था। ओठ बड़े ही सुन्दर और लाल थे, दाँत अनारके दानोंके समान सुन्दर एवं स्वच्छ थे। उनके किरीटकी द्युतिसे आकाश प्रकाशित हो रहा था, देवराज इन्द्र जिनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं, सनक आदि महात्मा जिनकी स्तुति करते हैं, नारद आदि देवर्षियोंने जिनके महान् अभ्युदयका गीत गाया है तथा प्रह्लाद आदि भगवद्भक्त

जिनके मनको सदा आनन्दित करते रहते हैं, जिन्होंने शार्ङ्ग-नामक धनुषका दण्ड हाथमें ले रक्खा है, जो इन्द्रियोंके अविषय, निराकार और कैवल्यस्वरूप परब्रह्म हैं, वे ही प्रभु भक्तोंकी भक्तिके कारण यहाँ पुरुषरूपमें प्रकट हुए थे। जिनके उपनिषद्वर्णित स्वरूपको वेद भी नहीं जानते, ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं समझ पाते, उन्हीं भगवान् विष्णुका उन तपस्वी मुनिने अपने नेत्रोंसे प्रत्यक्ष दर्शन किया और आनन्द-में भरकर पृथ्वीपर मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया। उन महर्षिका नाम अग्निविन्दु था। महातपस्वी अग्निविन्दुने मस्तकके समीप अञ्जलि बाँधकर भगवान् विष्णुका भलीभाँति स्तवन किया।

अग्निविन्दु बोले—ॐ कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् नारायण! आप बाहर और भीतरको पवित्र करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आपके सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों पैर हैं। आप अन्तर्यामी पुरुष हैं, आपके दोनों चरण सब प्रकारके द्वन्द्वोंका निवारण करनेवाले हैं। इन्द्रादि देवताओंसे वन्दित विष्णो! आपके उन चरणोंको मैं द्वन्द्व-रहित शान्त बुद्धिसे प्रणाम करता हूँ। बृहस्पतिकी वाणी भी जिनकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हो पाती, उन भगवान्की स्तुति करनेके लिये इस लोकमें कौन समर्थ हो सकता है। परंतु यहाँ भक्ति ही प्रबल है (भगवान् केवल भक्तिसे ही प्रसन्न हो जाते हैं)। जो भगवान् विष्णु पुरातन ब्रह्मा आदि-के भी मन-वाणीके अगोचर हैं, उनकी स्तुति मेरे-जैसे अल्पबुद्धि पुरुष कैसे कर सकते हैं। जहाँ वाणीका प्रवेश नहीं है, मन जिनका मनन नहीं कर सकता, जो मन और वाणीसे सर्वथा परे हैं, उन परमेश्वरकी स्तुति करनेमें कौन समर्थ होगा। छः अङ्ग, पद और क्रमसहित वेद जिनके निःश्वाससे प्रकट हुए हैं, उन भगवान् विष्णुकी महान् महिमाका यथावत् ज्ञान किनको हो सकता है? जिनकी मन-बुद्धि सदा जाग्रत् रहती हैं, वे सनकादि महर्षि अपने हृदयाकाशमें जिनका निरन्तर ध्यान करते रहनेपर भी उन्हें यथार्थरूपसे उपलब्ध नहीं कर पाते, आबालब्रह्मचारी नारद आदि मुनीश्वर जिनके चरित्रको सदा गाते रहते हैं, तो भी सम्यक्रूपसे जिनके तत्त्वका ज्ञान नहीं हो पाता, जो चराचरस्वरूप होकर भी चराचर जगत्से सर्वथा भिन्न हैं, जिनका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है, जो अजन्मा, अविकारी, एक, आदिकारण, ब्रह्मा आदिके अगोचर, अजेय, अनन्तशक्ति, निरामय, नित्य, निराकार एवं अचिन्त्यस्वरूप हैं, उन आप परमेश्वरको पूर्णरूपसे कौन जान सकता है? भगवन्, मुरारे, मुकुन्द मधुसूदन, माधव इत्यादि रूपसे आपके एक-एक नामका भी यदि जप किया जाय, तो वह पापियोंके जन्मभरके उपार्जित पापपुञ्जको उनकी महाविपत्तियोंके साथ हर लेता है और बड़े-बड़े यज्ञोंका महत्त्वपूर्ण फल प्रदान करता है। नारायण, नरकार्णवतारण, दामोदर, मधुसूदन, चतुर्भुज, विश्वम्भर, विरज और जनार्दन इत्यादि नामोंका जप करनेवाले पुरुषोंका इस संसारमें कहाँ जन्म हो सकता है तथा उन्हें कालका भय भी कहाँ प्राप्त हो सकता है*। त्रिविक्रम! आपकी कान्ति मेघमालाके समान सुन्दर एवं श्याम है। आप-का श्रीअङ्ग विद्युत्की भाँति प्रकाशमान पीताम्बरसे आवृत है और आपके नेत्र कमलदलके समान परम सुन्दर हैं। जो लोग आपकी इस छबिका अपने हृदयमें सदा चिन्तन करते हैं, वे भी आपकी अचिन्त्य कान्तिको प्राप्त कर लेते हैं। श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित श्रीहरे! अच्युत! कैटभारे! गोविन्द! गरुड़वाहन! केशव! चक्रपाणे! लक्ष्मीपते! दैत्यसूदन! शार्ङ्गपाणे! आपके प्रति भक्ति रखनेवाले पुरुषों-को कहीं भी भय नहीं प्राप्त होता। कमलनयन! जिनकी जिह्वापर आपका मनोवाञ्छित फल देनेवाला नाम शोभा पाता है, जिनके कानोंमें आपकी कथाके सुमधुर अक्षर पड़ते हैं तथा जिनके हृदयरूपी भित्तिपर आपका स्वरूप अङ्कित होता है, उनके लिये राजाका पद दुर्लभ नहीं है। प्रभो! ब्रह्माजी आपके युगल चरणारविन्दोंकी वन्दना करते हैं। आप लीलासे ही अनेक प्रकारके लीलामय स्वरूप धारण करते हैं। आप ही क्षणभरमें जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। आप ही विश्व हैं, आप ही विश्वसे परे विश्वनाथ हैं तथा आप ही इस विश्वके बीज (आदिकारण) हैं, मैं आपको नित्य प्रणाम करता हूँ। भगवन्! आप ही स्तुति करनेवाले हैं, आप ही स्तुति हैं और आप ही स्तवन करनेयोग्य देवता

---

* एकैकमेव तव नाम हरेन्मुरारे
जन्मार्जिताघमघिनां च महापदाढ्यम्।
दद्यात्फलं च महितं महतो मखस्य
जप्तं मुकुन्द मधुसूदन माधवेति॥
नारायणेति नरकार्णवतारणेति
दामोदरेति मधुहेति चतुर्भुजेति।
विश्वम्भरेति विरजेति जनार्दनेति
क्वास्तीह जन्म जपतां क्व कृतान्तभीतिः॥
(स्क० पु० का० उ० २० । १४-१५)

हैं । इस जगत्‌में जो कुछ है, वह सब एकमात्र आप ही हैं । विष्णो ! आपसे भिन्न किसी भी वस्तुको मैं नहीं जानता, आप संसारबन्धनका नाश करनेवाले हैं, सांसारिक विषयोंके प्रति होनेवाली मेरी तृष्णाका सदाके लिये नाश कीजिये ।

इस प्रकार भगवान् विष्णुकी स्तुति करके महातपस्वी अग्निविन्दु चुप हो गये । तब वर देनेवाले भगवान् विष्णुने मुनिसे इस प्रकार कहा—'अग्निविन्दो ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो ।'

अग्निविन्दु बोले—भगवन् ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मैं यही माँगता हूँ कि आप सर्वव्यापी होकर भी समस्त जन्तुओं, विशेषतः मुमुक्षु जीवोंके हितके लिये यहाँ पञ्चनद-तीर्थमें निवास करें । साथ ही मुझे आपके चरणारविन्दोंमें भक्ति प्राप्त हो । इसके सिवा मैं दूसरा कोई वर नहीं माँगता हूँ ।

इस प्रकार दूसरोंके उपकारके लिये माँगे हुए अग्नि-विन्दुके वरको सुनकर भगवान् मधुसूदन बड़े प्रसन्न हुए और बोले—मुनिश्रेष्ठ ! तथास्तु, तुम जैसा चाहते हो वैसा ही होगा । मैं काशीपुरीके प्रति भक्ति रखनेवाले मनुष्योंको मुक्तिमार्गका उपदेश करता हुआ इस तीर्थमें निश्चय ही निवास करूँगा । मुझमें तुम्हारी अविचल भक्ति हो । मुने ! यह काशीपुरी जबतक यहाँ विद्यमान है, तबतक मैं यहीं रहूँगा ।

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर महामुनि अग्निविन्दु फिर बोले—माधव ! इस कल्याणमय पञ्चनद-तीर्थमें मेरे नामसे स्थित होकर आप भक्त और अभक्त सभी जीवोंको सदा मुक्ति प्रदान करें । जो इस पञ्चनदतीर्थमें स्नान करके यहाँसे जाकर देशान्तरमें भी मृत्युको प्राप्त हों, उनको भी आप निश्चय ही मुक्ति दें ।

भगवान् विष्णु बोले—मुने ! तुमने जो वर माँगा है, वह पूर्ण होगा । तुम्हारे नामके आधे भागके साथ और लक्ष्मीजीके नामके साथ मेरा नाम प्रसिद्ध होगा अर्थात् तीनों लोकोंमें विन्दुमाधवके नामसे मेरी ख्याति होगी । मेरा यह नाम काशीमें महान् पापोंका नाश करनेवाला होगा । जो पुण्यात्मा पुरुष इस पुण्यमय पञ्चनद कुण्डमें सदा मेरी पूजा करेंगे, उन्हें संसारका भय कहाँ है । जिनके हृदयमें मुझ पञ्चनदतीर्थवासी विन्दुमाधवका निवास है, उनके पास सदा धनस्वरूपा लक्ष्मी और मोक्ष-लक्ष्मीका भी वास होता है । अग्निविन्दो ! सब पातकोंका नाश करनेवाला यह श्रेष्ठ तीर्थ तुम्हारे नामसे विन्दुतीर्थ कहलायेगा । जो कार्तिक मासमें ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए सूर्योदयसे पहले ही विन्दुतीर्थमें स्नान करेगा, उसे यमराजसे कहाँ भय है । मनुष्य मोहवश सहस्रों पाप करके भी यदि कार्तिकमें धर्मनदतीर्थमें स्नान कर लेता है, तो क्षणभरमें पापहीन हो जाता है । यह शरीर अपवित्र मल-मूत्र आदिका भण्डार है । इसका एकभक्तव्रत, नक्त-व्रत, अयाचितव्रत तथा उपवासव्रतके द्वारा भलीभाँति शोधन करना चाहिये । जो मनुष्य मेरे आगे उज्ज्वल बत्तीके साथ दीप जलाता है, वह चराचर जीवोंसहित समस्त त्रिलोकीको अपने लिये प्रकाशमय देखता है । जो कार्तिकमें पञ्चामृतके कलशोंसे मुझको स्नान कराता है, वह पुण्यात्मा एक कल्पतक क्षीरसागरके तटपर निवास करता है । जो मेरी भक्ति करते हुए भी भगवान् विश्वनाथसे द्वेष करते हैं, उन्हें मेरा ही द्वेषी जानना चाहिये । वे पिशाचपदको प्राप्त होते हैं । कालभैरवके शासनसे पिशाच-योनिको प्राप्त होकर वे तीस हजार वर्षोंतक दुःखके सागरमें डूबे रहते हैं । तदनन्तर विश्वनाथजीकी कृपासे ही उन्हें मोक्षकी प्राप्ति होती है । जो अधम मनुष्य मनसे भी भगवान् विश्वनाथसे द्वेष रखते हैं, वे काशीसे अन्यत्र मृत्युको प्राप्त होकर सदा अन्धतामिस्र नरकमें निवास करते हैं । मुने ! यह काशीपुरी भगवान् पशुपति (शिव) अथवा शिवभक्तोंकी निवासस्थली है । अतः

कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको सदा भगवान् शिवकी सेवा करनी चाहिये। महामुने! प्रथम तो यह आनन्दकानन ही परम पवित्र है, उसमें भी पञ्चनदतीर्थ अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा अधिक पवित्र है और वहाँ भी मेरा सान्निध्य होना उससे भी अधिक पुण्यमय है। इसी अनुमानसे तुम पञ्चनद-तीर्थकी महिमा सब तीर्थोंसे अधिक उत्तम जानो। पञ्चनदके इस माहात्म्यको सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य बड़े-बड़े प हो जाता है।

भगवान् विष्णुके मुखसे यह वचन सुनकर अग्निविन्दुने श्रीविन्दुमाधवके चरणोंमें प्रणाम क पूछा—'भगवन्! काशीमें आपके जितने स्वरूप है वर्णन कीजिये।'

भगवान् विष्णुद्वारा अपने आदिकेशव प्रभृति स्वरूपोंका वर्णन तथा अग्निविन्दुकी मुरि

श्रीविन्दुमाधवजी बोले—अग्निविन्दो! पहले तो पादोदकतीर्थमें मैं आदिकेशवके नामसे निवास करता हूँ, सा जानो। पादोदकतीर्थसे दक्षिणमें जो श्वेतद्वीप नामक म महान् तीर्थ है, वहाँ मैं ज्ञानकेशवके नामसे रहकर नुष्योंको ज्ञान प्रदान करता हूँ। तार्क्ष्यतीर्थमें मैं ही ार्क्ष्यकेशवके नामसे प्रसिद्ध हूँ। वहीं नारदतीर्थमें मैं रदकेशव कहलाता हूँ। वहीं प्रह्लादतीर्थ भी है, जहाँ मैं ह्लादकेशवके नामसे प्रसिद्ध हूँ। भक्त पुरुषोंको वहाँ मेरे रूपकी भलीभाँति आराधना करनी चाहिये। अम्बरीषतीर्थमें रा नाम आदित्यकेशव है। दत्तात्रेयेश्वरसे दक्षिण मेरा नाम ादिगदाधर है। वहीं भार्गवतीर्थमें मैं भृगुकेशवके नामसे ख्यात हूँ। वामन नामक मङ्गलकारी महातीर्थमें मैं वामन-शव हूँ। नरनारायणतीर्थमें मैं नर-नारायणस्वरूप हूँ। ज्ञवाराह नामक तीर्थमें मेरा नाम यज्ञवाराह है। विदारनारसिंह मवाले तीर्थमें मैं विदारनारसिंह नामसे ही सेवन करने योग्य । गोपीगोविन्द नामक तीर्थमें मैं गोपीगोविन्द नामसे प्रसिद्ध हूँ। लक्ष्मीनृसिंह नामवाले पावन तीर्थमें मैं क्ष्मीनृसिंह हूँ। पापहारी शेषतीर्थमें मैं शेषमाधव हूँ। ङ्खमाधवतीर्थमें मेरा नाम शङ्खमाधव है। हयग्रीव महातीर्थमें यग्रीवकेशव नामसे मेरी प्रसिद्धि है। वृद्धिकालेश्वरसे पश्चिम भीष्मकेशव नामसे प्रसिद्ध हूँ। लोलार्कसे उत्तर भागमें रा नाम निर्वाणकेशव है। त्रिपुरसुन्दरी देवीसे दक्षिण भागमें ो त्रिभुवनकेशव नामसे मेरी पूजा करेगा, वह फिर कभी गर्भमें हीं आवेगा। ज्ञानवापीकें पूर्वभागमें मैं ज्ञानमाधवके नामसे सिद्ध हूँ। विशालाक्षी देवीके समीप मैं श्वेतमाधवके नामसे ख्यात हूँ। दशाश्वमेधसे उत्तरमें स्थित मुझ प्रयागमाधवका र्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार जब भगवान् विन्दुमाधव अग्निविन्दु मुनिको काशीमें स्थित अपने विभिन्न स्वरूपोंका परि हुए माहात्म्य-कथा सुना रहे थे, उसी समय उन्हें दिखायी दिये। गरुड़ने भगवान्को प्रणाम करके प्रस महादेवजीके शुभागमनकी सूचना दी।

भगवान्ने पूछा—महादेवजी कहाँ हैं?

गरुड़ बोले—जिसकी ध्वजापर महान् वृषभ शोभा पाता है तथा जिसके रत्नमय ध्वजकी प्रभा इ और आकाशको परिपूर्ण किये दे रही है, वह यह मह रथ आ रहा है। उसका प्रत्यक्ष दर्शन कीजिये। तब भगवान् त्रिलोचनके वृषभ-ध्वजका दर्शन करके उसे प्रणाम किया और अग्निविन्दु मुनिसे कहा—'मु अपने दाहिने हाथसे इस सुदर्शनचक्रका स्पर्श क भगवान्की ऐसी आज्ञा होनेपर उन्होंने ज्यों-ही इ स्पर्श किया त्यों-ही श्रीहरिके महान् अनुग्रहसे वे हो गये।

स्कन्दजी कहते हैं—अगस्त्य! फिर अग्निवि ज्योतिःस्वरूप होकर भगवान् विन्दुमाधवकी सेवाके उनकी दिव्य चिन्मय ज्योतिस्स्वरूपा कौस्तु मिलकर एकीभूत हो गये। जिन्होंने विन्दु चरणारविन्दोंमें अपने चित्तको चञ्चरीककी भाँति लग है, वे भी अग्निविन्दुकी भाँति निश्चय ही भगवत प्राप्त होते हैं। इसलिये सदा काशीमें निवास, श्रीविन्दु दर्शन और इस माहात्म्य-कथाका श्रवण करना चाहिये त करके लौकिक गतिपर विजय पानी चाहिये। पञ्चनदकी कथा पुण्यमयी है। भगवान् विन्दुमाधवकी कथा भी पर है और काशीका निवास भी अतिशय पुण्यजनक है— बातें पुण्यात्माओंको ही सुलभ हैं।

भगवान् शिवका स्वागत या वृषभध्वजतीर्थकी महिमा तथा शिवका काशीपुरीमें प्रवेश

स्कन्दजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीहरि ब्रह्माजीको आगे करके भगवान् शङ्करकी अगवानीके लिये आगे बढ़े। देवाधिदेव भगवान् वृषभध्वजको देखकर श्रीविष्णुने उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् फलसहित भीगे अक्षतोंको दिखाते हुए ब्रह्माजीने स्वस्तिवाचनके लिये हाथ ऊँचे करके रुद्रसूक्तोंसे भगवान् शिवका स्तवन किया। श्रीगणेशजीने उनके चरणारविन्दोंमें मस्तक रखकर शीघ्रतापूर्वक नमस्कार किया। तब महादेवजीने हर्षमें भरकर गणेशजीका मस्तक सूँघा और उन्हें हृदयसे लगाकर अपने आसनपर बिठा लिया। सोम और नन्दी आदि गणोंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। योगिनियोंने भी महेश्वरको प्रणाम करके मङ्गलगान किया। तत्पश्चात् सूर्यदेवने शिवजीको नमस्कार किया। चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिवने श्रीहरिको अपने सिंहासनके समीप ही वामभागमें बड़े आदरके साथ बिठाया और ब्रह्माजीको अपने दक्षिण भागमें आसन दिया। प्रणाम करनेवाले अन्य सब गणोंको भी दृष्टिपात करके सम्मानित किया। मस्तक हिलाकर योगिनियोंको भी प्रसन्न किया और हाथके इशारेसे सूर्यदेवको सन्तुष्ट किया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने दोनों हाथ जोड़कर कहा—'देवदेवेश्वर! गिरिजापते! मैं काशी आनेके बाद जो पुनः आपकी सेवामें नहीं पहुँचा, मेरे इस अपराधको आप क्षमा करेंगे। आलस्य छोड़कर पुण्यके पथपर चलनेवाले धर्मात्मा राजा दिवोदासके प्रति कौन किञ्चिन्मात्र भी विरुद्धभाव धारण कर सकता है।'

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर शिवजीने हँसते हुए कहा—ब्रह्मन्! मैं सब कुछ जानता हूँ। आप यहाँ आकर पहले ब्राह्मण बने। आप ब्राह्मण तो हैं ही, अतः यहाँ भी ब्राह्मण बनना आपके लिये दोषकी बात नहीं है। ब्राह्मण बनकर भी आपने जो दस अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया, यह और भी उत्तम है। इसके सिवा आपने मेरे स्वरूपकी स्थापना करके अपना परम हित किया है।

देवेश्वर भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर योगिनियोंने भी परस्पर एक-दूसरेका मुँह देखकर भीतर-ही-भीतर सन्तोषकी साँस ली। तत्पश्चात् चराचर जगत्को देखनेवाले सूर्यदेवने भी अवसर जानकर भगवान् शिवसे कहा—'नाथ! आपके समीपसे काशी आकर मैंने यथाशक्ति उपाय किया, किंतु कुछ भी करनेमें सफल न हो सका। राजा दिवोदास स्वधर्मका पालन करनेवाले थे। उनके होते हुए भी आपका यहाँ आगमन निश्चित है, ऐसा जानकर मैं यहीं ठहरा हुआ हूँ। आज श्रीचरणोंके दर्शनसे मेरा मनोरथरूपी वृक्ष फलित हुआ है।' सूर्यका यह वचन सुनकर महादेवजीने कहा—'भास्कर! राजा दिवोदासके शासनकालमें यहाँ देवताओंका प्रवेश नहीं होता था, तो भी तुम इस पुरीमें आकर जो ठहर गये, इससे मेरा ही कार्य सिद्ध हुआ है।' इस प्रकार सूर्यको आश्वासन देकर कृपानिधान महादेवजीने योगिनियोंको भी उत्तम दृष्टिसे देखकर प्रसन्न किया। इसके बाद उन्होंने चक्रधारी भगवान् विष्णुकी ओर देखा। महामना श्रीहरिने सर्वज्ञ शिवजीके आगे स्वयं कुछ भी नहीं कहा। भगवान् शिव गरुड़के मुखसे गणेशजी और श्रीविष्णुका वृत्तान्त सुन चुके थे। अतः वे मन-ही-मन इनपर बहुत प्रसन्न हुए, वाणीसे कुछ भी नहीं कहा।

इसी समय गोलोकसे पाँच गौएँ आयीं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—सुनन्दा, सुमना, सुशीला, सुरभि और कपिला। ये सब पापोंका नाश करनेवाली थीं। भगवान् शिवजीके प्रति वात्सल्यस्नेहके कारण उनके स्तनोंसे दूध चूने लगे। उनके स्तनरूपी मेघ दूधकी धारा बरसाने लगे और तबतक बरसाते रहे, जबतक कि एक सरोवर भर नहीं गया। पार्श्ववर्ती लोगोंने देखा एक कुण्ड भर गया। भगवान् शङ्करके अधिष्ठान-से वह एक उत्तम तीर्थ हो गया। महेश्वरने उसका नाम कपिला कुण्ड रक्खा। तदनन्तर महादेवजीकी आज्ञासे सब देवताओंने उसमें स्नान किया। तत्पश्चात् उस तीर्थसे दिव्य पितर प्रकट हुए, उन्हें देखकर सब देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक उनका तर्पण किया। अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, आज्यप और सोमप आदि दिव्य पितरोंने तृप्त होकर शङ्करजीसे निवेदन किया—'देवदेव जगन्नाथ! आप भक्तोंको अभय देनेवाले हैं। आपके समीप होनेसे इस तीर्थमें हमें अक्षय तृप्ति प्राप्त हुई है, इसलिये आप प्रसन्नचित्तसे वरदान दीजिये।' दिव्य पितरोंका यह वचन सुनकर शिवजीने कहा—'कपिला गौके दूधसे भरे हुए इस कापिलेयतीर्थमें जो श्रद्धापूर्वक पिण्डदान एवं श्राद्ध करेंगे, उनके पितरोंको मेरी आज्ञासे पूर्ण तृप्ति होगी। अमावास्या और सोमवारके योगमें यहाँ दिया हुआ श्राद्धका दान अक्षय होगा। प्रलयकाल आनेपर समुद्र और उसके जल नष्ट हो जाते हैं, परंतु अमावास्या तथा सोमवारके योगमें किया हुआ यहाँका श्राद्ध कभी क्षीण नहीं होगा। गदाधर और ब्रह्माजी! आप

लोग जहाँ विराजमान हैं तथा जहाँ मेरी भी स्थिति है, वहाँ फल्गु नदी निःसन्देह विद्यमान है। पितरो ! इस तीर्थके जो जो नाम आपलोगोंको तृप्ति देनेवाले हैं, उनका परिचय देता हूँ। इसका प्रथम नाम मधुस्रवा है, दूसरा नाम कृतकृत्या है, तीसरा नाम क्षीरसागर है। इसके सिवा वृषभध्वजतीर्थ, पितामह-तीर्थ, गदाधरतीर्थ और पितृतीर्थ आदि नाम हैं। इतना ही नहीं—कपिलधारा, सुधाखनि और शिवगया नामसे भी इस शुभ तीर्थको जानना चाहिये। पितरो ! इस तीर्थके ये दस नाम बिना श्राद्ध और तर्पणके भी आपलोगोंको तृप्ति देनेवाले हों। जो लोग पितरोंको तृप्त करनेकी इच्छा लेकर सूर्य-चन्द्रमाके सङ्गम (अमावास्या) के अवसरपर यहाँ ब्राह्मणोंको भोजन करावेंगे, उनके द्वारा किया हुआ वह श्राद्ध अक्षय होगा। जो पितरोंकी तृप्तिके लिये यहाँ श्राद्धमें कपिला गौका दान करेंगे, उनके पितर क्षीरसागरके तटपर निवास करेंगे। जिन्होंने इस वृषभध्वज तीर्थमें वृषोत्सर्ग किया है, उन्होंने अपने पितरोंको अश्वमेध यज्ञके पुरोडाशसे तृप्त कर दिया। पिताके गोत्रमें और माताके पक्षमें जो लोग मरे हैं, उनको यहाँ किया हुआ पिण्डदान अक्षय तृप्ति देनेवाला होता है। पत्नीवर्ग अथवा मित्रवर्गमें जो लोग मृत्युको प्राप्त हुए हैं, वे भी वृषभध्वजतीर्थमें तर्पण करनेपर तृप्तिको प्राप्त होते हैं। जिनका वृषभध्वजतीर्थमें तर्पण किया गया है, वे सब पितर ब्रह्मलोकको चले जाते हैं। यह तीर्थ सत्ययुगमें दूधसे भरा रहता है, त्रेतामें मधुसे पूर्ण होता है, द्वापरमें घीसे भरा होता है और कलियुगमें जलसे परिपूर्ण रहता है। यद्यपि यह शुभ तीर्थ काशीकी सीमासे बाहर है, तो भी यहाँ मेरा सामीप्य होनेके कारण इसे काशी-पुरीके भीतर ही जानना चाहिये। काशीनिवासियोंने यहाँ मेरे वृषचिह्नयुक्त ध्वजका दर्शन किया है, इसलिये मैं इस तीर्थमें 'वृषध्वज' नामसे निवास करूँगा। पितरो ! मैं तुम्हारे सन्तोषके लिये यहाँ ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य तथा अपने पार्षदोंके साथ निवास करूँगा।'

इस प्रकार शिवजी पितरोंको वरदान दे रहे थे, इतनेहीमें नन्दिकेश्वरने निवेदन किया—प्रभो ! रथ सुसज्जित होकर तैयार है, अतः अब श्रीचरणोंकी विजययात्रा प्रारम्भ हो। तब आठ मातृकाओंने भगवान् शिवकी आरती उतारी और भगवान् विश्वनाथ श्रीहरिसे हाथ मिलाये हुए उठकर खड़े हुए। उस समय दिव्य वाद्योंकी गम्भीर ध्वनिसे पृथ्वीसे लेकर आकाशतक गूँज उठा। देवियोंके मङ्गलगीत औ[र] चारणोंद्वारा की हुई स्तुतिके शब्दोंसे वह तुमुलनाद और [बढ़] बढ़ गया था। तैंतीस करोड़ देवता, बीस करोड़ शिवग[ण] नव करोड़ चामुण्डा, एक करोड़ भैरवी तथा आठ करो[ड़] मेरे (स्कन्दके) महाबली अनुचर, जो छः मुखोंसे सुशोभि[त] और मयूरके वाहनपर आरूढ़ थे, आये। चमकता हु[आ] फरसा हाथमें लिये सात करोड़ गणेशके गण उपस्थित हु[ए] जो महावेगवान्, तोंदवाले, हाथीके-से मुखवाले तथा वि[घ्न] विनाशक थे। छियासी हजार ब्रह्मवादी मुनि और इतने [ही] गृहस्थ भी वहाँ आये। तीन करोड़ पातालनिवासी नाग, दो [करोड़] दो करोड़ शिवभक्त दानव और दैत्य, आठ लाख गन्धर्व, पचा[स] लाख यक्ष और राक्षस, दो लाख दस हजार विद्याधर, साठ हज[ार] सुन्दरी दिव्य अप्सराएँ, आठ लाख गोमाताएँ, साठ हजार गरुड़ नाना प्रकारके रत्नोंकी भेंट देनेवाले सात समुद्र, तिरपन हजा[र] नदियाँ, आठ हजार पर्वत, तीन सौ वनस्पतियाँ और आठ दिग्गज—ये सब लोग उस स्थानपर उपस्थित हुए, जह[ाँ] पिनाकपाणि महादेवजी विराजमान थे। इन सबके साथ पर[म] सन्तुष्ट भगवान् शिवने इधर-उधरसे अपनी स्तुति सुनते हु[ए] रथपर आरूढ़ हो उत्तम काशीपुरीमें प्रवेश किया। उन[के] साथ गिरिराजनन्दिनी उमा भी थीं।

स्कन्दजी कहते हैं—यह परम उत्तम उपाख्यान कोटि जन्मोंका पाप नष्ट करनेवाला है। इसका पाठ करके अथव[ा] ब्राह्मणद्वारा कराकर मनुष्य भगवान् शिवका सायुज्य प्रा[प्त] कर लेता है। जो इस आख्यानका प्रसन्नतापूर्वक पाठ करके नूतन गृहमें प्रवेश करता है, वह सब प्रकारके सुख[का] निकेतन बन जाता है। यह उत्तम उपाख्यान तीनों लोकोंके लिये आनन्दजनक है। इसके श्रवणमात्रसे भगवान् विश्वनाथ प्रसन्न होते हैं।

जैगीषव्यपर भगवान् शिवकी कृपा और उनके द्वारा शिवकी स्तुति

अगस्त्यजी कहते हैं—भगवन् ! काशीपुरीका दर्शन करके त्रिपुरारि भगवान् शिवने क्या किया ?

स्कन्दजी बोले—अगस्त्य ! सर्वज्ञ नाथ भक्तवत्सल भगवान् शिवने काशीपुरीको देखनेके पश्चात् सबसे प्रथम किसी गुहामें बैठे हुए जैगीषव्य मुनिको दर्शन दिया। जिस दिन भगवान् शिव काशी छोड़कर मन्दराचल गये, उसी दिनसे जैगीषव्य मुनिने यह दृढ़ नियम कर लिया था कि 'जब मैं पुनः यहाँ भगवान् शिवके चरणारविन्दों

पिनाक उठाये रहनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। संसारी जीवोंके अज्ञानमय बन्धनको खोलनेवाले आप भगवान् पशुपतिको नमस्कार है। अपने नामका उच्चारण करनेमात्रसे बड़े-बड़े पातकोंको हर लेनेवाले आपको नमस्कार है। आप परसे भी परे, सबको पार उतारनेवाले, कार्य और कारणसे भी परे, अनन्त चरित्रवाले तथा परम पवित्र कथावाले हैं, आपको नमस्कार है। आप वामदेव हैं, अपने आधे अङ्गमें नारीस्वरूपको धारण करते हैं तथा धर्मस्वरूप वृषभपर यात्रा करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। प्रणतजनोंके भयका निवारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आप जगत्की उत्पत्तिके कारण तथा संसार-बन्धनका नाश करनेवाले हैं, आप ही सम्पूर्ण भूतोंका पालन करनेवाले पति हैं, आपको नमस्कार है। महादेव ! आपको नमस्कार है। महेश्वर ! तेजोंके स्वामी ! आपको नमस्कार है। आप पार्वतीके पति और मृत्युञ्जय हैं, आपको नमस्कार है। आप दक्षके यज्ञका नाश करनेवाले और यक्षराज कुबेरके प्रिय हैं, आपको नमस्कार है। आप बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले, यज्ञस्वरूप तथा यज्ञोंके फल देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप रुद्रस्वरूप, रुद्रपति तथा कुत्सित रोदनकारी कष्टको दूर करनेवाले हैं। आप भक्तोंके हृदयमें रमण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप त्रिशूलधारी, सनातन ईश्वर, श्मशानभूमिमें विहार करनेवाले, सर्वस्वरूप तथा सर्वज्ञ हैं, भगवती पार्वतीके प्रियतम ! आपको नमस्कार है। आप सबका कष्ट हरनेवाले क्षमास्वरूप और क्षेत्रज्ञ हैं। क्षमाशील महेश्वर ! आप सब कुछ करनेमें समर्थ, पृथ्वीका संहार करनेवाले तथा दूधके समान गौर हैं, आपको नमस्कार है। अन्धकासुरके शत्रु आपको नमस्कार है। आदि-अन्तसे रहित आप परमेश्वरको नमस्कार है। आप पृथ्वीके आधार, ईश्वर तथा इन्द्र और उपेन्द्र आदि देवताओंद्वारा प्रशंसित हैं, आप उमाकान्त, उग्र और ऊर्ध्वरेताको नमस्कार है। आप एक रूप, अद्वितीय तथा महान् ऐश्वर्यस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप अनन्तकर्ता तथा पार्वतीके पति हैं, आपको नमस्कार है। आप ही ॐकार, वषट्कार, भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक हैं। उमापते ! इस जगत्में दृश्य और अदृश्य जो कुछ भी है, वह सब आप ही हैं। देव ! मैं स्तुति करना नहीं जानता। महेश्वर ! आप ही शब्द हैं, आप ही अर्थ हैं और आप ही वाणी हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। महादेव ! मैं आपसे भिन्न और किसी ईश्वरको नहीं जानता। दूसरेका नाम लेनेमें मैं गूँगा हूँ, दूसरेकी कथा सुननेमें बहरा हूँ, दूसरेके समीप जानेमें पङ्गु हूँ और अन्य किसी देवताका दर्शन करनेमें अन्धा हूँ। एकमात्र आप ही ईश्वर हैं, आप ही कर्ता हैं तथा आप ही पालन और संहार करनेवाले हैं। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भिन्न-भिन्न देवता हैं, यह भेद-भाव मूर्खोंकी कल्पनामात्र है। अतः एकमात्र आप ही बार-बार मेरे लिये शरण हैं। महेश्वर ! मैं संसार-समुद्रमें डूबा हूँ, मेरा उद्धार कीजिये।

इस प्रकार महेश्वरकी स्तुति करके महामुनि जैगीषव्य उनके सामने ठूँठकी तरह अविचल और मौन हो गये। मुनिद्वारा की हुई इस स्तुतिको सुनकर चन्द्रमौलि भगवान् शिवने प्रसन्न होकर कहा—'मुने ! तुम कोई वर माँगो।'

जैगीषव्य बोले—देवेश ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यही वर दीजिये कि मैं आपके चरणारविन्दोंसे कभी दूर न होऊँ और दूसरा वर मुझे यह देनेकी कृपा करें कि मैंने जो शिवलिङ्गकी स्थापना की है, उसमें आप सदा ही स्थित रहें।

महादेवजीने कहा—महाभाग जैगीषव्य ! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब तुम्हारी इच्छाके अनुसार पूर्ण हो। इसके सिवा मैं तुम्हें दूसरा वर और देता हूँ—मोक्षके साधनभूत योगशास्त्र मैं तुम्हें अर्पण करता हूँ। तुम सब योगियोंके मध्य योगाचार्यरूपसे प्रसिद्ध होओ। तपोधन ! तुम मेरी कृपासे योगविद्याका यथावत् रहस्य जान लोगे, जिसके द्वारा तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति होगी। जिस प्रकार नन्दी, भृङ्गी और सोमनन्दी मेरे भक्त हैं, उसी प्रकार तुम भी मेरे जरा-मृत्युसे रहित भक्त होओगे। तुम सदा मेरे चरणोंके समीप निवास करोगे और वहाँ तुम्हें मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति होगी। काशीमें जैगीषव्येश्वर नामक शिवलिङ्ग परम दुर्लभ होगा। तीन वर्षोंतक उसका सेवन करके मनुष्य योगकी प्राप्ति कर सकता है, इसमें संशय नहीं। जैगीषव्य-गुहामें जाकर योगाभ्यास करनेवाला मनुष्य मेरी कृपासे छः महीनेमें मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त कर सकता है। तुम्हारे द्वारा स्थापित किया हुआ यह शिवलिङ्ग ज्येष्ठेश्वर क्षेत्रमें सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाला होगा तथा दर्शन, स्पर्श और पूजन करनेपर सम्पूर्ण पापराशिका विनाश करेगा। जैगीषव्य ! तुमने जो यह स्तवन किया है, यह बहुत उत्तम

ार है कि आप भवताप हरनेवाली काशीपुरीका कदापि ा न करें। यहाँ काशीमें ब्राह्मणोंके वचनसे कभी किसीके भी ऐसा कोई शाप न लागू हो, जो मोक्षमें विघ्न ाला हो। आपके युगल चरणारविन्दोंमें हमारी निर्द्वन्द्व बनी रहे। इस शरीरके अन्ततक हमारा निरन्तर ां ही निवास बना रहे। और किसी वरसे हमें क्या है, हमें तो बस यही वर देना चाहिये। आपकी प्रभावित होकर हमलोगोंने आपके प्रतिनिधिस्वरूप ङ्गोंकी स्थापना की है, उन सबमें आपका निरन्तर वास हो।

ाह्मणोंके ये वचन सुनकर शिवजीने कहा— तु' ऐसा ही हो। इसके सिवा तुम्हें दूसरा वर यह देता हूँ कि ब ब्राह्मणोंको यथार्थ ज्ञान प्राप्त होगा। मुक्तिकी इच्छा ाले पुरुषोंको उत्तरवाहिनी गङ्गाके सेवन, शिवलिङ्गका ंक पूजन, दम (इन्द्रियसंयम), दान और दया— ा ही करने चाहिये। इस क्षेत्रमें निवास करनेवाले ० लिये यही रहस्यकी बात बतायी गयी है। अपनी ो दूसरोंके हित-चिन्तनमें लगाना चाहिये और किसीसे द्वेगमें डालनेवाला वचन नहीं बोलना चाहिये। यहाँ की इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको मनसे भी कभी पाप नहीं चाहिये, क्योंकि यहाँका किया हुआ पुण्य और पाप होता है। अन्यत्रका किया हुआ पाप काशीमें नष्ट है, काशीमें किया हुआ पाप अन्तर्गृहमें नष्ट होता है, अन्तर्गृहमें किया हुआ पाप पैशाच्यनरककी प्राप्ति वाला है। अन्तर्गृहमें पाप करनेवाला पुरुष यदि काशीसे चला जाता है, तो उसे पिशाचनरककी प्राप्ति ही है, क्योंकि काशीमें किया हुआ पापकर्म करोड़ों में भी शुद्ध नहीं होता। परंतु यदि वहीं उसकी हो, तो उसे तीस हजार वर्षोंतक रुद्रपिशाच होकर पड़ता है। जो काशीमें रहकर सदा पातकोंमें ही तत्पर है, वह तीस हजार वर्षोंतक पिशाच-योनिमें रहेगा। उसके बाद फिर वहीं रहते हुए उसे उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति होगी और उसी ज्ञानसे उसे परम उत्तम मोक्ष प्राप्त हो जायगा। इस संसारमें सब कुछ अनित्य है और मनुष्य-जन्म अनेक प्रकारके पापोंसे भरा हुआ है, ऐसा जानकर संसारभयसे छुड़ानेवाले अविमुक्त क्षेत्र (काशीधाम) का सदैव सेवन करना चाहिये। ब्राह्मणो! मेरी भक्तिमें तत्पर जो पतिव्रता स्त्रियाँ अविमुक्त क्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होती हैं, वे परम गतिको पाती हैं। द्विजवरो! यहाँ प्राण निकलते समय मैं स्वयं ही जीवको तारक ब्रह्मका उपदेश देता हूँ, जिससे वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। मुझमें मन लगाये रखनेवाला तथा अपने सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें ही समर्पित करनेवाला मेरा भक्त इस काशीमें जिस प्रकार मोक्षको प्राप्त होता है, वैसा अन्य किसी पुण्य-क्षेत्रमें नहीं। देहधारी जीवकी मृत्यु निश्चित है, कर्मोंसे प्राप्त होनेवाली गति भी दुःखरूप ही है तथा प्रत्येक आगन्तुक वस्तु एक-न-एक दिन चली जानेवाली है। ऐसा समझकर काशीकी शरण लेनी चाहिये। जो अपने न्यायोपार्जित धनसे एक भी काशीवासी पुरुषको तृप्त करता है, उसने मेरे साथ सम्पूर्ण त्रिलोकीको तृप्त कर दिया। धर्मसे काशीकी रक्षा करनेवाले राजर्षि दिवोदास सशरीर मेरे उस लोकको प्राप्त हुए हैं, जहाँसे पुनः इस संसारमें आना नहीं होता। जो पृथ्वीके अन्तमें रहकर भी मेरे अविमुक्त नामक लिङ्गका स्मरण करते हैं, वे निश्चय ही बड़े-बड़े पापोंसे भी मुक्त हो जाते हैं। इस क्षेत्रमें जिसने भी मेरा दर्शन, स्पर्श और पूजन किया है, वह तारक-ज्ञान प्राप्त करके पुनः इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जो इस तीर्थमें मेरी पूजा करके अन्यत्र कहीं मृत्युको प्राप्त होता है, वह दूसरे जन्ममें भी मुझे प्राप्त होकर मुक्त हो जायगा। इस प्रकार ब्राह्मणोंके आगे काशी क्षेत्रकी महिमाका वर्णन करके महादेवजी उन सब ब्राह्मणोंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। वे ब्राह्मण भी भगवान् शङ्कर-का प्रत्यक्ष दर्शन पाकर प्रसन्नचित्त हो अपने-अपने आश्रमको चले गये।

परापरेश्वर और व्याघ्रेश्वर लिङ्गकी महिमा, भगवान् शिवद्वारा व्याघ्ररूपधारी दैत्यका वध
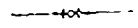
स्कन्दजी कहते हैं—कुम्भज! ज्येष्ठेश्वर क्षेत्रके सब जो मुनियोंद्वारा स्थापित पाँच हजार शिवलिङ्ग हैं, वे सिद्धि देनेवाले हैं। ज्येष्ठेश्वरसे उत्तरमें परम पूजनीय ेश्वर लिङ्ग है, जिसके दर्शनमात्रसे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है। दण्डखात नामक महातीर्थके समीप जब ब्राह्मण-लोग परम उत्तम निष्काम तप कर रहे थे, उस समय प्रह्लादके मामा 'दुन्दुभिनिह्राद' नामक दुष्ट दैत्यने मन-ही-मन यह विचार किया कि देवताओंको किस प्रकार सुगमतापूर्वक

जीता जा सकता है। इसका उपाय सोचते-सोचते उसने निश्चय किया कि 'ब्राह्मण ही देवताओंके सबल होनेमें कारण हैं, क्योंकि देवता यज्ञमें दिये हुए भागका ही आहार करते हैं। यज्ञ वेदोंसे सम्पन्न होते हैं और वे वेद ब्राह्मणोंके अधीन हैं। अतः ब्राह्मण ही देवताओंके बल हैं। यदि ब्राह्मण नष्ट हो जायँ तो वेद स्वयं नष्ट हो जायँगे और जब वेद नष्ट हो जायँगे, तब यज्ञ तो नष्ट ही हैं। यज्ञोंका नाश होते ही देवताओं-का आहार छिन जायगा। इस प्रकार निर्बल हुए देवतालोग सुगमतापूर्वक जीते जा सकते हैं। देवताओंके परास्त होनेपर मैं ही तीनों लोकोंका सम्माननीय सम्राट् होऊँगा।' यह सोचकर उसने ब्राह्मणोंको ही मार डालनेका बार-बार उद्योग किया। काशीमें आकर उस मायावी दैत्यने कितने ही ब्राह्मणोंका वध किया। श्रेष्ठ द्विज जिस किसी ओर भी समिधा और कुशा लानेके लिये जाते, उधर ही वनमें उन सबको पकड़कर वह दुर्बुद्धि दैत्य अपना आहार बना लेता था। उसका रूप किसीको दिखायी नहीं देता था। देवता-लोग भी उस मायावीको देख नहीं पाते थे। वह दिनभर मुनियोंके ही बीचमें बैठकर उन्हींकी भाँति ध्यान लगाये रहता था। पर्णशालामें किधरसे प्रवेश करने और किस ओरसे निकल भागनेका मार्ग है, यह सब वह दिनमें ही देख लेता था तथा रातमें व्याघ्रका रूप धारण करके वहाँ बहुतसे ब्राह्मणोंको खा डालता था। इस प्रकार उस दुष्ट दैत्यने बहुतसे ब्राह्मणोंको मार दिया।

एक दिन शिवरात्रिके समय एक शिवभक्त ब्राह्मण महादेवजीकी पूजा करके उनके ध्यानमें बैठा था। उसी समय अपने बलके घमंडमें भरे हुए दैत्यराज दुन्दुभिने व्याघ्रका रूप धारण करके उस भक्तको पकड़ लेनेका विचार किया। वह शिवभक्त अपने चित्तको दृढ़तापूर्वक स्थिर करके ध्यानमें स्थित हो भगवान् शिवके दर्शनमें तल्लीन था। उसने विधिपूर्वक मन्त्रके अङ्गन्यास, करन्यास, कवच और ध्यान आदिका प्रयोग कर लिया था। अतः वह दैत्य उस भक्तपर सहसा आक्रमण करनेमें समर्थ न हुआ। इसी समय सर्वव्यापी भगवान् शिवने उस दुष्ट दैत्यके मनोभावको समझकर उसका वध करनेका विचार किया। वे उस भक्तद्वारा पूजित शिवलिङ्ग-से सहसा प्रकट हो गये। उन्हें आते देख वह दैत्य उसी रूपमें बढ़कर पर्वतके समान विशालकाय हो गया और उनकी ओर झपटा। इतनेमें ही उसे पकड़कर भगवान्ने अपनी काँखमें दबा लिया और उसीमें पीस डाला। इस प्रकार

काँखमें कुचला जाता हुआ वह दैत्य आकाश और पृथ्वीको गुँजाता हुआ आर्तनाद करने लगा। उसका चीत्कार सुनकर बहुतसे तपस्वी रात्रिमें उसी शब्दका लक्ष्य करके उस पर्णशालामें आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा—भगवान् शङ्कर अपनी काँखमें एक व्याघ्रको दबाये हुए खड़े हैं। यह देख सबने जय-जयकार करते हुए उनके चरणोंमें प्रणाम और स्तवन किया। 'जगद्गुरो! ईश! आप हमपर अनुग्रह कीजिये और इसी रूपमें व्याघ्रेश नाम धारण करके यहाँ निवास कीजिये। महादेव! इस श्रेष्ठ स्थानकी आप सदैव रक्षा करें।'

उन तपोधनोंका ऐसा वचन सुनकर चन्द्रभूषण भगवान् शिवने कहा—'ब्राह्मणो! ऐसा ही हो। जो श्रद्धापूर्वक यहाँ इस रूपमें मेरा दर्शन करेगा, उसके समस्त उपद्रवोंका मैं निश्चय ही नाश करूँगा।' ऐसा कहकर महादेवजी उस शिव-लिङ्गमें लयको प्राप्त हो गये। तबसे वह शिवलिङ्ग व्याघ्रेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। ज्येष्ठेश्वरके उत्तरभागमें उसका दर्शन और स्पर्श करनेपर वह सम्पूर्ण भयोंका नाश करनेवाला है।